कल्याण



संक्षिप्त

मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। गौरी-शंकर सीता-राम॥
जय रघुनन्दन जय सिया-राम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीता-राम॥

कोई सज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठावें।
कल्याणमें बाहरके विज्ञापन नहीं छपते।

समालोचनार्थ पुस्तकें कृपया न भेजें।
कल्याणमें समालोचनाका स्तम्भ नहीं है।

वार्षिक मूल्य
भारतमें ६≡)
विदेशमें ८॥=)
(१३ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका
मूल्य ६≡)
विदेशमें ८॥=)
(१३ शिलिङ्ग)

Edited by Hanumanprasad Poddar and C. L. Goswami, M. A., Shastri
Printed and Published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press, Gorakhpur. U. P. (India)

कल्याण



मार्कण्डेय पुराण

श्रीहरिः

कल्याण-प्रेमियों तथा ग्राहकोंसे निवेदन

इस 'संक्षिप्त मार्कण्डेय और ब्रह्मपुराणाङ्क'में सब मिलाकर ७७० पृष्ठ दिये गये हैं। 'गो-अङ्क'में लेखों-के पृष्ठ ६८० थे, इस अङ्कमें ७२५ हैं जो 'गो-अङ्कसे' अधिक हैं। रंगीन चित्र भी जितने सम्भव थे—दिये गये हैं। श्रीभगवतीके कई बड़े सुन्दर चित्र इसमें हैं।

-जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ गये होंगे, उनके अङ्क जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम मार्च मासतक वी० पी० भेजी जायगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाही-का एक कार्ड तुरंत डाल दें। ताकि वी० पी० भेजकर 'कल्याण'को नुकसान न उठाना पड़े।

-जिन महानुभावोंने पिछले अभ्यासवश अगले वर्षके चन्देके लिये ५≡) ही हमें भेजे हैं उन्हें १) और मनीआर्डर-कूपनमें अपनी ग्राहक-संख्या देते हुए शीघ्र भेज देना चाहिये। कुछ लोगोंने १) की वी० पी० करनेको लिखा है पर ६≡) का माल १) की वी० पी० द्वारा भेजा जाना सुरक्षित नहीं है। अतः उनकी सेवामें अङ्क १) मिलनेपर ही भेजा जा सकेगा।

-इस विशेषाङ्कका अलग मूल्य भी ६≡) ही है। अतः पूरे वर्षके लिये ही ग्राहक बनना चाहिये। आजकल नये-नये उपद्रव तथा अशान्तिके कारण बन रहे हैं। इसलिये यदि किसी कारणवश आगेके अङ्क पूरे वर्षतक न भेजे जा सकें, तो जितने अङ्क पहुँचें, उतनेमें ही मूल्य पूरा समझने-की कृपा करें।

-मनीआर्डर-कूपनमें अपना पता और ग्राहक-नंबर जरूर लिखें। ग्राहक-नंबर याद न हो तो कम-से-कम 'पुराना ग्राहक' अवश्य लिख दें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें।

-'ग्राहक-नंबर' न लिखनेसे आपका नाम 'नये ग्राहकों'में दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'संक्षिप्त मार्कण्डेय और ब्रह्मपुराणाङ्क' नये नंबरोंसे पहुँच जायगा और पुराने नंबरकी वी० पी० दुबारा जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आपने रुपये भेजे हों और उनके हमारे पास पहुँचनेके पहले ही आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही सूरतोंमें आपसे यह प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटावें नहीं। चेष्टा करके कृपया नया ग्राहक बनाकर उनके नाम-पते साफ-साफ हमें लिखनेकी कृपा करें। आप ऐसा करेंगे तो आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण'के प्रचारमें सहायता करके पुण्यके भागी होंगे।

-'संक्षिप्त मार्कण्डेय और ब्रह्मपुराणाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड पोस्टसे जायगा। सब अङ्कोंके जानेमें लगभग दो महीने लग जाते हैं; क्योंकि पोस्ट-आफिसवाले प्रतिदिन अधिक संख्यामें रजिस्टर्ड पैकेट नहीं ले पाते। इसलिये ग्राहक महोदयोंकी सेवामें 'विशेषाङ्क' नम्बरवार जायगा। परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करनी चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

-जिन कल्याणप्रेमी महानुभावोंने 'कल्याण'के नये ग्राहक बनाये हैं और बना रहे हैं, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। इस बार कल्याणप्रेमी सज्जनोंको 'कल्याण'के नये ग्राहक बनानेकी फिर सफल चेष्टा करनी चाहिये। धर्मपर इस समय बड़ी विपत्ति आयी हुई है। ऐसे समयमें शुद्ध धर्म-सेवा समझकर 'कल्याण'का प्रचार बढ़ानेमें सभीको सहायक होना चाहिये।

व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर

श्रीहरिः

लेखसहित संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण और संक्षिप्त ब्रह्मपुराणकी विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–प्रार्थना १
२–सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम् २
३–दुर्गापाठकी विधि ... ३–३२
(क)–(पूर्वाङ्ग) ३–२०
(क) अथ देव्याः कवचम् ... ५
(ख) अथार्गलास्तोत्रम् ... ९
(ग) अथ कीलकम् ... ११
(घ) अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम् ... १३
(ङ) अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम् ... १४
(च) श्रीदेव्यथर्वशीर्षम् ... १५
(छ) अथ नवार्णविधि ... १८
(ख)–(अपराङ्ग) २१–३२
(क) अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम् ... २३
(ख) अथ प्राधानिकं रहस्यम् ... २४
(ग) अथ वैकृतिकं रहस्यम् ... २७
(घ) अथ मूर्तिरहस्यम् ... ३०
४–सप्तशतीके सिद्ध सम्पुट-मन्त्र ... ३३
५–तुम्हारा अनोखा प्यार (संकलित) ... ३४
६–दुर्गा-पाठ (पं० श्रीहनूमान्‌जी शर्मा) ... ३५
७–सप्तश्लोकी दुर्गा ३९
८–मार्कण्डेयपुराण और दुर्गासप्तशती (श्रीतारा-चन्द्रजी पाण्ड्या, बी० ए०) ४०

९–संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण

१–जैमिनि-मार्कण्डेय-संवाद—वपुको दुर्वासाका शाप ४१
२–सुकृष मुनिके पुत्रोंके पक्षीकी योनिमें जन्म लेनेका कारण ४३
३–धर्मपक्षीद्वारा जैमिनिके प्रश्नोंका उत्तर ... ४८
४–राजा हरिश्चन्द्रका चरित्र ५१
५–पिता-पुत्र-संवादका आरम्भ, जीवकी मृत्यु तथा नरक-गतिका वर्णन ६४
६–जीवके जन्मका वृत्तान्त तथा महारौरव आदि नरकोंका वर्णन ६८

पृष्ठ-संख्या

७–जनक-यमदूत-संवाद, भिन्न-भिन्न पापोंसे विभिन्न नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन ... ७२
८–पापोंके अनुसार भिन्न-भिन्न योनियोंकी प्राप्ति तथा विपश्चित्‌के पुण्यदानसे पापियोंका उद्धार ... ७७
९–दत्तात्रेयजीके जन्म-प्रसङ्गमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी तथा अनसूयाजीका चरित्र ... ८२
१०–दत्तात्रेयजीके जन्म और प्रभावकी कथा ... ८७
११–अलर्कोपाख्यानका आरम्भ–नागकुमारोंके द्वारा ऋतध्वजके पूर्ववृत्तान्तका वर्णन ... ९१
१२–पातालकेतुका वध और मदालसाके साथ ऋत-ध्वजका विवाह ९४
१३–तालकेतुके कपटसे मरी हुई मदालसाकी नाग-राजके फणसे उत्पत्ति और ऋतध्वजका पाताल-लोकमें गमन ९८
१४–ऋतध्वजको मदालसाकी प्राप्ति, बाल्यकालमें अपने पुत्रोंको मदालसाका उपदेश ... १०५
१५–मदालसाका अलर्कको राजनीतिका उपदेश ... ११०
१६–मदालसाके द्वारा वर्णाश्रमधर्म एवं गृहस्थके कर्तव्यका वर्णन ११३
१७–श्राद्ध-कर्मका वर्णन ११५
१८–श्राद्धमें विहित और निषिद्ध वस्तुका वर्णन तथा गृहस्थोचित सदाचारका निरूपण ... ११९
१९–त्याज्य-ग्राह्य, द्रव्य-शुद्धि, अशौच-निर्णय तथा कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन १२३
२०–सुबाहुकी प्रेरणासे काशिराजका अलर्कपर आक्रमण, अलर्कका दत्तात्रेयजीकी शरणमें जाना और उनसे योगका उपदेश लेना ... १२५
२१–योगके विघ्न, उनसे बचनेके उपाय, सात धारणा, आठ ऐश्वर्य तथा योगीकी मुक्ति ... १३०
२२–योगचर्या, प्रणवकी महिमा तथा अरिष्टोंका वर्णन और उनसे सावधान होना ... १३२
२३–अलर्ककी मुक्ति एवं पिता-पुत्रके संवादका उपसंहार १३६
२४–मार्कण्डेय-क्रौष्टुकि-संवादका आरम्भ, प्राकृत सर्गका वर्णन १३८

पृष्ठ-संख्या

२५—एक ही परमात्माके त्रिविध रूप, ब्रह्माजीकी आयु आदिका मान तथा सृष्टिका संक्षिप्त वर्णन १४१
२६—प्रजाकी सृष्टि, निवास-स्थान, जीविकाके उपाय और वर्णाश्रम-धर्मके पालनका माहात्म्य ... १४३
२७—स्वायम्भुव मनुकी वंश-परम्परा तथा अलक्ष्मी-पुत्र दुःसहके स्थान आदिका वर्णन ... १४५
२८—दुःसहकी सन्तानोंद्वारा होनेवाले विघ्न और उनकी शान्तिके उपाय ... १४८
२९—दक्ष प्रजापतिकी संतति तथा स्वायम्भुव सर्गका वर्णन १४९
३०—जम्बूद्वीप और उसके पर्वतोंका वर्णन ... १५१
३१—श्रीगङ्गाजीकी उत्पत्ति, किम्पुरुष आदि वर्षोंकी विशेषता तथा भारतवर्षके विभाग, नदी, पर्वत और जनपदोंका वर्णन ... १५२
३२—भारतवर्षमें भगवान् कूर्मकी स्थितिका वर्णन ... १५५
३३—भद्राश्व आदि वर्षोंका संक्षिप्त वर्णन ... १५७
३४—स्वरोचिष् तथा स्वारोचिष मनुके जन्म एवं चरित्रका वर्णन १५८
३५—पद्मिनी विद्याके अधीन रहनेवाली आठ निधियोंका वर्णन १६६
३६—राजा उत्तमका चरित्र तथा औत्तम मन्वन्तरका वर्णन १६८
३७—तामस मनुकी उत्पत्ति तथा मन्वन्तरका वर्णन १७४
३८—रैवत मनुकी उत्पत्ति और उनके मन्वन्तरका वर्णन १७६
३९—चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति और उनके मन्वन्तरका वर्णन १७८
४०—वैवस्वत मन्वन्तरकी कथा तथा सावर्णिक मन्वन्तरका संक्षिप्त परिचय ... १८०
४१—मेधा ऋषिका राजा सुरथ और समाधिको भगवतीकी महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वधका प्रसङ्ग सुनाना १८३
४२—देवताओंके तेजसे देवीका प्रादुर्भाव और महिषासुरकी सेनाका वध ... १९०
४३—सेनापतियोंसहित महिषासुरका वध ... १९६
४४—इन्द्रादि देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति ... २००
४५—देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति, चण्ड-मुण्डके मुखसे अम्बिकाके रूपकी प्रशंसा सुनकर शुम्भका उनके पास दूत भेजना और दूतका निराश लौटना २०५
४६—धूम्रलोचन-वध २११
४७—चण्ड और मुण्डका वध ... २१३
४८—रक्तबीज-वध २१६
४९—निशुम्भ-वध २२१
५०—शुम्भ-वध २२४
५१—देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा देवताओंको वरदान ... २२७
५२—देवी-चरित्रोंके पाठका माहात्म्य ... २३१
५३—सुरथ और वैश्यको देवीका वरदान ... २३४
५४—नवेंसे लेकर तेरहवें मन्वन्तरतकका संक्षिप्त वर्णन २३६
५५—रौच्य मनुकी उत्पत्ति-कथा ... २३६
५६—भौत्य मन्वन्तरकी कथा तथा चौदह मन्वन्तरोंके श्रवणका फल ... २४२
५७—सूर्यका तत्त्व, वेदोंका प्राकट्य, ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सृष्टिरचनाका आरम्भ २४६
५८—अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यका अवतार ... २४८
५९—सूर्यकी महिमाके प्रसङ्गमें राजा राज्यवर्धनकी कथा २५०
६०—दिष्टपुत्र नाभागका चरित्र ... २५४
६१—वत्सप्रीके द्वारा कुजृम्भका वध तथा उसका मुदावतीके साथ विवाह ... २५५
६२—राजा खनित्रकी कथा ... २५८
६३—क्षुप, विविंश, खनीनेत्र, करन्धम, अवीक्षित तथा मरुत्तके चरित्र ... २६०
६४—राजा नरिष्यन्त और दमका चरित्र ... २७०
६५—श्रीमार्कण्डेयपुराणका उपसंहार और माहात्म्य २७४
१०—मार्कण्डेयपुराणकी शक्ति ही भागवतकी योगमाया हैं (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री) २७६

११—संक्षिप्त ब्रह्मपुराण

१—नैमिषारण्यमें सूतजीका आगमन, पुराणका आरम्भ तथा सृष्टिका वर्णन ... २७७
२—राजा पृथुका चरित्र ... २७९
३—चौदह मन्वन्तरों तथा विवस्वान्‌की संततिका वर्णन २८३

पृष्ठ-संख्या

४–वैवस्वत मनुके वंशजोंका वर्णन ... २८४
५–राजा सगरका चरित्र तथा इक्ष्वाकुवंशके मुख्य-मुख्य राजाओंका परिचय ... २८८
६–चन्द्रवंशके अन्तर्गत जह्नु, कुशिक तथा भृगुवंशका संक्षिप्त वर्णन ... २९१
७–आयु और नहुषके वंशका वर्णन, रजि एवं ययातिका चरित्र २९३
८–ययाति-पुत्रोंके वंशका वर्णन ... २९६
९–क्रोष्टु आदिके वंशका वर्णन तथा स्यमन्तक-मणिकी कथा ३०१
१०–जम्बूद्वीप तथा उसके विभिन्न वर्षोंसहित भारतवर्षका वर्णन ३०७
११–प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन और भूमिका मान ३०९
१२–पाताल और नरकोंका वर्णन तथा हरिनाम-कीर्तनकी महिमा ३११
१३–ग्रहों तथा भुवः आदि लोकोंकी स्थिति, श्रीविष्णु-शक्तिका प्रभाव तथा शिशुमारचक्रका वर्णन ... ३१४
१४–तीर्थ-वर्णन ३१६
१५–भारतवर्षका वर्णन ३१७
१६–कोणादित्यकी महिमा ३१९
१७–भगवान् सूर्यकी महिमा ३२१
१८–सूर्यकी महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन ३२५
१९–श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन ३२७
२०–पार्वतीदेवीकी तपस्या, वरदान-प्राप्ति तथा उनके द्वारा ग्राहके मुखसे ब्राह्मण-बालकका उद्धार ३३०
२१–पार्वतीजीका स्वयंवर और महादेवजीके साथ उनका विवाह ३३२
२२–देवताओंद्वारा महादेवजीकी स्तुति, कामदेवका दाह तथा महादेवजीका मेरुपर्वतपर गमन ... ३३५
२३–दक्ष-यज्ञ-विध्वंस ३३६
२४–दक्षद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति ... ३३८
२५–एकाम्रकक्षेत्र तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा ... ३४५
२६–अवन्तीके महाराज इन्द्रद्युम्नका पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें जाना तथा वहाँकी इन्द्रनीलमयी प्रतिमाके गुप्त होनेकी कथा ... ३४७
२७–राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा अश्वमेधयज्ञ तथा पुरुषोत्तम-प्रासाद-निर्माणका कार्य ... ३५१
२८–राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा भगवान श्रीविष्णुकी स्तुति ३५४
२९–राजाको स्वप्नमें और प्रत्यक्ष भी भगवान्‌का दर्शन, भगवत्प्रतिमाओंका निर्माण, स्थापन और यात्राकी महिमा ३५८
३०–मार्कण्डेय मुनिको प्रलयकालमें बालमुकुन्दका दर्शन और उनका वरदान प्राप्त होना ... ३६२
३१–मार्कण्डेयेश्वर शिव, वटवृक्ष, श्रीकृष्ण, बलराम एवं सुभद्राके दर्शन-पूजनका माहात्म्य ... ३६७
३२–पुरुषोत्तमक्षेत्रमें भगवान् नृसिंह तथा श्वेत माधवका माहात्म्य ३६८
३३–मत्स्यमाधवकी महिमा, समुद्रमें मार्जन आदिकी विधि, अष्टाक्षरमन्त्रकी महत्ता, स्नान, तर्पण-विधि तथा भगवान्‌की पूजाका वर्णन ... ३७२
३४–भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा और दर्शनका फल, इन्द्रद्युम्नसरोवरके सेवनकी विधि एवं महिमाका वर्णन तथा ज्येष्ठकी पूर्णिमाको दर्शनका माहात्म्य ३७७
३५–ज्येष्ठपूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राके स्नानका उत्सव तथा उनके दर्शनका माहात्म्य ... ३७९
३६–गुण्डिचा-यात्राका माहात्म्य तथा द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठा-विधि ३८०
३७–तीर्थोंके भेद, वामनका बलिसे भूमिदान-ग्रहण तथा गङ्गाजीका महेश्वरकी जटामें गमन ... ३८२
३८–गौतमके द्वारा भगवान् शङ्करकी स्तुति, शिवका गौतमको जटासहित गङ्गाका अर्पण तथा गौतमी गङ्गाका माहात्म्य ... ३८५
३९–भागीरथी गङ्गाके अवतरणकी कथा ... ३८८
४०–वाराहतीर्थ, कुशावर्त, नीलगङ्गा और कपोत-तीर्थकी महिमा; कपोत और कपोतीके अद्भुत त्यागका वर्णन ३९१
४१–दशाश्वमेधिक और पैशाचतीर्थका माहात्म्य ... ३९४
४२–क्षुधातीर्थ और अहल्या-संगमतीर्थका माहात्म्य ३९६
४३–जनस्थान, अश्वतीर्थ, भानुतीर्थ और अरुणा-वरुणा-संगमकी महिमा ३९९
४४–गारुडतीर्थ और गोवर्धनतीर्थकी महिमा ... ४०१

पृष्ठ-संख्या

४५–श्वेततीर्थ, शुक्रतीर्थ और इन्द्रतीर्थका माहात्म्य ४०२
४६–पौलस्त्य, अग्नि और ऋणमोचन नामक तीर्थोंका माहात्म्य ··· ··· ४०५
४७–सुपर्णा-संगम, पुरूरवस्तीर्थ, पञ्चतीर्थ, शमीतीर्थ, सोम आदितीर्थ तथा वृद्धा-संगमतीर्थकी महिमा ४०८
४८–इलातीर्थके आविर्भावकी कथा ··· ४१०
४९–चक्रतीर्थ और पिप्पलतीर्थकी महिमा, महर्षि दधीचि, उनकी पत्नी गभस्तिनी तथा उनके पुत्र पिप्पलादके त्यागकी अद्भुत कथा ··· ४१३
५०–नागतीर्थकी महिमा ··· ··· ४१९
५१–मातृतीर्थ, अविघ्नतीर्थ और शेषतीर्थकी महिमा ४२१
५२–अश्वत्थ-पिप्पलतीर्थ, शनैश्चरतीर्थ, सोमतीर्थ, धान्यतीर्थ और विदर्भा-संगम तथा रेवती-संगम-तीर्थकी महिमा ··· ··· ४२४
५३–पूर्णतीर्थ और गोविन्द आदि तीर्थोंकी महिमा, धन्वन्तरि और इन्द्रपर भगवानकी कृपा ··· ४२६
५४–श्रीरामतीर्थकी महिमा ··· ··· ४३१
५५–पुत्रतीर्थकी महिमा ··· ··· ४३३
५६–यम, आग्नेय, कपोत और उलूक-तीर्थकी महिमा ··· ··· ४३७
५७–तपस्तीर्थ, इन्द्रतीर्थ और वृषाकपि एवं अब्जक तीर्थकी महिमा ··· ··· ४४०
५८–आपस्तम्बतीर्थ, शुक्रतीर्थ और श्रीविष्णुतीर्थ-की महिमा ··· ··· ४४४
५९–लक्ष्मीतीर्थ और भानुतीर्थका माहात्म्य ··· ४४७
६०–खड्गतीर्थ और आत्रेयतीर्थकी महिमा ··· ४५०
६१–परुष्णीतीर्थ, नारसिंहतीर्थ, पैशाचनाशनतीर्थ, निम्नभेदतीर्थ और शङ्खह्रदतीर्थकी महिमा ··· ४५२
६२–किष्किन्धातीर्थ और व्यासतीर्थकी महिमा ··· ४५६
६३–कुशतर्पण एवं प्रणीता-संगम तीर्थकी महिमा ··· ४५८
६४–सारस्वत तथा चिच्चिक तीर्थका माहात्म्य ··· ४६०
६५ भद्रतीर्थ, पतत्रितीर्थ और विप्रतीर्थकी महिमा ४६४
६६–चक्षुस्तीर्थका माहात्म्य ··· ४६८
६७–सामुद्र, ऋषिसत्र आदि तीर्थोंकी महिमा तथा गौतमी-माहात्म्यका उपसंहार ··· ४७१
६८–अनन्त वासुदेवकी महिमा तथा पुरुषोत्तम-क्षेत्र-के माहात्म्यका उपसंहार ··· ··· ४७५

पृष्ठ-संख्या

६९–कण्डुमुनिका चरित्र और मुनिपर भगवान् पुरुषोत्तमकी कृपा ··· ··· ४७८
७०–मुनियोंका भगवान्के अवतारके सम्बन्धमें प्रश्न और श्रीव्यासजीद्वारा उसका उत्तर ··· ४८४
७१–भगवान्के अवतारका उपक्रम ··· ४८६
७२–भगवान्का अवतार, गोकुलगमन, पूतनावध, शकटभञ्जन, यमलार्जुन-उद्धार, गोपोंका वृन्दा-वन-गमन तथा बलराम और श्रीकृष्णका बछड़े चराना ··· ··· ४८८
७३–कालियनागका दमन ··· ··· ४९२
७४–धेनुक और प्रलम्बका वध तथा गिरियज्ञका अनुष्ठान ··· ··· ४९५
७५–इन्द्रके द्वारा भगवान्का अभिषेक, श्रीकृष्ण और गोपोंकी बातचीत, रासलीला और अरिष्टासुरका वध ··· ··· ४९७
७६–कंसका अक्रूरको नन्दगाँव जानेकी आज्ञा देना और केशीका वध तथा भगवान्के पास नारद-का आगमन ··· ··· ५०२
७७–अक्रूरका नन्दगाँवमें जाना, श्रीराम-कृष्णकी मथुरायात्रा, गोपियोंकी कथा, अक्रूरको यमुना-में भगवद्दर्शन, उनके द्वारा भगवान्की स्तुति, मथुराप्रवेश, रजक-वध और मालीपर कृपा ··· ५०३
७८–कुब्जापर कृपा, कुवलयापीड़, चाणूर, मुष्टिक, तोशल और कंसका वध तथा वसुदेवद्वारा भगवान्का स्तवन ··· ··· ५०९
७९–भगवान्की माता-पितासे भेंट, उग्रसेनका राज्या-भिषेक, श्रीकृष्ण-बलरामका विद्याध्ययन, गुरु-पुत्रको यमपुरसे लाना, जरासंधकी पराजय, कालयवनका संहार तथा मुचुकुन्दद्वारा भगवान्-का स्तवन ··· ··· ५१२
८०–बलरामजीकी व्रजयात्रा, श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणी-का हरण तथा प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुर-का वध ··· ··· ५१५
८१–श्रीकृष्णकी संतति, अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मी-का वध, भौमासुरका वध, पारिजात-हरण तथा इन्द्रकी पराजय ··· ··· ५१७
८२–भगवान् श्रीकृष्णका सोलह हजार स्त्रियोंसे विवाह और उनकी संतति तथा उषाका अनिरुद्धके साथ विवाह ··· ५२२

पृष्ठ-संख्या

८३—पौण्ड्रकका वध और बलरामजीके द्वारा हस्तिनापुर-का आकर्षण ··· ··· ५२५
८४—द्विविदका वध, यदुकुलका संहार, अर्जुनका पराभव और पाण्डवोंका महाप्रस्थान ··· ५२८
८५—श्रीहरिके अनेक अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन ··· ५३३
८६—यमलोकके मार्ग और चारों द्वारोंका वर्णन ··· ५३८
८७—यमलोकके दक्षिणद्वार तथा नरकोंका वर्णन ५४१
८८—धर्मसे यमलोकमें सुखपूर्वक गति तथा भगवद्-भक्तिके प्रभावका वर्णन ··· ५४६
८९—धर्मकी महिमा एवं अधर्मकी गतिका निरूपण तथा अन्नदानका माहात्म्य ··· ५५०
९०—श्राद्ध-कल्पका वर्णन ··· ··· ५५३
९१—गृहस्थोचित सदाचार तथा कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन ··· ··· ५५९
९२—वर्ण और आश्रमोंके धर्मका निरूपण ··· ५६४
९३—उच्च वर्णकी अधोगति और नीच वर्णकी ऊर्ध्व गतिका कारण ··· ··· ५६६
९४—स्वर्ग और नरकमें ले जानेवाले धर्माधर्मका निरूपण ··· ··· ५६९
९५—भगवान् वासुदेवका माहात्म्य ··· ५७२
९६—श्रीवासुदेवके पूजनकी महिमा तथा एकादशीको भगवान्‌के मन्दिरमें जागरण करनेका माहात्म्य—ब्रह्मराक्षस और चाण्डालकी कथा ··· ५७४
९७—श्रीविष्णुमें भक्ति होनेका क्रम और कलिधर्मका निरूपण ··· ··· ५७७
९८—युगान्तकालकी अवस्थाका निरूपण ··· ५८१
९९—नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका वर्णन ··· ५८३
१००—आत्यन्तिक प्रलयका निरूपण, आध्यात्मिक आदि त्रिविध तापोंका वर्णन और भगवत्तत्त्वकी व्याख्या ··· ··· ५८६
१०१—योग और सांख्यका वर्णन ··· ५८८
१०२—कर्म तथा ज्ञानका अन्तर, परमात्मतत्त्वका निरूपण तथा अध्यात्मज्ञान और उसके साधनोंका वर्णन ··· ··· ५९२
१०३—योग और सांख्यका संक्षिप्त वर्णन ··· ५९५
१०४—क्षर-अक्षर-तत्त्वके विषयमें राजा करालजनक और वसिष्ठका संवाद ··· ··· ५९७
१०५—क्षर-अक्षर तथा योग और सांख्यका वर्णन ··· ५९८
१०६—श्रीब्रह्मपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार ६००

पृष्ठ-संख्या

१२—दुर्गासप्तशतीकी उत्तमता और गम्भीरता (श्रीसम्पूर्णानन्दजी, शिक्षासचिव, युक्तप्रान्त) ६०३
१३—मार्कण्डेय एवं ब्रह्मपुराणपर एक विहङ्गम दृष्टि (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ··· ६०७
१४—समाधान (श्रीविश्वबन्धुजी सत्यार्थी) ··· ६२८
१५—भौतिक विज्ञान और शक्तिवाद (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) ··· ६२९
१६—पार्थ-सारथिसे [कविता] (पाण्डेय श्रीराम-नारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ··· ६३१
१७—उपासनाका स्वरूप (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री) ··· ६३२
१८—ईश्वर और धर्म क्यों ? (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ··· ··· ६३६
१९—परमात्मासे विनय-विवाद (श्रीयुगलकिशोरजी बिड़ला) ··· ··· ६४९
२०—सच्चा राष्ट्रवाद ('राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघ'के आदरणीय गुरुजीके एक भाषणसे) ··· ६५६
२१—भगवान्‌को आर्तभावसे पुकारते ही रक्षा हो गयी ६६६
२२—धर्मके सामने प्राणोंका कोई मूल्य नहीं है ··· ६६९
२३—राष्ट्रीयताका मोह ··· ··· ६७०
२४—प्रेममें ही सबका कल्याण है ··· ६७३
२५—मानवताके आदर्श ··· ··· ६७५
२६—विश्वकल्याणके लिये भगवदाराधनकी आवश्यकता ६८१
२७—वनस्पतिका खतरा (महात्मा गांधीजी) ··· ६८३
२८—हिंदू कौन ? हिंदू क्या करें ? (प्रसिद्ध स्वामी श्री-विवेकानन्दजीके मननीय विचार) ··· ६८३
२९—देशकी वर्तमान परिस्थिति और हिंदुओंका कर्तव्य ६८६
३०—ब्रह्मचर्यका बौद्ध आदर्श (श्रीभरतसिंहजी उपाध्याय) ··· ··· ६९७
३१—दुर्गापाठका प्रभाव (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे, साहित्यरत्न) ··· ··· ६९८
३२—सफल राजनीतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण (श्री-वासुदेवजी शर्मा) ··· ··· ७००
३३—सच्चा मनुष्य (श्री एस० नागराज) ··· ७०३
३४—हरिजन-मन्दिर-प्रवेश (श्रीमदनगोपालजी सिंहल) ७१५
३५—क्षमा-प्रार्थना ··· ७२२

चित्र-सूची

पृष्ठ-संख्या

तिरंगे

१—दैत्यनाशिनी महाशक्ति ··· मुखपृष्ठ
२—देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति ··· १
३—हरिश्चन्द्रको धर्म और इन्द्रका परमधाममें चलनेके लिये अनुरोध ··· ६३
४—पातिव्रतका प्रताप ··· ··· ८६
५—मदालसाका पुत्रको उपदेश ··· १०८
६—महिषासुर-मर्दिनी ··· ··· १९९
७—कालीका प्रादुर्भाव ··· ··· २१३
८—देवशक्तियोंका असुरोंपर सामूहिक आक्रमण ··· २१७
९—राजा इन्द्रद्युम्नको स्वप्नमें भगवद्दर्शन ··· २७७
१०—भगवान् सूर्यका अदितिपर अनुग्रह ··· ३२६

सादा

११—ब्रह्मपुराण ··· ··· २७६

इकरंगे (लाइन)

(मार्कण्डेयपुराण)

१२—जैमिनि-मार्कण्डेय-संवाद ··· ४१
१३—दुर्वासाका वपु नामक अप्सराको शाप देना ··· ४३
१४—अर्जुनके बाणसे तार्क्षीकी मृत्यु और उसके चार अण्डोंपर घंटा टूटकर गिरना ··· ४३
१५—शमीककी आज्ञासे मुनिकुमारोंका तार्क्षीके चारों बच्चोंको आश्रमपर ले जाना ··· ४४
१६—महर्षि सुकृषका अपने चार पुत्रोंको पक्षिरूपधारी इन्द्रकी तृप्तिके लिये शरीर अर्पण करनेका आदेश देना ··· ··· ४६
१७—इन्द्रका प्रकट होकर महर्षिको वरदान देना ··· ४६
१८—द्रोणपुत्र धर्मपक्षियोंद्वारा जैमिनिको उपदेश ··· ४९
१९—होमकुण्डसे वृत्रासुरकी उत्पत्ति ··· ५०
२०—राजा हरिश्चन्द्रपर विश्वामित्रका कोप ··· ५२
२१—राज-पाट, छोड़कर स्त्री-पुत्रसहित नगरसे बाहर जाते हुए हरिश्चन्द्रसे विश्वामित्रका यज्ञके लिये दक्षिणा माँगना ··· ··· ५३
२२—राजाको जाते देख पुरवासियोंका विलाप ··· ५३
२३—राजाके प्रति मुनिकी कठोरता ··· ५४
२४—चिन्तित हुए राजाको रानी शैव्याका आश्वासन ५५
२५—राजा और रानीकी मूर्च्छा ··· ५६

पृष्ठ-संख्या

२६—राजा हरिश्चन्द्रका अपनी रानीको एक ब्राह्मणके हाथ बेचना ··· ··· ५७
२७—ब्राह्मणका निर्दयतापूर्वक रानीको ले जाना और रोते हुए बालक रोहिताश्वका अपनी माताके वस्त्र पकड़कर खींचना ··· ५७
२८—पत्नी और पुत्रको जाते देख राजा हरिश्चन्द्रका विलाप ··· ··· ५८
२९—चाण्डाल और हरिश्चन्द्रकी बातचीत ··· ५९
३०—विश्वामित्रका हरिश्चन्द्रको चाण्डालके हाथ बेचना ··· ··· ५९
३१—श्मशान-भूमिमें हरिश्चन्द्रकी उद्विग्नता ··· ६०
३२—मरे हुए पुत्रको छातीसे लगाकर हरिश्चन्द्रका मूर्च्छित होना और शैव्याका विलाप करना ··· ६१
३३—देवताओंसहित इन्द्रका अमृतकी वर्षा करके रोहिताश्वको जीवित करना ··· ··· ६२
३४—राजा हरिश्चन्द्रकी प्रार्थनापर समस्त पुरवासियोंको स्वर्गमें ले जानेके लिये इन्द्रके आदेशसे स्वर्गीय विमानोंका भूमिपर आना ··· ६३
३५—पिताका अपने पुत्र सुमतिको ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययनकी आज्ञा देना ··· ६४
३६—रौरव नरककी दारुण यातना ··· ६७
३७—महारौरवका भयङ्कर दृश्य ··· ६९
३८—तम नामक नरकमें पापियोंकी दुर्दशा ··· ७०
३९—निकृन्तन नरककी भीषण यातना ··· ७०
४०—अप्रतिष्ठ नरकमें प्राप्त होनेवाली पीड़ाका रोमाञ्चकारी दृश्य ··· ··· ७०
४१—असिपत्रवनमें पापियोंकी दुस्सह यन्त्रणा ··· ७१
४२—तप्तकुम्भ नरकमें जीवोंकी यातना ··· ७१
४३—लोहेकी चोंचवाले पक्षियोंका नरकमें पड़े हुए पापी जीवोंको नोचना ··· ७२
४४—जनकका नरक-दर्शन और यमदूतसे उनकी बातचीत ··· ··· ७३
४५—परायी स्त्री और पराये धनपर दृष्टि डालनेवाले पापियोंकी नरक-यन्त्रणा ··· ७४
४६—माता-पिता और गुरुजनोंके अपमानका भयानक दण्ड ··· ··· ७४

	पृष्ठ-संख्या
४७-जलते लोह-खंभमें बँधे हुए पापियोंकी दारुण यातना ··· ···	७५
४८-पीठ पीछे बुराई करनेवालोंकी भयानक नरक-यन्त्रणा ··· ···	७६
४९-तप्तकुम्भ नरक-यातनाका एक और दृश्य ···	७६
५०-पापीको वानरयोनिकी प्राप्ति ···	७७
५१-परस्त्रीगामियोंको भिन्न-भिन्न पापयोनियोंकी प्राप्ति ··· ···	७७
५२-विभिन्न पापोंके कारण मक्खी, विल्ली और चूहेकी योनिमें जीवका प्रवेश ···	७८
५३-बैलको बधिया करनेवाले पापीको प्राप्त होनेवाली भिन्न-भिन्न योनियाँ ···	७९
५४-राजा जनकको जाते देख नारकी जीवोंका हाहाकार ··· ···	७९
५५-नारकी जीवोंको सुख पहुँचानेके लिये राजा जनकका नरकहीमें रहनेका निश्चय ···	८०
५६-धर्मराज और इन्द्रका राजा जनकको स्वर्गमें ले जानेके लिये आग्रह ··· ···	८१
५७-भगवान् विष्णुका राजा जनकको अपने धाममें ले जाना ··· ···	८२
५८-शूलीपर चढ़े हुए माण्डव्य मुनिका पतिव्रता ब्राह्मणीके पतिको शाप देना ···	८४
५९-अनसूयाका अपने सतीत्वके प्रभावसे ब्राह्मणीके मरे हुए पतिको नवजीवन-दान देना ···	८६
६०-देवताओंका लक्ष्मीसहित भगवान् दत्तात्रेयजी-को प्रणाम करना ··· ···	८८
६१-दत्तात्रेयजीका देवताओंको राक्षसोंके वधकी आज्ञा देना ··· ···	८९
६२-कार्तवीर्य अर्जुनका दत्तात्रेयजीकी सेवामें उपस्थित होना ··· ···	९०
६३-कार्तवीर्य अर्जुनका राज्याभिषेक ···	९१
६४-राजकुमार ऋतध्वजका अपनी मित्रमण्डलीके साथ मनोरञ्जन ··· ···	९२
६५-महर्षि गालवका अश्व लेकर राजा शत्रुजित्के पास आना ··· ···	९३
६६-राजकुमार ऋतध्वजका शूकररूपधारी पाताल-केतुको मारना ··· ···	९४
६७-ऋतध्वज और मदालसाका विवाह ···	९६
६८-मदालसाके साथ जाते हुए ऋतध्वजका पातालवासी दानवोंके साथ युद्ध ··· ···	९७
६९-पतिकी मृत्युका समाचार सुनकर मदालसाका प्राणत्याग ··· ···	९९
७०-ऋतध्वजका नगरमें लौटकर पिता-माताके चरणोंमें प्रणाम करना ··· ···	१००
७१-सरस्वतीका अश्वतरको वरदान देना ···	१०३
७२-भगवान् शङ्करका कम्बल और अश्वतरको मनोवाञ्छित वर देना ··· ···	१०३
७३-अश्वतरके मध्यम फणसे मदालसाका पुनः प्रादुर्भाव ··· ···	१०४
७४-नागकुमारोंका ऋतध्वजको पातालमें अपने पिता अश्वतरके पास ले जाना ···	१०५
७५-मदालसासे मिलनेके लिये उत्कण्ठित राजकुमारको रोककर अश्वतरका मदालसाकी पुनः प्राप्तिका वृत्तान्त सुनाना ··· ···	१०६
७६-मदालसाका अपने शिशुको बहलानेके व्याजसे ज्ञानका उपदेश देना ··· ···	१०७
७७-राजा ऋतध्वजका अपने छोटे पुत्र अलर्कको प्रवृत्तिमार्गका उपदेश देनेके लिये मदालसासे कहना ··· ···	१०९
७८-अलर्कका माताके चरणोंमें प्रणाम करना ···	१११
७९-मदालसाका अपने पुत्रको अन्तिम सीख देते हुए सोनेकी एक अंगूठी देना ···	१२५
८०-काशिराजके दूतका महाराज अलर्कको सन्देश देना ··· ···	१२६
८१-अलर्कका दत्तात्रेयजीकी शरणमें जाना ···	१२७
८२-अलर्कका काशिराज और सुबाहुके समीप जाकर उन्हें राज्य अर्पित करना ·· ···	१३६
८३-काशिराजका सुबाहुसे ज्ञानोपदेशके लिये अनुरोध ··· ···	१३७
८४-भगवान् शङ्करका अपने शिरपर गङ्गाजीको धारण करना ··· ···	१५३
८५-आगन्तुक ब्राह्मणका गृहस्थ ब्राह्मणको मन्त्र और ओषधियोंका प्रभाव बतलाना ···	१५९
८६-वरूथिनी अप्सराकी ब्राह्मणके साथ बातचीत ···	१६०
८७-तेजस्वी ब्राह्मणका घरको प्रस्थान और ठुकरायी हुई अप्सराका उद्वेग ··· ···	१६१

पृष्ठ-संख्या

८८—ब्राह्मणके वेषमें आये हुए कलिनामक गन्धर्वपर अप्सराकी आसक्ति १६२
८९—भयभीत मनोरमाको स्वरोचिषका आश्वासन देना १६२
९०—स्वरोचिषके बाणसे राक्षसकी घबराहट ... १६३
९१—विद्याधरका स्वरोचिषको अपनी कन्या देना ... १६४
९२—विभावरी और कलावतीका स्वरोचिषको वरण करना १६५
९३—वनदेवीका मृगीरूपमें स्वरोचिषके पास आकर समागमके लिये प्रार्थना करना ... १६६
९४—एक ब्राह्मणका अपनी चुरायी हुई स्त्रीका पता लगानेके लिये राजा उत्तमसे प्रार्थना करना ... १६८
९५—मुनिका राजा उत्तमको पत्नीत्यागसे होनेवाले दोष बतलाना १६९
९६—राक्षसके द्वारा राजा उत्तमका आतिथ्य ... १७०
९७—ब्राह्मणका अपनी पत्नीके मिल जानेसे राजाके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना ... १७२
९८—नागकन्या नन्दाका राजा उत्तमको उनके उपकारसे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देना ... १७३
९९—ऋतवाक् मुनिका गर्गजीसे अपने पुत्रके दुःशील होनेका कारण पूछना १७६
१००—प्रमुच मुनिकी कन्याका स्थान-भ्रष्ट रेवती नक्षत्र-को पुनः आकाशमें स्थापित करनेके लिये पितासे अनुरोध करना १७७
१०१—ब्रह्माजीका आनन्दसे उनकी तपस्याका कारण पूछना १७९
१०२—राजा सुरथका वनगमन १८४
१०३—राजा सुरथ और समाधि वैश्यका संवाद ... १८५
१०४—मेधा मुनिका सुरथ और समाधिको भगवतीकी महिमा बताना १८६
१०५—मधु और कैटभका ब्रह्माजीपर आक्रमण और ब्रह्माजीके द्वारा निद्रादेवीका स्तवन ... १८८
१०६—भगवान् विष्णुके नेत्रोंसे निद्राका हटना और भगवान्का मधु-कैटभको देखना ... १८९
१०७—श्रीविष्णुके द्वारा मधु और कैटभका वध ... १९०
१०८—देवताओंका भगवान् विष्णु और शिवसे दैत्योंके अत्याचार बतलाना १९१
१०९—सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे देवीका प्रादुर्भाव ... १९२

पृष्ठ-संख्या

११०—देवीका महिषासुरकी सेनासे युद्ध ... १९४
१११—देवीके द्वारा दैत्य-सेनाका संहार ... १९५
११२—दैत्यसेनापति चिक्षुरका वध ... १९७
११३—सिंहके द्वारा चामरका तथा देवीके हाथसे अन्य सेनापतियोंका वध १९८
११४—देवी और महिषासुरका युद्ध ... १९९
११५—महान् गजराजके रूपमें महिषासुरका आक्रमण १९९
११६—महिषासुरका वध २००
११७—इन्द्रादि देवताओंद्वारा देवीका स्तवन ... २०२
११८—देवीका देवताओंको वरदान देना ... २०४
११९—सुग्रीव नामक दूतका देवीसे शुम्भके वैभवका वर्णन २०९
१२०—शुम्भका देवीको पकड़ लानेके लिये धूम्रलोचन-को आदेश देना २११
१२१—धूम्रलोचनका भस्म होना और दैत्य-सेनाका संहार २१२
१२२—कालीके द्वारा सेनासहित चण्डका वध ... २१४
१२३—मुण्डका वध २१५
१२४—कालीका चण्ड-मुण्डके मस्तक लेकर देवीके पास आना २१५
१२५—ब्रह्माणी आदि शक्तियोंका प्राकट्य ... २१७
१२६—चण्डिकाका भगवान् शिवको दूत बनाकर भेजना २१८
१२७—देवी-शक्तियोंका दैत्य-सेनासे युद्ध ... २१८
१२८—कालीके द्वारा रक्तबीजके रक्तका पान ... २२०
१२९—देवी और निशुम्भका युद्ध ... २२२
१३०—निशुम्भका पुनः आक्रमण ... २२३
१३१—निशुम्भका वध २२३
१३२—देवीका अपनी शक्तियोंको समेटकर अकेले ही शुम्भके साथ युद्ध करनेको उद्यत होना ... २२५
१३३—शुम्भका वध २२६
१३४—देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति ... २२९
१३५—सुरथ और समाधिके द्वारा देवीकी आराधना ... २३४
१३६—देवीका प्रत्यक्ष दर्शन और वरदान देना ... २३५
१३७—रुचिकी पितरोंसे बातचीत ... २३७
१३८—रुचिको ब्रह्माजीका वरदान देना ... २३८
१३९—रुचिको पितरोंके तेजका दर्शन होना ... २४०
१४०—रुचिके समक्ष पितरोंका प्रकट होना ... २४१
१४१—रुचिको देनेके लिये प्रम्लोचाका अपनी कन्या मालिनीको जलसे प्रकट करना ... २४१

पृष्ठ-संख्या

१४२—भूतिका अपने शिष्यको अग्निहोत्रकी रक्षाका आदेश २४२
१४३—शान्तिकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर अग्निदेवका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देना २४४
१४४—ब्रह्माजीके द्वारा भगवान् सूर्यका स्तवन ... २४७
१४५—महर्षि कश्यपका अदितिको उपालम्भ देना ... २४९
१४६—भगवान् सूर्यका राज्यवर्धनकी प्रजाको वरदान देना २५२
१४७—राजा राज्यवर्धनका अपनी रानीके साथ सूर्यदेवकी आराधनाके विषयमें विचार करना ... २५३
१४८—सुव्रत ब्राह्मणका राजा विदूरथको कुजृम्भके किये हुए गर्तका परिचय देना ... २५५
१४९—विदूरथका वत्सप्रीको छातीसे लगाकर कुजृम्भसे युद्धके लिये भेजना २५६
१५०—वत्सप्रीका कुजृम्भपर आग्नेयास्त्रका प्रहार ... २५७
१५१—मुदावती और दोनों पुत्रोंके आनेसे प्रसन्न हुए राजा विदूरथका वत्सप्रीको धन्यवादपूर्वक हृदयसे लगाना २५७
१५२—विश्ववेदीका शौरिको बहकाना ... २५९
१५३—महर्षि वशिष्ठसे ब्राह्मणोंकी मृत्युका कारण सुनकर राजा खनित्रके मनमें निर्वेद होना ... २५९

(ब्रह्मपुराण)

१५४—वीरवेषमें भगवान् श्रीकृष्ण भीतरी मुखपृष्ठ
१५५—मुनियोंका सूतजीसे प्रश्न २७७
१५६—शतरूपाकी तपस्या २७९
१५७—वेनके द्वारा महर्षियोंका तिरस्कार ... २८०
१५८—वेनकी दाहिनी भुजाका मन्थन और पृथुका प्रादुर्भाव २८०
१५९—गोरूपधारिणी पृथ्वी और राजा पृथुका वार्तालाप २८२
१६०—पृथुके राज्यमें शस्य-श्यामला पृथ्वी ... २८२
१६१—वैवस्वत मनुके यज्ञकुण्डसे इलाकी उत्पत्ति ... २८५
१६२—रैवतका बलदेवजीको अपनी कन्या रेवतीका दान २८६
१६३—महर्षि उत्तङ्कका राजा बृहदश्वसे धुन्धुको मारनेका अनुरोध २८६
१६४—कुवलाश्वका युद्धके लिये प्रस्थान ... २८७
१६५—धुन्धुका वध २८७
१६६—राजा त्रय्यारुणके द्वारा अपने कुपुत्रका त्याग २८८

पृष्ठ-संख्या

१६७—सत्यव्रतके द्वारा विश्वामित्रपुत्र गालवका छुटकारा तथा भरण-पोषण ... २८८
१६८—विश्वामित्रका सत्यव्रतको सशरीर स्वर्ग भेजना ... २८९
१६९—और्व मुनिका राजा बाहुकी गर्भवती पत्नीको पतिके साथ चितामें जलनेसे रोकना ... २८९
१७०—महर्षि कपिलके तेजसे सगर-पुत्रोंका भस्म होना २९०
१७१—चन्द्रमाके द्वारा पृथ्वीकी परिक्रमा ... २९१
१७२—ऋचीक मुनिका अपनी पत्नी और सासके लिये पृथक्-पृथक् चरु बनाकर पत्नीके हाथमें देना २९२
१७३—देवताओं और असुरोंका ब्रह्माजीसे विजयके लिये प्रश्न करना २९४
१७४—इन्द्रका रजिके पास जाना और अपनेको पुत्र कहकर परिचय देना २९४
१७५—ययातिका यदु आदिको शाप ... २९५
१७६—ययातिका अपने छोटे पुत्र पुरुको बुढ़ापा लेनेके लिये कहना २९६
१७७—कार्तवीर्य अर्जुनकी समुद्रमें जलक्रीडा ... ३००
१७८—महर्षि पुलस्त्यका रावणको कार्तवीर्यके कारागारसे छुड़ाना ३००
१७९—कार्तवीर्यको महर्षि वशिष्ठका शाप ... ३०१
१८०—राजा ज्यामघका युद्धमें जीती हुई राजकन्याको पुत्रवधूके रूपमें अपनी स्त्रीको देना ... ३०३
१८१—मणिके तेजसे प्रकाशित सत्राजित्‌को देखकर द्वारकावासियोंका आश्चर्य ३०४
१८२—भगवान् श्रीकृष्णका जाम्बवान्‌की गुफामें प्रवेश ३०५
१८३—श्रीकृष्णका सत्राजित्‌को मणि समर्पित करना ... ३०५
१८४—अक्रूरसे मिली हुई मणिको भगवान्‌का पुनः उन्हींको रखनेके लिये देना ... ३०६
१८५—मुनियोंका व्यासजीसे प्रश्न ... ३१८
१८६—ब्रह्माजीका महर्षियोंको उपदेश ... ३१८
१८७—अदितिको भगवान् सूर्यका वरदान ... ३२६
१८८—भगवान् सूर्यके तेजसे दैत्योंका दग्ध होना ... ३२७
१८९—तपस्विनी पार्वतीको ब्रह्माजीका वरदान ... ३३०
१९०—पार्वतीदेवीका अपनी तपस्या देकर ब्राह्मण-बालककी ग्राहसे रक्षा करना ... ३३२
१९१—पार्वतीजीका स्वयंवरमें महादेवजीके चरणोंमें माला अर्पण करना ३३३
१९२—पार्वती और शिवका विवाह ... ३३४

पृष्ठ-संख्या

१९३–पार्वतीका महादेवजीसे हिमालय छोड़कर अन्यत्र चलनेका अनुरोध ··· ··· ३३६
१९४–देवताओंको कहीं जाते देख पार्वतीका महादेवजीसे प्रश्न ··· ··· ३३७
१९५–भगवान् शङ्करका वीरभद्रको दक्ष-यज्ञ-विध्वंसके लिये आदेश ··· ··· ३३७
१९६–दक्षको भगवान् शिवका वरदान ··· ३३८
१९७–राजा इन्द्रद्युम्नका पुरुषोत्तमक्षेत्रको प्रस्थान ··· ३४९
१९८–लक्ष्मीका भगवान् विष्णुसे प्रश्न ··· ३५०
१९९–श्रीविष्णुका यमराजको आश्वासन ··· ३५१
२००–महानदी और समुद्रका संगम ··· ३५१
२०१–राजा इन्द्रद्युम्नका पुरुषोत्तमक्षेत्रमें मुनियों और राजाओंके साथ अश्वमेधयज्ञ करनेका विचार करना ··· ··· ३५२
२०२–राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा हाथी, घोड़े और गौ आदिका दान ··· ··· ३५३
२०३–राजा इन्द्रद्युम्नको स्वप्नमें भगवद्दर्शन ··· ३५८
२०४–पुरुषोत्तम-धामकी झाँकी ··· ३६१
२०५–मार्कण्डेय मुनिका प्रलयाग्निके भयसे भागना ··· ३६२
२०६–मार्कण्डेय मुनिको प्रलय-समुद्रमें बालमुकुन्दके दर्शन ··· ··· ३६३
२०७–भगवान् शिवका श्वेतको दर्शन देना और मरे हुए ब्राह्मण-बालकको जिलाना ··· ३७०
२०८–राजा श्वेतको भगवान् विष्णुका वरदान ··· ३७२
२०९–देवताओंका भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना ··· ३८३
२१०–वामनका विराट्रूप ··· ··· ३८५
२११–गौतमका भगवान् शङ्करसे गङ्गाजीकी याचना ··· ३८७
२१२–नारदजीका सगरको उनके पुत्रोंके भस्म होनेका समाचार बताना ··· ··· ३८९
२१३–भगीरथकी गङ्गाजीसे प्रार्थना ··· ३९०
२१४–कपोत-दम्पतिका स्वर्गगमन ··· ३९४
२१५–कण्वके द्वारा गङ्गा और क्षुधाकी स्तुति ··· ३९६
२१६–गौतमके द्वारा प्रसवकालमें गायकी परिक्रमा ३९७
२१७–गौतमका इन्द्र और अहल्याको शाप ··· ३९९
२१८–याज्ञवल्क्य और जनकका वरुणसे शङ्काका समाधान कराना ··· ··· ४००
२१९–देवताओंद्वारा गोयज्ञका अनुष्ठान ··· ४०२
२२०–भगवान् शिवका शुक्रको मृतसंजीवनी विद्याका दान ··· ··· ४०५

पृष्ठ-संख्या

२२१–पुलस्त्यका कुबेरको गौतमी-तटपर जानेका आदेश देना ··· ··· ४०६
२२२–वृद्धा तपस्विनीका गौतमको अपना परिचय देना ४०९
२२३–देवताओंका दधीचि मुनिके आश्रमपर जाना और मुनिके द्वारा उनका सत्कार ··· ४१४
२२४–दधीचिका योगद्वारा प्राण-त्याग ··· ४१५
२२५–भगवान् शिवका कुपित पिप्पलादको समझाना ४१७
२२६–गौतमी-तटपर शिवकी कृपासे नागराजको दिव्यरूपकी प्राप्ति ··· ··· ४२१
२२७–गणेशजीका देवताओंको आश्वासन ··· ४२३
२२८–कठका भरद्वाजके पास विद्याध्ययनके लिये आगमन ··· ··· ४२६
२२९–धन्वन्तरिके द्वारा भगवान् विष्णुका स्तवन ··· ४२७
२३०–इन्द्रको शिव और विष्णुका वरदान ··· ४३०
२३१–अग्नि और यमका कपोत और उलूकमें प्रेम कराना ··· ··· ४३९
२३२–भरद्वाजके यज्ञमें यज्ञघ्नका प्रकट होना ··· ४४५
२३३–गोदावरीके जलका छींटा देनेसे यज्ञघ्नको गौरवर्णकी प्राप्ति ··· ··· ४४६
२३४–लक्ष्मी और दरिद्राके विवादमें गोदावरीके द्वारा दरिद्राकी भर्त्सना ··· ··· ४४८
२३५–पुरोहित-पत्नीको जीवित करनेके लिये राजा शर्यातिका अग्निमें प्रवेश ··· ४४९
२३६–आत्रेयमुनिके द्वारा इन्द्रके ऐश्वर्यका दर्शन ··· ४५१
२३७–अपने मोहके कारण आत्रेयमुनिका लज्जित होना ··· ··· ४५२
२३८–भगवान् नृसिंहके द्वारा आम्बर्यका वध ··· ४५४
२३९–पिशाचरूपी अजीगर्तिका अपने पुत्र शुनःशेपसे अपना दुःख निवेदन करना ··· ४५४
२४०–पुष्पकविमानसहित भगवान् श्रीरामका गौतमीके तटपर उतरना ··· ··· ४५६
२४१–शुभ्रगिरिपर शाकल्यमुनिकी तपस्या ··· ४६१
२४२–परशु राक्षसका शाकल्यमुनिको श्रीहरिके रूपमें देखना ··· ··· ४६२
२४३–राजा पवमानका चिच्चिक पक्षीसे दो मुँह होनेका कारण पूछना ··· ··· ४६३
२४४–विष्टि और विश्वरूपका विवाह ··· ४६५

पृष्ठ-संख्या

२४५–राक्षसीका आसन्दिवको गङ्गातटपर सन्ध्योपासन-के लिये भेजना ४६७
२४६–भगवान् विष्णुके द्वारा आसन्दिव और उनकी पत्नीकी रक्षा ४६८
२४७–विभीषणके पुत्रका मणिकुण्डलकी सहायताके लिये पितासे कहना ... ४७०
२४८–गोदावरीकी सात धाराओंका समुद्रमें संगम ... ४७२
२४९–देवता आदिके द्वारा भगवान् शिव और विष्णुकी स्तुति ४७३
२५०–प्रम्लोचा और मृकण्डुमुनि ... ४८०
२५१–मृकण्डुमुनिके द्वारा ब्रह्मपार स्तोत्रका जप ... ४८१
२५२–भगवान् विष्णुका मृकण्डुमुनिको प्रत्यक्ष दर्शन देना ४८२
२५३–पृथ्वीका देवताओंसे अपना दुःख निवेदन ... ४८६
२५४–कंसके कारागारमें भगवान्का अवतार ... ४८८
२५५–कंसका वसुदेव-देवकीके पास अपने कृत्यपर खेद प्रकट करना ४९०
२५६–शकट-भंजन ४९१
२५७–वत्सचारण-लीला ४९२
२५८–कालियनागके बन्धनमें श्रीकृष्ण ... ४९३
२५९–कालियनागके फणोंपर भगवान्का नृत्य ... ४९४
२६०–बलरामद्वारा प्रलम्बासुरका वध ... ४९६
२६१–गिरिराजरूपमें पूजा-ग्रहण ४९७
२६२–गोवर्धन-धारण ४९८
२६३–गोविन्दका अभिषेक ४९९
२६४–वृन्दावनमें रासके लिये गोपियोंका आगमन ... ५००
२६५–अरिष्टासुरका वध ५०१
२६६–केशीका वध ५०३
२६७–अक्रूरका व्रजमें आगमन ५०४
२६८–भगवान्की मथुरा-यात्रा और गोपियोंकी व्याकुलता ५०६
२६९–अक्रूरका यमुना-जलमें भगवद्दर्शन और स्तवन ५०७
२७०–मालीपर भगवान्की कृपा ... ५०८
२७१–कंस और उसके भाईका वध ... ५११

पृष्ठ-संख्या

२७२–श्रीकृष्णके द्वारा राजा उग्रसेनका सम्मान ... ५१२
२७३–कालयवनका वध ५१४
२७४–रुक्मिणी-हरण ५१६
२७५–भगवान्का भौमासुरके नगरसे गरुड़द्वारा सत्यभामासहित स्वर्गगमन ... ५१९
२७६–सत्यभामाका श्रीकृष्णसे पारिजात ले चलनेके लिये अनुरोध ५२०
२७७–देवराज इन्द्रकी पराजय ५२१
२७८–भगवान् शिवके अनुरोधसे श्रीकृष्णका बाणासुरको अभयदान ५२५
२७९–पौण्ड्रकका वध ५२६
२८०–बलरामजीके भयसे कौरवोंका साम्ब और लक्ष्मणाको उनकी सेवामें उपस्थित करना ... ५२७
२८१–मुनियोंका यदुकुलको शाप ... ५२९
२८२–श्रीकृष्णका दारुकको द्वारका जानेका आदेश देना ५३०
२८३–अर्जुनके साथ श्रीकृष्णके परिवारका इन्द्रप्रस्थकी ओर प्रस्थान ५३१
२८४–हिरण्यकशिपुका वध ५३४
२८५–भगवान् परशुराम ५३६
२८६–भगवान् श्रीकृष्ण ५३७
२८७–भयानक यमदूत ५३९
२८८–महिषारूढ यमराज ५४३
२८९–यमदूतोंद्वारा पापियोंकी यातना ... ५४४
२९०–असिपत्रवनमें दारुण यन्त्रणा ... ५४५
२९१–उग्रगन्ध नरकका भयंकर दृश्य ... ५४६
२९२–पुण्यात्माकी विमानद्वारा गति ... ५४७
२९३–विमानारूढ पुण्यात्मा जीव ... ५४७
२९४–मासोपवास करनेवाले पुण्यात्माओंकी गति ... ५४८
२९५–शिव-पार्वती-संवाद ५६७
२९६–भक्त चाण्डालके द्वारा भगवन्नाम-कीर्तन ... ५७५
२९७–चाण्डालकी सत्यता देख ब्रह्मराक्षसका आश्चर्य ५७६
२९८–ब्रह्मराक्षसद्वारा भगवद्भक्त चाण्डालको प्रणाम ... ५७७



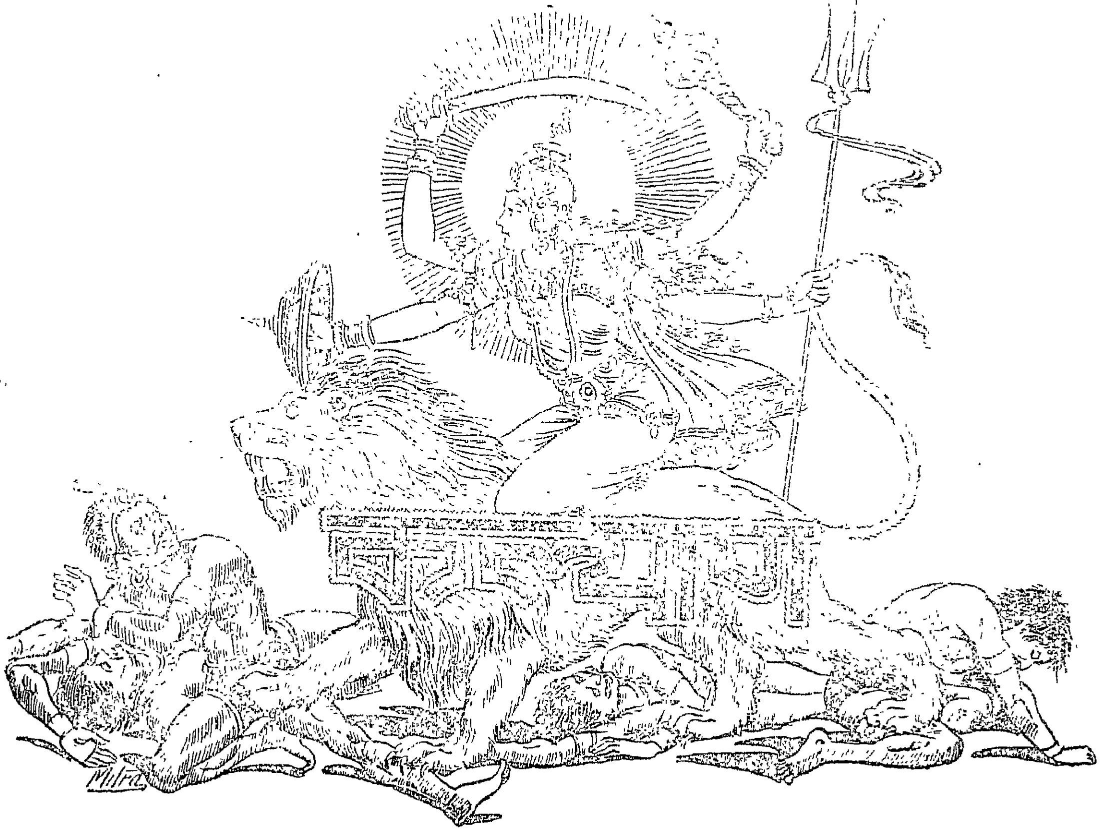
देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति



शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

[पृष्ठ २१७

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् सर्वैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः ।
ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये ॥

वर्ष २१ | गोरखपुर, सौर माघ २००३, जनवरी १९४७ | संख्या १
पूर्ण संख्या २४२

प्रार्थना

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥

सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥ १ ॥
न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम् ॥ २ ॥
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥ १ ॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ॥ इति मन्त्रः ॥ नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि ॥ नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ॥ १ ॥ नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥ २ ॥ जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे ॥ ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥ ३ ॥ क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥ चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥ ४ ॥ विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ॥ ५ ॥ धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी ॥ क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥ ६ ॥ हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी ॥ भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः ॥ ७ ॥ अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा ॥ पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ॥ ८ ॥ सां सीं सूं सप्तशतीदेव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ॥ इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे ॥ अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ॥ यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत् ॥ न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥ इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ॐ तत्सत् ॥

[प्रतिदिन प्रातःकाल उपर्युक्त स्तोत्रका पाठ करनेसे सब प्रकारके बाधा-विघ्न नाश हो जाते हैं । इस कुञ्जिकास्तोत्र तथा देवीसूक्तके सहित सप्तशती-पाठसे परम सिद्धि प्राप्त होती है ।] मारण—कामक्रोधनाश, मोहन—इष्टदेवमोहन, वशीकरण—मनका वशीकरण, स्तम्भन—इन्द्रियोंकी विषयोंके प्रति उपरति और उच्चाटन—मोक्षप्राप्तिके लिये छटपटाहट—ये सभी इस स्तोत्रका इस उद्देश्यसे सेवन करनेसे सफल होते हैं ।

—स्वामी प्रज्ञानाथ

दुर्गापाठकी विधि *

(पूर्वाङ्ग)

साधक स्नान करके पवित्र हो आसन-शुद्धिकी क्रिया सम्पन्न करके शुद्ध आसनपर बैठे; साथमें शुद्ध जल, पूजन-सामग्री और श्रीदुर्गासप्तशतीकी पुस्तक रक्खे। पुस्तकको अपने सामने काष्ठ आदिके शुद्ध आसनपर विराजमान कर दे। ललाटमें अपनी रुचिके अनुसार भस्म, चन्दन अथवा रोली लगा ले; शिखा बाँध ले; फिर पूर्वाभिमुख होकर तत्त्व-शुद्धिके लिये चार बार आचमन करे। उस समय निम्नाङ्कित चार मन्त्रोंको क्रमशः पढ़े—

ॐ ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

ॐ क्लीं शिवतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

तत्पश्चात् प्राणायाम करके गणेश आदि देवताओं एवं गुरुजनोंको प्रणाम करे; फिर 'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ' इत्यादि मन्त्रसे कुशकी पवित्री धारण करके हाथमें लाल फूल, अक्षत और जल लेकर निम्नाङ्कित रूपसे संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। ॐ नमः परमात्मने, श्रीपुराणपुरुषोत्तमस्य श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तैकदेशे पुण्यप्रदेशे बौद्धावतारे वर्तमाने यथानामसंवत्सरे अमुकायने महामाङ्गल्यप्रदे मासानां मासोत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरान्वितायां अमुकनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकामुकराशिस्थितेषु चन्द्रभौमबुधगुरुशुक्रशनिषु सत्सु शुभे योगे शुभकरणे एवं गुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ सकलशास्त्रश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्तिकामः अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा अहं ममात्मनः सपुत्रस्त्रीबान्धवस्य श्रीनवदुर्गानुग्रहतो ग्रहकृतराजकृतसर्वविधपीडानिवृत्तिपूर्वकं नैरुज्यदीर्घायुःपुष्टिधनधान्यसमृद्ध्यर्थं श्रीनवदुर्गाप्रसादेन सर्वापन्निवृत्तिसर्वाभीष्टफलावाप्तिधर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थं शापोद्धारपुरस्सरं कवचार्गलाकीलकपाठवेदतन्त्रोक्तरात्रिसूक्तपाठदेव्यथर्वशीर्षपाठन्यासविधिसहितनवार्णजपसप्तशतीन्यासध्यानसहितचरित्रसम्बन्धिविनियोगन्यासध्यानपूर्वकं च 'मार्कण्डेय उवाच ॥ सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।' इत्याद्यारभ्य 'सावर्णिर्भविता मनुः' इत्यन्तं दुर्गासप्तशतीपाठं तदन्ते न्यासविधिसहितनवार्णमन्त्रजपं वेदतन्त्रोक्तदेवीसूक्तपाठं रहस्यत्रयपठनं शापोद्धारादिकं च करिष्ये।

इस प्रकार प्रतिज्ञा (संकल्प) करके देवीका ध्यान करते हुए पञ्चोपचारकी विधिसे पुस्तककी पूजा करे,¹ योनि-मुद्राका प्रदर्शन करके भगवतीको प्रणाम करे, फिर मूल नवार्णमन्त्रसे पीठ आदिमें आधारशक्तिकी स्थापना करके उसके ऊपर पुस्तकको विराजमान करे। † इसके बाद शापो-

---

* यह विधि यहाँ संक्षिप्त रूपसे दी जाती है। नवरात्र आदि विशेष अवसरोंपर तथा शतचण्डी आदि अनुष्ठानोंमें विस्तृत विधिका उपयोग किया जाता है। उसमें यन्त्रस्थ कलश, गणेश, नवग्रह, मातृका, वास्तु, सप्तर्षि, सप्तचिरंजीव, ६४ योगिनी, ५० क्षेत्रपाल तथा अन्यान्य देवताओंकी वैदिक विधिसे पूजा होती है। अखण्ड दीपकी व्यवस्था की जाती है। देवीप्रतिमाकी अङ्ग-न्यास और अग्न्युत्तारण आदि विधिके साथ विधिवत् पूजा की जाती है। नवदुर्गापूजा, ज्योतिःपूजा, बटुक-गणेशादिसहित कुमारीपूजा, अभिषेक, नान्दीश्राद्ध, रक्षाबन्धन, पुण्याहवाचन, मङ्गलपाठ, गुरुपूजा, तीर्थावाहन, मन्त्र-स्नान आदि, आसनशुद्धि, प्राणायाम, भूतशुद्धि, प्राण-प्रतिष्ठा, अन्तर्मातृकान्यास, बहिर्मातृकान्यास, सृष्टिन्यास, स्थितिन्यास, शक्तिकलान्यास, शिवकलान्यास, हृदयादिन्यास, षोढान्यास, विलोम-न्यास, तत्त्वन्यास, अक्षरन्यास, व्यापकन्यास, ध्यान, पीठपूजा, विशेषार्घ्य, क्षेत्रकीलन, मन्त्रपूजा, विविध मुद्राविधि, आवरणपूजा एवं प्रधानपूजा आदिका शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार अनुष्ठान होता है। इस प्रकार विस्तृत विधिसे पूजा करनेकी इच्छावाले भक्तोंको अन्यान्य पूजा-पद्धतियोंकी सहायतासे भगवतीकी आराधना करके पाठ आरम्भ करना चाहिये।

१ — पुस्तकपूजाका मन्त्र—

ॐ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ (वाराहीतन्त्र तथा चिदम्बरसंहिता)

† ध्यात्वा देवीं पञ्चपूजां कृत्वा योन्या प्रणम्य च। आधारं स्थाप्य मूलेन स्थापयेत्तत्र पुस्तकम्॥

तीसरा स्वरूप चन्द्रघण्टा[3]के नामसे प्रसिद्ध है। चौथी मूर्तिको कूष्माण्डा[4] कहते हैं। पाँचवीं दुर्गाका नाम स्कन्दमाता[5] है। देवीके छठे रूपको कात्यायनी[6] कहते हैं। सातवाँ कालरात्रि[7] और आठवाँ स्वरूप महागौरी[8]के नामसे प्रसिद्ध है। नवीं दुर्गाका नाम सिद्धिदात्री[9] है। ये सब नाम सर्वज्ञ महात्मा वेद भगवान्‌के द्वारा ही प्रतिपादित हुए हैं॥ ३–५॥ जो मनुष्य अग्निमें जल रहा हो, रणभूमिमें शत्रुओंसे घिर गया हो, विषम संकटमें फँस गया हो तथा इस प्रकार भयसे आतुर होकर जो भगवती दुर्गाकी शरणमें प्राप्त हुए हों, उनका कभी कोई अमङ्गल नहीं होता। युद्धके समय संकटमें पड़नेपर भी उनके ऊपर कोई विपत्ति नहीं दिखायी देती। उन्हें शोक, दुःख और भयकी प्राप्ति नहीं होती॥ ६-७॥

यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः॥ ८॥
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना॥ ९॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया॥१०॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता॥११॥
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः॥१२॥
दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम्॥१३॥
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम्॥१४॥
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै॥१५॥
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि॥१६॥
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि।

जिन्होंने भक्तिपूर्वक देवीका स्मरण किया है, उनका निश्चय ही अभ्युदय होता है। देवेश्वरि! जो तुम्हारा चिन्तन करते हैं, उनकी तुम निःसन्देह रक्षा करती हो॥ ८॥ चामुण्डा देवी प्रेतपर आरूढ़ होती हैं। वाराही भैंसेपर सवारी करती हैं। ऐन्द्रीका वाहन ऐरावत हाथी है। वैष्णवी देवी गरुड़पर ही आसन जमाती हैं॥ ९॥ माहेश्वरी वृषभपर आरूढ़ होती हैं। कौमारीका वाहन मयूर है। भगवान् विष्णुकी प्रियतमा लक्ष्मीदेवी कमलके आसनपर विराजमान हैं और हाथोंमें कमल धारण किये हुए हैं॥ १०॥ वृषभपर आरूढ़ ईश्वरी देवीने श्वेतरूप धारण कर रक्खा है। ब्राह्मी देवी हंसपर बैठी हुई हैं और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं॥ ११॥ इस प्रकार ये सभी माताएँ सब प्रकारकी योगशक्तियोंसे सम्पन्न हैं। इनके सिवा और भी बहुत-सी देवियाँ हैं, जो अनेक प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे युक्त तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित हैं॥ १२॥ ये सम्पूर्ण देवियाँ क्रोधमें भरी हुई हैं और भक्तोंकी रक्षाके लिये रथपर बैठी दिखायी देती हैं। शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, हल और मुसल, खेटक और तोमर, परशु तथा पाश, कुन्त और त्रिशूल एवं उत्तम शार्ङ्गधनुष आदि अस्त्र-शस्त्र अपने हाथोंमें धारण करती हैं। दैत्योंके शरीरका नाश करना, भक्तोंको अभयदान देना और देवताओंका कल्याण करना—यही उनके शस्त्र-धारणका उद्देश्य है॥ १३–१५॥ [कवच आरम्भ करनेके पहले इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—] महान् रौद्ररूप, अत्यन्त घोर पराक्रम, महान् बल और महान् उत्साहवाली देवी! तुम महान् भयका नाश करनेवाली हो॥ १६॥ तुम्हारी ओर देखना भी कठिन है। शत्रुओंका भय बढ़ानेवाली जगदम्बिके! मेरी रक्षा करो।

प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता॥१७॥
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद्वायव्यां मृगवाहिनी॥१८॥
उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा॥१९॥
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना।

---

३. चन्द्रः घण्टायां यस्याः सा—आह्लादकारी चन्द्रमा जिसकी घण्टामें स्थित हों, उस देवीका नाम 'चन्द्रघण्टा' है। ४. कुत्सितः ऊष्मा कूष्मा—त्रिविधतापयुतः संसारः, स अण्डे मांसपेश्यामुदररूपायां यस्याः सा कूष्माण्डा। अर्थात् त्रिविध ताप-युक्त संसार जिनके उदरमें स्थित है, वे भगवती 'कूष्माण्डा' कहलाती हैं। ५. छान्दोग्यश्रुतिके अनुसार भगवतीकी शक्तिसे उत्पन्न हुए सनत्कुमारका नाम स्कन्द है। उनकी माता होनेसे वे 'स्कन्दमाता' कहलाती हैं। ६. देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये देवी महर्षि कात्यायनके आश्रमपर प्रकट हुईं और महर्षिने उन्हें अपनी कन्या माना; इसलिये 'कात्यायनी' नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। ७. सबको मारनेवाले कालकी भी रात्रि (विनाशिका) होनेसे उनका नाम 'कालरात्रि' है। ८. इन्होंने तपस्याद्वारा महान् गौरवर्ण प्राप्त किया था, अतः 'महागौरी' कहलायीं। ९. सिद्धि अर्थात् मोक्षको देनेवाली होनेसे उनका नाम 'सिद्धिदात्री' है।

पूर्व दिशामें ऐन्द्री (इन्द्रशक्ति) मेरी रक्षा करे। अग्निकोणमें अग्निशक्ति, दक्षिण दिशामें वाराही तथा नैर्ऋत्य कोणमें खड्गधारिणी मेरी रक्षा करे। पश्चिम दिशामें वारुणी और वायव्यकोणमें मृगपर सवारी करनेवाली देवी मेरी रक्षा करे ॥ १७-१८ ॥ उत्तर दिशामें कौमारी और ईशानकोणमें शूलधारिणी देवी रक्षा करे। ब्रह्माणि! तुम ऊपरकी ओरसे मेरी रक्षा करो और वैष्णवी देवी नीचेकी ओरसे मेरी रक्षा करे ॥ १९ ॥ इसी प्रकार शवको अपना वाहन बनानेवाली चामुण्डा देवी दसों दिशाओंमें मेरी रक्षा करे।

जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥२०॥
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१॥
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद्यशस्विनी।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥२२॥
शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ॥२३॥
नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥२४॥
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद्वाचं मे सर्वमङ्गला।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥२६॥
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥२८॥

जया मेरे आगे और विजया पीछेकी ओरसे रक्षा करे ॥ २० ॥ वामभागमें अजिता और दक्षिण भागमें अपराजिता रक्षा करे। उद्योतिनी शिखाकी रक्षा करे। उमा मेरे मस्तकपर विराजमान होकर रक्षा करे ॥ २१ ॥ ललाटमें मालाधरी रक्षा करे और यशस्विनी देवी मेरी भौंहोंका संरक्षण करे। भौंहोंके मध्यभागमें त्रिनेत्रा और नथुनोंकी यमघण्टा देवी रक्षा करे ॥ २२ ॥ दोनों नेत्रोंके मध्यभागमें शङ्खिनी और कानोंमें द्वारवासिनी रक्षा करे। कालिका देवी कपोलोंकी तथा भगवती शाङ्करी कानोंके मूलभागकी रक्षा करे ॥ २३ ॥ नासिकामें सुगन्धा और ऊपरके ओठमें चर्चिका देवी रक्षा करे। नीचेके ओठमें अमृतकला तथा जिह्वामें सरस्वती रक्षा करे ॥ २४ ॥ कौमारी दाँतोंकी और चण्डिका कण्ठप्रदेशकी रक्षा करे। चित्रघण्टा गलेकी घाँटीकी और महामाया तालुमें रहकर रक्षा करे ॥ २५ ॥ कामाक्षी ठोढ़ीकी और सर्वमङ्गला मेरी वाणीकी रक्षा करे। भद्रकाली ग्रीवामें और धनुर्धरी पृष्ठवंश (मेरुदण्ड) में रहकर रक्षा करे ॥ २६ ॥ कण्ठके बाहरी भागमें नीलग्रीवा और कण्ठकी नलीमें नलकूबरी रक्षा करे। दोनों कंधोंमें खड्गिनी और मेरी दोनों भुजाओंकी वज्रधारिणी रक्षा करे ॥ २७ ॥ दोनों हाथोंमें दण्डिनी और अँगुलियोंमें अम्बिका रक्षा करे। शूलेश्वरी नखोंकी रक्षा करे। कुलेश्वरी कुक्षि (पेट) में रहकर रक्षा करे ॥ २८ ॥

स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥२९॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥३०॥
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥३१॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी।
पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥३२॥
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥३३॥
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३४॥
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसंधिषु ॥३५॥

महादेवी दोनों स्तनोंकी और शोकविनाशिनी देवी मनकी रक्षा करे। ललिता देवी हृदयमें और शूलधारिणी उदरमें रहकर रक्षा करे ॥ २९ ॥ नाभिमें कामिनी और गुह्यभागकी गुह्येश्वरी रक्षा करे। पूतना और कामिका लिङ्गकी और महिषवाहिनी गुदाकी रक्षा करे ॥ ३० ॥ भगवती कटिभागमें और विन्ध्यवासिनी घुटनोंकी रक्षा करे। सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली महाबला देवी दोनों पिंडलियोंकी रक्षा करे ॥ ३१ ॥ नारसिंही दोनों घुट्टियोंकी और तैजसी देवी दोनों चरणोंके पृष्ठभागकी रक्षा करे। श्रीदेवी पैरोंकी अङ्गुलियोंमें और तलवासिनी पैरोंके तलुओंमें रहकर रक्षा करे ॥ ३२ ॥ अपनी दाढ़ोंके कारण भयंकर दिखायी देनेवाली दंष्ट्राकराली देवी नखोंकी और ऊर्ध्वकेशिनी देवी केशोंकी रक्षा करे। रोमावलियोंके छिद्रोंमें कौबेरी और त्वचाकी वागीश्वरी देवी रक्षा करे ॥ ३३ ॥ पार्वती देवी रक्त, मज्जा, वसा, मांस,

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥ ५५ ॥
लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ ॐ ॥ ५६ ॥

देवीका यह कवच देवताओंके लिये भी दुर्लभ है । जो प्रतिदिन नियमपूर्वक तीनों सन्ध्याओंके समय श्रद्धाके साथ इसका पाठ करता है, उसे दैवी सम्पत्ति प्राप्त होती है तथा वह तीनों लोकोंमें कहीं भी पराजित नहीं होता । इतना ही नहीं, वह अपमृत्युसे[1] रहित हो सौसे भी अधिक वर्षोंतक जीवित रहता है ॥ ४६-४७ ॥ मकरी, चेचक और कोढ़ आदि उसकी सम्पूर्ण व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं । कनेर, भाँग, अफीम, धतूरे आदिका स्थावर विष, साँप और बिच्छू आदिके काटनेसे चढ़ा हुआ जङ्गम विष तथा अहिफेन और तेलके संयोग आदिसे बननेवाला कृत्रिम विष—ये सभी प्रकारके विष दूर हो जाते हैं, उनका कोई असर नहीं होता ॥ ४८ ॥ इस पृथ्वीपर मारण-मोहन आदि जितने आभिचारिक प्रयोग होते हैं तथा इस प्रकारके जितने मन्त्र, यन्त्र होते हैं, वे सब इस कवचको हृदयमें धारण कर लेनेपर मनुष्यको देखते ही नष्ट हो जाते हैं । ये ही नहीं, पृथ्वीपर विचरनेवाले ग्रामदेवता, आकाशचारी देवविशेष, जलके सम्बन्धसे प्रकट होनेवाले गण, उपदेशमात्रसे सिद्ध होनेवाले निम्नकोटिके देवता, अपने जन्मके साथ प्रकट होनेवाले देवता, कुलदेवता, माला (कण्ठमाला आदि), डाकिनी, शाकिनी, अन्तरिक्षमें विचरनेवाली अत्यन्त बलवती भयानक डाकिनियाँ, ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, बेताल, कूष्माण्ड और भैरव आदि अनिष्टकारक देवता भी हृदयमें कवच धारण किये रहनेपर उस मनुष्यको देखते ही भाग जाते हैं । कवचधारी पुरुषको राज्यसे सम्मान और उन्नतिकी प्राप्ति होती है । यह कवच मनुष्यके तेजकी वृद्धि करनेवाला और उत्तम है ॥ ४९—५२ ॥ कवचका पाठ करनेवाला पुरुष अपनी कीर्तिसे विभूषित भूतलपर अपने सुयशके साथ-साथ वृद्धिको प्राप्त होता है । जो पहले कवचका पाठ करके उसके बाद सप्तशती चण्डीका पाठ करता है, उसकी जबतक वन, पर्वत और काननोंसहित यह पृथ्वी टिकी रहती है, तबतक यहाँ पुत्र-पौत्र आदि संतान-परम्परा बनी रहती है ॥ ५३-५४ ॥ फिर देहका अन्त होनेपर वह पुरुष भगवती महामायाके प्रसादसे उस नित्य परम पदको प्राप्त होता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है ॥ ५५ ॥ वह सुन्दर दिव्य रूप धारण करता और कल्याणमय शिवके साथ आनन्दका भागी होता है ॥ ५६ ॥

इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम् ॥ १ ॥

अथार्गलास्तोत्रम् ॥

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमहालक्ष्मीर्देवता श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गे जपे विनियोगः ॥

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

ॐ चण्डिका देवीको नमस्कार है ।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥
मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ३ ॥
महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ४ ॥
रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ५ ॥
शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ६ ॥
वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जयन्ती[2], मङ्गला[3], काली[4],

१. अकाल-मृत्यु अथवा अग्नि, जल, बिजली एवं सर्प आदिसे होनेवाली मृत्युको अपमृत्यु कहते हैं ।

२. जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते इति 'जयन्ती'—सबसे उत्कृष्ट एवं विजयशालिनी । ३. मङ्गं जननमरणादिरूपं सर्पणं भक्तानां लाति गृह्णाति नाशयति या सा मङ्गला मोक्षप्रदा—जो अपने भक्तोंके जन्म-मरण आदि संसारबन्धनको दूर करती है, उस मोक्षदायिनी मङ्गलमयी देवीका नाम 'मङ्गला' है । ४. कलयति भक्षयति प्रलयकाले सर्वम् इति काली—जो प्रलयकालमें सम्पूर्ण सृष्टिको अपना ग्रास बना लेती है, उस भगवतीको 'काली' कहते हैं ।

भद्रकाली[1], कपालिनी[2], दुर्गा[3], क्षमा[4], शिवा[5], धात्री[6], स्वाहा[7] और स्वधा[8]—इन नामोंसे प्रसिद्ध जगदम्बिके ! तुम्हें मेरा नमस्कार हो। देवि चामुण्डे ! तुम्हारी जय हो। सम्पूर्ण प्राणियोंकी पीड़ा हरनेवाली देवि ! तुम्हारी जय हो। सबमें व्याप्त रहनेवाली देवि ! तुम्हारी जय हो। कालरात्रि ! तुम्हें नमस्कार हो ॥ १-२ ॥ मधु और कैटभको मारनेवाली तथा ब्रह्माजीको वरदान देनेवाली देवि ! तुम्हें नमस्कार है। तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ ३ ॥ महिषासुरका नाश करनेवाली तथा भक्तोंको सुख देनेवाली देवि ! तुम्हें नमस्कार है। तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ ४ ॥ रक्तबीजका वध और चण्ड-मुण्डका विनाश करनेवाली देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ ५ ॥ शुम्भ और निशुम्भ तथा धूम्राक्षका मर्दन करनेवाली देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ ६ ॥ सबके द्वारा वन्दित युगल चरणोंवाली तथा सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाली देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ ७ ॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ८ ॥
नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ९ ॥
स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १० ॥
चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ११ ॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १२ ॥
विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १३ ॥
विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १४ ॥

देवि ! तुम्हारे रूप और चरित्र अचिन्त्य हैं। तुम समस्त शत्रुओंका नाश करनेवाली हो। रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ ८ ॥ पापोंको दूर करनेवाली चण्डिके ! जो भक्तिपूर्वक तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, उन्हें सर्वदा रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ ९ ॥ रोगोंका नाश करनेवाली चण्डिके ! जो भक्तिपूर्वक तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १० ॥ चण्डिके ! इस संसारमें जो भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ ११ ॥ मुझे सौभाग्य और आरोग्य दो। परम सुख दो, रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १२ ॥ जो मुझसे द्वेष रखते हों, उनका नाश और मेरे बलकी वृद्धि करो। रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १३ ॥ देवि ! मेरा कल्याण करो। मुझे उत्तम सम्पत्ति प्रदान करो। रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १४ ॥

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १५ ॥
विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १६ ॥
प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १७ ॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १८ ॥
कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १९ ॥

---

१. भद्रं मङ्गलं सुखं वा कलयति स्वीकरोति भक्तेभ्यो दातुम् इति भद्रकाली सुखप्रदा। जो अपने भक्तोंके लिये भद्र, सुख किंवा मङ्गल देनेवाली हो, वह 'भद्रकाली' है। २. हाथमें कपाल तथा गलेमें मुण्डमाला धारण करनेवाली। ३. दुःखेन अष्टाङ्गयोगकर्मोपासनारूपेण क्लेशेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा। जो अष्टाङ्गयोग, कर्म एवं उपासनारूप दुःसाध्य साधनसे प्राप्त होती हैं, वे जगदम्बिका दुर्गा कहलाती हैं। ४. क्षमते सहते भक्तानाम् अन्येषां वा सर्वानपराधान् जननीत्वेनातिशयकरुणामयस्वभावादिति क्षमा। सम्पूर्ण जगत्की जननी होनेसे अत्यन्त करुणामय स्वभाव होनेके कारण जो भक्तों अथवा दूसरोंके भी सारे अपराध क्षमा करती हैं, उनका नाम क्षमा है। ५. सबका शिव अर्थात् कल्याण करनेवाली जगदम्बाको शिवा कहते हैं। ६. सम्पूर्ण प्रपञ्चको धारण करनेके कारण भगवतीका नाम 'धात्री' है। ७. स्वाहारूपसे यज्ञभाग ग्रहण करके देवताओंका पोषण करनेवाली। ८. स्वधारूपसे श्राद्ध और तर्पणको स्वीकार करके पितरोंका पोषण करनेवाली।

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २० ॥
इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २१ ॥

अम्बिके ! देवता और असुर दोनों ही अपने माथेके मुकुटकी मणियोंको तुम्हारे चरणोंपर घिसते रहते हैं। तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १५ ॥ अपने भक्तजनको विद्वान्, यशस्वी और लक्ष्मीवान् बनाओ तथा रूप दो, जय दो, यश दो और उसके काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १६ ॥ प्रचण्ड दैत्योंके दर्पका दलन करनेवाली चण्डिके ! मुझ शरणागतको रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १७ ॥ चतुर्मुख ब्रह्माजीके द्वारा प्रशंसित चार भुजाधारिणी परमेश्वरि ! रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १८ ॥ देवि अम्बिके ! भगवान् विष्णु नित्य-निरन्तर भक्तिपूर्वक तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं। तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ १९ ॥ हिमालय-कन्या पार्वतीके पति महादेवजीके द्वारा प्रशंसित होनेवाली परमेश्वरि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ २० ॥ इन्द्रके द्वारा सद्भावसे पूजित होनेवाली परमेश्वरि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ २१ ॥

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २२ ॥
देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २३ ॥
पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥ २४ ॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥ २५ ॥

प्रचण्ड भुजदण्डोंवाले दैत्योंका घमंड चूर करनेवाली देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ २२ ॥ देवि अम्बिके ! तुम निरन्तर अबाधरूपसे भक्ति करनेवाले अपने भक्तजनोंको आनन्द प्रदान करती रहती हो। मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो ॥ २३ ॥ मनकी इच्छाके अनुसार चलनेवाली मनोहर पत्नी प्रदान करो, जो दुर्गम संसारसागरसे तारनेवाली तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हो ॥ २४ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करके सप्तशतीरूपी महास्तोत्रका पाठ करता है, वह सप्तशतीकी जपसंख्यासे मिलनेवाले श्रेष्ठ फलको प्राप्त होता है। साथ ही वह प्रचुर सम्पत्ति भी प्राप्त कर लेता है ॥ २५ ॥

इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

अथ कीलकम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गे जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

ॐ चण्डिकादेवीको नमस्कार है।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥ १ ॥
सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥
सिध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिध्यति ॥ ३ ॥
न मन्त्रो नौषधं तत्र न किंचिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ ४ ॥
समग्राण्यपि सिध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विशुद्ध ज्ञान ही जिनका शरीर है, तीनों वेद ही जिनके तीन दिव्य नेत्र हैं, जो कल्याण-प्राप्तिके हेतु हैं तथा अपने मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है ॥ १ ॥ मन्त्रोंका जो अभिकीलक है अर्थात् मन्त्रोंकी सिद्धिमें विघ्न उपस्थित करनेवाले शापरूपी कीलकका जो निवारण करनेवाला है, उस सप्तशतीस्तोत्रको सम्पूर्णरूपसे जानना चाहिये (और जानकर उसकी उपासना करनी चाहिये), यद्यपि सप्तशतीके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंके जपमें भी जो निरन्तर लगा रहता है, वह भी कल्याणका भागी होता है ॥ २ ॥ उसके भी उच्चाटन

आदि कर्म सिद्ध होते हैं तथा उसे भी समस्त दुर्लभ वस्तुओंकी प्राप्ति हो जाती है। तथापि जो अन्य मन्त्रोंका जप न करके केवल इस सप्तशती नामक स्तोत्रसे ही देवीकी स्तुति करते हैं, उन्हें स्तुतिमात्रसे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी देवी सिद्ध हो जाती है ॥ ३ ॥ उन्हें अपने कार्यकी सिद्धिके लिये मन्त्र, ओषधि तथा अन्य किसी साधनके उपयोगकी आवश्यकता नहीं रहती। बिना जपके ही उनके उच्चाटन आदि समस्त आभिचारिक कर्म सिद्ध हो जाते हैं ॥ ४ ॥ इतना ही नहीं, उनकी सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ भी सिद्ध होती हैं। लोगोंके मनमें यह शङ्का थी कि 'जब केवल सप्तशतीकी उपासनासे अथवा सप्तशतीको छोड़कर अन्य मन्त्रोंकी उपासनासे भी समान रूपसे सब कार्य सिद्ध होते हैं तो इनमें श्रेष्ठ कौन-सा साधन है?' लोगोंकी इस शङ्काको सामने रखकर भगवान् शङ्करने अपने पास आये हुए जिज्ञासुओंको समझाया कि यह सप्तशती नामक सम्पूर्ण स्तोत्र ही सर्वश्रेष्ठ एवं कल्याणमय है ॥ ५ ॥

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥ ६ ॥
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशयः।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥ ७ ॥
ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसिध्यति।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ ८ ॥
यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम्।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥ ९ ॥
न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १० ॥
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥ ११ ॥
सौभाग्यादि च यत्किंचिद् दृश्यते ललनाजने।
तत्सर्वं त्वत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥ १२ ॥
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥ १३ ॥
ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॐ ॥ १४ ॥

तदनन्तर भगवती चण्डिकाके सप्तशतीनामक स्तोत्रको महादेवजीने गुप्त कर दिया। सप्तशतीके पाठसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसकी कभी समाप्ति नहीं होती; किंतु अन्य मन्त्रोंके जपजन्य पुण्यकी समाप्ति हो जाती है। अतः भगवान् शिवने अन्य मन्त्रोंकी अपेक्षा जो सप्तशतीकी ही श्रेष्ठताका निर्णय किया, उसे यथार्थ ही जानना चाहिये ॥ ६ ॥ अन्य मन्त्रोंका जप करनेवाला पुरुष भी यदि सप्तशतीके स्तोत्र और जपका अनुष्ठान कर ले तो वह भी पूर्णरूपसे ही कल्याणका भागी होता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो साधक कृष्णपक्षकी चतुर्दशी अथवा अष्टमीको एकाग्रचित्त होकर भगवतीकी सेवामें अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है और फिर उसे प्रसादरूपसे ग्रहण करता है, उसीपर भगवती प्रसन्न होती हैं; अन्यथा उनकी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती।* इस प्रकार सिद्धिके प्रतिबन्धकरूप कीलके द्वारा महादेवजीने इस स्तोत्रको कीलित कर रक्खा है ॥ ७-८ ॥ जो पूर्वोक्त रीतिसे निष्कीलन करके इस सप्तशती-स्तोत्रका प्रतिदिन स्पष्ट उच्चारणपूर्वक पाठ करता है, वह मनुष्य सिद्ध हो जाता है, वही देवीका पार्षद होता है और वही गन्धर्व भी होता है ॥ ९ ॥ सर्वत्र विचरते रहनेपर भी इस संसारमें उसे कहीं भी भय नहीं होता। वह अपमृत्युके वशमें नहीं पड़ता तथा देह त्यागनेके अनन्तर मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥ अतः कीलनको जानकर उसका परिहार करके ही सप्तशतीका पाठ आरम्भ करे। जो ऐसा नहीं करता, उसका नाश हो जाता है।† इसलिये कीलक और निष्कीलनका ज्ञान प्राप्त करनेपर ही यह स्तोत्र निर्दोष होता है और विद्वान् पुरुष इस निर्दोष स्तोत्रका ही पाठ आरम्भ करते हैं ॥ ११ ॥ स्त्रियोंमें जो कुछ भी सौभाग्य आदि दृष्टिगोचर होता है, वह सब देवीके प्रसादका ही फल है। अतः इस कल्याणमय स्तोत्रका सदा जप करना चाहिये ॥ १२ ॥ इस स्तोत्रका मन्दस्वरसे पाठ करनेपर स्वल्प फलकी प्राप्ति होती है और उच्चस्वरसे पाठ करनेपर पूर्ण फलकी सिद्धि होती

* यह निष्कीलन अथवा शापोद्धारका ही विशेष प्रकार है। भगवतीका उपासक उपर्युक्त तिथिको देवीकी सेवामें उपस्थित हो अपना न्यायोपार्जित धन उन्हें अर्पित करते हुए एकाग्रचित्तसे प्रार्थना करे— 'मातः! आजसे यह सारा धन मैंने आपकी सेवामें अर्पण कर दिया। इसपर मेरा कोई स्वत्व नहीं रहा।' फिर भगवतीका ध्यान करते हुए यह भावना करे, मानो जगदम्बा कह रही हैं—'बेटा! संसार-यात्राके निर्वाहार्थ तू मेरा यह प्रसादरूप धन ग्रहण कर।' इस प्रकार देवीकी आज्ञा शिरोधार्य करके उस धनको प्रसाद-बुद्धिसे ग्रहण करे और धर्मशास्त्रोक्त मार्गसे उसका सद्व्यय करते हुए सदा देवीके ही अधीन होकर रहे। यह 'दान-प्रतिग्रह-करण' कहलाता है। इससे सप्तशतीका शापोद्धार होता और देवीकी कृपा प्राप्त होती है।

† यहाँ कीलक और निष्कीलनके ज्ञानकी अनिवार्यता बतानेके लिये ही 'विनाश होना' कहा है। वास्तवमें किसी प्रकार भी देवीका पाठ करे, उससे लाभ ही होता है। यह बात वचनान्तरोंसे सिद्ध है।

है। अतः उच्चस्वरसे ही इसका पाठ आरम्भ करना चाहिये ॥ १३ ॥ जिसके प्रसादसे ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य, सम्पत्ति, शत्रुनाश तथा परम मोक्षकी भी सिद्धि होती है, उस कल्याणमयी जगदम्बाकी स्तुति मनुष्य क्यों नहीं करते॥१४॥

इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

इसके अनन्तर रात्रिसूक्तका पाठ करना उचित है। पाठके आरम्भमें रात्रिसूक्त और अन्तमें देवीसूक्तके पाठकी विधि है। मारीचकल्पका वचन है—

रात्रिसूक्तं पठेदादौ मध्ये सप्तशतीस्तवम्।
प्रान्ते तु पठनीयं वै देवीसूक्तमिति क्रमः ॥

रात्रिसूक्तके बाद विनियोग, न्यास और ध्यानपूर्वक नवार्ण-मन्त्रका जप करके सप्तशतीका पाठ आरम्भ करना चाहिये। पाठके अन्तमें पुनः विधिपूर्वक नवार्ण-मन्त्रका जप करके देवीसूक्तका तथा तीनों रहस्योंका पाठ करना उचित है। कोई-कोई नवार्णजपके बाद रात्रिसूक्तका पाठ बतलाते हैं तथा अन्तमें भी देवीसूक्तके बाद नवार्ण-जपका औचित्य प्रतिपादन करते हैं; किंतु यह ठीक नहीं है। चिदम्बर-संहितामें कहा है—'मध्ये नवार्णपुटितं कृत्वा स्तोत्रं सदाभ्यसेत्।' अर्थात् सप्तशतीका पाठ बीचमें हो और आदि-अन्तमें नवार्ण-जपसे उसको सम्पुटित कर दिया जाय।' डामरतन्त्रमें यह बात अधिक स्पष्ट कर दी गयी है—

शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णकम्।
चण्डीं सप्तशतीं मध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृतः ॥

अर्थात् आदि और अन्तमें सौ-सौ बार नवार्ण-मन्त्रका जप करे और मध्यमें सप्तशती दुर्गाका पाठ करे; यह सम्पुट कहा गया है। यदि आदि-अन्तमें रात्रिसूक्त और देवीसूक्तका पाठ हो और उसके पहले एवं अन्तमें नवार्ण-जप हो, तब तो वह पाठ नवार्ण-सम्पुटित नहीं कहला सकता; क्योंकि जिससे सम्पुट हो उसके मध्यमें अन्य प्रकारके मन्त्रका प्रवेश नहीं होना चाहिये। यदि बीचमें रात्रिसूक्त और देवीसूक्त रहेंगे तो वह पाठ उन्हींसे सम्पुटित कहलायेगा; ऐसी दशामें डामरतन्त्र आदिके वचनोंसे स्पष्ट ही विरोध होगा। अतः पहले रात्रिसूक्त, फिर नवार्ण-जप, फिर न्यासपूर्वक सप्तशती-पाठ, फिर विधिवत् नवार्ण-जप, फिर क्रमशः देवीसूक्त एवं रहस्यत्रयका पाठ—यही क्रम ठीक है। रात्रिसूक्त भी दो प्रकारके हैं—वैदिक और तान्त्रिक। वैदिक रात्रिसूक्त ऋग्वेदकी आठ ऋचाएँ हैं और तान्त्रिक तो दुर्गासप्तशतीके प्रथमाध्यायमें ही है। यहाँ दोनों दिये जाते हैं। रात्रिदेवताके प्रतिपादक सूक्तको रात्रिसूक्त कहते हैं। वह रात्रिदेवी दो प्रकारकी है—एक जीव-रात्रि और दूसरी ईश्वररात्रि। जीवरात्रि वही है, जिसमें प्रतिदिन जगत्के साधारण जीवोंका व्यवहार लुप्त होता है। दूसरी ईश्वररात्रि वह है, जिसमें ईश्वरके जगद्रूप व्यवहारका लोप होता है; उसीको कालरात्रि या महाप्रलयरात्रि कहते हैं। उस समय केवल ब्रह्म और उनकी मायाशक्ति, जिसे अव्यक्त प्रकृति कहते हैं, शेष रहती है। इसकी अधिष्ठात्री देवी 'भुवनेश्वरी' हैं।* रात्रिसूक्तसे उन्हींका स्तवन होता है।

अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम् †

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥

महत्तत्त्वादिरूप व्यापक इन्द्रियोंसे सब देशोंमें समस्त वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाली ये रात्रिरूपा देवी अपने उत्पन्न किये हुए जगत्के जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंको विशेष रूपसे देखती हैं और उनके अनुरूप फलकी व्यवस्था करनेके लिये समस्त विभूतियोंको धारण करती हैं।

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः। ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

ये देवी अमर हैं और सम्पूर्ण विश्वको, नीचे फैलनेवाली लता आदिको तथा ऊपर बढ़नेवाले वृक्षोंको भी व्याप्त करके स्थित हैं; इतना ही नहीं, ये ज्ञानमयी ज्योतिसे जीवोंके अज्ञानान्धकारका नाश कर देती हैं।

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती। अपेदु हासते तमः॥३॥

परा चिच्छक्तिरूपा रात्रिदेवी आकर अपनी बहिन ब्रह्मविद्यामयी उषादेवीको प्रकट करती हैं, जिससे अविद्यामय अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है।

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि। वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥

वे रात्रिदेवी इस समय मुझपर प्रसन्न हों, जिनके

* ब्रह्ममायात्मिका रात्रिः परमेशलयात्मिका।
तदधिष्ठातृदेवी तु भुवनेशी प्रकीर्तिता ॥
(देवीपुराण)

† ऋग्वेद मं० १० अ० १० सू० १२७ मन्त्र १ से ८ तक

आनेपर लोग अपने घरोंमें सुखसे सोते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे रात्रिके समय पक्षी वृक्षोंपर बनाये हुए अपने घोंसलोंमें सुखपूर्वक शयन करते हैं।

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः। नि श्येनासश्चिदर्थिनः॥ ५॥

उस करुणामयी रात्रिदेवीके अङ्कमें सम्पूर्ण ग्रामवासी मनुष्य, पैरोंसे चलनेवाले गाय, घोड़े आदि पशु, पंखोंसे उड़नेवाले पक्षी एवं पतङ्ग आदि, किसी प्रयोजनसे यात्रा करनेवाले पथिक और बाज आदि भी सुखपूर्वक सोते हैं।

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये। अथा नः सुतरा भव॥ ६॥

हे रात्रिमयी चिच्छक्ति! तुम कृपा करके वासनामयी वृकी तथा पापमय वृकको हमसे अलग करो। काम आदि तस्कर-समुदायको भी दूर हटाओ। तदनन्तर हमारे लिये सुखपूर्वक तरने योग्य हो जाओ—मोक्षदायिनी एवं कल्याणकारिणी बन जाओ।

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित। उष ऋणेव यातय॥ ७॥

हे उषा! हे रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी! सब ओर फैला हुआ यह अज्ञानमय काला अन्धकार मेरे निकट आ पहुँचा है। तुम इसे ऋणकी भाँति दूर करो—जैसे धन देकर अपने भक्तोंके ऋण दूर करती हो, उसी प्रकार ज्ञान देकर इस अज्ञानको भी हटा दो।

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः। रात्रि स्तोमं न जिग्युषे॥ ८॥

हे रात्रिदेवी! तुम दूध देनेवाली गौके समान हो। मैं तुम्हारे समीप आकर स्तुति आदिसे तुम्हें अपने अनुकूल करता हूँ। परम व्योमस्वरूप परमात्माकी पुत्री! तुम्हारी कृपासे मैं काम आदि शत्रुओंको जीत चुका हूँ, तुम स्तोत्रकी भाँति मेरे इस हविष्यको भी ग्रहण करो।

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम् *

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥ १॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता॥ २॥
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।
त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा॥ ३॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥ ४॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥ ५॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥ ६॥
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा॥ ७॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥ ८॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा॥ ९॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी॥ १०॥
यच्च किंचित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥ ११॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥ १२॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥ १३॥
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ॥ १४॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥ १५॥

इति रात्रिसूक्तम्।

* इसका अर्थ सप्तशतीके प्रथम अध्याय (पृष्ठ १८८, १८९) में देखिये।

अब यहाँ अर्थसहित देव्यथर्वशीर्ष दिया जाता है। अथर्ववेदमें इसकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। इसके पाठसे देवीकी कृपा शीघ्र प्राप्त होती है। यद्यपि सप्तशती-पाठका अङ्ग बनाकर इसका अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं हुआ है, तथापि यदि सप्तशतीस्तोत्र आरम्भ करनेसे पूर्व इसका पाठ कर लिया जाय तो बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। इसी उद्देश्यसे हम रात्रिसूक्तके बाद इसका समावेश करते हैं; आशा है, जगदम्बाके उपासक इससे संतुष्ट होंगे।

श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति ॥ १ ॥

सभी देवता, देवीके समीप रहकर, नम्रतासे प्रार्थना करने लगे—हे महादेवि ! तुम कौन हो ?

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् । शून्यं चाशून्यं च ॥ २ ॥

उसने कहा, मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ । मुझसे प्रकृतिपुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है ।

अहमानन्दानानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने । अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये । अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि । अहमखिलं जगत् ॥ ३ ॥

मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ । मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ । अवश्य जाननेयोग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ । पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ । यह सारा दृश्य जगत् मैं ही हूँ ।

वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याहम् । अजाहमनजाहम् । अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ॥ ४ ॥

वेद और अवेद मैं हूँ । विद्या और अविद्या भी मैं, अजा और अनजा (प्रकृति और उससे भिन्न) भी मैं; नीचे-ऊपर अगल-बगल भी मैं ही हूँ ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि । अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः । अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि । अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥ ५ ॥

मैं रुद्रों और वसुओंके रूपमें सञ्चार करती हूँ । मैं आदित्यों और विश्वेदेवोंके रूपोंमें फिरा करती हूँ । मैं मित्रा और वरुण दोनोंका, इन्द्राग्निका और दोनों अश्विनीकुमारोंका पोषण करती हूँ ।

अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि । अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ॥ ६ ॥

मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भगको धारण करती हूँ । त्रैलोक्यको आक्रमण करनेके लिये विस्तीर्ण पादक्षेप करनेवाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापतिको मैं ही धारण करती हूँ ।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते । अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे । य एवं वेद । स दैवीं सम्पदमाप्नोति ॥ ७ ॥

देवोंको उत्तम हवि पहुँचानेवाले और सोमरस निकालनेवाले यजमानके लिये हविर्द्रव्योंसे युक्त धन धारण करती हूँ । मैं सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी, उपासकोंको धन देनेवाली, ब्रह्मरूप और यज्ञार्होंमें (यजन करने योग्य देवोंमें) मुख्य हूँ । मैं आत्मस्वरूपपर आकाशादि निर्माण करती हूँ । मेरा स्थान आत्मस्वरूपको धारण करनेवाली बुद्धिवृत्तिमें है । जो इस प्रकार जानता है वह दैवी सम्पत्ति लाभ करता है ।

ते देवा अब्रुवन्—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ८ ॥

तब देवोंने कहा, देवीको नमस्कार है । बड़े बड़ोंको अपने-अपने कर्तव्यमें प्रवृत्त करनेवाली कल्याणकर्त्रीको सदा नमस्कार है । गुणसाम्यावस्थारूपिणी मङ्गलमयी देवीको नमस्कार है । नियमयुक्त होकर हम उन्हें प्रणाम करते हैं ।

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्या-
महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥ ९ ॥

उन अग्निके-से वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमती, कर्मफलप्राप्तिके हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गादेवीकी हम शरणमें हैं । असुरोंका नाश करनेवाली देवी ! तुम्हें नमस्कार है ।

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां
विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥ १० ॥

प्राणरूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको

उत्पन्न किया, उसको अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वह कामधेनुतुल्य आनन्ददायक और अन्न और बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर हमारे समीप आये।

कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्॥११॥

कालका भी नाश करनेवाली, वेदोंद्वारा स्तुत हुई विष्णुशक्ति, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता अदिति और दक्ष-कन्या (सती), पापनाशिनी कल्याणकारिणी भगवतीको हम प्रणाम करते हैं।

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्॥१२॥

हम महालक्ष्मीको जानते हैं और उन सर्वशक्तिरूपिणीका ही ध्यान करते हैं। वह देवी हमें उस विषयमें (ज्ञान-ध्यानमें) प्रवृत्त करें।

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः॥१३॥

हे दक्ष! आपकी जो कन्या अदिति है वह प्रसूता हुई और उनके स्तुत्यर्ह और मृत्युरहित देव उत्पन्न हुए।

कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्॥१४॥

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि—इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं)। ह, स—वर्ण, मातरिश्वा—वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं)। स, क, ल—वर्ण, और माया (ह्रीं), यह सर्वात्मिका जगन्माताकी मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है।

[शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरीरूपा, अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत-शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली, सर्वतत्त्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी—यही इस मन्त्रका भावार्थ है। यह मन्त्र सब मन्त्रोंका मुकुटमणि है और मन्त्रशास्त्रमें पञ्चदशी आदि श्रीविद्याके नामसे प्रसिद्ध है। इसके छः प्रकारके अर्थ अर्थात् भावार्थ, वाच्यार्थ, सम्प्रदायार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ और तत्त्वार्थ 'नित्याषोडशिकार्णव' ग्रन्थमें बताये हैं। इसी प्रकार 'वरिवस्यारहस्य' आदि ग्रन्थोंमें इसके और भी अनेक अर्थ दरसाये हैं। श्रुतिमें भी ये मन्त्र इस प्रकारसे अर्थात् क्वचित् स्वरूपोच्चार, क्वचित् लक्षणा और लक्षित लक्षणासे और कहीं वर्णके पृथक्-पृथक् अवयव दरसाकर जान-बूझकर विशृङ्खलरूपसे कहे गये हैं। इससे यह मालूम होगा कि ये मन्त्र कितने गोपनीय और महत्त्वपूर्ण हैं।]

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति॥१५॥

ये परमात्माकी शक्ति हैं। ये विश्वमोहिनी हैं। पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण धारण करनेवाली हैं। ये 'श्रीमहाविद्या' हैं। जो ऐसा जानता है, वह शोकको पार कर जाता है।

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः॥१६॥

भगवती! तुम्हें नमस्कार है। माता! सब प्रकारसे हमारी रक्षा करो।

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम्॥

पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्॥१७॥

(मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहते हैं—) वही ये अष्ट वसु हैं; वही ये एकादश रुद्र हैं; वही ये द्वादश आदित्य हैं; वही ये सोमपान करनेवाले और न करनेवाले विश्वेदेव हैं; वही ये यातुधान (एक प्रकारके राक्षस), असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं; वही ये सत्त्व-रज-तम हैं; वही ये ब्रह्म-विष्णु-रुद्ररूपिणी हैं; वही ये प्रजापति-इन्द्र-मनु हैं; वही ये ग्रह, नक्षत्र और तारे हैं; वही कला-काष्ठादि कालरूपिणी हैं; पाप नाश करनेवाली, भोग-मोक्ष देनेवाली, अन्तरहित, विजयाधिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेने योग्य, कल्याणदात्री और मङ्गलरूपिणी उन देवीको हम सदा प्रणाम करते हैं।

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् ।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥ १८ ॥
एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥ १९ ॥

वियत्—आकाश (ह) तथा 'ई' कारसे युक्त, वीतिहोत्र—अग्नि (र) सहित, अर्धचन्द्र (ँ) से अलंकृत जो देवीका बीज है, वह सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इस एकाक्षर ब्रह्मका ऐसे यति ध्यान करते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जो निरतिशयानन्दपूर्ण हैं और जो ज्ञानके सागर हैं। (यह मन्त्र देवीप्रणव माना जाता है। ॐकारके समान ही यह प्रणव भी व्यापक अर्थसे भरा हुआ है। संक्षेपमें इसका अर्थ इच्छा-ज्ञान-क्रियाधार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिदानन्द समरसीभूत शिवशक्तिस्फुरण है।)

वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयकः ॥
नारायणेन संमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः ।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः ॥ २० ॥

वाणी (ऐं), माया (ह्रीं), ब्रह्मसू—काम (क्लीं), इसके आगे छठा व्यञ्जन अर्थात् च, वही वक्त्र अर्थात् आकारसे युक्त (चा), सूर्य (म), 'अवाम श्रोत्र'—दक्षिण कर्ण (उ) और बिन्दु अर्थात् अनुस्वारसे युक्त (मुं), टकारसे तीसरा ड, वही नारायण अर्थात् 'आ'से मिश्र (डा), वायु (य), वही अधर अर्थात् 'ऐ' से युक्त (यै) और 'विच्चे' यह नवार्णमन्त्र उपासकोंको आनन्द और ब्रह्मसायुज्य देनेवाला है।

[इस मन्त्रका अर्थ—हे चित्स्वरूपिणी महासरस्वती ! हे सद्रूपिणी महालक्ष्मी ! हे आनन्दरूपिणी महाकाली ! ब्रह्मविद्या पानेके लिये हम सब समय तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीस्वरूपिणी चण्डिके ! तुम्हें नमस्कार है। अविद्यारूप रज्जुकी दृढ ग्रन्थिको खोलकर मुझे मुक्त करो।]

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥ २१ ॥

हृत्कमलके मध्यमें रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, पाश और अङ्कुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपवाली, वरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रोंसे युक्त, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवीको मैं भजता हूँ।

नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम् ।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥ २२ ॥

महाभयका नाश करनेवाली, महासङ्कटको शान्त करनेवाली और महान् करुणाकी साक्षात् मूर्ति तुम महादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ।

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते अज्ञेयानन्ता लक्ष्याजैका नैकेति ॥ २३ ॥

जिसका स्वरूप ब्रह्मादिक नहीं जानते—इसलिये जिसे अज्ञेया कहते हैं, जिसका अन्त नहीं मिलता—इसलिये जिसे अनन्ता कहते हैं, जिसका लक्ष्य देख नहीं पड़ता—इसलिये जिसे अलक्ष्या कहते हैं, जिसका जन्म समझमें नहीं आता—इसलिये जिसे अजा कहते हैं, जो अकेली ही सर्वत्र है—इसलिये जिसे एका कहते हैं, जो अकेली ही विश्वरूपमें सजी हुई है—इसलिये जिसे नैका कहते हैं, वह इसीलिये अज्ञेया, अनन्ता, अजा, एका और नैका कहाती है।

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता* शून्यानां शून्यसाक्षिणी ।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ २४ ॥

सब मन्त्रोंमें 'मातृका'—मूलाक्षररूपसे रहनेवाली, शब्दोंमें अर्थरूपसे रहनेवाली, ज्ञानोंमें 'चिन्मयातीता', शून्योंमें 'शून्यसाक्षिणी' तथा जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वे दुर्गा नामसे प्रसिद्ध हैं।

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥ २५ ॥

अर्थ—उन दुर्विज्ञेय, दुराचारनाशक और संसारसागरसे तारनेवाली दुर्गा देवीको संसारसे डरा हुआ मैं नमस्कार करता हूँ।

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति—शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति। शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।

* 'चिन्मयानन्दा' भी एक पाठ है और वह ठीक ही मालूम होता है।

दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते ।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ॥ २६ ॥

इस अथर्वशीर्षका जो अध्ययन करता है, उसे पाँचों अथर्वशीर्षोंके जपका फल प्राप्त होता है । इस अथर्वशीर्षको न जानकर जो प्रतिमास्थापन करता है, वह सैकड़ों लाख जप करके भी अर्चासिद्धि नहीं प्राप्त करता । अष्टोत्तरशत (१०८ बार) जप (इत्यादि) इसकी पुरश्चरणविधि है । जो इसका दस बार पाठ करता है, वह उसी क्षण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महादेवीके प्रसादसे बड़े दुस्तर संकटोंको पार कर जाता है ।

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति । निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति । नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासांनिध्यं भवति । प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति । भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति । स महामृत्युं तरति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इसका सायंकालमें अध्ययन करनेवाला दिनमें किये हुए पापोंका नाश करता है, प्रातःकालमें अध्ययन करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापोंका नाश करता है, दोनों समय अध्ययन करनेवाला निष्पाप होता है । मध्यरात्रिमें तुरीय* सन्ध्याके समय जप करनेसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है । नयी प्रतिमापर जप करनेसे देवतासान्निध्य प्राप्त होता है । भौमाश्विनी (अमृतसिद्धि) योगमें महादेवीकी सन्निधिमें जप करनेसे महामृत्युसे तर जाता है । जो इस प्रकार जानता है, वह महामृत्युसे तर जाता है । इस प्रकार यह अविद्यानाशिनी ब्रह्मविद्या है ।

अथ नवार्णविधि

इस प्रकार रात्रिसूक्त और देव्यथर्वशीर्षका पाठ करनेके पश्चात् निम्नाङ्कितरूपसे नवार्णमन्त्रके विनियोग, न्यास और ध्यान आदि करे ।

श्रीगणपतिर्जयति । 'ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।' इसे पढ़कर जल गिराये ।

नीचे लिखे न्यास-वाक्योंमेंसे एक-एकका उच्चारण करके दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुदा, दोनों चरण और नाभि—इन अङ्गोंका स्पर्श करे ।

ऋष्यादिन्यास

महाविष्णुरुद्रब्रह्मऋषिभ्यो नमः, शिरसि । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे । महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि । ऐं बीजाय नमः, गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः । क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'—इस मूलमन्त्रसे हाथोंकी शुद्धि करके करन्यास करे ।

करन्यास

करन्यासमें हाथकी विभिन्न अँगुलियों, हथेलियों और हाथके पृष्ठभागमें मन्त्रोंका न्यास (स्थापन) किया जाता है; इसी प्रकार अङ्गन्यासमें हृदयादि अङ्गोंमें मन्त्रोंकी स्थापना होती है । मन्त्रोंको चेतन और मूर्तिमान् मानकर उन-उन अङ्गोंका नाम लेकर उन मन्त्रमय देवताओंका ही स्पर्श और वन्दन किया जाता है, ऐसा करनेसे पाठ या जप करनेवाला स्वयं मन्त्रमय होकर मन्त्र-देवताओंद्वारा सर्वथा सुरक्षित हो जाता है । उसके बाहर-भीतरकी शुद्धि होती है, दिव्य बल प्राप्त होता है और साधना निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण तथा परम लाभदायक होती है ।

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः (दोनों हाथोंकी तर्जनी अँगुलियोंसे दोनों अँगूठोंका स्पर्श) ।

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः (दोनों हाथोंके अँगूठोंसे दोनों तर्जनी अँगुलियोंका स्पर्श) ।

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः (अँगूठोंसे मध्यमा अँगुलियोंका स्पर्श) ।

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः (अनामिका अँगुलियोंका स्पर्श) ।

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः (कनिष्ठिका अँगुलियोंका स्पर्श) ।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः (हथेलियों और उनके पृष्ठभागोंका परस्पर स्पर्श) ।

* श्रीविद्याके उपासकोंके लिये चार सन्ध्याएँ आवश्यक हैं । इनमें तुरीय सन्ध्या मध्यरात्रिमें होती है ।

हृदयादिन्यास

इसमें दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंमे 'हृदय' आदि अङ्गोंका स्पर्श किया जाता है।

ॐ ऐं हृदयाय नमः (दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंमे हृदयका स्पर्श)।

ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा (सिरका स्पर्श)

ॐ क्लीं शिखायै वषट् (शिखाका स्पर्श)

ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंमे बायें कंधेका और बायें हाथकी अँगुलियोंमे दाहिने कंधेका साथ ही स्पर्श)।

ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यभागका स्पर्श)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् (यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

अक्षरन्यास

निम्नाङ्कित वाक्योंको पढ़कर क्रमशः शिखा आदिका दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे स्पर्श करे।

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे, ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यैं नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये।

इस प्रकार न्यास करके मूलमन्त्रसे आठ बार व्यापक-मुद्राका प्रदर्शन करे, फिर प्रत्येक दिशामें चुटकी बजाते हुए न्यास करे—

दिङ्न्यास

ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः। *

ध्यान

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥१॥ †

अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥२॥ ‡

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥३॥ §

फिर 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्रसे मालाकी पूजा करके प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थ-साधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

इसके बाद '**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**' इस मन्त्रका १०८ बार जप करे और—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥

इस श्लोकको पढ़कर देवीके वाम हस्तमें जप निवेदन करे।

सप्तशती-न्यास

तदनन्तर सप्तशतीके विनियोग, न्यास और ध्यान करने चाहिये। न्यासकी प्रणाली पूर्ववत् है—

---

* यहाँ प्रचलित परम्पराके अनुसार न्यासविधि संक्षेपसे दी गयी है। जो विस्तारसे करना चाहें, वे अन्यत्रसे सारस्वतन्यास, मातृकागण-न्यास, षड्देवीन्यास, ब्रह्मादिन्यास, महालक्ष्म्यादिन्यास, बीजमन्त्र-न्यास, विलोमबीजन्यास, मन्त्रव्याप्तिन्यास आदि अन्य प्रकारके न्यास भी कर सकते हैं।

† इसका अर्थ सप्तशतीके प्रथम अध्यायके आरम्भ (पृष्ठ १८३) में है।

‡ इसका अर्थ सप्तशतीके द्वितीय अध्यायके आरम्भ (पृष्ठ १९१) में है।

§ इसका अर्थ सप्तशतीके पाँचवें अध्यायके आरम्भ (पृष्ठ २०५) में है।

प्रथममध्यमोत्तमचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुःसामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यन्तघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥
अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥
करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

खड्गिनी शूलिनी घोरा०—हृदयाय नमः।
शूलेन पाहि नो देवि०—शिरसे स्वाहा।
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०—शिखायै वषट्।
सौम्यानि यानि रूपाणि०—कवचाय हुम्।
खड्गशूलगदादीनि०—नेत्रत्रयाय वौषट्।
सर्वस्वरूपे सर्वेशे०—अस्त्राय फट्।

ध्यान

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रधरासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे[1] ॥

इसके बाद प्रथम चरित्रका विनियोग और ध्यान करके 'मार्कण्डेय उवाच' से सप्तशतीका पाठ आरम्भ करे। प्रत्येक चरित्रका विनियोग मूल सप्तशतीके साथ ही दिया गया है तथा प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें अर्थसहित ध्यान भी दे दिया गया है। पाठ प्रेमपूर्वक भगवतीका ध्यान करते हुए करे। मीठा स्वर, अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण, पदोंका विभाग, उत्तम स्वर, धीरता, एक लयके साथ बोलना—ये सब पाठकोंके गुण हैं।* जो पाठ करते समय रागपूर्वक गाता, उच्चारणमें जल्दबाजी करता, सिर हिलाता, अपने हाथसे लिखी हुई पुस्तकपर पाठ करता, अर्थकी जानकारी नहीं रखता और अधूरा ही मन्त्र कण्ठस्थ करता है, वह पाठ करनेवालोंमें अधम माना गया है। † जबतक अध्यायकी पूर्ति न हो, तबतक बीचमें पाठ बंद न करे। यदि प्रमादवश अध्यायके बीचमें पाठका विराम हो जाय तो पुनः प्रति बार पूरे अध्यायका पाठ करे। ‡ अज्ञानवश पुस्तक हाथमें लेकर पाठ करनेपर आधा ही फल होता है। स्तोत्रका पाठ मानसिक नहीं, वाचिक होना चाहिये। वाणीसे उसका स्पष्ट उच्चारण ही उत्तम माना गया है। § बहुत जोर-जोरसे बोलना तथा पाठमें उतावली करना वर्जित है। यत्नपूर्वक शुद्ध एवं स्थिर चित्तसे पाठ करना चाहिये। × यदि पाठ कण्ठस्थ न हो तो पुस्तकसे करे। अपने हाथसे लिखे हुए अथवा ब्राह्मणेतर पुरुषके लिखे हुए स्तोत्रका पाठ न करे। + यदि एक सहस्रसे अधिक श्लोकों या मन्त्रोंका ग्रन्थ हो तो पुस्तक देखकर ही पाठ करे; इससे कम श्लोक हों तो उन्हें कण्ठस्थ करके बिना पुस्तकके भी पाठ किया जा सकता है। ÷ अध्याय समाप्त होनेपर 'इति' 'वध' 'अध्याय' तथा 'समाप्त' शब्दका उच्चारण नहीं करना चाहिये।[2]

---

१. इसका अर्थ बारहवें अध्यायके आरम्भ (पृष्ठ २३१) में है।

* माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः। धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥

† गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः। अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥

‡ यावन्न पूर्यतेऽध्यायस्तावन्न विरमेत्पठन्। यदि प्रमादादध्याये विरामो भवति प्रिये। पुनरध्यायमारभ्य पठेत्सर्वं मुहुर्मुहुः ॥

§ अज्ञानात्स्थापिते हस्ते पाठे ह्यर्धफलं ध्रुवम्। न मानसे पठेत्स्तोत्रं वाचिकं तु प्रशस्यते ॥

× उच्चैःपाठं निषिद्धं स्यात्त्वरां च परिवर्जयेत्। शुद्धेनाचलचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नतः ॥

+ कण्ठस्थपाठाभावे तु पुस्तकोपरि वाचयेत्। न स्वयं लिखितं स्तोत्रं नाब्राह्मणलिपिं पठेत् ॥

÷ पुस्तके वाचनं शस्तं सहस्रादधिकं यदि। ततो न्यूनस्य तु भवेद्वाचनं पुस्तकं विना ॥

२. अध्यायकी पूर्ति होनेपर यों कहना चाहिये—'श्रीमार्कण्डेय पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये प्रथमः ॐ तत्सत्।' इसी प्रकार 'द्वितीयः' 'तृतीयः' आदि कहकर समाप्त करना चाहिये।

(अपराह्न)

इस प्रकार सप्तशतीका पाठ पूरा होनेपर पहले नवार्ण-जप करके फिर देवीसूक्तके पाठका विधान है; अतः यहाँ भी नवार्ण-विधि उद्धृत की जाती है। सब कार्य पहलेकी ही भाँति होंगे।

विनियोग

श्रीगणपतिर्जयति । ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे । महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि । ऐं बीजाय नमः, गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः । क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति मूलेन करौ संशोध्य—

करन्यास

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यास

ॐ ऐं हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्लीं शिखायै वषट् । ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम् । ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् ।

अक्षरन्यास

ॐ ऐं नमः शिखायाम् । ॐ ह्रीं नमो दक्षिणनेत्रे । ॐ क्लीं नमो वामनेत्रे । ॐ चां नमो दक्षिणकर्णे । ॐ मुं नमो वामकर्णे । ॐ डां नमो दक्षिणनासायाम् । ॐ यैं नमो वामनासायाम् । ॐ विं नमो मुखे । ॐ च्चें नमो गुह्ये ।

'एवं विन्यस्याष्टवारं मूलेन व्यापकं कुर्यात्'

दिङ्न्यास

ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः । ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः । ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः । ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ॥

ध्यान

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥
अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥*

इस प्रकार न्यास और ध्यान करके मानसिक उपचारसे देवीकी पूजा करे। फिर १०८ या १००८ बार नवार्ण-मन्त्रका जप करना चाहिये। जप आरम्भ करनेके पहले 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्रसे मालाकी पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा ।

इस प्रकार प्रार्थना करके जप आरम्भ करे। जप पूरा करके उसे भगवतीको समर्पित करते हुए कहे—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

तत्पश्चात् फिर नीचे लिखे अनुसार न्यास करे—

करन्यास

ॐ ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ चं तर्जनीभ्यां नमः ।

---

* विनियोग, न्यास-वाक्य तथा ध्यानसम्बन्धी श्लोकोंके अर्थ पहले दिये जा चुके हैं।

ॐ ह्रिं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ क्लां अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रैं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं चण्डिकायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास

ॐ खड्गिनी शूलिनी० हृदयाय नमः। ॐ शूलेन पाहि नो० शिरसे स्वाहा। ॐ प्राच्यां० शिखायै वषट्। ॐ सौम्यानि० कवचाय हुम्। ॐ खड्ग० नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ सर्वस्वरूपे० अस्त्राय फट्।

ध्यान

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

ऋग्वेदोक्त देवीसूक्त

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः, सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानां त्रिष्टुप् छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

इससे विनियोग करके निम्नाङ्कित रूपका ध्यान करे—

ध्यान

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

जो सिंहकी पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है, जो मरकतमणिके समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होती हैं, जिनके भिन्न-भिन्न अङ्ग बाँधे हुए बाजूबंद, हार, कङ्कण, खनखनाती हुई करधनी और रुनझुन करते हुए नूपुरोंसे विभूषित हैं तथा जिनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों।

ध्यानके पश्चात् नीचे लिखे अनुसार वेदोक्त देवीसूक्तका पाठ करे।

देवीसूक्त*

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥

[महर्षि अम्भृणकी कन्याका नाम वाक था। वह बड़ी ब्रह्मज्ञानिनी थी। उसने देवीके साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी। उसीके ये उद्गार हैं—] मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवगणोंके रूपमें विचरती हूँ। मैं ही मित्र और वरुण दोनोंको, इन्द्र और अग्निको तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण करती हूँ।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥२॥

मैं ही शत्रुओंके नाशक आकाशचारी देवता सोमको, त्वष्टा प्रजापतिको तथा पूषा और भगको भी धारण करती हूँ। जो हविष्यसे सम्पन्न हो देवताओंको उत्तम हविष्यकी प्राप्ति कराता है, तथा उन्हें सोमरसके द्वारा तृप्त करता है, उस यजमानके लिये मैं ही उत्तम यज्ञका फल और धन प्रदान करती हूँ।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥३॥

मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपासकोंको धनकी प्राप्ति करानेवाली, साक्षात्कार करने योग्य परब्रह्मको अपनेसे अभिन्न रूपमें जाननेवाली तथा पूजनीय देवताओंमें प्रधान हूँ। मैं प्रपञ्चरूपसे अनेक भावोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण भूतोंमें मेरा प्रवेश है। अनेक स्थानोंमें रहनेवाले देवता जहाँ कहीं जो कुछ भी करते हैं, वह सब मेरे लिये करते हैं।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥४॥

जो अन्न खाता है, वह मेरी शक्तिसे ही खाता है [क्योंकि मैं ही भोक्तृ-शक्ति हूँ]; इसी प्रकार जो देखता है, जो साँस लेता है तथा जो कही हुई बात सुनता है, वह मेरी ही सहायतासे सब कुछ करनेमें समर्थ होता है। जो मुझे इस रूपमें नहीं जानते, वे न जाननेके कारण ही हीनदशाको प्राप्त होते जाते हैं। हे बहुश्रुत! मैं तुम्हें श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करती हूँ, सुनो—

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥५॥

मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंद्वारा सेवित इस दुर्लभ तत्त्वका वर्णन करती हूँ। मैं जिस-जिस पुरुषकी रक्षा करना चाहती हूँ, उस-उसको सबकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती हूँ। उसीको सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, परोक्षज्ञान-सम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्तिसे युक्त बनाती हूँ।

* ये देवीसूक्तके आठ मन्त्र ऋग्वेदके अन्तर्गत मं० १० अ० १० सू० १२५ की आठ ऋचाएँ हैं।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

मैं ही ब्रह्मद्वेषी हिंसक असुरोंका वध करनेके लिये रुद्रके धनुषको चढ़ाती हूँ। मैं ही शरणागत जनोंकी रक्षाके लिये शत्रुओंसे युद्ध करती हूँ तथा अन्तर्यामीरूपसे पृथ्वी और आकाशके भीतर व्याप्त रहती हूँ।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥

मैं ही इस जगत्‌के पितारूप आकाशको सर्वाधिष्ठान-स्वरूप परमात्माके ऊपर उत्पन्न करती हूँ। समुद्र (सम्पूर्ण भूतोंके उत्पत्तिस्थान परमात्मा) में तथा जल (बुद्धिकी व्यापक वृत्तियों) में मेरे कारण (भूतचैतन्य ब्रह्म) की स्थिति है; अतएव मैं समस्त भुवनमें व्याप्त रहती हूँ तथा उस स्वर्गलोकका भी अपने शरीरसे स्पर्श करती हूँ।

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ॥८॥

मैं कारणरूपसे जब समस्त विश्वकी रचना आरम्भ करती हूँ, तब दूसरोंकी प्रेरणाके बिना स्वयं ही वायुकी भाँति चलती हूँ, स्वेच्छासे ही कर्ममें प्रवृत्त होती हूँ। मैं पृथ्वी और आकाश दोनोंसे परे हूँ। अपनी महिमासे ही मैं ऐसी हुई हूँ।

इसके बाद तन्त्रोक्त देवीसूक्तका पाठ करना चाहिये, वह इस प्रकार है—

अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्*

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ १ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ २ ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ३ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ ४ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १० ॥
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ११ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २४ ॥

* देवीसूक्तका अर्थ पाँचवें अध्याय (पृष्ठ २०७, २०८) में दिया गया है।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २६ ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ २७ ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ २९ ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ३० ॥

इसके बाद 'प्राधानिक' आदि तीनों रहस्योंका पाठ करे।

अथ प्राधानिकं रहस्यम्

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः।

ॐ सप्तशतीके इन तीनों रहस्योंके नारायण ऋषि, अनुष्टुप् छन्द तथा महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती देवता हैं। शास्त्रोक्त फलकी प्राप्तिके लिये जपमें इनका विनियोग होता है।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज।
विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे ॥ २ ॥

राजा बोले—भगवन्! आपने चण्डिकाके अवतारोंकी कथा मुझे कही। ब्रह्मन्! अब इन अवतारोंकी प्रधान प्रकृतिका निरूपण कीजिये ॥ १ ॥ द्विजश्रेष्ठ! मैं आपके चरणोंमें पड़ा हूँ। मुझे देवीके जिस स्वरूपकी और जिस विधिसे आराधना करनी है, वह सब यथार्थरूपसे बतलाइये ॥ २ ॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप ॥ ३ ॥
सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥ ४ ॥
मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती।
नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्धनि ॥ ५ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥ ६ ॥
शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥ ७ ॥
सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कितवरानना।
विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥ ८ ॥
खड्गपात्रशिरःखेटैरलंकृतचतुर्भुजा।
कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम् ॥ ९ ॥
सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥ १० ॥
तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम्।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥ ११ ॥
महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा।
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ १२ ॥
इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः।
एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् १३
तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥ १४ ॥
अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी।
सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ ॥ १५ ॥
महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥ १६ ॥

ऋषि कहते हैं—राजन्! यह रहस्य परम गोपनीय है। इसे किसीसे कहने योग्य नहीं बतलाया गया है; किंतु तुम मेरे भक्त हो, इसलिये तुमसे न कहने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥ त्रिगुणमयी परमेश्वरी महालक्ष्मी ही सबका आदि कारण हैं। वे ही दृश्य और अदृश्यरूपसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं ॥ ४ ॥ राजन्! वे अपनी चार भुजाओंमें मातुलिङ्ग (बिजौरेका फल), गदा, खेट (ढाल) एवं पानपात्र और मस्तक परनाग, लिङ्ग तथा योनि—इन वस्तुओंको धारण करती हैं ॥ ५ ॥ तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी कान्ति है, तपाये हुए सुवर्णके ही उनके भूषण हैं। उन्होंने अपने तेजसे इस शून्य जगत्को परिपूर्ण किया है ॥ ६ ॥

परमेश्वरी महालक्ष्मीने इस सम्पूर्ण जगत्को शून्य देखकर केवल तमोगुणरूप उपाधिके द्वारा एक अन्य उत्कृष्ट रूप धारण किया ॥ ७ ॥ वह रूप एक नारीके रूपमें प्रकट हुआ, जिसके शरीरकी कान्ति निखरे हुए काजलकी भाँति काले रंगकी थी। उसका श्रेष्ठ मुख दाढ़ोंसे सुशोभित था। नेत्र बड़े-बड़े और कमर पतली थी ॥ ८ ॥ उसकी चार भुजाएँ ढाल, तलवार, प्याले और कटे हुए मस्तकसे सुशोभित थीं। वह वक्षःस्थलपर कबन्ध (धड़) की तथा मस्तकपर मुण्डोंकी माला धारण किये हुए थी ॥ ९ ॥ इस प्रकार प्रकट हुई स्त्रियोंमें श्रेष्ठ तामसी देवीने महालक्ष्मीसे कहा—'माताजी ! आपको नमस्कार है। मुझे मेरा नाम और कर्म बताइये' ॥१०॥ तब महालक्ष्मीने स्त्रियोंमें श्रेष्ठ उस तामसी देवीसे कहा—'मैं तुम्हें नाम प्रदान करती हूँ और तुम्हारे जो-जो कर्म हैं, उनको भी बतलाती हूँ ॥११॥ महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि तथा दुरत्यया—॥ १२ ॥ ये तुम्हारे नाम हैं, जो कर्मोंके द्वारा लोकमें चरितार्थ होंगे। इन नामोंके द्वारा तुम्हारे कर्मोंको जानकर जो उनका पाठ करता है, वह सुख भोगता है' ॥ १३ ॥ राजन् ! महाकालीसे यों कहकर महालक्ष्मीने अत्यन्त शुद्ध सत्त्वगुणके द्वारा दूसरा रूप धारण किया, जो चन्द्रमाके समान गौरवर्ण था ॥ १४ ॥ वह श्रेष्ठ नारी अपने हाथोंमें अक्षमाला, अङ्कुश, वीणा तथा पुस्तक धारण किये हुए थी। महालक्ष्मीने उसे भी नाम प्रदान किये ॥ १५ ॥ महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धिकी स्वामिनी)—ये तुम्हारे नाम होंगे ॥ १६ ॥

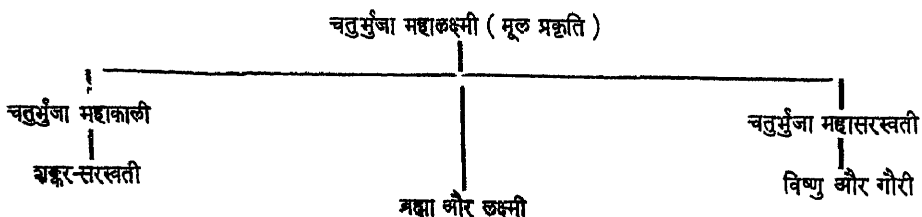
अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम्।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥ १७ ॥
इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम्।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥ १८ ॥
ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम्।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥ १९ ॥
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह।
एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥ २० ॥
नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम्।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥ २१ ॥
स रुद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥ २२ ॥
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप।
जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥ २३ ॥
विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥ २४ ॥
एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥ २५ ॥
ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम्।
रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥ २६ ॥
स्वरया सह संभूय विरिञ्चोऽण्डमजोजनत्।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ॥ २७ ॥
अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप।
महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २८ ॥
पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः।
संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥ २९ ॥
महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥ ३० ॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ॐ। ३१।

तदनन्तर महालक्ष्मीने महाकाली और महासरस्वतीसे कहा—'देवियो ! तुम दोनों अपने-अपने गुणोंके योग्य स्त्री-पुरुषके जोड़े उत्पन्न करो' ॥ १७ ॥ उन दोनोंसे यों कहकर महालक्ष्मीने पहले स्वयं ही स्त्री-पुरुषका एक जोड़ा उत्पन्न किया। वे दोनों हिरण्यगर्भ (निर्मल ज्ञानसे सम्पन्न) सुन्दर तथा कमलके आसनपर विराजमान थे। उनमेंसे एक स्त्री थी और दूसरा पुरुष ॥ १८ ॥ तत्पश्चात् माता महालक्ष्मीने पुरुषको ब्रह्मन् ! विधे ! विरिञ्च ! तथा धातः ! इस प्रकार सम्बोधित किया और स्त्रीको श्री ! पद्मा ! कमला ! लक्ष्मी ! इत्यादि नामोंसे पुकारा ॥ १९ ॥ इसके बाद महाकाली और महासरस्वतीने भी एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया। इनके भी रूप और नाम मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २० ॥ महाकालीने कण्ठमें नील चिह्नसे युक्त, लाल भुजा, श्वेत शरीर और मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले पुरुषको तथा गोरे रंगकी स्त्रीको जन्म दिया ॥ २१ ॥ वह पुरुष रुद्र, शंकर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचनके नामसे प्रसिद्ध हुआ तथा स्त्रीके त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षरा और स्वरा—ये नाम हुए ॥ २२ ॥ राजन् ! महासरस्वतीने गोरे रंगकी स्त्री और श्याम रंगके पुरुषको प्रकट किया। उन दोनोंके नाम भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २३ ॥ उनमें पुरुषके नाम विष्णु, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव और जनार्दन हुए तथा

स्त्री उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी, सुभगा और शिवा—इन नामोंसे प्रसिद्ध हुईं ॥ २४ ॥ इस प्रकार तीनों युवतियाँ ही तत्काल पुरुषरूपको प्राप्त हुईं । इस बातको ज्ञाननेत्रवाले लोग ही समझ सकते हैं । दूसरे अज्ञानीजन इस रहस्यको नहीं जान सकते ॥ २५ ॥ राजन् ! महालक्ष्मीने त्रयीविद्यारूपा सरस्वतीको ब्रह्माके लिये पत्नीरूपमें समर्पित किया, रुद्रको वरदायिनी गौरी तथा भगवान् वासुदेवको लक्ष्मी दे दी ॥ २६ ॥ इस प्रकार सरस्वतीके साथ संयुक्त होकर ब्रह्माजीने ब्रह्माण्डको उत्पन्न किया और परम पराक्रमी भगवान् रुद्रने गौरीके साथ मिलकर उसका भेदन किया ॥ २७ ॥ राजन् ! उस ब्रह्माण्डमें प्रधान (महत्तत्त्व) आदि कार्यसमूह—पञ्चमहाभूतात्मक समस्त स्थावर-जङ्गम-रूप जगत्की उत्पत्ति हुई ॥ २८ ॥ फिर लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुने उस जगत्का पालन-पोषण किया और प्रलय-कालमें गौरीके साथ महेश्वरने उस सम्पूर्ण जगत्का संहार किया ॥ २९ ॥ महाराज ! महालक्ष्मी ही सर्वसत्त्वमयी तथा सब सत्त्वोंकी अधीश्वरी हैं । वे ही निराकार और साकाररूपमें रहकर नाना प्रकारके नाम धारण करती हैं ॥ ३० ॥ सगुण-वाचक सत्य, ज्ञान, चित्, महामाया आदि नामान्तरोंसे इन महालक्ष्मीका निरूपण करना चाहिये । केवल एक नाम (महा-लक्ष्मीमात्र) से अथवा अन्य प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे उनका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

इति प्राधानिकं* रहस्यं सम्पूर्णम् ।

* प्रथम रहस्यमें परा शक्ति महालक्ष्मीके स्वरूपका प्रतिपादन किया गया है; महालक्ष्मी ही देवीकी समस्त विकृतियों (अवतारों) की प्रधान प्रकृति हैं, अतएव इस प्रकरणको प्राकृतिक या प्राधानिक रहस्य कहते हैं । इसके अनुसार महालक्ष्मी ही सब प्रपञ्च तथा सम्पूर्ण अवतारोंका आदि कारण हैं । तीन गुणोंकी साम्यावस्थारूपा प्रकृति भी उनसे भिन्न नहीं है । स्थूल-सूक्ष्म, दृश्य-अदृश्य अथवा व्यक्त-अव्यक्त—सब उन्हींके स्वरूप हैं । वे सर्वत्र व्यापक हैं । अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप—सब वे ही हैं । वे सच्चिदानन्दमयी परमेश्वरी सूक्ष्मरूपसे सर्वत्र व्याप्त होती हुई भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये परम दिव्य चिन्मय सगुणरूपसे भी सदा विराजमान रहती हैं । उनके उस श्रीविग्रह-की कान्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति है । वे अपने चार हाथोंमें मातुलिङ्ग (बिजौरा), गदा, खेट (ढाल) और पानपात्र धारण करती हैं तथा मस्तकपर नाग, लिङ्ग और योनि धारण किये रहती हैं । भुवनेश्वरी-संहिताके अनुसार मातुलिङ्ग कर्मराशिका, गदा क्रियाशक्तिका, खेट ज्ञान-शक्तिका और पानपात्र तुरीय वृत्ति (अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूपमें स्थिति) का सूचक है । इसी प्रकार नागसे कालका, योनिसे प्रकृतिका और लिङ्गसे पुरुषका ग्रहण होता है । तात्पर्य यह कि प्रकृति, पुरुष और काल—तीनोंका अधिष्ठान परमेश्वरी महालक्ष्मी ही हैं । उक्त चतुर्भुज महालक्ष्मीके किस हाथमें कौन-से आयुध हैं, इसमें भी मतभेद है । रेणुका-माहात्म्यमें बताया गया है, दाहिनी ओरके नीचेके हाथमें पानपात्र और ऊपरके हाथमें गदा है । बायीं ओरके ऊपरके हाथमें खेट तथा नीचेके हाथमें श्रीफल है । परन्तु वैकृतिक रहस्यमें 'दक्षिणाधःकरक्रमात्' कहकर जो क्रम दिखाया गया है, उसके अनुसार दाहिनी ओरके निचले हाथमें मातुलिङ्ग, ऊपरवाले हाथमें गदा, बायीं ओरके ऊपरवाले हाथमें खेट तथा नीचेवाले हाथमें पानपात्र है । चतुर्भुज महालक्ष्मीने क्रमशः तमोगुण और सत्त्वगुणरूप उपाधिके द्वारा अपने दो रूप और प्रकट किये, जिनकी क्रमशः महाकाली और महासरस्वतीके नामसे प्रसिद्धि हुई । ये दोनों सप्तशतीके प्रथम चरित्र और उत्तरचरित्रमें वर्णित महाकाली और महासरस्वतीसे भिन्न हैं । क्योंकि ये दोनों ही चतुर्भुजा हैं । और उक्त चरित्रों-में वर्णित महाकालीके दस तथा महासरस्वतीके आठ भुजाएँ हैं । चतुर्भुज महाकालीके हाथोंमें खड्ग, पानपात्र, मस्तक और ढाल हैं; इनका क्रम भी पूर्ववत् ही है । चतुर्भुज सरस्वतीके हाथोंमें अक्षमाला, अङ्कुश, वीणा और पुस्तक शोभा पाते हैं । इनका भी पहले ही जैसा क्रम है । फिर इन तीनों देवियोंने स्त्री-पुरुषका एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया । महाकालीसे शङ्कर और सरस्वती, महालक्ष्मीसे ब्रह्मा और लक्ष्मी तथा महासरस्वतीसे विष्णु और गौरीका प्रादुर्भाव हुआ । इनमें लक्ष्मी विष्णुको, गौरी शङ्करको तथा सरस्वती ब्रह्माजीको प्राप्त हुईं । पत्नीसहित ब्रह्माने सृष्टि, विष्णुने पालन और रुद्रने संहारका कार्य सँभाला । इन अवतारोंका क्रम इस प्रकार है—



अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता ।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥ १ ॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा ।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥ २ ॥
दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा ।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥ ३ ॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप ।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥ ४ ॥
खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥ ५ ॥
एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया ।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥ ६ ॥

ऋषि कहते हैं—राजन्! पहले जिन सत्त्वप्रधाना त्रिगुणमयी महालक्ष्मीके तामसी आदि भेदसे तीन स्वरूप बतलाये गये, वे ही शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा और भगवती आदि अनेक नामोंसे कही जाती हैं ॥ १ ॥ तमोगुणमयी महाकाली भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा कही गयी हैं। मधु और कैटभका नाश करनेके लिये ब्रह्माजीने जिनकी स्तुति की थी, उन्हींका नाम महाकाली है ॥ २ ॥ उनके दस मुख, दस भुजाएँ और दस पैर हैं। वे काजलके समान काले रंगकी हैं तथा तीस नेत्रोंकी विशाल पङ्क्तिसे सुशोभित होती हैं॥३॥ भूपाल! उनके दाँत और दाढ़ें चमकती रहती हैं। यद्यपि उनका रूप भयंकर है, तथापि वे रूप, सौभाग्य, कान्ति एवं महती सम्पदाकी अधिष्ठान (प्राप्तिस्थान) हैं ॥ ४ ॥ वे अपने हाथोंमें खड्ग, बाण, गदा, शूल, चक्र, शङ्ख, भुशुण्डि, परिघ, धनुष तथा जिससे रक्त चूता रहता है, ऐसा कटा हुआ मस्तक धारण करती हैं ॥ ५ ॥ ये महाकाली भगवान् विष्णुकी दुस्तर माया हैं। आराधना करनेपर ये चराचर जगत्‌को अपने उपासकके अधीन कर देती हैं ॥ ६ ॥

सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा ।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ ७ ॥
श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला ।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥ ८ ॥
सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥ ९ ॥
अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥ १० ॥
अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥ ११ ॥
शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः ।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥ १२ ॥
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ।
पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण देवताओंके अङ्गोंसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ था; वे अनन्त कान्तिसे युक्त साक्षात् महालक्ष्मी हैं। उन्हें ही त्रिगुणमयी प्रकृति कहते हैं तथा वे ही महिषासुरका मर्दन करनेवाली हैं ॥ ७ ॥ उनका मुख गोरा, भुजाएँ श्याम, स्तनमण्डल अत्यन्त श्वेत, कटिभाग और चरण लाल तथा जङ्घा और पिंडली नीले रंगकी हैं। अजेय होनेके कारण उनको अपने शौर्यका अभिमान है ॥ ८ ॥ कटिके आगेका भाग बहुरंगे वस्त्रसे आच्छादित होनेके कारण अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र दिखायी देता है। उनकी माला, वस्त्र, आभूषण तथा अङ्गराग सभी—विचित्र हैं। वे कान्ति, रूप और सौभाग्यसे सुशोभित हैं ॥ ९ ॥ यद्यपि उनकी भुजाएँ असंख्य हैं, तथापि उन्हें अठारह भुजाओंसे युक्त मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये। अब उनके दाहिनी ओरके निचले हाथोंसे लेकर बायीं ओरके निचले हाथोंतकमें क्रमशः जो अस्त्र हैं, उनका वर्णन किया जाता है ॥ १० ॥ अक्षमाला, कमल, बाण, खड्ग, वज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल, परशु, शङ्ख, घण्टा, पाश, शक्ति, दण्ड, चर्म (ढाल), धनुष, पानपात्र और कमण्डलु—इन आयुधोंसे उनकी भुजाएँ विभूषित हैं। वे कमलके आसनपर विराजमान हैं, सर्वदेवमयी हैं तथा सबकी ईश्वरी हैं। राजन्! जो इन महालक्ष्मी देवीका पूजन करता है, वह सब लोकों तथा देवताओंका भी स्वामी होता है ॥ ११-१३ ॥

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया ।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १४ ॥
दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत् ।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥ १५ ॥
एषा संपूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति ।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १६ ॥

जो एकमात्र सत्त्वगुणके आश्रित हो पार्वतीजीके शरीरसे प्रकट हुई थीं तथा जिन्होंने शुम्भ नामक दैत्यका संहार किया

था, वे साक्षात् सरस्वती कही गयी हैं ॥ १४ ॥ पृथ्वीपते ! उनके आठ भुजाएँ हैं तथा वे अपने हाथोंमें क्रमशः बाण, मुसल, शूल, चक्र, शङ्ख, घण्टा, हल एवं धनुष धारण करती हैं ॥ १५ ॥ ये सरस्वती देवी, जो निशुम्भका मर्दन तथा शुम्भासुरका संहार करनेवाली हैं, भक्तिपूर्वक पूजित होनेपर सर्वज्ञता प्रदान करती हैं ॥ १६ ॥

इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव ।
उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥ १७ ॥
महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती ।
दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥ १८ ॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे ।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥ १९ ॥
अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना ।
दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥ २० ॥
अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप ।
दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥ २१ ॥
कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये ।
यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ २२ ॥
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ ।

राजन् ! इस प्रकार तुमसे महाकाली आदि तीनों मूर्तियोंके स्वरूप बतलाये, अब जगन्माता महालक्ष्मीकी तथा इन महाकाली आदि तीनों मूर्तियोंकी पृथक्-पृथक् उपासना श्रवण करो ॥ १७ ॥ जब महालक्ष्मीकी पूजा करनी हो, तब उन्हें मध्यमें स्थापित करके उनके दक्षिण और वाम भागमें क्रमशः महाकाली और महासरस्वतीका पूजन करना चाहिये और पृष्ठभागमें तीनों युगल देवताओंकी पूजा करनी चाहिये ॥ १८ ॥ महालक्ष्मीके ठीक पीछे मध्यभागमें सरस्वतीके साथ ब्रह्माका पूजन करे । उनके दक्षिण भागमें गौरीके साथ रुद्रकी पूजा करे तथा वामभागमें लक्ष्मीसहित विष्णुका पूजन करे । महालक्ष्मी आदि तीनों देवियोंके सामने निम्नाङ्कित तीन देवियोंकी भी पूजा करनी चाहिये ॥ १९ ॥ मध्यस्थ महालक्ष्मीके आगे मध्यभागमें अठारह भुजाओंवाली महालक्ष्मीका पूजन करे । उनके वामभागमें दस मुखोंवाली महाकालीका तथा दक्षिणभागमें आठ भुजाओंवाली महासरस्वतीका पूजन करे ॥ २० ॥ राजन् ! जब केवल अठारह भुजाओंवाली महालक्ष्मीका अथवा दशमुखी कालीका या अष्टभुजा सरस्वतीका पूजन करना हो, तब सब अरिष्टोंकी शान्तिके लिये इनके दक्षिणभागमें कालकी

तब सब अरिष्टोंकी शान्तिके लिये इनके दक्षिणभागमें कालकी

जब शुम्भासुरका संहार करनेवाली अष्टभुजा देवीकी पूजा करनी हो, तब उनके साथ उनकी नौ शक्तियोंका और दक्षिणभागमें रुद्र एवं वामभागमें गणेशजीका भी पूजन करना चाहिये (ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, शिवदूती तथा चामुण्डा—ये नौ शक्तियाँ हैं) ।

नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ २३ ॥
अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः ।
अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥ २४ ॥
महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती ।
ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥ २५ ॥
महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः ।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥ २६ ॥

तथा 'नमो देव्यै'…'इस स्तोत्रसे महालक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये ॥२१—२३॥ तथा उनके तीन अवतारोंकी पूजाके समय उनके चरित्रोंमें जो स्तोत्र और मन्त्र आये हैं, उन्हींका उपयोग करना चाहिये । अठारह भुजाओंवाली महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी ही विशेष रूपसे पूजनीय हैं; क्योंकि वे ही महालक्ष्मी, महाकाली तथा महासरस्वती कहलाती हैं । वे ही पुण्य-पापोंकी अधीश्वरी तथा सम्पूर्ण लोकोंकी महेश्वरी हैं ॥ २४-२५ ॥ जिसने महिषासुरका अन्त करनेवाली महालक्ष्मीकी भक्तिपूर्वक आराधना की है, वही संसारका स्वामी है अतः जगत्को धारण करनेवाली भक्तवत्सला भगवती चण्डिकाकी अवश्य पूजा करनी चाहिये ॥ २६ ॥

अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥ २७ ॥
रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप ।
(बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥
तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित् ।)
प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ २८ ॥
सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः ।
वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥ २९ ॥
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।
दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥ ३० ॥
वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम् ।

अर्घ्य आदिसे, आभूषणोंसे, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त नैवेद्योंसे, रक्तसिञ्चित बलिसे, मांससे तथा मदिरासे भी देवीका पूजन होता है ।

सिञ्चित बलिसे, मांससे तथा मदिरासे भी देवीका पूजन होता है ।

को छोड़कर बतायी गयी है। उनके लिये मांस और मदिरासे कहीं भी पूजाका विधान नहीं है।) प्रणाम, आचमनके योग्य जल, सुगन्धित चन्दन, कपूर तथा ताम्बूल आदि सामग्रियोंको भक्तिभावसे निवेदन करके देवीकी पूजा करनी चाहिये। देवीके सामने बायें भागमें कटे मस्तकवाले महादैत्य महिषासुरका पूजन करना चाहिये, जिसने भगवतीके साथ सायुज्य प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार देवीके सामने दक्षिण-भागमें उनके वाहन सिंहका पूजन करना चाहिये, जो सम्पूर्ण धर्मका प्रतीक एवं षड्विध ऐश्वर्यसे युक्त है। उसीने इस चराचर जगत्‌को धारण कर रक्खा है।

कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥ ३१ ॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥ ३२ ॥
चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात् ।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ ३३ ॥
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।
प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ॥ ३४ ॥
जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः ।
भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः ॥ ३५ ॥
प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि ।
सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥ ३६ ॥
एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् ।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥
यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी ॥ ३८ ॥
तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम् ।
यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥ ३९ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष एकाग्रचित्त हो देवीकी स्तुति करे। फिर हाथ जोड़कर तीनों पूर्वोक्त चरित्रोंद्वारा भगवतीका स्तवन करे। यदि कोई एक ही चरित्रसे स्तुति करना चाहे तो केवल मध्यम चरित्रके पाठसे कर ले; किंतु प्रथम और उत्तर चरित्रोंमेंसे एकका पाठ न करे। आधे चरित्रका भी पाठ करना मना है। जो आधे चरित्रका पाठ करता है, उसका पाठ सफल नहीं होता। पाठ-समाप्तिके बाद साधक प्रदक्षिणा और नमस्कार करे तथा आलस्य छोड़कर जगदम्बाके उद्देश्यसे मस्तकपर हाथ जोड़े और उनसे बारंबार त्रुटियों या अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। सप्तशतीका प्रत्येक श्लोक मन्त्ररूप है, उससे तिल और घृत मिली हुई खीरकी आहुति दे ॥ २७—३४ ॥ अथवा सप्तशतीमें जो स्तोत्र आये हैं, उन्हींके मन्त्रोंसे चण्डिकाके लिये पवित्र हविष्यका हवन करे। होमके पश्चात् एकाग्रचित्त हो महालक्ष्मीदेवीके नाममन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पुनः उनकी पूजा करे ॥ ३५ ॥ तत्पश्चात् मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए हाथ जोड़ विनीत भावसे देवीको प्रणाम करे और अन्तःकरणमें स्थापित करके उन सर्वेश्वरी चण्डिका देवीका देरतक चिन्तन करे। चिन्तन करते-करते उन्हींमें तन्मय हो जाय ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक परमेश्वरीका पूजन करता है, वह मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर अन्तमें देवीका सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥ जो भक्तवत्सला चण्डीका प्रतिदिन पूजन नहीं करता, भगवती परमेश्वरी उसके पुण्योंको जलाकर भस्म कर देती हैं ॥ ३८ ॥ इसलिये राजन्! तुम सर्वलोकमहेश्वरी चण्डिकाका शास्त्रोक्त विधिसे पूजन करो। उससे तुम्हें सुख मिलेगा* ॥ ३९ ॥

इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम् ॥

* पूर्वोक्त प्राकृतिक या प्राधानिक रहस्यमें कारणात्मक प्रकृतिभूता महालक्ष्मीके स्वरूप तथा अवतारोंका वर्णन किया गया। इस प्रकरणमें विशेषरूपसे प्रकृतिसहित विकृतियोंके ध्यान, पूजन, पूजनोपचार तथा पूजनकी महिमाका वर्णन हुआ है; अतः इसे वैकृतिक रहस्य कहते हैं। इसमें पहले सप्तशतीके तीन चरित्रोंमें वर्णित महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीके ध्यानका वर्णन है; यहाँ महाकाली दशभुजा, महालक्ष्मी अष्टादशभुजा तथा महासरस्वती अष्टभुजा है। इनके आयुधोंका क्रम पहले बताये अनुसार दाहिने भागके नीचेवाले हाथसे लेकर क्रमशः ऊपर-वाले हाथोंमें, फिर वामभागके ऊपरवाले हाथसे लेकर नीचेवाले हाथतक समझना चाहिये। जैसे महाकालीके दस हाथोंमें पाँच दाहिने और पाँच बायें हैं। दाहिनेवाले हाथोंमें क्रमशः नीचेसे ऊपरतक खड्ग, बाण, गदा, शूल और चक्र हैं; तथा बायें हाथोंमें ऊपरसे नीचेतक क्रमशः शङ्ख, भुशुण्डि, परिघ, धनुष और मस्तक हैं। इसी तरह अष्टादशभुजा महालक्ष्मीके नौ दाहिने हाथोंमें नीचेकी ओरसे क्रमशः अक्षमाला, कमल, बाण, खड्ग, वज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल और परशु हैं तथा बायें हाथोंमें ऊपरसे नीचेतक शङ्ख, घण्टा, पाश, शक्ति, दण्ड, ढाल, धनुष, पानपात्र और कमण्डलु हैं। अष्टभुजा महासरस्वतीके भी चार दाहिने हाथोंमें पूर्वोक्त क्रमसे बाण, मुसल, शूल और चक्र हैं तथा दायें हाथोंमें शङ्ख, घण्टा, हल और धनुष हैं। इन तीनोंके ध्यानके विषयमें कही हुई अन्य सारी बातें स्पष्ट हैं। तत्पश्चात् इन सबकी उपासनाका क्रम यों बतलाया गया है। बीचमें चतुर्भुज महालक्ष्मीको स्थापित करके उनके दक्षिण भागमें चतुर्भुज महाकाली तथा वामभागमें चतुर्भुज महासरस्वतीकी स्थापना करे।

अथ मूर्तिरहस्यम्*

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा ।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥ २ ॥
कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्री रुक्माम्बुजासना ॥ ३ ॥

ऋषि कहते हैं--राजन्! नन्दा नामकी देवी जो नन्दसे उत्पन्न होनेवाली हैं, उनकी यदि भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा की जाय तो वे तीनों लोकोंको उपासकके अधीन कर देती हैं ॥ १ ॥ उनके श्री-अङ्गोंकी कान्ति कनकके समान उत्तम है। वे सुनहरे रंगके सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं। उनकी आभा सुवर्णके तुल्य है तथा वे सुवर्णके ही उत्तम आभूषण धारण करती हैं ॥ २ ॥ उनकी चार भुजाएँ कमल, अङ्कुश, पाश और शङ्खसे सुशोभित हैं। वे इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रुक्माम्बुजासना (सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान) आदि नामोंसे पुकारी जाती हैं ॥ ३ ॥

महाकालीके पृष्ठभागमें रुद्र-गौरी, महालक्ष्मीके पृष्ठभागमें ब्रह्मा-सरस्वती तथा महासरस्वतीके पृष्ठभागमें विष्णु-लक्ष्मीकी पूजा करे। फिर चतुर्भुजा महालक्ष्मीके सामने मध्यभागमें अष्टादशभुजाको स्थापित करे। इनका मुख चतुर्भुजा महालक्ष्मीकी ओर होगा। अष्टादशभुजाके दक्षिणभागमें अष्टभुजा महासरस्वती और वामभागमें दशानना महाकाली रहेंगी। यदि केवल अष्टादशभुजा, या दशानना अथवा अष्टभुजाका पूजन करना हो तो इनमेंसे किसी एक अभीष्ट देवीको स्थापित करके उनके दक्षिणभागमें काल और वामभागमें मृत्युकी स्थापना करनी चाहिये। अष्टभुजाकी पूजामें कुछ विशेषता है। यदि केवल अष्टभुजाकी पूजा करनी हो तो उनके साथ उनकी ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री शिवदूती और चामुण्डा—इन नौ शक्तियोंकी भी पूजा करनी चाहिये। साथ ही दाहिने भागमें रुद्र और वामभागमें विनायकका पूजन भी आवश्यक है। काल और मृत्युकी पूजा भी, जो पहले बतायी गयी है, होनी चाहिये। कुछ लोग शैलपुत्री आदि नवदुर्गाओंको नौ शक्तियोंमें ग्रहण करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं हैं; क्योंकि उन्हें अष्टभुजाकी शक्तिरूपसे कहीं नहीं बताया गया है। ये ब्राह्मी आदि शक्तियाँ ही महासरस्वतीके अङ्गसे प्रकट हुई थीं; अतः वे ही उनकी नौ शक्तियाँ हैं। अष्टादशभुजा देवीके सामने दक्षिणभागमें सिंह और वामभागमें महिषकी पूजा करे। कुछ लोगोंका कथन है कि जब अष्टादशभुजा देवीकी पूजा करनी हो तब उनके दक्षिणभागमें दशानना और वामभागमें अष्टभुजाकी भी पूजा करे। जब केवल दशाननाकी पूजा करनी हो, तब उनके साथ दक्षिण-भागमें कालकी और वामभागमें मृत्युकी पूजा करे तथा जब केवल अष्टभुजाकी पूजा करनी हो तब उनके साथ पूर्वोक्त नौ शक्तियों और रुद्र-विनायककी भी पूजा करनी चाहिये। यह क्रम-विभाग देखनेमें सुन्दर होनेपर भी मूल-पाठके प्रतिकूल है। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि अष्टादश-भुजा आदिमेंसे जिसकी प्रधानतासे पूजा करनी हो, उसे मध्यमें स्थापित करके दाहिने और वामभागमें शेष दो देवियोंकी स्थापना करे और मध्यमें स्थित देवीके दक्षिण-वाम पार्श्वोंमें रुद्र-विनायकको स्थापित करके सबका पूजन करे। यह बात भी मूलसे सिद्ध नहीं होती। कोई-कोई अष्टभुजाके पूजनमें विकल्प मानते हैं। उनका कहना है कि अष्टभुजाके साथ या तो काल एवं मृत्युकी ही पूजा करे अथवा नौ शक्तियोंसहित रुद्र-विनायककी ही पूजा करे; सबका एक साथ नहीं। किन्तु ऐसी धारणाके लिये भी कोई प्रबल प्रमाण नहीं है। नीचे कोष्ठकोंसे समष्टि-उपासना और व्यष्टि-उपासनाका क्रम स्पष्ट किया जाता है--

(समष्टि-उपासना)

रुद्र-गौरी	ब्रह्मा-सरस्वती	विष्णु-लक्ष्मी
चतुर्भुजा महाकाली	चतुर्भुजा महालक्ष्मी	चतुर्भुजा महासरस्वती
दशानना दशभुजा	अष्टादशभुजा	अष्टभुजा

(व्यष्टि-उपासना)

अष्टादशभुजा-पूजा

काल	अष्टदशभुजा देवी / सिंह । महिष	मृत्यु

दशानना-पूजा

काल	दशानना देवी	मृत्यु

अष्टभुजा-पूजा

काल रुद्र	अष्टभुजा देवी / नौ शक्तियाँ	मृत्यु-विनायक

* देवीकी अङ्गभूता छः देवियाँ हैं--नन्दा, रक्तदन्तिका, शाकम्भरी, दुर्गा, भीमा और भ्रामरी। ये देवियोंकी साक्षात् मूर्तियाँ हैं, इनके स्वरूपका प्रतिपादन होनेसे इस प्रकरणको मूर्तिरहस्य कहते हैं।

या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ ।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥ ४ ॥
रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा ।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥ ५ ॥
रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका ।
पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥ ६ ॥
वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी ।
दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥ ७ ॥
कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी ।
भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥ ८ ॥
खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा ।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥ ९ ॥
अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम् ॥ १० ॥
(भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।)
अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम् ।
तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना ॥ ११ ॥

निष्पाप नरेश ! पहले मैंने रक्तदन्तिका नामसे जिन देवीका परिचय दिया है, अब उनके स्वरूपका वर्णन करूँगा; सुनो । वह सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाला है ॥ ४ ॥ वे लाल रंगके वस्त्र धारण करती हैं । उनके शरीरका रंग भी लाल ही है और अङ्गोंके समस्त आभूषण भी लाल रंगके हैं । उनके अस्त्र-शस्त्र, नेत्र, सिरके बाल, तीखे नख और दाँत सभी रक्तवर्णके हैं; इसलिये वे रक्तदन्तिका कहलाती और अत्यन्त भयानक दिखायी देती हैं । जैसे स्त्री पतिके प्रति अनुराग रखती है, उसी प्रकार देवी अपने भक्तपर (माताकी भाँति) स्नेह रखते हुए उसकी सेवा करती हैं ॥५-६॥ देवी रक्तदन्तिकाका आकार वसुधाकी भाँति विशाल है । उनके दोनों स्तन सुमेरु पर्वतके समान हैं । वे लंबे, चौड़े, अत्यन्त स्थूल एवं बहुत ही मनोहर हैं । कठोर होते हुए भी अत्यन्त कमनीय हैं तथा पूर्ण आनन्दके समुद्र हैं । सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले ये दोनों स्तन देवी अपने भक्तोंको पिलाती हैं ॥ ७-८ ॥ वे अपनी चार भुजाओंमें खड्ग, पानपात्र, मुसल और हल धारण करती हैं। ये ही रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी देवी कहलाती हैं ॥ ९ ॥ इनके द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है । जो इन रक्तदन्तिका देवीका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह भी चराचर जगत्में व्याप्त होता है ॥१०॥ (वह यथेष्ट भोगोंको भोगकर अन्तमें देवीके साथ सायुज्य प्राप्त कर लेता है ।) जो प्रतिदिन रक्तदन्तिका देवीके शरीरका यह स्तवन करता है, उसकी वे देवी प्रेमपूर्वक संरक्षणरूप सेवा करती हैं—ठीक उसी तरह, जैसे पतिव्रता नारी अपने प्रियतम पतिकी परिचर्या करती है ॥ ११ ॥

शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना ।
गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी ॥ १२ ॥
सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी ।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥ १३ ॥
पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम् ।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम् ॥ १४ ॥
कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी ।
शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥
विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् ।
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥ १६ ॥
शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥ १७

शाकम्भरी देवीके शरीरकी कान्ति नीले रंगकी है । उनके नेत्र नील कमलके समान हैं, नाभि नीची है तथा त्रिवलीसे विभूषित उदर (मध्यभाग) सूक्ष्म है ॥ १२ ॥ उनके दोनों स्तन अत्यन्त कठोर, सब ओरसे बराबर, ऊँचे, गोल, स्थूल तथा परस्पर सटे हुए हैं । वे परमेश्वरी कमलमें निवास करनेवाली हैं और हाथोंमें बाणोंसे भरी मुष्टि, कमल, शाक-समूह तथा प्रकाशमान धनुष धारण करती हैं । वह शाकसमूह अनन्त मनोवाञ्छित रसोंसे युक्त तथा क्षुधा, तृषा और मृत्युके भयको नष्ट करनेवाला तथा फूल, पल्लव, मूल आदि एवं फलोंसे सम्पन्न है । वे ही शाकम्भरी, शताक्षी तथा दुर्गा कही गयी हैं ॥१३—१५ ॥ वे शोकसे रहित, दुष्टोंका दमन करनेवाली तथा पाप और विपत्तिको शान्त करनेवाली हैं । उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और पार्वती भी वे ही हैं ॥ १६ ॥ जो मनुष्य शाकम्भरी देवीकी स्तुति, ध्यान, जप, पूजा और वन्दन करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान एवं अमृतरूप अक्षय फलका भागी होता है ॥ १७ ॥

भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा ।
विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥ १८ ॥
चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती ।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥ १९ ॥

भीमादेवीका वर्ण भी नील ही है । उनकी दाढ़ें और दाँत चमकते रहते हैं । उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं, स्वरूप स्त्रीका है, स्तन गोल-गोल और स्थूल हैं । वे अपने हाथोंमें चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरू, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं । वे ही

एकवीरा, कालरात्रि तथा कामदा कहलाती और इन नामोंसे प्रशंसित होती हैं ॥ १८-१९ ॥

तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥ २० ॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते ।
इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ॥ २१ ॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ॥ २२ ॥
व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥ २३ ॥
सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ।
पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २४ ॥
देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥ २५ ॥
(एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि ।
सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत् ।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ।)

भ्रामरी देवीकी कान्ति विचित्र (अनेक रंगकी) है। वे अपने तेजोमण्डलके कारण दुर्धर्ष दिखायी देती हैं। उनका अङ्गराग भी अनेक रंगका है तथा वे चित्र-विचित्र आभूषणोंसे विभूषित हैं ॥२०॥ चित्रभ्रमर-पाणि और महामारी आदि नामोंसे उनकी महिमाका गान किया जाता है। राजन् ! इस प्रकार जगन्माता चण्डिका देवीकी ये मूर्तियाँ बतलायी गयी हैं ॥ २१ ॥ जो कीर्तन करनेपर कामधेनुके समान सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करती हैं। यह परम गोपनीय रहस्य है । इसे तुम्हें दूसरे किसीको नहीं बतलाना चाहिये ॥ २२ ॥ दिव्य मूर्तियोंका यह आख्यान मनोवाञ्छित फल देनेवाला है, इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके तुम निरन्तर देवीके जप (आराधन) में लगे रहो ॥ २३ ॥ सप्तशतीके मन्त्रोंके पाठमात्रसे मनुष्य सात जन्मोंमें उपार्जित ब्रह्महत्यासदृश घोर पातकों एवं समस्त कल्मषोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ इसलिये मैंने पूर्ण प्रयत्न करके देवीके गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय ध्यानका वर्णन किया है, जो सब प्रकारके मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है ॥ २५ ॥ (उनके प्रसादसे तुम सर्वमान्य हो जाओगे। देवी सर्वरूपमयी है तथा सम्पूर्ण जगत् देवीमय है । अतः मैं उन विश्वरूपा परमेश्वरीको नमस्कार करता हूँ ।)

इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम् ।

तदनन्तर प्रारम्भमें बतलायी हुई रीतिसे शापोद्धार करनेके पश्चात् निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर देवीसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे—

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥
सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥
अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥
कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे ।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ॥
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥

परमेश्वरि ! मेरे द्वारा रात-दिन सहस्रों अपराध होते रहते हैं । 'यह मेरा दास है'—यों समझकर मेरे उन अपराधोंको तुम कृपापूर्वक क्षमा करो। परमेश्वरि ! मैं आवाहन नहीं जानता, विसर्जन करना नहीं जानता तथा पूजा करनेका ढंग भी नहीं जानता। क्षमा करो। देवि ! सुरेश्वरि ! मैंने जो मन्त्रहीन, क्रियाहीन और भक्तिहीन पूजन किया है, वह सब आपकी कृपासे पूर्ण हो । सैकड़ों अपराध करके भी जो तुम्हारी शरणमें जा 'जगदम्ब' कहकर पुकारता है, उसे वह गति प्राप्त होती है, जो ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी सुलभ नहीं है। जगदम्बिके ! मैं अपराधी हूँ, किंतु तुम्हारी शरणमें आया हूँ । इस समय दयाका पात्र हूँ । तुम जैसा चाहो, करो । देवि ! परमेश्वरि ! अज्ञानसे, भूलसे अथवा बुद्धि भ्रान्त होनेके कारण मैंने जो न्यूनता या अधिकता कर दी हो, वह सब क्षमा करो और प्रसन्न होओ। सच्चिदानन्दस्वरूपा परमेश्वरि ! जगन्माता कामेश्वरि ! तुम प्रेमपूर्वक मेरी यह पूजा स्वीकार करो और मुझपर प्रसन्न रहो । देवि ! सुरेश्वरि ! तुम गोपनीयसे भी गोपनीय वस्तुकी रक्षा करनेवाली हो । मेरे निवेदन किये हुए इस जपको ग्रहण करो । तुम्हारी कृपासे मुझे सिद्धि प्राप्त हो।

॥ श्रीदुर्गार्पणमस्तु ॥

सप्तशतीके सिद्ध सम्पुट-मन्त्र

श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवीमाहात्म्यमें ७०० श्लोक हैं। यह माहात्म्य दुर्गासप्तशतीके नामसे प्रसिद्ध है। सप्तशती अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाली है। जो पुरुष जिस भाव और जिस कामनासे श्रद्धा एवं विधिके साथ सप्तशतीका पारायण करता है, उसे उसी भावना और कामनाके अनुसार निश्चय ही फल-सिद्धि होती है। इस बातका अनुभव अगणित पुरुषोंको प्रत्यक्ष हो चुका है। यहाँ हम कुछ ऐसे चुने हुए मन्त्रोंका उल्लेख करते हैं, जिनका सम्पुट देकर विधिवत् पारायण करनेसे विभिन्न पुरुषार्थोंकी व्यक्तिगत और सामूहिकरूपसे सिद्धि होती है—

(१) सामूहिक कल्याणके लिये

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥

(२) विश्वके अशुभ तथा भयका विनाश करनेके लिये

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥

(३) विश्वकी रक्षाके लिये

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

(४) विश्वके अभ्युदयके लिये

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥

(५) विश्वव्यापी विपत्तियोंके नाशके लिये

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥

(६) विपत्ति-नाशके लिये

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

(७) भय-नाशके लिये

(क) सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥

(ख) एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥

(ग) ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥

(८) पाप-नाशके लिये

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव ॥

(९) रोग-नाशके लिये

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥

(१०) संसारके पापों और उपद्रवोंकी शान्तिके लिये

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥

(११) बाधा-शान्तिके लिये

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥

(१२) सर्वविध अभ्युदयके लिये

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥

(१३) दारिद्र्यदुःखादिनाशके लिये

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥

(१४) रक्षा पानेके लिये

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥

(१५) समस्त विद्याओंकी और समस्त स्त्रियोंमें मातृभावकी प्राप्तिके लिये

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥

(१६) सब प्रकारके कल्याणके लिये

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बिके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

(१७) शक्ति-प्राप्तिके लिये

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

(१८) प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥

(१९) विविध उपद्रवोंसे बचनेके लिये

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥

(२०) बाधामुक्त होकर धन-पुत्रादिकी प्राप्तिके लिये

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥

(२१) स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके लिये

(क) सर्वभूता यदा देवि स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥
(ख) सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

(२२) मोक्षकी प्राप्तिके लिये

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥

तुम्हारा अनोखा प्यार

(श्रीरवीन्द्र बाबूका एक गीत)

संसारेते आर-जाहारा आमाय भालोबासे ।
तारा आमाय धरे राखे बेंधे कठिन पाशे ।
तोमार प्रेम जे सबार बाड़ा ताइ तोमारि नूतन धारा ,
बाँधो नाको, लूकिये थाको, छेड़ेइ राखो दासे ।

आर सकले, भूलि पाछे, ताइ राखे ना एका ।
दिनेर परे काटे जे दिन, तोमारि नेइ देखा ;
तोमाय डाकि नाइ वा डाकि, जा खुशि ताइ नियेथाकि ;
तोमार खुशि चेये आछे आमार खुशीर आशे ॥

संसारमें और जो लोग, मुझसे प्यार करते हैं वे मुझे कठिन पाशोंमें बाँधकर पकड़े रखते हैं। तुम्हारा प्रेम सबसे बढ़कर जो है, इसलिये तुम्हारी नयी रीति है । तुम बाँधते नहीं, छिपे रहते हो, दासको खुला छोड़े रखते हो ।

और सब लोग, पीछे भूल न जाऊँ, इसलिये अकेला नहीं छोड़ते (पर) दिनके बाद दिन बीत जाते हैं, तुम दिखायी ही नहीं देते । तुम्हें पुकारूँ या न पुकारूँ जो खुशी आवे उसीको लिये रहूँ; (पर) तुम्हारी खुशी, मेरी खुशीकी आशामें बाट ही देख रही है ।

दुर्गा-पाठ

(लेखक—पं० श्रीहनूमानजी शर्मा)

(शतसहस्त्रायुतलक्ष चण्डीप्रयोग)

(१)

सुख-सन्तति और सौभाग्यकी वृद्धि एवं आपत्ति, विघ्न और देशोपद्रवादिकी निवृत्तिके निमित्तसे दुर्गाकी उपासना की जाती है और भगवत्कृपासे उसमें अभूत-पूर्व या अद्वितीय सफलता मिलती है। महर्षि मार्कण्डेय-जीने भगवतीको शीघ्रातिशीघ्र प्रसन्न करनेके अनुरोधसे अपने 'मार्कण्डेयपुराण' में 'सप्तशती' (स्तोत्र) नामसे दुर्गापाठका संयोजन किया है, जिसका एक-एक श्लोक ही नहीं; प्रत्येक श्लोकका एक-एक अक्षर भी मन्त्र है और उपासक यदि योग्य हो तो उसे आशातीत सफलता मिल सकती है।···आपत्तिके अवसरोंमें ब्रह्मादि देवोंने, घननादादि दानवोंने और सुरथादि मानवोंने महामायाके प्रभावसे ही सर्वाभीष्ट प्राप्त किये थे। कलौ 'चण्डीविनायकौ' के अनुसार वर्तमान समयमें भी अमित संकट टालने, रिपुरोग और राज-भयादि मिटाने, स्त्री-पुत्र या सौभाग्यादि प्राप्त करने और विजयश्री उपलब्ध होने आदिके अनेकों कार्य दुर्गा-पाठके द्वारा ही सफल होते हैं और दुर्गापाठी विद्वान् इसीको महामन्त्र या महौषधि अथवा तत्काल फलदायी महाशक्ति मानते हैं और प्रायः प्रत्येक प्रकारके प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये विशेष कर दुर्गापाठका ही प्रयोग करते हैं। यद्यपि दुर्गापाठकी प्रयोगविधि सामान्यरूपसे एक ही प्रकारकी है और उससे प्रायः सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं तथापि प्रयोजनकी लघुता, महत्ता या कठिनता आदिके अनुसार प्रयोगकी शास्त्रोक्त-विधि भी अनेक प्रकारकी हो जाती हैं, अतः सर्वसाधारणके हित-निमित्त यहाँ उसका दिग्दर्शन कराया जाता है। यथा—

(२)

(१) देवीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये तद्गत-चित्त होकर यदि सामान्यरूपसे एक पाठ भी प्रतिदिन किया जाय और किसी प्रकारकी वाञ्छा (याञ्चा) या कामना न हो तो भी पाठकके सभी अभीष्ट सिद्ध होते रहते हैं और उसके प्रति भगवतीकी अविच्छिन्न कृपा उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। (२) प्रयोग यदि सकाम किया जाय और उसमें भी प्रतिदिन केवल एक ही पाठ बन सके तो उसके लिये प्रातःस्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर आसनस्थ सप्तशतीस्तोत्रका दुर्गाके रूपमें गन्धाक्षतादिसे पूजन करके (मनःसंकल्पकी पूर्तिके लिये) 'ॐ मार्कण्डेय उवाच' 'सावर्णिः सूर्य-तनयो' से आरम्भ करके 'सावर्णिर्भविता मनुः ॐ' पर्यन्त समग्र पाठ करे और महामायाके सामने दोनों हाथ जोड़कर 'क्षमा-प्रार्थना' करे। इस प्रकार प्रतिदिन करता रहे।···(३) यदि कार्य कुछ महत्त्वका हो और पाठ प्रतिदिन एक ही किया जाय तो उसमें सर्वप्रथम संकल्प करके 'पञ्चोपचार' (स्नान, गन्ध, पुष्प, धूप, और नैवेद्य) से देवीकी सुवर्णमयी मूर्तिका या चित्रका पूजन करे। फिर रात्रिसूक्तका पाठ करके सप्तशतीका न्यास, ध्यान, नवार्णमन्त्रका न्यास, ध्यान और नवार्ण मन्त्रके १०८ जप करे। तदनन्तर शान्त-चित्त और एकाग्र मनसे देवीके माहात्म्यका मनमें मनन करता हुआ 'दुर्गापाठ' करे। (पाठ सादा हो या सम्पुटित—चाहे जैसा हो) शुद्ध, सुस्पष्ट और समानोच्चारणसे होना चाहिये 'गीती शीघ्री शिरःकम्पी' आदि न होना चाहिये। पाठके अनन्तर नवार्णके १०८ जप और करे, तत्पश्चात् उसका न्यास और

जपोंका समर्पण करके देवीसूक्तका पाठ और क्षमा-याचना करे। (सप्तशतीका न्यास न करे। यदि पाठ ३ या ५ हो तो अन्तिम पाठके पीछे क्षमा-याचना करे।) यदि आवश्यक हो और अवसर मिले तो कवच और अर्गला आदिका पाठ विशेष कर दिया करे। (४) कदाचित् नवरात्रपर्यन्त पाठ करना अभीष्ट हो तो आरम्भमें गणपति-पूजनादि करनेके अनन्तर घटस्थापन, यवबपन और देवीका पूजन करे और फिर उपर्युक्त प्रकारसे पाठ करे। और नवरात्र पूर्ण होनेपर तद्दशांश हवन, तद्दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन और यथासामर्थ्य ९ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यदि कार्य कुछ अधिक महत्त्वका हो—रिपु, रोग, राजभय, अग्निदाह या चौरादिका भय हो—राष्ट्रभङ्ग, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि या अन्य किसी भी प्रकारकी संकटापन्न अवस्था उपस्थित हुई हो अथवा लोकहितकारी व्यापक महोत्सवादिका करना-कराना आवश्यक हो तो ऐसे अवसरोंमें 'शतसहस्रायुतादि चण्डी' प्रयोगके द्वारा 'महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती' का आश्रय लेना अतिशय फलदायी होता है। शास्त्रकारोंने—

(३)

'शतचण्डी' के सामान्य और विशेष दो प्रकार निर्दिष्ट किये हैं। सामान्यरूपके प्रयोगमें उपर्युक्त प्रकारके सौ पाठ करनेसे एक शतचण्डी पूर्ण होती है। इसीको यदि तीन ब्राह्मण एकत्र रहकर करें तो ३३—१ दिनमें सम्पूर्ण हो सकती हैं और यदि एक ही व्यक्ति प्रतिदिन तीन पाठ करे तो उसके द्वारा भी उपर्युक्त (३३—१ दिनकी) अवधिमें समाप्त हो सकती है। इसमें भी दशांशका हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजन करना आवश्यक होता है। कदाचित् अर्थाभावादिवश हवनादि न बन सके तो दशांशके दूने पाठ अधिक करनेसे प्रयोग-की पूर्ति हो सकती है और यदि विशेष रीतिसे की जाय तो—

(४)

ज्योतिष-शास्त्रोक्त शुभदिन और धर्मशास्त्रोक्त शुभ-स्थानमें परम्परासे दुर्गाकी उपासना एवं नित्यप्रति यथा-विधि दुर्गापाठ करनेवाले सात्त्विकी, संतोषी, सच्चरित्र, सत्कुलीन, सत्यवक्ता, शास्त्रज्ञाता, अक्रोधी, धैर्यधारी और जितेन्द्रिय दस ब्राह्मणोंका आदरपूर्वक आवाहन करके षोडश-हस्तात्मक वस्त्रादिके ध्वजा, पताका, तोरण, बन्दनवार और वितानादिसे विभूषित रंग-बिरंगे लता-पत्र एवं फल-पुष्पादिसे सुशोभित और जलपूर्ण सुपूजित कलशादिसे संयुक्त 'मण्डप' के मध्यमें दारु (काष्ठ) मयी अथवा वालुकामयी वेदीके ऊपर यथा-विधि स्थापन किये हुए स्वर्ण, रजत, ताम्र या मृण्मय-निर्मित कलशके ऊपर सिंहारूढ देवीकी सुवर्णनिर्मित मूर्तिका स्थापन करे। उसके समीपके उभय पार्श्वमें मातृका और नवग्रहादिका यथास्थान स्थापन करके सर्व-प्रथम गणपति-पूजन, मातृका-पूजन, नान्दीश्राद्ध, पुण्याह-वाचन, आचार्यादिका वरण, कलशपूजन, दुर्गा भगवतीका षोडशोपचार-पूजन और समवयस्क (या दोसे आठ वर्षतककी) सत्कुलीन सुस्वरूप दस कन्याओंका पूजन करके आमन्त्रित ब्राह्मणोंसे प्रायोगिक पाठ प्रारम्भ करनेकी प्रार्थना करे।

(५)

एतन्निमित्त उपस्थित हुए दसों ब्राह्मण आरम्भके दिन प्रातःकालीन शौच-स्नान, सन्ध्योपासन, पूजापाठ या जपादिके नित्यकर्मसे निवृत्त होकर शतचण्डीका पूर्वाङ्ग (गणेश-पूजनादि) प्रारम्भ होनेके पहले ही यथास्थान उपस्थित होकर पूर्वाङ्गके कामोंमें सहयोग दें—और आवाहित देवादिका पूजन हो जानेके अनन्तर अपने-अपने आसनोंपर यथास्थान पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठ करके 'प्रधान' (यजमान) कृत पूर्वसंकल्पकी अर्थ-सिद्धिका संकल्प करके अपनी-अपनी पुस्तकोंका देवीके रूपमें पञ्चोपचारसे पूजन करके यथाविधि

'दुर्गा-पाठ' करें और पाठके समाप्त होनेपर 'यदक्षर-पदभ्रष्टं'[1] 'यन्मात्राविन्दु'[2] 'यदत्र पाठे'[3] और 'न मन्त्रं नो यन्त्रं'[4] से क्षमायाचना करके राजभोगका नैवेद्य अर्पण करे, उपर्युक्त दस कन्याओंको भोजन करावे और तत्पश्चात् दुर्गापाठी एक समय भोजन करें। स्मरण रहे कि भोजनमें उत्तम प्रकारके शुद्ध एवं सात्विक पदार्थोंका प्राधान्य रहे। सभी ब्राह्मण रात्रिमें भूमिपर शयन कर ब्रह्मचर्यमें रहें, हृदयमें भगवतीका ध्यान रक्खें और आत्म-कल्याणकी कामना करें।

(६)

इस प्रकार प्रत्येकका एक-एक पाठ होनेसे पहले दिन उक्त दसों ब्राह्मणोंके द्वारा दस पाठ, दूसरे दिन दो-दो पाठ होनेसे बीस पाठ, तीसरे दिन तीन-तीन पाठ होनेसे तीस पाठ और चौथे दिन चार-चार पाठ होनेसे चालीस पाठ होनेपर चार दिनमें सौ पाठ होते हैं और इस प्रकार होनेसे प्रथमारम्भकी एक शतचण्डी समाप्त हो जाती है। यह अवश्य है कि इस प्रकार करनेमें दुर्गापाठियोंको प्रतिदिन उत्तरोत्तर अधिक परिश्रम होता है; परन्तु त्वरापूर्ण कार्यके लिये इस विधानसे ही शीघ्र सिद्धि होती है। यदि इसमें कठिनता प्रतीत हो अथवा दुर्गापाठी इसमें स्वयं असामर्थ्य प्रकट करें तो वे ही दस ब्राह्मण प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति एक-एक पाठ करे तो दस दिनमें या पाँच ब्राह्मण प्रत्येक व्यक्ति एक-एक करें तो बीस दिनमें एक शतचण्डी पूर्ण हो सकती है। स्मरण रहे कि इसमें भी उपर्युक्त हवन-तर्पण-मार्जन और ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। शतचण्डीकी पूर्णाहुतिके निमित्त सौ ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। और मण्डप सोलह हाथका बनाना चाहिये।

(७)

इसी प्रकार राष्ट्रभंगादि सार्वजनिक अनिष्टकारी कारणोंके उपस्थित होने, बलशाली अजेय शत्रुको परास्त करने, देशको ईति-भीत्यादिके कष्टोंसे बचाने अथवा राज्यलाभादिके गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने आदिके लिये 'सहस्रचण्डी' करानेसे अतिशय लाभ होता है। शतचण्डीकी अपेक्षा सहस्रचण्डीमें दसगुना काम है अतः इसके लिये सद्गुणसम्पन्न सौ ब्राह्मण नियुक्त करने चाहिये और उनके दस-दसके दस वर्ग बनाकर प्रत्येक वर्गके दस-दस ब्राह्मणोंको यथाविभाग सम्यक् प्रकारसे स्थित करके अनुष्ठानके आरम्भमें सर्वप्रथम गणेशादिका पूजन, ब्राह्मणोंका वरण, घटादिका स्थापन, भगवती दुर्गादेवीका षोडशोपचारादि पूजन और सहस्रचण्डीके प्रस्तुत अनुष्ठानका भक्ति, श्रद्धा, शान्ति और शास्त्रोक्त विधिके साथ आरम्भ करना चाहिये। यद्यपि सहस्रचण्डीमें शतचण्डीसे सभी कार्य दसगुने होते हैं और शतचण्डीके समान पाठ-क्रम रहनेसे चार दिनमें एक सहस्रचण्डी हो सकती है। तथापि प्रत्येक ब्राह्मण प्रतिदिन एक-एक पाठ करें तो दस दिनमें सहस्रचण्डी, सौ दिनमें अयुतचण्डी और सहस्र दिनमें लक्षचण्डी सम्पन्न हो सकती है। अथवा उपर्युक्त दस-दस ब्राह्मणोंके प्रत्येक वर्गके द्वारा चार-चार दिनमें एक-एक 'शतचण्डी' हो तो प्रथमारम्भके चार दिनमें एक 'सहस्रचण्डी', चालीस दिनमें एक 'अयुतचण्डी'

---

१. यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥

२. यन्मात्राविन्दुविन्दुद्वितयपदपदद्वन्द्ववर्णादिहीनं
भक्त्या भक्त्यानुपूर्वं प्रकृतिगुणवशाद् व्यक्तमव्यक्तमम्ब।
मोहादज्ञानतो वा पठितमपठितं साम्प्रतं ते स्तवेऽस्मिन्
तत्सर्वं सांगमास्तां भगवति वरदे त्वत्प्रसादात्प्रसीद॥

३. यदत्र पाठे जगदम्बिके मया विसर्गविन्द्वक्षरहीनमीरितम्।
तदस्तु सम्पूर्णतमं प्रसादतः सङ्कल्पसिद्धिस्तु सदैव जायताम्॥

४. न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥
(दुर्गोपासना)

और चार सौ दिन (एक वर्ष ४० दिन) में एक 'लक्ष-चण्डी' सम्पन्न हो सकती है । यदि एक समयमें सद्गुणसंयुक्त सौ ब्राह्मणोंका एकत्र होना असम्भव हो तो एक वर्गके दस ब्राह्मणोंसे चार दिनमें 'शतचण्डी', चालीस दिन (१ महीना १० दिन) में 'सहस्रचण्डी', चार सौ दिन (१३ महीना १० दिन) में 'अयुतचण्डी' और चार हजार दिन (११ वर्ष १ महीना १० दिन) में 'लक्षचण्डी' हो सकती है । (सुयोग्य ब्राह्मण अधिक मिल जायँ तो प्रतिदिन जितने अधिक पाठ होंगे उसी अनुपातसे उतने ही कम दिनोंमें ये अनुष्ठान हो सकते हैं।)

(८)

ऐसे महान् फलदायी अनुष्ठानोंके सम्पन्न होनेमें अनेक प्रकारकी विघ्न-बाधा या असुविधा हो जाया करती है और उनके होनेसे कर्ताका मनःसंकल्प अधूरा रह जाता है अतएव अयुतचण्डी या लक्षचण्डी जैसे बहुसंख्यक सुयोग्य ब्राह्मणोंके अभावके कारण दीर्घ-कालमें पूर्ण होनेवाले अनुष्ठानोंमें आरम्भसे समाप्ति-पर्यन्तके सभी आयोजन एक ही बारमें एकत्र करनेकी अपेक्षा उपर्युक्त क्रमसे पूर्ण होनेवाली एक-एक शतचण्डी या सहस्रचण्डीके उपयोगी आयोजन उपस्थित करके एक-एकका आरम्भ और समाप्ति करते हुए—अवकाश-प्राप्त अवधिपर्यन्तके समयमें 'शतसहस्रायुत लक्षचण्डी' में जिस किसीतक जो भी सम्पन्न हो जाय उसीको पूर्ण मानकर आरम्भकी समाप्ति करते रहें तो उसमें करने-कराने या सहयोग देनेवालों आदि सभीका कल्याण है । अस्तु !

(९)

दुर्गापाठके कामनायुक्त अनुष्ठानोंमें विशेषकर सम्पुटित पाठ किया करते हैं और शास्त्रकारोंने विभिन्न प्रकारकी कामनाओंके लिये सम्पुट भी पृथक्-पृथक् प्रकारके निश्चित कर दिये हैं, जो मुद्रित दुर्गापाठमें प्रयोग-विधिके रूपमें संयुक्त हैं । उनमें 'करोतु सा न'[1] 'शरणागतदीनार्त'[2], और 'सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो'[3] जैसे सम्पुट सात्त्विकी होनेपर भी आशार्थियोंके सर्वाभीष्ट सफल करनेमें सबल और व्यापक हैं । साथ ही 'सर्वाबाधा-प्रशमनं'[4] जैसे मन्त्र उत्कट भी हैं जिनसे महाबली अजेय शत्रु भी परास्त हो जाते हैं । विशेषता यह है कि उक्त मन्त्रके चतुर्थ चरणमें रोग या शत्रुके नामका योग करके विलोम पाठ किया जाय तो महीनोंके मनोरथ दिनोंमें ही सिद्ध हो जाते हैं ।........उत्कट इच्छा या परमानुरागसे किये जानेवाले अनुष्ठानोंमें आरम्भहीसे यह इच्छा प्रबल हो जाती है कि—'अपने कार्यकी सिद्धि होगी या नहीं ?—'अथवा किस रूपकी सफलता मिलेगी ?' इसका ज्ञान होनेके लिये सभी शास्त्रकारोंने कई साधन बतलाये हैं, उनमें एक यह भी है कि 'दुर्गे देवि नमस्तुभ्यम्'[5] इस मन्त्रके दस हजार जप करे और फिर जब कभी जिस-किसी कामनाके सिद्ध होने या न होनेका ज्ञान करनेकी कामना हो तो रात्रिके समय शुद्धासनपर उत्तराभिमुख बैठ करके एक हजार जप करे और मालाको मस्तकके नीचे रखकर वहीं सो जाय । ऐसा करनेसे निद्रा आनेपर सब कामोंको सिद्ध करनेवाली महाशक्ति स्वप्नमें देववाणी (संस्कृतके द्वारा) कुछ कहें तो उस कथनको तत्काल ही कागजपर अंकित कर देना चाहिये और अपने अभीष्टकी सिद्धि या असिद्धिको जान लेना चाहिये ।

---

१. करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तुचापदः ।
२. शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
३. सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः । मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥
४. सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि । एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥
५. दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थसाधिके । ममसिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय ॥

सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच—

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनि ।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ॥

देव्युवाच—

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् ।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः दुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ १ ॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ २ ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ ६ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ७ ॥

इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा समाप्ता

मार्कण्डेयपुराण और दुर्गासप्तशती

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पांड्या बी० ए०)

मार्कण्डेय ऋषि मानवीय अमरताके आदर्श कहे जा सकते हैं—पौराणिक जगत्‌में शायद ही और कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसने इसी मानव-देहमें मार्कण्डेयके बराबर जीवन-काल पाया हो। उदय और अस्त होते रहनेवाले युगोंको ही नहीं, किन्तु सहस्रों मन्वन्तरोंको इन्हीं चर्मचक्षुओंसे देखनेवाले मार्कण्डेय ऋषि ही हैं।

प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि हिंदू-धर्ममें स्त्री-जातिको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा गया है। इसके उत्तरमें दुर्गासप्तशतीका नाम लेना ही पर्याप्त होगा, जिसमें नारी-शक्तिको सारे विश्वकी स्रोत, आधार और प्राणस्वरूपा तथा पूज्यसे भी पूज्य और महान्‌से भी महान् बताया गया है, जिसके सारे देव और समग्र शक्तियाँ अंशमात्र-से हैं। जहाँतक मैं जानता हूँ, किसी भी अन्य धर्ममें नारीकी इतनी प्रतिष्ठा नहीं है; और मैं बिना संशयके कह सकता हूँ कि हिंदुओंमें देवोंकी उपासनाके मुकाबले देवियोंकी उपासनाका प्रचार कम नहीं है, बल्कि अधिक ही है और यह शीघ्रतर फलदायिनी भी मानी जाती है। यह तो प्रकट सत्य है कि हिंदू-धर्मके अनुसार शिवकी शक्ति उमा है, विष्णुकी शक्ति रमा है और इसी तरह प्रत्येक देवकी शक्ति नारीमें ही है। मैं आशा करता हूँ कि हिंदू नारी अपने गौरवको* पहचानेगी और हिंदू पुरुष भी अपने दैनिक व्यवहारमें इन बातोंका ध्यान रक्खेंगे। स्त्री अबला अशक्तिके अर्थमें नहीं, किन्तु अ (नहीं) +बला (विपत्ति) यानी सौभाग्य या लक्ष्मीके अर्थमें है।

दुर्गाकी उपासनाके नामपर पशु-बलि करना—यह देवीके मातृस्वरूप, न्यायस्वरूप और शक्तिस्वरूपका दारुण अपमान है। संसारमें और अपने हृदयमें जो अन्यायरूपी असुर और काम-क्रोधादिरूप पशु† हैं, उनको न मारकर दीन-दुर्बल भैंसों और बकरोंपर तलवार चलाना अन्याय और क्रूरता ही नहीं किन्तु कायरता और मूढ़ता भी है। क्या इस प्रकार न्याय-स्थापना हो सकती है ? जिसे जिस वस्तुसे आन्तरिक और घोर घृणा हो, उसे वही वस्तु समर्पित करना क्या उसके प्रति प्रेम या आदर-सत्कार है ? अन्याय, अत्याचार और आसुरी भावको नष्ट करना और दीनोंकी रक्षा करना ही जिसका जीवन-लक्ष्य रहा हो, उसीके नामपर अन्याय करना, आसुरी भावके साधन जुटाना और दीन-हत्या करना क्या उसकी विडम्बना नहीं है ? माताकी अबोध और निर्दोष सन्तानका प्राण-हरण करना, क्या यह उस माताकी भक्ति है और क्या यह उसकी प्रसन्नता पानेका तरीका है ? स्वर्गके देवताओंका आहार अमृत है और ब्रह्मलोकवालोंके लिये तो इसकी भी आवश्यकता नहीं होती (महाभारत, वनपर्व)। फिर सर्वोपरि चित्-शक्तिरूपा देवीके लिये तो कहना ही क्या है। यदि देवीको भी मांस-मद्यादि आसुरी भावके निमित्तभूत पदार्थोंका सेवन करनेवाली माना जाय तो फिर उनमें और असुरोंमें क्या भेद रह जाता है ?

पूज्यके गुणोंका स्मरण करना और उनको अपने जीवनमें उतारनेका—उनसे तन्मय हो जानेका—प्रयत्न करना ही उपासनाका ध्येय है। उन गुणोंके विरोधी पदार्थों या कर्मोंसे उसकी पूजा करना न तो भक्ति ही है और न इससे भक्तिका फल ही मिल सकता है। 'कल्याण' के प्रत्येक पाठकसे और उसके जरिये प्रत्येक हिंदूसे और प्रत्येक मानवसे मेरी प्रार्थना है कि स्वार्थियोंके कारण किये जानेवाले और देवी, हिंदू जाति और मानव-जातिके नामको बदनाम करनेवाले इस कुकृत्यको मिटायें।



---

* ....तव देवि भेदाः। स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ॥

(दुर्गासप्तशती ११ । ६)

† कामक्रोधौ पशुतुल्यौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत् (भैरवयामल तथैव महानिर्वाण तन्त्र भी)

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण

जैमिनि-मार्कण्डेय-संवाद— वपुको दुर्वासाका शाप

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्य-
मासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः ।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्म-
माविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवःस्वः ॥ १ ॥
पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः
क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः ।
श्वासावधूतसलिलोत्कलिकाकरालः
सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात् ॥ २ ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ३ ॥*

व्यासजीके शिष्य महातेजस्वी जैमिनिने तपस्या और ध्यायमें लगे हुए महामुनि मार्कण्डेयसे पूछा—'भगवन्!



महात्मा व्यासद्वारा प्रतिपादित महाभारत अनेक शास्त्रोंके दोषरहित एवं उज्ज्वल सिद्धान्तोंसे परिपूर्ण है। यह सहज-शुद्ध अथवा छन्द आदिकी शुद्धिसे युक्त और साधु शब्दावली-से सुशोभित है। इसमें पहले पूर्वपक्षका प्रतिपादन करके फिर सिद्धान्त-पक्षकी स्थापना की गयी है। जैसे देवताओंमें विष्णु, मनुष्योंमें ब्राह्मण तथा सम्पूर्ण आभूषणोंमें चूड़ामणि श्रेष्ठ है, जिस प्रकार आयुधोंमें वज्र और इन्द्रियोंमें मन प्रधान माना गया है, उसी प्रकार समस्त शास्त्रोंमें महाभारत उत्तम बताया गया है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका वर्णन है। वे पुरुषार्थ कहीं तो परस्पर सम्बद्ध हैं और कहीं पृथक्-पृथक् वर्णित हैं। इसके सिवा उनके अनुबन्धों (विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन और अधिकारी) का भी इसमें वर्णन किया गया है।

'भगवन्! इस प्रकार यह महाभारत उपाख्यान वेदोंका विस्ताररूप है। इसमें बहुत-से विषयोंका प्रतिपादन किया गया है। मैं इसे यथार्थ रूपसे जानना चाहता हूँ और इसीलिये आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके एकमात्र कारण सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन निर्गुण होकर भी मनुष्यरूपमें कैसे प्रकट हुए? तथा द्रुपदकुमारी कृष्णा अकेली ही पाँच पाण्डवोंकी महारानी क्यों हुई? इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। द्रौपदीके पाँचों महारथी पुत्र, जिनका अभी विवाह भी नहीं हुआ था और पाण्डव-जैसे वीर जिनके रक्षक थे, अनाथोंकी भाँति कैसे मारे गये? ये सारी बातें आप मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।'

मार्कण्डेयजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! यह मेरे लिये संध्या-वन्दन आदि कर्म करनेका समय है। तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर विस्तारपूर्वक देना है, अतः उसके लिये यह समय उत्तम नहीं है। जैमिने! मैं तुम्हें ऐसे पक्षियोंका परिचय देता हूँ, जो तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देंगे और तुम्हारे सन्देहका निवारण करेंगे। द्रोण नामक पक्षीके चार पुत्र हैं, जो सब पक्षियोंमें

* जिनमें जन्म-मृत्युरूप संसारके भय और पीडाओंका नाश करनेकी पूर्ण योग्यता है, पवित्र अन्तःकरणवाले योगीजन जिन्हें ध्यानमें खकर बारंबार मस्तक झुकाते हैं, जो वामनरूपसे विराट्रूप धारण करते समय प्रकट होकर क्रमशः भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको भी

श्रेष्ठ, तत्त्वज्ञ तथा शास्त्रोंका चिन्तन करनेवाले हैं। उनके नाम हैं—पिङ्गाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख। वेदों और शास्त्रोंके तात्पर्यको समझनेमें उनकी बुद्धि कभी कुण्ठित नहीं होती। वे चारों पक्षी विन्ध्यपर्वतकी कन्दरामें निवास करते हैं। तुम उन्हींके पास जाकर ये सभी बातें पूछो।

जैमिनिने कहा—ब्रह्मन्! यह तो बड़ी अद्भुत बात है कि पक्षियोंकी बोली मनुष्योंके समान हो। पक्षी होकर भी उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ विज्ञान प्राप्त किया है। यदि तिर्यक् योनिमें उनका जन्म हुआ है, तो उन्हें ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? वे चारों पक्षी द्रोणके पुत्र कैसे बतलाये जाते हैं? विख्यात पक्षी द्रोण कौन है, जिसके चार पुत्र ऐसे ज्ञानी हुए? उन गुणवान् महात्मा पक्षियोंको धर्मका ज्ञान किस प्रकार हुआ?

मार्कण्डेयजी बोले—मुने! ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालमें नन्दनवनके भीतर जब देवर्षि नारद, इन्द्र और अप्सराओंका समागम हुआ था, उसी समयकी घटना है। एक बार नारदजीने नन्दनवनमें देवराज इन्द्रसे भेंट की। उनकी दृष्टि पड़ते ही इन्द्र उठकर खड़े हो गये और बड़े आदरके साथ अपना सिंहासन उन्हें बैठनेको दिया। वहाँ खड़ी हुई अप्सराओंने भी देवर्षि नारदको विनीत भावसे मस्तक झुकाया। उनके द्वारा पूजित हो नारदजीने इन्द्रके बैठ जानेपर यथायोग्य कुशल-प्रश्नके अनन्तर बड़ी मनोहर कथाएँ सुनायीं। उस बातचीतके प्रसङ्गमें ही इन्द्रने महामुनि नारदसे कहा—'देवर्षे! इन अप्सराओंमें जो आपको प्रिय जान पड़े, उसे आज्ञा दीजिये, यहाँ नृत्य करे। रम्भा, मिश्रकेशी, उर्वशी, तिलोत्तमा, घृताची अथवा मेनका—जिसमें आपकी रुचि हो, उसीका नृत्य देखिये।' इन्द्रकी यह बात सुनकर द्विजश्रेष्ठ नारदजीने विनयपूर्वक खड़ी हुई अप्सराओंसे कुछ सोचकर कहा—'तुम सब लोगोंमेंसे जो अपनेको रूप और उदारता आदि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ मानती हो, वही मेरे सामने यहाँ नृत्य करे।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुनिकी यह बात सुनते ही वे विनीत अप्सराएँ एक-एक करके आपसमें कहने लगीं—'अरी! मैं ही गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ हूँ, तू नहीं।' इसपर दूसरी कहती, 'तू नहीं, मैं श्रेष्ठ हूँ।' उनका वह अज्ञानपूर्ण विवाद देखकर इन्द्रने कहा—'अरी! मुनिसे ही पूछो, वे ही बतायेंगे कि तुमलोगोंमें सबसे अधिक गुणवती कौन है।' इस प्रकार उनके पूछनेपर नारदजीने कहा—'जो गिरिराज हिमालयपर तपस्या करनेवाले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाको अपनी चेष्टासे क्षुब्ध कर देगी, उसीको मैं सबसे अधिक गुणवती मानूँगा।' उनकी बात सुनकर सबकी गर्दन हिल गयी। सबने एक-दूसरीसे कहना आरम्भ किया—'हमारे लिये यह कार्य असम्भव है।' उन अप्सराओंमें एकका नाम वपु था। उसके मनमें मुनियोंको विचलित कर देनेका गर्व था। उसने नारदजीको उत्तर दिया, 'जहाँ दुर्वासा मुनि रहते हैं, वहाँ आज मैं जाऊँगी। दुर्वासा मुनिको, जो शरीररूपी रथका सञ्चालन करते हैं, जिन्होंने इन्द्रियरूपी घोड़ोंको उस रथमें जोत रखा है, एक अयोग्य सारथि सिद्ध कर दिखाऊँगी। अपने कामबाणके प्रहारसे उनके मनरूपी लगामको गिरा दूँगी—उनके काबूके बाहर कर दूँगी।'

यों कहकर वपु हिमालय पर्वतपर गयी। वहाँ महर्षिके आश्रममें उनकी तपस्याके प्रभावसे हिंसक जीव भी अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति छोड़कर परम शान्त रहते थे। महामुनि दुर्वासा जहाँ निवास करते थे, उस स्थानसे एक कोसकी दूरीपर वह सुन्दरी अप्सरा ठहर गयी और गीत गाने लगी। उसकी वाणीमें कोकिलके कलरवका-सा मिठास था। उसके संगीतकी मधुर ध्वनि कानमें पड़ते ही दुर्वासा मुनिके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे उसी स्थानकी ओर गये, जहाँ वह मृदुभाषिणी बाला संगीतकी तान छेड़े हुए थी। उसे देखकर महर्षिने अपने मनको बलपूर्वक रोका और यह जानकर कि यह मुझे लुभानेके लिये आयी है, उन्हें क्रोध और अमर्ष हो आया। फिर तो वे महातपस्वी महर्षि उस अप्सरासे इस प्रकार

लाँघ गये थे, श्रीहरिके वे दोनों चरणकमल आपलोगोंको पवित्र करते रहें। जो समस्त पापोंका संहार करनेमें समर्थ हैं, जिनका श्रीविग्रह क्षीरसागरके गर्भमें शेषनागकी शय्यापर शयन करता है, उन्हीं शेषनागकी श्वास-वायुसे कम्पित हुए जलकी उत्ताल तरङ्गोंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला समुद्र जिनका सत्सङ्ग पाकर प्रसन्नताके मारे नृत्य-सा करता जान पड़ता है, वे भगवान् नारायण आपलोगोंकी रक्षा करते रहें। भगवान् नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके 'जय' (इतिहास-पुराण) का पाठ करना चाहिये।



बोले—'आकाशमें विचरनेवाली मतवाली अप्सरा ! तू बड़े कष्टसे उपार्जित किये हुए मेरे तपमें विघ्न डालनेके लिये आयी है, अतः मेरे क्रोधसे कलङ्कित होकर तू पक्षीके कुलमें जन्म लेगी। ओ खोटी बुद्धिवाली नीच अप्सरा ! अपना यह मनोहर रूप छोड़कर तुझे सोलह वर्षोंतक पक्षिणीके रूपमें रहना पड़ेगा। उस समय तेरे गर्भसे चार पुत्र उत्पन्न होंगे। किन्तु तू उनके प्रति होनेवाले प्रेमजनित सुखसे वञ्चित ही रहेगी और शस्त्रद्वारा वधको प्राप्त होकर शापमुक्त हो पुनः स्वर्गलोकमें अपना स्थान प्राप्त करेगी। बस, अब इसके विपरीत तू कुछ भी किसी प्रकार भी उत्तर न देना।' क्रोधसे लाल नेत्र किये महर्षि दुर्वासाने मधुर खनखनाहटसे युक्त चञ्चल कङ्कण धारण करनेवाली उस मानिनी अप्सराको ये दुस्सह वचन सुनाकर इस पृथ्वीको छोड़ दिया और विश्वविश्रुत गुणोंसे गौरवान्वित एवं उत्ताल तरङ्गोंवाली आकाशगङ्गाके तटपर चले गये।

सुकृष मुनिके पुत्रोंके पक्षीकी योनिमें जन्म लेनेका कारण

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जैमिने ! अरिष्टनेमिके पुत्र पक्षिराज गरुड हुए। गरुडके पुत्र सम्पातिके नामसे विख्यात हुए। सम्पातिका पुत्र शूरवीर सुपार्श्व था। सुपार्श्वका पुत्र कुम्भि और कुम्भिका पुत्र प्रलोलुप हुआ। उसके भी दो पुत्र हुए, उनमें एकका नाम कङ्क और दूसरेका नाम कन्धर था। कन्धरके तार्क्षी नामकी कन्या हुई, जो पूर्वजन्ममें श्रेष्ठ अप्सरा वपु थी और दुर्वासा मुनिकी शापाग्निसे दग्ध हो पक्षिणीके रूपमें प्रकट हुई थी। मन्दपाल पक्षीके पुत्र द्रोणने कन्धरकी अनुमतिसे उस कन्याके साथ विवाह किया। कुछ कालके अनन्तर तार्क्षी गर्भवती हुई। उसका गर्भ अभी साढ़े तीन महीनेका ही था कि वह कुरुक्षेत्रमें गयी। वहाँ कौरव और पाण्डवोंमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ा था, भवितव्यतावश वह पक्षिणी उस युद्धक्षेत्रमें प्रवेश कर गयी। वहाँ उसने देखा, भगदत्त और अर्जुनमें युद्ध हो रहा है। सारा आकाश टिड्डियोंकी भाँति बाणोंसे खचाखच भर गया है। इतनेमें ही अर्जुनके धनुषसे छूटा हुआ एक बाण बड़े वेगसे उसके समीप आया और उसके पेटमें घुस गया। पेट फट जानेसे चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले चार अंडे पृथ्वीपर गिरे। किन्तु उनकी आयु शेष थी, अतः वे फूट न सके;



बल्कि पृथ्वीपर ऐसे गिरे, मानो रूईके ढेरपर पड़े हों। उन अण्डोंके गिरते ही भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजकी पीठसे एक बहुत बड़ा घंटा भी टूटकर गिरा, जिसका बन्धन बाणोंके आघातसे कट गया था। यद्यपि वह अण्डोंके साथ ही गिरा था, तथापि उन्हें चारों ओरसे ढकता हुआ गिरा और धरतीमें थोड़ा-थोड़ा धँस भी गया।

युद्ध समाप्त होनेपर जहाँ घंटेके नीचे अण्डे पड़े थे, उस स्थानपर शमीक नामके एक संयमी महात्मा गये। उन्होंने वहाँ चिड़ियोंके बच्चोंकी आवाज सुनी। यद्यपि उन सबको परम विज्ञान प्राप्त था, तथापि निरे बच्चे होनेके कारण अभी वे स्पष्ट वाक्य नहीं बोल सकते थे। उन बच्चोंकी आवाजसे शिष्योंसहित महर्षि शमीकको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने घंटेको उखाड़कर उसके भीतर पड़े हुए उन माता, पिता और पंखसे रहित पक्षिशावकोंको देखा। उन्हें इस प्रकार भूमिपर पड़ा देख महामुनि शमीक आश्चर्यमें डूब गये और अपने साथ आये हुए द्विजोंसे बोले—"देवासुर-संग्राममें जब दैत्योंकी सेना देवताओंसे पीड़ित होकर भागने लगी, तब उसकी ओर देखकर स्वयं विप्रवर शुक्राचार्यने यह ठीक ही कहा था—'ओ कायरो! क्यों पीठ दिखाकर जा रहे हो। न जाओ, लौट आओ। अरे! शौर्य और सुयशका परित्याग करके ऐसे किस स्थानमें जाओगे, जहाँ तुम्हारी मृत्यु न होगी। कोई भागे या युद्ध करे; वह तभीतक जीवित रह सकता है, जबतकके लिये पहले विधाताने उसकी आयु निश्चित कर दी है। विधाताके इच्छानुसार जबतक जीवकी आयु पूर्ण नहीं हो जाती, तबतक उसे कोई मार नहीं सकता। कोई अपने घरमें मरते हैं, कोई भागते हुए प्राणत्याग करते हैं, कुछ लोग अन्न खाते और पानी पीते हुए ही कालके गालमें चले जाते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग ऐसे हैं, जो भोग-विलासका आनन्द ले रहे हैं, इच्छानुसार वाहनोंपर विचरते हैं, शरीरसे नीरोग हैं तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे जिनका शरीर कभी घायल नहीं हुआ है; वे भी यमराजके वशमें हो जाते हैं। कुछ लोग निरन्तर तपस्यामें ही लगे रहते थे, किन्तु उन्हें भी यमराजके दूत उठा ले गये। निरन्तर योगाभ्यासमें प्रवृत्त रहनेवाले लोग भी शरीरसे अमर न हो सके। पहलेकी बात है, वज्रपाणि इन्द्रने एक बार शम्बरासुरके ऊपर अपने वज्रका प्रहार किया था। उस वज्रने उसकी छातीमें चोट पहुँचायी, तथापि वह असुर मर न सका। परन्तु काल आनेपर उन्हीं इन्द्रने उसी वज्रसे जब-जब दानवोंको मारा, वे तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गये। यह समझकर तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। तुम सब लोग लौट आओ।' उनके इस प्रकार समझानेपर वे दैत्य मृत्युका भय त्यागकर रणभूमिमें लौट आये। शुक्राचार्यकी कही हुई उपर्युक्त बातोंको इन श्रेष्ठ पक्षियोंने सत्य कर दिखाया; क्योंकि उस अलौकिक युद्धमें पड़कर भी इनकी मृत्यु नहीं हुई। ब्राह्मणो! भला, सोचो तो सही—कहाँ अण्डोंका गिरना, कहाँ उसके साथ ही घंटेका भी टूट पड़ना और कहाँ मांस, मज्जा तथा रक्तसे भरी हुई भूमिका बिछौना बन जाना—ये सभी बातें अद्भुत हैं। विप्रगण! ये कोई सामान्य पक्षी नहीं हैं। संसारमें दैवका अनुकूल होना महान् सौभाग्यका सूचक होता है।'

यों कहकर शमीक मुनिने उन बच्चोंको भलीभाँति देखा और फिर अपने शिष्योंसे इस प्रकार कहा—'अब तुम-लोग इन पक्षिशावकोंको लेकर आश्रमको लौट चलो और ऐसे स्थानपर रक्खो जहाँ इन्हें बिल्ली, चूहे, बाज अथवा नेवले आदिसे कोई भय न हो। ब्राह्मणो! यद्यपि यह ठीक है कि किसीकी रक्षाके लिये अधिक प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण जीव अपने कर्मोंसे ही मारे जाते हैं और कर्मोंसे ही उनकी रक्षा होती है—ठीक उसी प्रकार, जैसे इस समय ये पक्षिशावक इस युद्धभूमिमें बच गये हैं, तथापि सब मनुष्योंको सभी कार्योंके लिये यत्न अवश्य करना चाहिये, क्योंकि जो पुरुषार्थ करता है, वह (असफल होनेपर भी) सत्पुरुषोंकी निन्दाका पात्र नहीं होता।' मुनिवर शमीकके इस प्रकार कहनेपर वे मुनिकुमार उन पक्षियोंको लेकर अपने आश्रमको चले गये, जहाँ भाँति-भाँति-



के वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठे हुए भौंरे फूलोंका रस ले रहे थे और अनेक तपस्वियोंके रहनेसे जहाँकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी।

विप्रवर जैमिने! मुनिश्रेष्ठ शमीक प्रतिदिन अन्न और जल देकर तथा सब प्रकारसे रक्षाकी व्यवस्था करके उन बच्चोंका पालन-पोषण करने लगे। एक ही महीना बीतनेपर वे पक्षियोंके बच्चे आकाशमें इतने ऊँचे उड़ गये, जितनेपर सूर्यके रथके आने-जानेका मार्ग है। उस समय आश्रमवासी मुनिकुमार कौतूहलभरे चञ्चल नेत्रोंसे उन्हें देख रहे थे। उन पक्षिशावकोंने नगर, समुद्र और बड़ी-बड़ी नदियोंसहित पृथ्वीको वहाँसे रथके पहियेके बराबर देखा और फिर आश्रमपर लौट आये। तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुए वे महात्मा पक्षी अधिक उड़नेके कारण परिश्रमसे थक गये थे। एक दिन महर्षि शमीक अपने शिष्योंपर कृपा करनेके लिये उन्हें धर्मके तत्त्वका उपदेश कर रहे थे। उस समय वहाँ महर्षिके प्रभावसे उन पक्षियोंके अन्तःकरणमें स्थित ज्ञान प्रकट हो गया। फिर तो उन सबने महर्षिकी परिक्रमा की और उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् वे बोले—'मुने! आपने भयानक मृत्युसे हमारा उद्धार किया है। आपने हमें रहनेके लिये स्थान, भोजन और जल प्रदान किया है। आप ही हमारे पिता और गुरु हैं। हमलोग जब गर्भमें थे, तभी माताकी मृत्यु हो गयी। पिताने भी हमारी रक्षा नहीं की। आपने ही पधारकर हमें जीवनदान दिया और शैशव-अवस्थामें हमलोगोंकी रक्षा की। हम कीड़ोंकी तरह सूख रहे थे, आपने हाथीके घण्टेको उठाकर हमारे सङ्कटका निवारण किया। अब हम बड़े हो गये, हमें ज्ञान भी हो गया; अतः आज्ञा दीजिये, हम आपकी क्या सेवा करें?'

महर्षि शमीक अपने पुत्र शृङ्गी ऋषि तथा समस्त शिष्योंसे घिरे हुए बैठे थे; उन्होंने जब उन पक्षिशावकोंकी यह शुद्ध संस्कृतमयी स्पष्ट वाणी सुनी, तब उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने पूछा—'बच्चो! तुमलोग ठीक-ठीक बताओ, तुम्हें किस कारणसे ऐसी वाणी प्राप्त हुई है। पक्षियोंका रूप और मनुष्यकी-सी वाणी प्राप्त होनेका क्या रहस्य है?'

पक्षी बोले—मुनिवर! प्राचीन कालमें विपुलस्वान् नामक एक श्रेष्ठ मुनि रहते थे, जिनके दो पुत्र हुए—सुकृष और तुम्बुरु। सुकृष अपने चित्तको वशमें रखनेवाले महात्मा थे। उन्हींसे हम चार पुत्रोंका जन्म हुआ। हम सब लोग विनय, सदाचार एवं भक्तिवश सदा विनीत भावसे रहते थे। पिताजी सदा तपस्यामें संलग्न रहते और इन्द्रियोंको काबूमें रखते थे। उस समय उन्हें जब जिस वस्तुकी अभिलाषा होती, हम उसे उनकी सेवामें प्रस्तुत करते थे। एक दिनकी बात है, देवराज इन्द्र पक्षीका रूप धारण करके वहाँ आये। उनका शरीर बहुत बड़ा था, पंख टूट गये थे। बुढ़ापेने उसपर अधिकार जमा लिया था। उनकी आँखें कुछ-कुछ लाल हो रही थीं और सारा शरीर शिथिल जान पड़ता था। वे सत्य, शौच और क्षमाका पालन करनेवाले अत्यन्त उदारचित्त महात्मा मुनिश्रेष्ठ सुकृषकी परीक्षा लेने आये थे। उनका आगमन ही हमारे लिये शापका कारण बन गया।

पक्षिरूपधारी इन्द्रने कहा—विप्रवर! मुझे बड़े जोरकी भूख सता रही है, मेरी रक्षा कीजिये; महाभाग! मैं भोजनकी इच्छासे यहाँ आया हूँ। आप मेरे लिये अनुपम सहारा बनें। मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरपर रहता था। वहाँसे किसी प्रबल पक्षीके पंखसे प्रकट हुई अत्यन्त वेगयुक्त वायुके झोंके खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। एक सप्ताहतक मुझे होश नहीं हुआ। आठवें दिन मेरी चेतना लौटी। सचेत होनेपर मैं भूखसे व्याकुल हो गया और भोजनकी इच्छासे आपकी शरणमें आया हूँ। इस समय मुझे तनिक भी चैन नहीं है। मेरे मनमें बड़ी व्यथा हो रही है। विमल बुद्धिवाले महर्षि! अब आप मेरी रक्षाके लिये भोजन दीजिये, जिससे मेरी जीवन-यात्रा चालू रहे।

यह सुनकर महर्षिने उन पक्षिरूपधारी इन्द्रसे कहा—'मैं तुम्हारे प्राणोंकी रक्षाके लिये तुम्हें यथेष्ट भोजन दूँगा।' यों कहकर द्विजश्रेष्ठ सुकृषने पुनः उनसे पूछा—'मुझे तुम्हारे लिये कैसे आहारकी व्यवस्था करनी चाहिये।' उन्होंने कहा—'मुने! मनुष्यके मांससे मुझे विशेष तृप्ति होती है।'

ऋषिने कहा—अरे! कहाँ मनुष्यका मांस और कहाँ तुम्हारी वृद्धावस्था। जान पड़ता है, जीवकी दूषित भावनाओंका सर्वथा अन्त कभी नहीं होता। अथवा मुझे यह सब कहनेकी क्या आवश्यकता। जिसे देनेकी प्रतिज्ञा कर ली गयी, उसे सदा देना ही चाहिये; मेरे मनमें सदा ऐसा ही भाव रहता है।

इन्द्रसे यों कहते हुए अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेका निश्चय करके विप्रवर सुकृषने हम सबको शीघ्र ही बुलाया और हमारे गुणोंकी बारंबार प्रशंसा करते हुए कहा—'पुत्रो! यदि तुमलोगोंके विचारसे पिता परम गुरु और पूजनीय हो, तो निष्कपट भावसे मेरे वचनका पालन करो।' उनकी यह

बात सुनते ही हम सब लोगोंने बड़े आदरके साथ कहा—'पिताजी ! आप जो कुछ भी कहेंगे, जिस कार्यके लिये भी हमें आज्ञा देंगे, उसे हमारे द्वारा पूर्ण किया हुआ ही समझिये।'

ऋषि बोले—यह पक्षी भूख-प्याससे पीड़ित होकर मेरी शरणमें आया है। तुमलोग शीघ्र ही ऐसा करो, जिससे तुम्हारे शरीरके मांससे क्षणभर इसकी तृप्ति और तुम्हारे रक्तसे इसकी प्यास बुझ जाय।



यह सुनकर हमें बड़ी व्यथा हुई। हमारे शरीरमें कम्प और मनमें भय छा गया, हम सहसा बोल उठे—'इसमें तो बड़ा कष्ट है, बड़ा कष्ट है। यह काम हमसे नहीं हो सकता। कोई भी समझदार मनुष्य दूसरेके शरीरके लिये अपने शरीरका नाश अथवा वध कैसे करा सकता है। अतः हमलोग यह काम नहीं करेंगे।' हमारी ऐसी बातें सुनकर वे मुनि क्रोधसे जल उठे और अपनी लाल-लाल आँखोंसे हमें दग्ध करते हुए-से पुनः इस प्रकार बोले—'अरे ! मुझसे इसके लिये प्रतिज्ञा करके भी तुमलोग यह कार्य नहीं करना चाहते; अतः मेरे शापसे दग्ध होकर तुमलोग पक्षियोंकी योनिमें जन्म लोगे।' हमसे यों कहकर उन्होंने शास्त्रके अनुसार अपनी अन्त्येष्टि-क्रिया की—और्ध्वदैहिक संस्कारकी विधि पूर्ण की। इसके बाद वे उस पक्षीसे बोले—'खगश्रेष्ठ ! अब तुम निश्चिन्त होकर मुझे भक्षण करो। मैंने अपना यह शरीर तुम्हें आहारके रूपमें समर्पित कर दिया है। पक्षिराज ! जबतक अपने सत्यका पूर्णरूपसे पालन होता रहे, यही ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व कहलाता है। ब्राह्मण दक्षिणायुक्त यज्ञों अथवा अन्य कर्मोंके अनुष्ठानसे भी वह महान् पुण्य नहीं प्राप्त कर सकते, जो उन्हें सत्यकी रक्षा करनेसे प्राप्त होता है।'*

महर्षिका यह वचन सुनकर पक्षिरूपधारी इन्द्रके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने देवरूपमें प्रकट होकर बोले—



'विप्रवर ! मैंने आपकी परीक्षाके लिये यह अपराध किया है। शुद्ध बुद्धिवाले महर्षि ! आप इसके लिये मुझे क्षमा करें। बताइये, आपकी क्या इच्छा है जिसे मैं पूर्ण करूँ ? अपने सत्य वचनका पालन करनेसे आपके प्रति मेरा बड़ा प्रेम हो गया है। आजसे आपके हृदयमें इन्द्रसम्बन्धी ज्ञान प्रकट

* एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्षते।
यावत् पतगजात्यग्र्य स्वसत्यपरिपालनम्॥
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत् पुण्यं प्राप्यते महत्।
कर्मणान्येन वा विप्रैर्यत् सत्यपरिपालनात्॥
(अ० १। ४७-४८)

होगा। अब आपकी तपस्या और धर्ममें कोई विघ्न नहीं उपस्थित होगा।'

यों कहकर जब इन्द्र चले गये, तब हमलोगोंने क्रोधमें भरे हुए महामुनि पिताजीके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'तात ! हम मृत्युसे डर रहे थे। महामते ! आप हम दीनोंके अपराधको क्षमा करें। हमलोगोंको जीवन बहुत ही प्रिय है। चमड़े, हड्डी और मांसके समूह तथा पीब और रक्तसे भरे हुए इस शरीरमें जहाँ हमें तनिक भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, वहीं हमारी इतनी आसक्ति है। महाभाग ! काम, क्रोध आदि दोष जीवके प्रबल शत्रु हैं। इनसे विवश होकर यह लोक जिस प्रकार मोहके वशीभूत हो जाता है, उसे आप सुनें। यह शरीर एक बहुत बड़ा नगर है। प्रज्ञा ही इसकी चहारदीवारी है, हड्डियाँ ही इसमें खम्भेका काम देती हैं। चमड़ा ही इस नगरकी दीवार है, जो समूचे नगरको रोके हुए है। मांस और रक्तके पङ्कका इसपर लेप चढ़ा हुआ है। इस नगरमें नौ दरवाजे हैं। इसकी रक्षामें बहुत बड़ा प्रयास करना होता है। नस-नाड़ियाँ इसे सब ओरसे घेरे हुए हैं। चेतन पुरुष ही इस नगरके भीतर राजाके रूपमें विराजमान है। उसके दो मन्त्री हैं—बुद्धि और मन। वे दोनों परस्परविरोधी हैं और आपसमें वैर निकालनेके लिये दोनों ही यत्न करते रहते हैं। चार ऐसे शत्रु हैं, जो उस राजाका नाश चाहते हैं। उनके नाम हैं—काम, क्रोध, लोभ तथा मोह। जब राजा उन नवों दरवाजोंको बंद किये रहता है, तब उसकी शक्ति सुरक्षित रहती है और वह सदा निर्भय बना रहता है; वह सबके प्रति अनुराग रखता है, अतः शत्रु उसका पराभव नहीं कर पाते।

'परन्तु जब वह नगरके सब दरवाजोंको खुला छोड़ देता है, उस समय राग नामक शत्रु नेत्र आदि द्वारोंपर आक्रमण करता है। वह सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला, बहुत विशाल और पाँच दरवाजोंसे नगरमें प्रवेश करनेवाला है। उसके पीछे-पीछे तीन और भयङ्कर शत्रु इस नगरमें घुस जाते हैं। पाँच इन्द्रिय नामक द्वारोंसे शरीरके भीतर प्रवेश करके राग मन तथा अन्यान्य इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ लेता है। इस प्रकार इन्द्रिय और मनको वशमें करके वह दुर्धर्ष हो जाता है और समस्त दरवाजोंको काबूमें करके चहारदीवारीको नष्ट कर देता है। मनको रागके अधीन हुआ देख बुद्धि तत्काल नष्ट हो जाती (पलायन कर जाती) है। जब मन्त्री साथ नहीं रहते, तब अन्य पुरवासी भी उसे छोड़ देते हैं। फिर शत्रुओंको उसके छिद्रका ज्ञान हो जानेसे राजा उनके द्वारा नाशको प्राप्त होता है। इस प्रकार राग, मोह, लोभ तथा क्रोध—ये दुरात्मा शत्रु मनुष्यकी स्मरण-शक्तिका नाश करनेवाले हैं। रागसे काम होता है, कामसे लोभका जन्म होता है, लोभसे सम्मोह—अविवेक होता है और सम्मोहसे स्मरण-शक्ति भ्रान्त हो जाती है। स्मृतिकी भ्रान्तिसे बुद्धिका नाश होता है और बुद्धिका नाश होनेसे मनुष्य स्वयं भी नष्ट—कर्तव्यभ्रष्ट हो जाता है।* इस प्रकार जिनकी बुद्धि नष्ट हो चुकी है, जो राग और लोभके पीछे चलनेवाले हैं तथा जिन्हें जीवनका बहुत लोभ है, ऐसे हमलोगोंपर आप प्रसन्न होइये। मुनिश्रेष्ठ ! यह जो शाप आपने दिया है, वह हमें लागू न हो। तामसी योनि बड़ी कष्टदायिनी होती है। हम उसे कभी प्राप्त न हों।'

ऋषिने कहा—पुत्रो ! आजतक मेरे मुखसे कभी झूठी बात नहीं निकली; अतः मैंने जो कुछ कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं होगा। मैं यहाँ दैवको ही प्रधान मानता हूँ। उसके सामने पौरुष व्यर्थ है। आज दैवने मुझसे बलपूर्वक यह अयोग्य कर्म करा डाला, जिसकी मैंने कभी मनमें कल्पना भी नहीं की थी। पुत्रो ! तुमलोगोंने प्रणाम करके मुझे प्रसन्न किया है; इसलिये तिर्यक् योनिमें जन्म लेनेपर भी तुम्हें परम ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानसे ही तुम्हें सन्मार्गका दर्शन होगा। तुम्हारे क्लेश और पाप धुल जायँगे तथा तुम्हारे मनमें किसी प्रकारका संशय नहीं रहेगा। इस प्रकार मेरे प्रसादसे ज्ञान पाकर तुम परम सिद्धिको प्राप्त कर लोगे।

भगवन् ! इस प्रकार पूर्वकालमें दैववश पिताने हमें शाप दे दिया। तबसे बहुत कालके बाद हम दूसरी योनिमें आये, युद्धभूमिमें उत्पन्न हुए और फिर आपके द्वारा हमलोगोंका पालन हुआ। द्विजश्रेष्ठ ! यही हमारे पक्षीयोनिमें आनेकी कहानी है। संसारमें कोई भी जीव ऐसा नहीं है, जिसे दैवके द्वारा बाधा न पहुँचती हो, क्योंकि समस्त जीव-जन्तुओंकी चेष्टा दैवके ही अधीन है।†

---

* रागात् कामः प्रभवति कामाल्लोभोऽभिजायते।
लोभाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः॥
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥
(३। ७१-७२)

† नास्त्यसाविह संसारे यो न दिष्टेन बाध्यते।
सर्वेषामेव जन्तूनां दैवाधीनं हि चेष्टितम्॥
(३। ८१)

मार्कण्डेयजी कहते हैं—उनकी बात सुनकर महाभाग शमीक मुनिने अपने पास बैठे हुए द्विजोंसे कहा—'मैंने तुमलोगोंको पहले ही बताया था कि ये साधारण पक्षी नहीं हैं, कोई श्रेष्ठ द्विज हैं, जो कि अलौकिक युद्धमें जन्म लेकर भी मृत्युको नहीं प्राप्त हुए।' तदनन्तर महात्मा शमीकने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें जानेकी आज्ञा दी। फिर वे वृक्षों और लताओंसे सुशोभित पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्यगिरिपर चले गये। तबसे आजतक वे धर्मात्मा पक्षी तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न हो समाधिके लिये दृढ़ निश्चय करके उस पर्वतपर ही निवास करते हैं।

धर्मपक्षीद्वारा जैमिनिके प्रश्नोंका उत्तर

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जैमिनि! इस प्रकार वे द्रोणके पुत्र चारों पक्षी ज्ञानी हैं और विन्ध्यगिरिपर निवास करते हैं। तुम उनकी सेवामें जाओ और उनसे ज्ञातव्य बातें पूछो।

मार्कण्डेय मुनिकी यह बात सुनकर महर्षि जैमिनि विन्ध्यपर्वतपर, जहाँ वे धर्मात्मा पक्षी रहते थे, गये। उस पर्वतके निकट पहुँचनेपर पाठ करते हुए उन पक्षियोंकी ध्वनि उनके कानोंमें पड़ी। उसे सुनकर जैमिनि बड़े विस्मयमें पड़े और इस प्रकार सोचने लगे—'अहो! ये श्रेष्ठ पक्षी बहुत ही स्पष्ट उच्चारण करते हुए पाठ कर रहे हैं; जिस अक्षरका कण्ठ-तालु आदि जो स्थान है, उसका वहींसे उच्चारण हो रहा है। बोलनेमें कितनी शुद्धता और सफाई है। ये अविराम पाठ करते जा रहे हैं, रुककर साँसतक नहीं लेते। श्वासकी गतिपर इन्होंने विजय प्राप्त कर ली है। किसी भी शब्दके उच्चारणमें कोई दोष नहीं दिखायी देता। ये यद्यपि निन्दित योनिको प्राप्त हुए हैं, तथापि सरस्वतीदेवी इनको नहीं त्याग रही हैं! यह मुझे बड़े आश्चर्यकी बात जान पड़ती है। बन्धु-बान्धवजन, मित्रगण तथा घरमें और जो प्रिय वस्तुएँ हैं, वे सभी साथ छोड़कर चली जाती हैं; परन्तु सरस्वती कभी त्याग नहीं करतीं।'*

इस प्रकार सोचते-विचारते हुए महर्षि जैमिनिने विन्ध्यपर्वतकी कन्दरामें प्रवेश किया। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, वे पक्षी शिलाखण्डपर बैठे हुए पाठ कर रहे हैं। उनपर दृष्टि पड़ते ही महर्षि जैमिनि हर्षमें भरकर बोले—'श्रेष्ठ पक्षियो! आपका कल्याण हो। मुझे व्यासजीका शिष्य जैमिनि समझिये। मैं आपलोगोंका दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठित होकर यहाँ आया हूँ। आपके पिताने अत्यन्त क्रोधमें आकर जो आपलोगोंको शाप दे दिया, और आपको पक्षियोंकी योनिमें आना पड़ा, उसके लिये खेद नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह सर्वथा दैवका ही विधान था। तपस्याका क्षय हो जानेपर मनुष्य दाता होकर भी याचक बन जाते हैं। स्वयं मारकर भी दूसरोंके हाथसे मारे जाते हैं तथा पहले दूसरोंको गिराकर भी स्वयं दूसरोंके द्वारा गिराये जाते हैं। इस प्रकार आनेवाली विपरीत दशाएँ मैंने अनेक बार देखी हैं। भावके बाद अभाव तथा अभावके बाद भाव, इस प्रकार भावाभावकी परम्परासे संसारके लोग निरन्तर व्याकुल रहते हैं। आपलोगोंको भी अपने मनमें ऐसा ही विचार करके कभी शोक नहीं करना चाहिये। शोक और हर्षके वशीभूत न होना ही ज्ञानका फल है।'

तदनन्तर उन धर्मात्मा पक्षियोंने पाद्य और अर्घ्यके द्वारा महर्षि जैमिनिका पूजन किया और उन्हें प्रणाम करके उनकी कुशल पूछी। फिर अपने पंखोंसे हवा करके उनकी थकावट दूर की। जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम ले चुके, तब पक्षियोंने कहा—'ब्रह्मन्! आज हमारा जन्म सफल हो गया। यह जीवन भी उत्तम जीवन बन गया; क्योंकि आज हमें आपके दोनों चरण-कमलोंका दर्शन मिला, जो देवताओंके लिये भी वन्दनीय हैं। हमारे शरीरमें पिताजीके क्रोधसे प्रकट हुई जो अग्नि जल रही है, वह आज आपके दर्शनरूपी जलसे सिंचकर शान्त हो गयी। ब्रह्मन्! आप कुशलसे तो हैं न? आपके आश्रममें रहनेवाले मृग, पक्षी, वृक्ष, लता, गुल्म, बाँस और भाँति-भाँतिके तृण—इन सबकी कुशल है

* बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे।
त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती॥

न ? इनपर कोई संकट तो नहीं है ? अब हमपर कृपा कीजिये और यहाँ अपने आगमनका कारण बतलाइये। हमारा कोई बहुत बड़ा भाग्य था, जो आप इन नेत्रोंके अतिथि हुए।'

जैमिनि बोले—श्रेष्ठ पक्षीगण ! मुझे महाभारत-शास्त्रमें कई सन्देह हैं। उन सबको पूछनेके लिये पहले मैं भृगुकुल-श्रेष्ठ महात्मा मार्कण्डेय मुनिके पास गया था। मेरे पूछनेपर उन्होंने कहा—'विन्ध्यपर्वतपर द्रोणके पुत्र महात्मा पक्षी रहते हैं। वे तुम्हारे प्रश्नोंका विस्तारपूर्वक उत्तर देंगे।' उनकी आज्ञासे ही मैं इस महान् पर्वतपर आया हूँ। आपलोग हमारे प्रश्नोंको पूर्णरूपसे सुनकर उनका विवेचन करें।



पक्षियोंने कहा—ब्रह्मन् ! आपका प्रश्न यदि हमारी बुद्धिके बाहर न होगा तो हम अवश्य उसका समाधान करेंगे। आप निःशङ्क होकर सुनें। विप्रवर ! चारों वेद, धर्मशास्त्र, सम्पूर्ण वेदाङ्ग तथा और भी जो वेदोंके समान माननीय इतिहास-पुराणादि हैं, उन सबमें हमारी बुद्धिका प्रवेश है; तथापि हम कोई प्रतिज्ञा नहीं कर सकते। आपको महाभारतमें जो-जो सन्दिग्ध बात जान पड़े, उसे निर्भीक होकर पूछिये।

जैमिनि बोले—पक्षियो ! आपलोगोंका अन्तःकरण निर्मल है। महाभारतमें मेरे लिये जो सन्दिग्ध बातें हैं, उन्हें बताता हूँ; सुनिये और सुनकर उनकी व्याख्या कीजिये। सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण जगत्के आधार, समस्त कारणोंके भी कारण और निर्गुण होते हुए भी मनुष्य-शरीरको कैसे प्राप्त हुए ? द्रुपदकुमारी कृष्णा अकेली ही पाँच पाण्डवोंकी महारानी क्योंकर हुई ? इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। इसके सिवा द्रौपदीके पाँच महारथी पुत्र, जिनका अभी विवाहतक नहीं हुआ था, समस्त पाण्डव जिनके रक्षक थे तथा जो स्वयं भी बड़े बलवान् थे, अनाथकी भाँति कैसे मारे गये ? महाभारतके विषयमें यह मेरा सन्देह है। आपलोग इसका निवारण करें।

पक्षियोंने कहा—जो सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी, सर्वव्यापक, सबकी उत्पत्तिके कारण, अन्तर्यामी, प्रमाणोंके अविषय, सनातन, अविनाशी, चतुर्व्यूहस्वरूप, त्रिगुणमय, निर्गुण, सबसे बड़े, अत्यन्त गौरवशाली, सर्वश्रेष्ठ तथा अमृत-स्वरूप हैं, उन भगवान् विष्णुको हम सबसे पहले नमस्कार करते हैं। जिनसे बढ़कर सूक्ष्म तथा जिनसे अधिक बड़ा भी कोई नहीं है, जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है, जो इस जगत्के आदिकारण और अजन्मा हैं, जो उत्पत्ति, लय, प्रत्यक्ष और परोक्ष—सबसे विलक्षण हैं, इस सम्पूर्ण जगत्को जिनकी रचना बतलाते हैं तथा अन्तमें जिनके भीतर इसका संहार होता है, उन परमेश्वरको हमारा नमस्कार है। तत्पश्चात् जो अपने चारों मुखोंसे ऋक्-साम आदि वेदोंका उच्चारण करते हुए तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं, उन आदि-देव ब्रह्माजीको भी हम एकाग्रचित्तसे नमस्कार करते हैं। इसी प्रकार जिनके एक ही बाणसे पराजित होकर असुरगण कभी याज्ञिकोंके यज्ञोंका विनाश नहीं करते, उन भगवान् शङ्करको भी मस्तक झुकाते हैं। इसके बाद हम अद्भुत कर्म करनेवाले व्यासजीके सम्पूर्ण मतोंकी व्याख्या करेंगे, जिन्होंने महाभारतके उद्देश्यसे धर्म आदिका रहस्य प्रकट किया है। तत्त्वदर्शी मुनियोंने जलको 'नारा' कहा है। वह नारा ही पूर्वकालमें भगवान्‌का निवासस्थान रहा, इसलिये वे नारायण कहे गये हैं।* ब्रह्मन् ! वे सर्वव्यापी भगवान् नारायणदेव सबको व्याप्त करके स्थित हैं। वे सगुण भी हैं

* आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

और निर्गुण भी। उनका प्रथम स्वरूप ऐसा है कि जिसका शब्दोंद्वारा प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। विद्वान् पुरुष उसे शुक्ल (शुद्धस्वरूप) देखते हैं। भगवान्का वह दिव्य विग्रह ज्योतिःपुञ्जसे परिपूर्ण है। वही योगी पुरुषोंकी परानिष्ठा (अन्तिम लक्ष्य) है। वह दिव्यस्वरूप दूर भी है और समीप भी। उसे सब गुणोंसे अतीत जानना चाहिये। उस दिव्यस्वरूपका ही नाम वासुदेव है। अहंता और ममताका त्याग करनेसे ही उसका साक्षात्कार होता है। रूप और वर्ण आदि काल्पनिक भाव उसमें नहीं हैं। वह सदा परम शुद्ध एवं उत्तम अधिष्ठानस्वरूप है। भगवान्का दूसरा स्वरूप शेषके नामसे प्रसिद्ध है, जो पाताललोकमें रहकर पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण करता है। इसे तिर्यक्स्वरूपको प्राप्त हुई तामसी मूर्ति कहते हैं। श्रीहरिकी तीसरी मूर्ति समस्त प्रजाके पालन-पोषणमे तत्पर रहती है। वही इस पृथ्वीपर धर्मकी निश्चित व्यवस्था करती है। धर्मका नाश करनेवाले उद्दण्ड असुरोंको मारती तथा धर्मकी रक्षामें संलग्न रहनेवाले देवताओं और साधु-संतोंकी रक्षा करती है। जैमिनिजी ! संसारमें जब-जब धर्मका ह्रास और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब वह अपनेको यहाँ प्रकट करती है।

पूर्वकालमें वही वाराहरूप धारण करके अपने थूथुनसे जलको हटाकर इस पृथ्वीको एक ही दाँतसे जलके ऊपर ऐसे उठा लायी मानो वह कोई कमलका फूल हो। उन्हीं भगवान्ने नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुका वध किया और विप्रचित्ति आदि अन्य दानवोंको मार गिराया। इसी प्रकार भगवान्के वामन आदि और भी बहुत-से अवतार हैं, जिनकी गणना करनेमें हम असमर्थ हैं। इस समय भगवान्ने मथुरामें श्रीकृष्णरूपमें अवतार लिया है। इस तरह भगवान्की वह सात्त्विकी मूर्ति ही भिन्न-भिन्न अवतार धारण करती है। यह आपके पहले प्रश्नका उत्तर बतलाया गया कि भगवान् पूर्णकाम होते हुए भी धर्म आदिकी रक्षाके लिये सदा स्वेच्छासे ही अवतीर्ण होते हैं।

ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें त्वष्टा प्रजापतिके पुत्र विश्वरूप इन्द्रके हाथसे मारे गये थे, इसलिये ब्रह्महत्याने इन्द्रको घर दबाया। इससे उनके तेजकी बड़ी क्षति हुई। इस अन्यायके कारण इन्द्रका तेज धर्मराजके शरीरमें प्रवेश कर गया, अतः इन्द्र निस्तेज हो गये। तदनन्तर अपने पुत्रके मारे जानेका समाचार सुनकर त्वष्टा प्रजापतिको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने मस्तकसे एक जटा उखाड़कर सबको सुनाते हुए यह बात कही—'आज देवताओंसहित तीनों लोक मेरे पराक्रमक देखें। वह खोटी बुद्धिवाला ब्रह्मघाती इन्द्र भी मेरी शक्तिका साक्षात्कार कर ले; क्योंकि उस दुष्टने अपने ब्राह्मणोचित कर्ममें लगे हुए मेरे पुत्रका वध किया है।' यों कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये प्रजापतिने वह जटा अग्निमें होम दी। फिर तो उस होमकुण्डसे वृत्र नामक महान् असुर प्रकट हुआ, जिसके शरीरसे सब ओर आगकी लपटें निकल रही थीं। विशाल देह, बड़ी-बड़ी दाढ़ें और कटे-छँटे कोयलेके ढेरकी भाँति शरीरका रंग था। उस महान् असुर



वृत्रासुरको अपने वधके लिये उत्पन्न देख इन्द्र भयसे व्याकुल हो उठे। उन्होंने सन्धिकी इच्छासे सप्तर्षियोंको उसके पास भेजा। सम्पूर्ण भूतोंके हितसाधनमें संलग्न रहनेवाले वे महर्षि बड़ी प्रसन्नताके साथ गये और उन्होंने कुछ शर्तोंके साथ इन्द्र और वृत्रासुरमें मित्रता करा दी। इन्द्रने सन्धिकी शर्तोंका उल्लङ्घन करके जब वृत्रासुरको मार डाला, तब पुनः उनपर ब्रह्महत्याका आक्रमण हुआ। उस समय उनका सारा बल नष्ट हो गया। इन्द्रके शरीरसे निकला हुआ बल वायु-देवतामें समा गया। तदनन्तर जब इन्द्रने गौतमका रू

धारण करके उनकी पत्नी अहल्याके सतीत्वका नाश किया, उस समय उनका रूप भी नष्ट हो गया। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गका लावण्य, जो बड़ा ही मनोरम था, व्यभिचार-दोषसे दूषित देवराज इन्द्रको छोड़कर दोनों अश्विनीकुमारोंके पास चला गया। इस प्रकार इन्द्र अपने धर्म, तेज, बल और रूपसे वञ्चित हो गये। यह जानकर दैत्योंने उन्हें जीतनेका उद्योग आरम्भ किया।

महामुने! उन दिनों पृथ्वीपर जो अधिक पराक्रमी राजा थे, उन्हींके कुलोंमें देवराजको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले अत्यन्त बलशाली दैत्य उत्पन्न हुए। कुछ कालके अनन्तर यह पृथ्वी पापके भारी भारसे पीड़ित हो मेरुपर्वतके शिखरपर, जहाँ देवताओंकी दिव्य सभा है, गयी। वहाँ पहुँचकर उसने दानवों और दैत्योंसे होनेवाले अपने खेदका कारण बतलाया। वह बोली—'देवताओ! आपने पूर्वकालमें जिन महापराक्रमी असुरोंका वध किया है, वे सब इस समय मनुष्यलोकमें जाकर राजाओंके घरमें उत्पन्न हुए हैं। ऐसे दैत्योंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं। मैं उनके भारसे पीड़ित होकर नीचेकी ओर धँसी जाती हूँ। आपलोग ऐसा कोई उपाय करें, जिससे मुझे शान्ति मिले।'

पक्षी कहते हैं—पृथ्वीके यों कहनेपर सम्पूर्ण देवता अपने-अपने तेजके अंशसे पृथ्वीपर अवतार लेने लगे। उनके अवतारके दो ही उद्देश्य थे—प्रजाजनोंका उपकार और पृथ्वीके भारका अपहरण। इन्द्रके शरीरसे जो तेज प्राप्त हुआ था, उसे स्वयं धर्मराजने कुन्तीके गर्भमें स्थापित किया। उसीसे महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरका जन्म हुआ। फिर वायु देवताने इन्द्रके ही बलको कुन्तीके उदरमें स्थापित किया। उससे भीम उत्पन्न हुए। इन्द्रके आधे अंशसे अर्जुनका जन्म हुआ। इसी प्रकार इन्द्रका ही सुन्दर रूप अश्विनीकुमारोंद्वारा माद्रीके गर्भमें स्थापित किया गया था, जिससे अत्यन्त कान्तिमान् नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। इस प्रकार देवराज इन्द्र पाँच रूपोंमें अवतीर्ण हुए। उनकी पत्नी शची ही महाभागा कृष्णाके रूपमें अग्निसे प्रकट हुई। अतः कृष्णा एकमात्र इन्द्रकी ही पत्नी थी और किसीकी नहीं। योगीश्वर भी अनेक शरीर धारण कर लेते हैं। फिर इन्द्र तो देवता हैं, उनके पाँच शरीर धारण कर लेनेमें क्या सन्देह है। इस प्रकार पाँच पाण्डवोंकी जो एक पत्नी हुई, उसका रहस्य बताया गया।

राजा हरिश्चन्द्रका चरित्र

पक्षी कहते हैं—पहलेकी बात है, त्रेतायुगमें हरिश्चन्द्र नामसे प्रसिद्ध एक राजर्षि रहते थे। वे बड़े धर्मात्मा, भूमण्डलके पालक, सुन्दर कीर्तिसे युक्त और सब प्रकारसे श्रेष्ठ थे। उनके राज्यकालमें कभी अकाल नहीं पड़ा, किसीको रोग नहीं हुआ, मनुष्योंकी अकालमृत्यु नहीं हुई और पुरवासियोंकी कभी अधर्ममें रुचि नहीं हुई। उस समय प्रजावर्गके लोग धन, वीर्य और तपस्याके मदसे उन्मत्त नहीं होते थे। कोई भी स्त्री ऐसी नहीं देखी जाती थी, जो पूर्ण यौवनावस्थाको प्राप्त किये बिना ही सन्तानको जन्म देती रही हो। एक दिन महाबाहु राजा हरिश्चन्द्र जंगलमें शिकार खेलने गये थे। वहाँ शिकारके पीछे दौड़ते हुए उन्होंने बारंबार कुछ स्त्रियोंकी कातरवाणी सुनी। वे कह रही थीं, 'हमें बचाओ, बचाओ।' राजाने शिकारका पीछा छोड़ दिया और उन स्त्रियोंको लक्ष्य करके कहा—'डरो मत, डरो मत। कौन ऐसा दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष है जो मेरे शासनकालमें भी ऐसा अन्याय करता है?' यों कहकर स्त्रियोंके रोनेके शब्दका अनुसरण करते हुए राजा उसी ओर चल दिये। इसी बीचमें प्रत्येक कार्यके आरम्भमें बाधा उपस्थित करनेवाला रुद्रकुमार विघ्नराज इस प्रकार सोचने लगा—'ये महर्षि विश्वामित्र बड़े पराक्रमी हैं और अनुपम तपस्याका आश्रय लेकर उत्तम व्रतका पालन करते हुए उन भवादि विद्याओंका साधन करते हैं, जो पहले इन्हें सिद्ध नहीं हो सकी हैं। ये महर्षि क्षमा, मौन तथा आत्मसंयमपूर्वक जिन विद्याओंका साधन करते हैं, वे उनके भयसे पीड़ित होकर यहाँ विलाप कर रही हैं। इनके उद्धारका कार्य मुझे किस प्रकार करना चाहिये?' इस प्रकार विचार करते हुए रुद्रकुमार विघ्नराजने राजाके शरीरमें प्रवेश किया। उनके आवेशसे युक्त होनेपर राजाने क्रोधपूर्वक यह बात कही—'यह कौन पापाचारी मनुष्य है, जो कपड़ेकी गठरीमें अग्निको बाँध रहा है? बल और प्रचण्ड तेजसे उद्दीप्त मुझ राजाके उपस्थित रहते हुए आज कौन ऐसा पापी है, जो

मेरे धनुषसे छूटकर सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करनेवाले बाणोंसे सर्वाङ्गमें छिन्न-भिन्न होकर कभी न टूटनेवाली निद्रामें प्रवेश करना चाहता है ?'

राजाकी यह बात सुनकर तपस्वी विश्वामित्र कुपित हो उठे । उनके मनमें क्रोधका उदय होते ही वे सम्पूर्ण विद्याएँ, जो स्त्रियोंके रूपमें रो रही थीं, क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयीं । तदनन्तर राजाने उन तपस्याके भण्डार महर्षि विश्वामित्रकी ओर दृष्टिपात किया तो वे बड़े भयभीत हुए और सहसा पीपलके पत्तेकी भाँति थरथर काँपने लगे । इतनेमें विश्वामित्र बोल उठे—'ओ दुरात्मा ! खड़ा तो रह ।' तब राजाने विनयपूर्वक मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! यह मेरा धर्म था । प्रभो ! इसे आप मेरा अपराध न मानें । मुने ! अपने धर्मकी रक्षामें लगे हुए मुझ राजापर आपको क्रोध नहीं करना चाहिये । धर्मज्ञ राजाको तो यह उचित ही है कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार दान दे, रक्षा करे और धनुष उठाकर युद्ध करे ।'



विश्वामित्र बोले—राजन् ! यदि तुम्हें अधर्मका डर है, तो शीघ्र बताओ—किसको दान देना चाहिये ? किनकी रक्षा करनी चाहिये और किनके साथ युद्ध करना चाहिये ?

हरिश्चन्द्रने कहा—श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तथा जिनकी जीविका नष्ट हो गयी हो, ऐसे अन्य मनुष्योंको भी दान देना चाहिये । भयभीत प्राणियोंकी रक्षा करनी चाहिये और शत्रुओंके साथ सदा युद्ध करना चाहिये ।*

विश्वामित्र बोले—यदि तुम राजा हो और राजधर्मको भलीभाँति जानते हो तो मैं प्रतिग्रहकी इच्छा रखनेवाला ब्राह्मण हूँ, मुझे इच्छानुसार दक्षिणा दो ।

पक्षीगण कहते हैं—महर्षिकी यह बात सुनकर राजाने अपना नया जन्म हुआ माना और प्रसन्नचित्तसे कहा ।

हरिश्चन्द्र बोले—भगवन् ! आपको मैं क्या दूँ, आप निःशङ्क होकर कहिये । यदि कोई दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तु हो तो उसे भी दी हुई ही समझें ।

विश्वामित्रने कहा—वीरवर ! तुम समुद्र, पर्वत, ग्राम और नगरोंसहित यह सारी पृथ्वी मुझे दे दो । रथ, घोड़े, हाथी, कोठार और खजानेसहित सारा राज्य भी मुझे समर्पित कर दो । इसके अतिरिक्त भी जो कुछ तुम्हारे पास है, वह मुझे दे दो । केवल अपनी स्त्री, पुत्र और शरीरको अपने पास रख लो । साथ ही अपने धर्मको भी तुम्हीं रक्खो; क्योंकि वह सदा कर्ताके ही साथ रहता है, परलोकमें जानेपर भी वह साथ जाता है ।

मुनिका यह वचन सुनकर राजाने प्रसन्नचित्तसे 'तथास्तु' कहा । हाथ जोड़कर उनकी आज्ञा स्वीकार की । उस समय उनके मुखपर शोक या चिन्ताका कोई चिह्न नहीं था ।

विश्वामित्र बोले—राजर्षे ! यदि तुमने अपना राज्य, पृथ्वी, सेना और धन आदि सर्वस्व मुझे समर्पित कर दिया तो मुझ तपस्वीके इस राज्यमें रहते किसका प्रभुत्व रहा ?

हरिश्चन्द्रने कहा—ब्रह्मन् ! मैंने जिस समय यह पृथ्वी दी है, उसी समय आप मेरे भी स्वामी हो गये । फिर आपके इस पृथ्वीके राजा होनेकी तो बात ही क्या है ।

विश्वामित्र बोले—राजन् ! यदि तुमने यह सारी पृथ्वी मुझे दान कर दी तो जहाँ-जहाँ मेरा प्रभुत्व हो, वहाँसे तुम्हें निकल जाना चाहिये । करधनी आदि समस्त आभूषणों-

* दातव्यं विप्रमुख्येभ्यो ये चान्ये कृशवृत्तयः ।
रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्तव्यं परिपन्थिभिः ॥

का संग्रह यहीं छोड़कर तुम वल्कलका वस्त्र लपेट लो और अपनी पत्नी तथा पुत्रके साथ चले जाओ।

'बहुत अच्छा' कहकर राजा हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी शैव्या तथा पुत्र रोहिताश्वको साथ ले वहाँसे जाने लगे। उस समय विश्वामित्रने उनका मार्ग रोककर कहा—'मुझे राजसूय यज्ञकी दक्षिणा दिये बिना ही तुम कहाँ जा रहे हो?'

हरिश्चन्द्र बोले—भगवन्! यह अकण्टक राज्य तो मैंने आपको दे ही दिया, अब तो मेरे पास ये तीन शरीर ही शेष बचे हैं।



विश्वामित्रने कहा—तो भी तुम्हें मुझे यज्ञकी दक्षिणा तो देनी ही चाहिये। विशेषतः ब्राह्मणोंको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके यदि न दिया जाय तो वह प्रतिज्ञा-भङ्गका दोष उस व्यक्तिका नाश कर डालता है। राजन्! राजसूय यज्ञमें ब्राह्मणोंको जितनेसे सन्तोष हो, उस यज्ञकी उतनी ही दक्षिणा देनी चाहिये। तुमने ही पहले प्रतिज्ञा की है कि देनेकी घोषणा कर देनेपर अवश्य देना चाहिये, आततायियों-से युद्ध करना चाहिये तथा आर्तजनोंकी रक्षा करनी चाहिये।

हरिश्चन्द्र बोले—भगवन्! इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है। समयानुसार अवश्य आपको दूँगा।

विश्वामित्रने कहा—राजन्! इसके लिये मुझे कितने समयतक प्रतीक्षा करनी होगी, शीघ्र बताओ।

हरिश्चन्द्र बोले—ब्रह्मर्षे! मैं एक महीनेमें आपको दक्षिणाके लिये धन दूँगा। इस समय मेरे पास धन नहीं है, अतः मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये।

विश्वामित्रने कहा—नृपश्रेष्ठ! जाओ, जाओ! अपने धर्मका पालन करो। तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो।

पक्षी कहते हैं—विश्वामित्रने जब 'जाओ' कहकर जानेकी आज्ञा दी, तब राजा हरिश्चन्द्र नगरसे चले। उनके पीछे उनकी प्यारी पत्नी शैव्या भी चली, जो पैदल चलनेके योग्य कदापि नहीं थी। रानी और राजकुमारसहित राजा हरिश्चन्द्रको नगरसे निकलते देख उनके अनुयायी सेवकगण तथा पुरवासी मनुष्य विलाप करने लगे—'हा नाथ! हम



पीड़ितोंका आप क्यों परित्याग कर रहे हैं? राजन्! आप धर्ममें तत्पर रहनेवाले तथा पुरवासियोंपर कृपा रखनेवाले हैं। राजर्षे! यदि आप धर्म समझें तो हमें भी अपने साथ ले चलें। महाराज! दो घड़ी तो ठहर जाइये। हमारे नेत्ररूपी भ्रमर आपके मुखारविन्दकी रूपसुधाका पान कर लें। फिर हमें कब आपके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा। हाय! जिन

महाराजके आगे-आगे चलनेपर पीछेसे कितने ही राजा चला करते थे, आज उन्हींके पीछे उनकी यह रानी अपने बालक पुत्रको गोद लेकर चल रही है। यात्राके समय जिनके सेवक भी हाथियोंपर बैठकर आगे जाते थे, वे ही महाराज हरिश्चन्द्र आज पैदल चल रहे हैं! हा राजन्! मनोहर भौंहों, चिकनी त्वचा तथा ऊँची नासिकासे सुशोभित आपका सुकुमार मुख मार्गमें धूलिसे धूसरित एवं क्लेशयुक्त होकर न जाने कैसी दशाको प्राप्त होगा। नृपश्रेष्ठ! ठहर जाइये, ठहर जाइये; यहीं अपने धर्मका पालन कीजिये। क्रूरताका परित्याग ही सबसे बड़ा धर्म है। विशेषतः क्षत्रियोंके लिये तो यही सबसे उत्तम है। नाथ! अब हमें स्त्री, पुत्र, धन-धान्य आदिसे क्या लेना है। यह सब छोड़कर हमलोग आपके साथ छायाकी भाँति रहेंगे। हा नाथ! हा महाराज!! हा स्वामिन्!!! आप हमें क्यों त्याग रहे हैं? जहाँ आप रहेंगे, वहीं हम भी रहेंगे। जहाँ आप हैं, वहीं सुख है। जहाँ आप हैं, वहीं नगर है और जहाँ हमारे महाराज आप हैं, वहीं हमारे लिये स्वर्ग है!'

पुरवासियोंकी ये बातें सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शोकमग्न हो उनपर दया करनेके लिये ही मार्गमें उस समय ठहर गये। विश्वामित्रने देखा, राजाका चित्त पुरवासियोंके वचनोंसे



व्याकुल हो उठा है; तब वे उनके पास आ पहुँचे और रोष तथा अमर्षसे आँखें फाड़कर बोले—'अरे! तू तो बड़ा दुराचारी, झूठा और कपटपूर्ण बातें करनेवाला है। धिक्कार है तुझे, जो मुझे राज्य देकर फिर उसे वापस ले लेना चाहता है।' विश्वामित्रका यह कठोर वचन सुनकर राजा काँप उठे और 'जाता हूँ, जाता हूँ' कहकर अपनी पत्नीका हाथ पकड़कर खींचते हुए शीघ्रतापूर्वक चले। राजा अपनी पत्नीको खींच रहे थे। वह सुकुमारी अबला चलनेके परिश्रमसे थककर व्याकुल हो रही थी, तो भी विश्वामित्रने सहसा उसकी पीठपर डंडेसे प्रहार किया। महारानीको इस प्रकार मार खाते देख महाराज हरिश्चन्द्र दुःखसे आतुर होकर केवल इतना ही कह सके, 'भगवन्! जाता हूँ।' उनके मुखसे और कोई बात नहीं निकल सकी। उस समय परम दयालु पाँच विश्वेदेव आपसमें इस प्रकार कहने लगे—'ओह! यह विश्वामित्र तो बड़ा पापी है। न जाने किन लोकोंमें जायगा। इसने यज्ञकर्ताओंमें श्रेष्ठ इन महाराजको अपने राज्यसे नीचे उतार दिया है।'

विश्वेदेवोंकी यह बात सुनकर विश्वामित्रको बड़ा रोष हुआ। उन्होंने उन सबको शाप देते हुए कहा—'तुम सब लोग मनुष्य हो जाओ।' फिर उनके अनुनय-विनयसे प्रसन्न होकर उन महामुनिने कहा—'मनुष्य होनेपर भी तुम्हारे कोई सन्तान नहीं होगी, तुम विवाह भी नहीं करोगे। तुम्हारे मनमें किसीके प्रति ईर्ष्या और द्वेष भी नहीं होगा। तुम पुनः काम-क्रोधसे मुक्त होकर देवत्वको प्राप्त कर लोगे।' तदनन्तर वे विश्वेदेव अपने अंशसे कुरुवंशियोंके घरमें अवतीर्ण हुए। वे ही द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न पाँचों पाण्डवकुमार थे। महामुनि विश्वामित्रके शापसे ही उनका विवाह नहीं हुआ। जैमिनि! इस प्रकार हमने पाण्डवकुमारोंकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाली बातें तुम्हें बतला दीं। अब और क्या सुनना चाहते हो?

जैमिनि बोले—आपलोगोंने क्रमशः मेरे प्रश्नोंके उत्तरमें ये सारी बातें बतायीं। अब मुझे हरिश्चन्द्रकी शेष कथा सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है। अहो, उन महात्माने बहुत बड़ा कष्ट उठाया। श्रेष्ठ पक्षियो! क्या उन्हें इस दुःखके अनुरूप ही कोई सुख भी कभी प्राप्त हुआ?

पक्षियोंने कहा—विश्वामित्रकी बात सुनकर राजा दुखी हो धीरे-धीरे आगे बढ़े। उनके पीछे नन्हे-से पुत्रको गोद लिये रानी शैब्या चल रही थीं। दिव्य वाराणसीपुरीके पास पहुँचकर राजाने विचार किया कि यह काशी मनुष्यकी

भोग्य भूमि नहीं है, इसपर केवल शूलपाणि भगवान् शङ्करका अधिकार है; अतः यह मेरे राज्यसे बाहर है। ऐसा निश्चय करके दुःखसे पीड़ित हो उन्होंने अपनी अनुकूल पत्नीके साथ पैदल ही काशीमें प्रवेश किया। पुरीमें प्रवेश करते ही उन्हें महर्षि विश्वामित्र सामने खड़े दिखायी दिये। उन्हें उपस्थित देख राजा हरिश्चन्द्र हाथ जोड़कर विनीत भावसे खड़े हो गये और बोले—'मुने! ये मेरे प्राण, यह पुत्र और यह पत्नी यहाँ प्रस्तुत हैं। इनमेंसे जिसकी आपको आवश्यकता हो, उसे उत्तम अर्घ्यके रूपमें स्वीकार कीजिये अथवा हमलोग यदि आपकी और कोई सेवा कर सकते हों, तो उसके लिये भी आज्ञा दीजिये।'

विश्वामित्र बोले—राजर्षे! आज एक मास पूर्ण हो गया। यदि आपको अपनी बातका स्मरण हो तो मुझे राजसूय यज्ञके लिये दक्षिणा दीजिये।

हरिश्चन्द्रने कहा—तपोधन! अभी आज ही महीना पूरा हो रहा है। उसमें आधा दिन शेष है। इतने समयतक और प्रतीक्षा कीजिये। अब अधिक देरी नहीं होगी।

विश्वामित्र बोले—महाराज! ऐसा ही सही। मैं फिर आऊँगा। यदि आज मुझे दक्षिणा न दोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा।

यों कहकर विश्वामित्र चले गये। उस समय राजा इस चिन्तामें पड़े कि पहले स्वीकार की हुई दक्षिणा मैं इन्हें किस प्रकार दूँ। क्या मैं अपने प्राण त्याग दूँ? इस अकिञ्चन दशामें किधर जाऊँ? यदि प्रतिज्ञा की हुई दक्षिणा दिये बिना ही मर जाऊँ तो ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेके कारण पापात्मा समझा जाऊँगा और मुझे अधम-से-अधम कीटयोनिमें जन्म लेना पड़ेगा। अथवा यह दक्षिणा चुकानेके लिये अपनेको बेचकर किसीकी दासता स्वीकार कर लूँ? बस, अपनेको बेचना ही ठीक है।

राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त व्याकुल एवं दीन होकर नीचा मुख किये जब इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे, उस समय उनकी पत्नीने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें कहा—'महाराज! चिन्ता छोड़िये। अपने सत्यकी रक्षा कीजिये। जो मनुष्य सत्यसे विचलित होता है, वह श्मशानकी भाँति त्याग देने योग्य है। नरश्रेष्ठ! पुरुषके लिये अपने सत्यकी रक्षासे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं बतलाया गया है। जिसका वचन निरर्थक (मिथ्या) हो जाता है, उसके



अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा दान आदि सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाते हैं। धर्मशास्त्रोंमें बुद्धिमान् पुरुषोंने सत्यको ही संसारसागरसे तारनेके लिये सर्वोत्तम साधन बताया है। इसी प्रकार जिनका मन अपने वशमें नहीं है, ऐसे पुरुषोंको पतनके गर्तमें गिरानेके लिये असत्यको ही प्रधान कारण बताया गया है।* कृति नामके राजा सात अश्वमेध और एक राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करके भी एक ही बार असत्य बोलनेके कारण स्वर्गसे गिर गये थे। महाराज! मुझसे पुत्रका जन्म हो चुका है……' इतना कहकर रानी शैव्या फूट-फूटकर रोने लगी।

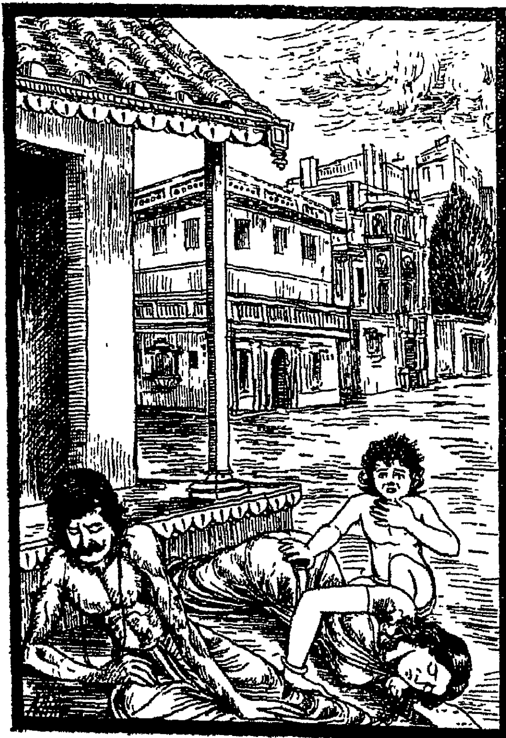
हरिश्चन्द्र बोले—कल्याणि! यह सन्ताप छोड़ो, और जो कुछ कहना चाहती थी, उसे साफ-साफ कहो।

---

* त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय।
श्मशानवद्वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः॥
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम्॥
अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः।
भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम्॥
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्।
तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम्॥
(अ० ८। १७—२०)

रानीने कहा—महाराज! मुझसे पुत्रका जन्म हो चुका है। श्रेष्ठ पुरुष स्त्री-संग्रहका फल पुत्र ही बतलाते हैं। वह फल आपको मिल चुका है, अतः मुझीको बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा चुका दीजिये।

महारानीका यह वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र मूर्च्छित हो गये। फिर होशमें आनेपर वे अत्यन्त दुखी होकर विलाप करने लगे—'कल्याणी! यह महान् दुःखकी बात है, जो तुम मुझसे ऐसा कह रही हो।' यों कहकर नरश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। महाराज हरिश्चन्द्रको पृथ्वीपर पड़ा देख रानी अत्यन्त दुःखित होकर बड़ी करुणाके साथ बोलीं—'हा महाराज! यह किसका चीता हुआ अनिष्ट फल आपको प्राप्त हुआ? आप तो रङ्कुनामक मृगके रोएँसे बने हुए कोमल एवं चिकने वस्त्रपर शयन करने योग्य हैं, किन्तु आज भूमिपर पड़े हैं। जिन्होंने करोड़ोंसे भी अधिक गोधन ब्राह्मणोंको दान दिया है, वे ही ये मेरे प्राणनाथ महाराज इस समय धरतीपर सो रहे हैं! हाय! कितने कष्टकी बात है। अरे ओ दुर्दैव! इन महाराजने तेरा क्या बिगाड़ा था, जो इन्द्र और भगवान् विष्णुके तुल्य होकर भी ये यहाँ मूर्च्छित दशामें पड़े हैं।' इतना कहकर सुन्दरी शैव्या पतिके दुःखोंके असह्य बोझसे पीड़ित हो स्वयं भी गिरकर मूर्च्छित हो गयी।



इसी बीचमें महातपस्वी विश्वामित्रजी भी आ धमके। उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रको मूर्च्छित होकर भूमिपर पड़ा देख उनपर जलके छींटे डाले और इस प्रकार कहा—'राजेन्द्र! उठो, उठो। यदि तुम्हारी दृष्टि धर्मपर हो तो मुझे पूर्वोक्त दक्षिणा दे दो। सत्यसे ही सूर्य तप रहा है। सत्यपर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य-भाषण सबसे बड़ा धर्म है। सत्यपर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। एक हजार अश्वमेध और एक सत्यको यदि तराजूपर तोला जाय तो हजार अश्वमेधसे सत्य ही भारी सिद्ध होगा।* राजन्! यदि आज तुम मुझे दक्षिणा न दोगे तो सूर्यास्त होनेपर तुम्हें निश्चय ही शाप दे दूँगा।' इतना कहकर विश्वामित्र चले गये। इधर राजा हरिश्चन्द्र उनके भयसे व्याकुल हो उठे। सोचने लगे—'हाय! मैं अधम कहाँ भागकर जाऊँ।' उनकी दशा क्रूर स्वभाववाले धनीसे पीड़ित निर्धन पुरुषकी-सी हो रही थी। उस समय उनकी पत्नीने फिर कहा—'नाथ! मेरी बात मानकर वैसा ही कीजिये, अन्यथा आपको शापाग्निसे दग्ध होकर मरना पड़ेगा।' जब पत्नीने बार-बार उन्हें प्रेरित किया, तब राजा बोले—'कल्याणी! मैं बड़ा निर्दयी हूँ। लो, अब तुम्हें बेचने चलता हूँ। क्रूर-से-क्रूर मनुष्य भी जो कार्य नहीं कर सकते, वही आज मैं करूँगा।' पत्नीसे यों कहकर राजा व्याकुलचित्तसे नगरमें गये और नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए गद्गदकण्ठसे बोले।

---

* सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी।
सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥

(अ० ८। ४१-४२)



राजाने कहा—ओ नागरिको ! तुम सब लोग मेरी बात सुनो, क्या तुम मेरा परिचय पूछ रहे हो ? लो, सुनो, मैं मनुष्य नहीं, अत्यन्त क्रूर प्राणी हूँ; क्योंकि अपनी प्राणप्यारी पत्नीको यहाँ बेचनेके लिये आया हूँ। यदि आपलोगोंमेंसे किसीको मेरी इस प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतमा पत्नीसे दासीका काम लेनेकी आवश्यकता हो तो वह शीघ्र बोले; इस असह्य दुःखमें भी जबतक मैं जीवन धारण किये हुए हूँ, तभीतक बात कर ले।

तदनन्तर कोई बूढ़ा ब्राह्मण सामने आकर राजासे बोला—'दासीको मेरे हवाले करो। मैं इसे धन देकर खरीदता हूँ। मेरे पास धन बहुत है और मेरी प्यारी पत्नी अत्यन्त सुकुमारी है। वह घरके काम-काज नहीं कर सकती। इसलिये यह दासी मुझे दे दो। तुम अपनी इस पत्नीकी कार्यदक्षता, अवस्था, रूप और स्वभावके अनुरूप यह धन लो और इसे मेरे हवाले करो।' ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो गया। वे उसे कोई उत्तर न दे सके। तब उस ब्राह्मणने राजाके वल्कल-वस्त्रमें उस धनको अच्छी तरह बाँध दिया और उनकी पत्नीको खींचकर वह अपने साथ ले चला। माताको इस दशामें देखकर बालक रोहिताश्व रो उठा और हाथसे उसका वस्त्र पकड़कर अपनी ओर खींचने लगा। उस समय रानीने



अपने पुत्रसे कहा—'बेटा ! आओ, जी भरकर देख लो। तुम्हारी माता अब दासी हो गयी। तुम राजपुत्र हो, मेरा स्पर्श न करो। अब मैं तुम्हारे स्पर्श करनेयोग्य न रही।' फिर सहसा अपनी माताको खींचकर ले जाये जाते हुए देख बालक रोहिताश्व 'मा, मा' कहकर रोता हुआ दौड़ा। उस समय उसके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। जब बालक पास आया, तब उस ब्राह्मणने क्रोधमें भरकर उसे लातसे मारा, तो भी उसने अपनी माको नहीं छोड़ा। केवल 'माई, माई' कहकर विलखता रहा।

तब रानीने ब्राह्मणसे कहा—स्वामिन् ! आप मुझपर कृपा कीजिये। इस बालकको भी खरीद लीजिये। यद्यपि आपने मुझे खरीद लिया है, तथापि इस बालकके बिना मैं आपके कार्यको अच्छी तरह नहीं कर सकती। मैं बड़ी अभागिनी हूँ। आप मुझपर दया करके प्रसन्न हों और बछड़ेसे गायकी तरह इस बालकसे मुझे मिलाइये।

ब्राह्मण बोला—राजन् ! यह धन लो और इस बालकको भी मेरे हवाले करो।

यों कहकर उसने पूर्ववत् राजाके उत्तरीय-खण्डमें वह धन बाँध दिया और बालकको उसकी माताके साथ लेकर चल दिया। इस प्रकार पत्नी और पुत्रको ले जाये जाते देख राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखसे कातर हो गये और विलाप करने



लगे—'हाय! पहले जिसे वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा बाहरी लोग कभी नहीं देख पाते थे, वही मेरी पत्नी आज दासी बन गयी। जिसके हाथोंकी अँगुलियाँ अत्यन्त सुकुमार हैं, वह सूर्यवंशमें उत्पन्न मेरा बालक आज बेच दिया गया। हा प्रिये! हा पुत्र!! हा वत्स!!! मुझ नीचके अन्यायसे तुम्हें दैवाधीन दशाको प्राप्त होना पड़ा। फिर भी मेरी मृत्यु नहीं होती—मुझे धिक्कार है।'

राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार विलाप कर रहे थे, इतनेमें ही वह ब्राह्मण उन दोनोंको साथ ले ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और गृह आदिकी ओटमें छिप गया। वह बड़ी शीघ्रतासे चल रहा था। तदनन्तर विश्वामित्रने वहाँ पहुँचकर राजासे धन माँगा। हरिश्चन्द्रने भी वह धन उन्हें समर्पित कर दिया। पत्नी और पुत्रको बेचनेसे प्राप्त हुए उस धनको थोड़ा देखकर कौशिक मुनिने शोकाकुल राजासे कुपित होकर कहा—'क्षत्रियाधम! क्या तू इसीको मेरे यज्ञके अनुरूप दक्षिणा मानता है? यदि ऐसी बात है तो मेरे महान् बलको देख। अपनी भलीभाँति की हुई तपस्याका, निर्मल ब्राह्मणत्वका, उग्र प्रभावका तथा विशुद्ध स्वाध्यायका बल तुझे दिखाता हूँ।'

हरिश्चन्द्रने कहा—भगवन्! कुछ काल और प्रतीक्षा कीजिये। और भी दक्षिणा दूँगा। इस समय नहीं है। मेरी पत्नी और पुत्र बिक चुके हैं।

विश्वामित्रने कहा—राजन्! दिनका चौथा भाग शेष है। इतने ही समयतक मुझे प्रतीक्षा करनी है। बस, इसके उत्तरमें तुम्हें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

राजा हरिश्चन्द्रसे इस प्रकार निर्दयतापूर्ण निष्ठुर वचन कहकर और उस धनको लेकर कोपमें भरे हुए विश्वामित्र तुरंत वहाँसे चल दिये। उनके जानेपर राजा भय और शोकके समुद्रमें डूब गये; उन्होंने सब प्रकारसे विचार करके अपना कर्तव्य निश्चित किया और नीचा मुँह करके आवाज लगायी—'जो मनुष्य मुझे धनसे खरीदकर दासका काम लेना चाहता हो, वह सूर्यके रहते-रहते शीघ्र ही बोले।' उसी समय धर्म चाण्डालका रूप धारण करके तुरंत वहाँ आये। उस चाण्डालके शरीरसे दुर्गन्ध निकल रही थी। विकृत आकार, रूखा बदन, दाढ़ी-मूँछें बढ़ी हुई और दाँत निकले हुए थे। निर्दयताकी तो वह मूर्ति ही था। काला रंग, लंबा पेट, पीलापन लिये हुए रूखे नेत्र और कठोर वाणी—यही उसकी हुलिया थी। उसने झुंड-के-झुंड पक्षियोंको पकड़ रक्खा था। मुर्दोंपर चढ़ी हुई मालाओंसे वह अलङ्कृत था। उसने एक हाथमें खोपड़ी और दूसरेमें लाठी ले रक्खी थी। उसका मुँह बहुत बड़ा था। वह देखनेमें भयानक तथा बारंबार बहुत बकवाद करनेवाला था। कुत्तोंसे घिरे होनेके कारण उसकी भयंकरता और भी बढ़ गयी थी।

चाण्डाल बोला—मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। तुम शीघ्र ही अपनी कीमत बताओ। थोड़े अथवा बहुत, जितने धनसे तुम प्राप्त हो सको, उसे कहो।

चाण्डालकी दृष्टिसे क्रूरता टपक रही थी। वह बड़ी निष्ठुरताके साथ बातें करता था। देखनेसे अत्यन्त दुराचारी प्रतीत होता था। इस रूपमें उसे देखकर राजाने पूछा—'तू कौन है?'



चाण्डालने कहा-मैं चाण्डाल हूँ। इस श्रेष्ठ नगरीमें मुझे सब लोग प्रवीरके नामसे पुकारते हैं। मैं वध्य मनुष्यों-का वध करनेवाला और मुर्दोंका वस्त्र लेनेवाला प्रसिद्ध हूँ।

हरिश्चन्द्र बोले-मैं चाण्डालका दास होना नहीं चाहता। वह बहुत ही निन्दित कर्म है। शापाग्निसे जल मरना अच्छा, किन्तु चाण्डालके अधीन होना कदापि अच्छा नहीं है।

वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि महान् तपस्वी विश्वामित्र मुनि आ पहुँचे और क्रोध एवं अमर्षसे आँखें फाड़कर राजासे बोले—'यह चाण्डाल तुम्हें बहुत-सा धन देनेके लिये उपस्थित है। उसे ग्रहण करके मुझे यज्ञकी पूरी दक्षिणा क्यों नहीं देते ? यदि तुम चाण्डालके हाथ अपनेको बेचकर उससे मिला हुआ धन मुझे नहीं दोगे, तो मैं निःसन्देह तुम्हें शाप दे दूँगा।'

हरिश्चन्द्रने कहा-ब्रह्मर्षे! मैं आपका दास हूँ, दुखी हूँ, भयभीत हूँ और विशेषतः आपका भक्त हूँ। आप मुझपर कृपा करें। चाण्डालका सम्पर्क बड़ा ही निन्दनीय है। मुनिश्रेष्ठ! शेष धनके बदले मैं आपका ही सब कार्य करनेवाला, आपके अधीन रहनेवाला तथा आपकी इच्छाके अनुसार चलनेवाला दास बनकर रहूँगा।

विश्वामित्र बोले-यदि तुम मेरे दास हो तो मैंने एक अरब स्वर्णमुद्रा लेकर तुम्हें चाण्डालको दे दिया। अब तुम उसके दास हो गये।

मुनिके ऐसा कहनेपर चाण्डाल मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने विश्वामित्रको धन देकर राजाको बाँध लिया



और उन्हें डंडोंकी मारसे अचेत-सा करता हुआ वह अपने घरकी ओर ले चला। उस समय राजाकी इन्द्रियाँ अत्यन्त व्याकुल हो गयी थीं। तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालके घरमें रहने लगे। वे प्रतिदिन सबेरे, दोपहर और शामको निम्नाङ्कित बातें गुनगुनाया करते थे। 'हाय! मेरी दीनमुखी पत्नी अपने आगे दीनमुख बालक रोहिताश्वको देखकर अत्यन्त दुःखमें मग्न हो जाती होगी और उस समय इस आशासे कि राजा धन कमाकर हम दोनोंको छुड़ायेंगे, बारंबार मेरा स्मरण करती होगी। उसे इस बातका पता न होगा कि मैं ब्राह्मणको और भी अधिक धन देकर अत्यन्त पापमय संसर्गमें जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। राज्यका नाश, सुहृदोंका त्याग, पत्नी और पुत्रका विक्रय तथा अन्तमें चाण्डालत्वकी प्राप्ति—अहो! यह एकके बाद एक दुःखकी कैसी परम्परा चली आती है।'

इस प्रकार वे चाण्डालके घरमें रहते हुए प्रतिदिन अपने प्रिय पुत्र तथा अनुकूल पत्नीका स्मरण किया करते थे। अपना

सर्वस्व छिन जानेके कारण राजा बहुत व्याकुल रहते थे। कुछ कालके बाद राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालके वशमें होनेके कारण श्मशानघाटपर मुर्दोंके कपड़े (कफन) संग्रह करनेके काममें नियुक्त हुए। चाण्डालने उन्हें आज्ञा दी थी कि 'तुम मुर्दोंके आनेकी प्रतीक्षामें रात-दिन यहीं रहो।' यह आदेश पाकर राजा काशीपुरीके दक्षिण श्मशान-भूमिमें बने हुए शवमन्दिरमें गये। उस श्मशानमें बड़ा भयङ्कर शब्द होता था। वहाँ सैकड़ों सियारिनें भरी रहती थीं। चारों ओर मुर्दोंकी खोपड़ियाँ बिखरी पड़ी थीं। सारा श्मशान दुर्गन्धसे व्याप्त और अत्यन्त धूमसे आच्छादित था। उसमें पिशाच, भूत, वेताल, डाकिनी और यक्ष रहा करते थे। गिद्धों और गीदड़ोंसे भी वह स्थान भरा रहता था। झुंड-के-झुंड कुत्ते उसे घेरे रहते थे। यत्र-तत्र हड्डियोंके ढेर लगे हुए थे। सब ओरसे बड़ी दुर्गन्ध आती थी। अनेकों मृत व्यक्तियोंके बन्धु-बान्धवोंके करुण-क्रन्दनसे वह श्मशान-भूमि बड़ी ही भयानक और कोलाहलपूर्ण रहती थी। 'हा पुत्र! हा मित्र! हा बन्धु! हा भ्राता! हा वत्स! हा प्रियतम! हा पतिदेव! हाय बहिन! हा माता! हा मामा! हा पितामह! हा मातामह! हा पिताजी! हा पौत्र! हा बान्धव! तुम कहाँ चले गये! लौट आओ।' इस प्रकार विलाप करनेवालोंकी करुणापूर्ण ध्वनि वहाँ जोर-जोरसे सुनायी पड़ती थी। ऐसी भूमिमें निवास करनेके कारण राजा न रातमें सो पाते थे, न



दिनमें। बारंबार हाहाकार करते रहते थे। इस प्रकार उनके बारह महीने सौ वर्षोंके समान बीते। अन्तमें राजाने दुखी होकर देवताओंकी शरण ली और कहा—'महान् धर्मको नमस्कार है। जो सच्चिदानन्दस्वरूप, सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले विधाता, परात्पर ब्रह्म, शुद्ध, पुराणपुरुष एवं अविनाशी हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। देवगुरु बृहस्पति! तुम्हें नमस्कार है। इन्द्रको भी नमस्कार है।' यों कहकर राजा पुनः चाण्डालके कार्यमें लग गये।

तदनन्तर महाराज हरिश्चन्द्रकी पत्नी शैब्या साँपके काटनेसे मरे हुए अपने बालकको गोदमें उठाये विलाप करती हुई श्मशान-भूमिमें आयी। वह बार-बार यही कहती थी, 'हा वत्स! हा पुत्र! हा शिशो!' उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। कान्ति मलिन पड़ गयी थी। मन बेचैन था। सिरके बालोंमें धूल जम गयी थी। शैब्याके विलापका शब्द सुनकर राजा हरिश्चन्द्र तुरंत उसके पास गये। उन्हें आशा थी, वहाँ भी मुर्देके शरीरका कफन मिलेगा। वे जोर-जोरसे रोती हुई अपनी पत्नीको पहचान न सके। अधिक कालतक प्रवासमें रहनेके कारण वह बहुत सन्तप्त थी। ऐसी जान पड़ती थी, मानो उसका दूसरा जन्म हुआ हो। शैब्याने भी पहले उनके मस्तकको मनोहर केशोंसे सुशोभित देखा था। अब उनके सिरपर जटा थी। वे सूखे हुए वृक्षके समान जान पड़ते थे। इस अवस्थामें वह भी अपने पतिको न पहचान सकी। राजाने काले कपड़ेमें लिपटे हुए बालकको, जिसे साँपने काट खाया था तथा जिसके अङ्गोंमें राजोचित चिह्न दिखायी देते थे, जब देखा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे— 'अहो! बड़े कष्टकी बात है, यह बालक किसी राजाके कुलमें उत्पन्न हुआ था; किन्तु दुरात्मा कालने इसे किसी और ही दशाको पहुँचा दिया। अपनी माताकी गोदमें पड़े हुए इस बालकको देखकर मुझे कमलके समान नेत्रोंवाला अपना पुत्र रोहिताश्व याद आ रहा है। यदि उसे भयंकर कालने अपना ग्रास न बनाया होगा तो वह मेरा लाड़ला भी इसी उम्रका हुआ होगा।'

इतनेमें ही रानीने विलाप करते हुए कहा—हा वत्स! किस पापके कारण यह अत्यन्त भयंकर दुःख आ पड़ा है, जिसका कभी अन्त ही नहीं आता। हा प्राणनाथ! आप कहाँ हैं? ओ विधाता! तूने राज्यका नाश किया, सुहृदोंसे विछोह कराया और स्त्री तथा पुत्रको भी बिकवा दिया। अरे! तूने राजर्षि हरिश्चन्द्रकी कौन-सी दुर्दशा नहीं की।

रानीका यह वचन सुनकर अपने पथसे भ्रष्ट हुए राजा हरिश्चन्द्रने अपनी प्राणप्यारी पत्नी तथा मृत्युके मुखमें पड़े हुए पुत्रको पहचान लिया। 'ओह! कितने कष्टकी बात है, यह शैब्या इस अवस्थामें और यह वही मेरा पुत्र है?' यों कहते हुए वे दुःखसे सन्तप्त होकर रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। इस अवस्थामें पहुँचे हुए राजाको पहचानकर रानीको भी बड़ा दुःख हुआ। वह भी मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। उसका शरीर निश्चेष्ट हो गया। फिर थोड़ी देर बाद होशमें आनेपर महाराज और महारानी दोनों साथ-ही-साथ शोकके भारसे पीड़ित एवं सन्तप्त हो विलाप करने लगे।

राजाने कहा-हा वत्स! सुन्दर नेत्र, भौंह, नासिका और बालोंसे युक्त तुम्हारा यह सुकुमार एवं दीन मुख देखकर मेरा हृदय क्यों नहीं विदीर्ण हो जाता। हा बेटा! तुम मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गसे उत्पन्न तथा मन और हृदयको आनन्द देनेवाले थे, किन्तु मुझ-जैसे दुष्ट पिताने तुम्हें एक साधारण वस्तुकी भाँति बेच डाला। हाय! दुर्दैवरूपी क्रूर सर्पने सब प्रकारके साधन और वैभवसे पूर्ण मेरे महान् राज्यका अपहरण करके अब मेरे पुत्रको भी काट खाया। दैवरूपी सर्पसे डसे हुए अपने पुत्रके मुख-कमलको देखते हुए भी मैं इस समय उसीके भयंकर विषके प्रभावसे अंधा हो रहा हूँ।

आँसू बहाते हुए गद्गदकण्ठसे यों कहकर राजाने बालकको उठा छातीसे लगा लिया और मूर्च्छासे निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

उस समय रानी इस प्रकार बोली-ये तो वही नरश्रेष्ठ जान पड़ते हैं। केवल स्वरसे इनकी पहचान हो रही है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ये विद्वज्जनोंके हृदयरूपी चकोरको आह्लादित करनेवाले चन्द्ररूप महाराज हरिश्चन्द्र ही हैं; किन्तु वे महाराज इस समय श्मशानमें कैसे आ पहुँचे?

अब शैब्या पुत्रशोकको भूलकर गिरे हुए पतिको देखने लगी। पति और पुत्र दोनोंकी चिन्तासे पीड़ित, विस्मित एवं दीन हुई रानी जब पतिकी दशाका निरीक्षण कर रही थी, उस समय उसकी दृष्टि अपने स्वामीके उस दण्डपर पड़ी, जो बहुत ही घृणित एवं चाण्डालके धारण करने योग्य था। यह देखते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ी। फिर धीरे-धीरे जब चेत हुआ तो गद्गद वाणीमें कहने लगी—'ओ दैव! तूने देवताके समान कान्तिमान् इन महाराजको चाण्डालकी



दशाको पहुँचा दिया। तूने इनके राज्यका नाश, सुहृदोंका त्याग और स्त्री-पुत्रका विक्रय कराकर भी इन्हें नहीं छोड़ा। आखिर इन्हें राजासे चाण्डाल बना दिया! हा राजन्! आज मैं आपके पास छत्र, झारी, चँवर और व्यजन—कुछ भी नहीं देखती। यह विधाताका कैसा विपरीत भाव है! पूर्वकालमें जिनके आगे-आगे चलनेपर कितने ही राजा सेवक बनकर अपनी चादरोंसे धरती बुहारा करते थे, वे ही महाराज अब दुःखसे पीडित हो इस अपवित्र श्मशानभूमिमें विचरते हैं, जहाँ खोपड़ियोंसे लगे हुए कितने ही घड़े चारों ओर भरे पड़े हैं। जहाँ मृतकोंकी लाशसे चर्बी गल-गलकर पृथ्वीके सूखे दोनोंमें पड़ रही है। चिताकी राख, अँगारे, अधजली हड्डियों और मज्जाके ढेरसे यहाँकी भयंकरता बहुत बढ़ गयी है। यहाँसे गृध्रों और गीदड़ोंके भयंकर नाद सुनकर छोटे-छोटे पक्षी भाग गये हैं। चिताके धुएँसे यहाँकी सारी दिशाएँ काली दिखायी देती हैं।'

यों कहकर महारानी शैब्या महाराज हरिश्चन्द्रके कण्ठमें लग गयी तथा कष्ट एवं सैकड़ों प्रकारके शोकसे आक्रान्त हो आर्त्तवाणीमें विलाप करने लगी—'राजन्! यह स्वप्न है या सत्य? महाभाग! आप इसे जैसा समझते हों, बतलायें। मेरा मन अचेत होता जा रहा है।'

रानीकी यह बात सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने गरम साँस ली और गद्गद वाणीमें अपनेको चाण्डालत्व प्राप्त होनेकी सारी कथा कह सुनायी। उसे सुनकर रानीको बड़ा दुःख हुआ और उसने गरम साँस खींचकर बहुत देरतक रोनेके पश्चात् अपने पुत्रकी मृत्युकी यथार्थ घटना निवेदित की। पुत्रके मरनेकी बात सुनकर राजा पुनः पृथ्वीपर गिर पड़े और विलाप करते हुए बोले—'प्रिये! अब मैं अधिक दिनोंतक जीवित रहकर क्लेश भोगना नहीं चाहता; परन्तु मेरा अभाग्य तो देखो, मेरा आत्मा भी मेरे अधीन नहीं है। तुम मेरे अपराधोंको क्षमा करना। मैं आज्ञा देता हूँ, तुम ब्राह्मणके घर चली जाओ। शुभे! 'मैं राजपत्नी हूँ', इस अभिमानमें आकर कभी उस ब्राह्मणका अपमान न करना। सब प्रकारसे यत्न करके उसे सन्तुष्ट रखना; क्योंकि स्वामी देवताके समान होता है।'

रानी बोली—राजर्षे! मुझसे भी अब यह दुःखका भार नहीं सहा जाता, अतः आपके साथ ही मैं भी चिताकी जलती हुई आगमें प्रवेश करूँगी।

यह सुनकर राजाने कहा—'पतिव्रते! जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा ही करो।' तदनन्तर राजाने चिता बनाकर उसके ऊपर अपने पुत्रको रक्खा और अपनी पत्नीके साथ हाथ जोड़कर सबके ईश्वर परमात्मा नारायण श्रीहरिका स्मरण किया, जो हृदयरूपी गुफामें विराजमान हैं तथा जिनका वासुदेव, सुरेश्वर, आदि-अन्तरहित, ब्रह्म, कृष्ण, पीताम्बर एवं शुभ आदि नामोंसे चिन्तन किया जाता है। उनके इस प्रकार भगवत्स्मरण करनेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता धर्मको अगुआ बनाकर तुरंत वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'राजन्! हमारी बात सुनो, तुम्हारे स्मरण करनेपर सम्पूर्ण देवता यहाँ उपस्थित हुए हैं। ये साक्षात् पितामह ब्रह्माजी हैं और ये स्वयं भगवान् धर्म हैं। इनके सिवा साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण और लोकपाल भी अपने वाहनोंसहित पधारे हैं। नाग, सिद्ध, गन्धर्व, रुद्र, अश्विनीकुमार तथा और भी बहुत-से देवता यहाँ उपस्थित हुए हैं। साथ ही बाबा विश्वामित्रजी भी हैं।'

तत्पश्चात् धर्मने कहा—राजन्! प्राण त्यागनेका साहस न करो। मैं साक्षात् धर्म तुम्हारे पास आया हूँ। तुमने अपने क्षमा, इन्द्रियसंयम तथा सत्य आदि गुणोंसे मुझे सन्तुष्ट किया है।

इन्द्र बोले—महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र तुम्हारे पास आया हूँ। तुमने स्त्री-पुत्रके साथ सनातन लोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है। राजन्! पत्नी और पुत्रको साथ लेकर स्वर्गलोकको चलो, जिसे तुमने अपने शुभकर्मोंसे प्राप्त किया है तथा जो दूसरे मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है।

इसके बाद इन्द्रने चिताके ऊपर आकाशसे अमृतकी वृष्टि की, जो अकालमृत्युका निवारण करनेवाली है। फिर फूलोंकी भी वर्षा होने लगी। देवताओंकी दुन्दुभि जोर-जोरसे बज उठी। इस प्रकार वहाँ एकत्रित हुए देवताओंके समाजमें महात्मा राजाका पुत्र रोहिताश्व चितासे जीवित हो उठा।



उसका शरीर सुकुमार और स्वस्थ था। उसकी इन्द्रियों और मनमें प्रसन्नता थी। फिर तो महाराज हरिश्चन्द्रने अपने पुत्रको तुरंत छातीसे लगा लिया। वे स्त्रीसहित पूर्ववत् तेज और कान्तिसे सम्पन्न हो गये। उनकी देहपर दिव्य हार और वस्त्र शोभा पाने लगे। राजा स्वस्थ एवं पूर्णमनोरथ हो परम आनन्दमें निमग्न हो गये। उस समय इन्द्रने पुनः उनसे कहा—'महाभाग! स्त्री और पुत्रसहित तुम्हें उत्तम गति प्राप्त होगी, अतः अपने कर्मोंके फल भोगनेके लिये दिव्य लोकको चलो।'

हरिश्चन्द्रने कहा—देवराज! मैं अपने स्वामी चाण्डालकी आज्ञा लिये बिना तथा उसके ऋणसे उद्धार पाये बिना देवलोकको नहीं चल सकूँगा।*

* देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन वै।
अगत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्येऽहं सुरालयम्॥
(अ० ८। २४८)

हरिश्चन्द्रको धर्म और इन्द्रका परमधाममें चलनेके लिये अनुरोध



आरोह त्रिदिवं राजन् भार्यापुत्रसमन्वितः ।
सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥

धर्म बोले—राजन्! तुम्हारे इस भावी संकटको जानकर मैंने ही मायासे अपनेको चाण्डालके रूपमें प्रकट किया तथा चाण्डालत्वका प्रदर्शन किया था।

इन्द्रने कहा—हरिश्चन्द्र! पृथ्वीके समस्त मनुष्य जिस परमधामके लिये प्रार्थना करते हैं, केवल पुण्यवान् मनुष्योंको प्राप्त होनेवाले उस धामको चलो।

हरिश्चन्द्र बोले—देवराज! आपको नमस्कार है। मेरा यह वचन सुनिये; आप मुझपर प्रसन्न हैं, अतएव मैं विनीत-भावसे आपके सम्मुख कुछ निवेदन करता हूँ। अयोध्याके सब मनुष्य मेरे विरह-शोकमें मग्न हैं। आज उन्हें छोड़कर मैं दिव्य-लोकको कैसे जाऊँगा? ब्राह्मणकी हत्या, गुरुकी हत्या, गौका वध और स्त्रीका वध—इन सबके समान ही भक्तोंका त्याग करनेमें भी महान् पाप बताया गया है। जो दोषरहित एवं त्यागनेके अयोग्य भक्त पुरुषको त्याग देता है, उसे इहलोक या परलोकमें कहीं भी सुखकी प्राप्ति नहीं दिखायी देती; इसलिये इन्द्र! आप स्वर्गको लौट जाइये। सुरेश्वर! यदि अयोध्यावासी पुरुष मेरे साथ ही स्वर्ग चल सकें तब तो मैं भी चलूँगा; अन्यथा उन्हींके साथ नरकमें भी जाना मुझे स्वीकार है।



इन्द्रने कहा—राजन्! उन सब लोगोंके पृथक्-पृथक् नाना प्रकारके बहुतसे पुण्य और पाप हैं। फिर तुम स्वर्गको सबका भोग्य बनाकर वहाँ कैसे चल सकोगे?

हरिश्चन्द्र बोले—इन्द्र! राजा अपने कुटुम्बियोंके ही प्रभावसे राज्य भोगता है। प्रजावर्ग भी राजाका कुटुम्बी ही है। उन्हींके सहयोगसे राजा बड़े-बड़े यज्ञ करता, पोखरे खुदवाता और बगीचे आदि लगवाता है। यह सब कुछ मैंने अयोध्यावासियोंके प्रभावसे किया है, अतः स्वर्गके लोभमें पड़कर मैं अपने उपकारियोंका त्याग नहीं कर सकता। देवेश! यदि मैंने कुछ भी पुण्य किया हो, दान, यज्ञ अथवा जपका अनुष्ठान मुझसे हुआ हो, उन सबका फल उन सबके साथ ही मुझे मिले। उसमें उनका समान अधिकार हो।*

'ऐसा ही होगा' यों कहकर त्रिभुवनपति इन्द्र, धर्म और गाधिनन्दन विश्वामित्र मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। लोगोंपर अनुग्रह रखनेवाले देवेन्द्रने स्वर्गलोकसे भूतलतक करोड़ों विमानोंका ताँता बाँध दिया। फिर चारों वर्णों और आश्रमोंसे युक्त अयोध्या नगरमें प्रवेश करके राजा हरिश्चन्द्रके समीप ही देवराज इन्द्रने कहा—'प्रजाजनो! तुम सब लोग शीघ्र

---

* हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चैतन्निबोध मे।
प्रसादसुमुखं यत् त्वां ब्रवीमि प्रश्रयान्वितः॥
मच्छोकमग्नमनसः कोसलानगरे जनाः।
तिष्ठन्ति तानपोह्याद्य कथं यास्याम्यहं दिवम्॥
ब्रह्महत्या गुरोर्घातो गोवधः स्त्रीवधस्तथा।
तुल्यमेभिर्महापापं भक्तत्यागेऽप्युदाहृतम्॥
भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतः सुखम्।
नेह नामुत्र पश्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज॥
यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर।
ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह॥

इन्द्र उवाच

बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै पृथक्।
कथं सङ्घातभोग्यं त्वं भूयः स्वर्गमवाप्स्यसि॥

हरिश्चन्द्र उवाच

शक्र भुङ्क्ते नृपो राज्यं प्रभावेण कुटुम्बिनाम्।
यजते च महायज्ञैः कर्म पौर्त्तं करोति च॥
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम्।
उपकर्तॄन् न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया॥
तस्माद् यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम्।
दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः॥

(अ० ८। २५१—२५९)

पक्षी कहते हैं—तब पुत्रकी बातपर श्रद्धा करते हुए पिताने उससे वही बात पूछी, जो आपने अभी संसारमें जन्म ग्रहण करनेके सम्बन्धमें हमलोगोंसे पूछी है।

पुत्रने कहा—पिताजी ! जिस प्रकार मैंने तत्त्वका बारंबार अनुभव किया है, उसे बतलाता हूँ; सुनिये । यह क्षणभङ्गुर संसार-चक्र प्रवाहरूपसे अजर है, निरन्तर चलते रहनेवाला है, कभी स्थिर नहीं रहता। तात ! आपकी आज्ञासे मैं मृत्युकालसे लेकर अबतककी सब बातोंका वर्णन करता हूँ। शरीरमें जो गर्मी या पित्त है, वह तीव्र वायुसे प्रेरित होकर जब अत्यन्त कुपित हो जाता है, उस समय बिना ईंधनके ही उद्दीप्त हुई अग्निकी भाँति बढ़कर मर्म-स्थानोंको विदीर्ण कर देता है, तत्पश्चात् उदान नामक वायु ऊपरकी ओर उठता है और खाये-पीये हुए अन्न-जलको नीचेकी ओर जानेसे रोक देता है। उस आपत्तिकी अवस्थामें भी उसीको प्रसन्नता रहती है, जिसने पहले जल, अन्न एवं रसका दान किया है। जिस पुरुषने श्रद्धासे पवित्र किये हुए अन्तःकरणके द्वारा पहले अन्नदान किया है, वह उस रुग्णावस्थामें अन्नके बिना भी तृप्ति लाभ करता है। जिसने कभी मिथ्या भाषण नहीं किया, दो प्रेमियोंके पारस्परिक प्रेममें बाधा नहीं डाली तथा जो आस्तिक और श्रद्धालु है, वह सुख-पूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है। जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहते, किसीकी निन्दा नहीं करते, तथा सात्त्विक, उदार और लज्जाशील होते हैं, ऐसे मनुष्योंको मृत्युके समय कष्ट नहीं होता। जो कामनासे, क्रोधसे अथवा द्वेषके कारण धर्मका त्याग नहीं करता, शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाला तथा सौम्य होता है, उसकी मृत्यु भी सुखसे होती है। जिन्होंने कभी जलका दान नहीं किया है, उन मनुष्योंको मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अधिक जलन होती है तथा अन्नदान न करनेवालोंको उस समय भूखका भारी कष्ट भोगना पड़ता है। जो लोग जाड़ेके दिनोंमें लकड़ी दान करते हैं, वे शीतके कष्टको जीत लेते हैं। जो चन्दन दान करते हैं, वे तापपर विजय पाते हैं तथा जो किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाते, वे मृत्युकालमें प्राणघातिनी वेदनाका अनुभव नहीं करते। मोह और अज्ञान फैलानेवाले लोग महान् भयको प्राप्त होते हैं। नीच मनुष्य तीव्र वेदनाओंसे पीड़ित होते रहते हैं। जो झूठी गवाही देते, झूठ बोलते, बुरी बातोंका उपदेश देते और वेदोंकी निन्दा करते हैं, वे सब लोग मूर्च्छाग्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त होते हैं।

ऐसे लोगोंकी मृत्युके समय यमराजके दुष्ट दूत हाथोंमें हथौड़ी एवं मुद्गर लिये आते हैं, वे बड़े भयङ्कर होते हैं और उनकी देहसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन यमदूतोंपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्य काँप उठता है और भ्राता, माता तथा पुत्रोंका नाम लेकर बारंबार चिल्लाने लगता है। उस समय उसकी वाणी स्पष्ट समझमें नहीं आती। एक ही शब्द, एक ही आवाज-सी जान पड़ती है। भयके मारे रोगीकी आँखें झूमने लगती हैं और उसका मुख सूख जाता है। उसकी साँस ऊपरको उठने लगती है। दृष्टिकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है, फिर वह अत्यन्त वेदनासे पीड़ित होकर उस शरीरको छोड़ देता है और वायुके सहारे चलता हुआ वैसे ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है, जो रूप, रंग और अवस्थामें पहले शरीरके समान ही होता है। वह शरीर माता-पिताके गर्भसे उत्पन्न नहीं, कर्मजनित होता है, और यातना भोगनेके लिये ही मिलता है। तदनन्तर यमराजके दूत शीघ्र ही उसे दारुण पाशोंसे बाँध लेते हैं और डंडोंकी मारसे व्याकुल करते हुए दक्षिण दिशाकी ओर खींच ले जाते हैं। उस मार्गपर कहीं तो कुश जमे होते हैं, कहीं काँटे फैले होते हैं, कहीं बाँबीकी मिट्टियाँ जमी होती हैं, कहीं लोहेकी कीलें गड़ी होती हैं और कहीं पथरीली भूमि होनेके कारण वह पथ अत्यन्त कठोर जान पड़ता है। कहीं जलती हुई आगकी लपटें मिलती हैं तो कहीं सैकड़ों गड्ढोंके कारण वह मार्ग अत्यन्त दुर्गम प्रतीत होता है। कहीं सूर्य इतने तपते हैं कि उस राहसे जानेवाला जीव उनकी किरणोंसे जलने लगता है। ऐसे पथसे यमराजके दूत उसे घसीटकर ले जाते हैं। वे दूत घोर शब्द करनेके कारण अत्यन्त भयङ्कर जान पड़ते हैं। जिस समय वे जीवको घसीट-कर ले जाते हैं, सैकड़ों गीदड़ियाँ जुटकर उसके शरीरको नोच-नोचकर खाने लगती हैं। पापी जीव ऐसे ही भयंकर मार्गसे यमलोककी यात्रा करते हैं।

जो मनुष्य छाता, जूता, वस्त्र और अन्न-दान करनेवाले होते हैं, वे उस मार्गपर सुखसे यात्रा करते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकारके कष्ट भोगता हुआ पापपीड़ित जीव विवश होकर बारह दिनोंमें धर्मराजके नगरतक पहुँचाया जाता है। उसके यातनामय शरीरके जलाये जानेपर जीव स्वयं भी अत्यन्त दाहका अनुभव करता है, उसी प्रकार मारे और काटे जानेपर भी उसे अत्यन्त भयङ्कर वेदना होती है। अधिक देरतक जलमें भिगोये जानेके कारण भी जीवको भारी दुःख उठाना पड़ता है। इस प्रकार दूसरे शरीरको प्राप्त होनेपर

भी उसे अपने कर्मोंके फलस्वरूप कष्ट भोगने पड़ते हैं। उसके भाई-बन्धु जो तिल और जलकी अञ्जलि देते तथा पिण्डदान करते हैं, वही उस मार्गपर जाते समय उसे खानेको मिलता है। भाई-बन्धु यदि अशौचके भीतर तेल लगावें और उबटन मलवावें तो उसीसे जीवका पोषण किया जाता है अर्थात् वह मैल ही उन्हें खानी पड़ती है [अतः ये वस्तुएँ वर्जित हैं]। इसी प्रकार बान्धवगण जो कुछ खाते-पीते हैं, वह मृतक जीवको मिलता है; अतः उन्हें भोजनकी शुद्धिपर भी ध्यान रखना चाहिये। यदि भाई-बन्धु भूमिपर शयन करें तो उससे जीवको कष्ट नहीं होता और यदि वे उसके निमित्त दान करें तो उससे मृत जीवको बड़ी तृप्ति होती है। यमदूत जब उसे साथ लेकर जाते हैं, तो वह बारह दिनोंतक अपने घरकी ओर देखता रहता है। उस समय पृथ्वीपर उसके निमित्त जो जल और पिण्ड दिये जाते हैं, उन्हींका वह उपभोग करता है।*

मृत्युसे बारह दिन बीतनेके पश्चात् यमपुरीकी ओर खींचकर ले जाया जानेवाला जीव अपने सामने यमराजके नगरको देखता है, जो बड़ा ही भयानक है। उस नगरमें पहुँचनेपर उसे मृत्यु, काल और अन्तक आदिके बीचमें बैठे हुए यमराजका दर्शन होता है, जो कज्जलराशिके समान काले हैं और अत्यन्त क्रोधसे लाल आँखें किये रहते हैं। दाढ़ोंके कारण उनका मुख बड़ा विकराल दिखलायी पड़ता है। टेढ़ी भौंहोंसे युक्त उनकी आकृति बड़ी भयङ्कर है। वे कुरूप, भीषण और टेढ़े-मेढ़े सैकड़ों रोगोंसे घिरे रहते हैं। उनकी भुजाएँ विशाल हैं। उनके एक हाथमें यमदण्ड और दूसरेमें पाश है। देखनेमें वे बड़े भयानक प्रतीत होते हैं। पापी जीव उन्हींकी बतायी हुई शुभाशुभ गतिको प्राप्त होता है। झूठी गवाही देने और झूठ बोलनेवाला मनुष्य रौरव नरकमें जाता है। अब मैं रौरवका स्वरूप बतलाता हूँ, आप ध्यान देकर उसे सुनें। रौरव नरककी लंबाई-चौड़ाई दो हजार योजनकी है। वह एक गढ़ेके रूपमें है, जिसकी गहराई घुटनोंतककी है। वह नरक अत्यन्त दुस्तर है। उसमें भूमिके बराबरतक अङ्गारराशि बिछी रहती है। उसके भीतरकी भूमि दहकते हुए अङ्गारोंसे बहुत तपी होती है। सारा नरक तीव्रवेगसे प्रज्वलित होता रहता है। उसीके भीतर यमराजके दूत पापी मनुष्यको डाल देते हैं। वह धधकती हुई आगमें जब जलने लगता है, तो इधर-उधर दौड़ता है, किन्तु पग-पगपर उसका पैर जल-भुनकर राख होता रहता है। वह दिन-रातमें कभी एक बार पैर उठाने



और रखनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार सहस्रों योजन पार करनेपर वह उससे छुटकारा पाता है। फिर दूसरे पापोंकी शुद्धिके लिये उसे वैसे ही अन्य नरकोंमें जाना पड़ता है। इस प्रकार सब नरकोंमें यातना भोगकर निकलनेके बाद पापी जीव तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। क्रमशः कीड़े-मकोड़े, पतङ्ग, हिंसक जीव, मच्छर, हाथी, वृक्ष आदि, गौ, अश्व तथा अन्यान्य दुःखदायिनी पापयोनियोंमें जन्म धारण करनेके पश्चात् वह मनुष्य-योनिमें आता है। उसमें भी वह कुरूप, कुबड़ा, नाटा और चाण्डाल आदि होता है। फिर अवशिष्ट पाप और पुण्यसे युक्त हो, वह क्रमशः ऊँचे चढ़नेवाली योनियोंमें जन्म लेता—शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, देवता तथा इन्द्र आदिके रूपमें उत्पन्न होता है।

---

* तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह।
यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते॥
तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत्।
तेन चाप्याय्यते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः॥
भूमौ स्वपद्भिर्नात्यन्तं क्लेशमाप्नोति बान्धवैः।
दानं ददद्भिश्च तथा जन्तुराप्याय्यते मृतः॥
नीयमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति।
उपभुङ्क्ते तथा दत्तं तोयपिण्डादिकं भुवि॥
(अ० १०। ७३—७६)

इस प्रकार पाप करनेवाले जीव नरकोंमें नीचे गिरते हैं। अब पुण्यात्मा जीव जिस प्रकार यात्रा करते हैं, उसको सुनिये; वे पुण्यात्मा मनुष्य धर्मराजकी बतायी हुई पुण्यमयी गतिको प्राप्त होते हैं। उनके साथ गन्धर्व गीत गाते चलते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती रहती हैं, तथा वे भाँति-भाँतिके दिव्य आभूषणोंसे सुशोभित हो सुन्दर विमानोंपर बैठकर यात्रा करते हैं। वहाँसे पृथ्वीपर आनेपर वे राजाओं तथा अन्य महात्माओंके कुलमें जन्म लेते और सदाचारका पालन करते हैं। वहाँ उन्हें श्रेष्ठ भोग प्राप्त होते हैं। तदनन्तर शरीर त्यागनेके बाद वे पुनः स्वर्ग आदि ऊपरके लोकोंमें जाते हैं। ऊपरके लोकोंमें होनेवाली गतिको 'आरोहणी' कहते हैं। फिर वहाँसे पुण्यभोगके पश्चात् जो मृत्युलोकमें उतरना होता है, वह 'अवरोहणी' गति है। इस अवरोहणी गतिको प्राप्त होनेपर मनुष्य फिर पहलेकी ही भाँति आरोहणी गतिको प्राप्त होते हैं। ब्रह्मर्षे! जीवकी जिस प्रकार मृत्यु होती है, वह सब प्रसङ्ग मैंने आपसे कह सुनाया। अब जिस तरह जीव गर्भमें आता है, उस विषयका वर्णन सुनिये।

जीवके जन्मका वृत्तान्त तथा महारौरव आदि नरकोंका वर्णन

पुत्र कहता है—पिताजी! मनुष्य स्त्री-सहवासके समय गर्भमें जो वीर्य स्थापित करता है, वह स्त्रीके रजमें मिल जाता है। नरक अथवा स्वर्गसे निकलकर आया हुआ जीव उसी रज-वीर्यका आश्रय लेता है। जीवसे व्याप्त होनेपर वे दोनों बीज (स्त्री और पुरुष दोनोंके रज-वीर्य) स्थिर हो जाते हैं। फिर वे क्रमशः कलल, बुद्बुद एवं मांसपिण्डके रूपमें परिणत होते हैं। जैसे बीजसे अङ्कुर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार उस मांसपिण्डसे विभागपूर्वक पाँच अङ्ग प्रकट होते हैं। फिर उन अङ्गोंसे अँगुली, नेत्र, नासिका, मुख, कान आदि प्रकट होते हैं। इसी प्रकार अँगुली आदिसे नख आदिकी उत्पत्ति होती है। फिर त्वचामें रोम और मस्तकपर बाल उग आते हैं। जीवके शरीरकी वृद्धिके साथ ही स्त्रीका गर्भकोष भी बढ़ता है। जैसे नारियलका फल अपने आवरण-कोषके साथ ही बढ़ता है, उसी प्रकार गर्भस्थ शिशु भी गर्भकोषके साथ ही वृद्धिको प्राप्त होता है। उसका मुख नीचेकी ओर होता है। दोनों हाथोंको घुटनों और पसलियोंके नीचे रखकर वह बढ़ता है। हाथके दोनों अँगूठे दोनों घुटनोंके ऊपर होते हैं और अँगुलियाँ उनके अग्रभागमें रहती हैं। उन घुटनोंके पृष्ठभागमें दोनों आँखें रहती हैं और नासिका उनके मध्यभागमें होती है। दोनों चूतड़ एड़ियोंपर टिके होते हैं। दोनों बाँहें और पिंडलियाँ बाहरी किनारेपर रहती हैं। इसी स्थितिमें स्त्रीके गर्भमें रहनेवाला जीव क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होता है। गर्भस्थ शिशुकी नाभिमें एक नाल बँधी होती है, जिसे आप्यायनी नाड़ी कहते हैं। इसी प्रकार वह नाल स्त्रीकी आँतके छिद्रमें भी जुड़ी होती है। स्त्री जो कुछ खाती-पीती है, वह उस नाड़ीके ही मार्गसे गर्भस्थ शिशुके भी उदरमें पहुँचता है। उसीसे शरीरका पोषण होते रहनेसे जीव क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होता है। उस गर्भमें उसे अनेक जन्मोंकी बातें याद आती हैं, जिससे व्यथित होकर वह इधर-उधर फिरता और निर्वेद (खेद) को प्राप्त होता है। अपने मनमें सोचता है, 'अब इस उदरसे छुटकारा पानेपर मैं फिर ऐसा कार्य नहीं करूँगा, बल्कि इस बातके लिये चेष्टा करूँगा कि मुझे फिर गर्भके भीतर न आना पड़े।' सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंका स्मरण करके वह इसी प्रकार चिन्ता करता है। दैवकी प्रेरणासे पूर्वजन्मोंमें उसने जो-जो क्लेश भोगे होते हैं, वे सब उसे याद आ जाते हैं। तत्पश्चात् कालक्रमसे वह अधोमुख जीव जब नवें या दसवें महीनेका होता है, तब उसका जन्म हो जाता है। गर्भसे निकलते समय वह प्राजापत्य वायुसे पीड़ित होता है और मन-ही-मन दुःखसे व्यथित हो रोते हुए गर्भसे बाहर आता है। उदरसे निकलनेपर असह्य पीड़ाके कारण उसे मूर्च्छा आ जाती है। फिर वायुके स्पर्शसे वह सचेत होता है। तदनन्तर भगवान् विष्णुकी मोहिनी माया उसको अपने वशमें कर लेती है। उससे मोहित हो जानेके कारण उसका पूर्वज्ञान नष्ट हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानभ्रष्ट हो जानेपर वह जीव पहले तो बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है, फिर क्रमशः कौमारावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्थामें प्रवेश करता है। इसके बाद मृत्युको प्राप्त होता और मृत्युके बाद फिर जन्म लेता है। इस प्रकार इस संसारचक्रमें वह घटीयन्त्र (रहट) की भाँति घूमता रहता है। कभी स्वर्गमें जाता है, कभी नरकमें। कभी इस संसारमें पुनः

जन्म लेकर अपने कर्मोंको भोगता है, कभी कर्मोंका भोग समाप्त होनेपर थोड़े ही समयमें मरकर परलोकमें चला जाता है। कभी स्वर्ग और नरकको प्रायः भोग चुकनेके बाद थोड़ेसे शुभाशुभ कर्म शेष रहनेपर इस संसारमें जन्म लेता है।

नारकी जीव घोर दुःखदायी नरकोंमें गिराये जाते हैं। स्वर्गमें भी ऐसा दुःख होता है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। स्वर्गमें पहुँचनेके बादसे ही मनमें इस बातकी चिन्ता बनी रहती है कि पुण्यक्षय होनेपर हमें यहाँसे नीचे गिरना पड़ेगा। साथ ही नरकमें पड़े हुए जीवोंको देखकर महान् दुःख होता है कि कभी हमें भी ऐसी ही दुर्गति भोगनी पड़ेगी। इस बातसे दिन-रात अशान्ति बनी रहती है। गर्भवासमें तो भारी दुःख होता ही है, योनिसे जन्म लेते समय भी थोड़ा क्लेश नहीं होता। जन्म लेनेके पश्चात् बाल्यावस्था और वृद्धावस्थामें भी दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ता है। जवानीमें भी काम, क्रोध और ईर्ष्यामें बँधे रहनेके कारण अत्यन्त दुस्सह कष्ट उठाना पड़ता है। बुढ़ापेमें तो अधिकांश दुःख ही होता है। मरनेमें भी सबसे अधिक दुःख है। यमदूतोंद्वारा घसीटकर ले जाये जाने और नरकमें गिराये जानेपर जो महान् क्लेश होता है, उसकी चर्चा हो चुकी है। यहाँसे लौटनेपर फिर गर्भवास, जन्म, मृत्यु तथा नरकका क्रम चालू हो जाता है। इस तरह जीव प्राकृत बन्धनोंमें बँधकर घटीयन्त्रकी भाँति इस संसारचक्रमें घूमते रहते हैं।

पिताजी! मैंने आपसे रौरव नामक प्रथम नरकका वर्णन किया है। अब महारौरवका वर्णन सुनिये—इसका विस्तार सब ओरसे बारह हजार योजन है। वहाँकी भूमि ताँबेकी है, जिसके नीचे आग धधकती रहती है। उसकी आँचसे तपकर वह सारी ताम्रमयी भूमि चमकती हुई बिजलीके समान ज्योतिर्मयी दिखायी देती है। उसकी ओर देखना और स्पर्श आदि करना अत्यन्त भयङ्कर है। यमराजके दूत हाथ और पैर बाँधकर पापी जीवको उसके भीतर डाल देते हैं और वह लोटता हुआ आगे बढ़ता है। मार्गमें कौवे, बगुले, बिच्छू, मच्छर और गिद्ध उसे जल्दी-जल्दी नोच खाते हैं। उसमें जलते समय वह व्याकुल हो-होकर छटपटाता है और बारंबार 'अरे बाप! अरे मैया! हाय भैया! हा तात!' आदिकी रट लगाता हुआ करुण क्रन्दन करता है, किन्तु उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। इस प्रकार



उसमें पड़े हुए जीव, जिन्होंने दूषित बुद्धिके कारण पाप किये हैं, दस करोड़ वर्ष बीतनेपर उससे छुटकारा पाते हैं। इसके सिवा तम नामक एक दूसरा नरक है, जहाँ स्वभावसे ही कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है। उसका विस्तार भी महारौरवके ही बराबर है, किन्तु वह घोर अन्धकारसे आच्छादित रहता है। वहाँ पापी मनुष्य सर्दीसे कष्ट पाकर भयानक अन्धकारमें दौड़ते हैं और एक दूसरेसे भिड़कर लिपटे रहते हैं। जाड़ेके कष्टसे काँपकर कटकटाते हुए उनके दाँत टूट जाते हैं। भूख-प्यास भी वहाँ बड़े जोरकी लगती है। इसी प्रकार अन्यान्य उपद्रव भी होते रहते हैं। ओलोंके साथ बहनेवाली भयङ्कर वायु शरीरमें लगकर हड्डियोंको चूर्ण किये देती है और उनसे जो मज्जा तथा रक्त गिरता है, उसीको वे क्षुधातुर प्राणी खाते हैं। एक-दूसरेके शरीरसे सटकर वे परस्पर रक्त चाटा करते हैं। इस प्रकार जबतक पापोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वहाँ भी मनुष्योंको अन्धकारमें महान् कष्ट भोगना पड़ता है।



इससे भिन्न एक निकृन्तन नामक नरक है, जो सब नरकोंमें प्रधान है। उसमें कुम्हारकी चाकके समान बहुतसे चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं। यमराजके दूत पापी जीवोंको उन चक्रोंपर चढ़ा देते और अपनी अँगुलियोंमें कालसूत्र लेकर उसीके द्वारा उनके पैरसे लेकर मस्तकतक प्रत्येक अङ्ग काटा करते हैं। फिर भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते। उनके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं, किन्तु फिर वे जुड़कर एक हो जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव हजारों वर्षोंतक वहाँ काटे जाते हैं। यह यातना उन्हें तबतक दी जाती है, जबतक कि उनके सारे पापोंका नाश नहीं हो जाता। अब अप्रतिष्ठ नामक नरकका वर्णन सुनिये, जिसमें पड़े हुए जीवोंको असह्य दुःखका अनुभव करना पड़ता है। वहाँ भी वे ही कुलालचक्र होते हैं; साथ ही दूसरी ओर घटीयन्त्र भी बने होते हैं, जो पापी मनुष्योंको दुःख पहुँचानेके लिये बनाये गये हैं। वहाँ कुछ मनुष्य उन चक्रोंपर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं। हजारों वर्षोंतक उन्हें बीचमें विश्राम नहीं मिलता। इसी प्रकार दूसरे पापी घटीयन्त्रोंमें बाँध दिये जाते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे रहटमें छोटे-छोटे घड़े बँधे होते हैं। वहाँ बँधे हुए मनुष्य उन यन्त्रोंके साथमें जब घूमने लगते हैं, तो बारंबार रक्त वमन करते हैं। उनके मुखसे लार गिरती है और नेत्रोंसे अश्रु झरते रहते हैं।





उस समय उन्हें इतना दुःख होता है, जो जीवमात्रके लिये असह्य है।

अब असिपत्रवन नामक अन्य नरकका वर्णन सुनिये—जहाँ एक हजार योजनतककी भूमि प्रज्वलित अग्निसे आच्छादित रहती है तथा ऊपरसे सूर्यकी अत्यन्त भयङ्कर एवं प्रचण्ड किरणें ताप देती हैं, जिनसे उस नरकमें निवास करनेवाले जीव सदा सन्तप्त होते रहते हैं। उसके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर वन है, जिसके पत्ते चिकने जान पड़ते हैं; किन्तु वे सभी पत्ते तलवारकी तीखी धारके समान हैं। उस वनमें बड़े बलवान् कुत्ते भूँकते रहते हैं, जो दस हजारकी संख्यामें सुशोभित होते हैं। उनके मुख और दाढ़ें बड़ी-बड़ी होती हैं। वे व्याघ्रोंके समान भयानक प्रतीत होते हैं। वहाँकी भूमिपर जो आग बिछी होती है, उससे जब दोनों पैर जलने लगते हैं तब वहाँ गये हुए पापी जीव 'हाय माता! हाय पिता!' आदि कहते हुए अत्यन्त दुःखित होकर कराहने लगते हैं। उस समय तीव्र पिपासाके कारण उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, फिर अपने सामने शीतल छायासे युक्त असिपत्र वनको देखकर वे प्राणी विश्रामकी इच्छासे वहाँ जाते हैं। उनके वहाँ पहुँचनेपर बड़े जोरकी हवा चलती है, जिससे उनके ऊपर तलवारके समान तीखे पत्ते गिरने लगते हैं। उनसे आहत होकर वे पृथ्वीपर जलते हुए अँगारोंके ढेरमें गिर पड़ते हैं। वह आग अपनी लपटोंसे सर्वत्र व्याप्त हो सम्पूर्ण भूतलको चाटती हुई-सी जान पड़ती है। इसी समय अत्यन्त भयानक कुत्ते वहाँ तुरंत ही दौड़ते हुए आते हैं और रोते हुए पापियोंके सब अङ्गोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। पिताजी! इस प्रकार मैंने आपसे यह असिपत्रवनका वर्णन किया है।

अब इससे भी अत्यन्त भयङ्कर तप्तकुम्भ नामक जो नरक है, उसका हाल सुनिये—वहाँ चारों ओर आगकी लपटोंसे घिरे हुए बहुत-से लोहेके घड़े मौजूद हैं, जो खूब तपे होते हैं। उनमेंसे किन्हींमें तो प्रज्वलित अग्निकी आँचसे खौलता हुआ तेल भरा रहता है और किन्हींमें तपाये हुए लोहेका चूर्ण होता है। यमराजके दूत पापी मनुष्योंको उनका मुँह नीचे करके उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ पड़ते ही उनके शरीर टूट-फूट जाते हैं। शरीरकी मज्जाका भाग गलकर पानी हो जाता है। कपाल और नेत्रोंकी हड्डियाँ चटककर फूटने लगती हैं। भयानक गृध्र उनके अङ्गोंको नोच-नोचकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फिर उन टुकड़ोंको उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ वे सभी टुकड़े सीझकर तेलमें मिल जाते हैं। मस्तक, शरीर, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियाँ—सभी गल जाती हैं।





तदनन्तर यमराजके दूत करछुलसे उलट-पुलटकर खौलते हुए तेलमें उन पापियोंको अच्छी तरह मथते हैं। पिताजी! इस प्रकार यह तप्तकुम्भ नामक नरककी बात मैंने आपको विस्तारपूर्वक बतलायी है।

जनक-यमदूत-संवाद, भिन्न-भिन्न पापोंसे विभिन्न नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन

पुत्र (सुमति) कहता है—पिताजी! इससे पहले सातवें जन्ममें मैं एक वैश्यके कुलमें उत्पन्न हुआ था। उस समय पौंसलेपर पानी पीनेको जाती हुई गौओंको मैंने वहाँ जानेसे रोक दिया था। उस पापकर्मके फलसे मुझे अत्यन्त भयङ्कर नरकमें जाना पड़ा, जो आगकी लपटोंके कारण घोर दुःखदायी प्रतीत होता था। उसमें लोहेकी-सी चोंचवाले पक्षी भरे पड़े थे। वहाँ पापियोंके शरीरको कोल्हूमें पेरनेके



कारण जो रक्तकी धारा बहती थी, उससे कीचड़ जम गयी थी और काटे जानेवाले दुष्कर्मियोंके नरकमें पड़नेसे सब ओर घोर हाहाकार मचा रहता था। उस नरकमें पड़े मुझे सौ वर्षसे कुछ अधिक समय बीत गया। मैं महान् ताप और पीड़ासे सन्तप्त रहता था। प्यास और जलन बराबर बनी रहती थी। तदनन्तर एक दिन सहसा सुख देनेवाली ठंडी हवा चलने लगी। उस समय मैं तप्तबालुका और तप्तकुम्भ नामक नरकोंके बीच था। उस शीतल वायुके सम्पर्कसे उन नरकोंमें पड़े हुए सभी जीवोंकी यातना दूर हो गयी। मुझे भी उतना ही आनन्द हुआ, जितना स्वर्गमें रहनेवालोंको वहाँ प्राप्त होता है। 'यह क्या बात हो गयी?' यों सोचते हुए हम सभी जीवोंने आनन्दकी अधिकताके कारण एकटक नेत्रोंसे जब चारों ओर देखा, तब हमें बड़े ही उत्तम एक नररत्न दिखायी दिये। उनके साथ बिजलीके समान कान्तिमान् एक भयङ्कर यमदूत था, जो आगे होकर रास्ता दिखा रहा था और कहता था, 'महाराज! इधरसे आइये।' सैकड़ों यातनाओंसे व्याप्त नरकको देखकर उन पुरुषरत्नको बड़ी दया आयी। उन्होंने यमदूतसे कहा।

आगन्तुक पुरुष बोले—यमदूत! बताओ तो सही, मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया है, जिसके कारण अनेक प्रकारकी यातनाओंसे पूर्ण इस भयङ्कर नरकमें मुझे आना पड़ा है? मेरा जन्म जनकवंशमें हुआ था! मैं विदेह देशमें विपश्चित् नामसे विख्यात राजा था और प्रजाजनोंका भलीभाँति पालन करता था। मैंने बहुत-से यज्ञ किये। धर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन किया। कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखायी तथा अतिथिको कभी निराश नहीं लौटने दिया। पितरों, देवताओं, ऋषियों और भृत्योंको उनका भाग दिये बिना कभी मैंने अन्न ग्रहण नहीं किया। परायी स्त्री और पराये धन आदिकी अभिलाषा मेरे मनमें कभी नहीं हुई। जैसे गौएँ पानी पीनेकी इच्छासे स्वयं ही पौंसलेपर चली जाती हैं, उसी प्रकार पर्वके समय पितर और पुण्यतिथि आनेपर देवता स्वयं ही अपना भाग लेनेको मनुष्यके पास आते हैं। जिस गृहस्थके घरसे वे लंबी साँस लेकर निराश लौट जाते हैं, उसके इष्ट और पूर्त—दोनों प्रकारके धर्म नष्ट हो जाते हैं। पितरोंके दुःखपूर्ण उच्छ्वाससे सात जन्मोंका पुण्य नष्ट होता है और देवताओंका निःश्वास तीन जन्मोंका पुण्य क्षीण कर देता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है; इसलिये मैं देवकर्म और पितृकर्मके लिये सदा

ही सावधान रहता था। ऐसी दशामें मुझे इस अत्यन्त दारुण नरकमें कैसे आना पड़ा?



उन महात्माके इस प्रकार पूछनेपर यमराजका दूत देखनेमें भयङ्कर होनेपर भी हमलोगोंके सुनते-सुनते विनययुक्त वाणीमें बोला।

यमदूतने कहा—महाराज! आप जैसा कहते हैं, वह सब ठीक है। उसमें तनिक भी सन्देहके लिये स्थान नहीं है। किन्तु आपके द्वारा एक छोटा-सा पाप भी बन गया है। मैं उसे याद दिलाता हूँ। विदर्भराजकुमारी पीवरी, जो आपकी पत्नी थी, एक समय ऋतुमती हुई थी; किन्तु उस अवसरपर केकयराजकुमारी सुशोभनामें आसक्त होनेके कारण आपने उसके ऋतुकालको सफल नहीं बनाया। वह आपके समागम-सुखसे वञ्चित रह गयी। ऋतुकालका उल्लङ्घन करनेके कारण ही आपको ऐसे भयङ्कर नरकतक आना पड़ा है। जो धर्मात्मा पुरुष काममें आसक्त होकर स्त्रीके ऋतुकालका उल्लङ्घन करता है, वह पितरोंका ऋणी होनेसे पापको प्राप्त हो नरकमें पड़ता है। राजन्! इतना ही आपका पाप है। इसके अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। इसलिये आइये, अब पुण्यलोकोंका उपभोग करनेके लिये चलिये।

राजा बोले—देवदूत! तुम जहाँ मुझे ले चलोगे, वहाँ चलूँगा; किन्तु इस समय कुछ पूछ रहा हूँ, उसका तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर देना चाहिये। ये वज्रके समान चोंचवाले कौए, जो इन पुरुषोंकी आँखें निकाल लेते हैं और फिर उन्हें नये नेत्र प्राप्त हो जाते हैं, इन लोगोंने कौन-सा निन्दित कर्म किया है? इस बातको बताओ। मैं देखता हूँ, कौए इनकी जीभ उखाड़ लेते हैं, किन्तु फिर नयी जीभ उत्पन्न हो जाती है। इनके सिवा ये दूसरे लोग क्यों आरेसे चीरे जाते हैं? और अत्यन्त दुःख भोगते हैं? कुछ लोग तपायी हुई बालुकामें भूने जाते हैं और कुछ लोग खौलते हुए तेलमें पड़कर पक रहे हैं। लोहेके समान चोंचवाले पक्षी जिन्हें नोच-नोचकर खींच रहे हैं, वे कैसे लोग हैं? ये बेचारे शरीरकी नस-नाड़ियोंके कटनेसे पीड़ित हो बड़े जोर-जोरसे चीखते और चिल्लाते हैं। लोहेकी चोंचकी आघातसे इनके सारे अङ्गोंमें घाव हो गया है; जिससे इन्हें बड़ा कष्ट होता है। इन्होंने ऐसा कौन-सा अनिष्ट किया है, जिसके कारण ये रात-दिन सताये जा रहे हैं? ये तथा और भी जो पापियोंकी यातनाएँ देखी जाती हैं, वे किन कर्मोंके परिणाम हैं? ये सब बातें मुझे पूर्णरूपसे बतलाओ।

यमदूतने कहा—राजन्! मनुष्यको पुण्य और पाप बारी-बारीसे भोगने पड़ते हैं। भोगनेसे ही पाप अथवा पुण्यका क्षय होता है। लाखों जन्मोंके सञ्चित पुण्य और पाप मनुष्योंके लिये सुख-दुःखका अङ्कुर उत्पन्न करते हैं। जैसे बीज जलकी इच्छा रखते हैं, उसी प्रकार पुण्य और पाप देश, काल, अन्यान्य कर्म और कर्ताकी अपेक्षा करते हैं। जैसे राह चलते समय काँटेपर पैर पड़ जानेसे उसके चुभनेपर थोड़ा दुःख होता है, उसी प्रकार किसी भी देश-कालमें किया हुआ थोड़ा पाप थोड़े दुःखका कारण होता है; किन्तु वही पाप जब बहुत अधिक मात्रामें हो जाता है तब पैरमें शूल अथवा लोहेकी कील गड़नेके समान अधिक दुःख प्रदान करता है—सिरदर्द आदि दुस्सह रोगोंका कारण बनता है। जैसे अपथ्य भोजन और सर्दी-गर्मीका सेवन श्रम और ताप आदिका जनक होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पाप भी फलकी प्राप्ति करानेमें एक-दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। ऐसे ही बड़े-बड़े पाप दीर्घकालतक रहनेवाले रोग और विकारोंके उत्पादक होते हैं। उन्हींसे शस्त्र और अग्निका भय प्राप्त होता है। वे ही असह्य पीड़ा और बन्धन आदि फल प्रदान करते हैं। इस प्रकार जीव अनेक जन्मोंके सञ्चित पुण्य और पापोंके फलस्वरूप सुख और दुःखोंको भोगता हुआ इस लोकमें स्थित रहता है।

राजन्! जैसे नरकोंमें पड़े हुए जीव अपने घोर महापापका फल भोगते हैं, उसी प्रकार ये स्वर्गलोकमें देवताओंके साथ रहकर गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराओंके संगीत आदिका सुख उठाते हुए पुण्योंका उपभोग करते हैं। देवता, मनुष्य और पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेकर जीव अपने पुण्य-पापजनित सुख-दुःखरूप शुभाशुभ फलोंको भोगता है। राजन्! आप जो यह पूछ रहे हैं कि किस-किस पापसे पापियोंको कौन-कौन-सी यातनाएँ मिलती हैं, वह सब मैं आपको बतला रहा हूँ। जो नीच मनुष्य कामना और लोभके वशीभूत हो दूषित दृष्टि एवं कलुषित चित्तसे परायी स्त्री और पराये धनपर आँखें गड़ाते हैं, उनकी दोनों आँखोंको ये वज्रतुल्य चोंचवाले पक्षी निकाल लेते हैं और



पुनः-पुनः इनके नये नेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। इन पापी मनुष्योंने जितने निमेषतक पापपूर्ण दृष्टिपात किया है, उतने ही हजार वर्षोंतक ये नेत्रकी पीड़ा भोगते हैं। जिन लोगोंने असत् शास्त्रका उपदेश किया है तथा किसीको बुरी सलाह दी है, जिन्होंने शास्त्रका उलटा अर्थ लगाया है, मुँहसे झूठी बातें निकाली हैं तथा वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुकी निन्दा की है, उन्हींकी जिह्वाको ये वज्रतुल्य चोंचवाले भयङ्कर पक्षी उखाड़ते हैं और वह जिह्वा नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। जितने निमेषतक उनके द्वारा जिह्वाजनित पाप हुआ होता है, उतने वर्षोंतक उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। जो नराधम दो मित्रोंमें फूट डालते हैं, पिता-पुत्रमें, स्वजनोंमें, यजमान और पुरोहितमें, माता और पुत्रमें, सङ्गी-साथियोंमें तथा पति और पत्नीमें वैर डालते हैं, वे ही ये आरेसे चीरे जा रहे हैं। आप इनकी दुर्गति देखिये। जो दूसरोंको ताप देते, उनकी प्रसन्नतामें बाधा पहुँचाते, पंखे, हवादार स्थान, चन्दन और खसकी टट्टी आदिका अपहरण करते हैं तथा निर्दोष व्यक्तियोंको भी प्राणान्तक कष्ट पहुँचाते हैं, वे ही ये अधम पापी हैं जो तपायी हुई बालूमें पड़कर कष्ट भोगते हैं। जो ब्राह्मण किसी देवकार्य या पितृकार्यमें दूसरेके द्वारा निमन्त्रित होकर भी दूसरे किसीके यहाँ श्राद्ध-भोजन कर लेता है, उसके यहाँ आनेपर ये पक्षी दो टुकड़े कर डालते हैं। जो अपनी अनुचित बातोंसे साधु-पुरुषोंके मर्मपर आघात पहुँचाता है, उसको ये पक्षी अत्यन्त पीड़ा देते हैं। इन्हें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। जो झूठी बातें कहकर और विपरीत धारणा बनाकर किसीकी चुगली खाते हैं, उनकी जिह्वाके इस प्रकार तेज किये हुए छूरोंसे दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

जिन्होंने उद्दण्डतावश माता, पिता तथा गुरुजनोंका अनादर किया है, वे ही ये पीब, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गढ़ोंमें नीचे मुख करके डुबाये जा रहे हैं। जो लोग देवता,



अतिथि, अन्यान्य प्राणी, भृत्यवर्ग, अभ्यागत, पितर, अग्नि तथा पक्षियोंको अन्नका भाग दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे ही दुष्ट यहाँ पीब और गोंद चाटकर रहते हैं। उनका शरीर तो पहाड़के समान विशाल होता है, किन्तु मुख सूईकी नोकके बराबर रहता है। देखिये, यही वे लोग हैं। जो लोग ब्राह्मण अथवा किसी अन्य वर्णके मनुष्यको एक पङ्क्तिमें बिठाकर भोजनमें भेद करते हैं, उन्हें यहाँ विष्ठा खाकर रहना पड़ता है। जो लोग एक समुदायमें साथ-साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्यको निर्धन जानकर छोड़ देते और अकेले अपना अन्न भोजन करते हैं, वे ही यहाँ थूक और खँखार भोजन करते हैं। राजन्! जिन लोगोंने जूठे हाथोंसे गौ, ब्राह्मण और अग्नियोंका स्पर्श किया है, उन्हींमेंसे ये लोग यहाँ मौजूद हैं, जो जलते हुए लोहेके खंभोंपर हाथ रखकर उन्हें चाट रहे हैं। जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक जूठे मुँह होकर भी सूर्य-चन्द्रमा और तारोंपर दृष्टिपात किया है, उनकी आँखोंमें आग रखकर यमराजके दूत उसे धौंकते हैं। गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहिन, कुटुम्बकी स्त्री, गुरु तथा बड़े-बूढ़ोंका जो पैरोंसे स्पर्श करते हैं, उनके दोनों पैर यहाँ आगमें तपायी हुई लोहेकी बेड़ियोंसे जकड़ दिये जाते हैं और उन्हें अँगारोंके ढेरमें खड़ा कर दिया जाता है। उसमें उनके पैरसे लेकर



घुटनेतकका भाग जलता रहता है। जो नराधम अपने कानोंसे गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुनते हैं और उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन पापियोंके कानोंमें ये यमराजके दूत आगमें तपायी हुई लोहेकी कीलें ठोंक देते हैं। विलाप करनेपर भी उन्हें छुटकारा नहीं मिलता। जो लोग क्रोध और लोभके वशमें होकर पौसले, देवमन्दिर, ब्राह्मणोंके घर तथा देवालयके सभाभवन तुड़वाकर नष्ट करा देते हैं, उनके यहाँ आनेपर ये अत्यन्त कठोर स्वभाववाले यमदूत इन तीखे शस्त्रोंसे शरीरकी खाल उधेड़ लेते हैं। उनके चीखने-चिल्लानेपर भी ये दया नहीं करते। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण तथा सूर्यकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनकी आँतोंको कौए गुदामार्गसे खींचते हैं। जो किसी एकको कन्या देकर फिर दूसरेके साथ उसका विवाह कर देता है, उसके शरीरमें बहुत-से घाव करके उसे खारे पानीकी नदीमें बहा दिया जाता है। जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा सङ्कटकालमें अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धुवर्गको अकिञ्चन जानकर भी त्याग देता और केवल अपना पेट पालनेमें लग जाता है, वह भी जब इस लोकमें आता है तो यमराजके दूत भूख लगनेपर उसके मुखमें उसके ही शरीरका मांस नोचकर डाल देते हैं और वही उसे खाना पड़ता है। जो अपनी शरणमें आये हुए तथा अपनी ही दी हुई वृत्तिसे जीविका चलानेवाले मनुष्योंको लोभवश त्याग देता है, वह भी यमदूतोंद्वारा इसी प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेके कारण यन्त्रणा भोगता है।

जो मनुष्य अपने जीवनभरके किये हुए पुण्यको धनके लोभसे बेच डालते हैं, वे इन्हीं पापियोंकी तरह चक्कियोंमें पीसे जाते हैं। किसीकी धरोहर हड़प लेनेवाले लोगोंके सब अङ्ग रस्सियोंसे बाँध दिये जाते हैं और उन्हें दिन-रात कीड़े, बिच्छू तथा सर्प काटते-खाते रहते हैं। जो पापी दिनमें मैथुन करते और परायी स्त्रीको भोगते हैं, वे यहाँ भूखसे दुर्बल रहते हैं, प्यासकी पीड़ासे उनकी जीभ और तालू गिर जाते हैं और वे वेदनासे व्याकुल हो जाते हैं। यह देखिये, सामने लोहेके बड़े-बड़े काँटोंसे भरा हुआ सेमरका वृक्ष खड़ा है। इसपर चढ़ाये हुए पापियोंके सब अङ्ग विदीर्ण हो गये हैं और अधिक मात्रामें गिरते हुए खूनसे ये लथपथ हो रहे हैं। नरश्रेष्ठ! इधर दृष्टि डालिये, ये परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवाले लोग हैं। इन्हें यमराजके दूत घरियामें रखकर गला रहे हैं। जो उद्दण्ड मनुष्य गुरुको नीचे बिठाकर और

स्वयं ऊँचे आसनपर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकलाकी शिक्षा ग्रहण करता है, वह इसी प्रकार अपने मस्तकपर शिलाका भारी भार ढोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोकके मार्गमें वह अत्यन्त पीड़ित एवं भूखसे दुर्बल रहता है और उसका मस्तक दिन-रात बोझ ढोनेकी पीड़ासे व्यथित होता रहता है। जिन्होंने जलमें मूत्र, थूक और विष्ठाका त्याग किया है, वे ही लोग इस समय थूक, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए दुर्गन्धयुक्त नरकमें पड़े हैं। ये लोग जो भूखसे व्याकुल होनेपर एक-दूसरेका मांस खा रहे हैं, इन्होंने पूर्वकालमें अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही भोजन किया है। जिन लोगोंने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक अग्नियोंका परित्याग किया है, वे ही ये पर्वतोंकी चोटीसे बारंबार नीचे गिराये जाते हैं।* जो लोग दूसरी बार ब्याही जानेवाली स्त्रीके पति होकर जीवन बिता चुके हैं, वे ही इस समय यहाँ कीड़े हुए हैं, जिन्हें चींटियाँ खा रही हैं। पतितोंका दिया हुआ दान लेने, उनका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहनेसे मनुष्य पत्थरके भीतर कीड़ा होकर सदा निवास करता है। जो कुटुम्बके लोगों, मित्रों तथा अतिथिके देखते-देखते अकेले ही मिठाई उड़ाता है, उसे यहाँ जलते हुए अँगारे चबाने पड़ते हैं। राजन्! इस पापीने लोगोंकी पीठका मांस खाया है—पीठ पीछे सबकी बुराई की है, इसीलिये भयङ्कर भेड़िये प्रतिदिन इसका मांस खा रहे हैं।†

इस नीचने उपकार करनेवाले लोगोंके साथ कृतघ्नता की है; अतएव यह भूखसे व्याकुल तथा अंधा, बहरा और गूँगा होकर भटक रहा है। इस खोटी बुद्धिवाले कृतघ्नने अपने मित्रोंकी बुराई की है, इसीलिये यह तप्तकुम्भ नरकमें गिर रहा है। इसके बाद चक्कियोंमें पीसा जायगा, फिर तपायी हुई बालूमें भूना जायगा। उसके बाद कोल्हूमें पेरा जायगा। तत्पश्चात् असिपत्रवनमें इसे यातना दी जायगी। फिर आरेसे यह चीरा जायगा। तदनन्तर कालसूत्रसे काटा जायगा। इसके बाद और भी बहुत-सी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ेंगी। इसपर भी मित्रोंके साथ विश्वासघात करनेके पापसे इसका उद्धार कैसे होगा—यह मैं भी नहीं जानता। जो ब्राह्मण एक-दूसरेसे मिलकर सदा श्राद्धान्न भोजन करनेमें ही आसक्त रहते हैं, उन्हें दुष्ट सर्पोंके सर्वाङ्गसे निकला हुआ फेन पीना





* अपविद्धास्तु यैर्वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः। त इमे शैलशृङ्गाग्रात् पात्यन्तेऽधः पुनः पुनः॥ (अ० १४। ८१)

† वृकैर्भयङ्करैः पृष्ठं नित्यमस्योपभुज्यते। पृष्ठमांसं नृपैतेन यतो लोकस्य भक्षितम्॥ (अ० १४। ८५)

पड़ता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नीगामी—ये चारों प्रकारके महापापी नीचे और ऊपर धधकती हुई आगके बीचमें झोंककर सब ओरसे जलाये जाते हैं। इस अवस्थामें उन्हें कई हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते तथा कोढ़ एवं यक्ष्मा आदि रोगोंसे युक्त रहते हैं। वे मरनेके बाद फिर नरकमें जाते हैं, और पुनः उसी प्रकार नरकमे लौटनेपर रोगयुक्त जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्पके अन्ततक उनके आवागमनका यह चक्र चलता रहता है। गौकी हत्या करनेवाला मनुष्य तीन जन्मोंतक नीच-से-नीच नरकोंमें पड़ता है। अन्य सभी उपपातकोंका फल भी ऐसा ही निश्चय किया गया है। नरकसे निकले हुए पापी जीव जिन-जिन पातकोंके कारण जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेते हैं, वह सब मैं बतला रहा हूँ; आप ध्यान देकर सुनें।

पापोंके अनुसार भिन्न-भिन्न योनियोंकी प्राप्ति तथा विपश्चित्के पुण्यदानसे पापियोंका उद्धार

यमदूत कहता है—राजन्! पतितसे दान लेनेपर ब्राह्मण गदहेकी योनिमें जाता है। पतितका यज्ञ करानेवाला द्विज नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है। अपने गुरुके साथ छल करनेपर उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा गुरुकी पत्नी और उनके धनको मन-ही-मन लेनेकी इच्छा होनेपर भी उसे निस्सन्देह यही दण्ड मिलता है। माता-पिताका अपमान करनेवाला मनुष्य उनके प्रति कटुवचन कहनेसे मैनाकी योनिमें जन्म लेता है। भाईकी स्त्रीका अपमान करनेवाला कबूतर होता है और उसे पीड़ा देनेवाला मनुष्य कछुएकी योनिमें जन्म लेता है। जो मालिकका अन्न तो खाता है, किन्तु उसका अभीष्ट साधन नहीं करता, वह मोहाच्छन्न मनुष्य मरनेके बाद वानर होता है धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है और दूसरोंका दोष देखनेवाला पुरुष नरकसे निकलकर राक्षस होता है। विश्वासघाती मनुष्यको मछलीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य अज्ञानवश धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, मटर, कलमी धान, मूँग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे-दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान बड़े मुँहका चूहा होता है। परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य भयङ्कर भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गिद्ध, साँप तथा





कौएकी योनिमें जन्म लेता है। जो खोटी बुद्धिवाला पापी मनुष्य अपने भाईकी स्त्रीके साथ बलात्कार करता है, वह नरकसे लौटनेपर कोयल होता है। जो पापी कामके अधीन होकर मित्र तथा राजाकी पत्नीके साथ सहवास करता है, वह सूअर होता है।

यज्ञ, दान और विवाहमें विघ्न डालनेवाला तथा कन्याका दुबारा दान करनेवाला पुरुष कीड़ा होता है। जो देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही अन्न भोजन करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौआ होता है; जो पिताके समान पूजनीय बड़े भाईका अपमान करता है, वह नरकसे निकलनेपर क्रौञ्च पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है। ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ सहवास करनेवाला शूद्र भी कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। यदि उसने ब्राह्मणीके गर्भसे सन्तान उत्पन्न कर दिया हो तो वह काठके भीतर रहनेवाला कीड़ा होता है। उसके बाद क्रमशः सूअर, कृमि, विष्ठाका कीड़ा और चाण्डाल होता है। जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ एवं कृतघ्न होता है, वह नरकसे निकलनेपर कृमि, कीट, पतङ्ग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और चाण्डाल होता है। शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करनेवाला मनुष्य गदहा होता है। स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवालेका कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। भोजनकी चोरी करनेसे मक्खीकी योनिमें जाना पड़ता है। उसमें भी जो



भोजनके विशेष भेद हैं, उन्हें चुरानेके पृथक्-पृथक् फल सुनिये। साधारण अन्न चुरानेवाला मनुष्य नरकसे छूटनेपर बिल्लीकी योनिमें जन्म लेता है। तिलचूर्णमिश्रित अन्नका अपहरण करनेसे मनुष्यको चूहेकी योनिमें जाना पड़ता है। घी चुरानेवाला नेवला होता है। नमककी चोरी करनेपर जल-कागकी और दही चुरानेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। दूधकी चोरी करनेसे बगुलेकी योनि मिलती है। जो तेल चुराता है, वह तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। मधु चुरानेवाला मनुष्य डाँस और पूआ चुरानेवाला चींटी होता है। हविष्यान्नकी चोरी करनेवाला बिसतुइया होता है।

लोहा चुरानेवाला पापात्मा कौआ होता है। काँसेका अपहरण करनेसे हारीत (हरियल) पक्षीकी योनि मिलती है और चाँदीका बर्तन चुरानेसे कबूतर होना पड़ता है। सुवर्णका पात्र चुरानेवाला मनुष्य कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। रेशमी वस्त्रकी चोरी करनेपर चकवेकी योनि मिलती है तथा रेशमका कीड़ा भी होना पड़ता है। हरिणके रोएँसे बना हुआ वस्त्र, महीन वस्त्र, भेड़ और बकरीके रोएँसे बना हुआ वस्त्र तथा पाटंबर चुरानेपर तोतेकी योनि मिलती है। रूईका बना हुआ वस्त्र चुरानेसे क्रौञ्च और अग्निके अपहरण-से बगुला अथवा गदहा होना पड़ता है। अङ्गराग और पत्तियोंका साग चुरानेवाला मोर होता है। लालवस्त्रकी चोरी करनेवालेको चकवेकी योनि मिलती है। उत्तम सुगन्धयुक्त पदार्थोंकी चोरी करनेपर छछूँदर और वस्त्रका अपहरण करनेपर खरगोशकी योनिमें जाना पड़ता है। फल चुरानेवाला नपुंसक और काष्ठकी चोरी करनेवाला घुन होता है। फूल चुरानेवाला दरिद्र और वाहनका अपहरण करनेवाला पङ्गु होता है। साग चुरानेवाला हारीत और पानीकी चोरी करनेवाला पपीहा होता है। जो भूमिका अपहरण करता है, वह अत्यन्त भयङ्कर रौरव आदि नरकोंमें जाकर वहाँसे लौटनेके बाद क्रमशः तृण, झाड़ी, लता, बेल और बाँसका वृक्ष होता है। फिर थोड़ा-सा पाप शेष रहनेपर वह मनुष्यकी योनिमें आता है। जो बैलके अण्डकोषका छेदन करता है, वह नपुंसक होता है और इसी रूपमें इक्कीस जन्म बितानेके पश्चात् वह क्रमशः कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, जलचर जीव तथा मृग होता है। इसके बाद बैलका शरीर धारण करनेके बाद चाण्डाल और डोम आदि घृणित योनियोंमें जन्म लेता है। मनुष्य-योनिमें वह पङ्गु, अंधा, बहरा, कोढ़ी, राजयक्ष्मासे पीड़ित तथा मुख, नेत्र एवं गुदाके रोगोंसे ग्रस्त रहता है। इतना ही नहीं, उसे



मिरगीका भी रोग होता है तथा वह शूद्रकी योनिमें भी जन्म लेता है। गाय और सोनेकी चोरी करनेवालोंकी दुर्गतिका भी यही क्रम है। गुरुको दक्षिणा न देकर उनकी विद्याका अपहरण करनेवाले छात्र भी इसी गतिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य किसी दूसरेकी स्त्रीको लाकर दूसरेको दे देता है, वह मूर्ख नरककी यातनाओंसे छूटनेपर नपुंसक होता है। जो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित किये बिना ही उसमें हवन करता है, वह अजीर्णताके रोगसे पीड़ित एवं मन्दाग्निकी बीमारीसे युक्त होता है।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरोंके गुप्त भेदको खोलना, निष्ठुरता दिखाना, निर्दय होना, परायी स्त्रीका सेवन करना, दूसरेका धन हड़प लेना, अपवित्र रहना, देवताओंकी निन्दा करना, शठतापूर्वक मनुष्योंको ठगना, कंजूसी करना, मनुष्योंके प्राण लेना तथा और भी जितने निषिद्ध कर्म हैं, उनमें निरन्तर प्रवृत्त रहना—ये सब नरक भोगकर लौटे हुए मनुष्योंकी पहचान हैं, ऐसा जानना चाहिये। जीवोंपर दया करना, अच्छे वचन बोलना, परलोकके लिये पुण्यकर्म करना, सत्य बोलना, सम्पूर्ण भूतोंके लिये हितकारक वचन कहना, वेद स्वतः प्रमाण हैं—ऐसी दृष्टि रखना, गुरु, देवता, ऋषि, सिद्ध और महात्माओंका सत्कार करना, साधुपुरुषोंके सङ्गमें रहना, अच्छे कर्मोंका अभ्यास करना, सबके प्रति मित्रभाव रखना तथा और भी जो उत्तम धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्य हैं, वे सब स्वर्गसे लौटे हुए पुण्यात्मा पुरुषोंके चिह्न हैं—ऐसा विद्वान् पुरुषोंको समझना चाहिये।*

राजन्! अपने-अपने कर्मोंका फल भोगनेवाले पुण्यात्मा और पापियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली ये सब बातें मैंने आपको संक्षेपमें बतायी हैं। अच्छा, अब आप आइये; अन्यत्र चलें। इस समय यहाँ सब कुछ आपने देख लिया।

पुत्र कहता है-पिताजी! तदनन्तर राजा विपश्चित् यमदूतको आगे करके वहाँसे जानेको उद्यत हुए। यह देख यातनामें पड़े हुए सभी मनुष्योंने चिल्लाकर कहा—'महाराज! हमपर कृपा कीजिये। दो घड़ी और ठहर जाइये। आपके शरीरको छूकर बहनेवाली वायु हमारे चित्तको आनन्द प्रदान करती है और समस्त शरीरोंमें जो सन्ताप, वेदना और बाधाएँ हैं, उनका नाश किये देती है; अतः नरश्रेष्ठ महीपते!



* परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम्।
नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम्॥
परस्वहरणाशौचं देवतानां च कुत्सना।
निकृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः॥

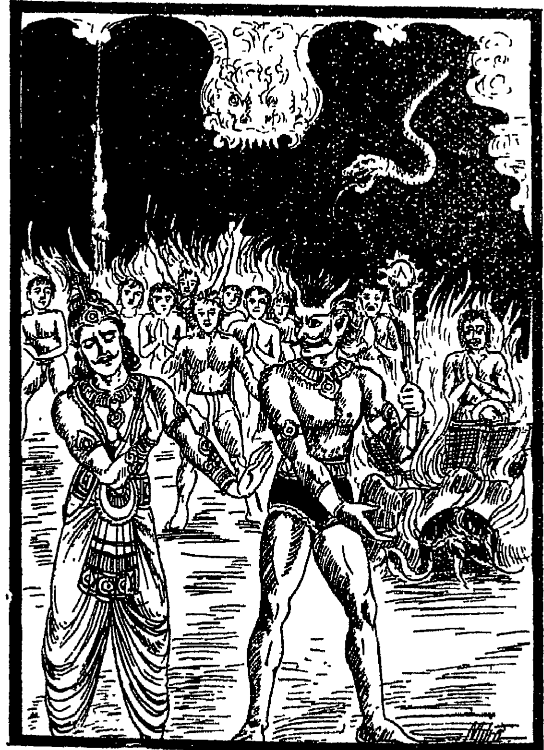
हमपर अवश्य कृपा कीजिये।' उनकी यह बात सुनकर राजाने यमदूतसे पूछा—'मेरे रहनेसे इन्हें आनन्द क्योंकर प्राप्त होता है? मैंने मर्त्यलोकमें रहकर कौन-सा महान् पुण्यकर्म किया है, जिससे इन लोगोंपर आनन्ददायिनी वायुकी वृष्टि हो रही है? इस बातको बताओ।'*

यमदूतने कहा—राजन्! आपका यह शरीर पितरों, देवताओं, अतिथियों और भृत्यजनोंसे बचे हुए अन्नके सेवनसे पुष्ट हुआ है तथा आपका मन भी इन्हींकी सेवामें संलग्न रहा है। इसीलिये आपके शरीरको छूकर बहनेवाली वायु आनन्ददायिनी जान पड़ती है और इसके लगनेसे इन पापियोंको नरककी यातना कष्ट नहीं पहुँचाती। आपने अश्वमेध आदि यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया है; अतः आपके दर्शनसे यमलोकके यन्त्र, शस्त्र, अग्नि और कौए आदि पक्षी, जो पीड़न, छेदन और जलन आदि महान् दुःखके कारण हैं, कोमल हो गये हैं। आपके तेजसे इनका क्रूर स्वभाव दब गया है।

राजा बोले—भद्रमुख! मेरा तो ऐसा विचार है कि पीड़ित प्राणियोंको दुःखसे मुक्त करके उन्हें शान्ति प्रदान करनेसे जो सुख मिलता है, वह मनुष्योंको स्वर्गलोक अथवा ब्रह्मलोकमें भी नहीं प्राप्त होता। यदि मेरे समीप रहनेसे इन दुखी जीवोंको नरकयातना कष्ट नहीं पहुँचाती तो मैं सूखे काठकी तरह अचल होकर यहीं रहूँगा।

यमदूतने कहा—राजन्! आइये, अब यहाँसे चलें। आप पापियोंकी इन यातनाओंको यहीं छोड़कर अपने पुण्यसे प्राप्त हुए दिव्य भोगोंका उपभोग कीजिये।

राजा बोले—जबतक ये लोग अत्यन्त दुखी रहेंगे तबतक तो मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा; क्योंकि मेरे निकट रहनेसे इन नरकवासियोंको सुख मिलता है। जो शरणमें आनेकी इच्छा रखनेवाले आतुर एवं पीड़ित मनुष्यपर, भले ही वह शत्रुपक्षका ही क्यों न हो, कृपा नहीं करता, उस पुरुषके जीवनको धिक्कार है। जिसका मन सङ्कटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करनेमें नहीं लगता, उसके यज्ञ, दान और तप इहलोक और परलोकमें भी कल्याणके साधक नहीं होते। जिसका हृदय बालक, वृद्ध तथा आतुर प्राणियोंके प्रति कठोरता धारण करता है, मैं उसे मनुष्य नहीं मानता; वह तो निरा राक्षस है। माना, इनके निकट रहनेसे अग्नि-जनित संतापका कष्ट सहना होगा, नरककी भयानक दुर्गन्धका भोग करना पड़ेगा, भूख-प्यासका महान् दुःख, जो मूर्च्छित कर देनेवाला है, भोगना पड़ेगा; तथापि इन दुखियोंकी रक्षा करनेमें जो सुख है, उसे मैं स्वर्गीय सुखसे भी बढ़कर मानता हूँ। यदि अकेले मेरे दुखी होनेसे बहुत-से



यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च संतता।
उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु॥
दया भूतेषु सद्वादः परलोकप्रतिक्रिया।
सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम्॥
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः।
सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रीमिति बुध्येत पण्डितः॥
अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च।
स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम्॥
(अ० १५। ३९-४४)

* पुत्र उवाच
ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजा गन्तुमुद्यतः।
ततश्च सर्वैरुत्कुष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः॥
प्रसादं कुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम्।
त्वदङ्गसङ्गी पवनो मनो ह्लादयते हि नः॥
परितापं च गात्रेभ्यः पीडाबाधाश्च कृत्स्नशः।
अपहन्ति नरव्याघ्र दयां कुरु महीपते॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यपुरुषं नृपः।
पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति॥
किं मया कर्म तत् पुण्यं मर्त्यलोके महत् कृतम्।
आह्लाददायिनी वृष्टिर्येनेयं तदुदीरय॥
(अ० १५। ४७-५१)

आर्त्त मनुष्योंको सुख प्राप्त होता है तो मुझे कौन-सा सुख नहीं मिला ? इसलिये दूत ! अब तुम शीघ्र लौट जाओ, मैं यहीं रहूँगा ।*

यमदूतने कहा—महाराज ! ये धर्मराज और इन्द्र आपको लेनेके लिये आये हैं । यहाँसे आपको अवश्य जाना है, अतः चले चलिये ।



धर्मराज बोले—राजन् ! तुमने मेरी भलीभाँति उपासना की है, अतः मैं तुम्हें स्वर्गलोकमें ले चलता हूँ । इस विमानपर चढ़कर चलो, विलम्ब न करो ।

राजाने कहा—धर्मराज ! यहाँ नरकमें हजारों मनुष्य कष्ट भोगते हैं और मुझे लक्ष्य करके आर्त्तभावसे त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं, इसलिये मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा । देवराज इन्द्र ! और धर्म ! यदि आप दोनों जानते हों कि मेरा पुण्य कितना है तो उसे बतानेकी कृपा करें ।

धर्म बोले—महाराज ! जिस प्रकार समुद्रके जलबिन्दु, आकाशके तारे, वर्षाकी धाराएँ, गङ्गाकी बालुकाके कण तथा जलकी बूँदें आदि असंख्य हैं, उसी प्रकार तुम्हारे पुण्यकी भी कोई नियत संख्या नहीं हो सकती । आज यहाँ इन नरकमें पड़े हुए जीवोंपर कृपा करनेसे तुम्हारा पुण्य लाखों-गुना बढ़ गया । नृपश्रेष्ठ ! अपने इस पुण्यका फल भोगनेके लिये अब देवलोकमें चलो और ये पापी जीव भी नरकमें रहकर अपने कर्मोंका फल भोगें ।

राजाने कहा—देवराज ! यदि मेरे समीपमें आनेपर भी इन दुखी जीवोंको कोई ऊँचा पद नहीं प्राप्त हुआ

---

* यमपुरुष उवाच

पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः ।
पुष्टिमभ्यागता यस्मात् तद्गतं च मनो यतः ॥
ततस्त्वद्गात्रसंसर्गी पवनो ह्लाददायकः ।
पापकर्मकृतो राजन् यातना न प्रबाधते ॥
अश्वमेधादयो यज्ञास्त्वयेष्टा विधिवद् यतः ।
ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यन्त्रशस्त्राग्निवायसाः ॥
पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्य हेतवः ।
मृदुत्वमागता राजन् तेजसापहतास्तव ॥

राजोवाच

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत् सुखं प्राप्यते नरैः ।
यदार्त्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमिति मे मतिः ॥
यदि मत्सन्निधावेतान् यातना न प्रबाधते ।
ततो भद्रमुखात्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः ॥

यमपुरुष उवाच

एहि राजन् प्रगच्छामो निजपुण्यसमर्जितान् ।
भुङ्क्ष्व भोगानपास्येह यातनाः पापकर्मणाम् ॥

राजोवाच

तस्मान्न तावद् यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः ।
मत्सन्निधानात् सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ॥
धिक् तस्य जीवनं पुंसः शरणार्थिनमातुरम् ।
यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥
यज्ञदानतपांसीह परत्र च न भूतये ।
भवन्ति तस्य यस्यार्त्तपरित्राणे न मानसम् ॥
नरस्य यस्य कठिनं मनो बालातुरादिषु ।
वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः ॥
एतेषां संनिकर्षात् तु यदग्निपरितापजम् ।
तथोग्रगन्धजं वापि दुःखं नरकसम्भवम् ॥
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्च मूर्च्छापदं महत् ।
एतेषां त्राणदानं तु मन्ये स्वर्गसुखात् परम् ॥
प्राप्स्यन्त्यार्त्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ।
किं नु प्राप्तं मया न स्यात् तस्मात् त्वं व्रज माचिरम् ॥
(अ० १५ । ५२-६५)

तो मनुष्य मेरे सम्पर्कमें रहनेकी अभिलाषा क्यों करेंगे ? अतः मेरा जो कुछ भी पुण्य है, उसके द्वारा ये यातनामें पड़े हुए पापी जीव नरकसे छुटकारा पा जायँ ।

इन्द्र बोले—राजन् ! इस उदारताके कारण तुमने और भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया । देखो, ये पापी जीव भी नरकसे मुक्त हो गये ।

पुत्र कहता है—पिताजी ! तदनन्तर राजा विपश्चित्के ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी और स्वयं भगवान् विष्णु उन्हें विमानमें बिठाकर दिव्यधाममें ले गये ।* उस समय मैं तथा और भी जितने पापी जीव थे, वे सब नरक-यातनासे छूटकर अपने-अपने कर्मफलके अनुसार भिन्न-भिन्न योनियोंमें चले गये । द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने इन नरकोंका वर्णन किया; साथ ही पूर्वकालमें मैंने जैसा अनुभव किया था, उसके अनुसार जिस-जिस पापके कारण मनुष्य जिस-जिस योनिमें जाता है, वह सब भी बतला दिया ।



दत्तात्रेयजीके जन्म-प्रसङ्गमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी तथा अनसूयाजीका चरित्र

पिता बोले—बेटा ! तुमने अत्यन्त हेय संसारके व्यवस्थित स्वरूपका वर्णन किया, जो घटी-यन्त्रकी भाँति निरन्तर आवागमनशील और प्रवाहरूपसे अविनाशी है । इस प्रकार मैंने इसके स्वरूपको भलीभाँति समझ लिया है । ऐसी स्थितिमें अब मुझे क्या करना चाहिये ? यह बताओ ।

पुत्र (सुमति) ने कहा—पिताजी ! यदि आप शङ्का छोड़कर मेरे वचनोंमें पूर्ण श्रद्धा रखते हैं, तो मेरी राय यह है कि आप गृहस्थाश्रमका परित्याग करके वानप्रस्थके नियमोंका पालन कीजिये । वानप्रस्थ आश्रमके कर्तव्यका भलीभाँति अनुष्ठान करके फिर आहवनीय आदि अग्नियोंका संग्रह भी

---

* यमपुरुष उवाच—एष धर्मश्च शक्रश्च त्वां नेतुं समुपागतौ । अवश्यमस्माद्गन्तव्यं तस्मात् पार्थिव गम्यताम् ॥
धर्म उवाच—नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वया सम्यगुपासितः । विमानमेतदारुह्य मा विलम्बस्व गम्यताम् ॥
राजोवाच—नरके मानवा धर्म पीड्यन्तेऽत्र सहस्रशः । त्राहीति चार्त्ताः क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् ॥
यदि जानासि धर्म त्वं त्वं वा शक्र शचीपते । मम यावत्प्रमाणं तु शुभं तद्वक्तुमर्हथः ॥
धर्म उवाच—अब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा वा दिवि तारकाः । यथा वा वर्षतो धारा गङ्गायां सिकता यथा ॥
असंख्येया महाराज यथा बिन्द्वादयो ह्यपाम् । तथा तवापि पुण्यस्य संख्या नैवोपपद्यते ॥
अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुर्वतः । तदेव शतसाहस्रसंख्यामुपगतं तव ॥
तद् गच्छ त्वं नृपश्रेष्ठ तद्भोक्तुममरालयम् । एतेऽपि पापं नरके क्षपयन्तु स्वकर्मजम् ॥
राजोवाच—कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः । यदि मत्संनिधावेषामुत्कर्षो नोपजायते ॥
तस्माद् यत् सुकृतं किञ्चिन्ममास्ति त्रिदशाधिप । तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः ॥
इन्द्र उवाच—एवमूर्ध्वतरं स्थानं त्वयावाप्तं महीपते । एतांश्च नरकात् पश्य विमुक्तान् पापकारिणः ॥
पुत्र उवाच—ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः । विमानं चाधिरोप्यैनं स्वलोकमनयद्धरिः ॥

(अ० १५ । ६६–६८, ७०–७८)

छोड़ दीजिये और आत्मा (बुद्धि)को आत्मामें लगाकर द्वन्द्वरहित एवं परिग्रहशून्य हो जाइये। एकान्तमें रहते हुए अपने मनको वशमें कीजिये और आलस्य छोड़कर भिक्षु (संन्यासी) का जीवन व्यतीत कीजिये। संन्यासाश्रममें योगपरायण होकर बाह्य विषयोंके सम्पर्कसे अलग हो जाइये। इससे आपको उस योगकी प्राप्ति होगी, जो दुःख-संयोगको दूर करनेकी ओषधि, मोक्षका साधन, तुलनारहित, अनिर्वचनीय एवं असङ्ग है और जिसका संयोग प्राप्त होनेपर आपको फिर संसारी जीवोंके सम्पर्कमें नहीं आना पड़ेगा।

पिता बोले—बेटा! अब तुम मुझे मोक्षके साधनभूत उस उत्तम योगका उपदेश दो, जिससे मैं फिर संसारी जीवोंके सम्पर्कमें आकर ऐसा दुःख न उठाऊँ। यद्यपि आत्मा स्वभावतः सब प्रकारके योगसे रहित है, तो भी जिस योगमें आसक्त होनेपर मेरे आत्माका सांसारिक बन्धनोंसे योग न हो, उसी योगको इस समय मुझे बताओ। संसाररूपी सूर्यके प्रचण्ड तापकी पीड़ासे मेरे शरीर और मन दोनों सूख रहे हैं। तुम ब्रह्मज्ञानरूपी जलकी शीतलतासे युक्त अपने वचनरूपी सलिलसे इन्हें सींच दो। मुझे अविद्यारूपी काले नागने डस लिया है। मैं उसके विषसे पीड़ित होकर मर रहा हूँ। तुम अपने वचनामृतसे मुझे पुनः जीवित कर दो। मैं स्त्री-पुत्र, घर-द्वार, खेती-बारीकी ममतारूपी बेड़ीमें जकड़ा जाकर कष्ट पा रहा हूँ; तुम प्रिय एवं उत्तम भावसे युक्त विज्ञानद्वारा इस बन्धनको खोलकर मुझे शीघ्र मुक्त करो।

पुत्रने कहा—पिताजी! पूर्वकालमें परम बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीने राजा अलर्कको उनके पूछनेपर जिस योगका भलीभाँति विस्तारपूर्वक उपदेश किया था, वही आपको बता रहा हूँ; सुनिये।

पिता बोले—दत्तात्रेयजी किसके पुत्र थे? उन्होंने किस प्रकार योगका उपदेश किया था और महाभाग अलर्क कौन थे, जिन्होंने योगके विषयमें प्रश्न किया था?

पुत्रने कहा—प्रतिष्ठानपुरमें एक कौशिक नामक ब्राह्मण था। वह पूर्वजन्ममें किये हुए पापोंके कारण कोढ़के रोगसे व्याकुल रहने लगा। ऐसे घृणित रोगसे युक्त होनेपर भी उसे उसकी पत्नी देवताकी भाँति पूजती थी। वह अपने पतिके पैरोंमें तेल मलती, उसका शरीर दबाती, अपने हाथसे उसे नहलाती, कपड़े पहनाती और भोजन कराती थी; इतना ही नहीं, उसके थूक, खँखार, मल-मूत्र और रक्त भी वह स्वयं ही धोकर साफ करती थी। वह एकान्तमें भी पतिकी सेवा करती, और उसे मीठी वाणीसे प्रसन्न रखती थी। इस प्रकार अत्यन्त विनीत भावसे वह सदा अपने स्वामीकी पूजा किया करती, तो भी अधिक क्रोधी स्वभावका होनेके कारण वह निष्ठुर प्रायः अपनी पत्नीको फटकारता ही रहता था। इतनेपर भी वह उसके पैरों पड़ती और उसे देवताके समान समझती थी। यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त घृणाके योग्य था, तो भी वह साध्वी उसे सबसे श्रेष्ठ मानती थी। कौशिकसे चला-फिरा नहीं जाता था, तो भी एक दिन उसने अपनी पत्नीसे कहा—'धर्मज्ञे! उस दिन मैंने घरपर बैठे-बैठे ही सड़कपर जिस वेश्याको जाते देखा था, उसके घरमें आज मुझे ले चलो। मुझे उससे मिला दो। वही मेरे हृदयमें बसी हुई है। जबसे मैंने उसे देखा है, तबसे वह मेरे मनसे दूर नहीं होती। यदि वह आज मेरा आलिङ्गन नहीं करेगी तो कल तुम मुझे मरा हुआ देखोगी। मनुष्योंके लिये कामदेव प्रायः टेढ़ा होता है। उस वेश्याको बहुत लोग चाहते हैं और मुझमें उसके पासतक जानेकी शक्ति नहीं है; इसलिये आज मुझे बड़ा सङ्कट प्रतीत होता है।'

अपने कामातुर स्वामीका यह वचन सुनकर उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई इस परम सौभाग्यशालिनी पतिव्रता पत्नीने अपनी कमर खूब कस ली और अधिक शुल्क लेकर पतिको कंधेपर चढ़ा लिया। फिर धीरे-धीरे वेश्याके घरकी ओर प्रस्थान किया। रात्रिका समय था, आकाश मेघोंसे आच्छन्न हो रहा था। केवल बिजलीके चमकनेसे मार्ग दिखायी दे जाता था। ऐसी बेलामें वह ब्राह्मणी अपने पतिका अभीष्ट साधन करनेके लिये राजमार्गसे जा रही थी। मार्गमें सूली थी, जिसके ऊपर चोर न होते हुए भी चोरके सन्देहसे माण्डव्य नामक ब्राह्मण-को चढ़ा दिया गया था। वे दुःखसे आतुर हो रहे थे। कौशिक पत्नीके कंधेपर बैठा था, उस अन्धकारमें देख न सकनेके कारण उसने अपने पैरोंसे छूकर सूलीको हिला दिया। इससे कुपित होकर माण्डव्यने कहा—'जिसने पैरसे हिलाकर मुझे इस कष्टकी दशामें पहुँचा दिया और मुझे अत्यन्त दुखी कर दिया, वह पापात्मा नराधम सूर्योदय होनेपर विवश हो निस्सन्देह अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। सूर्यका दर्शन होते ही उसका विनाश हो जायगा।' इस अत्यन्त दारुण शापको सुनकर उसकी पत्नी व्यथित होकर बोली—'अब सूर्यका उदय ही नहीं होगा।'* तदनन्तर सूर्योदय न होनेके कारण बराबर

* तस्य भार्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम्।
प्रोवाच व्यथिता सूर्यो नैवोदयमुपैष्यति॥ (१६।३१)

रात ही रहने लगी। कितने ही दिनोंके बराबर समय रातभरमें



ही बीत गया। इससे देवताओंको बड़ा भय हुआ। वे सोचने लगे—स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा (श्राद्ध) तथा स्वाहा (यज्ञ) से रहित होकर यह सारा जगत् नष्ट हुए बिना कैसे रह सकता है। दिन-रातकी व्यवस्था हुए बिना मास और ऋतुका भी लोप हो जायगा। उनके लोप होनेसे दक्षिणायन और उत्तरायणका भी ज्ञान नहीं होगा। अयनका ज्ञान हुए बिना वर्ष कैसे हो सकता है, और वर्षके बिना कालका ज्ञान होना असम्भव है। पतिव्रताके वचनसे सूर्यका उदय ही नहीं होता; उसके बिना स्नान, दान आदि क्रियाएँ बंद हो गयीं। अग्नि-होत्र और यज्ञका अभाव भी दृष्टिगोचर होने लगा है। होमके बिना हमलोगोंकी तृप्ति नहीं होती। जब मनुष्य यज्ञका यथोचित भाग देकर हमें तृप्त करते हैं, तब हम खेतीकी उपजके लिये वर्षा करके मनुष्योंपर अनुग्रह करते हैं। नया अन्न पैदा होनेपर मनुष्य फिर हमारे लिये यज्ञ करते हैं और हमलोग यज्ञादिद्वारा पूजित होनेपर उन्हें मनोवाञ्छित भोग प्रदान करते हैं। हम नीचेकी ओर वर्षा करते हैं और मनुष्य ऊपरकी ओर। हम जलकी वर्षासे मनुष्योंको और मनुष्य हविष्यकी वर्षासे हमलोगोंको तृप्त करते हैं। जो दुरात्मा लोभवश हमारा यज्ञभाग स्वयं खा लेते हैं, उन अपकारी पापियोंके नाशके लिये हम जल, सूर्य, अग्नि, वायु तथा पृथ्वीको भी दूषित कर देते हैं। उन दूषित वस्तुओंका उपभोग करनेसे उन कुकर्मियोंकी मृत्युके लिये भयङ्कर महामारी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जो हमें तृप्त करके शेष अन्न अपने उपभोगमें लाते हैं, उन महात्माओंको हम पुण्यलोक प्रदान करते हैं। किन्तु इस समय प्रभातकाल हुए बिना इन मनुष्योंके लिये वह सब पुण्यकर्म असम्भव हो रहा है। अब दिनकी सृष्टि कैसे हो?' इस प्रकार सब देवता आपसमें बात करने लगे। यज्ञोंके विनाशकी आशङ्कासे वहाँ एकत्रित हुए देवताओंके वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने कहा—'पतिव्रताके माहात्म्यसे इस समय सूर्यका उदय नहीं हो रहा है और सूर्योदय न होनेसे मनुष्यों तथा तुम देवताओं-की भी हानि है; अतः तुमलोग महर्षि अत्रिकी पतिव्रता पत्नी तपस्विनी अनसूयाके पास जाओ और सूर्योदयकी कामनासे उन्हें प्रसन्न करो।'*

तब देवताओंने जाकर अनसूयाजीको प्रसन्न किया। वे बोलीं—'तुम क्या चाहते हो, बतलाओ।' देवताओंने याचना की कि 'पूर्ववत् दिन होने लगे।'

अनसूयाने कहा—देवताओ! पतिव्रताका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं हो सकता; इसलिये मैं उस साध्वीको मनाकर दिनकी सृष्टि करूँगी। मुझे ऐसा उपाय करना है, जिससे फिर पहलेकी ही भाँति दिन-रातकी व्यवस्था चलती रहे और उस पतिव्रताके पतिका भी नाश न हो।†

पुत्रने कहा—देवताओंसे यों कहकर अनसूया देवी उस ब्राह्मणीके घर गयीं और उसके कुशल पूछनेपर उन्होंने अपनी, अपने स्वामीकी तथा अपने धर्मकी कुशल बतायी।

---

* पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः।
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवतां तथा॥
तस्मात् पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम्।
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया॥
(१६। ४८-४९)

अनसूयोवाच

† पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथं त्विति।
सम्मान्य तस्मात् तां साध्वीमहः स्रक्ष्याम्यहं सुराः॥
यथा पुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते।
यथा च तस्याः स्वपतिर्न साध्व्या नाशमेष्यति॥
(१६। ५१-५२)

अनसूया बोलीं—कल्याणी ! तुम अपने स्वामीके मुखका दर्शन करके प्रसन्न तो रहती हो न ? पतिको सम्पूर्ण देवताओंमें बड़ा मानती हो न ? पतिकी सेवासे ही मुझे महान् फलकी प्राप्ति हुई है तथा सम्पूर्ण कामनाओं एवं फलोंकी प्राप्तिके साथ ही मेरे सारे विघ्न भी दूर हो गये ।* साध्वी ! मनुष्यको पाँच ऋण सदा ही चुकाने चाहिये । अपने वर्णधर्मके अनुसार धनका संग्रह करना आवश्यक है । उसके प्राप्त होनेपर शास्त्र-विधिके अनुसार उसका सत्पात्रको दान करना चाहिये । सत्य, सरलता, तपस्या, दान और दयासे सदा युक्त रहना चाहिये । राग-द्वेषका परित्याग करके शास्त्रोक्त कर्मोंका अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य अपने वर्णके लिये विहित उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है । पतिव्रते ! इस प्रकार महान् क्लेश उठानेपर पुरुषोंको प्राजापत्य आदि लोकोंकी प्राप्ति होती है; परन्तु स्त्रियाँ केवल पतिकी सेवा करनेमात्रसे पुरुषोंके दुःख सहकर उपार्जित किये हुए पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियोंके लिये अलग यज्ञ, श्राद्ध या उपवासका विधान नहीं है । वे पतिकी सेवामात्रसे ही उन अभीष्ट लोकोंको प्राप्त कर लेती हैं। अतः महाभागे ! तुम्हें सदा पतिकी सेवामें अपना मन लगाना चाहिये; क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही परम गति है । पति जो देवताओं, पितरों तथा अतिथियोंकी सत्कार-पूर्वक पूजा करता है, उसके भी पुण्यका आधा भाग स्त्री अनन्यचित्तसे पतिकी सेवा करनेमात्रसे प्राप्त कर लेती है ।†

* कच्चिन्नन्दसि कल्याणि स्वभर्तुर्मुखदर्शनात् ।
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसेऽभ्यधिकं पतिम् ॥
भर्तृशुश्रूषणादेव मया प्राप्तं महत् फलम् ।
सर्वकामफलावाप्त्या प्रत्यूहाः परिवर्तिताः ॥
(१६ । ५४-५५)

† नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम् ।
भर्तृशुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि ॥
तस्मात् साध्वि महाभागे पतिशुश्रूषणं प्रति ।
त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्ता परा गतिः ॥
यद्देवेभ्यो यच्च पित्रागतेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियातः ।
तस्याप्यर्द्धं केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥
(१६ । ६१-६३)

अनसूयाजीका वचन सुनकर पतिव्रता ब्राह्मणीने बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया और इस प्रकार कहा—'स्वभावतः सबका कल्याण करनेवाली देवी ! स्वयं आप यहाँ पधारकर पतिकी सेवामें मेरी पुनः श्रद्धा बढ़ा रही हैं । इससे मैं धन्य हो गयी । यह आपका मुझपर बहुत बड़ा अनुग्रह है । इसीसे देवताओंने भी आज मुझपर कृपादृष्टि की है । मैं जानती हूँ कि स्त्रियोंके लिये पतिके समान दूसरी कोई गति नहीं है । पतिमें किया हुआ प्रेम इहलोक और परलोकमें भी उपकार करनेवाला होता है । यशस्विनि ! पतिके प्रसादसे ही नारी इस लोक और परलोकमें भी सुख पाती है; क्योंकि पति ही नारीका देवता है । महाभागे ! आज आप मेरे घरपर पधारी हैं । मुझसे अथवा मेरे इन पतिदेवसे आपको जो भी कार्य हो, उसे बतानेकी कृपा करें ।*

अनसूयोवाच

एते देवाः सहेन्द्रेण मामुपागम्य दुःखिताः ।
त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणाः ॥
याचन्तेऽहर्निशासंस्थां यथावदविखण्डिताम् ।
अहं तदर्थमायाता शृणु चैतद्वचो मम ॥
दिनाभावात् समस्तानामभावो यागकर्मणाम् ।
तदभावात् सुराः पुष्टिं नोपयान्ति तपस्विनि ॥
अह्नश्चैव समुच्छेदादुच्छेदः सर्वकर्मणाम् ।
तदुच्छेदादनावृष्ट्या जगदुच्छेदमेष्यति ॥
तत्त्वमिच्छसि चेदेतज्जगदुद्धर्तुमापदः ।
प्रसीद साध्वि लोकानां पूर्ववद्वर्त्ततां रविः ॥

अनसूया बोलीं—देवि ! तुम्हारे वचनसे दिन-रातकी व्यवस्थाका लोप हो जानेके कारण शुभ कर्मोंका अनुष्ठान बंद हो गया है; इसलिये ये इन्द्र आदि देवता मेरे पास दुखी होकर आये हैं और प्रार्थना करते हैं कि दिन-रातकी व्यवस्था पहलेकी तरह अखण्डरूपसे चलती रहे । मैं इसीके लिये तुम्हारे पास आयी हूँ । मेरी यह बात सुनो । दिन न होनेसे समस्त यज्ञकर्मोंका अभाव हो गया है और यज्ञोंके अभावसे देवताओंकी पुष्टि नहीं हो पाती है; अतः तपस्विनि ! दिनके नाशसे समस्त शुभकर्मोंका नाश हो जायगा और उनके नाशसे वृष्टिमें बाधा पड़नेके कारण इस संसारका ही उच्छेद हो जायगा।

* सा त्वं ब्रूहि महाभागे प्राप्ताया मम मन्दिरम् ।
आर्याया यन्मया कार्यं तथाऽऽर्येणापि वा शुभे ॥
(१६ । ६८)

अतः यदि तुम इस जगत्को आपत्तिसे बचाना चाहती हो तो सम्पूर्ण लोकोंपर दया करो, जिससे पहलेकी भाँति सूर्योदय हो।

ब्राह्मण्युवाच

माण्डव्येन महाभागे शप्तो भर्ता ममेश्वरः।
सूर्योदये विनाशं त्वं प्राप्स्यसीत्यतिमन्युना॥

ब्राह्मणीने कहा—महाभागे! माण्डव्य ऋषिने अत्यन्त क्रोधमें भरकर मेरे स्वामी—मेरे ईश्वरको शाप दिया है कि सूर्योदय होते ही तेरी मृत्यु हो जायगी।

अनसूयोवाच

यदि वा रोचते भद्रे ततस्त्वद्वचनादहम्।
करोमि पूर्ववद्देहं भर्तारं च नवं तव॥
मया हि सर्वथा स्त्रीणां माहात्म्यं वरवर्णिनि।
पतिव्रतानामाराध्यमिति सम्मानयामि ते॥

अनसूया बोलीं—कल्याणी! यदि तुम्हारी इच्छा हो और तुम कहो, तो मैं तुम्हारे पतिको पूर्ववत् शरीर एवं नयी स्वस्थ अवस्थाका कर दूँगी। सुन्दरी! मुझे पतिव्रता स्त्रियोंके माहात्म्यका सर्वथा आदर करना है, इसीलिये तुम्हें मनाती हूँ।

पुत्र उवाच

तथेत्युक्ते तया सूर्यमाजुहाव तपस्विनी।
अनसूयार्घ्यमुद्यम्य दशरात्रे तदा निशि॥
ततो विवस्वान् भगवान् फुल्लपद्मारुणाकृतिः।
शैलराजानमुदयमारुरोहोरुमण्डलः॥
समनन्तरमेवास्या भर्ता प्राणैर्व्ययुज्यत।
पपात च महीपृष्ठे पतन्तं जगृहे च सा॥

पुत्र (सुमति) कहता है—ब्राह्मणीके 'तथास्तु' कहकर स्वीकार करनेपर तपस्विनी अनसूयाने अर्घ्य हाथमें लेकर सूर्यदेवका आवाहन किया। उस समयतक दस दिनोंके बराबर रात बीत चुकी थी। तदनन्तर भगवान् सूर्य खिले हुए कमलके समान अरुण आकृति धारण किये अपने महान् मण्डलके साथ गिरिराज उदयाचलपर आरूढ़ हुए। सूर्यदेवके प्रकट होते ही ब्राह्मणीका पति प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरा; किन्तु उसकी पत्नीने गिरते समय उसे पकड़ लिया।

अनसूयोवाच

न विषादस्त्वया भद्रे कर्तव्यः पश्य मे बलम्।
पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किं चिरेण ते॥
यथा भर्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित्।
रूपतः शीलतो बुद्ध्या वाङ्माधुर्यादिभूषणैः॥
तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा।
प्राप्नोतु जीवितं भार्यासहायः शरदां शतम्॥
यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम्।
तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः॥
कर्मणा मनसा वाचा भर्तुराराधनं प्रति।
यथा ममोद्यमो नित्यं तथायं जीवतां द्विजः॥

अनसूया बोलीं—भद्रे! तुम विषाद न करना। पतिकी सेवासे जो तपोबल मुझे प्राप्त हुआ है, उसे तुम अभी देखो; विलम्बकी क्या आवश्यकता? मैंने जो रूप, शील, बुद्धि एवं मधुर भाषण आदि सद्गुणोंमें अपने पतिके समान दूसरे किसी पुरुषको कभी नहीं देखा है, उस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगसे मुक्त हो फिरसे तरुण हो जाय और अपनी स्त्रीके साथ सौ वर्षोंतक जीवित रहे। यदि मैं स्वामीके समान और किसी देवताको नहीं समझती, तो उस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगमुक्त होकर पुनः जीवित हो जाय। यदि मन, वाणी एवं क्रियाद्वारा मेरा सारा उद्योग प्रतिदिन स्वामीकी सेवाके ही लिये होता हो, तो यह ब्राह्मण जीवित हो जाय।





पातिव्रतका प्रताप

पुत्र उवाच

ततो विप्रः समुत्तस्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा ।
स्वभाभिर्भासयन् वेश्म वृन्दारक इवाजरः ॥
ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्देववाद्यादिनिःस्वनः ।
लेभिरे च मुदं देवा अनसूयामथाब्रुवन् ॥

पुत्र कहता है—पिताजी ! अनसूयादेवीके इतना कहते ही वह ब्राह्मण अपनी प्रभासे उस भवनको प्रकाशमान करता हुआ रोगमुक्त तरुण शरीरसे जीवित हो उठा, मानो जरावस्थासे रहित देवता हो । तदनन्तर दुन्दुभि आदि देवताओंके बाजोंकी आवाजके साथ वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी । देवताओंको बड़ा आनन्द मिला । वे अनसूयादेवीसे कहने लगे ।

देवता बोले—कल्याणी ! आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य किया है । तपस्विनी ! इससे प्रसन्न होकर देवता आपको वर देना चाहते हैं । आप कोई वर माँगें ।

अनसूयाने कहा—यदि ब्रह्मा आदि देवता मुझपर प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं, यदि आपलोगोंने मुझे वर देनेके योग्य समझा है, तो मेरी यही इच्छा है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हों तथा अपने स्वामीके साथ मैं उस योगको प्राप्त करूँ, जो समस्त क्लेशोंसे मुक्ति देनेवाला है ।

यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने 'एवमस्तु' कहा और तपस्विनी अनसूयाका सम्मान करके वे सब-के-सब अपने-अपने धामको चले गये ।

दत्तात्रेयजीके जन्म और प्रभावकी कथा

पुत्र (सुमति) कहता है—तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेके बाद ब्रह्माजीके द्वितीय पुत्र महर्षि अत्रिने अपनी परमसाध्वी पत्नी अनसूयाको देखा, जो ऋतुस्नान कर चुकी थीं । वे सर्वाङ्गसुन्दरी थीं । उनका रूप मनको लुभानेवाला था । उन्हें देखकर मुनिने कामयुक्त होकर मन-ही-मन उनका चिन्तन किया । उनके चिन्तन करते समय जो विकार प्रकट हुआ, उसे वेगयुक्त वायुने इधर-उधर और ऊपरकी ओर पहुँचा दिया । वह अत्रिमुनिका तेज ब्रह्मस्वरूप, शुक्लवर्ण, सोमरूप एवं रजोमय था । जब वह गिरने लगा तो उसे दसों दिशाओंने ग्रहण कर लिया । वही प्रजापति अत्रिके मानसपुत्र चन्द्रमाके रूपमें अनसूयासे उत्पन्न हुआ, जो समस्त प्राणियोंके जीवनका आधार है । भगवान् विष्णुने सन्तुष्ट होकर अपने श्रीविग्रहसे सत्त्वमय तेजको प्रकट किया । उसीसे दत्तात्रेयजीका जन्म हुआ । भगवान् विष्णुने ही दत्तात्रेयके नामसे प्रसिद्धि प्राप्त करके अनसूयाका स्तनपान किया । वे अत्रिके द्वितीय पुत्र थे । हैहयराज कृतवीर्य बड़ा उद्दण्ड था । उसने एक बार महर्षि अत्रिका अपमान कर दिया । यह देख अत्रिके तृतीय पुत्र दुर्वासा, जो अभी माताके गर्भमें ही थे, क्रोधमें भरकर सात ही दिनोंमें माताके उदरसे बाहर निकल आये । गर्भवासजनित महान् आयास तथा पिताके अपमानजनित दुःख और अमर्षसे युक्त होकर वे हैहयराजको तत्काल भस्म कर डालनेको उद्यत हो गये थे । वे तमोगुणके उत्कर्षसे युक्त साक्षात् भगवान् रुद्रके अंश थे । इस प्रकार अनसूयाके गर्भसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवके अंशभूत तीन पुत्र उत्पन्न हुए । चन्द्रमा ब्रह्माके अंशसे हुए थे, दत्तात्रेय श्रीविष्णुभगवान्‌के स्वरूप थे और दुर्वासाके रूपमें साक्षात् भगवान् शङ्करने ही अवतार लिया था ।* देवताओंके वरदान देनेके कारण ये तीनों देवता वहाँ प्रकट हुए थे । चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे तृण, लता, वल्ली, अन्न तथा मनुष्योंका पोषण करते हैं और सदा स्वर्गमें रहते हैं; वे प्रजापतिके अंश हैं । दत्तात्रेय दुष्ट दैत्योंका संहार करके प्रजाकी रक्षा करते हैं । वे शिष्टजनोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं । उन्हें भगवान् विष्णुका अंश जानना चाहिये । दुर्वासा अपमान करनेवालेको भस्म कर डालते हैं । वे शरीर, दृष्टि, मन और वाणीसे भी उद्धत स्वभावके हैं और रुद्रभावका आश्रय लेकर रहते हैं । इस प्रकार प्रजापति महर्षि अत्रिने स्वयं ही चन्द्रमाको प्रकट किया । श्रीविष्णुरूप दत्तात्रेयजी योगस्थ रहकर विषयोंका अनुभव करने लगे । दुर्वासा अपने पिता-माताको छोड़कर उन्मत्त नामक उत्तम व्रतका आश्रय ले पृथ्वीपर विचरने लगे ।

कुछ काल बीतनेके पश्चात् जब राजा कृतवीर्य स्वर्गको पधारे और मन्त्रियों, पुरोहितों तथा पुरवासियोंने राजकुमार अर्जुनको राज्याभिषेकके लिये बुलाया तब उसने कहा—'मन्त्रियो ! जो भविष्यमें नरकको ले जानेवाला है, वह राज्य मैं नहीं ग्रहण करूँगा । जिसके लिये प्रजाजनोंसे

* सोमो ब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोऽभ्यजायत ।
दुर्वासाः शङ्करो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम् ॥ (१७ । ११)

कर लिया जाता है, उस उद्देश्यका पालन न किया जाय तो राज्य लेना व्यर्थ है। वैश्यलोग अपने व्यापारसे होनेवाली आयका बारहवाँ भाग राजाको इसलिये देते हैं कि वे मार्गमें लुटेरोंद्वारा लूटे न जायँ। राजकीय अर्थरक्षकोंके द्वारा सुरक्षित होकर वे वाणिज्यके लिये यात्रा कर सकें। ग्वाले घी और तक्र आदिका तथा किसान अनाजका छठा भाग राजाको इसी उद्देश्यसे अर्पण करते हैं। यदि राजा वैश्योंसे सम्पूर्ण आयका अधिकांश भाग ले ले तो वह चोरका काम करता है। इससे उसके इष्ट और पूर्त कर्मोंका नाश होता है।* यदि राजाको कर देकर भी प्रजाको दूसरी वृत्तियोंका आश्रय लेना पड़े, उसकी रक्षा राजाके अतिरिक्त किन्हीं अन्य व्यक्तियोंद्वारा हो तो उस अवस्थामें कर लेनेवाले राजाको निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है। प्रजाकी आयका जो छठा भाग है, उसे पूर्वकालके महर्षियोंने राजाके लिये प्रजाकी रक्षाका वेतन नियत किया है। यदि चोरोंसे वह प्रजाकी रक्षा न कर सका तो इसका पाप राजाको ही होता है; इसलिये यदि मैं तपस्या करके अपनी इच्छाके अनुसार योगीका पद प्राप्त कर लूँ तो मैं पृथ्वीके पालनकी शक्तिसे युक्त एकमात्र राजा हो सकता हूँ। ऐसी दशामें अपने उत्तरदायित्वका पूर्ण निर्वाह करनेके कारण मुझे पापका भागी नहीं होना पड़ेगा।'

उसके इस निश्चयको जानकर मन्त्रियोंके मध्यमें बैठे हुए परमबुद्धिमान् वयोवृद्ध मुनिश्रेष्ठ गर्गने कहा—'राजकुमार! यदि तुम राज्यका यथावत् पालन करनेके लिये ऐसा करना चाहते हो तो मेरी बात सुनो और वैसा ही करो। महाभाग दत्तात्रेय मुनि सह्यपर्वतकी गुफामें रहते हैं। तुम उन्हींकी आराधना करो। वे तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं। दत्तात्रेयजी योगयुक्त, परम सौभाग्यशाली, सर्वत्र समदर्शी तथा विश्वपालक भगवान् विष्णुके अंशरूपसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। उन्हींकी आराधना करके इन्द्रने दुरात्मा दैत्योंद्वारा छीने हुए अपने पदको प्राप्त किया तथा दैत्योंको मार भगाया।'

अर्जुनने पूछा—महर्षे! देवताओंने परम प्रतापी दत्तात्रेयजीकी आराधना किस प्रकार की थी? तथा दैत्योंद्वारा छीने हुए इन्द्रपदको देवराजने कैसे प्राप्त किया था?

गर्गने कहा—पूर्वकालमें देवताओं और दैत्योंमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ था। उस युद्धमें दैत्योंका नायक जम्भ था और देवताओंके स्वामी इन्द्र। उन्हें युद्ध करते एक दिव्य वर्ष व्यतीत हो गया। उसके बाद देवता हार गये और दैत्य विजयी हुए। विप्रचित्ति आदि दानवोंने जब देवताओंको परास्त कर दिया, तब वे युद्धसे भागने लगे, अब उनमें शत्रुओंको जीतनेका उत्साह न रह गया। फिर वे दैत्यसेनाके वधकी इच्छासे बृहस्पतिजीके पास आये और उनके तथा वालखिल्य आदि महर्षियोंके साथ बैठकर मन्त्रणा करने लगे।

बृहस्पतिजीने कहा—देवताओ! तुम अत्रिके तपस्वी पुत्र महात्मा दत्तात्रेयके पास जाओ और उन्हें भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट करो। उनमें वर देनेकी शक्ति है। वे तुम्हें दैत्योंका नाश करनेके लिये वर देंगे। तत्पश्चात् तुम सब लोग मिलकर दैत्यों और दानवोंका वध कर सकोगे।

गर्गने कहा—उनके ऐसा कहनेपर देवगण दत्तात्रेयके आश्रमपर गये और वहाँ लक्ष्मीजीके साथ उन महात्माका दर्शन किया। सबसे पहले उन्होंने अपना कार्यसाधन करनेके लिये उन्हें प्रणाम किया, फिर स्तवन किया। भक्ष्य-भोज्य



---

* पण्यानां द्वादशं भागं भूपालाय वणिग्जनः।
दत्त्वार्थरक्षिभिर्मार्गे रक्षितो याति दस्युतः॥
गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागञ्च कृषीवलाः।
दत्त्वान्यद् भूभुजे दद्युर्यदि भागं ततोऽधिकम्॥
पण्यादीनामशेषाणां वणिजो गृह्णतस्ततः।
इष्टापूर्तविनाशाय तद्राज्ञश्चौरधर्म्मिणः॥
(१८। ३-५)

और माला आदि वस्तुएँ भेंट कीं। इस प्रकार वे आराधनामें लग गये। जब दत्तात्रेयजी चलते तो देवता भी उनके पीछे-पीछे जाते। जब वे खड़े होते तो देवता भी ठहर जाते, और जब वे ऊँचे आसनपर बैठते तो देवता नीचे खड़े रहकर उनकी उपासना करते। एक दिन पैरोंपर पड़े हुए देवताओंसे दत्तात्रेयजीने पूछा—'तुमलोग क्या चाहते हो, जो मेरी इस प्रकार सेवा करते हो?'

देवता बोले—मुनिश्रेष्ठ! जम्भ आदि दानवोंने त्रिलोकीपर आक्रमण करके भूर्लोक, भुवर्लोक आदिपर अधिकार जमा लिया है और सम्पूर्ण यज्ञ-भाग भी हर लिये हैं; अतः आप हमारी रक्षाके लिये उनके वधका विचार कीजिये। आपकी कृपासे हम पुनः स्वर्गलोक प्राप्त करना चाहते हैं। जगन्नाथ! आप निष्पाप एवं निर्लेप हैं। विद्याके प्रभावसे शुद्ध हुए आपके अन्तःकरणमें ज्ञानकी किरणें फैल रही हैं।

दत्तात्रेयजीने कहा—देवताओ! यह सत्य है कि मेरे पास विद्या है और मैं समदर्शी भी हूँ; तथापि इस नारीके सङ्गसे मैं दूषित हो रहा हूँ; क्योंकि स्त्रीका निरन्तर सहयोग दोषका ही कारण होता है।

उनके ऐसा कहनेपर देवता फिर बोले—द्विजश्रेष्ठ! ये साक्षात् जगन्माता लक्ष्मी हैं। इनमें पापका लेश भी नहीं है; अतः ये कभी दूषित नहीं होतीं। जैसे सूर्यकी किरणें ब्राह्मण और चाण्डाल दोनोंपर पड़ती हैं, किन्तु अपवित्र नहीं होतीं।

देवताओंके ऐसा कहनेपर दत्तात्रेयजीने हँसकर कहा—यदि तुमलोगोंका ऐसा ही विचार है तो समस्त असुरोंको युद्धके लिये यहीं मेरे सामने बुला लाओ, विलम्ब न करो। मेरे दृष्टिपातजनित अग्निसे उनके बल और तेज दोनों क्षीण हो जायँगे और इस प्रकार वे सब-के-सब मेरी दृष्टिमें पड़कर नष्ट हो जायँगे।

उनकी यह बात सुनकर देवताओंने महाबली दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा तथा वे क्रोधमें भरकर देवताओंपर टूट पड़े। दैत्योंकी मार खाकर देवता भयसे व्याकुल हो गये और शरण पानेकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर दत्तात्रेयजीके आश्रमपर गये। दैत्य भी देवताओंको कालके गालमें भेजनेके लिये उसी जगह जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने महाबली महात्मा दत्तात्रेयजीको देखा। उनके वामभागमें चन्द्रमुखी लक्ष्मीजी विराजमान थीं, जो उनकी प्रिय पत्नी एवं सम्पूर्ण जगत्के लोगोंका कल्याण करनेवाली हैं। वे सर्वाङ्गसुन्दरी लक्ष्मी स्त्रीसमुचित सम्पूर्ण उत्तम गुणोंसे विभूषित थीं और मीठी वाणीमें भगवान्से वार्तालाप कर रही थीं। उन्हें सामने देखकर दैत्योंके मनमें उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हो गयी। वे अपने बढ़ते हुए कामके वेगको न रोक सके। अब तो उन्होंने देवताओंका पीछा छोड़ दिया और लक्ष्मीजीको हर लेनेका विचार किया। उस पापसे मोहित हो जानेके कारण उनकी सारी शक्ति क्षीण हो गयी। वे आसक्त होकर आपसमें कहने लगे—'यह स्त्री त्रिभुवनका सारभूत रत्न है। यदि यह हमारी हो जाय तो हमलोग कृतार्थ हो जायँ; इसलिये हम सब लोग मिलकर इसे पालकीपर बिठा लें और अपने घरको ले चलें।' यह विचार निश्चित हो गया।

आपसमें ऐसी बात करके वे कामपीड़ित दैत्य आसक्तिपूर्वक वहाँ गये और लक्ष्मीजीको पालकीमें बिठाकर उसे मस्तकपर ले अपने स्थानकी ओर चल दिये। तब दत्तात्रेयजीने हँसकर देवताओंसे कहा—'सौभाग्यसे लक्ष्मी दैत्योंके सिरपर चढ़ गयीं। अब तुमलोग बढ़ो। हथियार उठाकर इन दैत्योंका वध करो। अब इनसे डरनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने इन्हें निस्तेज कर दिया है तथा परायी स्त्रीके स्पर्शसे इनका पुण्य जल गया है, जिससे ये शक्तिहीन हो चले हैं।'



तदनन्तर देवताओंने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे दैत्यों-को मारना आरम्भ किया । लक्ष्मी उनके सिरपर चढ़ी हुई थीं, इसलिये वे नष्ट हो गये । इसके बाद लक्ष्मीजी वहाँसे महामुनि दत्तात्रेयके पास आ गयीं । उस समय सम्पूर्ण देवता उनकी स्तुति करने लगे । दैत्योंके नाशसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी । फिर परम बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके देवता स्वर्गमें चले गये और पहलेकी भाँति निश्चिन्त होकर रहने लगे । राजन् ! यदि तुम भी इसी प्रकार अपनी इच्छाके अनुसार अनुपम ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हो तो तुरंत ही उनकी आराधनामें लग जाओ ।

गर्ग मुनिकी यह बात सुनकर राजा कार्तवीर्यने दत्तात्रेय-जीके आश्रमपर जा उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया । वह



उनका पैर दबाता, उनके लिये माला, चन्दन, गन्ध, जल और फल आदि सामग्री प्रस्तुत करता; भोजनके साधन जुटाता और जूँठन साफ करता था । इससे सन्तुष्ट होकर मुनिने कार्तवीर्यसे कहा—'अरे भैया ! तुम देखते हो, मेरे पास यह स्त्री बैठी हुई है । मैं इसके उपभोगसे निन्दाका पात्र हो रहा हूँ, अतः मेरी सेवा तुम्हें नहीं करनी चाहिये । मैं कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ । तुम अपने उपकारके लिये किसी शक्तिशाली पुरुषकी आराधना करो ।'

उनके इस प्रकार कहनेपर कार्तवीर्य अर्जुनको गर्गजीकी बातका स्मरण हो आया । उसने दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके कहा ।

अर्जुन बोला—देव ! आप अपनी मायाका आश्रय लेकर मुझे क्यों अपनी मायामें डाल रहे हैं ? आप सर्वथा निष्पाप हैं । इसी प्रकार ये देवी भी सम्पूर्ण जगत्‌की जननी हैं ।

अर्जुनके यों कहनेपर भगवान्‌ने सम्पूर्ण भूमण्डलको वशमें करनेवाले महाभाग कार्तवीर्यसे कहा—'राजन् ! तुमने मेरे गूढ़ रहस्यका कथन किया है, इसलिये मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ । तुम कोई वर माँगो ।'

कार्तवीर्यने कहा—देव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसी उत्तम ऐश्वर्यशक्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं प्रजाका पालन करूँ और अधर्मका भागी न बनूँ । मैं दूसरोंके मनकी बात जान लूँ और युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके । युद्ध करते समय मुझे एक हजार भुजाएँ प्राप्त हों; किन्तु वे इतनी हल्की हों, जिससे मेरे शरीरपर भार न पड़े । पर्वत, आकाश, जल, पृथ्वी और पातालमें मेरी अबाध गति हो । मेरा वध मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ पुरुषके हाथसे हो । यदि कभी मैं कुमार्गमें प्रवृत्त होऊँ तो मुझे सन्मार्ग दिखाने-वाला उपदेशक प्राप्त हो । मुझे श्रेष्ठ अतिथि प्राप्त हों और निरन्तर दान करते रहनेपर भी मेरा धन कभी क्षीण न हो । मेरे स्मरण करनेमात्रसे सम्पूर्ण राष्ट्रमें धनका अभाव दूर हो जाय तथा आपमें मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे ।

दत्तात्रेयजी बोले—तुमने जो-जो वरदान माँगे हैं, वे सब तुम्हें प्राप्त होंगे । तुम मेरे प्रसादसे चक्रवर्ती सम्राट् होओगे ।

सुमति कहते हैं—तदनन्तर दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके अर्जुन अपने घर गया और समस्त प्रजा एवं अमात्य-वर्गके लोगोंको एकत्रित करके उसने राज्याभिषेक ग्रहण किया । उसके अभिषेकके लिये गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराएँ,



वसिष्ठ आदि महर्षि, मेरु आदि पर्वत, गङ्गा आदि नदियाँ और समुद्र, पाकर आदि वृक्ष, इन्द्र आदि देवता, वासुकि आदि नाग, गरुड़ आदि पक्षी तथा नगर एवं जनपदके निवासी भी आये थे। श्रीदत्तात्रेयजी-की कृपासे अभिषेककी सब सामग्री अपने-आप जुट गयी थी। फिर तो ब्रह्मा आदि देवताओंने होमके लिये अग्निको प्रज्वलित किया तथा साक्षात् नारायणस्वरूप श्रीदत्तात्रेयजी एवं अन्यान्य महर्षियोंने समुद्र और नदियोंके जलसे अर्जुनका राज्याभिषेक किया। राजसिंहासनपर आसीन होते ही हैहयनरेशने अधर्मके नाश और धर्मकी रक्षाके लिये घोषणा करायी। दत्तात्रेयजीसे उत्तम ऐश्वर्य-शक्ति पाकर वे बड़े शक्तिशाली हो गये थे। राजाकी घोषणा इस प्रकार थी—'आजसे मुझको छोड़कर जो कोई भी शस्त्र ग्रहण करेगा अथवा दूसरोंकी हिंसामें प्रवृत्त होगा, वह लुटेरा समझा जायगा और मेरे हाथसे उसका वध होगा।'

ऐसी आज्ञाके जारी होनेपर उस राज्यमें महापराक्रमी नरश्रेष्ठ राजा अर्जुनको छोड़कर दूसरा कोई मनुष्य शस्त्र धारण नहीं करता था। स्वयं राजा ही गाँवों, पशुओं, खेतों एवं द्विजातियोंकी रक्षा करते थे। तपस्वियों तथा व्यापारियोंके समुदायकी रक्षा भी वे स्वयं ही करते थे। लुटेरे, सर्प, अग्नि तथा शस्त्र आदिसे भयभीत मनुष्योंका तथा अन्य प्रकार-की आपत्तियोंमें मग्न हुए मानवोंका वे स्मरण करनेमात्रसे तत्काल उद्धार कर देते थे। उनके राज्यमें धनका अभाव कभी नहीं होता था। उन्होंने अनेक ऐसे यज्ञ किये, जिनके पूर्ण होनेपर ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणाएँ दी जाती थीं। उन्होंने कठोर तपस्या की और संग्रामोंमें भी महान् पराक्रम दिखाया। उनकी समृद्धि और बढ़ा हुआ सम्मान देखकर अङ्गिरा मुनिने कहा—'अन्य राजालोग यज्ञ, दान, तपस्या अथवा संग्राममें पराक्रम दिखानेमें राजा कार्तवीर्यकी तुलना नहीं कर सकते। राजा अर्जुनने जिस दिन दत्तात्रेयजीसे समृद्धि प्राप्त की थी, उस-उस दिनके आनेपर वह उनके लिये यज्ञ करता था और सारी प्रजा भी राजाको परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई देख उसी दिन एकाग्रचित्तसे दत्तात्रेयजीका यजन करती थी।'

इस प्रकार चराचरगुरु भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत महात्मा दत्तात्रेयजीकी महिमाका वर्णन किया गया। शङ्ख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले अनन्त एवं अप्रमेय भगवान् विष्णुके अनेक अवतार पुराणोंमें वर्णित हैं। जो मनुष्य उनके परमस्वरूपका चिन्तन करता है, वह सुखी होता है और संसारसे उसका शीघ्र ही उद्धार हो जाता है। वे आदि-अन्तरहित भगवान् विष्णु अधर्मके नाश और धर्मके प्रचारके लिये ही संसारकी रक्षा और पालन करते हैं। अब मैं इसी प्रकार पितृभक्त राजर्षि महात्मा अलर्कके जन्मका वृत्तान्त बतलाता हूँ; क्योंकि दत्तात्रेयजीने उन्हींको योगका उपदेश दिया था।

अलर्कोपाख्यानका आरम्भ—नागकुमारोंके द्वारा ऋतध्वजके पूर्ववृत्तान्तका वर्णन

सुमति कहते हैं—पिताजी! प्राचीन कालकी बात है, शत्रुजित् नामके एक महापराक्रमी राजा राज्य करते थे, जिनके यज्ञोंमें पर्याप्त सोमरस पान करनेके कारण देवराज इन्द्र बहुत सन्तुष्ट रहते थे। उनका पुत्र भी बुद्धि, पराक्रम और लावण्यमें क्रमशः बृहस्पति, इन्द्र और अश्विनीकुमारोंकी समानता करता था।

वह राजकुमार प्रतिदिन अपने समान अवस्था, बुद्धि, बल, पराक्रम और चेष्टाओंवाले अन्य राजकुमारोंसे घिरा रहता था। कभी तो उनमें शास्त्रोंका विवेचन और उनके सिद्धान्तोंका निर्णय होता था; कभी काव्यचर्चा, संगीत-श्रवण और नाटक देखने आदिमें समय व्यतीत होता था। राजकुमार जब खेलमें लगते, उस समय उन्हींकी अवस्थावाले बहुत-से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके बालक भी प्रेमवश वहाँ खेलने आ जाते थे। कुछ समय बीतनेके पश्चात् अश्वतर नामक नागके दो पुत्र नागलोकसे पृथ्वीतलपर घूमनेके लिये आये। उन्होंने ब्राह्मणके रूपमें अपनेको छिपा रक्खा था। वे देखनेमें बड़े सुन्दर और तरुण थे। वहाँ जो राजकुमार तथा अन्यान्य द्विज-बालक खेलते थे, उनके साथ ही वे भी भाँति-भाँतिके विनोद करते हुए बड़े प्रेमसे रहते थे। वे राजकुमार, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके पुत्र तथा वे दोनों नागराजके बालक साथ-ही-साथ स्नान, अङ्ग-सेवा, वस्त्रधारण, चन्दनका अनुलेप और भोजन आदि कार्य करते-कराते थे। राजकुमारके प्रेमवश नागराजके दोनों



पुत्र प्रतिदिन बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आते थे। उनके साथ भाँति-भाँतिके विनोद, हास्य और बातोंलाप आदि करनेसे राजकुमारको बड़ा सुख मिलता था। वे उन्हें साथ लिये बिना भोजन, स्नान, क्रीड़ा तथा शास्त्रचर्चा आदि कुछ भी नहीं करते थे। इसी प्रकार वे दोनों नागकुमार भी उनके बिना रसातलमें लंबी साँसें खींचते हुए रात बिताते और दिन निकलते ही उनके पास पहुँच जाते थे।

इस तरह बहुत समय बीत जानेके बाद एक दिन नागराज अश्वतरने अपने दोनों बालकोंसे पूछा—'पुत्रो! तुम दोनोंका मर्त्यलोकके प्रति इतना अधिक प्रेम किस कारण है? बहुत दिनोंसे दिनके समय तुमलोग पातालमें नहीं दिखायी देते, केवल रातमें ही मैं तुम्हें देख पाता हूँ।'

पुत्रोंने कहा—पिताजी! मर्त्यलोकमें राजा शत्रुजित्के एक पुत्र हैं, जिनका नाम ऋतध्वज है। वे बड़े ही रूपवान्, सरल, शूरवीर, मानी तथा प्रिय वचन बोलनेवाले हैं। बिना पूछे ही वार्तालाप आरम्भ करनेवाले, वक्ता, विद्वान्, मित्रभाव रखनेवाले और समस्त गुणोंके भंडार हैं। वे राजकुमार माननीय पुरुषोंको सदा आदर देते हैं। बुद्धिमान् एवं लज्जाशील हैं। विनय ही उनका आभूषण है। उनके अर्पण किये हुए उत्तम-उत्तम उपचार, प्रेम और भाँति-भाँतिके भोगोंने हमारा मन हर लिया है। उनके बिना नागलोक या भूलोकमें कहीं भी हमें सुख नहीं मिलता। पिताजी! उनके वियोगसे पाताललोककी यह शीतल रजनी भी हमारे लिये सन्तापका कारण बनती है और उनका साथ होनेसे दिनके सूर्य भी हमें आह्लाद प्रदान करते हैं।

पिताने कहा—पुत्रो! अपने पुण्यात्मा पिताका वह बालक धन्य है, जिसके गुणोंका वर्णन तुम-जैसे गुणवान् लोग परोक्षमें भी कर रहे हो। संसारमें कुछ लोग ऐसे हैं, जो शास्त्रोंके ज्ञाता तो हैं, किन्तु उनमें शीलका अभाव है। कुछ लोग शीलवान् तो हैं, किन्तु शास्त्रज्ञानसे रहित हैं। जिस पुरुषमें शास्त्रोंका ज्ञान और उत्तम शील दोनों गुण समानरूपसे हों, मैं उसीको विशेष धन्यवादका पात्र समझता हूँ। जिसके मित्रोचित गुणोंका मित्रलोग और पराक्रमका शत्रुलोग भी सत्पुरुषोंके बीचमें वर्णन करते हों, उसी पुत्रसे पिता वास्तवमें पुत्रवान् होता है। ऋतध्वज तुमलोगोंके उपकारी मित्र हैं। क्या तुमलोगोंने भी उनके चित्तको प्रसन्न करनेके लिये कभी उनका कोई मनोरथ सिद्ध किया है? जिसके यहाँसे याचक कभी विमुख नहीं जाते और मित्रका कार्य कभी सिद्ध हुए बिना नहीं रहता, वही पुरुष धन्य है! उसीका जीवन और जन्म धन्य है! मेरे घरमें जो

सुवर्ण आदि रत्न, वाहन, आसन तथा और कोई वस्तु उनके लिये रुचिकर हो, वह सब तुमलोग निःशङ्क होकर उन्हें दे सकते हो। जो सुहृदोंका उपकार करते, शत्रुओंको हानि पहुँचाते तथा मेघके समान सर्वत्र दानकी वर्षा करते हैं, विद्वान्लोग उनकी सदा ही उन्नति चाहते हैं।

पुत्र बोले—पिताजी! वे तो कृतकृत्य हैं, उनका कोई क्या उपकार कर सकता है? उनके घरपर आये हुए सभी याचक सदा ही पूजित होते हैं, उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण की जाती हैं। उनके घरमें जो रत्न हैं, वे हमारे पातालमें कहाँ हैं। वैसे वाहन, आसन, यान, भूषण और वस्त्र यहाँ कहाँ उपलब्ध हो सकते हैं। उनमें जो विज्ञान है, वह और किसीमें नहीं है। पिताजी! वे बड़े-बड़े विद्वानोंके भी सब प्रकारके संदेहोंका भलीभाँति निवारण करते हैं। हाँ, एक कार्य उनका अवश्य है; किन्तु वह ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि सर्वसमर्थ परमेश्वरोंके सिवा हमलोगोंके लिये सर्वथा असाध्य है।

पिताने कहा—पुत्रो! असाध्य हो या साध्य, किन्तु मैं उस उत्तम कार्यको अवश्य सुनना चाहता हूँ; विद्वान् पुरुषोंके लिये कौन-सा कार्य असाध्य है। जो अपने मन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंको संयममें रखकर उद्यममें लगे रहते हैं, उन मनुष्योंके लिये इस पातालमें या स्वर्गमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो अज्ञात, अगम्य अथवा अप्राप्य हो। चींटी धीरे-धीरे चलती है; तथापि यदि वह चलती रहे तो सहस्रों योजन दूर चली जा सकती है। इसके विपरीत गरुड़ तेज चलनेवाले होनेपर भी यदि आगे पैर न बढ़ावें तो एक पग भी नहीं जा सकते। उद्योगी मनुष्योंके लिये कुछ गम्य और अगम्य नहीं होता, उनके लिये सब एक-सा है। कहाँ यह भूमण्डल और कहाँ ध्रुवका स्थान, जिसे पृथ्वीपर होते हुए भी राजा उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने प्राप्त कर लिया! इसलिये पुत्रो! महाभाग राजकुमारको जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, बतलाओ, जिसे देकर तुम दोनों मित्र-ऋणसे उऋण हो सको।*

पुत्रोंने कहा—पिताजी! महात्मा ऋतध्वजने अपनी कुमारावस्थाकी एक घटना बतलायी थी, वह इस प्रकार है। राजा शत्रुजित्के पास पहले कभी एक श्रेष्ठ ब्राह्मण पधारे थे। उनका नाम था महर्षि गालव। वे बड़े बुद्धिमान् थे और एक श्रेष्ठ अश्व लेकर आये थे। उन्होंने राजासे कहा—'महाराज!



एक पापाचारी नीच दैत्य आकर मेरे आश्रमका विध्वंस किये देता है। वह सिंह, हाथी तथा अन्य वन-जन्तुओंका और छोटे-छोटे शरीरवाले दूसरे जीवोंका भी शरीर धारण करके अकारण आता है और समाधि एवं मौनव्रतके पालनमें लगे हुए मेरे सामने आकर ऐसे-ऐसे उपद्रव करता है, जिनसे मेरा चित्त चञ्चल हो जाता है। यद्यपि हमलोग उसे अपनी क्रोधाग्निसे भस्म कर डालनेकी शक्ति रखते हैं तथापि बड़े कष्टसे उपार्जित की हुई तपस्याका अपव्यय करना नहीं चाहते। राजन्! एक दिनकी बात है, मैं उस असुरको देखकर अत्यन्त खिन्न हो लंबी साँसें ले रहा था, इतनेमें ही यह घोड़ा आकाशसे नीचे उतरा। उसी समय यह आकाशवाणी हुई, 'मुने! यह अश्व बिना थके समस्त भूमण्डलकी परिक्रमा

---

* नाविज्ञातं न चागम्यं नाप्राप्यं दिवि चेह वा।
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम्॥
योजनानां सहस्राणि व्रजन् याति पिपीलिकः।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पादमेकं न गच्छति॥
उत्सुकानां मनुष्याणां गम्यागम्यं न विद्यते।
क्व भूतलं क्व च ध्रौवं स्थानं यत् प्राप्तवान् ध्रुवः।
उत्तानपादनृपतेः पुत्रः सन् भूमिगोचरः॥
तत् कथ्यतां महाभाग कार्यवान् येन पुत्रकौ।
स भूपालसुतः साधुर्येनानृण्यं भवेत वाम्॥
(अ० २०। ३७-४०)

कर सकता है। इसे सूर्यदेवने आपके लिये प्रदान किया है। आकाश-पाताल और जलमें भी इसकी गति नहीं रुकती। यह समस्त दिशाओंमें बेरोक-टोक जाता है। पर्वतोंपर चढ़नेमें भी इसे कठिनाई नहीं होती। समस्त भूमण्डलमें यह बिना थकावटके विचरण करेगा, इसलिये संसारमें इसका कुवलय (कु=भूमि, वलय=मण्डल) नाम प्रसिद्ध होगा। द्विजश्रेष्ठ! जो नीच दानव तुम्हें रात-दिन क्लेशमें डाले रहता है, उसका भी इसी अश्वपर आरूढ़ होकर राजा शत्रुजित्‌के पुत्र ऋतध्वज वध करेंगे। इस अश्वरत्नको पाकर इसीके नामपर राजकुमारकी प्रसिद्धि होगी। वे कुवलयाश्व कहलायेंगे।' राजन्! उस आकाशवाणीके अनुसार मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तपस्यामें विघ्न डालनेवाले उस दानवको तुम रोको; क्योंकि राजा भी प्रजाकी तपस्याके अंशका भागी होता है। भूपाल! अब मैंने यह अश्वरत्न तुमको समर्पित कर दिया। तुम अपने पुत्रको मेरे साथ चलनेकी आज्ञा दो, जिससे धर्मका लोप न होने पाये।'

गालव मुनिके यों कहनेपर धर्मात्मा राजाने मङ्गलाचारपूर्वक राजकुमार ऋतध्वजको उस अश्वरत्नपर चढ़ाया और मुनिके साथ भेज दिया। गालव मुनि उन्हें साथ ले अपने आश्रमको लौट गये।

पातालकेतुका वध और मदालसाके साथ ऋतध्वजका विवाह

पिताने पूछा—पुत्रो! महर्षि गालवके साथ जाकर राजकुमार ऋतध्वजने वहाँ जो-जो कार्य किया, उसे बतलाओ। तुमलोगोंकी कथा बड़ी अद्भुत है।

पुत्रोंने कहा—महर्षि गालवके रमणीय आश्रममें रहकर राजकुमार ऋतध्वजने ब्रह्मवादी मुनियोंके सब विघ्नोंको शान्त कर दिया। वीर कुवलयाश्व गालवाश्रममें ही निवास करते हैं, इस बातको वह मदोन्मत्त नीच दानव नहीं जानता था। इसलिये सन्ध्योपासनमें लगे हुए गालव मुनिको सतानेके लिये वह शूकरका रूप धारण करके आया। उसे देखते ही मुनिके



शिष्योंने हल्ला मचाया। फिर तो राजकुमार शीघ्र ही घोड़ेपर सवार हो धनुष लेकर उसके पीछे दौड़े। उन्होंने धनुपको खूब जोरसे खींचकर एक चमकते हुए अर्धचन्द्राकार बाणसे उसको चोट पहुँचायी। बाणसे आहत होकर वह अपने प्राण बचानेकी धुनमें भागा और वृक्षों तथा पर्वतसे घिरी हुई घनी झाड़ीमें घुस गया। वह घोड़ा भी मनके समान वेगसे चलनेवाला था। उसने बड़े वेगसे उस सूअरका पीछा किया। वाराहरूपधारी दानव तीव्र वेगसे भागता हुआ सहस्रों योजन दूर निकल गया और एक जगह पृथ्वीपर विवरके आकारमें दिखायी देनेवाले गढ़ेके भीतर बड़ी फुर्तीके साथ कूद पड़ा। इसके बाद शीघ्र ही अश्वारोही राजकुमार भी घोर अन्धकारसे भरे हुए उस भारी गढ़ेमें कूद पड़े। उसमें जानेपर राजकुमारको वह सूअर नहीं दिखायी पड़ा, बल्कि उन्हें प्रकाशसे पूर्ण पाताललोकका दर्शन हुआ। सामने ही इन्द्रपुरीके समान एक सुन्दर नगर था, जिसमें सैकड़ों सोनेके महल शोभा पा रहे थे। उस नगरके चारों ओर सुन्दर चहारदीवारी बनी हुई थी। राजकुमारने उसमें प्रवेश किया, किन्तु वहाँ उन्हें कोई मनुष्य नहीं दिखायी दिया। वे नगरमें घूमने लगे। घूमते-ही-घूमते उन्होंने एक स्त्रीको देखा, जो बड़ी उतावलीके साथ कहीं चली जा रही थी। राजकुमारने उससे पूछा—'तू किसकी कन्या है? किस कामसे जा रही है?' उस सुन्दरीने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप एक महलकी सीढ़ियोंपर चढ़ गयी। ऋतध्वजने भी घोड़ेको एक जगह बाँध दिया और उसी स्त्रीके पीछे-पीछे महलमें प्रवेश किया। उस समय उनके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो रहे थे। उनके मनमें किसी प्रकारकी शङ्का नहीं थी। महलमें पहुँचनेपर उन्होंने देखा, एक विशाल पलंग बिछा हुआ है, जो ऊपरसे

नीचेतक सोनेका बना है । उसपर एक सुन्दरी कन्या बैठी थी, जो कामनायुक्त रति-सी जान पड़ती थी। चन्द्रमाके समान मुख, सुन्दर भौंहें, कुँदरूके समान लाल ओठ, छरहरा शरीर और नील कमलके समान उसके नेत्र थे। अनङ्गलता-की भाँति उस सर्वाङ्गसुन्दरी रमणीको देखकर राजकुमारने समझा, यह कोई रसातलकी देवी है।

उस सुन्दरी बालाने भी मस्तकपर काले घुँघराले बालोंसे सुशोभित, उभरी हुई छाती, स्थूल कंधों और विशाल भुजाओंवाले राजकुमारको देखकर साक्षात् कामदेव ही समझा। उनके आते ही वह सहसा उठकर खड़ी हो गयी; किन्तु उसका मन अपने वशमें न रहा। वह तुरंत ही लज्जा, आश्चर्य और दीनताके वशीभूत हो गयी। सोचने लगी—'ये कौन हैं? देवता, यक्ष, गन्धर्व, नाग अथवा विद्याधर तो नहीं आ गये? या ये कोई पुण्यात्मा मनुष्य हैं?' यों विचारकर उसने लंबी साँस ली और पृथ्वीपर बैठकर सहसा मूर्च्छित हो गयी। राजकुमारको भी कामदेवके बाणका आघात-सा लगा। फिर भी धैर्य धारण करके उन्होंने उस तरुणीको आश्वासन दिया और कहा—'डरनेकी आवश्यकता नहीं।' वह स्त्री, जिसे उन्होंने पहले महलमें जाते हुए देखा था, ताड़का पंखा लेकर व्यग्रतापूर्वक हवा करने लगी। राजकुमारने आश्वासन देकर जब उससे मूर्च्छाका कारण पूछा, तब वह बाला कुछ लज्जित हो गयी। उसने अपनी सखीको सब बातें बता दीं। फिर उस सखीने उसकी मूर्च्छाका सारा कारण, जो राजकुमारको देखनेसे ही हुई थी, विस्तारपूर्वक कह सुनाया।

वह स्त्री बोली—प्रभो! देवलोकमें विश्वावसु नामसे प्रसिद्ध एक गन्धर्वोंके राजा हैं। यह सुन्दरी उन्हींकी कन्या है। इसका नाम मदालसा है। वज्रकेतु दानवका एक भयङ्कर पुत्र है, जो शत्रुओंका नाश करनेवाला है। वह संसारमें पाताल-केतुके नामसे प्रसिद्ध है, उसका निवासस्थान पातालके ही भीतर है। एक दिन यह मदालसा अपने पिताके उद्यानमें घूम रही थी। उसी समय उस दुरात्मा दानवने विकारमयी माया फैलाकर इस असहाय बालिकाको हर लिया। उस दिन मैं इसके साथ नहीं थी। सुना है, आगामी त्रयोदशीको वह असुर इसके साथ विवाह करेगा; किन्तु जैसे शूद्र वेदकी श्रुतिका अधिकारी नहीं है, उसी प्रकार वह दानव भी इस सर्वाङ्गसुन्दरी मेरी सखीको पानेके योग्य नहीं है। अभी कलकी बात है, यह बेचारी आत्महत्या करनेको तैयार हो गयी थी। उस समय कामधेनुने आकर आश्वासन दिया—'बेटी! वह नीच दानव तुम्हें नहीं पा सकता। महाभागे! मर्त्यलोकमें जानेपर इस दानवको जो अपने बाणोंसे बींध डालेगा, वही तुम्हारा पति होगा। बहुत शीघ्र यह सुयोग प्राप्त होनेवाला है।' यह कहकर सुरभि देवी अन्तर्धान हो गयी। मेरा नाम कुण्डला है। मैं इस मदालसाकी सखी, विन्ध्यवान्‌की पुत्री और वीर पुष्करमालीकी पत्नी हूँ। शुम्भ-ने मेरे स्वामीको मार डाला, तबसे उत्तम व्रतोंका पालन करती हुई दिव्य गतिसे भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें विचरती रहती हूँ। अब मैं परलोक सुधारनेमें ही लगी हूँ। दुष्टात्मा पातालकेतु आज वाराहका रूप धारण करके मर्त्यलोकमें गया था। सुननेमें आया है, वहाँ मुनियोंकी रक्षाके लिये किसीने उसको अपने बाणोंका निशाना बनाया है। मैं इस बातका ठीक-ठीक पता लगानेके लिये ही गयी थी और लगाकर तुरंत लौट आयी। सचमुच ही किसीने उस अधम दानवको बाणसे बींध डाला है।

अब मदालसाके मूर्च्छित होनेका कारण सुनिये। मानद! आपको देखते ही आपके प्रति इसका प्रेम हो गया; किन्तु यह पत्नी होगी किसी औरकी, जिसने उस दानवको अपने बाणों-का निशाना बनाया है। यही कारण है, जिससे इसको मूर्च्छा आ गयी। अब तो जीवनभर इसे दुःख ही भोगना है; क्योंकि इसके हृदयका प्रेम तो आपमें है और पति कोई और ही होनेवाला है। सुरभिका वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकता। मैं तो इसीके प्रेमसे दुखी होकर यहाँ चली आयी; क्योंकि मेरे लिये अपने शरीरमें और सखीमें कोई अन्तर नहीं है। यदि यह अपनी इच्छाके अनुसार किसी वीर पतिको प्राप्त कर लेती तो मैं निश्चिन्त होकर तपस्यामें लग जाती। महामते! अब आप अपना परिचय दीजिये। आप कौन हैं? और कैसे यहाँ पधारे हैं? आप देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग अथवा किन्नरोंमेंसे तो कोई नहीं हैं? क्योंकि यहाँ मनुष्यकी पहुँच नहीं हो सकती और मनुष्यका ऐसा दिव्य शरीर भी नहीं होता। जैसे मैंने सब बातें सच-सच बतायी हैं, वैसे ही आप भी अपना सब हाल ठीक-ठीक कहिये।

कुवलयाश्वने कहा—धर्मज्ञे! तुमने जो यह पूछा है कि आप कौन हैं और कहाँसे आये हैं, इसका उत्तर सुनो; मैं आरम्भसे ही अपना सब समाचार बतलाता हूँ। शुभे! मैं राजा शत्रुजित्‌का पुत्र हूँ और पिताकी आज्ञासे मुनियोंकी रक्षाके लिये महर्षि गालवके आश्रमपर आया था। वहाँ मैं धर्मपरायण मुनियोंकी रक्षा करता था; किन्तु मेरे कार्यमें विघ्न डालनेके लिये कोई दानव शूकरका रूप धारण करके आया।

मैंने उसे अर्धचन्द्राकार बाणसे बींध डाला। मेरे बाणकी चोट खाकर वह बड़े वेगसे भागा। तब मैंने भी घोड़ेपर सवार होकर उसका पीछा किया। फिर सहसा वह वाराह एक गड्ढेमें गिर पड़ा। साथ ही मेरा घोड़ा भी उसमें कूद पड़ा। उस घोड़ेपर चढ़ा हुआ मैं कुछ कालतक अन्धकारमें अकेला ही विचरता रहा। इसके बाद मुझे प्रकाश मिला और तुम्हारे ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी। मैंने पूछा भी, किन्तु तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया। फिर मैं तुम्हारे पीछे-पीछे इस सुन्दर महलमें आ गया। यह मैंने सच्ची बात बतलायी है। मैं देवता, दानव, नाग, गन्धर्व अथवा किन्नर नहीं हूँ। देवता आदि तो मेरे पूजनीय हैं। कुण्डले! मैं मनुष्य ही हूँ। तुम्हें इस विषयमें कभी कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।

यह सुनकर मदालसाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने लज्जित होकर अपनी सखीके सुन्दर मुखकी ओर देखा; किन्तु कुछ बोल न सकी। उसकी सखीने फिर प्रसन्न होकर कहा—'वीर! आपकी बात सत्य है; इसमें सन्देहके लिये कोई स्थान नहीं है। मेरी सखीका हृदय और किसीको देखकर आसक्त नहीं हो सकता। अधिक कमनीय कान्ति चन्द्रमाको ही प्राप्त होती है; प्रचण्ड प्रभा सूर्यमें ही मिलती है। दैवी विभूति धन्य पुरुषको ही प्राप्त होती है। धृति धीरको और क्षमा उत्तम पुरुषको ही मिलती है। इसमें सन्देह नहीं कि आपने ही उस नीच दानवका वध किया है। भला गोमाता सुरभि मिथ्या कैसे कहेंगी। मेरी यह सखी बड़ी भाग्यशालिनी है। आपका सम्बन्ध पाकर यह धन्य हो गयी। वीर! जिस कार्यको विधाताने ही रच रक्खा है, उसे अब तुम भी पूर्ण करो।'

कुण्डलाकी बात सुनकर राजकुमारने कहा—'मैं पिताके अधीन हूँ, उनकी आज्ञाके बिना इस गन्धर्व-राजकन्यासे किस प्रकार विवाह करूँ।' कुण्डला बोली—'नहीं-नहीं, ऐसा न कहिये। यह देवकन्या है। आपके पिताजी इस विवाहसे प्रसन्न होंगे; अतः इसके साथ अवश्य विवाह कीजिये।' राजकुमारने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली। तब कुण्डलाने विवाहकी सामग्री एकत्रित करके अपने कुलगुरु तुम्बुरुका स्मरण किया। वे समिधा और कुशा लिये तत्काल वहाँ आ पहुँचे। मदालसाके प्रेमसे और कुण्डलाका गौरव रखनेके लिये उन्होंने आनेमें विलम्ब नहीं किया। वे मन्त्रके ज्ञाता थे; अतः अग्नि प्रज्वलित करके उन्होंने हवन किया और मङ्गलाचारके अनन्तर कन्यादान करके वैवाहिक विधि सम्पन्न की। फिर वे



तपस्याके लिये अपने आश्रमपर चले गये। तदनन्तर कुण्डलाने अपनी सखीसे कहा—'सुमुखि! तुम-जैसी सुन्दरीको राजकुमार ऋतध्वजके साथ विवाहित देखकर मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। अब मैं निश्चिन्त होकर तपस्या करूँगी और तीर्थोंके जलसे अपने पापोंको धो डालूँगी, जिससे फिर मेरी ऐसी दशा न हो।' इसके बाद जानेके लिये उत्सुक हो कुण्डलाने बड़ी विनयके साथ राजकुमारसे भी वार्तालाप किया। इस समय अपनी सखीके प्रति स्नेहकी अधिकतासे उसकी वाणी गद्गद हो रही थी।

कुण्डला बोली—प्रभो! आपकी बुद्धि बहुत बड़ी है। आप-जैसे लोगोंको कोई पुरुष भी उपदेश नहीं दे सकता, फिर मुझ-जैसी स्त्रियाँ तो दे ही कैसे सकती हैं; किन्तु इस मदालसाके स्नेहसे मेरा चित्त आकृष्ट हो गया तथा आपने भी

अपने प्रति मेरे हृदयमें एक विश्वास उत्पन्न कर दिया है, इसीलिये मैं आपको कर्तव्यका स्मरणमात्र करा रही हूँ। पतिको चाहिये कि सदा अपनी पत्नीका भरण-पोषण करे। जब पति-पत्नी प्रेमवश एक-दूसरेके वशीभूत होते हैं, तब उन्हें धर्म, अर्थ, काम—तीनोंकी प्राप्ति होती है; क्योंकि त्रिवर्गकी प्राप्ति पति-पत्नी दोनोंके सहयोगपर ही निर्भर है। राजकुमार! स्त्रीकी सहायता लिये बिना पुरुष किसी देवता, पितर, भृत्य और अतिथियोंका पूजन नहीं कर सकता। मनुष्य जब पतिव्रता पत्नीकी रक्षा करता है, तब वह पुत्रोत्पादनके द्वारा पितरोंको, अन्न आदिके द्वारा अतिथियोंको और पूजा-अर्चाके द्वारा देवताओंको प्रसन्न करता है। स्त्री भी पतिके बिना धर्म, अर्थ, काम एवं सन्तान नहीं पा सकती; इसलिये पति-पत्नी दोनोंके सहयोगपर ही त्रिवर्गका सुख निर्भर करता है। आप दोनों नवदम्पतिके लिये ये बातें मैंने निवेदन की हैं। अब मैं अपनी इच्छाके अनुसार जा रही हूँ।

यों कहकर कुण्डलाने अपनी सखीको गलेसे लगाया और राजकुमारको नमस्कार करके वह दिव्य गतिसे अपने अभीष्ट स्थानको चली गयी। ऋतध्वजने भी मदालसाको अपने घोड़ेपर बिठाया और पाताललोकसे निकल जानेकी तैयारी की। यह बात दानवोंको मालूम हो गयी। उन्होंने सहसा कोलाहल मचाना आरम्भ किया—'पातालकेतु जिस कन्या-रत्नको स्वर्गसे हर लाया था, उसे यह राजकुमार चुराये जाता है।' यह समाचार पाते ही परिघ, खड्ग, गदा, शूल, बाण और धनुष आदि आयुधोंसे सजी हुई दानवोंकी विशाल सेना पातालकेतुके साथ वहाँ आ पहुँची। उस समय 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए बड़े-बड़े दानवोंने राजकुमार ऋतध्वज-पर बाणों और शूलोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। राजकुमार भी बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने हँसते-हँसते बाणोंका जाल-सा फैला दिया और खेल-खेलमें ही दानवोंके सब अस्त्र-शस्त्र काट गिराये। क्षणभरमें ही पाताललोककी भूमि ऋतध्वजके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए खड्ग, शक्ति, ऋष्टि और सायकोंसे आच्छादित हो गयी। तदनन्तर राजकुमारने त्वाष्ट्र नामक अस्त्रका सन्धान किया और उसे दानवोंपर छोड़ दिया। उसकी प्रचण्ड ज्वालासे पातालकेतुसहित समस्त दानव दग्ध हो गये। उनकी



हड्डियाँ चटख-चटखकर राख हो गयीं। जैसे कपिलमुनिकी क्रोधाग्निमें सगरपुत्र भस्म हो गये थे, उसी प्रकार ऋतध्वज-की शराग्निमें सम्पूर्ण दानव जल मरे।

इस प्रकार बड़े-बड़े दानवोंका वध करके राजकुमार फिर अपने अश्वपर सवार हुए और उस स्त्रीरत्नके साथ अपने पिताके नगरमें आये। पिताके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने पातालमें जाने, कुण्डलाके दर्शन होने, मदालसाको पाने और दानवोंसे युद्ध करने आदिका सब समाचार सुना दिया। यह सब सुनकर पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगाकर कहा—'बेटा! तुम सुपात्र और महात्मा हो। तुमने मुझे तार दिया; क्योंकि तुम्हारे द्वारा उत्तम धर्मका पालन करनेवाले मुनियोंकी भयसे रक्षा हुई है। मेरे पूर्वजोंने अपने कुलको यशसे विख्यात किया था। मैंने उस यशको फैलाया था और तुमने अनुपम पराक्रम करके उसे और भी बढ़ा दिया। पिताने जो यश, धन अथवा पराक्रम प्राप्त किया हो, उसे जो कम नहीं करता, वह पुत्र मध्यम श्रेणीका माना गया है; जो अपनी शक्तिसे पिताकी अपेक्षा भी अधिक पराक्रम दिखाये, उसे विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ कहते हैं; किन्तु जो पिता-द्वारा उपार्जित धन, वीर्य तथा यशको अपने समयमें घटा

देता है, वह बुद्धिमान् पुरुषोंद्वारा अधम बताया गया है। मैंने जिस प्रकार ब्राह्मणोंकी रक्षा की थी, उसी प्रकार तुमने भी की है; परन्तु पाताललोककी यात्रा और वहाँ असुरोंका विनाश—ये सब कार्य तुमने अधिक किये हैं। अतः तुम्हारी गणना उत्तम पुरुषोंमें है। बेटा! तुम धन्य हो। तुम्हारे-जैसे अधिक गुणवान् पुत्रको पाकर मैं पुण्यवानोंके लिये भी स्पृहणीय हो रहा हूँ। जिसका पुत्र बुद्धि, दान और पराक्रममें उससे बढ़ नहीं जाता, वह मनुष्य मेरे मतमें पुत्र-जनित आनन्दको नहीं प्राप्त करता। उस पुरुषको धिक्कार है, जो इस लोकमें पिताके नामपर ख्याति लाभ करता है। जो पिता अपने पुत्रके कार्यसे विख्यात होता है, उसीका जन्म सफल है। जो अपने नामसे प्रसिद्ध होता है, वह सबसे उत्तम है। जो पिता और पितामहोंके नामपर ख्यात होता है, वह मध्यम है तथा जो मातृपक्ष या माताके नामसे प्रसिद्धि प्राप्त करता है, वह अधम श्रेणीका मनुष्य है।* इसलिये पुत्र! तुम धन, पराक्रम और सुखके साथ अभ्युदयशील बनो। इस गन्धर्व-कन्याका तुमसे कभी वियोग न हो।'

इस प्रकार बारंबार भाँति-भाँतिके प्रिय वचन कहकर पिताने ऋतध्वजको हृदयसे लगाया और मदालसाके साथ उन्हें राजमहलमें भेज दिया। राजकुमार ऋतध्वज अपनी पत्नीके साथ पिताके नगरमें तथा उद्यान, वन एवं पर्वत-शिखरोंपर आनन्दपूर्वक विहार करते रहे। कल्याणी मदालसा प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम करती और अपने पतिके साथ रहकर आनन्द भोगती थी।

तालकेतुके कपटसे मरी हुई मदालसाकी नागराजके फणसे उत्पत्ति और ऋतध्वजका पाताललोकमें गमन

दोनों नागकुमार कहते हैं—पिताजी! तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर राजाने पुनः अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! तुम प्रतिदिन प्रातःकाल इस अश्वपर सवार हो ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये पृथ्वीपर विचरते रहो। सैकड़ों दुराचारी दानव इस पृथ्वीपर मौजूद हैं। उनसे मुनियोंको बाधा न पहुँचे, ऐसी चेष्टा करो।' पिताकी इस आज्ञाके अनुसार राजकुमार उसी दिनसे ऐसा ही करने लगे। वे पूर्वाह्णमें ही सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाते थे। एक दिनकी बात है, वे घूमते हुए यमुना-तटपर गये। वहाँ पातालकेतुका छोटा भाई तालकेतु आश्रम बनाकर रहता था। राजकुमारने उसे देखा, वह मायावी दानव मुनिका रूप धारण किये हुए था। उसने पहलेके वैरका स्मरण करके उनसे कहा—'राजकुमार! मैं तुमसे एक बात कहता हूँ; यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उसे करो। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, अतः तुम्हें मेरी प्रार्थना भङ्ग नहीं करनी चाहिये। मैं धर्मके लिये यज्ञ करूँगा और उसमें अनेक इष्टियाँ करनी होंगी। इन सबके लिये इष्टका-चयन करना भी आवश्यक है; किन्तु मेरे पास दक्षिणा नहीं है। अतः वीर! तुम सुवर्णके लिये मुझे अपने गलेका यह आभूषण दे दो और मेरे इस आश्रमकी रक्षा करो। तबतक मैं जलके भीतर प्रवेश करके प्रजाकी पुष्टिके लिये वरुण देवता सम्बन्धी वैदिक मन्त्रोंसे वरुण देवताकी स्तुति करता हूँ। स्तुतिके पश्चात् जल्दी ही लौटूँगा।' उसके यों कहनेपर राजकुमारने उसे प्रणाम किया और अपने कण्ठका आभूषण उतारकर दे दिया। फिर इस प्रकार कहा—'आप निश्चिन्त होकर जाइये; जबतक लौट नहीं आयेंगे, तबतक यहीं मैं आपके आश्रमके समीप ठहरूँगा।'

राजकुमारके इस प्रकार कहनेपर तालकेतु नदीके जलमें डुबकी लगाकर अदृश्य हो गया और वे उसके मायानिर्मित आश्रमकी रक्षा करने लगे। जलके भीतरसे वह राजकुमारके नगरमें चला गया और मदालसा तथा अन्य लोगोंके समक्ष पहुँचकर इस प्रकार बोला।

तालकेतुने कहा—वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रमके समीप गये थे और तपस्वियोंकी रक्षा करते हुए किसी दुष्ट दैत्यसे युद्ध कर रहे थे। उन्होंने अपनी शक्तिभर युद्ध किया और बहुत-से ब्राह्मणद्वेषी दैत्योंको मौतके घाट उतारा; फिर उस पापी दैत्यने मायाका सहारा लेकर शूलसे उनकी छाती छेद डाली। मरते समय उन्होंने अपने गलेका यह आभूषण मुझे दिया; फिर तपस्वियोंने मिलकर उनका अग्निसंस्कार कर दिया। उनका अश्व भयभीत हो नेत्रोंसे

* आत्मना ख्यायते धन्यो मध्यः पितृपितामहैः। मातृपक्षेण मात्रा च ख्यातिमेति नराधमः॥ (२१। १०२)

आँसू बहाता हुआ हिनहिनाता रहा। उसी अवस्थामें वह दुरात्मा दानव उसे अपने साथ पकड़ ले गया। मुझ पापाचारी निष्ठुरने यह सब कुछ अपनी आँखों देखा है। इसके बाद जो कुछ कर्तव्य हो, वह आपलोग करें। अपने हृदयको आश्वासन देनेके लिये यह गलेका हार ग्रहण कीजिये।

यों कहकर तालकेतुने वह हार पृथ्वीपर छोड़ दिया और जैसे आया था, वैसे ही चला गया। यह दुःखपूर्ण समाचार सुनकर वहाँके लोग शोकसे व्याकुल हो मूर्च्छित हो गये; फिर थोड़ी देरमें होशमें आनेपर रनिवासकी सभी स्त्रियाँ, राजा तथा महारानी भी अत्यन्त दुखी होकर विलाप करने लगी। मदालसाने उनके गलेके आभूषणको देखा और पतिको मारा गया सुनकर तुरंत ही अपने प्यारे प्राणोंको त्याग दिया।* तदनन्तर पुरवासियों तथा महाराजके



महलमें भी बड़े जोरसे करुण-क्रन्दन होने लगा। राजा शत्रुजित्‌ने जब मदालसाको पतिके विना मृत्युको प्राप्त हुई देखा, तब कुछ विचार करके मनको स्थिर किया और वहाँ शोक करते हुए सब लोगोंसे कहा—'प्रजाजनो और देवियो! मैं तुम्हारे और अपने लिये रोनेका कोई कारण नहीं देखता। सभी प्रकारके सम्बन्ध अनित्य होते हैं। इन बातका भलीभाँति विचार करनेपर क्या पुत्रके लिये शोक करूँ और क्या पुत्रवधूके लिये। सोचनेसे ऐसा जान पड़ता है, वे दोनों कृतकृत्य होनेके कारण शोकके योग्य नहीं हैं। जो सदा मेरी सेवामें लगा रहता था और मेरे ही कहनेसे ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर हो मृत्युको प्राप्त हुआ, वह मेरा पुत्र बुद्धिमान् पुरुषोंके लिये शोकका विषय कैसे हो सकता है। जो अवश्य जानेवाला है, उन शरीरको यदि मेरे पुत्रने ब्राह्मणोंकी रक्षामें लगा दिया तो यह तो महान् अभ्युदयका कारण है! इसी प्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई यह मेरी पुत्रवधू यदि इस प्रकार अपने स्वामीमें अनुरक्त हो परलोकमें उसके पास गयी है तो उसके लिये भी शोक करना कैसे उचित हो सकता है; क्योंकि स्त्रियोंके लिये पतिके अतिरिक्त दूसरा कोई देवता नहीं है। यदि यह पतिके न रहनेपर भी जीवित रहती तो हमारे लिये, बन्धु-बान्धवोंके लिये तथा अन्य दयालु पुरुषोंके लिये शोकके योग्य हो सकती थी। यह तो अपने स्वामीके वधका समाचार सुनकर तुरंत ही उनके पीछे चली गयी है, अतः विद्वान् पुरुषोंके लिये शोकके योग्य नहीं है।* शोक तो उन स्त्रियोंके लिये करना चाहिये, जो पतिवियोगिनी होकर भी जीवित हों। जो पतिके साथ ही प्राण त्याग देती हैं, वे कदापि शोकके योग्य नहीं हैं।

---

* मदालसा तु तद् दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम्।
तत्याजाशु प्रियान् प्राणान् श्रुत्वा च निहतं पतिम्॥
(अ० २२। २५)

* राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम्।
प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृश्य सुस्थमानसः॥
न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा।
सर्वेषामेव संचिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम्॥
किं नु शोचामि तनयं किं नु शोचाम्यहं स्नुषाम्।
विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मन्येऽशोच्यावुभावपि॥
यच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद् द्विजरक्षणतत्परः।
प्राप्तो मे यः सुतो मृत्युं कथं शोच्यः स धीमताम्॥
अवश्यं याति यद्देहं तद् द्विजानां कृते यदि।
मम पुत्रेण सन्त्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत्॥
इयं च सत्कुलोत्पन्ना भर्तर्य्येवमनुव्रता।
कथं नु शोच्या नारीणां भर्तुरन्यन्न दैवतम्॥
अस्माकं बान्धवानां च तथान्येषां दयावताम्।
शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी॥
या तु भर्तुर्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी।
भर्तारमनुयातेयं न शोच्यातो विपश्चिताम्॥
(अ० २२। २७—३४)

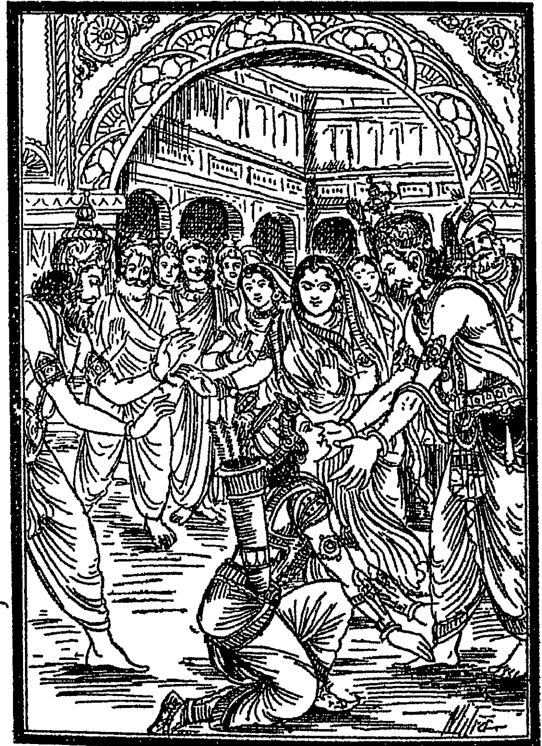
मदालसा बड़ी कृतज्ञ थी; इसलिये इसने पतिवियोगका दुःख नहीं भोगा। जो इहलोक तथा परलोकमें सब प्रकारके सौख्य प्रदान करनेवाला है, उस पतिको कौन स्त्री मनुष्य समझेगी। अतः मेरा वह पुत्र ऋतध्वज, यह पुत्रवधू, मैं तथा ऋतध्वजकी माता—इनमेंसे कोई भी शोकके योग्य नहीं है। मेरे पुत्रने ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण त्यागकर हम सबका उद्धार कर दिया। संग्राममें ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये प्राणत्याग करके मेरे पुत्रने अपनी माताके सतीत्व, वंशकी निर्मलता तथा अपने पराक्रमका त्याग नहीं किया है।'

तदनन्तर कुवलयाश्वकी माताने अपने पतिकी ओर देखकर कहा—

'राजन्! मेरी माता और बहिनको भी ऐसी प्रसन्नता नहीं प्राप्त हुई, जैसी कि मुनियोंकी रक्षाके लिये पुत्रका वध सुनकर मुझे हुई है। जो शोकमें पड़े हुए बन्धु-बान्धवोंके सामने रोगसे क्लेश उठाते और अत्यन्त दुखी होकर लंबी साँसें खींचते हुए प्राणत्याग करते हैं, उनकी माताका सन्तान उत्पन्न करना व्यर्थ है। जो गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर हो रणभूमिमें निर्भयतापूर्वक युद्ध करते हुए शस्त्रोंसे आहत होकर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे ही इस पृथ्वीपर धन्य मनुष्य हैं। जो याचकों, मित्रों तथा शत्रुओंसे कभी विमुख नहीं होता, उसीसे पिता वस्तुतः पुत्रवान् होता है और माता उसीके कारण वीर पुत्रकी जननी मानी जाती है। पुत्रके जन्मकालमें माताको जो क्लेश उठाना पड़ता है, वह तभी सफल होता है जब पुत्र शत्रुओंपर विजय प्राप्त करे अथवा युद्धमें लड़ता हुआ मारा जाय।'*

तदनन्तर राजा शत्रुजित्‌ने अपनी पुत्रवधू मदालसाका दाह-संस्कार किया और नगरसे बाहर निकलकर पुत्रको जलाञ्जलि दी। तालकेतु फिर यमुनाजलसे निकलकर राजकुमारके पास गया और प्रेमपूर्वक मीठी वाणीमें बोला—'राजकुमार! अब तुम जाओ। तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया। तुम जो यहाँ अविचल भावसे खड़े रहे, इससे मैंने बहुत दिनोंकी अपनी अभिलाषा पूरी कर ली। मुझे महात्मा वरुणकी प्रसन्नताके लिये वारुणयज्ञका अनुष्ठान करनेकी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी; वह सब कार्य अब मैंने पूरा कर लिया।' उसके यों कहनेपर राजकुमार उसको प्रणाम करके गरुड़ तथा वायुके समान वेगवाले उसी अश्वपर आरूढ़ हुए और अपने पिताके नगरकी ओर चल दिये।

राजकुमार ऋतध्वज बड़े वेगसे अपने नगरमें आये। उस समय उनके मनमें माता-पिताके चरणोंकी वन्दना करने तथा मदालसाको देखनेकी प्रबल इच्छा थी। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, सामने आनेवाले सभी लोग उद्विग्न हैं, किसीके मुखपर प्रसन्नताका चिह्न नहीं है; किन्तु साथ ही सबकी आकृतिसे आश्चर्य टपक रहा है और मुखपर अत्यन्त हर्ष छा रहा है। पिता-माता तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंने उन्हें छातीसे लगाया और 'चिरंजीवी रहो वत्स!' यह कहकर कल्याणमय आशीर्वाद दिया। राजकुमार भी सबको



* न मे माता न मे स्वसा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी।
श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया॥
शोचतां बान्धवानां ये निश्वसन्तोऽतिदुःखिताः।
म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथाप्रजा॥
संग्रामे युध्यमाना येऽभीता गोद्विजरक्षणे।
क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यन्ते त एव भुवि मानवाः॥
अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषां च पराङ्मुखम्।
यो न याति पिता तेन पुत्री माता च वीरसूः॥
गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा।
यदारिविजयी वा स्यात् संग्रामे वा हतः सुतः॥
(अ० २२। ४१—४५)

प्रणाम करके आश्चर्यमग्न हो पूछने लगे—'यह क्या बात है!' पितासे पूछनेपर उन्होंने बीती हुई सारी बातें कह सुनायीं। अपनी मनोरमा भार्या मदालसाकी मृत्युका समाचार सुनकर तथा माता-पिताको सामने खड़ा देख वे लज्जा और शोकके समुद्रमें डूब गये और मन-ही-मन सोचने लगे—'हाय! उस साध्वी बालाने मेरी मृत्युकी बात सुनकर प्राण त्याग दिये; फिर भी मैं जीवित हूँ। मुझ निष्ठुरको धिक्कार है। अहो! मैं क्रूर हूँ, अनार्य हूँ, जो मेरे ही लिये मृत्युको प्राप्त हुई उस मृगनयनी पत्नीके बिना भी अत्यन्त निर्दय होकर जी रहा हूँ।' इसके बाद उन्होंने अपने मनके आवेगको रोका और मोह छोड़कर विचारना आरम्भ किया—"वह मर गयी; इसलिये यदि मैं भी उसके निमित्त अपने प्राण त्याग दूँ तो इससे उस बेचारीका क्या उपकार हुआ? यह कार्य तो स्त्रियोंके लिये ही प्रशंसनीय है। यदि बारंबार 'हा प्रिये! हा प्रिये!!' कहकर दीनभावसे रोता हूँ, तो यह भी मेरे लिये प्रशंसाके योग्य बात नहीं है। मेरा कर्तव्य तो है—पिताजीकी सेवा करना। यह जीवन उन्हींके अधीन है; अतः मैं कैसे इसका त्याग कर सकता हूँ। किन्तु आजसे स्त्रीसम्बन्धी भोगका परित्याग कर देना मैं अपने लिये उचित समझता हूँ। यद्यपि इससे भी उस तन्वङ्गीका कोई उपकार नहीं होता, तथापि मुझको तो सर्वथा विषयभोगका त्याग ही करना उचित है। इससे उपकार अथवा अपकार कुछ भी नहीं होता। जिसने मेरे लिये प्राणतक त्याग दिया, उसके लिये मेरा यह त्याग बहुत थोड़ा है।'

ऐसा निश्चय करके उन्होंने मदालसाके लिये जलाञ्जलि दी और उसके बादका कर्म पूरा करके इस प्रकार प्रतिज्ञा की।

ऋतध्वज बोले—यदि इस जन्ममें मेरी सुन्दरी पत्नी मदालसा मुझे फिर न मिल सकी तो दूसरी कोई स्त्री मेरी जीवनसङ्गिनी नहीं बन सकती। मृगके समान विशाल नेत्रोंवाली गन्धर्वराजकुमारी मदालसाके अतिरिक्त अन्य किसी स्त्रीके साथ मैं सम्भोग नहीं कर सकता। यह मैंने सर्वथा सत्य कहा है।*

दोनों नागकुमार कहते हैं—पिताजी! इस प्रकार मदालसाके बिना वे स्त्रीसम्बन्धी समस्त भोगोंका परित्याग करके अब अपने समवयस्क मित्रोंके साथ मन बहलाते हैं। यही उनका सबसे बड़ा कार्य है। परन्तु यह तो ईश्वर-कोटिमें पहुँचे हुए व्यक्तियोंके लिये भी अत्यन्त दुष्कर है, फिर अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या है।

नागराज अश्वतर बोले—पुत्रो! यदि किसी कार्यको असम्भव मानकर मनुष्य उसके लिये उद्योग नहीं करेंगे तो उद्योग छोड़नेसे उनकी भारी हानि होगी; इसलिये मनुष्यको अपने पौरुषका त्याग न करते हुए कर्मका आरम्भ करना चाहिये; क्योंकि कर्मकी सिद्धि दैव और पुरुषार्थ दोनोंपर अवलम्बित है। इसलिये मैं तपस्याका आश्रय लेकर ऐसा यत्न करूँगा, जिससे इस कार्यकी शीघ्र ही सिद्धि हो।

यों कहकर नागराज अश्वतर हिमालय पर्वतके प्लक्षावतरण तीर्थमें, जो सरस्वतीका उद्गमस्थान है, जाकर दुष्कर तपस्या करने लगे। वे तीनों समय स्नान करते और नियमित आहारपर रहते हुए सरस्वतीदेवीमें मन लगाकर उत्तम वाणीमें उनकी स्तुति करते थे।

अश्वतर उवाच

जगद्धात्रीमहं देवीमारिराधयिषुः शुभाम्।
स्तोष्ये प्रणम्य शिरसा ब्रह्मयोनिं सरस्वतीम्॥
सदसद् देवि यत्किंचिन्मोक्षबन्धार्थवत्पदम्।
तत्सर्वं त्वय्यसंयोगं योगवद् देवि संस्थितम्॥
त्वमक्षरं परं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं देवि संस्थितं परमाणुवत्॥
अक्षरं परमं ब्रह्म जगच्चैतत्क्षरात्मकम्।
दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः॥
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः।

अश्वतरने कहा—जो सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली और वेदोंकी जननी हैं, उन कल्याणमयी सरस्वती देवीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे मैं उनके चरणोंमें शीश झुकाता और उनकी स्तुति करता हूँ। देवि! मोक्ष और बन्धनरूप अर्थसे युक्त जो कुछ भी सत् और असत् पद है, वह सब तुममें असंयुक्त होकर भी संयुक्तकी भाँति स्थित है। देवि! जिसमें सब कुछ प्रतिष्ठित है, वह परम अक्षर तुम्हीं हो। परम अक्षर परमाणुकी भाँति स्थित है। अक्षररूप परब्रह्म और क्षररूप यह जगत् तुममें ही स्थित है। जैसे काष्ठमें अग्नि तथा पार्थिव सूक्ष्म परमाणु भी रहते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म और यह सम्पूर्ण जगत् तुममें स्थित है।

---

* तामृते मृगशावाक्षीं गन्धर्वतनयामहम्।
न भोक्ष्ये योषितं काञ्चिदिति सत्यं मयोदितम्॥
(अ० २३। २०)

ओङ्काराक्षरसंस्थानं यत्ते देवि स्थिरास्थिरम् ॥
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च ।
त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ॥
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा ।
त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो दोषास्तथाश्रमाः ॥
त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः ।
एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ॥
विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः ।
सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्थाश्च सप्त याः ॥
तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः ।

देवि ! ओंकार अक्षरके रूपमें जो तुम्हारा श्रीविग्रह है, वह स्थावर-जङ्गमरूप है । उसमें जो तीन मात्राएँ हैं, वे ही सब कुछ हैं । अस्ति-नास्ति (सत्-असत्) रूपसे व्यवहृत होनेवाला जो कुछ भी है, वह सब उन्हींमें स्थित है । तीन लोक, तीन वेद, तीन विद्याएँ, तीन अग्नि, तीन ज्योति, धर्म आदि तीन वर्ग, तीन गुण, तीन शब्द, तीन दोष, तीन आश्रम, तीन काल, तीन अवस्थाएँ, त्रिविध पितर, दिन-रात और सन्ध्या—ये सभी तीन मात्राओंके अन्तर्गत हैं । देवि सरस्वति ! इस प्रकार यह सब तुम्हारा ही स्वरूप है । भिन्न-भिन्न प्रकारके दृष्टिकोण रखनेवाले व्यक्तियोंके लिये जो ब्रह्मके आदि एवं सनातन स्वरूपभूत सात प्रकारकी सोमयज्ञ-[1] संस्थाएँ, सात प्रकारकी हविर्यज्ञ-संस्थाएँ[2] तथा सात प्रकारकी पाकयज्ञ-संस्थाएँ[3] वेदमें वर्णित हुई हैं, उन सबका अनुष्ठान ब्रह्मवादी पुरुष तुम्हारे अङ्गभूत मन्त्रोंके उच्चारणसे ही करते हैं ।

अनिर्देश्यं तथा चान्यदर्द्धमात्राश्रितं परम् ॥
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम् ।
तवैव च परं रूपं यन्न शक्यं मयेरितुम् ॥
न चास्येन न वा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ।
इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्रार्कौ ज्योतिरेव च ॥
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् ।
सांख्यवेदान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ॥
अनादिमध्यनिधनं सदसन्न सदेव तु ।
एकं त्वनेकं नाप्येकं भवभेदसमाश्रितम् ॥
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च षट्काख्यं त्रिगुणाश्रयम् ।
नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभाविकं परम् ॥
सुखासुखमहत्सौख्यं रूपं तव विभाव्यते ।
एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत् ॥
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ।

उक्त तीन मात्राओंसे परे जो अर्द्धमात्राके आश्रित बिन्दु है, उसका वाणीद्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता । वह अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा परिणामशून्य है । देवि ! वह आपका ही स्वरूप है, जिसका वर्णन मेरेद्वारा असम्भव है । मुख, जीभ, तालु और ओठ आदि किसी भी स्थानसे उसका उच्चारण नहीं हो सकता । इन्द्र, वसु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि भी वही है । वही सम्पूर्ण जगत्का निवासस्थान, जगत्स्वरूप, जगत्का ईश्वर एवं परमेश्वर है । सांख्य, वेदान्त और वेदोंमें उसीका प्रतिपादन हुआ है । अनेकों शाखाओंमें उसीके स्वरूपका निश्चय किया गया है । वह आदि-अन्तसे रहित है तथा सत्-असत्से विलक्षण होता हुआ भी सत्स्वरूप ही है । अनेक रूपोंमें प्रतीत होता हुआ भी एक है और एक होकर भी जगत्के भेदोंका आश्रय लेकर अनेक है । वह नाम-रूपसे रहित है । छः गुण, छः वर्ग तथा तीन गुण भी उसीके आश्रित हैं । वह एक ही परम शक्तिमान् तत्त्व है, जो नाना प्रकारकी शक्ति रखनेवाले जीवोंमें शक्तिका सञ्चार करता रहता है । सुख, दुःख तथा महासौख्य—सब उसी अर्द्धमात्रारूप तुरीयपदके स्वरूप हैं । इस प्रकार तीनों मात्राओंसे अतीत जो तुरीय धामरूप ब्रह्म है, वह तुम्हींमें अभिव्यक्त होता है । देवि ! इस तरह सकल, निष्कल, अद्वैतनिष्ठ तथा द्वैतनिष्ठ जो ब्रह्म है, वह भी तुमसे व्याप्त है ।

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
ये वा स्थूला ये च सूक्ष्मातिसूक्ष्माः ।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा
तेषां तेषां त्वत्त एवोपलब्धिः ॥
यच्चामूर्तं यच्च मूर्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किञ्चित् ।
यद्दिव्येऽस्ति क्ष्मातले खेऽन्यतो वा
तत्सम्बद्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ॥

जो पदार्थ नित्य हैं, जो विनाशशील हैं, जो स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जो इस पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें या और किसी स्थानमें देखे जाते हैं, उन सबकी उपलब्धि तुम्हींसे होती है । मूर्त, अमूर्त, समस्त भूत अथवा एक-एक

१. अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र तथा आप्तोर्याम—ये सात सोमयज्ञसंस्थाएँ हैं ।

२. अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढपशुबन्ध तथा सौत्रामणी ये सात हविर्यज्ञसंस्थाएँ हैं ।

३. हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव, बलिहरण, प्रत्यवरोहण तथा अष्टकाहोम—ये सात पाकयज्ञसंस्थाएँ हैं ।

भूत जो कुछ भी द्युलोक, पृथ्वी, आकाश या अन्य स्थानमें उपलब्ध होता है, वह सब तुम्हारे ही स्वर और व्यञ्जनोंमें सम्बद्ध है।

इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीविष्णुकी जिह्वारूपा सरस्वतीदेवीने प्रकट हो महात्मा अश्वतर नागसे कहा—'कम्बलके भाई नागराज अश्वतर! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसे बताओ। मैं तुम्हें वर दूँगी।'

अश्वतर बोले—देवि! पहले तो आप कम्बलको ही मुझे सहायकरूपमें दीजिये और हम दोनों भाइयोंको सङ्गीतके समस्त स्वरोंका ज्ञान करा दीजिये।



सरस्वतीने कहा—नागराज! सात स्वर, सातों ग्राम, राग, सातों गीत, सातों मूर्च्छनाएँ, उन्चास प्रकारकी तानें और तीन ग्राम—इन सबको तुम और कम्बल भी गा सकते हो। इसके सिवा मेरी कृपासे तुम्हें चार प्रकारके पद, तीन ताल और तीन लयोंका भी ज्ञान हो जायगा। मैंने तीनों यति और चारों प्रकारके बाजोंका ज्ञान भी तुम्हें दे दिया। यह सब तो मेरे प्रसादसे तुम्हें मिलेगा ही; और भी इसके अन्तर्गत जो स्वर-व्यञ्जनसम्बन्धी विज्ञान है, वह सब भी तुमको और कम्बलको मैंने प्रदान किया। तुम दोनों भाई सङ्गीतकी सम्पूर्ण कलामें जितने कुशल होओगे, वैसा भूलोक, देवलोक और पाताललोकमें भी दूसरा कोई नहीं होगा।

सबकी जिह्वारूपा सरस्वतीदेवी यों कहकर तत्काल अन्तर्धान हो गयीं। उन दोनों भाइयोंको सरस्वतीजीके कथनानुसार पद, ताल और स्वर आदिका उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। तदनन्तर वे कैलासशिखरपर निवास करनेवाले भगवान् शङ्करकी आराधना करनेके लिये वहाँ गये और वीणाकी लयके साथ सात प्रकारके गीतोंसे शङ्करजीको प्रसन्न करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करने लगे। प्रातःकाल, रात्रिमें, मध्याह्नके समय और दोनों सन्ध्याओंमें वे भगवत्परायण होकर भगवान् शङ्करकी स्तुति करने लगे। बहुत समयतक स्तुति करनेके बाद उनके गीतसे भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए और बोले—'वर माँगो।' तब कम्बलसहित अश्वतरने महादेवजीको प्रणाम करके कहा—'भगवन्! यदि आप हम दोनोंपर प्रसन्न हैं तो हमें मनोवाञ्छित वर दें। कुवलयाश्वकी पत्नी मदालसा, जो अब मर चुकी है, पहलेकी ही अवस्थामें मेरी कन्याके रूपमें प्रकट हो। उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो, पहले ही-जैसी उसकी कान्ति हो तथा वह योगिनी एवं योगविद्याकी जननी होकर मेरे घरमें उत्पन्न हो।'



महादेवजीने कहा—नागराज ! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब मेरे प्रसादसे निश्चय ही पूर्ण होगा । श्राद्धका दिन आनेपर तुम उसमें दिये हुए मध्यम पिण्डको शुद्ध एवं पवित्रचित्त होकर खा लेना । उसके खा लेनेपर तुम्हारे मध्यम फणसे कल्याणी मदालसा जैसे मरी है, उसी रूपमें उत्पन्न होगी । तुम इसी कामनाको मनमें लेकर उस दिन पितरोंका तर्पण करना, इससे वह तत्काल ही तुम्हारे मध्यम फणसे प्रकट हो जायगी ।

यह सुनकर वे दोनों भाई महादेवजीके चरणोंमें प्रणाम करके बड़े सन्तोषके साथ पुनः रसातलमें लौट आये । अश्वतरने उसी प्रकार श्राद्ध किया और मध्यम पिण्डका विधिपूर्वक भोजन किया । फिर जब उक्त मनोरथको लेकर वे तर्पण करने लगे, उस समय उनके साँस लेते हुए मध्यम फणसे सुन्दरी मदालसा तत्काल प्रकट हो गयी । नागराजने



यह रहस्य किसीको नहीं बताया । मदालसाको महलके भीतर गुप्तरूपसे स्त्रियोंके संरक्षणमें रख दिया । इधर नागराजके पुत्र प्रतिदिन भूलोकमें जाते और ऋतध्वजके साथ देवताओंकी भाँति क्रीड़ा करते थे । एक दिन नागराजने प्रसन्न होकर अपने पुत्रोंसे कहा—'मैंने पहले तुमलोगोंको जो कार्य बताया था, उसे तुम क्यों नहीं करते ? पुत्रो ! राजकुमार ऋतध्वज हमारे उपकारी और सम्मानदाता हैं, फिर उनका भी उपकार करनेके लिये तुमलोग उन्हें मेरे पास क्यों नहीं ले आते ?'

अपने स्नेही पिताके यों कहनेपर वे दोनों मित्रके नगरमें गये और कुछ बातचीतका प्रसङ्ग चलाकर उन्होंने कुवलयाश्वको अपने घर चलनेके लिये कहा । तब राजकुमारने उन दोनोंसे कहा—'सखे ! यह घर भी तो आप ही दोनोंका है । धन, वाहन, वस्त्र आदि जो कुछ भी मेरा है, वह सब आपका भी है । यदि आपका मुझपर प्रेम है तो आप धन-रत्न आदि जो कुछ किसीको देना चाहें, यहाँसे लेकर दें । दुर्दैवने मुझे आपके स्नेहसे इतना वञ्चित कर दिया कि आप मेरे घरको अपना नहीं समझते । यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हों, अथवा यदि आपका मुझपर अनुग्रह हो तो मेरे धन और गृहको आपलोग अपना ही समझें । आपलोगोंका जो कुछ है, वह मेरा है और मेरा आपलोगोंका है । आपलोग मेरे बाहरी प्राण हैं, इस बातको सत्य मानें । मैं अपने हृदयकी शपथ दिलाकर कहता हूँ, आप मुझपर कृपा करके फिर ऐसी भेदभावको सूचित करनेवाली बात कभी मुँहसे न निकालें ।'

यह सुनकर उन दोनों नागकुमारोंके मुख स्नेहके आँसुओंसे भींग गये और वे कुछ प्रेमपूर्ण रोषसे बोले—'ऋतध्वज ! तुम जो कुछ कहते हो, उसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । हमारे मनमें भी वैसा ही भाव है; परन्तु हमारे महात्मा पिताने बार-बार कहा है कि मैं कुवलयाश्वको देखना चाहता हूँ ।' इतना सुनते ही कुवलयाश्व अपने सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये और यह कहकर कि 'पिताजीकी जैसी आज्ञा है, वही करूँगा' वे पृथ्वीपर उनके उद्देश्यसे प्रणाम करने लगे ।

कुवलयाश्व बोले—मैं धन्य हूँ, अत्यन्त पुण्यात्मा हूँ, मेरे समान भाग्यशाली दूसरा कौन है; क्योंकि आज पिताजी मुझे देखनेकी इच्छा करते हैं । अतः मित्रो ! आपलोग उठें और उनके पास चलें । मैं पिताजीके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ, उनकी इस आज्ञाका क्षणभर भी उल्लङ्घन करना नहीं चाहता ।

यों कहकर राजकुमार ऋतध्वज उन दोनों नागकुमारोंके साथ नगरसे बाहर निकले और पुण्यसलिला गोमतीके तटपर गये । फिर वे सब लोग गोमतीकी बीच धारामें उतरकर चलने लगे । राजकुमारने सोचा—'नदीके उस पार इन

दोनोंका घर होगा।' इतनेमें ही उन नागकुमारोंने उन्हें खींचकर पाताल पहुँचा दिया। वहाँ जानेपर उन्होंने अपने दोनों मित्रोंको स्वस्तिकके लक्षणोंसे सुशोभित सुन्दर नागकुमारोंके रूपमें देखा। वे फणोंकी मणिसे देदीप्यमान हो रहे थे। उन्हें इस रूपमें देखकर राजकुमारके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। उन्होंने मुसकाते हुए प्रेमपूर्वक कहा—'वाह, यह तो अच्छा रहा।' पातालमें कहीं तो वीणा और वेणुकी मधुर ध्वनिके साथ सङ्गीतके शब्द सुनायी देते थे। कहीं मृदङ्ग और ढोल आदि बाजे बज रहे थे। सैकड़ों मनोहर भवन चारों ओर दृष्टिगोचर होते थे। इस प्रकार अपने प्रिय नागकुमारोंके साथ पातालकी शोभा निहारते हुए राजकुमार ऋतध्वज आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर जानेके बाद सबने नागराजके महलमें प्रवेश किया। नागराज अश्वतर सोनेके



सिंहासनपर, जिसमें मणि, मूँगे और वैदूर्य आदि रत्नोंकी झालरें लगी थीं, विराजमान थे। उनके अङ्गोंमें दिव्य हार एवं दिव्य वस्त्र शोभा पा रहे थे। कानोंमें मणिमय कुण्डल झिलमिला रहे थे। सफेद मोतियोंका मनोहर हार वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहा था और भुजाओंमें भुजबंद सुशोभित थे। दोनों नागकुमारोंने 'यही हमारे पिताजी हैं' यों कहकर राजकुमारको उनका दर्शन कराया और पिताजीसे यह निवेदन किया कि 'यही हमारे मित्र वीर कुवलयाश्व हैं।' ऋतध्वजने नागराजके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। नागराजने उन्हें बलपूर्वक उठाया और खूब कसकर छातीसे लगा लिया। फिर उनका मस्तक सूँघकर कहा—'बेटा! चिरजीवी रहो। शत्रुओंका नाश करके पिता-माताकी सेवा करो। वत्स! तुम धन्य हो; क्योंकि मेरे पुत्रोंने परोक्षमें भी मुझसे तुम्हारे असाधारण गुणोंकी प्रशंसा की है। तुम मन, वाणी और शरीरकी चेष्टाओंके साथ अपने गुण-गौरवसहित सदा बढ़ते रहो। गुणवान्का ही जीवन प्रशंसनीय है। गुणहीन मनुष्य तो जीते-जी ही मरेके समान है। गुणवान् पुत्र पिता-माताको शान्ति एवं सन्तोष प्रदान करता है। देवता, पितर, ब्राह्मण, मित्र, याचक, दुखी तथा बन्धु-बान्धव भी गुणवान् पुरुषके चिरजीवी होनेकी अभिलाषा करते हैं। जिनकी कभी निन्दा नहीं हुई, जो दीन-दुखियोंपर दया करते तथा आपत्तिग्रस्त मनुष्य जिनकी शरण लेते हैं, ऐसे गुणवान् पुरुषोंका ही जन्म सफल है।'

वीर कुवलयाश्वसे यों कहकर उनका स्वागत-सत्कार करनेके लिये नागराज अपने पुत्रोंसे बोले—'बेटा! क्रमशः स्नान आदि सब कार्य पूरा करके इन्हें इच्छानुसार भोजन कराओ। उसके बाद हमलोग इनसे मनको प्रसन्न करनेवाली बातें करते हुए कुछ कालतक एक साथ बैठेंगे।' राजा शत्रुजित्के पुत्रने चुपचाप उनकी आज्ञा स्वीकार की। तत्पश्चात् सत्यवादी नागराजने अपने पुत्रों तथा राजकुमारके साथ प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया।

ऋतध्वजको मदालसाकी प्राप्ति, बाल्यकालमें अपने पुत्रोंको मदालसाका उपदेश

सुमति कहते हैं—नागराज महात्मा अश्वतर जब भोजन कर चुके, तब उनके पुत्र और राजकुमार ऋतध्वज—तीनों उनके पास आकर बैठे। नागराजने मनको प्रिय लगनेवाली बातें कहकर अपने पुत्रोंके सखाको प्रसन्न किया और पूछा—'आयुष्मन्! आज तुम मेरे घरपर आये हो। अतः जिससे तुम्हें सुख मिले, ऐसी किसी वस्तुके लिये यदि

तुम्हारी इच्छा हो तो बताओ। जैसे पुत्र अपने पितासे मनकी बात कहता है, उसी प्रकार तुम भी निःशङ्क होकर मुझसे अपना मनोरथ कहो। सोना, चाँदी, वस्त्र, वाहन, आसन, अथवा और कोई अत्यन्त दुर्लभ एवं मनोवाञ्छित वस्तु मुझसे माँगो।'

कुवलयाश्वने कहा–भगवन्! आपके प्रसादसे मेरे पिताके घरमें आज भी सुवर्ण आदि सभी बहुमूल्य वस्तुएँ मौजूद हैं। इन सब वस्तुओंकी मुझे आवश्यकता नहीं है। जबतक पिताजी हजारों वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करते हैं और आप पाताललोकका राज्य करते हैं, तबतक मेरा मन याचना करनेके लिये उत्सुक नहीं हो सकता। जिनके पिता जीवित हैं, वे परम सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा हैं। भला, मेरे पास क्या नहीं है। सज्जन मित्र, नीरोग शरीर, धन और यौवन—सभी कुछ तो है। जो इस बातकी चिन्ता न करके कि मेरे घरमें धन है या नहीं—पिताकी भुजाओंकी छत्रछायामें रहते हैं, वे ही सुखी हैं। जो लोग बचपनसे ही पितृहीन होकर कुटुम्बका भार वहन करते हैं, उनका सुखभोग छिन जानेके कारण मैं तो यही समझता हूँ कि विधाताने ही उन्हें सौभाग्यसे वञ्चित कर रक्खा है। मैं तो आपकी कृपासे पिताजीके दिये हुए धन-रत्न आदिके भंडारमेंसे प्रतिदिन याचकोंको उनकी इच्छाके अनुसार दान देता रहता हूँ। यहाँ आकर मैंने अपने मुकुटसे जो आपके दोनों चरणोंका स्पर्श किया तथा आपके शरीरसे मेरा स्पर्श हुआ, इसीसे मैं सब कुछ पा गया।

राजकुमारका यह विनययुक्त वचन सुनकर नागराज अश्वतरने प्रेमपूर्वक कहा—'यदि मुझसे रत्न और सुवर्ण आदि लेनेका तुम्हारा मन नहीं होता तो और ही कोई वस्तु, जो तुम्हारे मनको प्रसन्न कर सके, माँगो। मैं तुम्हें दूँगा।'

कुवलयाश्वने कहा–भगवन्! आपके प्रसादसे मेरे घरमें सब कुछ है, विशेषतः आपके दर्शनसे मुझे सब मिल गया। आप देवता हैं और मैं मनुष्य। आपने अपने शरीरसे जो मेरा आलिङ्गन किया—इसीसे मैं कृतकृत्य हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। नागराज! आपकी चरण-धूलिने जो मेरे मस्तकपर अपना स्थान बनाया है, उसीसे मैंने क्या नहीं पा लिया। यदि आपको मुझे मनोवाञ्छित वर देना ही है तो यही दीजिये कि मेरे हृदयसे पुण्यकर्मोंका संस्कार कभी दूर न हो।

अश्वतर बोले–विद्वन्! ऐसा ही होगा। तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी रहेगी। तथापि इस समय तुम मेरे घरमें आये हो; इसलिये तुम्हें मनुष्यलोकमें जो वस्तु दुर्लभ प्रतीत होती हो, वही मुझसे माँग लो।

उनकी यह बात सुनकर राजकुमार ऋतध्वज अपने दोनों मित्र नागकुमारोंके मुखकी ओर देखने लगे। तब उन दोनोंने पिताको प्रणाम करके राजपुत्रका जो अभीष्ट था, उसे स्पष्ट रूपसे कहना आरम्भ किया।

नागकुमार बोले–पिताजी! गन्धर्वराजकुमारी मदालसा इनकी प्यारी पत्नी थी। उसको किसी दुष्ट बुद्धिवाले दुरात्मा दानवने, जो इनके साथ वैर रखता था, धोखा दिया। उसने उसी दानवके मुखसे इनकी मृत्युका समाचार सुनकर अपने प्यारे प्राणोंको त्याग दिया। तब इन्होंने अपनी पत्नीके प्रति कृतज्ञ होकर यह प्रतिज्ञा कर ली कि अब मदालसाको छोड़कर दूसरी कोई स्त्री मेरी पत्नी नहीं हो सकती। पिताजी! ये वीर ऋतध्वज आज उसी सर्वाङ्गसुन्दरी मदालसाको देखना चाहते हैं। यदि ऐसा किया जा सके तो इनका मनोरथ पूर्ण हो सकता है।

तब नागराज घरमें छिपायी हुई मदालसाको ले आये और राजकुमारको उसे दिखाया और पूछा—'ऋतध्वज! यह तुम्हारी पत्नी मदालसा है या नहीं?' उसे देखते ही राजकुमार लज्जा छोड़कर उठे और 'हा प्रिये!' कहते हुए उसकी ओर बढ़े। तब नागराजने उसे रोका



और मदालसाके मरकर जीवित होने आदिकी सारी कथा कह सुनायी। फिर तो राजकुमारने प्रसन्न होकर अपनी प्यारी पत्नीको ग्रहण किया। तदनन्तर उनके स्मरण करते ही उनका प्यारा अश्व वहाँ आ पहुँचा। उस समय नागराजको प्रणाम करके वे अश्वपर आरूढ़ हुए और मदालसाके साथ अपने नगरको चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता-मातासे उसके मरकर जीवित होनेका सब समाचार निवेदन किया। कल्याणमयी मदालसाने भी सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम किया तथा अन्य स्वजनोंको भी यथायोग्य सम्मान दिया। तत्पश्चात् उस नगरमें पुरवासियों-के यहाँ बहुत बड़ा उत्सव हुआ।

इसके बाद बहुत समय बीतनेके पश्चात् महाराज शत्रुजित् पृथ्वीका भलीभाँति पालन करके परलोकवासी हो गये। तब पुरवासियोंने उनके महात्मा पुत्र ऋतध्वजको, जिनके आचरण तथा व्यवहार बड़े ही उदार थे, राजपदपर अभिषिक्त किया। वे भी अपनी प्रजाका औरस पुत्रोंकी भाँति पालन करने लगे। तदनन्तर मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने उसका नाम विक्रान्त रक्खा। इससे कुटुम्बके सब लोग बड़े प्रसन्न हुए, किन्तु मदालसा वह नाम सुनकर हँसने लगी। उसने उत्तान सोकर जोर-जोरसे रोते हुए शिशुको बहलानेके व्याजसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—



शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम
कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति
नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः॥

हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है, तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पाँच भूतोंका बना हुआ है। न यह तेरा है, न तू इसका है। फिर किसलिये रो रहा है?

न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्मा
शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम्।
विकल्प्यमाना विविधा गुणास्ते-
ऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु॥

अथवा तू नहीं रोता है, यह शब्द तो राजकुमारके पास पहुँचकर अपने-आप ही प्रकट होता है। तेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें जो भाँति-भाँतिके गुण-अवगुणोंकी कल्पना होती है, वे भी पाञ्चभौतिक ही हैं।

भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि
वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः।
अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य
न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः॥

जैसे इस जगत्‌में अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतोंके सहयोगसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थोंको देनेसे पुरुषके पाञ्चभौतिक शरीरकी ही पुष्टि होती है। इससे तुझ शुद्ध आत्माकी न तो वृद्धि होती है और न हानि ही होती है।

त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिं-
स्तस्मिंश्च देहे मूढतां मा व्रजेथाः।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेत-
न्मदादिमूढैः कञ्चुकस्ते पिनद्धः॥

तू अपने उस चोले तथा इस देहरूपी चोलेके जीर्ण-शीर्ण होनेपर मोह न करना। शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार यह देह प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला मद आदिसे बँधा हुआ है (तू तो सर्वथा इससे मुक्त है)।

तातेति किंचित् तनयेति किंचि-
दम्बेति किंचिद्दयितेति किंचित्।
ममेति किंचिन्न ममेति किंचित्
त्वं भूतसङ्घं बहु मानयेथाः॥

कोई जीव पिताके रूपमें प्रसिद्ध है, कोई पुत्र कहलाता है, किसीको माता और किसीको प्यारी स्त्री कहते हैं; कोई 'यह मेरा है' कहकर अपनाया जाता है और कोई 'मेरा नहीं है' इस भावसे पराया माना जाता है। इस प्रकार ये भूतसमुदायके ही नाना रूप हैं, ऐसा तुझे मानना चाहिये।

दुःखानि दुःखोपगमाय भोगान्
सुखाय जानाति विमूढचेताः।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि
जानाति विद्वानविमूढचेताः॥

यद्यपि समस्त भोग दुःखरूप हैं तथापि मूढ़चित्त मानव उन्हें दुःख दूर करनेवाला तथा सुखकी प्राप्ति करानेवाला समझता है; किन्तु जो विद्वान् हैं, जिनका चित्त मोहसे आच्छन्न नहीं हुआ है, वे उन भोगजनित सुखोंको भी दुःख ही मानते हैं।

हासोऽस्थिसंदर्शनमक्षियुग्म-
मत्युज्ज्वलं यत्कलुषं वसायाः।
कुचादि पीनं पिशितं घनं तत्
स्थानं रतेः किं नरकं न योषित्॥

स्त्रियोंकी हँसी क्या है, हड्डियोंका प्रदर्शन। जिसे हम अत्यन्त सुन्दर नेत्र कहते हैं, वह मज्जाकी कलुषता है और मोटे-मोटे कुच आदि घने मांसकी ग्रन्थियाँ हैं; अतः पुरुष जिसपर अनुराग करता है, वह युवती स्त्री क्या नरककी जीती-जागती मूर्ति नहीं है?

यानं क्षितौ यानगतश्च देहो
देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः।
ममत्वमुर्व्यां न तथा यथा स्वे
देहेऽतिमात्रं च विमूढतैषा॥

पृथ्वीपर सवारी चलती है, सवारीपर यह शरीर रहता है और इस शरीरमें भी एक दूसरा पुरुष बैठा रहता है; किन्तु पृथ्वी और सवारीमें वैसी अधिक ममता नहीं देखी जाती, जैसी कि अपने देहमें दृष्टिगोचर होती है। यही मूर्खता है।

ज्यों-ज्यों वह बालक बढ़ने लगा, त्यों-ही-त्यों महारानी मदालसा प्रतिदिन उसे बहलाने आदिके द्वारा ममताशून्य ज्ञानका उपदेश करने लगी। जैसे-जैसे उसके शरीरमें बल आता गया और जैसे-जैसे वह पितासे व्यावहारिक बुद्धि सीखने लगा, वैसे-ही-वैसे माताके वचनोंसे उसे आत्मतत्त्वका ज्ञान भी प्राप्त होता गया। इस प्रकार माताने जन्मसे ही अपने पुत्रको ऐसा उपदेश दिया, जिससे ज्ञानी एवं ममताशून्य होकर उसने गार्हस्थ्यधर्मके प्रति अपने मनको नहीं जाने दिया। इसी प्रकार जब मदालसाके गर्भसे दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, तब पिताने उसका नाम सुबाहु रक्खा। इसपर भी मदालसा हँसने लगी। उस बालकको भी वह पहलेकी ही भाँति बहलाते-बहलाते बचपनसे ही ऐसा उपदेश देने लगी, जिससे वह परमबुद्धिमान् ज्ञानी हो गया। तृतीय पुत्र उत्पन्न होनेपर राजाने उसका नाम शत्रुमर्दन रक्खा। इसपर भी सुन्दरी मदालसा बहुत देरतक हँसती रही तथा उसको भी उसने पहलेकी ही भाँति बाल्यकालसे ही ज्ञानका उपदेश दिया। बड़ा होनेपर वह निष्काम कर्म करने लगा। सकाम कर्मकी ओर उसकी रुचि नहीं रही। राजा ऋतध्वज जब चौथे पुत्रका नामकरण करने चले, तब सदाचारपरायणा मदालसापर उनकी दृष्टि पड़ी। उस समय वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। उसे हँसते देख राजाको कुछ कौतूहल हुआ; अतः उन्होंने पूछा—'देवि! जब मैं नामकरण करने चलता हूँ, तब तुम हँसती क्यों हो? इसका कारण बताओ। मैं तो समझता हूँ विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन—ये सुन्दर नाम रक्खे गये हैं। ये क्षत्रियोंके योग्य तथा शौर्यमें उपयोगी हैं; भद्रे! यदि तुम्हारे मनमें यह बात हो कि ये नाम अच्छे नहीं हैं तो मेरे चौथे पुत्रका नाम तुम स्वयं ही रक्खो।'

मदालसा बोली-महाराज! आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा कर्तव्य है; अतः आप जैसा कहते हैं, उसके अनुसार मैं आपके चौथे पुत्रका नाम स्वयं ही रक्खूँगी। यह धर्मज्ञ बालक इस संसारमें अलर्कके नामसे विख्यात होगा। आपका यह कनिष्ठ पुत्र बड़ा बुद्धिमान् होगा।

माताके द्वारा रक्खे गये 'अलर्क' इस असम्बद्ध नामको सुनकर राजा ठठाकर हँस पड़े और इस प्रकार बोले—'शुभे! तुमने मेरे पुत्रका जो यह अलर्क नाम रक्खा है, उसका क्या कारण है? ऐसा असम्बद्ध नाम क्यों रक्खा? इसका अर्थ क्या है?'



मदालसाका पुत्रको उपदेश

मदालसाने कहा—महाराज ! यह तो व्यावहारिक कल्पना है; लौकिक व्यवहार चलानेके लिये कोई-सा नाम रख लिया जाता है, इससे पुरुषका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आपने भी जो नाम रक्खे हैं, वे भी निरर्थक ही हैं। कैसे, सो बतलाती हूँ; सुनिये । ज्ञानीलोग पुरुष (आत्मा) को व्यापक बतलाते हैं। आपने प्रथम पुत्रका नाम विक्रान्त रक्खा है, इसके अर्थपर विचार कीजिये। क्रान्तिका अर्थ है गति। एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेको गति कहते हैं। जब इस देहका ईश्वर आत्मा सर्वत्र व्यापक है, तब वह दूसरी जगह जा नहीं सकता; अतः उसका नाम विक्रान्त रखना मुझे निरर्थक ही जान पड़ता है। पृथ्वीनाथ ! दूसरे पुत्रका जो सुबाहु नाम रक्खा गया है, वह भी व्यर्थ ही है; क्योंकि आत्मा निराकार है, उसको बाँह कहाँसे आयी। तृतीय पुत्रका जो अरिमर्दन नाम नियत किया गया है, मेरी समझसे वह भी असम्बद्ध ही है। इसका कारण भी सुनिये। अरिमर्दनका अर्थ है—शत्रुका मर्दन करनेवाला। जब सब शरीरोंमें एक ही आत्मा रहता है, तब उसका कौन शत्रु है और कौन मित्र। मूर्तिमान् भूतोंके द्वारा मूर्तिमान् भूतोंका ही मर्दन होता है। आत्मा तो अमूर्त है, उसका मर्दन कैसे हो सकता है। क्रोध आदि आत्मासे पृथक् रहते हैं; अतः यह अरिमर्दनकी कल्पना निरर्थक ही है। यदि व्यवहारका भलीभाँति निर्वाह करनेके लिये ऐसे असङ्गत नामोंकी कल्पना हो सकती है तो 'अलर्क' नाममें ही क्यों आपको निरर्थकता प्रतीत होती है ?

रानी मदालसाके द्वारा इस प्रकार भलीभाँति समझाये जानेपर परम बुद्धिमान् महाराज ऋतध्वजने अपनी प्राणवल्लभाको यथार्थवादिनी मानकर कहा—'तुम्हारा कथन सत्य है।' तदनन्तर उसने पहले पुत्रोंकी भाँति उसको भी ज्ञानजनक बातें सुनानी आरम्भ कीं। तब राजाने उसे रोककर कहा।

राजा बोले—अरी यह क्या करती हो ? पहले पुत्रोंकी भाँति इसे भी ज्ञानका उपदेश देकर मेरी वंश-परम्पराका उच्छेद करनेपर क्यों तुली हो। यदि तुम्हें मेरा प्रिय कार्य करना हो और यदि मेरी बातोंको मानना तुम्हें उचित प्रतीत होता हो



तो मेरे इस पुत्रको प्रवृत्तिमार्गमें लगाओ। देवि ! ऐसा करनेसे कर्ममार्गका उच्छेद नहीं होगा तथा पितरोंके पिण्डदानका लोप नहीं होगा। जो पितर देवलोकमें हैं, जो तिर्यग्योनिमें पड़े हैं, जो मनुष्ययोनिमें एवं भूतवर्गमें स्थित हैं, वे पुण्यात्मा हों या पापात्मा, जब भूख-प्याससे विकल होते हैं तो अपने कर्मोंमें लगा हुआ मनुष्य पिण्डदान तथा जलदानके द्वारा उन्हें तृप्त करता है। इसी तरह वह देवताओं और अतिथियोंको भी सन्तुष्ट रखता है। देवता, मनुष्य, पितर, भूत, प्रेत, गुह्यक, पक्षी, कृमि और कीट आदि भी मनुष्यसे ही जीविका चलाते हैं; अतः सुन्दरि ! तुम मेरे पुत्रको ऐसा उपदेश दो, जिससे इहलोक और परलोकमें उत्तम फल देनेवाले क्षत्रियोचित कर्तव्यका उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो।

पतिके यों कहनेपर श्रेष्ठ नारी मदालसा अपने पुत्र अलर्कको बहलाती हुई इस प्रकार उपदेश देने लगी—

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रु-
रेकश्चिरं पालयितासि पुत्र।
तत्पालनादस्तु सुखोपभोगो
धर्मात् फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम्॥

धरामरान् पर्वसु तर्पयेथाः
समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा
मनः परस्त्रीषु निवर्तयेथाः ॥
सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथा-
स्तद्ध्यानतोऽन्तः षडरीञ्जयेथाः ।
मायां प्रबोधेन निवारयेथा
ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः ॥
अर्थागमाय क्षितिपाञ्जयेथा
यशोऽर्जनायार्थमपि व्ययेथाः ।
परापवादश्रवणाद्विभीथा
विपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ॥

बेटा ! तू धन्य है, जो शत्रुरहित होकर अकेला ही चिरकालतक इस पृथ्वीका पालन करता रहेगा । पृथ्वीके पालनसे तुझे सुखभोगकी प्राप्ति हो और धर्मके फलस्वरूप तुझे अमरत्व मिले । पर्वोंके दिन ब्राह्मणोंको भोजनके द्वारा तृप्त करना, बन्धु-बान्धवोंकी इच्छा पूर्ण करना, अपने हृदयमें दूसरोंकी भलाईका ध्यान रखना और परायी स्त्रियोंकी ओर कभी मनको न जाने देना । अपने मनमें सदा श्रीविष्णु-भगवान्‌का चिन्तन करना, उनके ध्यानसे अन्तःकरणके काम-क्रोध आदि छहों शत्रुओंको जीतना, ज्ञानके द्वारा मायाका निवारण करना और जगत्‌की अनित्यताका विचार करते रहना । धनकी आयके लिये राजाओंपर विजय प्राप्त करना, यशके लिये धनका सद्व्यय करना, परायी निन्दा सुननेसे डरते रहना तथा विपत्तिके समुद्रमें पड़े हुए लोगोंका उद्धार करना ।

वीर ! तू अनेक यज्ञोंके द्वारा देवताओंको तथा धनके द्वारा ब्राह्मणों एवं शरणागतोंको सन्तुष्ट करना । कामनापूर्तिके द्वारा स्त्रियोंको प्रसन्न रखना और युद्धके द्वारा शत्रुओंके छक्के छुड़ाना । बाल्यावस्थामें तू भाई-बन्धुओंको आनन्द देना, कुमारावस्थामें आज्ञापालनके द्वारा गुरुजनोंको सन्तुष्ट रखना । युवावस्थामें उत्तम कुलको सुशोभित करनेवाली स्त्रीको प्रसन्न रखना और वृद्धावस्थामें वनके भीतर निवास करते हुए वनवासियोंको सुख देना ।

राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः
साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये
गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः ॥

तात ! राज्य करते हुए अपने सुहृदोंको प्रसन्न रखना, साधु पुरुषोंकी रक्षा करते हुए यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करना, संग्राममें दुष्ट शत्रुओंका संहार करते हुए गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण निछावर कर देना ।

मदालसाका अलर्कको राजनीतिका उपदेश

सुमति कहते हैं—इस प्रकार माताके द्वारा प्रतिदिन बहलाया जाता हुआ बालक अलर्क कुछ बड़ी अवस्थाको प्राप्त हुआ । कुमारावस्थामें पहुँचनेपर उसका उपनयन-संस्कार हुआ । तत्पश्चात् उस बुद्धिमान् राजकुमारने माताको प्रणाम करके कहा—'माँ ! मुझे इस लोक और परलोकमें सुख प्राप्त करनेके लिये यहाँ क्या करना चाहिये? यह सब मुझे बताओ।'

मदालसा बोली—बेटा ! राज्याभिषेक होनेपर राजाको उचित है कि वह अपने धर्मके अनुकूल चलता हुआ आरम्भसे ही प्रजाको प्रसन्न रक्खे । सातों[1] व्यसनोंका परित्याग कर दे; क्योंकि वे राजाका मूलोच्छेद करनेवाले हैं । अपनी गुप्त मन्त्रणाके बाहर फूटनेसे उसके द्वारा लाभ उठाकर शत्रु आक्रमण कर देते हैं; अतः ऐसा न होने देकर शत्रुओंसे अपनी रक्षा करे । जैसे रथी रथकी गति वक्र होनेपर आठों प्रकारसे नाशको प्राप्त होता है, उसके ऊपर आठों दिशाओंसे प्रहार होने लगते हैं, उसी प्रकार गुप्त मन्त्रणाके बाहर फूटनेपर राजाके आठों[1] वर्गोंका निश्चय ही नाश होता है । राजाको इस बातका भी पता लगाते रहना चाहिये कि शत्रुद्वारा उत्पन्न किये गये दोषसे अथवा शत्रुओंके बहकावेमें आकर अपने मन्त्रियोंमेंसे कौन दुष्ट हो गया है और कौन अदुष्ट—कौन अपना साथी है और कौन शत्रुसे मिला हुआ । इसी प्रकार बुद्धिमान् चर नियुक्त करके शत्रुके चरोंपर भी प्रयत्नपूर्वक दृष्टि रखनी चाहिये । राजाको अपने मित्रों तथा माननीय बन्धु-बान्धवोंपर भी

१. कटुवचन बोलना, कठोर दण्ड देना, धनका अपव्यय करना, मदिरा पीना, स्त्रियोंमें आसक्ति रखना, शिकार खेलनेमें व्यर्थ समय लगाना और जूआ खेलना—ये राजाके सात व्यसन हैं ।

१. खेतीकी उन्नति, व्यापारकी वृद्धि, दुर्ग-निर्माण, पुल बनाना, जंगलसे हाथी पकड़कर मँगवाना, खानोंपर अधिकार प्राप्त करना, अधीन राजाओंसे कर लेना और निर्जन प्रदेशको आबाद करना—ये आठ वर्ग कहलाते हैं ।

पूर्णतः विश्वास नहीं करना चाहिये। किन्तु काम आ पड़नेपर उसे शत्रुपर भी विश्वास कर लेना चाहिये। किस अवस्थामें शत्रुपर चढ़ाई न करके अपने स्थानपर स्थित रहना उचित है, क्या करनेसे अपनी वृद्धि होगी और किस कार्यसे अपनी हानि होनेकी सम्भावना है—इन सब बातोंका राजाको ज्ञान होना चाहिये। वह छः गुणोंका[1] उपयोग करना जाने और कभी कामके अधीन न हो। राजा पहले अपने आत्माको, फिर मन्त्रियोंको जीते। तत्पश्चात् अपनेसे भरण-पोषण पानेवाले कुटुम्बीजनों एवं सेवकोंके हृदयपर अधिकार प्राप्त करे। तदनन्तर पुरवासियोंको अपने गुणोंसे जीते। यह सब हो जानेपर शत्रुओंके साथ विरोध करे। जो इन सबको जीते बिना ही शत्रुओंपर विजय पाना चाहता है, वह अपने आत्मा तथा मन्त्रियोंपर अधिकार न रखनेके कारण शत्रुसमुदायके वशमें पड़कर कष्ट भोगता है।*



इसलिये बेटा! पृथ्वीका पालन करनेवाले राजाको पहले काम आदि शत्रुओंको जीतनेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनके जीत लेनेपर विजय अवश्यम्भावी है। यदि राजा ही उनके वशमें हो गया तो वह नष्ट हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष—ये राजाका विनाश करनेवाले शत्रु हैं। राजा पाण्डु काममें आसक्त होनेके कारण मारे गये तथा अनुह्राद क्रोधके कारण ही अपने पुत्रसे हाथ धो बैठा। यह विचारकर अपनेको काम और क्रोधसे अलग रखे। राजा पुरूरवा लोभसे मारे गये और वेनको मदके कारण ही ब्राह्मणोंने मार डाला। अनायुके पुत्रको मानके कारण प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा तथा पुरञ्जयकी मृत्यु हर्षके कारण हुई; किन्तु महात्मा मरुत्तने इन सबको जीत लिया था, इसलिये वे सम्पूर्ण विश्वपर विजयी हुए। यह सोचकर राजा उपर्युक्त दोषोंका सर्वथा त्याग करे। वह कौवे, कोयल, भौंरे, हरिन, साँप, मोर, हंस, मुर्गे और लोहेके व्यवहारसे शिक्षा ग्रहण करे।* राजा अपने शत्रुके प्रति उल्लूका-सा

व्यसनानि परित्यज्य सप्त मूलहराणि वै।
आत्मा रिपुभ्यः संरक्ष्यो बहिर्मन्त्रविनिर्गमात्।
अष्टधा नाशमाप्नोति स्वचक्रात् स्यन्दनाद्यथा।
तथा राजाप्यसन्दिग्धं बहिर्मन्त्रविनिर्गमात्॥
दुष्टादुष्टांश्च जानीयादमात्यानरिदोषतः।
चराश्चरास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः॥
विश्वासो न तु कर्तव्यो राज्ञा मित्राप्तबन्धुषु।
कार्ययोगादमित्रेऽपि विश्वसीत नराधिपः॥
स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन षाड्गुण्यविदितात्मना।
भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्तिना॥
प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता।
जेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः॥
यस्त्वेतानविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते।
सोऽजितात्मजितामात्यः शत्रुवर्गेण बाध्यते॥
(२७। ४-११)

* तात्पर्य यह कि राजा कौवेके समान आलस्यरहित और सावधान हो। जैसे कोयल अपने अण्डेका कौवोंसे पालन कराती है, वैसे ही राजा भी दूसरोंसे अपना कार्य साधन करे। वह भौंरेके समान रसग्राही और मृगके समान सदा चौकन्ना रहे। जैसे सर्प बड़ा-बड़ा फन निकालकर दूसरोंको डराता और मेढकको चुपकेसे निगल जाता है, उसी प्रकार राजा दूसरोंपर आतङ्क जमाये रहे और सहसा आक्रमण करके शत्रुको अपने अधीन कर ले। जैसे मोर अपने समेटे हुए पंखको कभी-कभी फैलाता है, उसी प्रकार राजा भी समयानुसार अपने संकुचित सैन्य और बलका विस्तार करे। वह हंसोंके समान नीर-क्षीरका विवेक करनेवाला

---

१. सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय - ये छः गुण हैं। इनमें शत्रुसे मेल रखना सन्धि, उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, आक्रमण करना यान, अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे रहना आसन, दुरंगी नीति बरतना द्वैधीभाव और अपनेसे बलवान् राजाकी शरण लेना समाश्रय कहलाता है।

* वत्स राज्येऽभिषिक्तेन प्रजारञ्जनमादितः।
कर्तव्यमविरोधेन स्वधर्मस्य महीभृता॥

बर्ताव करे। जैसे उल्लू पक्षी रातमें सोये कौओंपर चुपचाप धावा करता है, उसी प्रकार राजा शत्रुकी असावधान-दशामें ही उसपर आक्रमण करे। तथा समयानुसार चींटीकी-सी चेष्टा करे--धीरे-धीरे आवश्यक वस्तुओंका संग्रह करता रहे।*

राजाको आगकी चिनगारियों तथा सेमलके बीजसे कर्तव्यकी शिक्षा लेनी चाहिये। जैसे आगकी छोटी-सी चिनगारी बड़े-से-बड़े वनको जला डालनेकी शक्ति रखती है, उसी प्रकार छोटा-सा शत्रु भी यदि दबाया न जाय तो बहुत बड़ी हानि कर सकता है। जैसे छोटा-सा सेमलका बीज एक महान् वृक्षके रूपमें परिणत होता है, उसी प्रकार लघु शत्रु भी समय आनेपर अत्यन्त प्रबल हो जाता है। अतः दुर्बलावस्थामें ही उसे उखाड़ फेंकना चाहिये। जैसे चन्द्रमा और सूर्य अपनी किरणोंका सर्वत्र समान रूपसे प्रसार करते हैं, उसी प्रकार नीतिके लिये राजाको भी समस्त प्रजापर समान भाव रखना चाहिये। वेश्या, कमल, शरभ, शूलिका, गर्भिणी स्त्रीके स्तन तथा ग्वालेकी स्त्रीसे भी राजाको बुद्धि सीखनी चाहिये। राजा वेश्याकी भाँति सबको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करे, कमल-पुष्पके समान सबको अपनी ओर आकृष्ट करे, शरभके समान पराक्रमी बने, शूलिकाकी भाँति सहसा शत्रुका विध्वंस करे। जैसे गर्भिणीके स्तनमें भावी सन्तानके लिये दूधका संग्रह होने लगता है, उसी प्रकार राजा भविष्यके लिये सञ्चयशील बने और जिस प्रकार ग्वालेकी स्त्री दूधसे नाना प्रकारके खाद्य पदार्थ तैयार करती है, वैसे ही राजाको भी भाँति-भाँतिकी कल्पनामें पटु होना चाहिये। वह पृथ्वीका पालन करते समय इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्रमा तथा वायु—इन पाँचोंके रूप धारण करे। जैसे इन्द्र चार महीने वर्षा करके पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणियोंको तृप्त करते हैं, उसी प्रकार राजा दानके द्वारा प्रजाजनोंको सन्तुष्ट करे। जिस प्रकार सूर्य आठ महीनोंतक अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल सोखते रहते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म उपायोंसे धीरे-धीरे कर आदिका संग्रह करे। जैसे यमराज समय आनेपर प्रिय-अप्रिय सभीको मृत्युपाशमें बाँधते हैं, उसी प्रकार राजा भी प्रिय-अप्रिय तथा साधु और दुष्टके प्रति समान भावसे राजनीतिका प्रयोग करे। जैसे पूर्ण चन्द्रमा देखकर सब मनुष्य प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार जिस राजाके प्रति समस्त प्रजाको समानरूपसे सन्तोष हो, वही श्रेष्ठ एवं चन्द्रमाके व्रतका पालन करनेवाला है। जैसे वायु गुप्तरूपसे समस्त प्राणियोंके भीतर सञ्चार करती रहती है, उसी प्रकार राजा भी गुप्तचरोंके द्वारा पुरवासियों, मन्त्रियों तथा बन्धु-बान्धवोंके मनका भाव जाननेकी चेष्टा करे।*

बेटा! जिसके चित्तको दूसरे लोग लोभ, कामना अथवा अर्थसे नहीं खींच सकते, वह राजा स्वर्गलोकमें जाता है। जो अपने धर्मसे विचलित हो कुमार्गपर जानेवाले मूर्ख मनुष्योंको फिर धर्ममें लगाता है, वह राजा स्वर्गमें जाता है। वत्स! जिसके राज्यमें वर्णधर्म और आश्रमधर्मको हानि

गुणग्राही हो। मुर्गोंके समान रात रहते ही शयनसे उठकर कर्तव्यका विचार करे और लोहेकी भाँति शत्रुओंके लिये अभेद्य एवं कर्तव्य-पालनमें कठोर हो।

* तस्मात्कामादयः पूर्वं जेयाः पुत्र महीभुजा।
तज्जये हि जयोऽवश्यं राजा नश्यति तैर्जितः॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मानस्तथैव च।
हर्षश्च शत्रवो ह्येते विनाशाय महीभृताम्॥
कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डुं निपातितम्।
निवर्तयेत्तथा क्रोधादनुह्लादं हतात्मजम्॥
हतमैलं तथा लोभान्मदाद्वेनं द्विजैर्हतम्।
मानादनायुषः पुत्रं हतं हर्षात्पुरञ्जयम्॥
एभिर्जितैर्जितं सर्वं मरुत्तेन महात्मना।
स्मृत्वा विवर्जयेदेतान्दोषान् स्वीयान्महीपतिः॥
काककोकिलभृङ्गाणां मृगव्यालशिखण्डिनाम्।
हंसकुक्कुटलोहानां शिक्षेत चरितं नृपः॥
कौशिकस्य क्रियां कुर्याद् विपक्षे मनुजेश्वरः।
चेष्टां पिपीलिकानां च काले भूपः प्रदर्शयेत्॥
(२७। १२-१८)

* ज्ञेयाग्निविस्फुलिङ्गानां बीजचेष्टा च शाल्मलेः।
चन्द्रसूर्यस्वरूपेण नीत्यर्थे पृथिवीक्षिता॥
बन्धकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात्।
प्रज्ञा नृपेण चादेया तथा गोपालयोषितः॥
शक्रार्कयमसोमानां तद्वद् वायोर्महीपतिः।
रूपाणि पञ्च कुर्वीत महीपालनकर्मणि॥
यथेन्द्रश्चतुरो मासान् तोयोत्सर्गेण भूगतम्।
आप्याययेत् तथा लोकं परिहारैर्महीपतिः॥
मासानष्टौ यथा सूर्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।
सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिकं नृपः॥
यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्तकाले नियच्छति।
तथा प्रियाप्रिये राजा दुष्टादुष्टे समो भवेत्॥
पूर्णेन्दुमालोक्य यथा प्रीतिमान् जायते नरः।
एवं यत्र प्रजाः सर्वा निर्वृतास्तच्छशिव्रतम्॥
मारुतः सर्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा।
एवं नृपश्चरेच्चारैः पौरामात्यादिबन्धुषु॥
(२७। १९—२६)

नहीं पहुँचती, उसे इस लोक और परलोकमें भी सनातन सुख प्राप्त होता है। स्वयं दुष्टबुद्धि पुरुषोंद्वारा धर्मसे विचलित न होकर ऐसे लोगोंको अपने धर्ममें लगाना ही राजाका सबसे बड़ा कर्तव्य है और यही उसे सिद्धि प्रदान करनेवाला है। राजा सब प्राणियोंका पालन करनेसे ही कृतकृत्य होता है। जो यत्नपूर्वक भलीभाँति प्रजाका पालन करनेवाला है, वह प्रजाके धर्मका भागी होता है। जो राजा इस प्रकार चारों वर्णोंकी रक्षामें तत्पर रहता है, वह सर्वत्र सुखी होकर विचरता है और अन्तमें उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है।*

मदालसाके द्वारा वर्णाश्रमधर्म एवं गृहस्थके कर्तव्यका वर्णन

अलर्कने कहा—महाभागे! आपने राजनीति-सम्बन्धी धर्मका वर्णन किया। अब मैं वर्णाश्रमधर्म सुनना चाहता हूँ।

मदालसा बोली—दान, अध्ययन और यज्ञ—ये ब्राह्मणके तीन धर्म हैं तथा यज्ञ कराना, विद्या पढ़ाना और पवित्र दान लेना—यह तीन प्रकारकी उसकी आजीविका बतायी गयी है। दान, अध्ययन और यज्ञ—ये तीन क्षत्रियके भी धर्म हैं। पृथ्वीकी रक्षा तथा शस्त्र ग्रहण करके जीवननिर्वाह करना यह उसकी जीविका है। वैश्यके भी दान, अध्ययन और यज्ञ—ये तीनों ही धर्म हैं। व्यापार, पशुपालन और खेती—ये उसकी जीविका हैं। दान, यज्ञ और द्विजातियोंकी सेवा—यह तीन प्रकारका धर्म शूद्रके लिये बताया गया है। शिल्पकर्म, द्विजातियोंकी सेवा और खरीद-बिक्री—ये उसकी जीविका हैं। इस प्रकार ये वर्णधर्म बतलाये गये हैं। अब आश्रम-धर्मोंका वर्णन सुनो। यदि मनुष्य अपने वर्णधर्मसे भ्रष्ट न हो तो वह उसके द्वारा उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है और निषिद्धकर्मोंके आचरणसे वह मृत्युके पश्चात् नरकमें पड़ता है।

उपनयन-संस्कार होनेपर ब्रह्मचारी बालक गुरुके घरमें निवास करे। वहाँ उसके लिये जो धर्म बताया गया है, वह सुनो। ब्रह्मचारी वेदोंका स्वाध्याय करे, अग्निहोत्र करे, त्रिकाल स्नान करे, भिक्षाके लिये भ्रमण करे, भिक्षामें मिला हुआ अन्न गुरुको निवेदित करके उनकी आज्ञाके अनुसार ही सदा उसका उपयोग करे, गुरुके कार्यमें सदा उद्यत रहे, भलीभाँति उन्हें प्रसन्न रक्खे, गुरुके बुलानेपर एकाग्रचित्तसे तत्परतापूर्वक पढ़े, गुरुके मुखसे एक-दो या सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे और उन्हें गुरुदक्षिणा देकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। इस आश्रममें आनेका उद्देश्य होना चाहिये—गृहस्थाश्रम-सम्बन्धी धर्मोका पालन। अथवा अपनी इच्छाके अनुसार वह वानप्रस्थ या संन्यास आश्रममें प्रवेश करे अथवा वहीं गुरुके घरमें सदा निवास करते हुए ब्रह्मचर्यनिष्ठाको प्राप्त हो—नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन जाय। गुरुके न रहनेपर उनके पुत्रकी और पुत्रके न रहनेपर उनके प्रधान शिष्यकी सेवा करे। अभिमानशून्य होकर ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहे।

जब गृहस्थाश्रममें आनेकी इच्छा लेकर ब्रह्मचर्य-आश्रमसे निकले, तब अपने अनुरूप नीरोग स्त्रीसे विधिपूर्वक विवाह करे। वह स्त्री अपने समान गोत्र और प्रवरकी न हो। उसके किसी अङ्गमें न्यूनाधिकता अथवा कोई विकार न हो। गृहस्थाश्रमका ठीक-ठीक सञ्चालन करनेके लिये ही विवाह करना चाहिये। अपने पराक्रमसे धन पैदा करके देवता, पितर एवं अतिथियोंको भक्तिपूर्वक भलीभाँति तृप्त करे तथा अपने आश्रितोंका भरण-पोषण करता रहे। भृत्य, पुत्र, कुलकी स्त्रियाँ, दीन, अन्ध और पतित मनुष्योंको तथा पशु-पक्षियोंको भी यथाशक्ति अन्न देकर उनका पालन करे। गृहस्थका यह धर्म है कि वह ऋतुकालमें स्त्री-सहवास करे। अपनी

* न लोभाद्वा न कामाद्वा नार्थाद्वा यस्य मानसम्। यथान्यैः कृष्यते वत्स स राजा स्वर्गमृच्छति॥
उत्पथग्राहिणो मूढान् स्वधर्माच्चलितो नरान्। यः करोति निजे धर्मे स राजा स्वर्गमृच्छति॥
वर्णधर्मा न सीदन्ति यस्य राज्ये तथाश्रमाः। वत्स तस्य सुखं प्रेत्य परत्रेह च शाश्वतम्॥
एतद्राज्ञः परं कृत्यं तथैतत् सिद्धिकारकम्। स्वधर्मस्थापनं नृणां चाल्यते न कुबुद्धिभिः॥
पालनेनैव भूतानां कृतकृत्यो महीपतिः। सम्यक् पालयिता भागं धर्मस्याप्नोति यत्नतः॥
एवं यो वर्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे। स सुखी विहरत्येष शक्रस्यैति सलोकताम्॥ (२७। २७—३२)

शक्तिके अनुसार पाँचों यज्ञोंका अनुष्ठान न छोड़े। अपने विभवके अनुसार पितर, देवता, अतिथि एवं कुटुम्बीजनोंके भोजन करनेसे बचे हुए अन्नको ही स्वयं भृत्यजनोंके साथ बैठकर आदरपूर्वक ग्रहण करे। यह मैंने संक्षेपसे गृहस्थाश्रमके धर्मका वर्णन किया है।

अब वानप्रस्थके धर्मका वर्णन करती हूँ, ध्यान देकर सुनो। बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह अपनी सन्तानको देखकर तथा देह झुकी जा रही है, इस बातका विचार करके आत्मशुद्धिके लिये वानप्रस्थ आश्रममें जाय। वहाँ वनके फल-मूलोंका उपभोग करे और तपस्यासे शरीरको सुखाता रहे। पृथ्वीपर सोये, ब्रह्मचर्यका पालन करे, देवताओं, पितरों और अतिथियोंकी सेवामें संलग्न रहे। अग्निहोत्र, त्रिकाल स्नान तथा जटा-वल्कल धारण करे; सदा योगाभ्यासमें लगा रहे और वनवासियोंपर स्नेह रक्खे। इस प्रकार यह पापोंकी शुद्धि तथा आत्माका उपकार करनेके लिये वानप्रस्थ आश्रमका वर्णन किया है।

अब चतुर्थ आश्रमका स्वरूप बतलाती हूँ, सुनो। धर्मज्ञ महात्माओंने इस आश्रमके लिये जो धर्म बतलाया है, वह इस प्रकार है। सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग, ब्रह्मचर्यका पालन, क्रोधशून्यता, जितेन्द्रियता, एक स्थानपर अधिक दिनोंतक न रहना, किसी कर्मका आरम्भ न करना, भिक्षामें मिले हुए अन्नका एक बार भोजन करना, आत्मज्ञान होनेकी इच्छाको जगाये रखना तथा सर्वत्र आत्माका दर्शन करना। यह मैंने चतुर्थ आश्रमका धर्म बतलाया है।

अब अन्यान्य वर्णों तथा आश्रमोंके सामान्य धर्मका वर्णन सुनो। सत्य, शौच, अहिंसा, दोषदृष्टिका अभाव, क्षमा, क्रूरताका अभाव, दीनताका न होना तथा सन्तोष धारण करना—ये वर्ण और आश्रमोंके धर्म संक्षेपसे बताये गये हैं। जो पुरुष अपने वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी धर्मको छोड़कर उसके विपरीत आचरण करता है, वह राजाके लिये दण्डनीय है। जो मानव अपने धर्मका त्याग करके पापकर्ममें लग जाते हैं, उनकी उपेक्षा करनेवाले राजाके इष्ट[1] और आपूर्त[2] धर्म नष्ट हो जाते हैं।

बेटा! गृहस्थ-धर्मका आश्रय लेकर मनुष्य इस सम्पूर्ण जगत्का पोषण करता है और उससे मनोवाञ्छित लोकोंको जीत लेता है। पितर, मुनि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतङ्ग, पशु-पक्षी तथा असुर—ये सभी गृहस्थसे ही जीविका चलाते हैं। उसीके दिये हुए अन्न-पानसे तृप्ति लाभ करते हैं तथा 'क्या यह हमें भी कुछ देगा?' इस आशासे सदा उसका मुँह ताकते रहते हैं। वत्स! वेदत्रयीरूप धेनु सबकी आधारभूता है, उसीमें सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है तथा वही विश्वकी उत्पत्तिका कारण मानी गयी है। ऋग्वेद उसकी पीठ, यजुर्वेद उसका मध्यभाग तथा सामवेद उसका मुख और गर्दन है। इष्ट और आपूर्त धर्म ही उसके दो सींग हैं। अच्छी-अच्छी सूक्तियाँ ही उस धेनुके रोम हैं, शान्तिकर्म गोबर और पुष्टिकर्म उसका मूत्र है। अकार आदि वर्ण उसके अङ्गोंके आधारभूत चरण हैं। सम्पूर्ण जगत्का जीवन उसीसे चलता है। वह वेदत्रयीरूप धेनु अक्षय है, उसका कभी क्षय नहीं होता। स्वाहा (देवयज्ञ), स्वधा (पितृयज्ञ), वषट्कार (ऋषि आदिकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले यज्ञ) तथा हन्तकार (अतिथि-यज्ञ)—ये उसके चार स्तन हैं। स्वाहारूप स्तनको देवता, स्वधाको पितर, वषट्कारको मुनि तथा हन्तकाररूप स्तनको मनुष्य सदा पीते हैं। इस प्रकार यह त्रयीमयी धेनु सबको तृप्त करती है। जो मनुष्य उन देवता आदिकी वृत्तिका उच्छेद करता है, वह अत्यन्त पापाचारी है। उसे अन्धतामिस्र एवं तामिस्र नरकमें गिरना पड़ता है। जो इस धेनुको इसके देवता आदि बछड़ोंसे मिलाता है और उन्हें उचित समयपर पीनेका अवसर देता है, वह स्वर्गमें जाता है; अतः बेटा! जैसे अपने शरीरका पालन-पोषण किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यको प्रतिदिन देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य तथा अन्य भूतोंका भी पोषण करना चाहिये। इसलिये प्रातःकाल स्नान करके पवित्र हो एकाग्रचित्तसे जलद्वारा देवता, ऋषि, पितर और प्रजापतिका तर्पण करना चाहिये। मनुष्य फूल, गन्ध और धूप आदि सामग्रियोंसे देवताओंकी पूजा करके आहुतिके द्वारा अग्निको तृप्त करे। तत्पश्चात् बलि दे।

ब्रह्मा और विश्वेदेवोंके उद्देश्यसे घरके मध्यभागमें बलि (पूजोपहार) अर्पण करे। पूर्व और उत्तरके कोणमें मन्वन्तरके लिये बलि प्रस्तुत करे। पूर्व दिशामें इन्द्रको, दक्षिण दिशामें यमको, पश्चिममें वरुणको तथा उत्तरमें सोमको बलि दे। घरके दरवाजेपर धाता और विधाताके लिये बलि अर्पण करे। घरके बाहर चारों ओर अर्यमा देवताके निमित्त बलि प्रस्तुत करे। निशाचरों और भूतोंको

१. देवपूजा, अग्निहोत्र तथा यज्ञ-यागादि कर्म 'इष्ट' कहलाते हैं।

२. कुओं और बावली खुदवाना, बगीचे लगवाना तथा धर्मशाला बनवाना आदि कार्य 'आपूर्त' धर्मके अन्तर्गत हैं।

आकाशमें बलि दे। गृहस्थ पुरुष एकाग्रचित्त हो दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके तत्परतापूर्वक पितरोंके उद्देश्यसे पिण्ड दे। तदनन्तर विद्वान् पुरुष जल लेकर उन्हीं-उन्हीं स्थानोंपर उन्हीं-उन्हीं देवताओंके उद्देश्यसे आचमनके लिये जल छोड़े। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष घरमें पवित्रतापूर्वक गृह-देवताओंके उद्देश्यसे बलि देकर अन्य भूतोंकी तृप्तिके लिये आदरपूर्वक अन्नका त्याग करे। कुत्तों, चाण्डालों तथा पक्षियोंके लिये पृथ्वीपर अन्न रख दे। यह वैश्वदेव नामक कर्म है। इसे प्रातःकाल और सायंकाल आवश्यक बताया गया है।

इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष आचमन करके कुछ कालतक अतिथिकी प्रतीक्षा करते हुए घरके दरवाजेकी ओर दृष्टि रक्खे। यदि कोई अतिथि वहाँ आ जाय तो यथाशक्ति अन्न, जल, गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा उसका सत्कार करे। अपने ग्रामवासी पुरुषको या मित्रको अतिथि न बनाये। जिसके कुल और नाम आदिका ज्ञान न हो, जो उसी समय वहाँ उपस्थित हुआ हो, भोजनकी इच्छा रखता हो, थका-माँदा आया हो, अन्न माँगता हो, ऐसे अकिञ्चन ब्राह्मणको अतिथि कहते हैं। विद्वान् पुरुषोंको उचित है कि वे अपनी शक्तिके अनुसार उस अतिथिका पूजन करें। उसके गोत्र और शाखा न पूछें। उसने कहाँतक अध्ययन किया है, इसकी जिज्ञासा भी न करें। उसकी आकृति सुन्दर हो या असुन्दर, उसे साक्षात् प्रजापति समझें। वह नित्य स्थित नहीं रहता, इसीलिये उसे अतिथि कहते हैं। उसकी तृप्ति होनेपर गृहस्थ पुरुष मनुष्य-यज्ञके ऋणसे मुक्त हो जाता है। जो उस अतिथिको अन्न दिये बिना ही स्वयं भोजन करता है, वह मनुष्य पापभोजी है; वह केवल पाप भोजन करता है और दूसरे जन्ममें उसे विष्ठा खानी पड़ती है। अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौटता है, उसको अपना पाप दे स्वयं उसका पुण्य लेकर चल देता है।* अतः मनुष्यको उचित है कि वह जल और साग देकर अथवा स्वयं जो कुछ खाता है, उसीसे अपनी शक्तिके अनुसार आदरपूर्वक अतिथिका पूजन करे।

गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन पितरोंके उद्देश्यसे अन्न और जलके द्वारा श्राद्ध करे और अनेक या एक ब्राह्मणको भोजन कराये। अन्नमेंसे अग्राशन निकालकर ब्राह्मणको दे। ब्रह्मचारी और संन्यासी जब भिक्षा माँगनेके लिये आयें, तब उन्हें भिक्षा अवश्य दे। एक ग्रास अन्नको भिक्षा, चार ग्रास अन्नको अग्राशन और अग्राशनसे चौगुने अन्नको श्रेष्ठ द्विज हन्तकार कहते हैं।† भोजनमेंसे अपने वैभवके अनुसार हन्तकार, अग्राशन अथवा भिक्षा दिये बिना कदापि उसे ग्रहण न करे। अतिथियोंका पूजन करनेके बाद प्रियजनों, कुटुम्बियों, भाई-बन्धुओं, याचकों, आकुल व्यक्तियों, बालकों, बूढ़ों तथा रोगियोंको भोजन कराये। इनके अतिरिक्त यदि कोई दूसरा अकिञ्चन मनुष्य भी भूखसे व्याकुल होकर अन्नकी याचना करता हो तो गृहस्थ पुरुष वैभव होनेपर उसे अवश्य भोजन कराये। जो सजातीय बन्धु अपने किसी धनी सजातीयके पास जाकर भी भोजनका कष्ट पाता है, वह उस कष्टकी अवस्थामें जो पाप कर बैठता है, उसे वह धनी मनुष्य भी भोगता है। सायंकालमें भी इसी नियमका पालन करे। सूर्यास्त होनेपर जो अतिथि वहाँ आ जाय, उसकी यथाशक्ति शय्या, आसन और भोजनके द्वारा पूजा करे। बेटा! जो इस प्रकार अपने कंधोंपर रक्खा हुआ गृहस्थाश्रमका भार ढोता है, उसके लिये स्वयं ब्रह्माजी, देवता, पितर, महर्षि, अतिथि, बन्धु-बान्धव, पशु-पक्षी तथा छोटे-छोटे कीड़े भी, जो उसके अन्नसे तृप्त हुए रहते हैं, कल्याणकी वर्षा करते हैं।

श्राद्ध-कर्मका वर्णन

मदालसा बोली-बेटा! गृहस्थके कर्म तीन प्रकारके हैं—नित्य, नैमित्तिक तथा नित्यनैमित्तिक। इनका वर्णन सुनो। पञ्चयज्ञसम्बन्धी कर्म, जिसका अभी वर्णन किया है, नित्य कहलाता है। पुत्र-जन्म आदिके उपलक्षमें किये हुए कर्मको नैमित्तिक कहते हैं। पर्वके अवसरपर जो श्राद्ध आदि किये जाते हैं, उन्हें विद्वान् पुरुषोंको नित्यनैमित्तिक कर्म समझना चाहिये। उनमेंसे नैमित्तिक कर्मका वर्णन करती हूँ। आभ्युदयिक श्राद्ध नैमित्तिक कर्म है, जिसे

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥ (२९।३१)

† ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम्। अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः॥ (२९।३५)

पुत्र-जन्मके अवसरपर जातकर्म-संस्कारके साथ करना चाहिये। विवाह आदिमें भी, जिस क्रमसे वह बताया गया है, भली-भाँति उसका अनुष्ठान करना उचित है। नान्दीमुख नामके जो पितर हैं, उन्हींका इसमें पूजन करना चाहिये और उन्हें दधिमिश्रित जौके पिण्ड देने चाहिये। उस समय यजमानको एकाग्रचित्त होकर उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह करके बैठना चाहिये। कुछ लोगोंका मत है कि इसमें बलिवैश्वदेव कर्म नहीं होता। आभ्युदयिक श्राद्धमें युग्म ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना और प्रदक्षिणापूर्वक उनका पूजन करना उचित है। यह वृद्धिके अवसरोंपर किया जानेवाला नैमित्तिक श्राद्ध है। इससे भिन्न और्ध्वदैहिक श्राद्ध है, जो मृत्युके पश्चात् किया जाता है।

मृत व्यक्ति जिस दिन मरा हो, उस तिथिको एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये; उसका वर्णन सुनो। उसमें विश्वेदेवोंकी पूजा नहीं होती। एक ही पवित्रकका उपयोग किया जाता है। आवाहन तथा अग्निकरणकी क्रिया भी नहीं होती। ब्राह्मणके उच्छिष्टके समीप प्रेतको तिल और जलके साथ अपसव्य होकर (जनेऊको दहिने कंधेपर डालकर) उसके नाम-गोत्रका स्मरण करते हुए एक पिण्ड देना चाहिये। तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर कहे—'अमुकके श्राद्धमें दिया हुआ अन्न-पान आदि अक्षय हो।' यह कहकर वह जल पिण्डपर छोड़ दे; फिर ब्राह्मणोंका विसर्जन करते समय कहे—'अभिरम्यताम्' (आपलोग सब तरहसे प्रसन्न हों)। उस समय ब्राह्मणलोग यह कहें—'अभिरताः स्मः' (हम भलीभाँति सन्तुष्ट हैं)। यह एकोद्दिष्ट श्राद्ध एक वर्षतक प्रतिमास करना उचित है। वर्ष पूरा होनेपर जब भी श्राद्ध किया जाय, पहले सपिण्डीकरण करना आवश्यक होता है। उसकी भी विधि बतलायी जाती है—यह सपिण्डीकरण भी विश्वेदेवोंकी पूजासे रहित होता है। इसमें भी एक ही अर्घ्य और एक ही पवित्रकका विधान है। अग्निकरण और आवाहनकी क्रिया इसमें भी नहीं होती। इसमें अपसव्य होकर अयुग्म ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इसमें जो विशेष क्रिया है, उसे बतलाती हूँ, एकाग्र चित्तसे सुनो। इसमें तिल, चन्दन और जलसे युक्त चार पात्र होते हैं; उनमेंसे तीन तो पितरोंके लिये और एक प्रेतके लिये होता है। प्रेतके पात्र और अर्घ्यको लेकर 'ये समानाः सुमनसः पितरो यमराज्ये' इत्यादि मन्त्रका जप करते हुए पितरोंके तीनों पात्रोंमें सींचना चाहिये। शेष कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये भी ऐसे ही एकोद्दिष्टका विधान है। यदि पुत्र न हो तो स्त्रियोंका सपिण्डीकरण नहीं होता। पुरुषोंको उचित है कि वे स्त्रियोंके लिये भी प्रतिवर्ष उनकी मृत्युतिथिको विधिपूर्वक एकोद्दिष्ट श्राद्ध करें। उनके लिये भी पुरुषोंके समान ही विधान है। पुत्रके अभावमें सपिण्ड, सपिण्डके अभावमें सहोदक, उनके भी अभावमें माताके सपिण्ड[1] और सहोदक[2] इस विधिको पूर्ण करें। जिसके कोई पुत्र नहीं है, उसका श्राद्ध उसके दौहित्र कर सकते हैं। पुत्रीके पुत्र नानाका नैमित्तिक श्राद्ध करनेके भी अधिकारी हैं। जिनकी द्व्यामुष्यायण[3] संज्ञा है, ऐसे पुत्र नाना और बाबा दोनोंका नैमित्तिक श्राद्धोंमें भी विधिपूर्वक पूजन कर सकते हैं। कोई भी न हो तो स्त्रियाँ ही अपने पतियोंका मन्त्रोच्चारण किये बिना श्राद्ध कर सकती हैं। वे भी न हों तो राजा अपने कुटुम्बी मनुष्यसे अथवा मृतकके सजातीय मनुष्योंद्वारा दाह आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ पूर्ण करावें; क्योंकि राजा सब वर्णोंका बन्धु होता है।

सपिण्डीकरणके पश्चात् पिताके प्रपितामह लेपभागभोजी पितरोंकी श्रेणीमें चले जाते हैं। उन्हें पितृ-पिण्ड पानेका अधिकार नहीं रहता। उनसे आरम्भ करके चार पीढ़ी ऊपरके पितर, जो अबतक पुत्रके लेपभागका अन्न ग्रहण करते थे, उसके सम्बन्धसे रहित हो जाते हैं। अब उनको लेपभागका अन्न पानेका भी अधिकार नहीं रहता। वे सम्बन्धहीन अन्नका उपभोग करते हैं। पिता, पितामह और प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंको पिण्डके अधिकारी समझना चाहिये। इनसे अर्थात् पिताके पितामहसे ऊपर जो तीन पीढ़ीके पुरुष हैं, वे लेपभागके अधिकारी हैं। इस प्रकार छः ये और सातवाँ यजमान, सब मिलाकर सात पुरुषोंका घनिष्ठ

---

१. पितासे लेकर ऊपरकी सात पीढ़ीतक और मातासे लेकर नाना आदि पाँच पीढ़ीतक सपिण्डता मानी जाती है। किसीके मतमें छः पीढ़ी ऊपर और छः पीढ़ी नीचे तकके लोग सपिण्डकी गणनामें आते हैं।

२. जिनकी ग्यारहवींसे लेकर चौदहवींतक ऊपरकी पीढ़ी एक हो, वे सहोदक या समानोदक कहलाते हैं।

३. वह पुत्र, जो एकसे तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरेके द्वारा दत्तकके रूपमें ग्रहण किया गया हो और दोनों पिता उसको अपना-अपना पुत्र मानते हों, द्व्यामुष्यायण (दोनोंका) कहलाता है। ऐसा पुत्र दोनोंको पिण्डदान देता है और दोनोंकी सम्पत्तिका अधिकारी होता है।

सम्बन्ध होता है—ऐसा मुनियोंका कथन है। यह सम्बन्ध यजमानसे लेकर ऊपरके लेपभागभोजी पितरोंतक माना जाता है। इनसे ऊपरके सभी पितर पूर्वज कहलाते हैं। इनमेंसे जो नरकमें निवास करते हैं, जो पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हैं तथा जो भूत-प्रेत आदिके रूपमें स्थित हैं, उन सबको विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला यजमान तृप्त करता है। किस प्रकार तृप्त करता है, यह बतलाती हूँ; सुनो। मनुष्य पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाचयोनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। बेटा! स्नानके वस्त्रसे जो जल पृथ्वीपर टपकता है, उससे वृक्षयोनिमें पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। नहानेपर अपने शरीरसे जो जलके कण इस पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे उन पितरोंकी तृप्ति होती है, जो देवभावको प्राप्त हुए हैं। पिण्डोंके उठानेपर जो अन्नके कण पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। कुलमें जो बालक श्राद्ध-कर्मके योग्य होकर भी संस्कारसे वञ्चित रह गये हैं अथवा जलकर मरे हैं, वे बिखेरे हुए अन्न और सम्मार्जनके जलको ग्रहण करते हैं। ब्राह्मणलोग भोजन करके जब हाथ-मुँह धोते हैं और चरणोंका प्रक्षालन करते हैं, उस जलसे भी अन्यान्य पितरोंकी तृप्ति होती है। बेटा! उत्तम विधिसे श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंके अन्य पितर यदि दूसरी-दूसरी योनियोंमें चले गये हों तो भी उस श्राद्धसे उन्हें बड़ी तृप्ति होती है। अन्यायोपार्जित धनसे जो श्राद्ध किया जाता है, उससे चाण्डाल आदि योनियोंमें पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। वत्स! इस प्रकार यहाँ श्राद्ध करनेवाले भाई-बन्धु अन्न और जलके कणमात्रसे अनेक पितरोंको तृप्त करते हैं। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह पितरोंके प्रति भक्ति रखते हुए शाकमात्रके द्वारा भी विधिपूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्ध करनेवाले पुरुषके कुलमें कोई दुःख नहीं भोगता।

अब मैं नित्य-नैमित्तिक श्राद्धोंके काल बतलाती हूँ और मनुष्य जिस विधिसे श्राद्ध करते हैं, उसका भी वर्णन करती हूँ; सुनो। प्रत्येक मासकी अमावस्याको जिस दिन चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कलाएँ क्षीण हो गयी हों तथा अष्टका[१] तिथियोंको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। अब श्राद्धका इच्छा-प्राप्त काल सुनो। किसी विशिष्ट ब्राह्मणके आनेपर, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें, अयन आरम्भ होनेपर, विषुव[२]योगमें, सूर्यकी संक्रान्तिके दिन, व्यतीपात योगमें, श्राद्धके योग्य सामग्रीकी प्राप्ति होनेपर, दुःस्वप्न दिखायी देनेपर, जन्मनक्षत्रके दिन एवं ग्रहजनित पीड़ा होनेपर स्वेच्छासे श्राद्धका अनुष्ठान करे।

श्रेष्ठ ब्राह्मण, श्रोत्रिय, योगी, वेदज्ञ, ज्येष्ठ सामग, त्रिणाचिकेत[१], त्रिमधु[२], त्रिसुपर्णि[३], षडङ्गवेत्ता, दौहित्र, ऋत्विक, जामाता, भानजा, पञ्चाग्नि-कर्ममें तत्पर, तपस्वी मामा, माता-पिताके भक्त, शिष्य, सम्बन्धी एवं भाई-बन्धु—ये सभी श्राद्धमें उत्तम माने गये हैं। इन्हें निमन्त्रित करना चाहिये। धर्मभ्रष्ट, रोगी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, दो बार ब्याही गयी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न, काना, पतिके जीते-जी जार पुरुषसे पैदा की हुई सन्तान, पतिके मरनेपर परपुरुषसे उत्पन्न हुई सन्तान, मित्रद्रोही, खराब नखोंवाला, नपुंसक, काले दाँतोंवाला, कुरूप, पिताके द्वारा कलङ्कित, चुगलखोर, सोमरस बेचनेवाला, कन्याको दूषित करनेवाला, वैद्य, गुरु एवं माता-पिताका त्याग करनेवाला, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, शत्रु, जो पहले-दूसरे पुरुषकी पत्नी रह चुकी हो, ऐसी स्त्रीका पति, वेदाध्ययन तथा अग्निहोत्रका त्याग करनेवाला, शूद्र-जातीय स्त्रीके पति होनेके दोषसे दूषित तथा शास्त्रविरुद्ध कर्ममें लगे रहनेवाले अन्यान्य द्विज श्राद्धमें त्याग देने योग्य हैं।

पहले बताये हुए श्रेष्ठ द्विजोंको देवयज्ञ अथवा श्राद्धमें एक दिन पहले ही निमन्त्रण देना चाहिये। उसी समयसे ब्राह्मणों तथा श्राद्धकर्ताको भी संयमसे रहना चाहिये। जो श्राद्धमें दान देकर अथवा श्राद्धमें भोजन करके मैथुन करता है, उसके रज-वीर्यमें एक मासतक पितरोंको शयन करना पड़ता है। जो स्त्री-सहवास करके श्राद्धमें जाता और खाता है, उसके पितर उसीके वीर्य और मूत्रका एक मासतक आहार करते हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको एक दिन पहले ही ब्राह्मणोंके पास निमन्त्रण भेजना चाहिये। यदि पहले दिन ब्राह्मण न मिल सकें तो भी श्राद्धके दिन स्त्री-प्रसंगी ब्राह्मणोंको कदापि भोजन न कराये। बल्कि समयपर भिक्षाके लिये स्वतः पधारे हुए संयमी यतियोंको नमस्कार आदिसे प्रसन्न करके शुद्ध चित्तसे

१. पौष, माघ, फाल्गुन तथा चैत्रके कृष्णपक्षकी अष्टमियोंको अष्टका कहते हैं।

२. जिस समय सूर्य विषुव रेखापर पहुँचते और दिन-रात बराबर होते हैं, उसे 'विषुव' कहते हैं।

१. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन त्रिणाचिकेत नामक अनुवाकोंको पढ़ने या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

२. 'मधुवाताः' इत्यादि ऋचाका अध्ययन और मधुव्रतका आचरण करनेवाला।

३. 'ब्रह्म मेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

भोजन कराये । जैसे शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष पितरोंको विशेष प्रिय है, वैसे ही पूर्वाह्णकी अपेक्षा अपराह्ण उन्हें अधिक प्रिय है । घरपर आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करके उन्हें पवित्रयुक्त हाथसे आचमन करानेके बाद आसनोंपर बिठावे । श्राद्धमें विषम और देवयज्ञमें सम संख्याके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार दोनों कार्योंमें एक-ही-एक ब्राह्मणको भोजन कराये । यही बात मातामहोंके श्राद्धमें भी होनी चाहिये । विश्वेदेवोंका श्राद्ध भी ऐसा ही है । कुछ लोगोंका ऐसा मत है कि पितरों और मातामहोंके विश्वेदेव-कर्म पृथक्-पृथक् हैं । देव-श्राद्धमें ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख और पितृ-श्राद्धमें उत्तराभिमुख बिठाना चाहिये । मातामहोंके श्राद्धमें भी मनीषी पुरुषोंने इसी विधिका प्रतिपादन किया है । पहले ब्राह्मणोंको बैठनेके लिये कुश देकर विद्वान् पुरुष अर्घ्य आदिसे उनकी पूजा करे । फिर उन्हें पवित्रक आदि दे उनसे आज्ञा लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक देवताओंका आवाहन करे । तत्पश्चात् जौ और जल आदिसे विश्वेदेवोंको अर्घ्य देकर गन्ध, पुष्प, माला, जल, धूप और दीप आदि विधिपूर्वक निवेदन करे ।

पितरोंके लिये ये सारी वस्तुएँ अपसव्य होकर प्रस्तुत करनी चाहिये । पितृ-श्राद्धमें बैठे हुए ब्राह्मणोंको आसनके लिये द्विगुणभुग्न (दोहरे मुड़े हुए) कुश देकर उनकी आज्ञा ले विद्वान् पुरुष मन्त्रोच्चारणपूर्वक पितरोंका आवाहन करे और अपसव्य होकर पितरोंकी प्रसन्नताके लिये तत्पर हो उन्हें अर्घ्य निवेदन करे । उसमें जौके स्थानपर तिलोंका उपयोग करना चाहिये । तदनन्तर ब्राह्मणोंके आज्ञा देनेपर अग्नि-कार्य करे । नमक और व्यञ्जनसे रहित अन्न लेकर विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दे । 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इस मन्त्रसे पहली आहुति दे, 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इस मन्त्रसे दूसरी आहुति दे तथा 'यमाय प्रेतपतये स्वाहा' इस मन्त्रसे तीसरी आहुतिको अग्निमें डाले । आहुतिसे बचे हुए अन्नको ब्राह्मणोंके पात्रमें परोसे । फिर पात्रमें हाथका सहारा दे विधिपूर्वक कुछ और अन्न डाले एवं कोमल वचनोंमें प्रार्थना करे कि अब आपलोग सुखसे भोजन कीजिये । फिर उन ब्राह्मणोंको चाहिये कि वे एकाग्रचित्त एवं मौन होकर सुखपूर्वक भोजन करें । जो-जो अन्न उन्हें अत्यन्त प्रिय लगे, वह-वह तुरंत उनके सामने प्रस्तुत करे । उस समय क्रोधको त्याग दे और ब्राह्मणोंको आग्रहपूर्वक प्रलोभन दे-दे भोजन कराये । उनके भोजनकालमें रक्षाके लिये पृथ्वीपर तिल और सरसों बिखेरे तथा रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ करे; क्योंकि श्राद्धमें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित होते हैं । जब ब्राह्मणलोग पूर्ण भोजन कर लें तो पूछे—'क्या आपलोग भलीभाँति तृप्त हो गये ?' इसके उत्तरमें ब्राह्मण कहें—'हाँ, हम पूर्ण तृप्त हो गये ।' फिर उनकी आज्ञा लेकर पृथ्वीपर सब ओर कुछ अन्न बिखेरे । इसी प्रकार आचमन करनेके लिये एक-एक ब्राह्मणको बारी-बारीसे जल दे । तत्पश्चात् फिर उनकी आज्ञा ले मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर तिलसहित सम्पूर्ण अन्नसे पितरोंके लिये पृथक्-पृथक् पिण्ड दे । यह पिण्डदान ब्राह्मणोंके उच्छिष्टके समीप ही कुशोंपर करना चाहिये; फिर पितृतीर्थ[1]से उन पिण्डोंपर एकाग्रचित्तसे जल दे । इसी प्रकार मातामह आदिके लिये भी विधिपूर्वक पिण्डदान देकर गन्ध-माला आदिके साथ आचमनके लिये जल दे । अन्तमें यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंसे कहे—'सुस्वधा अस्तु' (यह श्राद्धकर्म भलीभाँति सम्पन्न हो) । ब्राह्मण भी सन्तुष्ट होकर 'तथास्तु' कहें । फिर विश्वेदेव-सम्बन्धी ब्राह्मणोंसे कहे—'हे विश्वेदेवगण ! आपका कल्याण हो । आपलोग प्रसन्न रहें ।' तब ब्राह्मणलोग 'तथास्तु' कहें । इसके बाद उनसे आशीर्वादकी याचना करे और प्रिय वचन कहते हुए भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उन्हें विदा दे । दरवाजेतक उन्हें पहुँचानेके लिये पीछे-पीछे जाय और उनकी आज्ञा लेकर लौटे ।

तदनन्तर नित्यक्रिया करे और अतिथियोंको भोजन कराये । किन्हीं-किन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंका विचार है कि यह नित्यकर्म भी पितरोंके ही उद्देश्यसे होता है । दूसरे लोग ऐसा कहते हैं कि इससे पितरोंका कोई सम्बन्ध नहीं है । शेष कार्य पूर्ववत् करे । किन्हीं-किन्हींका मत है कि पितरोंके लिये पृथक् पाक बनाकर श्राद्ध करना चाहिये । कुछ लोगोंका विचार है—ऐसा नहीं करना चाहिये ।

इसके बाद यजमान अपने भृत्य आदिके साथ अवशिष्ट अन्न भोजन करे । धर्मज्ञ पुरुषको इसी प्रकार एकाग्रचित्त होकर पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये और जिस प्रकार ब्राह्मणोंको सन्तोष हो, वैसी चेष्टा करनी चाहिये । श्राद्धमें दौहित्र (पुत्रीका पुत्र), कुतप (दिनके पंद्रह भागोंमेंसे आठवाँ भाग) और तिल—ये तीन अत्यन्त पवित्र माने गये हैं । श्राद्धमें आये ब्राह्मणोंको तीन बातें छोड़ देनी चाहिये—

१. अंगूठा और तर्जनीके बीचका भाग ।

क्रोध, मार्गका चलना और उतावली।* बेटा! श्राद्धमें चाँदीका पात्र बहुत उत्तम माना गया है। उसमें चाँदीका दर्शन या दान अवश्य करना चाहिये। सुना जाता है, पितरोंने चाँदीके पात्रमें ही गोरूपधारिणी पृथ्वीसे स्वधाका दोहन किया था। अतः पितरोंको चाँदीका दान अभीष्ट एवं प्रसन्नता बढ़ानेवाला है।

श्राद्धमें विहित और निषिद्ध वस्तुका वर्णन तथा गृहस्थोचित सदाचारका निरूपण

मदालसा कहती है—बेटा! भक्तिपूर्वक लायी हुई कौन वस्तु पितरोंको प्रिय है और कौन वस्तु अप्रिय, इस बातका वर्णन करती हूँ; सुनो। हविष्यान्नसे पितरोंको एक मासतक तृप्ति बनी रहती है। गायका दूध अथवा उसमें बनी हुई खीर उन्हें एक वर्षतक तृप्त रखती है। जिस कन्याका विवाह गौरी अवस्थामें हुआ है, उससे उत्पन्न पुत्र और गयाके श्राद्धसे पितर अनन्तकालतक तृप्त रहते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अन्नोंमें श्यामाक (सावाँ), राजश्यामाक, प्रशातिका, नीवार और पौष्कल—ये पितरोंको तृप्त करनेवाले हैं। जौ, धान, गेहूँ, तिल, मूँग, सरसों, कँगनी, कोदो और मटर—ये बहुत ही उत्तम हैं। मकई, काला उड़द, विप्रुषी और मसूर—ये श्राद्धकर्ममें निन्दित माने गये हैं। लहसुन, गाजर, प्याज, मूली, सत्तू, रस और वर्णसे हीन अन्यान्य वस्तुएँ, गान्धारिक, लौकी, खारा नमक, लाल गोंद, भोजनके साथ पृथक् नमक—ये श्राद्धमें वर्जित हैं। इसी प्रकार जिसकी वाणीसे कभी प्रशंसा नहीं की जाती, वह वस्तु श्राद्धमें निषिद्ध है। सूदमें मिला हुआ, पतित मनुष्योंके यहाँसे आया हुआ, अन्यायसे तथा कन्याको बेचनेसे प्राप्त किया हुआ धन श्राद्धके लिये अत्यन्त निन्दित है। दुर्गन्धित, फेनयुक्त, थोड़े जलवाले सरोवरसे लाया हुआ, जहाँ गायकी प्यास न बुझ सके—ऐसे स्थानसे प्राप्त किया हुआ, रातका भरा हुआ, सब लोगोंका छोड़ा हुआ, अपेय तथा पौंसलेका जल श्राद्धमें सदा ही वर्जित है। मृगी, भेड़, ऊँटनी, घोड़ी आदि, भैंस और चँवरी गायका दूध श्राद्धमें निषिद्ध है। हालकी ब्यायी हुई गौका भी दस दिनके भीतरका दूध वर्जित है। 'मुझे श्राद्धके लिये दूध दो' यों कहकर लाया हुआ दूध भी श्राद्धकर्ममें ग्रहण करनेयोग्य नहीं है।

जहाँ बहुत-से जन्तु रहते हों, जो रूखी और आगसे जली हुई हो, जहाँ अनिष्ट एवं दुष्ट शब्द सुनायी पड़ते हों, जो भयानक दुर्गन्धसे भरी हो—ऐसी भूमि श्राद्धकर्ममें वर्जित है। कुलका अपमान तथा हिंसा करनेवाले, कुलाधम, ब्रह्महत्यारा, रोगी, चाण्डाल, नग्न और पातकी—ये अपनी दृष्टिसे श्राद्धकर्मको दूषित कर देते हैं। नपुंसक, जातिबहिष्कृत, मुर्गा, ग्रामीण सूअर, कुत्ता और राक्षस भी अपनी दृष्टिसे श्राद्धको नष्ट कर देते हैं। इसलिये चारों ओरसे ओट करके श्राद्ध करे। पृथ्वीपर तिल बिखेरे। ऐसा करनेसे श्राद्धमें रक्षा होती है। श्राद्धकी जिस वस्तुको मरणाशौच या जननाशौचसे युक्त मनुष्य छू दे, बहुत दिनोंका रोगी, पतित एवं मलिन पुरुष स्पर्श कर ले, वह पितरोंकी पुष्टि नहीं करती। इसलिये श्राद्धमें ऐसी वस्तुका त्याग करना चाहिये। रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि श्राद्धमें वर्जित है। संन्यासी और जुआरियोंका आना-जाना भी रोकना चाहिये। जिसमें बाल और कीड़े पड़ गये हों, जिसे कुत्तोंने देख लिया हो, जो बासी एवं दुर्गन्धित हो—ऐसी वस्तुका श्राद्धमें उपयोग न करे। बैंगन और शराबका भी त्याग करे। जिस अन्नपर पहने हुए वस्त्रकी हवा लग जाय, वह भी श्राद्धमें वर्जित है।

पितरोंको उनके नाम और गोत्रका उच्चारण करके पूर्ण श्रद्धाके साथ जो कुछ दिया जाता है, वह वे जैसा आहार करते होते हैं, उसी रूपमें उन्हें प्राप्त होता है। इसलिये पितरोंकी तृप्ति चाहनेवाले श्रद्धालु पुरुषको उचित है कि जो वस्तु उत्तम हो, वही श्राद्धमें सुपात्र ब्राह्मणको दान करे। विद्वान् पुरुष योगी पुरुषोंको सदा ही श्राद्धमें भोजन करावे; क्योंकि पितरोंका आधार योग ही है। इसलिये योगियोंका सर्वदा पूजन करे। हजार ब्राह्मणोंकी अपेक्षा यदि एक ही योगीको पहले भोजन करा दिया जाय तो वह पानीसे नौकाकी भाँति यजमान और श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंका भवसागरसे उद्धार कर देता है। इस विषयमें ब्रह्मवादी पुरुष उस पितृगाथाका गान किया करते हैं, जिसे पूर्वकालमें राजा पुरूरवाके पितरोंने गाया था। 'हमारी वंशपरम्परामें किसीको ऐसा श्रेष्ठ पुत्र

* त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतपस्तिलाः। वर्ज्यानि चाहुर्विप्रेन्द्रैः कोपोऽध्वगमनं त्वरा॥ (३१।६४)

कन्न उत्पन्न होगा, जो योगियोंको भोजन करानेसे बचे हुए अन्नको लेकर पृथ्वीपर हमारे लिये पिण्ड देगा। अथवा गयामें जाकर उत्तम हविष्यका पिण्ड, सामयिक शाक एवं तिल मिली हुई खिचड़ी देगा। ये वस्तुएँ हमें एक मासतक तृप्त रखनेवाली हैं। त्रयोदशी तिथि और मघा नक्षत्रमे विधिपूर्वक श्राद्ध करे तथा दक्षिणायनमें मधु और घीसे मिली हुई खीर दे।'

इसलिये पुत्र! सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति तथा पापसे मुक्ति चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह भक्तिपूर्वक पितरोंकी पूजा करे। श्राद्धमें तृप्त किये हुए पितर मनुष्योंपर वसु, रुद्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह और तारोंकी प्रसन्नताका संपादन करते हैं। श्राद्धमें तृप्त पितर आयु, प्रज्ञा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं।

बेटा! इस प्रकार गृहस्थ पुरुषको हव्यसे देवताओंका, श्राद्धसे पितरोंका और अन्नसे अतिथियों एवं भाई-बन्धुओंका पूजन करना चाहिये। इनके सिवा भूत, प्रेत, समस्त भृत्यगण, पशु-पक्षी, चींटी, वृक्ष तथा अन्यान्य याचकोंकी तृप्ति भी सदाचारी गृहस्थ पुरुषको करनी चाहिये। जो नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंका उल्लङ्घन करके पूजन करता है, वह पाप भोगता है।

अलर्क बोले—माताजी! आपने पुरुषके नित्य, नैमित्तिक तथा नित्य-नैमित्तिक—ये तीन प्रकारके कर्म बतलाये। अब मैं आपके मुँहसे सदाचारका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जिसका पालन करनेवाला मनुष्य इस लोक और परलोकमें भी सुख पाता है।

मदालसाने कहा—बेटा! गृहस्थ पुरुषको सदा ही सदाचारका पालन करना चाहिये। आचारहीन मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है, न परलोकमें। जो सदाचारका उल्लङ्घन करके मनमाना बर्ताव करता है, उस पुरुषका कल्याण यज्ञ, दान और तपस्यासे भी नहीं होता। दुराचारी पुरुषको इस लोकमें बड़ी आयु नहीं मिलती। अतः सदाचारके पालनका सदा ही यत्न करे। सदाचार बुरे लक्षणोंका नाश करता है। वत्स! अब मैं सदाचारका स्वरूप बतलाती हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो और उसका पालन करो। गृहस्थको धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके साधनका यत्न करना चाहिये। उनके सिद्ध होनेपर उसे इस लोक और परलोकमें भी सिद्धि प्राप्त होती है। मनको वशमें करके अपनी आयका एक चौथाई भाग पारलौकिक लाभके लिये संगृहीत करे। आधे भागसे नित्य-नैमित्तिक कार्योंका निर्वाह करते हुए अपना भरण-पोषण करे तथा एक चौथाई भाग अपने लिये मूल पूँजीके रूपमें रखकर उसे बढ़ावे। बेटा! ऐसा करनेसे धन सफल होता है। इसी प्रकार पापकी निवृत्ति तथा पारलौकिक उन्नतिके लिये विद्वान् पुरुष धर्मका अनुष्ठान करे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठे। उठकर धर्म और अर्थका चिन्तन करे। अर्थके कारण जो शरीरको कष्ट उठाना पड़ता है, उसका भी विचार करे। फिर वेदके तात्त्विक अर्थ—परब्रह्म परमात्माका स्मरण करे। इसके बाद शयनसे उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो, स्नान आदिसे पवित्र होकर मनको संयममें रखते हुए पूर्वाभिमुख बैठे और आचमन करके सन्ध्योपासन करे। प्रातःकालकी सन्ध्या उस समय आरम्भ करे, जब तारे दिखायी देते हों। इसी प्रकार सायंकालकी सन्ध्योपासना सूर्यास्तसे पहले ही विधिपूर्वक आरम्भ करे। आपत्तिकालके सिवा और किसी समय उसका त्याग न करे।* बुरी-बुरी बातें बकना, झूठ बोलना, कठोर वचन मुँहसे निकालना, असत् शास्त्र पढ़ना, नास्तिकवादको अपनाना तथा दुष्ट पुरुषोंकी सेवा करना छोड़ दे। मनको वशमें रखते हुए प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल हवन करे। उदय और अस्तके समय सूर्य-मण्डलका दर्शन न करे। बाल सँवारना, आईना देखना, दाँतन और देवताओंका तर्पण करना—यह सब कार्य पूर्वाह्णकालमें ही करना चाहिये।

ग्राम, निवासस्थान, तीर्थ और क्षेत्रोंके मार्गमें, जोते हुए खेतमें तथा गोशालामें मल-मूत्र न करे। परायी स्त्रीको नंगी अवस्थामें न देखे। अपनी विष्ठापर दृष्टिपात न करे। रजस्वला स्त्रीका दर्शन, स्पर्श तथा उसके साथ भाषण भी वर्जित है। पानीमें मल-मूत्रका त्याग अथवा मैथुन न करे। बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र, केश, राख, खोपड़ी, भूसी, कोयले, हड्डियोंके चूर्ण, रस्सी, वस्त्र आदिपर तथा केवल पृथ्वीपर और मार्गमें कभी न बैठे। गृहस्थ मनुष्य अपने वैभवके अनुसार देवता, पितर, मनुष्य तथा अन्यान्य प्राणियोंका पूजन करके पीछे भोजन करे। भलीभाँति आचमन करके हाथ-पैर धोकर पवित्र हो पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके भोजनके लिये आसनपर बैठे और हाथोंको घुटनोंके भीतर करके मौनभावसे भोजन करे। भोजनके समय मनको अन्यत्र न ले जाय। यदि अन्न किसी प्रकारकी हानि करनेवाला हो तो उस हानिको ही बतावे,

---

* पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि॥
(३४।१८)

उसके सिवा अन्नके और किसी दोषकी चर्चा न करे। भोजनके साथ पृथक् नमक लेकर न खाय। अधिक गर्म अन्न खाना भी ठीक नहीं है। मनुष्यको चाहिये कि खड़े होकर या चलते-चलते मल-मूत्रका त्याग, आचमन तथा कुछ भी भक्षण न करे। जूठे मुँह वार्तालाप न करे तथा उस अवस्थामें स्वाध्याय भी वर्जित है। जूठे हाथसे गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा अपने मस्तकका भी स्पर्श न करे। जूठी अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी ओर जान-बूझकर न देखे। दूसरेके आसन, शय्या और बर्तनका भी स्पर्श न करे।

गुरुजनोंके आनेपर उन्हें बैठनेको आसन दे, उठकर प्रणामपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार करे। उनके अनुकूल बातचीत करे। जाते समय उनके पीछे-पीछे जाय, कोई प्रतिकूल बात न करे। एक वस्त्र धारण करके भोजन तथा देवपूजन न करे। बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंसे बोझ न ढुलाये और आगमें मूत्र-त्याग न करे। नग्न होकर कभी स्नान अथवा शयन न करे। दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये। बिना कारण बारंबार सिरके ऊपरसे स्नान न करे। सिरसे स्नान कर लेनेपर किसी भी अङ्गमें तेल न लगाये। सब अनध्यायोंके दिन स्वाध्याय बंद रक्खे। ब्राह्मण, अग्नि, गौ तथा सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब न करे। दिनमें उत्तरकी ओर और रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे। जहाँ ऐसा करनेमें कोई बाधा हो, वहाँ इच्छानुसार करे। गुरुके दुष्कर्मकी चर्चा न करे। यदि वे क्रुद्ध हों तो उन्हें विनयपूर्वक प्रसन्न करे। दूसरे लोग भी यदि गुरुकी निन्दा करते हों तो उसे न सुने। ब्राह्मण, राजा, दुःखसे आतुर मनुष्य, विद्यावृद्ध पुरुष, गर्भिणी स्त्री, बोझसे व्याकुल मनुष्य, गूँगा, अन्धा, बहरा, मत्त, उन्मत्त, व्यभिचारिणी स्त्री, शत्रु, बालक और पतित—ये यदि सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे हटकर इनको जानेके लिये मार्ग देना चाहिये। विद्वान् पुरुष देवालय, चैत्यवृक्ष, चौराहा, विद्यावृद्ध पुरुष, गुरु और देवता—इनको दाहिने करके चले। दूसरोंके धारण किये हुए जूते और वस्त्र स्वयं न पहने। दूसरोंके उपयोगमें आये हुए यज्ञोपवीत, आभूषण और कमण्डलुका भी त्याग करे। चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा तथा पर्वके दिन तैलाभ्यङ्ग एवं स्त्री-सहवास न करे। बुद्धिमान् मनुष्य कभी पैर और जङ्घा फैलाकर न खड़ा हो। पैरोंको न हिलाये तथा पैरको पैरसे न दबाये। किसीको चुभती बात न कहे। निन्दा और चुगली छोड़ दे। दम्भ, अभिमान और तीखा व्यवहार कदापि न करे। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, मायावी, हीनाङ्ग तथा अधिकाङ्ग मनुष्योंकी खिल्ली न उड़ाये। पुत्र और शिष्यको शिक्षा देनेके लिये आवश्यकता होनेपर उन्हींको दण्ड दे, दूसरोंको नहीं। आसनको पैरसे खींचकर न बैठे। सायंकाल और प्रातःकाल पहले अतिथिका सत्कार करके फिर स्वयं भोजन करे।

वत्स! सदा पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके ही दाँतन करे। दाँतन करते समय मौन रहे। दाँतनके लिये निषिद्ध वृक्षोंका परित्याग करे। उत्तर और पश्चिमकी ओर सिर करके कभी न सोये। दक्षिण या पूर्व दिशाकी ओर ही मस्तक करके सोये। जहाँसे दुर्गन्ध आती हो, ऐसे जलमें स्नान न करे। रात्रिमें न नहाये, ग्रहणके समय रात्रिमें भी स्नान करना बहुत उत्तम है; इसके सिवा अन्य समयमें दिनमें ही स्नानका विधान है। स्नान कर लेनेके बाद हाथ या कपड़ेसे शरीरको न मले। बालों और वस्त्रोंको न फटकारे। विद्वान् पुरुष बिना स्नान किये कभी चन्दन न लगाये। लाल, रंगबिरंगे और काले रंगके कपड़े न पहने। जिसमें बाल, थूक या कीड़े पड़ गये हों, जिसपर कुत्तेकी दृष्टि पड़ी हो, जिसको किसीने चाट लिया हो अथवा जो सारभाग निकाल लेनेके कारण दूषित हो गया हो, ऐसे अन्नको न खाय। बहुत देरके बने हुए और बासी भातको त्याग दे। पिट्ठी, साग, ईखके रस और दूधकी बनी हुई वस्तुएँ भी यदि बहुत दिनोंकी हों तो उन्हें न खाय। सूर्यके उदय और अस्तके समय शयन न करे। बिना नहाये, बिना बैठे, अन्यमनस्क होकर, शय्यापर बैठकर या सोकर, केवल पृथ्वीपर बैठकर, बोलते हुए, एक कपड़ा पहनकर तथा भोजनकी ओर देखनेवाले पुरुषोंको न देकर मनुष्य कदापि भोजन न करे। सबेरे-शाम दोनों समय भोजनकी यही विधि है।

विद्वान् पुरुषको कभी परायी स्त्रीके साथ समागम नहीं करना चाहिये। परस्त्रीसंगम मनुष्योंके इष्ट, पूर्त और आयुका नाश करनेवाला है। इस संसारमें परस्त्री-समागमके समान मनुष्यकी आयुका विघातक कार्य दूसरा कोई नहीं है। देवपूजा, अग्निहोत्र, गुरुजनोंको प्रणाम तथा भोजन भलीभाँति आचमन करके करना चाहिये। स्वच्छ, फेनरहित, दुर्गन्धशून्य और पवित्र जल लेकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके आचमन करना चाहिये। जलके भीतरकी, घरकी, बाँबीकी, चूहेके बिलकी और शौचसे बची हुई—ये पाँच प्रकारकी मिट्टियाँ त्याग देने योग्य हैं। हाथ-पैर धोकर

एकाग्रचित्तसे मार्जन करके, घुटनोंको समेटकर दो बार मुँहके दोनों किनारोंको पोंछे; फिर सम्पूर्ण इन्द्रियों और मस्तकका स्पर्श करके जलसे भलीभाँति तीन बार आचमन करे। इस प्रकार पवित्र होकर समाहित चित्तसे सदा देवताओं, पितरों और ऋषियोंकी क्रिया करनी चाहिये। थूकने, खँखारने और कपड़ा पहननेपर बुद्धिमान् पुरुष आचमन करे। छींकने, चाटने, वमन करने, थूकने आदिके पश्चात् आचमन, गायके पीठका स्पर्श, सूर्यका दर्शन करना तथा दाहिने कानको छू लेना चाहिये। इनमें पहलेके अभावमें दूसरा उपाय करना चाहिये।

दाँतोंको न कटकटाये। अपने शरीरपर ताल न दे। दोनों संध्याओंके समय अध्ययन, भोजन और शयनका त्याग करे। सन्ध्याकालमें मैथुन और रास्ता चलना भी निषिद्ध है। बेटा! पूर्वाह्णकालमें देवताओंका, मध्याह्नकालमें मनुष्यों (अतिथियों) का तथा अपराह्णकालमें पितरोंका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। सिरसे स्नान करके देवकार्य या पितृकार्यमें प्रवृत्त होना उचित है। पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके क्षौर कराये। उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेपर भी जो कन्या किसी अङ्गसे हीन, रोगिणी, विकृत रूपवाली, पीले रंगकी, अधिक बोलनेवाली तथा सबके द्वारा निन्दित हो, उसके साथ विवाह न करे। जो किसी अङ्गसे हीन न हो, जिसकी नासिका सुन्दर हो तथा जो सभी उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित हो, वैसी ही कन्याके साथ कल्याणकामी पुरुषको विवाह करना चाहिये। पुरुषको उचित है कि स्त्रीकी रक्षा करे, दिनमें शयन और मैथुन न करे। दूसरोंको कष्ट देनेवाला कार्य न करे, किसी जीवको पीड़ा न दे। रजस्वला स्त्री चार रातोंतक सभी वर्णके पुरुषोंके लिये त्याज्य है। यदि कन्याका जन्म रोकना हो तो पाँचवीं रातमें भी स्त्री-सहवास न करे। छठी रात आनेपर स्त्रीके पास जाय; क्योंकि युग्म रात्रियाँ ही इसके लिये श्रेष्ठ हैं। युग्म रात्रियोंमें स्त्री-सहवाससे पुत्रका जन्म होता है और अयुग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे कन्या उत्पन्न होती है; अतः पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष युग्म रात्रियोंमें ही स्त्रीके साथ शयन करे। पूर्वाह्णमें मैथुन करनेसे विधर्मी और सन्ध्याकालमें करनेसे नपुंसक पुत्र उत्पन्न होता है।

बेटा! हजामत बनवाने, वमन होने, स्त्री-प्रसङ्ग करने तथा श्मशानभूमिमें जानेपर वस्त्रसहित स्नान करे। देवता, वेद, द्विज, साधु, सच्चे महात्मा, गुरु, पतिव्रता, यज्ञकर्ता और तपस्वी—इनकी निन्दा अथवा परिहास न करे। यदि कोई उद्दण्ड मनुष्य ऐसा करते हों तो उनकी बात सुने भी नहीं। अपनेसे श्रेष्ठ और अपनेसे नीचे व्यक्तियोंकी शय्या और आसनपर न बैठे। अमङ्गलमय वेश न धारण करे और मुखसे अमाङ्गलिक वचन भी न बोले। स्वच्छ वस्त्र पहने और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। उद्दण्ड, उन्मत्त, अविनीत, शीलहीन, चोरी आदिसे दूषित, अधिक अपव्ययी, लोभी, वैरी, कुलटाके पति, अधिक बलवान्, अधिक दुर्बल, लोकमें निन्दित, तथा सबपर सन्देह करनेवाले लोगोंसे कभी मित्रता न करे। साधु, सदाचारी, विद्वान्, चुगली न करनेवाले, सामर्थ्यवान् तथा उद्योगी पुरुषोंसे मित्रता स्थापित करे। विद्वान् पुरुष वेद-विद्या एवं व्रतमें निष्णात पुरुषोंके साथ बैठे। मित्र, दीक्षाप्राप्त पुरुष, राजा, स्नातक, श्वशुर तथा ऋत्विग्—इन छः पूजनीय पुरुषोंका घर आनेपर पूजन करे। जो द्विज संवत्सर-व्रतको पूरा करके घरपर आवें, उनकी अपने वैभवके अनुसार यथासमय आलस्य त्यागकर पूजा करे और कल्याणकामी पुरुष उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सदा उद्यत रहे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उन ब्राह्मणोंके फटकारनेपर भी कभी उनके साथ विवाद न करे।

घरके देवताओंका यथास्थान भलीभाँति पूजन करके अग्नि-स्थापनपूर्वक उसमें आहुति दे। पहली आहुति ब्रह्माको, दूसरी प्रजापतिको, तीसरी गृह्याको, चौथी कश्यपको तथा पाँचवीं अनुमतिको दे। फिर पूर्वकथनानुसार गृह्यबलि देकर वैश्वदेवबलि दे। देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् स्थानका विभाग करके उनके लिये बलि अर्पित करे। उसका क्रम बतलाती हूँ, सुनो। एक पात्रमें पहले पर्जन्य, जल और पृथ्वीको तीन बलि दे। फिर प्राची आदि प्रत्येक दिशामें वायुको बलि देकर क्रमशः उन-उन दिशाओंके नामसे भी बलि समर्पित करे। तत्पश्चात् ब्रह्मा, अन्तरिक्ष, सूर्य, विश्वेदेव, विश्वभूत, उषा तथा भूतपतिको क्रमशः बलि दे। फिर 'पितृभ्यः स्वधा नमः' कहकर दक्षिण दिशामें अपसव्य होकर पितरोंके निमित्त बलि दे। फिर पात्रसे अन्नका शेष भाग और जल लेकर 'यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनम्' इस मन्त्रसे वायव्य दिशामें उसे विधिपूर्वक छोड़ दे। तदनन्तर रसोईके अन्नसे अग्राशन तथा हन्तकार निकालकर उन्हें विधिपूर्वक ब्राह्मणको दे। देवता आदिके सब कर्म उन-उनके तीर्थसे ही करने चाहिये। ब्राह्मतीर्थसे आचमन करना चाहिये, दाहिने हाथमें अँगूठेके उत्तर ओर जो एक रेखा

होती है, वह ब्राह्मतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। उसीसे आचमन करना उचित है। तर्जनी और अँगूठेके बीचका भाग पितृतीर्थ कहलाता है। नान्दीमुख पितरोंको छोड़कर अन्य सब पितरोंको उसी तीर्थसे जल आदि देना चाहिये। अँगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ है। उससे देवकार्य करनेका विधान है। कनिष्ठिकाके मूल भागमें कायतीर्थ है। उससे प्रजापतिका कार्य किया जाता है।

इस प्रकार इन तीर्थोंसे सदा देवताओं और पितरोंके कार्य करने चाहिये, अन्य तीर्थोंसे कदापि नहीं। ब्राह्म तीर्थसे आचमन उत्तम माना गया है। पितरोंका तर्पण पितृतीर्थसे, देवताओंका देवतीर्थसे और प्रजापतिका कायतीर्थसे करना श्रेष्ठ बताया गया है। नान्दीमुखके पितरोंके लिये पिण्ड-दान और तर्पण प्राजापत्य तीर्थसे करना चाहिये। विद्वान् पुरुष एक साथ जल और अग्नि न ले। गुरुजनों तथा देवताओंकी ओर पाँव न फैलाये। बछड़ेको दूध पिलाती हुई गायको न छेड़े। अञ्जलिसे पानी न पिये। शौचके समय विलम्ब न करे। मुखसे आग न फूँके। बेटा! जहाँ ऋण देनेवाला धनी, वैद्य, श्रोत्रिय ब्राह्मण तथा जलपूर्ण नदी—ये चार न हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये। जहाँ शत्रुविजयी, बलवान् और धर्मपरायण राजा हो, वहीं विद्वान् पुरुषको निवास करना चाहिये। दुष्ट राजाके राज्यमें सुख कहाँ। जहाँ दुर्धर्ष राजा, उपजाऊ भूमि, संयमी एवं न्यायशील पुरवासी और ईर्ष्या न करनेवाले लोग हों, वहींका निवास भविष्यमें सुखदायक होता है। जिस राष्ट्रमें किसान बहुत हों, किन्तु वे अधिक भोगपरायण न हों तथा जहाँ सब तरहके अन्न पैदा होते हों, वहीं बुद्धिमान् पुरुषको रहना चाहिये। बेटा! जहाँ विजयका इच्छुक, पहलेका शत्रु तथा सदा उत्सव मनानेमें ही लगे रहनेवाले लोग—ये तीन सदा रहते हों, वहाँ निवास न करे। विद्वान् पुरुषको ऐसे ही स्थानोंपर सदा निवास करना चाहिये, जहाँके सहवासी सुशील हों।

त्याज्य-ग्राह्य, द्रव्यशुद्धि, अशौच-निर्णय तथा कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन

मदालसा कहती है—बेटा! अब त्याज्य और ग्राह्य वस्तुओंका प्रकरण आरम्भ करती हूँ, सुनो। घी अथवा तेलमें पका हुआ अन्न बहुत देरका बना हुआ अथवा बासी भी हो तो वह भोजन करनेयोग्य है। गेहूँ, जौ तथा गोरसकी बनी हुई वस्तुएँ तेल-घीमें न बनी हों तो भी वे पूर्ववत् ग्राह्य हैं।* शङ्ख, पत्थर, सोना, चाँदी, रस्सी, कपड़ा, साग, मूल, फल, विदल (बाँसके बने हुए टोकरे आदि), मणि, हीरा, मूँगा, मोती तथा मनुष्योंके शरीरकी शुद्धि जलसे होती है। लोहेके हथियारोंकी शुद्धि पानीसे धोने तथा पत्थर या सानपर रगड़नेसे होती है। जिस पात्रमें तेल या घी रक्खा गया हो, उसकी सफाई गरम जलसे होती है। सूप, धान्यराशि, मृगचर्म, मूसल, ओखली तथा कपड़ोंके ढेरकी शुद्धि जल छिड़कनेमात्रसे हो जाती है। वल्कल वस्त्र जल और मिट्टीसे शुद्ध होते हैं। तृण, काष्ठ और ओषधियोंकी शुद्धि जल छिड़कनेसे होती है। भेड़की ऊनसे बने कपड़े और केश यदि दोषयुक्त हो गये हों तो उनकी शुद्धि सरसों अथवा तिलकी खली और जलसे होती है। इसी प्रकार रूईके बने कपड़े पानी और क्षारसे शुद्ध होते हैं। मिट्टीके बर्तन दुबारा पकानेसे शुद्ध होते हैं। भिक्षामें प्राप्त अन्न, कारीगरका हाथ, बाजारमें बिकनेके लिये आयी हुई शाक आदि वस्तुएँ, स्त्रियोंका मुख, गलीसे आयी हुई वस्तु, जिसके गुण-दोषका ज्ञान न हो—ऐसी वस्तु और सेवकोंकी लायी हुई चीज सदा शुद्ध मानी गयी है। जिसके शिशुने अभी दूध पीना नहीं छोड़ा हो, ऐसी स्त्री तथा दुर्गन्ध और बुदबुदोंसे रहित बहता हुआ जल स्वाभाविक शुद्ध है। समयानुसार अग्निसे तपाने, बुहारने, गायोंके चलने-फिरने, लीपने, जोतने और सींचनेसे भूमिकी शुद्धि होती है। बुहारने और देवताओंकी पूजा करनेसे घर शुद्ध होता है। जिस पात्रमें बाल या कीड़े पड़े हों, जिसे गायने सूँघ लिया हो तथा जिसमें मक्खियाँ पड़ी हों, उसकी शुद्धि राख और मिट्टीसे मलकर जलद्वारा धोनेसे होती है। ताँबेका बर्तन खटाईसे, राँगा और सीसा राखसे और काँसेके बर्तनोंकी शुद्धि राख और जलसे होती है। जिस पात्रमें कोई अपवित्र वस्तु पड़ गयी हो, उसे मिट्टी और जलसे तबतक धोये, जबतक कि उसकी दुर्गन्ध दूर न हो जाय। इससे वह शुद्ध होता है। पृथ्वीपर प्राकृतिक रूपसे बर्तमान जल, जिससे एक गायकी प्यास बुझ सके, शुद्ध

* भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसम्भृतम्॥
अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः। (३५। १-२)

माना गया है। गलीमें पड़ा हुआ वस्त्र वायुके लगनेसे शुद्ध होता है। धूल, अग्नि, घोड़ा, गाय, छाया, किरणें, वायु, जलके छींटे और मक्खी आदि—ये सब अशुद्ध वस्तुके संसर्गमें आनेपर भी शुद्ध ही रहते हैं। बकरे और घोड़ेका मुख शुद्ध माना गया है; किन्तु गायका नहीं। बछड़ेका मुख तथा माताका स्तन भी पवित्र बताया गया है। फल गिरानेमें पक्षीकी चोंच भी शुद्ध मानी गयी है। आसन, शय्या, सवारी, नाव और मार्गके तृण—ये सब बाजारमें बिकनेवाली वस्तुओंकी तरह सूर्य और चन्द्रमाकी किरणों तथा वायुके स्पर्शसे शुद्ध होते हैं। गलियोंमें घूमने-फिरने, स्नान करने, छींक आने, पानी पीने, भोजन करने तथा वस्त्र बदलनेपर विधिपूर्वक आचमन करना चाहिये। अस्पृश्य वस्तुओंसे जिनका स्पर्श हो गया हो उनकी, रास्तेके कीचड़ और जलकी तथा ईंटकी बनी हुई वस्तुओंकी वायुके संसर्गसे शुद्धि होती है।

अनजानमें यदि दूषित अन्न भोजन कर ले तो तीन रात उपवास करे और यदि जान-बूझकर किया हो तो उसके दोषकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त करे। मनुष्यकी गीली हड्डीका स्पर्श करके स्नान करनेसे शुद्धि होती है और सूखी हड्डीका स्पर्श कर लेनेपर केवल आचमन करके गायका स्पर्श या सूर्यका दर्शन करनेसे मनुष्य शुद्ध हो सकता है। बुद्धिमान् पुरुष रक्त, खँखार तथा उबटनको न लाँघे और असमयमें उद्यान आदिके भीतर कदापि न ठहरे। लोकनिन्दित विधवा स्त्रीसे वार्तालाप न करे। जूँठन, मल-मूत्र और पैरोंकी धोवनको घरसे बाहर फेंके। दूसरेके खुदाये हुए पोखरे आदिके जलमें पाँच लौंदा मिट्टी निकाले बिना स्नान न करे। देवता-सम्बन्धी सरोवरों तथा गङ्गा आदि नदियोंमें सदा ही स्नान करे। देवता, पितर, उत्तम शास्त्र, यज्ञ और मन्त्र आदिकी निन्दा करनेवाले पुरुषोंसे स्पर्श और वार्तालाप करनेपर सूर्यके दर्शनसे शुद्धि होती है। रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, पतित, मृतक, विधर्मी, प्रसूता स्त्री, नपुंसक, वस्त्रहीन, चाण्डाल, मुर्दा ढोनेवाले तथा परस्त्रीगामी पुरुषोंको देखकर विद्वान् पुरुषोंको इसी प्रकार सूर्यके दर्शनसे आत्मशुद्धि करनी चाहिये। अभक्ष्य पदार्थ, नवप्रसूता स्त्री, नपुंसक, बिलाव, चूहा, कुत्ता, मुर्गा, पतित, जाति-बहिष्कृत, चाण्डाल, मुर्दा ढोनेवाले, रजस्वला स्त्री, ग्रामीण सूअर तथा अशौचदूषित मनुष्योंको छू लेनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। जिसके घरमें प्रतिदिन नित्यकर्मकी अवहेलना होती हो तथा जिसे ब्राह्मणोंने त्याग दिया हो, वह नराधम महापापी है। नित्यकर्मका त्याग कभी न करे। उसे न करनेका बन्धन तो केवल जननाशौच और मरणाशौचमें ही है।* अशौच प्राप्त होनेपर ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन तथा वैश्य पंद्रह दिनोंतक दान-होम आदि कर्मोंसे अलग रहे। शूद्र एक मासतक अपना कर्म बंद रक्खे। तदनन्तर सब लोग अपने-अपने शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करें।

मृतकको गाँवसे बाहर ले जाकर उसका दाह-संस्कार करनेके बाद समान गोत्रवाले भाई-बन्धुओंको पहले, चौथे, सातवें और नवें दिन प्रेतके लिये जल देना चाहिये तथा चौथे दिन उसकी चितासे राख और हड्डियोंका सञ्चय करना चाहिये। अस्थिसञ्चयके बाद उनका अङ्ग स्पर्श किया जा सकता है। फिर समानोदक पुरुष अपने सब कर्म कर सकते हैं, किन्तु सपिण्ड लोग केवल स्पर्शके अधिकारी होते हैं। जिस दिन मृत्यु हुई हो, उस दिन समानोदक और सपिण्ड दोनोंका स्पर्श किया जा सकता है। वृक्ष, सर्प, गौ, दाढ़ोंवाले जीव, शस्त्र, जल, फाँसी, अग्नि, विष, पर्वतसे गिरने तथा उपवास आदिके द्वारा मृत्यु होनेपर अथवा बालक, परदेशी एवं परिव्राजककी मृत्यु होनेपर तत्काल अशौच निवृत्त हो जाता है तथा कुछ लोगोंका मत है कि तीन दिनोंतक अशौच रहता है। यदि सपिण्डोंमेंसे एककी मृत्यु होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें दूसरेकी भी मृत्यु हो जाय तो पहलेके अशौचमें जितने दिन बाकी हों उतने ही दिनोंके भीतर दूसरेका भी श्राद्ध आदि कर्म पूर्ण कर देना चाहिये। जननाशौचमें भी यही विधि देखी जाती है। सपिण्ड तथा समानोदक व्यक्तियोंमें एकके बाद दूसरेका जन्म होनेपर पहलेके ही साथ दूसरेका भी अशौच निवृत्त हो जाता है।†

पुत्रका जन्म होनेपर पिताको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। उसमें भी यदि एकके जन्मके बाद दूसरेका जन्म हो जाय तो पहले जन्मे हुए बालकके दिनपर ही दूसरेकी भी शुद्धि बतायी गयी है।‡ लोकमें जो-जो वस्तु अधिक प्रिय हो

* नित्यस्य कर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन।
तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु॥
(३५।३९)

† सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि।
पूर्वाशौचसमाख्यातैः कार्या तस्य दिनैः क्रिया॥
एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके।
सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च॥
(३५।४७-४८)

‡ तत्रापि यदि चान्यस्मिञ्जायेत चापरः।
तत्रापि शुद्धिरुद्दिष्टा पूर्वजन्मवतो दिनैः॥
(३५।५०)

तथा घरमें भी जो वस्तु अत्यन्त प्रिय जान पड़े, उसको अक्षय बनानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह उसे गुणवान् व्यक्तिको दे । अशौचके दिन पूरे हो जानेपर जल, वाहन, आयुध, चाबुक और दण्डका स्पर्श करके सब वर्णोंके लोग पवित्र हो अपने-अपने वर्णधर्मका अनुष्ठान करें, क्योंकि वह इस लोक और परलोकमें भी कल्याण देनेवाला है । तीनों वेदोंका सर्वदा स्वाध्याय करे, विद्वान् बने । धर्मानुसार धनका उपार्जन करे और उसे यत्नपूर्वक यज्ञमें लगावे । जिस कर्मको करते समय अपने मनमें घृणा न हो और जिसे महापुरुषोंके सामने प्रकट करनेमें कोई संकोच न हो, ऐसा कर्म निःशङ्क होकर करना चाहिये । बेटा ! ऐसे आचरणवाले गृहस्थ पुरुषको धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है तथा इस लोक और परलोकमें भी उसका कल्याण होता है ।

मातासे इस प्रकार उपदेश ग्रहण करके राजा ऋतध्वजके पुत्र अलर्कने युवावस्थामें विधिपूर्वक अपना विवाह किया । उससे अनेक पुत्र उत्पन्न हुए । उसने यज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन किया और हर समय वह पिताकी आज्ञाका पालन करनेमें संलग्न रहता था । तदनन्तर बहुत समयके बाद बुढ़ापा आनेपर धर्मपरायण महाराज ऋतध्वजने अपनी पत्नीके साथ तपस्याके लिये वनमें जानेका विचार किया और पुत्रका राज्याभिषेक कर दिया । उस समय मदालसाने अपने पुत्रकी विषयभोगविषयक आसक्तिको हटानेके लिये उससे यह अन्तिम वचन कहा—'बेटा ! गृहस्थ-धर्मका अवलम्बन करके राज्य करते समय यदि तुम्हारे ऊपर प्रिय बन्धुके वियोगसे, शत्रुओंकी बाधासे अथवा धनके नाशसे होनेवाला कोई असह्य दुःख आ पड़े तो मेरी दी हुई इस अँगूठीसे यह उपदेशपत्र निकालकर, जो रेशमी वस्त्रपर बहुत सूक्ष्म अक्षरोंमें लिखा गया है, तुम अवश्य पढ़ना; क्योंकि ममतामें बँधा रहनेवाला गृहस्थ दुःखोंका केन्द्र होता है ।



सुमति कहते हैं—यों कहकर मदालसाने अपने पुत्रको सोनेकी अँगूठी दी और गृहस्थ पुरुषके योग्य अनेकानेक आशीर्वाद भी दिये । तत्पश्चात् पुत्रको राज्य सौंपकर महाराज कुवलयाश्व और महारानी मदालसा तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये ।

सुबाहुकी प्रेरणासे काशिराजका अलर्कपर आक्रमण, अलर्कका दत्तात्रेयजीकी शरणमें जाना और उनसे योगका उपदेश लेना

सुमति कहते हैं—पिताजी ! धर्मात्मा राजा अलर्कने भी पुत्रकी भाँति प्रजाका न्यायपूर्वक पालन किया । उनके राज्यमें प्रजा बहुत प्रसन्न थी और सब लोग अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहते थे । वे दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देते और सज्जन पुरुषोंकी भलीभाँति रक्षा करते थे । राजाने बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान भी किया । इन सब कार्योंमें उन्हें बड़ा आनन्द मिलता था । महाराजको अनेक पुत्र हुए, जो महान् बलवान्, अत्यन्त पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा तथा कुमार्गके विरोधी थे । उन्होंने धर्मपूर्वक धनका उपार्जन किया और धनसे धर्मका अनुष्ठान किया तथा धर्म और धन दोनोंके अनुकूल रहकर ही विषयोंका उपभोग किया । इस प्रकार धर्म, अर्थ और काममें आसक्त हो पृथ्वीका पालन करते हुए राजा अलर्कको अनेक वर्ष बीत गये; किन्तु उन्हें वे एक दिनके समान ही जान पड़े । मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंका भोग करते हुए उन्हें कभी

भी उनकी ओरसे वैराग्य नहीं हुआ। उनके मनमें कभी ऐसा विचार नहीं उठा कि अब धर्म और धनका उपार्जन पूरा हो गया। उनकी ओरसे उन्हें अतृप्ति ही बनी रही।

उनके इस प्रकार भोगमें आसक्त, प्रमादी और अजितेन्द्रिय होनेका समाचार उनके भाई सुबाहुने भी सुना, जो वनमें निवास करते थे। अलर्कको किसी तरह ज्ञान प्राप्त हो, इस अभिलाषासे उन्होंने बहुत देरतक विचार किया। अन्तमें उन्हें यही ठीक मालूम हुआ कि अलर्कके साथ शत्रुता रखनेवाले किसी राजाका सहारा लिया जाय। ऐसा निश्चय करके वे अपना राज्य प्राप्त करनेका उद्देश्य लेकर असंख्य बल-वाहनोंसे सम्पन्न काशिराजकी शरणमें आये। काशिराजने अपनी सेनाके साथ अलर्कपर आक्रमण करनेकी तैयारी की और दूत भेजकर यह कहलाया कि अपने बड़े भाई सुबाहुको राज्य दे



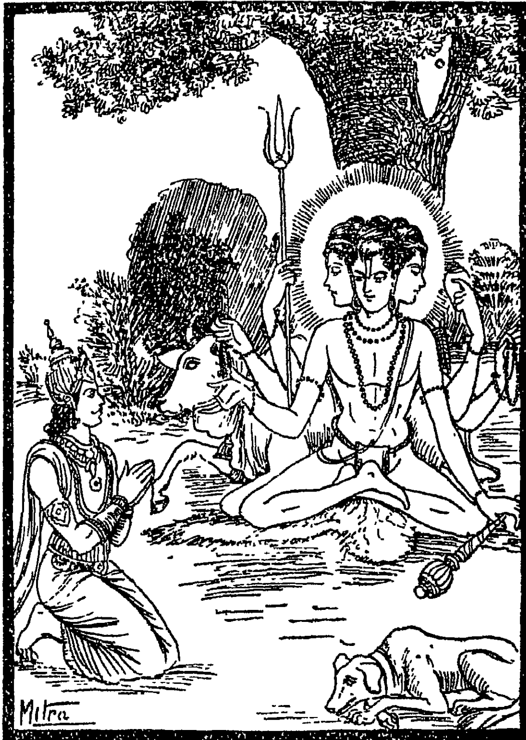
दो। अलर्क राजधर्मके ज्ञाता थे। उन्हें शत्रुके इस प्रकार आज्ञापूर्वक सन्देश देनेपर सुबाहुको राज्य देनेकी इच्छा नहीं हुई। उन्होंने काशिराजके दूतको उत्तर दिया कि 'मेरे बड़े भाई मेरे ही पास आकर प्रेमपूर्वक राज्य माँग लें। मैं किसीके आक्रमणके भयसे थोड़ी-सी भी भूमि नहीं दूँगा।' बुद्धिमान् सुबाहुने भी अलर्कके पास याचना नहीं की। उन्होंने सोचा, 'याचना क्षत्रियका धर्म नहीं है। क्षत्रिय तो पराक्रमका ही धनी होता है।' तब काशिराजने अपनी समस्त सेनाके साथ राजा अलर्कके राज्यपर चढ़ाई करनेके लिये यात्रा की। उन्होंने अपने समीपवर्ती राजाओंसे मिलकर उनके सैनिकोंद्वारा आक्रमण किया और अलर्कके सीमावर्ती नरेशको अपने अधीन कर लिया। फिर अलर्कके राज्यपर घेरा डालकर उनके सामन्त राजाओंको सताना आरम्भ किया। दुर्ग और वनके रक्षकोंको भी काबूमें कर लिया। किन्हींको धन देकर, किन्हींको फूट डालकर और किन्हींको समझा-बुझाकर ही अपना वशवर्ती बना लिया। इस प्रकार शत्रुमण्डलीसे पीड़ित राजा अलर्कके पास बहुत थोड़ी-सी सेना रह गयी। खजाना भी घटने लगा और शत्रुने उनके नगरपर घेरा डाल दिया। इस तरह प्रतिदिन कष्ट पाने और कोश क्षीण होनेसे राजाको बड़ा खेद हुआ। उनका चित्त व्याकुल हो उठा। जब वे अत्यन्त वेदनासे व्यथित हो उठे, तब सहसा उन्हें उस अँगूठीका स्मरण हो आया, जिसे ऐसे ही अवसरोंपर उपयोग करनेके लिये उनकी माता मदालसाने दिया था। तब स्नान करके पवित्र हो उन्होंने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और अँगूठीसे वह उपदेशपत्र निकालकर देखा। उसके अक्षर बहुत स्पष्ट थे। राजाने उसमें लिखे हुए माताके उपदेशको पढ़ा, जिससे उनके समस्त शरीरमें रोमाञ्च हो आया और आँखें प्रसन्नतासे खिल उठीं। वह उपदेश इस प्रकार था—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥

'सङ्ग (आसक्ति) का सब प्रकारसे त्याग करना चाहिये; किन्तु यदि उसका त्याग न किया जा सके तो सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंका सङ्ग ही उसकी ओषधि है। कामनाको सर्वथा छोड़ देना चाहिये; परन्तु यदि वह छोड़ी न जा सके तो मुमुक्षा (मुक्तिकी इच्छा) के प्रति कामना करनी चाहिये; क्योंकि मुमुक्षा ही उस कामनाको मिटानेकी दवा है।'

इस उपदेशको अनेक बार पढ़कर राजाने सोचा, 'मनुष्योंका कल्याण कैसे होगा? मुक्तिकी इच्छा जाग्रत्

करनेपर। और मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् होगी सत्सङ्गसे।' ऐसा निश्चय करके वे सत्सङ्गके लिये चिन्तित हुए और अत्यन्त आर्तभावसे आसक्तिरहित, पापशून्य तथा परम सौभाग्यशाली महात्मा दत्तात्रेयजीकी शरणमें गये। उनके चरणोंमें प्रणाम



करके राजाने उनका पूजन किया और न्यायके अनुसार कहा—'ब्रह्मन्! आप शरणार्थियोंको शरण देनेवाले हैं। मुझपर कृपा कीजिये। मैं भोगोंमें अत्यन्त आसक्त एवं दुःखसे आतुर हूँ, आप मेरा दुःख दूर कीजिये।'

दत्तात्रेयजी बोले—राजन्! मैं अभी तुम्हारा दुःख दूर करता हूँ। सच-सच बताओ, तुम्हें किसलिये दुःख हुआ है?

अलर्कने कहा—भगवन्! इस शरीरके बड़े भाई यदि राज्य लेनेकी इच्छा रखते हैं तो यह शरीर तो पाँच भूतोंका समुदायमात्र है। गुणकी ही गुणोंमें प्रवृत्ति हो रही है; अतः मेरा उसमें क्या है। शरीरमें रहकर भी वे और मैं दोनों ही शरीरसे भिन्न हैं। यह हाथ आदि कोई भी अङ्ग जिसका नहीं है, मांस, हड्डी और नाड़ियोंके विभागसे भी जिसका कोई सम्पर्क नहीं है, उस पुरुषका इस राज्यमें हाथी, घोड़े, रथ और कोश आदिसे किञ्चित् भी क्या सम्बन्ध है। इसलिये न तो मेरा कोई शत्रु है, न मुझे दुःख या सुख होता और न नगर और कोशसे ही मेरा कोई सम्बन्ध है। यह हाथी-घोड़े आदिकी सेना न सुबाहुकी है, न दूसरे किसीकी है और न मेरी ही है। जैसे कलसी, घट और कमण्डलुमें एक ही आकाश है, तो भी पात्रभेदसे अनेक-सा दिखायी देता है, उसी प्रकार सुबाहु, काशिराज और मैं भिन्न-भिन्न शरीरोंमें रहकर भी एक ही हैं। शरीरोंके भेदसे ही भेदकी प्रतीति होती है। पुरुषकी बुद्धि जिस-जिस वस्तुमें आसक्त होती है, वहाँ-वहाँसे वह दुःख ही लाकर देती है। मैं तो प्रकृतिसे परे हूँ; अतः न दुखी हूँ, न सुखी। प्राणियोंका भूतोंके द्वारा जो पराभव होता है, वही दुःखमय है। तात्पर्य यह कि जो भौतिक भोगोंमें ममताके कारण आसक्त है, वही सुख-दुःखका अनुभव करता है।

दत्तात्रेयजी बोले—नरश्रेष्ठ! वास्तवमें ऐसी ही बात है। तुमने जो कुछ कहा है, ठीक है; ममता ही दुःखका और ममताका अभाव ही सुखका कारण है। मेरे प्रश्न करनेमात्रसे तुम्हें यह उत्तम ज्ञान प्राप्त हो गया, जिसने ममताकी प्रतीतिको सेमरकी रूईकी भाँति उड़ा दिया। मनुष्यके हृदयदेशमें अज्ञानरूपी महान् वृक्ष खड़ा है। वह अहंतारूपी अङ्कुरसे उत्पन्न हुआ है। ममता ही उसका तना है। गृह और क्षेत्र उसकी ऊँची-ऊँची शाखाएँ हैं। स्त्री और पुत्र आदि पल्लव हैं। धन-धान्यरूप बड़े-बड़े पत्ते हैं। वह अनादिकालसे बढ़ता चला आ रहा है। पुण्य और पाप उसके आदि पुष्प हैं। सुख और दुःख महान् फल हैं। वह मोक्षके मार्गको रोककर खड़ा है। अज्ञानियोंका सङ्ग ही उस वृक्षके लिये सिंचाईका काम देता है। सकाम कर्म करनेकी प्रबल इच्छा ही उस वृक्षपर भ्रमरोंकी भाँति मँड़राती रहती है। जो लोग संसार-मार्गकी यात्रासे थककर उस वृक्षका आश्रय लेते हैं, वे भ्रमपूर्ण ज्ञान एवं मिथ्या सुखके वशीभूत हो जाते हैं। ऐसे लोगोंको आत्यन्तिक सुख (मोक्ष) कैसे मिल सकता है। परन्तु जो सत्सङ्गरूपी पत्थरपर घिसकर तेज किये हुए विद्यारूपी कुठारसे उस ममतारूपी वृक्षको काट डालते हैं, वे विद्वान् पुरुष ही उस मोक्षमार्गसे जाते हैं और

धूल तथा काँटोंसे रहित शीतल ब्रह्मवनमें पहुँचकर सब प्रकारकी वृत्तियोंसे रहित हो परमानन्दको प्राप्त होते हैं।*

अलर्कने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मुझे ऐसा उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ, जो जड प्रकृति और चेतन-शक्तिका विवेक करानेवाला है; किन्तु मेरा मन विषयोंके वशीभूत है, अतः वह इस ज्ञानमें स्थिर नहीं हो पाता। मैं नहीं जानता कि इस प्रकृतिके बन्धनसे कैसे छूट सकूँगा। कैसे मेरा इस संसारमें फिर जन्म न हो! किस प्रकार मैं निर्गुण भावको प्राप्त होऊँ और कैसे सनातन ब्रह्मके साथ एकता प्राप्त करूँ! ब्रह्मन्! मुझे ऐसा ही उत्तम योग बताइये, जिससे मैं मुक्त हो सकूँ। इसके लिये आपके चरणोंमें मस्तक रखकर याचना करता हूँ; क्योंकि आप-जैसे संतोंका सङ्ग ही मनुष्योंका परम उपकार करनेवाला है।

दत्तात्रेयजी बोले—राजन्! योगीको ज्ञानकी प्राप्ति होकर जो उसका अज्ञानसे वियोग होता है, वही मुक्ति है और वही ब्रह्मके साथ एकता एवं प्राकृत गुणोंसे पृथक् होना है। मुक्ति होती है योगसे। योग प्राप्त होता है सम्यक् ज्ञानसे, सम्यक् ज्ञान होता है वैराग्यजनक दुःखसे और दुःख होता है ममताके कारण स्त्री, पुत्र, धन आदिमें चित्तकी आसक्ति होनेसे। अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष आसक्तिको दुःखका मूल समझकर यत्नपूर्वक त्याग दे। आसक्ति न होनेपर 'यह मेरा है' ऐसी धारणा दूर हो जाती है। ममताका अभाव सुखका ही साधक है। वैराग्यसे सांसारिक विषयोंमें दोषका दर्शन होता है। ज्ञानसे वैराग्य और वैराग्यसे ज्ञान होता है। जहाँ रहना हो, वही घर है। जिससे जीवन चले, वही भोजन है और जिससे मोक्ष मिले, वही ज्ञान बताया गया है। इसके सिवा सब अज्ञान है। राजन्! पुण्य और पापोंको भोग लेनेसे, नित्यकर्मोंका निष्कामभावसे अनुष्ठान करनेसे, अपूर्वका संग्रह न होनेसे तथा पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंका क्षय हो जानेसे मनुष्य बारंबार देहके बन्धनमें नहीं पड़ता। राजन्! यह तुमसे ज्ञानके विषयमें कुछ बातें बतलायी गयीं। अब उस योगका वर्णन सुनो, जिसे प्राप्त कर योगी पुरुष सनातन ब्रह्मसे कभी पृथक् नहीं होता।

योगियोंको पहले आत्मा (बुद्धि) के द्वारा आत्मा (मन) को जीतनेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि उसको जीतना बहुत कठिन है। अतः उसपर विजय पानेके लिये सदा ही यत्न करना चाहिये। इसका उपाय बतलाता हूँ, सुनो। प्राणायामके द्वारा राग आदि दोषोंका, धारणाके[1] द्वारा पापका, प्रत्याहारके[2] द्वारा विषयोंका और ध्यानके द्वारा ईश्वरविरोधी गुणोंका निवारण करे। जैसे पर्वतीय धातुओंको आगमें तपानेसे उनके दोष जल जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम करनेसे इन्द्रियजनित दोष दूर हो जाते हैं। अतः योगके ज्ञाता पुरुषको पहले प्राणायामका ही साधन करना चाहिये। प्राण और अपानवायुको रोकनेका नाम ही प्राणायाम है। यह लघु, मध्य और उत्तरीयके भेदसे तीन प्रकारका बताया गया है। अलर्क! अब मैं उसकी मात्रा बतलाता हूँ, सुनो। लघु प्राणायाम बारह मात्राका होता है। इससे दूनी मात्राका मध्यम और तिगुनी मात्राका उत्तरीय अथवा उत्तम बताया गया है। पलकोंको उठाने और गिरानेमें जितना समय लगता है, वही प्राणायामकी संख्याके लिये मात्रा कहा गया है। ऐसी ही बारह मात्राओंका लघुनामक प्राणायाम होता है। प्रथम प्राणायामके द्वारा स्वेद (पसीने) को, मध्यमके द्वारा कम्पको और तृतीय प्राणायामके द्वारा विषादको जीते। इस प्रकार क्रमशः इन तीनों दोषोंपर विजय प्राप्त करे। जैसे सिंह, व्याघ्र और हाथी सेवाके द्वारा कोमल हो जाते हैं, उनकी कठोरता दब जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम करनेसे प्राण योगीके वशमें हो जाता है। जैसे हाथीवान मतवाले हाथीको भी वशमें करके उसे इच्छानुसार चलाता है, उसी प्रकार योगी वशमें किये हुए

* अहमित्यङ्कुरोत्पन्नो ममेतिस्कन्धवान् महान्।
गृहक्षेत्रोच्चशाखश्च पुत्रदारादिपल्लवः॥
धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्द्धितः।
पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफलः॥
तत्र मुक्तिपथव्यापी मूढसम्पर्कसेचनः।
विधित्साभृङ्गमालाढ्यो ह्यज्ञानमहातरुः॥
संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः।
भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकं कुतः॥
यैस्तु सत्सङ्गपाषाणशितेन ममतातरुः।
छिन्नो विद्याकुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना॥
प्राप्य ब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम्।
प्राप्नुवन्ति परां प्राज्ञा निर्वृतिं वृत्तिवर्जिताः॥
(१८। ८-१३)

१. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा—किसी एक स्थानमें चित्तको बाँधना अर्थात् परमात्मामें मनको स्थापित करना 'धारणा' है।

२. इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर चित्तमें लीन करना 'प्रत्याहार' कहलाता है।

प्राणको अपनी इच्छाके अधीन रखता है। जैसे वशमें किया हुआ सिंह केवल मृगोंको ही मारता है, मनुष्योंको नहीं, उसी प्रकार प्राणायामके द्वारा वशमें किया हुआ प्राण केवल पापोंका नाश करता है, मनुष्यके शरीरका नहीं। इसलिये योगी पुरुषको सदा प्राणायाममें संलग्न रहना चाहिये।

राजन्! ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित् और प्रसाद—ये मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाली प्राणायामकी चार अवस्थाएँ हैं। अब क्रमशः इनके स्वरूपका वर्णन सुनो। जिस अवस्थामें शुभ और अशुभ सभी कर्मोंका फल क्षीण हो जाय और चित्तकी वासना नष्ट हो जाय, उसका नाम 'ध्वस्ति' है। जब योगी इस लोक और परलोकके भोगोंके प्रति लोभ और मोह उत्पन्न करनेवाली समस्त कामनाओंको रोककर सदा अपने-आपमें ही संतुष्ट रहता है, वह निरन्तर रहनेवाली 'प्राप्ति' नामक अवस्था है। जिस समय योगी सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र तथा ग्रहोंके समान प्रभावशाली होकर उत्तम ज्ञान-सम्पत्ति प्राप्त करता है और उस ज्ञान-सम्पत्तिसे भूत-भविष्यकी बातोंको तथा दूरस्थित एवं अदृश्य वस्तुओंको भी जान लेता है, उस समय प्राणायामकी 'संवित्' नामक अवस्था होती है। जिस प्राणायामसे मन, पाँच प्राणवायु, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंके विषय प्रसादको प्राप्त होते हैं, वह उसकी 'प्रसाद' अवस्था है।

राजन्! अब प्राणायामका लक्षण तथा योगाभ्यासमें निरन्तर प्रवृत्त रहनेवाले योगीके लिये विहित आसन बतलाता हूँ, सुनो। पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन आदि आसनोंसे बैठकर मन-ही-मन प्रणवका चिन्तन करते हुए योगाभ्यास करे। शरीरको समभावसे रक्खे, आसन भी सम हो। दोनों पैरोंको समेटकर दोनों जाँघोंको आगेकी ओर स्थिर करे। मुँहको बंद किये रहे। एड़ियोंको इस प्रकार रक्खे, जिससे वे लिङ्ग और अण्डकोषका स्पर्श न कर सकें। मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए स्थिर रहे। मस्तकको कुछ ऊँचा किये रहे। दाँतोंका दाँतोंसे स्पर्श न होने दे। अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखते हुए अन्य दिशाओंकी ओर न देखे। रजोगुणसे तमोगुणकी और सत्त्वगुणसे रजोगुणकी वृत्तिको भलीभाँति आच्छादित करके निर्मल सत्त्वमें स्थित हो योगवेत्ता पुरुष योगका अभ्यास करे। इन्द्रिय, प्राण आदि और मनको उनके विषयोंसे हटाकर प्रत्याहार आरम्भ करे। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार जो समस्त कामनाओंको संकुचित कर लेता है, वह निरन्तर आत्मामें ही रमण करनेवाला और एकमात्र परमात्मामें स्थित हुआ पुरुष अपने आत्मामें ही आत्माका साक्षात्कार करता है। विद्वान् पुरुष बाहर-भीतरकी शुद्धिका सम्पादन करके कण्ठसे लेकर नाभितक शरीरको प्राणवायुसे परिपूर्ण करते हुए प्राणायाम आरम्भ करे। प्राणायाम बारह हैं। उन्हींको धारणा भी कहते हैं। तत्त्वदर्शी योगियोंने योगमें दो धारणाएँ बतलायी हैं। उनके अनुसार योगमें प्रवृत्त हुए नियतात्मा योगीके सभी दोष नष्ट हो जाते हैं तथा वह स्वस्थ भी हो जाता है। वह परब्रह्म परमात्माको और प्राकृत गुणोंको पृथक्-पृथक् देखता है, व्योमसे लेकर परमाणुतकका साक्षात्कार करता है तथा निष्पाप आत्माका भी दर्शन कर लेता है। इस प्रकार प्राणायामपरायण एवं मिताहारी योगी पुरुष धीरे-धीरे एक-एक भूमिकाको वशमें करके दूसरीपर पैर बढ़ाये, जैसे महलमें जाते समय एक-एक सीढ़ीको पार करके दूसरीपर चढ़ा जाता है। जो भूमि अपने वशमें नहीं हुई है, उसमें जानेसे वह दोष, रोग आदि दुःख तथा मोहको बढ़ाती है; अतः उसपर न चढ़े। प्राणवायुके निरोधको प्राणायाम कहते हैं। अपने मनको संयममें रखनेवाले योगी पुरुष शब्दादि विषयोंकी ओर जानेवाली इन्द्रियोंको उनकी ओरसे योगद्वारा प्रत्याहृत—निवृत्त करते हैं, इसलिये यह प्रत्याहार कहलाता है।

योगी महर्षियोंने इस विषयमें ऐसा उपाय भी बताया है, जिससे योगाभ्यासी पुरुषको रोग आदि दोष नहीं होते। जैसे जलार्थी मनुष्य यन्त्र और नली आदिकी सहायतासे धीरे-धीरे जल पीते हैं, उसी प्रकार योगी पुरुष श्रमको जीतकर धीरे-धीरे वायुका पान करे। पहले नाभिमें, फिर हृदयमें, तदनन्तर तीसरे स्थान—वक्षःस्थलमें। उसके बाद क्रमशः कण्ठ, मुख, नासिकाके अग्रभाग, नेत्र, भौंहोंके मध्यभाग तथा मस्तकमें प्राणवायुको धारण करे। उसके बाद परब्रह्म परमात्मामें उसकी धारणा करनी चाहिये। यह सबसे उत्तम धारणा मानी गयी है। इन दसों धारणाओंको प्राप्त होकर योगी अविनाशी ब्रह्मकी सत्ताको प्राप्त होता है। राजन्! सिद्धिकी इच्छा रखनेवाला योगी पुरुष बड़े आदरके साथ योगमें प्रवृत्त हो। वह अधिक खाये हुए अथवा खाली पेट, थका और व्याकुलचित्त न हो। जब अधिक सर्दी या अधिक गर्मी पड़ती हो, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंकी प्रबलता हो अथवा बड़े जोरकी आँधी चलती हो, ऐसे अवसरोंपर ध्यानपरायण होकर योगका अभ्यास नहीं

करना चाहिये । कोलाहलपूर्ण स्थानमें, आग और पानीके समीप, पुरानी गोशालामें, चौराहेपर, सूखे पत्तोंके ढेरपर, नदीमें, श्मशानभूमिमें, जहाँ सर्पोंका निवास हो वहाँ, भयपूर्ण स्थानमें, कुएँके तटपर, मन्दिरमें तथा दीमकोंकी मिट्टीके ढेरपर—इन सब स्थानोंमें तत्त्वज्ञ पुरुष योगाभ्यास न करे। जहाँ सात्त्विकभावकी सिद्धि न हो, ऐसे देश-कालका परित्याग करे । योगमें असत् वस्तुका दर्शन भी निषिद्ध है; अतः उसे भी छोड़ दे । जो मूर्खतावश उक्त स्थानोंकी परवा न करके वहीं योगाभ्यास आरम्भ करता है, उसके कार्यमें विघ्न डालनेके लिये बहरापन, जडता, स्मरणशक्तिका नाश, गूँगापन, अंधापन और ज्वर आदि अनेक दोष तत्काल प्रकट होते हैं।

यदि प्रमादवश योगीके सामने ये दोष प्रकट हों तो उनका नाश करनेके लिये जिस चिकित्साकी आवश्यकता है, उसे सुनो । यदि वातरोग, गुल्मरोग, उदावर्त (गुदा-सम्बन्धी रोग) तथा और कोई उदरसम्बन्धी रोग हो जाय तो उसकी शान्तिके लिये घी मिलायी हुई जौकी गरम-गरम लप्सी खा ले अथवा केवल उसकी धारणा करे । वह रुकी हुई वायुको निकालती और वायुगोलाको दूर करती है । इसी प्रकार जब शरीरमें कम्प पैदा हो तो मनमें बड़े भारी पर्वतकी धारणा करे । बोलनेमें रुकावट होनेपर वाग्देवीकी और बहरापन आनेपर श्रवणशक्तिकी धारणा करे । इसी प्रकार प्याससे पीड़ित होनेपर ऐसी धारणा करे कि जिह्वापर आमका फल रक्खा हुआ है और उससे रस मिल रहा है । तात्पर्य यह कि जिस-जिस अङ्गमें रोग पैदा हो, वहाँ-वहाँ उसमें लाभ पहुँचानेवाली धारणा करे । गर्मीमें सर्दीकी और सर्दीमें गर्मीकी धारणा करे। धारणाके द्वारा ही अपने मस्तकपर काठकी कील रखकर दूसरे काष्ठके द्वारा उसे ठोंकनेकी भावना करे। इससे योगीकी लुप्त हुई स्मरणशक्तिका तत्काल ही आविर्भाव हो जाता है । इसके सिवा सर्वत्र व्यापक द्युलोक, पृथ्वी, वायु और अग्निकी भी धारणा करे । इससे अमानवीय शक्तियों तथा जीव-जन्तुओंसे होनेवाली बाधाओंकी चिकित्सा होती है। यदि कोई मानवेतर जीव योगीके भीतर प्रवेश कर जाय तो वह वायु और अग्निकी धारणा करके उसे अपने शरीरके भीतर ही जला डाले । राजन् ! इस प्रकार योगवेत्ता पुरुषको सब प्रकारसे अपनी रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका साधक है ।

योग-प्रवृत्तिके लक्षणोंको बतलाने तथा उनपर गर्व करनेसे योगीका विज्ञान लुप्त हो जाता है; इसलिये उन प्रवृत्तियोंको गुप्त ही रखना चाहिये । चञ्चलताका न होना, नीरोग रहना, निष्ठुरता न धारण करना, उत्तम सुगन्धका आना, मल-मूत्र कम होना, शरीरमें कान्ति, मनमें प्रसन्नता और वाणीके स्वरमें कोमलताका उदय होना—ये सब योग-प्रवृत्तिके प्रारम्भिक चिह्न हैं । यदि योगीको देखकर लोगोंके मनमें अनुराग हो, परोक्षमें सब लोग उसके गुणोंका बखान करने लगें और कोई भी जीव-जन्तु उससे भयभीत न हो तो यह योगमें सिद्धि प्राप्त होनेकी उत्तम पहचान है । जिसे अत्यन्त भयानक सर्दी-गर्मी आदिसे कोई कष्ट नहीं होता तथा जो दूसरोंसे भयभीत नहीं होता, सिद्धि उसके निकट खड़ी है।

योगके विघ्न, उनसे बचनेके उपाय, सात धारणा, आठ ऐश्वर्य तथा योगीकी मुक्ति

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मसाक्षात्कारके समय योगी पुरुषके समक्ष जो विघ्न उपस्थित होते हैं, उनका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ; सुनो । उस समय वह सकाम कर्म करना चाहता है और मानवीय भोगोंकी अभिलाषा करता है । दानके उत्तमोत्तम फल, स्त्री, विद्या, माया, सोना-चाँदी आदि धन, सोने आदिके अतिरिक्त वैभव, स्वर्गलोक, देवत्व, इन्द्रत्व, रसायनसंग्रह, उसे बनानेकी क्रियाएँ, हवामें उड़नेकी शक्ति, यज्ञ, जल और अग्निमें प्रवेश करना, श्राद्धों तथा समस्त दानोंका फल तथा नियम, व्रत, इष्ट, पूर्त एवं देव-पूजा आदिसे मिलनेवाले फलोंकी इच्छा करता है । जब चित्तकी ऐसी अवस्था हो तो योगी उसे कामनाओंकी ओरसे हटाये और परब्रह्मके चिन्तनमें लगाये । ऐसा करनेपर उसे विघ्नोंसे छुटकारा मिल जाता है ।

इन विघ्नोंपर विजय पा लेनेके बाद योगीके सामने फिर दूसरे-दूसरे सात्त्विक, राजस और तामस विघ्न उपस्थित होते हैं । प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त—ये पाँच उपसर्ग योगियोंके योगमें विघ्न डालनेके लिये प्रकट होते हैं। इनका परिणाम बड़ा कटु होता है । जब सम्पूर्ण वेदोंके अर्थ, काव्य और शास्त्रोंके अर्थ, सम्पूर्ण विद्याएँ और शिल्पकला आदि अपने-आप योगीकी समझमें आ जायँ, तो प्रतिभासे सम्बन्ध रखनेके कारण वह 'प्रातिभ' उपसर्ग कहलाता है । जब योगी सहस्रों योजन दूरसे भी सम्पूर्ण शब्दोंको सुनने और

उनके अभिप्रायको समझने लगता है, तब वह श्रवण-शक्तिसे सम्बन्ध रखनेके कारण 'श्रावण' उपसर्ग कहा जाता है। जब वह देवताओंकी भाँति आठों दिशाओंकी वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखने लगता है तब उसे 'दैव' उपसर्ग कहते हैं। जब योगीका मन दोषके कारण सब प्रकारके आचारोंसे भ्रष्ट हो निराधार भटकने लगता है, तब वह 'भ्रम' कहलाता है। जलमें उठती हुई भँवरकी तरह जब ज्ञानका आवर्त सब ओर व्याप्त होकर चित्तको नष्ट कर देता है, तब वह 'आवर्त' नामक उपसर्ग कहा जाता है। इन महाघोर उपसर्गोंसे योगका नाश हो जानेके कारण सम्पूर्ण योगी देवतुल्य होकर भी बारंबार आवागमनके चक्रमें घूमते हैं। इसलिये योगी पुरुष शुद्ध मनोमय उज्ज्वल कंबल ओढ़कर परब्रह्म परमात्मामें मनको लगाकर सदा उन्हींका चिन्तन करे।

पृथ्वी आदि सात प्रकारकी सूक्ष्म धारणाएँ हैं, जिन्हें योगी मस्तकमें धारण करे। सबसे पहले पृथ्वीकी धारणा है। उसे धारण करनेसे योगीको सुख प्राप्त होता है। वह अपनेको साक्षात् पृथ्वी मानता है, अतः पार्थिव विषय गन्धका त्याग कर देता है। इसी प्रकार वह जलकी धारणासे सूक्ष्म रसका, तेजकी धारणासे सूक्ष्म रूपका, वायुकी धारणासे स्पर्शका तथा आकाशकी धारणासे सूक्ष्म प्रवृत्ति तथा शब्दका त्याग करता है। जब अपने मनसे धारणाके द्वारा सम्पूर्ण भूतोंके मनमें प्रवेश करता है, तब उस मानसी धारणाको धारण करनेके कारण उसका मन अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है। इसी प्रकार योगवेत्ता पुरुष सम्पूर्ण जीवोंकी बुद्धिमें प्रवेश करके परम उत्तम सूक्ष्म बुद्धिको प्राप्त करता और फिर उसे त्याग देता है। अलर्क! जो योगी इन सातों सूक्ष्म धारणाओंका अनुभव करके उन्हें त्याग देता है, उसको इस संसारमें फिर नहीं आना पड़ता। जितात्मा पुरुष क्रमशः इन सातों धारणाओंके सूक्ष्म रूपको देखे और त्याग करता जाय। ऐसा करनेसे वह परम सिद्धिको प्राप्त होता है। राजन्! योगी पुरुष जिस-जिस भूतमें राग करता है, उसी-उसीमें आसक्त होकर नष्ट हो जाता है। इसलिये इन समस्त सूक्ष्म भूतोंको परस्पर संसक्त जानकर जो इन्हें त्याग देता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है। पाँचों भूत और मन-बुद्धिके इन सातों सूक्ष्म रूपोंका विचार कर लेनेपर उनके प्रति वैराग्य होता है, जो सद्भावका ज्ञान रखनेवाले पुरुषकी मुक्तिका कारण बनता है। जो गन्ध आदि विषयोंमें आसक्त होता है, उसका विनाश हो जाता है और उसे बारंबार संसारमें जन्म लेना पड़ता है। योगी पुरुष इन सातों धारणाओंको जीत लेनेके बाद यदि चाहे तो किसी भी सूक्ष्म भूतमें लीन हो सकता है। देवता, असुर, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंके शरीरमें भी वह लीन हो जाता है, किन्तु कहीं भी आसक्त नहीं होता।

अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व—इन आठ ईश्वरीय गुणोंको, जो निर्वाणकी सूचना देनेवाले हैं, योगी प्राप्त करता है। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म रूप धारण करना 'अणिमा' है और शीघ्र-से-शीघ्र कोई काम कर लेना 'लघिमा' नामक गुण है। सबके लिये पूजनीय हो जाना 'महिमा' कहलाता है। जब कोई भी वस्तु अप्राप्य न रहे तो वह 'प्राप्ति' नामक सिद्धि है। सर्वत्र व्यापक होनेसे योगीको 'प्राकाम्य' नामक सिद्धिकी प्राप्ति मानी जाती है। जब वह सब कुछ करनेमें समर्थ—ईश्वर हो जाता है तो उसकी वह सिद्धि 'ईशित्व' कहलाती है। सबको वशमें कर लेनेसे 'वशित्व'की सिद्धि होती है। यह योगीका सातवाँ गुण है। जिसके द्वारा इच्छाके अनुसार कहीं भी रहना आदि सब काम हो सकें, उसका नाम 'कामावसायित्व' है। ये ऐश्वर्यके साधनभूत आठ गुण हैं।

मुक्त होनेसे उसका कभी जन्म नहीं होता। वह वृद्धि और नाशको भी नहीं प्राप्त होता। न तो उसका क्षय होता है और न परिणाम। पृथ्वी आदि भूतसमुदायसे न तो वह काटा जाता है, न भीगकर गलता है, न जलता है और न सूखता ही है। शब्द आदि विषय भी उसको लुभा नहीं सकते। उसके लिये शब्द आदि विषय हैं ही नहीं। न तो वह उनका भोक्ता है और न उनसे उसका संयोग होता है। जैसे अन्य खोटे द्रव्योंसे मिला और खण्ड-खण्ड हुआ सुवर्ण जब आगमें तपाया जाता है, तब उसका दोष जल जाता है और वह शुद्ध होकर अपने दूसरे टुकड़ोंसे मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार यत्नशील योगी जब योगाग्निसे तपता है, तब अन्तःकरणके समस्त दोष जल जानेके कारण ब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त हो जाता है। फिर वह किसीसे पृथक् नहीं रहता। जैसे आगमें डाली हुई आग उसमें मिलकर एक हो जाती है, उसका वही नाम और वही स्वरूप हो जाता है, फिर उसको विशेष रूपसे पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी तरह जिसके पाप दग्ध हो गये हैं, वह योगी परब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त होनेपर फिर कभी उनसे पृथक् नहीं होता। जैसे जलमें डाला हुआ जल उसके साथ मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार योगीका आत्मा परमात्मामें मिलकर तदाकार हो जाता है।

योगचर्या, प्रणवकी महिमा तथा अरिष्टोंका वर्णन और उनसे सावधान होना

अलर्क बोले—भगवन् ! अब मैं योगीके आचार-व्यवहारका यथार्थ वर्णन सुनना चाहता हूँ। वह किस प्रकार ब्रह्मके मार्गका अनुसरण करके कभी क्लेशमें नहीं पड़ता ?

दत्तात्रेयजीने कहा—राजन् ! ये जो मान और अपमान हैं, ये साधारण मनुष्योंको प्रसन्नता और उद्वेग देनेवाले होते हैं। उन्हें मानसे प्रसन्नता और अपमानसे उद्वेग होता है; किन्तु योगी उन दोनोंको ही ठीक उल्टे अर्थमें ग्रहण करता है। अतः वे उसकी सिद्धिमें सहायक होते हैं। योगीके लिये मान और अपमानको विष एवं अमृतके रूपमें बताया गया है। इनमें अपमान तो अमृत है और मान भयंकर विष। योगी मार्गको भलीभाँति देखकर पैर रक्खे। वस्त्रसे छानकर जल पीये, सत्य वचन बोले और बुद्धिसे विचार करके जो ठीक जान पड़े, उसीका चिन्तन करे।* योगवेत्ता पुरुष आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, देवयात्रा तथा उत्सवोंमें न जाय। कार्यकी सिद्धिके लिये किसी बड़े आदमीके यहाँ भी कभी न जाय। जब गृहस्थके यहाँ रसोई-घरसे धुआँ न निकलता हो, आग बुझ गयी हो और घरके सब लोग खा-पी चुके हों, उस समय योगी भिक्षाके लिये जाय; परन्तु प्रतिदिन एक ही घरपर न जाय। योगमें प्रवृत्त रहनेवाला पुरुष सत्पुरुषोंके मार्गको कलङ्कित न करते हुए प्रायः ऐसा व्यवहार करे, जिससे लोग उसका सम्मान न करें, तिरस्कार ही करें। वह गृहस्थोंके यहाँसे अथवा घूमते-फिरते रहनेवाले लोगोंके घरोंसे भिक्षा ग्रहण करे; इनमें भी पहली अर्थात् गृहस्थके घरकी भिक्षा ही सर्वश्रेष्ठ एवं मुख्य है। जो गृहस्थ विनीत, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, श्रोत्रिय एवं उदार हृदयवाले हों, उन्हींके यहाँ योगीको सदा भिक्षाके लिये जाना चाहिये। इनके बाद जो दुष्ट और पतित न हों, ऐसे अन्य लोगोंके यहाँ भी वह भिक्षाके लिये जा सकता है; परन्तु छोटे वर्णके लोगोंके यहाँ भिक्षा माँगना निकृष्ट वृत्ति मानी गयी है। योगीके लिये भिक्षाप्राप्त अन्न, जौकी लप्सी, छाछ, दूध, जौकी खिचड़ी, फल, मूल, कँगनी, कण, तिलका चूर्ण और सत्तू—ये आहार उत्तम और सिद्धिदायक हैं। अतः योगी इन्हें भक्तिपूर्वक एकाग्र-चित्तसे भोजनके काममें ले। पहले एक बार जलसे आचमन करके मौन हो क्रमशः पाँच ग्रासोंकी प्राणरूप अग्निमें आहुति दे। 'प्राणाय स्वाहा' कहकर पहला ग्रास मुँहमें डाले। यही प्रथम आहुति मानी गयी है। इसी प्रकार 'अपानाय स्वाहा' से दूसरी, 'समानाय स्वाहा'से तीसरी, 'उदानाय स्वाहा'से चौथी और 'व्यानाय स्वाहा' से पाँचवीं आहुति दे। फिर प्राणायामके द्वारा इन्हें पृथक् करके शेष अन्न इच्छानुसार भोजन करे। भोजनके अन्तमें फिर एक बार आचमन करे। तत्पश्चात् हाथ-मुँह धोकर हृदयका स्पर्श करे। चोरी न करना, ब्रह्मचर्यका पालन, त्याग, लोभका अभाव और अहिंसा—ये भिक्षुओंके पाँच व्रत हैं। क्रोधका अभाव, गुरुकी सेवा, पवित्रता, हल्का भोजन और प्रतिदिन स्वाध्याय - ये पाँच उनके नियम बताये गये हैं।*

जो योगी 'यह जानने योग्य है, वह जानने योग्य है' इस प्रकार भिन्न-भिन्न विषयोंकी जानकारीके लिये लालायित-सा होकर इधर-उधर विचरता है, वह हजारों कल्पोंमें भी ज्ञातव्य वस्तुको नहीं पा सकता। आसक्तिका त्याग करके, क्रोधको जीतकर, स्वल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो, बुद्धिसे इन्द्रियद्वारोंको रोककर मनको ध्यानमें लगावे। योगयुक्त रहनेवाला योगी सदा एकान्त स्थानोंमें, गुफाओं और वनोंमें भली-भाँति ध्यान करे। वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड—ये तीन दण्ड जिसके अधीन हों, वही महायति त्रिदण्डी है। राजन्! जिसकी दृष्टिमें सत्-असत् तथा गुण-अवगुणरूप यह समस्त जगत् आत्मस्वरूप हो गया है, उस योगीके लिये कौन प्रिय है और कौन अप्रिय। जिसकी बुद्धि शुद्ध है, जो मिट्टीके

* मानापमानौ यावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौ नृणाम्।
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ॥
मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते।
अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तु विषमं विषम्॥
चक्षुःपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतं च चिन्तयेत्॥
(४१।२-४)

* अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च त्यागोऽलोभस्तथैव च।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमाणि वै॥
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्।
नित्यस्वाध्याय इत्येते नियमाः पञ्च कीर्तिताः॥
(४१।१६-१७)

ढेले और सुवर्णको समान समझता है, सब प्राणियोंके प्रति जिसका समान भाव है, वह एकाग्रचित्त योगी उस सनातन अविनाशी परम पदको प्राप्त होकर फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। वेदोंसे सम्पूर्ण यज्ञकर्म श्रेष्ठ हैं, यज्ञोंसे जप, जपसे ज्ञानमार्ग और उससे आसक्ति एवं रागसे रहित ध्यान श्रेष्ठ है। ऐसे ध्यानके प्राप्त हो जानेपर सनातन ब्रह्मकी उपलब्धि होती है। जो एकाग्रचित्त, ब्रह्मपरायण, प्रमाद-रहित, पवित्र, एकान्तप्रेमी और जितेन्द्रिय होता है, वही महात्मा इस योगको पाता है और फिर अपने उस योगसे ही वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। *

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो योगी इस प्रकार भली-भाँति योगचर्यामें स्थित होते हैं, उन्हें सैकड़ों जन्मोंमे भी अपने पथसे विचलित नहीं किया जा सकता। जिनके सब ओर चरण, मस्तक और कण्ठ हैं, जो इस विश्वके स्वामी तथा विश्वको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन विश्वरूपी परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन करके उनकी प्राप्तिके लिये परम पुण्यमय 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रका जप करे। उसीका अध्ययन करे। अब उसके स्वरूपका वर्णन सुनो। अकार, उकार और मकार—ये जो तीन अक्षर हैं, ये ही तीन मात्राएँ हैं। ये क्रमशः सात्त्विक, राजस और तामस हैं। इनके सिवा एक अर्द्धमात्रा भी है, जो अनुस्वार या बिन्दुके रूपमें इन सबके ऊपर स्थित है। वह अर्द्धमात्रा निर्गुण है। योगी पुरुषोंको ही उसका ज्ञान हो पाता है। उसका उच्चारण गान्धार स्वरसे होता है, इसलिये उसे 'गान्धारी' भी कहते हैं। उसका स्पर्श चींटीकी गतिके समान होता है। प्रयोग करनेपर वह मस्तक-स्थानमें दृष्टिगोचर होती है। जैसे ॐकार उच्चारण किया जानेपर मस्तकके प्रति गमन करता है, उसी प्रकार ॐकारमय योगी अक्षरब्रह्ममें मिलकर अक्षररूप हो जाता है। प्रणव (ॐकार) धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म बेधनेयोग्य उत्तम लक्ष्य है। उस लक्ष्यको सावधानीके साथ बेधना चाहिये और बाणकी ही भाँति लक्ष्यमें प्रवेश करके तन्मय हो जाना चाहिये। यह ॐकार ही तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि, ब्रह्मा-विष्णु तथा महादेव एवं ऋक्-साम और यजुर्वेद है। इस ॐकारमें वस्तुतः साढ़े तीन मात्राएँ जाननी चाहिये। उनके चिन्तनमें लगा हुआ योगी उन्हींमें लयको प्राप्त होता है। अकार भूर्लोक, उकार भुवर्लोक और व्यञ्जनरूप मकार स्वर्लोक कहलाता है। पहली मात्रा व्यक्त, दूसरी अव्यक्त, तीसरी चिच्छक्ति तथा चौथी अर्द्ध-मात्रा परमपद कहलाती है। इसी क्रमसे इन मात्राओंको योगकी भूमिका समझना चाहिये। ॐकारके उच्चारणसे सम्पूर्ण सत् और असत्का ग्रहण हो जाता है। पहली मात्रा ह्रस्व, दूसरी दीर्घ और तीसरी प्लुत है, किन्तु अर्द्धमात्रा वाणीका विषय नहीं है। इस प्रकार यह ॐकार नामक अक्षर परब्रह्मस्वरूप है। जो मनुष्य इसे भलीभाँति जानता अथवा इसका ध्यान करता है, वह संसार-चक्रका त्याग करके त्रिविध बन्धनोंसे मुक्त हो परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाता है। * जिसका कर्मबन्धन

* त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत्॥
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च।
नित्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत्॥
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः॥
सर्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम्।
गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः॥
विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः
समस्तभूतेषु समः समाहितः।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च
परं हि गत्वा न पुनः प्रजायते॥
वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयज्ञक्रियाश्च
यज्ञाज्जप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात्।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं
तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः॥
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी
शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मा
विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः॥
(४१। २०—२६)

* तत्प्राप्तये महत् पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत्।
तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम्॥
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्।
एता एव त्रयो मात्राः सात्त्वराजसतामसाः॥
निर्गुणा योगिगम्यान्या चार्द्धमात्रोर्ध्वसंस्थिता।
गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया।
पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते॥
यथा प्रयुक्त ओङ्कारः प्रतिनिर्याति मूर्द्धनि।
तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे त्वक्षरो भवेत्॥

क्षीण नहीं हुआ है, वह अरिष्टसे अपनी मृत्यु जानकर प्राण-त्यागके समय भी योगका चिन्तन करे। इससे वह दूसरे जन्ममें पुनः योगी होता है। इसलिये जिसका योग सिद्ध नहीं हुआ है, वह तथा जिसका योग सिद्ध हो चुका है, वह भी सदा मृत्युसूचक अरिष्टोंको जाने, जिससे मृत्युके समय उसे कष्ट न उठाना पड़े।

महाराज! अब अरिष्टोंका वर्णन सुनो। मैं उन अरिष्टोंको बतलाता हूँ, जिनके देखनेसे योगवेत्ता पुरुष अपनी मृत्युको जान लेता है। जो मनुष्य देवमार्ग (आकाशगङ्गा), ध्रुव, शुक्र, चन्द्रमाकी छाया और अरुन्धतीको नहीं देख पाता, वह एक वर्षके बाद जीवित नहीं रहता। जो सूर्यके मण्डलको किरणोंसे रहित और अग्निको किरणमालाओंसे मण्डित देखता है, वह मनुष्य ग्यारह महीनेसे अधिक नहीं जी सकता। जो स्वप्नमें वमन, मूत्र और विष्ठाके भीतर सोने और चाँदीका प्रत्यक्ष दर्शन करता है, उसकी आयु दस महीनेतककी ही है। जो प्रेत, पिशाच आदि, गन्धर्वनगर तथा सुवर्णके वृक्ष देखने लगता है, वह नौ महीनोंतक जीवित रहता है। जो अकस्मात् स्थूल शरीरसे दुर्बल शरीरका हो जाता है या दुर्बलसे स्थूल हो जाता है तथा जिसकी प्रकृति सहसा बदल जाती है, उसका जीवन आठ महीनेतक ही रहता है। धूल या कीचड़में पैर रखनेपर जिसकी एड़ी या पादाग्रभागका चिह्न खण्डित दिखायी दे, वह सात मासतक जीवित रहता है। यदि गीध, कबूतर, उल्लू, कौआ, मांसखोर पक्षी या नीले रंगका पक्षी मस्तकपर बैठ जाय तो वह छः मास आयु शेष रहनेकी सूचना देता है। यदि कौए आकर चोंच मारें या धूलिकी वर्षासे आहत होना पड़े तथा अपनी छाया और तरहकी दिखायी दे तो वह चार-पाँच महीने ही जीवित रहता है। यदि बिना बादलके ही दक्षिण दिशाके आकाशमें बिजली चमकती दिखायी दे और रातमें इन्द्रधनुषका दर्शन हो तो उस मनुष्यका जीवन दो-तीन महीनेका ही है। जो घी, तेल, दर्पण अथवा जलमें अपनी परछाईं न देख सके अथवा देखे भी तो बेसिरकी ही परछाईं दिखायी दे तो वह एक महीनेसे अधिक नहीं जी सकता। राजन्! जिस योगीके शरीरसे बकरे अथवा मुर्देकी-सी दुर्गन्ध आती हो, उसका जीवन पंद्रह दिनोंका ही समझना चाहिये। स्नान करते ही जिसकी छाती और पैर सूख जायँ और जल पीनेपर भी कण्ठ सूखने लगे, वह केवल दस दिनतक ही जीवित रह सकता है। जिसके भीतरकी वायु पृथक् होकर मर्मस्थानोंको छेदती-सी जान पड़े तथा जलके स्पर्शसे भी जिसके शरीरमें रोमाञ्च न हो, उसकी मृत्यु पास खड़ी है। जो स्वप्नमें भालू और वानरकी सवारीपर बैठकर गीत गाता हुआ दक्षिण दिशामें जाय, उसकी मृत्यु समयकी प्रतीक्षा नहीं करती। स्वप्नमें ही लाल और काले कपड़े पहने हुए कोई स्त्री हँसती-गाती हुई जिसे दक्षिण दिशाकी ओर ले जाय, वह भी जीवित नहीं रहता। यदि स्वप्नमें नंगा एवं मूँड़ मुँड़ाया हुआ कोई महाबली मनुष्य हँसता और उछलता-कूदता दिखायी दे तो समझना चाहिये कि मौत आ गयी। जो स्वप्नावस्थामें अपनेको पैरसे लेकर चोटीतक कीचड़के समुद्रमें डूबा देखता है, वह मनुष्य तत्काल मृत्युको प्राप्त होता है। जो स्वप्नमें केश, अँगारे, भस्म, सर्प और बिना पानीकी नदी देखता है, उसकी दसवेंसे लेकर ग्यारहवें दिनतक मृत्यु हो जाती है। स्वप्नमें विकराल, भयंकर और काले रंगके पुरुष हाथोंमें हथियार लिये जिसको पत्थरोंसे मारते हैं, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। सूर्योदयके समय जिसके सम्मुख और बायें-दायें गीदड़ी रोती हुई जाय, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। भोजन कर लेनेपर भी जिसके हृदयमें भूखका कष्ट होता हो तथा जो दाँतोंसे दाँत घिसता रहे, उसकी आयु भी निश्चय ही समाप्त हो चुकी है। जिसको दीपककी गन्धका अनुभव न होता हो, जो रात और दिनमें भी डरता हो तथा दूसरेके नेत्रमें अपनी

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम्।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥
ओमित्येतद् त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः।
विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च॥
मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः।
तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात्॥
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारश्चोच्यते भुवः।
सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकः परिकल्प्यते॥
व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसंज्ञिता।
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम्॥
अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः।
ओमित्युच्चारणाद् सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत्॥
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता।
तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचसः सा न गोचरा॥
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्।
यस्तु वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः॥
संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः।
प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि॥
(४२। ३—१५)

परछाईं न देखता हो, वह जीवित नहीं रहता। जो आधी रातके समय इन्द्रधनुष और दिनमें तारोंको देख ले, वह आत्मवेत्ता पुरुष अपनी आयु क्षीण हुई समझे। जिसकी नाक टेढ़ी और कान ऊँचे-नीचे हो जाते हैं तथा जिसके बायें नेत्रसे सदा पानी गिरता रहता है, उसकी आयु समाप्त हो चुकी है। यदि मुँह सब ओरसे लाल और जीभ काली पड़ जाय तो बुद्धिमान् पुरुषको अपनी मृत्यु निकट समझनी चाहिये। जो स्वप्नमें ऊँट या गदहेपर बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर जाय, उसकी तत्काल मृत्यु होनेवाली है—ऐसा जानना चाहिये। जो अपने दोनों कान बंद कर लेनेपर अपनी ही आवाज न सुने तथा जिसके नेत्रोंकी ज्योति नष्ट हो जाय, वह भी जीवित नहीं रह सकता। जो स्वप्नमें किसी गड्ढेके भीतर गिरे और उससे निकलनेका द्वार बंद हो जाय तथा फिर वह उस गड्ढेसे न निकल सके, तो वहींतक उसका जीवन समझना चाहिये। जिसकी दृष्टि ऊपरकी ओर उठे किन्तु वहाँ ठहर न सके, बार-बार लाल होकर घूमती रहे, मुँह गरम हो और नाभि शीतल हो जाय तो ये लक्षण मनुष्यके शरीर-परिवर्तनकी सूचना देते हैं। जो स्वप्नमें अग्नि या जलके भीतर प्रवेश करके फिर न निकले, उसके जीवनका वहीं अन्त है। जिसको दुष्ट जीव रातमें और दिनमें भी मारें, वह सात रातके भीतर निश्चय ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जो अपने निर्मल श्वेतवस्त्रको भी लाल या काले रंगका देखे, उसकी भी मृत्यु निकट समझनी चाहिये। स्वभावका विपरीत होना और प्रकृतिका बिल्कुल बदल जाना भी मृत्युके निकट होनेकी सूचना देते हैं।

जिसका काल निकट आ गया है, वह मनुष्य जिनके सामने सदा विनीत रहता था, जो लोग उसके परम पूजनीय थे, उन्हींकी अवहेलना और निन्दा करता है। वह देवताओंकी पूजा नहीं करता। बड़े-बूढ़ों, गुरुजनों और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, माता-पिता तथा दामादका सत्कार नहीं करता। इतना ही नहीं, वह योगियों, ज्ञानी विद्वानों तथा अन्य महात्मा पुरुषोंके आदर-सत्कारसे भी मुँह मोड़ लेता है। बुद्धिमान् पुरुषोंको मृत्युके इन लक्षणोंकी जानकारी रखनी चाहिये। राजन्! योगी पुरुषोंको उचित है कि वे सदा यत्नपूर्वक इन अरिष्टोंपर दृष्टि रक्खें; क्योंकि ये वर्षके अन्तमें तथा दिन-रातके भीतर भी फल देनेवाले होते हैं। राजन्! इनके विशद फलोंको भलीभाँति देखना चाहिये और मन-ही-मन विचार करके उस समयके अनुसार कार्य करना चाहिये। मृत्युकालको जान लेनेपर योगी किसी निर्भय स्थानमें बैठकर योगाभ्यासमें प्रवृत्त हो जाय, जिससे उसका वह समय निष्फल न जाने पाये। अरिष्ट देखकर योगी मृत्युका भय छोड़ दे। और उसके स्वभावका विचार करके जितने समयमें वह आनेवाली हो, उतने समयके प्रत्येक भागमें योगी योग-साधनमें लगा रहे। दिनके पूर्वाह्न, मध्याह्न तथा अपराह्नमें अथवा रात्रिके जिस भागमें अरिष्टका दर्शन हो, तभीसे लेकर जबतक मृत्यु न आवे, तबतक योगमें लगा रहे। तदनन्तर सारा भय छोड़कर जितात्मा पुरुष उस कालपर विजय प्राप्त करके उसी स्थानपर या और कहीं—जहाँ भी अपना चित्त स्थिर हो सके, योगमें संलग्न हो जाय और तीनों गुणोंको जीतकर परमात्मामें तन्मय हो चिद्वृत्तिका भी त्याग कर दे। यों करनेसे वह उस इन्द्रियातीत परम निर्वाणस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होता है, जो न तो बुद्धिका विषय है और न वाणी ही जिसका वर्णन कर सकती है। अलर्क! इन सब बातोंका मैंने तुमसे यथार्थ वर्णन किया है; अब तुम जिस प्रकार ब्रह्मको प्राप्त हो सकोगे, वह संक्षेपमें सुनो।

जैसे चन्द्रमाका संयोग पाकर ही चन्द्रकान्तमणि जलकी सृष्टि करती है, उनका संयोग पाये बिना नहीं, यही उपमा योगीके लिये भी है। योगी भी योगयुक्त होकर ही सिद्धि लाभ कर सकता है, अन्यथा नहीं। जैसे सूर्यकी किरणोंका संयोग पाकर ही सूर्यकान्तमणि आग पैदा करती है, अकेली रहकर नहीं, यही उपमा योगीके लिये भी है। उसे योगका आश्रय कभी नहीं छोड़ना चाहिये। जैसे चींटी, चूहा, नेवला, छिपकली और गौरैया—ये सब घरमें गृहस्वामीकी ही भाँति रहते हैं और घर गिर जानेपर अन्यत्र चल देते हैं,किन्तु घरके गिरनेका दुःख केवल स्वामीको ही होता है, उन सबोंको उसके लिये कुछ भी कष्ट नहीं होता, योगकी सिद्धिके लिये भी यही उपमा है। अर्थात् योगीको अपने गृह, वैभव और शरीर आदिके प्रति तनिक भी ममता नहीं रखनी चाहिये। हरिनके बच्चेके मस्तकपर जब सींग उगने लगता है, तब पहले उसका अग्रभाग तिलके समान दिखायी देता है। फिर वह उस हरिनके साथ-ही-साथ बढ़ता है। इस दृष्टान्तपर विचार करनेसे योगी सिद्धिको प्राप्त होता है। अर्थात् उसे भी धीरे-धीरे अपनी योगसाधना बढ़ानी चाहिये। जैसे मनुष्य रोगसे पीड़ित होनेपर भी अपनी इन्द्रियोंसे काम लेता ही है, उसी प्रकार योगी बुद्धि आदि परकीय साधनोंसे, जो आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं, परम पुरुषार्थका साधन करे।

अलर्ककी मुक्ति एवं पिता-पुत्रके संवादका उपसंहार

सुमति कहते हैं—तदनन्तर राजा अलर्कने अत्रिनन्दन दत्तात्रेयजीके चरणोंमें प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्नताके साथ विनीत भावसे कहा—'ब्रह्मन्! देवताओंने मुझे शत्रुद्वारा पराजित कराकर जो मेरे समक्ष प्राणोंको संशयमें डालनेवाला अत्यन्त उग्र भय उपस्थित कर दिया, इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। काशिराजका महान् बल-वैभवसे सम्पन्न पराक्रम मेरा विनाश करनेके लिये यहाँ प्रकट हुआ था; किन्तु उसने मुझे आपके सत्सङ्गका शुभ अवसर प्रदान किया, यह कितने आनन्दकी बात है। सौभाग्यसे ही मेरा सैनिक बल घट गया, सौभाग्यसे ही मेरे सेवक मारे गये, सौभाग्यसे ही मेरा खजाना खाली हुआ, सौभाग्यसे ही मैं भयको प्राप्त हुआ, सौभाग्यने ही मुझे आपके युगल चरणोंकी स्मृति करायी और सौभाग्यसे ही आपका सारा उपदेश मेरे चित्तमें बैठ गया। ब्रह्मन्! सौभाग्यवश आपके सङ्गसे मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ और सौभाग्यसे ही आपने मुझपर कृपा की। जब पुरुषके शुभ दिन आते हैं, तब अनर्थ भी अर्थका साधक बन जाता है, जैसे इस समय यह शत्रुजनित आपत्ति भी आपके समागमसे उपकार करनेवाली सिद्ध हुई। भगवन्! भाई सुबाहु तथा काशिराज दोनों ही मेरे उपकारी हैं, जिनके कारण मुझे आपके समीप आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके प्रसादरूपी अग्निसे मेरा अज्ञान और पाप जल गया। अब मैं ऐसा यत्न करूँगा, जिससे फिर इस प्रकार दुःखका भागी न बनूँ। आप मेरे ज्ञानदाता महात्मा हैं; अतः आपसे आज्ञा लेकर मैं गार्हस्थ्य-आश्रमका परित्याग करूँगा, जो विपत्तिरूपी वृक्षोंका वन है।'

दत्तात्रेयजी बोले—राजेन्द्र! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। मैंने जैसा तुम्हें बताया है, उसीके अनुसार ममता और अहङ्कारसे रहित हो मोक्षके लिये विचरते रहो।

सुमति कहते हैं—दत्तात्रेयजीके यों कहनेपर राजा अलर्कने उन्हें प्रणाम किया और बड़ी उतावलीके साथ वे उस स्थानपर आये, जहाँ उनके बड़े भाई सुबाहु और काशिराज मौजूद थे। महाबाहु वीरवर काशिराजके निकट पहुँचकर अलर्कने सुबाहुके सामने ही हँसते हुए कहा—



'राज्यकी इच्छा रखनेवाले काशिराज! अब तुम इस बढ़े हुए राज्यको भोगो। अथवा यदि तुम्हारी इच्छा हो तो भाई सुबाहुको ही दे डालो।'

काशिराजने कहा—अलर्क! तुमने युद्धके बिना ही राज्य क्यों छोड़ दिया? यह तो क्षत्रियका धर्म नहीं है और तुम क्षत्रियधर्मके ज्ञाता हो। जब अमात्यवर्ग पराजित हो जाय, तब राजा स्वयं ही मृत्युका भय छोड़कर अपने शत्रुको लक्ष्य करके बाणका संधान करे और उसे जीतकर इच्छानुसार श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करे। साथ ही परमसिद्धिके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान भी करता रहे।

अलर्क बोले—वीर! तुम्हारा कथन ठीक है, पहले मेरे मनमें भी ऐसे ही विचार उठते थे; किन्तु अब मेरी विपरीत धारणा हो गयी है। इसका कारण सुनो। नरेश्वर! तुम्हारे भयसे अत्यन्त दुःख पाकर मैंने योगीश्वर दत्तात्रेयजीकी शरण ली और उनकी कृपासे अब मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है। समस्त इन्द्रियोंको जीतकर तथा सब ओरसे आसक्ति हटाकर

मनको ब्रह्ममें लगाना और इस प्रकार मनको जीतना ही सबसे बड़ी विजय है; अतः अब मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ, तुम भी मेरे शत्रु नहीं हो तथा ये सुबाहु भी मेरे अपकारी नहीं हैं। मैंने इन सब बातोंको अच्छी तरह समझ लिया है। अतः राजन्! अब अपने लिये तुम कोई दूसरा शत्रु ढूँढ़ो।

अलर्कके यों कहनेपर राजा सुबाहु अत्यन्त प्रसन्न होकर उठे और 'धन्य! धन्य!' कहकर अपने भाईका अभिनन्दन करनेके पश्चात् वे काशिराजसे इस प्रकार बोले—'नृपश्रेष्ठ! मैं जिस कार्यके लिये तुम्हारी शरणमें आया था, वह सब पूरा हो गया। अब मैं जाता हूँ। तुम सुखी रहो।'

काशिराजने कहा—सुबाहो! तुम किसलिये आये थे? और तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध हुआ? यह बताओ। मुझे तुम्हारी बातोंसे बड़ा कौतूहल हो रहा है। तुमने मेरे पास आकर कहा था कि 'मेरे बाप-दादोंका बहुत बड़ा राज्य अलर्कने हड़प लिया है। वह उनसे जीतकर मुझे दे दो।' तब मैंने तुम्हारे भाईपर आक्रमण करके यह राज्य अपने वशमें किया। यह तुम्हें कुलपरम्परासे प्राप्त है, अतः इसका उपभोग करो।

सुबाहु बोले—काशिराज! मैंने जिस उद्देश्यसे यह प्रयत्न किया था और जिसके लिये तुमसे भी महान् उद्योग कराया, वह बतलाता हूँ; सुनो। मेरा यह छोटा भाई तत्त्वज्ञ होकर भी सांसारिक भोगोंमें फँसा हुआ था। मेरे दो बड़े भाई परम ज्ञानी हैं। उन दोनोंको तथा मुझे भी हमारी माताने जब बचपनमें दूध पिलाया, उसी समय कानोंमें तत्त्व-ज्ञान भी भर दिया। मनुष्यमात्रको जिनका ज्ञान होना चाहिये, वे सभी पदार्थ माताने हमारे सामने प्रकाशित कर दिये। किन्तु यह अलर्क उस ज्ञानसे वञ्चित रह गया था। राजन्! जैसे एक साथ यात्रा करनेवालोंमेंसे एकको कष्टमें पड़ा देखकर साधु पुरुषोंके हृदयमें दुःख होता है, उसी प्रकार इस अलर्कको गृहस्थ-आश्रमके मोहमें फँसकर कष्ट उठाते हुए देखकर हम तीनों भाइयोंको कष्ट होता था। क्योंकि यह इस शरीरका सम्बन्धी है, और इसके साथ 'भाई' की कल्पना जुड़ी हुई है। तब मैंने सोचा, दुःख पड़नेपर ही इसके मनमें वैराग्यकी भावना जाग्रत् होगी; अतः युद्धोद्योगके लिये तुम्हारा आश्रय लिया। फिर इस दुःखसे इसको वैराग्य हुआ और वैराग्यसे ज्ञानकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार जो कार्य मुझे अभीष्ट था, वह पूरा हो गया। अतः तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। मदालसाके गर्भमें रहकर और उसके स्तनोंका दूध पीकर यह अलर्क दूसरी स्त्रीके पुत्रोंद्वारा ग्रहण किये हुए मार्गपर न जाय, यही विचारकर मैंने तुम्हारा सहारा लिया था। सो सब कार्य पूरा हो गया, अब मैं सिद्धिके लिये जाता हूँ। नरेन्द्र! जो लोग कष्टमें पड़े हुए अपने स्वजन, बन्धु और सुहृद्की उपेक्षा करते हैं, वे मेरे विचारसे विकलेन्द्रिय हैं, उनकी इन्द्रियाँ—हाथ-पैर आदि बेकार हैं। जो समर्थ सुहृद्, स्वजन और बन्धुके होते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे वञ्चित हो कष्ट भोगता है, वहाँ उसके वे सुहृद् आदि ही निन्दाके पात्र होते हैं। राजन्! तुम्हारे सङ्गसे मैंने यह बहुत बड़ा कार्य सिद्ध कर लिया। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाऊँगा। साधुश्रेष्ठ! तुम भी ज्ञानी बनो।

काशिराजने कहा—महात्मन्! तुमने अलर्कका तो बहुत बड़ा उपकार किया, अब मेरी भलाईमें अपना मन क्यों नहीं लगाते? सत्पुरुषोंका साधुपुरुषोंके साथ जो समागम होता है, वह सदा फल देनेवाला ही होता है, निष्फल नहीं; अतः तुम्हारे सङ्गसे मेरी भी उन्नति होनी चाहिये।



सुबाहु बोले—राजन्! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं। इनमेंसे धर्म, अर्थ और काम तो तुम्हें

प्राप्त हैं। केवल मोक्षसे तुम वञ्चित हो, अतः वही तुम्हें संक्षेपसे बतलाता हूँ। एकाग्रचित्त होकर सुनो। सुनकर भलीभाँति उसकी आलोचना करो और उसीके अनुसार अपने कल्याणके यत्नमें लग जाओ। राजन्! 'यह मेरा है और यह मैं हूँ' इस प्रकारकी प्रतीति तुम्हें नहीं करनी चाहिये; क्योंकि आलोचनाका विषय तो बाह्य धर्म ही होता है। धर्मके अभावमें कोई आश्रय नहीं रहता। अहं (मैं) यह संज्ञा किसकी है, इस बातका तुम्हें विचार करना चाहिये। बाह्य और आन्तरिक तत्त्वकी आलोचना करनी चाहिये। आधी रातके बाद भी इस तत्त्वका विचार करना चाहिये। अव्यक्तसे लेकर विशेषतक जो विकाररहित, अचेतन व्यक्त और अव्यक्त तत्त्व है, उसे जानना चाहिये और उनका ज्ञाता जो मैं हूँ, वह मैं कौन हूँ—इसे भी जानना चाहिये। इस 'मैं'को ही जान लेनेपर तुम्हें सबका ज्ञान हो जायगा। अनात्मामें आत्मबुद्धिका होना और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना—यही अज्ञान है। भूपाल! वह मैं सर्वत्र व्यापक आत्मा हूँ, तथापि तुम्हारे पूछनेपर लोकव्यवहारकी दृष्टिसे मैंने ये सब बातें बता दी हैं। अब मैं जाता हूँ।

सुमति कहते हैं—काशीनरेशसे यों कहकर परम बुद्धिमान् सुबाहु चले गये। काशिराजने भी अलर्कका सत्कार करके अपने नगरकी राह ली। अलर्कने अपने ज्येष्ठ पुत्रको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके वे आत्मसिद्धिके लिये वनमें चले गये। वहाँ बहुत समयतक वे निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य होकर रहे और अनुपम योगसम्पत्तिको पाकर परम निर्वाणपदको प्राप्त हुए।

पिताजी! आप भी अपनी मुक्तिके लिये इस उत्तम योगका साधन कीजिये। इससे आप उस ब्रह्मको प्राप्त होंगे, जहाँ जानेपर आपको शोक नहीं होगा। अब मैं भी जाऊँगा। यज्ञ और जपसे मुझे क्या लेना है। कृतकृत्य पुरुषका प्रत्येक कार्य ब्रह्मभावकी प्राप्तिके लिये ही होता है, अतः आपकी आज्ञा लेकर मैं जाता हूँ। अब निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य होकर मुक्तिके लिये ऐसा यत्न करूँगा, जिससे मुझे परम सन्तोषकी प्राप्ति हो।

पक्षी कहते हैं—जैमिनिजी! अपने पितासे यों कहकर और उनकी आज्ञा ले परम बुद्धिमान् सुमति सब प्रकारके संग्रहको छोड़कर चले गये। उनके महाबुद्धिमान् पिता भी उसी प्रकार क्रमशः वानप्रस्थ-आश्रममें जाकर चौथे आश्रममें प्रविष्ट हुए। वहाँ पुत्रसे पुनः उनकी भेंट हुई और उन्होंने गुण आदि बन्धनोंका त्याग करके तत्काल प्राप्त हुई उत्तम बुद्धिसे युक्त हो परम सिद्धि प्राप्त की। ब्रह्मन्! आपने हमलोगोंसे जो प्रश्न किया था, उसका विस्तारपूर्वक हमने यथावत् वर्णन किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?

मार्कण्डेय-क्रौष्टुकि-संवादका आरम्भ, प्राकृत सर्गका वर्णन

जैमिनि बोले—श्रेष्ठ पक्षिगण! आपने प्रवृत्ति और निवृत्ति—दो प्रकारके वैदिक कर्म बतलाते हुए मुझे बहुत सुन्दर उपदेश दिया है। अहो! पिताकी कृपासे आपलोगोंका ज्ञान ऐसा है, जिससे तिर्यग्योनिको प्राप्त होकर भी आपने मोहका त्याग कर दिया। आपलोग धन्य हैं; क्योंकि उत्तम सिद्धिकी प्राप्तिके लिये आपलोगोंका मन आज भी पूर्वावस्थामें ही स्थित है। विषयजनित मोह उसे विचलित नहीं कर पाते। मेरा बड़ा भाग्य है कि महर्षि मार्कण्डेयजीने मुझे आपलोगोंका परिचय दिया। आप सब प्रकारके संदेहोंका निराकरण करनेमें सबसे श्रेष्ठ हैं। इस अत्यन्त सङ्कटपूर्ण संसारमें भटकते हुए मनुष्योंको बिना तपस्या किये आप-जैसे संतोंका सङ्ग प्राप्त होना दुर्लभ है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि प्रवृत्ति, निवृत्ति एवं ज्ञानके विषयमें आपलोगोंकी बुद्धि जैसी निर्मल है, वैसी दूसरे किसीकी नहीं है। यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो मेरे लिये आगे बतायी जानेवाली बातोंका पूर्णरूपसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये।

यह स्थावर-जङ्गम जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? कल्पान्तमें पुनः किस प्रकार यह लयको प्राप्त होगा? देवता, ऋषि, पितर और भूत आदिके वंश कैसे हुए? मन्वन्तर किस प्रकार होते हैं? उनके वंशमें उत्पन्न महापुरुषोंके जीवन-चरित्र कैसे हैं? जितनी सृष्टि, जितने प्रलय, जैसे-जैसे कल्पोंके विभाग, जो-जो मन्वन्तरकी स्थिति, जैसी पृथ्वीकी स्थिति, जितना बड़ा पृथ्वीका विस्तार तथा समुद्र, पर्वत, नदी, वन, भूर्लोक आदि, स्वर्लोकसमुदाय

और पातालकी जिस प्रकारकी स्थिति है, वह सब मुझे बताइये। सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह, नक्षत्र और तारोंकी गति तथा प्रलयकालतककी सारी बातें मैं सुनना चाहता हूँ। जब इस जगत्का संहार हो जायगा, तब उसके बाद क्या शेष रहेगा? इस प्रश्नपर भी प्रकाश डालिये।

पक्षियोंने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! आपने हमलोगोंपर प्रश्नोंका ऐसा भार रख दिया, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। अब हम आपके पूछे हुए विषयोंका वर्णन करते हैं, सुनिये। पूर्वकालमें मार्कण्डेयजीने ब्राह्मणकुमार क्रौष्टुकिसे, जो परम बुद्धिमान्, व्रतस्नात तथा शान्त स्वभाववाले थे, जो कुछ कहा था, वही हम आपसे कहते हैं। एक समय महात्मा मार्कण्डेय मुनि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे घिरे बैठे थे। वहाँ क्रौष्टुकिने यही बात पूछी थी, जिसे आपने हमसे पूछा है। भृगुनन्दन मार्कण्डेयजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ क्रौष्टुकिके प्रश्नोंका उत्तर दिया। उसीका हम आपसे वर्णन करते हैं। आप ध्यान देकर सुनें। जो सृष्टिके समय ब्रह्मा, पालन-कालमें विष्णु तथा संहारके समय जगत्का अन्त करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर रुद्र हैं, उन सम्पूर्ण जगत्के स्वामी पद्मयोनि पितामह ब्रह्माजीको मैं प्रणाम करता हूँ।

मार्कण्डेयजीने कहा—पूर्वकालमें अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके प्रकट होते ही उनके मुखोंसे क्रमशः पुराण और वेद प्रकट हुए, फिर महर्षियोंने पुराणकी बहुत-सी संहिताएँ रचीं और वेदोंके भी सहस्रों विभाग किये। धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—ये चारों महात्मा ब्रह्माजीके उपदेश बिना नहीं सिद्ध हो सकते थे। ब्रह्माजीके मानसपुत्र सप्तर्षियोंने उनसे वेदोंको ग्रहण किया और ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए भृगु आदि ऋषियोंने पुराणको अपनाया। भृगुसे च्यवनने और च्यवनसे ब्रह्मर्षियोंने उसे प्राप्त किया। फिर उन्होंने दक्षको उपदेश दिया और दक्षने मुझे इस पुराणको सुनाया था। वही आज मैं तुमसे कहता हूँ। यह पुराण कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।

जो सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके स्थान, अजन्मा, अविनाशी, आश्रयस्वरूप, चराचर जगत्को धारण करनेवाले तथा परमपदस्वरूप हैं, जिन्हें आदिपुरुष ब्रह्मा कहा जाता है, जो उत्पत्ति, पालन और संहारके कारण हैं, किसीके औरस पुत्र न होकर स्वयंभू हैं, जिनमें सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है, जो हिरण्यगर्भ, लोक-सृष्टिमें लगे रहनेवाले और परम बुद्धिमान् हैं, उन भगवान् ब्रह्माजीको नमस्कार करके मैं परम उत्तम भूत-वर्गका वर्णन आरम्भ करता हूँ। वह भूतसमुदाय[1] पाँचकी संख्यामें जाननेके योग्य तथा विविध[2] स्रोतोंसे युक्त है। महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त उसकी स्थिति है। उनमें किसका कैसा लक्षण है और किसके रूपमें कितनी विभिन्नता है, इन सब बातोंका ज्ञान कराते हुए भूतसमुदायका वर्णन करता हूँ। इस भौतिक जगत्का जो कारण है, उसे प्रधान कहते हैं। उसीको महर्षियोंने अव्यक्त कहा है और वही सूक्ष्म, नित्य एवं सदसत्स्वरूपा प्रकृति है। सृष्टिके आदि-कालमें केवल ब्रह्म था, जो नित्य, अविनाशी, अजर और अप्रमेय है। उसका दूसरा कोई आधार नहीं है। वह गन्ध, रूप, रस, शब्द और स्पर्शसे रहित है। उसका आदि और अन्त नहीं है। वह सम्पूर्ण जगत्की योनि, तीनों गुणोंका कारण एवं अविनाशी है। उसे आधुनिक नहीं, पुरातन एवं सनातन कहा गया है। वह ज्ञान-विज्ञानका विषय नहीं है। प्रलयके पश्चात् उस ब्रह्मसे ही यह सब कुछ व्याप्त था।

मुने ! फिर सृष्टिकाल आनेपर गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रकृति जब ब्रह्मके क्षेत्रज्ञरूपसे अधिष्ठित हुई, तब उससे महत्तत्त्वका आविर्भाव हुआ। उत्पन्न हुए उस महत्तत्त्वको प्रधान (प्रकृति) ने आवृत कर रक्खा है। जैसे बीज त्वचासे घिरा हुआ होता है, उसी प्रकार अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्व आच्छादित है। वह सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन प्रकारका बताया गया है। तत्पश्चात् उस महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) तथा भूतादिरूप तामस—इन तीन भेदोंवाला अहङ्कार उत्पन्न हुआ। जैसे अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्व आवृत है, उसी प्रकार अहङ्कार भी महत्तत्त्वसे आवृत है। भूतादि नामक तामस अहङ्कारने शब्द-तन्मात्राकी सृष्टि की। उस शब्द-तन्मात्रासे शब्द-गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ; फिर भूतादि तामस अहङ्कारने शब्द-तन्मात्रारूप आकाशको आच्छादित किया। इससे स्पर्श-तन्मात्राकी सृष्टि हुई, जिससे बलवान् वायुका प्राकट्य हुआ। वायुका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द-तन्मात्रारूप आकाशने जब स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुको आच्छादित किया, तब वायुने भी विकृत होकर रूप-तन्मात्राकी रचना की। इस प्रकार वायुसे अग्नितत्त्व प्रकट हुआ, जिसका गुण रूप बतलाया जाता है। तदनन्तर स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको आवृत किया,

---

१. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश—ये पाँच भूत हैं।

२. पशु-पक्षी आदिकी सृष्टिको 'तिर्यक् स्रोत', मानवसर्गको 'अर्वाक् स्रोत' और देवसर्गको 'ऊर्ध्वस्रोत' कहते हैं।

जिससे विकृत होकर उस तेजने रस-तन्मात्राकी सृष्टि की। उस रस-तन्मात्रासे जल प्रकट हुआ, जो रस नामक गुणसे युक्त है। फिर रूप-तन्मात्रावाले अग्नितत्त्वने रस-तन्मात्रा-युक्त जलको आवृत किया। इससे जलमें भी विकार आया और उससे गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि हुई। उसीसे यह सङ्घात-रूपा पृथ्वी उत्पन्न हुई, जिसका गुण गन्ध है। उन-उन भूतोंमें कारणरूपसे तन्मात्राएँ हैं, इसलिये वे भूत तन्मात्रा-रूप माने गये हैं। तन्मात्राएँ किसी विशेष भावका बोध नहीं करातीं। इसलिये वे अविशेष हैं। इस प्रकार तामस अहंकारसे यह भूततन्मात्रारूप सर्ग प्रकट हुआ।

वैकारिक अहङ्कारमें सत्त्वगुणकी अधिकता होनेसे वह सात्त्विक भी कहलाता है। उससे एक ही साथ वैकारिक सर्गकी उत्पत्ति होती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ तैजस (राजस) अहङ्कारसे उत्पन्न बतलायी जाती हैं और उनके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक (सात्त्विक) अहङ्कारसे प्रकट हुए हैं। ग्यारहवें मनको भी वैकारिक सर्गमें ही जानना चाहिये। इस प्रकार मन तथा इन्द्रियाधिष्ठाता देवता वैकारिक माने गये हैं। श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंका ज्ञान करानेके लिये हैं, इसलिये इन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। दोनों पैर, गुदा, उपस्थ, दोनों हाथ और वाक्—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। क्रमशः चलना, मलत्याग, रतिके आनन्दका अनुभव, शिल्परचना और बोलना—ये पाँच इनके कर्म हैं। शब्द-तन्मात्रायुक्त आकाश स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुमें प्रविष्ट है, इसलिये वायु दो गुणोंसे युक्त होता है। उसका अपना गुण स्पर्श है। उसके साथ आकाशका शब्द भी रहता है। इसी प्रकार शब्द और स्पर्श—ये दो गुण रूपमें प्रवेश करते हैं। इसलिये अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीन गुणोंसे युक्त होता है। फिर शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीनोंका रसमें प्रवेश होता है। इसलिये रसात्मक जलको चार गुणोंसे युक्त समझना चाहिये। इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चारों गन्धमें प्रवेश करते हैं और उससे मिलकर सब ओरसे पृथ्वी-को आवृत कर लेते हैं। इसलिये पृथ्वी पाँच गुणोंसे युक्त है और सब भूतोंमें स्थूल दिखायी देती है। ये पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ़ हैं। अर्थात् सुख, दुःख एवं मोहसे युक्त हैं। इसलिये ये विशेष कहलाते हैं।* परस्पर प्रवेश करनेपर ये एक दूसरेको धारण करते हैं।

ये महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी भूत एक दूसरेसे मिलकर और परस्पर आश्रित हो एक संघातको ही अपना लक्ष्य बना जब पूर्णरूपसे एक हो जाते हैं, तब पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण प्रधान तत्त्वके सम्बन्धसे अण्डकी उत्पत्ति करते हैं। वह महान् अण्ड जलके बुलबुलेके समान क्रमशः बढ़ता है और जलपर स्थित रहता है। उस प्राकृत अण्डमें ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध क्षेत्रज्ञ पुरुष भी वृद्धिको प्राप्त होता है। वे ब्रह्मा ही सबसे प्रथम शरीरधारी होनेके कारण पुरुष कहलाते हैं। भूतोंके आदिकर्ता ब्रह्माजी सबसे पहले प्रकट हुए। उन्होंने चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको व्याप्त कर रक्खा है। अण्डके गर्भमें स्थित उन महात्मा ब्रह्माजीके लिये मेरु पर्वत ही गर्भको ढकनेवाली झिल्ली हुआ। अन्य पर्वत जरायु (जेर) हुए तथा समुद्र ही उस गर्भाशय-का जल था। उस अण्डमें ही देवता, असुर और मनुष्यों-सहित सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ तथा पर्वत, द्वीप, समुद्र और नक्षत्र-मण्डलके साथ त्रिभुवनका आविर्भाव हुआ। वह अण्ड क्रमशः जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा तामस अहंकारके द्वारा बाहरसे आवृत है। ये आवरण एककी अपेक्षा दूसरे दसगुने बड़े हैं। तामस-अहंकार उससे दसगुने बड़े महत्तत्त्वके द्वारा आवृत है और महत्तत्त्व भी उन सबके साथ अव्यक्त प्रकृतिके द्वारा घिरा हुआ है। इस प्रकार इन सात प्राकृत आवरणोंसे यह अण्ड आवृत है। इस तरह वे आठ प्रकृतियाँ एक दूसरेको आवृत करके स्थित हैं। यह प्रकृति नित्य है और उसके भीतर वे ही पुरुष हैं, जो तुम्हें ब्रह्माके नामसे बताये गये हैं। अब संक्षेपसे पुनः इस विषयका वर्णन सुनो—जैसे कोई पुरुष जलमें डूबकर फिर निकलते समय जलको फेंकता है, उसी प्रकार भगवान् ब्रह्माजी भी प्रकृतिको हटाते हुए उससे प्रकट होते हैं। अव्यक्त प्रकृतिको क्षेत्र बताया गया है और ब्रह्माजी क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् क्षेत्र-क्षेत्रज्ञरूप ही है—ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार यह प्राकृत सर्गका वर्णन हुआ। इसके भीतर अधिष्ठातारूपसे क्षेत्रज्ञ विराजमान रहता है। प्राकृत सर्ग ही प्रथम सृष्टि है।

---

* परस्पर मिलनेसे सभी भूत शान्त, घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं; किन्तु पृथक्-पृथक विचार करनेपर पृथ्वी और जल शान्त हैं, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ़ है।

एक ही परमात्माके त्रिविध रूप, ब्रह्माजीकी आयु आदिका मान तथा सृष्टिका संक्षिप्त वर्णन

क्रौष्टुकिने कहा—भगवन् ! आपने ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिका यथावत् वर्णन किया तथा महात्मा ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी बात भी बतलायी । भृगुकुलनन्दन ! अब मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि प्रलयके अन्तमें, जब कि सबका उपसंहार हो जाता है और प्राणियोंकी सृष्टि नहीं हुई होती, क्या शेष रहता है ? अथवा कुछ रहता ही नहीं ?

मार्कण्डेयजी बोले—मुने ! जब यह सम्पूर्ण जगत् प्रकृतिमें लीन होता है, उस समयकी स्थितिको विद्वान् पुरुष प्राकृत प्रलय कहते हैं । जब अव्यक्त प्रकृति अपने स्वरूप (गुणोंकी साम्यावस्था) में स्थित होती है तथा महत्तत्त्वादि सम्पूर्ण विकारोंका उपसंहार हो जाता है, उस समय प्रकृति और पुरुष समानधर्मा (निष्क्रिय, निर्विकार) होकर रहते हैं । उस समय सत्त्व और तम समान रूपमें और परस्पर ओतप्रोत रहते हैं तथा जैसे तिलमें तेल और दूधमें घी रहता है, उसी प्रकार तमोगुण और सत्त्वगुणमें रजोगुण घुला-मिला होता है । जब परमेश्वरकी योगदृष्टिसे प्रकृतिमें क्षोभ होता है, तब महान् अण्डके भीतरसे ब्रह्माजी प्रकट होते हैं—यह बात तुम्हें बतलायी जा चुकी है । यद्यपि ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके स्थान और निर्गुण हैं, तथापि रजोगुणका उपभोग करते हुए सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं और ब्रह्माके कर्तव्यका पालन करते हैं । फिर परमेश्वर सत्त्वगुणके उत्कर्षसे युक्त हो श्रीविष्णुका स्वरूप धारणकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं। फिर तमोगुणकी अधिकतासे युक्त हो रुद्ररूप धारण करके सम्पूर्ण जगत्का संहार करते और निश्चिन्त सोते हैं । इस प्रकार सृष्टि, पालन और संहार—इन तीनों कालोंमें तीन गुणोंसे युक्त होकर भी वे परमेश्वर वास्तवमें निर्गुण ही हैं । जैसे खेतिहर पहले बीजको बोता, फिर पौधेकी रक्षा करता और अन्तमें खेती पक जानेपर उसे काटता है तथा इन कार्योंके अनुसार बोनेवाला, रक्षा करनेवाला और काटनेवाला —ये तीन नाम धारण करता है, उसी प्रकार एक ही परमेश्वर भिन्न-भिन्न कार्योंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नाम धारण करते हैं । ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टि करते और रुद्र होकर उसका संहार करते हैं तथा विष्णुरूपमें इन दोनों कार्योंसे उदासीन रहकर सबका पालन करते हैं । इस तरह स्वयम्भू परमात्माकी तीन अवस्थाएँ होती हैं । रजोगुणप्रधान ब्रह्मा, तमोगुणप्रधान रुद्र और सत्त्वप्रधान विश्वपालक विष्णु हैं । ये ही तीन देवता हैं और ये ही तीन गुण हैं । ये परस्पर एक दूसरेके आश्रित और एक दूसरेमें मिले रहते हैं । इनमें एक क्षणका भी वियोग नहीं होता । ये एक दूसरेका कभी त्याग नहीं करते ।

इस प्रकार जगत्के आदिकारण देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्माजी रजोगुणका आश्रय लेकर सृष्टिके कार्यमें संलग्न रहते हैं । उनकी आयु अपने ही मानसे सौ वर्षोंकी होती है । उसका परिमाण बतलाता हूँ, सुनो । पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठाओंकी कला, तीस कलाओंका मुहूर्त तथा तीस मुहूर्तोंका एक दिन-रात होता है । यह मनुष्योंके दिन-रातका मान है । तीस दिन-रात व्यतीत होनेपर दो पक्ष अथवा एक मास पूर्ण होता है । छः मासोंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है । दो अयनोंका नाम क्रमशः दक्षिणायन और उत्तरायण है । इस प्रकार मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन-रात है । उसमें दिन तो उत्तरायण और रात दक्षिणायन है । देवताओंके बारह हजार वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है, जिसे सत्ययुग, त्रेता आदि कहते हैं । अब इनका विभाग सुनो । चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग होता है, चार सौ दिव्य वर्षोंकी उसकी सन्ध्या और उतने ही वर्षोंका सन्ध्यांश होता है । तीन हजार दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग है । उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशका समय तीन-तीन सौ दिव्य वर्षोंका है । दो हजार दिव्य वर्षोंका द्वापरयुग होता है और दो-दो सौ दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांशके होते हैं । द्विजश्रेष्ठ ! एक हजार दिव्य वर्षोंका कलियुग होता है तथा सौ-सौ दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांशके बताये गये हैं । इस प्रकार विद्वानोंने बारह हजार दिव्य वर्षोंकी एक चतुर्युगी बतायी है । एक हजार चतुर्युगी बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है । ब्रह्मन् ! ब्रह्माजीके एक दिनमें बारी-बारीसे चौदह मनु होते हैं । देवता, सप्तर्षि, इन्द्र, मनु और मनुपुत्र—ये सब लोग एक ही साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही साथ इनका संहार भी होता है । इस प्रकार इकहत्तर चतुर्युगोंसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है ।*

* इकहत्तर चतुर्युगोंके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं और ब्रह्माके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग होने

अब मनुष्य-वर्ष-गणनाके अनुसार मन्वन्तरका मान सुनो। पूरे तीस करोड़ सरसठ लाख और बीस हजार वर्षोंका एक मन्वन्तर माना गया है। देवताओंके वर्षसे एक मन्वन्तरमें आठ लाख, बावन हजार वर्ष होते हैं। इस कालको चौदह गुना करनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है। इसके अन्तमें विद्वानोंने नैमित्तिक प्रलयका होना बतलाया है। उसमें भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक जलकर नष्ट हो जाते हैं। महर्लोक बच जाता है; किन्तु नीचेके लोकोंके जलनेसे वहाँ इतना ताप पहुँचता है कि उस लोकके निवासी जनलोकमें चले जाते हैं। फिर तीनों लोक एक महासमुद्रके गर्भमें छिप जाते हैं। ब्रह्माकी रात आ जाती है, इसलिये वे उसमें शयन करते हैं। ब्रह्माके दिनके बराबर ही उनकी रात भी होती है। उसके बीतनेपर फिर सृष्टिका क्रम चालू होता है। इस प्रकार क्रमशः ब्रह्माका एक वर्ष बीतता है और पूरे सौ वर्षतक उनका जीवन रहता है। उनके सौ वर्षको एक 'पर' कहते हैं। उसमेंसे पचास वर्षोंकी 'परार्द्ध' संज्ञा है। इस तरह ब्रह्माका एक परार्द्ध बीत चुका है। उसके अन्तमें पाद्म नामसे विख्यात महाकल्प हुआ था। ब्रह्मन्! अब उनका दूसरा परार्द्ध चल रहा है। इसमें यह वाराह कल्प प्रथम कल्प है।

कौष्टुकि बोले—सृष्टिके आदिकर्ता तथा प्रजापतियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजाको उत्पन्न किया, उसका मेरे लिये विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! पाद्म कल्पके अन्तमें जो प्रलय हुआ था, उसके बाद रात्रि बीतनेपर जब सत्त्वगुणके उत्कर्षसे युक्त श्रीविष्णुस्वरूप ब्रह्माजी सोकर उठे, उस समय उन्होंने संसारको शून्य देखा। जगत्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले ब्रह्मस्वरूप भगवान् नारायणके विषयमें विद्वान् पुरुष यह श्लोक कहा करते हैं—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः॥

'जल नरसे प्रकट हुआ है, इसलिये वह नार कहलाता है। भगवान् उसमें सोते हैं—भगवान्का वह अयन है, इसलिये वे नारायण कहे गये हैं।'

है, अतः छः चतुर्युग और बचे। छः चतुर्युगोंका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष होता है, इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्यवर्ष और अधिक होते हैं।

जागनेके बाद उन्होंने पृथ्वीको जलके भीतर डूबी हुई जानकर उसे निकालनेकी इच्छासे वाराहरूप धारण किया। उनका वह स्वरूप वेदमय, यज्ञमय एवं दिव्य था। उन सर्वव्यापी भगवान्ने वाराहरूपसे ही जलमें प्रवेश किया और पातालसे पृथ्वीको निकालकर जलके ऊपर रक्खा। उस समय जनलोकनिवासी सिद्धगण उन जगदीश्वरका चिन्तन एवं स्तवन कर रहे थे। पृथ्वी उस जल-राशिके ऊपर बहुत बड़ी नौकाकी भाँति स्थित हुई। पृथ्वीका आकार बहुत विशाल और विस्तृत है, इसलिये यह जलमें डूब नहीं पाती। तदनन्तर पृथ्वीको बराबर करके भगवान्ने उसपर पर्वतोंकी सृष्टि की। पूर्वकल्पकी सृष्टि जब प्रलयाग्निसे दग्ध होने लगी थी, उस समय सब पर्वत पृथ्वीपर खण्ड-खण्ड होकर बिखर गये और एकार्णवके जलमें डूब गये। फिर वायुके द्वारा वहाँ बहुत-सा जल एकत्रित हुआ। उस जलसे भीगकर और प्रवाहमें बहकर जो पर्वत जहाँ लग गये, वे वहीं अचलरूपसे स्थित हो गये।

क्रौष्टुकिने कहा—ब्रह्मन्! आपने थोड़ेमें ही सृष्टिका भलीभाँति वर्णन किया, अब मुझे देवता आदिकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारके साथ बतलाइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! ब्रह्माजीने जब सृष्टि रचनेका विचार किया, तब पहले उनसे मानस-पुत्र ही उत्पन्न हुए। तदनन्तर देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चारोंको उत्पन्न करनेकी इच्छासे उन्होंने जलमें अपनेको योगयुक्त किया। योगस्थ होनेपर ब्रह्माजीके कटिप्रदेशसे पहले असुरोंकी उत्पत्ति हुई। तब उन्होंने अपने उस तमोगुणी शरीरको त्याग दिया। त्यागनेपर वह शरीर रात्रिके रूपमें परिणत हो गया। फिर दूसरा शरीर धारण करके जब प्रजापतिने सृष्टिका विचार किया, तब उन्हें प्रसन्नता हुई। उस अवस्थामें उनके मुखसे सत्त्वगुणके उत्कर्षसे युक्त देवता उत्पन्न हुए। फिर भगवान् ब्रह्माने उस शरीरको भी त्याग दिया। त्यागनेपर वह सत्त्वप्राय दिनके रूपमें परिणत हो गया। तदनन्तर पुनः उन्होंने सत्त्वगुणी शरीरको ही धारण किया। उस समय उन्होंने अपनेको सबका पिता माना, इसलिये उनसे पितरोंकी उत्पत्ति हुई। पितरोंकी सृष्टिके बाद ब्रह्माजीने वह शरीर भी छोड़ दिया। वह छोड़ा हुआ शरीर सन्ध्याकालके रूपमें परिणत हुआ, जो दिन और रातके मध्यमें स्थित होता है। तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने रजोगुणकी अधिकतासे युक्त दूसरा शरीर धारण किया। उससे मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई। मनुष्यों-

की सृष्टिके बाद उस शरीरको भी उन्होंने त्याग दिया। वह शरीर ज्योत्स्नाकालके रूपमें परिणत हुआ, जो रातके अन्त और दिनके प्रारम्भमें हुआ करता है। इस प्रकार ये रात-दिन, सन्ध्या और ज्योत्स्नाकाल देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माके शरीर हैं।

ब्रह्माजीने अपने प्रथम मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत् रथन्तर साम तथा अग्निष्टोम यज्ञको उत्पन्न किया। दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदश स्तोम तथा बृहत्सामकी सृष्टि की। पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, पञ्चदश स्तोम, वैरूप साम तथा अतिरात्र यज्ञका निर्माण किया और उत्तर मुखसे इक्कीसवाँ अथर्व, आप्तोर्याम यज्ञ, अनुष्टुप् छन्द तथा वैराज सामको प्रकट किया। उन्होंने कल्पके आदिमें बिजली, वज्र, मेघ, लाल इन्द्रधनुष और पक्षियोंकी सृष्टि की। तथा उनके शरीरसे छोटे-बड़े अनेक प्राणी उत्पन्न हुए। पूर्वकालमें देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चारोंकी सृष्टि करनेके पश्चात् उन्होंने अन्य स्थावर-जङ्गम प्राणियोंको उत्पन्न किया। यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, सर्प आदि जङ्गम तथा स्थावर भूतोंकी सृष्टि की। उनमेंसे जिनके पूर्वकल्पमें जैसे कर्म थे, वैसे ही कर्म वे पुनः-पुनः नूतन सृष्टिमें प्राप्त करते हैं। हिंसा-अहिंसा, मृदुता-क्रूरता, धर्म-अधर्म तथा सत्य-असत्यको वे पूर्वजन्मकी भावनाके अनुसार ही प्राप्त करते हैं और उस भावनाके अनुकूल वस्तु ही उन्हें रुचिकर जान पड़ती है। इन्द्रियोंके विषयों, भूतों तथा शरीरोंमें स्वयं ब्रह्माजीने ही नानात्वका विधान किया है—उन्हें अनेक रूपोंमें उत्पन्न किया है। देवता आदि भूतोंके नाम और रूपका तथा कार्योंके विस्तारका उन्होंने वेदके शब्दोंसे ही प्रतिपादन किया है। ऋषियोंके नाम भी वेदोंसे ही निश्चित किये हैं। ब्रह्माजीकी रात्रिका अन्त होनेपर उन्होंने देवता आदि जिन-जिन भूतोंकी सृष्टि की है, उन सबके नाम-रूप और कर्तव्यका ज्ञान भी वे वेदोंसे ही प्रदान करते हैं। जिस ऋतुमें जिस प्रकारके अनेकों चिह्न देखे जाते हैं, युगादिमें सृष्टि होनेपर वे सभी वैसे ही दृष्टिगोचर होते हैं। रात्रिके अन्तमें जगे हुए अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी सृष्टि प्रत्येक कल्पमें ऐसी ही होती है।

प्रजाकी सृष्टि, निवास-स्थान, जीविकाके उपाय और वर्णाश्रम-धर्मके पालनका माहात्म्य

क्रौष्टुकिने कहा—ब्रह्मन्! आपने अर्वाक्स्रोत नामक सर्गका, जो मानवसर्ग ही है, वर्णन किया; अब विस्तारपूर्वक यह बतलानेकी कृपा करें कि ब्रह्माजीने सृष्टिका विस्तार कैसे किया। महामते! उन्होंने वर्णोंकी सृष्टि कैसे की? उनके गुण क्या हैं तथा ब्राह्मण आदि वर्णोंका कर्म कौन-सा माना गया है?

मार्कण्डेयजी बोले—मुने! सत्यका चिन्तन करनेवाले ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जब सृष्टि-रचना आरम्भ की, तब उनके मुखसे एक हजार स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए। वे सब-के-सब सात्त्विक तथा सहृदय थे। तदनन्तर ब्रह्माजीने अपने वक्षःस्थलसे एक सहस्र अन्य स्त्री-पुरुषोंको उत्पन्न किया। वे सभी रजोगुणकी अधिकतासे युक्त, शूरवीर और क्रोधी थे। उसके बाद उन्होंने अपनी दोनों जाँघोंसे दूसरे एक सहस्र स्त्री-पुरुषोंको प्रकट किया। वे सब तमोगुणी, श्रीहीन तथा मन्दबुद्धि थे। वे सब जोड़ेके रूपमें उत्पन्न हुए जीव अत्यन्त प्रसन्न होकर एक-दूसरेके साथ मैथुनकी क्रियामें प्रवृत्त हो गये। तभीसे इस कल्पमें मैथुनका प्रचार हुआ। फिर ब्रह्माजीने पिशाच, सर्प, राक्षस, डाह करनेवाले मनुष्य, पशु-पक्षी, मगर, मछली, बिच्छू तथा अण्डज आदिको उत्पन्न किया।

पहलेकी प्रजा सात्त्विक और धर्मपरायण थी, अतः यहाँ सब ओर सुख-शान्ति थी। इसके बाद कालान्तरमें उनके भीतर लोभका उदय हुआ। फिर तो शीत, उष्ण, क्षुधा आदि द्वन्द्व प्रकट हुए। प्रजाओंने उस द्वन्द्वको दूर करनेके लिये पहले पुरोंका निर्माण किया। कुछ लोग मरुभूमि अथवा धन्वदेशको शत्रुओंके लिये दुर्गम समझकर उसमें रहने लगे। कुछ लोगोंने पर्वतों और गुफाओंका आश्रय लिया। कुछ मनुष्योंने वृक्षों, पर्वतों और जलके दुर्गोंको अपना निवास-स्थान बनाया। कुछ लोग कृत्रिम दुर्ग बनाकर उसमें रहने लगे। उन्होंने वस्तुओंकी लंबाई-चौड़ाई मापनेके लिये अँगुलियोंसे नाप-नापकर पहले कुछ माप तैयार किये। उनका पैमाना इस प्रकार बना। सबसे सूक्ष्म वस्तु है परमाणु। उससे बड़ा त्रसरेणु होता है, जो पृथ्वीकी धूलिका एक कण है। उससे उत्तरोत्तर बड़े प्रमाण हैं—वालाग्र,

लिक्षा, यूका और यवोदर। ये एक दूसरेकी अपेक्षा आठ-आठ गुने बड़े हैं। आठ यवका एक अङ्गुल, छः अङ्गुलका एक पद, दो पदका एक बित्ता और दो बित्तेका एक हाथ होता है। चार हाथका एक धनुर्दण्ड होता है। इसीको नाड़िका-युग भी कहते हैं। दो हजार धनुषकी एक गव्यूति और चार गव्यूतिका एक योजन होता है।

तदनन्तर प्रजावर्गने अपने रहनेके लिये पुर, खेट, द्रोणी-मुख, शाखा-नगर, खर्वट, द्रमी आदिका निर्माण किया। उन सबमें ग्राम, गोशाला आदिकी व्यवस्था करके वहाँ पृथक्-पृथक् निवास-स्थान बनवाये। जिसके चारों ओर ऊँची चहार-दीवारी हो, जो खाइयोंसे घिरा हो, जिसकी लंबाई दो कोस और चौड़ाई उसका आठवाँ भाग हो, वह पुर कहलाता है। उसके पूर्व और उत्तरमें जलप्रवाहका होना उत्तम माना गया है। वहाँसे बाहर निकलनेके लिये शुद्ध बाँसका पुल बना होना चाहिये। जिसकी लंबाई-चौड़ाई पुरकी अपेक्षा आधी हो, वह खेट कहलाता है और जो पुरके चौथाई हिस्सेके बराबर हो, उसे खर्वट कहते हैं। जिसकी लंबाई-चौड़ाई पुरके आठवें हिस्सेके बराबर हो, वह द्रोणीमुख कहलाता है। जहाँ चहारदीवारी और खाई नहीं है, उस पुरको खर्वट कहते हैं। जहाँ मन्त्री, सामन्त तथा भोगके बहुत-से सामान हों, वह शाखानगर कहलाता है। जहाँ अधिकांश शूद्र हों, अपनी समृद्धिसे युक्त किसान रहते हों, जो खेतों और उपभोगयोग्य भूमि (बाग-बगीचों) के बीचमें बसा हो, उसका नाम गाँव है। जहाँ किसी कार्यके लिये मनुष्य अन्य नगर आदिसे आकर बसते हों, उसको बस्ती कहते हैं। जहाँ अधिकांश दुष्टोंका निवास हो, जहाँके रहने-वाले अपने पास खेत न होनेपर भी दूसरेकी भूमिपर अधिकार जमाते और भोगते हैं, वह गाँव द्रमीके नामसे पुकारा जाता है। वहाँ प्रायः वे ही लोग निवास करते हैं, जो राजाके प्रिय हों। जहाँ ग्वाले अपने बर्तन-भाँड़े गाड़ियोंपर लादकर रखते हों, बिना बाजारके ही गोरस मिलता हो, गायोंका समूह रहता हो और जहाँ इच्छानुसार भूमि रहनेके लिये सुलभ हो, उस स्थानका नाम घोष है।

इस प्रकार नगर आदिका निर्माण करके प्रजाने अपने रहनेके लिये घर बनाये। वे घर इस उद्देश्यसे बनाये गये थे कि वहाँ शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रक्षा हो सके। जैसे पहले उनके घरके आकारके वृक्ष होते थे, और वहाँ उन्हें जैसी सुविधाएँ प्राप्त होती थीं, उन सबका स्मरण करके उन्होंने घर बनाये। जैसे वृक्षकी शाखाएँ एकके बाद दूसरी तथा छोटी-बड़ी, ऊँची-नीची होती हैं, उसी प्रकार उन्होंने अनेक प्रकारकी शालाएँ बनायीं। द्विजश्रेष्ठ! पूर्वकालमें जो कल्पवृक्षकी शाखाएँ थीं, वे ही उस समय प्रजावर्गके घरोंमें शाला बनानेके काममें आयीं। इस प्रकार गृह-निर्माणके द्वारा शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंको दूर करके सब लोग जीविकाका उपाय सोचने लगे; क्योंकि उस समय समस्त कल्पवृक्ष मधु-सहित नष्ट हो चुके थे। जब प्रजा भूख और प्याससे व्याकुल एवं शोकसे आतुर हो उठी, तब त्रेताके आरम्भमें उनके अभीष्टकी सिद्धि हुई। उनकी इच्छाके अनुसार वर्षा हुई और वह वर्षाका जल नीची भूमिमें बहकर एकत्र होने लगा। उससे स्रोत, पोखरे और नदियाँ बन गयीं। उस जलका पृथ्वीके साथ संयोग होनेसे बिना जोते-बोये ही ग्राम्य और आरण्य—सब मिलकर चौदह प्रकारके अन्न पैदा हुए। वृक्षों और लताओंमें ऋतुके अनुसार फूल और फल लगने लगे। त्रेतायुगमें पहले-पहल अन्नका प्रादुर्भाव हुआ। उसीसे उस युगमें सब प्रजाका जीवन-निर्वाह होने लगा। फिर अकस्मात् सब लोगोंके मनमें राग और लोभका प्राकट्य हुआ। इससे वे एक दूसरेके प्रति ईर्ष्या रखने लगे और अपनी शक्तिके अनुसार नदी, खेत, पर्वत, वृक्ष और झाड़ियोंपर अधिकार जमाने लगे। उनके इस दोषसे सबके देखते-देखते सब अनाज नष्ट हो गये। पृथ्वीने एक साथ ही सब ओषधियोंको अपना ग्रास बना लिया। अनाजके नष्ट होनेसे प्रजा भूखसे व्याकुल होकर फिर इधर-उधर भटकने लगी और अन्तमें ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। ब्रह्माजीने भी प्रजाका सारा समाचार ठीक-ठीक जानकर पृथ्वीको गायके रूपमें बाँधा और मेरु पर्वतको बछड़ा बनाकर उसका दूध दुहा। ब्रह्माजीने दूधके रूपमें सब प्रकारके अन्न दुह लिये थे, वे ही बीजरूपमें प्रकट हुए और उनसे ग्राम्य तथा आरण्य—सब प्रकारके अन्न पैदा हुए, जो फलके पक जानेपर काट लिये जाते हैं। धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कँगनी, ज्वार, कोदो, तीना, उड़द, मूँग, मसूर, मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सतरह ग्राम्य ओषधियोंकी जातियाँ हैं। यज्ञके काममें आनेवाली केवल चौदह ओषधियाँ हैं, जिनमें सात ग्राम्य और सात आरण्य हैं। उनके नाम ये हैं—धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कँगनी, कुलथी, सावाँ, तीना, वनतिल, गवेधुक, कुरुविन्द, मकई और वेणुयव।

जब बोनेपर भी ये ओषधियाँ फिर न जम सकीं, तब भगवान् ब्रह्माजीने अन्नकी वृद्धिके लिये हाथसे काम करनेकी प्रणालीको ही जीविकाका उपाय बनाया। तबसे जोतने-बोनेपर अन्नकी उपज होने लगी। इस प्रकार जीविकाका प्रबन्ध हो जानेपर ब्रह्माजीने न्याय और गुणके अनुसार वर्णाश्रम-धर्मकी मर्यादा स्थापित की। अपने कर्मोंमें लगे हुए ब्राह्मणोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। युद्धमें पीठ न दिखानेवाले क्षत्रियोंको इन्द्रका पद प्राप्त होता है। स्वधर्म-परायण वैश्योंको मरुद्गणोंका लोक मिलता है। सेवामें संलग्न रहनेवाले शूद्र गन्धर्व-लोकमें जाते हैं। जो लोग गुरुकुलमें रहकर ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक वेदाध्ययन करते हैं, उन्हें अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता महर्षियोंको प्राप्त होनेवाला स्थान मिलता है। वानप्रस्थधर्मका पालन करनेवाले लोग सप्तर्षियों-के लोकमें जाते हैं। गृहस्थधर्मका विधिवत् पालन करनेवालों-को प्राजापत्य लोककी प्राप्ति होती है। संन्यासियोंको ब्रह्मपद और योगियोंको अमृतत्वकी उपलब्धि होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मोंका पालन करनेवाले लोगोंके लिये पृथक्-पृथक् लोकोंकी कल्पना की गयी है।



स्वायम्भुव मनुकी वंश-परम्परा तथा अलक्ष्मी-पुत्र दुःसहके स्थान आदिका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर ब्रह्माजी जब ध्यान कर रहे थे, उस समय उनके मनसे मानसी प्रजा उत्पन्न हुई; साथ ही उनके शरीरसे कारण और कार्यका भी प्रादुर्भाव हुआ। देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी जीव त्रिगुणात्मक माने गये हैं। इसी प्रकार समस्त चराचर भूतों-की सृष्टि हुई। जब प्रयत्न करनेपर भी ब्रह्माजीकी प्रजा बढ़ न सकी, तब उन्होंने अपने ही सदृश सामर्थ्यसे युक्त नौ मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम ये हैं—भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठ। पुराणोंमें ये नौ ब्रह्मा माने गये हैं।* इसके बाद ब्रह्माजीने अपने क्रोधसे रुद्रको प्रकट किया; फिर संकल्प और धर्मको उत्पन्न किया, जो पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीने जिन्हें सबसे पहले उत्पन्न किया, वे सनन्दन आदि चार भाई लोकमें आसक्त नहीं हुए। वे सब-के-सब निरपेक्ष, एकाग्र-चित्त, भविष्यको जाननेवाले, वीतराग और मात्सर्यरहित थे।

तत्पश्चात् प्रजापतिने अनेक प्रकारके स्त्री-पुरुष उत्पन्न किये, जिनमें कोमल, क्रूर, शान्त, श्यामवर्ण तथा गौरवर्ण—सभी तरहके लोग थे। इसके बाद उन्होंने अपने ही समान प्रभावशाली एक पुत्ररत्न उत्पन्न किया, जिनका नाम स्वायम्भुव मनु हुआ। उन्हें ब्रह्माजीने प्रजाजनोंका रक्षक बनाया। फिर स्वायम्भुव मनुने शतरूपाको अपनी पत्नी बनाया, जो तपस्याके प्रभावसे सर्वथा निष्पाप थी। शतरूपा-ने स्वायम्भुव मनुके सम्पर्कसे दो पुत्रोंको जन्म दिया। वे प्रियव्रत और उत्तानपादके नामसे विख्यात हुए। उन दोनोंकी अपने कर्मोंसे प्रसिद्धि हुई। शतरूपाके गर्भसे दो कन्याओंका भी जन्म हुआ। उनमेंसे एकका नाम ऋद्धि (आकृति) और दूसरीका प्रसूति था। स्वायम्भुव मनुने प्रसूतिका विवाह दक्षसे और ऋद्धि (आकृति) का रुचि प्रजापतिसे किया। प्रजापति रुचि और आकृतिसे जुड़वीं सन्तान उत्पन्न हुई, जिनमें एक पुत्र था और दूसरी कन्या। पुत्रका नाम यज्ञ और कन्याका दक्षिणा था। यज्ञके 'याम' नामसे विख्यात बारह पुत्र हुए। ये ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें बारह देवता कहलाये। ये बड़े तेजस्वी थे।

दक्षने प्रसूतिके गर्भसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं; उनके नाम ये हैं, सुनो—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि तथा तेरहवीं कीर्ति। इन सबको धर्मने अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण किया। इनसे शेष जो ग्यारह छोटी कन्याएँ थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, ऊर्ज्जा, अनसूया, स्वाहा और स्वधा। इन सबको क्रमशः भृगु, महादेव-जी, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि, अग्नि और पितरोंने ग्रहण किया। श्रद्धाने कामको, लक्ष्मीने दर्पको, धृतिने नियमको, तुष्टिने संतोष और पुष्टिने लोभको उत्पन्न किया। मेधासे श्रुतका, क्रियासे दण्ड, नय और विनयका, बुद्धिसे बोधका, लज्जासे विनयका, वपुसे व्यवसायका

* भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा।
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम्॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥
(५० । ५-६)

शान्तिसे क्षेमका, सिद्धिसे सुखका और कीर्तिसे यशका जन्म हुआ। ये सभी धर्मके पुत्र हैं।

कामसे उसकी पत्नी रतिने हर्ष नामक पुत्र उत्पन्न किया, जो धर्मका पौत्र कहलाया। अधर्मकी स्त्री हिंसा थी। उसके गर्भसे अनृत नामक पुत्र और निर्ऋति नामवाली कन्या उत्पन्न हुई। फिर इन दोनोंसे दो पुत्रों तथा दो कन्याओंका जन्म हुआ। पुत्रोंके नाम थे नरक और भय तथा कन्याओंके नाम थे माया और वेदना। ये उनकी पत्नियाँ हुई। इनमें भयकी स्त्री मायाने सब प्राणियोंका संहार करनेवाले 'मृत्यु' नामक पुत्रको उत्पन्न किया और वेदनाने नरकके संसर्गसे दुःख नामक पुत्रको जन्म दिया। मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए। ये सब अधर्मरूप हैं और दुःखके हेतु बतलाये जाते हैं। इनके स्त्री और पुत्र नहीं हैं। ये सभी ऊर्ध्वरेता हैं।

अलक्ष्मीके चौदह पुत्र हैं, जिनमें तेरह तो क्रमशः दस इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहङ्कारमें पृथक्-पृथक् रहते हैं। चौदहवेंका नाम दुःसह है, वह मनुष्योंके गृहोंमें निवास करता है। वह भूखसे दुर्बल, नीचा मुख किये, नंग-धड़ंग और चिथड़ा लपेटे रहता है; उसकी आवाज कौएके समान है। जब ब्रह्माजीने उसे उत्पन्न किया, तब वह सबको खा जानेके लिये उद्यत हुआ। वह तमोगुणका भंडार था और बड़ी-बड़ी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त विकराल जान पड़ता था। उसका मुँह फैला हुआ था, इससे वह और भी भयंकर जान पड़ता था। उसको आहारके लिये उत्सुक देख लोकपितामह ब्रह्माजीने कहा—'दुःसह! तुझे इस संसारका भक्षण नहीं करना चाहिये। तू अपना क्रोध शान्त कर। रजोगुणकी कला त्याग और इस तामसी वृत्तिको भी छोड़ दे।'

दुःसहने कहा—जगदीश्वर! मैं भूखसे दुर्बल हो रहा हूँ और प्यास भी मुझे जोरसे सता रही है। नाथ! बताइये—मुझे कैसे तृप्ति हो, मैं किस तरह बलवान् बनूँ? तथा मेरा निवासस्थान कौन है, जहाँ मैं सुखसे रह सकूँ?

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! मनुष्योंका घर तुम्हारा निवासस्थान है, अधर्मपरायण पुरुष तुम्हारे बल हैं तथा नित्यकर्मके त्यागसे ही तुम्हारी पुष्टि होगी। मर्मव्रण और फोड़े तुम्हारे वस्त्र होंगे। अब तुम्हारे लिये आहारकी व्यवस्था करता हूँ। जिसमें किसी प्रकारकी क्षति पहुँची हो, कीड़े पड़ गये हों, कुत्तोंने दृष्टि डाली हो, जो फूटे बर्तनमें रक्खा हो, जिसे मुँहसे फूँक-फूँककर ठंडा किया गया हो, जो जूँठा और अपक्व हो, जिसमेंसे पानी छूटता हो, जिसको किसीने चख लिया हो, जो शुद्धतापूर्वक तैयार न किया गया हो, जिसे फटे आसनोंपर बैठकर भोजन किया गया हो, जो अपने समीपवर्तीको नहीं दिया गया हो, विपरीत दिशा अथवा कोणकी ओर मुँह करके खाया गया हो, दोनों सन्ध्याओंके समय और नाच, बाजा एवं स्वर-तालके साथ जिसको खाया गया हो, जिसे रजस्वला स्त्रीके द्वारा लाया, खाया अथवा देखा गया हो तथा जो और किसी दोषसे युक्त हो—ऐसा कोई भी खाने-पीनेका सामान तुम्हारी पुष्टिके लिये मैं तुम्हें देता हूँ।

यक्ष्मन्! बिना श्रद्धाका हवन, बिना नहाये, बिना जलके, अवहेलनापूर्वक दिया हुआ दान, जो व्यर्थ पड़ी हो अथवा फेंक दी जानेवाली हो, ऐसी वस्तुका दान और अत्यन्त अभिमानसे, दोषसे, क्रोधसे तथा कष्ट मानकर किया हुआ दान—इन सबका फल तुम्हें ही मिलेगा! कन्याका मूल्य चुकानेके लिये जो धनोपार्जनकी क्रिया की जाती है तथा जो असत् शास्त्रोंद्वारा सम्पादित होनेवाली क्रियाएँ हैं, उन सबका फल तुम्हारी पुष्टिके लिये तुम्हें देता हूँ। जो कार्य केवल धन कमानेके लिये किया जाता है, धर्मकी दृष्टिसे नहीं, तथा जो सत्यकी अवहेलनापूर्वक अध्ययन किया जाता है, वह सब तुम्हारी इच्छा-पूर्तिके लिये तुम्हें दे रहा हूँ। जो मनुष्य गर्भिणी स्त्रीके साथ समागम करते, सन्ध्या और नित्यकर्मका उल्लङ्घन करते तथा असत् शास्त्रोंके अनुसार कार्य या उनकी चर्चा करके दूषित होते हैं, ऐसे मनुष्योंको दबानेकी तुममें पूरी शक्ति होगी।

दुःसह! जहाँ एक ही पङ्क्तिमें दो तरहका भोजन परोसा जाता हो, अतिथि-सत्कार और बलिवैश्वदेवका उद्देश्य न रखकर केवल अपने लिये भोजन बनाया जाता हो, भोजनमें भेद रक्खा जाता हो अर्थात् किसीके लिये अच्छा और किसीके लिये खराब बनता हो और जहाँ घरमें रोज-रोज कलह होता हो, वहीं तुम्हारा निवास है। जहाँ गाय-घोड़े आदि वाहन बिना खिलाये-पिलाये बाँध दिये जाते हों और संध्याके पहले ही जिस घरको धो-बुहारकर साफ नहीं किया जाता हो, वहाँ रहनेवाले मनुष्योंको तुमसे भय प्राप्त होगा। जो मनुष्य बिना व्रतके ही उपवास करते, जूए और स्त्रियोंमें आसक्त रहते, दुःसह वचन बोलते और बिडालव्रती होते—बिल्लियोंकी तरह ऊपरसे साधु बनकर छिपे-छिपे अपना उल्लू सीधा करते हैं, वे सब तुम्हारे उपकारी हैं। जो ब्रह्मचर्य-पालनके बिना ही अध्ययन और विद्वान् हुए बिना ही यज्ञ

करते हैं, तपोवनमें रहकर भी ग्राम्य विषय-भोगोंका सेवन करते और अपने मनको जीतनेका यत्न नहीं करते तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र अपने-अपने कर्मसे भ्रष्ट होते हैं, ऐसे लोग परलोककी इच्छासे जो भी चेष्टा करते हैं, उसका सारा फल तुम्हींको मिलेगा।

यक्ष्मन्! तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी उपाय बताता हूँ, सुनो। जो लोग बलिवैश्वदेवके अन्तमें तुम्हारे नामके उच्चारणपूर्वक तुम्हें बलि अर्पण करते हैं और 'यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः' कहकर उसे त्यागते हैं, जो शुद्धतापूर्वक बना हुआ अन्न विधिपूर्वक भोजन करते, बाहर-भीतरसे पवित्र रहते, लोलुपता नहीं रखते और स्त्रियोंके वशीभूत नहीं होते, ऐसे मनुष्योंके घरोंको तुम त्याग देना। जहाँ हविष्यसे देवताओंकी और श्राद्धान्नसे पितरोंकी पूजा होती हो तथा कुलकी स्त्रियों, बहनों और अतिथियोंका स्वागत-सत्कार होता हो, उस घरको भी छोड़ देना। जहाँ बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष तथा स्वजनवर्गमें प्रेम हो, जहाँकी स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक रहती हों, बाहर जानेके लिये उत्सुक नहीं होतीं तथा लज्जाकी रक्षा करती हैं, उस घरपर भी दृष्टि न डालना। जहाँ अवस्था और सम्बन्धके अनुसार शयन, आसन और भोजनकी व्यवस्था हो, जहाँके निवासी दयालु, सत्कर्मपरायण और साधारण सामग्रीसे युक्त हों तथा जिस घरके लोग गुरु, वृद्ध एवं ब्राह्मणोंके खड़े रहनेपर स्वयं भी आसनपर नहीं बैठते, वह घर भी तुम्हें छोड़ देना चाहिये। देवता, पितर, मनुष्य और अतिथियोंके भोजनसे बचा हुआ अन्न ही जिसका भोजन है, उस पुरुषके घरमें भी तुम पैर न रखना।

जो सत्यवादी, क्षमाशील, अहिंसक, दूसरोंको पीड़ा न देनेवाले तथा दोषदृष्टिसे रहित हों, ऐसे पुरुषोंको तुम छोड़ देना। जो अपने पतिकी सेवामें संलग्न रहती, दुष्टा स्त्रियोंका साथ नहीं करती तथा कुटुम्बके लोगों एवं पतिके भोजन करनेसे बचे हुए अन्नको ही खाकर अपने शरीरका पोषण करती है, ऐसी स्त्रीको भी तुम हाथ न लगाना। जो सदा यज्ञ, अध्ययन, वेदाभ्यास और दानमें मन लगाता है, यज्ञ कराने, शास्त्र पढ़ाने तथा उत्तम दान ग्रहण करनेसे ही जिसकी जीविका चलती हो, ऐसे ब्राह्मणको भी तुम त्याग देना। दुःसह! जो सदा दान, अध्ययन और यज्ञके लिये उद्यत रहता और अपने लिये उत्तम एवं विशुद्ध शस्त्रग्रहणकी वृत्तिसे जीविका चलाता हो, उस क्षत्रियके पास भी तुम न जाना। जो दान, अध्ययन और यज्ञ—इन तीन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त हो और पशु-पालन, व्यापार एवं कृषिसे जीविका चलाता हो, ऐसे पापरहित वैश्यको भी त्याग देना। यक्ष्मन्! जो दान, यज्ञ और द्विजोंकी सेवामें तत्पर रहता और ब्राह्मण आदिकी सेवासे ही जीवन-निर्वाह करता हो—ऐसे शूद्रका भी त्याग कर देना।

जहाँ गृहस्थ पुरुष श्रुति-स्मृतिके अनुकूल उपायसे जीविका चलाता हो, उसकी पत्नी उसीकी अनुगामिनी हो, पुत्र गुरु, देवता और पिताका पूजन करता हो तथा पत्नी भी पतिकी पूजामें संलग्न रहती हो; वहाँ अलक्ष्मीका भय कैसे हो सकता है। यक्ष्मन्! जो प्रतिदिन संध्याके समय पानीसे धोया जाता और स्थान-स्थानपर फूलोंसे पूजित होता है, उस घरकी ओर तुम आँख उठाकर देख भी नहीं सकते। जिस घरमें बिछी हुई शय्याको सूर्य न देखते हों अर्थात् जहाँ लोग सूर्योदयसे पहले ही सोकर उठ जाते हों, जहाँ प्रतिदिन अग्नि और जल प्रस्तुत रहता हो, सूर्योदय होनेतक दीप जलता एवं सूर्यका पूर्ण प्रकाश पहुँचता हो, वह घर लक्ष्मीका निवास-स्थान है। जहाँ साँड़, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, ब्राह्मण तथा ताँबेके पात्र हों, उस घरमें तुम्हारे लिये स्थान नहीं है।

दुःसह! जहाँ पके या कच्चे अन्नोंका अनादर और शास्त्रोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन होता हो, उस घरमें तुम इच्छानुसार विचरण करो। जिस घरमें मनुष्यकी हड्डी हो और एक दिन तथा एक रात मुर्दा पड़ा रहा हो, उसमें तुम्हारा तथा अन्य राक्षसोंका भी निवास रहे। जो अपने भाई-बन्धुको तथा सपिण्ड एवं समानोदक मनुष्योंको अन्न और जल दिये बिना ही भोजन करते हैं, उस समय उन लोगोंपर तुम आक्रमण करो। जहाँ पुरवासी पहलेसे ही बड़े-बड़े उत्सव मनानेमें प्रसिद्ध हो चुके हों और पहलेकी ही भाँति अब अपने घरपर उत्सव मनाते हों, ऐसे घरोंमें न जाना। जो सूपकी हवासे, भीगे कपड़ेके जलकी बूँदोंसे तथा नखके अग्रभागके जलसे स्नान करते हों, उन कुलक्षणी पुरुषोंके पास अवश्य जाओ। जो पुरुष देशाचार, प्रतिज्ञा, कुलधर्म, जप, होम, मङ्गल, देवयज्ञ, उत्तम शौच तथा लोक-प्रचलित धर्मोंका भलीभाँति पालन करता हो, उसके संसर्गमें तुम्हें नहीं जाना चाहिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—दुःसहसे ऐसी बात कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर उसने भी ब्रह्माजीकी आज्ञाका उसी प्रकार पालन किया।

दुःसहकी सन्तानोंद्वारा होनेवाले विघ्न और उनकी शान्तिके उपाय



मार्कण्डेयजी कहते हैं—दुःसहकी पत्नी निर्माष्टि हुई। यह कलिकी कन्या थी। कलिकी पत्नीने रजस्वला होनेपर चाण्डालका दर्शन किया था, उसीसे इस कन्याका जन्म हुआ था। दुःसह और निर्माष्टिकी सोलह सन्तानें हुईं, जो समस्त संसारमें व्याप्त हैं। इनमें आठ पुत्र थे और आठ कन्याएँ। ये सब-के-सब अत्यन्त भयंकर थे। दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त, अङ्गधुक्, शकुनि, गण्डान्तरति, गर्भहा तथा शस्यहा—ये आठ पुत्र थे। नियोजिका, विरोधिनी, स्वयंहारिका, भ्रामणी, ऋतुहारिका, स्मृतिहरा, बीजहरा तथा विद्वेषिणी—ये आठ कन्याएँ थीं, जो सम्पूर्ण जगत्‌को भय देनेवाली हुईं। अब मैं इनके कर्म तथा इनसे होनेवाले दोषोंकी शान्तिके उपाय बतलाऊँगा। पहले आठ पुत्रोंके विषयमें सुनो। दन्ताकृष्टि छोटे बच्चोंके दाँतोंमें स्थित होकर उनमें रगड़ पैदा करता है। इस प्रकार वह दुःसह नामक अलक्ष्मी-पुत्रको वहाँ बुलाना चाहता है। उसकी शान्तिके लिये सोये हुए बालककी शय्या और दाँतोंपर सफेद सरसों छींटना चाहिये। तथा सुवर्चला (ब्राह्मी) नामक ओषधिसे स्नान कराने और उत्तम शास्त्रोंका पाठ करानेसे भी यह दोष दूर होता है। दुःसहका दूसरा पुत्र तथोक्ति जब आता है, तब वह बारंबार 'यही हो, यही हो' ऐसा कहता हुआ मनुष्योंको शुभाशुभमें लगा देता है। यदि अकस्मात् शुभाशुभकी प्रवृत्ति हो तो उसे तथोक्तिकी ही प्रेरणा समझनी चाहिये। यदि शुभका कथन या श्रवण हो तो विद्वान् पुरुष उसे मङ्गलमय बतावे और यदि अशुभका श्रवण या कथन हो तो उसकी शान्तिके लिये भगवान् विष्णु, चराचरगुरु ब्रह्मा तथा अपने-अपने कुलदेवताके नामोंका कीर्तन करना चाहिये। जो अन्यके गर्भमें दूसरे गर्भोंको रखने और बदलनेमें प्रसन्नताका अनुभव करता है तथा कोई बात कहनेके लिये उत्सुक मनुष्यके मुखसे किसी और ही बातको कहला देता है, वह दुःसहका तीसरा पुत्र परिवर्त है। उसकी शान्तिके लिये भी तत्त्ववेत्ता पुरुष पीली सरसों छिड़के और रक्षोघ्न-मन्त्रोंका पाठ करे।

अङ्गधुक् नामक चौथा कुमार वायुके समान मनुष्योंके अङ्गोंमें प्रवेश करके स्फुरण (फड़कने) आदिके द्वारा शुभाशुभ फलकी सूचना देता है। उसकी शान्तिके लिये कुशोंसे शरीरको झाड़े। दुःसहका पाँचवाँ कुमार शकुनि कौवे आदि पक्षियोंके अथवा कुत्ते-सियार आदि पशुओंके शरीरमें स्थित होकर अपनी बोलीसे शुभाशुभ फलको सूचित करता है। उसमें भी अशुभसूचक शब्द होनेपर कार्यारम्भका परित्याग करना चाहिये और शुभसूचक शब्द होनेपर अत्यन्त शीघ्रताके साथ कार्यारम्भ कर देना चाहिये। ऐसा प्रजापतिका कथन है द्विजश्रेष्ठ! गण्डान्तरतिनामक छठा कुमार गण्डान्तोंमें आधे मुहूर्ततक स्थित हो सब प्रकारके कार्यारम्भका नाश और माङ्गलिक कर्म तथा अनिन्दनीयता (प्रतिष्ठा) का अपहरण करता है। ब्राह्मणोंके आशीर्वाद, देवताओंकी स्तुति, मूलशान्ति, गोमूत्र और सरसों मिले हुए जलसे स्नान, जन्मकालिक नक्षत्र और ग्रहोंके पूजन, धर्ममय उपनिषदोंके पाठ, शास्त्रोंके दर्शन तथा गण्डान्तमें पैदा हुए बालककी अवज्ञा (कुछ कालतक उसका मुँह न देखने) से उसके दोषकी शान्ति होती है। सातवाँ कुमार 'गर्भहा' बड़ा भयंकर है, जो स्त्रियोंके गर्भमें प्रवेश करके गर्भस्थ पिण्डको अपना ग्रास बना लेता है। प्रतिदिन पवित्रतापूर्वक रहने, प्रसिद्ध मन्त्र (कवच आदि) लिखकर बाँधने, उत्तम फूलों आदिकी माला धारण करने, पवित्र गृहमें रहने तथा अधिक परिश्रम न करनेसे गर्भवती स्त्रीकी उसके भयसे रक्षा होती है। अतः इसके लिये सदा चेष्टा करनी चाहिये। इसी प्रकार आठवाँ कुमार शस्यहा है, वह खेतीकी उपजको नष्ट करता है। उसकी भी शान्ति करनी चाहिये; इसके लिये उपाय है—खेतमें पुराना जूता रखना, अपसव्य होकर वहाँ जाना, चाण्डालका उसमें प्रवेश कराना, खेतके बाहर पूजा चढ़ाना और चन्द्रमा एवं जल (वरुण) के नामों या मन्त्रोंका कीर्तन करना।

दुःसहकी पहली कन्या नियोजिका है। वह मनुष्योंको परायी स्त्री और पराये धनके अपहरण आदिमें लगा देती है। पवित्र ग्रन्थों, मन्त्रों अथवा स्तुतियोंके पाठसे तथा क्रोध-लोभ आदि दुर्गुणोंका त्याग करनेसे उसकी शान्ति होती है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि 'नियोजिका मुझे इन दुष्कर्मोंमें लगा रही है' यों विचारकर उसका विरोध करते हुए उन कर्मोंका त्याग करे। जब कोई अपनेको गाली दे या मार

बैठे तो भी यही सोचकर कि नियोजिकाने ही इसे इस बुराईमें लगाया है, क्रोध आदिके वशीभूत न हो। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष सदा इस बातका स्मरण करता रहे कि नियोजिका ही मुझको और मेरे चित्तको परस्त्री-संसर्गमें लगाती है। दूसरी कन्याका नाम विरोधिनी है। वह परस्पर प्रेम रखनेवाले स्त्री-पुरुषोंमें, भाई-बन्धुओंमें, मित्रोंमें, पिता-मातामें, पिता-पुत्रमें तथा सजातीय पुरुषोंमें विरोध डाला करती है। अतः बलिकर्म (पूजोपहारसमर्पण) करने, कठोर बातोंको सहने तथा शास्त्रीय आचार-विचारका पालन करनेके द्वारा उसके भयसे अपनी रक्षा करे। तीसरी कन्याका नाम स्वयंहारिका है। वह खलिहानसे अनाज, घर और गोशालेसे दूध-घी तथा बढ़नेवाले द्रव्यसे उसकी वृद्धि नष्ट कर देती है और सदा अन्तर्धान रहती है। इतना ही नहीं, रसोई-घरसे अधपका अन्न तथा अन्नभंडारसे अनाज चुरा लेती है और परोसी हुई रसोईको भोजन करनेवाले मनुष्यके साथ स्वयं भी भोजन करती है। मनुष्योंके जूठे अन्नतक चुरा लेती है। जोते हुए खेत, घर और शालासे ऋद्धि-सिद्धिको हड़प लेती है। गायों और स्त्रियोंके थनोंसे दूध गायब कर देती है। दहीसे घी, तिलसे तेल, कुसुम्भ आदिका रंग तथा रूईसे सूत हर लेती है। इस प्रकार स्वयंहारिका निरन्तर अपहरणमें ही लगी रहती है। उससे रक्षा होनेके लिये अपने घरमें मोरके जोड़े रक्खे। स्त्रीकी कृत्रिम मूर्ति बनाकर स्थापित करे, घरकी दीवारपर रक्षाके मन्त्र और वाक्य लिखे, घरके भीतर जूठन न रहने दे, हवनकी अग्निसे तथा देवताको धूप देनेसे जो भस्म हो, उसे लेकर दूध आदिके बर्तनोंमें लगा दे। [गाय और स्त्रीके स्तनोंमें तथा अन्न-भंडार आदिमें भी उस भस्मका स्पर्श करा दे।] इससे रक्षा होती है। जो एक स्थानपर निवास करनेवाले पुरुषके मनमें उद्वेग पैदा करती है, वह भ्रामणी नामकी कन्या है। उसकी शान्तिके लिये आसन, शय्या तथा उस भूमिपर, जहाँ मनुष्य रहता हो, पीली सरसों छींट दे। साथ ही एकाग्रचित्त होकर पृथ्वी-सूक्तका जप करे।

दुःसहकी पाँचवीं कन्या स्त्रियोंके मासिक धर्म नष्ट करती है। इसलिये उसे ऋतुहारिका जानना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये स्त्रीको तीर्थमें, देवालयके समीप, चैत्य वृक्षके नीचे, पर्वतके शिखरपर तथा नदीके संगम एवं सरोवरोंमें नहलाना चाहिये। साथ ही चिकित्साशास्त्रके ज्ञाता अच्छे वैद्यको बुलाकर उनकी दी हुई उत्तम ओषधियोंका सेवन भी करना चाहिये। छठी कन्याका नाम स्मृतिहरा है। यह स्त्रियोंकी स्मरणशक्तिको हर लेती है। पवित्र एवं एकान्त स्थानमें रहनेसे उसकी शान्ति होती है। सातवीं कन्या बीजहरा कहलाती है। यह अत्यन्त भयानक है। स्त्री-पुरुषोंके रज-वीर्यका अपहरण किया करती है। पवित्र अन्नके भोजन तथा नित्य स्नान करनेसे उसकी शान्ति होती है। आठवीं कन्या विद्वेषिणी है, जो सम्पूर्ण जगत्को भय देनेवाली है। यह स्त्री अथवा पुरुषको लोगोंका द्वेषपात्र बना देती है। उसकी शान्तिके लिये मधु, घृत, क्षीरमिश्रित तिलोंका हवन एवं मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे।

दक्ष प्रजापतिकी संतति तथा स्वायम्भुव सर्गका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भृगुसे उनकी पत्नी ख्यातिने धाता और विधाता नामक दो देवताओंको उत्पन्न किया। देवाधिदेव भगवान् नारायणकी धर्मपत्नी श्रीलक्ष्मीदेवी भी ख्यातिके ही गर्भसे प्रकट हुईं। महात्मा मेरुकी दो कन्याएँ थीं—आयति और नियति। ये ही धाता और विधाताकी पत्नियाँ हुईं। इन दोनोंसे दो पुत्र हुए—प्राण तथा मेरे महायशस्वी पिता मृकण्डु। श्रीमृकण्डुसे मेरा जन्म हुआ, मेरी माता मनस्विनी देवी थीं। मेरी पत्नी धूम्रवतीके गर्भसे मेरे पुत्र वेदशिराका जन्म हुआ। अब प्राणकी सन्तानका वर्णन सुनो। प्राणका पुत्र द्युतिमान् और द्युतिमान्का अजरा हुआ। उन दोनोंके बहुत-से पुत्र-पौत्र हुए।

मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया। महात्मा पौर्णमासके दो पुत्र हुए—विरजा और पर्वत। अङ्गिराकी पत्नी स्मृतिने चार कन्याओंको जन्म दिया। उनके नाम ये हैं—सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति। इसी प्रकार महर्षि अत्रिकी पत्नी अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा तथा योगी दत्तात्रेय—इन तीन पापरहित पुत्रोंको उत्पन्न किया। पुलस्त्यकी पत्नी प्रीतिसे दत्तोलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अपने पूर्वजन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'अगस्त्य'के नामसे प्रसिद्ध था। क्षमा प्रजापति पुलहकी पत्नी थी। उसने कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। क्रतुकी पत्नी सन्नतिने साठ हजार वालखिल्य

नामक ऊर्ध्वरेता महर्षियोंको उत्पन्न किया। वसिष्ठकी पत्नी ऊर्ज्जाके गर्भमें सात पुत्र उत्पन्न हुए—रज, गात्र, ऊर्ध्ववाहु, सबल, अनघ, सुतपा और शुक्र। ये सभी सप्तर्षि हुए।

ब्रह्मन्! अग्नितत्त्वके अभिमानी देवता अग्नि ब्रह्माजीके प्रथम पुत्र थे। उनकी पत्नी स्वाहाने तीन पुत्र उत्पन्न किये, जो बड़े ही उदार और तेजस्वी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—पावक, पवमान और शुचि। इनमें शुचि जलको सोखनेवाला है। इन तीनोंके वंशमें प्रत्येकके पंद्रह-पंद्रहके क्रमसे पैंतालीस पुत्र हुए। इनके साथ पिता अग्नि और उनके तीन पुत्रोंकी संख्या जोड़नेसे कुल उन्चास अग्नि होते हैं। ये सब-के-सब दुर्जय माने जाते हैं। ब्रह्माजीके द्वारा उत्पन्न जो अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, अनग्निक और साग्निक पितर बतलाये गये हैं, उनसे स्वधाने दो कन्याओंको जन्म दिया, जिनके नाम थे—मेना और धारिणी। वे दोनों ही उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न तथा सभी गुणोंसे सुशोभित, ब्रह्मवादिनी एवं योगिनी थीं। इस प्रकार यह दक्ष-कन्याओंकी वंश-परम्पराका वर्णन हुआ। जो श्रद्धापूर्वक इसका चिन्तन करता है, वह निस्सन्तान नहीं रहता।

क्रौष्टुकि बोले—भगवन्! आपने जो अभी स्वायम्भुव मन्वन्तरकी चर्चा की है, उसका वर्णन मैं अच्छी तरह सुनना चाहता हूँ। मन्वन्तरके कालमान, देवता, देवर्षि, राजा और इन्द्र—इन सबका वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! मन्वन्तरकी अवधि इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक कालकी होती है, यह बात बतायी जा चुकी है। अब मानव-वर्षसे मन्वन्तरका कालमान सुनो। तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। देवताओंके मानसे आठ लाख बावन हजार वर्षोंका यह काल है। सबसे पहले मनु स्वायम्भुव हैं। इसके बाद स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष हैं। ये छः मनु बीत चुके हैं। इस समय वैवस्वत मनुका राज्य है। भविष्यमें सावर्णि नामवाले पाँच मनु, रौच्य मनु तथा भौम मनु—ये सात और होनेवाले हैं। इनका विस्तृत वर्णन मन्वन्तरोंके प्रकरणमें करेंगे। ब्रह्मन्! इस समय मन्वन्तरोंके देवता, ऋषि, इन्द्र और पितरोंका परिचय देता हूँ तथा उनकी उत्पत्ति, संग्रह एवं संतानोंका भी वर्णन करता हूँ। साथ ही यह भी बतलाता हूँ कि मनु और उनके पुत्रोंके राज्यका क्षेत्र कितना था।

पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रथम त्रेतायुगमें प्रियव्रतके पुत्रों अर्थात् स्वायम्भुव मनुके पौत्रोंने पृथ्वीके वर्ष-विभाग किये थे। प्रजापति कर्दमजीकी पुत्री प्रजावती राजा प्रियव्रतको ब्याही गयी थी, उसके गर्भसे दो कन्याएँ और दस पुत्र हुए। कन्याओंके नाम थे—सम्राट् और कुक्षि। उन दोनोंके दसों भाई प्रजापतिके समान तेजस्वी और बड़े शूरवीर थे। उनमें सातके नाम इस प्रकार हैं—आग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य और सवन। इनके सिवा मेधा, अग्निबाहु और मित्र—ये तीन और थे, जो तपस्या और योगमें तत्पर रहते थे। इन्हें अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण था। अतएव इन महाभाग्यशाली पुरुषोंने राज्य-भोगमें मन नहीं लगाया। राजा प्रियव्रतने शेष सातों पुत्रोंको सातों द्वीपोंके राजपदपर धर्मपूर्वक अभिषिक्त कर दिया। अब द्वीपोंका वर्णन सुनो।

प्रियव्रतने जम्बूद्वीपमें आग्नीध्रको राजा बनाया। प्लक्षद्वीपका राज्य मेधातिथिको सौंपा। शाल्मलद्वीपमें वपुष्मान्को और कुशद्वीपमें ज्योतिष्मान्को राजा बनाया। द्युतिमान् क्रौञ्चद्वीपके, भव्य शाकद्वीपके तथा सवन पुष्करद्वीपके स्वामी बनाये गये। पुष्करराज सवनके दो पुत्र हुए—महावीर और धातकि। उन्होंने पुष्करद्वीपको दो भागोंमें बाँटकर बसाया। भव्यके सात पुत्र थे, उनके नाम ये हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, वनीयक, कुशोत्तर, मेधावी और महाद्रुम। उन्होंने अपने-अपने नामसे शाकद्वीपके सात खण्ड किये। द्युतिमान्के भी कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकार, अर्थकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये सात ही पुत्र थे। उनके नामसे क्रौञ्चद्वीपके सात खण्ड हुए। राजा ज्योतिष्मान्के कुशद्वीपमें भी उनके पुत्रोंके नामपर सात खण्ड बने, उनके नाम इस प्रकार हैं—उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन, धृतिमान्, प्रभाकर तथा कापिल। शाल्मलद्वीपके स्वामी वपुष्मान्के भी सात पुत्र हुए—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और केतुमान्। इनके नामपर भी पूर्ववत् उक्त द्वीपके सात खण्ड बनाये गये। प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके भी सात ही पुत्र हुए और उनके नामसे प्लक्षद्वीपके भी सात खण्ड बन गये। उन खण्डोंके नाम इस प्रकार हैं—शाकभव, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक तथा ध्रुव। प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपतकके पाँच द्वीपोंमें वर्णाश्रम-धर्म विभागपूर्वक स्थित है। वहाँ धर्मका सदा स्वाभाविक रूपसे पालन होता है। कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं की जाती। उन पाँचों द्वीपों और उनके वर्षोंमें सब धर्म सामान्य रूपसे सर्वत्र प्रचलित हैं।

ब्रह्मन् ! राजा प्रियव्रतने आग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राज्य दिया था। उनके नौ पुत्र हुए, जो प्रजापतिके समान शक्तिशाली थे। उनमें सबसे बड़ेका नाम नाभि था, उससे छोटा किंपुरुष था। तीसरेका नाम हरि, चौथेका इलावृत, पाँचवेंका रम्य, छठेका हिरण्यक, सातवेंका कुरु, आठवेंका भद्राश्व और नवेंका केतुमाल था। इन पुत्रोंके नामपर ही जम्बूद्वीपके नौ खण्ड हुए। हिमवर्षको छोड़कर शेष जो किम्पुरुष आदि वर्ष हैं, उनमें सुखकी अधिकता है और बिना यत्न किये स्वभावसे ही वहाँ सब कामनाओंकी सिद्धि होती है। उनमें किसी प्रकारके विपर्यय (असुख, अकाल मृत्यु आदि) तथा जरा-मृत्युका कोई भय नहीं है। और न वहाँ धर्म-अधर्म अथवा उत्तम, मध्यम, अधम आदिका ही कोई भेद है। उन आठ वर्षोंमें न चार युगोंकी व्यवस्था है, न छः ऋतुओंकी। वहाँ किसी विशेष ऋतुके कोई चिह्न नहीं दीख पड़ते। आग्नीध्रकुमार नाभिके पुत्र ऋषभ और ऋषभके भरत हुए, जो अपने सौ भाइयोंमें सबसे बड़े थे। ऋषभ अपने पुत्रको राज्य दे महाप्रव्रज्या (संन्यास) ग्रहण करके तपस्या करने लगे। वे महर्षि पुलहके आश्रममें ही रहते थे। उन्होंने हिम नामक वर्षको, जो सबसे दक्षिण है, अपने पुत्र भरतको दिया था; इसलिये महात्मा भरतके नामपर इसका नाम भारतवर्ष हो गया।

भरतके पुत्र सुमति हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। भरतने उनको राज्य देकर वनका आश्रय लिया। राजा प्रियव्रतके पुत्रों तथा उनके भी पुत्र-पौत्रोंने स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका उपभोग किया। द्विजश्रेष्ठ ! यह मैंने तुम्हें स्वायम्भुव मन्वन्तरकी सृष्टि बतलायी अब और क्या सुनाऊँ ?

जम्बूद्वीप और उसके पर्वतोंका वर्णन

क्रौष्टुकिने पूछा—ब्रह्मन् ! द्वीप, समुद्र, पर्वत और वर्ष कितने हैं तथा उनमें कौन-कौन-सी नदियाँ हैं ? महाभूत (पृथ्वी) और लोकालोकका प्रमाण क्या है ? चन्द्रमा और सूर्यका व्यास, परिमाण तथा गति कितनी है ? महामुने ! ये सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन् ! समूची पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। अब उसके सब स्थानोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। महाभाग ! जम्बूद्वीपसे लेकर पुष्करद्वीपतक जितने द्वीपोंकी मैंने चर्चा की है, उन सबका विस्तार इस प्रकार है। क्रमशः एक द्वीपसे दूसरा द्वीप दुगुना बड़ा है; इसी क्रमसे जम्बूद्वीप, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्करद्वीप स्थित हैं। ये क्रमशः लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दही, दूध और जलके समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। ये समुद्र भी एककी अपेक्षा दूसरे दुगुने बड़े हैं।

अब मैं जम्बूद्वीपकी स्थितिका वर्णन करता हूँ। इसकी लंबाई-चौड़ाई एक लाख योजनकी है। इसमें हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत तथा शृङ्गी—ये सात वर्ष-पर्वत हैं। इनमें मेरु तो सबके बीचमें है, उसके सिवा जो नील और निषध नामक दो और मध्यवर्ती पर्वत हैं, वे एक-एक लाख योजनतक फैले हुए हैं। निषधसे दक्षिणमें तथा नीलसे उत्तरमें जो दो-दो पर्वत हैं, उनका विस्तार क्रमशः दस-दस हजार योजन कम है। अर्थात् हेमकूट और श्वेत नब्बे-नब्बे हजार योजनतक तथा हिमवान् और शृङ्गी अस्सी-अस्सी हजार योजनतक फैले हुए हैं। वे सभी दो-दो हजार योजन ऊँचे और उतने ही चौड़े हैं। इन जम्बूद्वीपके छः वर्षपर्वत समुद्रके भीतरतक प्रवेश किये हुए हैं। यह पृथ्वी दक्षिण और उत्तरमें नीची और बीचमें ऊँची तथा चौड़ी है। जम्बूद्वीपके तीन खण्ड दक्षिणमें हैं और तीन खण्ड उत्तरमें। इनके मध्यभागमें इलावृत वर्ष है, जो आधे चन्द्रमाके आकारमें स्थित है। उसके पूर्वमें भद्राश्व और पश्चिममें केतुमाल वर्ष है। इलावृत वर्षके मध्यभागमें सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जिसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। वह सोलह हजार योजन नीचेतक पृथ्वीमें समाया हुआ है। तथा उसकी चौड़ाई भी सोलह हजार योजन ही है। वह शराव (पुरवे) की आकृतिका होनेके कारण चोटीकी ओर बत्तीस हजार योजन चौड़ा है। मेरुपर्वतका रंग पूर्वकी ओर सफेद, दक्षिणकी ओर पीला, पश्चिमकी ओर काला और उत्तरकी ओर लाल है। यह रंग क्रमशः ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र तथा क्षत्रियका है। मेरुपर्वतके ऊपर क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्रादि आठ लोकपालोंके निवासस्थान हैं। इनके बीचमें ब्रह्माजीकी सभा है। वह सभामण्डप चौदह

हजार योजन ऊँचा है। उसके नीचे विष्कम्भ (आधार) रूपसे चार पर्वत हैं, जो दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं। वे क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व। इन चारों पर्वतोंके ऊपर चार बड़े-बड़े वृक्ष हैं, जो ध्वजाकी भाँति उनकी शोभा बढ़ाते हैं। मन्दराचलपर कदम्ब, गन्धमादन पर्वतपर जम्बू, विपुलपर पीपल तथा सुपार्श्वके ऊपर बरगदका महान् वृक्ष है। इन पर्वतोंका विस्तार ग्यारह-ग्यारह सौ योजनका है। मेरुके पूर्वभागमें जठर और देवकूट पर्वत हैं, जो नील और निषध पर्वततक फैले हुए हैं। निषध और पारियात्र—ये दो पर्वत मेरुके पश्चिम भागमें स्थित है। पूर्ववाले पर्वतोंकी भाँति ये भी नीलगिरितक फैले हुए हैं। हिमवान् और कैलासपर्वत मेरुके दक्षिण भागमें स्थित हैं। ये पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैलते हुए समुद्रके भीतरतक चले गये हैं। इसी प्रकार उसके उत्तर भागमें श्रृङ्गवान् और जारुधि नामक पर्वत हैं। ये भी दक्षिण भागवाले पर्वतोंकी भाँति समुद्रके भीतरतक फैले हुए हैं। द्विजश्रेष्ठ! ये मर्यादा-पर्वत कहलाते हैं।

हिमवान् और हेमकूट आदि पर्वतोंका पारस्परिक अन्तर नौ-नौ हजार योजन है। ये इलावृतवर्षके मध्यभागमें मेरुकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं। गन्धमादन पर्वतपर जो जामुनके फल गिरते हैं, वे हाथीके शरीरके बराबर होते हैं। उनमेंसे जो रस निकलता है, उससे जम्बू नामकी नदी प्रकट होती है, जहाँसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है। वह नदी जम्बूवृक्षके मूलभूत मेरुपर्वतकी परिक्रमा करती हुई बहती है और वहाँके निवासी उसीका जल पीते हैं। भद्राश्ववर्षमें भगवान् विष्णु हयग्रीवरूपसे, भारतवर्षमें कच्छपरूपसे, केतुमालवर्षमें वाराहरूपसे तथा उत्तरकुरुमें मत्स्यरूपसे विराजते हैं।

द्विजश्रेष्ठ! मन्दर आदि चार पर्वतोंपर जो चार वन और सरोवर हैं, उनके नाम सुनो। मेरुसे पूर्वके पर्वतपर चैत्ररथ नामक वन है, दक्षिण शैलपर नन्दन वन है, पश्चिमके पर्वतपर वैभ्राज वन है और उत्तरवाले पर्वतपर सावित्र नामक वन है। पूर्वमें अरुणोद, दक्षिणमें मानस, पश्चिममें शीतोद और उत्तरमें महाभद्रनामक सरोवर है। शीतार्त, चक्रमुञ्ज, कुलीर, सुकङ्कवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानील, भवाचल, सुबिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध तथा देवशैल—ये महान् पर्वत मन्दराचलसे पूर्व दिशामें स्थित हैं। त्रिकूट, शिखराद्रि, कलिङ्ग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान्, श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एकश्रृङ्ग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक, पञ्चशैल, कैलास और हिमालय—ये मेरुके दक्षिणभागमें स्थित हैं। सुरक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिङ्गल, पिञ्जर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु, अञ्जन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्रशिखर, पारियात्र और श्रृङ्गवान्—ये मेरुके पश्चिम विष्कम्भ विपुल गिरिसे पश्चिममें स्थित हैं। शङ्खकूट, वृषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील, स्वर्णश्रृङ्ग, शातश्रृङ्ग, पुष्पक, मेघ, विरजाक्ष, वराहाद्रि, मयूर तथा जारुधि—ये सभी पर्वत मेरुके उत्तरभागमें स्थित हैं। इन पर्वतोंकी कन्दराएँ बड़ी मनोहर हैं। हरे-भरे वन और स्वच्छ जलवाले सरोवर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ पुण्यात्मा मनुष्योंका जन्म होता है। द्विजश्रेष्ठ! ये स्थान इस पृथ्वीके स्वर्ग हैं। इनमें स्वर्गसे भी अधिक गुण हैं। यहाँ नूतन पाप-पुण्यका उपार्जन नहीं होता। ये देवताओंके लिये भी पुण्यभोगके ही स्थान हैं। इन पर्वतोंपर विद्याधर, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस, देवता तथा गन्धर्वोंके सुन्दर एवं विशाल वासस्थान हैं। वे परमपवित्र तथा देवताओंके मनोहर उपवनोंसे सुशोभित हैं। वहाँके सरोवर भी बड़े सुन्दर हैं। वहाँ सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली वायु चलती है। इन पर्वतोंपर मनुष्योंमें कहीं वैमनस्य नहीं होता।

इस प्रकार मैंने चार पत्रोंसे सुशोभित पार्थिव कमलका वर्णन किया है। भद्राश्व और भारत आदि वर्ष चारों दिशाओंमें इस कमलके पत्र हैं। मेरुके दक्षिण भागमें जिस भारत नामक वर्षकी चर्चा की गयी है, वही कर्मभूमि है। अन्य स्थानोंमें पाप-पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती। अतः भारतवर्षको ही सबसे प्रधान समझना चाहिये। क्योंकि वहाँ सब कुछ प्रतिष्ठित है। भारतवर्षसे मनुष्य स्वर्गलोक, मोक्ष, मनुष्यलोक, नरक, तिर्यक्-योनि अथवा और कोई गति—जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

श्रीगङ्गाजीकी उत्पत्ति, किम्पुरुष आदि वर्षोंकी विशेषता तथा भारतवर्षके विभाग, नदी, पर्वत और जनपदोंका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! विश्वयोनि भगवान् नारायणका जो ध्रुवाधार[1] नामक पद है, उसीसे त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है। वहाँसे चलकर वे सुधाकी उत्पत्तिके स्थान और जलके आधारभूत चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट हुई और सूर्यकी किरणोंके सम्पर्कसे

१. इसीको शिशुमार चक्र भी कहते हैं।

अत्यन्त पवित्र हो मेरुपर्वतके शिखरपर गिरीं। वहाँ उनकी चार धाराएँ हो गयीं। मेरुके शिखरों और तटोंसे नीचे गिरती-बहती गङ्गाका जल चारों ओर बिखर गया और आधार न होनेके कारण नीचे गिरने लगा। इस प्रकार वह जल मन्दर आदि चारों पर्वतोंपर बराबर-बराबर बँट गया। अपने वेगसे बड़े-बड़े पर्वतोंको विदीर्ण करती हुई गङ्गाकी जो धारा पूर्व दिशाकी ओर गयी, वह सीताके नामसे विख्यात हुई। सीता चैत्ररथ नामक वनको जलसे आप्लावित करती हुई वरुणोद सरोवरमें गयी और वहाँसे शीतान्त पर्वत तथा अन्य पहाड़ोंको लाँघती हुई पृथ्वीपर पहुँची। वहाँसे भद्राश्ववर्षमें होती हुई समुद्रमें मिल गयी। इसी प्रकार मेरुके दक्षिण गन्धमादन-पर्वतपर जो गङ्गाकी दूसरी धारा गिरी, वह अलकनन्दाके नामसे विख्यात हुई। अलकनन्दा मेरुकी घाटियोंपर फैले हुए नन्दन वनमें, जो देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाला है, बहती हुई बड़े वेगसे चलकर मानसरोवरमें पहुँची। उस सरोवरको अपने जलसे परिपूर्ण करके गङ्गा शैलराजके रमणीय शिखरपर आयी। वहाँसे क्रमशः दक्षिणमें स्थित समस्त पर्वतोंको अपने जलसे आप्लावित करती हुई महागिरि हिमवान्पर जा पहुँची। वहाँ भगवान् शङ्करने गङ्गाको अपने शीशपर धारण कर लिया और फिर नहीं छोड़ा। तब राजा



भगीरथने आकर उपवास और स्तुतिके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की। उनसे प्रसन्न होकर महादेवजीने गङ्गाको छोड़ दिया। फिर वे सात धाराओंमें विभक्त होकर दक्षिण समुद्रमें जा मिलीं। उनकी तीन धाराएँ तो पूर्व दिशाकी ओर गयीं। एक धारा भगीरथके पीछे-पीछे दक्षिण दिशाकी ओर बहने लगी।

मेरु गिरिके पश्चिम जो विपुल नामक पर्वत है, उसपर गिरी हुई महानदी गङ्गाकी धारा स्वरक्षुके नामसे विख्यात हुई। वहाँसे वैराज पर्वतपर होती हुई स्वरक्षु शीतोद सरोवरमें गयी और उसे आप्लावित करके त्रिशिख पर्वतपर पहुँच गयी। फिर वहाँसे अन्य पर्वतोंके शिखरोंपर होती हुई केतुमाल वर्षमें पहुँचकर खारे पानीके समुद्रमें मिल गयी। मेरुके उत्तरीय पाद सुपार्श्वपर्वतपर गिरी हुई गङ्गाकी धारा सोमाके नामसे विख्यात हुई। और सावित्र वनको पवित्र करती हुई महाभद्र सरोवरमें जा पहुँची। वहाँसे शङ्खकूट पर्वतपर जा क्रमशः वृषभ आदि शैलमालाओंको लाँघती हुई उत्तरकुरु नामक वर्षमें बहने लगी। अन्ततोगत्वा महासागरमें जा मिली।

द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने तुम्हें गङ्गाजीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कह सुनाया। साथ ही जम्बूद्वीपका निवेश और उसके वर्ष-विभाग भी बतला दिये। किम्पुरुष आदि समस्त वर्षोंमें प्रजा बड़े सुखसे रहती है। उसे किसी प्रकारका भय नहीं सताता। उनमें कोई छोटा-बड़ा या ऊँच-नीच नहीं होता। जम्बूद्वीपके नवों वर्षोंमें सात-सात कुल पर्वत हैं और प्रत्येक देशमें पर्वतोंसे निकली हुई अनेकानेक नदियाँ हैं। विप्रवर! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, वहाँ पृथ्वीसे ही प्रचुर जल निकलता है; किन्तु भारतवर्षमें वर्षाके जलसे विशेष कार्य चलता है। उक्त आठ वर्षोंमें वार्क्षी, स्वाभाविकी, देश्या, तोयोत्था, मानसी तथा कर्मजा सिद्धियाँ मनुष्योंको प्राप्त होती हैं। कामना पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष आदि वृक्षोंसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, उसे वार्क्षी सिद्धि कहते हैं। स्वभावसे ही प्राप्त होनेवाली सिद्धि स्वाभाविकी कहलाती है। देशसे या स्थानविशेषसे जो कार्यसिद्धि होती है, उसका नाम देश्या है। जलकी सूक्ष्मतासे होनेवाली सिद्धि तोयोत्था कही गयी है। ध्यानसे ही प्राप्त होनेवाली सिद्धिको मानसी कहते हैं तथा उपासना आदि कर्मसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह कर्मजा कहलाती है। किम्पुरुष आदि वर्षोंमें युगकी व्यवस्था और आधि-व्याधि नहीं है। वहाँ पाप-पुण्यका अनुष्ठान भी नहीं देखा जाता।

क्रौष्टुकिने कहा—भगवन् ! आपने जम्बूद्वीपका संक्षेपसे वर्णन किया; किन्तु महाभाग ! अभी-अभी आपने जो यह कहा कि भारतवर्षको छोड़कर और कहीं किया हुआ कर्म पुण्य और पापका जनक नहीं होता, केवल भारतवर्षसे ही मोक्ष तथा स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं पाताल आदि लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है। मनुष्योंके लिये और किसी भूमिपर कर्मका विधान नहीं है, केवल यह भारत ही कर्मभूमि है। अतः भारतवर्षका वृत्तान्त विस्तारके साथ बतलाइये। जितने इसके भेद हों, जैसी इस देशकी स्थिति हो और जो-जो यहाँ पर्वत हों उन सबका भलीभाँति वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! सुनो, भारतवर्षके नौ विभाग हैं, उन सबके बीचमें समुद्रका अन्तर है; अतः एक विभागके मनुष्यका दूसरे विभागमें जाना असम्भव है। उक्त नौ विभागोंके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप, वारुणद्वीप और नवाँ यह भारतवर्ष। भारत भी समुद्रसे घिरा है। यह उत्तरसे दक्षिणतक एक हजार योजन बड़ा है। इसके पूर्वमें किरात और पश्चिममें यवन रहते हैं। बीचमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका निवास है। ब्राह्मण आदि वर्णोंके लोग यहाँ यज्ञ, शस्त्र-ग्रहण और व्यवसाय आदि कर्मोंसे अपनेको पवित्र करते हैं; तथा इन्हींसे इनका जीवन-निर्वाह भी होता है। इतना ही नहीं, इन्हीं कर्मोंसे ये स्वर्ग, मोक्ष और पुण्य प्राप्त करते हैं तथा इन्हींको ठीक-ठीक न करनेसे इन्हें पाप भोगना पड़ता है।

महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात ही यहाँ कुल-पर्वत हैं। इनके निकट और भी हजारों पर्वत हैं। ये सभी अत्यन्त विस्तृत, ऊँचे तथा रमणीय हैं। इनके शिखर भी बहुत-से हैं। इनके सिवा कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुराचल, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुराचल, पुष्पगिरि, दुर्जयन्त, रैवत, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर, श्रीपर्वत और चकोर आदि सैकड़ों पर्वत और हैं, जिनसे मिले हुए म्लेच्छ और आर्य जनपद विभागपूर्वक स्थित हैं। वे लोग जिन श्रेष्ठ नदियोंका जल पीते हैं, उनके नाम सुनो। गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा (चिनाब), यमुना, शतद्रु (सतलज), वितस्ता (झेलम), इरावती (रावी), कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, विपाशा (व्यास), देविका, रंक्षु, निश्चीरा, गण्डकी, कौशिकी (कोसी)—ये सभी नदियाँ हिमालयकी तलैटीसे निकली हुई हैं। वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वेणा, सानन्दना, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्वती, नूपी, विदिशा, वेत्रवती (बेतवा), क्षिप्रा तथा अवन्ती—इन नदियोंका उद्गमस्थान पारियात्र पर्वत है। महानद शोण (सोन), नर्मदा, सुरथा, अद्रिजा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलिश्रोणि, विपाशा, वंजुला, सुमेरुजा, शुक्तिमती, सकुली, त्रिदिवाक्रमु और वेगवाहिनी—ये नदियाँ स्कन्दपर्वतकी शाखाओंसे निकली हैं। शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेण्या, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती, करतोया, महागौरी दुर्गा तथा अन्तःशिवा—ये पुण्यसलिला कल्याणमयी नदियाँ विन्ध्याचलकी घाटियोंसे निकली हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णावेणी, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, बाह्या तथा कावेरी—ये श्रेष्ठ सह्यपर्वतकी शाखाओंसे प्रकट हुई हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा और उत्पलावती—ये मलयाचलसे निकली हैं। इनका जल बहुत शीतल होता है। पितृसोमा, ऋषिकुल्या, इक्षुका, त्रिदिवा, लाङ्गूलिनी और वंशकरा—ये महेन्द्रपर्वतसे निकली मानी जाती हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कुशा और पलाशिनी—इनका उद्गम शुक्तिमान् पर्वतसे हुआ है। ये सभी नदियाँ पवित्र हैं, सभी गङ्गा और सरस्वतीके समान हैं तथा सभी साक्षात् या परम्परासे समुद्रमें मिली हैं। ये सब-की-सब जगत्‌के लिये मातासदृश हैं। इन सबको पापहारिणी माना गया है। द्विजश्रेष्ठ ! इनके अतिरिक्त और भी हजारों छोटी नदियाँ हैं, जिनमें कुछ तो केवल वर्षाकालमें बहती हैं और कुछ सदा ही बहनेवाली हैं।

मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोसल, अर्बुद, अर्कलिङ्ग, मलक और वृक—ये प्रायः मध्यदेशके जनपद कहे गये हैं। सह्यपर्वतके उत्तरका भूभाग, जहाँ गोदावरी नदी बहती है, सम्पूर्ण भूमण्डलमें सबसे अधिक मनोरम प्रदेश है। वहीं महात्मा भार्गवका मनोहर नगर गोवर्धन है। वहाँ अनेक जनपद हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—बाह्लीक (बलख), वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, शूद्र, पह्लव, चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु (सिंध), सौवीर, मद्र, शतद्रुज, कलिङ्ग, पारद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, कैकेय और दशमालिक। ये क्षत्रियोंके उपनिवेश हैं तथा इनमें वैश्य और शूद्रकुलके लोग भी रहते हैं। काम्बोज (खंभात), दरद, बर्बर, हर्षवर्धन, चीन, तुषार, बहुल, बाह्यतोदर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, कशेरुक, लम्पाक, शूलकार, चुलिक, जागुड, औषध और अनिभद्र—

ये सब किरातोंकी जातियाँ हैं। तामस, हंसमार्ग, काश्मीर, गणराष्ट्र, शूलिक, कुहक, ऊर्णा तथा दार्व—ये समस्त देश उत्तरमें स्थित हैं।

अब पूर्वके देशोंका वर्णन सुनो—अभ्रारक, मुद्गरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्लवङ्ग, रङ्गेय, मालद, मलवर्तिक, ब्राह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह (मिथिला), ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध और गोमन्त—ये पूर्व दिशाके जनपद हैं। अब दक्षिण दिशाके जनपद बतलाये जाते हैं। पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, गोलाङ्गूल, शैलूष, मूषिक, कुसुप, वनवासक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्ग, आभीर, वैशिक्य, आटव्य, शबर, पुलिन्द, विन्ध्यमालेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्धन, नैषिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद, वनदारक—ये सभी दक्षिणप्रदेशके जनपद हैं। अब अपरान्त देशोंका वर्णन सुनो। सूर्पारक, कालिबल, दुर्ग, अनीकट, पुलिन्द, सुमीन, रूपप, श्वापद, कुरुमिन, कठाक्षर, कारसमर, लोहजङ्घ, वाजेय, राजभद्रक, नासिक्याद्य, नर्मदाके उत्तरके देश, भीरुकच्छ माहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, आवन्त्य और अर्बुद—ये अपरान्त-प्रदेश हैं। अब विन्ध्यनिवासियोंके देश बतलाये जाते हैं। सरज, करूष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किन्धक, तोशल, कोसल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर, तुम्बुल, पट्टु, नैषध, अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति—ये सभी जनपद विन्ध्याचलकी घाटियोंमें बसे हैं।

अब पर्वतीय देशोंका वर्णन किया जाता है—नीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस, कुन्तप्रावरण, ऊर्ण, दार्व, कुत्रक, त्रिगर्त, मालव, किरात और तामस। ये पर्वतोंके आश्रयमें बसे हैं। इतने देशोंसे परिपूर्ण यह भारतवर्ष है। इसमें चारों दिशाओंके देशोंकी स्थिति है। इसमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों युगोंकी व्यवस्था है। भारतवर्षके दक्षिण, पश्चिम तथा पूर्वमें महासागर है और उत्तरकी ओर धनुषकी प्रत्यञ्चाके समान हिमालय पर्वतकी स्थिति है। यह भारतवर्ष सब प्रकारकी उन्नतिका बीज है। यहाँ शुभकर्म करनेसे ब्रह्मपद, इन्द्रपद, देवलोक और मरुद्गणोंका स्थान भी मिलता है। इसी प्रकार यहाँ निन्दित कर्म करनेसे मनुष्यको मृग, पशु, सर्प तथा स्थावरोंकी योनि भी मिल सकती है। ब्रह्मन्! इस जगत्‌में भारतवर्षके सिवा दूसरा कोई देश कर्मभूमि नहीं है। ब्रह्मर्षे! देवताओंके मनमें भी सदा यह अभिलाषा रहा करती है कि 'हम देवयोनिसे भ्रष्ट होनेपर भारतवर्षमें मनुष्यके रूपमें उत्पन्न हों।' उनका कहना है कि 'भारतवर्षके मनुष्य वह कार्य कर सकते हैं, जो देवता और असुरोंके लिये भी असम्भव है; किन्तु खेदकी बात है कि ये मनुष्य कर्मबन्धनमें बँधकर अपने कर्मोंकी ख्याति—अपनी कीर्ति फैलानेको उत्सुक रहते हैं और लेशमात्र सांसारिक सुखके प्रलोभनमें पड़कर नित्य अक्षय सुखकी प्राप्तिके लिये कोई भी कर्म नहीं करते।'

भारतवर्षमें भगवान् कूर्मकी स्थितिका वर्णन

क्रौष्टुकिने कहा—भगवन्! आपने मुझसे भारतवर्षका भलीभाँति वर्णन किया तथा वहाँकी नदियों, पर्वतों और जनपदोंको भी बतलाया। इसके पहले आपने यह कहा था कि भारतवर्षमें भगवान् श्रीहरि कूर्मरूपसे निवास करते हैं, सो उनकी स्थिति कहाँ और किस प्रकार है, यह सब सुननेकी मेरी इच्छा हो रही है। कूर्मरूपी भगवान् जनार्दन किस रूपमें स्थित हैं, उनसे मनुष्योंके शुभ-अशुभकी सूचना कैसे मिलती है? भगवान् कूर्मका मुख कैसा है? और उनके चरण कौन हैं? ये सारी बातें बताइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! कूर्मरूपधारी भगवान् श्रीहरि नौ भेदोंसे युक्त इस भारतवर्षको आक्रान्त करके स्थित हैं। उनका मुख पूर्व दिशाकी ओर है। उनके चारों ओर नौ भागोंमें विभक्त होकर सम्पूर्ण नक्षत्र और देश स्थित हैं। उन्हें बतलाता हूँ, सुनो। वेदि, मद्र, अरिमाण्डव्य, शाल्व, नीप, शक, उज्जिहान, घोषसंख्य, खस, सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुडाश्मक, उद्देहक, पाञ्चाल, सङ्केत, कंक, मारुत, कालकोटि, पाखण्ड, पारियात्रनिवासी, कापिङ्गल, कुरुबाह्य, उदुम्बर तथा गजाह्वय (हस्तिनापुर आदि) के मनुष्य भगवान् कूर्मके मध्यभाग (कटिप्रदेश) में स्थित हैं। कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा—ये तीन नक्षत्र उक्त स्थानके निवासियोंके लिये शुभाशुभके सूचक होते हैं। वृषध्वज, अञ्जन, जम्बू, मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, खर्मक, कर्वटाशन, चन्द्रेश्वर, खश, मगध, मैथिल, पौण्ड्र, वदनदन्तुर, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्र, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयगिरि, काशी, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एकपादप,

वर्धमान और कोसल—ये देश कूर्मभगवान्‌के मुखभागमें स्थित हैं। आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य—ये तीन नक्षत्र भी उनके मुखमें हैं।

अब कूर्मभगवान्‌के दक्षिण चरणमें जो देश हैं, उनके नाम सुनो—कलिङ्ग(उड़ीसा), वङ्ग(बंगाल), जठर, कोसल, मूषिक, चेदि, ऊर्ध्वकर्ण, मत्स्य, अन्ध्र, विन्ध्यवासी, विदर्भ (बरार), नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक, व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी, कैष्किन्ध्य, हेमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिक, नग्न, निषाद, काकुलालक, पर्ण तथा शबर। ये देश भगवान् कूर्मके पूर्व-दक्षिण दिशावाले चरणमें स्थित हैं। आश्लेषा, मघा और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र भी वहीं हैं। लङ्का, कालाजिन, शैलिक, निकट, महेन्द्र, मलय और दुर्दुर पर्वतोंके पास बसे हुए जनपद, कर्कोटक वनमें रहनेवाले लोग तथा भृगुकच्छ, कोङ्कण, सम्पूर्ण आभीर-प्रदेश, वेण्या नदीके तटपर बसे हुए देश, अवन्ति, दासपुर, आकारी, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गोनर्द, चित्रकूट, चोल, कोलगिरि, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर, कावेरीके तटवर्ती देश, ऋष्यमूक पर्वतपर बसे हुए प्रदेश, नासिक, शङ्ख, शुक्ति आदि तथा वैदूर्य पर्वतके समीपवर्ती देश, वारिचर कोल, चर्मपट्ट, गयबाह्य, कृष्णाद्वीपवासी, सूर्याद्रि और कुमुदाद्रिके निवासी, औखा वन, दिशिक, कर्मनायक, दक्षिण, कौरुष, ऋषिक, तापसाश्रम, ऋषभ, सिंहल, काञ्चीनिवासी, त्रिलिङ्ग, कुञ्जरदरी तथा कच्छमें रहनेवाले लोग और ताम्रपर्णी नदीके तटवर्ती देश—ये भगवान् कूर्मकी दायीं कुक्षिमें स्थित हैं। उत्तराफाल्गुनी, हस्त तथा चित्रा—ये तीन नक्षत्र भी वहीं हैं।

काम्बोज, पह्लव, वडवामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त, वनितामुख, द्रावण, शूद्र, कर्ण, प्राधेय, बर्बर, किरात, पारद, पाण्ड्य, पारशव, कल, धूर्तक, हैमगिरिक, सिन्धु, कालक, वैरत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविड, महार्णव—ये देश कूर्मभगवान्‌के दक्षिण चरणमें स्थित हैं। स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्र भी वहीं हैं। मणिमेघ, क्षुराद्रि, खञ्जन, अस्तगिरि, अपरान्तिक, हैहय, शान्तिक, विप्रशस्तक, कोङ्कण, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अङ्गतक, शर्कर, शाल्मवेश्मक, गुरुस्वर, फाल्गुनक, वेणुमतीनिवासी, फाल्गुलुक, घोर, गुरुह, चकल, एकेक्षण, वाजिकेश, दीर्घग्रीव, सुचूलिक तथा अश्वकेश—ये देश भगवान् कच्छपके पुच्छभागमें स्थित हैं। वहीं ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढा नक्षत्र भी हैं। माण्डव्य, चण्डखार, अश्मक, ललन, कुशात्त, लडह, स्त्रीबाह्य, बालिक, नृसिंह, वेणुमतीवासी, बलावस्थ, धर्मबद्ध, उलूक तथा उरुकर्मनिवासी मनुष्य भगवान् कूर्मके बायें चरणमें स्थित हैं। उत्तराषाढा, श्रवण और धनिष्ठाकी भी वहीं स्थिति है। कैलास, हिमवान्, धनुष्मान्, वसुमान्, क्रौञ्च, कुरुवक, क्षुद्रवीण, रसालय, भोगप्रस्थ, यामुन, अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्नीज्य, अर्दन, अश्वमुख, चिविड़, केशधारी, दासेरक, वाटधान, शवधान, पुष्कल, अधम, कैरात, तक्षशिलाश्रय, अम्बाल, मालव, मद्र, वेणुक, वदन्तिक, पिङ्गल, मानकलह, हूण, कोहलक, माण्डव्य, भूतियुवक, शातक, हेमतारक, यशोमत्य, गान्धार, स्वर, सागरराशि, योधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामक तथा क्षेमधूर्त—ये कूर्म-भगवान्‌की बायीं कुक्षिमे हैं। शतभिष, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा—ये तीन नक्षत्र भी वहीं हैं। किन्नरराज्य, पशुपाल, कीचक, काश्मीरक, अभिसारजन, दरय, अङ्गण, कुरट, अन्नदारक, एकपाद, खश, घोष, स्वर्ग, भौम, अनवद्य, यवन, हिङ्ग, चीरप्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव तथा गन्धर्व—ये कच्छपभगवान्‌के पूर्व-उत्तरवाले चरणके आश्रित हैं। रेवती, अश्विनी और भरणी भी वहीं हैं।

विप्रवर! उक्त देशोंमें क्रमशः ये ही नक्षत्र ऐसे हैं, जिनके कारण मनुष्योंको पीड़ा होती है अर्थात् जब इनके साथ दुष्ट ग्रहोंका योग होता है तो ये उनसे प्रभावित होकर प्रजाको कष्ट देते हैं। और उत्तम ग्रहोंसे योग होनेपर ये वहाँके मनुष्योंको अभ्युदयकी प्राप्ति कराते हैं। जिस नक्षत्र-राशिका जो ग्रह स्वामी है, उसीके अशुभ भावमें रहनेपर उस देशके लोगोंको कष्ट होता है और वही ग्रह जब उच्च स्थानमें होता है तो शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है। नक्षत्रों और ग्रहोंसे होनेवाला शुभाशुभ फल साधारणतया सब देशोंमें सभी मनुष्योंको प्राप्त होता है। यदि अपने नक्षत्र खराब हों अथवा जन्मके समय ग्रह अशुभ स्थानोंमें पड़े हों तो मनुष्य-को कष्ट भोगना पड़ता है। यह बात प्रत्येकके लिये सामान्य रूपसे लागू होती है। इसी प्रकार यदि नक्षत्र और ग्रह अच्छे पड़े हों तो उसका फल शुभ होता है। पुण्यात्मा मनुष्यके ग्रह यदि अशुभ स्थानोंमें हों तो उन्हें द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, सुहृद्, पुत्र एवं भार्याकी भी हानि उठानी पड़ती है। यदि पुण्य थोड़ा है तो अपने शरीरपर भी भय आ सकता है और जिन्होंने अधिक मात्रामें पाप-ही-पाप किये हैं, उन्हें तो सर्वत्र ही द्रव्य आदि तथा शरीर—सभीकी हानि उठानी पड़ती है। जो सर्वथा निष्पाप हैं, उन्हें ग्रह आदिसे कभी कहीं भी नहीं भय

है। नक्षत्र और ग्रहसे प्राप्त शुभाशुभ फलको मनुष्य कभी तो अकेले भोगता है और कभी-कभी साधारणतया सम्पूर्ण दिशा, देश, जन-समुदाय, राजा अथवा पुत्रके साथ भोगता है। जब ग्रह दूषित नहीं होते तो मनुष्य परस्पर अपनी रक्षा करते हैं और ग्रहोंके दूषित हो जानेपर उन्हें शुभ फलोंसे वञ्चित होना पड़ता है। यहाँ कूर्मभगवान्‌के विग्रहमें जो नक्षत्रोंकी स्थिति बतायी गयी है, वे नक्षत्र उन-उन देशोंके लिये सामान्य रूपसे शुभ या अशुभ होते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि अपने देश-नक्षत्र तथा ग्रहजनित पीडाको उपस्थित देख उसकी विधिपूर्वक शान्ति करे। साथ ही लोकवादोंका भी शमन करे। आकाशसे देवताओं तथा दैत्य आदिके जो शत्रु पृथ्वीपर गिरते हैं, उन्हें लोकमें 'लोकवाद' कहा गया है। विद्वान् पुरुष उन सबकी शान्ति करे, लोकवादोंकी कभी भी उपेक्षा न करे; क्योंकि उनकी शान्ति करनेसे ही उनके द्वारा प्राप्त होनेवाले भयका निवारण होता है। लोकवादों और ग्रहोंके अनुकूल होनेपर शुभ फलका उदय एवं पापका नाश होता है तथा प्रतिकूल होनेपर वे बुद्धि एवं धन आदिका भी नाश कर डालते हैं। अतः उनकी शान्तिके लिये द्रोहका त्याग तथा उपवास करे। देवस्थानों तथा देववृक्षोंको प्रणाम करना भी उत्तम माना गया है। जप, होम, दान और स्नान करे तथा क्रोधको त्याग दे। विद्वान् पुरुष किसीसे भी द्रोह न करे। सब प्राणियोंके प्रति मित्रभाव रक्खे। दुर्वचन न कहे और बढ़-बढ़कर बातें न बनावे।

इस प्रकार मैंने भारतवर्षमें स्थित भगवान् कूर्मके स्वरूपका वर्णन किया। वे अचिन्त्यात्मा नारायण हैं, उन्हींमें सम्पूर्ण जगत्‌की स्थिति है। उन्हींमें सम्पूर्ण देवता और नक्षत्र-मण्डल हैं। उन्हींके भीतर अग्नि, पृथ्वी और सोम हैं। मेष आदि तीन राशियाँ भगवान् कूर्मके मध्यभाग (कटिप्रदेश) में हैं। मिथुन और कर्क मुखमें स्थित हैं। पूर्व और दक्षिण-वाले चरणमें कर्क तथा सिंह हैं। सिंह, कन्या और तुला—ये तीन राशियाँ उनकी कुक्षिमें हैं। तुला और वृश्चिक दक्षिण-पश्चिमवाले चरणमें हैं। पृष्ठभागमें वृश्चिक और धन स्थित हैं, वायव्यकोणवाले चरणमें धन, मकर और कुम्भ हैं। उत्तर कुक्षिमें कुम्भ और मीनकी स्थिति है तथा ईशानकोणवाले चरणमें मीन और मेष राशि हैं। ब्रह्मन्! भगवान् कूर्मके श्रीविग्रहमें सम्पूर्ण देश स्थित हैं, उन देशोंमें नक्षत्र हैं, नक्षत्रोंमें राशियाँ हैं और राशियोंमें ग्रहोंकी स्थिति है। अतः ग्रह-नक्षत्रोंमें पीड़ा होनेपर देशोंमें भी पीड़ा होती है, ऐसा जानना चाहिये। और इसकी शान्तिके लिये विधिवत् स्नान करके दान-होम आदिका अनुष्ठान करना चाहिये।

भद्राश्व आदि वर्षोंका संक्षिप्त वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार मैंने भारतवर्षका यथावत् वर्णन किया। इस देशमें ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगों तथा चार वर्णोंकी व्यवस्था है। अब शैलराज देवकूटके पूर्व जो भद्राश्ववर्ष है, उसका वर्णन सुनो। वहाँ श्वेतपर्ण, नील, पर्वतश्रेष्ठ शैवाल, कौरञ्ज तथा पर्णशालाग्र—ये पाँच कुल-पर्वत हैं। इनसे उत्पन्न हुए और भी बहुतेरे छोटे-छोटे पर्वत हैं। उनसे लगे हुए अनेक प्रकारके हजारों जनपद हैं, जिनके नाम कुमुदसंकाश, शुद्धभानु और सुमङ्गल आदि हैं। सीता, शङ्खावती, भद्रा तथा चक्रावर्ता आदि वहाँकी नदियाँ हैं, जिनके पाट बहुत विस्तृत हैं। उनका जल बहुत ठंडा होता है। भद्राश्ववर्षके सब मनुष्य शङ्ख तथा शुद्ध सुवर्णके समान कान्तिमान् होते हैं। उन्हें दिव्य पुरुषोंका संग प्राप्त होता है। वे बड़े पुण्यात्मा होते हैं। उनमें उत्तम-मध्यमका भेद नहीं होता, सब समान ही देखे जाते हैं। वे स्वभावतः सहनशीलता आदि आठ गुणोंसे युक्त होते हैं। वहाँ चार भुजाधारी भगवान् विष्णु हयग्रीवरूपसे विराजमान रहते हैं। वे मस्तक, हृदय, लिङ्ग, चरण, हाथ और तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं। उन जगदीश्वरके अङ्गोंमें भी पूर्ववत् देशोंकी स्थिति जाननी चाहिये।

अब उससे पश्चिममें स्थित केतुमालवर्षका वर्णन सुनो। वहाँ विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत, विशोक और वर्धमान—ये सात कुल-पर्वत हैं। इनके सिवा और भी बहुत-से पर्वत हैं, जहाँ लोग निवास करते हैं। उस देशमें मौलि, महाकाय, शाकपोत, करम्भक तथा अङ्गुल आदि सैकड़ों जनपद हैं। वहाँके लोग वङ्क्षुश्यामा, सुकम्बला,

अमोघा, कामिनी, श्यामा तथा अन्यान्य सहस्रों नदियोंके जल पीते हैं। उस देशमें भगवान् श्रीहरि वराहरूपसे विराजमान हैं। वे अपने हाथ, पैर, मुख, हृदय, पीठ, पँसली आदि अङ्गोंमें बहुत-से देश एवं तीन-तीन नक्षत्र पूर्ववत् धारण करते हैं। वे नक्षत्र भी पहलेकी ही भाँति उन-उन देशोंके लिये शुभाशुभसूचक होते हैं।

मुनिश्रेष्ठ! यह मैंने केतुमालवर्षके विषयमें कुछ बातें बतायी हैं, अब मुझसे उत्तरकुरुवर्षका वर्णन सुनो। वहाँकी भूमि मणिमयी और वायु सुगन्धित तथा सर्वदा सुख देनेवाली होती है। जो लोग देवलोकसे च्युत होते हैं, वे ही उस देशमें जन्म लेते हैं। उस देशमें गिरिराज चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त—ये दो कुलपर्वत हैं। वहाँ भद्रसोमा नामवाली महानदी पवित्र एवं स्वच्छ जलकी धारा बहाती हुई निरन्तर बहती रहती है। इसके सिवा और भी हजारों नदियाँ बहती हैं। कुलपर्वतोंके अतिरिक्त और भी अनेक पर्वत हैं तथा सैकड़ों एवं सहस्रों वन हैं, जहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट नाना प्रकारके फल उपलब्ध होते हैं। उत्तरकुरुवर्षमें भी भगवान् श्रीकृष्ण पूर्वकी ओर सिर करके मत्स्यरूपमें विराजमान रहते हैं। उनके भिन्न-भिन्न नौ अवयवोंमें तीन-तीनके क्रमसे सभी नक्षत्र नौ भागोंमें विभक्त होकर स्थित हैं; इसी प्रकार वहाँके देश भी नौ भागोंमें विभक्त हैं। उस देशमें चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप नामक दो द्वीप हैं, जो समुद्रके भीतर स्थित हैं। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने उत्तरकुरुवर्षका वर्णन किया; अब किम्पुरुष आदिका वर्णन सुनो।

वहाँके स्त्री-पुरुष रोग और शोकसे रहित होते हैं। उस वर्षमें प्लक्षखण्ड नामक एक मनोहर वन है, जो नन्दनवनके समान रमणीय जान पड़ता है। वहाँके पुरुष सदा उस वनके फलोंका रस पीते हैं। इससे उनकी जवानी सदा स्थिर रहती है और वहाँकी स्त्रियोंके शरीरसे कमलकी सुगन्ध आती है। किम्पुरुष वर्षके बाद अब हरिवर्षका परिचय दिया जाता है। वहाँके मनुष्य चाँदीके समान गौरवर्णके होते हैं। देवलोकसे च्युत होनेके कारण उन सबका स्वरूप देवताओंके ही समान होता है। हरिवर्षके सभी मनुष्य उत्तम इक्षुरसका पान करते हैं। वहाँ किसीको वृद्धावस्थाका कष्ट नहीं भोगना पड़ता। वे सब-के-सब अजर होते हैं। जबतक जीते हैं, नीरोग रहते हैं। अब जम्बूद्वीपके बीचमें स्थित इलावृतवर्षका वर्णन सुनो— इसे मेरुवर्ष भी कहा गया है। वहाँ सूर्य नहीं तपता और मनुष्योंको वृद्धावस्था नहीं सताती। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और ग्रहोंकी किरणें वहाँ प्रकाशमें नहीं आतीं, क्योंकि स्वयं मेरुपर्वतकी प्रभा उन सबकी अपेक्षा बढ़कर होती है। वहाँके मनुष्य जामुनके फलका रस पीते और कमलकी-सी कान्ति धारण करनेवाले, कमलके समान सुगन्धित एवं कमलदलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले होते हैं। इलावृतवर्षके मध्यमें मेरुपर्वतकी स्थिति है। वह शराव (पुरवे) के समान नीचे पतला और ऊपर चौड़ा होता गया है। उस वर्षमें महागिरि मेरु ही एक पर्वत है और उसीसे इलावृतवर्षकी प्रसिद्धि हुई है। इसके बाद रम्यकवर्षका वर्णन करता हूँ, सुनो। वहाँ हरे पत्तोंसे सुशोभित एक ऊँचा बरगदका वृक्ष है। उसीके फलका रस पीकर वहाँके निवासी जीवननिर्वाह करते हैं। वे जरा और दुर्गन्धसे रहित तथा अत्यन्त निर्मल होते हैं। एक-दूसरेके प्रति प्रगाढ़ प्रेम ही उनका प्रधान गुण है। उसके उत्तरमें हिरण्मय नामक वर्ष है, जहाँ प्रचुर कमल-वनोंसे सुशोभित हिरण्यवती नामकी नदी बहती है। वहाँके मनुष्य बहुत बड़े बलवान्, तेजस्वी, यक्षके समान सुन्दर, महान् पराक्रमी, धनवान् तथा नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले होते हैं।

स्वरोचिष् तथा स्वारोचिष मनुके जन्म एवं चरित्रका वर्णन

क्रौष्टुकि बोले—महामुने! आपने मेरे प्रश्नके अनुसार पृथ्वी, समुद्र आदिकी स्थिति तथा प्रमाण आदिका भलीभाँति वर्णन किया। अब मैं मन्वन्तरों, उनके स्वामियों, देवताओं, ऋषियों तथा मनुपुत्रोंका परिचय सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेयजीने कहा—मुने! मैंने तुम्हें स्वायम्भुव मन्वन्तरकी बातें तो बता दीं, अब स्वारोचिष नामक दूसरे मन्वन्तरका वर्णन सुनो। वरुणा नदीके तटपर अरुणास्पद नामक नगरमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे। उनका रूप अश्विनीकुमारोंके समान मनोहर था। वे स्वभावसे मृदु, सदाचारी तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी थे। अतिथियोंके प्रति उनका सदा ही प्रेम बना रहता था। रातको घरपर आये हुए अभ्यागतोंको वे ठहरनेके लिये स्थान देते और

उनके भोजन आदिकी भी व्यवस्था करते थे। उनके मनमें प्रायः यह विचार उठा करता था कि 'मैं रमणीय वन, उद्यान तथा भाँति-भाँतिके नगरोंसे सुशोभित सम्पूर्ण भूमण्डलको घूम-घूमकर देखूँ।' एक दिन उनके घरपर कोई अतिथि पधारे, जो नाना प्रकारकी ओषधियोंके प्रभावको जाननेवाले तथा मन्त्रविद्यामें प्रवीण थे। ब्राह्मणने श्रद्धापूर्ण हृदयसे अतिथिका स्वागत-सत्कार किया। बातचीतके प्रसङ्गमें अभ्यागतने ब्राह्मणसे अनेकों देशों, रमणीय नगरों, वनों, नदियों, पर्वतों और पुण्यतीर्थोंकी बातें बतायीं। यह सब सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'विप्रवर! आपने अनेक देश देखनेके कारण बहुत परिश्रम उठाया है तो भी न तो आप अत्यन्त बूढ़े हुए और न जवानीने ही आपका साथ छोड़ा। थोड़े ही समयमें आप सारी पृथ्वीपर कैसे भ्रमण कर लेते हैं?'

आगन्तुक ब्राह्मणने कहा—ब्रह्मन्! मन्त्र और ओषधियोंके प्रभावसे मेरी गति कहीं भी नहीं रुकती। मैं आधे दिनमें एक हजार योजन चलता हूँ।



आगन्तुक ब्राह्मण बड़े विद्वान् थे; अतः गृहस्थ ब्राह्मणको उनकी बातोंपर पूर्ण विश्वास हो गया और वे बड़े आदरके साथ बोले—'भगवन्! मुझपर भी कृपा कीजिये और अपने मन्त्रका प्रभाव दिखलाइये। इस पृथ्वीको देखनेकी मेरी बड़ी इच्छा है।' यह सुनकर उदारचित्त आगन्तुक ब्राह्मणने उन्हें पैरमें लगानेके लिये एक लेप दिया और वे जिस दिशाको जाना चाहते थे, उसे अपने मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया। वह लेप अपने पैरोंमें लगाकर ब्राह्मण देवता अनेकों झरनोंसे सुशोभित हिमालय पर्वतको देखनेके लिये गये। उन्होंने सोचा था कि मैं आधे दिनमें एक हजार योजन दूर जाऊँगा और शेष आधे दिनमें पुनः घर लौट आऊँगा।' वे हिमालयके शिखरपर पहुँच गये, किन्तु शरीरमें अधिक थकावट नहीं हुई। उन्होंने वहाँकी पर्वतीय भूमिपर पैदल ही विचरना आरम्भ किया। बर्फपर चलनेके कारण उनके पैरोंमें लगा हुआ दिव्य ओषधिका लेप धुल गया। इससे उनकी तीव्रगति कुण्ठित हो गयी। अब वे इधर-उधर घूमकर हिमालयके अत्यन्त मनोहर शिखरोंका अवलोकन करने लगे। वहाँ सिद्ध और गन्धर्व रहते थे। किन्नरगण विहार करते थे तथा इधर-उधर देवता आदिके क्रीडा-विहारसे वहाँकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी। सैकड़ों दिव्य अप्सराओंसे भरे हुए वहाँके मनोहर शिखरोंका दर्शन करनेसे ब्राह्मणदेवताको तृप्ति नहीं हुई। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया।

फिर दूसरे दिन आनेका विचार करके जब वे घर जानेको उद्यत हुए तो उन्हें अपने पैरोंकी गति कुण्ठित जान पड़ी। वे सोचने लगे—'अहो! यहाँ बर्फके पानीने मेरे पैरका लेप धुल गया। इधर यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मैं अपने घरसे बहुत दूर चला आया हूँ। अब तो घरपर न पहुँच सकनेके कारण मेरे अग्निहोत्र आदि नित्यकर्मकी हानि होना चाहती है। यहाँ रहकर वह सब कैसे करूँगा। यह तो मेरे ऊपर बहुत बड़ा संकट आ रहा है। इस अवस्थामें यदि मुझे किन्हीं तपस्वी महात्माका दर्शन हो जाता तो वे घर पहुँचनेके लिये मुझे कोई उपाय बतलाते।'

इस प्रकार विचार करते हुए ब्राह्मण देवता हिमालयपर विचरने लगे। चरणोंकी ओषधिजनित शक्ति नष्ट हो जानेके कारण उन्हें बड़ी चिन्ता हो रही थी। इस प्रकार वहाँ घूमते हुए ब्राह्मणपर एक श्रेष्ठ अप्सराकी दृष्टि पड़ी, जो अपने मनोहर रूपके कारण बड़ी शोभा पा रही थी। उसका नाम वरूथिनी था। उन्हें देखते ही वरूथिनी कामदेवके वशीभूत हो गयी। उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके प्रति तत्काल उसका प्रेम हो गया। वह सोचने लगी, 'ये कौन हैं? इनका रूप तो बड़ा

ही मनोहर है। यदि ये मुझे ठुकरा न दें तो मेरा जन्म सफल हो जाय। मैंने बहुत-से देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व और नागोंको देखा है; किन्तु एक भी इन महात्माके समान रूपवान् नहीं है। जिस प्रकार इनमें मेरा अनुराग हो गया है, उसी प्रकार यदि ये भी मुझमें अनुरक्त हो जायँ तो मेरा काम बन जाय। फिर तो मैं यह समझूँगी कि मैंने बहुत बड़े पुण्यका उपार्जन किया है।'

इस प्रकार चिन्ता करती हुई वह दिव्यलोककी सुन्दरी युवती कामदेवसे व्याकुल हो अत्यन्त मनोहर रूप धारण किये उनके सामने उपस्थित हुई। सुन्दर रूपवाली वरूथिनीको देखकर ब्राह्मणकुमार स्वागतपूर्वक उसके पास गये और इस प्रकार बोले—'नूतन कमलके समान कान्तिशाली सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? और यहाँ क्या करती हो? मैं ब्राह्मण हूँ और अरुणास्पद नगरसे यहाँ आया हूँ। मेरे पैरोंमें दिव्य लेप लगा हुआ था, जो बर्फके जलसे धुल गया है। इसीलिये मैं दूर गमनकी शक्तिसे रहित होनेके कारण यहाँ आ गया हूँ।'

वरूथिनी बोली—ब्रह्मन्! मैं अप्सरा हूँ। मेरा नाम वरूथिनी है। मैं इस रमणीय पर्वतपर ही सदा विचरण करती हूँ। आज आपके दर्शनसे कामदेवके वशीभूत हो गयी हूँ। बताइये, मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ। इस समय सर्वथा आपके अधीन हूँ।



ब्राह्मणने कहा—कल्याणी! मैं जिस उपायसे अपने घरपर जा सकूँ और मेरे समस्त नित्यकर्मोंकी हानि न हो, वही मुझे बतलाओ। भद्रे! नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका छूटना ब्राह्मणके लिये बहुत बड़ी हानि है; अतः इससे बचनेके लिये तुम हिमालयसे मेरा उद्धार करो। ब्राह्मणोंका परदेशमें रहना कदापि उचित नहीं है। देश देखनेकी उत्कण्ठाने ही मुझसे यह अपराध कराया है। श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने घरमें मौजूद रहे, तभी उसके समस्त कर्मोंकी सिद्धि होती है और जो इस प्रकार प्रवास करता है, उसके नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी हानि ही होती है; अतः यशस्विनि! अब अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम ऐसी चेष्टा करो, जिससे मैं सूर्यास्तके पहले ही अपने घरपर पहुँच जाऊँ।

वरूथिनी बोली—महाभाग! ऐसा न कहिये। ऐसा दिन कभी न आये, जब कि आप मुझे छोड़कर अपने घर चले जायँ। ब्राह्मणकुमार! यहाँसे अधिक रमणीय स्वर्ग भी नहीं है। इसीलिये हमलोग स्वर्गलोक छोड़कर यहीं रहा करती हैं। आपने मेरे मनको हर लिया है। मैं कामदेवके वशमें हूँ; आपको सुन्दर हार, वस्त्र, आभूषण, भक्ष्य-भोज्य तथा अङ्गराग आदि सभी भोग-सामग्री दूँगी। आप यहीं रहिये। यहाँ रहनेसे आपके शरीरमें कभी बुढ़ापा नहीं आयेगा; क्योंकि यह देवताओंकी भूमि है। यह यौवनकी पुष्टि करनेवाली है।

यों कहकर वह कमलनयनी अप्सरा बावली-सी हो गयी और 'मुझपर कृपा कीजिये' ऐसा मधुर वाणीमें कहती हुई सहसा अनुरागपूर्वक उनका आलिङ्गन करने लगी।

तब ब्राह्मणने कहा—अरी ओ दुष्टे! मेरे शरीरका स्पर्श न कर। जो तेरे ही जैसा हो, वैसे किसी अन्य पुरुषके पास चली जा। मैं तो किसी और भावसे प्रार्थना करता हूँ और तू और ही भावसे मेरे पास आती है। गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियाँ ही मेरे आराध्य देव हैं। अग्निशाला ही मेरे लिये रमणीय स्थान है तथा कुशासनसे सुशोभित वेदी ही मेरी प्रिया है। वरूथिनी! यदि ब्राह्मण भोगके लिये चेष्टा करे तो उसकी वह चेष्टा अच्छी नहीं मानी जाती। परन्तु यदि वह नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके पालनके लिये चेष्टा करता है तो वह इहलोकमें क्लेशयुक्त जान पड़नेपर भी परलोकमें उत्तम फल देनेवाली होती है।

वरूथिनी बोली—ब्रह्मन्! मैं वेदनासे मर रही हूँ। मेरी रक्षा करनेसे आपको परलोकमें पुण्यका ही फल मिलेगा और दूसरे जन्ममें भी अनेकानेक भोग प्राप्त होंगे। इस प्रकार मेरा मनोरथ पूर्ण करनेसे लोक-परलोक दोनों ही सधते हैं, दोनों ही आपको लाभ पहुँचानेमें सहायक होते हैं। यदि आप मेरी प्रार्थना ठुकरा देंगे तो मेरी मृत्यु होगी और आपको भी पाप लगेगा।

ब्राह्मणने कहा—वरूथिनी ! मेरे गुरुजनोंने उपदेश दिया है कि परायी स्त्रीकी अभिलाषा कदापि न करे; अतः मैं तुझे नहीं चाहता। भले ही तू बिलखाया करे अथवा सूखकर दुबली हो जाय।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यों कहकर उन महाभाग ब्राह्मणने पवित्र हो जलका आचमन किया और गार्हपत्य अग्निको प्रणाम करके मन-ही-मन कहा—'भगवन् अग्निदेव! आप ही सब कर्मोंकी सिद्धिके कारण हैं। आपसेही आहवनीय और दक्षिणाग्निका प्रादुर्भाव हुआ है। आपको तृप्त करनेसे देवता वृष्टि करते और अन्न आदिकी वृद्धिमें कारण बनते हैं। अन्नसे ही सम्पूर्ण जगत्का जीवन-निर्वाह होता है और किसीसे नहीं। इस प्रकार आपसे ही जगत्की रक्षा होती है। इस सत्यके प्रभावसे मैं सूर्यास्त होनेके पहले ही अपने घर पहुँच जाऊँ। यदि कभी ठीक समयपर मैंने वैदिक कर्मका परित्याग न किया हो तो इस सत्यके प्रभावसे मैं आज घर पहुँचकर डूबनेसे पहले ही सूर्यको देखूँ। यदि कभी मेरे मनमें पराये धन तथा परायी स्त्रीकी अभिलाषा न हुई हो तो मेरा यह मनोरथ सिद्ध हो जाय।'

ब्राह्मणकुमारके ऐसा कहनेपर उनके शरीरमें गार्हपत्य अग्निने प्रवेश किया; फिर तो वे ज्वालाओंके बीचमें प्रकट हुए मूर्तिमान् अग्निदेवकी भाँति उस प्रदेशको प्रकाशित करने लगे। उधर उन तेजस्वी ब्राह्मणके प्रति उसकी ओर देखती हुई देवाङ्गनाका अनुराग और भी बढ़ गया। अग्निदेवके प्रवेश करनेपर वे ब्राह्मणकुमार जैसे आये थे, उसी प्रकार तुरंत वहाँसे चल दिये और एक ही क्षणमें घर पहुँचकर उन्होंने शास्त्रोक्त विधिसे सब कर्मोंका अनुष्ठान पूरा किया। उनके चले जानेके बाद उस सर्वाङ्गसुन्दरी अप्सराने लंबी-लंबी साँसें लेकर शेष दिन और रात्रि व्यतीत की। उसका हृदय ब्राह्मणके प्रति पूर्णरूपसे आसक्त हो गया था। वह बारंबार आहें भरती, हाहाकार करती, रोती और अपनेको मन्दभागिनी मानकर धिक्कारती थी। उस समय उसका मन आहार-विहार, सुरम्य वन तथा रमणीय कन्दराओंमें भी सुख नहीं पाता था।



मुने ! कलि नामका एक गन्धर्व था, जो पहलेसे ही वरूथिनीमें आसक्त हो रहा था; किन्तु उस अप्सराने उसको फटकार दिया था। उस दिन उसने वरूथिनीको विरहिणीकी अवस्थामें देखा तो मन-ही-मन विचार किया—'क्या कारण है, जो आज वरूथिनी इस पर्वतपर लंबी साँसें खींचती हुई म्लान मुखसे विचर रही है?' इसका रहस्य जाननेके लिये कलिने उत्कण्ठापूर्वक बहुत देरतक ध्यान किया और समाधिके प्रभावसे उसने सब बातोंको भलीभाँति जान लिया। इसके बाद सोचा, 'अब समय बितानेकी आवश्यकता नहीं। यह वरूथिनी एक मनुष्यपर आसक्त हुई है। उसका रूप धारण कर लेनेपर यह निश्चय ही मेरे साथ रमण करेगी, अतः इसी उपायको कार्यमें लाऊँगा।'

ऐसा निश्चय करके गन्धर्वने अपने प्रभावसे ब्राह्मणका रूप धारण किया और जहाँ वरूथिनी बैठी थी, उधर ही विचरण करने लगा। उसे देखकर उस सुन्दरीके नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। वह पास आकर बारंबार कहने लगी—'ब्रह्मन्! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। आपके त्याग देनेपर मैं अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो आपको अत्यन्त कष्टदायक पाप लगेगा और आपकी सम्पूर्ण क्रियाएँ भी नष्ट हो जायँगी। यदि आपने मुझे अपनाया तो मेरी जीवनरक्षासे होनेवाला धर्म आपको अवश्य प्राप्त होगा।'

कलि बोला—सुन्दरी ! क्या करूँ, एक ओर तो मेरी धार्मिक क्रिया नष्ट हो रही है और दूसरी ओर तुम प्राण देनेकी बात कहती हो। इससे मैं संकटमें पड़ गया हूँ।

अच्छा, इस समय मैं तुमसे जैसा कहूँ, वैसा ही करनेके लिये तुम तैयार रहो तो तुम्हारे साथ मेरा समागम हो सकता है, अन्यथा नहीं।

वरूथिनीने कहा—ब्रह्मन्! प्रसन्न होइये; आप जो कहेंगे, वही करूँगी। इस समय आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करना मेरा कर्तव्य है।



कलि बोला—सुन्दरी! सम्भोगके समय तुम आँखें बंद किये रहो, मेरी ओर दृष्टि न डालो तो मेरे साथ तुम्हारा संसर्ग हो सकता है।

वरूथिनीने कहा—ऐसा ही होगा। आपका कल्याण हो। आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही हो। मुझे इस समय सब प्रकारसे आपकी आज्ञाके अधीन रहना है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर वह गन्धर्व वरूथिनीके साथ पुष्पित काननोंसे सुशोभित पर्वतके मनोरम शिखरोंपर, सुन्दर सरोवरोंमें, रमणीय कन्दराओंमें, नदियोंके किनारे तथा अन्य मनोरम प्रदेशोंमें आनन्दपूर्वक विहार करने लगा। सम्भोगके समय वरूथिनी अपनी आँखें बंद कर लेती और ब्राह्मणके तेजस्वी स्वरूपका चिन्तन किया करती थी। तत्पश्चात् समयानुसार ब्राह्मणके स्वरूपका ध्यान करते-करते उस अप्सराने गन्धर्वके वीर्यसे गर्भ धारण किया। वरूथिनीको गर्भिणी जानकर ब्राह्मणरूपधारी गन्धर्वने उसे आश्वासन दिया और प्रेमपूर्वक उससे विदा ले वह अपने घर चला गया। गर्भकी अवधि पूर्ण होनेपर प्रज्वलित अग्निकी भाँति तेजस्वी बालकका जन्म हुआ, मानो सूर्य अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहा हो। वह बालक भगवान् भास्करकी भाँति स्वरोचिष् (अपनी किरणों) से सुशोभित हो रहा था; इसलिये वह स्वरोचिष् नामसे ही विख्यात हुआ। वह महान् सौभाग्यशाली शिशु अपनी अवस्था और सद्गुणोंके साथ-ही-साथ प्रतिदिन उसी प्रकार बढ़ने लगा, जैसे चन्द्रमा अपनी कलाओंके साथ शुक्लपक्षमें दिनोंदिन बढ़ता रहता है। महाभाग स्वरोचिष्ने क्रमशः वेद, धनुर्वेद तथा अन्यान्य विद्याओंको ग्रहण किया। धीरे-धीरे उसकी तरुण अवस्था आ गयी। एक दिन वह मन्दराचल पर्वतपर विचर रहा था। इतनेमें ही उसकी दृष्टि एक सुन्दरी कन्यापर पड़ी, जो भयसे व्याकुल हो रही थी। कन्याने भी उसे देखा और घबराकर कहा—'मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' उसके नेत्र भयसे कातर हो रहे थे। स्वरोचिष्ने आश्वासन देते हुए कहा—'डरो मत; बताओ, क्या बात है?' वीरोचित वाणीमें उसके इस प्रकार पूछनेपर उस कन्याने बारंबार लंबी साँसें खींचते हुए अपना सारा हाल कह सुनाया।



कन्या बोली—वीरवर ! मैं इन्दीवराक्ष नामक विद्याधरकी पुत्री हूँ । मेरा नाम मनोरमा है । मरुधन्वाकी पुत्री मेरी माता हैं । मन्दार विद्याधरकी कन्या विभावरी मेरी एक सखी है और पार मुनिकी पुत्री कलावती मेरी दूसरी सखी है । एक दिन मैं उन दोनोंके साथ परम उत्तम कैलास पर्वतके तटपर गयी । वहाँ मुझे एक मुनि दिखायी दिये, जिनका शरीर तपस्याके कारण अत्यन्त दुर्बल हो रहा था । भूखसे उनका कण्ठ सूख गया था । शरीरमें कान्तिका अभाव था और आँखोंकी पुतली भीतर धँसी हुई थी । यह देखकर मैंने उनका उपहास किया । इससे कुपित होकर उन्होंने मुझे शाप देते हुए कहा—'ओ नीच ! अरी दुष्ट तपस्विनी ! तूने मेरी हँसी उड़ायी है, इसलिये शीघ्र ही एक राक्षस तुझपर आक्रमण करेगा ।' इस प्रकार शाप देनेपर मेरी सखियोंने मुनिको बहुत फटकारा और कहा—'तुम्हारी ब्राह्मणताको धिक्कार है । तुममें क्षमा न होनेके कारण तुम्हारी की हुई सारी तपस्या व्यर्थ है । जान पड़ता है, तुम क्रोधसे ही अत्यन्त दुर्बल हो रहे हो, तपस्यासे नहीं । ब्राह्मणका स्वभाव तो क्षमाशील होता है । क्रोधको काबूमें रखना ही तपस्या है ।'

सखियोंकी ये बातें सुनकर उन अमिततेजस्वी साधुने उन दोनोंको भी शाप दे दिया—'एकके सब अङ्गोंमें कोढ़ हो जायगी और दूसरी क्षयरोगसे ग्रस्त होगी ।' मुनिकी बात सच हुई, मेरी सखियोंको तत्काल वैसा ही रोग हो गया । इसी प्रकार मेरे पीछे-पीछे एक महान् राक्षस दौड़ा चला आ रहा है । वह पास ही तो गरज रहा है, क्या आपको उसकी भयंकर आवाज नहीं सुनायी देती । आज तीसरा दिन बीत रहा है, किन्तु वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता । महामते ! मैं सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका हृदय (रहस्य) जानती हूँ और वह सब आपको दिये देती हूँ । आप इस राक्षससे मेरी रक्षा कीजिये । पिनाकधारी भगवान् रुद्रने पहले यह रहस्य स्वायम्भुव मनुको दिया था । मनुने वसिष्ठजीको, वसिष्ठजीने मेरे नानाको और नानाने दहेजके रूपमें मेरे पिताको दिया था । मैंने बाल्यावस्थामें अपने पितासे ही इसकी शिक्षा पायी थी । यह सम्पूर्ण अस्त्रोंका हृदय है, जो समस्त शत्रुओंका संहार करनेवाला है । आप इसे शीघ्र ही ग्रहण करें और ब्राह्मणके शापसे प्रेरित होकर आये हुए इस दुरात्माको मार डालें ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—स्वरोचिष्ने 'बहुत अच्छा' कहकर मनोरमाकी प्रार्थना स्वीकार की । फिर मनोरमाने आचमन करके रहस्य एवं उपसंहार-विधिके सहित वह सम्पूर्ण अस्त्रोंका हृदय उन्हें दे दिया । इसी बीचमें भयानक आकारवाला वह राक्षस जोर-जोरसे गर्जना करता हुआ शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ पहुँचा । आते ही उसने मनोरमाको पकड़ लिया । वह बेचारी 'बचाओ, बचाओ' कहती हुई करुणामयी वाणीसे विलाप करने लगी । तब स्वरोचिष्को बड़ा क्रोध हुआ और उसने अत्यन्त भयंकर प्रचण्ड अस्त्र हाथमें ले उसे धनुषपर चढ़ाकर एकटक नेत्रोंसे राक्षसकी ओर देखा । यह देख वह निशाचर भयसे व्याकुल हो उठा और मनोरमाको छोड़कर विनीत भावसे बोला—'वीरवर ! मुझपर प्रसन्न होइये, इस अस्त्रको शान्त कीजिये और मेरी बात



सुनिये । आज आपने परम बुद्धिमान् ब्रह्ममित्रके दिये हुए अत्यन्त भयंकर शापसे मेरा उद्धार कर दिया । महाभाग ! आपसे बढ़कर दूसरा कोई मेरा उपकारी नहीं है ।'

स्वरोचिष्ने पूछा—महात्मा ब्रह्ममित्र मुनिने तुम्हें किस कारणसे और कैसा शाप दिया था ?

राक्षस बोला—ब्रह्ममित्र मुनि आठों अङ्गोंसे युक्त आयुर्वेदके ज्ञाता हैं । उन्होंने अथर्ववेदके तेरहवें अधिकारतकका ज्ञान प्राप्त किया है । मैं इस मनोरमाका पिता और खड्गधारी विद्याधरराज नलनाभका पुत्र इन्दीवराक्ष हूँ । पूर्वकालमें एक दिन मैंने ब्रह्ममित्र मुनिके पास जाकर प्रार्थना

की—'भगवन्! मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद शास्त्रका ज्ञान प्रदान कीजिये।' अनेकों बार विनीत भावसे प्रार्थना करनेपर भी जब उन्होंने मुझे आयुर्वेदकी शिक्षा नहीं दी, तब मैंने दूसरे उपायका अवलम्बन किया। जिस समय वे दूसरे विद्यार्थियोंको आयुर्वेद पढ़ाते, उस समय मैं भी अदृश्य रहकर वह विद्या सीखा करता। जब शिक्षा पूरी हो गयी, तब मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मैं बार-बार हँसने लगा। हँसनेकी आवाज सुनकर मुनि मुझे पहचान गये और क्रोधसे गर्दन हिलाते हुए कठोर वचनोंमें बोले—'खोटी बुद्धिवाले विद्याधर! तूने राक्षसकी भाँति अदृश्य होकर मुझसे विद्याका अपहरण किया है और मेरी अवहेलना करके हँसी उड़ायी है, इसलिये मेरे शापसे तू राक्षस हो जा।' उनके यों कहनेपर मैंने प्रणाम आदिके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। तब वे कोमल हृदयवाले ब्राह्मण मुझसे इस प्रकार बोले—'विद्याधर! मैंने जो बात कही है, वह अवश्य होगी, टल नहीं सकती। किन्तु तुम राक्षस होकर पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त कर लोगे। निशाचरावस्थामें स्मरणशक्तिके नष्ट हो जानेपर क्रोधके वशीभूत हो जब तुम अपनी ही संतानको खा डालनेकी इच्छा करोगे, उस समय प्रचण्ड अस्त्रके तेजसे संतप्त होनेपर तुम्हें फिरसे चेत हो जायगा और पूर्ववत् अपने शरीरको धारण करके गन्धर्वलोकमें निवास करोगे।' महाभाग! मैं वही हूँ, आपने महान् भयदायी राक्षसदेहसे मेरा उद्धार किया है, अतः मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। मैं अपनी पुत्री मनोरमाको आपकी सेवामें दे रहा हूँ। इसे पत्नीरूपमें ग्रहण करें। महामते! ब्रह्ममित्र मुनिसे सम्पूर्ण अष्टाङ्ग आयुर्वेदका जो मैंने अध्ययन किया है, वह सब आपको देता हूँ, स्वीकार करें।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यों कहकर विद्याधरने अपने पूर्व रूपको धारण कर लिया। दिव्य वस्त्र, दिव्य माला और दिव्य आभूषण उसकी शोभा बढ़ाने लगे। फिर उसने स्वरोचिषको आयुर्वेद-विद्या प्रदान की और उसकी सेवामें अपनी कन्या सौंप दी। तदनन्तर स्वरोचिषने पिताद्वारा दी हुई मनोरमाके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। इसके बाद इन्दीवराक्ष पुत्रीको सान्त्वना दे दिव्य गतिसे अपने लोकको चला गया। फिर स्वरोचिष् अपनी सुन्दरी पत्नीके साथ उस उद्यानमें गया, जहाँ उसकी दोनों सखियाँ मुनिके शापवश रोगसे व्याकुल थीं। अब वह आयुर्वेदके तत्त्वोंका ज्ञाता हो चुका था; अतः रोगनाशक औषधों और रसोंका प्रयोग करके



उसने उन दोनोंको रोगमुक्त कर दिया। व्याधिसे छुटकारा पानेपर वे दोनों सुन्दरी कन्याएँ अपने शरीरकी दिव्य कान्तिसे हिमालय पर्वतके उस रम्य प्रदेशको प्रकाशित करने लगीं।

इस प्रकार रोगमुक्त हुई कन्याओंमेंसे एकने स्वरोचिष्से प्रसन्नतापूर्वक कहा—'प्रभो! मेरी बात सुनिये। मैं मन्दार विद्याधरकी पुत्री हूँ। मेरा नाम विभावरी है। उपकारी पुरुष! मैं अपनेको आपकी सेवामें दे रही हूँ, स्वीकार कीजिये। साथ ही आपको एक ऐसी विद्या दूँगी, जिससे सब जीवोंकी बोली आपकी समझमें आने लगेगी; अतः आप मुझपर कृपा करें।' धर्मज्ञ स्वरोचिषने 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब दूसरी कन्या इस प्रकार बोली—'आर्य! वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् ब्रह्मर्षि पार मेरे पिता हैं। कुमारावस्थासे ही ब्रह्मचर्यका पालन करनेके कारण उन्होंने विवाह नहीं किया था। एक बार पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरासे उनका सम्पर्क हो गया। इससे मेरा जन्म हुआ। मेरी माता इस निर्जन वनमें मुझे धरतीपर सुला अकेली छोड़कर चली गयी। फिर एक महात्मा गन्धर्वने मुझे ले लिया और स्नेहपूर्वक लालन-पालन किया। एक बार देवशत्रु कलिने मेरे पालक पितासे मुझे माँगा, किन्तु उन्होंने देनेसे इन्कार कर दिया। तब उस

राक्षसने सोये हुए मेरे पिताको मार डाला। इस दुर्घटनामें मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं आत्महत्या करनेको तैयार हो गयी। उस समय भगवान् शङ्करकी धर्मपत्नी सत्यवादिनी सतीदेवीने मुझे ऐसा करनेसे रोका और कहा—'सुन्दरी! तू शोक मत कर। महाभाग स्वरोचिष् तेरे पति होंगे। उनका पुत्र मनु होगा। सब प्रकारकी निधियाँ आदरपूर्वक तेरी आज्ञाका पालन करेंगी और तुझे इच्छानुसार धन देंगी। वत्से! जिस विद्याके प्रभावसे तुझे वे निधियाँ प्राप्त होंगी, उसे तू मुझसे ग्रहण कर। यह महापद्मपूजित पद्मिनी नामकी विद्या है।' सत्यपरायणा दक्षकन्या सतीने मुझसे ऐसा ही कहा था। निश्चय ही आप स्वरोचिष् हैं। आज मैं अपने प्राणदाताको वह विद्या और यह शरीर अर्पण करती हूँ। आप प्रसन्न होकर मुझे स्वीकार करें।'

कलावतीकी यह प्रार्थना सुनकर स्वरोचिषने 'एवमस्तु' कहा। विभावरी और कलावतीकी स्नेहपूर्ण दृष्टिसे विवाहका अनुमोदन पाकर उन्होंने उन दोनोंका पाणिग्रहण किया।



फिर अपनी तीनों पत्नियोंके साथ वे रमणीय वनों तथा झरनोंसे सुशोभित गिरिराजके शिखरपर विहार करने लगे। स्वरोचिषने छः सौ वर्षोंतक उन स्त्रियोंके साथ रमण किया। वे धर्मका विरोध न करते हुए सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान करते और विषयोंको भी भोगते थे। तदनन्तर स्वरोचिष्के विजय, मेरुनन्द तथा महाबली प्रभाव—ये तीन पुत्र हुए। इन्दीवरकी पुत्री मनोरमाने विजयको जन्म दिया था, विभावरीके गर्भसे मेरुनन्द और कलावतीके गर्भसे प्रभाव उत्पन्न हुए थे। सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाली जो पद्मिनी नामकी विद्या थी, उसके प्रभावसे स्वरोचिष्ने अपने तीनों पुत्रोंके लिये तीन नगर बनवाये। पूर्व दिशामें कामरूप नामक पर्वतके ऊपर विजय नामका नगर बसाया और उसे अपने पुत्र विजयके अधिकारमें दे दिया। उत्तर दिशामें मेरुनन्दके लिये नन्दवती नामकी पुरी बनवायी, जिसकी चहारदीवारी बहुत ऊँची थी। कलावतीके पुत्र प्रभावके लिये दक्षिण देशमें उन्होंने ताल नामक नगर बसाया। इस प्रकार तीन नगरोंमें तीनों पुत्रोंको रखकर पुरुषश्रेष्ठ स्वरोचिष् अपनी पत्नियोंके साथ अत्यन्त मनोहर प्रदेशोंमें विहार करने लगे। एक दिन वे हाथमें धनुष लिये वनमें घूम रहे थे। उस समय उन्हें बहुत दूरपर एक सूअर दिखायी दिया। उसे देखकर उन्होंने धनुष खींचा; इतनेमें ही एक हरिणी उनके पास आकर बोली—'वीरवर! आप कृपा करके मुझपर ही बाण मारिये। इस सूअरके मारनेसे क्या लाभ। मुझको ही तुरंत मार गिराइये। आपका चलाया हुआ बाण मुझे समस्त दुःखोंसे मुक्त कर देगा।'

स्वरोचिषने कहा—मुझे तेरे शरीरमें कोई रोग नहीं दिखायी देता; फिर क्या कारण है कि तू अपने प्राणोंको त्याग देना चाहती है?

मृगी बोली—जिस पुरुषमें मेरा चित्त लगा हुआ है, उसका मन दूसरी स्त्रियोंमें आसक्त है, अतः उसके बिना मेरी मृत्यु निश्चित है। ऐसी दशामें बाणोंकी चोट सहनेके सिवा मेरे लिये यहाँ दूसरी कौन-सी दवा है।

स्वरोचिषने कहा—भीरु! वह कौन सा पुरुष है, जो तुझे नहीं चाहता? अथवा किसके प्रति तेरा अनुराग है, जिसे न पानेके कारण तू अपने प्राण त्याग देनेको तैयार हो गयी है?

मृगी बोली—आर्य! आपका कल्याण हो। मैं आपको ही प्राप्त करना चाहती हूँ। आपने ही मेरा चित्त चुराया है। इसीलिये मैं स्वेच्छासे मृत्युका वरण करती हूँ। आप मुझको बाण मारिये।

स्वरोचिष्ने कहा—देवि ! तू चञ्चल कटाक्षवाली मृगी है और मैं मनुष्यरूपधारी जीव हूँ; फिर मेरे-जैसे पुरुषका तेरे साथ किस प्रकार संयोग होगा ?



मृगी बोली—यदि मुझमें आपका चित्त अनुरक्त हो तो मेरा आलिङ्गन कीजिये । यदि आपका हृदय शुद्ध होगा तो मैं आपकी इच्छाके अनुसार कार्य करूँगी और इतनेसे ही मैं यह समझूँगी कि आपने मेरा बड़ा आदर किया ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तब स्वरोचिष्ने उस हरिणीका आलिङ्गन किया । फिर तो वह तत्काल दिव्यरूपधारिणी देवीके रूपमें प्रकट हो गयी । यह देख स्वरोचिष्को बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने पूछा—'तुम कौन हो ?' वह प्रेम और लज्जासे कुण्ठित वाणीमें बोली—'महामते ! मैं इस वनकी देवी हूँ । देवताओंके प्रार्थना करनेपर मैं आपकी सेवामें आयी हूँ, आप मेरे गर्भसे मनुको उत्पन्न कीजिये ।'

वनदेवीके यों कहनेपर स्वरोचिष्ने उसके गर्भसे तत्काल ही अपने-जैसा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित था । उसके जन्म लेते ही देवताओंके यहाँ बाजे बजने लगे । गन्धर्वराज गाने और अप्सराएँ नाचने लगीं । नाग और तपस्वी ऋषि जलके छींटोंसे उस बालकका अभिषेक करने लगे । देवताओंने उसके ऊपर चारों ओरसे फूलोंकी वृष्टि की । उसके तेजको देखकर पिताने उसका नाम द्युतिमान् रक्खा, क्योंकि उसकी द्युतिसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं ! वह महान् बलवान् और अत्यन्त पराक्रमी था । स्वरोचिष्का पुत्र होनेके कारण स्वारोचिषके नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई । तदनन्तर स्वरोचिष् अपनी स्त्रियोंको साथ ले तपस्या करनेके लिये दूसरे तपोवनमें चले गये । वहाँ उनके साथ घोर तपस्या करके समस्त पापोंसे रहित हो वे निर्मल लोकोंको प्राप्त हुए । तत्पश्चात् भगवान् प्रजापतिने स्वरोचिष्के पुत्र द्युतिमान्को मनुके पदपर प्रतिष्ठित किया । अब उनके मन्वन्तरका वर्णन सुनो—स्वारोचिष मन्वन्तरमें पारावत और तुषित नामके देवता तथा विपश्चित् नामक इन्द्र हुए । ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर तथा अर्ववीर—ये ही उस समयके सप्तर्षि थे । महात्मा स्वारोचिषके चैत्र और किम्पुरुष आदि सात पुत्र हुए, जो महान् पराक्रमी और पृथ्वीके पालक थे । जबतक स्वारोचिष मन्वन्तर था, तबतक उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए राजाओंने सारी पृथ्वीका राज्य भोगा । उनका मन्वन्तर द्वितीय कहलाता है । स्वरोचिष् और स्वारोचिषके जन्म और चरित्रका श्रवण करके श्रद्धालु मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

पद्मिनी विद्याके अधीन रहनेवाली आठ निधियोंका वर्णन

क्रौष्टुकिने कहा—भगवन् ! आपने स्वरोचिष् तथा स्वारोचिषके जन्म एवं चरित्रका सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया । अब सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाली पद्मिनी विद्याके अधीन जो-जो निधियाँ हैं, उनका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये ।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन् ! पद्मिनी नामकी जो विद्या है, उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीजी हैं । वे सम्पूर्ण निधियोंकी आधार हैं । पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील तथा शङ्ख—ये आठ निधियाँ हैं । देवताओंकी कृपा तथा साधु-महात्माओंकी सेवासे प्रसन्न होकर जब ये निधियाँ

कृपादृष्टि करती हैं तो मनुष्यको सदा धन प्राप्त होता है। अब इनके स्वरूपका वर्णन सुनो। पद्म नामक जो प्रथम निधि है, वह सत्त्वगुणका आधार है। उसके प्रभावसे मनुष्य सोने, चाँदी और ताँबे आदि धातुओंका अधिक मात्रामें संग्रह एवं क्रय-विक्रय करता है। इतना ही नहीं, वह यज्ञोंका अनुष्ठान करता, दक्षिणा देता तथा सभामण्डप एवं देवमन्दिर बनवाता है। महापद्म नामकी जो दूसरी निधि है, वह भी सात्त्विक है। उसके आश्रित हुए मनुष्यमें सत्त्वगुणकी प्रधानता होती है। वह पद्मराग आदि मणि, मोती और मूँगा आदिका संग्रह एवं क्रय-विक्रय करता है। योगी पुरुषोंको दान देता और उनके लिये आश्रम बनवाता है तथा स्वयं भी उन्हींके स्वभावका हो जाता है। उसके पुत्र-पौत्र आदि भी उसी स्वभावके होते हैं। महापद्मनिधि मनुष्यकी सात पीढ़ियोंतक उसका त्याग नहीं करती। मकर नामकी तीसरी निधि तमोगुणी होती है। उसकी दृष्टि पड़नेपर सुशील मनुष्य भी प्रायः तमोगुणी बन जाता है। वह बाण, खड्ग, ऋष्टि, धनुष, ढाल तथा दंशन करनेवाली वस्तुओंका संग्रह करता, राजाओंके साथ मैत्री जोड़ता, शौर्यसे जीविका चलानेवाले क्षत्रियों तथा उनके प्रेमियोंको धन देता है। अस्त्र-शस्त्रोंके सिवा और किसी वस्तुके क्रय-विक्रयमें उसका मन नहीं लगता। यह निधि एक ही मनुष्यतक सीमित रहती है। उसके पुत्रोंका साथ नहीं देती। वह मनुष्य धनके कारण लुटेरोंके हाथसे अथवा संग्राममें मारा जाता है। कच्छप नामकी जो निधि है, उसकी दृष्टि पड़नेपर भी मनुष्यमें तमोगुणकी प्रधानता होती है। क्योंकि वह भी तामसी निधि है। वह मनुष्य सब व्यवहार पुण्यात्माओंके साथ ही करता है। किन्तु किसीपर विश्वास नहीं करता। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार वह सब ओरसे रत्नोंका संग्रह करके उनकी रक्षाके लिये व्याकुल रहता है। धनके नष्ट हो जानेके भयसे न तो वह दान करता है और न उसे अपने उपभोगमें ही लाता है। अपितु उसे पृथ्वीमें गाड़कर रखता है। वह निधि भी एक ही पीढ़ीतक रहती है।

मुकुन्द नामकी जो पाँचवीं निधि है, वह रजोगुणमयी है। उसकी दृष्टि पड़नेपर मनुष्य रजोगुणी होता है। और वीणा, वेणु एवं मृदङ्ग आदि बाद्योंका संग्रह करता है। वह गाने और नाचनेवालोंको ही धन देता और सूत, वन्दी, धूर्त एवं नट आदिको प्रतिदिन भोगकी वस्तुएँ अर्पित करता है। यह निधि भी एक ही मनुष्यतक रह जाती है। इसमें भिन्न जो नन्द नामकी महानिधि है, वह रजोगुण और तमोगुण दोनोंसे संयुक्त है। उसकी दृष्टि पड़नेपर मनुष्य अधिक जड़ताको प्राप्त होता है। वह समस्त धातुओं, रत्नों और पवित्र धान्य आदिका संग्रह तथा क्रय-विक्रय करता है। महामुने! वह मनुष्य स्वजनों तथा घरपर आये हुए अतिथियोंका आधार होता है, परन्तु अपमानकी थोड़ी-सी भी बात नहीं सहन करता। जब कोई उसकी स्तुति करता है, तब वह बहुत प्रसन्न होता है। स्तुति करनेवाला याचक जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे देता है। उसका स्वभाव कोमल बन जाता है। उसके बहुत-सी स्त्रियाँ होती हैं, जो संतानवती और अत्यन्त सुन्दरी होती हैं। नन्दनामक निधि आठ भागसे बढ़ते-बढ़ते सात पीढ़ीतक मनुष्यका साथ देती है। वह सब पुरुषोंको दीर्घायु बनाती और दूरसे आये हुए बन्धु-बान्धवोंका भरण-पोषण करती है। परलोकके प्रति उसके हृदयमें आदर नहीं होता। इस निधि-को पाया हुआ पुरुष सहवासियोंपर स्नेह नहीं रखता। पहलेके मित्रोंसे उदासीन हो जाता और दूसरोंसे प्रेम करता है। इसी प्रकार जो महानिधि सत्त्वगुण और रजोगुण दोनोंको साथ-साथ धारण करती है, उसका नाम नील है। उसके सम्पर्कमें आनेवाला पुरुष भी सत्त्वगुण एवं रजोगुणसे युक्त होता है। वह वस्त्र, कपास, धान्य, फल, फूल, मोती, मूँगा, शङ्ख, सीपी, काष्ठ तथा जलसे पैदा होनेवाली अन्यान्य वस्तुओंका संग्रह एवं क्रय-विक्रय करता है। वह मनुष्य तालाव और बावली बनवाता, बगीचे लगाता, नदियोंपर पुल बँधवाता तथा अच्छे-अच्छे वृक्षोंको रोपता है। चन्दन और फूल आदि भोगोंका उपभोग करके ख्याति लाभ करता है। यह नील-निधि तीन पीढ़ियोंतक चलती है। शङ्ख नामकी जो आठवीं निधि है, वह रजोगुण और तमोगुणसे युक्त होती है तथा अपने स्वामीको भी ऐसे ही गुणोंसे युक्त बना देती है। ब्रह्मन्! यह निधि एक ही पुरुषतक सीमित रहती है, दूसरेको नहीं मिलती। क्रौष्टुके! जिसके पास शङ्ख नामक निधि होती है, उसके स्वरूपका वर्णन सुनो। वह अपने कमाये हुए अन्न और वस्त्रका अकेला ही उपभोग करता है। उसके कुटुम्बी लोग खराब अन्न खाते हैं। उन्हें पहननेको अच्छे वस्त्र नहीं मिलते। शङ्खनिधिसे युक्त मनुष्य सदा अपना ही पेट पालनेमें लगा रहता है। मित्र, भार्या, भ्राता, पुत्र तथा

वधू आदिको कुछ भी नहीं देता। इस प्रकार ये निधियाँ मनुष्योंके अर्थकी अधिष्ठात्री देवी कहलाती हैं। जिस निधिका जैसा स्वभाव बतलाया गया है, उसकी दृष्टि पड़नेपर मनुष्य वैसे ही स्वभावका हो जाता है। पद्मिनी नामकी विद्या इन सब निधियोंकी स्वामिनी है। यह साक्षात् लक्ष्मीजीका स्वरूप है।

राजा उत्तमका चरित्र तथा औत्तम मन्वन्तरका वर्णन

क्रौष्टुकि बोले—ब्रह्मन्! आपने स्वारोचिष मन्वन्तरका वृत्तान्त मुझे विस्तारके साथ सुनाया, साथ ही मेरे प्रश्नके अनुसार आठ निधियोंका भी वर्णन किया। स्वायम्भुव मन्वन्तरका वर्णन तो पहले ही हो चुका है। अब उत्तम नामक तीसरे मन्वन्तरकी कथा सुनाइये।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजा उत्तानपादके सुरुचिके गर्भसे एक उत्तम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो महान् बलवान् और पराक्रमी था। शत्रु और मित्रमें तथा पुत्र और पराये मनुष्यमें उसका समान भाव था। वह धर्मका ज्ञाता था और दुष्टोंके लिये यमराजके समान भयङ्कर एवं साधुपुरुषोंके लिये चन्द्रमाके समान आनन्ददायी था। राजकुमार उत्तमने बभ्रुकुमारी बहुलाके साथ विवाह किया था। वे सदा उसीमें आसक्त रहते थे। उनका मन और किसी काममें नहीं लगता था, स्वप्नमें भी उनका चित्त बहुलामें ही लगा रहता था। वे सदा रानीकी इच्छाके अनुसार ही चलते थे, तो भी वह कभी उनके अनुकूल नहीं होती थी। एक समय दूसरे-दूसरे राजाओंके समक्ष ही रानीने राजाकी आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया। इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे कुपित सर्पकी भाँति फुफकारते हुए द्वारपालसे बोले—'द्वारपाल! तू इस दुष्टहृदया स्त्रीको निर्जन वनमें ले जाकर छोड़ दे। यह मेरी आज्ञा है, अतः तुझे इसपर कुछ सोच-विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

तब राजाकी आज्ञाको अविचारणीय मानकर द्वारपाल रानीको रथपर बिठा वनमें छोड़ आया। राजाके द्वारा इस प्रकार निर्जन वनमें त्यागी जानेपर बहुलाने उनकी दृष्टिसे दूर होनेके कारण अपने ऊपर राजाका बहुत बड़ा अनुग्रह माना। उधर राजा अपने औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते हुए समय व्यतीत करने लगे। एक दिनकी बात है, कोई ब्राह्मण उनके दरबारमें आया और अत्यन्त दुःखितचित्त होकर इस प्रकार कहने लगा।

ब्राह्मण बोला—महाराज! मैं बहुत दुखी हूँ, मेरी बात सुनिये; क्योंकि राजाके सिवा और किसीसे मनुष्योंकी संकटसे रक्षा नहीं हो सकती। रातको सोते समय मेरे घरका दरवाजा खोले बिना ही कोई मेरी स्त्रीको चुरा ले गया है। आप उसे पता लगाकर ला देनेकी कृपा करें। राजन्! हमारी आय और धर्मका छठा भाग आप वेतनके रूपमें ग्रहण करते हैं, इसलिये आप ही हमलोगोंके रक्षक हैं। आपसे रक्षित होनेके कारण ही मनुष्य रात्रिमें निश्चिन्त होकर सोते हैं।

राजाने पूछा—ब्रह्मन्! आपकी स्त्री शरीरसे कैसी है, यह मैंने कभी नहीं देखा है। उसकी अवस्था क्या है, यह भी आपको ही बतलाना होगा। साथ ही यह भी सूचित कीजिये कि आपकी ब्राह्मणीका स्वभाव कैसा है?



ब्राह्मण बोला—राजन्! मेरी स्त्रीकी दृष्टिसे क्रूरता टपकती है। उसकी कद तो बहुत ऊँची है, किन्तु बाँहें छोटी, मुँह

दुबला-पतला और शरीर कुरूप है। यह मैं उसकी निन्दा नहीं करता, ठीक-ठीक हुलिया बतलाता हूँ। उसकी बातें बड़ी कड़वी होती हैं तथा स्वभावसे भी वह कोमल नहीं है। उसकी पहली अवस्था कुछ-कुछ बीत चुकी है।

राजाने कहा—ब्राह्मण! ऐसी स्त्री लेकर क्या करोगे। मैं तुम्हें दूसरी भार्या देता हूँ। अच्छे स्वभावकी स्त्री ही कल्याणमयी एवं सुख देनेवाली होती है। वैसी स्त्री तो केवल दुःखका ही कारण है। रूप और शील दोनोंसे हीन होनेके कारण वह स्त्री त्याग देनेयोग्य है।

ब्राह्मण बोला—राजन्! अपनी पत्नीकी रक्षा करनी चाहिये—यह श्रुतिका उत्तम आदेश है। उसकी रक्षा न करनेपर उससे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है। वर्णसंकर अपने पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिरा देता है। पत्नी न होनेके कारण मेरे नित्यकर्म छूट रहे हैं। इससे प्रतिदिन धर्ममें बाधा आती है, जिसके कारण मेरा पतन अवश्यम्भावी है। उसके गर्भसे जो मेरी संतति होगी, वह धर्मका पालन करनेवाली होगी। प्रभो! इस प्रकार मैंने अपनी पत्नीका वृत्तान्त आपके सामने निवेदन किया है। आप उसे लाइये, क्योंकि आप ही प्रजाकी रक्षाके अधिकारी हैं।

ब्राह्मणकी ऐसी बात सुनकर और उसपर भलीभाँति विचार करके राजा उत्तम सब सामग्रियोंसे युक्त अपने विशाल रथपर आरूढ़ हुए और पृथ्वीपर इधर-उधर घूमने लगे। एक दिन एक बहुत बड़े वनमें किसी तपस्वीका उत्तम आश्रम दिखायी दिया। तब रथसे उतरकर वे उस आश्रममें गये। वहाँ उन्हें एक मुनिका दर्शन हुआ, जो कुशासनपर विराजमान थे और अपने तेजसे अग्निकी भाँति प्रज्वलित हो रहे थे। राजाको आया देख मुनि शीघ्रतापूर्वक उठकर खड़े हो गये और स्वागतपूर्वक उनका सम्मान करते हुए शिष्यसे बोले, 'अर्घ्य ले आओ।' शिष्यने धीरेसे कहा—'मुने! क्या इन्हें अर्घ्य देना उचित है? इस बातका भलीभाँति विचार करके जैसी आज्ञा दें, उसका पालन करूँ।' तब मुनिने राजाके वृत्तान्तको ध्यानद्वारा जानकर केवल आसन दे बातचीतके द्वारा उनका सत्कार किया।

ऋषिने पूछा—राजन्! मैं जानता हूँ, आप महाराज उत्तानपादके पुत्र उत्तम हैं। बताइये, किसलिये यहाँ आये हैं? इस वनमें कौन-सा कार्य सिद्ध करनेका विचार है?

राजाने कहा—मुने! एक ब्राह्मणके घरसे किसी अपरिचित व्यक्तिने उसकी स्त्रीको चुरा लिया है। उसीकी खोज करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। इस समय आपसे एक बात पूछता हूँ; कृपा करके बताइये। जब मैं आपके आश्रमपर आया तो प्रथम दृष्टि पड़ते ही आपने मुझे अर्घ्य देनेका विचार किया; किन्तु फिर उसे रोक क्यों दिया?

ऋषि बोले—राजन्! आपको देखकर मैंने जल्दीमें अर्घ्य देनेकी आज्ञा प्रदान कर दी थी; किन्तु इस शिष्यने मुझे सावधान किया। मेरे प्रसादसे यह भी मेरी ही भाँति संसारके भूत, भविष्य और वर्तमानका हाल जानता है। इसने कहा, 'विचारकर आज्ञा दीजिये।' तब मैंने भी आपका वृत्तान्त जान लिया। इसीलिये आपको विधिपूर्वक अर्घ्य नहीं दिया। राजन्! इसमें संदेह नहीं कि आप स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्पन्न होनेके कारण अर्घ्य पानेके अधिकारी हैं, तथापि हमलोग आपको अर्घ्यका उत्तम पात्र नहीं मानते।

राजाने पूछा—ब्रह्मन्! मैंने जानकर या अनजानमें ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिससे बहुत दिनोंके पश्चात् आनेपर भी मैं आपसे अर्घ्य पानेका अधिकारी न रहा?



ऋषि बोले—राजन्! क्या आप इस बातको भूल गये कि आपने अपनी पत्नीका वनमें परित्याग किया है और उसके साथ ही आप धर्मको भी छोड़ बैठे हैं? एक पक्षतक

भी नित्यकर्म छोड़ देनेसे मनुष्य अस्पृश्य हो जाता है; फिर आपने तो एक वर्षसे उसको छोड़ रक्खा है। अतः आपके विषयमें क्या कहना है। नरेश्वर! पतिका स्वभाव कैसा ही हो, पत्नीको उचित है कि वह सदा पतिके अनुकूल रहे। इसी प्रकार पतिका भी कर्तव्य है कि वह दुष्ट स्वभाववाली पत्नीका भी पालन-पोषण करे।* ब्राह्मणकी वह पत्नी जिसका अपहरण हुआ है, सदा पतिके प्रतिकूल ही चलती है तथापि धर्मपालनकी इच्छासे वह आपके पास गया और पत्नीको खोजनेके लिये प्रेरित करता रहा। आप तो धर्मसे विचलित हुए दूसरे-दूसरे मनुष्योंको धर्ममें लगाते हैं; फिर जब आप स्वयं ही विचलित होंगे, तब आपको कौन धर्ममें लगायेगा।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुनिके यों कहनेपर राजा लज्जित हो गये। आपका कहना ठीक है, यों कहकर उन्होंने ब्राह्मणकी पत्नीके विषयमें पूछा—'भगवन्! आप भूत और भविष्यके यथार्थ ज्ञाता हैं। बताइये, ब्राह्मणकी पत्नीको कौन ले गया है?'

ऋषि बोले—राजन्! अद्रिके पुत्र बलाक नामके राक्षसने उसका अपहरण किया है। उत्पलावत वनमें जानेपर आप उस ब्राह्मणकी पत्नीको देख सकेंगे। जाइये, शीघ्र ही उस श्रेष्ठ ब्राह्मणका पत्नीसे संयोग कराइये, जिससे आपकी तरह उसे भी दिनोंदिन पापका भागी न होना पड़े।

तदनन्तर उन महामुनिको प्रणाम करके राजा उत्तम पुनः अपने रथपर आरूढ़ हुए और उनके बताये हुए उत्पलावत वनमें गये। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणकी पत्नीको देखा। उसका स्वरूप ठीक वैसा ही था, जैसा कि ब्राह्मणने बतलाया था। वह श्रीफल खा रही थी। राजाने उससे पूछा—'भद्रे! तुम इस वनमें कैसे आयीं? सब बातें स्पष्ट रूपसे बताओ। जान पड़ता है, तुम विशालके पुत्र सुशर्माकी स्त्री हो।'

ब्राह्मणीने कहा—मैं वनवासी ब्राह्मण अतिरात्रकी पुत्री हूँ और विशालके पुत्रकी, जिसका नाम अभी-अभी आपने बताया है, पत्नी हूँ। मुझे दुरात्मा राक्षस बलाक यहाँ हर लाया है। मैं घरके भीतर सो रही थी, उस समय इसने मेरा अपने भ्राता और मातासे वियोग कराया। मैं यहाँ बहुत दुखी रहती हूँ। उसने मुझे इस अत्यन्त गहन वनमें छोड़ रक्खा है। न तो मेरा उपभोग करता है और न मुझे खा ही डालता है। इसका कुछ कारण समझमें नहीं आता।

राजा बोले—ब्राह्मणकुमारी! क्या तुम्हें मालूम है कि वह राक्षस तुमको यहाँ छोड़कर कहाँ गया है? मुझे तुम्हारे पतिने ही यहाँ भेजा है।

ब्राह्मणीने कहा—वह निशाचर इसी वनके भीतर रहता है। यदि आपको उससे भय न हो तो इसमें प्रवेश करके देखिये।

तदनन्तर राजाने ब्राह्मणीके दिखाये हुए मार्गसे उस वनके भीतर प्रवेश किया और उस राक्षसको परिवारके साथ बैठे देखा। राजाको देखते ही राक्षसने दूरसे ही पृथ्वीपर मस्तक टेक दिया और उनके निकट गया।

राक्षस बोला—राजन्! आपने मेरे घरपर पधारकर मेरे ऊपर बहुत बड़ी कृपा की है। मैं आपके राज्यमें निवास करता हूँ; अतः बताइये, आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ? आप यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये और इस आसनपर बैठिये।

राजाने कहा—निशाचर! तुमने मेरा सब काम कर दिया। सब प्रकारसे मेरा आतिथ्य-सत्कार हो गया। अब बताओ, तुम ब्राह्मणकी स्त्रीको क्यों उठा लाये हो? यदि कहीं तुम उसे अपनी भार्या बनानेके लिये लाये हो तो यह ठीक नहीं



* पक्षेण कर्मणो हान्या प्रयात्यस्पृश्यतां नरः।
किमत्र वार्षिकी यस्य हानिस्ते नित्यकर्मणः॥
पत्न्यानुकूल्या भाव्यं यथाशीलेऽपि भर्तरि।
दुःशीलापि तथा भार्या पोषणीया नरेश्वर॥
(६९। ५८-५९)

जान पड़ता; क्योंकि वह सुन्दरी नहीं है और तुम्हारे घरमें दूसरी स्त्रियाँ भी हैं ही। यदि उसे अपना भक्ष्य बनानेका विचार रहा हो तो आजतक तुमने उसे खाया क्यों नहीं? इसका कारण बताओ।

राक्षस बोला—राजन्! हमलोग मनुष्यको नहीं खाते। मनुष्यभक्षी राक्षस दूसरे ही हैं। हम तो पुण्यका फल ही खाया करते हैं। इसके सिवा यदि कोई स्त्री या पुरुष हमारा आदर या अनादर कर दे तो हम उसके अच्छे-बुरे स्वभावको भी खा जाते हैं। यदि मनुष्यके क्षमा-स्वभावको हम खा लें तो वे क्रोधी बन जाते हैं और दुष्ट-स्वभावको भक्षण कर लें तो वे उत्तम गुणोंसे सम्पन्न होते हैं। महाराज! मेरे घरमें अनेक युवती स्त्रियाँ हैं, जो रूपमें अप्सराओंकी समानता करनेवाली हैं। उनके रहते हुए मनुष्यकी स्त्रियोंमें मेरा अनुराग कैसे हो सकता है!

राजाने कहा—निशाचर! यदि यह ब्राह्मणी न तो तुम्हारे उपभोगके कामकी है न आहारके तो ब्राह्मणके घरमें प्रवेश करके तुमने इसका अपहरण क्यों किया?

राक्षस बोला—राजन्! वह श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदमन्त्रोंका ज्ञाता है। मैं जिस किसी यज्ञमें जाता हूँ, रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ करके वह मुझे दूर भगा देता है। मन्त्रोंद्वारा उसके उच्चाटन करनेसे हमलोग भूखे रह जाते हैं। ऐसी दशामें हम कहाँ जायँ। प्रायः सभी यज्ञोंमें वह ऋत्विज बना करता है। इसीलिये हमने उसके सामने यह विघ्न खड़ा किया है, क्योंकि कोई भी पुरुष पत्नीके बिना यज्ञ-कर्म करनेके योग्य नहीं रहता। राजन्! मैं आपका विनीत सेवक हूँ, आपके राज्यकी प्रजा हूँ; अतः आप अपने किसी कार्यके लिये आज्ञा देकर मुझपर कृपा कीजिये।

राजाने कहा—राक्षस! तुम पहले कह चुके हो कि हम मनुष्यके स्वभावको खा जाते हैं; अतः हम तुमसे जो काम कराना चाहते हैं, उसे सुनो। तुम इस ब्राह्मणीकी दुष्टताको भक्षण कर लो, जिससे यह विनयशील हो जाय। इसके बाद इसे इसके घरमें पहुँचा आओ। इतना कर देनेपर मैं समझूँगा कि तुमने अपने घरपर आये हुए मुझ अतिथिका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर दिया।

राजाके यों कहनेपर वह राक्षस अपनी मायासे ब्राह्मणीके शरीरमें प्रवेश कर गया और अपनी शक्तिसे उसके दुष्ट-स्वभावको खा गया। फिर तो ब्राह्मणकी पत्नी भयंकर दुष्टतासे मुक्त हो गयी और राजासे बोली—'महाराज! मुझे अपने ही कर्मके फलसे अपने महात्मा स्वामीसे बिलग होना पड़ा है। यह निशाचर तो उसमें निमित्तमात्र बना है। न इसका दोष है, न मेरे महात्मा पतिका दोष है; सब दोष मेरा ही है। क्योंकि मनुष्यको अपनी ही करनीका फल भोगना पड़ता है। पूर्वजन्ममें मैंने किसीका वियोग कराया होगा, वह आज मुझपर भी आ पड़ा है। इसमें दूसरेका क्या दोष है।'

राक्षस बोला—राजन्! आपकी आज्ञाके अनुसार मैं इस ब्राह्मणीको इसके स्वामीके घरपर पहुँचा आता हूँ; इसके सिवा और भी यदि मेरे योग्य कोई कार्य हो तो उसके लिये आज्ञा दीजिये।

राजाने कहा—निशाचर! यह कार्य हो जानेपर मैं समझूँगा कि तुमने मेरा सारा कार्य सिद्ध कर दिया। वीर! यदि किसी कार्यके समय मैं तुम्हारा स्मरण करूँ तो तुम मेरे पास आ जाना।

'बहुत अच्छा' कहकर राक्षसने उस ब्राह्मणपत्नीको, जो दुष्टता दूर हो जानेसे अब अच्छे स्वभावकी हो गयी थी, ले जाकर उसके पतिके घरमें पहुँचा दिया। राजा भी उसे भेजकर मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'अब मैं अपने विषयमें क्या करूँ, क्या करनेसे मेरा भला होगा। महामना महर्षिने मुझे अर्घ्यके अयोग्य बतलाया है, यह तो मेरे लिये बड़े कष्टकी बात है। अब मैं क्या करूँ। पत्नीको तो मैंने त्याग दिया, अब उसका पता कैसे लगे अथवा उन ज्ञानचक्षु महर्षिसे ही चलकर पूछूँ।' यों विचारकर राजा फिर अपने रथपर आरूढ़ हुए और उस स्थानपर गये, जहाँ वे त्रिकालवेत्ता धर्मात्मा महामुनि रहते थे। रथसे उतरकर उन्होंने मुनिके पास जा उन्हें प्रणाम किया और राक्षससे मिलने, ब्राह्मणीके दिखायी देने तथा उसकी दुष्टताके दूर होने आदिका सब वृत्तान्त ठीक-ठीक कह सुनाया।

ऋषिने कहा—राजन्! तुमने जो कुछ किया है, वह सब मुझे पहलेसे ही मालूम हो चुका है। मेरे पास तुम जिस कार्यसे आये हो, वह भी मुझसे छिपा नहीं है। मनुष्योंके लिये पत्नी धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धिका कारण है। तुमने उसका त्याग करके विशेषतः धर्मको भी त्याग दिया है। राजन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी क्यों न हो, पत्नीके न होनेपर वह अपने कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रहता। तुमने अपनी पत्नीका त्याग करके अच्छा नहीं किया। जैसे स्त्रियोंके

लिये पतिका त्याग अनुचित है, उसी प्रकार पुरुषोंके लिये स्त्रीका त्याग भी उचित नहीं है।*

राजा बोले—भगवन्! क्या करूँ, यह सब मेरे कर्मोंका फल है। मैं सदा पत्नीके अनुकूल ही चलता था, फिर भी वह मेरे अनुकूल न हुई। इसलिये मैंने उसे त्याग दिया। उसके वियोगकी पीड़ासे मेरी अन्तरात्मा व्यथित हो रही है। मैंने उसे वनमें छोड़ा था; पता नहीं वह कहाँ चली गयी। अथवा उसे वनमें सिंह, व्याघ्र या निशाचरोंने तो नहीं खा लिया।

ऋषिने कहा—राजन्! उसे सिंह, व्याघ्र या निशाचरोंने नहीं खाया है। वह इस समय रसातलमें है। उसका चरित्र अभीतक नष्ट नहीं हुआ है।

राजा बोले—ब्रह्मन्! यह तो बड़ी अद्भुत बात है। उसे पातालमें कौन ले गया और वह अबतक दूषित कैसे नहीं हुई है, यह सब यथार्थ रूपसे बतलानेकी कृपा करें।

ऋषिने कहा—पातालमें नागराज कपोत एक विख्यात पुरुष हैं। एक दिन उन्होंने तुम्हारी त्यागी हुई सुन्दरी पत्नीको महान् वनके भीतर भटकते हुए देखा। उसका सारा हाल जानकर वे उसपर आसक्त हो गये और उसे पाताल-लोकमें ले गये। नागराज कपोतके नन्दा नामकी एक पुत्री तथा मनोरमा नामकी स्त्री है। नन्दाने बहुलाको देखकर सोचा, 'हो-न-हो यह मेरी माताकी सौत बननेवाली है।' यों विचारकर वह उसे अपने घरमें ले गयी और अन्तःपुरमें छिपाकर रख दिया। कपोतने जब-जब नन्दासे बहुलाको माँगा, तब-तब उसने उनको कोई उत्तर नहीं दिया। तब पिताने उसे शाप दे दिया—'जा, तू गूँगी हो जायगी।' इस प्रकार शापग्रस्त होकर नन्दा उसके साथ रहती है। नागराज उसे ले गये और उसकी कन्याने उसे अपने संरक्षणमें रख लिया।

राजा बोले—महामुने! मुझे तो बहुला प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है; किन्तु वह मेरे प्रति सदा दुष्टताका ही बर्ताव करती है। इसका क्या कारण है?

ऋषिने कहा—पाणिग्रहणके समय सूर्य, मंगल और शनैश्चरकी तुम्हारे ऊपर तथा शुक्र और बृहस्पतिकी तुम्हारी पत्नीके ऊपर दृष्टि थी। उस मुहूर्तमें उसपर चन्द्रमा और बुध भी, जो परस्पर शत्रुभाव रखनेवाले हैं, अनुकूल थे और तुम्हारे ऊपर प्रतिकूल। इसीलिये तुम्हें पत्नीकी प्रतिकूलताका विशेष कष्ट सहना पड़ा है। अच्छा, अब जाओ; धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करो और पत्नीके साथ रहकर सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान करो।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—महर्षिके यों कहनेपर राजा उन्हें प्रणाम करके रथपर आरूढ़ हुए और अपने नगरको लौट आये। वहाँ आनेपर उन्होंने उस ब्राह्मणको देखा, जो अपनी शीलवती भार्याके साथ बहुत प्रसन्न था।



ब्राह्मणने कहा—नृपश्रेष्ठ! आप धर्मके ज्ञाता हैं, आपने मेरी पत्नीको लाकर मेरे धर्मकी रक्षा की है। इससे मैं कृतार्थ हो गया।

राजा बोले—द्विजश्रेष्ठ! आप तो अपने धर्मका पालन करके कृतार्थ हो रहे हैं, किन्तु मैं संकटमें पड़ा हूँ; क्योंकि मेरी पत्नी घरमें नहीं है।

ब्राह्मणने कहा—महाराज! यदि आपकी पत्नी जीवित है और व्यभिचारिणी नहीं हुई है तो आप स्त्रीके बिना रहकर पाप क्यों कमा रहे हैं!

---

* त्यक्तता भवता पत्नी न शोभनमनुष्ठितम्।
अत्याज्यो हि यथा भर्ता स्त्रीणां भार्या तथा नृणाम्॥

राजा बोले—ब्रह्मन्! यदि मैं पत्नीको लाऊँ भी तो वह सदा मेरे प्रतिकूल रहती है; अतः उससे दुःख ही मिलेगा, सुख नहीं। क्योंकि वह मुझसे मैत्री नहीं रखती। आप कोई ऐसा यत्न करें जिससे वह मेरे अधीन हो जाय।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! आपके प्रति रानीका प्रेम होनेके लिये श्रेष्ठ यज्ञ करना उपकारक होगा; अतः मित्रकी कामना रखनेवाले लोग जिसका अनुष्ठान किया करते हैं, वह मित्रविन्दानामक यज्ञ मैं आरम्भ करता हूँ। राजन्! जिन स्त्री-पुरुषोंमें परस्पर प्रेम न हो, उनमें मित्रविन्दा प्रेम उत्पन्न करती है। इसलिये आपके कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे मैं उसीका अनुष्ठान करूँगा।

ब्राह्मणके यों कहनेपर राजाने यज्ञकी सब सामग्री एकत्रित करायी और उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने मित्रविन्दा यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। उसने राजाकी स्त्रीमें प्रेम उत्पन्न करनेके लिये एक-एक करके सात यज्ञ किये। जब उसे यह निश्चय हो गया कि रानीके हृदयमें राजाके प्रति मित्रभाव जाग्रत् हो गया है, तब उसने राजासे कहा—'महाराज! अब आप अपनी प्रिय पत्नीको अपने साथ रखिये और उसके साथ उत्तम भोग भोगते हुए श्रद्धापूर्वक यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने उस महापराक्रमी सत्यप्रतिज्ञ निशाचरको स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वह राक्षस राजाके पास आ पहुँचा और प्रणाम करके बोला—'क्या आज्ञा है?' तब राजाने विस्तारके साथ अपना सारा वृत्तान्त निवेदन किया। फिर वह राक्षस पातालमें जाकर रानीको ले आया। आनेपर उसने हार्दिक अनुरागके साथ पतिको देखा और बड़ी प्रसन्नताके साथ बारंबार कहा—'मुझपर प्रसन्न होइये।' तब राजाने अपनी मानिनी स्त्रीको हृदयसे लगाकर कहा—'प्रिये! तुम बार-बार मुझसे ऐसा क्यों कहती हो। मैं तो तुमपर प्रसन्न ही हूँ।'

रानी बोली—महाराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे एक याचना करती हूँ; आप उसे पूर्ण करके मेरा आदर कीजिये।

राजाने कहा—प्रिये! तुम्हें जो कुछ भी अभीष्ट हो, वह निःशङ्क होकर कहो। तुम्हारे लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मैं तुम्हारे अधीन हूँ।

रानी बोली—नाथ! मेरे लिये नागराजने मेरी सखीको शाप दे दिया, जिससे वह गूँगी हो गयी है। यदि आप मेरे प्रेमवश उसके संकटका निवारण कर सकें तो उसकी मूकता दूर करनेके लिये प्रयत्न कीजिये। यदि ऐसा हो गया तो मैं समझूँगी, मेरा सब कार्य सिद्ध हो गया।

तब राजाने उस ब्राह्मणको बुलाकर पूछा—'विप्रवर! इसमें कैसी क्रिया होनी चाहिये, जो उसकी मूकता दूर कर सके?'

ब्राह्मण बोला—राजन्! मैं आपके कहनेसे सारस्वती इष्टि करूँगा, जिससे आपकी ये महारानी अपनी सखीकी वाक्शक्तिको कार्यक्षम बनाकर उसके ऋणसे उऋण हो जायँ।

तदनन्तर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने सारस्वती इष्टि आरम्भ की। उसने नन्दाकी मूकता दूर करनेके लिये एकाग्रचित्त होकर सारस्वत सूक्तोंका जप किया। इससे वह नागकन्या बोलने लगी। उन दिनों गर्गमुनि रसातलमें रहा करते थे। उन्होंने नन्दाको बताया, 'तुम्हारी सखी बहुलाके पतिने यह अत्यन्त दुष्कर उपकार किया है।' यह बात जानकर शीघ्रगामिनी नन्दा राजाके नगरमें आयी और अपनी सखी महारानी बहुलाको छातीसे लगाकर तथा राजाकी भी बारंबार प्रशंसा करके आनन्दमग्न बैठकर मधुर वाणीमें बोली—'वीर! आपने इस समय मेरा



जो उपकार किया है, इससे मेरा हृदय आकृष्ट हो गया है

अतः मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो। राजन्! तुम्हें एक महापराक्रमी पुत्र प्राप्त होगा और इस पृथ्वीपर उसका अखण्ड राज्य रहेगा। वह सब शास्त्रोंका ज्ञाता, धर्मपरायण, बुद्धिमान् एवं मन्वन्तरका स्वामी मनु होगा।

राजाको इस प्रकार वर देकर नागराज-कन्या नन्दा अपनी सखीको हृदयसे लगा पाताललोकको चली गयी। तदनन्तर रानीके साथ विहार एवं प्रजापालन करते हुए राजा उत्तमके कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। फिर महात्मा राजाको रानी बहुलाके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रकी भाँति कान्तिमान् था। उसके जन्म लेनेपर समस्त प्रजाको महान् आनन्द हुआ। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उसे देखकर मुनियोंने कहा—'यह राजा उत्तमके वंशमें और उत्तम समयमें उत्पन्न हुआ है तथा इसका प्रत्येक अङ्ग उत्तम है; इसलिये यह औत्तम नामसे विख्यात होगा।'

इस प्रकार राजा उत्तमका पुत्र औत्तम नामक मनु हुआ। अब उसके प्रभावका वर्णन सुनो। जो राजा उत्तमके उपाख्यान और औत्तमके जन्मकी कथा प्रतिदिन सुनता है, उसका कभी किसीसे द्वेष नहीं होता। इस चरित्रको सुनने और पढ़नेवालेका कभी प्रिय पत्नी, पुत्र अथवा बन्धुओंसे वियोग नहीं होता। औत्तम मन्वन्तर तीसरा कहा जाता है। उसमें स्वधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन तथा वशवर्ती—ये देवताओंके पाँच गण थे। इनका जैसा नाम, वैसा ही गुण था। ये पाँचों देवगण यज्ञ-भोगी माने गये हैं। ये सभी गण बारह-बारह व्यक्तियोंके समुदाय हैं। उक्त मन्वन्तरमें सुशान्ति नामक इन्द्र हुए, जो सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इन्द्रपदको प्राप्त हुए थे। आज भी मनुष्य विघ्नोंका नाश करनेके लिये सुशान्तिके नामाक्षरोंसे विभूषित एक गाथाका गान किया करते हैं। वह इस प्रकार है—

सुशान्तिर्देवराट् कान्तः सुशान्तिं सम्प्रयच्छति।
सहितः शिवसत्याद्यैस्तथैव वशवर्तिभिः॥

'शिव, सत्य एवं वशवर्ती आदि देवगणोंके साथ परम सुन्दर देवराज सुशान्ति उत्तम शान्ति प्रदान करते हैं।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—औत्तम मनुके अज, परशुचि और दिव्य—ये तीन पुत्र थे, जो देवताओंके समान तेजस्वी तथा महान् बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके मन्वन्तरमें उन्हींके वंशज इस पृथ्वीका पालन करते रहे। इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है, यह बात पहले बतलायी जा चुकी है। महात्मा वसिष्ठके सात पुत्र ही इस तीसरे मन्वन्तरमें सप्तर्षि थे। इस प्रकार यह तीसरे मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब तामस मनुके चौथे मन्वन्तरका वर्णन किया जाता है। यद्यपि तामस मनुका जन्म मनुष्येतर योनिमें हुआ था, तो भी उन्होंने अपने यशसे त्रिभुवनको आलोकित कर दिया था। ब्रह्मन्! अन्य सभी मनुओंकी भाँति चौथे मनुका जन्म भी अलौकिक है। उसे बतलाता हूँ, सुनो।

तामस मनुकी उत्पत्ति तथा मन्वन्तरका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस पृथ्वीपर स्वराष्ट्र नामक एक विख्यात राजा हो गये हैं, जो बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया था और वे संग्राममें कभी पीठ नहीं दिखाते थे। राजाके मन्त्रीकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने राजाको बहुत बड़ी आयु प्रदान की थी। राजाके सौ स्त्रियाँ थीं, किन्तु वे उनकी भाँति बड़ी आयुसे युक्त न होनेके कारण समयानुसार मृत्युको प्राप्त हुईं। इसी प्रकार धीरे-धीरे राजाके मन्त्री और सेवक भी कालके गालमें चले गये। उन सबके अभावमें राजाका चित्त उद्विग्न रहने लगा। प्रतिदिन उनकी शक्ति क्षीण होने लगी। उन्हें वीर्यसे हीन एवं दुखी जानकर विमर्द नामके एक राजाने आक्रमण किया और उनको राज्यच्युत कर दिया। राज्यसे च्युत होनेपर वे विरक्त हो वनमें चले गये और वितस्ता (झेलम) नदीके तटपर रहकर तपस्या करने लगे। वे गर्मीमें पञ्चाग्नि सेवन करते, बरसातमें मैदानमें रहकर वर्षाके जलको शरीरपर सहते और जाड़ेकी ऋतुमें पानीके भीतर शयन करते, निराहार रहते एवं उत्तम व्रतोंका पालन करते। एक बार वर्षाकालमें जब कि वे तपस्या कर रहे थे, लगातार कई दिनोंतक वृष्टि होती रही। इससे बाढ़ आ गयी। राजा भी जलकी प्रखर धारामें बह गये। चारों ओर अन्धकार छा रहा था। जलमें बहते-बहते उन्हें संयोगवश एक हरिणी मिल गयी। उन्होंने उसकी पूँछ पकड़ ली, फिर उस प्रवाहके साथ बहते और अन्धकारमें इधर-उधर भटकते हुए राजा किसी तरह तटपर पहुँचे। वहाँ भी बहुत दूरतक

कीचड़ थी, जिसको पार करना अत्यन्त ही कठिन था; तथापि वे हरिणीकी पूँछसे खिंचते हुए उस कीचड़से पार हो एक वनमें जा पहुँचे। हरिणीके स्पर्शसे उन्हें आनन्दका अनुभव होने लगा। उस अन्धकारमें भ्रमण करते हुए वे कामदेवके वशीभूत हो गये। राजाको अनुरागवश अपनी पीठका स्पर्श करते जान उस वनके भीतर मृगीने कहा—'राजन्! आप काँपते हुए हाथोंसे मेरी पीठका स्पर्श क्यों करते हैं? आपके कार्यकी सिद्धि तो किसी और ही प्रकारसे हो गयी है।'

राजाने पूछा—मृगी! तू कौन है? और मनुष्यकी तरह कैसे बोलती है?

मृगी बोली—राजन्! मैं पहले आपकी प्यारी पत्नी थी। मेरा नाम उत्पलावती था। मैं दृढधन्वाकी पुत्री और आपकी सौ रानियोंमें प्रधान थी।

राजाने पूछा—उत्पलावती तो बड़ी पतिव्रता और धर्मपरायणा थी। वह ऐसी किस प्रकार हुई? उसने कौन-सा ऐसा कर्म किया था, जिससे उसे मृगीकी योनिमें आना पड़ा।

मृगी बोली—राजन्! मैं बाल्यावस्थामें जब पिताके घरपर थी, सखियोंके साथ एक दिन वनमें घूमने गयी थी। वहाँ मैंने मृगीके साथ समागम करते हुए एक मृगको देखा। मैं उसके बिल्कुल निकट थी, अतः मैंने उस मृगीको मारा। मुझसे डरकर वह मृगी अन्यत्र चली गयी। तब मृगने कुपित होकर कहा—'ओ मूर्खे! तू क्यों इतनी मतवाली हो रही है, तेरी इस दुष्टताको धिक्कार है।' उस मृगकी मनुष्यके समान वाणी सुनकर मैं डर गयी और बोली—'तुम कौन हो?' उसने उत्तर दिया—'मैं निर्वृतिचक्षु नामक मुनिका पुत्र हूँ। मेरा नाम सुतपा है। मृगीसे सम्भोग करनेकी इच्छा होनेके कारण मैं मृग हो गया। प्रेमवश मैंने इस मृगीका अनुसरण किया था और इसने भी मेरी अभिलाषा की थी; परन्तु तूने आकर मुझसे उसका वियोग करा दिया, इसलिये मैं तुझे अभी शाप देता हूँ।' मैंने कहा—'मुने! मैंने अनजानमें आपका अपराध किया है, अतः कृपा करके मुझे शाप न दीजिये।' मेरे यों कहनेपर वे मुनि इस प्रकार बोले—'यदि तुझे अपनेको दे सकूँ—तेरे गर्भसे पुत्र उत्पन्न कर सकूँ तो तुझे शाप नहीं दूँगा।' मैंने कहा—'मैं न तो मृगी हूँ और न वनमें मृगीका रूप धारण करके ही घूमती हूँ; अतः मेरी ओरसे अपना मन हटा लीजिये। आपको दूसरी कोई मृगी मिल जायगी।' मेरी यह बात सुनकर मुनिकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उनका ओठ काँपने लगा। वे बोले—'ओ नादान! तू कहती है मैं मृगी नहीं हूँ तो ले तू मृगी ही हो जायगी।' तब मैं अत्यन्त दुःखित हो मुनिको प्रणाम करके बोली—'मुने! मुझपर प्रसन्न होइये। मैं अभी बालिका हूँ। बोलनेका ढंग नहीं जानती। मुनिवर! पिताके न रहनेपर ही स्त्री स्वयं अपना पति चुनती है। मेरे पिताजी तो अभी जीवित हैं, फिर कैसे मैं आपका वरण कर सकती हूँ।* अथवा सारा अपराध मेरा ही है, फिर भी आप प्रसन्न होइये। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ।' तब मुनिश्रेष्ठ सुतपाने कहा—'मेरी बात झूठी नहीं हो सकती। तू मरनेपर इसी वनमें मृगी होगी। उस समय सिद्धवीर्य मुनिके पुत्र महाबाहु लोल तेरे गर्भमें आयेंगे। उनके गर्भमें आते ही तुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण होगा, फिर स्मरणशक्ति प्राप्त करके तू मानवीकी भाँति बोलने लगेगी। उस गर्भके उत्पन्न होनेपर तू मृगीके शरीरसे मुक्त हो जायगी और पतिसे समादृत हो उन लोकोंमें जायगी, जहाँ कुकर्मी मनुष्य कदापि नहीं जा सकते। लोल भी बड़े पराक्रमी होंगे और अपने पिताके शत्रुओंको मारकर सारी पृथ्वी अपने अधिकारमें कर लेंगे। तत्पश्चात् वे मनुके पदपर प्रतिष्ठित होंगे।' इस प्रकार शाप मिलनेपर मैं तिर्यग्योनिमें आयी हूँ। आपके शरीरका स्पर्श होनेमात्रसे मेरे उदरमें गर्भ स्थापित हो गया है।

मृगीके यों कहनेपर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा—'मेरा पुत्र मेरे शत्रुओंको परास्त करके इस पृथ्वीपर मनु होगा, यह कितने आनन्दकी बात है।' तदनन्तर कुछ कालके पश्चात् मृगीने उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया। उसके उत्पन्न होनेपर सम्पूर्ण भूत आनन्दका अनुभव करने लगे। विशेषतः राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। मृगी भी शापसे छूटकर उत्तम लोकोंको चली गयी। तदनन्तर सब ऋषियोंने आकर उसकी भावी समृद्धि देख उस बालकका नामकरण किया—'तामसी योनिमें पड़ी हुई माताके गर्भसे इसका जन्म हुआ है, इसलिये यह बालक संसारमें तामस नामसे विख्यात होगा।' तत्पश्चात् पिता अपने पुत्र तामसका लालन-पालन करने लगे। जब तामसको कुछ समझ हुई तो उसने पितासे पूछा—'तात! आप कौन हैं? मैं आपका पुत्र किस प्रकार हुआ? मेरी माता कौन हैं? और आप किसलिये यहाँ आये हैं? यह सब सच-सच बताइये।'

* पितर्यसति नारीभिर्व्रियते हि पतिः स्वयम्।
सति ताते कथञ्चाहं वृणोमि मुनिसत्तम॥
(७४। ३४-३५)

तब पिताने अपने राज्यसे च्युत होने आदिसे लेकर सब वृत्तान्त पुत्रको बतलाया। ये सब बातें सुनकर तामसने भगवान् सूर्यकी आराधना की और उनसे उपसंहारसहित सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र प्राप्त किये। अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता होकर उसने सम्पूर्ण शत्रुओंको परास्त किया और उन्हें पिताके पास ले आकर उनकी आज्ञा मिलनेपर छुटकारा दिया। वह सदा अपने धर्मके पालनमें लगा रहता था। उसके पिता भी शरीर त्यागनेके पश्चात् तप और यज्ञसे उपार्जित पुण्यलोकोंमें गये। सारी पृथ्वीको जीतकर तामस राजा हुआ और फिर मनुके पदपर प्रतिष्ठित हुआ। अब तामस मन्वन्तरका वर्णन सुनो। उसमें सत्य, सुधी, सुरूप और हरि—ये चार देवगण हुए। इनमेंसे एक-एक गणमें सत्ताईस-सत्ताईस देवता हैं। उन देवताओंके इन्द्रका नाम शिखी था। वे अत्यन्त बली और महापराक्रमी थे। उन्होंने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इस पदको प्राप्त किया था। ज्योतिर्धर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर—ये ही सात उस समयके सप्तर्षि थे। नर, क्षान्ति, शान्त, दान्त, जानु और जङ्घ आदि महाबली राजा तामस मनुके पुत्र थे।

रैवत मनुकी उत्पत्ति और उनके मन्वन्तरका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्मन्! पाँचवें मनुका नाम रैवत था। उनकी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें ऋतवाक् नामसे प्रसिद्ध एक महर्षि थे। उनके बहुत समयतक कोई पुत्र नहीं हुआ। दीर्घकालके पश्चात् हुआ भी तो रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरणमें उसका जन्म हुआ। उन्होंने बालकके जातकर्म आदि संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किये। उपनयन आदि भी कराये, किन्तु वह सुशील न हो सका। जबसे उसका जन्म हुआ, तभीसे वे महर्षि भी दीर्घकालव्यापी रोगसे ग्रस्त हो गये। उसकी माता भी कोढ़ आदिसे पीड़ित हो बहुत दुःख उठाने लगी। बालकके पिता अत्यन्त दुखी होकर सोचने लगे—'यह कैसा अनर्थ प्राप्त हुआ!' उधर उस दुष्टबुद्धिवाले पुत्रने दूसरे मुनिकुमारकी स्त्रीका अपहरण कर लिया। इससे खिन्नचित्त होकर ऋतवाक्ने कहा—'मनुष्योंका बिना पुत्रके रहना अच्छा है; किन्तु कुपुत्रका होना कदापि उत्तम नहीं है। कुपुत्र तो पिता-माताके हृदयको सदा ही सालता रहता है और स्वर्गमें गये हुए पितरोंको भी नरकमें गिरा देता है। वह तो केवल माता-पिताको दुःख देनेके लिये ही होता है। उस पापात्मा पुत्रके जन्मको धिक्कार है। जिनके पुत्र सब लोगोंके प्रिय, परोपकारी, शान्त तथा उत्तम कर्मोंमें लगे रहनेवाले होते हैं, वे ही धन्य हैं। मुझे इस जन्ममें कुपुत्रके कारण सुख नहीं मिला और परलोकसे विमुख होना पड़ा। कुपुत्रका आश्रय लेनेवाला मेरा यह अधम जन्म केवल नरकमें ले जानेवाला है, उत्तम गतिकी प्राप्ति करानेवाला नहीं।'

इस प्रकार अत्यन्त दुष्ट पुत्रके दुराचारोंसे ऋतवाक् मुनिका हृदय जलने लगा। उन्होंने गर्गमुनिसे इसका कारण पूछा।



ऋतवाक् बोले—महामुने! पूर्वकालमें उत्तम व्रतका पालन करते हुए मैंने सब वेदोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया और उन्हें समाप्त करके वैदिक विधिके अनुसार स्त्रीके साथ विवाह किया; फिर स्त्रीको साथ रखकर वेदों और स्मृतियोंमें बताये हुए सभी कर्तव्यकर्मोंका अनुष्ठान किया। आजतक किसी भी क्रियाके अनुष्ठानमें न्यूनता नहीं आने दी। मुने! 'पुम्' नामके नरकसे डरते हुए मैंने गर्भाधानकी विधिसे

पुत्रोत्पत्तिका उद्देश्य रखकर स्त्रीके साथ समागम किया है, कामोपभोगके लिये नहीं। यह सब होनेपर भी ऐसे कुपुत्रका जन्म क्यों हुआ? क्या यह मेरे दोषसे अथवा अपने दोषसे उत्पन्न हुआ है, जो अपनी दुष्टतासे हमारे लिये दुःखदायी और बन्धुजनोंके लिये शोककारक हो गया है?

गर्गने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारा यह पुत्र रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरणमें उत्पन्न हुआ है, अतः दूषित समयमें जन्म ग्रहण करनेके कारण यह तुम्हारे लिये दुःखदायी हो गया है।

ऋतवाक् बोले—मेरे एक ही पुत्र था तो भी रेवती नक्षत्रके अन्तिम भागमें उत्पन्न होनेके कारण इसमें ऐसी दुष्टता आ गयी; इसलिये रेवतीका शीघ्र ही पतन हो जाय।

मुनिके इस प्रकार शाप देते ही रेवती नक्षत्र आकाशसे गिरा। सारा संसार चकितचित्त होकर यह दृश्य देख रहा था। वह नक्षत्र कुमुदगिरिके चारों ओर गिर पड़ा। वहाँका वन, गुफाएँ तथा झरने आदि सहसा उद्भासित हो उठे। रेवती नक्षत्रके गिरनेसे कुमुदगिरिका नाम रैवतक पर्वत हो गया। उस नक्षत्रकी जो कान्ति थी, वह कमलमण्डित सरोवरके रूपमें प्रकट हुई। उस समय उस सरोवरसे एक अत्यन्त सुन्दरी कन्याका प्रादुर्भाव हुआ। वह रेवतीकी कान्तिसे प्रकट हुई थी, इसलिये प्रमुच मुनिने उसे देखकर उसका नाम रेवती रख दिया। वह उनके आश्रमके पास ही प्रकट हुई थी, इसलिये वे ही पिताकी भाँति उसका पालन-पोषण करने लगे। जब कन्या यौवनावस्थामें पदार्पण कर चुकी, तब प्रमुच मुनि उसके लिये योग्य वर पूछनेके विचारसे अग्निशालामें गये। उनके प्रश्न करनेपर अग्निदेवने उत्तर दिया—'इस कन्याके स्वामी राजा दुर्गम होंगे, जो महाबली, महापराक्रमी, प्रियवक्ता और धर्मवत्सल हैं।'

इसी बीचमें मृगयाके प्रसङ्गसे राजा दुर्गम मुनिके आश्रमपर आ पहुँचे। वे प्रियव्रतके वंशमें उत्पन्न अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी थे। उनके पिताका नाम विक्रमशील था और वे कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। आश्रममें पहुँचनेपर जब उन्हें ऋषि नहीं दिखायी दिये, तब उन्होंने रेवतीको 'प्रिये' कहकर सम्बोधित किया और पूछा—'सुन्दरी! बताओ तो सही, मुनिश्रेष्ठ प्रमुच इस आश्रमसे कहाँ गये हैं? मैं उन्हें प्रणाम करना चाहता हूँ।'

मुनि अग्निशालामें बैठे हुए थे, वहींसे राजाका वार्तालाप और 'प्रिये' सम्बोधन सुनकर वे तुरंत ही बाहर निकले। उन्होंने देखा, राजोचित चिह्नोंसे युक्त महात्मा राजा दुर्गम विनीत भावसे सामने खड़े हैं। उन्हें देखकर मुनिने गौतम नामक शिष्यसे कहा—'गौतम! इन महाराजके लिये अर्घ्य लाओ।' राजा अर्घ्य स्वीकार करके जब आसनपर विराजमान हुए, तब महामुनि प्रमुचने स्वागतपूर्वक पूछा—'राजन्! आपके घर सेना, खजाना, मित्र, भृत्य, मन्त्री तथा शरीरकी कुशल तो है न?'

राजाने कहा—सुव्रत! आपकी कृपासे मेरे यहाँ सब कुशल है, कहीं भी कुशलका अभाव नहीं है।

ऋषि बोले—राजन्! मेरे यहाँ एक कन्या है। इसके लिये वर ढूँढ़नेकी इच्छासे मैंने अग्निदेवसे पूछा था—'इसका पति कौन होगा?' अग्निदेवने कहा—'राजा दुर्गम ही इसके स्वामी होंगे।' इसलिये अब आप मेरी दी हुई इस कन्याको ग्रहण करें। आपने भी 'प्रिये' कहकर इसको सम्बोधित किया है, अतः अब क्यों विचार करते हैं।

मुनिकी बात सुनकर राजा दुर्गम मौन रह गये। तब महर्षि प्रमुच अपनी कन्याका वैवाहिक कार्य सम्पन्न करनेको उद्यत हुए। अपने विवाहके लिये पिताको उद्यत देख कन्याने विनयसे मस्तक झुकाकर कहा—'पिताजी! यदि आपका मुझपर प्रेम है तो कृपा करके मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही कीजिये।'

ऋषि बोले—भद्रे! ऋतवाक् नामसे विख्यात तपस्वी मुनिने रेवती नक्षत्रपर क्रोध करके उसे नक्षत्रमण्डलसे नीचे गिरा दिया है।

कन्याने कहा—पिताजी! क्या ऋतवाक् मुनिने ही ऐसी तपस्या की है; आपने नहीं? यदि आप भी तपस्वी हैं



तो रेवती नक्षत्रको पुनः आकाशमें स्थापित कीजिये । आप उसी नक्षत्रमें मेरा विवाह क्यों नहीं करते ?

ऋषि बोले—भद्रे ! तेरा कल्याण हो, अब तू प्रसन्न हो जा । मैं तेरे लिये रेवती नक्षत्रको पुनः चन्द्रमाके मार्गमें स्थापित करता हूँ ।

तदनन्तर महामुनि प्रमुचने अपनी तपस्याके प्रभावसे रेवती नक्षत्रको पुनः पहलेकी ही भाँति चन्द्रमण्डलसे संयुक्त कर दिया । फिर उसी नक्षत्रमें वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए कन्याका विधिपूर्वक विवाह किया और प्रसन्न होकर अपने जामातासे कहा—'राजन् ! बताइये, मैं इस विवाहमें दहेजके रूपमें आपको क्या दूँ ? मेरी तपस्या अप्रतिहत है । मैं आपको दुर्लभ वस्तु भी दे सकता हूँ ।'

राजाने कहा—मुने ! मेरा जन्म स्वायम्भुव मनुके वंशमें हुआ है । अतः मैं आपकी कृपासे ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो मन्वन्तरका स्वामी हो ।

ऋषि बोले—राजन् ! तुम्हारी यह कामना पूर्ण होगी। तुम्हारा पुत्र मनु होकर सम्पूर्ण पृथ्वीका उपभोग करेगा और धर्मका ज्ञाता होगा ।

तब राजा उस स्त्रीको साथ ले अपने नगरको चले गये । उनसे रेवतीके गर्भसे रैवतका जन्म हुआ, जो सब धर्मोंसे सम्पन्न और मनुष्योंसे अजेय थे । वे सब शास्त्रोंके ज्ञाता और वेदविद्याके विशारद थे । उनके मन्वन्तरमें सुमेधा, भूपति, वैकुण्ठ और अमिताभ—ये चार देवगण थे । इनमेंसे प्रत्येक गणमें चौदह-चौदह देवता थे । इन चारों देवगणोंके स्वामी विभु नामक इन्द्र थे, जिन्होंने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इस पदको प्राप्त किया था । हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य, महामुनि तथा वेद-वेदान्तोंके पारगामी महाभाग वसिष्ठ—ये सात रैवत मन्वन्तरके सप्तर्षि थे । बलबन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य तथा सत्यक आदि रैवत मनुके पुत्र थे ।

चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति और उनके मन्वन्तरका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने ! यह मैंने तुम्हें पाँचवें मन्वन्तरकी कथा सुनायी है । अब चाक्षुष मनुके छठे मन्वन्तर-का वृत्तान्त सुनो । ब्रह्मन् ! वे पूर्वजन्ममें ब्रह्माजीके चक्षुसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये इस जन्ममें भी उनका नाम चाक्षुष ही हुआ । राजर्षि महात्मा अनमित्रकी पत्नी भद्राने एक पुत्रको जन्म दिया, जो बहुत ही विद्वान्, पवित्र, पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण रखनेवाला और समर्थ था । उस पुत्रको गोदमें लेकर माता बारंबार पुचकारती, प्यारसे बुलाती और स्नेहवश छातीसे चिपका लेती थी; किन्तु वह तो पूर्वजन्म-की बातोंको स्मरण रखनेवाला था, अतः माताकी गोदमें पड़ा-पड़ा हँसने लगा । इसपर माता बोली—'बेटा ! यह क्या ? मैं तो डर गयी हूँ; तुम्हारे मुखपर यह हास्य कैसा ? क्या तुम्हें असमयमें ही बोध हो गया ? क्या तुम कोई शुभ देख रहे हो ?'

पुत्र बोला—माँ ! क्या तुम नहीं देखतीं, सामने जो यह बिल्ली खड़ी है मुझे खा जाना चाहती है । दूसरी ओर जातहारिणी मुझे हड़प लेनेको तैयार है । यह अदृश्यभावसे खड़ी है । इधर तुम पुत्र-प्रेमके कारण अत्यन्त स्नेहवश मेरी ओर देखतीं, बारंबार मुझे बुलातीं और छातीसे लगाती हो । तुम्हारे शरीरमें रोमाञ्च हो आता है । वात्सल्य-स्नेहके कारण तुम्हारे नेत्र आँसुओंसे भीग रहे हैं । यही सब देखकर मुझे हँसी आ गयी । जैसे ये दोनों स्वार्थवश स्निग्ध हृदयसे मेरी ओर देखती हैं, उसी प्रकार तुम भी स्वार्थको लेकर ही मुझसे स्नेह करती जान पड़ती हो । अन्तर इतना ही है कि बिल्ली और जातहारिणी तो मुझे अभी खा जाना चाहती हैं और तुम धीरे-धीरे मुझसे प्राप्त होनेवाले उपभोगयोग्य फलकी कामना रखती हो ।

माताने कहा—बेटा ! मैं उपकारके लिये नहीं, प्रेमके कारण ही तुम्हें छातीसे लगाती हूँ । यदि इससे तुम्हें प्रसन्नता नहीं होती तो इसका अर्थ यह है कि तुमने मुझे त्याग दिया । लो, तुमसे प्राप्त होनेवाले स्वार्थका मैंने परित्याग कर दिया ।

यों कहकर वह बालकको वहीं छोड़ सूतिका-गृहसे बाहर निकल गयी । उसी समय जातहारिणीने उस शुद्धात्मा बालकको हड़प लिया और उसे ले जाकर राजा विक्रान्तकी पत्नीके शयन-गृहमें सुला दिया । फिर रानीके नवजात पुत्रको ले जाकर दूसरेके घरमें रख दिया और उसके बालकको ले जाकर अपना ग्रास बना लिया । इस प्रकार नवजात शिशुओं-को चुरानेवाली वह क्रूर राक्षसी तीसरे घरके बालकको खा

लिया करती थी। बालकोंके चुराने और बदलनेका काम वह प्रतिदिन करती थी। राजा विक्रान्तने अपने घरमें आये हुए बालकका क्षत्रियोचित संस्कार कराया और बड़ी प्रसन्नताके साथ नामकरण-संस्कारकी विधि पूरी करके उसका नाम आनन्द रक्खा। जब बालक कुछ बड़ा हुआ, तब उसका उपनयन-संस्कार करते समय आचार्यने कहा—'वत्स! पहले अपनी माँके पास जाकर उन्हें प्रणाम करो।' गुरुकी बात सुनकर बालक हँस पड़ा और बोला—'गुरुदेव! मैं किस माताको प्रणाम करूँ—जन्म देनेवाली अथवा पालन करनेवाली-को? मैं राजा अनमित्रके घरमें उनकी धर्मपत्नी गिरिभद्रा देवीके गर्भसे उत्पन्न हुआ; किन्तु जातहारिणी मुझे उठा ले आयी और यहाँ हैमिनीके पास छोड़कर इसके पुत्रको स्वयं उठा ले गयी। फिर उसे भी विप्रवर बोधके गृहमें ले जाकर उसने रख दिया और उनके पुत्रको हड़पकर भक्षण कर लिया। रानी हैमिनीका पुत्र वहाँ ब्राह्मणोचित संस्कारोंके साथ पालित हो रहा है। और मेरा यहाँ आप संस्कार करा रहे हैं। मुझे आपकी आज्ञाका पालन करना है; अतः बताइये, किस माताके पास प्रणाम करनेके लिये जाऊँ?'

गुरु बोले—बेटा! यह बड़ा गहन संकट उपस्थित हुआ। मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं आता। मोहसे मेरी बुद्धि भ्रान्त हो रही है।

आनन्दने कहा—ब्रह्मर्षे! संसारकी ऐसी ही व्यवस्था है। इसमें मोहके लिये कहाँ अवसर है। सोचिये तो कौन किसका पुत्र है और कौन किसका बन्धु। जीव जन्म लेनेके बादसे ही मनुष्योंका सम्बन्धी होता है, किन्तु मरते ही उसके सभी सम्बन्धी छूट जाते हैं। यहाँ भी जिसका जन्म हुआ है और जन्मके साथ ही बन्धु-बान्धवोंसे सम्बन्ध जुड़ गया है, उस देहका अन्त होते ही सारा सम्बन्ध टूट जाता है। इसीलिये मैं कहता हूँ, संसारमें रहनेवाले जीवका कोई भी बन्धु-बान्धव नहीं है। भला, कौन किसीके साथ सदा ही बन्धुत्व निभाता है। मैंने तो इसी जन्ममें दो माताएँ और दो पिता प्राप्त किये। फिर यदि दूसरी देह धारण करनेपर ये सम्बन्ध बढ़ें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। अतः अब मैं तपस्या करूँगा। आप विशाल नामक ग्रामसे इस राजाके पुत्रको, जो चैत्र नामसे विख्यात है, यहाँ बुला लीजिये।

आनन्दकी बात सुनकर राजा अपनी स्त्री और बन्धु-बान्धवोंके साथ बड़े विस्मयमें पड़े और उसकी ओरसे ममता हटाकर उन्होंने उसे वन जानेकी अनुमति दे दी। फिर अपने पुत्र चैत्रको बुलाकर उसे राज्य करनेके योग्य बनाया और जिसने पुत्र-बुद्धिसे उसका पालन किया था, उस ब्राह्मणका भी भलीभाँति सम्मान किया। आनन्द तपस्यामें लगे थे। उन्हें तपस्या करते देख ब्रह्माजीने पूछा—'वत्स! बताओ तो सही, किसलिये इतना कठोर तप करते हो?'



आनन्दने कहा—भगवन्! मैं आत्मशुद्धिके लिये तपस्या कर रहा हूँ। बन्धनके हेतुभूत जो मेरे कर्म हैं, उनका नाश हो जाय—यही इस तपस्याका उद्देश्य है।

ब्रह्माजी बोले—जिसके कर्म-भोगका अधिकार क्षीण हो जाता है, वही मुक्तिके योग्य होता है। जिसके पास कर्मोंका संचय है, वह नहीं। तुम तो सत्त्वाधिकारी हो, मुक्ति कैसे पा सकोगे। तुम्हें छठा मनु होना है; चलो, अपने अधिकारका पालन करो। तुम्हारे लिये तपस्याकी आवश्यकता नहीं है। मनुकी मर्यादाका पालन करके तुम मुक्त हो जाओगे।

ब्रह्माजीके यों कहनेपर परम बुद्धिमान् आनन्दने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और तपस्यासे विरत होकर मनुका कार्य पूर्ण करनेके लिये वहाँसे चल दिये। ब्रह्माजीने उन्हें तपस्यासे हटाते समय चाक्षुष नामसे सम्बोधित किया था, इसलिये वे उसी नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने राजा उग्रकी कन्या विदर्भासे विवाह किया

और उसके गर्भसे विख्यात पराक्रमी अनेक पुत्र उत्पन्न किये। चाक्षुष मन्वन्तरमें आर्य्य, प्रसूत, भव्य, यूथग और लेख—ये पाँच देवगण थे। इन सभी गणोंमें आठ-आठ देवताओंका संनिवेश था। सब देवता यज्ञभोजी एवं अमृताशी थे। इन सबके स्वामी मनोजव नामक इन्द्र थे, जिन्होंने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंका आधिपत्य प्राप्त किया था। उस समय सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अतिनामा और सहिष्णु—ये सात सप्तर्षि थे। उरु, पूरु और शतद्युम्न आदि महाबली नरेश चाक्षुष मनुके पुत्र थे, जिन्होंने इस पृथ्वीका राज्य किया। इस समय वैवस्वत नामके सातवें मनु राज्य करते हैं। उनके मन्वन्तरमें जो देवता आदि हुए हैं, उनका वर्णन सुनो।

वैवस्वत मन्वन्तरकी कथा तथा सावर्णिक मन्वन्तरका संक्षिप्त परिचय

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा भगवान् सूर्यकी पत्नी हैं। उनके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ, जो विख्यात यशस्वी और अनेक विषयोंके ज्ञानमें पारङ्गत थे। विवस्वान्के पुत्र होनेके कारण ही वे वैवस्वत कहलाये। जब भगवान् सूर्य संज्ञाकी ओर देखते तो वे अपनी आँखें बंद कर लेती थीं। इससे रुष्ट होकर सूर्यने संज्ञासे यह निठुर वचन कहा—'ओ मूर्खे! तू मुझे देखकर सदा नेत्रोंका संयम करती (आँखें मूँद लेती) है। इसलिये तेरे गर्भसे प्रजाजनोंको संयम (शासन) में रखनेवाला यम उत्पन्न होगा।'

यह सुनकर संज्ञादेवी भयसे व्याकुल हो उठीं। उनकी दृष्टि चञ्चल हो गयी। यह देख सूर्यने फिर कहा—'तूने इस समय मुझे देखकर अपनी दृष्टि चञ्चल की है, इसलिये चञ्चल लहरोंसे युक्त नदी तेरी कन्याके रूपमें उत्पन्न होगी। तदनन्तर पतिके शापसे संज्ञाने एक पुत्र और पुत्रीको जन्म दिया। पुत्रका नाम यम हुआ और पुत्री यमुना नामसे विख्यात महानदी हुई। संज्ञा सूर्यके तेजको बड़े कष्टसे सहन करती थी। वह उसके लिये असह्य था। उसने सोचा—'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँ जानेसे मुझे शान्ति मिलेगी और मेरे स्वामी मुझपर कुपित भी नहीं होंगे?' इस तरह अनेक प्रकारसे विचार करके प्रजापतिकुमारी संज्ञाने पिताके घरका आश्रय लेना ही ठीक समझा। वहाँ जानेके लिये उद्यत होकर उसने अपनी छायाको ही सूर्यदेवकी पत्नी बनाया और उससे कहा—'तू इस घरमें रह और मेरी ही तरह सब संतानों तथा भगवान् सूर्यके प्रति भी उत्तम बर्ताव करना।'

यों कहकर संज्ञादेवी अपने पिताके घर चली गयीं। वहाँ उन्होंने त्वष्टा प्रजापतिका दर्शन किया, उन्होंने भी बड़े आदरके साथ पुत्रीका स्वागत-सत्कार किया। वे कुछ कालतक वहाँ रहीं। इसके बाद पिताने उन्हें प्रेमपूर्वक समझाते हुए कहा—'बेटी! तुम तीनों लोकके स्वामी भगवान् सूर्यकी पत्नी हो। अतः तुम्हें अधिक समयतक पिताके घरमें नहीं ठहरना चाहिये। अब तुम स्वामीके घर जाओ। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।'

पिताके यों कहनेपर संज्ञाने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चली गयीं। वे सूर्यके तेजसे बहुत डरती थीं और उनके तापका सामना करना नहीं चाहती थीं; इसलिये उत्तरकुरुमें जाकर घोड़ीके रूपमें रहने और तपस्या करने लगीं। उधर छाया-संज्ञाको ही संज्ञा समझकर भगवान् सूर्यने उससे दो पुत्र और एक मनोहर कन्या उत्पन्न की। छायासंज्ञा अपनी संतानोंको जितना प्यार करती थी, उतना संज्ञाके पुत्र-पुत्रीको नहीं। मनु तो उसके इस बर्तावको सह लेते थे, किन्तु यमसे सहन नहीं हुआ। उन्होंने क्रोधमें आकर उसे मारनेके लिये लात उठायी, किन्तु फिर क्षमा-भावका आश्रय ले उसके शरीरपर लात नहीं लगायी। तब छायासंज्ञाने कुपित हो यमको शाप दिया—'मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूँ, किन्तु तुम मर्यादाका उल्लङ्घन करके मुझे मारनेके लिये लात उठा रहे हो; इसलिये तुम्हारा यह पैर आज ही पृथ्वीपर गिर पड़ेगा।'

माताका दिया हुआ शाप सुनकर यम भयसे व्याकुल हो उठे और अपने पिताके पास जा उन्हें प्रणाम करके बोले—'पिताजी! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है; ऐसा तो कभी किसीने भी नहीं देखा होगा कि माता वात्सल्य छोड़कर अपने पुत्रको शाप दे डाले। दुर्गुणी पुत्रोंके प्रति भी माताका दुर्भाव नहीं होता।' यमराजकी यह बात सुनकर भगवान् सूर्यने छायासंज्ञाको बुलाकर पूछा—'संज्ञा कहाँ गयी?'

वह बोली—'नाथ! मैं ही तो त्वष्टा प्रजापतिकी कन्या और आपकी पत्नी संज्ञा हूँ। आपने मुझसे ही ये संतान उत्पन्न किये हैं।' सूर्यने कई बार घुमा-फिराकर पूछा, किन्तु उसने सच्ची बात नहीं बतायी। तब सूर्यदेव उसे शाप देनेको उद्यत हुए, यह देख उसने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। असली बातका पता लगनेपर भगवान् सूर्य विश्वकर्माके घर गये। विश्वकर्माने अपने घर पधारे हुए त्रिलोकपूजित सूर्यदेवका बड़ी भक्तिके साथ पूजन किया। फिर संज्ञाका पता पूछनेपर उन्होंने कहा—'भगवन्! वह मेरे घरपर आयी अवश्य थी, किन्तु मैंने पुनः उसे आपके ही घर भेज दिया।' तब सूर्यने समाधिस्थ होकर देखा, वह घोड़ीका रूप धारणकर उत्तरकुरु देशमें तपस्या कर रही है। उसकी तपस्याका एक ही उद्देश्य है, मेरे स्वामीकी आकृति सौम्य एवं शुभ हो जाय।' सूर्यको उसकी तपस्याका उद्देश्य ज्ञात हो गया; अतः उन्होंने विश्वकर्मासे कहा—'आप मेरे तेजको छाँट दीजिये।' तब उन्होंने संवत्सररूप चक्रवाले सूर्यके तेजको छाँट दिया, उस समय देवताओंने उनकी बड़ी प्रशंसा की। तदनन्तर देवताओं और ऋषियोंने सम्पूर्ण त्रिभुवनके पूजनीय भगवान् सूर्यका स्तवन आरम्भ किया—

देवा ऊचुः

नमस्ते ऋक्स्वरूपाय सामरूपाय ते नमः।
यजुःस्वरूपरूपाय साम्नां धामवते नमः॥
ज्ञानैकधामभूताय निर्धूततमसे नमः।
शुद्धज्योतिःस्वरूपाय विशुद्धायामलात्मने॥
वरिष्ठाय वरेण्याय परस्मै परमात्मने।
नमोऽखिलजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये॥
सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम्।
नमः सूर्यस्वरूपाय प्रकाशात्मस्वरूपिणे॥
भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा दिनकृते नमः।
शर्वरीहेतवे चैव संध्याज्योत्स्नाकृते नमः॥

देवता बोले—भगवन्! ऋग्वेदस्वरूप आपको नमस्कार है। सामवेदरूप आपको प्रणाम है। यजुर्वेदस्वरूप आपको नमस्कार है। आप ही समस्त सामोंके अधिष्ठान हैं, आपको प्रणाम है। आप ज्ञानके एकमात्र आधार एवं अन्धकारका नाश करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप शुद्ध ज्योतिर्मय है। आप स्वभावसे ही परम शुद्ध एवं निर्मलात्मा हैं, आपको प्रणाम है। आप सबसे महान्, सर्वश्रेष्ठ, सबसे परे और साक्षात् परमात्मा हैं। आपका स्वरूप सम्पूर्ण जगत्में व्यापक है। आप सबके आत्मरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप सबकी उत्पत्तिके कारण, ज्ञानका चिन्तन करनेवाले पुरुषोंके प्राप्तव्य स्थान, सूर्यस्वरूप तथा प्रकाशात्मरूप हैं। आपको नमस्कार है। प्रभाका विस्तार करनेवाले आपको नमस्कार है। दिनकी सृष्टि करनेवाले आपको प्रणाम है। रात्रिके हेतु भी आप ही हैं तथा संध्या और चाँदनीकी सृष्टि भी आप ही करते हैं; आपको नमस्कार है।

त्वं सर्वमेतद् भगवन् जगदुद्भ्रमता त्वया।
भ्रमत्याविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥
त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्वं संजायते शुचि।
क्रियते त्वत्करैः स्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता॥
होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते।
तावद् यावन्न संयोगि जगदेतत्त्वदंशुभिः॥

भगवन्! आप ही यह सम्पूर्ण जगत् हैं। आपमें ही चराचर प्राणियोंसहित समस्त ब्रह्माण्ड ओतप्रोत है; अतएव ऊर्ध्वलोकमें जब आप भ्रमण करते हैं, तो आपके साथ यह ब्रह्माण्ड भी घूमता है। आपकी किरणोंका स्पर्श पाकर ही सम्पूर्ण वस्तुएँ पवित्र होती हैं। आपकी किरणें ही अपने स्पर्शसे जल आदिको पवित्र करती हैं। जबतक इस जगत्में आपकी दिव्य रश्मियोंका संयोग नहीं होता, तबतक होम-दान आदि धर्म सफल नहीं हो पाता।

ऋचस्ते सकला ह्येता यजूंष्येतानि चान्यतः।
सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः॥
ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः।
यतः साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः॥
त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परं चापरमेव च।
मूर्त्तामूर्त्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः॥
निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः।
प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजःशमनं कुरु॥

ऋग्वेदकी ये सम्पूर्ण ऋचाएँ, दूसरी ओर यजुर्वेदके ये सब मन्त्र तथा सामवेदकी सम्पूर्ण श्रुतियाँ आपके ही अङ्गोंसे प्रकट होती हैं। जगन्नाथ! आप ऋग्वेदमय हैं, आप ही यजुर्वेदमय हैं तथा आप ही सामवेदमय हैं। नाथ! इस प्रकार आप त्रयीमय हैं—तीनों वेद आपके ही स्वरूप हैं। आप ही ब्रह्मके पर और अपर रूप हैं। मूर्त्त, अमूर्त्त, स्थूल और सूक्ष्म सभी रूपोंमें आपकी ही स्थिति है। निमेष, काष्ठा आदि जो कालके छोटे-छोटे विभाग हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं। आप ही

क्षयात्मक (प्रतिक्षण बीतनेवाला) कालरूप हैं। भगवन्! आप प्रसन्न होइये और अपनी इच्छासे ही अपने प्रचण्ड तेजको शान्त कीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं--देवताओं और देवर्षियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोराशि अविनाशी भगवान् सूर्यने विश्वकर्माके द्वारा अपने तेजको कम कर दिया। उनका जो ऋग्वेदमय तेज था, उससे पृथ्वीका निर्माण हुआ। यजुर्वेदमय तेजसे द्युलोककी रचना हुई और सामवेदमय तेज ही स्वर्गलोकके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ। विश्वकर्माने सूर्यके तेजके सोलह भागोंमेंसे पंद्रह भाग छाँट दिये और उनके द्वारा शंकरजीका त्रिशूल, भगवान् विष्णुका चक्र, वसुओंके भयंकर शङ्कु, अग्निकी शक्ति, कुबेरकी शिबिका तथा अन्यान्य देवता, यक्ष एवं विद्याधरोंके लिये भयंकर अस्त्र-शस्त्र बनाये। भगवान् सूर्य तबसे अपने तेजके सोलहवें भागको धारण करते हैं। तेज कम होनेके बाद वे अश्वका रूप धारण करके उत्तरकुरु नामक देशमें गये और वहाँ उन्होंने घोड़ीके रूपमें संज्ञाको देखा। उन्हें आते देख संज्ञाको पराये पुरुषकी आशङ्का हुई, इसलिये वह अपने पृष्ठभागकी रक्षा करती हुई सामनेकी ओरसे उनके सम्मुख गयी; फिर वहाँ उनके मिलनेपर पहले दोनोंकी नासिकाका संयोग हुआ। इससे अश्वरूपधारिणी संज्ञाके मुखसे दो पुत्र प्रकट हुए, जो नासत्य और दस्र नामसे प्रसिद्ध हुए। फिर वीर्यपातके अनन्तर रेवन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो ढाल, तलवार और कवच धारण किये, बाण और तरकससे सुसज्जित हो घोड़ेपर चढ़ा हुआ ही प्रकट हुआ था।

तत्पश्चात् भगवान् सूर्यने संज्ञाको अपने अनुपम स्वरूपका दर्शन कराया। उनके इस रूपको देखकर संज्ञाको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उसने भी अपना रूप धारण कर लिया। तब सूर्यदेव अपनी प्रीतिमती पत्नी संज्ञाको साथ ले अपने निवासस्थानपर आये। भगवान् सूर्यके जो प्रथम पुत्र थे, उनकी वैवस्वत नामसे प्रसिद्धि हुई। दूसरे पुत्रका नाम यम था। ये माताके शापसे ग्रस्त थे। पिताने इनके शापका अन्त इस प्रकार किया था—'कीड़े यमके पैरका मांस लेकर पृथ्वीपर गिर पड़ेंगे। फिर इनका पैर ठीक हो जायगा।' यम धर्मपर दृष्टि रखते थे और मित्र तथा शत्रुके प्रति उनका समान भाव था। अतः सूर्यने प्रजाओंके धर्माधर्मका फल देनेके लिये उन्हें यमराजके पदपर प्रतिष्ठित किया। यमुना कलिन्दपर्वतके बीचसे बहनेवाली नदी हो गयी। दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य नियुक्त किये गये। रेवन्तको भी गुह्यकोंका स्वामी बनाया गया। अब छायासंज्ञाके पुत्रोंकी जहाँ नियुक्ति हुई, उसका हाल सुनो। छायासंज्ञाके ज्येष्ठ पुत्रका वर्ण (रूप-रंग) वैवस्वत मनुके ही समान था, अतः ये सावर्णिक नामसे प्रसिद्ध हुए। वे ही आठवें मनु होंगे। उस समय राजा बलि इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित रहेंगे। छायाके दूसरे पुत्र शनैश्चरको पिताने ग्रहोंके मध्यमें नियुक्त किया। तीसरी संतान तपती नामकी कन्या थी। उसने राजा संवरणको अपना स्वामी बनाया और उनसे कुरु नामक पुत्रको जन्म दिया। ये कुरु एक प्रसिद्ध राजा हुए।

वैवस्वत मन्वन्तरमें आठ देवगण माने गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्, भृगु तथा अङ्गिरा। इनमें आदित्यगण, मरुद्गण तथा रुद्रगण कश्यपजीके पुत्र हैं। साध्यगण, वसुगण और विश्वेदेवगण—ये धर्मके पुत्र हैं। भृगुगण भृगुके और आङ्गिरसगण महर्षि अङ्गिराके पुत्र हैं। ब्रह्मन्! यह सब मारीच सर्ग है। मरीचिनन्दन कश्यपकी संतान होनेके कारण इन्हें मारीच कहते हैं। इस मन्वन्तरमें जो इन्द्र हैं, उनका नाम ऊर्जस्वी है। ये महात्मा यज्ञभागके भोक्ता हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानमें जो इन्द्र होते हैं, उन सबका लक्षण एक-सा ही समझना चाहिये।

अब वर्तमान त्रिलोकीका वर्णन सुनो। भूर्लोक तो यह पृथ्वी है। अन्तरिक्षको द्युलोक या भुवर्लोक माना गया है और दिव्यलोकको स्वर्लोक कहते हैं। अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र तथा जमदग्नि—ये ही इस मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र--ये नौ वैवस्वत मनुके पुत्र कहे गये हैं। इस प्रकार मैंने तुमसे यह वैवस्वत मन्वन्तरका वर्णन किया है। इसका श्रवण और पाठ करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता और महान् पुण्यका भागी होता है।

क्रौष्टुकि बोले—महामुने! आपने स्वायम्भुव आदि सात मनुओंका वर्णन किया तथा उनके मन्वन्तरोंमें जो देवता, राजा और मुनि हुए थे, उनको भी बतलाया। इस कल्पमें जो दूसरे सात मनु होंगे, उनका परिचय दीजिये तथा उनके मन्वन्तरोंमें जो देवता आदि होनेवाले हैं, उनका भी वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! छायासंज्ञाके पुत्र सावर्णिका नाम मैं तुम्हें बतला चुका हूँ। वे सब बातोंमें

अपने बड़े भाई वैवस्वत मनुके ही समान हैं। वे ही आठवें मनु होंगे। परशुराम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्यशृङ्ग तथा अश्वत्थामा—ये सात सावर्णि मन्वन्तरमें सप्तर्षि होंगे। सुतपा, अमिताभ और मुख्य—ये तीन देवगण होंगे। इनमेंसे प्रत्येक गण पृथक्-पृथक् बीस-बीस देवताओंका समुदाय होगा। तपस्तप, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेज, रश्मि तथा वक्रतु आदि देवता सुतपागणके बीस देवताओंके अन्तर्गत हैं। प्रभु, विभु और विभास आदि देवता अमिताभ नामक द्वितीय गणके बीस देवताओंके अन्तर्गत हैं। तीसरे गणके जो बीस देवता हैं, उनमें दम, दान्त, रित, सोम और वित्त आदि प्रधान हैं। ये मुख्यगणके देवता कहे गये हैं। ये सभी मन्वन्तरके स्वामी होंगे। ये मरीचिनन्दन प्रजापति कश्यपके ही पुत्र हैं। विरोचनके पुत्र बलि इनके इन्द्र होंगे। वे बलि आज भी अपनी प्रतिज्ञाके बन्धनसे बँधकर पाताललोकमें विराजमान हैं। विरजा, अर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति तथा विष्णु आदि सावर्णि मनुके पुत्र होंगे।

(सावर्णि मनुकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें देवी-माहात्म्य)

प्रथमोऽध्यायः

मेधा ऋषिका राजा सुरथ और समाधिको भगवतीकी महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वधका प्रसङ्ग सुनाना

विनियोग

[**प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः।**

प्रथम चरित्रके ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति, रक्तदन्तिका बीज, अग्नि तत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप है। श्रीमहाकाली देवताकी प्रसन्नताके लिये प्रथम चरित्रके जपमें विनियोग किया जाता है।

ध्यान

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

भगवान् विष्णुके सो जानेपर मधु और कैटभको मारनेके लिये कमलजन्मा ब्रह्माजीने जिनका स्तवन किया था, उन महाकाली देवीका मैं सेवन करता हूँ। वे अपने दस हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शङ्ख धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे समस्त अङ्गोंमें दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके शरीरकी कान्ति नीलमणिके समान है तथा वे दस मुख और दस पैरोंसे युक्त हैं।]

ॐ नमश्चण्डिकायै[1]॥

'ॐ ऐं' मार्कण्डेय उवाच॥ १॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥ २॥
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः॥ ३॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥ ४॥
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा॥ ५॥
तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः॥ ६॥
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः॥ ७॥

मार्कण्डेयजी बोले—॥ १॥ सूर्यके पुत्र सावर्णि जो आठवें मनु कहे जाते हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनो॥ २॥ सूर्यकुमार महाभाग सावर्णि भगवती महामायाके अनुग्रहसे जिस प्रकार मन्वन्तरके स्वामी हुए, वही प्रसङ्ग सुनाता हूँ॥ ३॥ पूर्वकालकी बात है,

1. ॐ चण्डीदेवीको नमस्कार है।

स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा थे, जो चैत्रवंशमें उत्पन्न हुए थे। उनका समस्त भूमण्डलपर अधिकार था ॥ ४ ॥ वे प्रजाका अपने औरस पुत्रोंकी भाँति धर्मपूर्वक पालन करते थे; फिर भी उस समय कोलाविध्वंसी[1] नामके क्षत्रिय उनके शत्रु हो गये ॥ ५ ॥ राजा सुरथकी दण्डनीति बड़ी प्रबल थी। उनका शत्रुओंके साथ संग्राम हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी संख्यामें कम थे, तो भी राजा सुरथ युद्धमें उनसे परास्त हो गये ॥ ६ ॥ तब वे युद्धभूमिसे अपने नगरको लौट आये और केवल अपने देशके राजा होकर रहने लगे (समूची पृथ्वीसे अब उनका अधिकार जाता रहा) किंतु वहाँ भी उन प्रबल शत्रुओंने उस समय महाभाग राजा सुरथपर आक्रमण कर दिया ॥ ७ ॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ८ ॥
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ९ ॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥ १० ॥
तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ ११ ॥
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः[2] ।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥ १२ ॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥ १३ ॥
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते ।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥ १४ ॥
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥ १५ ॥
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥ १६ ॥
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥ १७ ॥
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥ १८ ॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ १९ ॥

राजाका बल क्षीण हो चला था; इसलिये उनके दुष्ट, बलवान् एवं दुरात्मा मन्त्रियोंने वहाँ उनकी राजधानीमें भी राजकीय सेना और खजानेको वहाँसे हथिया लिया ॥ ८ ॥ सुरथका प्रभुत्व नष्ट हो चुका था, इसलिये वे शिकार खेलनेके बहाने घोड़ेपर सवार हो वहाँसे अकेले ही एक घने जङ्गलमें चले



गये ॥ ९ ॥ वहाँ उन्होंने विप्रवर मेधा मुनिका आश्रम देखा, जहाँ कितने ही हिंसक जीव [अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति छोड़कर] परम शान्तभावसे रहते थे। मुनिके बहुत-से शिष्य उस वनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥१०॥ वहाँ जानेपर मुनिने उनका सत्कार किया और वे उन मुनिश्रेष्ठके आश्रमपर इधर-उधर विचरते हुए कुछ कालतक वहाँ रहे ॥११॥ फिर ममतासे आकृष्टचित्त होकर उस आश्रममें इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'पूर्वकालमें मेरे पूर्वजोंने जिसका पालन किया था, वही नगर आज मुझसे रहित है। पता नहीं, मेरे दुराचारी भृत्यगण उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते हैं या नहीं जो सदा मदकी वर्षा करनेवाला और शूरवीर था, वह मेरा प्रधान

१—'कोलाविध्वंसी' यह किसी विशेष कुलके क्षत्रियोंकी संज्ञा है। दक्षिणमें 'कोला' नगरी प्रसिद्ध है, वह प्राचीन कालमें राजधानी थी। जिन क्षत्रियोंने उसपर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया, वे 'कोलाविध्वंसी' कहलाये।

२. पाठान्तर—ममत्वाकृष्टमानसः ।

हाथी अब शत्रुओंके अधीन होकर न जाने किन भोगोंको भोगता होगा ? जो लोग मेरी कृपा, धन और भोजन पानेसे सदा मेरे पीछे-पीछे चलते थे, वे निश्चय ही अब दूसरे राजाओंका अनुसरण करते होंगे। उन अपव्ययी लोगोंके द्वारा सदा खर्च होते रहनेके कारण अत्यन्त कष्टसे जमा किया हुआ मेरा वह खजाना खाली हो जायगा।' ये तथा और भी कई बातें राजा सुरथ निरन्तर सोचते रहते थे। एक दिन उन्होंने वहाँ विप्रवर मेधाके आश्रमके निकट एक वैश्यको देखा और उससे पूछा--'भाई ! तुम कौन हो ? यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है ? तुम क्यों शोकग्रस्त और अनमने-से दिखायी देते हो?' राजा सुरथका यह प्रेमपूर्वक कहा हुआ वचन सुनकर वैश्यने विनीत भावसे उन्हें प्रणाम करके कहा—॥१२-१९॥



वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥ २१ ॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥ २२ ॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ २३ ॥
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥ २४ ॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥ २५ ॥

वैश्य बोला—॥२०॥ राजन् ! मैं धनियोंके कुलमें उत्पन्न एक वैश्य हूँ। मेरा नाम समाधि है ॥२१॥ मेरे दुष्ट स्त्री-पुत्रोंने धनके लोभसे मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है। मैं इस समय धन, स्त्री और पुत्रसे वञ्चित हूँ। मेरे विश्वसनीय बन्धुओंने मेरा ही धन लेकर मुझे दूर कर दिया है, इसलिये दुखी होकर मैं वनमें चला आया हूँ। यहाँ रहकर मैं इस बातको नहीं जानता कि मेरे पुत्रोंकी, स्त्रीकी और स्वजनोंकी कुशल है या नहीं। इस समय घरमें वे कुशलसे रहते हैं अथवा उन्हें कोई कष्ट है ? ॥२२—२४॥ वे मेरे पुत्र कैसे हैं ? क्या वे सदाचारी हैं अथवा दुराचारी हो गये हैं ॥२५॥

राजोवाच ॥ २६ ॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥ २७ ॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥ २८ ॥

राजाने पूछा--॥ २६ ॥ जिन लोभी स्त्री-पुत्र आदिने धनके कारण तुम्हें घरसे निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारे चित्तमें इतना स्नेह क्यों है ? ॥२७—२८॥

वैश्य उवाच ॥ २९ ॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥ ३० ॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥ ३१ ॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः ।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥ ३२ ॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥ ३३ ॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥ ३४ ॥

वैश्य बोला—॥२९॥ आप मेरे विषयमें जो बात कहते हैं, वह सब ठीक है ॥३०॥ किंतु क्या करूँ, मेरा मन निष्ठुरता नहीं धारण करता। जिन्होंने धनके लोभमें पड़कर पिताके प्रति स्नेह, पतिके प्रति प्रेम तथा आत्मीयजनके प्रति अनुरागको तिलाञ्जलि दे मुझे घरसे निकाल दिया है, उन्हींके प्रति मेरे हृदयमें इतना स्नेह है। महामते ! गुणहीन बन्धुओंके प्रति भी जो मेरा चित्त इस प्रकार प्रेममग्न हो रहा है, यह क्या है—इस बातको मैं जानकर भी नहीं जान पाता। उनके लिये मैं लंबी साँसें ले रहा हूँ और मेरा हृदय अत्यन्त दुःखित हो

रहा है ॥ ३१-३३ ॥ उन लोगोंमें प्रेमका सर्वथा अभाव है, तो भी उनके प्रति जो मेरा मन निष्ठुर नहीं हो पाता, इसके लिये क्या करूँ। ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ३५ ॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥ ३६ ॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥ ३७ ॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥३५॥ ब्रह्मन्! तदनन्तर राजाओंमें श्रेष्ठ सुरथ और वह समाधि नामक वैश्य दोनों साथ-साथ मेधा मुनिकी सेवामें उपस्थित हुए और उनके साथ यथायोग्य न्यायानुकूल विनयपूर्ण बर्ताव करके बैठे। तत्पश्चात् वैश्य और राजाने कुछ वार्तालाप आरम्भ किया ॥३६—३८॥

राजोवाच ॥३९॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥ ४० ॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥ ४१ ॥
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निकृतः[1] पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥ ४२ ॥
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥ ४३ ॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।
तत्किमेतन्महाभाग[2] यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥ ४४ ॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥ ४५ ॥

राजाने कहा—॥३९॥ भगवन्! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, उसे बताइये ॥४०॥ मेरा चित्त अपने अधीन न होनेके कारण वह बात मेरे मनको बहुत दुःख देती है। मुनिश्रेष्ठ! जो राज्य मेरे हाथसे चला गया है, उसमें और उसके सम्पूर्ण अङ्गोंमें मेरी ममता हो रही है ॥४१॥ यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है, अज्ञानीकी भाँति मुझे उसके लिये दुःख होता है; यह क्या है? इधर यह वैश्य भी घरसे अपमानित होकर आया है। इसके पुत्र, स्त्री और भृत्योंने इसको छोड़ दिया है ॥४२॥ स्वजनोंने भी इसका परित्याग कर दिया है, तो भी इसके हृदयमें उनके प्रति अत्यन्त स्नेह है। इस प्रकार यह तथा मैं दोनों ही बहुत दुखी हैं ॥४३॥ जिसमें प्रत्यक्ष दोष देखा गया है, उस विषयके लिये भी हमारे मनमें ममताजनित आकर्षण पैदा हो रहा है। महाभाग! हम दोनों समझदार हैं; तो भी हममें जो मोह पैदा हुआ है, यह क्या है? विवेकशून्य पुरुषकी भाँति मुझमें और इसमें भी यह मूढ़ता प्रत्यक्ष दिखायी देती है ॥४४-४५॥



ऋषिरुवाच ॥ ४६ ॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥ ४७ ॥
विषयश्च[1] महाभाग याति[2] चैवं पृथक् पृथक्।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥ ४८ ॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं[3] तु ते न हि केवलम् ॥ ४९ ॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥ ५० ॥
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥ ५१ ॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥ ५२ ॥

१. पा०—निष्कृतः। २. पा०—तत्केनै त०।

१. पा०—याश्च। २. पा०—यान्ति। ३. पा०—किंतु ते।

लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान्[1] किं न पश्यसि ।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥ ५३ ॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा[2] ।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥ ५४ ॥
महामाया हरेश्चैषा[3] तया संमोह्यते जगत् ।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥ ५५ ॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५६ ॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ ५७ ॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ५८ ॥

ऋषि बोले— ॥४६॥ महाभाग ! विषयमार्गका ज्ञान सब जीवोंको है ॥४७॥ इसी प्रकार विषय भी सबके लिये अलग-अलग हैं। कुछ प्राणी दिनमें नहीं देखते, और दूसरे रातमें ही नहीं देखते ॥४८॥ तथा कुछ जीव ऐसे हैं, जो दिन और रात्रिमें भी बराबर ही देखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य समझदार होते हैं; किंतु केवल वे ही ऐसे नहीं होते ॥४९॥ पशु-पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी समझदार होते हैं। मनुष्योंकी समझ भी वैसी ही होती है, जैसी उन मृग और पक्षियोंकी होती है ॥५०॥ तथा जैसी मनुष्योंकी होती है, वैसी ही उन मृग-पक्षी आदिकी होती है। यह तथा अन्य बातें भी प्रायः दोनोंमें समान ही हैं। समझ होनेपर भी इन पक्षियोंको तो देखो, ये स्वयं भूखसे पीड़ित होते हुए भी मोहवश बच्चोंकी चोंचमें कितने चावसे अन्नके दाने डाल रहे हैं ! नरश्रेष्ठ ! क्या तुम नहीं देखते कि ये मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश अपने किये हुए उपकारका बदला पानेके लिये पुत्रोंकी अभिलाषा करते हैं ? यद्यपि उन सबमें समझकी कमी नहीं है, तथापि वे संसारकी स्थिति (जन्म-मरणकी परम्परा) बनाये रखनेवाले भगवती महामायाके प्रभावद्वारा ममतामय भँवरसे युक्त मोहके गहरे गर्तमें गिराये जाते हैं। इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपा जो भगवती महामाया हैं, उन्हींसे यह जगत् मोहित हो रहा है। वे भगवती महामाया देवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं। वे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको मुक्तिके लिये वरदान देती हैं। वे ही परा विद्या संसार-बन्धन और मोक्षकी हेतुभूता सनातनी देवी तथा सम्पूर्ण ईश्वरोंकी भी अधीश्वरी हैं ॥५१—५८॥

१. पा०—नन्वेते। २. पा०—रिणः। ३. पा०—चैतत्।

राजोवाच ॥ ५९ ॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥ ६० ॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ।
यत्प्रभावा[2] च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥ ६१ ॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ ६२ ॥

राजाने पूछा— ॥५९॥ भगवन् ! जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वे देवी कौन हैं ? ब्रह्मन् ! उनका आविर्भाव कैसे हुआ ? तथा उनके चरित्र कौन-कौन हैं ? ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे ! उन देवीका जैसा प्रभाव हो, जैसा स्वरूप हो और जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ हो, वह सब मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ ॥६०—६२॥

ऋषिरुवाच ॥ ६३ ॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥ ६४ ॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥ ६५ ॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥ ६६ ॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ॥ ६७ ॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥ ६८ ॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥ ६९ ॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्[3] ।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥ ७० ॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ ७१ ॥

ऋषि बोले— ॥६३॥ राजन् ! वास्तवमें तो वे देवी नित्यस्वरूपा ही हैं। सम्पूर्ण जगत् उन्हींका रूप है तथा उन्होंने समस्त विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकारसे होता है। वह मुझसे सुनो। यद्यपि वे नित्य और अजन्मा हैं, तथापि जब देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रकट होती हैं, उस समय लोकमें उत्पन्न हुई कहलाती

१. पा०—कर्म चास्याश्च। २. पा०—यत्स्वभावा। ३. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद ही 'ब्रह्मोवाच' है। तथा 'निद्रां भगवतीं' इस श्लोकार्धके स्थानमें—'स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुल-तेजसः ॥' ऐसा पाठ है।

हैं। कल्पके अन्तमें जब सम्पूर्ण जगत् एकार्णवमें निमग्न हो रहा था और सबके प्रभु भगवान् विष्णु शेषनागकी शय्या बिछाकर योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे, उस समय उनके कानोंकी मैलसे दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए, जो मधु और कैटभके नामसे विख्यात थे। वे दोनों ब्रह्माजीका वध करनेको तैयार हो गये। भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें विराजमान



प्रजापति ब्रह्माजीने जब उन दोनों भयानक असुरोंको अपने पास आया और भगवान्‌को सोया हुआ देखा तो एकाग्रचित्त होकर उन्होंने भगवान् विष्णुको जगानेके लिये उनके नेत्रोंमें निवास करनेवाली योगनिद्राका स्तवन आरम्भ किया। जो इस विश्वकी अधीश्वरी, जगत्‌को धारण करनेवाली, संसारका पालन और संहार करनेवाली तथा तेजःस्वरूप भगवान् विष्णुकी अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवीकी भगवान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे ॥६४—७१॥

ब्रह्मोवाच ॥ ७२ ॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ॥ ७३ ॥
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥ ७४ ॥
त्वमेव संध्या[1] सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥ ७५ ॥
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥ ७६ ॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥ ७७ ॥
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी[2]।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥ ७८ ॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥ ७९ ॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥ ८० ॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥ ८१ ॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥ ८२ ॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा[3]।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति[4] यो जगत् ॥ ८३ ॥
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥ ८४ ॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥ ८५ ॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥ ८६ ॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ ८७ ॥

ब्रह्माजीने कहा—॥७२॥ देवि! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंके रूपमें तुम्हीं स्थित हो। तथा इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेष रूपसे उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो। देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो। देवि! तुम्हीं इस विश्व ब्रह्माण्डको धारण करती हो। तुमसे ही इस जगत्‌की सृष्टि होती है। तुम्हींसे इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्पके अन्तमें सबको अपना ग्रास बना लेती हो। जगन्मयी देवि! इस जगत्‌की उत्पत्तिके समय

१. पा०—सा त्वं। २. पा०—महेश्वरी। ३. पा०—मया। ४. पा०—पातात्ति।

तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-कालमें स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्तके समय संहाररूप धारण करनेवाली हो । तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोह रूपा, महादेवी और महासुरी हो । तुम्हीं तीनों गुणोंको उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो । भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो । तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्री और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो । लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो । तुम खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शङ्ख और धनुष धारण करनेवाली हो । बाण, भुशुण्डी और परिघ—ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं । तुम सौम्य और सौम्यतर हो—इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो । पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम्हीं हो । सर्वस्वरूपे देवि ! कहीं भी सत्-असत्‌रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो । ऐसी अवस्थामें तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है । जो इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान्‌को भी जब तुमने निद्राके अधीन कर दिया है तो तुम्हारी स्तुति करनेमें यहाँ कौन समर्थ हो सकता है । मुझको, भगवान् शंकरको तथा भगवान् विष्णुको भी तुमने ही शरीर धारण कराया है; अतः तुम्हारी स्तुति करनेकी शक्ति किसमें है । देवि ! तुम तो अपने इन उदार प्रभावोंसे ही प्रशंसित हो । ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोहमें डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णुको शीघ्र ही जगा दो । साथ ही इनके भीतर इन दोनों महान् असुरोंको मार डालनेकी बुद्धि उत्पन्न कर दो ॥७३–८७॥

ऋषिरुवाच ॥ ८८ ॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ ८९ ॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ ९० ॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥ ९१ ॥
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ ९२ ॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं[1] ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥ ९३ ॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥ ९४ ॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥ ९५ ॥

ऋषि कहते हैं—॥८८॥ राजन् ! जब ब्रह्माजीने वहाँ मधु और कैटभको मारनेके उद्देश्यसे भगवान् विष्णुको जगानेके लिये तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी योगनिद्राकी इस प्रकार स्तुति की, तब वे भगवान्‌के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी दृष्टिके समक्ष खड़ी हो गयीं । योगनिद्रासे मुक्त होनेपर जगत्‌के स्वामी



भगवान् जनार्दन उस एकार्णवके जलमें शेषनागकी शय्यासे जाग उठे । फिर उन्होंने उन दोनों असुरोंको देखा । वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे और क्रोधसे लाल आँखें किये ब्रह्माजीको खा जानेके लिये उद्योग कर रहे थे । तब भगवान् श्रीहरिने उठकर उन दोनोंके साथ पाँच हजार वर्षोंतक केवल बाहुयुद्ध किया । वे दोनों भी अत्यन्त बलके कारण उन्मत्त हो रहे थे । इधर महामायाने भी उन्हें मोहमें डाल रक्खा था; इसलिये वे भगवान् विष्णुसे कहने लगे—'हम तुम्हारी वीरतासे संतुष्ट हैं । तुम हमलोगोंसे कोई वर माँगो' ॥८९–९५॥

१. पा०—त्तौ हन्तुं ।

श्रीभगवानुवाच ॥ ९६ ॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥ ९७ ॥

किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम[1] ॥ ९८ ॥

श्रीभगवान् बोले—॥९६॥ यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। यहाँ दूसरे किसी वरसे क्या लेना है ॥९७-९८॥

ऋषिरुवाच ॥ ९९ ॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥ १०० ॥

विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः[2] ।

आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ १०१ ॥

ऋषि कहते हैं—॥९९॥ इस प्रकार धोखेमें आ जानेपर जब उन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌में जल-ही-जल देखा तब कमलनयन भगवान्‌से कहा—'जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो' ॥१००-१०१॥

ऋषिरुवाच ॥ १०२ ॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।

कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥ १०३ ॥

एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।

प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ ऐं ॐ ॥ १०४ ॥

ऋषि कहते हैं—॥१०२॥ तब 'तथास्तु' कहकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान्‌ने उन दोनोंके मस्तक अपनी जाँघपर रखकर चक्रसे काट डाले। इस



प्रकार ये देवी महामाया ब्रह्माजीकी स्तुति करनेपर स्वयं प्रकट हुई थीं। अब पुनः तुमसे उनके प्रभावका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥१०३-१०४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

उवाच १४, अर्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६ ॥ एवम् १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'मधु-कैटभ-वध' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

देवताओंके तेजसे देवीका प्रादुर्भाव और महिषासुरकी सेनाका वध

विनियोग

(ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवता उष्णिक् छन्दः शाकम्भरी शक्तिः दुर्गा बीजं वायुस्तत्त्वं यजुर्वेदः स्वरूपं श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः ।

ॐ मध्यम चरित्रके विष्णु ऋषि, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक् छन्द, शाकम्भरी शक्ति, दुर्गा बीज, वायु तत्त्व और यजुर्वेद स्वरूप है। श्रीमहालक्ष्मीकी प्रसन्नताके लिये मध्यम चरित्रके पाठमें इसका विनियोग है।

१. पा०—मया। २. मार्कण्डेयपुराणकी कई प्रतियोंमें यहाँ 'प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः ।' इतना अधिक पाठ है।

ध्यान

ॐ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

मैं कमलके आसनपर बैठी हुई महिषासुरमर्दिनी भगवती महालक्ष्मीका भजन करता हूँ, जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण करती हैं तथा जिनके श्रीविग्रहकी कान्ति मूँगेके समान लाल है।]

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरंदरे ॥ २ ॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥ ३ ॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ४ ॥
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ५ ॥
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ६ ॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ७ ॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ८ ॥

ऋषि कहते हैं—॥१॥ पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें पूरे सौ वर्षोंतक घोर संग्राम हुआ था। उसमें असुरोंका स्वामी महिषासुर था और देवताओंके नायक इन्द्र थे। उस युद्धमें देवताओंकी सेना महाबली असुरोंसे परास्त हो गयी। सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर महिषासुर इन्द्र बन बैठा ॥२-३॥ तब पराजित देवता प्रजापति ब्रह्माजीको आगे करके उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शंकर और विष्णु विराजमान थे ॥४॥ देवताओंने महिषासुरके पराक्रम तथा अपनी पराजयका यथावत् वृत्तान्त उन दोनों देवेश्वरोंसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया ॥५॥ वे बोले—'भगवन्! महिषासुर सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, वरुण तथा अन्य देवताओंके भी अधिकार छीनकर स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बना बैठा है ॥६॥ उस दुरात्मा महिषने समस्त देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया है। अब वे मनुष्योंकी भाँति पृथ्वीपर विचरते हैं ॥७॥ दैत्योंकी यह सारी करतूत हमने आपलोगोंसे कह सुनायी। अब हम आपकी ही शरणमें आये हैं। उसके वधका कोई उपाय सोचिये' ॥८॥



इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ९ ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ॥ १० ॥
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ ११ ॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १२ ॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ १३ ॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ १४ ॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ १५ ॥

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा ।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥ १६ ॥
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥ १७ ॥
भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ १८ ॥

इस प्रकार देवताओंके वचन सुनकर भगवान् विष्णु और शिवने दैत्योंपर बड़ा क्रोध किया । उनकी भौंहें तन गयीं और मुँह टेढ़ा हो गया ॥९॥ तब अत्यन्त कोपमें भरे हुए चक्रपाणि श्रीविष्णुके मुखसे एक महान् तेज प्रकट हुआ । इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी बड़ा भारी तेज निकला । वह सब मिलकर एक हो गया ॥१०-११॥ महान् तेजका वह पुञ्ज जाज्वल्यमान पर्वत-सा जान पड़ा । देवताओंने देखा, वहाँ उसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो रही थीं ॥१२॥ सम्पूर्ण देवताओंके शरीरसे प्रकट हुए उस तेजकी कहीं तुलना नहीं थी । एकत्रित होनेपर वह एक नारीके रूपमें परिणत हो गया और अपने प्रकाशसे तीनों लोकोंमे व्याप्त जान पड़ा ॥१३॥ भगवान् शंकरका जो तेज था, उससे उस देवीका मुख प्रकट हुआ । यमराजके तेजसे उसके सिरमें बाल निकल आये । श्रीविष्णु-भगवान्‌के तेजसे उसकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं ॥१४॥ चन्द्रमाके



तेजसे दोनों स्तनोंका और इन्द्रके तेजसे मध्यभाग (कटिप्रदेश) का प्रादुर्भाव हुआ । वरुणके तेजसे जङ्घा और पिंडली तथा पृथ्वीके तेजसे नितम्बभाग प्रकट हुआ ॥१५॥ ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण और सूर्यके तेजसे उनकी अँगुलियाँ हुईं । वसुओंके तेजसे हाथोंकी अँगुलियाँ और कुबेरके तेजसे नासिका प्रकट हुई ॥१६॥ उस देवीके दाँत प्रजापतिके तेजसे और तीनों नेत्र अग्निके तेजसे प्रकट हुए थे ॥१७॥ उसकी भौंहें संध्याके और कान वायुके तेजसे उत्पन्न हुए थे । इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके तेजसे भी उस कल्याणमयी देवीका आविर्भाव हुआ ॥१८॥

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः[1] ॥ १९ ॥
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य[2] स्वचक्रतः ॥ २० ॥
शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ २१ ॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य[3] कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥ २२ ॥
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥ २३ ॥
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म[4] च निर्मलम् ॥ २४ ॥
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥ २५ ॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ २६ ॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥ २७ ॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ २८ ॥
अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ २९ ॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥ ३० ॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ ३१ ॥

१. कई प्रतियोंमें इसके बाद 'ततो देवा ददुस्तस्यै स्वानि स्वान्यायुधानि च । ऊचुर्जयजयेत्युच्चैर्जयन्तीं ते जयैषिणः ॥' इतना पाठ अधिक है । २. पा०—द्य । ३. पा०—द्य । ४. पा०—तस्यै चर्म

सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ ३२ ॥
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥ ३३ ॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम्[1] ॥ ३४ ॥
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।

तदनन्तर समस्त देवताओंके तेजःपुञ्जसे प्रकट हुई देवीको देखकर महिषासुरके सताये हुए देवता बहुत प्रसन्न हुए ॥१९॥ पिनाकधारी भगवान् शङ्करने अपने शूलसे एक शूल निकालकर उन्हें दिया; फिर भगवान् विष्णुने भी अपने चक्रसे चक्र उत्पन्न करके भगवतीको अर्पण किया ॥२०॥ वरुणने भी शङ्ख भेंट किया, अग्निने उन्हें शक्ति दी और वायुने धनुष तथा बाणसे भरे हुए दो तरकस प्रदान किये ॥२१॥ सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथीसे उतारकर एक घण्टा भी प्रदान किया ॥२२॥ यमराजने कालदण्डसे दण्ड, वरुणने पाश, प्रजापतिने स्फटिकाक्षकी माला तथा ब्रह्माजीने कमण्डलु भेंट किया ॥२३॥ सूर्यने देवीके समस्त रोम-कूपोंमें अपनी किरणोंका तेज भर दिया। कालने उन्हें चमकती हुई ढाल और तलवार दी ॥२४॥ क्षीर-समुद्रने उज्ज्वल हार तथा कभी जीर्ण न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र भेंट किये । साथ ही उन्होंने दिव्य चूड़ामणि, दो कुण्डल, कड़े, उज्ज्वल अर्धचन्द्र, सब बाहुओंके लिये केयूर, दोनों चरणोंके लिये निर्मल नूपुर, गलेकी सुन्दर हँसली और सब अँगुलियोंमें पहननेके लिये रत्नोंकी बनी अँगूठियाँ भी दीं । विश्वकर्माने उन्हें अत्यन्त निर्मल फरसा भेंट किया ॥२५—२७॥ साथ ही अनेक प्रकारके अस्त्र और अभेद्य कवच दिये; इनके सिवा मस्तक और वक्षःस्थलपर धारण करनेके लिये कभी न कुम्हलानेवाले कमलोंकी मालाएँ दीं ॥२८॥ जलधिने उन्हें सुन्दर कमलका फूल भेंट किया। हिमालयने सवारीके लिये सिंह तथा भाँति-भाँतिके रत्न समर्पित किये ॥२९॥ धनाध्यक्ष कुबेरने मधुसे भरा पानपात्र दिया तथा सम्पूर्ण नागोंके राजा शेषने, जो इस पृथ्वीको धारण करते हैं, उन्हें बहुमूल्य मणियोंसे विभूषित नागहार भेंट दिया। इसी प्रकार अन्य देवताओंने भी आभूषण और अस्त्र-शस्त्र देकर देवीका सम्मान किया । तत्पश्चात् उन्होंने बारंबार अट्टहासपूर्वक उच्चस्वरसे गर्जना की । उनके भयंकर नादसे सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा ॥३०—३२॥ देवीका वह अत्यन्त उच्चस्वरसे किया हुआ सिंहनाद कहीं समा न सका, आकाश उसके सामने लघु प्रतीत होने लगा । उससे बड़े जोरकी प्रतिध्वनि हुई, जिससे सम्पूर्ण विश्वमें हलचल मच गयी और समुद्र काँप उठे ॥३३॥ पृथ्वी डोलने लगी और समस्त पर्वत हिलने लगे । उस समय देवताओंने अत्यन्त प्रसन्नताके साथ सिंहवाहिनी भवानीसे कहा—'देवि ! तुम्हारी जय हो' ॥३४॥ साथ ही महर्षियोंने भक्तिभावसे विनम्र होकर उनका स्तवन किया ।

दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥ ३५ ॥
संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥ ३६ ॥
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥ ३७ ॥
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥ ३८ ॥
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥ ३९ ॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ॥ ४० ॥
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥ ४१ ॥
अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥ ४२ ॥
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः[1] परिवारितः ॥ ४३ ॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥ ४४ ॥
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥ ४५ ॥
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ ४६ ॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ ४७ ॥
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥ ४८ ॥

१. पा०—वाहनाम् ।

१. पा०—कैरभदर्शनः । २. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद 'वृतः कालो रथानां च रणे पञ्चाशतायुतैः । युयुधे संयुगे तत्र तावद्भिः परिवारितः ॥' इतना अधिक पाठ है ।

देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥ ४९ ॥
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥ ५० ॥
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।

सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षोभग्रस्त देख दैत्यगण अपनी समस्त सेनाको कवच आदिसे सुसज्जित कर, हाथोंमें हथियार ले सहसा उठकर खड़े हो गये। उस समय महिषासुरने बड़े क्रोधमें आकर कहा—'आः! यह क्या हो रहा है!' फिर वह सम्पूर्ण असुरोंसे घिरकर उस सिंहनादकी ओर लक्ष्य करके दौड़ा और आगे पहुँचकर उसने देवीको देखा, जो अपनी प्रभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रही थीं ॥३५—३७॥ उनके चरणोंके भारसे पृथ्वी दबी जा रही थी। माथेके मुकुटसे आकाशमें रेखा-सी खिंच रही थी तथा वे अपने धनुषकी टङ्कारसे सातों पातालोंको क्षुब्ध किये देती थीं ॥३८॥ देवी अपनी हजारों भुजाओंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके खड़ी थीं। तदनन्तर उनके साथ दैत्योंका युद्ध छिड़ गया ॥३९॥ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे सम्पूर्ण



दिशाएँ उद्भासित होने लगीं। चिक्षुर नामक महान् असुर महिषासुरका सेनानायक था ॥४०॥ वह देवीके साथ युद्ध करने लगा। अन्य दैत्योंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर चामर भी लड़ने लगा। साठ हजार रथियोंके साथ आकर उदग्र नामक महादैत्यने लोहा लिया ॥४१॥ एक करोड़ रथियोंको साथ लेकर महाहनु नामक दैत्य युद्ध करने लगा। जिसके रोएँ तलवारके समान तीखे थे, वह असिलोमा नामका महादैत्य पाँच करोड़ रथी सैनिकोंसहित युद्धमें आ डटा ॥४२॥ साठ लाख रथियोंसे घिरा हुआ बाष्कल नामक दैत्य भी उस युद्धभूमिमें लड़ने लगा ॥४३॥ परिवारित[1] नामक राक्षस हाथीसवार और घुड़सवारोंके अनेक दलों तथा एक करोड़ रथियोंकी सेना लेकर युद्ध करने लगा। विडाल नामक दैत्य पाँच अरब रथियोंसे घिरकर लोहा लेने लगे। इनके अतिरिक्त और भी हजारों महादैत्य रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेना साथ लेकर वहाँ देवीके साथ युद्ध करने लगे। स्वयं महिषासुर उस रणभूमिमें कोटि-कोटि सहस्र रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनासे घिरा हुआ खड़ा था। वे दैत्य देवीके साथ तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, खड्ग, परशु और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए युद्ध कर रहे थे। कुछ दैत्योंने उनपर शक्तिका प्रहार किया, कुछ लोगोंने पाश फेंके ॥४४—४८॥ तथा कुछ दूसरे दैत्योंने खड्गप्रहार करके देवीको मार डालनेका उद्योग किया। देवीने भी क्रोधमें भरकर खेल-खेलमें ही अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करके दैत्योंके वे समस्त अस्त्र-शस्त्र काट डाले। उनके मुखपर परिश्रम या थकावटका रंचमात्र भी चिह्न नहीं था, देवता और ऋषि उनकी स्तुति करते थे और वे भगवती परमेश्वरी दैत्योंके शरीरोंपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करती रहीं।

सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ॥ ५१ ॥
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥ ५२ ॥
त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥ ५३ ॥
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ॥ ५४ ॥
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः[2] ॥ ५५ ॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥ ५६ ॥
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥ ५७ ॥

१. परितो वारयति शत्रूनिति व्युत्पत्तिः। २. पा० शरवृष्टिभिः।

विषोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥ ५८ ॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥ ५९ ॥
श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ ६० ॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥ ६१ ॥
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ ६२ ॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥ ६३ ॥
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥ ६४ ॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुंधरा।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥ ६५ ॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ ६६ ॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ ६७ ॥
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ ६८ ॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ॐ ॥ ६९ ॥

देवीका वाहन सिंह भी क्रोधमें भरकर गर्दनके बालोंको हिलाता हुआ असुरोंकी सेनामें इस प्रकार विचरने लगा, मानो वनोंमें दावानल फैल रहा हो। रणभूमिमें दैत्योंके साथ युद्ध करती हुई अम्बिका देवीने जितने निःश्वास छोड़े, वे सभी तत्काल सैकड़ों-हजारों गणोंके रूपमें प्रकट हो गये और परशु, भिन्दिपाल, खड्ग तथा पट्टिश आदि अस्त्रोंद्वारा असुरोंका सामना करने लगे ॥४९—५३॥ देवीकी शक्तिसे बढ़े हुए वे गण असुरोंका नाश करते हुए नगाड़ा और शङ्ख आदि बाजे बजाने लगे ॥५४॥ उस संग्राम-महोत्सवमें कितने ही गण मृदङ्ग बजा रहे थे। तदनन्तर देवीने त्रिशूलसे, गदासे, शक्तिकी वर्षासे और खड्ग आदिसे सैकड़ों महादैत्योंका



संहार कर डाला। कितनोंको घंटेके भयङ्कर नादसे मूर्च्छित करके मार गिराया ॥ ५५-५६ ॥ बहुतेरे दैत्योंको पाशसे बाँधकर धरतीपर घसीटा। कितने ही दैत्य उनकी तीखी तलवारकी मारसे दो-दो टुकड़े हो गये ॥५७॥ कितने ही गदाकी चोटसे घायल हो धरतीपर सो गये। कितने ही मूसलकी मारसे अत्यन्त आहत होकर रक्त वमन करने लगे। कुछ दैत्य शूलसे छाती फट जानेके कारण पृथ्वीपर ढेर हो गये। उस रणाङ्गणमें बाणसमूहोंकी वृष्टिसे कितने ही असुरोंकी कमर टूट गयी ॥५८-५९॥ बाजकी तरह झपटनेवाले देवपीडक दैत्यगण अपने प्राणोंसे हाथ धोने लगे। किन्हींकी बाँहें छिन्न-भिन्न हो गयीं, कितनोंकी गर्दनें कट गयीं। कितने ही दैत्योंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे। कुछ लोगोंके शरीर मध्यभागमें ही विदीर्ण हो गये। कितने ही महादैत्य जाँघें कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़े। कितनोंको ही देवीने एक बाँह, एक पैर और एक नेत्रवाले करके दो टुकड़ोंमें चीर डाला। कितने ही दैत्य मस्तक कट जानेपर भी गिरकर फिर उठ जाते और केवल धड़के ही रूपमें अच्छे-अच्छे हथियार हाथमें ले देवीके साथ युद्ध करने लगते थे। दूसरे कबन्ध युद्धके बाजोंकी लयपर नाचते थे ॥६०—६३॥ कितने ही बिना

१. पा०—सेनानु०। शल्यानु०। शैलानु०। २. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद 'रुधिरौघविलुप्ताङ्गाः संग्रामे लोमहर्षणे।' इतना पाठ अधिक है। ३. पा०—यथैनां। ४. पा०—तुष्टुवुर्देवाः।

सिरके धड़ हाथोंमें खड्ग, शक्ति और ऋष्टि लिये दौड़ते थे तथा दूसरे-दूसरे महादैत्य ठहरो! ठहरो!!' यह कहते हुए देवीको युद्धके लिये ललकारते थे। जहाँ वह घोर संग्राम हुआ था, वहाँकी धरती देवीके गिराये हुए रथ, हाथी, घोड़े और असुरोंकी लाशोंसे ऐसी पट गयी थी कि वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया था ॥६४-६५॥ दैत्योंकी सेनामें हाथी, घोड़े और असुरोंके शरीरोंसे इतनी अधिक मात्रामें रक्तपात हुआ था कि थोड़ी ही देरमें वहाँ खूनकी बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने लगीं ॥६६॥ जगदम्बाने असुरोंकी विशाल सेनाको क्षणभरमें नष्ट कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे तृण और काठके भारी ढेरको आग कुछ ही क्षणोंमें भस्म कर देती है ॥६७॥ और वह सिंह भी गर्दनके बालोंको हिला-हिलाकर जोर-जोरसे गर्जना करता हुआ दैत्योंके शरीरोंसे मानो उनके प्राण चुने लेता था ॥६८॥ वहाँ देवीके गणोंने भी उन महादैत्योंके साथ ऐसा युद्ध किया, जिससे देवतागण उनपर आकाशसे फूल बरसाने लगे और उन सबसे बहुत सन्तुष्ट हुए ॥६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
उवाच १, श्लोकाः ६८, एवम् ६९, एवमादितः १७२ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवी-माहात्म्यमें 'महिषासुरकी सेनाका वध' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

सेनापतियोंसहित महिषासुरका वध

ध्यान

(ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥)

[जगदम्बाके श्रीअङ्गोंकी कान्ति उदयकालके सहस्रों सूर्योंके समान है। वे लाल रंगकी रेशमी साड़ी पहने हुए हैं। उनके गलेमें मुण्डमाला शोभा पा रही है। दोनों स्तनोंपर रक्त-चन्दनका लेप लगा है। वे अपने कर-कमलोंमें जपमालिका, विद्या, अभय तथा वर मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखारविन्दकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके मस्तकपर चन्द्रमाके साथ ही रत्नमय मुकुट बँधा है तथा वे कमलके आसनपर विराजमान हैं। ऐसी देवीको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।]

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥
'ॐ' निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥ २ ॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥ ३ ॥
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥ ४ ॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ५ ॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥ ६ ॥
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ ७ ॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥ ८ ॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं[1] शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥ १० ॥

ऋषि कहते हैं—॥१॥ दैत्योंकी सेनाको इस प्रकार तहस-नहस होते देख महादैत्य सेनापति चिक्षुर क्रोधमें भरकर

[1] पा०—तेन तच्छतधा नीतं।

अम्बिका देवीसे युद्ध करनेको आगे बढ़ा ॥२॥ वह असुर रणभूमिमें देवीके ऊपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगा, जैसे बादल मेरुगिरिके शिखरपर पानीकी धार बरसा रहा हो ॥३॥ तब देवीने अपने बाणोंसे उसके बाण-समूहको अनायास ही काटकर उसके घोड़ों और सारथिको भी मार डाला ॥४॥ साथ ही उसके धनुष तथा अत्यन्त ऊँची ध्वजाको भी तत्काल काट गिराया। धनुष कट जानेपर उसके अङ्गोंको अपने बाणोंसे बींध डाला ॥५॥ धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर वह असुर ढाल और तलवार लेकर देवीकी ओर दौड़ा ॥६॥ उसने तीखी धारवाली तलवारसे सिंहके मस्तकपर चोट करके देवीकी भी बायीं भुजामें बड़े वेगसे प्रहार किया ॥७॥ राजन्! देवीकी बाँहपर पहुँचते ही वह तलवार टूट गयी, फिर तो क्रोधसे लाल आँखें करके उस राक्षसने शूल हाथमें लिया ॥८॥ और उसे उस महादैत्यने भगवती भद्रकालीके ऊपर चलाया। वह शूल आकाशसे गिरते हुए सूर्यमण्डलकी भाँति अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठा ॥९॥ उस शूलको अपनी ओर आते देख देवीने भी शूलका प्रहार किया। उससे राक्षसके शूलके सैकड़ों टुकड़े हो गये, साथ



ही महादैत्य चिक्षुरकी भी धज्जियाँ उड़ गयीं। वह प्राणोंसे हाथ धो बैठा ॥१०॥

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ ११ ॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ १२ ॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ १३ ॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ १४ ॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ १५ ॥
ततो वेगात्खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥ १६ ॥
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥ १७ ॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्।
बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥ १८ ॥
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ १९ ॥
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्[1] ॥ २० ॥

महिषासुरके सेनापति उस महापराक्रमी चिक्षुरके मारे जानेपर देवताओंको पीड़ा देनेवाला चामर हाथीपर चढ़कर आया। उसने भी देवीके ऊपर शक्तिका प्रहार किया, किन्तु जगदम्बाने उसे अपने हुंकारसे ही आहत एवं निष्प्रभ करके तत्काल पृथ्वीपर गिरा दिया ॥११-१२॥ शक्तिको टूटकर गिरी हुई देख चामरको बड़ा क्रोध हुआ। अब उसने शूल चलाया, किन्तु देवीने उसे भी अपने बाणोंद्वारा काट डाला ॥१३॥ इतनेमें ही देवीका सिंह उछलकर हाथीके मस्तकपर चढ़ बैठा और उस दैत्यके साथ खूब जोर लगाकर बाहुयुद्ध करने लगा ॥१४॥ वे दोनों लड़ते-लड़ते हाथीसे पृथ्वीपर आ गये और अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेपर बड़े भयंकर प्रहार करते हुए लड़ने लगे ॥१५॥ तदनन्तर सिंह बड़े

१. इसके बाद किसी-किसी प्रतिमें—
कालं च कालदण्डेन कालरात्रिरपातयत्।
उग्रदर्शनमत्युग्रैः खड्गपातैरताडयत् ॥
असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सा रणोत्सवे।
गणैः सिंहेन देव्या च जयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः ॥
ये दो श्लोक अधिक हैं।

वेगसे आकाशकी ओर उछला और उधरसे गिरते समय उसने पंजोंकी मारसे चामरका सिर धड़से अलग कर दिया ॥१६॥



इसी प्रकार उदग्र भी शिला और वृक्ष आदिकी मार खाकर रणभूमिमें देवीके हाथसे मारा गया तथा कराल भी दाँतों, मुक्कों और थप्पड़ोंकी चोटसे धराशायी हो गया ॥१७॥ क्रोधमें भरी हुई देवीने गदाकी चोटसे उद्धतका कचूमर निकाल डाला। भिन्दिपालसे बाष्कलको तथा बाणोंसे ताम्र और अन्धकको मौतके घाट उतार दिया ॥१८॥ तीन नेत्रोंवाली परमेश्वरीने त्रिशूलसे उग्रास्य, उग्रवीर्य तथा महाहनु नामक दैत्यको मार डाला ॥१९॥ तलवारकी चोटसे बिडालके मस्तकको धड़से काट गिराया। दुर्धर और दुर्मुख—इन दोनों-को भी अपने बाणोंसे यमलोक भेज दिया ॥२०॥

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥ २१ ॥
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान्॥ २२ ॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥ २३ ॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥ २४ ॥
सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ २५ ॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ २६ ॥
धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं[1] ययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥ २८ ॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥ २९ ॥
ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥ ३० ॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः।
तं खड्गचर्मणा सार्द्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥ ३१ ॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥ ३२ ॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३३ ॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥ ३४ ॥
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥ ३५ ॥
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार अपनी सेनाका संहार होता देख महिषासुरने भैंसेका रूप धारण करके देवीके गणोंको त्रास देना आरम्भ किया ॥२१॥ किन्हींको थूथुनसे मारकर, किन्हींके ऊपर खुरों-का प्रहार करके, किन्हीं-किन्हींको पूँछसे चोट पहुँचाकर, कुछको सींगोंसे विदीर्ण करके, कुछ गणोंको वेगसे, किन्हीं-को सिंहनादसे, कुछको चक्कर देकर और कितनोंको निःश्वास वायुके झोंकेसे धराशायी कर दिया ॥२२-२३॥ इस प्रकार गणोंकी सेनाको गिराकर वह असुर महादेवीके सिंहको मारनेके लिये झपटा। इससे जगदम्बाको बड़ा क्रोध हुआ ॥२४॥ उधर महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधमें भरकर धरतीको खुरोंसे खोदने लगा तथा अपने सींगोंसे ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंको उठाकर फेंकने और गर्जने लगा ॥ २५ ॥ उसके वेगसे चक्कर

१. पा०—खण्डखण्डं।



महिषासुर-मर्दिनी—अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः। अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः। [पृष्ठ २०१





देनेके कारण पृथ्वी क्षुब्ध होकर फटने लगी। उसकी पूँछसे टकराकर समुद्र सब ओरसे धरतीको डुबोने लगा ॥२६॥ हिलते हुए सींगोंके आघातसे विदीर्ण होकर बादलोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके श्वासकी प्रचण्ड वायुके वेगसे उड़े हुए सैकड़ों पर्वत आकाशसे गिरने लगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए उस महादैत्यको अपनी ओर आते देख चण्डिकाने उसका वध करनेके लिये महान् क्रोध किया ॥ २८ ॥ उन्होंने पाश फेंककर उस महान् असुरको बाँध लिया। उस महासंग्राममें बँध जानेपर उसने भैंसेका रूप त्याग दिया ॥ २९ ॥ और तत्काल सिंहके रूपमें वह प्रकट हो गया। उस अवस्थामें जगदम्बा ज्यों ही उसका मस्तक काटनेको उद्यत हुई, त्यों ही वह खड्गधारी पुरुषके रूपमें दिखायी देने लगा ॥ ३० ॥ तब देवीने तुरंत ही बाणोंकी वर्षा करके ढाल और तलवारके साथ उस पुरुषको भी बींध डाला। इतनेमें ही वह महान् गजराजके रूपमें परिणत हो गया ॥ ३१ ॥ तथा अपनी सूँड़से देवीके विशाल सिंहको खींचने और गर्जने लगा। खींचते समय देवीने तलवारसे उसकी सूँड़ काट डाली ॥ ३२ ॥ तब उस महादैत्यने पुनः भैंसेका शरीर धारण कर लिया और पहलेकी ही भाँति चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंको व्याकुल करने लगा ॥ ३३ ॥ तब क्रोधमें भरी हुई जगन्माता चण्डिका बारंबार उत्तम मधुका पान करने और लाल आँखें करके हँसने लगीं ॥ ३४ ॥ उधर वह बल और पराक्रमके मदसे उन्मत्त हुआ राक्षस अपने सींगोंसे चण्डीके ऊपर पर्वतोंको फेंकने लगा ॥ ३५ ॥ उस समय देवी अपने बाणोंके समूहोंसे उसके फेंके हुए पर्वतोंको चूर्ण करती हुई बोलीं। बोलते समय उनका मुख मधुके मदसे लाल हो रहा था और वाणी लड़खड़ा रही थी ॥ ३६ ॥

देव्युवाच ॥ ३७ ॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥ ३८ ॥

देवीने कहा—॥ ३७ ॥ ओ मूढ़! मैं जबतक मधु पीती हूँ तबतक तू क्षणभरके लिये खूब गर्ज ले। मेरे हाथसे यहीं तेरी मृत्यु हो जानेपर अब शीघ्र ही देवता भी गर्जना करेंगे ॥ ३८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥ ४० ॥

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः॥ ४१ ॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः॥ ४२ ॥
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः॥ ४३ ॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ४४ ॥



ऋषि कहते हैं—॥ ३९ ॥ यों कहकर देवी उछलीं और उस महादैत्यके ऊपर चढ़ गयीं। फिर अपने पैरसे उसे दबाकर उन्होंने शूलसे उसके कण्ठमें आघात किया। [उनके पैरसे दबा होनेपर भी महिषासुर अपने मुखसे दूसरे रूपमें बाहर होने लगा] ॥ ४० ॥ अभी आधे शरीरसे ही वह बाहर निकलने पाया था कि देवीने अपने प्रभावसे उसे रोक दिया ॥ ४१ ॥ आधा निकला होनेपर भी वह महादैत्य देवीसे युद्ध करने लगा। तब देवीने बहुत बड़ी तलवारसे उसका मस्तक काट गिराया ॥ ४२ ॥ फिर तो हाहाकार करती हुई दैत्योंकी सारी सेना भाग गयी तथा सम्पूर्ण देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ४३ ॥ देवताओंने दिव्य महर्षियोंके साथ दुर्गादेवीका स्तवन किया। गन्धर्वराज गान तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ ४४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३ ॥
उवाच ३, श्लोकाः ४१, एवम् ४४, एवमादितः २१७ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवी-माहात्म्यमें 'महिषासुर-वध' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

इन्द्रादि देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति

ध्यान

(ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः) ॥

[सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुष जिनकी सेवा करते हैं

---

१. पा०—एवाति देव्या। २. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद—
'एवं स महिषो नाम ससैन्यः ससुहृद्गणः। त्रैलोक्यं मोहयित्वा तु तया देव्या विनाशितः॥
त्रैलोक्यस्थैस्तदा भूतैर्महिषे विनिपातिते। जयेत्युक्तं ततः सर्वैः सदेवासुरमानवैः॥' इतना अधिक पाठ है।

तथा देवता जिन्हें सब ओरसे घेरे रहते हैं, उन 'जया' नामवाली दुर्गादेवीका ध्यान करे। उनके श्रीअङ्गोंकी आभा काले मेघके समान श्याम है। वे अपने कटाक्षोंसे शत्रुसमूहको भय प्रदान करती हैं। उनके मस्तकपर आबद्ध चन्द्रमाकी रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे सिंहके कंधेपर चढ़ी हुई हैं और अपने तेजसे तीनों लोकोंको परिपूर्ण कर रही हैं।]

ऋषिरुवाच[1] ॥ १ ॥

ॐ शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ २ ॥
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ ३ ॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ४ ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ५ ॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ६ ॥
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥
यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ८ ॥
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-[1]
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ९ ॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥ १० ॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ ११ ॥
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ १३ ॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १४ ॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ १५ ॥
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ १६ ॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ १७ ॥

१. किसी-किसी प्रतिमें 'ऋषिरुवाच'के बाद 'ततः सुरगणाः सर्वे देव्या इन्द्रपुरोगमाः। स्तुतिमारेभिरे कर्तुं निहते महिषासुरे॥' इतना पाठ अधिक है।

१. पा०—न त्वम०।

नृभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥ १८ ॥
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥ १९ ॥
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ २० ॥
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २१ ॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ २२ ॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥ २३ ॥
शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ २४ ॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ २५ ॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ २६ ॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ २७ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ १ ॥ अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा महिषासुर तथा उसकी दैत्य-सेनाके देवीके हाथसे मारे जानेपर इन्द्र आदि देवता प्रणामके लिये गर्दन तथा कंधे झुकाकर उन भगवती दुर्गाका उत्तम वचनोंद्वारा स्तवन करने लगे। उस समय उनके सुन्दर अङ्गोंमें अत्यन्त हर्षके कारण रोमाञ्च हो आया था ॥ २ ॥ देवता बोले—सम्पूर्ण देवताओंकी शक्तिका समुदाय ही जिनका स्वरूप है तथा जिन देवीने अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है, समस्त देवताओं और महर्षियोंकी पूजनीया उन जगदम्बाको हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं। वे हमलोगोंका कल्याण करें ॥ ३ ॥ जिनके अनुपम प्रभाव और बलका वर्णन करनेमें भगवान् शेषनाग, ब्रह्माजी तथा महादेवजी भी समर्थ नहीं हैं, वे भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत्का पालन एवं अशुभ भयका नाश करनेका विचार करें ॥ ४ ॥ जो पुण्यात्माओंके घरोंमें स्वयं ही लक्ष्मीरूपसे, पापियोंके यहाँ दरिद्रतारूपसे, शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंके हृदयमें बुद्धिरूपसे, सत्पुरुषोंमें श्रद्धारूपसे तथा कुलीन मनुष्यमें लज्जारूपसे निवास करती हैं, उन आप भगवती दुर्गाको हम नमस्कार करते हैं। देवि! सम्पूर्ण विश्वका पालन कीजिये ॥ ५ ॥ देवि! आपके इस अचिन्त्य रूपका, असुरोंका नाश करनेवाले भारी पराक्रमका तथा समस्त देवताओं और दैत्योंके समक्ष युद्धमें प्रकट किये हुए आपके अद्भुत चरित्रोंका हम किस प्रकार वर्णन करें ॥ ६ ॥ आप सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिमें कारण हैं। आपमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये तीनों गुण मौजूद हैं; तो भी दोषोंके साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता। भगवान् विष्णु और महादेवजी आदि देवता भी आपका पार नहीं पाते। आप ही सबका आश्रय हैं। यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है; क्योंकि आप सबकी आदिभूत अव्याकृता परा प्रकृति हैं ॥ ७ ॥ देवि!



सम्पूर्ण यज्ञोंमें जिसके उच्चारणसे सब देवता तृप्ति लाभ करते हैं, वह स्वाहा आप ही हैं। इसके अतिरिक्त आप पितरोंकी भी तृप्तिका कारण हैं, अतएव सब लोग आपको स्वधा भी कहते हैं ॥ ८ ॥ देवि ! जो मोक्षकी प्राप्तिका साधन है, अचिन्त्य महाव्रतस्वरूपा है, समस्त दोषोंसे रहित, जितेन्द्रिय, तत्त्वको ही सार वस्तु माननेवाले तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती परा विद्या आप ही हैं ॥ ९ ॥ आप शब्दस्वरूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्गीथके मनोहर पदोंके पाठसे युक्त सामवेदका भी आधार आप ही हैं। आप देवी, त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्योंसे युक्त) हैं। इस विश्वकी उत्पत्ति एवं पालनके लिये आप ही वार्ता (खेती एवं आजीविका) के रूपमें प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌की घोर पीड़ाका नाश करनेवाली हैं ॥ १० ॥ देवि ! जिससे समस्त शास्त्रोंके सारका ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप ही हैं। दुर्गम भवसागरसे पार उतारनेवाली नौकारूप दुर्गादेवी भी आप ही हैं। आपकी कहीं भी आसक्ति नहीं है। कैटभके शत्रु भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें एकमात्र निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान् चन्द्रशेखर-द्वारा सम्मानित गौरीदेवी भी आप ही हैं ॥ ११ ॥ आपका मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बका अनुकरण करनेवाला और उत्तम सुवर्णकी मनोहर कान्तिसे कमनीय है; तो भी उसे देखकर महिषासुरको क्रोध हुआ और सहसा उसने उसपर प्रहार कर दिया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ १२ ॥ देवि ! वही मुख जब क्रोधसे युक्त होनेपर उदयकालके चन्द्रमाकी भाँति लाल और तनी हुई भौंहोंके कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर जो महिषासुरके प्राण तुरंत नहीं निकल गये, यह उससे भी बढ़कर आश्चर्यकी बात है; क्योंकि क्रोधमें भरे हुए यमराजको देखकर भला, कौन जीवित रह सकता है ॥ १३ ॥ देवि ! आप प्रसन्न हों। परमात्मस्वरूपा आपके प्रसन्न होनेपर जगत्‌का अभ्युदय होता है और क्रोधमें भर जानेपर आप तत्काल ही कितने कुलोंका सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभवमें आयी है; क्योंकि महिषासुरकी यह विशाल सेना क्षणभरमें आपके कोपसे नष्ट हो गयी है ॥ १४ ॥ सदा अभ्युदय प्रदान करनेवाली आप जिनपर प्रसन्न रहती हैं, वे ही देशमें सम्मानित हैं, उन्हींको धन और यशकी प्राप्ति होती है, उन्हींका धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने हृष्ट-पुष्ट स्त्री, पुत्र और भृत्योंके साथ धन्य माने जाते हैं ॥ १५ ॥ देवि ! आपकी ही कृपासे पुण्यात्मा पुरुष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकारके धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभावसे स्वर्गलोकमें जाता है; इसलिये आप तीनों लोकोंमें निश्चय ही मनोवाञ्छित फल देनेवाली हैं ॥ १६ ॥ मा दुर्गे ! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि ! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो ॥ १७ ॥ देवि ! इन राक्षसोंके मारनेसे संसारको सुख मिले तथा ये राक्षस चिरकालतक नरकमें रहनेके लिये भले ही पाप करते रहे हों, इस समय संग्राममें मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्गलोकमें जायँ—निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओंका वध करती हैं ॥ १८ ॥ आप शत्रुओंपर शस्त्रोंका प्रहार क्यों करती हैं ? समस्त असुरोंको दृष्टिपात-मात्रसे ही भस्म क्यों नहीं कर देतीं ? इसमें एक रहस्य है। ये शत्रु भी हमारे शस्त्रोंसे पवित्र होकर उत्तम लोकोंमें जायँ इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्तम रहता है ॥ १९ ॥ खड्गके तेजःपुञ्जकी भयङ्कर दीप्तिसे तथा आपके त्रिशूलके अग्रभागकी घनीभूत प्रभासे चौंधियाकर जो असुरोंकी आँखें फूट नहीं गयीं, उसमें कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियोंसे युक्त चन्द्रमाके समान आनन्द प्रदान करनेवाले आपके इस सुन्दर मुखका दर्शन करते थे ॥ २० ॥ देवि ! आपका शील दुराचारियोंके बुरे बर्तावको दूर करनेवाला है। साथ ही यह रूप ऐसा है, जो कभी चिन्तनमें भी नहीं आ सकता और जिसकी कभी दूसरोंसे तुलना भी नहीं हो सकती; तथा आपका बल और पराक्रम तो उन दैत्योंका भी नाश करनेवाला है, जो कभी देवताओंके पराक्रमको भी नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओंपर भी अपनी दया ही प्रकट की है ॥ २१ ॥ वरदायिनी देवि ! आपके इस पराक्रमकी किसके साथ तुलना हो सकती है। तथा शत्रुओंको भय देनेवाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके सिवा और कहाँ है। हृदयमें कृपा और युद्धमें निष्ठुरता—ये दोनों बातें तीनों लोकोंके भीतर केवल आपमें ही देखी गयी हैं ॥ २२ ॥ मातः ! आपने शत्रुओंका नाश करके इस समस्त त्रिलोकीकी रक्षा की है। उन शत्रुओंको भी युद्धभूमिमें मारकर स्वर्गलोकमें पहुँचाया है तथा उन्मत्त दैत्योंसे प्राप्त होनेवाले हमलोगोंके भयको भी दूर कर दिया है, आपको हमारा नमस्कार है ॥ २३ ॥

देवि! आप शूलसे हमारी रक्षा करें। अम्बिके! खड्गसे भी हमारी रक्षा करें तथा घण्टाकी ध्वनि और धनुषकी टंकारसे भी आप हमलोगोंकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशामें आप हमारी रक्षा करें तथा ईश्वरि! अपने त्रिशूलको घुमाकर आप उत्तर दिशामें भी हमारी रक्षा करें ॥ २५ ॥ तीनों लोकोंमें आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयङ्कर रूप विचरते रहते हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस भूलोककी रक्षा करें ॥ २६ ॥ अम्बिके! आपके कर-पल्लवोंमें शोभा पानेवाले खड्ग, शूल और गदा आदि जो-जो अस्त्र हों, उन सबके द्वारा आप सब ओरसे हमलोगोंकी रक्षा करें ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ २८ ॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥ २९ ॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु[1] धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ ३० ॥

ऋषि कहते हैं—॥ २८ ॥ इस प्रकार जब देवताओंने जगन्माता दुर्गाकी स्तुति की और नन्दन-वनके दिव्य पुष्पों एवं गन्ध-चन्दन आदिके द्वारा उनका पूजन किया, फिर सबने मिलकर जब भक्तिपूर्वक दिव्य धूपोंकी सुगन्ध निवेदन की, तब देवीने प्रसन्नवदन होकर प्रणाम करते हुए सब देवताओंसे कहा—॥ २९-३० ॥

देव्युवाच ॥ ३१ ॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्[2] ॥ ३२ ॥

देवी बोलीं—॥ ३१ ॥ देवताओ! तुम सब लोग मुझसे जिस वस्तुकी अभिलाषा रखते हो, उसे माँगो ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः ॥ ३३ ॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥ ३४ ॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ ३५ ॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ ३६ ॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥ ३७ ॥

देवता बोले—॥ ३३ ॥ भगवतीने हमारी सब इच्छा पूर्ण कर दी, अब कुछ भी बाकी नहीं है ॥ ३४ ॥ क्योंकि हमारा यह शत्रु महिषासुर मारा गया। महेश्वरि! इतनेपर भी यदि आप हमें और वर देना चाहती हैं ॥ ३५ ॥ तो हम जब-जब आपका स्मरण करें, तब-तब आप दर्शन देकर हमलोगोंके महान् संकट दूर कर दिया करें तथा प्रसन्नमुखी अम्बिके! जो मनुष्य इन स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करे, उसे वित्त, समृद्धि और वैभव देनेके साथ ही उसकी धन और स्त्री आदि सम्पत्तिको भी बढ़ानेके लिये आप सदा हमपर प्रसन्न रहें ॥ ३६-३७ ॥



ऋषिरुवाच ॥ ३८ ॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥ ३९ ॥

---

१. पा०—पैः सुधूपिता। २. मार्कण्डेयपुराणकी आधुनिक प्रतियोंमें—'ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता।' इतना पाठ अधिक है। किसी-किसी प्रतिमें—'कर्तव्यमपरं यच्च दुष्करं तच्च वेदसहे। इत्याकर्ण्य वचो देव्याः प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ॥' इतना और अधिक पाठ है।

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी॥ ४०॥
पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत्।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः॥ ४१॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते॥
ह्रीं ॐ॥ ४२॥

ऋषि कहते हैं—॥ ३८ ॥ राजन्! देवताओंने जब अपने तथा जगत्‌के कल्याणके लिये भद्रकाली देवीको इस प्रकार प्रसन्न किया, तब वे 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥ ३९ ॥ भूपाल! इस प्रकार पूर्वकालमें तीनों लोकोंका हित चाहनेवाली देवी जिस प्रकार देवताओंके शरीरोंसे प्रकट हुई थीं, वह सब कथा मैंने कह सुनायी ॥ ४० ॥ अब पुनः देवताओंका उपकार करनेवाली वे देवी दुष्ट दैत्यों तथा शुम्भ-निशुम्भका वध करने एवं सब लोकोंकी रक्षा करनेके लिये गौरीदेवीके शरीरसे जिस प्रकार प्रकट हुई थीं, वह सब प्रसङ्ग मेरे मुँहसे सुनो। मैं उसका तुमसे यथावत् वर्णन करता हूँ ॥ ४१-४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥
उवाच ५, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३५, एवम् ४२, एवमादितः २५९॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'शक्रादिस्तुति' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति, चण्ड-मुण्डके मुखसे अम्बिकाके रूपकी प्रशंसा सुनकर शुम्भका उनके पास दूत भेजना और दूतका निराश लौटना

विनियोग

[ॐ अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्र ऋषिः महासरस्वती देवता अनुष्टुप् छन्दः भीमा शक्तिः भ्रामरी बीजं सूर्यस्तत्त्वं सामवेदः स्वरूपं महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः।

ॐ इस उत्तर चरित्रके रुद्र ऋषि हैं, महासरस्वती देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है, भीमा शक्ति है, भ्रामरी बीज है, सूर्य तत्त्व है और सामवेद स्वरूप है। महासरस्वतीकी प्रसन्नताके लिये उत्तर चरित्रके पाठमें इसका विनियोग किया जाता है।

ध्यान

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

जो अपने करकमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, शरद्‌ऋतुके शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकोंकी आधारभूता और शुम्भ आदि दैत्योंका नाश करनेवाली हैं तथा गौरीके शरीरसे जिनका प्राकट्य हुआ है, उन महासरस्वती देवीका मैं निरन्तर भजन करता हूँ।]

ऋषिरुवाच॥ १॥

ॐ क्लीं पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्॥ २॥
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च॥ ३॥
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः॥ ४॥
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्॥ ५॥

---

१. किसी-किसी प्रतिमें 'गौरीदेहा सा' 'गौरी देहासा' इत्यादि पाठ भी उपलब्ध होते हैं। २. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद 'अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति' इतना पाठ अधिक है।

त्वयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥ ६ ॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ ७ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ १ ॥ पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरोंने अपने बलके घमंडमें आकर शचीपति इन्द्रके हाथसे तीनों लोकोंका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये ॥ २ ॥ वे ही दोनों सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर, यम और वरुणके अधिकारका भी उपयोग करने लगे । वायु और अग्निका कार्य भी वे ही करने लगे । उन दोनोंने सब देवताओंको अपमानित, राज्यभ्रष्ट, पराजित तथा अधिकारहीन करके स्वर्गसे निकाल दिया । उन दोनों महान् असुरोंसे तिरस्कृत देवताओंने अपराजिता देवीका स्मरण किया और सोचा 'जगदम्बाने हमलोगोंको वर दिया था कि आपत्तिकालमें स्मरण करनेपर मैं तुम्हारी सब आपत्तियोंका तत्काल नाश कर दूँगी' ॥ ३—६ ॥ यह विचारकर देवता गिरिराज हिमालयपर गये और वहाँ भगवती विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः ॥ ८ ॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ९ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ १० ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ११ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ १२ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ १३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै ॥ १४॥ नमस्तस्यै ॥ १५॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै ॥ १७॥ नमस्तस्यै ॥ १८॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ २०॥ नमस्तस्यै ॥ २१॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ २३॥ नमस्तस्यै ॥ २४॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥

१. वृद्ध्यै सिद्ध्यै च प्रणतां देवीं प्रति नमः नतिं कुर्म इत्यन्वयः । प्रह्व्वा प्रणमन्तीति प्रणताः, तेषां प्रणतामिति पष्ठीबहुवचनान्तं बोध्यम् । इति शान्तनव्यां टीकायां स्पष्टम् । 'प्रणताः' इति पाठान्तरम् ।

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ २६॥ नमस्तस्यै ॥ २७॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ २९॥ नमस्तस्यै ॥ ३०॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ३२॥ नमस्तस्यै ॥ ३३॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ३५॥ नमस्तस्यै ॥ ३६॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ३८॥ नमस्तस्यै ॥ ३९॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४० ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ४१॥ नमस्तस्यै ॥ ४२॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ४४॥ नमस्तस्यै ॥ ४५॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ४७॥ नमस्तस्यै ॥ ४८॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ५०॥ नमस्तस्यै ॥ ५१॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ५३॥ नमस्तस्यै ॥ ५४॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ५६॥ नमस्तस्यै ॥ ५७॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ५९॥ नमस्तस्यै ॥ ६०॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ६२॥ नमस्तस्यै ॥ ६३॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ६५॥ नमस्तस्यै ॥ ६६॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ६८॥ नमस्तस्यै ॥ ६९॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७० ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ७१॥ नमस्तस्यै ॥ ७२॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥ ७४॥ नमस्तस्यै ॥ ७५॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७६ ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ ७७ ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै ॥ ७८॥ नमस्तस्यै ॥ ७९॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८० ॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ ८१ ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ८२ ॥

देवता बोले—॥ ८ ॥ देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्राको प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक जगदम्बाको नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ रौद्राको नमस्कार है। नित्या, गौरी एवं धात्रीको बारंबार नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवीको सतत प्रणाम है ॥ १० ॥ शरणागतोंका कल्याण करनेवाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवीको हम बारंबार नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसोंकी लक्ष्मी), राजाओंकी लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी)-स्वरूपा आप जगदम्बाको बार-बार नमस्कार है ॥ ११ ॥ दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकटसे पार उतारनेवाली), सारा (सबकी सारभूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवीको सर्वदा नमस्कार है ॥ १२ ॥ अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्ररूपा देवीको हम नमस्कार करते हैं, उन्हें हमारा बारंबार प्रणाम है। जगत्की आधारभूता कृति देवीको बारंबार नमस्कार है ॥ १३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें विष्णुमायाके नामसे कही जाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥१४—१६॥ जो देवी सब प्राणियोंमें चेतना कहलाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ १७—१९ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ २०—२२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ २३—२५॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ २६—२८ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें छायारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ २९—३१ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ३२—३४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तृष्णारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ३५—३७ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षान्ति (क्षमा) रूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ३८—४० ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें जातिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ४१—४३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लज्जारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ४४—४६ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ४७—४९ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ५०—५२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें कान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ५३—५५ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लक्ष्मीरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ५६—५८ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ५९—६१ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें स्मृतिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ६२—६४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें दयारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ६५—६७ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ६८—७० ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें मातारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ७१—७३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें भ्रान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ७४—७६ ॥ जो जीवोंके इन्द्रियवर्गकी अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियोंमें सदा व्याप्त रहनेवाली हैं, उन व्याप्तिदेवीको बारंबार नमस्कार है ॥ ७७ ॥ जो देवी चैतन्यरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ७८—८० ॥ पूर्वकालमें अपने अभीष्टकी प्राप्ति होनेसे देवताओंने जिनकी स्तुति की तथा देवराज इन्द्रने बहुत दिनोंतक जिनका सेवन किया, वह कल्याणकी साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मङ्गल करें

तथा सारी आपत्तियोंका नाश कर डाले ॥ ८१ ॥ उद्दण्ड दैत्योंसे सताये हुए हम सभी देवता जिन परमेश्वरीको इस समय नमस्कार करते हैं तथा जो भक्तिसे विनम्र पुरुषोंद्वारा स्मरण की जानेपर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश कर देती हैं, वे जगदम्बा हमारा संकट दूर करें ॥ ८२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८३ ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती ।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥ ८४ ॥
साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ ८५ ॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः ।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ ८६ ॥
शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ८७ ॥
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ ८८ ॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८९ ॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ ९० ॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ ९१ ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥ ९२ ॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥ ९३ ॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ ९४ ॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ ९५ ॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ९६ ॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति ।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥ ९७ ॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता ।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ ९८ ॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ ९९ ॥
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥ १०० ॥

ऋषि कहते हैं—॥ ८३ ॥ राजन्! इस प्रकार जब देवता स्तुति कर रहे थे, उस समय पार्वती देवी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेके लिये वहाँ आयीं ॥ ८४ ॥ उन सुन्दर भौंहोंवाली भगवतीने देवताओंसे पूछा—'आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' तब उन्हींके शरीरकोशसे प्रकट हुई शिवादेवी बोलीं—॥८५॥ 'शुम्भदैत्यसे तिरस्कृत और युद्धमें निशुम्भसे पराजित हो यहाँ एकत्रित हुए ये समस्त देवता यह मेरी ही स्तुति कर रहे हैं' ॥८६॥ पार्वतीजीके शरीरकोशसे अम्बिकाका प्रादुर्भाव हुआ था, इसलिये वे समस्त लोकोंमें 'कौशिकी' कही जाती हैं ॥८७॥ कौशिकीके प्रकट होनेके बाद पार्वतीदेवीका शरीर काले रंगका हो गया, अतः वे हिमालयपर रहनेवाली कालिकादेवीके नामसे विख्यात हुईं ॥ ८८ ॥ तदनन्तर शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्ड वहाँ आये और उन्होंने परम मनोहर रूप धारण करनेवाली अम्बिकादेवीको देखा ॥ ८९ ॥ फिर वे शुम्भके पास जाकर बोले—'महाराज! एक अत्यन्त मनोहर स्त्री है, जो अपनी दिव्य कान्तिसे हिमालयको प्रकाशित कर रही है ॥ ९० ॥ वैसा उत्तम रूप कहीं किसीने भी नहीं देखा होगा। असुरेश्वर! पता लगाइये, वह देवी कौन है और उसे पकड़ लीजिये ॥ ९१ ॥ स्त्रियोंमें तो वह रत्न है, उसका प्रत्येक अङ्ग बहुत ही सुन्दर है तथा वह अपने श्रीअङ्गोंकी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रकाश फैला रही है। दैत्यराज! अभी वह हिमालयपर ही मौजूद है; आप उसे देख सकते हैं ॥ ९२ ॥ प्रभो! तीनों लोकोंमें मणि, हाथी और घोड़े आदि जितने भी रत्न हैं, वे सब इस समय आपके घरमें शोभा पाते हैं ॥ ९३ ॥ हाथियोंमें रत्नभूत ऐरावत, यह पारिजातका वृक्ष और यह उच्चैःश्रवा घोड़ा—यह सब आपने इन्द्रसे ले लिया है ॥ ९४ ॥ हंसोंसे जुता हुआ यह विमान भी आपके आँगनमें शोभा पाता है। यह रत्नभूत अद्भुत विमान, जो पहले ब्रह्माजीके पास था, अब आपके यहाँ लाया गया है ॥ ९५ ॥ यह महापद्म नामक निधि आप कुबेरसे छीन लाये हैं। समुद्रने भी आपको किञ्जल्किनी नामकी माला भेंट की है, जो केसरोंसे सुशोभित है और जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं ॥ ९६ ॥ सुवर्णकी वर्षा करनेवाला वरुणका

१. पा०—समस्तैः । २. पा०—कोषा । ३. पा०—कौशिकी ।

१. पा०—आप ।

छत्र भी आपके घरमें शोभा पाता है तथा यह श्रेष्ठ रथ, जो पहले प्रजापतिके अधिकारमें था, अब आपके पास मौजूद है ॥ ९७ ॥ दैत्येश्वर! मृत्युकी उत्क्रान्तिदा नामवाली शक्ति भी आपने छीन ली है तथा वरुणका पाश और समुद्रमें होनेवाले अनेक प्रकारके रत्न आपके भाई निशुम्भके अधिकारमें हैं। अग्निने भी स्वतः शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपकी सेवामें अर्पित किये हैं ॥ ९८-९९ ॥ दैत्यराज! इस प्रकार सभी रत्न आपने एकत्र कर लिये हैं। फिर जो यह स्त्रियोंमें रत्नरूप कल्याणमयी देवी है, इसे आप क्यों नहीं अपने अधिकारमें कर लेते? ॥ १०० ॥

ऋषिरुवाच ॥ १०१ ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्[1] ॥१०२॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥१०३॥
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा[2] देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥१०४॥

ऋषि कहते हैं—॥ १०१ ॥ चण्ड-मुण्डका यह वचन सुनकर शुम्भने महादैत्य सुग्रीवको दूत बनाकर देवीके पास भेजा और कहा—'तुम मेरी आज्ञासे उसके सामने ये-ये बातें कहना और ऐसा उपाय करना जिससे प्रसन्न होकर वह शीघ्र ही यहाँ आ जाय' ॥ १०२-१०३ ॥ वह दूत पर्वतके अत्यन्त रमणीय प्रदेशमें, जहाँ देवी मौजूद थीं, गया और मधुर वाणीमें कोमल वचन बोला ॥ १०४ ॥

दूत उवाच ॥ १०५ ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥१०६॥
अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥१०७॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥१०८॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं[3] च हृत्वा[4] देवेन्द्रवाहनम् ॥१०९॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥११०॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥१११॥

1. पा०—इसके बाद कहीं-कहीं 'शुम्भ उवाच' इतना अधिक पाठ है। 2. पा०—तां च देवी ततः। 3. पा०—गजरत्नानि हृत्वा। 4. पा०—हृतं।

स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥११२॥
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥११३॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥११४॥

दूत बोला—॥ १०५ ॥ देवि! दैत्यराज शुम्भ इस समय तीनों लोकोंके परमेश्वर हैं। मैं उनका भेजा हुआ दूत हूँ और यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ ॥ १०६ ॥ उनकी आज्ञा सदा सब देवता एक स्वरसे मानते हैं। कोई उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण देवताओंको परास्त कर चुके हैं। उन्होंने तुम्हारे लिये जो संदेश दिया है, उसे सुनो ॥ १०७ ॥ 'सम्पूर्ण त्रिलोकी मेरे अधिकारमें है। देवता भी मेरी आज्ञाके अधीन चलते हैं। सम्पूर्ण यज्ञोंके भागोंको मैं ही पृथक्-पृथक् भोगता हूँ ॥ १०८ ॥ तीनों लोकोंमें जितने श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब मेरे अधिकारमें हैं। देवराज इन्द्रका वाहन ऐरावत, जो हाथियोंमें रत्नके समान है, मैंने छीन लिया है ॥ १०९ ॥ क्षीरसागरका मन्थन करनेसे जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा प्रकट हुआ था, उसे देवताओंने मेरे पैरोंपर पड़कर समर्पित किया है ॥ ११० ॥ सुन्दरी! उनके सिवा



छत्र भी आपके घरमें शोभा पाता है तथा यह श्रेष्ठ रथ, जो पहले प्रजापतिके अधिकारमें था, अब आपके पास मौजूद है ॥ ९७ ॥ दैत्येश्वर! मृत्युकी उत्क्रान्तिदा नामवाली शक्ति भी आपने छीन ली है तथा वरुणका पाश और समुद्रमें होनेवाले अनेक प्रकारके रत्न आपके भाई निशुम्भके अधिकारमें हैं। अग्निने भी स्वतः शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपकी सेवामें अर्पित किये हैं ॥ ९८-९९ ॥ दैत्यराज! इस प्रकार सभी रत्न आपने एकत्र कर लिये हैं। फिर जो यह स्त्रियोंमें रत्नरूप कल्याणमयी देवी है, इसे आप क्यों नहीं अपने अधिकारमें कर लेते? ॥ १०० ॥

ऋषिरुवाच ॥ १०१ ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्[1] ॥१०२॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥१०३॥
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने।
सा[2] देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥१०४॥

ऋषि कहते हैं—॥ १०१ ॥ चण्ड-मुण्डका यह वचन सुनकर शुम्भने महादैत्य सुग्रीवको दूत बनाकर देवीके पास भेजा और कहा—'तुम मेरी आज्ञासे उसके सामने ये-ये बातें कहना और ऐसा उपाय करना जिससे प्रसन्न होकर वह शीघ्र ही यहाँ आ जाय' ॥ १०२–१०३ ॥ वह दूत पर्वतके अत्यन्त रमणीय प्रदेशमें, जहाँ देवी मौजूद थीं, गया और मधुर वाणीमें कोमल वचन बोला ॥ १०४ ॥

दूत उवाच ॥ १०५ ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥१०६॥
अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥१०७॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥१०८॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा[3] देवेन्द्रवाहनम् ॥१०९॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥११०॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥१११॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥११२॥
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥११३॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥११४॥

दूत बोला—॥ १०५ ॥ देवि! दैत्यराज शुम्भ इस समय तीनों लोकोंके परमेश्वर हैं। मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत हूँ और यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ ॥ १०६ ॥ उनकी आज्ञा सदा सब देवता एक स्वरसे मानते हैं। कोई उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण देवताओंको परास्त कर चुके हैं। उन्होंने तुम्हारे लिये जो संदेश दिया है, उसे सुनो ॥ १०७ ॥ 'सम्पूर्ण त्रिलोकी मेरे अधिकारमें है। देवता भी मेरी आज्ञाके अधीन चलते हैं। सम्पूर्ण यज्ञोंके भागोंको मैं ही पृथक्-पृथक् भोगता हूँ ॥ १०८ ॥ तीनों लोकोंमें जितने श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब मेरे अधिकारमें हैं। देवराज इन्द्रका वाहन ऐरावत, जो हाथियोंमें रत्नके समान है, मैंने छीन लिया है ॥ १०९ ॥ क्षीरसागरका मन्थन करनेसे जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा प्रकट हुआ था, उसे देवताओंने मेरे पैरोंपर पड़कर समर्पित किया है ॥ ११० ॥ सुन्दरी! उनके सिवा



१. पा०—इसके बाद कहीं-कहीं 'शुम्भ उवाच' इतना अधिक पाठ है। २. पा०—तां च देवी ततः। ३. पा०—गजरत्नानि हृत्वा। ४. पा०—त्वां।

तथा सारी आपत्तियोंका नाश कर डाले ॥८१॥ उद्दण्ड दैत्योंसे सताये हुए हम सभी देवता जिन परमेश्वरीको इस समय नमस्कार करते हैं तथा जो भक्तिसे विनम्र पुरुषोंद्वारा स्मरण की जानेपर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश कर देती हैं, वे जगदम्बा हमारा संकट दूर करें ॥ ८२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८३ ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥ ८४ ॥
साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ ८५ ॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः स[1]मेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ ८६ ॥
शरीरकोश[2]ाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौ[3]शिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ८७ ॥
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ ८८ ॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८९ ॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ ९० ॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ ९१ ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥ ९२ ॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥ ९३ ॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ ९४ ॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ ९५ ॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ९६ ॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥ ९७ ॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ ९८ ॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।
वह्निर[1]पि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ ९९ ॥
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥१००॥

ऋषि कहते हैं— ॥ ८३ ॥ राजन्! इस प्रकार जब देवता स्तुति कर रहे थे, उस समय पार्वती देवी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेके लिये वहाँ आयीं ॥ ८४ ॥ उन सुन्दर भौंहोंवाली भगवतीने देवताओंसे पूछा—'आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' तब उन्हींके शरीरकोशसे प्रकट हुई शिवादेवी बोलीं—॥८५॥ 'शुम्भदैत्यसे तिरस्कृत और युद्धमें निशुम्भसे पराजित हो यहाँ एकत्रित हुए ये समस्त देवता यह मेरी ही स्तुति कर रहे हैं' ॥८६॥ पार्वतीजीके शरीरकोशसे अम्बिकाका प्रादुर्भाव हुआ था, इसलिये वे समस्त लोकोंमें 'कौशिकी' कही जाती हैं ॥८७॥ कौशिकीके प्रकट होनेके बाद पार्वतीदेवीका शरीर काले रंगका हो गया, अतः वे हिमालयपर रहनेवाली कालिकादेवीके नामसे विख्यात हुईं ॥ ८८ ॥ तदनन्तर शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्ड वहाँ आये और उन्होंने परम मनोहर रूप धारण करनेवाली अम्बिकादेवीको देखा ॥ ८९ ॥ फिर वे शुम्भके पास जाकर बोले—'महाराज! एक अत्यन्त मनोहर स्त्री है, जो अपनी दिव्य कान्तिसे हिमालयको प्रकाशित कर रही है ॥ ९० ॥ वैसा उत्तम रूप कहीं किसीने भी नहीं देखा होगा। असुरेश्वर! पता लगाइये, वह देवी कौन है और उसे पकड़ लीजिये ॥ ९१ ॥ स्त्रियोंमें तो वह रत्न है, उसका प्रत्येक अङ्ग बहुत ही सुन्दर है तथा वह अपने श्रीअङ्गोंकी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रकाश फैला रही है। दैत्यराज! अभी वह हिमालयपर ही मौजूद है, आप उसे देख सकते हैं ॥ ९२ ॥ प्रभो! तीनों लोकोंमें मणि, हाथी और घोड़े आदि जितने भी रत्न हैं, वे सब इस समय आपके घरमें शोभा पाते हैं ॥ ९३ ॥ हाथियोंमें रत्नभूत ऐरावत, यह पारिजातका वृक्ष और यह उच्चैःश्रवा घोड़ा—यह सब आपने इन्द्रसे ले लिया है ॥ ९४ ॥ हंसोंसे जुता हुआ यह विमान भी आपके आँगनमें शोभा पाता है। यह रत्नभूत अद्भुत विमान, जो पहले ब्रह्माजीके पास था, अब आपके यहाँ लाया गया है ॥ ९५ ॥ यह महापद्म नामक निधि आप कुबेरसे छीन लाये हैं। समुद्रने भी आपको किञ्जल्किनी नामकी माला भेंट की है, जो केसरोंसे सुशोभित है और जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं ॥ ९६ ॥ सुवर्णकी वर्षा करनेवाला वरुणका

१. पा०—समस्तैः। २. पा०—कोषा। ३. पा०—कौषिकी।

१. पा०—श्राप।

छत्र भी आपके घरमें शोभा पाता है तथा यह श्रेष्ठ रथ, जो पहले प्रजापतिके अधिकारमें था, अब आपके पास मौजूद है ॥ ९७ ॥ दैत्येश्वर! मृत्युकी उत्क्रान्तिदा नामवाली शक्ति भी आपने छीन ली है तथा वरुणका पाश और समुद्रमें होनेवाले सब प्रकारके रत्न आपके भाई निशुम्भके अधिकारमें हैं। अग्निने भी स्वतः शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपकी सेवामें अर्पित किये हैं ॥ ९८-९९ ॥ दैत्यराज! इस प्रकार सभी रत्न आपने एकत्र कर लिये हैं। फिर जो यह स्त्रियोंमें रत्नरूप कल्याणमयी देवी है, इसे आप क्यों नहीं अपने अधिकारमें कर लेते? ॥ १०० ॥

ऋषिरुवाच ॥ १०१ ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्[1] ॥ १०२ ॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥ १०३ ॥
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने।
सो देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ १०४ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ १०१ ॥ चण्ड-मुण्डका यह वचन सुनकर शुम्भने महादैत्य सुग्रीवको दूत बनाकर देवीके पास भेजा और कहा—'तुम मेरी आज्ञासे उसके सामने ये-ये बातें कहना और ऐसा उपाय करना जिससे प्रसन्न होकर वह शीघ्र ही यहाँ आ जाय' ॥ १०२-१०३ ॥ वह दूत पर्वतके अत्यन्त रमणीय प्रदेशमें, जहाँ देवी मौजूद थीं, गया और मधुर वाणीमें कोमल वचन बोला ॥ १०४ ॥

दूत उवाच ॥ १०५ ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ १०६ ॥
अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥ १०७ ॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥ १०८ ॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः।
तथैव गजरत्नं[3] च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥ १०९ ॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥ ११० ॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥ १११ ॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥ ११२ ॥
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥ ११३ ॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥ ११४ ॥

दूत बोला—॥ १०५ ॥ देवि! दैत्यराज शुम्भ इस समय तीनों लोकोंके परमेश्वर हैं। मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत हूँ और यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ ॥ १०६ ॥ उनकी आज्ञा सदा सब देवता एक स्वरसे मानते हैं। कोई उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण देवताओंको परास्त कर चुके हैं। उन्होंने तुम्हारे लिये जो संदेश दिया है, उसे सुनो ॥ १०७ ॥ 'सम्पूर्ण त्रिलोकी मेरे अधिकारमें है। देवता भी मेरी आज्ञाके अधीन चलते हैं। सम्पूर्ण यज्ञोंके भागोंको मैं ही पृथक्-पृथक् भोगता हूँ ॥ १०८ ॥ तीनों लोकोंमें जितने श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब मेरे अधिकारमें हैं। देवराज इन्द्रका वाहन ऐरावत, जो हाथियोंमें रत्नके समान है, मैंने छीन लिया है ॥ १०९ ॥ क्षीरसागरका मन्थन करनेसे जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा प्रकट हुआ था, उसे देवताओंने मेरे पैरोंपर पड़कर समर्पित किया है ॥ ११० ॥ सुन्दरी! उनके सिवा



1. पा०—इसके बाद कहीं-कहीं 'शुम्भ उवाच' इतना अधिक पाठ है। 2. पा०—तां च देवीं ततः। 3. पा०—गजरत्नानि हृत्वा। 4. पा०—रत्नं।

और भी जितने रत्नभूत पदार्थ देवताओं, गन्धर्वों और नागोंके पास थे, वे सब मेरे ही पास आ गये हैं ॥ १११ ॥ देवि ! हमलोग तुम्हें संसारकी स्त्रियोंमें रत्न मानते हैं, अतः तुम हमारे पास आ जाओ; क्योंकि रत्नोंका उपभोग करनेवाले हम ही हैं ॥ ११२ ॥ चञ्चल कटाक्षोंवाली सुन्दरी ! तुम मेरी या मेरे भाई महापराक्रमी निशुम्भकी सेवामें आ जाओ; क्योंकि तुम रत्नस्वरूपा हो ॥ ११३ ॥ मेरा वरण करनेसे तुम्हें तुलनारहित महान् ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी। अपनी बुद्धिसे यह विचार कर तुम मेरी पत्नी बन जाओ' ॥ ११४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ११५ ॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥११६॥

ऋषि कहते हैं—॥ ११५ ॥ दूतके यों कहनेपर कल्याणमयी भगवती दुर्गादेवी, जो इस जगत्‌को धारण करती हैं, मन-ही-मन गम्भीर भावसे मुसकरायीं और इस प्रकार बोलीं—॥ ११६ ॥

देव्युवाच ॥ ११७ ॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥११८॥
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥११९॥
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥१२०॥
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः ।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥१२१॥

देवीने कहा—॥ ११७ ॥ दूत ! तुमने सत्य कहा है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है। शुम्भ तीनों लोकोंका स्वामी है और निशुम्भ भी उसीके समान पराक्रमी है ॥ ११८ ॥ किंतु इस विषयमें मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसे मिथ्या कैसे करूँ। मैंने अपनी अल्पबुद्धिके कारण पहलेसे जो प्रतिज्ञा कर रक्खी है, उसको सुनो ॥ ११९ ॥ 'जो मुझे संग्राममें जीत लेगा, जो मेरे अभिमानको चूर्ण कर देगा तथा संसारमें जो मेरे समान बलवान् होगा, वही मेरा स्वामी होगा' ॥ १२० ॥ इसलिये शुम्भ अथवा महादैत्य निशुम्भ स्वयं ही यहाँ पधारें और मुझे जीतकर शीघ्र ही मेरा पाणिग्रहण कर लें, इसमें विलम्बकी क्या आवश्यकता है ॥ १२१ ॥

दूत उवाच ॥ १२२ ॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥१२३॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥१२४॥
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥१२५॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥१२६॥

दूत बोला—॥ १२२ ॥ देवि ! तुम घमंडमें भरी हो, मेरे सामने ऐसी बातें न करो। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो शुम्भ-निशुम्भके सामने खड़ा हो सके ॥ १२३ ॥ देवि ! अन्य दैत्योंके सामने भी सारे देवता युद्धमें नहीं ठहर सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर कैसे ठहर सकती हो ॥ १२४ ॥ जिन शुम्भ आदि दैत्योंके सामने इन्द्र आदि देवता भी युद्धमें खड़े नहीं हुए, उनके सामने तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी ॥ १२५ ॥ इसलिये तुम मेरे ही कहनेसे शुम्भ-निशुम्भके पास चली चलो। ऐसा करनेसे तुम्हारे गौरवकी रक्षा होगी; अन्यथा जब वे केश पकड़कर घसीटेंगे, तब तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा खोकर जाना पड़ेगा ॥ १२६ ॥

देव्युवाच ॥ १२७ ॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥१२८॥
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः ।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत्[1] ॥ॐ॥१२९॥

देवीने कहा—॥ १२७ ॥ तुम्हारा कहना ठीक है, शुम्भ बलवान् हैं और निशुम्भ भी बड़े पराक्रमी हैं; किंतु क्या करूँ। मैंने पहले बिना सोचे-समझे प्रतिज्ञा कर ली है ॥१२८॥ अतः अब तुम जाओ; मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह सब दैत्यराजसे आदरपूर्वक कहना। फिर वे जो उचित जान पड़े, करें ॥ १२९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्यादूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
उवाच ९, त्रिपान्मन्त्राः ६६, श्लोकाः ५४, एवम् १२९, एवमादितः ३८८ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'देवी-दूत-संवाद' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

[1] पा०—यत् ।

षष्ठोऽध्यायः

धूम्रलोचन-वध

ध्यान

(ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये॥)

[मैं सर्वज्ञेश्वर भैरवके अङ्कमें निवास करनेवाली परमोत्कृष्ट पद्मावती देवीका चिन्तन करता हूँ। वे नागराजके आसनपर बैठी हैं, नागोंके फणोंमें सुशोभित होनेवाली मणियोंकी विशाल मालासे उनकी देहलता उद्भासित हो रही है। सूर्यके समान उनका तेज है, तीन नेत्र उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे हाथोंमें माला, कुम्भ, कपाल और कमल लिये हुए हैं तथा उनके मस्तकमें अर्द्धचन्द्रका मुकुट सुशोभित है।]

ऋषिरुवाच॥ १॥

'ॐ' इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात्॥ २॥
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम्॥ ३॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्॥ ४॥
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा॥ ५॥

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ देवीका यह कथन सुनकर दूतको बड़ा अमर्ष हुआ और उसने दैत्यराजके पास जाकर सब समाचार विस्तारपूर्वक कह सुनाया॥ २॥ दूतके उस वचनको सुनकर दैत्यराज कुपित हो उठा और दैत्यसेनापति धूम्रलोचनसे बोला—॥ ३॥ 'धूम्रलोचन! तुम शीघ्र अपनी सेना साथ लेकर जाओ और उस दुष्टाको केश पकड़कर घसीटते हुए जबरदस्ती यहाँ ले आओ॥ ४॥ उसकी रक्षा करनेके लिये यदि कोई दूसरा खड़ा हो तो वह देवता, यक्ष अथवा गन्धर्व—कोई भी क्यों न हो, उसे अवश्य मार डालना'॥ ५॥



ऋषिरुवाच॥ ६॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ॥ ७॥
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः॥ ८॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम्॥ ९॥

ऋषि कहते हैं—॥ ६॥ शुम्भके इस प्रकार आज्ञा देनेपर वह धूम्रलोचन दैत्य साठ हजार असुरोंकी सेनाको साथ लेकर वहाँसे तुरंत चल दिया॥ ७॥ वहाँ पहुँचकर उसने हिमालयपर रहनेवाली देवीको देखा और ललकारकर कहा—'अरी! तू शुम्भ-निशुम्भके पास चल। यदि इस समय प्रसन्नतापूर्वक मेरे स्वामीके समीप नहीं चलेगी तो मैं बलपूर्वक झोंटा पकड़कर घसीटते हुए तुझे ले चलूँगा'॥ ८-९॥

देव्युवाच ॥ १० ॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥ ११ ॥

देवी बोलीं—॥ १० ॥ तुम्हें दैत्योंके राजाने भेजा है, तुम स्वयं भी बलवान् हो और तुम्हारे साथ विशाल सेना भी है; ऐसी दशामें यदि मुझे बलपूर्वक ले चलोगे तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ ॥ ११ ॥

ऋषिरुवाच ॥ १२ ॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥ १३ ॥
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका[1] ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥ १४ ॥
ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥ १५ ॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य[2] चाधरेणान्यान्[3] स जघान[4] महासुरान् ॥ १६ ॥
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी[5] ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥ १७ ॥
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥ १८ ॥
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ १९ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ १२ ॥ देवीके यों कहनेपर असुर धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ा, तब अम्बिकाने 'हुं' शब्दके उच्चारण मात्रसे उसको भस्म कर दिया ॥ १३ ॥ फिर तो क्रोधमें भरी हुई दैत्योंकी विशाल सेना और अम्बिकाने एक दूसरेपर तीखे सायकों, शक्तियों तथा फरसोंकी वर्षा आरम्भ की ॥ १४ ॥ इतनेमें ही देवीका वाहन सिंह क्रोधमें भरकर भयंकर गर्जना करके गर्दनके बालोंको हिलाता हुआ असुरोंकी सेनामें कूद पड़ा ॥ १५ ॥ उसने कुछ दैत्योंको पंजोंकी मारसे, कितनोंको अपने जबड़ोंसे और कितने ही महादैत्योंको पटककर ओठकी दाढ़ोंसे घायल करके मार डाला ॥ १६ ॥ उस सिंहने अपने नखोंसे कितनोंके पेट



फाड़ डाले और थप्पड़ मारकर कितनोंके सिर धड़से अलग कर दिये ॥ १७ ॥ कितनोंकी भुजाएँ और मस्तक काट डाले तथा अपनी गर्दनके बाल हिलाते हुए उसने दूसरे दैत्योंके पेट फाड़कर उनका रक्त चूस लिया ॥ १८ ॥ अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए देवीके वाहन उस महाबली सिंहने क्षणभरमें ही असुरोंकी सारी सेनाका संहार कर डाला ॥ १९ ॥

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥ २० ॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ २१ ॥
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ २२ ॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ २३ ॥
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्[1] ॥ २४ ॥

शुम्भने जब सुना कि देवीने धूम्रलोचन असुरको मार डाला तथा उसके सिंहने सारी सेनाका सफाया कर डाला, तब

१. पा०—तथाम्बिकाम् । २. पा०—आक्रान्त्या । ३. पा०—चरणेनान्यान् । ४. यहाँ तीन तरहके पाठान्तर मिलते हैं—संजघान, निजघान, जघान सु महा० । ५. पा०—केशरी । बंगला प्रतिमें सब जगह 'केसरी' और 'केसर' शब्दमें तालव्य 'श' का प्रयोग है ।

१. पा०—कैः ।

कालीका प्रादुर्भाव



काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ।

[पृष्ठ २१९

उस दैत्यराजको बड़ा क्रोध हुआ। उसका ओठ काँपने लगा। उसने चण्ड और मुण्ड नामक दो महादैत्योंको आज्ञा दी—॥ २०-२१ ॥ 'हे चण्ड! और हे मुण्ड! तुमलोग बहुत बड़ी सेना लेकर वहाँ जाओ और उस देवीके झोंटे पकड़कर अथवा उसे बाँधकर शीघ्र यहाँ ले आओ। यदि इस प्रकार उसको लानेमें तुम्हें संदेह हो तो युद्धमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों तथा समस्त आसुरी सेनाका प्रयोग करके उसकी हत्या कर डालना ॥ २२-२३ ॥ उस दुष्टाकी हत्या होने तथा सिंहके भी मारे जानेपर उस अम्बिकाको बाँधकर साथ ले शीघ्र ही लौट आना ॥ २४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भसेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

उवाच ४, श्लोकाः २०, एवम् २४, एवमादितः ४१२ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'धूम्रलोचन-वध' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

चण्ड और मुण्डका वध

ध्यान

(ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम्।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम्॥)

[मैं मातङ्गी देवीका ध्यान करता हूँ। वे रत्नमय सिंहासनपर बैठकर पढ़ते हुए तोतेका मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीरका वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमलपर रक्खे हुए हैं और मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करती हैं। कह्लार पुष्पोंकी माला धारण किये वीणा बजाती हैं। उनके अङ्गमें कसी हुई चोली शोभा पा रही है। लाल रंगकी साड़ी पहने हाथमें शङ्खमय पात्र लिये हुए हैं। उनके वदनपर मधुका हल्का-हल्का नशा जान पड़ता है और ललाटमें बेंदी शोभा दे रही है।]

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

'ॐ' आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ २ ॥
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥ ३ ॥
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ४ ॥
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥ ५ ॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥ ६ ॥
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ७ ॥
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ ८ ॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ ९ ॥
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ १० ॥
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥ ११ ॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ १२ ॥
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ १३ ॥
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥ १४ ॥

१. पा०—मसी०। २. पा०—यत्यति।

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः[1] ।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥ १५ ॥
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥ १६ ॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः ।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥ १७ ॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ १८ ॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ १९ ॥
उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत ।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्[2] ॥ २० ॥

ऋषि कहते हैं—॥१॥ तदनन्तर शुम्भकी आज्ञा पाकर वे चण्ड-मुण्ड आदि दैत्य चतुरङ्गिणी सेनाके साथ अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो चल दिये ॥२॥ फिर गिरिराज हिमालयके सुवर्णमय ऊँचे शिखरपर पहुँचकर उन्होंने सिंहपर बैठी हुई देवीको देखा। वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं ॥ ३ ॥ उन्हें देखकर दैत्यलोग तत्परतासे पकड़नेका उद्योग करने लगे। किसीने धनुष तान लिया, किसीने तलवार सँभाली और कुछ लोग देवीके पास आकर खड़े हो गये ॥ ४ ॥ तब अम्बिकाने उन शत्रुओंके प्रति बड़ा क्रोध किया। उस समय क्रोधके कारण उनका मुख काला पड़ गया ॥ ५ ॥ ललाटमें भौंहें टेढ़ी हो गयीं और वहाँसे तुरंत विकरालमुखी काली प्रकट हुईं, जो तलवार और पाश लिये हुए थीं ॥६॥ विचित्र खट्वाङ्ग धारण किये और चीतेके चर्मकी साड़ी पहने नर-मुण्डोंकी मालासे विभूषित थीं। उनके शरीरका मांस सूख गया था, केवल हड्डियोंका ढाँचा था, जिससे वे अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थीं ॥ ७ ॥ उनका मुख बहुत विशाल था, जीभ लपलपानेके कारण वे और भी डरावनी प्रतीत होती थीं। उनकी आँखें भीतरको धँसी हुई और लाल थीं, वे अपनी भयंकर गर्जनासे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजा रही थीं ॥ ८ ॥ बड़े-बड़े दैत्योंका वध करती हुई वे कालिकादेवी बड़े वेगसे दैत्योंकी उस सेनापर टूट पड़ीं और उन सबको भक्षण करने लगीं ॥ ९ ॥ वे पार्श्वरक्षकों, अङ्कुशधारी महावतों, योद्धाओं और घंटासहित कितने ही हाथियोंको एक ही हाथसे पकड़कर मुँहमें डाल लेती थीं ॥ १० ॥ इसी प्रकार घोड़े, रथ और सारथिके साथ रथी सैनिकोंको मुँहमें डालकर वे उन्हें बड़े भयानक रूपसे चबा डालती थीं ॥ ११ ॥ किसीके बाल पकड़ लेतीं, किसीका गला दबा देतीं, किसीको पैरोंसे कुचल डालतीं और किसीको छातीके धक्केसे गिराकर मार डालती थीं ॥ १२ ॥ वे असुरोंके छोड़े हुए बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र मुँहसे पकड़ लेतीं और रोषमें भरकर उनको दाँतोंसे पीस डालती ॥ १३ ॥ कालीने बलवान् एवं दुरात्मा दैत्योंकी वह सारी सेना रौंद डाली, खा डाली और कितनोंको



मार भगाया ॥ १४ ॥ कोई तलवारके घाट उतारे गये, कोई खट्वाङ्गसे पीटे गये और कितने ही असुर दाँतोंके अग्रभागसे कुचले जाकर मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ इस प्रकार देवीने असुरोंकी उस सारी सेनाको क्षणभरमें मार गिराया। यह देख चण्ड उन अत्यन्त भयानक कालीदेवीकी ओर दौड़ा ॥ १६ ॥ तथा महादैत्य मुण्डने भी अत्यन्त भयङ्कर बाणोंकी वर्षासे तथा हजारों बार चलाये हुए चक्रोंसे उन भयानक नेत्रोंवाली देवीको आच्छादित कर दिया ॥ १७ ॥ वे अनेकों चक्र देवीके मुखमें समाते हुए ऐसे जान पड़े, मानो सूर्यके बहुतेरे मण्डल बादलोंके उदरमें प्रवेश कर रहे हों ॥ १८ ॥ तब भयङ्कर गर्जना करनेवाली कालीने अत्यन्त रोषमें भरकर विकट अट्टहास किया। उस समय उनके विकराल वदनके भीतर कठिनतासे देखे जा सकनेवाले दाँतोंकी प्रभासे वे अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देती थीं ॥ १९ ॥

१. पा०—ता रणे। २. शान्तनवी टीकाकारने यहाँ एक श्लोक अधिक पाठ माना है, जो इस प्रकार है—

'छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रश्चक्रे नादं सुभैरवम्।
तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम्॥'

देवीने बहुत बड़ी तलवार हाथमें ले 'हूँ' का उच्चारण करके चण्डपर धावा किया और उसके केश पकड़कर उसी तलवारसे उसका मस्तक काट डाला ॥ २० ॥

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥ २१ ॥
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥ २२ ॥
शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ २३ ॥
मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ २४ ॥

चण्डको मारा गया देख मुण्ड भी देवीकी ओर दौड़ा।



तब देवीने रोषमें भरकर उसे भी तलवारसे घायल करके धरतीपर सुला दिया ॥ २१ ॥ महापराक्रमी चण्ड और मुण्डको मारा गया देख मरनेसे बची हुई बाकी सेना भयसे व्याकुल हो चारों ओर भाग गयी ॥ २२ ॥ तदनन्तर कालीने चण्ड और मुण्डका मस्तक हाथमें ले चण्डिकाके पास जाकर प्रचण्ड अट्टहास करते हुए कहा—॥ २३ ॥ 'देवि! मैंने चण्ड और मुण्ड नामक इन दो महापशुओंको तुम्हें भेंट किया है। अब युद्धयज्ञमें तुम शुम्भ और निशुम्भका स्वयं ही वध करना' ॥ २४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ २५ ॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥ २६ ॥
यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ॐ॥ २७ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ २५ ॥ वहाँ लाये हुए उन चण्ड-मुण्ड नामक महादैत्योंको देखकर कल्याणमयी चण्डीने कालीसे मधुर वाणीमें कहा—॥ २६ ॥ देवि! तुम चण्ड और मुण्डको लेकर मेरे पास आयी हो, इसलिये संसारमें चामुण्डाके नामसे तुम्हारी ख्याति होगी ॥ २७ ॥



इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

उवाच २, श्लोकाः २५, एवम् २७, एवमादितः ४३९ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'चण्ड-मुण्ड-वध' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

रक्तबीज-वध

ध्यान

(ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ॥)

[मैं अणिमा आदि सिद्धिमयी किरणोंसे आवृत भवानीका ध्यान करता हूँ। उनके शरीरका रंग लाल है। नेत्रोंमें करुणा लहरा रही है तथा हाथोंमें पाश, अङ्कुश, बाण और धनुष शोभा पाते हैं।]

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

'ॐ' चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ २ ॥
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ ३ ॥
अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥ ४ ॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ ५ ॥
कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ६ ॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ७ ॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥ ८ ॥
ततः[1] सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका[2] चोपबृंहयत् ॥ ९ ॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥ १० ॥
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥ ११ ॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥ १२ ॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥ १३ ॥

१. पा०— स च । २. पा०—तान्नादानम्बिका ।

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥ १४ ॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥ १५ ॥
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥ १६ ॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥ १७ ॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥ १८ ॥
यज्ञ[1]वाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो[2] हरेः ।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥ १९ ॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ २० ॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता ।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥ २१ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ १ ॥ चण्ड और मुण्ड नामक दैत्योंके मारे जाने तथा बहुत-सी सेनाका संहार हो जानेपर दैत्योंके राजा प्रतापी शुम्भके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और उसने दैत्योंकी सम्पूर्ण सेनाको युद्धके लिये कूच करनेकी आज्ञा दी ॥ २-३ ॥ वह बोला—'आज उदायुध नामके छियासी दैत्य-सेनापति अपनी सेनाओंके साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें। कम्बु नामवाले दैत्योंके चौरासी सेनानायक अपनी वाहिनीसे घिरे हुए यात्रा करें ॥ ४ ॥ पचास कोटिवीर्य कुलके और सौ धौम्र-कुलके असुर सेनापति मेरी आज्ञासे सेनासहित कूच करें ॥ ५ ॥ कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय असुर भी युद्धके लिये तैयार हो मेरी आज्ञासे तुरंत प्रस्थान करें' ॥ ६ ॥ भयानक शासन करनेवाला असुरराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा दे सहस्रों बड़ी-बड़ी सेनाओंके साथ युद्धके लिये प्रस्थित हुआ ॥ ७ ॥ उसकी अत्यन्त भयंकर सेना आती देख चण्डिकाने अपने धनुषकी टंकारसे पृथ्वी और आकाशके बीचका भाग गुँजा दिया ॥ ८ ॥ राजन्! तदनन्तर देवीके

१. पा०—जज्ञे वाराह० । २. पा०—ती ।

देवशक्तियोंका असुरोंपर सामूहिक आक्रमण



यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् । तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥

[पृष्ठ २१६

सिंहने भी बड़े जोर-जोरसे दहाड़ना आरम्भ किया। फिर अम्बिकाने घंटेके शब्दसे उस ध्वनिको और भी बढ़ा दिया ॥ ९ ॥ धनुषकी टंकार, सिंहकी दहाड़ और घंटेकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। उस भयंकर शब्दसे कालीने अपने विकराल मुखको और भी बढ़ा लिया तथा इस प्रकार वे विजयिनी हुईं ॥ १० ॥ उस तुमुल नादको सुनकर दैत्योंकी सेनाओंने चारों ओरसे आकर चण्डिका देवी, सिंह तथा कालीदेवीको क्रोधपूर्वक घेर लिया ॥ ११ ॥ राजन्! इसी बीचमें असुरोंके विनाश तथा देवताओंके अभ्युदयके लिये ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवोंकी शक्तियाँ, जो अत्यन्त पराक्रम और बलसे सम्पन्न थीं, उनके शरीरोंसे निकलकर उन्हींके रूपमें चण्डिकादेवीके पास गयीं ॥ १२-१३ ॥ जिस देवताका जैसा रूप, जैसी वेश-भूषा और जैसा वाहन है, ठीक वैसे ही साधनोंसे सम्पन्न हो उसकी शक्ति असुरोंसे युद्ध करनेके लिये आयी ॥ १४ ॥ सबसे पहले हंसयुक्त विमानपर बैठी हुई अक्षसूत्र और कमण्डलुसे सुशोभित ब्रह्माजीकी शक्ति उपस्थित हुई, जिसे ब्रह्माणी कहते हैं ॥ १५ ॥ महादेवजीकी शक्ति वृषभपर आरूढ़ हो हाथोंमें श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये महानागका कङ्कण पहने, मस्तकमें चन्द्ररेखासे विभूषित हो वहाँ आ पहुँची ॥ १६ ॥



कार्तिकेयजीकी शक्तिरूपा जगदम्बिका उन्हींका रूप धारण किये श्रेष्ठ मयूरपर आरूढ़ हो हाथमें शक्ति लिये दैत्योंसे युद्ध करनेके लिये आयी ॥ १७ ॥ इसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति गरुड़पर विराजमान हो शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा खड्ग हाथमें लिये वहाँ आयी ॥ १८ ॥ अनुपम यज्ञवाराहका रूप धारण करनेवाले श्रीहरिकी जो शक्ति है, वह भी वाराह-शरीर धारण करके वहाँ उपस्थित हुई ॥ १९ ॥ नारसिंही शक्ति भी नृसिंहके समान शरीर धारण करके वहाँ आयी। उसकी गर्दनके बालोंके झटकेसे आकाशके तारे बिखरे पड़ते थे ॥ २० ॥ इसी प्रकार इन्द्रकी शक्ति वज्र हाथमें लिये गजराज ऐरावतपर बैठकर आयी। उसके भी सहस्र नेत्र थे। इन्द्रका जैसा रूप है, वैसा ही उसका भी था ॥ २१ ॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम्॥ २२ ॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥ २३ ॥
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ २४ ॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥ २५ ॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ २६ ॥
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ २७ ॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥ २८ ॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र[1] कात्यायनी स्थिता ॥ २९ ॥
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥ ३० ॥
सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३१ ॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
खट्वाङ्गपोथिताञ्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ ३२ ॥
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥ ३३ ॥

१. पा०—जग्मुर्यतः।

माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥ ३४ ॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३५ ॥
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥ ३६ ॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥ ३७ ॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥ ३८ ॥

तदनन्तर उन देव-शक्तियोंसे घिरे हुए महादेवजीने चण्डिकासे कहा—'मेरी प्रसन्नताके लिये तुम शीघ्र ही इन असुरोंका संहार करो'॥ २२॥ तब देवीके शरीरसे अत्यन्त भयानक और परम उग्र चण्डिका-शक्ति प्रकट हुई, जो सैकड़ों गीदड़ियोंकी भाँति आवाज करनेवाली थी ॥ २३ ॥ उस अपराजिता देवीने धूमिल जटावाले महादेवजीसे कहा—'भगवन् ! आप शुम्भ-निशुम्भके पास दूत बनकर जाइये ॥ २४ ॥ और उन अत्यन्त गर्वीले दानव शुम्भ एवं निशुम्भ—दोनोंसे कहिये । साथ ही उनके अतिरिक्त भी जो दानव युद्धके लिये वहाँ उपस्थित हों, उनको भी यह संदेश दीजिये ॥ २५ ॥ 'दैत्यो ! यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो पातालको लौट जाओ । इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य मिल जाय और देवता यज्ञभागका उपभोग करें ॥ २६ ॥ यदि बलके घमंडमें आकर तुम युद्धकी अभिलाषा रखते हो तो आओ । मेरी शिवाएँ (योगिनियाँ) तुम्हारे कच्चे मांससे तृप्त हों' ॥ २७ ॥ चूँकि उस देवीने भगवान् शिवको दूतके कार्यमें नियुक्त किया था, इसलिये वह 'शिवदूती'के नामसे संसारमें विख्यात हुई ॥ २८ ॥ वे महादैत्य भी भगवान् शिवके मुँहसे देवीके वचन सुनकर क्रोधमें भर गये और जहाँ कात्यायनी विराजमान थीं, उस ओर बढ़े ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे दैत्य अमर्षमें भरकर पहले ही देवीके ऊपर बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे ॥ ३० ॥ तब देवीने भी खेल-खेलमें ही धनुषकी टंकार की और उससे छोड़े हुए बड़े-बड़े बाणोंद्वारा दैत्योंके चलाये हुए बाण, शूल, शक्ति और फरसोंको काट डाला ॥ ३१ ॥ फिर काली उनके आगे होकर शत्रुओंको शूलके प्रहारसे विदीर्ण करने लगी और खट्वाङ्गसे उनका कचूमर निकालती हुई रणभूमिमें विचरने लगी ॥ ३२ ॥ ब्रह्माणी भी जिस-जिस ओर दौड़ती, उसी-





उसी ओर अपने कमण्डलुका जल छिड़ककर शत्रुओंके ओज और पराक्रमको नष्ट कर देती थी ॥ ३३ ॥ माहेश्वरीने त्रिशूलसे तथा वैष्णवीने चक्रसे और अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई कुमार कार्तिकेयकी शक्तिने शक्तिसे दैत्योंका संहार आरम्भ किया ॥ ३४ ॥ इन्द्र-शक्तिके वज्रप्रहारसे विदीर्ण हो सैकड़ों दैत्य-दानव रक्तकी धारा बहाते हुए पृथ्वीपर सो गये ॥ ३५ ॥ वाराही शक्तिने कितनोंको अपनी थूथुनकी मारसे नष्ट किया, दाढ़ोंके अग्रभागसे कितनोंकी छाती छेद डाली तथा कितने ही दैत्य चक्रकी चोटसे विदीर्ण हो गये ॥ ३६ ॥ नारसिंही भी दूसरे-दूसरे महादैत्योंको अपने नखोंसे विदीर्ण करके खाती और सिंहनादसे दिशाओं एवं आकाशको गुँजाती हुई युद्ध-क्षेत्रमें विचरने लगी ॥ ३७ ॥ कितने ही असुर शिवदूतीके प्रचण्ड अट्टहाससे अत्यन्त भयभीत हो पृथ्वीपर गिर पड़े । और गिरनेपर उन्हें शिवदूतीने उस समय अपना ग्रास बना लिया ॥ ३८ ॥

इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥ ३९ ॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥ ४० ॥
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यां[1] तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥ ४१ ॥
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥ ४२ ॥
कुलिशेनाहतस्याशु बहु[2] सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ४३ ॥
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ ४४ ॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥ ४५ ॥
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥ ४६ ॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥ ४७ ॥
वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ ४८ ॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥ ४९ ॥

१. पा०—न्यास्त० । २. पा०—तस्य ।

स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ ५० ॥
तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥ ५१ ॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ ५२ ॥
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥ ५३ ॥
मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना[2] ॥ ५४ ॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ ५५ ॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे[3] ।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥ ५६ ॥
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥ ५७ ॥
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ ५८ ॥
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ।
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ॥ ५९ ॥
देवी शूलेन वज्रेण[4] बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ।
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ॥ ६० ॥
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः[5] ।
नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ॥ ६१ ॥
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥ ६२ ॥
तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ॐ ॥ ६३ ॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए मातृगणोंको नाना प्रकारके उपायोंसे बड़े-बड़े असुरोंका मर्दन करते देख दैत्यसैनिक भाग खड़े हुए ॥ ३९ ॥ मातृगणोंसे पीड़ित दैत्योंको युद्धसे भागते देख रक्तबीज नामका महादैत्य क्रोधमें भरकर युद्धके लिये आया ॥ ४० ॥ उसके शरीरसे जब रक्तकी बूँद पृथ्वीपर गिरती, तब उसीके समान शक्तिशाली एक दूसरा महादैत्य पृथ्वीपर पैदा हो जाता ॥ ४१ ॥ महासुर रक्तबीज हाथमें गदा लेकर इन्द्रशक्तिके साथ युद्ध करने लगा । तब

१. पा०—विस्तरं । २. पा०—वेगिता । ३. इसके बाद कहीं-कहीं 'ऋषिरुवाच' इतना अधिक पाठ है । ४. पा०—चक्रेण । ५. पा०—शस्त्रसंहतितो हतः ।

ऐन्द्रीने अपने वज्रसे रक्तबीजको मारा ॥ ४२ ॥ वज्रसे घायल होनेपर उसके शरीरसे बहुत-सा रक्त चूने लगा और उससे उसीके समान रूप तथा पराक्रमवाले योद्धा उत्पन्न होने लगे ॥ ४३ ॥ उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरीं, उतने ही पुरुष उत्पन्न हो गये। वे सब रक्तबीजके समान ही वीर्यवान्, बलवान् तथा पराक्रमी थे ॥ ४४ ॥ वे रक्तसे उत्पन्न होनेवाले पुरुष भी अत्यन्त भयङ्कर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए वहाँ मातृगणोंके साथ घोर युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥ पुनः वज्रके प्रहारसे जब उसका मस्तक घायल हुआ तो रक्त बहने लगा और उससे हजारों पुरुष उत्पन्न हो गये ॥ ४६ ॥ वैष्णवीने युद्धमें रक्तबीजपर चक्रका प्रहार किया तथा ऐन्द्रीने उस दैत्य-सेनापतिको गदासे चोट पहुँचायी ॥ ४७ ॥ वैष्णवीके चक्रसे घायल होनेपर उसके शरीरसे जो रक्त बहा और उससे जो उसीके बराबर आकारवाले सहस्रों महादैत्य प्रकट हुए, उनके द्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया ॥ ४८ ॥ कौमारीने शक्तिसे, वाराहीने खड्गसे और माहेश्वरीने त्रिशूलसे महादैत्य रक्तबीजको घायल किया ॥ ४९ ॥ क्रोधमें भरे हुए उस महादैत्य रक्तबीजने भी गदासे सभी मातृ-शक्तियोंपर पृथक्-पृथक् प्रहार किया ॥५०॥ शक्ति और शूल आदिसे अनेक बार घायल होनेपर जो उसके शरीरसे रक्तकी धारा पृथ्वीपर गिरी, उससे भी निश्चय ही सैकड़ों असुर उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उस महादैत्यके रक्तसे प्रकट हुए असुरोंद्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। इससे देवताओंको बड़ा भय हुआ ॥ ५२ ॥ देवताओंको उदास देख चण्डिकाने कालीसे शीघ्रतापूर्वक कहा— 'चामुण्डे! तुम अपना मुख और भी फैलाओ ॥ ५३ ॥ तथा मेरे शस्त्रपातसे गिरनेवाले रक्तबिन्दुओं और उनसे उत्पन्न होनेवाले महादैत्योंको तुम अपने इस उतावले मुखसे खा जाओ ॥ ५४ ॥ इस प्रकार रक्तसे उत्पन्न होनेवाले महादैत्योंका भक्षण करती हुई तुम रणमें विचरती रहो। ऐसा करनेसे उस दैत्यका सारा रक्त क्षीण हो जानेपर वह स्वयं भी नष्ट हो जायगा ॥५५॥ उन भयङ्कर दैत्योंको जब तुम खा जाओगी तो दूसरे नये दैत्य उत्पन्न नहीं हो सकेंगे।' यों कहकर चण्डिका



देवीने शूलसे रक्तबीजको मारा ॥ ५६ ॥ और कालीने अपने मुखमें उसका रक्त ले लिया। तब उसने वहाँ चण्डिकापर गदासे प्रहार किया ॥ ५७ ॥ किंतु उस गदापातने देवीको तनिक भी वेदना नहीं पहुँचायी। रक्तबीजके घायल शरीरसे बहुत-सा रक्त गिरा ॥ ५८ ॥ किंतु ज्यों ही वह गिरा त्यों ही चामुण्डाने उसे अपने मुखमें ले लिया। रक्त गिरनेसे कालीके मुखमें जो महादैत्य उत्पन्न हुए, उन्हें भी वह चट कर गयी और उसने रक्तबीजका रक्त भी पी लिया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर देवीने रक्तबीजको, जिसका रक्त चामुण्डाने पी लिया था, वज्र, बाण, खड्ग तथा ऋष्टि आदिसे मार डाला ॥ ६० ॥ राजन्! इस प्रकार शस्त्रोंके समुदायसे आहत एवं रक्तहीन हुआ महादैत्य रक्तबीज पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६१ ॥ नरेश्वर! इससे देवताओंको अनुपम हर्षकी प्राप्ति हुई ॥ ६२ ॥ और मातृगण उन असुरोंके रक्तपानके मदसे उद्धत-सा होकर नृत्य करने लगा ॥ ६३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

उवाच १, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ६१, एवम् ६३, एवमादितः ५०२॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'रक्तबीज-वध' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

निशुम्भ-वध

ध्यान

(ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि॥)

[मैं अर्धनारीश्वरके श्रीविग्रहकी निरन्तर शरण लेता हूँ। उसका वर्ण बन्धूक पुष्प और सुवर्णके समान रक्त-पीतमिश्रित है। वह अपनी भुजाओंमें सुन्दर अक्षमाला, पाश, अङ्कुश और वरद-मुद्रा धारण करता है; अर्धचन्द्र उसका आभूषण है तथा वह तीन नेत्रोंसे सुशोभित है।]

राजोवाच॥१॥

'ॐ' विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम्॥२॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः॥३॥

राजाने कहा—॥१॥ भगवन्! आपने रक्तबीजके वधसे सम्बन्ध रखनेवाला देवी-चरित्रका यह अद्भुत माहात्म्य मुझे बतलाया॥२॥ अब रक्तबीजके मारे जानेपर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए शुम्भ और निशुम्भने जो कर्म किया, उसको मैं सुनना चाहता हूँ॥३॥

ऋषिरुवाच॥४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे॥५॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन्।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया॥६॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः॥७॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः॥८॥
ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः॥९॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः[1]।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ॥१०॥

१. पा०—ऽऽशु शरोत्करैः।

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय[2] सुप्रभम्।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम्॥११॥
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम्।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम्॥१२॥
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम्॥१३॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः।
आयातं[1] मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत्॥१४॥
आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता॥१५॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम्।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले॥१६॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम्॥१७॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः॥१८॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम्॥१९॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना॥२०॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः।
पूरयामास गगनं गां तथैव[3] दिशो दश॥२१॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः॥२२॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ॥२३॥
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः॥२४॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया॥२५॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते॥२६॥

१. पा०—आयान्तं। २. पा०—श्चादाय। ३. पा०—तथोपदिशो।

शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान्।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥ २८ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ ४ ॥ राजन्! युद्धमें रक्तबीज तथा अन्य दैत्योंके मारे जानेपर शुम्भ और निशुम्भके क्रोधकी सीमा न रही ॥ ५ ॥ अपनी विशाल सेना इस प्रकार मारी जाती देख निशुम्भ अमर्षमें भरकर देवीकी ओर दौड़ा। उसके साथ असुरोंकी प्रधान सेना थी ॥ ६ ॥ उसके आगे, पीछे तथा पार्श्वभागमें बड़े-बड़े असुर थे, जो क्रोधसे ओठ चबाते हुए देवीको मार डालनेके लिये आये ॥ ७ ॥ महापराक्रमी शुम्भ भी अपनी सेनाके साथ मातृगणोंसे युद्ध करके क्रोधवश चण्डिकाको मारनेके लिये आ पहुँचा ॥ ८ ॥ तब देवीके साथ शुम्भ और निशुम्भका घोर संग्राम छिड़ गया। वे दोनों दैत्य मेघोंकी भाँति बाणोंकी भयंकर वृष्टि कर रहे थे ॥ ९ ॥ उन दोनोंके चलाये हुए बाणोंको चण्डिकाने अपने बाणोंके समूहसे तुरंत काट डाला और शस्त्रसमूहोंकी वर्षा करके उन दोनों दैत्यपतियोंके अङ्गोंमें भी चोट पहुँचायी ॥ १० ॥ निशुम्भने तीखी तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर देवीके श्रेष्ठ वाहन सिंहके मस्तकपर



प्रहार किया ॥ ११ ॥ अपने वाहनको चोट पहुँचनेपर देवीने क्षुरप्र नामक बाणसे निशुम्भकी श्रेष्ठ तलवार तुरंत ही काट डाली और उसकी ढालको भी, जिसमें आठ चाँद जड़े थे, खण्ड-खण्ड कर दिया ॥ १२ ॥ ढाल और तलवारके कट जानेपर उस असुरने शक्ति चलायी, किंतु सामने आनेपर देवीने चक्रसे उसके भी दो टुकड़े कर दिये ॥ १३ ॥ अब तो निशुम्भ क्रोधसे जल उठा और उस दानवने देवीको मारनेके लिये शूल उठाया; किंतु देवीने समीप आनेपर उसे भी मुक्केसे मारकर चूर्ण कर दिया ॥ १४ ॥ तब उसने गदा घुमाकर चण्डीके ऊपर चलायी, परंतु वह भी देवीके त्रिशूलसे कटकर भस्म हो गयी ॥ १५ ॥ तदनन्तर दैत्यराज निशुम्भको फरसा हाथमें लेकर आते देख देवीने बाणसमूहोंसे घायलकर धरतीपर सुला दिया ॥ १६ ॥ उस भयंकर पराक्रमी भाई निशुम्भके धराशायी हो जानेपर शुम्भको बड़ा क्रोध हुआ और अम्बिकाका वध करनेके लिये वह आगे बढ़ा ॥ १७ ॥ रथपर बैठे-बैठे ही उत्तम आयुधोंसे सुशोभित अपनी बड़ी-बड़ी आठ अनुपम भुजाओंसे समूचे आकाशको ढककर वह अद्भुत शोभा पाने लगा ॥ १८ ॥ उसे आते देख देवीने शङ्ख बजाया और धनुषकी प्रत्यञ्चाका भी अत्यन्त दुस्सह शब्द किया ॥ १९ ॥ साथ ही अपने घंटेके शब्दसे, जो समस्त दैत्य-सैनिकोंका तेज नष्ट करनेवाला था, सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त कर दिया ॥ २० ॥ तदनन्तर सिंहने भी अपनी दहाड़से, जिसे सुनकर बड़े-बड़े गजराजोंका महान् मद दूर हो जाता था, आकाश, पृथ्वी और दसों दिशाओंको गुँजा दिया ॥ २१ ॥ फिर कालीने आकाशमें उछलकर अपने दोनों हाथोंसे पृथ्वीपर आघात किया। उससे ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिससे पहलेके सभी शब्द शान्त हो गये ॥ २२ ॥ तत्पश्चात् शिवदूतीने दैत्योंके लिये अमङ्गलजनक अट्टहास किया, इन शब्दोंको सुनकर समस्त असुर थर्रा उठे; किंतु शुम्भको बड़ा क्रोध हुआ ॥ २३ ॥ उस समय देवीने जब शुम्भको लक्ष्य करके कहा—'ओ दुरात्मन्! खड़ा रह, खड़ा रह,' तभी आकाशमें खड़े हुए देवता बोल उठे, 'जय हो, जय हो' ॥२४॥ शुम्भने वहाँ आकर ज्वालाओंसे युक्त अत्यन्त भयानक शक्ति चलायी। अग्निमय पर्वतके समान आती हुई उस शक्तिको देवीने बड़े भारी लूकेसे दूर हटा दिया ॥२५॥ उस समय शुम्भके सिंहनादसे तीनों लोक गूँज उठे। राजन्! उसकी प्रतिध्वनिसे वज्रपातके समान भयानक शब्द हुआ, जिसने अन्य सब शब्दोंको जीत लिया ॥२६॥

शुम्भके चलाये हुए बाणोंके देवीने और देवीके चलाये हुए बाणोंके शुम्भने अपने भयंकर बाणोंद्वारा सैकड़ों और हजारों टुकड़े कर दिये ॥२७॥ तब क्रोधमें भरी हुई चण्डिकाने शुम्भको शूलसे मारा। उसके आघातसे मूर्च्छित हो वह पृथ्वी-पर गिर पड़ा ॥२८॥

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा॥ २९ ॥
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम्॥ ३० ॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान्॥ ३१ ॥
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः॥ ३२ ॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे॥ ३३ ॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम्।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका॥ ३४ ॥
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन्॥ ३५ ॥
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि॥ ३६ ॥
ततः सिंहश्चखादोग्र[1] दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान्॥ ३७ ॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः॥ ३८ ॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि॥ ३९ ॥
खण्डं खण्डं[2] च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे॥ ४० ॥
केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात्।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः॥ॐ॥ ४१ ॥

इतनेमें ही निशुम्भको चेतना हुई और उसने धनुष हाथ-में लेकर बाणोंद्वारा देवी, काली तथा सिंहको घायल कर डाला ॥२९॥ फिर उस दैत्यराजने दस हजार बाँहें बनाकर चक्रोंके प्रहारसे चण्डिकाको आच्छादित कर दिया ॥३०॥ तब दुर्गम पीड़ाका नाश करनेवाली भगवती दुर्गाने कुपित होकर अपने बाणोंसे उन चक्रों तथा बाणोंको काट गिराया ॥३१॥ यह



देख निशुम्भ दैत्यसेनाके साथ चण्डिकाका वध करनेके लिये



१. पा०—दोग्रदंष्ट्रा० । २. पा०—खण्डखण्डं ।

हाथमें गदा ले बड़े वेगसे दौड़ा ॥३२॥ उसके आते ही चण्डीने तीखी धारवाली तलवारसे उसकी गदाको शीघ्र ही काट डाला। तब उसने शूल हाथमें लिया ॥३३॥ देवताओंको पीड़ा देनेवाले निशुम्भको शूल हाथमें लिये आते देख चण्डिकाने वेगसे चलाये हुए अपने शूलसे उसकी छाती छेद डाली ॥३४॥ शूलसे विदीर्ण हो जानेपर उसकी छातीसे एक दूसरा महाबली एवं महापराक्रमी पुरुष 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहता हुआ निकला ॥३५॥ उस निकलते हुए पुरुषकी बात सुनकर देवी ठठाकर हँस पड़ीं और खड्गसे उन्होंने उसका मस्तक काट डाला। फिर तो वह पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥३६॥ तदनन्तर सिंह अपनी दाढ़ोंसे असुरोंकी गर्दन कुचलकर खाने लगा, यह बड़ा भयंकर दृश्य था। उधर काली तथा शिवदूतीने भी अन्यान्य दैत्योंका भक्षण आरम्भ किया ॥३७॥ कौमारीकी शक्तिसे विदीर्ण होकर कितने ही महादैत्य नष्ट हो गये। ब्रह्माणीके मन्त्रपूत जलसे निस्तेज होकर कितने ही भाग खड़े हुए ॥३८॥ कितने ही दैत्य माहेश्वरीके त्रिशूलसे छिन्न-भिन्न हो धराशायी हो गये। वाराहीके थूथुनके आघातसे कितनोंका पृथ्वीपर कचूमर निकल गया ॥३९॥ वैष्णवीने भी अपने चक्रसे दानवोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ऐन्द्रीके हाथसे छूटे हुए वज्रसे भी कितने ही प्राणोंसे हाथ धो बैठे ॥४०॥ कुछ असुर नष्ट हो गये, कुछ उस महायुद्धसे भाग गये तथा कितने ही काली, शिवदूती तथा सिंहके ग्रास बन गये ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
उवाच २, श्लोकाः ३९, एवम् ४१, एवमादितः ५४३ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'निशुम्भ-वध' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

शुम्भ-वध

ध्यान

('ॐ' उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम्।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम् ॥)

[मैं मस्तकपर अर्द्धचन्द्र धारण करनेवाली शिवशक्तिस्वरूपा भगवती कामेश्वरीका हृदयमें चिन्तन करता हूँ। वे तपाये हुए सुवर्णके समान सुन्दर हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये ही तीन उनके नेत्र हैं तथा वे अपने मनोहर हाथोंमें धनुष-बाण, अङ्कुश, पाश और शूल धारण किये हुए हैं।]

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

'ॐ' निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥
बलावलेपाद्दुष्टे[1] त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी ॥ ३ ॥

ऋषि कहते हैं—॥१॥ राजन्! अपने प्राणोंके समान प्यारे भाई निशुम्भको मारा गया देख तथा सारी सेनाका संहार होता जान शुम्भने कुपित होकर कहा—॥२॥ 'दुष्ट दुर्गे! तू बलके अभिमानमें आकर झूठ-मूठका घमंड न दिखा। तू बड़ी मानिनी बनी हुई है, किन्तु दूसरी स्त्रियोंके बलका सहारा लेकर लड़ती है' ॥३॥

देव्युवाच ॥ ४ ॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ ५ ॥

देवी बोलीं—॥४॥ ओ दुष्ट! मैं अकेली ही हूँ। इस संसारमें मेरे सिवा दूसरी कौन है? देख, ये मेरी ही विभूतियाँ हैं, अतः मुझमें ही प्रवेश कर रही हैं ॥५॥

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ ६ ॥

1. पा०—पद्दु०।

1. इसके बाद किसी-किसी प्रतिमें 'ऋषिरुवाच' इतना अधिक पाठ है।

तदनन्तर ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अम्बिका देवीके शरीरमें लीन हो गयीं । उस समय केवल अम्बिका देवी ही रह गयी ॥६॥

देव्युवाच ॥ ७ ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ८ ॥

देवी बोलीं—॥७॥ मैं अपनी ऐश्वर्यशक्तिसे अनेक रूपोंमें यहाँ उपस्थित हुई थी । उन सब रूपोंको मैंने समेट लिया । अब अकेली ही युद्धमें खड़ी हूँ । तुम भी स्थिर हो जाओ ॥८॥



ऋषिरुवाच ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥ १० ॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥ ११ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ १२ ॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ १३ ॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १४ ॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥ १५ ॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १६ ॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ १७ ॥
हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥ १८ ॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥ १९ ॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥ २० ॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥ २१ ॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥ २२ ॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥ २३ ॥
ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥ २४ ॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥ २५ ॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥ २६ ॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥ २७ ॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥ २८ ॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥ २९ ॥
ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ ३० ॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ ३१ ॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः ॥ॐ॥ ३२ ॥

१. पा०—हू० ।

१. पा०—सा च । २. पा०—वत तां हन्तुं दैत्या० । ३. इसके बाद किसी-किसी प्रतिमें—'अश्वांश्च पातयामास रथं सारथिना सह ।' इतना अधिक पाठ है । ४. पा०—वेगवान् ।

ऋषि कहते हैं—॥९॥ तदनन्तर देवी और शुम्भ दोनोंमें सब देवताओं तथा दानवोंके देखते-देखते भयङ्कर युद्ध छिड़ गया ॥१०॥ बाणोंकी वर्षा तथा तीखे शस्त्रों एवं दारुण अस्त्रोंके प्रहारके कारण उन दोनोंका युद्ध सब लोगोंके लिये बड़ा भयानक प्रतीत हुआ ॥११॥ उस समय अम्बिका देवीने जो सैकड़ों दिव्य अस्त्र छोड़े, उन्हें दैत्यराज शुम्भने उनके निवारक अस्त्रोंद्वारा काट डाला ॥१२॥ इसी प्रकार शुम्भने भी जो दिव्य अस्त्र चलाये, उन्हें परमेश्वरीने भयङ्कर हुङ्कार शब्दके उच्चारण आदिद्वारा खिलवाड़में ही नष्ट कर डाला ॥१३॥ तब उस असुरने सैकड़ों बाणोंसे देवीको आच्छादित कर दिया। यह देख क्रोधमें भरी हुई उस देवीने भी बाण मारकर उसका धनुष काट डाला ॥१४॥ धनुष कट जानेपर फिर दैत्यराजने शक्ति हाथमें ली, किन्तु देवीने चक्रसे उसके हाथकी शक्तिको भी काट गिराया ॥१५॥ तत्पश्चात् दैत्योंके स्वामी शुम्भने सौ चाँदवाली चमकती हुई ढाल और तलवार हाथमें ले उस समय देवीपर धावा किया ॥१६॥ उसके आते ही चण्डिकाने अपने धनुषसे छोड़े हुए तीखे बाणोंद्वारा उसकी सूर्य-किरणोंके समान उज्ज्वल ढाल और तलवारको तुरंत काट दिया ॥१७॥ फिर उस दैत्यके घोड़े और सारथि मारे गये, धनुष तो पहले ही कट चुका था, अब उसने अम्बिकाको मारनेके लिये उद्यत हो भयंकर मुद्गर हाथमें लिया ॥१८॥ उसे आते देख देवीने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसका मुद्गर भी काट डाला, तिसपर भी वह असुर मुक्का तानकर बड़े वेगसे देवीकी ओर झपटा ॥१९॥ उस दैत्यराजने देवीकी छातीमें मुक्का मारा, तब उस देवीने भी उसकी छातीमें एक चाँटा जड़ दिया ॥२०॥ देवीका थप्पड़ खाकर दैत्यराज शुम्भ पृथ्वीपर गिर पड़ा, किन्तु पुनः सहसा पूर्ववत् उठकर खड़ा हो गया ॥२१॥ फिर वह उछला और देवीको ऊपर ले जाकर आकाशमें खड़ा हो गया; तब चण्डिका आकाशमें भी बिना किसी आधारके ही शुम्भके साथ युद्ध करने लगीं ॥२२॥ उस समय दैत्य और चण्डिका आकाशमें एक दूसरेसे लड़ने लगे। उनका वह युद्ध पहले सिद्ध और मुनियोंको विस्मयमें डालनेवाला हुआ ॥२३॥ फिर अम्बिकाने शुम्भके साथ बहुत देरतक युद्ध करनेके पश्चात् उसे उठाकर घुमाया और पृथ्वीपर पटक दिया ॥२४॥ पटके जानेपर पृथ्वीपर आनेके बाद वह दुष्टात्मा दैत्य पुनः चण्डिकाका वध करनेके लिये उनकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा



॥२५॥ तब समस्त दैत्योंके राजा शुम्भको अपनी ओर आते देख देवीने त्रिशूलसे उसकी छाती छेदकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥२६॥ देवीके शूलकी धारसे घायल होनेपर उसके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतोंसहित समूची पृथ्वीको कँपाता हुआ भूमिपर गिर पड़ा ॥२७॥ तदनन्तर उस दुरात्माके मारे जानेपर सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न एवं पूर्ण स्वस्थ हो गया। आकाश स्वच्छ दिखायी देने लगा ॥२८॥ पहले जो उत्पातसूचक मेघ और उल्कापात होते थे, वे सब शान्त हो गये तथा उस दैत्यके मारे जानेपर नदियाँ भी ठीक मार्गसे बहने लगीं ॥२९॥ उस समय शुम्भकी मृत्युके बाद सम्पूर्ण देवताओंका हृदय हर्षसे भर गया और गन्धर्वगण मधुर गीत गाने लगे ॥३०॥ दूसरे गन्धर्व बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। पवित्र वायु बहने लगी। सूर्यकी प्रभा उत्तम हो गयी ॥३१॥ अग्निशालाकी बुझी हुई आग अपने आप प्रज्वलित हो उठी तथा सम्पूर्ण दिशाओंके भयङ्कर शब्द शान्त हो गये ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः २७, एवम् ३२, एवमादितः ५७५॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'शुम्भ-वध' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा देवताओंको वरदान

ध्यान

(बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥)

[मैं भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करता हूँ। उनके श्रीअङ्गोंकी आभा प्रभातकालके सूर्यके समान है । मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है । वे उभरे हुए स्तनों और तीन नेत्रोंसे युक्त हैं । उनके मुखपर मुसकानकी छटा छायी रहती है और हाथोंमें वरद, अङ्कुश, पाश एवं अभय-मुद्रा शोभा पाते हैं ।]

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

'ॐ' देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्[1]
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः[2] ॥ २ ॥
देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ ३ ॥
आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ ४ ॥
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ५ ॥
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ६ ॥
सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्ति[3]प्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

१. पा०—लम्भा० । २. पा०—वत्रास्तु वि० । ३. पा०—मुक्ति ।

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये[1] शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे[2] ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २० ॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि[3] महाऽविद्ये[4] नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते[5] ॥ २३ ॥

१. पा०—माङ्गल्ये । २. पा०—पुष्टे । ३. पा०—रात्रे । ४. पा०—महामाये । ५. शान्तनवी-टीकाकारने यहाँ एक श्लोक अधिक पाठ माना है, जो इस प्रकार है—

'सर्वतःपाणिपादान्ते सर्वतोऽक्षिशिरोमुखे ।
सर्वतःश्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥'

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥ २७ ॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥ २८ ॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा[1] तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ २९ ॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥ ३० ॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥ ३१ ॥
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥ ३२ ॥
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ ३३ ॥
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं[2] नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ ३४ ॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥ ३५ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ १ ॥ देवीके द्वारा वहाँ महादैत्यपति शुम्भके मारे जानेपर इन्द्र आदि देवता अग्निको आगे करके उन कात्यायनी देवीकी स्तुति करने लगे। उस समय अभीष्टकी प्राप्ति होनेसे उनके मुखकमल दमक उठे थे और उनके प्रकाशसे दिशाएँ भी जगमगा उठी थीं ॥ २ ॥ देवता बोले—शरणागतकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हमपर प्रसन्न होओ। सम्पूर्ण जगत्की माता! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरी! विश्वकी रक्षा करो। देवि! तुम्हीं चराचर जगत्की अधीश्वरी हो ॥ ३ ॥ तुम इस जगत्का एकमात्र आधार हो, क्योंकि पृथ्वीरूपमें तुम्हारी ही स्थिति है। देवि! तुम्हारा पराक्रम अलङ्घनीय है। तुम्हीं जलरूपमें स्थित होकर सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करती हो ॥ ४ ॥ तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्वकी कारणभूता परा माया हो। देवि! तुमने इस समस्त जगत्को मोहित कर रक्खा है। तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वीपर मोक्षकी प्राप्ति कराती हो ॥ ५ ॥ देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्ब! एकमात्र तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रक्खा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है। तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थोंसे परे एवं परा वाणी हो ॥ ६ ॥ देवि! जब तुम सर्वस्वरूप एवं स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हो, तब इसी रूपमें तुम्हारी स्तुति हो गयी। तुम्हारी स्तुतिके लिये इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं ॥ ७ ॥ बुद्धिरूपसे सब लोगोंके हृदयमें विराजमान रहनेवाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥ कला, काष्ठा आदिके रूपसे क्रमशः परिणाम (अवस्था-परिवर्तन) की ओर ले जानेवाली तथा विश्वका उपसंहार करनेमें समर्थ नारायणी! तुम्हें नमस्कार है ॥ ९ ॥ नारायणी! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो। कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है ॥१०॥ तुम सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणोंका आधार तथा सर्वगुणमयी हो। नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥११॥ शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार है ॥१२॥ नारायणि! तुम ब्रह्माणीका रूप धारण करके हंसोंसे जुते हुए विमानपर बैठती तथा कुश-मिश्रित जल छिड़कती रहती हो। तुम्हें नमस्कार है ॥१३॥

१. पा०—ददासि कामान्। २. पा०—च शर्म।



माहेश्वरीरूपसे त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्पको धारण करनेवाली तथा महान् वृषभकी पीठपर बैठनेवाली नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार है ॥१४॥ मोरों और मुर्गोंसे घिरी रहनेवाली तथा महाशक्ति धारण करनेवाली कौमारीरूपधारिणी निष्पापे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥१५॥ शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुषरूप उत्तम आयुधोंको धारण करनेवाली वैष्णवी शक्तिरूपा नारायणि! तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार है ॥१६॥ हाथमें भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ोंपर धरतीको उठाये वाराहीरूपधारिणी कल्याणमयी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥१७॥ भयङ्कर नृसिंहरूपसे दैत्योंके वधके लिये उद्योग करनेवाली तथा त्रिभुवनकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥१८॥ मस्तकपर किरीट और हाथमें महावज्र धारण करनेवाली, सहस्र नेत्रोंके कारण उद्दीप्त दिखायी देनेवाली और वृत्रासुरके प्राणोंका अपहरण करनेवाली इन्द्रशक्तिरूपा नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है ॥१९॥ शिवदूतीरूपसे दैत्योंकी महती सेनाका संहार करनेवाली, भयङ्कर रूप धारण तथा विकट गर्जना करनेवाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥२०॥ दाढ़ोंके कारण विकराल मुखवाली मुण्डमालासे विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥२१॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महा-अविद्यारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥२२॥ मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा), भूति (ऐश्वर्यरूपा), बाभ्रवी (भूरे रंगकी अथवा पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (संयमपरायणा) तथा ईशा (सबकी अधीश्वरी) रूपिणी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥२३॥ सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयोंसे हमारी रक्षा करो; तुम्हें नमस्कार है ॥२४॥ कात्यायनी! यह तीन लोचनोंसे विभूषित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकारके भयोंसे हमारी रक्षा करे। तुम्हें नमस्कार है ॥२५॥ भद्रकाली! ज्वालाओंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला, अत्यन्त भयङ्कर और समस्त असुरोंका संहार करनेवाला तुम्हारा त्रिशूल भयसे हमें बचाये। तुम्हें नमस्कार है ॥२६॥ देवि! जो अपनी ध्वनिसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके दैत्योंके तेज नष्ट किये देता है, वह तुम्हारा घंटा हमलोगोंकी पापोंसे उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे माता अपने पुत्रोंकी बुरे कर्मोंसे रक्षा करती है ॥२७॥ चण्डिके! तुम्हारे हाथोंमें सुशोभित खड्ग, जो असुरोंके रक्त और चर्बीसे चर्चित है, हमारा मङ्गल करे। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥२८॥ देवि! तुम प्रसन्न होनेपर सब रोगोंको नष्ट कर देती हो और कुपित होनेपर मनोवाञ्छित सभी कामनाओंका नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरणमें जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं ॥२९॥ देवि! अम्बिके!! तुमने अपने स्वरूपको अनेक भागोंमें विभक्त करके नाना प्रकारके रूपोंसे जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्योंका संहार किया है, वह सब दूसरी कौन कर सकती थी ॥३०॥ विद्याओंमें, ज्ञानको प्रकाशित करनेवाले शास्त्रोंमें तथा आदिवाक्यों (वेदों) में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है। तथा तुमको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो इस विश्वको अज्ञानमय घोर अन्धकारसे परिपूर्ण ममतारूपी गढ़ेमें निरन्तर भटका रही हो ॥३१॥ जहाँ राक्षस, जहाँ भयङ्कर विषवाले सर्प, जहाँ शत्रु, जहाँ लुटेरोंकी सेना और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्रके बीचमें भी साथ रहकर तुम विश्वकी रक्षा करती हो ॥३२॥ विश्वेश्वरी! तुम विश्वका पालन करती हो। विश्वरूपा हो, इसलिये सम्पूर्ण विश्वको धारण करती हो। तुम भगवान् विश्वनाथकी भी वन्दनीया हो। जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्वको आश्रय देनेवाले होते हैं ॥ ३३ ॥ देवि! प्रसन्न होओ। जैसे इस समय असुरोंका वध करके तुमने शीघ्र ही

हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओंके भयसे बचाओ। सम्पूर्ण जगत्का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापोंके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवोंको शीघ्र दूर करो ॥ ३४ ॥ विश्वकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हम तुम्हारे चरणोंपर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ। त्रिलोकनिवासियोंकी पूजनीया परमेश्वरि! सब लोगोंको वरदान दो ॥ ३५ ॥

देव्युवाच ॥ ३६ ॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥ ३७ ॥

देवी बोलीं—॥ ३६ ॥ देवताओ! मैं वर देनेको तैयार हूँ। तुम्हारे मनमें जिसकी इच्छा हो, वह वर माँग लो। संसारके लिये उस उपकारक वरको मैं अवश्य दूँगी ॥ ३७ ॥

देवा ऊचुः ॥ ३८ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

देवता बोले—॥ ३८ ॥ सर्वेश्वरि! तुम इसी प्रकार तीनों लोकोंकी समस्त बाधाओंको शान्त करो और हमारे शत्रुओंका नाश करती रहो ॥ ३९ ॥

देव्युवाच ॥ ४० ॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥ ४१ ॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ ४२ ॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ ४३ ॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४४ ॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ ४५ ॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥ ४६ ॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ ४७ ॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः[1] प्राणधारकैः ॥ ४८ ॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ ४९ ॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥ ५० ॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि[1] मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥ ५१ ॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ ५२ ॥
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥ ५३ ॥
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥ ५४ ॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ॐ ॥ ५५ ॥

देवी बोलीं—॥ ४० ॥ देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामके दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे ॥ ४१ ॥ तब मैं नन्दगोपके घरमें उनकी पत्नी यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण हो विन्ध्याचलमें जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरोंका नाश करूँगी ॥ ४२ ॥ फिर अत्यन्त भयङ्कर रूपसे पृथ्वीपर अवतार ले मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोंका वध करूँगी ॥ ४३ ॥ उन भयंकर महादैत्योंको भक्षण करते समय मेरे दाँत अनारके फूलकी भाँति लाल हो जायँगे ॥ ४४ ॥ तब स्वर्गमें देवता और मर्त्यलोकमें मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे ॥ ४५ ॥ फिर जब पृथ्वीपर सौ वर्षोंके लिये वर्षा रुक जायगी और पानीका अभाव हो जायगा, उस समय मुनियोंके स्तवन करनेपर मैं पृथ्वीपर अयोनिजा रूपमें प्रकट होऊँगी ॥ ४६ ॥ और सौ नेत्रोंसे मुनियोंकी ओर देखूँगी। अतः मनुष्य 'शताक्षी' इस नामसे मेरा कीर्तन करेंगे ॥ ४७ ॥ देवताओ! उस समय मैं अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा समस्त संसारका भरण-पोषण करूँगी। जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक वे शाक ही सबके प्राणोंकी रक्षा करेंगे ॥ ४८ ॥ ऐसा करनेके कारण पृथ्वीपर 'शाकम्भरी'के नामसे मेरी ख्याति होगी। उसी अवतारमें मैं दुर्गम नामक महादैत्यका वध भी करूँगी ॥ ४९ ॥ इससे मेरा नाम 'दुर्गादेवी'के रूपसे प्रसिद्ध होगा। फिर जब मैं भीमरूप धारण करके मुनियोंकी रक्षाके लिये हिमालयपर रहनेवाले राक्षसोंका भक्षण करूँगी, उस समय सब मुनि भक्तिसे नतमस्तक होकर मेरी स्तुति

[1] पा०—वृष्टे।

[1] पा०—क्षययिष्यामि। (क्षपयिष्यामि इति वा)।

करेंगे ॥ ५०-५१ ॥ तब मेरा नाम 'भीमादेवी' के रूपमें विख्यात होगा। जब अरुण नामक दैत्य तीनों लोकोंमें भारी उपद्रव मचायेगा ॥ ५२ ॥ तब मैं तीनों लोकोंका हित करनेके लिये छः पैरोंवाले असंख्य भ्रमरोंका रूप धारण करके उस महादैत्यका वध करूँगी ॥ ५३ ॥ उस समय सब लोग 'भ्रामरी' के नामसे चारों ओर मेरी स्तुति करेंगे। इस प्रकार जब-जब संसारमें दानवी बाधा उपस्थित होगी, तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओंका संहार करूँगी ॥ ५४-५५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ५०, एवम् ५५, एवमादितः ॥६३०॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'देवीस्तुति' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

देवी-चरित्रोंके पाठका माहात्म्य

ध्यान

(ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥)

[मैं तीन नेत्रोंवाली दुर्गादेवीका ध्यान करता हूँ, उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा बिजलीके समान है। वे सिंहके कंधेपर बैठी हुई भयङ्कर प्रतीत होती हैं। हाथोंमें तलवार, ढाल लिये अनेक कन्याएँ उनकी सेवामें खड़ी हैं। वे अपने हाथोंमें चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए हैं। उनका स्वरूप अग्निमय है तथा वे माथेपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करती हैं।]

देव्युवाच ॥ १ ॥

'ॐ'एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ २ ॥
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ३ ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ५ ॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ६ ॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ ७ ॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ८ ॥
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ९ ॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ १० ॥
जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ ११ ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ १२ ॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ १३ ॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥ १४ ॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ १५ ॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ १६ ॥

१. पा०—शम०। १. पा०—प्रतीक्षिष्यामि। २. पा०—सर्वबाधा।

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १७ ॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ १९ ॥
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ २० ॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥ २१ ॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥ २२ ॥
रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ २३ ॥
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ २४ ॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ २५ ॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ २६ ॥
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ २७ ॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥ २८ ॥
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् ।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥ २९ ॥
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥ ३० ॥

देवी बोलीं—॥ १ ॥ देवताओ ! जो एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन इन स्तुतियोंसे मेरा स्तवन करेगा, उसकी सारी बाधा मैं निश्चय ही दूर कर दूँगी ॥ २ ॥ जो मधु-कैटभका नाश, महिषासुरका वध तथा शुम्भ-निशुम्भके संहारके प्रसङ्गका पाठ करेंगे ॥ ३ ॥ तथा अष्टमी, चतुर्दशी और नवमीको भी जो एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक मेरे उत्तम माहात्म्यका श्रवण करेंगे ॥ ४ ॥ उन्हें कोई पाप नहीं छू सकेगा । उनपर पापजनित आपत्तियाँ भी नहीं आयेंगी । उनके घरमें कभी दरिद्रता नहीं होगी तथा उनको कभी प्रेमीजनोंके विछोहका कष्ट भी नहीं भोगना पड़ेगा ॥ ५ ॥ इतना ही नहीं, उन्हें शत्रुसे, लुटेरोंसे, राजासे, शस्त्रसे, अग्निसे तथा जलकी राशिसे भी कभी भय नहीं होगा ॥ ६ ॥ इसलिये सबको एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक मेरे इस माहात्म्यको सदा पढ़ना और सुनना चाहिये । यह परम कल्याणकारक है ॥ ७ ॥ मेरा माहात्म्य महामारीजनित समस्त उपद्रवों तथा आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके उत्पातोंको शान्त करनेवाला है ॥ ८ ॥ मेरे जिस मन्दिरमें प्रतिदिन विधिपूर्वक मेरे इस माहात्म्यका पाठ किया जाता है, उस स्थानको मैं कभी नहीं छोड़ती । वहाँ सदा ही मेरा सन्निधान बना रहता है ॥ ९ ॥ बलिदान, पूजा, होम तथा महोत्सवके अवसरोंपर मेरे इस चरित्रका पूरा-पूरा पाठ और श्रवण करना चाहिये ॥ १० ॥ ऐसा करनेपर मनुष्य विधिको जानकर या बिना जाने भी मेरे लिये जो बलि, पूजा या होम आदि करेगा, उसे मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ ग्रहण करूँगी ॥ ११ ॥ शरत्कालमें जो वार्षिक महापूजा की जाती है, उस अवसरपर जो मेरे इस माहात्म्यको भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह मनुष्य मेरे प्रसादसे सब बाधाओंसे मुक्त तथा धन, धान्य एवं पुत्रसे सम्पन्न होगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ १२-१३ ॥ मेरा यह माहात्म्य, मेरे प्रादुर्भावकी सुन्दर कथाएँ तथा युद्धमें किये हुए मेरे पराक्रम सुननेसे मनुष्य निर्भय हो जाता है ॥ १४ ॥ मेरे माहात्म्यका श्रवण करनेवाले पुरुषोंके शत्रु नष्ट हो जाते, उन्हें कल्याणकी प्राप्ति होती तथा उनका कुल आनन्दित रहता है ॥ १५ ॥ सर्वत्र शान्ति-कर्ममें, बुरे स्वप्न दिखायी देनेपर तथा ग्रहजनित भयङ्कर पीड़ा उपस्थित होनेपर मेरा माहात्म्य श्रवण करना चाहिये ॥ १६ ॥ इससे सब विघ्न तथा भयङ्कर ग्रह-पीड़ाएँ शान्त हो जाती हैं और मनुष्योंद्वारा देखा हुआ दुःस्वप्न शुभ स्वप्नमें परिवर्तित हो जाता है ॥ १७ ॥ बालग्रहोंसे आक्रान्त हुए बालकोंके लिये यह माहात्म्य शान्तिकारक है तथा मनुष्योंके संगठनमें फूट होनेपर यह अच्छी प्रकार मित्रता करानेवाला होता है ॥ १८ ॥ यह माहात्म्य समस्त दुराचारियोंके बलका नाश करनेवाला है । इसके पाठमात्रसे राक्षसों, भूतों और पिशाचोंका नाश हो जाता है ॥ १९ ॥ मेरा यह सब माहात्म्य मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है । पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध आदि उत्तम सामग्रियोंद्वारा पूजन करनेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे, होम करनेसे, प्रतिदिन अभिषेक करनेसे, नाना प्रकारके अन्य भोगोंका अर्पण करनेसे तथा दान देने आदिसे एक वर्षतक जो मेरी आराधना की जाती है और उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी

प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्रका एक बार श्रवण करनेमात्रसे हो जाती है। यह माहात्म्य श्रवण करनेपर पापोंको हर लेता और आरोग्य प्रदान करता है ॥ २०—२२ ॥ मेरे प्रादुर्भावका कीर्तन समस्त भूतोंसे रक्षा करता है तथा मेरा युद्धविषयक चरित्र दुष्ट दैत्योंका संहार करनेवाला है ॥ २३ ॥ इसके श्रवण करनेपर मनुष्योंको शत्रुका भय नहीं रहता। देवताओ! तुमने और ब्रह्मर्षियोंने जो मेरी स्तुतियाँ की हैं ॥ २४ ॥ तथा ब्रह्माजीने जो स्तुतियाँ की हैं, वे सभी कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। वनमें, सूने मार्गमें अथवा दावानलसे घिर जानेपर ॥ २५ ॥ निर्जन स्थानमें, लुटेरोंके दावमें पड़ जानेपर या शत्रुओंसे पकड़े जानेपर अथवा जंगलमें सिंह, व्याघ्र अथवा जंगली हाथियोंके पीछा करनेपर ॥ २६ ॥ कुपित राजाके आदेशसे वध या बन्धनके स्थानमें ले जाये जानेपर अथवा महासागरमें नावपर बैठनेके बाद भारी तूफानसे नावके डगमग होनेपर ॥ २७ ॥ और अत्यन्त भयङ्कर युद्धमें शस्त्रोंका प्रहार होनेपर अथवा वेदनासे पीड़ित होनेपर, किंबहुना सभी भयानक बाधाओंके उपस्थित होनेपर ॥ २८ ॥ जो मेरे इस चरित्रका स्मरण करता है, वह मनुष्य संकटसे मुक्त हो जाता है। मेरे प्रभावसे सिंह आदि हिंसक जन्तु नष्ट हो जाते हैं तथा लुटेरे और शत्रु भी मेरे चरित्रका स्मरण करनेवाले पुरुषसे दूर भागते हैं ॥ २९-३० ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ ३२ ॥
पश्यतामेव[1] देवानां तत्रैवान्तरधीयत।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥ ३३ ॥
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥ ३४ ॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥ ३५ ॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३६ ॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ ३७ ॥
व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ ३८ ॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३९ ॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे।
सैवाभावे तथा लक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ४० ॥
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं[2] शुभाम् ॥ ॐ ॥ ४१ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ ३१ ॥ यों कहकर प्रचण्ड पराक्रमवाली भगवती चण्डिका सब देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं। फिर समस्त देवता भी शत्रुओंके मारे जानेसे निर्भय हो पहलेकी ही भाँति यज्ञभागका उपभोग करते हुए अपने-अपने अधिकारका पालन करने लगे। संसारका विध्वंस करनेवाले महाभयङ्कर अतुलपराक्रमी देवशत्रु शुम्भ तथा महाबली निशुम्भके युद्धमें देवीद्वारा मारे जानेपर शेष दैत्य पाताललोकमें चले आये ॥ ३२—३५ ॥ राजन्! इस प्रकार भगवती अम्बिका देवी नित्य होती हुई भी पुनः-पुनः प्रकट होकर जगत्‌की रक्षा करती हैं ॥ ३६ ॥ वे ही इस विश्वको मोहित करतीं, वे ही जगत्‌को जन्म देतीं तथा वे ही प्रार्थना करनेपर सन्तुष्ट हो विज्ञान एवं समृद्धि प्रदान करती हैं ॥ ३७ ॥ राजन्! महाप्रलयके समय महामारीका स्वरूप धारण करनेवाली वे महाकाली ही इस समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं ॥ ३८ ॥ वे ही समय-समयपर महामारी होती और वे ही स्वयं अजन्मा होती हुई भी सृष्टिके रूपमें प्रकट होती हैं। वे सनातनी देवी ही समयानुसार सम्पूर्ण भूतोंकी रक्षा करती हैं ॥ ३९ ॥ मनुष्योंके अभ्युदयके समय वे ही घरमें लक्ष्मीके रूपमें स्थित हो उन्नति प्रदान करती हैं और वे ही अभावके समय दरिद्रता बनकर विनाशका कारण होती हैं ॥ ४० ॥ पुष्प, धूप और गन्ध आदिसे पूजन करके उनकी स्तुति करनेपर वे धन, पुत्र, धार्मिक बुद्धि तथा उत्तम गति प्रदान करती हैं ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
उवाच २, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३७, एवम् ४१, एवमादितः ६७१॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'फलस्तुति' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

---

१. पा०—सां सर्वदेवा०। २. पा०—तथा।

त्रयोदशोऽध्यायः

सुरथ और वैश्यको देवीका वरदान

ध्यान

(ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥)

[जो उदयकालके सूर्यमण्डलकी-सी कान्ति धारण करनेवाली हैं, जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं तथा जो अपने हाथोंमें पाश, अङ्कुश, वर एवं अभयकी मुद्रा धारण किये रहती हैं, उन शिवा देवीका मैं ध्यान करता हूँ ।]

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

'ॐ' एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ २ ॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ ३ ॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥ ४ ॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ५ ॥

ऋषि कहते हैं—॥ १ ॥ राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे देवीके अनुपम माहात्म्यका वर्णन किया । जो इस जगत्को धारण करती हैं, उन देवीका ऐसा ही प्रभाव है ॥ २ ॥ वे ही विद्या (ज्ञान) उत्पन्न करती हैं । भगवान् विष्णुकी मायास्वरूपा उन भगवतीके द्वारा ही तुम, ये वैश्य तथा अन्यान्य विवेकी जन मोहित होते हैं, मोहित हुए हैं तथा आगे भी मोहित होंगे । महाराज ! तुम उन्हीं परमेश्वरीकी शरणमें जाओ ॥ ३-४ ॥ आराधना करनेपर वे ही मनुष्योंको भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥ ७ ॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥ ८ ॥
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ ९ ॥
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥ १० ॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ ११ ॥
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ १२ ॥
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ १३ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ ६ ॥ क्रौष्टुकिजी ! मेधामुनिके ये वचन सुनकर राजा सुरथने उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महाभाग महर्षिको प्रणाम किया । वे अत्यन्त ममता और राज्यापहरणसे बहुत खिन्न हो चुके थे ॥ ७-८ ॥ महामुने ! इसलिये विरक्त होकर वे राजा तथा वैश्य तत्काल तपस्याको चले गये और वे जगदम्बाके दर्शनके लिये नदीके तटपर रहकर तपस्या करने लगे ॥ ९ ॥ वे वैश्य उत्तम देवीसूक्तका जप करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हुए । वे दोनों नदीके तटपर देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप और हवन आदिके द्वारा उनकी आराधना करने लगे । उन्होंने पहले तो आहारको धीरे-धीरे कम किया; फिर बिल्कुल निराहार रहकर देवीमें ही मन लगाये एकाग्रतापूर्वक उनका चिन्तन आरम्भ किया ॥ १०-११ ॥ वे दोनों अपने शरीरके रक्तसे प्रोक्षित बलि देते हुए लगातार तीन वर्षोंतक संयमपूर्वक



आराधना करते रहे ॥ १२ ॥ इसपर प्रसन्न होकर जगत्को धारण करनेवाली चण्डिका देवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा ॥ १३ ॥

देव्युवाच ॥ १४ ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ १५ ॥

देवी बोलीं—॥ १४ ॥ राजन्! तथा अपने कुलको आनन्दित करनेवाले वैश्य! तुमलोग जिस वस्तुकी अभिलाषा रखते हो, वह मुझसे माँगो। मैं सन्तुष्ट हूँ, अतः तुम्हें वह सब कुछ दूँगी ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ १६ ॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ १७ ॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १८ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ १६ ॥ तब राजाने दूसरे जन्ममें नष्ट न होनेवाला राज्य माँगा तथा इस जन्ममें भी शत्रुओंकी सेनाको बलपूर्वक नष्ट करके पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लेनेका वरदान माँगा ॥ १७ ॥ वैश्यका चित्त संसारकी ओरसे खिन्न एवं विरक्त हो चुका था और वे बड़े बुद्धिमान् थे; अतः उस समय उन्होंने तो ममता और अहंता-रूप आसक्तिका नाश करनेवाला ज्ञान माँगा ॥ १८ ॥

देव्युवाच ॥ १९ ॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ २० ॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ २१ ॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥ २२ ॥
सावर्णिको नाम[1] मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥ २३ ॥
वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥ २४ ॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ २५ ॥

देवी बोलीं—॥ १९ ॥ राजन्! तुम थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंको मारकर अपना राज्य प्राप्त कर लोगे। अब वहाँ तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा ॥ २०-२१ ॥ फिर मृत्युके पश्चात् तुम भगवान् विवस्वान् (सूर्य) के अंशसे जन्म लेकर इस पृथ्वीपर सावर्णिक मनुके नामसे विख्यात होओगे ॥ २२-२३ ॥ वैश्यवर्य! तुमने भी जिस वरको मुझसे प्राप्त करनेकी इच्छा की है, उसे देती हूँ। तुम्हें मोक्षके लिये ज्ञान प्राप्त होगा ॥ २४-२५ ॥



मार्कण्डेय उवाच ॥ २६ ॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ २७ ॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ २८ ॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ २९ ॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥क्लीं ॐ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ २६ ॥ इस प्रकार उन दोनोंको मनोवाञ्छित वरदान देकर तथा उनके द्वारा भक्तिपूर्वक अपनी स्तुति सुनकर देवी अम्बिका तत्काल अन्तर्धान हो गयीं। इस तरह देवीसे वरदान पाकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ सुरथ सूर्यसे जन्म ले सावर्णि नामक मनु होंगे ॥ २७-२९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथ-वैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उवाच ६, अर्धश्लोकाः ११, श्लोकाः १२, एवम् २९, एवमादितः ७००॥ समस्ता उवाचमन्त्राः ५७, अर्धश्लोकाः ४२, श्लोकाः ५३५, अवदानानि ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'सुरथ और वैश्यको वरदान' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

---

[1] पा०—मनुर्नाम।

नवेंसे लेकर तेरहवें मन्वन्तरतकका संक्षिप्त वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—क्रौष्टुकिजी ! यह तुमसे सावर्णिक मन्वन्तरका भलीभाँति वर्णन किया गया । साथ ही महिषासुर-वध आदिके रूपमें भगवती दुर्गाकी महिमा भी बतलायी गयी । मुनिश्रेष्ठ ! अब दूसरे सावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुनो । दक्षके पुत्र सावर्णि नवें मनु होनेवाले हैं । उनके समयमें जो देवता, मुनि और राजा होंगे, उन सबके नाम सुनो । पार, मरीचिगर्भ और सुधर्मा—ये तीन प्रकारके देवता होंगे । इनमेंसे प्रत्येक वर्गमें बारह-बारह देवता होंगे । इस समय जो छः मुखोंवाले अग्निकुमार कार्तिकेय हैं, वे ही उस मन्वन्तरमें 'अद्भुत' नामवाले इन्द्र होंगे । मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल तथा हव्यवाहन—ये सप्तर्षि होंगे । धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न तथा बृहद्भय—ये दक्षपुत्र सावर्णि मनुके राजकुमार होंगे ।

अब दसवें मनुके मन्वन्तरका वर्णन सुनो । दसवें मन्वन्तरमें ब्रह्माजीके पुत्र बुद्धिमान् सावर्णिका अधिकार होगा । ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें सुखासीन और निरुद्ध—ये दो प्रकारके देवता होंगे । उनकी संख्या सौ होगी । उस समय सौ प्रकारके प्राणी उत्पन्न होंगे, इसलिये उनके देवता भी सौ ही होंगे । उस मन्वन्तरमें इन्द्रके समस्त गुणोंसे युक्त 'शान्ति' नामक इन्द्र होंगे । आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वासिष्ठ—ये सप्तर्षि होंगे । सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूमिसेन, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ, भूरिद्युम्न तथा सुपर्वा—ये मनुके पुत्र होंगे ।

अब धर्मके पुत्र सावर्णिका मन्वन्तर सुनो । धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें विहङ्गम, कामग तथा निर्माणरति—ये तीन प्रकारके देवता होंगे । इनमेंसे एक-एक तीस-तीस देवताओं-का समुदाय है । मास, ऋतु और दिन—ये निर्माणरति कहलायेंगे । रात्रियोंकी संज्ञा विहङ्गम होगी और मुहूर्त-सम्बन्धी गण कामग कहलायेंगे । विख्यात पराक्रमी 'वृष' उनके इन्द्र होंगे । हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणनन्दन ऋष्टि, निश्चर, अनघ, महामुनि विष्टि तथा अग्निदेव—ये सात सप्तर्षि होंगे । सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, हेमधन्वा तथा दृढायु—ये भविष्यमें होनेवाले राजा धर्मसावर्णि मनुके पुत्र होंगे । बारहवाँ मन्वन्तर रुद्र-पुत्र सावर्णि मनुका होगा । उसके आनेपर सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित और सुवर्ण—ये पाँच देवगण होंगे । इनमेंसे प्रत्येक गण दस-दस देवताओंका होगा । महाबली ऋतधामा उनका इन्द्र होगा । द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरवि तथा तपोधृति—ये सात सप्तर्षि होंगे । देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान् तथा मित्रविन्द—ये भावी मनुके वंशज राजा होंगे ।

अब 'रौच्य' नामक तेरहवें मनुके समयमें होनेवाले देवताओं, सप्तर्षियों तथा राजाओंका वर्णन सुनो । सुधर्मा, सुकर्मा और सुशर्मा—ये तीन उस समयके देवता होंगे । महाबली एवं महापराक्रमी 'देवस्पति' उनके इन्द्र होंगे । धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प—ये सात सप्तर्षि होंगे । चित्रसेन, विचित्र, नयति, निर्भय, दृढ, सुमित्र, क्षत्रबुद्धि तथा सुव्रत—ये रौच्य मनुके पुत्र राजा होंगे ।

रौच्य मनुकी उत्पत्ति-कथा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! पूर्वकालकी बात है, प्रजापति रुचि ममता और अहङ्कारसे रहित इस पृथ्वीपर विचरते थे । उन्हें किसीसे भय नहीं था । वे बहुत कम सोते थे । उन्होंने न तो अग्निकी स्थापना की थी, और न अपने लिये घर ही बना रक्खा था । वे एक बार भोजन करते और बिना आश्रमके ही रहते थे । उन्हें सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित एवं मुनि-वृत्तिसे रहते देख उनके पितरोंने उनसे कहा ।

पितर बोले—बेटा ! विवाह स्वर्ग और अपवर्गका हेतु* होनेके कारण एक पुण्यमय कार्य है; उसे तुमने क्यों

* अग्निहोत्र एवं यज्ञ-यागादि कर्ममें सपत्नीक गृहस्थका ही अधिकार है; ये कर्म निष्काम भावसे हों तो मोक्ष देनेवाले होते हैं और सकामभावसे किये जायँ तो स्वर्गादि फलोंके साधक होते हैं । जो उक्त कर्म करते हैं, उन्हींका विवाह स्वर्ग-अपवर्गका साधक है । जो विवाह करके गृहस्थोचित शुभकर्मोंका अनुष्ठान नहीं करते, उनके लिये तो विवाह-कर्म घोर बन्धनका ही कारण होता है ।

नहीं किया ? गृहस्थ पुरुष समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और अतिथियोंकी पूजा करके पुण्यमय लोकोंको प्राप्त करता है। वह 'स्वाहा'के उच्चारणसे देवताओंको, 'स्वधा' शब्दसे पितरोंको तथा अन्नदान (बलिवैश्वदेव) आदिसे भूत आदि प्राणियों एवं अतिथियोंको उनका भाग समर्पित करता है। बेटा! हम ऐसा मानते हैं कि गृहस्थ आश्रमको स्वीकार न करनेपर तुम्हें इस जीवनमें क्लेश-पर-क्लेश उठाना पड़ेगा तथा मृत्युके बाद और दूसरे जन्ममें भी क्लेश ही भोगने पड़ेंगे।

रुचिने कहा—पितृगण ! परिग्रहमात्र ही अत्यन्त दुःख एवं पापका कारण होता है तथा उससे मनुष्यकी अधोगति होती है, यही सोचकर मैंने पहले स्त्री-संग्रह नहीं किया। मन और इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखकर जो यह आत्मसंयम किया जाता है, वह भी परिग्रह करनेपर मोक्षका साधक नहीं होता। ममतारूप कीचड़में सना हुआ होनेपर भी यह आत्मा जो परिग्रहशून्य चित्तरूपी जलसे प्रतिदिन धोया जाता है, वह श्रेष्ठ प्रयत्न है। जितेन्द्रिय विद्वानोंको चाहिये कि वे अनेक जन्मोंद्वारा सञ्चित कर्मरूपी पङ्कमें सने हुए आत्माका सद्वासनारूपी जलसे प्रक्षालन करें।

पितर बोले—बेटा! जितेन्द्रिय होकर आत्माका प्रक्षालन करना उचित ही है; किन्तु तुम जिसपर चल रहे हो, वह मोक्षका मार्ग है। किन्तु फलेच्छारहित दान और शुभाशुभके उपभोगसे भी पूर्वकृत अशुभ कर्म दूर होता है। इसी प्रकार दयाभावसे प्रेरित होकर जो कर्म किया जाता है, वह बन्धनकारक नहीं होता। फल-कामनासे रहित कर्म भी बन्धनमें नहीं डालता। पूर्वजन्ममें किया हुआ मानवोंका शुभाशुभ कर्म सुख-दुःखमय भोगोंके रूपमें प्रतिदिन भोगनेपर ही क्षीण होता है।* इस प्रकार विद्वान् पुरुष आत्माका प्रक्षालन करते और उसकी बन्धनोंसे रक्षा करते हैं। ऐसा करनेसे वह अविवेकके कारण पापरूपी कीचड़में नहीं फँसता।



रुचिने पूछा—पितामहो! वेदमें कर्ममार्गको अविद्या कहा गया है, फिर क्यों आपलोग मुझे उस मार्गमें लगाते हैं?

पितर बोले—यह सत्य है कि कर्मको अविद्या ही कहा गया है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है; फिर भी इतना तो निश्चित है कि उस विद्याकी प्राप्तिमें कर्म ही कारण है। विहित कर्मका पालन न करके जो अधम मनुष्य संयम करते हैं, वह संयम अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति नहीं कराता; अपितु अधोगतिमें ले जानेवाला होता है। वत्स! तुम तो समझते हो कि मैं आत्माका प्रक्षालन करता हूँ; किन्तु वास्तवमें तुम शास्त्रविहित कर्मोंके न करनेके कारण पापोंसे दग्ध हो रहे हो! कर्म अविद्या होनेपर भी विधिके पालनद्वारा शोधे हुए विषकी भाँति मनुष्योंका उपकार करनेवाला ही होता है। इसके विपरीत वह विद्या भी विधिकी अवहेलनासे निश्चय ही हमारे बन्धनका कारण बन जाती है।* अतः वत्स! तुम विधिपूर्वक स्त्री-संग्रह करो।

* परन्तु दानैरशुभं नुदतेऽनभिसंहितैः ।
फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्वकर्म शुभाशुभैः ॥
एवं न बन्धो भवति कुर्वतः करुणात्मकम् ।
न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनभिसंहितम् ॥
पूर्वकर्म कृतं भोगैः क्षीयतेऽहर्निशं तथा ।
सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकं नृणाम् ॥
(९५ । १४–१६)

* प्रक्षाल्यामीति भवान् वत्सात्मानं तु मन्यते ।
विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वं तु विदह्यसे ॥
अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् ।
अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्यापि नो हि सा ॥
(९५ । २१–२२)

ऐसा न हो कि इस लोकका लाभ न मिलनेके कारण तुम्हारा जन्म निष्फल हो जाय ।

रुचिने कहा—पितरो ! अब तो मैं बूढ़ा हो गया; भला, मुझको कौन स्त्री देगा । इसके सिवा मुझ-जैसे दरिद्रके लिये स्त्रीको रखना बहुत कठिन कार्य है ।

पितर बोले—वत्स ! यदि हमारी बात नहीं मानोगे तो हमलोगोंका पतन हो जायगा और तुम्हारी भी अधोगति होगी ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! यों कहकर पितर उनके देखते-देखते वायुके बुझाये हुए दीपककी भाँति सहसा अदृश्य हो गये । पितरोंकी बातसे रुचिका मन बहुत उद्विग्न हुआ । वे अपने विवाहके लिये कन्या प्राप्त करनेकी इच्छासे पृथ्वीपर विचरने लगे । वे पितरोंके वचनरूप अग्निसे दग्ध हो रहे थे । कोई कन्या न मिलनेसे उन्हें बड़ी भारी चिन्ता हुई । उनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो उठा । इसी अवस्थामें उन्हें यह बुद्धि सूझी कि 'मैं तपस्याके द्वारा श्रीब्रह्माजीकी आराधना करूँ ।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने कठोर नियमका आश्रय ले श्रीब्रह्माजीकी आराधनाके निमित्त सौ वर्षोंतक भारी तपस्या की । तदनन्तर लोकपितामह ब्रह्माजीने उन्हें दर्शन दिया और कहा—'मैं प्रसन्न हूँ,



तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो ।' तब रुचिने जगत्के आधारभूत ब्रह्माजीको प्रणाम करके पितरोंके कथनानुसार अपना अभीष्ट निवेदन किया । रुचिकी अभिलाषा सुनकर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'विप्रवर ! तुम प्रजापति होओगे । तुमसे प्रजाकी सृष्टि होगी । प्रजाकी सृष्टि तथा पुत्रोंकी उत्पत्ति करनेके साथ ही शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके जब तुम अपने अधिकारका त्याग कर दोगे, तब तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी । अब तुम स्त्री-प्राप्तिकी अभिलाषा लेकर पितरोंका पूजन करो । वे ही प्रसन्न होनेपर तुम्हें मनोवाञ्छित पत्नी और पुत्र प्रदान करेंगे । भला, पितर सन्तुष्ट हो जायँ तो वे क्या नहीं दे सकते ।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने ! अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके ये वचन सुनकर रुचिने नदीके एकान्त तटपर पितरोंका तर्पण किया और भक्तिसे मस्तक झुकाकर एकाग्र एवं संयत-चित्त हो नीचे लिखे स्तोत्रद्वारा आदरपूर्वक उनकी स्तुति की—

रुचि बोले—जो श्राद्धमें अधिष्ठाता देवताके रूपमें निवास करते हैं तथा देवता भी श्राद्धमें 'स्वधान्त' वचनों-द्वारा जिनका तर्पण करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ । भक्ति और मुक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले महर्षिगण स्वर्गमें भी मानसिक श्राद्धोंके द्वारा भक्तिपूर्वक जिन्हें तृप्त करते हैं, सिद्धगण दिव्य उपहारोंद्वारा श्राद्धमें जिनको सन्तुष्ट करते हैं, आत्यन्तिक समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले गुह्यक भी तन्मय होकर भक्तिभावसे जिनकी पूजा करते हैं, भूलोकमें मनुष्यगण जिनकी सदा आराधना करते हैं, जो श्राद्धोंमें श्रद्धापूर्वक पूजित होनेपर मनोवाञ्छित लोक प्रदान करते हैं, पृथ्वीपर ब्राह्मणलोग अभिलषित वस्तु-की प्राप्तिके लिये जिनकी अर्चना करते हैं तथा जो आराधना करनेपर प्राजापत्य लोक प्रदान करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ । तपस्या करनेसे जिनके पाप धुल गये हैं तथा जो संयमपूर्वक आहार करनेवाले हैं, ऐसे वनवासी महात्मा वनके फल-मूलोंद्वारा श्राद्ध करके जिन्हें तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं मस्तक झुकाता हूँ । नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले संयतात्मा ब्राह्मण समाधिके द्वारा जिन्हें सदा तृप्त करते हैं, क्षत्रिय सब प्रकारके श्राद्धोपयोगी पदार्थोंके द्वारा विधिवत् श्राद्ध करके जिनको सन्तुष्ट करते हैं, जो तीनों लोकोंको अभीष्ट फल देनेवाले हैं, स्वकर्मपरायण वैश्य पुष्प, धूप, अन्न और जल आदिके द्वारा जिनकी पूजा करते हैं तथा शूद्र भी श्राद्धोंद्वारा भक्तिपूर्वक जिनकी तृप्ति करते हैं और जो संसारमें सुकालीके नामसे विख्यात हैं,

उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। पातालमें बड़े-बड़े दैत्य भी दम्भ और मद त्यागकर श्राद्धोंद्वारा जिन स्वधाभोजी पितरोंको सदा तृप्त करते हैं, मनोवाञ्छित भोगोंको पानेकी इच्छा रखनेवाले नागगण रसातलमें सम्पूर्ण भोगों एवं श्राद्धोंसे जिनकी पूजा करते हैं तथा मन्त्र, भोग और सम्पत्तियोंसे युक्त सर्पगण भी रसातलमें ही विधिपूर्वक श्राद्ध करके जिन्हें सर्वदा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करता हूँ। जो साक्षात् देवलोकमें, अन्तरिक्षमें और भूतलपर निवास करते हैं, देवता आदि समस्त देहधारी जिनकी पूजा करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करता हूँ। वे पितर मेरे द्वारा अर्पित किये हुए इस जलको ग्रहण करें। जो परमात्मस्वरूप पितर मूर्तिमान् होकर विमानोंमें निवास करते हैं, जो समस्त क्लेशोंसे छुटकारा दिलानेमें हेतु हैं तथा योगीश्वरगण निर्मल हृदयसे जिनका यजन करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जो स्वधा-भोजी पितर दिव्य-लोकमें मूर्तिमान् होकर रहते हैं, काम्यफलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं और निष्काम पुरुषोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। वे समस्त पितर इस जलसे तृप्त हों, जो चाहनेवाले पुरुषोंको इच्छानुसार भोग प्रदान करते हैं, देवत्व, इन्द्रत्व तथा उससे ऊँचे पदकी प्राप्ति कराते हैं; इतना ही नहीं, जो पुत्र, पशु, धन, बल और गृह भी देते हैं। जो पितर चन्द्रमाकी किरणोंमें, सूर्यके मण्डलमें तथा श्वेत विमानोंमें सदा निवास करते हैं, वे मेरे दिये हुए अन्न, जल और गन्ध आदिसे तृप्त एवं पुष्ट हों। अग्निमें हविष्यका हवन करनेसे जिनकी तृप्ति होती है, जो ब्राह्मणोंके शरीरमें स्थित होकर भोजन करते हैं तथा पिण्डदान करनेसे जिन्हें प्रसन्नता प्राप्त होती है, वे पितर यहाँ मेरे दिये हुए अन्न और जलसे तृप्त हों। जो देवताओंसे भी पूजित हैं तथा सब प्रकारसे श्राद्धो-पयोगी पदार्थ जिन्हें अत्यन्त प्रिय हैं, वे पितर यहाँ पधारें। मेरे निवेदन किये हुए पुष्प, गन्ध, अन्न एवं भोज्य पदार्थोंके निकट उनकी उपस्थिति हो। जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं, प्रत्येक मासके अन्तमें जिनकी पूजा करनी उचित है, जो अष्टकाओंमें, वर्षके अन्तमें तथा अभ्युदयकालमें भी पूजनीय हैं, वे मेरे पितर यहाँ तृप्ति लाभ करें। जो ब्राह्मणोंके यहाँ कुमुद और चन्द्रमाके समान शान्ति धारण करके आते हैं, क्षत्रियोंके लिये जिनका वर्ण नवोदित सूर्यके समान है, जो वैश्योंके यहाँ सुवर्णके समान उज्ज्वल कान्ति धारण करते हैं तथा शूद्रोंके लिये जो श्याम वर्णके हो जाते हैं, वे समस्त पितर मेरे दिये हुए पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न और जल आदिसे तथा अग्निहोत्रसे सदा तृप्ति लाभ करें! मैं उन सबको प्रणाम करता हूँ। जो वैश्वदेवपूर्वक समर्पित किये हुए श्राद्धको पूर्ण तृप्तिके लिये भोजन करते हैं और तृप्त हो जानेपर ऐश्वर्यकी सृष्टि करते हैं, वे पितर यहाँ तृप्त हों। मैं उन सबको नमस्कार करता हूँ। जो राक्षसों, भूतों तथा भयानक असुरोंका नाश करते हैं, प्रजाजनोंका अमङ्गल दूर करते हैं, जो देवताओंके भी पूर्ववर्ती तथा देवराज इन्द्रके भी पूज्य हैं, वे यहाँ तृप्त हों। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। अग्निष्वात्त पितृगण मेरी पूर्व दिशाकी रक्षा करें, बर्हिषद् पितृगण दक्षिण दिशाकी रक्षा करें। आज्यप नामवाले पितर पश्चिम दिशाकी तथा सोमप संज्ञक पितर उत्तर दिशाकी रक्षा करें। उन सबके स्वामी यमराज राक्षसों, भूतों, पिशाचों तथा असुरोंके दोषसे सब ओरसे मेरी रक्षा करें। विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति—ये पितरोंके नौ गण हैं। कल्याण, कल्यताकर्ता, कल्य, कल्यतराश्रय, कल्यता-हेतु तथा अनघ—ये पितरोंके छः गण माने गये हैं। वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपाता तथा धाता—ये पितरोंके सात गण हैं। महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल—ये पितरोंके पापनाशक पाँच गण हैं। सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद—ये पितरोंके चार गण कहे जाते हैं। इस प्रकार कुल इकतीस पितृगण हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। वे सब पूर्ण तृप्त होकर मुझपर सन्तुष्ट हों और सदा मेरा हित करें।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार स्तुति करते हुए रुचिके समक्ष सहसा एक बहुत ऊँचा तेजःपुञ्ज प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त था। समस्त संसारको व्याप्त करके स्थित हुए उस महान् तेजको देखकर रुचिने पृथ्वीपर घुटने टेक दिये और इस स्तोत्रका गान किया—



रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥
इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान् नमस्यामि कामदान् ॥
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान् नमस्याम्यहं सर्वान् पितॄनप्सूदधावपि ॥
नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥
देवर्षीणां जनितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान् ।
अक्षय्यस्य सदा दातॄन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु ।
स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्त्तिधरांस्तथा ।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥
अग्निरूपांस्तथैवान्यान् नमस्यामि पितॄनहम् ।
अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ।
नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥

रुचि बोले—जो सबके द्वारा पूजित, अमूर्त, अत्यन्त तेजस्वी, ध्यानी तथा दिव्यदृष्टिसम्पन्न हैं, उन पितरोंको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । जो इन्द्र आदि देवताओं, दक्ष, मारीच, सप्तर्षियों तथा दूसरोंके भी नेता हैं, कामनाकी पूर्ति करनेवाले उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ । जो मनु आदि राजर्षियों, मुनीश्वरों तथा सूर्य और चन्द्रमाके भी नायक हैं, उन समस्त पितरोंको मैं जल और समुद्रमें भी नमस्कार करता हूँ। नक्षत्रों, ग्रहों, वायु, अग्नि, आकाश और द्युलोक तथा पृथ्वीके भी जो नेता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ । जो देवर्षियोंके जन्मदाता, समस्त लोकों द्वारा वन्दित तथा सदा अक्षय फलके दाता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ । प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण तथा योगेश्वरोंके रूपमें स्थित पितरोंको सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ । सातों लोकोंमें स्थित सात पितृगणोंको नमस्कार है । मैं योगदृष्टिसम्पन्न स्वयम्भू ब्रह्माजीको प्रणाम करता हूँ । चन्द्रमाके आधारपर प्रतिष्ठित तथा योगमूर्तिधारी पितृगणोंको मैं प्रणाम करता हूँ। साथ ही सम्पूर्ण जगत्के पिता सोमको नमस्कार करता हूँ तथा अग्निस्वरूप अन्य पितरोंको भी प्रणाम करता हूँ; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोममय है । जो पितर तेजमें स्थित हैं, जो ये चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं, तथा जो जगत्स्वरूप एवं ब्रह्मस्वरूप हैं, उन सम्पूर्ण योगी पितरोंको मैं एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करता हूँ । उन्हें बारंबार नमस्कार है । वे स्वधाभोजी पितर मुझपर प्रसन्न हों ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! रुचिके इस प्रकार स्तुति करनेपर वे पितर दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उस तेजसे बाहर निकले । रुचिने जो फूल, चन्दन और अङ्गराग आदि समर्पित किये थे, उन सबसे विभूषित होकर वे पितर सामने खड़े दिखायी दिये । तब रुचिने हाथ जोड़कर पुनः भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और बड़े आदरके साथ सबसे पृथक्-पृथक् कहा—'आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है ।' इससे प्रसन्न होकर पितरोंने मुनिश्रेष्ठ रुचिसे कहा—'वत्स ! तुम कोई वर माँगो ।' तब उन्होंने मस्तक झुकाकर कहा—'पितरो ! इस समय ब्रह्माजीने मुझे सृष्टि करनेका आदेश दिया है; इसलिये मैं दिव्यगुणोंसे सम्पन्न उत्तम पत्नी चाहता हूँ, जिससे सन्तानकी उत्पत्ति हो सके ।'



पितरोंने कहा—वत्स! यहीं, इसी समय तुम्हें अत्यन्त मनोहर पत्नी प्राप्त होगी और उसके गर्भसे तुम्हें 'मनु' संज्ञक उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होगी। वह बुद्धिमान् पुत्र मन्वन्तरका स्वामी होगा और तुम्हारे ही नामपर तीनों लोकोंमें 'रौच्य'के नामसे उसकी ख्याति होगी। उसके भी महाबलवान् और पराक्रमी बहुत-से महात्मा पुत्र होंगे, जो इस पृथ्वीका पालन करेंगे। धर्मज्ञ! तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करोगे और फिर अपना अधिकार क्षीण होनेपर सिद्धिको प्राप्त होओगे। जो मनुष्य इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक हमारी स्तुति करेगा, उसके ऊपर सन्तुष्ट होकर हमलोग उसे मनोवाञ्छित भोग तथा उत्तम आत्मज्ञान प्रदान करेंगे। जो नीरोग शरीर, धन और पुत्र-पौत्र आदिकी इच्छा करता हो, वह सदा इस स्तोत्रसे हमलोगोंकी स्तुति करे। यह स्तोत्र हमलोगोंकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला है। जो श्राद्धमें भोजन करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके सामने खड़ा हो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके यहाँ स्तोत्रश्रवणके प्रेमसे हम निश्चय ही उपस्थित होंगे और हमारे लिये किया हुआ श्राद्ध भी निःसन्देह अक्षय होगा। चाहे श्रोत्रिय ब्राह्मणसे रहित श्राद्ध हो, चाहे वह किसी दोषसे दूषित हो गया हो अथवा अन्यायोपार्जित धनसे किया गया हो अथवा श्राद्धके लिये अयोग्य दूषित सामग्रियोंसे उसका अनुष्ठान हुआ हो, अनुचित समय या अयोग्य देशमें हुआ हो या उसमें विधिका उल्लङ्घन किया गया हो अथवा लोगोंने विना श्रद्धाके या दिखावेके लिये किया हो, तो भी वह श्राद्ध इस स्तोत्रके पाठसे हमारी तृप्ति करनेमें समर्थ होता है। हमें सुख देनेवाला यह स्तोत्र जहाँ श्राद्धमें पढ़ा जाता है, वहाँ हमलोगोंको बारह वर्षोंतक बनी रहनेवाली तृप्ति प्राप्त होती है। यह स्तोत्र हेमन्त ऋतुमें श्राद्धके अवसरपर सुनानेसे हमें बारह वर्षोंके लिये तृप्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार शिशिर ऋतुमें यह कल्याणमय स्तोत्र हमें चौबीस वर्षोंतक तृप्तिकारक होता है। वसन्त ऋतुके श्राद्धमें सुनानेपर यह सोलह वर्षोंतक तृप्तिकारक होता है तथा ग्रीष्म ऋतुमें पढ़े जानेपर भी वह उतने ही वर्षोंतक तृप्तिका साधक होता है। रुचे! वर्षा ऋतुमें किया हुआ श्राद्ध यदि किसी अङ्गसे विकल हो, तो भी इस स्तोत्रके पाठसे पूर्ण होता है और उस श्राद्धसे हमें अक्षय तृप्ति होती है। शरत्कालमें भी श्राद्धके अवसरपर यदि इसका पाठ हो तो यह हमें पंद्रह वर्षोंतकके लिये तृप्ति प्रदान करता है। जिस घरमें यह स्तोत्र सदा लिखकर रक्खा जाता है, वहाँ श्राद्ध करनेपर हमारी निश्चय ही उपस्थिति होती है; अतः महाभाग! श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सामने तुम्हें यह स्तोत्र अवश्य सुनाना चाहिये; क्योंकि यह हमारी पुष्टि करनेवाला है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—क्रौष्टुकिजी! तदनन्तर रुचिके समीप उस नदीके भीतरसे छरहरे अङ्गोंवाली मनोहर अप्सरा प्रम्लोचा प्रकट हुई और महात्मा रुचिसे मधुर वाणीमें विनयपूर्वक बोली—'तपस्वियोंमें श्रेष्ठ रुचि! मेरी एक परम सुन्दरी कन्या है, जो वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करसे उत्पन्न



हुई है। मैं उस सुन्दरी कन्याको तुम्हें पत्नी बनानेके लिये देती हूँ, ग्रहण करो। उसके गर्भसे तुम्हारे पुत्र महाबुद्धिमान् मनुका जन्म होगा।' तब रुचिने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात स्वीकार की। इसके बाद प्रम्लोचाने अपनी कन्या मालिनीको जलके बाहर प्रकट किया। मुनिश्रेष्ठ रुचिने महर्षियोंको बुलाकर नदीके तटपर उसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। उसीके गर्भसे महापराक्रमी परम बुद्धिमान् पुत्रका जन्म हुआ, जो इस भूमण्डलमें पिताके नामपर रौच्य मनुके नामसे ही विख्यात हुए। उनके मन्वन्तरमें जो देवता, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र नृपगण होनेवाले हैं, उन सबके नाम तुम्हें बतलाये जा चुके हैं। इस मन्वन्तरकी कथा सुननेपर मनुष्योंके धर्मकी वृद्धि, आरोग्यकी प्राप्ति तथा धन-धान्य और पुत्रकी उत्पत्ति होती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। महामुने! पितरोंका स्तवन तथा उनके भिन्न-भिन्न गणोंका वर्णन सुनकर मनुष्य उन्हींके प्रसादसे सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करता है।

भौत्य मन्वन्तरकी कथा तथा चौदह मन्वन्तरोंके श्रवणका फल

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्मन्! इसके पश्चात् अब तुम भौत्य मनुकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनो तथा उस समय होनेवाले देवर्षियों और पृथ्वीका पालन करनेवाले मनु-पुत्रों आदिके नाम भी श्रवण करो। अङ्गिरा मुनिके एक शिष्य थे, जिनका नाम भूति था। वे बड़े ही क्रोधी तथा छोटी-सी बातके लिये अपराध होनेपर प्रचण्ड शाप देनेवाले थे। उनकी बातें कठोर होती थीं। उनके आश्रमपर हवा बहुत तेज नहीं बहती थी। सूर्य अधिक गर्मी नहीं पहुँचाता था और मेघ अधिक कीचड़ नहीं होने देते थे। उन अत्यन्त तेजस्वी क्रोधी महर्षिके भयसे चन्द्रमा अपनी समस्त किरणोंसे परिपूर्ण होनेपर भी अधिक सर्दी नहीं पहुँचाता था। समस्त ऋतुएँ उनकी आज्ञासे अपने आनेका क्रम छोड़कर आश्रमके वृक्षोंपर सदा ही रहतीं और मुनिके लिये फल-फूल प्रस्तुत करती थीं। महात्मा भूतिके भयसे जल भी उनके आश्रमके समीप मौजूद रहता और उनके कमण्डलुमें भी भरा रहता था।



भूति मुनिके एक भाई थे, जो सुवर्चाके नामसे विख्यात थे। उन्होंने यज्ञमें भूतिको निमन्त्रित किया। वहाँ जानेकी इच्छासे भूतिने अपने परम बुद्धिमान्, शान्त, जितेन्द्रिय, विनीत, गुरुके कार्यमें सदा संलग्न रहनेवाले, सदाचारी और उदार शिष्य मुनिवर शान्तिसे कहा—'वत्स! मैं अपने भाई सुवर्चाके यज्ञमें जाऊँगा। उन्होंने मुझे बुलाया है। तुम्हें यहीं आश्रमपर रहना है। यहाँ तुम्हारे लिये जो कर्तव्य है, सुनो। मेरे आश्रमपर तुम्हें प्रतिदिन अग्निको प्रज्वलित रखना होगा और सदा ऐसा प्रयत्न करना होगा, जिससे अग्नि बुझने न पाये।'

गुरुकी यह आज्ञा पाकर जब शान्ति नामक शिष्यने 'बहुत अच्छा' कहकर इसे स्वीकार किया, तब अपने छोटे भाईके बुलानेपर भूति मुनि उनके यज्ञमें चले गये। इधर शान्ति गुरुभक्तिके वशमें होकर उन महात्मा गुरुकी सेवाके लिये जबतक समिधा, फूल और फल आदि जुटाते रहे तथा अन्य आवश्यक कार्य करते रहे, तबतक भूति मुनिके द्वारा सञ्चित अग्नि शान्त हो गयी। अग्निको शान्त हुआ देख शान्तिको बड़ा दुःख हुआ और वे भूतिके भयसे बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा, 'यदि इस अग्निके स्थानमें मैं दूसरी अग्नि स्थापित करूँ तो सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले

मेरे गुरु अवश्य ही मुझे भस्म कर डालेंगे, मैं पापी अपने गुरुके क्रोध और शापका कारण बनूँगा। मुझे अपने लिये उतना शोक नहीं है, जितना कि गुरुके अपराध करनेका शोक है। अग्नि शान्त हुई देख गुरुदेव मुझे निश्चय ही शाप दे देंगे। जिनके प्रभावसे डरकर देवता भी उनके शासनमें रहते हैं, वे मुझ अपराधीको शापसे दग्ध न करें, इसके लिये क्या उपाय हो सकता है?'

अपने गुरुके डरसे डरे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शान्ति मुनिने इस तरह अनेक प्रकारसे सोच-विचार करके अग्निदेवकी शरण ली। उसने मनपर संयम किया और पृथ्वीपर घुटने टेक हाथ जोड़ एकाग्रचित्त हो स्तोत्र आरम्भ किया।

शान्तिने कहा—समस्त प्राणियोंके साधक महात्मा अग्निदेवको नमस्कार है। उनके एक, दो और पाँच स्थान हैं। वे राजसूय यज्ञमें छः स्वरूप धारण करते हैं। समस्त देवताओंको वृत्ति देनेवाले अत्यन्त तेजस्वी अग्निदेवको नमस्कार है। जो सम्पूर्ण जगत्के कारणरूप तथा पालन करनेवाले हैं, उन अग्निदेवको प्रणाम है। अग्ने! तुम सम्पूर्ण देवताओंके मुख हो। भगवन्! तुम्हारे द्वारा ग्रहण किया हुआ हविष्य सब देवताओंको तृप्त करता है। तुम्हीं समस्त देवताओंके प्राण हो। तुममें हवन किया हुआ हविष्य अत्यन्त पवित्र होता है, फिर वही मेघ बनकर जलरूपमें परिणत हो जाता है। फिर उस जलसे सब प्रकारके अन्न आदि उत्पन्न होते हैं। अनिलसारथे! फिर उन समस्त अन्न आदिसे सब जीव सुखपूर्वक जीवन धारण करते हैं। अग्निदेव! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न की हुई ओषधियोंसे मनुष्य यज्ञ करते हैं। यज्ञोंसे देवता, दैत्य तथा राक्षस तृप्त होते हैं। हुताशन! उन यज्ञोंके आधार तुम्हीं हो, अतः अग्ने! तुम्हीं सबके आदिकारण और सर्वस्वरूप हो। देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी तथा सर्प—ये सभी तुमसे ही तृप्त होते और तुम्हींसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं। तुम्हींसे इनकी उत्पत्ति है और तुम्हींमें इनका लय होता है। देव! तुम्हीं जलकी सृष्टि करते और तुम्हीं उसको पुनः सोख लेते हो। तुम्हारे पकानेसे ही जल प्राणियोंकी पुष्टि करता है। तुम देवताओंमें तेज, सिद्धोंमें कान्ति, नागोंमें विष और पक्षियोंमें वायुरूपसे स्थित हो। मनुष्योंमें क्रोध, पक्षी और मृग आदिमें मोह, वृक्षोंमें स्थिरता, पृथ्वीमें कठोरता, जलमें द्रवत्व तथा वायुमें जलरूपसे तुम्हारी स्थिति है। अग्ने! व्यापक होनेके कारण तुम आकाशमें आत्मारूपसे स्थित हो। अग्निदेव! तुम सम्पूर्ण भूतोंके अन्तःकरणमें विचरते तथा सबका पालन करते हो। विद्वान् पुरुष तुमको एक कहते हैं, तथा फिर वे ही तुम्हें तीन प्रकारका बतलाते हैं। तुम्हें आठ रूपोंमें कल्पित करके ऋषियोंने आदियज्ञका अनुष्ठान किया था। महर्षिगण इस विश्वको तुम्हारी सृष्टि बतलाते हैं। हुताशन! तुम्हारे बिना यह सम्पूर्ण जगत् तत्काल नष्ट हो जायगा। ब्राह्मण हव्य-कव्य आदिके द्वारा 'स्वाहा' और 'स्वधा'का उच्चारण करते हुए तुम्हारी पूजा करके अपने कर्मोंके अनुसार विहित उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। देवपूजित अग्निदेव! समस्त प्राणियोंके परिणाम, आत्मा और वीर्यस्वरूप तुम्हारी ज्वालाएँ तुमसे ही निकलकर सब भूतोंका दाह करती हैं। परम कान्तिमान् अग्निदेव! संसारकी यह सृष्टि तुमने ही की है। तुम्हारा ही यज्ञरूप वैदिक कर्म सर्वभूतमय जगत् है। पीले नेत्रोंवाले अग्निदेव! तुम्हें नमस्कार है। हुताशन! तुम्हें नमस्कार है। पावक! आज तुम्हें नमस्कार है। हव्यवाहन! तुम्हें नमस्कार है। तुम ही खाये-पीये हुए पदार्थोंको पचानेके कारण विश्वके पालक हो। तुम्हीं खेतीको पकानेवाले और जगत्के पोषक हो। तुम्हीं मेघ हो, तुम्हीं वायु हो और तुम्हीं समस्त प्राणियोंका पोषण करनेके लिये खेतीके हेतुभूत बीज हो। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब तुम्हीं हो। तुम्हीं सब जीवोंके भीतर प्रकाश हो। तुम्हीं सूर्य और तुम्हीं अग्नि हो। अग्ने! दिन-रात तथा दोनों सन्ध्याएँ तुम्हीं हो। सुवर्ण तुम्हारा वीर्य है। तुम सुवर्णकी उत्पत्तिके कारण हो। तुम्हारे गर्भमें सुवर्णकी स्थिति है। सुवर्णके समान तुम्हारी कान्ति है। मुहूर्त, क्षण, त्रुटि और लव—सब तुम्हीं हो। जगत्प्रभो! कला, काष्ठा और निमेष आदि तुम्हारे ही रूप हैं। यह सम्पूर्ण दृश्य तुम्हीं हो। परिवर्तनशील काल भी तुम्हारा ही स्वरूप है। प्रभो! तुम्हारी जो काली नामकी जिह्वा है, वह कालको आश्रय देनेवाली है। उसके द्वारा तुम पापोंके भयसे हमें बचाओ तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो कराली नामकी जिह्वा है, वह महाप्रलयकी कारणरूपा है। उसके द्वारा हमें पापों तथा इहलोकके महान् भयसे बचाओ। तुम्हारी जो मनोजवा नामकी जिह्वा है, वह लघिमा नामक गुणस्वरूपा है। उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो सुलोहिता नामकी जिह्वा है, वह सम्पूर्ण भूतोंकी कामनाएँ पूर्ण करती है। उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान्

भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो सुधूम्रवर्णा नामकी जिह्वा है, वह प्राणियोंके रोगोंका दाह करनेवाली है। उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो स्फुलिङ्गिनी नामक जिह्वा है जिससे सम्पूर्ण जीवोंके शरीर उत्पन्न हुए हैं, उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो विश्वा नामकी जिह्वा है, वह समस्त प्राणियोंका कल्याण करनेवाली है। उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। हुताशन! तुम्हारे नेत्र पीले, ग्रीवा लाल और रंग साँवला है। तुम सब दोषोंसे हमारी रक्षा करो और संसारसे हमारा उद्धार कर दो। वह्नि, सप्तार्चि, कृशानु, हव्यवाहन, अग्नि, पावक, शुक्र तथा हुताशन—इन आठ नामोंसे पुकारे जानेवाले अग्निदेव! तुम प्रसन्न हो जाओ। तुम अक्षय, अचिन्त्य समृद्धिमान्, दुःसह एवं अत्यन्त तीव्र वह्नि हो। तुम मूर्तरूपमें प्रकट होकर अविनाशी कहे जानेवाले सम्पूर्ण भयंकर लोकोंको भस्म कर डालते हो अथवा तुम अत्यन्त पराक्रमी हो—तुम्हारे पराक्रमकी कहीं सीमा नहीं है। हुताशन! तुम सम्पूर्ण जीवोंके हृदय-कमलमें स्थित उत्तम, अनन्त एवं स्तवन करने योग्य सत्त्व हो। तुमने इस सम्पूर्ण चराचर विश्वको व्याप्त कर रक्खा है। तुम एक होकर भी यहाँ अनेक रूपोंमें प्रकट हुए हो। पावक! तुम अक्षय हो, तुम्हीं पर्वतों और वनोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य तथा दिन-रात हो। महासागरके उदरमें बड़वानलके रूपमें तुम्हीं हो तथा तुम्हीं अपनी परा विभूतिके साथ सूर्यकी किरणोंमें स्थित हो। भगवन्! तुम हवन किये हुए हविष्यका साक्षात् भोजन करते हो, इसलिये बड़े-बड़े यज्ञोंमें नियमपरायण महर्षिगण सदा तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम यज्ञमें स्तुत होकर सोमपान करते हो तथा वषट्का उच्चारण करके इन्द्रके उद्देश्यसे दिये हुए हविष्यको भी तुम्हीं भोग लगाते हो और इस प्रकार पूजित होकर तुम सम्पूर्ण विश्वका कल्याण करते हो। विप्रगण अभीष्ट फलकी प्राप्तिके लिये सदा तुम्हारा ही यजन करते हैं। सम्पूर्ण वेदाङ्गोंमें तुम्हारी महिमाका गान किया जाता है। यज्ञपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मण तुम्हारी ही प्रसन्नताके लिये सर्वदा अङ्गोंसहित वेदोंका पठन-पाठन करते रहते हैं। तुम्हीं यज्ञपरायण ब्रह्मा, सब भूतोंके स्वामी भगवान् विष्णु, देवराज इन्द्र, अर्यमा, जलके स्वामी वरुण, सूर्य तथा चन्द्रमा हो। सम्पूर्ण देवता और असुर भी तुम्हींको हविष्योंद्वारा संतुष्ट करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं। कितने ही महान् दोषसे दूषित वस्तु क्यों न हो, वह सब तुम्हारी ज्वालाओंके स्पर्शसे शुद्ध हो जाती है। सब स्नानोंमें तुम्हारे भस्मसे किया हुआ स्नान ही सबसे बढ़कर है, इसीलिये मुनिगण सन्ध्याकालमें उसका विशेष रूपसे सेवन करते हैं। पवित्र नामवाले अग्निदेव! मुझपर प्रसन्न होओ। वायुरूप! मुझपर प्रसन्न होओ। अत्यन्त निर्मल कान्तिवाले पावक! मुझपर प्रसन्न होओ। विद्युन्मय! आज मुझपर प्रसन्न होओ। हविष्यभोजी अग्निदेव! तुम मेरी रक्षा करो। वह्ने! तुम्हारा जो कल्याणमय स्वरूप है, देव! तुम्हारी जो सात ज्वालामयी जिह्वाएँ हैं, उन सबके द्वारा तुम मेरी रक्षा करो—ठीक उसी तरह, जैसे पिता अपने पुत्रकी रक्षा करता है। मैंने तुम्हारी स्तुति की है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! शान्तिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् अग्निदेव ज्वालाओंसे घिरे हुए उनके समक्ष प्रकट हुए। ब्रह्मन्! अग्निदेव उस स्तोत्रसे बहुत संतुष्ट थे। शान्ति उनके चरणोंमें पड़ गये; फिर उन्होंने मेघके समान गम्भीर वाणीमें शान्तिसे कहा—'विप्रवर! तुमने जो भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन किया है, उससे मैं सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो।'



शान्तिने कहा—भगवन्! मैं तो कृतार्थ हो गया, क्योंकि आज आपके दिव्य स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। तथापि मैं भक्तिसे बिनीत होकर जो कुछ आपसे कहता हूँ,

उसे आप सुनें। देव ! मेरे आचार्य अपने आश्रमसे भाईके यज्ञमें गये हैं। वे जब लौटकर आयें तो इस स्थानको आपसे सनाथ देखें। साथ ही यदि आपकी मुझपर कृपा हो तो यह दूसरा वर भी दीजिये। मेरे गुरुदेवके कोई पुत्र नहीं है, उन्हें कोई सुयोग्य पुत्र प्राप्त हो; फिर उस पुत्रमें वे जितना स्नेह करें, उतना ही सम्पूर्ण भूतोंके प्रति भी उनका स्नेह हो। उनका हृदय सबके प्रति कोमल बन जाय।

शान्तिकी यह बात सुनकर अग्निदेवने कहा—'महामुने ! तुमने गुरुके लिये दो वर माँगे हैं, अपने लिये नहीं। इससे तुमपर मेरी प्रसन्नता और भी बढ़ गयी है। तुमने गुरुके लिये जो कुछ माँगा है, वह सब प्राप्त होगा। उनके पुत्र होगा और सम्पूर्ण भूतोंके प्रति उनकी मैत्री भी बढ़ जायगी। उनका पुत्र भौत्य नामसे प्रसिद्ध एवं मन्वन्तरोंका स्वामी होगा; साथ ही वह महाबली, महापराक्रमी और परम बुद्धिमान् होगा। जो एकाग्रचित्त होकर इस स्तोत्रके द्वारा मेरी स्तुति करेगा, उसकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी तथा उसे पुण्यकी भी प्राप्ति होगी। यज्ञोंमें, पर्वके समय, तीर्थोंमें और होमकर्ममें जो धर्मके लिये मेरे इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके लिये यह अत्यन्त पुष्टिकारक होगा। होम न करने तथा अयोग्य समयमें होम करने आदिके जो दोष हैं और अयोग्य पुरुषोंद्वारा हवन करनेसे जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन सबको यह स्तोत्र सुननेमात्रसे शान्त कर देता है। पूर्णिमा, अमावास्या तथा अन्य पर्वोंपर मनुष्योंद्वारा सुना हुआ मेरा यह स्तोत्र उनके पापोंका नाश करनेवाला होता है।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर भगवान् अग्नि उनके देखते-देखते बुझे हुए दीपककी भाँति तत्काल अदृश्य हो गये। अग्निदेवके चले जानेपर शान्तिका चित्त बहुत सन्तुष्ट था। उनके शरीरमें हर्षके कारण रोमाञ्च हो आया था। इसी अवस्थामें उन्होंने गुरुके आश्रममें प्रवेश किया और वहाँ अग्निदेवको पहलेकी ही भाँति प्रज्वलित देखा। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी बीचमें उनके गुरु भी छोटे भाईके यज्ञसे अपने आश्रमको लौटे। शिष्य शान्तिने गुरुके सामने जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उनके दिये हुए आसन और पूजाको स्वीकार करके गुरुने उनसे कहा—'वत्स ! तुमपर तथा अन्य जीवोंपर भी मेरा स्नेह बहुत बढ़ गया है। मैं नहीं जानता, यह क्या बात है। यदि तुम्हें कुछ पता हो तो बताओ।' तब शान्तिने अपने आचार्यसे अग्निके बुझने आदिकी सब बातें यथार्थरूपसे कह सुनायीं। यह सुनकर गुरुके नेत्र स्नेहके कारण सजल हो आये। उन्होंने शान्तिको हृदयसे लगा लिया और उन्हें अङ्ग-उपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान कराया। तदनन्तर भूति मुनिके भौत्यनामक पुत्र हुआ, जो भविष्यमें मनु होगा। उस मन्वन्तरमें चाक्षुप, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर तथा धारावृक—ये पाँच देवगण माने गये हैं; इन सबके इन्द्र होंगे शुचि, जो महाबली, महापराक्रमी तथा इन्द्रके समस्त गुणोंसे युक्त होंगे। अग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित—ये सात उस समयके सप्तर्षि होंगे। गुरु, गम्भीर, ब्रध्न, भरत, निग्रह, श्रीमाणी, प्रतीर, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा सुबल—ये मनुके पुत्र होंगे।

क्रौष्टुकिजी ! इस प्रकार मैंने तुमसे चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन किया। उन सबका क्रमशः श्रवण करके मनुष्य पुण्यका भागी होता है तथा उसकी सन्तान कभी क्षीण नहीं होती। प्रथम मन्वन्तरका वर्णन सुनकर मनुष्य धर्मका भागी होता है। स्वारोचिष मन्वन्तरकी कथा सुननेसे उसे सब कामनाओंकी प्राप्ति होती है। औत्तम मन्वन्तरके श्रवणसे धन, तामसके श्रवणसे ज्ञान तथा रैवत मन्वन्तरके श्रवणसे बुद्धि एवं सुन्दरी स्त्रीकी प्राप्ति होती है। चाक्षुष मन्वन्तरके श्रवणसे आरोग्य, वैवस्वतके श्रवणसे बल तथा सूर्यसावर्णिक मन्वन्तरके श्रवणसे गुणवान् पुत्र-पौत्रोंकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मसावर्णिक मन्वन्तरके श्रवणसे महिमा बढ़ती है। धर्मसावर्णिकके श्रवणसे कल्याणमयी बुद्धि प्राप्त होती है और रुद्रसावर्णिकके श्रवणसे मनुष्य विजयी होता है। दक्षसावर्णिकके श्रवणसे मनुष्य अपने कुलमें श्रेष्ठ तथा उत्तम गुणोंसे युक्त होता है तथा रौच्य मन्वन्तरकी कथा सुननेसे वह शत्रुओंकी सेनाका संहार कर डालता है। भौत्य मन्वन्तरकी कथा श्रवण करनेपर मनुष्य देवताकी कृपा प्राप्त करता है; इतना ही नहीं, उसे अग्निहोत्रके पुण्य तथा गुणवान् पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। मन्वन्तरोंके देवता, ऋषि, इन्द्र, मनु, मनुके पुत्र तथा राजवंशोंका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। देवता, ऋषि, इन्द्र, राजा तथा मन्वन्तरोंके स्वामी—ये प्रसन्न होकर कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करते हैं। वैसी बुद्धि पाकर मनुष्य शुभ कर्म करता है, जिससे वह चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त उत्तम गतिका उपभोग करता है।

सूर्यका तत्त्व, वेदोंका प्राकट्य, ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सृष्टि-रचनाका आरम्भ

क्रौष्टुकि बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिका भलीभाँति वर्णन किया और मैंने क्रमशः विस्तारपूर्वक उसे सुना। अब राजाओंका सम्पूर्ण वंश, जिसके आदि ब्रह्माजी हैं, मैं सुनना चाहता हूँ; आप उसका यथावत् वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स! प्रजापति ब्रह्माजीको आदि बनाकर जिसकी प्रवृत्ति हुई है तथा जो सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण है, उस राजवंशका तथा उसमें प्रकट हुए राजाओंके चरित्रोंका वर्णन सुनो—जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ तथा अन्य सैकड़ों राजा, जिन्होंने पृथ्वीका पालन किया था, उत्पन्न हुए थे। वे सभी धर्मज्ञ, यज्ञकर्ता, शूरवीर तथा परम तत्त्वके ज्ञाता थे। ऐसे वंशका वर्णन सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है। पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माने नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा लेकर दाहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न किया और बायें अँगूठेसे उनकी पत्नीको प्रकट किया। दक्षके अदिति नामकी एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जिसके गर्भसे कश्यपने भगवान् सूर्यको जन्म दिया।

क्रौष्टुकिने पूछा—भगवन्! मैं भगवान् सूर्यके यथार्थ स्वरूपका वर्णन सुनना चाहता हूँ। वे किस प्रकार कश्यपजीके पुत्र हुए? कश्यप और अदितिने कैसे उनकी आराधना की? उनके यहाँ अवतीर्ण हुए भगवान् सूर्यका कैसा प्रभाव है? ये सब बातें यथार्थरूपसे बताइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! पहले यह सम्पूर्ण लोक प्रभा और प्रकाशसे रहित था। चारों ओर घोर अन्धकार घेरा डाले हुए था। उस समय परम कारणस्वरूप एक अविनाशी एवं बृहत् अण्ड प्रकट हुआ। उसके भीतर सबके प्रपितामह, जगत्के स्वामी, लोकस्रष्टा, कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे। उन्होंने उस अण्डका भेदन किया। महामुने! उन ब्रह्माजीके मुखसे 'ॐ' यह महान् शब्द प्रकट हुआ। उससे पहले भूः, फिर भुवः, तदनन्तर स्वः—ये तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं, जो भगवान् सूर्यका स्वरूप हैं। 'ॐ' इस स्वरूपसे सूर्यदेवका अत्यन्त सूक्ष्म रूप प्रकट हुआ। उससे 'महः' यह स्थूल रूप हुआ, फिर उससे 'जन' यह स्थूलतर रूप उत्पन्न हुआ। उससे 'तप' और तपसे 'सत्य' प्रकट हुआ। इस प्रकार ये सूर्यके सात स्वरूप स्थित हैं, जो कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित रहते हैं। ब्रह्मन्! मैंने 'ओम्' यह रूप बताया है; वह सृष्टिका आदि-अन्त, अत्यन्त सूक्ष्म एवं निराकार है; वही परब्रह्म है तथा वही ब्रह्मका स्वरूप है।

उक्त अण्डका भेदन होनेपर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके प्रथम मुखसे ऋचाएँ प्रकट हुईं। उनका वर्ण जपाकुसुमके समान था। वे सब तेजोमयी, एक दूसरीसे पृथक् तथा रजोमय रूप धारण करनेवाली थीं। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके दक्षिण मुखसे यजुर्वेदके मन्त्र अबाधरूपसे प्रकट हुए। जैसा सुवर्णका रंग होता है, वैसा ही उनका भी था। वे भी एक दूसरेसे पृथक्-पृथक् थे। फिर परमेष्ठी ब्रह्माके पश्चिम मुखसे सामवेदके छन्द प्रकट हुए। सम्पूर्ण अथर्ववेद, जिसका रंग भ्रमर और कज्जलराशिके समान काला है तथा जिसमें अभिचार एवं शान्तिकर्मके प्रयोग हैं, ब्रह्माजीके उत्तरमुखसे प्रकट हुआ। उसमें सुखमय सत्त्वगुण तथा तमोगुणकी प्रधानता है। वह घोर और सौम्यरूप है। ऋग्वेदमें रजोगुणकी, यजुर्वेदमें सत्त्वगुणकी, सामवेदमें तमोगुणकी तथा अथर्ववेदमें तमोगुण एवं सत्त्वगुणकी प्रधानता है। ये चारों वेद अनुपम तेजसे देदीप्यमान होकर पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्थित हुए। तत्पश्चात् वह प्रथम तेज, जो 'ॐ'के नामसे पुकारा जाता है, अपने स्वभावसे प्रकट हुए ऋग्वेदमय तेजको व्याप्त करके स्थित हुआ। महामुने! इसी प्रकार उस प्रणवरूप तेजने यजुर्वेद एवं सामवेदमय तेजको भी आवृत किया। इस प्रकार उस अधिष्ठानस्वरूप परम तेज ॐकारमें चारों वेदमय तेज एकत्वको प्राप्त हुए। ब्रह्मन्! तदनन्तर वह पुञ्जीभूत उत्तम वैदिक तेज परम तेज प्रणवके साथ मिलकर जब एकत्वको प्राप्त होता है, तब सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण उसका नाम आदित्य होता है। महाभाग! वह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा अपराह्णकालमें आदित्यकी अङ्गभूत वेदत्रयी ही, जिसे क्रमशः ऋक्, यजु और साम कहते हैं, तपती है। पूर्वाह्णमें ऋग्वेद, मध्याह्नमें यजुर्वेद तथा अपराह्णमें सामवेद तपता है। इसीलिये ऋग्वेदोक्त शान्तिकर्म पूर्वाह्णमें, यजुर्वेदोक्त पौष्टिककर्म मध्याह्नमें तथा सामवेदोक्त आभिचारिक कर्म अपराह्णकालमें निश्चित किया गया है। आभिचारिक कर्म मध्याह्न और अपराह्ण दोनों कालोंमें किया जा सकता है, किन्तु पितरोंके श्राद्ध आदि कार्य अपराह्णकालमें ही सामवेदके मन्त्रोंसे करने चाहिये। सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋग्वेदमय, पालनकालमें विष्णु यजुर्वेदमय तथा संहारकालमें रुद्र सामवेदमय कहे गये हैं। अतएव सामवेदकी ध्वनि अपवित्र मानी गयी है। इस प्रकार भगवान् सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेदविद्या-

स्वरूप तथा परम पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही रजोगुण और सत्त्वगुण आदिका आश्रय लेकर क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारके हेतु बनते हैं और इन कर्मोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम धारण करते हैं। वे देवताओंद्वारा सदा स्तवन करने योग्य हैं, वेदस्वरूप हैं। उनका कोई पृथक् रूप नहीं है। वे सबके आदि हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उन्हींके स्वरूप हैं। विश्वकी आधारभूता ज्योति वे ही हैं। उनके धर्म अथवा तत्त्वका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। वे वेदान्तगम्य ब्रह्म एवं परसे भी पर हैं।

तदनन्तर भगवान् सू र्यके तेजसे नीचे तथा ऊपरके सभी लोक सन्तप्त होने लगे। यह देख सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले कमलयोनि ब्रह्माजीने सोचा—सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत भगवान् सूर्यके सब ओर फैले हुए तेजसे मेरी रची हुई सृष्टि भी नाशको प्राप्त हो जायगी। जल ही समस्त प्राणियोंका जीवन है, वह जल सूर्यके तेजसे सूखा जा रहा है। जलके बिना इस विश्वकी सृष्टि हो ही नहीं सकती—ऐसा विचारकर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर भगवान् सूर्यकी स्तुति आरम्भ की।



ब्रह्माजी बोले—यह सब कुछ जिनका स्वरूप है, जो सर्वमय हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका शरीर है, जो परम ज्योतिःस्वरूप हैं तथा योगीजन जिनका ध्यान करते हैं, उन भगवान् सूर्यको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ऋग्वेदमय हैं, यजुर्वेदके अधिष्ठान हैं, सामवेदकी योनि हैं, जिनकी शक्तिका चिन्तन नहीं हो सकता, जो स्थूलरूपमें तीन वेदमय हैं और सूक्ष्मरूपमें प्रणवकी अर्धमात्रा हैं तथा जो गुणोंसे परे एवं परब्रह्मस्वरूप हैं, उन भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आप सबके कारण, परम ज्ञेय, आदिपुरुष, परम ज्योति, ज्ञानातीतस्वरूप, देवतारूपसे स्थूल तथा परसे भी परे हैं। सबके आदि एवं प्रभाका विस्तार करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी जो आद्याशक्ति है, उसीकी प्रेरणासे मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, उनके देवता तथा प्रणव आदिसे युक्त समस्त सृष्टिकी रचना करता हूँ। इसी प्रकार पालन और संहार भी मैं उस आद्याशक्तिकी प्रेरणासे ही करता हूँ, अपनी इच्छासे नहीं। भगवन्! आप ही अग्निस्वरूप हैं। आप जब जल सोख लेते हैं, तब मैं पृथ्वी तथा जगत्की सृष्टि करता हूँ। आप ही सर्वव्यापी एवं आकाशस्वरूप हैं तथा आप ही इस पाञ्चभौतिक जगत्का पूर्णरूपसे पालन करते हैं। सूर्यदेव! परमात्म-तत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष सर्वयज्ञमय विष्णुस्वरूप आपका ही यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं तथा अपनी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय यति आप सर्वेश्वर परमात्माका ही ध्यान करते हैं। देवस्वरूप आपको नमस्कार है। यज्ञरूप आपको प्रणाम है। योगियोंके ध्येय परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ और आपका यह तेजःपुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है; अतः अपने इस तेजको समेट लीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने अपने महान् तेजको समेटकर स्वल्प तेजको ही धारण किया, तब ब्रह्माजीने पूर्वकल्पान्तरोंके अनुसार जगत्की सृष्टि आरम्भ की। महामुने! ब्रह्माजीने पहलेकी ही भाँति देवताओं, असुरों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष लताओं तथा नरक आदिकी भी सृष्टि की।

अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यका अवतार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने ! इस जगत्की सृष्टि करके ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके अनुसार वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। देवता, दैत्य तथा सर्प आदिके रूप और स्थान भी पहलेकी ही भाँति बनाये। ब्रह्माजीके मरीचि नामसे विख्यात जो पुत्र थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह पत्नियाँ हुईं, वे सब-की-सब प्रजापति दक्षकी कन्याएँ थीं। उनसे देवता, दैत्य और नाग आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। अदितिने त्रिभुवनके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको तथा दनुने महापराक्रमी एवं भयानक दानवोंको उत्पन्न किया। विनतासे गरुड और अरुण—दो पुत्र हुए। खसाके पुत्र यक्ष और राक्षस हुए। कद्रूने नागोंको और मुनिने गन्धर्वोंको जन्म दिया। क्रोधासे कुल्याएँ तथा अरिष्टासे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इराने ऐरावत आदि हाथियोंको उत्पन्न किया। ताम्राके गर्भसे श्येनी आदि कन्याएँ पैदा हुईं। उन्हींके पुत्र श्येन (बाज), भास और शुक आदि पक्षी हुए। इलासे वृक्ष तथा प्रधासे जलजन्तु उत्पन्न हुए। कश्यप मुनिके अदितिके गर्भसे जो सन्तानें हुईं, उनके पुत्र-पौत्र, दौहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदिसे यह सारा संसार व्याप्त है। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। इनमें कुछ तो सात्त्विक हैं, कुछ राजस हैं और कुछ तामस हैं। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको यज्ञभागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्वामी बनाया; परन्तु उनके सौतेले भाई दैत्यों, दानवों और राक्षसोंने एक साथ मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। इस कारण एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें देवता पराजित हुए और बलवान् दैत्यों तथा दानवोंको विजय प्राप्त हुई। अपने पुत्रोंको दैत्यों और दानवोंके द्वारा पराजित एवं त्रिभुवनके राज्याधिकारसे वञ्चित तथा उनका यज्ञभाग छिन गया देख माता अदिति अत्यन्त शोकसे पीड़ित हो गयीं। उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् यत्न आरम्भ किया। वे नियमित आहार करती हुई कठोर नियमोंका पालन और आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् सूर्यका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोलीं—भगवन् ! आप अत्यन्त सूक्ष्म सुनहरी आभासे युक्त दिव्य शरीर धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप तेजःस्वरूप, तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार एवं सनातन पुरुष हैं; आपको प्रणाम है। गोपते! आप जगत्का उपकार करनेके लिये जब अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल ग्रहण करते हैं, उस समय आपका जो तीव्र रूप प्रकट होता है, उसे मैं नमस्कार करती हूँ। आठ महीनोंतक सोममय रसको ग्रहण करनेके लिये आप जो अत्यन्त तीव्ररूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। भास्कर ! उसी सम्पूर्ण रसको बरसानेके लिये जब आप छोड़नेको उद्यत होते हैं, उस समय आपका जो तृप्तिकारक मेघरूप प्रकट होता है, उसको मेरा नमस्कार है। इस प्रकार जलकी वर्षासे उत्पन्न हुए सब प्रकारके अन्नोंको पकानेके लिये आप जो भास्कररूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। तरणे ! जड़हन धानकी वृद्धिके लिये जो आप पाला गिराने आदिके कारण अत्यन्त शीतल रूप धारण करते हैं, उसको मेरा नमस्कार है। सूर्यदेव ! वसन्त ऋतुमें जो आपका सौम्य रूप प्रकट होता है, जिसमें न अधिक गर्मी होती है न अधिक सर्दी, उसे मेरा बारंबार नमस्कार है। जो सम्पूर्ण देवताओं तथा पितरोंको तृप्त करनेवाला और अनाजको पकानेवाला है, आपके उस रूपको नमस्कार है। जो रूप लताओं और वृक्षोंका एकमात्र जीवनदाता तथा अमृतमय है, जिसे देवता और पितर पान करते हैं, आपके उस सोमरूपको नमस्कार है। आपका यह विश्वमय स्वरूप ताप एवं तृप्ति प्रदान करनेवाले अग्नि और सोमके द्वारा व्याप्त है, आपको नमस्कार है। विभावसो ! आपका जो रूप ऋक्, यजु और साममय तेजोंकी एकतासे इस विश्वको तपाता है तथा जो वेदत्रयीस्वरूप है, उसको मेरा नमस्कार है। तथा जो उससे भी उत्कृष्ट रूप है, जिसे 'ॐ' कहकर पुकारा जाता है, जो अस्थूल, अनन्त और निर्मल है, उस सदात्माको नमस्कार है।

इस प्रकार देवी अदिति नियमपूर्वक रहकर दिन-रात सूर्यदेवकी स्तुति करने लगीं। उनकी आराधनाकी इच्छासे वे प्रतिदिन निराहार ही रहती थीं। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको आकाशमें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अदितिने देखा, आकाशसे पृथ्वीतक तेजका एक महान् पुञ्ज स्थित है। उद्दीप्त ज्वालाओंके कारण उसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। उन्हें देखकर देवी अदितिको बड़ा भय हुआ। वे बोलीं—गोपते ! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं पहले आकाशमें आपको जिस प्रकार देखती

थी, वैसे आज नहीं देख पाती। इस समय यहाँ भूतलपर मुझे केवल तेजका समुदाय दिखायी दे रहा है। दिवाकर! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे आपके रूपका दर्शन कर सकूँ। भक्तवत्सल प्रभो! मैं आपकी भक्त हूँ, आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये। आप ही ब्रह्मा होकर इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, आप ही पालन करनेके लिये उद्यत होकर इसकी रक्षा करते हैं तथा अन्तमें यह सब कुछ आपमें ही लीन होता है। सम्पूर्ण लोकमें आपके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, वायु, चन्द्रमा, अग्नि, आकाश, पर्वत और समुद्र हैं। आपका तेज सबका आत्मा है। आपकी क्या स्तुति की जाय। यज्ञेश्वर! प्रतिदिन अपने कर्ममें लगे हुए ब्राह्मण भाँति-भाँतिके पदोंसे आपकी स्तुति करते हुए यजन करते हैं। जिन्होंने अपने चित्तको वशमें कर लिया है, वे योगनिष्ठ पुरुष योगमार्गसे आपका ही ध्यान करते हुए परमपदको प्राप्त होते हैं। आप विश्वको ताप देते, उसे पकाते, उसकी रक्षा करते और उसे भस्म कर डालते हैं; फिर आप ही जलगर्भित शीतल किरणोंद्वारा इस विश्वको प्रकट करते और आनन्द देते हैं। कमलयोनि ब्रह्माके रूपमें आप ही सृष्टि करते हैं। अच्युत (विष्णु) नामसे आप ही पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्ररूप धारण करके आप ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् सूर्य अपने उस तेजसे प्रकट हुए। उस समय वे तपाये हुए ताँबेके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे। देवी अदिति उनका दर्शन करके चरणोंमें गिर पड़ीं। तब भगवान् सूर्यने कहा—'देवि! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मुझसे माँग लो।' तब देवी अदिति घुटनेके बलसे पृथ्वीपर बैठ गयीं और मस्तक नवाकर प्रणाम करके वरदायक भगवान् सूर्यसे बोलीं—'देव! आप प्रसन्न हों। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिभुवनका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं। गोपते! उन्हें प्राप्त करानेके निमित्त आप मुझपर कृपा करें। आप अपने अंशसे देवताओंके बन्धु होकर उनके शत्रुओंका नाश करें। प्रभो! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्र पुनः यज्ञभागके भोक्ता तथा त्रिभुवनके स्वामी हो जायँ।'

तब भगवान् सूर्यने अदितिसे प्रसन्न होकर कहा—'देवि! मैं अपने सहस्र अंशोंसहित तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारे पुत्रके शत्रुओंका नाश करूँगा।' इतना कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और अदिति भी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तदनन्तर सूर्यकी सुषुम्ना नामवाली किरण, जो सहस्र किरणोंका समुदाय थी, देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई। देवमाता अदिति एकाग्रचित्त हो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं और अत्यन्त पवित्रतापूर्वक उस गर्भको धारण किये रहीं, यह देख महर्षि कश्यपने कुछ कुपित होकर कहा—'तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती हो?' यह सुनकर उसने कहा—'देखिये, यह



रहा गर्भका बच्चा; मैंने इसे मारा नहीं है, यह स्वयं ही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा।'

यों कहकर देवी अदितिने उस गर्भको उदरसे बाहर कर दिया। वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी उस गर्भको देखकर कश्यपने प्रणाम किया और आदि ऋचाओंके द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की। उनके स्तुति करनेपर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भसे प्रकट हो गये। उनके शरीरकी कान्ति कमलपत्रके समान श्याम थी। वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंका मुख उज्ज्वल कर रहे थे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यपको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई—"मुने! तुमने अदितिसे कहा था कि इस अण्डेको क्यों मार रही है।—उस समय तुमने 'मारितं-अण्डम्' का

उच्चारण किया था, इसलिये तुम्हारा यह पुत्र 'मार्तण्ड'के नामसे विख्यात होगा और शक्तिशाली होकर सूर्यके अधिकारका पालन करेगा; इतना ही नहीं, यह यज्ञभागका अपहरण करनेवाले देवशत्रु असुरोंका संहार भी करेगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव बलहीन हो गये; तब इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानव भी उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचे। फिर तो देवताओंका असुरोंके साथ घोर संग्राम हुआ। उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चमकसे तीनों लोकोंमें प्रकाश छा गया। उस युद्धमें भगवान् सूर्यकी क्रूर दृष्टि पड़ने तथा उनके तेजसे दग्ध होनेके कारण सब असुर जलकर भस्म हो गये। अब तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने तेजके उत्पत्तिस्थान भगवान् सूर्य और अदितिका स्तवन किया। उन्हें पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञके भाग प्राप्त हो गये। भगवान् सूर्य भी अपने अधिकारका पालन करने लगे। वे नीचे और ऊपर फैली हुई किरणोंके कारण कदम्बपुष्पके समान सुशोभित हो रहे थे। उनका मण्डल गोलाकार अग्निपिण्डके समान है।

तदनन्तर भगवान् सूर्यको प्रसन्न करके प्रजापति विश्वकर्माने विनयपूर्वक अपनी संज्ञा नामकी कन्या उनको ब्याह दी। विवस्वान्से संज्ञाके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ। वैवस्वत मनुकी विशेष कथा पहले ही बतलायी जा चुकी है।

सूर्यकी महिमाके प्रसङ्गमें राजा राज्यवर्धनकी कथा

क्रौष्टुकि बोले—भगवन्! आपने आदिदेव भगवान् सूर्यके माहात्म्य और स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। अब मैं उनकी महिमाका वर्णन सुनना चाहता हूँ। आप प्रसन्न होकर बतानेकी कृपा करें।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! मैं तुम्हें आदिदेव सूर्यका माहात्म्य बताता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें दमके पुत्र राज्यवर्धन बड़े विख्यात राजा हो गये हैं। वे अपने राज्यका धर्मपूर्वक पालन करते थे, इसलिये वहाँके धन-जनकी दिनोंदिन वृद्धि होने लगी। उस राजाके शासन-कालमें समस्त राष्ट्र तथा नगरों और गाँवोंके लोग अत्यन्त स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते थे। वहाँ कभी कोई उत्पात नहीं होता था, रोग भी नहीं सताता था। साँपोंके काटनेका तथा अनावृष्टिका भय भी नहीं था। राजाने बड़े-बड़े यज्ञ किये। याचकोंको दान दिये और धर्मके अनुकूल रहकर विषयोंका उपभोग किया। इस प्रकार राज्य करते तथा प्रजाका भलीभाँति पालन करते हुए उस राजाके सात हजार वर्ष ऐसे बीत गये, मानो एक ही दिन व्यतीत हुआ हो। दक्षिण देशके राजा विदूरथकी पुत्री मानिनी राज्यवर्धनकी पत्नी थी। एक दिन वह सुन्दरी राजाके मस्तकमें तेल लगा रही थी। उस समय वह राजपरिवारके देखते-देखते आँसू बहाने लगी। रानीके आँसुओंकी बूँदें जब राजाके शरीरपर पड़ी तो उसे मुखपर आँसू बहाती देख उन्होंने मानिनीसे पूछा—'देवि! यह क्या?' स्वामीके इस प्रकार पूछनेपर उस मनस्विनीने कहा—'कुछ नहीं।' जब राजाने बार-बार पूछा, तब उस सुन्दरीने राजाकी केशराशिमेंसे एक पका बाल दिखाया और कहा—'राजन्! यह देखिये। क्या यह मुझ अभागिनीके लिये खेदका विषय नहीं है?' यह सुनकर राजा हँसने लगे। उन्होंने वहाँ एकत्रित हुए समस्त राजाओंके सामने अपनी पत्नीसे हँसकर कहा—'शुभे! शोककी क्या बात है? तुम्हें रोना नहीं चाहिये। जन्म, वृद्धि और परिणाम आदि विकार सभी जीवधारियोंके होते हैं। मैंने तो समस्त वेदोंका अध्ययन किया, हजारों यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दान दिया और मेरे कई पुत्र भी हुए। अन्य मनुष्योंके लिये जो अत्यन्त दुर्लभ हैं, ऐसे उत्तम भोग भी मैंने तुम्हारे साथ भोग लिये। पृथ्वीका भलीभाँति पालन किया और युद्धमें भलीभाँति अपने धर्मको निभाया। भद्रे! और कौन-सा ऐसा शुभ कर्म है, जो मैंने नहीं किया। फिर इन पके बालोंसे तुम क्यों डरती हो। शुभे! मेरे बाल पक जायँ, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जायँ तथा यह देह भी शिथिल हो जाय, कोई चिन्ता नहीं है। मैं अपने कर्तव्यका पालन कर चुका हूँ। कल्याणी! तुमने मेरे मस्तकपर जो पका बाल दिखाया है, अब वनवास लेकर उसकी भी दवा करता हूँ। पहले बाल्यावस्था और कुमारावस्थामें तत्कालोचित कार्य किया जाता है, फिर युवावस्थामें यौवनोचित कार्य होते हैं तथा बुढ़ापेमें वनका आश्रय लेना उचित है। मेरे पूर्वजों तथा उनके भी पूर्वजोंने ऐसा ही किया है, अतः मैं तुम्हारे आँसू बहानेका कोई कारण नहीं

देखता। पके बालका दिखायी देना तो मेरे लिये महान् अभ्युदयका कारण है।'

महाराजकी यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित हुए अन्य राजा, पुरवासी तथा पार्श्ववर्ती मनुष्य उनसे शान्तिपूर्वक बोले—'राजन्! आपकी इन महारानीको रोनेकी आवश्यकता नहीं है। रोना तो हमलोगोंको अथवा समस्त प्राणियोंको चाहिये, क्योंकि आप हमें छोड़कर वनवास लेनेकी बात मुँहसे निकाल रहे हैं। महाराज! आपने हमारा लालन-पालन किया है। आपके चले जानेकी बात सुनकर हमारे प्राण निकले जाते हैं। आपने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया है। अब आप वनमें रहकर जो तपस्या करेंगे, वह इस पृथ्वी-पालनजनित पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकती।'

राजाने कहा—मैंने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया, अब मेरे लिये यह वनवासका समय आ गया। मेरे कई पुत्र हो गये। मेरी सन्तानोंको देखकर थोड़े ही दिनोंमें यमराज मेरा यहाँ रहना नहीं सह सकेगा। नागरिको! मेरे मस्तकपर जो यह सफेद बाल दिखायी देता है, इसे अत्यन्त भयानक कर्म करनेवाली मृत्युका दूत समझो; अतः मैं राज्यपर अपने पुत्रका अभिषेक करके सब भोगोंको त्याग दूँगा और वनमें रहकर तपस्या करूँगा। जबतक यमराजके सैनिक नहीं आते, तभीतक यह सब कुछ मुझे कर लेना है।

तदनन्तर वनमें जानेकी इच्छासे महाराजने ज्योतिषियोंको बुलाया और पुत्रके राज्याभिषेकके लिये शुभ दिन एवं लग्न पूछे। राजाकी बात सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी व्याकुल हो गये। उन्हें दिन, लग्न और होरा आदिका ठीक ज्ञान न हो सका। तदनन्तर अन्य नगरों, अधीनस्थ राज्यों तथा उस नगरसे भी बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मण आये और वनमें जानेके लिये उत्सुक राजा राज्यवर्धनसे मिले। उस समय उनका माथा काँप उठा। वे बोले—'राजन्! हमपर प्रसन्न होइये और पहलेकी भाँति अब भी हमारा पालन कीजिये। आपके वन चले जानेपर समस्त जगत् सङ्कटमें पड़ जायगा; अतः आप ऐसा यत्न करें, जिससे जगत्‌को कष्ट न हो।'

इसके बाद मन्त्रियों, सेवकों, वृद्ध नागरिकों और ब्राह्मणोंने मिलकर सलाह की, 'अब यहाँ क्या करना चाहिये?' राजा राज्यवर्धन अत्यन्त धार्मिक थे। उनके प्रति सब लोगोंका अनुराग था; इसलिये सलाह करनेवाले लोगोंमें यह निश्चय हुआ कि हम सब लोग एकाग्रचित्त एवं भलीभाँति ध्यानपरायण होकर तपस्याद्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करके इन महाराजके लिये आयुकी प्रार्थना करें। इस प्रकार एक निश्चय करके कुछ लोग अपने घरोंपर विधिपूर्वक अर्घ्य, उपचार आदि उपहारोंसे भगवान् भास्करकी पूजा करने लगे। दूसरे लोग मौन रहकर ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके जपसे सूर्यदेवको सन्तुष्ट करने लगे। अन्य लोग निराहार रहकर नदीके तटपर निवास करते हुए तपस्याके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गये। कुछ लोग अग्निहोत्र करते, कुछ दिन-रात सूर्यसूक्तका पाठ करते और कुछ लोग सूर्यकी ओर दृष्टि लगाकर खड़े रहते थे।

सूर्यकी आराधनाके लिये इस प्रकार यत्न करनेवाले उन लोगोंके समीप आकर सुदामा नामक गन्धर्वने कहा—'द्विजवरो! यदि आपलोगोंको सूर्यदेवकी आराधना अभीष्ट है तो ऐसा कीजिये, जिससे भगवान् भास्कर प्रसन्न हो सकें। आपलोग यहाँसे शीघ्र ही कामरूप पर्वतपर जाइये। वहाँ गुरुविशाल नामक वन है, जिसमें सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँपर एकाग्रचित्त होकर आपलोग सूर्यकी आराधना करें। वह परम हितकारी सिद्ध क्षेत्र है। वहाँ आपलोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

सुदामाकी यह बात सुनकर वे समस्त द्विज गुरुविशाल वनमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यदेवका पवित्र एवं सुन्दर मन्दिर देखा। उस स्थानपर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लोग मिताहारी एवं एकाग्रचित्त हो पुष्प, चन्दन, धूप, गन्ध, जप, होम, अन्न और दीप आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा एवं स्तुति करने लगे।

ब्राह्मण बोले—देवता, दानव, यक्ष, ग्रह और नक्षत्रोंमें भी जो सबसे अधिक तेजस्वी हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। जो देवेश्वर भगवान् सूर्य आकाशमें स्थित होकर चारों ओर प्रकाश फैलाते तथा अपनी किरणोंसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त किये रहते हैं, उनकी हम शरण लेते हैं। आदित्य, भास्कर, भानु, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु तथा दीप्त-दीधिति—ये जिनके नाम हैं, जो चारों युगोंका अन्त करनेवाले कालाग्नि हैं, जिनकी ओर देखना कठिन है, जिनकी प्रलयके अन्तमें भी गति है, जो योगीश्वर, अनन्त, रक्त, पीत, सित और असित हैं, ऋषियोंके अग्निहोत्रों तथा यज्ञके देवताओंमें जिनकी स्थिति है, जो अक्षर, परम गुह्य तथा मोक्षके उत्तम द्वार हैं, जिनके उदया-

स्तमनरूप रथमें छन्दोमय अश्व जुते हुए हैं तथा जो उस रथपर बैठकर मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हुए आकाशमें विचरण करते हैं, अनृत और ऋत दोनों ही जिनके स्वरूप हैं, जो भिन्न-भिन्न पुण्यतीर्थोंके रूपमें विराजमान हैं, एकमात्र जिनपर इस विश्वकी रक्षा निर्भर है, जो कभी चिन्तनमें नहीं आ सकते, उन भगवान् भास्करकी हम शरण लेते हैं। जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं, वनस्पति, वृक्ष और ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं, जो व्यक्त और अव्यक्त प्राणियोंमें स्थित हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुके जो रूप हैं, वे आपके ही हैं। जिनके तीन स्वरूप हैं, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों। जिन अजन्मा जगदीश्वरके अङ्कमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है तथा जो जगत्‌के जीवन हैं, वे भगवान् सूर्य हमपर प्रसन्न हों। जिनका एक परम प्रकाशमान रूप ऐसा है, जिसकी ओर प्रभा-पुञ्जकी अधिकताके कारण देखना कठिन हो जाता है तथा जिनका दूसरा रूप चन्द्रमा है, जो अत्यन्त सौम्य है, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तवन और पूजन करनेवाले उन द्विजोंपर तीन महीनेमें भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए और अपने मण्डलसे निकलकर उसीके समान कान्ति धारण किये वे नीचे उतरे और दुर्दर्श होते हुए भी उन सबके समक्ष प्रकट हो गये। तब उन लोगोंने अजन्मा सूर्यदेवके स्पष्ट रूपका दर्शन करके उन्हें भक्तिसे विनीत होकर प्रणाम किया। उस समय उनके शरीरमें रोमाञ्च और कम्प हो रहा था। वे बोले—'सहस्र किरणोंवाले सूर्यदेव! आपको बारंबार नमस्कार है। आप सबके हेतु तथा सम्पूर्ण जगत्‌के विजयकेतु हैं; आप ही सबके रक्षक, सबके पूज्य, सम्पूर्ण यज्ञोंके आधार तथा योग-वेत्ताओंके ध्येय हैं; आप हमपर प्रसन्न हों।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर सब लोगोंसे कहा—'द्विजगण! आपको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह मुझसे माँगें।' यह सुनकर ब्राह्मण आदि वर्णोंके लोगोंने उन्हें प्रणाम करके कहा—'अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यदेव! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो हमारे राजा राज्यवर्द्धन नीरोग, शत्रुविजयी, सुन्दर केशोंसे युक्त तथा स्थिर यौवनवाले होकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहें।'



'तथास्तु' कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये। वे सब लोग भी मनोवाञ्छित वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक महाराजके पास लौट आये। वहाँ उन्होंने सूर्यसे वर पाने आदिकी सब बातें यथावत् कह सुनायीं। यह सुनकर रानी मानिनीको बड़ा हर्ष हुआ, परन्तु राजा बहुत देरतक चिन्तामें पड़े रहे। वे उन लोगोंसे कुछ न बोले। मानिनीका हृदय हर्षसे भरा हुआ था। वह बोली—'महाराज! बड़े भाग्यसे आयुकी वृद्धि हुई है। आपका अभ्युदय हो। राजन्! इतने बड़े अभ्युदयके समय आपको प्रसन्नता क्यों नहीं होती? दस हजार वर्षोंतक आप नीरोग रहेंगे, आपकी जवानी स्थिर रहेगी; फिर भी आपको खुशी क्यों नहीं होती?'

राजा बोले—कल्याणी! मेरा अभ्युदय कैसे हुआ! तुम मेरा अभिनन्दन क्यों करती हो? जब हजार-हजार दुःख प्राप्त हो रहे हैं, उस समय किसीको बधाई देना क्या उचित माना जाता है? मैं अकेला ही तो दस हजार वर्षोंतक जीवित रहूँगा। मेरे साथ तुम तो नहीं रहोगी। क्या तुम्हारे मरनेपर मुझे दुःख नहीं होगा? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इष्ट बन्धु-बान्धव, भक्त, सेवक तथा मित्रवर्ग—ये सब मेरी आँखोंके सामने मरेंगे। उस समय मुझे अपार दुःखका सामना करना पड़ेगा। जिन लोगोंने अत्यन्त दुर्बल होकर शरीरकी नाड़ियाँ सुखा-सुखाकर मेरे लिये तपस्या की,

वे सब तो मरेंगे और मैं भोग भोगते हुए जीवित रहूँगा। ऐसी दशामें क्या मैं धिक्कार देनेयोग्य नहीं हूँ ? सुन्दरी ! इस प्रकार मुझपर यह आपत्ति आ गयी। मेरा अभ्युदय नहीं हुआ है। क्या तुम इस बातको नहीं समझती ? फिर क्यों मेरा अभिनन्दन कर रही हो।

मानिनी बोली—महाराज ! आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है। मैंने तथा पुरवासियोंने आपके प्रेमवश इस दोषकी ओर नहीं देखा है। नरनाथ ! ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये, यह आप ही सोचें, क्योंकि भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर जो कुछ कहा है, वह अन्यथा नहीं हो सकता।

राजाने कहा—देवि ! पुरवासियों और सेवकोंने प्रेमवश मेरे साथ जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाये बिना मैं किस प्रकार भोग भोगूँगा। यदि भगवान् सूर्यकी ऐसी कृपा हो कि समस्त प्रजा, भृत्यवर्ग, तुम, अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और मित्र भी जीवित रह सकें तो मैं राज्य-सिंहासनपर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक भोगोंका उपभोग कर सकूँगा। यदि वे ऐसी कृपा नहीं करेंगे तो मैं उसी कामरूप पर्वतपर निराहार रहकर तबतक तपस्या करूँगा, जबतक कि इस जीवनका अन्त न हो जाय।



राजाके यों कहनेपर रानी मानिनीने कहा—'ऐसा ही हो।' फिर वह भी महाराजके साथ कामरूप पर्वतपर चली गयी। वहाँ पहुँचकर राजाने पत्नीके साथ सूर्यमन्दिरमें जाकर सेवापरायण हो भगवान् भानुकी आराधना आरम्भ की। दोनों दम्पति उपवास करते-करते दुर्बल हो गये। सर्दी, गर्मी और वायुका कष्ट सहन करते हुए दोनोंने घोर तपस्या की। सूर्यकी पूजा और भारी तपस्या करते-करते जब एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया, तब भगवान् भास्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाको समस्त सेवकों, पुरवासियों और पुत्रों आदिके लिये इच्छानुसार वरदान दिया। वर पाकर राजा अपने नगरको लौट आये और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ राज्य करने लगे। धर्मज्ञ राजाने बहुत-से यज्ञ किये और दिन-रात खुले हाथ दान किया। वे अपने पुत्र, पौत्र और भृत्य आदिके साथ यौवनको स्थिर रखते हुए दस हजार वर्षोंतक जीवित रहे। उनका यह चरित्र देखकर भृगुवंशी प्रमतिने विस्मित होकर यह गाथा गायी—'अहो ! भगवान् सूर्यके भजनकी कैसी शक्ति है, जिससे राजा राज्यवर्द्धन अपने तथा स्वजनोंके लिये आयुवर्द्धन बन गये।'

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मुखसे भगवान् सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यका श्रवण तथा पाठ करता है, वह सात रातके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रसङ्गमें सूर्य-देवके जो मन्त्र आये हैं, उनमेंसे एक-एकका भी यदि तीनों सन्ध्याओंके समय जप किया जाय तो वह समस्त पातकोंका नाश करनेवाला होता है। सूर्यके जिस मन्दिरमें इस समूचे माहात्म्यका पाठ किया जाता है, वहाँ भगवान् सूर्य अपना सान्निध्य नहीं छोड़ते। अतः ब्रह्मन् ! यदि तुम्हें महान् पुण्यकी प्राप्ति अभीष्ट हो तो सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यको मन-ही-मन धारण एवं जप करते रहो। द्विजश्रेष्ठ ! जो सोनेके सींग और अत्यन्त सुन्दर शरीरवाली दुधारू गाय दान करता है तथा जो अपने मनको संयममें रखकर तीन दिनोंतक इस माहात्म्यका श्रवण करता है, उन दोनोंको समान ही पुण्य-फलकी प्राप्ति होती है।

दिष्टपुत्र नाभागका चरित्र

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट—ये वैवस्वत मनुके पुत्र थे, जो पृथक्-पृथक् राज्यके पालक हुए। इन सबकी कीर्ति बहुत दूरतक फैली हुई थी और वे सभी शास्त्रविद्या तथा शस्त्रविद्यामें भी पारङ्गत थे। विद्वानोंमें श्रेष्ठ मनुने एक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छासे मित्रावरुण नामक यज्ञ किया। उसमें होताके दोषसे विपरीत आहुति पड़नेके कारण पुत्र न होकर इला नामकी सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। कन्या उत्पन्न हुई देख मनुने मित्र और वरुणका स्तवन किया तथा इस प्रकार कहा—'देववरो! मैंने इस उद्देश्यसे यज्ञ किया था कि आप दोनोंकी कृपासे मुझे एक विशिष्ट पुत्रकी प्राप्ति हो; किन्तु यज्ञ सम्पन्न होनेपर कन्याका जन्म हुआ। यदि आप दोनों प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो मेरी यह कन्या ही आप दोनोंके प्रसादसे अत्यन्त गुणवान् पुत्र हो जाय।' उन दोनों देवताओंने 'तथास्तु' कहा। जिससे वही कन्या इला तत्काल ही सुद्युम्ननामक पुत्रके रूपमें परिवर्तित हो गयी। मनुकुमार सुद्युम्न एक दिन वनमें शिकार खेल रहे थे। वहाँ महादेवजीके कोपसे उन्हे पुनः स्त्रीरूपमें हो जाना पड़ा। उस समय चन्द्रमाके पुत्र बुधने इलाके गर्भसे पुरूरवा नामक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न किया। पुत्र हो जानेके बाद राजा सुद्युम्नने अश्वमेध नामक महान् यज्ञ करके पुनः पुरुषरूप प्राप्त कर लिया। सुद्युम्नके तीन पुत्र हुए, जो उत्कल, विनय और गयके नामसे प्रसिद्ध थे। उन्होंने धर्ममें मन लगाकर इस पृथ्वीका पालन किया। राजा सुद्युम्न जब स्त्रीके रूपमें थे, तब उनके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ। पुरूरवा बुधके पुत्र थे, इसलिये उन्हें सुद्युम्नके राज्यका भाग नहीं मिला। तदनन्तर वसिष्ठजीके कहनेसे पुरूरवाको प्रतिष्ठान नामक उत्तम नगर दे दिया गया।

दिष्ट नामके एक राजा थे, जिनके पुत्रका नाम नाभाग[1] था। यौवनके आरम्भमें ही उनकी दृष्टि एक वैश्य-कन्यापर पड़ी, जो बहुत ही सुन्दरी थी। उसको देखते ही नाभागका मन कामके अधीन हो गया। उसने उसके पिताके पास जाकर वह कन्या माँगी। वैश्यने देखा, राजकुमारका मन अपने वशमें नहीं है, ये कामके अधीन हो चुके हैं। तब उसने हाथ जोड़कर उनसे कहा—'राजकुमार! आपलोग राजा हैं और हमलोग कर देनेवाले भृत्य। मैं आपके बराबर नहीं हूँ, फिर हमारे साथ आप वैवाहिक सम्बन्ध कैसे करना चाहते हैं।

राजकुमारने कहा—काम और मोह आदिने मानव-शरीरकी समानता सिद्ध कर दी है। मुझे तुम्हारी कन्या पसंद है, अतः उसे मुझे दे दो; अन्यथा मेरा यह शरीर जीवित नहीं रह सकता।

वैश्य बोला—हम और आप दोनों ही राजाके अधीन हैं। पहले आप अपने पिताजीसे आज्ञा ले लीजिये; फिर मैं कन्या दूँगा और आप ग्रहण कर लीजियेगा।

राजकुमारने कहा—गुरुजनोंके अधीन रहनेवाले पुत्रोंको उचित है कि वे अन्य सभी कार्योंमें गुरुजनोंसे पूछें, किन्तु ऐसे कार्योंमें पूछना ठीक नहीं। ऐसी बातें तो उनके सामने मुखसे निकालना भी कठिन है। कहाँ कामचर्चा और कहाँ गुरुजनोंको सुनाना; ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। हाँ, अन्य कार्योंके लिये उनसे पूछनेमें कोई हर्ज नहीं।

वैश्य बोला—ठीक है, आप अपने पिताजीसे पूछें तो आपके लिये यह कामचर्चा हो सकती है; किन्तु मेरे लिये यह कामचर्चा नहीं है, अतः मैं ही पूछूँगा।

वैश्यके यों कहनेपर राजकुमार चुप हो गये। तब उसने राजकुमारका जो विचार था, वह सब उसके पितासे कह सुनाया। तब राजकुमारके पिताने ऋचीक आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा राजकुमारको भी महलमें बुलाकर मुनियोंसे सब वृत्तान्त निवेदन किया और कहा—'इस विषयमें जो कर्तव्य हो, उसके लिये आपलोग आज्ञा दें।'

ऋषि बोले—राजकुमार! पहले तुम्हारा विवाह किसी मूर्द्धाभिषिक्त राजाकी कन्यासे होना चाहिये। उसके बाद यह वैश्य-कन्या भी तुम्हारी स्त्री हो सकती है। ऐसा करनेसे दोष न होगा। अन्यथा पहले ही वैश्य-कन्याका अपहरण करनेपर तुम्हारी उत्कृष्ट जाति चली जायगी।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यह सुनकर नाभागने उन महात्माओंके वचनकी अवहेलना कर दी और घरसे निकलकर तलवार हाथमें ले वह बोला—'मैंने राक्षसविवाहके अनुसार इस वैश्यकन्याका अपहरण किया है। जिसकी सामर्थ्य हो, वह इसे मेरे हाथसे छुड़ा ले।' वैश्यने उन कन्याको राजकुमारके चंगुलमें पड़ी देख 'त्राहि, त्राहि' कहते हुए उसके पिताकी शरण ली। तब राजकुमारके पिताने कुपित होकर बहुत बड़ी सेनाको आज्ञा दी, 'दुष्ट नाभाग धर्मको

[1] ये 'नाभाग' मनु-पुत्र नाभागसे भिन्न हैं।

कलङ्कित कर रहा है; अतः उसे मार डालो, मार डालो।' राजाकी आज्ञा पाकर सेनाने राजकुमारके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। नाभाग अस्त्रोंका ज्ञाता था, उसने अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे अधिकांश सैनिकोंको मार गिराया। राजकुमारके द्वारा सेनाके मारे जानेका समाचार सुनकर राजा अपने सैनिकोंको साथ ले स्वयं ही युद्धके लिये गये। फिर तो उनका अपने पुत्रके साथ संग्राम छिड़ गया। उसमें अस्त्र-शस्त्रोंके प्रयोगमें राजकुमारकी अपेक्षा उसके पिता ही बढ़े-चढ़े सिद्ध हुए। इसी समय सहसा आकाशसे परिव्राट् मुनि उतर पड़े और राजासे बोले—'महाभाग! अपने पुत्रके साथ युद्ध बंद कीजिये, वह अपने धर्मसे भ्रष्ट हो चुका है। पुरुष अपने वर्णकी कन्याके साथ विवाह न करके जिस-जिस हीन जातिकी कन्याका पाणिग्रहण करता है, उसी-उसीके वर्णका वह भी हो जाता है। अतः आपका यह मन्दबुद्धि पुत्र अब वैश्य हो गया है, इसका क्षत्रियके साथ युद्ध करनेका अधिकार नहीं है। इसलिये अब आप युद्धसे निवृत्त हो जाइये।' तब राजा अपने पुत्रके साथ युद्ध करनेसे रुक गये। उसने भी उस वैश्य-कन्याके साथ विवाह कर लिया। वैश्यत्वको प्राप्त होनेपर उसने राजाके पास जाकर पूछा—'भूपाल! अब मेरा जो कर्तव्य हो, उसके लिये आज्ञा दीजिये।'

राजाने कहा—बाभ्रव्य आदि तपस्वी धार्मिक न्यायके लिये नियुक्त हैं, वे तुम्हारे लिये जो कर्म धर्मानुकूल बतावें, उसीका अनुष्ठान करो।

तब राजसभामें रहनेवाले बाभ्रव्य आदि मुनियोंने नाभागके लिये पशुपालन, कृषि तथा वाणिज्य—ये ही उत्तम धर्म बतलाये। राजाकी आज्ञाके अनुसार उसने भी वैसा ही किया। नाभागके उस वैश्य-कन्यासे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम भनन्दन था।

वत्सप्रीके द्वारा कुजृम्भका वध तथा उसका मुदावतीके साथ विवाह

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस पृथ्वीपर विदूरथ नामके एक राजा हो चुके हैं। उनकी कीर्ति बहुत दूरतक फैली हुई थी। उनके दो पुत्र थे—सुनीति और सुमति। एक दिन राजा विदूरथ शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ



उन्हें एक विशाल गढ़ा दिखायी दिया, जो पृथ्वीका मुख-सा प्रतीत होता था। उसे देखकर राजाने सोचा, यह भयंकर गर्त क्या है? मालूम होता है पातालतक जानेवाली गुफा है, पृथ्वीका साधारण गर्त नहीं; देखनेमें भी पुराना नहीं जान पड़ता। उस निर्जन वनमें इस प्रकार सोचते-विचारते हुए राजाने वहाँ सुव्रत नामके तपस्वी ब्राह्मणको आते देखा और निकट आनेपर उनसे पूछा—'यह क्या है? यह गर्त बहुत ही गहरा है, इसमें पृथ्वीका भीतरी भाग दिखायी दे रहा है।'

ऋषिने कहा—राजन्! क्या आप इसे नहीं जानते? इस पृथ्वीपर जो कुछ भी है, वह सब राजाको जानना चाहिये। रसातलमें एक महापराक्रमी भयंकर दानव निवास करता है; वह पृथ्वीको जृम्भित (छिद्रयुक्त) कर देता है, इसलिये उसे कुजृम्भ कहते हैं। नरेश्वर! वह पृथ्वीपर अथवा स्वर्गमें जो कुछ करता है, उसकी जानकारी आप क्यों नहीं रखते। पूर्वकालमें विश्वकर्माने जिसका निर्माण किया था, वह सुनन्द नामका मूसल उस दुष्टात्माने हड़प लिया। उसीसे युद्धमें वह शत्रुओंका संहार करता है। पातालके अंदर रहकर उस मूसलसे ही वह इस पृथ्वीको विदीर्ण कर देता है और इस प्रकार समस्त असुरोंके आने-जानेके लिये द्वार बना लेता है। जब आप पातालके भीतर रहनेवाले

इस शत्रुका नाश करेंगे, तभी वास्तवमें सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी हो सकेंगे। राजन्! उस मूसलके बलाबलके विषयमें विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं कि यदि कोई स्त्री वह मूसल छू दे तो वह उस दिन निर्बल हो जाता है, किन्तु दूसरे दिन फिर पूर्ववत् प्रबल हो जाता है। युवतीकी अँगुलियोंके स्पर्शसे उसकी शक्तिके नष्ट हो जानेका जो दोष या प्रभाव है, उसे वह दुराचारी दैत्य भी नहीं जानता। भूपाल! आपके नगरके समीप ही उसने यह पृथ्वीमें छेद किया है, फिर भी आप निश्चिन्त क्यों हैं।

इतना कहकर ब्रह्मर्षि सुव्रत चले गये। राजाने भी अपने नगरमें जाकर मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंसे परामर्श किया और कुजृम्भके विषयमें जो कुछ सुना था, वह सब कह सुनाया। उन्होंने मूसलका वह प्रभाव भी, कि स्त्रीके स्पर्शसे उसकी शक्तिका ह्रास हो जाता था, मन्त्रियोंको बताया। जिस समय राजा मन्त्रियोंके साथ परामर्श कर रहे थे, उस समय उनकी कन्या मुदावती भी पास ही बैठी सब कुछ सुन रही थी। तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद कुजृम्भने सखियोंसे घिरी हुई उस राजकन्याको उपवनसे हर लिया। यह बात सुनकर राजाके नेत्र क्रोधसे चञ्चल हो उठे और उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंसे, जो वनके मार्ग भलीभाँति जानते थे, कहा—'तुमलोग शीघ्र जाओ। उस दानवने निर्विन्ध्याके तटपर गढ़ा बना रक्खा है, उसीके मार्गसे रसातलमें जाकर मुदावतीका अपहरण करनेवाले उस दुष्टको मार डालो।'

तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए दोनों राजकुमार उस गर्तके मार्गसे सेनासहित रसातलमें जा पहुँचे और कुजृम्भसे युद्ध करने लगे। उनमें परिघ, खड्ग, शक्ति, शूल, फरसे तथा बाणोंकी मारसे निरन्तर अत्यन्त भयानक संग्राम होता रहा। फिर मायाके बली दैत्यने युद्धमें उन दोनों राजकुमारोंको बाँध लिया और उनके समस्त सैनिकोंका संहार कर डाला। यह समाचार पाकर राजाको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपने सभी योद्धाओंसे कहा—'जो इस दैत्यका वध करके मेरे दोनों पुत्रोंको छुड़ा लायेगा, उसको मैं अपनी कन्या ब्याह दूँगा।' भनन्दनके पुत्र वत्सप्रीने भी यह घोषणा सुनी। वह बलवान्, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता तथा शूरवीर था। उसने अपने पिताके प्रिय मित्र राजा विदूरथके पास आकर उन्हें प्रणाम किया और विनीत भावसे कहा—'महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपके ही तेजसे उस दैत्यको मारकर आपके दोनों पुत्रों तथा कन्याको छुड़ा लाऊँगा।' यह सुनकर राजाने अपने प्यारे मित्रके उस पुत्रको प्रसन्नतापूर्वक छातीसे लगा लिया और कहा—'वत्स! जाओ, तुम्हें अपने कार्यमें सफलता प्राप्त हो।'



तदनन्तर वीर वत्सप्री खड्ग और धनुष ले, अँगुलियोंमें गोधाके चर्मसे बने हुए दस्ताने पहनकर पूर्वोक्त गढ़ेके मार्गसे तुरंत पातालमें गया। वहाँ उसने अपने धनुषकी भयंकर टङ्कार सुनायी, जिससे सारा पाताल गूँज उठा। वह टङ्कार सुनकर दानवराज कुजृम्भ अपनी सेना साथ ले बड़े क्रोधके साथ वहाँ आया और राजकुमारके साथ युद्ध करने लगा। दोनोंके पास अपनी-अपनी सेनाएँ थीं, एक बलवान्का दूसरे बलवान् वीरके साथ युद्ध हो रहा था। लगातार तीन दिनोंतक घमासान युद्ध होता रहा, तब वह दानव अत्यन्त क्रोधमें भरकर मूसल लानेके लिये दौड़ा। प्रजापति विश्वकर्माका बनाया हुआ वह मूसल सदा अन्तःपुरमें रहता था और गन्ध, माला तथा धूप आदिसे प्रतिदिन उसकी पूजा होती थी। राजकुमारी मुदावती उस मूसलके प्रभावको जानती थी। अतः उसने अत्यन्त नम्रतासे मस्तक झुकाकर उस श्रेष्ठ मूसलका स्पर्श किया। वह महान् दैत्य जबतक उस मूसलको हाथमें ले, तबतक ही उसने नमस्कारके बहाने अनेक बार उसका स्पर्श कर लिया; फिर उस दैत्यराजने युद्धभूमिमें जाकर मूसलसे युद्ध आरम्भ किया; किन्तु उसके शत्रुओंपर मूसलके



प्रहार व्यर्थ सिद्ध होने लगे। उस दिव्य अस्त्रके निर्बल पड़ जानेपर दैत्यने दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा शत्रुका सामना किया। राजकुमारने उसे रथहीन कर दिया। तब वह ढाल-तलवार लेकर उसकी ओर दौड़ा। उसे क्रोधमें भरकर वेगसे आते देख राजकुमारने कालाग्निके समान प्रज्वलित आग्नेय अस्त्रसे उसपर प्रहार किया। उससे दैत्यकी छातीमें गहरी चोट पहुँची और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। उसके मारे जानेपर रसातल-निवासी बड़े-बड़े नागोंने महान् उत्सव मनाया। राजकुमार-पर फूलोंकी वर्षा होने लगी। गन्धर्वराज गाने लगे और देवताओंके बाजे बज उठे। राजकुमार वत्सप्रीने उस दैत्यको मारकर राजा विदूरथके दोनों पुत्रों तथा कृशाङ्गी कन्या मुदावतीको भी बन्धनसे मुक्त किया। कुजृम्भके मारे जानेपर नागोंके अधिपति शेषसंज्ञक भगवान् अनन्तने उस मूसलको ले लिया। मुदावतीने सुनन्दनामक मूसलके गुणको जानकर उसका बारंबार स्पर्श किया था, इसलिये नागराज अनन्तने उसका नाम सुनन्दा रख दिया। तत्पश्चात् राजकुमारने भाइयोंसहित उस कन्याको शीघ्र ही पिताके पास पहुँचाया और प्रणाम करके कहा—'तात! आपकी आज्ञाके अनुसार मैं आपके दोनों पुत्रों और इस मुदावतीको भी छुड़ा लाया। अब मुझसे और भी जो कार्य लेना हो, उसके लिये आज्ञा कीजिये।'

इसपर महाराज विदूरथके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उच्चस्वरसे बोले—'बेटा! बेटा!! तूने बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया। आज देवताओंने तीन कारणोंसे मेरा सम्मान बढ़ाया है—एक तो तुम जामाताके रूपमें मुझे



प्राप्त हुए, दूसरे मेरा शत्रु मारा गया तथा तीसरे मेरी सन्तानें कुशलपूर्वक लौट आयीं; अतः आज शुभ मुहूर्तमें तुम मेरी इस कन्याका पाणिग्रहण करो।' यों कहकर राजाने उन दोनोंका विधिपूर्वक विवाह कर दिया। नवयुवक वत्सप्री मुदावतीके साथ रमणीय प्रदेशों तथा महलोंमें विहार करने लगा। कुछ कालके बाद उसके वृद्ध पिता भनन्दन वनमें चले गये और वत्सप्री राजा हुआ। उसने सदा ही प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करते हुए अनेक यज्ञ किये। वह प्रजाको पुत्रकी भाँति मानकर उसकी रक्षा करता था। उसके राज्यमें वर्णसङ्कर सन्तानकी उत्पत्ति नहीं हुई। कभी किसीको लुटेरों, सर्पों तथा दुष्टोंका भय नहीं हुआ। इसके शासनकालमें किसी प्रकारके उत्पातका भी भय नहीं था।

राजा खनित्रकी कथा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सुनन्दाके गर्भसे वत्सप्रीके बारह पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बल, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप। ये सभी महाभाग संग्रामविजयी थे। इनमें महापराक्रमी प्रांशु ज्येष्ठ थे, अतः वे ही राजा हुए। शेष भाई सेवककी भाँति उनकी आज्ञाके अधीन रहते थे। उनके यज्ञमें इतना धन दान किया गया कि ब्राह्मणों तथा निम्नवर्णके लोगोंने भी राशि-राशि द्रव्य छोड़ दिया। अधिक होनेके कारण साथ न ले सके। वह सभी द्रव्य पृथ्वीपर पड़ा रह गया, जिससे इस पृथ्वीका 'वसुन्धरा' (धन धारण करनेवाली) नाम सार्थक हुआ। वे प्रजाका औरस पुत्रोंकी भाँति पालन करते थे। उनके खजानेमें जो धन एकत्रित होता था, उसके द्वारा उन्होंने जो लाखों यज्ञ सम्पन्न किये, उनकी कोई संख्या नहीं है। प्रांशुके पुत्र प्रजाति थे। प्रजातिके खनित्र आदि पाँच पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े खनित्र राजा हुए। वे अपने पराक्रमके लिये विख्यात थे। खनित्र बड़े ही शान्त, सत्यवादी, शूरवीर, समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले, स्वधर्मपरायण, वृद्ध पुरुषोंके सेवक, अनेक शास्त्रोंके विद्वान्, वक्ता, विनयशील, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, डींग न हाँकनेवाले और सब लोगोंके प्रिय थे। वे दिन-रात यही कामना किया करते थे—समस्त प्राणी प्रसन्न रहें। दूसरोंपर भी स्नेह रक्खें। सब जीवोंका कल्याण हो। सभी निर्भय हों। किसी भी प्राणीको कोई व्याधि एवं मानसिक व्यथा न हो। समस्त प्राणी सबके प्रति मित्रभावके पोषक हों। ब्राह्मणोंका कल्याण हो। सबमें परस्पर प्रेम रहे। सब वर्णोंकी उन्नति हो। समस्त कर्मोंमें सिद्धि प्राप्त हो। लोगो! सब भूतोंके प्रति तुम्हारी बुद्धि कल्याणमयी हो। तुमलोग जिस प्रकार अपना तथा अपने पुत्रोंका सर्वदा हित चाहते हो, उसी प्रकार सब प्राणियोंके प्रति हित-बुद्धि रखते हुए बर्ताव करो। यह तुम्हारे लिये अत्यन्त हितकी बात है। कौन किसका अपराध करता है। यदि कोई मूढ किसीका थोड़ा भी अहित करता है तो वह निश्चय ही उसका फल भोगता है; क्योंकि फल सदा कर्ताको ही मिलता है। लोगो! यह विचारकर सबके प्रति पवित्र भाव रक्खो। इससे इस लोकमें पाप नहीं बनेगा और तुम्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी। बुद्धिमानो! मैं तो यह चाहता हूँ कि आज जो मुझसे स्नेह रखता है, उसका इस पृथ्वीपर सदा ही कल्याण हो तथा जो इस लोकमें मेरे साथ द्वेष रखता है, वह भी कल्याणका ही भागी बने।*

राजा प्रजातिके पुत्र ऐसे थे। वे समस्त गुणोंसे सम्पन्न और सुन्दर थे। उनके नेत्र पद्मपत्रके समान सुशोभित थे। उन्होंने अपने भाइयोंको प्रेमपूर्वक पृथक्-पृथक् राज्योंमें अभिषिक्त कर दिया और स्वयं समुद्रवसना पृथ्वीका उपभोग करने लगे। उन्होंने पूर्व दिशामें अपने भाई शौरिको, दक्षिण दिशामें उदावसुको, पश्चिममें सुनयको और उत्तरमें महारथको अभिषिक्त किया। उन चारों भाइयोंके तथा स्वयं राजा खनित्रके भिन्न-भिन्न गोत्रवाले मुनि पुरोहित हुए और वे ही वंशपरम्पराके क्रमसे मन्त्री भी होते आये। उक्त चारों राजा अपने-अपने राज्यका उपभोग करने लगे। खनित्र उन सबके सम्राट् थे। वे सारी पृथ्वीके स्वामी थे। महाराज खनित्र उन चारों भाइयों तथा समस्त प्रजापर सदा पुत्रोंकी भाँति स्नेह रखते थे। एक दिन राजा शौरिसे उनके मन्त्री विश्ववेदीने एकान्तमें कहा—'राजन्! मुझे आपसे कुछ कहना है। जिसके अधिकारमें यह सारी पृथ्वी रहती है, उसीके वशमें अन्य सब राजा भी रहते हैं। वह तो राजा होता ही है,

---

* नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि।
स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च॥
मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च।
मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने॥
शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्परम्।
समृद्धिः सर्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्मणाम्॥
हे लोकाः सर्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः।
यथाऽऽत्मनि यथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्वदा॥
तथा समस्तभूतेषु वर्तध्वं हितबुद्धयः।
एतद्वो हितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते॥
यत् करोत्यहितं किञ्चित् कस्यचिन्मूढमानसः।
तं समभ्येति तन्नूनं कर्तृगामि फलं यतः॥
इति मत्वा समस्तेषु भो लोकाः कृतबुद्धयः।
सन्तु मा लौकिकं पापं लोकान् प्राप्स्यथ वै बुधाः॥
यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि।
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु॥
(११७। १२—१९)

उसके पुत्र-पौत्र तथा वंशके लोग भी क्रमशः राजा होते हैं। इसलिये आप हमलोगोंको साधन बनाकर अपने बाप-दादोंके राज्यपर अधिकार कर लीजिये। हम इस लोकमें ही आपको लाभ पहुँचा सकते हैं, परलोकमें नहीं।'

राजाने कहा—हमारे ज्येष्ठ भाई राजा हैं और हमलोगोंको पुत्रकी भाँति प्रेमसे अपनाये रखते हैं; फिर हम उनके राज्यपर किस प्रकार अधिकार जमायें।

विश्ववेदी बोले—राजन्! आप राज्यपर अधिकार कर लेनेके बाद राजोचित धन-सम्पत्तिके द्वारा अपने बड़े भाईकी पूजा करते रहियेगा। भला, राज्य-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंमें यह छोटे-बड़ेका भेद कैसा।



विश्ववेदीके इस प्रकार समझानेपर शौरिने उनकी इच्छाके अनुसार काम करनेकी प्रतिज्ञा की। तब मन्त्रीने उनके अन्य भाइयोंको भी वशमें किया। फिर साम-दान आदिके द्वारा उन सबके पुरोहितोंको भी फोड़ लिया। फिर वे चारों पुरोहित महाराज खनित्रके विरुद्ध भयङ्कर पुरश्चरण करने लगे। उनके आभिचारिक कर्मसे चार कृत्याएँ उत्पन्न हुईं। वे सभी विकराल, बड़े-बड़े मुखवाली तथा देखनेमें अत्यन्त भयङ्कर थीं। उनके हाथोंमें भयानक एवं विशाल त्रिशूल था। वे सभी राजा खनित्रके पास आयीं। राजा साधु पुरुष थे, अतः उनके पुण्य-समूहसे वे परास्त हो गयीं और लौटकर उन दुष्टात्मा पुरोहितोंपर ही टूट पड़ीं। कृत्याओंने उन चारों पुरोहितों तथा शौरिके दुष्ट मन्त्री विश्ववेदीको भी जलाकर भस्म कर डाला।

इस घटनासे सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ; क्योंकि भिन्न-भिन्न नगरोंमें निवास करनेवाले वे सभी पुरोहित और मन्त्री एक ही समय नष्ट हुए। महाराज खनित्रने भी जब सुना कि भाइयोंके पुरोहित मर गये और मन्त्री विश्ववेदी भी जलकर भस्म हो गये, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने सोचा यह क्या बात हो गयी। महाराजको इसका कुछ भी कारण नहीं मालूम हुआ। तब उन्होंने अपने घरपर पधारे हुए महर्षि वशिष्ठसे पूछा—'ब्रह्मन्! भाइयोंके पुरोहित और मन्त्री जो नष्ट हो गये, इसका क्या कारण है?' राजाके इस प्रकार पूछनेपर महामुनि वशिष्ठने सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दिया। शौरिके मन्त्रीने जो भाइयोंमें भेद डालनेवाली बात कही थी और शौरिने जो उत्तर दिया था, पुरोहितोंने जो अभिचार-कर्म किया तथा जिस कारण उनकी मृत्यु हुई, वे सब बातें महर्षिने निवेदन कीं। यह सब समाचार सुनकर महाराज खनित्रने कहा—'मुझ पापी, भाग्यहीन तथा दुष्टको धिक्कार है, जिसके कारण चार ब्राह्मणोंकी हत्या हुई। मेरे राज्यको धिक्कार है तथा महान् राजाओंके कुलमें लिये हुए जन्मको भी धिक्कार है, क्योंकि मैं ब्राह्मणोंके विनाशका कारण



बन गया। वे पुरोहित तो अपने स्वामी, मेरे भाइयोंका कार्य कर रहे थे, उस दशामें उनकी मृत्यु हुई है। अतः दुष्ट वे नहीं हैं, मैं ही दुष्ट हूँ; क्योंकि मैं ही उनके नाशका कारण बना हूँ।' ऐसा विचार करके महाराज खनित्र अपने क्षुप नामक पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करके तीनों पत्नियोंके साथ तपस्याके लिये वनमें चले गये। वे वानप्रस्थके नियमोंके ज्ञाता थे; अतः वनमें जाकर उन्होंने साढ़े तीन सौ वर्षोंतक घोर तपस्या की। तपस्यासे शरीरको दुर्बल करके समस्त इन्द्रियोंको रोककर वनवासी नरेशने अपने प्राण त्याग दिये। इससे वे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अक्षय पुण्य-लोकोंमें गये। उनकी तीनों पत्नियाँ भी उन्हींके साथ प्राण त्यागकर उन्हीं लोकोंमें गयीं। राजा खनित्रका यह चरित्र सुनने और पढ़नेपर मनुष्योंका पाप नष्ट करनेवाला है। अब क्षुपका वृत्तान्त सुनो।

क्षुप, विविंश, खनीनेत्र, करन्धम, अवीक्षित तथा मरुत्तके चरित्र

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजा खनित्रके पुत्र क्षुपने भी राज्य पानेके बाद पिताकी ही भाँति धर्मपूर्वक प्रजाजनोंका पालन किया। वे दानशील तथा अनेक यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले थे। उन्होंने व्यवहार आदिके मार्गमें शत्रु और मित्र दोनोंके प्रति समान भाव रक्खा। एक दिन महाराज क्षुप अपने राज्य-सिंहासनपर बैठे थे। उस समय सूतों एवं वन्दीजनोंने कहा—'महाराज! पूर्वकालमें जैसे क्षुप नामके राजा हुए थे, वैसे ही आज भी हैं। प्राचीन राजा क्षुप ब्रह्माजीके पुत्र थे। उनका चरित्र जैसा था, वैसा ही वर्तमान महाराजका भी है। पहलेके महाराज क्षुप गौ और ब्राह्मणोंसे कर नहीं लेते थे तथा उन महात्माने प्रजासे प्राप्त हुए छठे भागके द्वारा इस पृथ्वीपर अनेक यज्ञ किये थे।'

राजा बोले—मेरे-जैसा कौन मनुष्य उन महात्मा राजाओंका पूर्णरूपसे अनुसरण कर सकेगा, तथापि उत्तम आचरणवाले पुरुषोंके समान कार्य करनेके लिये उद्योग अवश्य करना चाहिये। अतः इस समय मैं जो प्रतिज्ञा करता हूँ, उसे सुनो—मैं महाराज क्षुपके चरित्रका अनुसरण करूँगा तथा खेतीका अभाव होने या उसका अभाव दूर होनेपर तीन-तीन यज्ञोंका अनुष्ठान करूँगा। मेरी यह प्रतिज्ञा सम्पूर्ण भूमण्डलके लिये है। आजके पहले गौ और ब्राह्मणोंने जो राज-कर दिया है, वह सब उन्हींकी सेवामें लौटा दूँगा।

ऐसी प्रतिज्ञा करके राजा क्षुपने सब कुछ वैसा ही किया। वे खेती मारी जानेपर तीन-तीन यज्ञोंका अनुष्ठान करते थे। पहले गौ-ब्राह्मणोंने पूर्वके राजाओंको जितना कर दिया था, उतना धन उन्होंने उन्हें लौटा दिया। उनकी पत्नी प्रमथाके गर्भसे वीर नामक उत्तम पुत्र हुआ। उसने अपने प्रताप और पराक्रमसे पृथ्वीके समस्त राजाओंको अपने वशमें कर लिया था। विदर्भराजकुमारी नन्दिनी उसकी प्रियतमा पत्नी थी, जिसके गर्भसे उसने विविंश नामक पुत्रको जन्म दिया। विविंश भी महाबलवान् राजा हुआ। उसके शासनकालमें आबादी अधिक हो जानेसे समूची पृथ्वी मनुष्योंसे भर गयी थी। समय-पर वर्षा होती, पृथ्वीपर खेती लहराया करती, खेतीमें अच्छे दाने लगते और दानोंमें पूर्ण रस भरे रहते थे। वे रस मनुष्योंके लिये पुष्टिकारक होते; किन्तु वह पुष्टि उन्माद पैदा करनेवाली नहीं होती थी। लोगोंके पास जो धनका संग्रह होता, वह उनके मदका कारण नहीं बनता था। विविंशके प्रतापसे शत्रु सदा भयभीत रहते थे। प्रजा स्वस्थ थी और सुहृद्वर्ग भलीभाँति पूजित हो प्रसन्नता प्राप्त करता था। राजा विविंश बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान तथा पृथ्वीका भलीभाँति पालन करके संग्राममें मृत्यु पाकर यहाँसे इन्द्रलोकमें चला गया।

विविंशका पुत्र खनीनेत्र हुआ, जो महाबलवान् और पराक्रमी था। उसके यज्ञोंमें गन्धर्वगण विस्मित हो यह गाथा गाया करते थे—'खनीनेत्रके समान दूसरा राजा इस पृथ्वीपर नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने दस हजार यज्ञ पूर्ण करके समुद्रसहित यह सारी पृथ्वी दान कर दी थी।' महात्मा ब्राह्मणों-को समूची पृथ्वीका दान दे उन्होंने तपस्यासे द्रव्य संग्रह किया और उसके द्वारा पृथ्वीको छुड़ाया। राजा खनीनेत्रने सरसठ हजार सरसठ सौ सरसठ यज्ञ किये थे और सबमें प्रचुर दक्षिणा दी थी। राजाको कोई पुत्र नहीं था; इसलिये वे पापनाशिनी गोमतीके तटपर गये और वहाँ मन, वाणी एवं शरीरको संयममें रखकर घोर तपस्या करने लगे। सन्तानके लिये उन्होंने इन्द्रका स्तवन किया। उनके स्तोत्र, तपस्या और भक्तिसे सन्तुष्ट होकर इन्द्रने कहा—'राजन्! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, कोई वर माँगो।'

राजा बोले—देवेश्वर ! मुझे कोई पुत्र नहीं है, अतः आपकी कृपासे मुझे पुत्र प्राप्त हो। वह पुत्र समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, अक्षय ऐश्वर्यसे युक्त, धर्मपालक तथा धर्मज्ञ हो।

इन्द्रने 'एवमस्तु' कहकर आशीर्वाद दिया। राजाका मनोरथ पूर्ण हो गया, अब वे प्रजाका पालन करनेके लिये अपने नगरमें आये। वहाँ वे विधिपूर्वक यज्ञका अनुष्ठान तथा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे। उस समय इन्द्रकी कृपासे उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उसके पिताने बलाश्व रक्खा। फिर राजाने पुत्रको सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा दी। पिताके मरनेके बाद जब बलाश्व राज्यसिंहासनपर आसीन हुए, तब उन्होंने पृथ्वीके सम्पूर्ण राजाओंको अपने वशमें कर लिया। परन्तु बहुतसे महापराक्रमी राजा, जो सब प्रकारके साधन और धनसे सम्पन्न थे, एक साथ मिल गये और उन्होंने राजा बलाश्वको उनकी राजधानीमें ही घेर लिया। नगरपर घेरा पड़ जानेसे राजा बलाश्वको बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु उनका खजाना बहुत थोड़ा रह गया था; इसलिये सैनिक बलकी कमी हो जानेसे वे अत्यन्त विकल हो गये। जब उन्हें और कोई शरण नहीं दिखायी दी, तब वे आर्त हो दोनों हाथ मुँहके आगे करके जोर-जोरसे साँस लेने लगे; फिर तो उनके हाथकी अँगुलियोंके छिद्रसे, मुखकी वायुसे प्रेरित हो सैकड़ों योद्धा, रथ, हाथी और घोड़े निकलने लगे। क्षणभरमें राजाका सारा नगर बहुत बड़ी सेनासे भर गया। तब उस विशाल सेनाके साथ नगरसे बाहर निकलकर उन्होंने उन शत्रु राजाओंको परास्त किया और सबको अपने अधीन करके उनपर कर लगा दिया। करका धमन करने (हाथोंको फूँकने) से उन्होंने शत्रुओंका दाह करनेवाली सेना उत्पन्न की थी, इसलिये वे राजा बलाश्व करन्धम कहलाने लगे। करन्धम धर्मात्मा, सब प्राणियोंके मित्र तथा तीनों लोकोंमें विख्यात थे। जब राजा सङ्कटमें पड़े थे, तब साक्षात् उनके धर्मने उनके पास पहुँचकर शत्रुनाशक सेना प्रदान की थी और फिर स्वयं ही उसे अदृश्य कर दिया।

राजा वीर्यचन्द्रकी सुन्दरी कन्या वीराने, जो उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाली थी, स्वयंवरमें महाराज करन्धमका वरण किया था। उसके गर्भसे महाराजने अवीक्षित नामक पुत्र उत्पन्न किया। उसके इस नामका प्रसङ्ग सुनो। पुत्र उत्पन्न होनेपर राजा करन्धमने उसके ग्रह आदिके विषयमें ज्योतिषियोंसे पूछा। तब ज्योतिषियोंने कहा—'महाराज! आपका पुत्र उत्तम मुहूर्त्त, श्रेष्ठ नक्षत्र और शुभ लग्नमें उत्पन्न हुआ है; अतः यह महान् पराक्रमी, परम सौभाग्यवान् तथा अधिक बलशाली होगा। बृहस्पति और शुक्र सातवें स्थानमें तथा चन्द्रमा चौथे स्थानमें रहकर इस बालकको देखते हैं! ग्यारहवें स्थानमें स्थित बुध भी इसको देखते हैं। सूर्य, मङ्गल और शनैश्चरकी इसपर दृष्टि नहीं है; अतः यह सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे युक्त होगा।' ज्योतिषियोंकी बात सुनकर राजा करन्धमके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—"इसे बृहस्पति और बुध देखते हैं और सूर्य, शनैश्चर एवं मङ्गलसे यह अवीक्षित (अदृष्ट) है; इसलिये इसका नाम 'अवीक्षित' होगा।"

करन्धमके पुत्र अवीक्षित वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हुए। उन्होंने मुनिवर कण्वके पुत्रसे सम्पूर्ण अस्त्रविद्याकी शिक्षा ग्रहण की। वे रूपमें अश्विनीकुमार, बुद्धिमें बृहस्पति, कान्तिमें चन्द्रमा, तेजमें सूर्य, धैर्यमें समुद्र और क्षमामें पृथ्वीके समान थे। वीरतामें तो उनकी समानता करनेवाला कोई था ही नहीं। एक समयकी बात है, वे वैदिशके राजा विशालकी कन्या वैशालिनीको प्राप्त करनेके लिये उसके स्वयंवरमें गये। वह सुन्दर दाँतोंवाली सुन्दरी समस्त राजाओंकी उपेक्षा करके चली जा रही थी, इतनेमें ही अवीक्षितने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया। उन्हें अपने बलका बहुत अभिमान था। उनके इस कार्यसे अन्य समस्त राजाओंका, जो बहुत बड़ी संख्यामें एकत्रित थे, अपमान हुआ; अतः वे खिन्न होकर एक-दूसरेसे कहने लगे—'अनेक बलशाली राजाओंके होते हुए किसी एकके द्वारा नारीका अपहरण हो और आपलोग उसे क्षमा कर दें, तो यह धिक्कार देनेयोग्य बात है। क्षत्रिय वह है, जो दुष्ट पुरुषोंसे सताये जानेवालेकी रक्षा करे, उसकी क्षति न होने दे। जो ऐसा नहीं करते, वे लोग इस नामको व्यर्थ ही धारण करते हैं। संसारमें कौन मनुष्य मृत्युसे नहीं डरता, किन्तु युद्ध न करके भी कौन अमर रह गया है। यह विचारकर शस्त्रधारी क्षत्रियोंको पुरुषार्थका त्याग नहीं करना चाहिये।'

यह सुनकर सब राजा अमर्षमें भर गये और परस्पर सलाह करके सभी हथियार ले उठ खड़े हुए। कुछ रथोंपर जा बैठे। कुछ हाथियों और घोड़ोंपर सवार हुए तथा दूसरे कितने ही राजा कुपित हो पैदल ही अवीक्षितसे लोहा लेनेको जा पहुँचे। अवीक्षित अकेले थे। उनके विरोधमें बहुत-से राजा और राजकुमार थे। उनमें बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ। तलवार, शक्ति, गदा और धनुष-बाण लिये हुए समस्त

राजा अवीक्षितपर प्रहार करने लगे तथा राजकुमार अवीक्षित भी अकेले ही उन सभी राजाओंसे भिड़ गये और सैकड़ों बाणोंसे मारकर उन्हें घायल करने लगे। अवीक्षितने किसीकी बाँह काट डाली, किसीकी गर्दन उड़ा दी, किसीकी छाती छेद डाली और किसीके वक्षमें प्रहार किया। शत्रुओंके आते हुए बाणोंको वे बाण मारकर दो टुकड़े कर देते थे। किसीकी तलवार काट देते और किसीका धनुष खण्डित कर देते थे। कोई राजकुमार अपना कवच कट जानेके कारण पलायन कर गया। दूसरा अवीक्षितके बाणोंसे घायल होकर पैदल ही रणभूमिसे भाग गया। इस प्रकार जब राजाओंकी सारी मण्डली व्याकुल हो गयी, तब सात सौ वीर मरनेका निश्चय करके युद्धके लिये डट गये। उन सबको अपने उत्तम कुल, युवावस्था तथा शौर्यकी लाज रखनी थी। जब सारी सेना परास्त होकर भागने लगी, तब वे ही सात सौ राजा एक साथ मिलकर अवीक्षितसे युद्ध करने लगे। अवीक्षित अत्यन्त क्रोधमें भरकर धर्मयुद्धके नियमसे लड़ने लगे। उन्होंने उन सबके हथियारों और कवचोंको काट गिराया। तब उन राजाओंने धर्मसे विमुख हो चारों ओरसे अवीक्षितको घेर लिया और सब ओरसे उन्हें हजारों बाणोंसे बींधने लगे। बहुतोंके प्रहारसे पीड़ित हो वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे और अत्यन्त विह्वल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस अवस्थामें उन सबने मिलकर धर्मपूर्वक उन्हें बाँध लिया और राजा विशालके साथ वैदिश नगरमें प्रवेश किया।

तदनन्तर राजा करन्धम, उनकी पत्नी वीरा तथा अन्य राजाओंने अवीक्षितके बाँधे जानेका समाचार सुना। कुछ लोगोंने करन्धमसे कहा—'महाराज! वे सभी राजा वध करनेके योग्य हैं, जिन्होंने अधिक संख्यामें सम्मिलित होकर अकेले राजकुमारको अधर्मपूर्वक बाँधा है।' दूसरे बोले—'आप चुपचाप बैठे क्यों हैं, शीघ्र ही सेना तैयार कीजिये। दुष्ट विशालको तथा वहाँ आये हुए अन्य समस्त राजाओंको भी बाँध लीजिये।' उन सबकी यह बात सुनकर वीरपुत्रा वीराने, जो वीरवंशमें उत्पन्न एवं वीर पतिकी पत्नी थी, हर्षमें भरकर कहा—'राजाओ! मेरे पुत्रने समस्त राजाओंको जीतकर जो बलपूर्वक कन्याको अपने अधिकारमें कर लिया है, यह ठीक ही किया है। इसके लिये मनमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसका युद्धमें बन्दी होना प्रशंसाकी ही बात है। अब तुमलोगोंके मस्तकपर भी अस्त्र-शस्त्रोंके गिरनेका समय आ पहुँचा है। युद्धके लिये शीघ्रता करो। अपने-अपने रथोंपर सवार हो जाओ। हाथी, घोड़े और सारथियोंको भी जल्दी तैयार करो। विलम्ब नहीं होना चाहिये। जो सबको परास्त करके शोभा पाता है, वही शूर है। जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करके प्रकाशित होता है, उसी प्रकार शूरवीर शत्रुओंको हराकर यशस्वी होता है।'

इस प्रकार पत्नीके उत्साहित करनेपर राजा करन्धमने पुत्रके शत्रुओंका वध करनेके लिये सेनाको तैयार होनेकी आज्ञा दी। तदनन्तर उनका विशाल और उनके साथियोंके साथ घोर युद्ध हुआ। तीन दिनतक युद्ध होनेके पश्चात् विशाल और उनके सहायक राजाओंका मण्डल जब प्रायः पराजित हो गये, तब राजा विशाल हाथमें अर्घ्य लेकर महाराज करन्धमके पास आये। उन्होंने बड़े प्रेमसे करन्धमका पूजन किया। उनका पुत्र अवीक्षित बन्धनसे मुक्त कर दिया गया। राजाने एक रात वहाँ बड़े सुखसे व्यतीत की। दूसरे दिन राजा विशाल अपनी कन्याको साथ लेकर महाराज करन्धमके पास उपस्थित हुए। उस समय अवीक्षितने अपने पिताके सामने ही कहा—'मैं इसको तथा दूसरी किसी युवतीको भी अब नहीं ग्रहण करूँगा, क्योंकि इसके देखते-देखते शत्रुओंद्वारा युद्धमें परास्त हो गया। अब आप किसी औरके साथ इसका विवाह कर दें अथवा यह उस पुरुषका वरण करे, जिसका यश और पराक्रम अखण्डित हो तथा जिसे शत्रुओंके हाथसे अपमानित न होना पड़ा हो। पुरुष सबल होनेके कारण स्वतन्त्र होता है और स्त्रियाँ अबला होनेके कारण सदा परतन्त्र रहती हैं। परन्तु जहाँ पुरुष भी दूसरेके परतन्त्र हो गया, वहाँ उसमें मनुष्यता ही क्या रह गयी। जब इसके सामने ही राजाओंने मुझे पृथ्वीपर गिरा दिया, तब अब मैं इसे अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा?' अवीक्षितके ऐसा कहनेपर राजा विशालने अपनी पुत्रीसे कहा—'बेटी! इन महात्माकी बात तुमने सुनी है न? शुभे! जिसमें तुम्हारी रुचि हो, ऐसे किसी दूसरे पुरुषको पतिरूपमें वरण करो। अथवा हम जिसे तुम्हें दे दें, उसीका तुम आदर करो।'

कन्या बोली—पिताजी! यद्यपि संग्राममें इनके यश और पराक्रमकी हानि हुई है, तथापि ये उसमें धर्मानुकूल बर्ताव करते रहे हैं। ये अकेले थे, तो भी बहुतोंने मिलकर इन्हें परास्त किया है; अतः वास्तवमें इनकी पराजय हुई, यह कहना ठीक नहीं है। युद्धके लिये जब बहुत-से राजा आये, तब ये उनमें सिंहकी भाँति अकेले घुस गये और निरन्तर डटकर सामना करते रहे। इससे इनका महान् शौर्य

प्रकट हुआ है । ये वीरता और पराक्रमसे युक्त होकर धर्मयुद्धमें संलग्न थे । ऐसे समयमें समस्त राजाओंने मिलकर इनपर अधर्मपूर्वक विजय पायी है । अतः इसमें इनके लिये लज्जाकी कौन-सी बात है । तात ! मैं इनके रूप मात्रपर लुभा गयी हूँ, ऐसी बात नहीं है; इनकी वीरता, पराक्रम और धीरता आदि सद्गुण मेरे चित्तको चुराये लेते हैं । अतः अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है । आप मेरे लिये महाराजसे इन्हीं महानुभावकी याचना कीजिये । इनके सिवा दूसरा कोई पुरुष मेरा पति नहीं हो सकता ।

विशालने कहा—राजकुमार ! मेरी पुत्रीने बहुत अच्छी बातें कही हैं । इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे-जैसा वीर कुमार इस भूतलपर दूसरा कोई नहीं है । तुम्हारे शौर्यकी कहीं समता नहीं है । तुम्हारा पराक्रम अनन्त है । वीर ! तुम मेरी कन्याका पाणिग्रहण करके मेरे कुलको पवित्र करो ।

तब महाराज करन्धमने अपने पुत्रको समझाते हुए कहा—'बेटा ! तुम राजा विशालकी कन्याको स्वीकार करो । इस सुन्दरीका तुम्हारे प्रति अत्यन्त दृढ़ अनुराग है ।

राजकुमारने कहा—पिताजी ! मैंने पहले कभी आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया है; अतः ऐसी आज्ञा दीजिये, जिसका मैं पालन कर सकूँ ।

उस राजकुमारका अत्यन्त निश्चित विचार देख विशालने व्याकुल होकर अपनी कन्यासे कहा—'बेटी ! अब तुम इनकी ओरसे अपना मन हटा लो और दूसरेको पतिरूपमें वरण करो । यहाँ बहुत-से राजकुमार हैं ।'

कन्या बोली—पिताजी ! यदि ये मुझको नहीं ग्रहण करना चाहते तो मैं तपस्या करके इन्हें अपना पति बनाऊँगी। इस जन्ममें इनके सिवा दूसरा कोई मेरा पति नहीं होगा ।

तदनन्तर राजा करन्धम राजा विशालके साथ प्रसन्नतापूर्वक तीन दिनोंतक टिके रहे, फिर अपने नगरको लौट आये । अवीक्षितको उनके पिता तथा अन्य राजाओंने प्राचीन दृष्टान्तोंके द्वारा बहुत कुछ समझाया । इससे वे भी उनके साथ नगरमें लौट आये । राजकन्या वैशालिनी अपने बन्धु-बान्धवोंसे विदा ले वनमें चली गयी और वहाँ दृढ़ वैराग्यमें स्थित हो निराहार रहकर तपस्या करने लगी। तीन महीनोंतक उपवास करनेके बाद उसको बड़ी पीड़ा हुई। वह अत्यन्त दुबली हो गयी और उसके शरीरकी एक-एक नाड़ी दिखायी देने लगी । उसका उत्साह मन्द पड़ गया । वह मरणासन्न हो चली । तब उस राजकुमारीने शरीर त्याग देनेका विचार किया । उसका अभिप्राय जानकर देवताओंने उसके पास एक दूत भेजा । दूतने वहाँ आकर कहा—'राजकुमारी ! मैं देवताओंका दूत हूँ । देवताओंने तुम्हारे पास मुझे जिस कार्यके लिये भेजा है, उसे सुनो । यह मानव-शरीर अत्यन्त दुर्लभ है । तुम अकारण इसका परित्याग न करो । कल्याणी ! तुम चक्रवर्ती राजाकी जननी होओगी । तुम्हारा पुत्र अपने शत्रुओंका संहार करके सात द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका अखण्ड राज्य भोगेगा । कहीं भी उसकी आज्ञाका उल्लङ्घन न होगा । वह चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें स्थापित करके उन सबका पालन करेगा । लुटेरों, म्लेच्छों और दुष्टोंका वध करेगा । उत्तम दक्षिणाओंसे पूर्ण नाना प्रकारके यज्ञ करेगा । उसके द्वारा अश्वमेध आदि यज्ञोंका छः हजार बार अनुष्ठान होगा ।'

वह दूत आकाशमें ही खड़ा था । उसके शरीरपर दिव्य हार और चन्दन शोभा पा रहे थे । उसे इस रूपमें देख राजकन्याने कोमल वाणीमें कहा—'तुम देवताओंके दूत हो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । सचमुच ही तुम स्वर्गसे यहाँ आये हो; किन्तु तुम्हीं बताओ, पतिके बिना मुझे पुत्र कैसे होगा ? मैंने पिताके समीप यह प्रतिज्ञा कर ली है कि इस जन्ममें अवीक्षितके सिवा दूसरा कोई पुरुष मेरा पति नहीं होगा; किन्तु वे अवीक्षित मेरे पिताके, अपने पिताके तथा स्वयं मेरे कहनेपर भी मुझे नहीं ग्रहण करना चाहते ।'

देवदूतने कहा—महाभागे ! बहुत कहनेसे क्या लाभ है । तुम्हें पुत्र अवश्य होगा । तुम अधर्मपूर्वक इस शरीरका त्याग न करो । इसी वनमें रहो और अपने दुर्बल शरीरका पोषण करो । तपस्याके प्रभावसे तुम्हारा सब कुछ भला ही होगा ।

यों कहकर देवदूत जैसे आया था, लौट गया तथा वह सुन्दरी प्रतिदिन अपने शरीरका पोषण करने लगी ।

उधर अवीक्षितकी वीरप्रसविनी माता वीराने किसी शुभ दिनको अपने पुत्र अवीक्षितको पास बुलाया और इस प्रकार कहा—'बेटा ! मैं तुम्हारे पिताकी आज्ञासे एक व्रत करूँगी । उसका नाम किमिच्छक व्रत है, किन्तु वह है बहुत दुष्कर । फिर भी उसके करनेमें कल्याण ही होगा । यदि तुम कुछ बल और पराक्रम दिखाओ तो वह अवश्य साध्य हो जायगा । तुम्हारे लिये वह असाध्य हो या दुःसाध्य, यदि तुम उसके लिये प्रतिज्ञा कर लोगे तो मैं उसका अनुष्ठान आरम्भ कर दूँगी । अब तुम्हारा जो विचार हो, सो कहो ।'

अवीक्षित बोले—माँ ! यदि पिताजीने तुम्हें आज्ञा दे दी है, तो तुम निश्चिन्त होकर किमिच्छक व्रतका अनुष्ठान करो। मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता न करो।

तदनन्तर महारानी वीराने उपवासपूर्वक उस व्रतका आरम्भ किया तथा शास्त्रोंमें बताये अनुसार कुबेरकी, सम्पूर्ण निधियोंकी, निधिपालगणकी और लक्ष्मीजीकी बड़ी भक्तिके साथ पूजा की। उन्होंने अपने मन, वाणी और शरीरको काबूमें कर लिया था। इधर महाराज करन्धम जब एकान्त घरमें बैठे हुए थे, उस समय नीति-शास्त्र-विशारद मन्त्रियोंने उनके पास जाकर कहा—'राजन्! इस पृथ्वीका शासन करते हुए आपकी वृद्धावस्था आ गयी। आपके एक ही पुत्र हैं अवीक्षित, जिन्होंने स्त्रीका सम्पर्क ही छोड़ दिया है; इससे आपका वंश अब लुप्त हो जायगा। पितरोंको पिण्ड और पानी देनेवाला कोई नहीं रहेगा। अतः आप ऐसा कोई यत्न कीजिये, जिससे आपका पुत्र पितरोंका उपकार करनेवाली बुद्धि ग्रहण करे—विवाह करनेपर राजी हो जाय।'

इसी समय राजा करन्धमके कानोंमें एक आवाज आयी। रानी वीराके पुरोहित याचकोंसे कह रहे थे, 'कौन क्या चाहता है? किसके लिये कौन-सी वस्तु दुःसाध्य है, जिसका साधन किया जाय? महाराज करन्धमकी रानी किमिच्छक व्रतका अनुष्ठान करती हैं; अतः जिसकी जो इच्छा हो, वह पूर्ण की जायगी।' पुरोहितकी बात सुनकर राजकुमार अवीक्षितने भी राजद्वारपर आये हुए समस्त याचकोंसे कहा—'मेरी परम सौभाग्यवती माता किमिच्छक व्रत कर रही हैं; अतः मेरे शरीरसे किसीका कोई कार्य सिद्ध होनेवाला हो तो वह बतलावे। सब याचक सुन लें, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ। इस किमिच्छक व्रतके अनुष्ठानके अवसरपर तुमलोग क्या चाहते हो, बताओ! उसे मैं दूँगा।'

अपने बेटेके मुखसे यह बात सुनकर महाराज करन्धम तुरंत सामने आये और बोले—'मैं याचक हूँ। मुझे मेरी माँगी हुई वस्तु दो।'

अवीक्षित बोले—तात! आपको क्या देना है? बतलाइये। मेरा कर्तव्य दुष्कर हो, साध्य हो अथवा अत्यन्त दुःसाध्य हो; बताइये, मैं उसे पूर्ण करूँगा।

राजाने कहा—यदि तुम सत्यप्रतिज्ञ हो और सबको इच्छानुसार दान देते हो तो मेरी गोदमें पौत्रका मुँह दिखाओ।

अवीक्षित बोले—महाराज! मैं आपका एक ही पुत्र हूँ और ब्रह्मचर्यका पालन मेरा व्रत है। मेरे कोई पुत्र है ही नहीं, फिर आपको पौत्रका मुख कैसे दिखाऊँ?

राजाने कहा—बहुत कहनेसे क्या लाभ, तुम ब्रह्मचर्यको छोड़ो और अपनी माताके इच्छानुसार मुझे पौत्रका मुख दिखाओ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जब पुत्रके बहुत कहनेपर भी राजाने दूसरी कोई वस्तु नहीं माँगी, तब उन्होंने कहा—'पिताजी! मैं आपको किमिच्छक दान देकर बड़े सङ्कटमें पड़ गया। अब निर्लज्ज होकर फिर विवाह करूँगा। स्त्रीके सामने परास्त हुआ और पृथ्वीपर गिराया गया; फिर भी मुझे स्त्रीका स्वामी बनना पड़ेगा, यह बड़ा ही दुष्कर कर्म है। तथापि मैं क्या करूँ, सत्यके बन्धनमें बँधा हूँ। आपने जो आज्ञा दी है, वह करूँगा।'

एक दिन राजकुमार अवीक्षित शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ वे हरिण, वराह तथा व्याघ्र आदि जन्तुओंको अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे। इतनेमेंही उन्हें सहसा किसी स्त्रीके रोनेका शब्द सुनायी दिया। वह भयसे गद्गद वाणीमें उच्चस्वरसे बार-बार क्रन्दन करती हुई त्राहि-त्राहिकी रट लगा रही थी। राजकुमार अवीक्षितने 'मत डरो, मत डरो' ऐसा कहते हुए अपने घोड़ेको उसी ओर बढ़ाया, जिधरसे वह शब्द आ रहा था। उस निर्जन वनमें दनुके पुत्र दृढ़केशके द्वारा पकड़ी गयी वह कन्या विलाप करती हुई कह रही थी, 'मैं महाराज करन्धमके पुत्र अवीक्षितकी पत्नी हूँ, किन्तु यह नीच दानव मुझे हरकर लिये जाता है। जिन महाराजके समक्ष समस्त राजा, गन्धर्व तथा गुह्यक भी खड़े होनेकी शक्ति नहीं रखते, जिनका क्रोध मृत्यु और पराक्रम इन्द्रके समान है, उन्हींकी पुत्रवधू होकर आज मैं एक दानवके द्वारा हरी जा रही हूँ।'

वह इस प्रकार रो ही रही थी कि राजकुमार अवीक्षित तुरंत वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने देखा, एक अत्यन्त मनोहर कन्या है, जो सब प्रकारके आभूषणोंसे शोभा पा रही है और हाथमें डंडा लिये दनु-पुत्र दृढ़केशने उसे पकड़ रक्खा है तथा वह करुण स्वरमें 'त्राहि, त्राहि' पुकार रही है। यह देखकर अवीक्षितने उससे कहा—'तुम भय न करो।' फिर उस दानवसे कहा—'ओ दुष्ट! अब तू मारा जायगा। भूमण्डलके समस्त राजा जिनके प्रतापके सामने मस्तक झुकाते हैं, उन महाराज करन्धमके राज्यमें कौन दुष्ट जीवित

रह सकता है ।' राजकुमारको श्रेष्ठ धनुष लिये आया देख वह कृशाङ्गी युवती बार-बार कहने लगी, 'आप मुझे बचाइये। यह दुष्ट मुझे हरकर लिये जाता है। मैं महाराज करन्धमकी पुत्रवधू और अवीक्षितकी पत्नी हूँ। सनाथ हूँ, तो भी इस वनमें यह दुष्ट मुझे अनाथकी भाँति हरकर लिये जाता है।'

यह सुनकर अवीक्षित उसकी बातपर विचार करने लगे—'यह किस प्रकार मेरी भार्या तथा पिताजीकी पुत्रवधू हुई? अथवा इस समय तो इसे छुड़ाऊँ, फिर समझ लूँगा। पीड़ितोंकी रक्षा करनेके लिये ही क्षत्रिय हथियार धारण करते हैं।' ऐसा निश्चय करके वीर अवीक्षितने उस खोटी बुद्धिवाले दानवसे कुपित होकर कहा—'पापी! यदि जीवित रहना चाहता है तो इसे छोड़कर चला जा; अन्यथा तेरे प्राण नहीं बचेंगे।' इतना सुनते ही वह दानव उस कन्याको छोड़कर डंडेको ऊपर उठा अवीक्षितकी ओर दौड़ा। तब उन्होंने भी बाणोंकी वर्षासे उसे ढँक दिया। दानव दृढ़केश अत्यन्त मदसे मतवाला हो रहा था। राजकुमारके बाणोंसे रोके जानेपर भी उसने सौ कीलोंसे युक्त वह डंडा उनपर दे मारा; किन्तु राजकुमारने अपनी ओर आते हुए उस डंडेके बाण मारकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर दानवने कुपित होकर राजकुमारपर जो-जो हथियार चलाया, वह सब उन्होंने अपने बाणोंसे काट गिराया। डंडे और हथियारोंके कट जानेपर उसे बड़ा क्रोध हुआ और वह मुक्का तानकर राजकुमारकी ओर दौड़ा। पास आते ही राजकुमारने वेतसपत्र नामक बाणसे उसका मस्तक काट गिराया। इस प्रकार उस दुराचारी दानवके मारे जानेपर समस्त देवताओंने अवीक्षितको साधुवाद दिया और वर माँगनेके लिये कहा। तब उन्होंने अपने पिताका प्रिय करनेकी इच्छासे एक महापराक्रमी पुत्र माँगा।

देवता बोले—राजकुमार! जिसका तुमने अभी उद्धार किया है, इसी कन्याके गर्भसे तुम्हें महाबली चक्रवर्ती पुत्रकी प्राप्ति होगी।

राजकुमारने कहा—देवगण! राजाओंसे परास्त होनेपर मैंने विवाहका विचार छोड़ दिया था, किन्तु पिताद्वारा सत्यके बन्धनमें बाँधे जानेपर मैं अब पुत्रकी अभिलाषा करता हूँ। पहले राजा विशालकी कन्याको मैंने त्याग दिया था, किन्तु उसने मेरे ही लिये दूसरे किसी पुरुषको पति बनानेका विचार छोड़ रक्खा है। अतः उस त्यागमयी देवीको छोड़कर क्रूरहृदय हो मैं दूसरी स्त्रीको कैसे अपनी पत्नी बना सकूँगा?

देवता बोले—यही राजा विशालकी कन्या और तुम्हारी भार्या है, जिसकी तुम सदा प्रशंसा करते हो। यह सुन्दरी तुम्हारे लिये ही तप करती रही है। इसके गर्भसे तुम्हारे चक्रवर्ती एवं वीर पुत्र उत्पन्न होगा। वह सातों द्वीपोंका शासक तथा सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला होगा।

करन्धम-कुमार अवीक्षितसे यों कहकर समस्त देवता वहाँसे चले गये। तब उन्होंने उस स्त्रीसे कहा—भीरु! कहो तो यह क्या बात है! तब वैशालिनीने अपना वृत्तान्त सुनाना आरम्भ किया—'नाथ! आपने जब मुझे त्याग दिया तो इस जीवनसे वैराग्य हो गया और मैं बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर वनमें चली आयी। वीर! यहाँ तपस्या करते-करते मैंने अपना शरीर सुखा दिया और तब इसे त्याग देनेको उद्यत हो गयी। इसी समय देवताओंके दूतने आकर मुझे रोका और कहा—'तुम्हें महाबलवान् चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा, जो देवताओंको तृप्त करेगा और असुरोंका संहार करेगा।' इस प्रकार देवदूतने जब देवताओंकी आज्ञा सुनायी, तब आपके समागमकी आशासे मैंने इस देहका त्याग नहीं किया।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—वैशालिनीके ये वचन सुनकर तथा किमिच्छक व्रतमें की हुई प्रतिज्ञाके समय पिताके कहे हुए उत्तम वचनोंका स्मरण करके अवीक्षितने उस कन्यासे प्रेमपूर्वक कहा—'देवि! उस समय शत्रुओंसे पराजित होनेके कारण मैंने तुम्हारा त्याग किया था और अब फिर शत्रुओंको जीतकर ही तुम्हें पाया है। अब बताओ, क्या करूँ?' इसी अवसरपर मय नामक गन्धर्व श्रेष्ठ अप्सराओं तथा अन्य गन्धर्वोंके साथ वहाँ आया।

गन्धर्व बोला—राजकुमार! यह कन्या वास्तवमें मेरी पुत्री भामिनी है। महर्षि अगस्त्यके शापसे यह राजा विशालकी पुत्री हुई थी। बचपनमें खेलते समय इसने अगस्त्य मुनिको कुपित कर दिया था। तब उन्होंने शाप देते हुए कहा—'जा, तू मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होगी।' तब हमलोगोंने मुनिको प्रसन्न करते हुए कहा—'ब्रह्मर्षे! अभी यह निरी बालिका है, इसे भले-बुरेका विवेक नहीं है, तभी इसके द्वारा आपका अपराध बन गया है। अतः इसके ऊपर कृपा कीजिये।' तब उन महामुनिने कहा—'बालिका समझकर ही मैंने इसे बहुत थोड़ा शाप दिया है। अब यह टल नहीं

सकता ।' यही महर्षिका शाप था, जिससे यह मेरी पुत्री भामिनी राजा विशालके भवनमें उत्पन्न हुई। इसके लिये ही मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। आप मेरी इस कन्याको ग्रहण कीजिये। इससे आपको चक्रवर्ती पुत्रकी प्राप्ति होगी।

तब 'बहुत अच्छा' कहकर राजकुमारने विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण किया। उस समय वहाँ तुम्बुरु मुनिने हवन किया। देवता और गन्धर्व गीत गाते रहे। मेघोंने फूलोंकी वर्षा की और देवताओंके बाजे बजते रहे। विवाहके पश्चात् दोनों दम्पति महात्मा मयके साथ गन्धर्वलोकमें गये। अवीक्षित अपनी पत्नीके साथ कभी अत्यन्त रमणीय नगरोद्यानमें और कभी पर्वतकी उपत्यकामें विहार करने लगे। वहाँ मुनि, गन्धर्व और किन्नरलोग उन दोनोंके लिये भोजनकी सामग्री, चन्दन, वस्त्र, माला तथा पीनेयोग्य पदार्थ आदि उत्तम वस्तुएँ प्रस्तुत किया करते थे। मनुष्योंके लिये दुर्लभ गन्धर्वलोकमें अवीक्षित इस प्रकार भामिनीके साथ विहार करते रहे। कुछ समयके बाद भामिनीने वीर अवीक्षितके पुत्रको जन्म दिया। उस महापराक्रमी पुत्रका जन्म होनेपर उससे कार्यसिद्धिकी अपेक्षा रखनेवाले गन्धर्वोंके यहाँ बड़ा भारी उत्सव हुआ। उसमें सब देवता तथा निर्मल देवर्षि भी पधारे। पातालसे नागराज शेष, वासुकि और तक्षक भी आये। देवता, असुर, यक्ष और गुह्यकोंमें जो-जो प्रधान थे, वे सब उपस्थित हुए। सभी मरुद्गण भी पधारे थे। तुम्बुरुने उस बालकका जातकर्म आदि करके स्तुतिपूर्वक स्वस्तिवाचन किया और कहा—'आयुष्मन्! तुम चक्रवर्ती, महापराक्रमी, महाबाहु एवं महाबलवान् होकर समस्त पृथ्वीका शासन करो। वीर! ये इन्द्र आदि लोकपाल तथा महर्षि तुम्हारा कल्याण करें और तुम्हें शत्रुनाशक शक्ति प्रदान करें। पूर्व दिशामें बहनेवाले मरुत्, जिनमें धूलका समावेश नहीं होता, तुम्हारा कल्याण करें। दक्षिण दिशाके निर्मल मरुत् तुम्हें स्वस्थ रक्खें। पश्चिम मरुत् उत्तम पराक्रम दें तथा उत्तर मरुत् तुम्हें उत्कृष्ट बल प्रदान करें।'

इस प्रकार स्वस्त्ययनके पश्चात् आकाशवाणी हुई, 'पुरोहितने 'मरुत् तव' (मरुत् तुम्हारा कल्याण करें) का अनेक बार प्रयोग किया है, इसलिये यह बालक पृथ्वीपर 'मरुत्त' के नामसे विख्यात होगा। भूमण्डलके सभी राजा इसकी आज्ञाके अधीन रहेंगे और यह वीर सब राजाओंका सिरमौर बना रहेगा। अन्य भूपालोंको जीतकर यह महापराक्रमी चक्रवर्ती होगा और सात द्वीपोंवाली समूची पृथ्वीका उपभोग करेगा। यज्ञ करनेवाले राजाओंमें यह प्रधान होगा तथा समस्त नरेशोंमें इसका शौर्य और पराक्रम सबसे अधिक होगा।'

देवताओंमेंसे किसीने यह आकाशवाणी की थी। इसे सुनकर ब्राह्मण, गन्धर्व तथा बालकके माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर राजकुमार अवीक्षित अपने प्रिय पुत्रको गोदमें ले गन्धर्वोंके साथ ही अपने पिताके नगरमें आये। पिताके घरमें पहुँचकर उन्होंने उनके चरणोंमें आदरपूर्वक मस्तक झुकाया तथा लज्जावती भामिनीने भी श्वशुरके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय राजा करन्धम धर्मासनपर विराजमान थे। अवीक्षितने पुत्रको लेकर कहा—'पिताजी! माताके किमिच्छक व्रतमें मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार अब आप गोदमें लेकर इस पौत्रका मुख देखिये।' यों कहकर उन्होंने पिताकी गोदमें बालकको रख दिया और उसके जन्मका सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक कह सुनाया। राजा करन्धमके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने पौत्रको छातीसे लगाकर अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मैं बड़ा ही सौभाग्यशाली हूँ।' इसके बाद उन्होंने वहाँ आये हुए गन्धर्वोंका अर्घ्य आदिके द्वारा सत्कार किया। उस समय उनको और किसी बातकी याद नहीं रही! उस नगरमें, पुरवासियोंके घर-घरमें महान् आनन्द छा गया। सब प्रसन्न होकर कहते थे—'हमारे महाराजके पोता हुआ है।' राजा करन्धमने हर्षमग्न होकर ब्राह्मणोंको रत्न, धन, गौ, वस्त्र और आभूषण दान किये। वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति प्रतिदिन बढ़ने लगा। उसे देखकर पिता आदिको बड़ी प्रसन्नता होती थी। वह सब लोगोंका प्यारा था। कुछ बड़ा होनेपर उपनयनके बाद उसने आचार्योंके पास रहकर पहले वेदोंकी, फिर समस्त शास्त्रोंकी तथा अन्तमें धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् भृगुपुत्र शुक्राचार्यसे अन्यान्य अस्त्रविद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया। वह गुरुके समक्ष विनीत भावसे मस्तक झुकाता तथा सदा उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टामें संलग्न रहता था। वह अस्त्रविद्याका ज्ञाता, वेदका विद्वान्, धनुर्वेदमें पारङ्गत तथा सब विद्याओंमें निष्णात था। उस समय मरुत्तसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं था।

राजा विशालको भी जब अपनी पुत्रीका सारा समाचार ज्ञात हुआ तथा दौहित्रकी उत्तम योग्यता सुनायी पड़ी, तब उनका मन आनन्दमें निमग्न हो गया। पौत्रको देखनेसे महाराज करन्धमका मनोरथ पूर्ण

हो गया। उन्होंने अनेक यज्ञ किये और याचकोंको बहुत दान दिये। तदनन्तर वन जानेके लिये उत्सुक होकर उन्होंने अपने पुत्र अवीक्षितसे कहा—'बेटा! मैं बूढ़ा हो गया, अब वनमें तपस्याके लिये जाऊँगा। तुम मुझसे यह राज्य ले लो। मैं कृतकृत्य हूँ। तुम्हारा राजतिलक करनेके अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य शेष नहीं है।' यह सुनकर राजकुमार अवीक्षितने बड़ी नम्रताके साथ पितासे कहा—'तात! मैं पृथ्वीका पालन नहीं कर सकूँगा। मेरे मनसे लज्जा अभी दूर नहीं होती। आप इस राज्यपर किसी औरको नियुक्त कीजिये। मैं बन्धनमें पड़नेपर पिताके हाथों मुक्त हुआ हूँ, अपने बलसे नहीं। अतः मुझमें क्या पौरुष है। जिनमें पौरुष हो, वे ही इस पृथ्वीका पालन कर सकते हैं। जब मैं अपनी भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हूँ, तब इस पृथ्वीकी रक्षा कैसे कर सकूँगा। इसलिये राज्य किसी औरको दे दीजिये।'

पिता बोले—बेटा! पुत्रके लिये पिता और पिताके लिये पुत्र भिन्न नहीं हैं। यदि पिताने तुम्हें बन्धनसे छुड़ाया तो यही मानना चाहिये कि किसी दूसरेने नहीं छुड़ाया है।

पुत्रने कहा—महाराज! मेरे हृदयका भाव बदल नहीं सकता। जो पिताकी कमायी हुई सम्पत्ति भोगता है, जो पिताके बलसे ही संकटसे उद्धार पाता है तथा पिताके नामपर ही जिसकी ख्याति होती है, अपने गुणोंसे नहीं—,ऐसा मनुष्य कभी कुलमें उत्पन्न न हो। जो स्वयं ही धनका उपार्जन करते, स्वयं ख्याति पाते और स्वयं ही संकटोंसे मुक्त होते हैं, ऐसे पुरुषोंकी जो गति होती है, वही मेरी भी हो।

पिताके बहुत कहनेपर भी जब अवीक्षित पूर्वोक्त उत्तर ही देते चले गये, तब महाराज करन्धमने उनके पुत्र मरुत्तको ही राजा बना दिया। पिताकी आज्ञाके अनुसार पितामहसे राज्य पाकर मरुत्त अपने सुहृदोंका आनन्द बढ़ाते हुए उसका भलीभाँति पालन करने लगे। राजा करन्धम अपनी पत्नी वीराको साथ ले वनमें तपस्याके लिये चले गये। वहाँ मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर उन्होंने एक हजार वर्षोंतक दुष्कर तपस्या की और अन्तमें शरीर त्यागकर वे इन्द्रलोकमें चले गये। उनकी पत्नी वीराने सौ वर्ष बादतक कठोर तप किया। उसके सिरपर जटाएँ बढ़ी हुई थीं, शरीरपर मैल जम गयी थी। वह स्वर्गमें गये हुए अपने महात्मा पतिका सालोक्य चाहती हुई फल-मूलका आहार करके भार्गवके आश्रमपर तपस्या करती थी। ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंमें रहकर उनकी सेवामें तत्पर रहती थी।

क्रौष्टुकि बोले—भगवन्! आपने करन्धम और अवीक्षितके चरित्रका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया। अब मैं अवीक्षितकुमार महात्मा मरुत्तके चरित्र सुनना चाहता हूँ। सुना जाता है, उनका चरित्र अलौकिक था। वे चक्रवर्ती, महान् सौभाग्यशाली, शूरवीर, सुन्दर, परम बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, धर्मात्मा तथा पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करनेवाले थे।

मार्कण्डेयजीने कहा—पिताके आदेशसे पितामहका राज्य पाकर मरुत्त जिस प्रकार पिता अपने औरस पुत्रोंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार प्रजाजनोंका धर्मपूर्वक पालन करने लगे। ऋत्विजों और पुरोहितके आदेशसे प्रसन्न होकर बहुत-से यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया और उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दीं। उनका शासन-चक्र सातों द्वीपोंमें अबाधरूपसे फैला हुआ था। आकाश, पाताल और जल आदिमें भी उनकी गति कुण्ठित नहीं होती थी। राजा तो यज्ञ करते ही थे, चारों वर्णोंके अन्य लोग भी अपने-अपने कर्ममें आलस्य छोड़कर संलग्न रहते और महाराजसे धन प्राप्त कर इष्टापूर्त आदि पुण्य क्रियाएँ करते थे। राजा मरुत्तने सौ यज्ञ करके देवराज इन्द्रको भी मात कर दिया। उनके पुरोहित अङ्गिरानन्दन संवर्तजी थे, जो बृहस्पतिजीके भाई एवं तपस्याके भण्डार थे। मुञ्जवान् नामसे प्रसिद्ध एक सोनेका पर्वत था, जहाँ देवता निवास करते थे। महाराज मरुत्तने उसका शिखर तोड़कर गिरा दिया और उसे अपने यहाँ मँगा लिया। उसके द्वारा उन्होंने यज्ञकी सब सामग्री—भू-विभाग और महल आदि सोनेके ही बनवाये। सदा स्वाध्याय करनेवाले महर्षि मरुत्तके चरित्रके विषयमें सदा यह गाथा गाते रहते हैं—'महाराज मरुत्तके समान यजमान इस भूतलपर दूसरा कोई नहीं हुआ, जिनके यज्ञमें समस्त यज्ञमण्डप और महल सुवर्णके ही बने थे; उसमें ब्राह्मण पर्याप्त दक्षिणा पाकर तृप्त हो गये। इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता उसमें ब्राह्मणोंको भोजन परोसनेका काम करते थे। राजा मरुत्तके यज्ञमें जैसा समारोह था, वैसा किस राजाके यज्ञमें हुआ है, जहाँ रत्नोंसे घर भरा रहनेके कारण ब्राह्मणोंने दक्षिणामें मिला हुआ सारा सुवर्ण त्याग दिया। उस छोड़े हुए धनको पाकर कितने ही लोगोंका मनोरथ पूरा हो गया और वे भी उसी धनसे अपने-अपने देशमें पृथक्-पृथक् अनेक यज्ञ करने लगे।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करनेवाले राजा मरुत्तके पास एक दिन कोई तपस्वी आया और इस प्रकार कहने लगा—"महाराज! आपकी पितामही

वीरा देवीने तपस्वियोंको मदोन्मत्त सर्पोंके विषसे पीड़ित देख आपके पास यह सन्देश दिया है—'राजन्! तुम्हारे पितामह स्वर्गवासी हो गये। मैं और्व मुनिके आश्रमपर रहकर तपस्या करती हूँ। मुझे तुम्हारे राज्य-शासनमें बहुत बड़ी त्रुटि दिखायी देती है। पातालसे सर्पोंने आकर यहाँ दस मुनिकुमारोंको डँस लिया है तथा जलाशयोंके जलको भी दूषित कर दिया है। ये पसीने, मूत्र और विष्ठासे हविष्यको दूषित कर देते हैं। यहाँके महर्षि इन सबको भस्म कर डालनेकी शक्ति रखते हैं, किन्तु किसीको दण्ड देनेका अधिकार इनका नहीं है। इसके अधिकारी तो तुम्हीं हो। राजकुमारोंको तभीतक भोगजनित सुखकी प्राप्ति होती है, जबतक उनके मस्तकपर राज्याभिषेकका जल नहीं पड़ता। कौन मित्र हैं, कौन शत्रु हैं, मेरे शत्रुका बल कितना है, मैं कौन हूँ? मेरे मन्त्री कौन हैं, मेरे पक्षमें कौन-कौन-से राजा हैं, वे मुझसे विरक्त हैं या अनुरक्त? शत्रुओंने उन्हें फोड़ तो नहीं लिया है? शत्रुपक्षके लोगोंकी भी क्या स्थिति है, मेरे इस नगर अथवा राज्यमें कौन मनुष्य श्रेष्ठ है, कौन धर्म-कर्मका आश्रय लेता है, कौन मूढ़ है तथा किसका बर्ताव उत्तम है, किसको दण्ड देना चाहिये, कौन पालन करने योग्य है, किन मनुष्योंपर सदा मुझे दृष्टि रखनी चाहिये—इन सब बातोंपर सदा विचार करते रहना राजाका कर्तव्य है। देश-कालकी अवस्थापर दृष्टि रखनेवाले राजाको उचित है कि वह सब ओर कई गुप्तचर लगाये रक्खे। वे गुप्तचर परस्पर एक दूसरेसे परिचित न हों। उनके द्वारा यह जाननेकी चेष्टा करे कि कोई राजा अपने साथ की हुई सन्धिको भंग तो नहीं करता। राजा अपने समस्त मन्त्रियोंपर भी गुप्तचर लगा दे। इन सब कार्योंमें सदा मन लगाते हुए राजा अपना समय व्यतीत करे। उसे दिन-रात भोगासक्त नहीं होना चाहिये। भूपाल! राजाओंका शरीर भोग भोगनेके लिये नहीं होता, वह तो पृथ्वी और स्वधर्मके पालनपूर्वक भारी क्लेश सहन करनेके लिये मिलता है। राजन्! पृथ्वी और स्वधर्मका भलीभाँति पालन करते समय जो इस लोकमें महान् कष्ट होता है, वही स्वर्गमें अक्षय एवं महान् सुखकी प्राप्ति करानेवाला होता है। अतः नरेश्वर! तुम इस बातको समझो और भोगोंका त्याग करके पृथ्वीका पालन करनेके लिये कष्ट उठाना स्वीकार करो। तुम्हारे शासन-कालमें ऋषियोंको सर्पोंकी ओरसे जो भारी संकट प्राप्त हुआ है, उसे तुम नहीं जानते। मालूम होता है तुम गुप्तचररूपी नेत्रसे अन्धे हो। अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम दुष्टोंको दण्ड दो और सज्जन पुरुषोंका पालन करो। इससे तुम प्रजाके धर्मके छठे अंशके भागी हो सकोगे। यदि तुम प्रजाजनोंकी रक्षा नहीं करोगे तो दुष्टलोग उद्दण्डतावश जो कुछ भी पाप करेंगे, वह सब तुम्हींको भोगना पड़ेगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो वह करो।' महाराज! आपकी पितामहीने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने सुना दिया। अब आपकी जैसी रुचि हो, वैसा करें।"

तपस्वीकी यह बात सुनकर राजा मरुत्तको बड़ी लज्जा हुई, 'सचमुच ही मैं गुप्तचररूपी नेत्रसे अन्धा हूँ। मुझे धिक्कार है'—यों कहकर लंबी साँस ले उन्होंने धनुष उठाया और तुरंत ही और्वके आश्रमपर पहुँचकर अपनी पितामही वीराको तथा अन्यान्य तपस्वी महात्माओंको प्रणाम किया। उन सबने आशीर्वाद देकर राजाका अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् सर्पोंके काटनेसे मरकर पृथ्वीपर पड़े हुए सात तपस्वियोंको देख उन सबके सामने मरुत्तने बारंबार अपनी निन्दा की और कहा—'मेरे पराक्रमकी अवहेलना करके ब्राह्मणोंके साथ द्वेष करनेवाले दुष्ट सर्पोंकी मैं जो दुर्दशा करूँगा, उसे देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण संसार देखे।'

यों कहकर राजाने कुपित हो पाताललोक-निवासी सम्पूर्ण नागोंका संहार करनेके लिये संवर्तक नामक अस्त्र उठाया। तब उस महान् अस्त्रके तेजसे सारा नागलोक सब ओरसे सहसा जल उठा। उस समय जो घबराहट हुई, उसमें नागोंके मुखसे 'हा तात! हा माता! हा वत्स!' की पुकार सुनायी देती थी। किन्हींकी पूँछ जलने लगी और किन्हींके फण। कुछ सर्प अपने वस्त्र और आभूषण छोड़कर स्त्री-पुत्रोंको साथ ले पाताल त्यागकर मरुत्तकी माता भामिनीकी शरणमें गये, जिसने पूर्वकालमें उन्हें अभय दान दे रक्खा था। भामिनीके पास पहुँचकर भयसे व्याकुल हुए समस्त सर्पोंने प्रणामपूर्वक गद्गद वाणीमें कहा—'वीरजननी! आजसे पहले रसातलमें हमलोगोंने जो आपका सत्कार किया था और आपने हमें अभय-दान दिया, उसके पालनका यह समय आ पहुँचा है। हमारी रक्षा कीजिये। यशस्विनि! आपके पुत्र मरुत्त अपने अस्त्रके तेजसे हमलोगोंको दग्ध कर रहे हैं। इस समय आपके सिवा और कोई हमें शरण देनेवाला नहीं है। आप हमपर कृपा कीजिये।'

सर्पोंकी यह बात सुनकर और पहले अपने दिये हुए वचनको याद करके साध्वी भामिनीने तुरंत ही अपने पतिसे

कहा—'नाथ ! मैं पहले ही आपको यह बात बता चुकी हूँ कि नागोंने पातालमें मेरा सत्कार करके मेरे पुत्रसे प्राप्त होनेवाले भयकी चर्चा की थी और मैंने इनकी रक्षाका वचन दिया था। आज ये भयभीत होकर मेरी शरणमें आये हैं। मरुत्तके अस्त्रसे ये सब लोग दग्ध हो रहे हैं। जो मेरे शरणागत हैं, वे आपके भी हैं; क्योंकि मेरा धर्माचरण आपसे पृथक् नहीं है तथा मैं स्वयं भी आपकी शरणमें हूँ। अतः आप अपने पुत्र मरुत्तको आदेश देकर रोकिये, मैं भी उससे अनुरोध करूँगी। मेरा विश्वास है, वह अवश्य शान्त हो जायगा।'

अवीक्षित बोले—देवि ! निश्चय ही किसी भारी अपराधके कारण मरुत्त कुपित हुआ है, अतः मैं तुम्हारे पुत्रका क्रोध शान्त करना कठिन मानता हूँ।

नागोंने कहा—राजन् ! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप हमपर कृपा करें। पीड़ितोंकी रक्षा करनेके लिये ही क्षत्रियलोग शस्त्र धारण करते हैं।

शरण चाहनेवाले नागोंकी यह बात सुनकर तथा पत्नीके प्रार्थना करनेपर महायशस्वी अवीक्षितने कहा—'मैं तुरंत चलकर नागोंकी रक्षाके लिये तुम्हारे पुत्रसे कहता हूँ, क्योंकि शरणागतोंका त्याग करना उचित नहीं है। यदि राजा मरुत्त मेरे कहनेसे अपने शस्त्रको नहीं लौटायेगा तो मैं अपने अस्त्रोंसे उसके अस्त्रका निवारण करूँगा।' यह कहकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ अवीक्षित धनुष ले अपनी स्त्रीके साथ तुरंत ही और्व मुनिके आश्रमपर गये।

वहाँ पहुँचकर अवीक्षितने देखा, भामिनीका पुत्र अपने हाथमें एक श्रेष्ठ धनुष लिये हुए है, उसका अस्त्र बड़ा ही भयानक है, उसकी ज्वालासे समस्त दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं। वह अपने अस्त्रसे आग उगल रहा है, जो समस्त भूमण्डलको जलाती हुई पातालके भीतर पहुँच गयी है। वह अग्नि अत्यन्त भयानक और असह्य है। राजा मरुत्तको भौंहें टेढ़ी किये खड़ा देख अवीक्षितने कहा—'मरुत्त ! क्रोध न करो, अपने अस्त्रको लौटा लो।' यह बात उन्होंने बार-बार कही और इतनी शीघ्रतासे कही कि उतावलीके कारण कितने ही अक्षरोंका उच्चारण नहीं हो पाता था।

पिताकी बात सुनकर और बारंबार उन्हें देखकर हाथमें धनुष लिये हुए मरुत्तने माता और पिता दोनोंको प्रणाम किया और इस प्रकार उत्तर दिया—'पिताजी ! मेरा शासन होते हुए भी सर्पोंने मेरे बलकी अवहेलना करके भारी अपराध किया है। इन महर्षियोंके आश्रममें घुसकर नागोंने दस मुनिकुमारोंको डँस लिया है। इतना ही नहीं, इन दुराचारियोंने हविष्योंको भी दूषित किया है तथा यहाँ जितने जलाशय हैं, उन सबको विष मिलाकर खराब कर दिया है। ये सभी सर्प ब्रह्महत्यारे हैं, अतः इनका वध करनेसे आप हमें न रोकें।'

अवीक्षित बोले—राजन् ! ये सर्प मेरी शरणमें आ गये हैं, अतः मेरे गौरवका ध्यान रखते हुए ही तुम इस अस्त्रको लौटा लो। क्रोध करनेकी आवश्यकता नहीं है।

मरुत्तने कहा—पिताजी ! ये दुष्ट और अपराधी हैं। इन्हें क्षमा नहीं करूँगा। जो राजा दण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देता और साधु पुरुषोंका पालन करता है, वह पुण्यलोकोंमें जाता है तथा जो अपने कर्तव्यकी उपेक्षा करता है, वह नरकोंमें पड़ता है।

अवीक्षित बोले—राजन् ! ये सर्प भयभीत होकर मेरी शरणमें आये हैं और मैं तुम्हें मना करता हूँ; फिर भी इन नागोंकी हिंसा करते हो तो मैं तुम्हारे अस्त्रका प्रतिकार करता हूँ। मैंने भी अस्त्र-विद्या सीखी है। पृथ्वीपर केवल तुम्हीं अस्त्रवेत्ता नहीं हो। भला, मेरे आगे तुम्हारा पुरुषार्थ क्या है।

यह कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये अवीक्षितने धनुष चढ़ाया और उसपर कालास्त्रका सन्धान किया; फिर तो समुद्र और पर्वतोंसहित समूची पृथ्वी, जो संवर्तास्त्रसे सन्तप्त हो रही थी, कालास्त्रका सन्धान होते ही काँप उठी। मरुत्तने भी पिताद्वारा उठाये हुए कालास्त्रको देखकर कहा—'तात ! मैंने तो दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये यह अस्त्र उठाया है, आपका वध करनेके लिये नहीं। फिर आप मुझपर कालास्त्रका प्रयोग क्यों करते हैं ? महाभाग ! मुझे प्रजाजनोंका पालन करना है। आप क्यों मेरा वध करनेके लिये अस्त्र उठाते हैं ?'

अवीक्षित बोले—हम शरणागतोंकी रक्षा करनेपर तुल गये हैं और तुम इसमें विघ्न डालनेवाले हो; अतः मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा। जो शरणमें आये हुए पीड़ित मनुष्यपर, वह शत्रुपक्षका ही क्यों न हो, दया नहीं दिखाता, उस पुरुषके जीवनको धिक्कार है। मैं क्षत्रिय हूँ। ये भयभीत होकर मेरी शरणमें आये हैं और तुम्हीं इनके अपकारी हो। फिर तुम्हारा वध क्यों न किया जाय !

मरुत्तने कहा—मित्र, बान्धव, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा-पालनमें विघ्न डाले तो राजाके द्वारा वह मार डालने

योग्य है। अतः पिताजी ! मैं आपपर प्रहार करूँगा। आप मुझपर क्रोध न कीजियेगा। मुझे अपने धर्मका पालन मात्र करना है। आपपर मेरा रत्तीभर भी क्रोध नहीं है।

उन दोनोंको एक दूसरेका वध करनेके लिये दृढ़संकल्प देख भार्गव आदि मुनि बीचमें आ पड़े और मरुत्तसे बोले—'तुम्हें अपने पितापर हथियार चलाना उचित नहीं है।' फिर अवीक्षितसे बोले—'आपको भी अपने विख्यात पुत्रका वध नहीं करना चाहिये।'

मरुत्तने कहा—ब्राह्मणो ! मैं राजा हूँ, मुझे दुष्टोंका वध और साधु पुरुषोंकी रक्षा करनी है। ये सर्पलोग दुष्ट हैं। अतः मेरा इसमें क्या अपराध है ?

अवीक्षित बोले—मुझे शरणागतोंकी रक्षा करनी है और यह उन्हीं शरणागतोंका वध करता है; अतः मेरा पुत्र होनेपर भी अपराधी है।

ऋषियोंने कहा—ये नाग कह रहे हैं कि दुष्ट सर्पोंने जिन ब्राह्मणोंको काट खाया है, उन्हें हम जीवित किये देते हैं। अतः युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप दोनों श्रेष्ठ राजा प्रसन्न हों।

इसी समय वीराने आकर अपने पुत्र अवीक्षितसे कहा—'वत्स ! मेरे कहनेसे ही तुम्हारा पुत्र इन नागोंका वध करनेके लिये उद्यत हुआ है। यदि मरे हुए ब्राह्मण जीवित हो जाते हैं तो अपना कार्य सिद्ध हो जायगा और तुम्हारे शरणागत सर्प जीवित छूट जायँगे।' तब नागोंने विष खींचकर दिव्य ओषधियोंके प्रयोगसे उन ब्राह्मणोंको जीवित कर दिया। तदनन्तर राजा मरुत्तने पुनः अपने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। अवीक्षितने भी मरुत्तको प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और कहा—'वत्स ! तुम शत्रुओंका मान मर्दन करो, चिरकालतक पृथ्वीका पालन करते रहो। पुत्र और पौत्रोंके साथ आनन्द भोगो तथा तुम्हारे कोई शत्रु न हों।'

इसके बाद ब्राह्मणों और वीराकी आज्ञा ले अवीक्षित, मरुत्त और भामिनी रथपर आरूढ़ हो अपनी राजधानीको चले गये। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महाभागा पतिव्रता वीरा भी भारी तपस्या करके पतिके लोकमें चली गयीं। राजा मरुत्तने भी काम, क्रोध आदि छः शत्रुओंको जीतकर धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन किया। महाबली महाराज मरुत्तका ऐसा ही पराक्रम था। सातों द्वीपोंमें कहीं भी उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं होता था। उनके समान दूसरा कोई राजा न हुआ है, न होगा। वे सत्त्व तथा पराक्रमसे युक्त और महान् तेजस्वी थे। द्विजश्रेष्ठ ! महात्मा मरुत्तके उत्तम जन्म एवं चरित्रकी यह कथा सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

राजा नरिष्यन्त और दमका चरित्र

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मरुत्तके अठारह पुत्रोंमें नरिष्यन्त सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ थे। क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ महाराज मरुत्तने पचासी हजार वर्षोंतक समूची पृथ्वीका राज्य किया। धर्मपूर्वक राज्यका पालन और उत्तमोत्तम यज्ञोंका अनुष्ठान करके मरुत्तने अपने ज्येष्ठ पुत्र नरिष्यन्तको राजपदपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं वनमें चले गये। वहाँ एकाग्र-चित्त होकर उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की और अपने सुयशसे पृथ्वी एवं आकाशको व्याप्त करके वे स्वर्गलोकमें चले गये। तदनन्तर उनके बुद्धिमान् पुत्र नरिष्यन्तने अपने पिता तथा अन्य पूर्वजोंके चरित्रकी आलोचना करके मन-ही-मन सोचा—वंशकी मान-मर्यादाका पालन, लज्जाकी रक्षा, शत्रुओंपर क्रोध, सबको अपने-अपने धर्ममें लगाना और युद्धसे कभी पीठ न दिखाना—इन सब बातोंका मेरे पूर्वपुरुषोंने तथा पिताजीने जैसा पालन किया है, वैसा दूसरा कौन कर सकता है। मेरे पूर्वजोंने कौन ऐसा शुभ कर्म नहीं किया है, जिसको मैं करूँ। वे बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले जितेन्द्रिय, संग्रामसे पीछे न हटनेवाले, बड़े-बड़े युद्धोंमें भाग लेनेवाले तथा अनुपम पुरुषार्थी थे; मैं निष्काम कर्मका अनुष्ठान करूँगा। मेरे पहलेके राजाओंने स्वयं ही निरन्तर यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, दूसरोंसे नहीं कराया है; मैं ऐसा करूँगा, जिससे दूसरे भी यज्ञ करें।

यों विचारकर महाराज नरिष्यन्तने धन-दानसे सुशोभित एक ऐसा यज्ञ किया, जिसके समान यज्ञ दूसरे किसीने नहीं किया था। उन्होंने ब्राह्मणोंके जीवन-निर्वाहके लिये बहुत बड़ी सम्पत्ति देकर उसकी अपेक्षा सौगुना अन्न दान किया। इस भूमिपर रहनेवाले प्रत्येक ब्राह्मणको धन और अन्न देनेके अतिरिक्त गौ, वस्त्र, आभूषण तथा धान्य भण्डार आदि भी दिये। इसके बाद जब राजाने दूसरा यज्ञ

आरम्भ करना चाहा, तब इसके लिये उन्हें कहीं ब्राह्मण ही नहीं मिले। वे जिस-जिस ब्राह्मणका वरण करते, वही उत्तर देता, 'हम तो स्वयं ही यज्ञ कर रहे हैं। आप दूसरे किसी ब्राह्मणका वरण कीजिये। आपने पहले ही यज्ञमें हमें इतना धन दे दिया है, जो अनेक यज्ञ करनेपर भी समाप्त नहीं होगा। अब हमें और धनकी आवश्यकता नहीं।'

जब एक भी ऋत्विज ब्राह्मण नहीं मिला, तब महाराजने बहिर्वेदीमें दान देनेका आयोजन किया। तथापि धनसे घर भरा रहनेके कारण ब्राह्मणोंने वह दान नहीं ग्रहण किया। उस समय राजाने यह उद्गार प्रकट किया—'अहो! इस पृथ्वीपर कहीं एक भी निर्धन ब्राह्मण नहीं है, यह कितनी सुन्दर बात है!' तदनन्तर उन्होंने भक्तिपूर्वक बारंबार प्रणाम करके कुछ ब्राह्मणोंको ऋत्विज बनाया और बहुत बड़ा यज्ञ आरम्भ किया। उस समय बड़े आश्चर्यकी बात यह हुई कि भूमण्डलके सभी ब्राह्मण यज्ञ करने लगे, इसलिये राजाके यज्ञ-मण्डपमें कोई सदस्य न बन सका। कुछ ब्राह्मण यजमान थे और कुछ यज्ञ करानेवाले पुरोहित बन गये। राजा नरिष्यन्तने जिस समय यज्ञ आरम्भ किया, उस समय पृथ्वीके समस्त ब्राह्मण उन्हींके दिये हुए धनसे यज्ञ करने लगे। पूर्वदिशामें अठारह करोड़, पश्चिममें सात करोड़, दक्षिणमें चौदह करोड़ और उत्तरमें पंद्रह करोड़ यज्ञ एक ही समय आरम्भ हुए। इस प्रकार मरुत्तनन्दन राजा नरिष्यन्त बड़े धर्मात्मा हुए। वे अपने बल और पुरुषार्थके लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थे।

नरिष्यन्तके दम नामक पुत्र हुआ, जो दुष्ट शत्रुओंका दमन करनेवाला था। उसमें इन्द्रके समान बल और मुनियोंके समान दया एवं शील था। बभ्रुकी कन्या इन्द्रसेना नरिष्यन्तकी पत्नी थी। उसीके गर्भसे दमका जन्म हुआ था। उस महायशस्वी पुत्रने नौ वर्षोंतक माताके गर्भमें रहकर उसके द्वारा दमका पालन कराया, तथा स्वयं भी दमनशील था। इसीलिये त्रिकालवेत्ता पुरोहितने उसका नाम 'दम' रक्खा। राजकुमार दमने दैत्यराज वृषपर्वासे सम्पूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा पायी। तपोवननिवासी दैत्यराज दुन्दुभिसे सम्पूर्ण अस्त्र प्राप्त किये। महर्षि शक्तिसे वेदों तथा समस्त वेदाङ्गोंका अध्ययन किया और राजर्षि आर्ष्टिषेणसे योगविद्या प्राप्त की। वे सुन्दर रूपवान्, महात्मा, अस्त्रविद्याके ज्ञाता और महान् बलवान् थे; अतः राजकुमारी सुमनाने पिताद्वारा आयोजित स्वयंवरमें उन्हें अपना पति चुन लिया। वह दशार्ण देशके बलवान् राजा चारुवर्माकी पुत्री थी। उसकी प्राप्तिके लिये वहाँ जितने राजा आये थे, सब देखते ही रह गये और उसने दमका वरण कर लिया। मद्रराजकुमार महानन्द, जो बड़ा बलवान् और पराक्रमी था, सुमनाके प्रति अनुरक्त हो गया था; इसी प्रकार विदर्भ देशके राजा संक्रन्दनका राजकुमार वपुष्मान् तथा उदारबुद्धि महाधनु भी सुमनाकी ओर आकृष्ट थे। उन सबने देखा, सुमनाने दुष्ट शत्रुओंका दमन करनेवाले दमका वरण कर लिया; तब कामसे मोहित होकर आपसमें सलाह की—'हमलोग इस सुन्दरी कन्याको बलपूर्वक पकड़कर घर ले चलें। वहाँ यह स्वयंवरकी विधिसे हममेंसे जिसको वरण करेगी, उसीकी पत्नी होगी।'

ऐसा निश्चय करके उन तीनों राजकुमारोंने दमके पास खड़ी हुई उस सुन्दरी कन्याको पकड़ लिया। उस समय जो राजा दमके पक्षमें थे, उन्होंने बड़ा कोलाहल मचाया। कुछ लोग कुपित होकर रह गये और कुछ लोग मध्यस्थ बन गये। इस घटनासे दमके चित्तमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उन्होंने चारों ओर खड़े हुए राजाओंको देखकर कहा—'भूपालगण! स्वयंवरकी धार्मिक कार्योंमें गणना है, किन्तु वह वास्तवमें अधर्म है या धर्म? इस कन्याको इन लोगोंने जो बलपूर्वक पकड़ लिया है—यह उचित है या अनुचित? यदि स्वयंवर अधर्म है, तब तो मुझे इससे कोई मतलब नहीं है; यह भले ही दूसरेकी पत्नी हो जाय। किन्तु यदि वह धर्म है, तब तो यह मेरी पत्नी हो चुकी; उस दशामें इन प्राणोंको धारण करके क्या होगा, जो शत्रुकी उपेक्षा करके बचाये जाते हैं।' तब दशार्णनरेश चारुवर्माने कोलाहल शान्त कराकर सभासदोंसे पूछा—'राजाओ! दमने जो यह धर्म और अधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली बात पूछी है, इसका उत्तर आपलोग दें, जिससे इनके और मेरे धर्मका लोप न हो।'

तब कुछ राजाओंने कहा—'परस्पर अनुराग होनेपर गान्धर्व-विवाहका विधान है। परन्तु यह क्षत्रियोंके लिये ही विहित है; वैश्य, शूद्र और ब्राह्मणोंके लिये नहीं। दमका वरण कर लेनेसे आपकी इस कन्याका गान्धर्व-विवाह सम्पन्न हो गया। इस प्रकार धर्मकी दृष्टिसे आपकी पुत्री दमकी पत्नी हो चुकी। जो मोहवश इसके विपरीत आचरण करता है, वह कामासक्त है।' यह सुनकर दमके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने धनुषको चढ़ाया और यह वचन कहा—'यदि मेरी पत्नी मेरे देखते-देखते बलवान् राजाओंके द्वारा हर ली जाय तो मुझ-जैसे नपुंसकके उत्तम कुलसे तथा इन दोनों भुजाओंसे

क्या लाभ हुआ । उस दशामें तो मेरे अस्त्रोंको, शौर्यको, बाणोंको, धनुषको तथा महात्मा मरुत्तके कुलमें प्राप्त हुए जन्मको भी धिक्कार है ।' यों कहकर दमने महानन्द आदि समस्त शत्रुओंसे कहा—'भूपालो ! यह बाला अत्यन्त सुन्दरी और कुलीन है । यह जिसकी पत्नी नहीं हुई, उसका जन्म लेना व्यर्थ है—यह विचारकर तुमलोग युद्धमें इस प्रकार यत्न करो, जिससे युद्धमें मुझे परास्त करके इसे अपनी पत्नी बना सको ।'

यह कहकर राजकुमार दमने वहाँ बाणोंकी बौछार आरम्भ की । जैसे अन्धकार वृक्षोंको ढक देता है, उसी प्रकार दमने उन राजाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया । वे भी वीर थे; अतः बाण, शक्ति, ऋष्टि तथा मुद्गरोंकी वर्षा करने लगे । किन्तु दमने उनके चलाये हुए सब हथियारोंको खेल-खेलमें ही काट डाला । तब महापराक्रमी महानन्द वहाँ आ पहुँचा और उनके साथ युद्ध करने लगा । तब दमने उसकी छातीमें एक कालाग्निके समान भयङ्कर बाण मारा । उससे उसकी छाती विदीर्ण हो गयी; तो भी उसने उस बाणको खींचकर निकाल दिया और दमके ऊपर चमचमाती हुई तलवार फेंकी । उसे उल्काके समान अपनी ओर आते देख दमने शक्तिके प्रहारसे काट डाला और वेतसपत्र नामक बाणसे महानन्दका मस्तक धड़से अलग कर दिया । महानन्दके मारे जानेपर अधिकांश राजा पीठ दिखाकर भाग गये; केवल कुण्डिनपुरका स्वामी वपुष्मान् डटा रहा और दमके साथ युद्ध करने लगा । युद्ध करते समय उसकी भयङ्कर तलवारको दमने बड़ी फुर्तीसे काट दिया तथा उसके सारथिके मस्तक और ध्वजाको भी काट गिराया । तलवार कट जानेपर वपुष्मान्ने एक गदा उठायी, जिसमें बहुत-सी काँटियाँ गड़ी हुई थीं; किन्तु दमने उसको भी उसके हाथमें ही काट डाला । फिर वपुष्मान् ज्यों ही कोई श्रेष्ठ आयुध हाथमें लेने लगा, त्यों ही दमने उसे बाणोंसे बींधकर पृथ्वीपर गिरा दिया । पृथ्वीपर गिरते ही उसका सारा शरीर व्याकुल हो गया । वह थर-थर काँपने लगा । अब युद्ध करनेका उसका विचार न रहा । उसको इस अवस्थामें देखकर दमने जीवित छोड़ दिया और प्रसन्नचित्त हो सुमनाको साथ ले वहाँसे चल दिया । तब दशार्ण-देशके राजा चारुवर्माने प्रसन्न होकर दम और सुमनाका विधिपूर्वक विवाह कर दिया । तदनन्तर कुछ काल ठहरनेके पश्चात् दम अपनी स्त्रीसहित अपने घरको चले गये । दशार्णराजने भी बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ, गौ, खच्चर, ऊँट, दास-दासियाँ, वस्त्र, आभूषण और धनुष आदि श्रेष्ठ सामग्री तथा बहुत-से बर्तन दहेजमें देकर वर-वधूको विदा किया ।

महामुने ! दम सुमनाको पत्नीरूपमें पाकर बड़े प्रसन्न थे । घर आकर उन्होंने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया । सुमनाने भी सास-ससुरके चरणोंमें मस्तक झुकाया । तब उन दोनोंने भी आशीर्वाद देकर नव-दम्पतिका अभिनन्दन किया । फिर तो नरिष्यन्तके नगरमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया । दशार्णराज सम्बन्धी हुए और बहुत-से राजा पुत्रके हाथों युद्धमें परास्त हो गये, यह सुनकर महाराज नरिष्यन्त बहुत प्रसन्न हुए । दशार्णराजकुमारी सुमना दमके साथ बहुत समयतक विहार करती रहीं । फिर उसने गर्भ धारण किया । राजा नरिष्यन्त भी सब भोगोंको भोगकर वृद्धावस्थामें पहुँच चुके थे, इसलिये वे दमको राज-पदपर अभिषिक्त करके स्वयं वनमें चले गये । उनकी यशस्विनी पत्नी इन्द्रसेनाने भी उनका ही अनुसरण किया, नरिष्यन्त वहाँ वानप्रस्थके नियमोंका पालन करते हुए रहने लगे ।

एक दिन दक्षिण देशका दुराचारी राजकुमार वपुष्मान्, जो संक्रन्दनका पुत्र था, थोड़ी-सी सेना साथ ले वनमें शिकार खेलनेके लिये गया । उसने तपस्वी नरिष्यन्त तथा उनकी पत्नी इन्द्रसेनाको तपस्यासे अत्यन्त दुर्बल देखकर पूछा—'आप वानप्रस्थ-आश्रममें स्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य हैं ? मुझे बताइये ।' राजा नरिष्यन्तने मौन-व्रत धारण कर लिया था, इसलिये उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया; किन्तु उनकी पत्नी इन्द्रसेनाने सब बातें सच-सच बता दीं । परिचय पाकर वपुष्मान्ने सोचा, अब तो मैं अपने शत्रुके पिताको पा गया हूँ । यह विचारकर उसने कुपित हो नरिष्यन्तकी जटा पकड़ ली । इन्द्रसेना आँसू बहाती हुई गद्गद कण्ठसे रोने और हाहाकार करने लगी । वपुष्मान्ने म्यानसे तलवार निकाल ली और यह बात कही, 'जिसने युद्धमें मुझे परास्त किया और मेरी सुमनाको हर लिया, उस दमके पिताको आज मैं मार डालूँगा । अब वह आकर इनकी रक्षा करे ।'

यों कहकर उस दुराचारीने इन्द्रसेनाको रोती-बिलखती छोड़ नरिष्यन्तका मस्तक काट डाला, तब समस्त मुनि तथा अन्य वनवासी भी उसे धिक्कारने लगे । वपुष्मान् अपने नगरको लौट गया । उसके चले जानेपर इन्द्रसेनाने एक शूद्र तपस्वीको अपने पुत्रके पास भेजा और कहा—'तुम शीघ्र जाकर मेरे पुत्रसे यह सब हाल कहो । मेरा सन्देश इस

प्रकार कहना—'महाराजकी इस प्रकार तिरस्कारपूर्ण हिंसा देखकर मैं बहुत दुखी हूँ। राजा होनेका अधिकार उसीको है, जो चारों वर्णों और आश्रमोंकी रक्षा करे। तुम जो तपस्वियोंकी रक्षा नहीं करते, क्या यही तुम्हारे लिये उचित है ? तुम्हारे महाराज नरिष्यन्तके विषयमें यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि बिना किसी अपराधके उनके केश पकड़कर वपुष्मान्ने उनकी हत्या की; ऐसी स्थितिमें तुम वही कार्य करो, जिससे तुम्हारे धर्मका लोप न हो। इससे आगे मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि मैं तपस्विनी हूँ। तुम्हारे मन्त्री वीर तथा सब शास्त्रोंके ज्ञाता हैं; उन सबके साथ विचार करके इस समय जो करना उचित हो, वह करो। अपने पिता शक्तिको राक्षसके हाथसे मारा गया सुनकर महर्षि पराशरने समस्त राक्षस-कुलको अग्निकुण्डमें होमकर भस्म कर दिया था। मैं तो ऐसा मानती हूँ कि तुम्हारे पिता नहीं, तुम मारे गये; उनके ऊपर नहीं, तुम्हारे ऊपर वह तलवार गिरी है। यह तुम्हारी ही मर्यादाका उल्लङ्घन किया गया है। अब तुम्हें भृत्य, कुटुम्ब और बन्धु-बान्धवोंसहित वपुष्मान्के प्रति जो बर्ताव करना उचित हो, वह करो।'

इस प्रकार संदेश दे इन्द्रसेनाने शूद्र तपस्वीको विदा किया और स्वयं पतिके शरीरको गोदमें ले वे अग्निमें प्रवेश कर गयीं। इन्द्रसेनाकी आज्ञाके अनुसार शूद्र तापसने वहाँ जाकर दमसे उनके पिताके मारे जानेका सब समाचार कहा। यह सुनकर दम क्रोधसे जल उठा। जैसे घी डालनेपर आग प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार दम क्रोधाग्निसे जलते हुए हाथ-से-हाथ मलने लगे और इस प्रकार बोले—'ओह! मुझ पुत्रके जीते-जी उस नृशंस वपुष्मान्ने मेरे पिताको अनाथकी भाँति मार डाला और इस प्रकार मेरे कुलका अपमान किया। यदि मैं बैठकर शोक मनाऊँ या क्षमा कर दूँ तो यह मेरी नपुंसकता है। दुष्टोंका दमन और साधु पुरुषोंका पालन—यही मेरा कर्तव्य है। मेरे पिताको मारा गया देखकर भी यदि शत्रु जीवित है तो अब 'हा तात! हा तात!' कहकर बहुत अधिक विलाप करनेसे क्या होगा। इस समय जो करना आवश्यक है, वही मैं करूँगा। उस कायर, पापी एवं दुष्ट दक्षिण-देशनिवासी शत्रुको युद्धमें मारकर सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोगूँगा। यदि उसे न मार सका तो स्वयं ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। यदि देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लिये स्वयं ही इस युद्धमें पधारें, भयङ्कर दण्ड लिये साक्षात् यमराज भी कुपित होकर आ जायँ, कुबेर, वरुण और सूर्य भी वपुष्मान्की रक्षाका यत्न करें, तो भी मैं अपने तीखे बाणोंसे उसका वध कर डालूँगा। जो नियतात्मा, निर्दोष, वनवासी, अपने-आप गिरे हुए फलका आहार करनेवाले तथा सब प्राणियोंके मित्र थे—ऐसे मेरे पिताकी जिसने मुझ-जैसे शक्तिशाली पुत्रके रहते हुए हिंसा की है, उसके मांस और रक्तसे आज गृध्र तृप्त हों।'

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके नरिष्यन्तकुमार दमने मन्त्रियों तथा पुरोहितको बुलाकर कहा—'शूद्र तपस्वीने जो समाचार कहा है, उसे आपलोगोंने सुन लिया होगा। पिताजी तो स्वर्गधाममें जा पहुँचे। अब मेरे लिये जो उचित हो, सो बताओ। आज मैं वही करूँगा, जिसके लिये मेरी माताने आज्ञा दी है। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना तैयार करो। पिताके वैरका बदला लिये बिना, पिताके हत्यारेका प्राण लिये बिना तथा माताजीकी आज्ञाका पालन किये बिना मुझे जीवित रहनेका उत्साह नहीं है।' राजाकी यह बात सुनकर खिन्नचित्त हुए मन्त्रियोंने सेवकों और वाहनोंसहित सेनाको कूचके लिये तैयार किया और त्रिकालवेत्ता पुरोहितसे आशीर्वाद ले सब लोग तलवार, शक्ति और ऋष्टि आदि आयुध लिये नगरसे बाहर निकले। महाराज दम नागराजकी भाँति फुफकारते हुए वपुष्मान्की ओर चले। उन्होंने वपुष्मान्के सीमारक्षकों तथा सामन्तोंका वध करते हुए बड़े वेगसे दक्षिण दिशामें चढ़ाई की। संक्रन्दनकुमार वपुष्मान्को यह पता लग गया कि दम दल-बलसहित आ रहा है। इससे उसके मनमें तनिक भी भय या कम्प नहीं हुआ। उसने भी अपनी सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेका आदेश दिया और नगरसे बाहर निकलकर दमके पास दूत भेजा। दूतने वहाँ जाकर कहा—'क्षत्रियाधम! तू शीघ्रतापूर्वक मेरे समीप आ। नरिष्यन्त अपनी स्त्रीके साथ तेरी प्रतीक्षा करते हैं। मेरी भुजाओंसे छूटे हुए बाण, जो शानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये गये हैं, तेरे शरीरमें घुसकर युद्धमें तेरा रक्तपान करेंगे।'

दूतकी कही हुई सारी बातें सुनकर दमने अपनी पूर्वोक्त प्रतिज्ञाका पुनः स्मरण किया और सर्पकी भाँति फुफकारते हुए वेगसे पैर बढ़ाया। कुण्डिनपुरके पास पहुँचकर दमने वपुष्मान्को युद्धके लिये ललकारा। फिर तो दोनोंमें भयङ्कर संग्राम छिड़ गया। रथी रथसवारके साथ, हाथीसवार हाथी-सवारके साथ और घुड़सवार घुड़सवारके साथ भिड़ गये। इस प्रकार समस्त देवताओं, सिद्धों और गन्धर्व

आदिके देखते-देखते दोनों दलोंमें घमासान युद्ध हुआ। जब दम क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे, उस समय पृथ्वी काँप उठी। कोई हाथीसवार, रथी तथा घुड़सवार ऐसा नहीं मिला, जो उनका बाण सह सके। तदनन्तर वपुष्मान्का सेनापति दमके साथ युद्ध करने लगा। दमने अपने बाणसे उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी, जिससे वह गिरकर प्राणोंसे हाथ धो बैठा। सेनाध्यक्षके गिरते ही राजासहित सारी सेनामें भगदड़ पड़ गयी। तब दमने कहा—'ओ दुष्ट! तू मेरे तपस्वी पिताका, जिनके हाथमें कोई शस्त्र नहीं था, अकारण वध करके कहाँ भागा जाता है। यदि क्षत्रिय है तो लौट आ।' तब वपुष्मान् अपने छोटे भाईके साथ लौट आया। साथमें उसके पुत्र, सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धव भी थे। वह रथपर आरूढ़ हो दमके साथ युद्ध करने लगा। दम अपने पिताके वधसे कुपित हो रहे थे। उन्होंने वपुष्मान्के चलाये हुए समस्त बाणोंको काट डाला और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गको बींध डाला। फिर एक-एक बाण मारकर उसके सात पुत्रों, भाइयों, सम्बन्धियों तथा मित्रोंको यमराजके घर भेज दिया। पुत्रों और भाइयोंके मारे जानेपर वपुष्मान्को बड़ा क्रोध हुआ और वह सर्पोंके समान विषैले बाणोंसे दमके साथ युद्ध करने लगा। दमने उसके बाणोंको काट डाला और उसने भी दमके बाण टुकड़े-टुकड़े कर डाले। दोनों ही अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे लड़ रहे थे। परस्परके बाणोंकी चोटसे दोनोंके धनुष कट गये, फिर दोनों तलवार हाथमें लेकर पैंतरे बदलने लगे। दमने क्षणभर अपने मरे हुए पिताका ध्यान किया, फिर दौड़कर वपुष्मान्की चोटी पकड़ ली। तत्पश्चात् उसे धरतीपर पटककर एक पैरसे उसका गला दबा दिया और अपनी भुजा उठाकर कहा—'समस्त देवता, मनुष्य, सिद्ध और नाग देखें, मैं इस नीच क्षत्रिय वपुष्मान्की छाती चीरे डालता हूँ।'

यों कहकर दमने अपनी तलवारसे उसकी छाती चीर डाली। इस प्रकार अपने पिताके वैरका बदला लेकर वे पुनः अपने नगरको लौट आये। सूर्यवंशके राजा ऐसे ही पराक्रमी हुए। इनके अतिरिक्त भी बहुत-से शूरवीर, विद्वान्, यज्ञकर्ता और धर्मज्ञ राजा हो गये हैं। वे सभी वेदान्तके पारङ्गत पण्डित थे। मैं उनकी संख्या बतलानेमें असमर्थ हूँ। इन सब राजाओंका चरित्र श्रवण करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है।

श्रीमार्कण्डेयपुराणका उपसंहार और माहात्म्य

पक्षी कहते हैं—जैमिनिजी! महातपस्वी मार्कण्डेय मुनिने यह सब कथा सुनाकर क्रौष्टुकिजीको विदा कर दिया। उसके बाद मध्याह्नकालकी क्रिया सम्पन्न की। महामुने! हमने भी उनसे जो कुछ सुना था, वह सब आपको कह सुनाया। यह अनादिसिद्ध पुराण ब्रह्माजीने पहले मार्कण्डेय मुनिको सुनाया था। वही हमने आपसे कहा है। यह पुण्यमय, पवित्र, आयुवर्धक तथा सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाला है। जो इसका पाठ और श्रवण करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। आपने प्रारम्भमें जो कई प्रश्न किये थे, उनके उत्तरमें हमने पिता-पुत्र-संवाद, ब्रह्माजीके द्वारा रची हुई सृष्टि, मनुओंकी उत्पत्ति तथा राजाओंके चरित्र सुनाये हैं। यह सब बात तो हम बता चुके। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? जो मनुष्य इन सब प्रसङ्गोंका श्रवण तथा जनसमुदायमें पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है। पितामह ब्रह्माजीने जो अठारह पुराण कहे हैं, उनमें इस विख्यात मार्कण्डेयपुराणको सातवाँ पुराण समझना चाहिये। पहला ब्रह्मपुराण, दूसरा पद्मपुराण, तीसरा विष्णुपुराण, चौथा शिवपुराण, पाँचवाँ श्रीमद्भागवतपुराण, छठा नारदीयपुराण, सातवाँ मार्कण्डेयपुराण, आठवाँ अग्निपुराण, नवाँ भविष्य-पुराण, दसवाँ ब्रह्मवैवर्तपुराण, ग्यारहवाँ नृसिंहपुराण, बारहवाँ वाराहपुराण, तेरहवाँ स्कन्दपुराण, चौदहवाँ वामनपुराण, पंद्रहवाँ कूर्मपुराण, सोलहवाँ मत्स्यपुराण, सत्रहवाँ गरुडपुराण और अठारहवाँ ब्रह्माण्डपुराण माना गया है। जो प्रतिदिन अठारह पुराणोंका नाम लेता तथा प्रतिदिन तीनों समय उनका जप करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। मार्कण्डेयपुराण चार प्रश्नोंसे युक्त है। इसके श्रवणसे सौ करोड़ कल्पोंके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्महत्या आदि पाप तथा अन्य अशुभ इसके श्रवणसे उसी प्रकार नष्ट होते हैं, जैसे हवाका झोंका लगनेसे

रूई उड़ जाती है। इसके श्रवणसे पुष्करतीर्थमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त होता है।*

वन्ध्या अथवा मृतवत्सा स्त्री यदि यथावत् इस पुराणका श्रवण करे तो वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र प्राप्त करती है। इसका श्रवण करनेसे मनुष्य आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, धान्य, पुत्र तथा अक्षय वंश प्राप्त करता है। ब्रह्मन्! इस पुराणको पूरा सुन लेनेके बाद जो आवश्यक कर्तव्य है, वह सुनो। विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना करके विद्वान् पुरुष होम करे; पुराणस्वरूप भगवान् गोविन्दका हृदयकमलमें ध्यान करके गन्ध, पुष्प, माला, वस्त्र तथा नैवेद्य आदिके द्वारा पूजन करे। वाचककी पत्नीसहित पूजा करे। तत्पश्चात् उन्हें दूध देनेवाली सवत्सा गौ, खेतीसे भरी हुई भूमि, सुवर्ण और चाँदी आदि वस्तुएँ यथाशक्ति दान करनी चाहिये। राजाओंको उचित है कि उन्हें ग्राम आदि तथा सवारी भी दें। वाचकको संतुष्ट करके उसके द्वारा स्वस्ति कहलायें। जो वाचककी पूजा न करके एक श्लोक भी सुनता है, वह उसके पुण्यका भागी नहीं होता; विद्वानोंने उसे शास्त्रचोर कहा है। मार्कण्डेयपुराणकी समाप्तिपर भारी उत्सव कराये और सब पापोंसे मुक्त होनेके लिये दूध देनेवाली गौ दान करे। साथ ही सपत्नीक ब्राह्मणको वस्त्र, रत्न, कुण्डल, अंगा, पगड़ी, ओढ़ने-बिछौने आदिसहित शय्या, जूता, कमण्डलु, सोनेकी अँगूठी, सप्तधान्य, भोजनके लिये काँसेकी थाली और घृतपात्र दान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। जो उत्तम विधिके साथ इसका श्रवण करता है, वह हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका फल पाता है। उसे न यमराजसे भय होता है न नरकोंसे। वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है। इस पृथ्वीपर उसकी वंश-परम्परा सदा कायम रहती है तथा वह इन्द्रलोक एवं सनातन ब्रह्मलोकमें जाता है। वहाँसे पुनः च्युत होकर मनुष्य-योनिमें नहीं आना पड़ता।

इस पुराणके श्रवणसे ही मनुष्य परम योग प्राप्त कर लेता है। नास्तिक, वेदनिन्दक शूद्र, गुरुद्रोही, व्रत भंग करनेवाले, माता-पिताके त्यागी, सुवर्णचोर, मर्यादा भंग करनेवाले तथा जातिको कलङ्कित करनेवाले पुरुषोंको प्राण कण्ठमें आ जायँ तो भी इस पुराणका उपदेश नहीं देना चाहिये। यदि लोभ, मोह अथवा विशेषतः भयके कारण कोई उक्त मनुष्योंको यह पुराण सुनाता अथवा पढ़ाता है तो वह निश्चय ही नरकमें पड़ता है।†

जैमिनि बोले—पक्षियो! महाभारतमें मेरे जिस सन्देहका निवारण नहीं हो सका, उसका निवारण आपलोगोंने मित्रभावसे किया है; ऐसा दूसरा कौन करेगा। आपलोग दीर्घायु, नीरोग तथा उत्तम वृत्तिसे युक्त हों। सांख्ययोगमें आपकी बुद्धि अविचलभावसे स्थित रहे। पिताके शापजनित दोषसे जो आपके मनमें दुःख रहता है, वह दूर हो जाय।

यों कहकर महाभाग जैमिनि उन श्रेष्ठ पक्षियोंकी प्रशंसा करके अपने आश्रमपर चले गये। वे उन पक्षियोंद्वारा किये हुए परम उदार उपदेशका सदा चिन्तन करने लगे।

श्रीमार्कण्डेयपुराण सम्पूर्ण

* ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा। तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं स्मृतम्। दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं नृसिंहैकादशं तथा॥
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दमत्र त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनकं कौर्मं पञ्चदशं तथा॥
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्। अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत्॥
त्रिसन्ध्यं जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्। चतुःप्रश्नसमोपेतं पुराणं मार्कण्डसंज्ञकम्॥
श्रुतेन नश्यते पापं कल्पकोटिशतैः कृतम्। ब्रह्महत्यादिपापानि तथान्यान्यशुभानि च॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति तूलं वाताहतं यथा। पुष्करस्नानजं पुण्यं श्रवणादस्य जायते॥ (१३७। ८—१४)

† पुराणश्रवणादेव परं योगमवाप्नुयात्। नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके॥
गुरुविद्वेषके चैव तथा भग्नव्रतेषु च। पितृमातृपरित्यागे सुवर्णस्तेयिने तथा॥
भिन्नमर्यादके चैव तथैव ज्ञातिदूषके। एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि॥
लोभाद्वा यदि वा मोहाद् भयाद्वापि विशेषतः। पठेद्वा पाठयेद्वापि स गच्छेन्नरकं ध्रुवम्॥ (१३७। ३२—३५)

मार्कण्डेयपुराणकी शक्ति ही भागवतकी योगमाया हैं

(लेखक—पं० कृष्णदत्तजी भारद्वाज एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री)

श्रीभगवती दुर्गादेवीके अवतार-चरित्रोंकी प्रतिपादिका सप्तशती मार्कण्डेयपुराणका एक अंश है। सप्तशतीकी देवीजी ही भागवतकी योगमाया हैं। शुम्भ-निशुम्भके निर्दलनके अनन्तर देवताओं-को वर देती हुई देवीजीने कहा था कि वैवस्वत मन्वन्तरमें मैं नन्दपत्नी यशोदाजीके यहाँ अवतार लूँगी—

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा। (सप्तशती ११ । ४२)

इसी प्रसङ्गका भागवतमें—

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि॥ (१० । २ । ९)

—इन शब्दोंमें निर्देश है। योगमाया श्रीभगवान् नारायणकी मोहिनी शक्ति हैं—

(अ) **विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।** (भागवत १० । १ । २५)
(आ) **महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्।** (सप्तशती १ । ५४)
(इ) **या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।** (सप्तशती ५ । १४)
(ई) **त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्या**..................।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्..................। (सप्तशती ११ । ५)

इन्हीं महामायासे व्रजकुमारियोंने श्रीकृष्णरूपी वर माँगा था—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥
(भागवत १० । २२ । ४)

और इन्हींके आश्रयसे भगवान्‌ने अपनी भक्तमनोरमा रासलीलाका आयोजन किया था—

योगमायामुपाश्रितः। (भागवत १० । २९ । १)

मार्कण्डेयपुराण तथा भागवतपुराणके वचनोंकी एकवाक्यतासे महामाया श्रीदेवीजी न केवल शाक्तोंकी ही अपि तु वैष्णवोंकी भी आराध्या हैं। आराधित होकर वे उपासकोंको सांसारिक भोग और पारमार्थिक मोक्ष देकर कृतार्थ कर देती हैं।


कल्याण
B.K.Mitra
ब्रह्म पुराण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः।
ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये ॥

वर्ष २१ | गोरखपुर, सौर माघ २००३, जनवरी १९४७ | संख्या १ पूर्ण संख्या २४२

भगवत्-स्तवन

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण ।
त्राहि मां सर्वलोकेश जन्मसंसारसागरात् ॥
देवदेव सुरश्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद ।
त्राहि मां पद्मपत्राक्ष मग्नं विषयसागरे ॥
नान्यं पश्यामि लोकेश यस्याहं शरणं व्रजे ।
त्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन ॥

राजा इन्द्रद्युम्नको स्वप्नमें भगवद्दर्शन



स ददर्श तु सप्रेम देवदेवं जगद्गुरुम्

[पृष्ठ ३५८

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

संक्षिप्त ब्रह्मपुराण

नैमिषारण्यमें सूतजीका आगमन, पुराणका आरम्भ तथा सृष्टिका वर्णन

यस्मात्सर्वमिदं प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते
यस्मिंस्तिष्ठति याति चान्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः ।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवं
तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम् ॥
यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्संनिभं
नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्वेश्वरं निर्गुणम् ।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं ध्यानैकगम्यं विभुं
तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुक्तिदम् ॥*

पूर्वकालकी बात है, परम पुण्यमय पवित्र नैमिषारण्य-क्षेत्र बड़ा मनोहर जान पड़ता था। वहाँ बहुत-से मुनि एकत्रित हुए थे, भाँति-भाँतिके पुष्प उस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे थे। पीपल, पारिजात, चन्दन, अगर, गुलाब तथा चम्पा आदि अन्य बहुत-से वृक्ष उसकी शोभा-वृद्धिमें सहायक हो रहे थे। भाँति-भाँतिके पक्षी, नाना प्रकारके मृगोंका झुंड, अनेक पवित्र जलाशय तथा बहुत-सी बावलियाँ उस वनको विभूषित कर रही थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जातिके लोग भी वहाँ उपस्थित थे। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—सभी जुटे हुए थे। झुंड-की-झुंड गौएँ उस वनकी शोभा बढ़ा रही थीं। नैमिषारण्यवासी मुनियोंका द्वादशवार्षिक (बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाला) यज्ञ आरम्भ था। जौ, गेहूँ, चना, उड़द, मूँग और तिल आदि पवित्र अन्नोंसे यज्ञमण्डप सुशोभित था। वहाँ होमकुण्डमें अग्निदेव प्रज्वलित थे और आहुतियाँ डाली जा रही थीं। उस महायज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये बहुत-से मुनि और ब्राह्मण अन्य स्थानोंसे आये। स्थानीय महर्षियोंने उन सबका यथायोग्य सत्कार किया। ऋत्विजोंसहित वे सब लोग जब आरामसे बैठ गये, तब परम बुद्धिमान् लोमहर्षण सूतजी वहाँ पधारे। उन्हें देखकर मुनिवरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई, उन सबने उनका यथावत् सत्कार किया। सूतजी भी उनके प्रति आदरका भाव प्रकट करके एक श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए। उस समय सब ब्राह्मण सूतजीके साथ वार्तालाप करने लगे। बातचीतके अन्तमें सबने व्यास-शिष्य लोमहर्षणजीसे अपना संदेह पूछा।



* प्रत्येक कल्प और अनुकल्पमें विस्तारपूर्वक रचा हुआ यह समस्त मायामय जगत् जिनसे प्रकट होता, जिनमें स्थित रहता और अन्तकालमें जिनके भीतर पुनः लीन हो जाता है, जो इस दृश्य-प्रपञ्चसे सर्वथा पृथक् हैं, जिनका ध्यान करके मुनिजन सनातन मोक्षपद प्राप्त कर लेते हैं, उन नित्य, निर्मल, निश्चल तथा व्यापक भगवान् पुरुषोत्तम (जगन्नाथजी) को मैं प्रणाम करता हूँ। जो शुद्ध, आकाशके समान निर्लेप, नित्यानन्दमय, सदा प्रसन्न, निर्मल, सबके स्वामी, निर्गुण, व्यक्त और अव्यक्तसे परे, प्रपञ्चसे रहित, एकमात्र ध्यानमें ही अनुभव करने योग्य तथा व्यापक हैं, समाधिकालमें विद्वान् पुरुष इसी रूपमें जिनका ध्यान करते हैं, जो संसारकी उत्पत्ति और विनाशके एकमात्र कारण हैं, जरा-अवस्था जिनका स्पर्श भी नहीं कर सकती तथा जो मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ।

मुनि बोले-साधुशिरोमणे ! आप पुराण, तन्त्र, छहों शास्त्र, इतिहास तथा देवताओं और दैत्योंके जन्म-कर्म एवं चरित्र—सब जानते हैं। वेद, शास्त्र, पुराण, महाभारत तथा मोक्षशास्त्रमें कोई भी बात ऐसी नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो। महामते ! आप सर्वज्ञ हैं, अतः हम आपसे कुछ प्रश्नोंका उत्तर सुनना चाहते हैं; बताइये, यह समस्त जगत् कैसे उत्पन्न हुआ ? भविष्यमें इसकी क्या दशा होगी ? स्थावर-जङ्गमरूप संसार सृष्टिसे पहले कहाँ लीन था ? और फिर कहाँ लीन होगा ?

लोमहर्षणजीने कहा-जो निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप और सर्वविजयी हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपसे जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाले हैं, तथा जो भक्तोंको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, उन भगवान्को प्रणाम है। जो एक होकर भी अनेक रूप धारण करते हैं, स्थूल और सूक्ष्म सब जिनके ही स्वरूप हैं, जो अव्यक्त (कारण) और व्यक्त (कार्य) रूप तथा मोक्षके हेतु हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले हैं, जरा और मृत्यु जिनका स्पर्श नहीं करतीं, जो सबके मूल कारण हैं, उन परमात्मा विष्णुको नमस्कार है। जो इस विश्वके आधार हैं, अत्यन्त सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, सब प्राणियोंके भीतर विराजमान हैं, क्षर और अक्षर पुरुषसे उत्तम तथा अविनाशी हैं, उन भगवान् विष्णुको प्रणाम करता हूँ। जो वास्तवमें अत्यन्त निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं, किन्तु अज्ञानवश नाना पदार्थोंके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं, जो विश्वकी सृष्टि और पालनमें समर्थ एवं उसका संहार करनेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, जगत्के अधीश्वर हैं, जिनके जन्म और विनाश नहीं होते, जो अव्यय, आदि, अत्यन्त सूक्ष्म तथा विश्वेश्वर हैं, उन श्रीहरिको तथा ब्रह्मा आदि देवताओंको मैं प्रणाम करता हूँ। तत्पश्चात् इतिहास-पुराणोंके ज्ञाता, वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान्, सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ पराशरनन्दन भगवान् व्यासको, जो मेरे गुरुदेव हैं, प्रणाम करके मैं वेदके तुल्य माननीय पुराणका वर्णन करूँगा। पूर्वकालमें दक्ष आदि श्रेष्ठ मुनियोंके पूछनेपर कमलयोनि भगवान् ब्रह्माजीने जो सुनायी थी, वही पापनाशिनी कथा मैं इस समय कहूँगा। मेरी वह कथा बहुत ही विचित्र और अनेक अर्थोंवाली होगी। उसमें श्रुतियोंके अर्थका विस्तार होगा। जो इस कथाको सदा अपने हृदयमें धारण करेगा अथवा निरन्तर सुनेगा, वह अपनी वंश-परम्पराको कायम रखते हुए स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होगा।

जो नित्य, सदसत्स्वरूप तथा कारणभूत अव्यक्त प्रकृति है, उसीको प्रधान कहते हैं। उसीसे पुरुषने इस विश्वका निर्माण किया है। मुनिवरो ! अमिततेजस्वी ब्रह्माजीको ही पुरुष समझो। वे समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले तथा भगवान् नारायणके आश्रित हैं। प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहङ्कार तथा अहङ्कारसे सब सूक्ष्मभूत उत्पन्न हुए। भूतोंके जो भेद हैं, वे भी उन सूक्ष्म भूतोंसे ही प्रकट हुए हैं। यह सनातन सर्ग है। तदनन्तर स्वयम्भू भगवान् नारायणने नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे सबसे पहले जलकी ही सृष्टि की। फिर जलमें अपनी शक्तिका आधान किया। जलका दूसरा नाम 'नार' है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् नरसे हुई है। वह जल पूर्वकालमें भगवान्का अयन (निवासस्थान) हुआ, इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। भगवान्ने जो जलमें अपनी शक्तिका आधान किया, उससे एक बहुत विशाल सुवर्णमय अण्ड प्रकट हुआ। उसीमें स्वयम्भू ब्रह्माजी उत्पन्न हुए—ऐसा सुना जाता है। सुवर्णके समान कान्तिमान् भगवान् ब्रह्माने एक वर्षतक उस अण्डमें निवास करके उसके दो टुकड़े कर दिये। फिर एक टुकड़ेसे द्युलोक बनाया और दूसरेसे भूलोक। उन दोनोंके बीचमें आकाश रक्खा। जलके ऊपर तैरती हुई पृथ्वीको स्थापित किया। फिर दसों दिशाएँ निश्चित कीं। साथ ही काल, मन, वाणी, काम, क्रोध और रतिकी सृष्टि की। इन भावोंके अनुरूप सृष्टि करनेकी इच्छासे ब्रह्माजीने सात प्रजापतियोंको अपने मनसे उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वसिष्ठ। पुराणोंमें ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपने रोषसे रुद्रको प्रकट किया। फिर पूर्वजोंके भी पूर्वज सनत्कुमारजीको उत्पन्न किया। इन्हीं सात महर्षियोंसे समस्त प्रजा तथा ग्यारह रुद्रोंका प्रादुर्भाव हुआ। उक्त सात महर्षियोंके सात बड़े-बड़े दिव्य वंश हैं, देवता भी इन्हींके अन्तर्गत हैं। उक्त सातों वंशोंके लोग कर्मनिष्ठ एवं सन्तानवान् हैं। उन वंशोंको बड़े-बड़े ऋषियोंने सुशोभित किया है। इसके बाद ब्रह्माजीने विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित, इन्द्रधनुष, पक्षी तथा मेघोंकी सृष्टि की। फिर यज्ञोंकी सिद्धिके

लिये उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद प्रकट किये। तदनन्तर साध्य देवताओंकी उत्पत्ति बतायी जाती है। छोटे-बड़े सभी भूत भगवान् ब्रह्माके अङ्गोंसे उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि करते रहनेपर भी जब प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई, तब प्रजापति अपने शरीरके दो भाग करके आधेसे पुरुष और आधेसे स्त्री हो गये। पुरुषका नाम मनु हुआ। उन्हींके नामपर 'मन्वन्तर' काल माना गया है। स्त्री अयोनिजा शतरूपा थी, जो मनुको पत्नीरूपमें प्राप्त हुई। उसने दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके परम तेजस्वी पुरुषको पतिरूपमें प्राप्त



किया। वे ही पुरुष स्वायम्भुव मनु कहे गये हैं (वैराज पुरुष भी उन्हींका नाम है)। उनका 'मन्वन्तर काल' इकहत्तर चतुर्युगीका बताया जाता है।

शतरूपाने वैराज पुरुषके अंशसे वीर, प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक पुत्र उत्पन्न किये। वीरसे काम्या नामक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न हुई, जो कर्दम प्रजापतिकी धर्मपत्नी हुई। काम्याके गर्भसे चार पुत्र हुए—सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु। प्रजापति अत्रिने राजा उत्तानपादको गोद ले लिया। प्रजापति उत्तानपादने अपनी पत्नी सूनृताके गर्भसे ध्रुव, कीर्तिमान्, आयुष्मान् तथा वसु—ये चार पुत्र उत्पन्न किये। ध्रुवसे उनकी पत्नी शम्भुने श्लिष्टि और भव्य—इन दो पुत्रोंको जन्म दिया। श्लिष्टिके उसकी पत्नी सुछायाके गर्भसे रिपु, रिपुञ्जय, वीर, वृकल और वृकतेजा—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। रिपुसे बृहतीने चक्षुष् नामके तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। चक्षुष्के उनकी पत्नी पुष्करिणीसे, जो महात्मा प्रजापति वीरणकी कन्या थी, चाक्षुष मनु उत्पन्न हुए। चाक्षुष-मनुसे वैराज प्रजापतिकी कन्या नड्वलाके गर्भसे दस महाबली पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—कुत्स, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा अभिमन्यु। पुरुसे आग्नेयीने अङ्ग, सुमना, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरा तथा मय—ये छः पुत्र उत्पन्न किये। अङ्गसे सुनीथाने वेन नामक एक पुत्र पैदा किया। वेनके अत्याचारसे ऋषियोंको बड़ा क्रोध हुआ; अतः प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये उन्होंने उसके दाहिने हाथका मन्थन किया, उससे महाराज पृथु प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनियोंने कहा—'ये महातेजस्वी नरेश प्रजाको प्रसन्न रक्खेंगे तथा महान् यशके भागी होंगे।' वेनकुमार पृथु धनुष और कवच धारण किये अग्निके समान तेजस्वी रूपमें प्रकट हुए थे। उन्होंने इस पृथ्वीका पालन किया। राजसूय यज्ञके लिये अभिषिक्त होनेवाले राजाओंमें वे सर्वप्रथम थे। उनसे ही स्तुति-गानमें निपुण सूत और मागध प्रकट हुए। उन्होंने इस पृथ्वीसे सब प्रकारके अनाज दुहे थे। प्रजाकी जीविका चले, इसी उद्देश्यसे उन्होंने देवताओं, ऋषियों, पितरों, दानवों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं आदिके साथ पृथ्वीका दोहन किया था।

राजा पृथुका चरित्र

मुनियोंने कहा—लोमहर्षणजी! पृथुके जन्मकी कथा विस्तारपूर्वक कहिये। उन महात्माने इस पृथ्वीका किस प्रकार दोहन किया था?

लोमहर्षणजी बोले—द्विजवरो! मैं वेनकुमार पृथुकी कथा विस्तारके साथ सुनाता हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्राह्मणो! जो पवित्र नहीं रहता, जिसका हृदय खोटा है, जो अपने शासनमें नहीं है, जो व्रतका पालन नहीं करता तथा जो कृतघ्न और अहितकारी है—ऐसे पुरुषको मैं यह प्रसङ्ग नहीं सुना सकता। यह स्वर्ग देनेवाला, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, परम धन्य,

वेदोंके तुल्य, माननीय तथा गूढ़ रहस्य है। ऋषियोंने जैसा कहा है, वह सब मैं ज्यों-का-त्यों सुना रहा हूँ; सुनो। जो प्रतिदिन ब्राह्मणोंको नमस्कार करके वेनकुमार पृथुके चरित्रका विस्तारपूर्वक कीर्तन करता है, उसे 'अमुक कर्म मैंने किया और अमुक नहीं किया'—इस बातका शोक नहीं होता। पूर्वकालकी बात है, अत्रि-कुलमें उत्पन्न प्रजापति अङ्ग बड़े धर्मात्मा और धर्मके रक्षक थे। वे अत्रिके समान ही तेजस्वी थे। उनका पुत्र वेन था, जो धर्मके तत्त्वको बिल्कुल नहीं समझता था। उसका जन्म मृत्युकन्या सुनीथाके गर्भसे हुआ था। अपने नानाके स्वभावदोषके कारण वह धर्मको पीछे रखकर काम और लोभमें प्रवृत्त हो गया। उसने धर्मकी मर्यादा भङ्ग कर दी और वैदिक धर्मोंका उल्लङ्घन करके वह अधर्ममें तत्पर हो गया। विनाशकाल उपस्थित होनेके कारण उसने यह क्रूर प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'किसीको यज्ञ और होम नहीं करने दिया जायगा। यजन करने योग्य, यज्ञ करनेवाला तथा यज्ञ भी मैं ही हूँ। मेरे ही लिये यज्ञ करना चाहिये। मेरे ही उद्देश्यसे हवन होना चाहिये।' इस प्रकार मर्यादाका उल्लङ्घन करके सब कुछ ग्रहण करनेवाले अयोग्य वेनसे मरीचि आदि सब महर्षियोंने कहा—'वेन! हम अनेक वर्षोंके लिये यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेवाले हैं। तुम अधर्म न करो। यह यज्ञ आदि कार्य सनातन धर्म है।'

महर्षियोंको यों कहते देख खोटी बुद्धिवाले वेनने



हँसकर कहा—'अरे! मेरे सिवा दूसरा कौन धर्मका स्रष्टा है। मैं किसकी बात सुनूँ। विद्या, पराक्रम, तपस्या और सत्यके द्वारा मेरी समानता करनेवाला इस भूतलपर कौन है। मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी और विशेषतः सब धर्मोंकी उत्पत्तिका कारण हूँ। तुम सब लोग मूर्ख और अचेत हो, इसलिये मुझे नहीं जानते। यदि मैं चाहूँ तो इस पृथ्वीको भस्म कर दूँ, जलमें बहा दूँ या भूलोक तथा द्युलोकको भी रूँध डालूँ। इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।' जब महर्षिगण वेनको मोह और अहङ्कारसे किसी तरह हटा न सके, तब उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। उन महात्माओंने महाबली वेनको पकड़कर बाँध लिया। उस समय वह बहुत उछल-कूद मचा रहा था। महर्षि कुपित तो थे ही, वेनकी बायीं जङ्घाका मन्थन करने लगे। इससे एक काले रंगका पुरुष उत्पन्न हुआ, जो बहुत ही नाटा था। वह भयभीत हो हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसे व्याकुल देख अत्रिने कहा—'निषीद (बैठ जा)।' इससे वह निषादवंशका प्रवर्त्तक हुआ और वेनके पापसे उत्पन्न हुए धीवरोंकी सृष्टि करने लगा। तत्पश्चात् महात्माओंने पुनः अरणीकी भाँति वेनकी दाहिनी भुजाका मन्थन किया। उससे अग्निके समान तेजस्वी पृथुका प्रादुर्भाव हुआ। वे भयानक टंकार करनेवाले आजगव नामक धनुष, दिव्य बाण तथा रक्षार्थ कवच धारण किये प्रकट हुए थे। उनके उत्पन्न



होनेपर समस्त प्राणी बड़े प्रसन्न हुए और सब ओरसे वहाँ एकत्रित होने लगे। वेन स्वर्गगामी हुआ।

महात्मा पृथु-जैसे सत्पुत्रने उत्पन्न होकर वेनको 'पुम्' नामक नरकसे छुड़ा दिया। उनका अभिषेक करनेके लिये समुद्र और सभी नदियाँ रत्न एवं जल लेकर स्वयं ही उपस्थित हुईं। आङ्गिरस देवताओंके साथ भगवान् ब्रह्माजी तथा समस्त चराचर भूतोंने वहाँ आकर राजा पृथुका राज्याभिषेक किया। उन महाराजने सभी प्रजाका मनोरञ्जन किया। उनके पिताने प्रजाको बहुत दुखी किया था, किन्तु पृथुने उन सबको प्रसन्न कर लिया; प्रजाका मनोरञ्जन करनेके कारण ही उनका नाम राजा हुआ। वे जब समुद्रकी यात्रा करते, तब उसका जल स्थिर हो जाता था। पर्वत उन्हें जानेके लिये मार्ग दे देते थे और उनके रथकी ध्वजा कभी भङ्ग नहीं हुई। उनके राज्यमें पृथ्वी बिना जोते-बोये ही अन्न पैदा करती थी। राजाका चिन्तन करने मात्रसे अन्न सिद्ध हो जाता था। सभी गौएँ कामधेनु बन गयी थीं और पत्तोंके दोने-दोनेमें मधु भरा रहता था। उसी समय पृथुने पैतामह (ब्रह्माजीसे सम्बन्ध रखनेवाला) यज्ञ किया। उसमें सोमाभिषवके दिन सूति (सोमरस निकालनेकी भूमि) से परम बुद्धिमान् सूतकी उत्पत्ति हुई। उसी महायज्ञमें विद्वान् मागधका भी प्रादुर्भाव हुआ। उन दोनोंको महर्षियोंने पृथुकी स्तुति करनेके लिये बुलाया और कहा—'तुमलोग इन महाराजकी स्तुति करो। यह कार्य तुम्हारे अनुरूप है और ये महाराज भी इसके योग्य पात्र हैं।' यह सुनकर सूत और मागधने उन महर्षियोंसे कहा—'हम अपने कर्मोंसे देवताओं तथा ऋषियोंको प्रसन्न करते हैं। इन महाराजका नाम, कर्म, लक्षण और यश—कुछ भी हमें ज्ञात नहीं है, जिससे इन तेजस्वी नरेशकी हम स्तुति कर सकें।' तब ऋषियोंने कहा—'भविष्यमें होनेवाले गुणोंका उल्लेख करते हुए स्तुति करो।' उन्होंने वैसा ही किया। उन्होंने जो-जो कर्म बताये, उन्हींको महाबली पृथुने पीछेसे पूर्ण किया। तभीसे लोकमें सूत, मागध और वन्दीजनोंके द्वारा आशीर्वाद दिलानेकी परिपाटी चल पड़ी। वे दोनों जब स्तुति कर चुके, तब महाराज पृथुने अत्यन्त प्रसन्न होकर अनूप देशका राज्य सूतको और मगधका मागधको दिया। पृथुको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई प्रजासे महर्षियोंने कहा—'ये महाराज तुम्हें जीविका प्रदान करनेवाले होंगे।' यह सुनकर सारी प्रजा महात्मा राजा पृथुकी ओर दौड़ी और बोली—'आप हमारे लिये जीविकाका प्रबन्ध कर दें।' जब प्रजाओंने उन्हें इस प्रकार घेरा, तब वे उनका हित करनेकी इच्छासे धनुष-बाण हाथमें ले पृथ्वीकी ओर दौड़े। पृथ्वी उनके भयसे थर्रा उठी और गौका रूप धारण करके भागी। तब पृथुने धनुष लेकर भागती हुई पृथ्वीका पीछा किया। पृथ्वी उनके भयसे ब्रह्मलोक आदि अनेक लोकोंमें गयी, किन्तु सब जगह उसने धनुष लिये हुए पृथुको अपने आगे ही देखा। अग्निके समान प्रज्वलित तीखे बाणोंके कारण उनका तेज और भी उद्दीप्त दिखायी देता था। वे महान् योगी महात्मा देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष प्रतीत होते थे। जब और कहीं रक्षा न हो सकी, तब तीनों लोकोंकी पूजनीया पृथ्वी हाथ जोड़कर फिर महाराज पृथुके ही शरणमें आयी और इस प्रकार बोली—'राजन्! सब लोक मेरे ही ऊपर स्थित हैं। मैं ही इस जगत्को धारण करती हूँ। यदि मेरा नाश हो जाय तो समस्त प्रजा नष्ट हो जायगी। इस बातको अच्छी तरह समझ लेना। भूपाल! यदि तुम प्रजाका कल्याण चाहते हो तो मेरा वध न करो। मैं जो बात कहती हूँ, उसे सुनो; ठीक उपायसे आरम्भ किये हुए सब कार्य सिद्ध होते हैं। तुम उस उपायपर ही दृष्टिपात करो, जिससे इस प्रजाको जीवित रख सकोगे। मेरी हत्या करके भी तुम प्रजाके पालन-पोषणमें समर्थ न होगे। महामते! तुम क्रोध त्याग दो, मैं तुम्हारे अनुकूल हो जाऊँगी। तिर्यग्योनिमें भी स्त्रीको अवध्य बताया गया है; यदि यह बात सत्य है तो तुम्हें धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये।'

पृथुने कहा—भद्रे! जो अपने या पराये किसी एकके लिये बहुत-से प्राणियोंका वध करता है, उसे अनन्त पातक लगता है; परन्तु जिस अशुभ व्यक्तिका वध करनेपर बहुत-से लोग सुखी हों, उसके मारनेसे पातक या उपपातक कुछ नहीं लगता। अतः वसुन्धरे! मैं प्रजाका कल्याण करनेके लिये तुम्हारा वध करूँगा। यदि मेरे कहनेसे आज संसारका कल्याण नहीं करोगी तो अपने बाणसे तुम्हारा नाश कर दूँगा और अपनेको ही पृथ्वीरूपमें प्रकट करके स्वयं ही प्रजाको धारण करूँगा; इसलिये तुम मेरी आज्ञा मानकर समस्त प्रजाकी जीवन-रक्षा करो; क्योंकि तुम सबके धारणमें समर्थ हो। इस समय मेरी पुत्री बन जाओ; तभी मैं इस भयङ्कर बाणको, जो तुम्हारे वधके लिये उद्यत है, रोकूँगा।

पृथ्वी बोली—वीर! निःसन्देह मैं यह सब कुछ करूँगी। मेरे लिये कोई बछड़ा देखो, जिसके प्रति स्नेहयुक्त होकर मैं दूध दे सकूँ। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भूपाल! तुम मुझे सब ओर बराबर कर दो, जिससे मेरा दूध सब ओर बह सके।



तब राजा पृथुने अपने धनुषकी नोकसे लाखों पर्वतोंको उखाड़ा और उन्हें एक स्थानपर एकत्रित किया। इससे पर्वत बढ़ गये। इससे पहलेकी सृष्टिमें भूमि समतल न होनेके कारण पुरों अथवा ग्रामोंका कोई सीमाबद्ध विभाग नहीं हो सका था। उस समय अन्न, गोरक्षा, खेती और व्यापार भी नहीं होते थे। यह सब तो वेन-कुमार पृथुके समयसे ही आरम्भ हुआ है। भूमिका जो-जो भाग समतल था, वहीं-वहींपर समस्त प्रजाने निवास करना पसंद किया। उस समयतक प्रजाका आहार केवल फल-मूल ही था और वह भी बड़ी कठिनाईसे मिलता था। राजा पृथुने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर अपने हाथमें ही पृथ्वीको दुहा। उन प्रतापी नरेशने पृथ्वीसे सब प्रकारके अन्नोंका दोहन किया। उसी अन्नसे आज भी सब प्रजा जीवन धारण करती है। उस समय ऋषि, देवता, पितर, नाग, दैत्य, यक्ष, पुण्यजन, गन्धर्व, पर्वत और वृक्ष—सबने पृथ्वीको दुहा। उनके दूध, बछड़ा, पात्र और दुहनेवाला—ये सभी पृथक्-पृथक् थे। ऋषियोंके चन्द्रमा बछड़ा बने, बृहस्पतिने दुहनेका काम किया, तपोमय ब्रह्म उनका दूध था और वेद ही उनके पात्र थे। देवताओंने सुवर्णमय पात्र लेकर पुष्टिकारक दूध दुहा। उनके लिये इन्द्र बछड़ा बने और भगवान् सूर्यने दुहनेका काम किया। पितरोंका चाँदीका पात्र था। प्रतापी यम बछड़ा बने, अन्तकने दूध दुहा। उनके दूधको 'स्वधा' नाम दिया गया है। नागोंने तक्षकको बछड़ा बनाया। तुम्बीका पात्र रक्खा। ऐरावत नागसे दुहनेका काम लिया और विषरूपी दुग्धका दोहन किया। असुरोंमें मधु दुहनेवाला बना। उसने मायामय दूध दुहा। उस समय विरोचन बछड़ा बना था और लोहेके पात्रमें दूध दुहा गया था। यक्षोंका कच्चा पात्र था। कुबेर बछड़ा बने थे। रजतनाभ यक्ष दुहनेवाला था और अन्तर्धान होनेकी विद्या ही उनका दूध था। राक्षसेन्द्रोंमें सुमाली नामका राक्षस बछड़ा बना। रजतनाभ दुहनेवाला था। उसने कपालरूपी पात्रमें शोणितरूपी दूधका दोहन किया। गन्धर्वोंमें चित्ररथने बछड़ेका काम पूरा किया। कमल ही उनका पात्र था। सुरुचि दुहनेवाला था और पवित्र सुगन्ध ही उनका दूध था। पर्वतोंमें महागिरि मेरुने हिमवान्को बछड़ा बनाया और स्वयं दुहनेवाला बनकर शिलामय पात्रमें रत्नों एवं ओषधियोंको दूधके रूपमें दुहा। वृक्षोंमें प्लक्ष (पाकड़) बछड़ा था। खिले हुए शालके वृक्षने दुहनेका काम किया। पलाशका पात्र था और जलने तथा कटनेपर पुनः अङ्कुरित हो जाना ही उनका दूध था।

इस प्रकार सबका धारण-पोषण करनेवाली यह पावन वसुन्धरा समस्त चराचर जगत्की आधारभूता तथा उत्पत्तिस्थान है। यह सब कामनाओंको देनेवाली तथा सब प्रकारके अन्नोंको अङ्कुरित करनेवाली है। गोरूपा पृथ्वी मेदिनीके नामसे विख्यात है। यह समुद्रतक पृथुके ही अधिकारमें थी। मधु और कैटभके मेदसे व्याप्त होनेके कारण यह मेदिनी



कहलाती है। फिर राजा पृथुकी आज्ञाके अनुसार भूदेवी उनकी पुत्री बन गयी, इसलिये इसे पृथ्वी भी कहते हैं। पृथुने इस पृथ्वीका विभाग और शोधन किया, जिससे यह अन्नकी खान और समृद्धिशालिनी बन गयी। गाँवों और नगरोंके कारण इसकी बड़ी शोभा होने लगी। वेन-कुमार महाराज पृथुका ऐसा ही प्रभाव था। इसमें सन्देह नहीं कि वे समस्त प्राणियोंके पूजनीय और वन्दनीय हैं। वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणोंको भी महाराज पृथुकी ही वन्दना करनी चाहिये, क्योंकि वे सनातन ब्रह्मयोनि हैं। राज्यकी इच्छा रखनेवाले राजाओंके लिये भी परम प्रतापी महाराज पृथु ही वन्दनीय हैं। युद्धमें विजयकी कामना करनेवाले पराक्रमी योद्धाओंको भी उन्हें मस्तक झुकाना चाहिये। क्योंकि योद्धाओंमें वे अग्रगण्य थे। जो सैनिक राजा पृथुका नाम लेकर संग्राममें जाता है, वह भयङ्कर संग्रामसे भी सकुशल लौटता है और यशस्वी होता है। वैश्यवृत्ति करनेवाले धनी वैश्योंको भी चाहिये कि वे महाराज पृथुको नमस्कार करें, क्योंकि राजा पृथु सबके वृत्तिदाता और परम यशस्वी थे। इस संसारमें परमकल्याणकी इच्छा रखनेवाले तथा तीनों वर्णोंकी सेवामें लगे रहनेवाले पवित्र शूद्रोंके लिये भी राजा पृथु ही वन्दनीय हैं। इस प्रकार जहाँ पृथ्वीको दुहनेके लिये जो विशेष-विशेष बछड़े, दुहनेवाले, दूध तथा पात्र कल्पित किये गये थे, उन सबका मैंने वर्णन किया।

चौदह मन्वन्तरों तथा विवस्वान्‌की संततिका वर्णन

ऋषि बोले—महामते सूतजी! अब समस्त मन्वन्तरोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा उनकी प्राथमिक सृष्टि भी बतलाइये।

लोमहर्षण (सूत) ने कहा—विप्रगण! समस्त मन्वन्तरोंका विस्तृत वर्णन तो सौ वर्षोंमें भी नहीं हो सकता, अतः संक्षेपसे ही सुनो। प्रथम स्वायम्भुव मनु हैं, दूसरे स्वारोचिष, तीसरे उत्तम, चौथे तामस, पाँचवें रैवत, छठे चाक्षुष तथा सातवें वैवस्वत मनु कहलाते हैं। वैवस्वत मनु ही वर्तमान कल्पके मनु हैं। इनके बाद सावर्णि, भौत्य, रौच्य तथा चार मेरुसावर्ण्य नामके मनु होंगे। ये भूत, वर्तमान और भविष्यके सब मिलकर चौदह मनु हैं। मैंने जैसा सुना है, उसके अनुसार सब मनुओंके नाम बताये। अब इनके समयमें होनेवाले ऋषियों, मनु-पुत्रों तथा देवताओंका वर्णन करूँगा। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य तथा वसिष्ठ—ये सात ब्रह्माजीके पुत्र उत्तर दिशामें स्थित हैं, जो स्वायम्भुव मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेध्य, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवल और पुत्र—ये दस स्वायम्भुव मनुके महाबली पुत्र थे। विप्रगण! यह प्रथम मन्वन्तर बतलाया गया। स्वारोचिष मन्वन्तरमें प्राण, बृहस्पति, दत्तात्रेय, अत्रि, च्यवन, वायुप्रोक्त तथा महाव्रत—ये सात सप्तर्षि थे। तुषित नामवाले देवता थे और हविर्घ्न, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, प्रतीत, नभस्य, नभ तथा ऊर्ज—ये महात्मा स्वारोचिष मनुके पुत्र बताये गये हैं, जो महान् बलवान् और पराक्रमी थे। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ; अब तीसरा मन्वन्तर बतलाया जाता है, सुनो। वसिष्ठके सात पुत्र वासिष्ठ तथा हिरण्यगर्भके तेजस्वी पुत्र ऊर्ज—ये ही उत्तम मन्वन्तरके ऋषि थे। इष, ऊर्ज, तनूर्ज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य तथा नभ—ये उत्तम मनुके पराक्रमी पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें भानु नामवाले देवता थे। इस प्रकार तीसरा मन्वन्तर बताया गया। अब चौथेका वर्णन करता हूँ। काव्य, पृथु, अग्नि, जह्नु, धाता, कपीवान् और अकपीवान्—ये सात उस समयके सप्तर्षि थे। सत्य नामवाले देवता थे। द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोभूत, सनातन, तपोरति, अकल्माष, तन्वी, धन्वी और परंतप—ये दस तामस मनुके पुत्र कहे गये हैं। यह चौथे मन्वन्तरका वर्णन हुआ। पाँचवाँ रैवत मन्वन्तर है। उसमें देवबाहु, यदुध्र, वेदशिरा, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सोमनन्दन, ऊर्ध्वबाहु तथा अत्रिकुमार सत्यनेय—ये सप्तर्षि थे। अभूतरजा और प्रकृति नामवाले देवता थे। धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, आरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् और कृती—ये रैवत मनुके पुत्र थे। यह पाँचवाँ मन्वन्तर बताया गया। अब छठे चाक्षुष मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, सुनो। उसमें भृगु, नभ, विवस्वान्, सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु—ये ही सप्तर्षि थे। लेख नामवाले पाँच देवता थे। नाड्वलेय नामसे प्रसिद्ध रुरु आदि चाक्षुष मनुके दस पुत्र बतलाये जाते हैं। यहाँतक छठे मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब सातवें वैवस्वत मन्वन्तरका वर्णन सुनो। अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज,

विश्वामित्र तथा जमदग्नि—ये इस वर्तमान मन्वन्तरमें सप्तर्षि होकर आकाशमें विराजमान हैं। साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, वसु, मरुद्गण, आदित्य और अश्विनीकुमार—ये इस वर्तमान मन्वन्तरके देवता माने गये हैं। वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हुए। ऊपर जिन महातेजस्वी महर्षियोंके नाम बताये गये हैं, उन्हींके पुत्र और पौत्र आदि सम्पूर्ण दिशाओंमें फैले हुए हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें धर्मकी व्यवस्था तथा लोकरक्षाके लिये जो सात सप्तर्षि रहते हैं, मन्वन्तर बीतनेके बाद उनमें चार महर्षि अपना कार्य पूरा करके रोग-शोकसे रहित ब्रह्मलोकमें चले जाते हैं। तत्पश्चात् दूसरे चार तपस्वी आकर उनके स्थानकी पूर्ति करते हैं। भूत और वर्तमान कालके सप्तर्षिगण इसी क्रमसे होते आये हैं। सावर्णि मन्वन्तरमें होनेवाले सप्तर्षि ये हैं—परशुराम, व्यास, आत्रेय, भरद्वाज कुलमें उत्पन्न द्रोणकुमार अश्वत्थामा, गोतमवंशी शरद्वान्, कौशिक कुलमें उत्पन्न गालव तथा कश्यपनन्दन और्व। वैरी, अध्वरीवान्, शमन, धृतिमान्, वसु, अरिष्ट, अधृष्ट, वाजी तथा सुमति—ये भविष्यमें सावर्णिक मनुके पुत्र होंगे। प्रातःकाल उठकर इनका नाम लेनेसे मनुष्य सुखी, यशस्वी तथा दीर्घायु होता है।

भविष्यमें होनेवाले अन्य मन्वन्तरोंका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है, सुनो। सावर्ण नामके पाँच मनु होंगे; उनमें-से एक तो सूर्यके पुत्र हैं और शेष चार प्रजापतिके। ये चारों मेरुगिरिके शिखरपर भारी तपस्या करनेके कारण 'मेरु सावर्ण्य' के नामसे विख्यात होंगे। ये दक्षके धेवते और प्रियाके पुत्र हैं। इन पाँच मनुओंके अतिरिक्त भविष्यमें रौच्य और भौत्य नामके दो मनु और होंगे। प्रजापति रुचिके पुत्र ही 'रौच्य' कहे गये हैं। रुचिके दूसरे पुत्र, जो भूतिके गर्भसे उत्पन्न होंगे 'भौत्य मनु' कहलायँगे। इस कल्पमें होनेवाले ये सात भावी मनु हैं। इन सबके द्वारा द्वीपों और नगरोंसहित सम्पूर्ण पृथिवीका एक सहस्र युगोंतक पालन होगा। सत्ययुग, त्रेता आदि चारों युग इकहत्तर बार बीतकर जब कुछ अधिक काल हो जाय, तब वह एक मन्वन्तर कहलाता है। इस प्रकार ये चौदह मनु बतलाये गये। ये यशकी वृद्धि करनेवाले हैं। समस्त वेदों और पुराणोंमें भी इनका प्रभुत्व वर्णित है। ये प्रजाओंके पालक हैं। इनके यशका कीर्तन श्रेयस्कर है। मन्वन्तरोंमें कितने ही संहार होते हैं और संहारके बाद कितनी ही सृष्टियाँ होती रहती हैं; इन सबका पूरा-पूरा वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं हो सकता। मन्वन्तरोंके बाद जो संहार होता है, उसमें तपस्या, ब्रह्मचर्य और शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न कुछ देवता और सप्तर्षि शेष रह जाते हैं। एक हजार चतुर्युग पूर्ण होनेपर कल्प समाप्त हो जाता है। उस समय सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे समस्त प्राणी दग्ध हो जाते हैं। तब सब देवता आदित्यगणोंके साथ ब्रह्माजीको आगे करके सुरश्रेष्ठ भगवान् नारायणमें लीन हो जाते हैं। वे भगवान् ही कल्पके अन्तमें पुनः सब भूतोंकी सृष्टि करते हैं। वे अव्यक्त सनातन देवता हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उन्हींका है।

मुनिवरो ! अब मैं इस समय वर्तमान महातेजस्वी वैवस्वत मनुकी सृष्टिका वर्णन करूँगा। महर्षि कश्यप-से उनकी भार्या दक्षकन्या अदितिके गर्भसे विवस्वान् (सूर्य) का जन्म हुआ। विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा विवस्वान्की पत्नी हुई। उसके गर्भसे सूर्यने तीन संतानें उत्पन्न कीं, जिनमें एक कन्या और दो पुत्र थे। सबसे पहले प्रजापति श्राद्धदेव, जिन्हें वैवस्वत मनु कहते हैं, उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् यम और यमुना—ये जुड़वीं संतानें हुईं। भगवान् सूर्यके तेजस्वी स्वरूपको देखकर संज्ञा उसे सह न सकी। उसने अपने ही समान वर्णवाली अपनी छाया प्रकट की। वह छाया-संज्ञा अथवा सवर्णा नामसे विख्यात हुई। उसको भी संज्ञा ही समझकर सूर्यने उसके गर्भसे अपने ही समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। वह अपने बड़े भाई मनुके ही समान था, इसलिये सावर्ण मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। छाया-संज्ञासे जो दूसरा पुत्र हुआ, उसकी शनैश्चरके नामसे प्रसिद्धि हुई। यम- धर्मराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए और उन्होंने समस्त प्रजाको धर्मसे संतुष्ट किया। इस शुभकर्मके कारण उन्हें पितरोंका आधिपत्य और लोकपालका पद प्राप्त हुआ। सावर्ण मनु प्रजापति हुए। आनेवाले सावर्णिक मन्वन्तरके वे ही स्वामी होंगे। वे आज भी मेरुगिरिके शिखरपर नित्य तपस्या करते हैं। उनके भाई शनैश्चरने ग्रहकी पदवी पायी।

वैवस्वत मनुके वंशजोंका वर्णन

लोमहर्षणजी कहते हैं—वैवस्वत मनुके नौ पुत्र उन्हींके समान हुए; उनके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, अरिष्ट, करूष तथा पृषध्र। एक समयकी बात है, प्रजापति मनु पुत्रकी इच्छासे मैत्रावरुण-

याग कर रहे थे । उस समयतक उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ था । उस यज्ञमें मनुने मित्रावरुणके अंशकी आहुति डाली । उसमेंसे दिव्य वस्त्र एवं दिव्य आभूषणोंसे विभूषित दिव्य रूपवाली इला नामकी कन्या उत्पन्न हुई । महाराज मनुने



उसे 'इला' कहकर सम्बोधित किया और कहा – 'कल्याणी ! तुम मेरे पास आओ ।' तब इलाने पुत्रकी इच्छा रखनेवाले प्रजापति मनुसे यह धर्मयुक्त वचन कहा—'महाराज ! मैं मित्रावरुणके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ, अतः पहले उन्हींके पास जाऊँगी । आप मेरे धर्ममें बाधा न डालिये ।' यों कहकर वह सुन्दरी कन्या मित्रावरुणके समीप गयी और हाथ जोड़कर बोली—'भगवन् ! मैं आप दोनोंके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ । आपलोगोंकी किस आज्ञाका पालन करूँ ? मनुने मुझे अपने पास बुलाया है ।'

मित्रावरुण बोले—सुन्दरी ! तुम्हारे इस धर्म, विनय, इन्द्रियसंयम और सत्यसे हमलोग प्रसन्न हैं । महाभागे ! तुम हम दोनोंकी कन्याके रूपमें प्रसिद्ध होगी तथा तुम्हीं मनुके वंशका विस्तार करनेवाला पुत्र हो जाओगी । उस समय तीनों लोकोंमें सुद्युम्नके नामसे तुम्हारी ख्याति होगी ।

यह सुनकर वह पिताके समीपसे लौट पड़ी । मार्गमें उसकी बुधसे भेंट हो गयी । बुधने उसे मैथुनके लिये आमन्त्रित किया । उनके वीर्यसे उसने पुरूरवाको जन्म दिया । तत्पश्चात् वह सुद्युम्नके रूपमें परिणत हो गयी । सुद्युम्नके तीन बड़े धर्मात्मा पुत्र हुए—उत्कल, गय और विनताश्व । उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई । विनताश्वको पश्चिम दिशाका राज्य मिला तथा गय पूर्वदिशाके राजा हुए । उनकी राजधानी गयाके नामसे प्रसिद्ध हुई । जब मनु भगवान् सूर्यके तेजमें प्रवेश करने लगे, तब उन्होंने अपने राज्यको दस भागोंमें बाँट दिया । सुद्युम्नके बाद उनके पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे, इसलिये उन्हें मध्यदेशका राज्य मिला । सुद्युम्न कन्याके रूपमें उत्पन्न हुए थे, इसलिये उन्हें राज्यका भाग नहीं मिला । फिर वसिष्ठजीके कहनेसे प्रतिष्ठानपुरमें उनकी स्थिति हुई । प्रतिष्ठानपुरका राज्य पाकर महायशस्वी सुद्युम्नने उसे पुरूरवाको दे दिया । मनुकुमार सुद्युम्न क्रमशः स्त्री और पुरुष दोनोंके लक्षणोंसे युक्त हुए, इसलिये इला और सुद्युम्न दोनों नामोंसे उनकी प्रसिद्धि हुई । नरिष्यन्तके पुत्र शक हुए । नाभागके राजा अम्बरीष हुए । धृष्टसे धार्ष्टक नामवाले क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई, जो युद्धमें उन्मत्त होकर लड़ते थे । करूषके पुत्र कारूष नामसे विख्यात हुए । वे भी रणोन्मत्त थे । प्रांशुके एक ही पुत्र थे, जो प्रजापतिके नामसे प्रकट हुए । शर्यातिके दो जुड़वीं संतानें हुईं । उनमें अनर्त नामसे प्रसिद्ध पुत्र तथा सुकन्या नामवाली कन्या थी । यही सुकन्या महर्षि च्यवनकी पत्नी हुई । अनर्तके पुत्रका नाम रैव था । उन्हें अनर्त देशका राज्य मिला । उनकी राजधानी कुशस्थली (द्वारका) हुई । रैवके पुत्र रैवत हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे । उनका दूसरा नाम ककुद्मी भी था । अपने पिताके ज्येष्ठ पुत्र होनेके कारण उन्हें कुशस्थलीका राज्य मिला । एक बार वे अपनी कन्याको साथ ले ब्रह्माजीके पास गये और वहाँ गन्धर्वोंके गीत सुनते हुए दो घड़ी ठहरे रहे । इतने ही समयमें मानवलोकमें अनेक युग बीत गये । रैवत जब वहाँसे लौटे, तब अपनी राजधानी कुशस्थलीमें आये; परन्तु अब वहाँ यादवोंका अधिकार हो गया था । यदुवंशियोंने उसका नाम बदलकर द्वारवती रख दिया था । उसमें बहुत-से द्वार बने थे । वह पुरी बड़ी मनोहर दिखायी देती थी । भोज, वृष्णि और अन्धक वंशके वसुदेव आदि यादव उसकी रक्षा करते थे । रैवतने वहाँका सब वृत्तान्त ठीक-ठीक जानकर अपनी रेवती नामकी कन्या बलदेवजीको ब्याह दी और स्वयं मेरुपर्वतके शिखरपर जाकर वे तपस्यामें लग गये । धर्मात्मा बलरामजी रेवतीके साथ सुखपूर्वक विहार करने लगे ।



पृषध्रने अपने गुरुकी गायका वध किया था, इसलिये वे शापसे शूद्र हो गये। इस प्रकार ये वैवस्वत मनुके नौ पुत्र बताये गये हैं। मनु जब छींक रहे थे, उस समय इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति हुई थी। इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षि सबसे बड़े थे। वे अपने पराक्रमके कारण अयोध्य नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्हें अयोध्याका राज्य प्राप्त हुआ। उनके शकुनि आदि पाँच सौ पुत्र हुए, जो अत्यन्त बलवान् और उत्तर-भारतके रक्षक थे। उनमेंसे वशाति आदि अट्ठावन राजपुत्र दक्षिण दिशाके पालक हुए। विकुक्षिका दूसरा नाम शशाद था। इक्ष्वाकुके मरनेपर वे ही राजा हुए। शशादके पुत्र ककुत्स्थ, ककुत्स्थके अनेना, अनेनाके पृथु, पृथुके विष्टराश्व, विष्टराश्वके आर्द्र, आर्द्रके युवनाश्व और युवनाश्वके पुत्र श्रावस्त हुए। उन्होंने ही श्रावस्तीपुरी बसायी थी। श्रावस्तके पुत्र बृहदश्व और उनके पुत्र कुवलाश्व हुए। ये बड़े धर्मात्मा राजा थे। इन्होंने धुन्धु नामक दैत्यका वध करनेके कारण धुन्धुमार नामसे प्रसिद्धि प्राप्त की।

मुनि बोले—महाप्राज्ञ सूतजी! हम धुन्धु-वधका वृत्तान्त ठीक-ठीक सुनना चाहते हैं, जिससे कुवलाश्वका नाम धुन्धुमार हो गया।

लोमहर्षणजीने कहा—कुवलाश्वके सौ पुत्र थे। वे सभी अच्छे धनुर्धर, विद्याओंमें प्रवीण, बलवान् और दुर्धर्ष थे। सबकी धर्ममें निष्ठा थी। सभी यज्ञकर्ता तथा प्रचुर दक्षिणा देनेवाले थे। राजा बृहदश्वने कुवलाश्वको राजपदपर अभिषिक्त किया और स्वयं वनमें तपस्या करनेके लिये जाने लगे। उन्हें जाते देख ब्रह्मर्षि उत्तङ्कने रोका और इस प्रकार कहा—'राजन्! आपका कर्तव्य है प्रजाकी रक्षा, अतः वही कीजिये। मेरे आश्रमके समीप मधु नामक राक्षसका पुत्र महासुर धुन्धु रहता है। वह सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेके लिये कठोर तपस्या करता और बालूके भीतर सोता है। वर्षभरमें एक बार वह बड़े जोरसे साँस छोड़ता है। उस समय वहाँकी पृथ्वी डोलने लगती है। उसके श्वासकी हवासे बड़े जोरकी धूल उड़ती है और सूर्यका मार्ग ढँक लेती है। लगातार सात दिनोंतक भूकम्प होता रहता है। इसलिये अब मैं अपने उस आश्रममें रह नहीं सकता। आप समस्त लोकोंके हितकी इच्छासे उस विशालकाय दैत्यको मार डालिये। उसके मारे जानेपर सब सुखी हो जायँगे।'



बृहदश्व बोले—भगवन्! मैंने तो अब अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग कर दिया। यह मेरा पुत्र है। यही धुन्धु दैत्यका वध करेगा।

राजर्षि बृहदश्व अपने पुत्र कुवलाश्वको धुन्धुके वधकी आज्ञा दे स्वयं पर्वतके समीप चले गये। कुवलाश्व अपने सब पुत्रोंको साथ ले धुन्धुको मारने चले। साथमें महर्षि उत्तङ्क भी थे। उत्तङ्कके अनुरोधसे सम्पूर्ण लोकोंका हित

करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णुने कुवलाश्वके शरीरमें अपना तेज प्रविष्ट किया । दुर्धर्ष वीर कुवलाश्व जब युद्धके लिये प्रस्थित हुए, तब देवताओंका यह महान् शब्द गूँज उठा—'ये श्रीमान् नरेश अवध्य हैं । इनके हाथसे आज धुन्धु अवश्य



मारा जायगा ।' पुत्रोंके साथ वहाँ जाकर वीरवर कुवलाश्वने समुद्रको खुदवाया । खोदनेवाले राजकुमारोंने बालूके भीतर धुन्धुका पता लगा लिया । वह पश्चिम दिशाको घेरकर पड़ा था । वह अपने मुखकी आगसे सम्पूर्ण लोकोंका संहार-सा करता हुआ जलका स्रोत बहाने लगा । जैसे चन्द्रमाके उदयकालमें समुद्रमें ज्वार आता है, उसकी उत्ताल तरङ्गें बढ़ने लगती हैं, उसी प्रकार वहाँ जलका वेग बढ़ने लगा । कुवलाश्वके पुत्रोंमेंसे तीनको छोड़कर शेष सभी धुन्धुकी मुखाग्निसे जलकर भस्म हो गये । तदनन्तर महातेजस्वी राजा कुवलाश्वने उस महाबली धुन्धुपर आक्रमण किया । वे योगी थे; इसलिये उन्होंने योगशक्तिके द्वारा उसके प्रवाहित होनेवाले जलको पी लिया और आगको भी बुझा दिया। फिर बलपूर्वक उस महाकाय जलचर राक्षसको मारकर महर्षि उत्तङ्कका दर्शन किया । उत्तङ्कने उन महात्मा राजाको वर दिया कि 'तुम्हारा धन अक्षय होगा और शत्रु तुम्हें पराजित न कर सकेंगे । धर्ममें सदा तुम्हारा प्रेम बना रहेगा तथा अन्तमें तुम्हें स्वर्गलोकका अक्षय निवास प्राप्त



होगा । युद्धमें तुम्हारे जो पुत्र राक्षसद्वारा मारे गये हैं, उन्हें भी स्वर्गमें अक्षयलोक प्राप्त होंगे ।'

धुन्धुमारके जो तीन पुत्र युद्धसे जीवित बच गये थे, उनमें दृढाश्व सबसे ज्येष्ठ थे और चन्द्राश्व तथा कपिलाश्व उनके छोटे भाई थे । दृढाश्वके पुत्रका नाम हर्यश्व था । हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सदा क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहता था । निकुम्भका युद्धविशारद पुत्र संहताश्व था । संहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृशाश्व और कृशाश्व । उसके हेमवती नामकी एक कन्या भी हुई, जो आगे चलकर दृषद्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुई । उसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ, जो तीनों लोकोंमें विख्यात था । प्रसेनजित्ने गौरी नामवाली पतिव्रता स्त्रीसे ब्याह किया था, जो बादमें पतिके शापसे बाहुदा नामकी नदी हो गयी । प्रसेनजित्के पुत्र राजा युवनाश्व हुए । युवनाश्वके पुत्र मान्धाता हुए । वे त्रिभुवनविजयी थे । शशबिन्दुकी सुशीला कन्या चैत्ररथी, जिसका दूसरा नाम बिन्दुमती भी था, मान्धाताकी पत्नी हुई । इस भूतलपर उसके समान रूपवती स्त्री दूसरी नहीं थी । बिन्दुमती बड़ी पतिव्रता थी । वह दस हजार भाइयोंकी ज्येष्ठ भगिनी थी । मान्धाताने उसके गर्भसे धर्मज्ञ पुरुकुत्स और राजा मुचुकुन्द—ये दो पुत्र उत्पन्न किये । पुरुकुत्सके उनकी स्त्री नर्मदाके गर्भसे राजा त्रसदस्यु उत्पन्न हुए, उनसे सम्भूतका जन्म हुआ । सम्भूतके पुत्र शत्रुदमन त्रिधन्वा

हुए। राजा त्रिधन्वासे विद्वान् त्रय्यारुण हुए। उनका पुत्र महाबली सत्यव्रत हुआ। उसकी बुद्धि बड़ी खोटी थी। उसने वैवाहिक मन्त्रोंमें विघ्न डालकर दूसरेकी पत्नीका अपहरण कर लिया। बालस्वभाव, कामासक्ति, मोह, साहस और चञ्चलतावश उसने ऐसा कुकर्म किया था। जिसका अपहरण हुआ था, वह उसके किसी पुरवासीकी ही कन्या थी। इस अधर्मरूपी शङ्कु (काँटे) के कारण कुपित होकर त्रय्यारुणने अपने उस पुत्रको त्याग दिया। उस समय उसने पूछा—'पिताजी! आपके त्याग देनेपर मैं कहाँ जाऊँ?' पिताने कहा—'ओ कुलकलङ्क! जा, चाण्डालोंके साथ रह। मुझे तेरे-जैसे पुत्रकी आवश्यकता नहीं है।' यह सुनकर वह पिताके कथनानुसार नगरसे बाहर निकल गया। उस समय महर्षि वसिष्ठने उसे मना नहीं किया। वह सत्यव्रत चाण्डालके घरके



पास रहने लगा। उसके पिता भी वनमें चले गये। तदनन्तर उसी अधर्मके कारण इन्द्रने उस राज्यमें वर्षा बंद कर दी। महातपस्वी विश्वामित्र उसी राज्यमें अपनी पत्नीको रखकर स्वयं समुद्रके निकट भारी तपस्या कर रहे थे। उनकी पत्नीने अकालग्रस्त हो अपने मझले औरस पुत्रके गलेमें रस्सी डाल दी और शेष परिवारके भरण-पोषणके लिये सौ गायें लेकर उसे बेच दिया। राजकुमार सत्यव्रतने देखा कि विक्रयके लिये इसके गलेमें रस्सी बँधी हुई है; तब उस धर्मात्माने दया



करके महर्षि विश्वामित्रके उस पुत्रको छुड़ा लिया और स्वयं ही उसका भरण-पोषण किया। ऐसा करनेमें उसका उद्देश्य था महर्षि विश्वामित्रको सन्तुष्ट करके उनकी कृपा प्राप्त करना। महर्षिका वह पुत्र गलेमें बन्धन पड़नेके कारण महातपस्वी गालवके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

राजा सगरका चरित्र तथा इक्ष्वाकुवंशके मुख्य-मुख्य राजाओंका परिचय

लोमहर्षणजी कहते हैं—राजकुमार सत्यव्रत भक्ति, दया और प्रतिज्ञावश विनयपूर्वक विश्वामित्रजीकी स्त्रीका पालन करने लगा। इससे मुनि बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने सत्यव्रतसे इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा। राजकुमार बोला—'मैं इस शरीरके साथ ही स्वर्गलोकमें चला जाऊँ।' जब अनावृष्टिका भय दूर हो गया, तब विश्वामित्रने उसे पिताके राज्यपर अभिषिक्त करके उसके द्वारा यज्ञ कराया। वे महातपस्वी थे, उन्होंने देवताओं तथा वसिष्ठके देखते-देखते सत्यव्रतको शरीरसहित स्वर्गलोकमें भेज दिया! उसकी पत्नीका नाम सत्यरथा था। वह कैकयकुलकी कन्या थी। उसने



हरिश्चन्द्र नामक निष्पाप पुत्रको जन्म दिया । राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करके वे सम्राट् कहलाये । हरिश्चन्द्रके पुत्रका नाम रोहित था । रोहितके हरित और हरितके पुत्र चञ्चु हुए । चञ्चुके पुत्रका नाम विजय था । वे सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय प्राप्त करनेके कारण विजय कहलाये । विजयके पुत्र राजा रुरुक हुए, जो धर्म और अर्थके ज्ञाता थे । रुरुकके वृक, वृकके बाहु और बाहुके सगर हुए । वे गर अर्थात् विषके साथ प्रकट हुए थे, इसलिये उनका नाम सगर हुआ । उन्होंने भृगुवंशी और्व मुनिसे आग्नेय अस्त्र प्राप्तकर तालजङ्घ और हैहय नामक क्षत्रियोंको युद्धमें हराया और समूची पृथ्वीपर विजय प्राप्त की । फिर शक, पह्लव तथा पारदोंके धर्मका निराकरण किया ।

मुनियोंने पूछा—सगरकी उत्पत्ति गरके साथ कैसे हुई ? उन्होंने क्रोधमें आकर शक आदि महातेजस्वी क्षत्रियोंके कुलोचित धर्मोंका निराकरण क्यों किया ? यह सब विस्तारपूर्वक सुनाइये ।

लोमहर्षणजीने कहा—राजा बाहु व्यसनी थे, अतः पहले हैहय नामक क्षत्रियोंने तालजङ्घों और शकोंकी सहायतासे उनका राज्य छीन लिया । यवन, पारद, काम्बोज तथा पह्लव नामके गणोंने भी हैहयोंके लिये पराक्रम दिखाया । राज्य छिन जानेपर राजा बाहु दुखी हो पत्नीके साथ वनमें चले गये । वहीं उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये । बाहुकी पत्नी यादवी गर्भवती थीं । वे भी राजाका सहगमन करनेको प्रस्तुत हो गयीं । उन्हें उनकी सौतने पहलेसे ही जहर दे रक्खा था । उन्होंने वनमें चिता बनायी और उसपर आरूढ़ हो पतिके साथ भस्म हो जानेका विचार किया । भृगुवंशी और्व मुनिको उनकी दशापर बड़ी दया आयी । उन्होंने रानीको चितामें जलनेसे रोक दिया । उन्हींके आश्रममें वह गर्भ जहर-



के साथ ही प्रकट हुआ । वही महाराज सगर हुए । और्वने बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये, वेद-शास्त्र पढ़ाये तथा आग्नेय अस्त्र भी प्रदान किया, जो देवताओंके लिये भी दुःसह है । उसीसे सगरने हैहयवंशी क्षत्रियोंका विनाश किया और लोकमें बड़ी भारी कीर्ति पायी । तदनन्तर उन्होंने शक, यवन, काम्बोज, पारद तथा पह्लव-गणोंका सर्वनाश करनेके लिये उद्योग किया । वीरवर महात्मा सगरकी मार पड़नेपर वे सभी महर्षि वसिष्ठकी शरणमें गये और उनके चरणोंपर गिर पड़े । तब महातेजस्वी वसिष्ठने कुछ शर्तके साथ उन्हें अभयदान दिया और राजा सगरको रोका । सगरने अपनी प्रतिज्ञा तथा गुरुके वचनका विचार करके केवल उनके धर्मका निराकरण किया और उनके वेष बदल दिये । शकोंके आधे मस्तकको मूँड़कर विदा कर दिया । यवनों और काम्बोजोंका सारा सिर मुँड़ा दिया । पारदोंके सारे केश उड़ा दिये

धर्मविजयी राजा सगरने इस पृथ्वीको जीतकर अश्वमेध-यज्ञकी दीक्षा ली और अश्वको देशमें विचरनेके लिये छोड़ा। वह अश्व जब पूर्व-दक्षिण समुद्रके तटपर विचर रहा था, उस समय किसीने उसको चुरा लिया और पृथ्वीके भीतर छिपा दिया। राजाने अपने पुत्रोंसे उस प्रदेशको खुदवाया। महासागरकी खुदाई होते समय उन्होंने वहाँ आदिपुरुष भगवान् विष्णुको जो हरि, कृष्ण और प्रजापति नामसे भी प्रसिद्ध हैं, महर्षि कपिलके रूपमें शयन करते देखा। जागनेपर उनके नेत्रोंके तेजसे वे सभी जलकर भस्म हो गये। केवल चार ही



बचे, जिनके नाम हैं—बर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और पञ्चनद। ये ही राजाके वंश चलानेवाले हुए। कपिलरूपधारी भगवान् नारायणने उन्हें वरदान दिया कि 'राजा इक्ष्वाकुका वंश अक्षय होगा और इसकी कीर्ति कभी मिट नहीं सकती।' भगवान्ने समुद्रको सगरका पुत्र बना दिया और अन्तमें उन्हें अक्षय स्वर्गवासके लिये भी आशीर्वाद दिया। उस समय समुद्रने अर्घ्य लेकर महाराज सगरका वन्दन किया। सगरका पुत्र होनेके कारण ही समुद्रका नाम सागर हुआ। उन्होंने अश्वमेध यज्ञके उस अश्वको पुनः समुद्रसे प्राप्त किया और उसके द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठान पूर्ण किये। हमने सुना है, राजा सगरके साठ हजार पुत्र थे।

मुनियोंने पूछा—साधुवर! सगरके साठ हजार पुत्र कैसे हुए? वे अत्यन्त बलवान् और वीर किस प्रकार हुए?

लोमहर्षणजीने कहा—सगरकी दो रानियाँ थीं, जो तपस्या करके अपने पाप दग्ध कर चुकी थीं। उनमें बड़ी रानी विदर्भनरेशकी कन्या थीं। उनका नाम केशिनी था। छोटी रानीका नाम महती था। वह अरिष्टनेमिकी पुत्री तथा परम धर्मपरायणा थी। इस पृथ्वीपर उसके रूपकी समता करनेवाली दूसरी कोई स्त्री नहीं थी। महर्षि और्वने उन दोनोंको इस प्रकार वरदान दिया—'एक रानी साठ हजार पुत्र प्राप्त करेगी और दूसरीको एक ही पुत्र होगा, किंतु वह वंश चलानेवाला होगा। इन दो वरोंमेंसे जिसकी जिसे इच्छा हो, वह वही ले ले।' तब उनमेंसे एकने साठ हजार पुत्रोंका वरदान ग्रहण किया और दूसरीने वंश चलानेवाले एक ही पुत्रको प्राप्त करना चाहा। मुनिने 'तथास्तु' कहकर वरदान दे दिया; फिर एक रानीके राजा पञ्चजन हुए और दूसरीने बीजसे भरी हुई एक तूँबी उत्पन्न की। उसके भीतर तिलके बराबर साठ हजार गर्भ थे। वे समयानुसार सुखपूर्वक बढ़ने लगे। राजाने उन सब गर्भोंको घीसे भरे हुए घड़ोंमें रखवा दिया और उनका पोषण करनेके लिये प्रत्येकके पीछे एक-एक धाय नियुक्त कर दी। तत्पश्चात् क्रमशः दस महीनोंमें सगरकी प्रसन्नता बढ़ानेवाले वे सभी कुमार उठ खड़े हुए। पञ्चजन ही राजा बनाये गये। पञ्चजनके पुत्र अंशुमान् हुए, जो बड़े पराक्रमी थे। उनके पुत्र दिलीप हुए, जो खट्वाङ्गके नामसे भी प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने स्वर्गसे यहाँ आकर दो घड़ीके ही जीवनमें अपनी बुद्धि तथा सत्यके प्रभावसे परमार्थ-साधनके द्वारा तीनों लोक जीत लिये। दिलीपके पुत्र महाराज भगीरथ हुए, जिन्होंने नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाको स्वर्गसे पृथ्वीपर उतारकर समुद्रतक पहुँचाया और उन्हें अपनी पुत्री बना लिया। भगीरथकी पुत्री होनेके कारण ही गङ्गाको भागीरथी कहते हैं। भगीरथके पुत्र राजा श्रुत हुए। श्रुतके पुत्र नाभाग हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। नाभागके पुत्र अम्बरीष हुए, जो सिन्धुद्वीपके पिता थे। सिन्धुद्वीपके पुत्र अयुताजित् हुए और अयुताजित्से महायशस्वी ऋतुपर्णकी उत्पत्ति हुई, जो द्यूतविद्याके रहस्यको जानते थे। राजा ऋतुपर्ण महाराज नलके सखा तथा बड़े बलवान् थे। ऋतुपर्णके पुत्र महायशस्वी आर्तुपर्णि हुए। उनके पुत्र

सुदास हुए, जो इन्द्रके मित्र थे। सुदासके पुत्रको सौदास बताया गया है; वे ही कल्माषपादके नामसे विख्यात हुए तथा राजा मित्रसह भी उन्हींका नाम था। कल्माषपादके पुत्र सर्वकर्मा हुए, सर्वकर्माके पुत्र अनरण्य थे। अनरण्यके दो पुत्र हुए—अनमित्र और रघु। अनमित्रके पुत्र राजा दुलिदुह थे। उनके पुत्रका नाम दिलीप हुआ, जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके प्रपितामह थे। दिलीपके पुत्र महाबाहु रघु हुए, जो अयोध्याके महाबली सम्राट् थे। रघुके अज और अजके पुत्र दशरथ हुए। दशरथसे महायशस्वी धर्मात्मा श्रीरामका प्रादुर्भाव हुआ। श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशके नामसे विख्यात हुए। कुशसे अतिथिका जन्म हुआ, जो बड़े यशस्वी और धर्मात्मा थे। अतिथिके पुत्र महापराक्रमी निषध थे। निषधके नल और नलके नभ हुए। नभके पुण्डरीक और पुण्डरीकके क्षेमधन्वा हुए। क्षेमधन्वाके पुत्र महाप्रतापी देवानीक थे। देवानीकसे अहीनगु, अहीनगुसे सुधन्वा, सुधन्वासे राजा शल, शलसे धर्मात्मा उक्थ, उक्थसे वज्रनाभ और वज्रनाभसे नलका जन्म हुआ। मुनिवरो! पुराणमें दो ही नल प्रसिद्ध हैं—एक तो चन्द्रवंशीय वीरसेनके पुत्र थे और दूसरे इक्ष्वाकु-वंशके धुरंधर वीर थे। इक्ष्वाकु-वंशके मुख्य-मुख्य पुरुषोंके नाम बताये गये। ये सूर्यवंशके अत्यन्त तेजस्वी राजा थे। अदितिनन्दन सूर्यकी तथा प्रजाओंके पोषक श्राद्धदेव मनुकी इस सृष्टि-परम्पराका पाठ करनेवाला मनुष्य सन्तानवान् होता और सूर्यका सायुज्य प्राप्त करता है।

चन्द्रवंशके अन्तर्गत जह्नु, कुशिक तथा भृगुवंशका संक्षिप्त वर्णन

लोमहर्षणजी कहते हैं—पूर्वकालमें जब ब्रह्माजी सृष्टिका विस्तार करना चाहते थे, उस समय उनके मनसे महर्षि अत्रिका प्रादुर्भाव हुआ, जो चन्द्रमाके पिता थे। सुननेमें आया है कि अत्रिने तीन हजार दिव्य वर्षोंतक अनुत्तर नामकी तपस्या की थी, उसमें उनका वीर्य ऊर्ध्वगामी हो गया था। वही चन्द्रमाके रूपमें प्रकट हुआ। महर्षिका वह तेज ऊर्ध्वगामी होनेपर उनके नेत्रोंसे जलके रूपमें गिरा और दसों दिशाओंको प्रकाशित करने लगा। चन्द्रमाको गिरा देख लोकपितामह ब्रह्माजीने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे उसे रथपर बिठाया। अत्रिके पुत्र महात्मा सोमके गिरनेपर ब्रह्माजीके पुत्र तथा अन्य महर्षि उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति करनेपर उन्होंने अपना तेज समस्त लोकोंकी पुष्टिके लिये सब ओर फैला दिया। चन्द्रमाने उस श्रेष्ठ रथपर बैठकर समुद्र-पर्यन्त समूची पृथ्वीकी इक्कीस बार परिक्रमा की। उस समय उनका जो तेज चूकर पृथ्वीपर गिरा, उससे सब प्रकारके अन्न आदि उत्पन्न हुए, जिनसे यह जगत् जीवन धारण करता है। इस प्रकार महर्षियोंके स्तवनसे तेजको पाकर महाभाग चन्द्रमाने बहुत वर्षोंतक तपस्या की; उससे संतुष्ट होकर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उन्हें बीज, ओषधि, जल तथा ब्राह्मणोंका राजा बना दिया। मृदुल स्वभाववालोंमें सबसे श्रेष्ठ सोमने वह विशाल राज्य पाकर राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया, जिसमें लाखोंकी दक्षिणा बाँटी गयी। उस यज्ञमें सिनी, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु,



कीर्ति, धृति तथा लक्ष्मी—इन नौ देवियोंने चन्द्रमाका सेवन किया। यज्ञके अन्तमें अवभृथ-स्नानके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं तथा ऋषियोंने उनका पूजन किया। राजाधिराज सोम दसों दिशाओंको प्रकाशित करने लगे। महर्षियोंद्वारा सत्कृत वह दुर्लभ ऐश्वर्य पाकर चन्द्रमाकी बुद्धि भ्रान्त हो गयी। उनमें विनयका भाव दूर हो गया और अनीति आ गयी; फिर तो ऐश्वर्यके मदसे मोहित होकर उन्होंने बृहस्पतिजीकी पत्नी ताराका

अपहरण कर लिया। देवताओं और देवर्षियोंके बारंबार प्रार्थना करनेपर भी उन्होंने बृहस्पतिजीको तारा नहीं लौटायी। तब ब्रह्माजीने स्वयं ही बीचमें पड़कर ताराको वापस कराया। उस समय वह गर्भिणी थी, यह देख बृहस्पतिजीने कुपित होकर कहा—'मेरे क्षेत्रमें तुम्हें दूसरेका गर्भ नहीं धारण करना चाहिये।' तब उसने तृणके समूहपर उस गर्भको त्याग दिया। पैदा होते ही उसने अपने तेजसे देवताओंके विग्रहको लज्जित कर दिया। उस समय ब्रह्माजीने तारासे पूछा—'ठीक-ठीक बताओ, यह किसका पुत्र है?' तब वह हाथ जोड़कर बोली—'चन्द्रमाका है।' इतना सुनते ही राजा सोमने उस बालकको गोदमें उठा लिया और उसका मस्तक सूँघकर बुध नाम रक्खा। वह बालक बड़ा बुद्धिमान् था। बुध आकाशमें चन्द्रमासे प्रतिकूल दिशामें उदित होते हैं।

मुनिवरो! बुधके पुत्र पुरूरवा हुए, जो बड़े विद्वान्, तेजस्वी, दानशील, यज्ञकर्ता तथा अधिक दक्षिणा देनेवाले थे। वे ब्रह्मवादी, पराक्रमी तथा शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष थे। निरन्तर अग्निहोत्र करते और यज्ञोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहते थे। सत्य बोलते और बुद्धिको पवित्र रखते थे। तीनों लोकोंमें उनके समान यशस्वी दूसरा कोई नहीं था। वे ब्रह्मवादी, शान्त, धर्मज्ञ तथा सत्यवादी थे; इसीलिये यशस्विनी उर्वशीने मान छोड़कर उनका वरण किया। राजा पुरूरवा उर्वशीके साथ पवित्र स्थानोंमें उनसठ वर्षोंतक विहार करते रहे। उन्होंने महर्षियोंद्वारा प्रशंसित प्रयागमें राज्य किया। उनका ऐसा ही प्रभाव था। पुरूरवाके सात पुत्र हुए, जो गन्धर्वलोकमें प्रसिद्ध और देवकुमारोंके समान सुन्दर थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—आयु, अमावसु, विश्वायु, धर्मात्मा श्रुतायु, दृढायु, वनायु तथा बह्वायु। ये सब उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। अमावसुके पुत्र राजा भीम हुए। भीमके पुत्र काञ्चनप्रभ और उनके पुत्र महाबली सुहोत्र हुए। सुहोत्रके पुत्रका नाम जह्नु था; जो केशिनीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। उन्होंने सर्पमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान किया। एक बार गङ्गा उन्हें पति बनानेके लोभसे उनके पास गयीं, किंतु उन्होंने अनिच्छा प्रकट कर दी। तब गङ्गाने उनकी यज्ञशाला बहा दी। यह देख जह्नुने क्रोधमें भरकर कहा—'गङ्गे! मैं तेरा जल पीकर तेरे इस प्रयत्नको अभी व्यर्थ किये देता हूँ। तू अपने इस घमंडका फल शीघ्र पा ले।' यों कहकर उन्होंने गङ्गाको पी लिया। यह देख महर्षियोंने बड़ी अनुनय करके गङ्गाको जह्नुकी पुत्रीके रूपमें प्राप्त किया, तबसे वे जाह्नवी कहलाने लगीं। तत्पश्चात् जह्नुने युवनाश्वकी पुत्री कावेरीके साथ विवाह किया। युवनाश्वके शापवश गङ्गा अपने आधे स्वरूपसे सरिताओंमें श्रेष्ठ कावेरीमें मिल गयी थीं। जह्नुने कावेरीके गर्भसे सुनद्य नामक धार्मिक पुत्रको जन्म दिया। सुनद्यके पुत्र अजक, अजकके बलाकाश्व और बलाकाश्वके पुत्र कुश हुए। कुशके देवताओंके समान तेजस्वी चार पुत्र हुए—कुशिक, कुशनाभ, कुशाम्ब और मूर्तिमान्। राजा कुशिक वनमें रहकर ग्वालोंके साथ पले थे। उन्होंने इन्द्रके समान पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छासे तप किया। एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर इन्द्र भयभीत होकर उनके पास आये। उन्होंने स्वयं अपनेको ही उनके पुत्ररूपमें प्रकट किया। उस समय वे राजा गाधिके नामसे प्रसिद्ध हुए। कुशिककी पत्नी पौरा थी। उसीके गर्भसे गाधिका जन्म हुआ था। गाधिके एक परम सौभाग्यशालिनी कन्या हुई, जिसका नाम सत्यवती था। गाधिने उस कन्याका विवाह शुक्राचार्यके पुत्र ऋचीकके साथ किया था। ऋचीक अपनी पत्नीसे बहुत प्रसन्न रहते थे। उन्होंने अपने तथा राजा गाधिके पुत्र होनेके लिये पृथक्-पृथक् चरु तैयार किये और अपनी पत्नीको बुलाकर कहा—'शुभे! इस चरुका उपयोग तुम करना और इसका उपयोग अपनी मातासे कराना। तुम्हारी



माताको जो पुत्र होगा, वह तेजस्वी क्षत्रिय होगा। लोकमें दूसरे क्षत्रिय उसे जीत नहीं सकेंगे। वह बड़े-बड़े

क्षत्रियोंका संहार करनेवाला होगा तथा तुम्हारे लिये जो चरु है, वह तुम्हारे पुत्रको धीर, तपस्वी, शान्तिपरायण एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण बनायेगा।' अपनी पत्नीसे यों कहकर भृगुनन्दन ऋचीक घने जङ्गलमें चले गये और वहाँ प्रतिदिन तपस्यामें संलग्न रहने लगे। उस समय राजा गाधि अपनी स्त्रीके साथ तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें घूमते हुए ऋचीक मुनिके आश्रमपर अपनी पुत्रीसे मिलनेके लिये आये थे। सत्यवतीने दोनों चरु ऋषिसे ले लिये थे। उसने उन्हें हाथमें लेकर अपनी माताको निवेदन किया। उसकी माताने दैववश अपना चरु पुत्रीको दे दिया और उसका चरु स्वयं ग्रहण कर लिया।

तदनन्तर सत्यवतीने समस्त क्षत्रियोंका विनाश करनेवाला गर्भ धारण किया। उसका शरीर अत्यन्त उद्दीप्त हो रहा था। देखनेमें वह बड़ी भयङ्कर जान पड़ती थी। ऋचीकने उसे देखकर योगके द्वारा सब कुछ जान लिया और उससे कहा—'भद्रे! तुम्हारी माताने चरु बदलकर तुम्हें ठग लिया। तुम्हारा पुत्र कठोर कर्म करनेवाला और अत्यन्त दारुण होगा तथा तुम्हारा भाई ब्रह्मभूत तपस्वी होगा; क्योंकि मैंने तपस्यासे सर्वरूप ब्रह्मका भाव उसमें स्थापित किया था। तब सत्यवतीने अपने पतिको प्रसन्न करते हुए कहा—'मुने! मेरा पुत्र ऐसा न हो; आप-जैसे महर्षिसे ब्राह्मणाधमकी उत्पत्ति हो, यह मैं नहीं चाहती।' यह सुनकर मुनि बोले—'भद्रे! मेरा पुत्र ऐसा हो, यह संकल्प मैंने नहीं किया है; तथापि पिता और माताके कारण पुत्र कठोर कर्म करनेवाला हो सकता है।' उनके यों कहनेपर सत्यवती बोली—'मुने! आप चाहें तो नूतन लोकोंकी भी सृष्टि कर सकते हैं। फिर योग्य पुत्र उत्पन्न करना कौन बड़ी बात है। आप मुझे शान्ति-परायण कोमल स्वभाववाला पुत्र देनेकी कृपा करें। यदि चरुका प्रभाव अन्यथा न किया जा सके तो वैसे उग्र स्वभावका पौत्र भले ही हो जाय, पुत्र वैसा कदापि न हो।' तब मुनिने अपने तपोबलसे वैसा ही करनेका आश्वासन देते हुए सत्यवतीके प्रति प्रसन्नता प्रकट की और कहा—'सुन्दरि! पुत्र अथवा पौत्रमें मैं कोई अन्तर नहीं मानता। तुमने जो कहा है, वैसा ही होगा।' तत्पश्चात् सत्यवतीने भृगुवंशी जमदग्निको जन्म दिया, जो तपस्यापरायण, जितेन्द्रिय तथा सर्वत्र समभाव रखनेवाले थे। सत्यवती भी सत्यधर्ममें तत्पर रहनेवाली पुण्यात्मा स्त्री थी। वही कौशिकी नामसे प्रसिद्ध महानदी हुई। इक्ष्वाकु-वंशमें रेणु नामके एक राजा थे। उनकी कन्याका नाम रेणुका था। रेणुकाको कामली भी कहते हैं। तप और विद्यासे सम्पन्न जमदग्निने रेणुकाके गर्भसे अत्यन्त भयङ्कर परशुरामजीको प्रकट किया, जो समस्त विद्याओंमें पारङ्गत, धनुर्वेदमें प्रवीण, क्षत्रिय-कुलका संहार करनेवाले तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी थे। ऋचीकके सत्यवतीसे प्रथम तो ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ जमदग्नि हुए। मध्यम पुत्र शुनःशेप और कनिष्ठ पुत्र शुनःपुच्छ थे। कुशिकनन्दन गाधिने विश्वामित्रको पुत्ररूपमें प्राप्त किया, जो तपस्वी, विद्वान् और शान्त थे। वे ब्रह्मर्षिकी समानता पाकर वास्तवमें ब्रह्मर्षि हो गये। धर्मात्मा विश्वामित्रका दूसरा नाम विश्वरथ था। विश्वामित्रके देवरात आदि कई पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे। उनके नाम इस प्रकार बतलाये जाते हैं। देवरात, कात्यायन गोत्रके प्रवर्तक कति, हिरण्याक्ष, रेणु, रेणुक, सांकृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय, देवल, अष्टक, कच्छप और हारीत—ये सभी विश्वामित्र-के पुत्र थे। इन कौशिकवंशी महात्माओंके प्रसिद्ध गोत्र इस प्रकार हैं—पाणिनि, बभ्रु, ध्यानजप्य, पार्थिव, देवरात, शालङ्कायन, बाष्कल, लोहितायन, हारीत और अष्टकाद्याजन। इस वंशमें ब्राह्मण और क्षत्रियका सम्बन्ध विख्यात है। विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनःशेप सबसे बड़ा माना गया है; यद्यपि उसका जन्म भृगुकुलमें हुआ था, तथापि वह कौशिक गोत्र-वाला हो गया। हरिदश्वके यज्ञमें वह पशु बनाकर लाया गया था, किन्तु देवताओंने उसे विश्वामित्रको समर्पित कर दिया। देवताओंद्वारा प्रदत्त होनेके कारण वह देवरात नामसे विख्यात हुआ। देवरात आदि विश्वामित्रके अनेक पुत्र थे। विश्वामित्रकी पत्नी दृषद्वतीके गर्भसे अष्टकका जन्म हुआ था। अष्टकका पुत्र लौहि बताया गया है। इस प्रकार मैंने जह्नु-कुलका वर्णन किया। इसके बाद महात्मा आयुके वंशका वर्णन करूँगा।

आयु और नहुषके वंशका वर्णन, रजि एवं ययातिका चरित्र

लोमहर्षणजी कहते हैं—आयुके उनकी पत्नी स्वर्भानुकुमारी प्रभाके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी वीर और महारथी थे। सर्वप्रथम नहुषका जन्म हुआ। उनके बाद वृद्धशर्मा उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् क्रमशः रम्भ, रजि तथा अनेना हुए। ये तीनों लोकोंमें विख्यात थे। रजिने पाँच सौ पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी

राजेय क्षत्रियके नामसे विख्यात हुए । उनसे इन्द्र भी डरते थे । पूर्वकालमें देवताओं तथा असुरोंमें भयंकर युद्ध आरम्भ होनेपर दोनों पक्षोंके लोगोंने ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन् ! आप सब भूतोंके स्वामी हैं; बताइये, हमारे युद्धमें कौन विजयी होगा ? हम इस बातको ठीक-ठीक सुनना चाहते हैं ।'



ब्रह्माजीने कहा—राजा रजि हथियार हाथमें लेकर जिनके लिये युद्ध करेंगे, वे निःसन्देह तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं । जिस पक्षमें रजि हैं, उधर ही धृति है । जहाँ धृति है, वहीं लक्ष्मी है तथा जहाँ धृति और लक्ष्मी हैं, वहीं धर्म एवं विजय है ।

यह सुनकर देवता और दानव दोनोंका मन प्रसन्न हो गया । वे रजिके पास आकर बोले—'राजन् ! आप हमारी विजयके लिये श्रेष्ठ धनुष धारण कीजिये ।' तब रजिने स्वार्थ-को सामने रखकर अपने यशको प्रकाशमें लाते हुए उभय पक्षके लोगोंसे कहा—'देवताओ ! यदि मैं अपने पराक्रमसे समस्त दैत्योंको जीतकर धर्मतः इन्द्र बन सकूँ तो तुम्हारी ओरसे युद्ध करूँगा ।' देवताओंने इस शर्तको पहले ही प्रसन्नतापूर्वक मान लिया । वे बोले—'राजन् ! ऐसा ही करो । तुम्हारी मनःकामना पूर्ण हो ।' देवताओंकी यह बात सुनकर राजा रजिने असुरोंसे भी वही बात पूछी । तब अहंकारी दानवोंने स्वार्थको ही सोचकर उन्हें अभिमान-पूर्वक उत्तर दिया—'राजन् ! तुम इस युद्धमें चुपचाप खड़े रहो । हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद ही होंगे । इनके लिये हम विजय करनेको प्रस्तुत हैं ।' देवताओंने फिर कहा—'राजन् ! तुम दैत्यपक्षको जीतकर देवेन्द्र हो सकते हो ।' तब रजिने उन सब दानवोंका, जो देवराज इन्द्रके लिये अवध्य थे, संहार कर डाला और देवताओंकी नष्ट हुई सम्पत्तिको पुनः उनसे छीन लिया । उस समय देवताओंसहित इन्द्र महाराज रजिके पास आये और अपनेको उनका पुत्र घोषित करते हुए बोले—'तात ! आप निःसन्देह हम सब लोगोंके इन्द्र हैं, क्योंकि मैं इन्द्र आजसे आपका पुत्र कहलाऊँगा ।' इन्द्रकी



बात सुनकर उनकी मायासे वञ्चित हो महाराज रजिने 'तथास्तु' कह दिया । वे इन्द्रपर बहुत प्रसन्न थे ।

रम्भाके कोई पुत्र नहीं था । अब अनेनाके वंशका वर्णन करूँगा । अनेनाके पुत्र महायशस्वी राजा प्रतिक्षत्र हुए । प्रतिक्षत्रके पुत्र संजय, संजयके जय, जयके विजय, विजयके कृति, कृतिके हर्यश्व, हर्यश्वके प्रतापी सहदेव, सहदेवके धर्मात्मा नदीन, नदीनके जयत्सेन, जयत्सेनके संकृति तथा संकृतिके पुत्र महायशस्वी धर्मात्मा क्षत्रवृद्ध हुए । क्षत्रवृद्धका पुत्र सुनहोत्र था । उसके काश, शल और गृत्समद—ये तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए । गृत्समदके पुत्र

शुनक थे। शुनकसे शौनकका जन्म हुआ। शलके पुत्रका नाम आर्ष्टिषेण था। उनके काश्य हुए। काश्यके पुत्रका नाम काशिप हुआ। काशिपके दीर्घतपा, दीर्घतपाके धनु और धनुके पुत्र धन्वन्तरि हुए। वे काशीके महाराज और सब रोगोंका नाश करनेवाले थे। उन्होंने भरद्वाजसे आयुर्वेदका अध्ययन करके चिकित्साका कार्य किया और उसके आठ भाग करके शिष्योंको पढ़ाया। धन्वन्तरिके पुत्र केतुमान् हुए और केतुमान्के वीर पुत्र भीमरथके नामसे प्रसिद्ध हुए। भीमरथके पुत्र राजा दिवोदास हुए, जो काशीके सम्राट् और धर्मात्मा थे। दिवोदासके उनकी पत्नी दृषद्वतीके गर्भसे प्रतर्दन नामक पुत्र हुआ। प्रतर्दनके दो पुत्र थे—वत्स और भार्ग। वत्सके पुत्र अलर्क और अलर्कके संनति हुए। अलर्क बड़े ब्राह्मण-भक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। संनतिके पुत्र धर्मात्मा सुनीथ हुए। सुनीथके महायशस्वी क्षेम, क्षेमके केतुमान्, केतुमान्के सुकेतु, सुकेतुके धर्मकेतु, धर्मकेतुके महारथी सत्यकेतु, सत्यकेतुके राजा विभु, विभुके आनर्त, आनर्तके सुकुमार, सुकुमारके धर्मात्मा धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके राजा वेणुहोत्र और वेणुहोत्रके पुत्र राजा भार्ग हुए। प्रतर्दनके जो वत्स और भार्ग नामक दो पुत्र बतलाये गये हैं, उनमें वत्सके वत्सभूमि और भार्गके भार्गभूमि नामक पुत्र हुए थे। काश्यके कुलमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-जातिके हजारों पुत्र हुए। अब नहुषकी संतानोंका वर्णन सुनो।

नहुषके उनकी पत्नी पितृकन्या विरजाके गर्भसे पाँच महाबली पुत्र हुए, जो इन्द्रके समान तेजस्वी थे। उनके नाम ये हैं—यति, ययाति, संयाति, आयाति तथा पार्श्वक। उनमें यति ज्येष्ठ थे। उनके बाद ययाति उत्पन्न हुए थे। यतिने ककुत्स्थकी कन्या गौसे विवाह किया था। वे मोक्षधर्मका आश्रय ले ब्रह्मस्वरूप मुनि हो गये। उन पाँच भाइयोंमें ययातिने इस पृथ्वीको जीतकर शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी तथा असुर-कन्या शर्मिष्ठाको पत्नीरूपमें प्राप्त किये। देवयानीने यदु और तुर्वसुको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु तथा पूरु नामक पुत्र उत्पन्न किये। ययातिपर प्रसन्न हो इन्द्रने उन्हें अत्यन्त प्रकाशमान रथ प्रदान किया। उसमें मनके समान वेगशाली दिव्य अश्व जुते हुए थे। ययातिने उस श्रेष्ठ रथके द्वारा छः रातोंमें ही सम्पूर्ण पृथ्वी तथा देवताओं और दानवोंको भी जीत लिया। वे युद्धमें शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष थे। समुद्र और सातों द्वीपोंसहित समूची पृथ्वीको अपने अधिकारमें करके उन्होंने उसके पाँच भाग किये और उन्हें अपने पाँचों पुत्रोंमें बाँट दिया। तत्पश्चात् एक दिन उन्होंने यदुसे कहा—'बेटा! कुछ आवश्यकतावश मुझे तुम्हारी युवावस्था चाहिये। तुम मेरा बुढ़ापा ग्रहण करो और मैं तुम्हारे रूपसे तरुण होकर इस पृथ्वीपर विचरूँगा।' यह सुनकर यदुने उत्तर दिया—'राजन्! बुढ़ापेमें खान-पान-सम्बन्धी बहुत-से दोष हैं। अतः मैं उसे नहीं ले सकता। आपके अनेक पुत्र हैं, जो मुझसे भी बढ़कर प्रिय हैं। अतः युवावस्था ग्रहण करनेके लिये किसी दूसरे पुत्रको बुलाइये।'

ययाति बोले—ओ मूर्ख! मेरा अनादर करके तेरे लिये कौन-सा आश्रम है? अथवा किस धर्मका विधान है? मैं तो तेरा गुरु हूँ, फिर मेरी बात क्यों नहीं मानता?

यों कहकर ययातिने कुपित हो यदुको शाप दिया—



'ओ मूर्ख! तेरी संततिको कभी राज्य नहीं मिलेगा।' तत्पश्चात् ययातिने क्रमशः द्रुह्यु, तुर्वसु तथा अनुसे भी यही बात कही; परन्तु उन्होंने भी युवावस्था देनेसे इन्कार कर दिया। तब ययातिने अत्यन्त क्रोधमें भरकर उन सबको भी पूर्ववत् शाप दे दिया। इस प्रकार सबको शाप दे राजाने अपने छोटे पुत्र पूरुसे भी वही प्रस्ताव किया—'वत्स! यदि तुम्हें स्वीकार हो तो अपना बुढ़ापा तुम्हें देकर और तुम्हारी

युवावस्था स्वयं लेकर इस पृथ्वीपर विचरूँ।' पिताकी आज्ञाके



अनुसार प्रतापी पूरुने उनका बुढ़ापा ले लिया। ययाति भी पूरुके तरुण रूपसे पृथ्वीपर विचरने लगे। वे कामनाओंका अन्त ढूँढ़ते हुए चैत्ररथ नामक वनमें गये और वहाँ विश्वाची नामक अप्सराके साथ रमण करने लगे। जब काम और भोगसे तृप्त हो चुके, तब पूरुके समीप जाकर उन्होंने अपना बुढ़ापा ले लिया। उस समय ययातिने जो उद्गार प्रकट किया, उसपर ध्यान देनेसे मनुष्य सब भोगोंकी ओरसे अपने मनको उसी प्रकार हटा सकता है, जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है। ययाति बोले—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति कृत्वा न मुह्यति॥
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
यदा तेभ्यो न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोडशीं कलाम्॥

"भोगोंकी इच्छा उन्हें भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, अपितु घीसे आगकी भाँति और भी बढ़ती ही जाती है। इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु तथा स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं—ऐसा समझकर विद्वान् पुरुष मोहमें नहीं पड़ता। जब जीव मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीके प्रति पाप-बुद्धि नहीं करता, तब वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जब वह किसी भी प्राणीसे नहीं डरता तथा उससे भी कोई प्राणी नहीं डरते, जब वह इच्छा और द्वेषसे परे हो जाता है, उस समय ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंद्वारा जिसका त्याग होना कठिन है, जो मनुष्यके बूढ़े होनेपर भी बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राणनाशक रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करनेवालेको ही सुख मिलता है। बूढ़े होनेवाले मनुष्यके बाल पक जाते हैं, दाँत टूट जाते हैं; परन्तु धन और जीवनकी आशा उस समय भी शिथिल नहीं होती। संसारमें जो कामजनित सुख है तथा जो दिव्य लोकका महान् सुख है, वे सब मिलकर तृष्णा-क्षयसे होनेवाले सुखकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते।"

यों कहकर राजर्षि ययाति स्त्रीसहित वनमें चले गये। वहाँ बहुत दिनोंतक उन्होंने भारी तपस्या की। तपस्याके अन्तमें भृगुतुङ्ग नामक तीर्थके भीतर उन्होंने सद्गति प्राप्त की। महायशस्वी ययातिने स्त्रीसहित उपवास करके देहका त्याग किया और स्वर्गलोकको प्राप्त कर लिया।

ययाति-पुत्रोंके वंशका वर्णन

ब्राह्मण बोले—सूतजी! हमलोग पूरु, द्रुह्य, अनु, यदु तथा तुर्वसुके वंशोंका पृथक्-पृथक् वर्णन सुनना चाहते हैं।

लोमहर्षणजीने कहा—मुनिवरो! आपलोग महात्मा पूरुके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन सुनें, मैं क्रमशः सुनाता हूँ। पूरुके पुत्र सुवीर हुए, उनके पुत्रका नाम मनस्यु था। मनस्युके पुत्र राजा अभयद थे। अभयदके सुधन्वा, सुधन्वाके

सुबाहु,सुबाहुके रौद्राश्व तथा रौद्राश्वके दशार्णेयु,कृकणेयु,कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, संनतेयु, ऋचेयु, जलेयु, स्थलेयु, धनेयु एवं वनेयु—ये दस पुत्र हुए। इसी प्रकार भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शलदा, मलदा, खलदा, नलदा, सुरमा, गोचपला तथा स्त्रीरत्नकूटा—ये दस कन्याएँ हुईं। अत्रिकुलमें उत्पन्न महर्षि प्रभाकर उन सबके पति हुए। उन्होंने भद्राके गर्भसे परम यशस्वी सोमको पुत्ररूपसे उत्पन्न किया। राहुसे आहत होकर जब सूर्य आकाशसे पृथ्वीपर गिरने लगे और समस्त संसारमें अन्धकार छा गया, उस समय प्रभाकरने ही अपनी प्रभा फैलायी। महर्षिने गिरते हुए सूर्यको 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहकर आशीर्वाद दिया। उनके इस कथनसे सूर्य पृथ्वीपर नहीं गिरे। महातपस्वी प्रभाकरने सब गोत्रोंमें अत्रिको ही श्रेष्ठ बनाया। अत्रिके यज्ञमें देवताओंने उनके बलकी प्रतिष्ठा की। उन्होंने रौद्राश्वकी कन्याओंसे दस पुत्र उत्पन्न किये, जो महान् सत्त्वशाली तथा उग्र तपस्यामें तत्पर रहनेवाले थे। वे सभी वेदोंके पारंगत विद्वान् तथा गोत्रप्रवर्तक हुए। स्वस्त्यात्रेय नामसे उनकी ख्याति हुई। कक्षेयुके सभानर, चाक्षुष तथा परमन्यु—ये तीन महारथी पुत्र हुए। सभानरके पुत्र कालानल तथा कालानलके धर्मज्ञ सृञ्जय हुए। सृञ्जयके पुत्र वीर राजा पुरंजय थे। पुरंजयके पुत्रका नाम जनमेजय हुआ। जनमेजयके पुत्र महाशाल थे, जो देवताओंमें भी विख्यात हुए और इस पृथ्वीपर भी उनका यश फैला था। महाशालके पुत्र महामनाके नामसे विख्यात थे। देवताओंने भी उनका सत्कार किया था। उन्होंने धर्मज्ञ उशीनर तथा महाबली तितिक्षु—ये दो पुत्र उत्पन्न किये। उशीनरकी पाँच पत्नियाँ थीं, जो राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुई थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—नृगा, कृमि, नवा, दर्वा तथा दृषद्वती। उनसे उशीनरके पाँच पुत्र हुए। नृगाके पुत्र नृग थे, कृमिके गर्भसे कृमिका ही जन्म हुआ था। नवाके नव तथा दर्वाके सुव्रत हुए। दृषद्वतीके गर्भसे उशीनरकुमार शिबिकी उत्पत्ति हुई। शिबिको शिबि-देशका राज्य मिला। नृगके अधिकारमें यौधेय प्रदेश आया। नवको नवराष्ट्र तथा कृमिको कृमिलापुरी-का राज्य प्राप्त हुआ। सुव्रतके अधिकारमें अम्बष्ठ देश आया। शिबिके विश्वविख्यात चार पुत्र हुए—वृषदर्भ,सुवीर, केकय तथा मद्रक। उनके समृद्धिशाली जनपद उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुए।

अब महामनाके दूसरे पुत्र तितिक्षुकी संतानोंका वर्णन किया जाता है। तितिक्षु पूर्वदिशाके राजा थे। उनके पुत्र महापराक्रमी उषद्रथ हुए। उषद्रथके पुत्र फेन, फेनके सुतपा तथा सुतपाके बलि हुए। राजा बलि सोनेका तरकस रखते थे। वे बहुत बड़े योगी थे। उन्होंने इस भूतलपर वंशको वृद्धि करनेवाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये। उनमें सबसे पहले अङ्गकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र तथा कलिङ्ग उत्पन्न हुए। ये सब लोग बालेय क्षत्रिय कहलाते हैं। बलिके कुलमें बालेय ब्राह्मण भी हुए, जो वंशकी वृद्धि करनेवाले थे। ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर बलिको यह वर दिया कि 'तुम महायोगी होओगे। एक कल्पकी तुम्हारी आयु होगी। बलमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई न होगा। तुम धर्म-तत्त्वके ज्ञाता होओगे। संग्राममें तुम्हें कोई जीत न सकेगा। धर्ममें तुम्हारी प्रधानता होगी। तुम तीनों लोकोंकी देखभाल करोगे। सर्वत्र श्रेष्ठ माने जाओगे और चारों वर्णोंको मर्यादाके भीतर स्थापित करोगे।'

भगवान् ब्रह्माजीके यों कहनेपर बलिको बड़ी शान्ति मिली। वे दीर्घ कालके बाद मरकर स्वर्गको गये। उनके पाँच पुत्रोंके अधिकारमें जो जनपद थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, कलिङ्ग और पुण्ड्रक। अब अङ्गकी संतानका वर्णन करता हूँ। अङ्गके पुत्र महाराज दधिवाहन हुए। दधिवाहनके पुत्र राजा दिविरथ। दिविरथ-के इन्द्रतुल्य पराक्रमी और विद्वान् धर्मरथ तथा धर्मरथके पुत्र चित्ररथ हुए। राजा धर्मरथ जब कालञ्जर पर्वतपर यज्ञ करते थे, उस समय महात्मा इन्द्रने उनके साथ बैठकर सोम-पान किया था। चित्ररथके पुत्र दशरथ हुए, जो लोमपादके नामसे विख्यात थे। उन्हींकी पुत्री शान्ता थी। दशरथके पुत्र महायशस्वी वीर चतुरङ्ग हुए, जो ऋष्यशृङ्ग मुनिकी कृपासे उत्पन्न हुए थे। चतुरङ्गके पुत्रका नाम पृथुलाक्ष था। पृथुलाक्षके पुत्र महायशस्वी चम्प थे। चम्पकी राजधानी चम्पा थी, जो पहले मालिनीके नामसे प्रसिद्ध थी। चम्पके पुत्र हर्यश्व हुए। हर्यश्वके पुत्र वैभाण्डकि थे, जिनका वाहन इन्द्रका ऐरावत हाथी था। उन्होंने मन्त्रद्वारा उस उत्तम हाथीको पृथ्वीपर उतारा था। हर्यश्वके पुत्र राजा भद्ररथ हुए। भद्ररथके बृहत्कर्मा, बृहत्कर्माके बृहद्दर्भ और बृहद्दर्भसे बृहन्मनाकी उत्पत्ति हुई थी। महाराज बृहन्मनाने जयद्रथ नामक पुत्र उत्पन्न किया। जयद्रथके दृढरथ, दृढरथके विश्वविजयी जनमेजय। उनके पुत्र वैकर्ण, वैकर्णके विकर्ण तथा विकर्णके सौ पुत्र हुए, जो अङ्गवंशका विस्तार करनेवाले

थे। ये सब अङ्गवंशी राजा बतलाये गये, जो सत्यव्रती, महात्मा, पुत्रवान् तथा महारथी थे।

अब रौद्राश्वकुमार राजा ऋचेयुके वंशका वर्णन करूँगा, सुनो। ऋचेयुके पुत्र राजा मतिनार हुए। मतिनारके तीन बड़े धर्मात्मा पुत्र थे—वसुरोध, प्रतिरथ और सुबाहु। ये सभी वेदवेत्ता तथा सत्यवादी थे। मतिनारकी एक कन्या भी थी, जिसका नाम इला था। वह ब्रह्मवादिनी थी। उसका विवाह तंसुसे हुआ। तंसुके पुत्र राजर्षि धर्मनेत्र हुए। इनकी स्त्री उपदानवी थी। उपदानवीसे उन्होंने चार पुत्र उत्पन्न किये—दुष्यन्त, सुष्मन्त, प्रवीर और अनघ। दुष्यन्तके पुत्र पराक्रमी भरत हुए, जो सर्वदमनके नामसे विख्यात थे। उनमें दस हजार हाथियोंका बल था। वे शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न चक्रवर्ती राजा थे। उन्हींके नामपर इस देशको भारतवर्ष कहते हैं। अङ्गिरानन्दन बृहस्पतिजीके पुत्र महामुनि भरद्वाजने भरतसे पुत्रोत्पत्तिके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान कराया। इसके पहले पुत्र-जन्मका सारा प्रयास व्यर्थ हो चुका था। अतः भरद्वाजके प्रयत्नसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम वितथ हुआ। वितथके जन्मके बाद राजा भरत स्वर्गवासी हो गये, तब भरद्वाजजी वितथको राज्यपर अभिषिक्त करके वनमें चले गये। वितथने पाँच पुत्र उत्पन्न किये—सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग तथा महात्मा कपिल। सुहोत्रके दो पुत्र थे—महासत्यवादी काशिक तथा राजा गृत्समति। गृत्समतिके पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णोंके लोग हुए।

मुनिवरो! अब आजमीढ नामक दूसरे वंशका वर्णन सुनो। सुहोत्रका एक पुत्र था—बृहत्। उसके तीन पुत्र हुए—अजमीढ, द्विमीढ, और पुरुमीढ। अजमीढसे नीलीके गर्भसे सुशान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुशान्तिसे पुरुजाति और पुरुजातिसे बाह्याश्वका जन्म हुआ। बाह्याश्वके पाँच पुत्र हुए, जो समृद्धिशाली पाँच जनपदोंसे युक्त थे। उनके नाम यों हैं—मुद्गल, सृञ्जय, राजा बृहदिषु, पराक्रमी यवीनर तथा कृमिलाश्व। ये पाँचों देशोंकी रक्षाके लिये अलम् (समर्थ) थे; इसलिये उनके अधिकारमें आये हुए जनपद पञ्चाल कहलाये। मुद्गलके पुत्र महायशस्वी मौद्गल्य थे। महात्मा सृञ्जयके पुत्र पञ्चजन हुए। पञ्चजनके सोमदत्त, सोमदत्तके सहदेव और सहदेवके सोमक हुए। सोमकके पुत्रका नाम जन्तु था, जिसके सौ पुत्र हुए। उन सबमें छोटे पृषत् थे, जिनके पुत्र द्रुपद हुए। ये सभी आजमीढ तथा सोमक क्षत्रिय कहलाते हैं। अजमीढके एक और पत्नी थीं, जिनका नाम था—धूमिनी। रानी धूमिनी बड़ी पतिव्रता थीं। वे पुत्रकी कामनासे व्रत करने लगीं। दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके उन्होंने विधिपूर्वक अग्निमें हवन किया तथा पवित्रतापूर्वक नियमित भोजन करके वे अग्निहोत्रके कुशोंपर ही लेट गयीं। उसी अवस्थामें राजा अजमीढने धूमिनी देवीके साथ समागम किया। इससे ऋक्ष नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। ऋक्ष धूम्रके समान वर्णवाले एवं दर्शनीय पुरुष थे। ऋक्षसे संवरण और संवरणसे कुरु उत्पन्न हुए, जिन्होंने प्रयागसे जाकर कुरुक्षेत्रकी स्थापना की। वह बड़ा ही पवित्र एवं रमणीय क्षेत्र है। कितने ही पुण्यात्मा पुरुष उसका सेवन करते हैं। कुरुका महान् वंश उन्हींके नामपर कौरव कहलाया। कुरुके चार पुत्र हुए—सुधन्वा, सुधनु, परीक्षित् और अरिमेजय। परीक्षित्के पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, अग्रसेन और भीमसेन हुए। ये सभी बलशाली और पराक्रमी थे। जनमेजयके पुत्र सुरथ हुए, सुरथके विदूरथ, विदूरथके महारथी ऋक्ष हुए। ये दूसरे ऋक्ष थे। इस सोम-वंशमें दो ऋक्ष, दो ही परीक्षित्, तीन भीमसेन तथा दो जनमेजय नामके राजा हुए। द्वितीय ऋक्षके पुत्र भीमसेन थे। भीमसेनसे प्रतीप और प्रतीपसे शान्तनु, देवापि तथा बाह्लिक—ये तीन महारथी पुत्र हुए।

अब राजर्षि बाह्लिकके वंशका वृत्तान्त सुनो। बाह्लिकके पुत्र महायशस्वी सोमदत्त थे। सोमदत्तसे भूरि, भूरिश्रवा और शल—ये तीन पुत्र हुए। देवापि देवताओंके उपाध्याय और मुनि हुए। शान्तनु कौरववंशका भार वहन करनेवाले राजा हुए। अब मैं शान्तनुके त्रिभुवनविख्यात वंशका वर्णन करूँगा। शान्तनुने गङ्गाके गर्भसे देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न किया। देवव्रत ही भीष्म नामसे विख्यात पाण्डवोंके पितामह थे। तत्पश्चात् शान्तनुकी काली नामवाली पत्नीने विचित्रवीर्य नामक पुत्र उत्पन्न किया, जो पिताका प्यारा तथा धर्मात्मा था। विचित्रवीर्यकी स्त्रियोंसे श्रीकृष्णद्वैपायनने धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुरको जन्म दिया। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न किये। उन सबमें दुर्योधन ज्येष्ठ था। पाण्डुके पुत्र अर्जुन हुए। अर्जुनसे सुभद्राकुमार अभिमन्युकी उत्पत्ति हुई। अभिमन्युसे परीक्षित् और परीक्षित्से जनमेजयका जन्म हुआ। जनमेजयके काश्या नामकी पत्नीसे चन्द्रापीड तथा सूर्यापीड नामक दो पुत्र हुए। उनमें सूर्यापीड मोक्ष-धर्मके ज्ञाता थे। चन्द्रापीडके महान् धनुर्धर सौ पुत्र थे। ये सब इस पृथ्वीपर जानमेजय क्षत्रियके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन सौ

पुत्रोंमें सबसे बड़ा सत्यकर्ण था, जो हस्तिनापुरमें रहा करता था। महाबाहु सत्यकर्ण प्रचुर दक्षिणा देनेवाले थे। सत्यकर्णके पुत्र प्रतापी श्वेतकर्ण हुए। वे पुत्र न होनेके कारण तपोवनमें चले गये। वहाँ सुचारुकी पुत्री मालिनी, जो यदुकुलमें उत्पन्न हुई थी, वनमें आयी थी। उसने श्वेतकर्णसे गर्भ धारण किया। उस गर्भके स्थापित हो जानेपर राजा श्वेतकर्ण पहलेके किये हुए संकल्पके अनुसार महाप्रस्थानको चले। अपने प्रियतमको जाते देख मालिनी भी उनके पीछे लग गयी। मार्गमें उसने एक सुकुमार शिशुको जन्म दिया, किंतु उसको भी छोड़कर वह पतिव्रता पतिके पीछे चल दी। नवजात शिशु पर्वतकी घाटी-पर रो रहा था। तब उसपर कृपा करनेके लिये आकाशमें मेघ प्रकट हो गये। श्रविष्ठाके दो पुत्र थे—पैप्पलादि और कौशिक। वे दोनों उस शिशुको देख दयासे द्रवीभूत हो गये। उन्होंने उसे उठाकर जलसे धोया और रक्तमें डूबे हुए उसके पार्श्वभागको शिलापर रगड़कर साफ किया। रगड़नेपर उसकी दोनों पसलियाँ बकरेकी भाँति श्याम वर्णकी हो गयीं। इसलिये उन दोनोंने उस बालकका नाम अजपार्श्व रख दिया। उसे रेमककी शालामें दो ब्राह्मणोंने पाल-पोसकर बड़ा किया। रेमककी पत्नीने अपना पुत्र बनानेके लिये उसे गोद ले लिया। तबसे वह रेमकीका पुत्र माना जाने लगा। दोनों ब्राह्मण उसके सचिव हुए। उन सबके पुत्र और पौत्र एक ही समयमें—समान आयुवाले हुए। यह महात्मा पाण्डवों-का पौरव-वंश बतलाया गया। नहुषनन्दन ययातिने अपनी वृद्धावस्थाका परिवर्तन करते समय अत्यन्त प्रसन्न हो यह उद्गार प्रकट किया था—'सम्भव है यह पृथ्वी चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहोंके प्रकाशसे रहित हो जाय; किन्तु पौरव-वंशसे सूनी यह कभी नहीं होगी।' इस प्रकार मैंने राजा पूरुके विख्यात वंशका वर्णन किया। अब तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और यदुके वंशका वर्णन करूँगा।

तुर्वसुके पुत्र वह्नि, वह्निके गोभानु, गोभानुके राजा त्रैशानु, त्रैशानुके करंधम तथा करंधमके मरुत्त हुए। अवीक्षित्-नन्दन राजा मरुत्त इस मरुत्तसे भिन्न हैं। करंधमकुमार मरुत्तके कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने बहुत दक्षिणा देकर यज्ञ किया, उसमें उन्होंने दक्षिणाके रूपमें महात्मा संवर्तको अपनी संयता नामकी कन्या दे दी। तत्पश्चात् उन्होंने पूरुवंशी दुष्यन्तको गोद ले लिया। इस प्रकार ययातिके शापवश जब तुर्वसुका वंश नहीं चला, तब उसमें पौरव-वंशका प्रवेश हुआ। दुष्यन्तके पुत्र राजा करूरोम हुए। करूरोमसे आह्रीदकी उत्पत्ति हुई। आह्रीदके चार पुत्र हुए—पाण्ड्य, केरल, कोल तथा चोल। द्रुह्युके पुत्र बभ्रुसेतु, बभ्रुसेतुके अङ्गारसेतु और अङ्गारसेतुके मरुत्पति हुए, जो युद्धमें युवनाश्वकुमार मान्धाताके हाथसे मारे गये। अङ्गारसेतुके पुत्र राजा गान्धार हुए, जिनके नामपर गान्धार प्रदेश विख्यात है। गान्धारदेशके घोड़े सब घोड़ोंसे अच्छे होते हैं। अनुके पुत्र धर्म, धर्मके घृत, घृतके वनदुह, वनदुहके प्रचेता और प्रचेताके सुचेता हुए। ये अनुके वंशज बतलाये गये। यदुके पाँच पुत्र हुए, जो देवकुमारोंके समान सुन्दर थे। उनके नाम हैं—सहस्राद, पयोद, क्रोष्टु, नील और अञ्जिक। सहस्रादके तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैहय, हय तथा वेणुहय। हैहयका पुत्र धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्रके कार्त और कार्तके साहञ्ज नामक पुत्र हुए। साहञ्जने साहञ्जनी नामकी नगरी बसायी। साहञ्जका दूसरा नाम महिष्मान् भी था। उनके पुत्र प्रतापी भद्रश्रेण्य थे। भद्रश्रेण्यके दुर्दम और दुर्दमके कनक हुए। कनकके चार पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृतवीर्य, कृतौजा, कृतधन्वा तथा कृताग्नि।

कृतवीर्यसे अर्जुनकी उत्पत्ति हुई, जो सहस्र भुजाओंसे युक्त हो सात द्वीपोंका राजा हुआ। उसने अकेले ही सूर्यके समान तेजस्वी रथद्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था। उसने दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तपस्या करके दत्तात्रेयजीकी आराधना की। दत्तात्रेयजीने उसे कई वरदान दिये। पहले तो उसने युद्धकालमें एक हजार भुजाएँ माँगीं। युद्ध करते समय किसी योगीश्वरकी भाँति उसके एक सहस्र भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं। उसने द्वीप, समुद्र और नगरों-सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको कठोरतापूर्वक जीता। उसने सात द्वीपोंमें सात सौ यज्ञ किये, उन सभी यज्ञोंमें एक-एक लाख-की दक्षिणा दी गयी थी। सबमें सोनेके यूप गड़े थे, सोनेकी ही वेदियाँ बनी थीं। वहाँ दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत देवताओं और गन्धर्वोंके साथ महर्षिगण भी विमानपर बैठकर सुशोभित होते थे। कार्तवीर्यके यज्ञमें नारद नामक गन्धर्वने इस गाथाका गान किया—'अन्य राजालोग यज्ञ, दान, तपस्या, पराक्रम और शास्त्र-ज्ञानमें कार्तवीर्य अर्जुनकी स्थितिको नहीं पहुँच सकते।' वह योगी था; इसलिये सातों द्वीपोंमें ढाल, तलवार, धनुष-बाण और रथ लिये सदा चारों ओर विचरता दिखायी देता था। धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करनेवाले महाराज

कार्तवीर्यके प्रभावसे किसीका धन नष्ट नहीं होता था, किसीको रोग नहीं सताता था तथा कोई भ्रममें नहीं पड़ता था। वे सब प्रकारके रत्नोंसे सम्पन्न चक्रवर्ती सम्राट् थे। वे ही पशुओं तथा खेतोंके भी रक्षक थे और वे ही योगी होनेके कारण वर्षा करते हुए मेघ बन जाते थे। जैसे शरदृऋतुमें भगवान् भास्कर अपनी सहस्रों किरणोंसे शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार राजा कार्तवीर्य अर्जुन अपनी सहस्रों भुजाओंसे शोभा पाते थे। उन्होंने कर्कोटक नागके पुत्रोंको जीतकर उन्हें अपनी नगरी माहिष्मतीपुरीमें मनुष्योंके साथ बसाया था। वे वर्षाकालमें समुद्रमें जल-क्रीड़ा करते समय अपनी भुजाओंसे रोककर उसकी जल-राशिके वेगको पीछेकी ओर लौटा देते थे। उनकी राजधानी-को घेरकर बहनेवाली नर्मदा नदीमें जब वे जलक्रीड़ा करते समय लोटते थे, उस समय वह नदी अपनी सहस्रों चञ्चल लहरोंके साथ डरती-डरती उनके पास आती थी। महासागरमें जब वे अपनी सहस्रों भुजाएँ पटकते थे, उस समय पाताल-



निवासी महादैत्य निश्चेष्ट होकर भयसे छिप जाते थे। ऊँची उठती हुई उत्ताल तरङ्गें विचूर्णित हो जाती थीं। बड़े-बड़े मीन और तिमि आदि जल-जन्तु छटपटाने लगते थे। सागरके जलमें फेन जम जाता था। समुद्र बड़ी-बड़ी भँवरोंके कारण क्षुब्ध दिखायी देता था। देवताओं और असुरोंके डाले हुए मन्दराचल पर्वतसे क्षीरसमुद्रकी जो दशा हुई थी; वही दशा वे अपने सहस्र बाहुओंसे महासागरकी कर देते थे। उस समय मन्दराचलके द्वारा समुद्र-मन्थनकी बात सोचकर चकित और अमृतोत्पत्तिसे आशङ्कित हुए बड़े-बड़े नाग सहसा ऊपर उछलकर देखते और भयंकर कार्तवीर्य नरेशपर दृष्टि पड़ते ही मस्तक झुकाकर निश्चेष्ट पड़ जाते थे। जैसे संध्याके समय वायुके झोंकेमें कदलीखण्ड काँपते हैं, उसी प्रकार वे भी काँपने लगते थे। राजा कार्तवीर्यने अभिमानसे भरे हुए लङ्कापति रावणको अपने पाँच ही बाणोंसे सेनासहित मूर्च्छित करके धनुषकी प्रत्यञ्चासे बाँध लिया और माहिष्मतीपुरीमें लाकर बंदी बना लिया। यह समाचार सुनकर महर्षि पुलस्त्य उनके पास गये। महर्षिके याचना करनेपर उन्होंने रावणको मुक्त कर दिया। अर्जुनकी हजार भुजाओंमें धारण किये हुए



धनुषोंकी प्रत्यञ्चाका इतना घोर शब्द होता था, मानो प्रलयकालीन मेघ गर्जते हों अथवा वज्र फट पड़ा हो। अहो! परशुरामजीका पराक्रम धन्य है, जिन्होंने सुवर्णमय तालवनके समान राजा कार्तवीर्यकी सहस्रों भुजाओंको काट डाला था। एक दिनकी बात है, प्यासे अग्निदेवने राजा कार्तवीर्यसे भिक्षा माँगी। उन्होंने सातों द्वीप, नगर, गाँव, गोष्ठ तथा सारा राज्य उन्हें भिक्षामें दे दिये। अग्निदेव सर्वत्र प्रज्वलित हो उठे और महाराज कार्तवीर्यके प्रभावसे समस्त पर्वतों एवं वनोंको जलाने लगे। उन्होंने वरुण-पुत्रके रमणीय आश्रमको

भी जला दिया। पूर्वकालमें वरुणने जिन तेजस्वी महर्षिको अपने पुत्ररूपमें प्राप्त किया था, वे वसिष्ठके नामसे विख्यात हुए। उन्हींका नाम आपव भी है। महर्षि वसिष्ठका शून्य आश्रम जलाया गया था, इसलिये उन्होंने शाप दिया—'हैहय! तूने मेरे इस वनको भी जलाये बिना न छोड़ा, अतः तेरे द्वारा यह महान् पाप हुआ है। इस कारण मेरे-जैसा एक दूसरा तपस्वी ब्राह्मण तेरा वध करेगा। जमदग्निनन्दन महाबाहु परशुराम, जो बलवान् और प्रतापी हैं, तेरा बलपूर्वक मान मर्दन करके तेरी हजार भुजाओंको काट डालेंगे और तुझे मौतके घाट उतारेंगे।'



जो शत्रुओंके नाशक और धर्मपूर्वक प्रजाके रक्षक थे, जिनके प्रतापसे किसीके धनका नाश नहीं होने पाता था, वे महाराज कार्तवीर्य महामुनि वसिष्ठके शापवश परशुरामजीके हाथसे मृत्युको प्राप्त हुए। उन्होंने स्वयं ही पहले इसी तरहका वर माँगा था। कार्तवीर्यके सौ पुत्र थे, किन्तु उनमें पाँच ही शेष बचे। वे सभी अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और यशस्वी थे। उनके नाम ये हैं—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज और जयध्वज। जयध्वज अवन्तीके महाराज थे। जयध्वजके पुत्र महाबली तालजङ्घ हुए। उनके सौ पुत्र थे, जो तालजङ्घके नामसे विख्यात थे। हैहय-वंशमें वीतिहोत्र, सुजात, भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजङ्घ तथा भरत आदि क्षत्रियोंका समुदाय हुआ। इनकी संख्या बहुत होनेसे पृथक्-पृथक् नाम नहीं बतलाये गये।

वृष आदि बहुत-से पुण्यात्मा यादव इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए। उनमें वृष वंशके प्रवर्तक थे। वृषके पुत्र मधु थे। मधुके सौ पुत्र हुए, जिनमें वृषण वंश चलानेवाले हुए; वृषणके वृष्णि और मधुके वंशज माधव कहलाये। इसी प्रकार यदुके नामपर यादव तथा हैहयके नामसे हैहय क्षत्रिय कहलाते हैं। जो प्रतिदिन कार्तवीर्य अर्जुनके जन्मका वृत्तान्त यहाँ कहेगा, उसके धनका नाश नहीं होगा, उसका नष्ट हुआ धन भी मिल जायगा। इस प्रकार ययाति-पुत्रोंके पाँच वंश यहाँ बतलाये गये, जो समस्त लोकोंको धारण करते हैं। यदुके वंशधर पुण्यात्मा क्रोष्टुके, जिनके कुलमें वृष्णि-वंशावतंस श्रीहरि श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए थे, वंशका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

क्रोष्टु आदिके वंशका वर्णन तथा स्यमन्तकमणिकी कथा

लोमहर्षणजी कहते हैं—क्रोष्टुके गान्धारी और माद्री दो पत्नियाँ थीं। गान्धारीने महाबली अनमित्रको जन्म दिया तथा माद्रीके युधाजित् एवं देवमीढुष्—ये दो पुत्र हुए; इन तीनोंका वंश पृथक्-पृथक् चला, जो वृष्णि-कुलकी वृद्धि करनेवाला था। माद्रीके दो पुत्र और सुने जाते हैं—वृष्णि तथा अन्धक। वृष्णिके भी दो पुत्र थे—श्वफल्क और चित्रक। श्वफल्क बड़े धर्मात्मा थे। वे जहाँ रहते, वहाँ रोगका भय नहीं होता तथा वहाँ अवृष्टि कभी नहीं होती थी। एक बार काशी-नरेशके राज्यमें पूरे तीन वर्षोंतक इन्द्रने वर्षा नहीं की; तब उन्होंने श्वफल्कको बुलवाया और उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। श्वफल्कके वहाँ पहुँचते ही इन्द्रने वृष्टि आरम्भ कर दी। काशिराजके एक कन्या थी, जिसका नाम गान्दिनी रक्खा गया था। वह प्रतिदिन ब्राह्मणको एक गौ दान किया करती थी, इसीलिये उसका ऐसा नाम पड़ा था। वह श्वफल्कको पत्नीरूपमें प्राप्त हुई और उसके गर्भसे अक्रूरका जन्म हुआ, जो दानी, यज्ञकर्ता, वीर, शास्त्रज्ञ, अतिथिप्रेमी तथा अधिक दक्षिणा देनेवाले थे। इनके अतिरिक्त उपमद्गु, मद्गु, मेदुर, अरिमेजय, अविक्षित, आक्षेप, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्,

यतिधर्मा, धर्मोक्षा, अन्धकरु, आवाह तथा प्रतिवाह नामक पुत्र एवं वराङ्गना नामकी सुन्दरी कन्या हुई। अक्रूरके उग्रसेनकन्या सुगात्रीके गर्भसे प्रसेन और उपदेव नामक दो पुत्र हुए, जो देवताओंके समान कान्तिमान् थे।

चित्रकके पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, स्वपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु तथा बहुबाहु नामक पुत्र एवं श्रविष्ठा और श्रवणा नामकी दो कन्याएँ हुईं। देवमीढुषने असिक्नी नामकी पत्नीके गर्भसे शूर नामक पुत्र उत्पन्न किया। शूरसे रानी भोज्याके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे पहले महाबाहु वसुदेव उत्पन्न हुए, जिन्हें आनकदुन्दुभि भी कहते हैं। उनके जन्म लेनेके बाद देवलोकमें दुन्दुभियाँ बजी थीं और आनकों (मृदङ्गों) की गम्भीर ध्वनि हुई थी; इसलिये उनका नाम आनकदुन्दुभि पड़ गया था। उनके जन्म-कालमें फूलोंकी वर्षा भी हुई थी। समस्त मानव-लोकमें उनके समान रूपवान् दूसरा कोई नहीं था। नरश्रेष्ठ वसुदेवकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी। वसुदेवके बाद क्रमशः देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सवान्, गृञ्जम, श्याम, शमीक और गण्डूष उत्पन्न हुए। शूरके पाँच सुन्दरी कन्याएँ भी हुईं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा तथा राजाधिदेवी। ये पाँचों वीर पुत्रोंकी जननी हुईं। वृष्णिके छोटे पुत्र अनमित्रसे शिनिका जन्म हुआ। शिनिके पुत्र सत्यक हुए। सत्यकसे सात्यकि उत्पन्न हुए, जिनका दूसरा नाम युयुधान था। देवभागके पुत्र महाभाग उद्धव हुए। गण्डूषके कोई पुत्र नहीं था, अतः विष्वक्सेनने उन्हें अनेक पुत्र दिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—चारुदेष्ण, सुदेष्ण तथा सर्वलक्षणसम्पन्न पञ्चाल आदि। उन सबमें छोटे थे—महाबाहु रौक्मिणेय, जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते थे। कनवकके दो पुत्र हुए—तन्त्रिज और तन्त्रिपाल। गृञ्जमके भी दो पुत्र थे—वीरु तथा अश्वहनु। श्यामके पुत्र शमीक थे। शमीक राजा हुए। उन्होंने राजसूय-यज्ञ किया था, उनके पुत्र अजातशत्रु हुए।

अब वसुदेवके वीर पुत्रोंका वर्णन करूँगा। वृष्णि-वंशकी अनेक शाखाएँ हैं। जो उनका स्मरण करता है, उसे कभी अनर्थकी प्राप्ति नहीं होती। वसुदेवजीके चौदह सुन्दरी पत्नियाँ थीं। पुरुवंशकी कन्या रोहिणी, मदिरादि, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवी, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी तथा देवकी—ये बारह तो राजकुमारियाँ थीं और सुतनु तथा बड़वा—ये दो दासियाँ थीं। ज्येष्ठ पत्नी रोहिणीने, जो बाह्लिककी पुत्री थी, वसुदेवजीसे ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें बलरामजीको प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनके गर्भसे शरण्य, शठ, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक और उशीनर नामक पुत्र तथा चित्रा नामकी कन्या हुई। इस प्रकार रोहिणीकी नौ संतानें थीं। चित्रा ही आगे चलकर सुभद्राके नामसे विख्यात हुई। वसुदेवके देवकीके गर्भसे महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए। बलरामके रेवतीके गर्भसे निशठ उत्पन्न हुए, जो माता-पिताके बड़े लाड़ले थे। सुभद्राके अर्जुनके सम्बन्धसे महारथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ। वसुदेवजीकी परम सौभाग्यशालिनी सात पत्नियोंसे जो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम बतलाता हूँ; सुनो। शान्तिदेवाके भोज और विजय, सुनामाके वृकदेव और गद तथा त्रिगर्तराजकन्या वृकदेवीके महात्मा अगावह नामक पुत्र हुए।

क्रोष्टुके एक और पुत्र महायशस्वी वृजिनीवान् हुए। उनके पुत्र स्वाहि थे। स्वाहिके पुत्र राजा उषद्गु हुए, जिन्होंने प्रचुर दक्षिणावाले अनेक महायज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उषद्गुके पुत्र चित्ररथ हुए, चित्ररथके शशबिन्दु, शशबिन्दुके पृथुश्रवा, पृथुश्रवाके अन्तर, अन्तरके सुयज्ञ तथा सुयज्ञके उषत् हुए। उषत्का अपने धर्मके प्रति बड़ा आदर था। उषत्के पुत्र शिनेयु, शिनेयुके मरुत्, मरुत्के कम्बलबर्हिष्, कम्बलबर्हिषके रुक्मकवच, रुक्मकवचके परजित् तथा परजित्के पाँच पुत्र हुए—रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित तथा हरि। पालित और हरिको पिताने विदेह प्रान्तकी रक्षामें नियुक्त कर दिया। रुक्मेषु पृथुरुक्मकी सहायतासे राजा हुए। इन दोनों भाइयोंने राजा ज्यामघको घरसे निकाल दिया। तब वे वनमें आश्रम बनाकर रहने लगे। उस समय शान्तिपरायण राजाको ब्राह्मणोंने बहुत कुछ समझाया। तब वे धनुष लेकर रथपर आरूढ हो दूसरे देशमें गये। अकेले ही नर्मदाके तटपर जाकर उन्होंने मेकला, मृत्तिकावती तथा ऋक्षवान् पर्वतको जीतकर शुक्तिमती नगरीमें निवास किया। ज्यामघकी पत्नी शैब्या थी, जो पतिव्रता होनेके साथ ही बड़ी प्रबल थी। यद्यपि राजाको कोई पुत्र नहीं था, तथापि उन्होंने पत्नीके भयसे दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं किया। एक बार किसी युद्धमें विजयी होनेपर उन्हें एक कन्या मिली। उसे रथपर बैठी देख स्त्रीने पूछा—'यह कौन है?' तब वे डरकर बोले—'यह तुम्हारी पुत्रवधू है।' यह सुनकर रानी बोली—'मेरे तो



कोई पुत्र नहीं, फिर यह किसकी पत्नी होनेसे पुत्रवधू हुई?' यह सुनकर ज्यामघने कहा—'तुम्हें जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसके लिये यह पत्नी प्रस्तुत की गयी है।' तत्पश्चात् रानी शैब्याने कठोर तपस्या करके एक विदर्भ नामक पुत्र उत्पन्न किया। उसका विवाह उक्त राजकन्यासे हुआ। उसके गर्भसे क्रथ और कौशिक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। वे दोनों बड़े ही शूर तथा युद्धविशारद थे। उसके बाद विदर्भके भीम नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्रका नाम कुन्ति हुआ। कुन्तिसे धृष्टका जन्म हुआ, जो संग्राममें धृष्ट और प्रतापी था। धृष्टके आवन्त, दशार्ह तथा विषहर नामक तीन पुत्र हुए, जो बड़े धर्मात्मा और शूरवीर थे। दशार्हके व्योमा और व्योमाके पुत्र जीमूत बतलाये जाते हैं। जीमूतके विकृति, विकृतिके भीमरथ, भीमरथके नवरथ और नवरथके पुत्र दशरथ हुए। दशरथके पुत्रका नाम शकुनि था। शकुनिसे करम्भ तथा करम्भसे देवरातका जन्म हुआ। देवरातके पुत्र देवक्षत्र तथा देवक्षत्रके महायशस्वी वृद्धक्षत्र हुए। वे देवकुमारके समान कान्तिमान् थे। इनके सिवा मधुरभाषी राजा मधुका भी जन्म हुआ, जो मधुवंशके प्रवर्तक थे। मधुके उनकी पत्नी वैदर्भीसे नरश्रेष्ठ पुरुद्वान्की उत्पत्ति हुई। मधुकी दूसरी पत्नी इक्ष्वाकुवंशकी कन्या थी। उससे सर्वगुणसम्पन्न सत्त्वान् हुए, जो सात्वत कुलकी कीर्तिको बढ़ानेवाले थे।

सत्त्वान्से सत्त्वगुण-सम्पन्ना कौसल्याने भजमान, देवावृध, अन्धक तथा वृष्णि नामक पुत्र उत्पन्न किये। इनके चार कुल यहाँ विस्तारपूर्वक बतलाये गये हैं। भजमानके दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम था बाह्यकसृञ्जयी और दूसरीका उपबाह्यकसृञ्जयी। उन दोनोंके गर्भसे बहुत-से पुत्र हुए। क्रिमि, क्रमण, धृष्ट, शूर तथा पुरंजय—ये भजमानके बाह्यकसृञ्जयीसे उत्पन्न हुए पुत्र थे। अयुताजित्, सहस्राजित्, शताजित् और दासक—ये भजमानद्वारा उपबाह्यकसृञ्जयीके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र थे। राजा देवावृध यज्ञपरायण रहते थे। उन्होंने सर्वगुणसम्पन्न पुत्र होनेके उद्देश्यसे भारी तपस्या की। तपस्यामें संलग्न होकर वे पर्णाशाके जलका आचमन करते थे। सदा ऐसा ही करनेके कारण उस नदीने उनका प्रिय करना चाहा। कल्याणमय नरेश देवावृधके अभीष्टकी सिद्धि कैसे हो—इस चिन्तामें देरतक पड़ी रहनेपर भी पर्णाशा सहसा किसी निश्चयपर न पहुँच सकी। उसे ऐसी कोई स्त्री नहीं मिली, जिसके गर्भसे वैसा सुयोग्य पुत्र उत्पन्न हो सके। तब उसने यह निश्चय किया कि मैं स्वयं ही चलकर इनकी सहधर्मिणी बनूँगी। यह विचारकर पर्णाशाने एक परम सुन्दरी कुमारीका रूप धारण करके राजाको पतिरूपमें वरण किया। राजाने भी उसकी कामना की। तदनन्तर उन उदारबुद्धि नरेशने उसमें एक तेजस्वी गर्भकी स्थापना की। तत्पश्चात् दसवें महीनेमें पर्णाशाने देवावृधके सर्वगुणसम्पन्न पुत्र बभ्रुको जन्म दिया। इस वंशके विषयमें पुराणोंके ज्ञाता देवावृधके गुणोंका बखान करते हुए निम्नाङ्कित प्रसिद्ध गाथाका गान करते हैं। 'हम जैसे आगे देखते हैं, वैसे ही दूर और निकट भी देखते हैं। हमारी दृष्टिमें बभ्रु सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। और देवावृध तो देवताओंके तुल्य हैं। बभ्रु और देवावृधके सम्पर्कमें आकर एक हजार चौहत्तर मनुष्य अमृतत्वको प्राप्त हो चुके हैं।'

बभ्रुका वंश बहुत बड़ा था। उसमें सब-के-सब यज्ञपरायण, महादानी, बुद्धिमान्, ब्राह्मणभक्त तथा सुदृढ आयुध धारण करनेवाले थे। मृत्तिकावती पुरीमें भोजवंशके क्षत्रिय रहते थे। अन्धकसे काश्यकी कन्याने चार पुत्र प्राप्त किये—कुकुर, भजमान, शशक और बलबर्हिष्। कुकुरके पुत्र वृष्टि, वृष्टिके कपोतरोमा, कपोतरोमाके तित्तिरि, उसके पुनर्वसु, पुनर्वसुके अभिजित् तथा अभिजित्के आहुक एवं आहुक नामक दो जुड़वाँ पुत्र हुए। इनके विषयमें ऐसी गाथा प्रसिद्ध है—'आहुक किशोरावस्थाके समान आकृतिवाले थे। वे अस्सी कवच धारण

किये हुए अपने श्वेत वर्णवाले परिवारके साथ पहले यात्रा करते थे। जो भोजवंशी आहुकके दोनों ओर चलते थे, उनमेंसे कोई ऐसा नहीं था, जो पुत्रवान् न हो, सौसे कम दान करता हो, हजार या सौसे कम आयुवाला हो, अशुद्ध कर्म करता हो अथवा यज्ञ न करता हो। भोजवंशी आहुककी पूर्व दिशामें इक्कीस हजार हाथी चलते थे, जिनपर सोने-चाँदीके हौदे कसे होते थे। उत्तर दिशामें भी उनकी उतनी ही संख्या होती थी। भोजवंशी प्रत्येक भूपालकी भुजामें धनुषकी प्रत्यञ्चाके चिह्न होते थे। अन्धकवंशियोंने अपनी बहिन आहुकीका विवाह अवन्तीनरेशसे किया था।' आहुकके काश्याके गर्भसे देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र हुए। देवकके चार पुत्र थे—देववान्, उपदेव, सदेव तथा देवरक्षक। इनके सिवा सात कन्याएँ भी थीं, जिनका विवाह वसुदेवजीके साथ हुआ। इनके नाम इस प्रकार हैं—देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुनाम्नी। उग्रसेनके नौ पुत्र थे, जिनमें कंस बड़ा था। उससे छोटे न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, सुभूषण, राष्ट्रपाल, सुतनु, अनावृष्टि तथा पुष्टिमान् थे। इनकी पाँच बहिनें थीं—कंसा, कंसवती, सुतनु, राष्ट्रपाली तथा कङ्का। यहाँतक कुकुरवंशी उग्रसेन और उनकी संतानोंका वर्णन हुआ।

भजमानके पुत्र विदूरथ हुए, जो रथियोंमें प्रधान थे। विदूरथके शूरवीर राजाधिदेव हुए। राजाधिदेवके पुत्र बड़े पराक्रमी थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—दत्त, अतिदत्त, शोणाश्व, श्वेतवाहन, शमी, दण्डशर्मा, दन्तशत्रु तथा शत्रुजित्। इन सबकी दो बहिनें थीं, जो श्रवणा और श्रविष्ठाके नामसे विख्यात हुईं। शमीके पुत्र प्रतिक्षत्र थे, प्रतिक्षत्रके पुत्र स्वयम्भोज, स्वयम्भोजसे हृदीक हुए। हृदीकके बहुत-से पुत्र हुए, जो भयानक पराक्रम करनेवाले थे। उनमें कृतवर्मा सबसे ज्येष्ठ और शतधन्वा मध्यम था। शेष भाइयोंके नाम इस प्रकार हैं—देवान्त, नरान्त, भिषग्, वैतरण, सुदान्त, अतिदान्त, निकाश्य और कामदम्भक। देवान्तके पुत्र विद्वान् कम्बलबर्हिष् हुए। उनके दो पुत्र थे—असमौजा तथा तामसौजा। असमौजाके कोई पुत्र नहीं हुआ; अतः उन्हें सुदंष्ट्र, सुचारु और कृष्ण—ये पुत्र गोदमें प्राप्त हुए। इस प्रकार अन्धकवंशी क्षत्रियोंका वर्णन किया गया।

ऊपर कह आये हैं कि क्रोष्टुके दो पत्नियाँ थीं—गान्धारी और माद्री। गान्धारीने महाबली अनमित्रको जन्म दिया और माद्रीने युधाजित्को। अनमित्रके निघ्न हुए। निघ्नके दो पुत्र थे—प्रसेन और सत्राजित्। ये दोनों ही शत्रु-सेनाको परास्त करनेवाले थे। भगवान् सूर्य सत्राजित्के प्राणोपम सखा थे। एक दिन रात्रि बीतनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् रथपर आरूढ़ हो स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये जलके किनारे गये। वहाँ पहुँचकर जब वे सूर्योपस्थान करने लगे, उस समय भगवान् सूर्य तेजोमण्डलसे युक्त स्पष्ट दिखायी देनेवाला रूप धारण करके उनके आगे प्रकट हो गये। तब राजा सत्राजित्ने सामने खड़े हुए सूर्यदेवसे कहा—'प्रभो! आप जिसके द्वारा सदा सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करते हैं, वह मणिरत्न मुझे देनेकी कृपा करें।' उनके यों कहनेपर भगवान् भास्करने उन्हें दिव्य स्यमन्तक मणि प्रदान की। सत्राजित्ने उसे गलेमें पहनकर अपने नगरमें प्रवेश किया। उन्हें देखकर सब लोग यों कहते हुए दौड़ने लगे—'यह देखो, सूर्य जा रहे हैं!' इस प्रकार नगरके लोगोंको आश्चर्यमें



डालकर वे अन्तःपुरमें पहुँचे। सत्राजित्ने वह उत्तम मणि अपने छोटे भाई प्रसेनजित्को दे दी, क्योंकि उसको वे बहुत प्यार करते थे। वह मणि अन्धकवंशी यादवोंके घरमें सुवर्ण उत्पन्न करती थी। वह जहाँ रहती, उसके निकटवर्ती जनपदोंमें मेघ समयपर वर्षा करता तथा किसीको रोगका भय नहीं रहता था। एक बार भगवान् श्रीकृष्णने प्रसेनके सम्मुख वह स्यमन्तक नामक मणिरत्न लेनेकी इच्छा

प्रकट की; किन्तु उसे वे नहीं पा सके। समर्थ होनेपर भी भगवान्‌ने उसका बलपूर्वक अपहरण नहीं किया।

एक दिन प्रसेन उस मणिरत्नसे विभूषित हो वनमें शिकार खेलनेके लिये गये। वहाँ स्यमन्तकके लिये ही एक सिंहके हाथसे मारे गये। सिंह उस मणिको मुखमें दबाये भागा जा रहा था। इतनेमें ही महाबली ऋक्षराज जाम्बवान् उधर आ निकले। वे सिंहको मारकर मणिरत्न ले अपनी गुफामें चले गये। इधर वृष्णि और अन्धक वंशके लोग यह संदेह करने लगे कि हो-न-हो श्रीकृष्णने ही मणिके लिये प्रसेनका वध किया है; क्योंकि उन्होंने एक बार वह मणि प्रसेनसे माँगी थी। भगवान् श्रीकृष्णने यह कार्य नहीं किया था, तो भी उनपर संदेह किया गया; अतः अपने कलङ्कका मार्जन करनेके लिये वे मणिको ढूँढ़ लानेकी प्रतिज्ञा करके वनमें गये। कुछ विश्वसनीय पुरुषोंके साथ प्रसेनके चरण-चिह्नोंका पता लगाते हुए वे उस स्थानपर गये, जहाँ प्रसेन शिकार खेल रहे थे। गिरिवर ऋक्षवान् तथा उत्तम पर्वत विन्ध्यपर उनका अन्वेषण करते हुए वे लोग थक गये। अन्तमें श्रीकृष्णने एक स्थानपर घोड़ेसहित मरे हुए प्रसेनकी लाश देखी, किन्तु वहाँ मणि नहीं मिली। तदनन्तर थोड़ी ही दूरपर ऋक्षके द्वारा मारे गये सिंहका शरीर दिखायी पड़ा। ऋक्ष अपने चरण-चिह्नोंसे पहचाना गया। उन्हीं चिह्नोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण जाम्बवान्‌की गुफाके द्वारपर पहुँचे। वहाँ उन्हें बिलके भीतरसे किसी धायकी कही हुई यह वाणी सुनायी दी—'मेरे सुकुमार बच्चे! तू मत रो। सिंहने प्रसेनको मारा और सिंह जाम्बवान्‌के हाथसे मारा गया। अब यह स्यमन्तक मणि तेरी ही है।'

यह आवाज सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उस गुफाके द्वारपर बलरामजीके साथ अन्य यादवोंको बिठा दिया और स्वयं उन्होंने गुफाके भीतर प्रवेश किया। बिलके भीतर जाम्बवान् दिखायी दिये। भगवान् वासुदेवने लगातार इक्कीस दिनोंतक उनके साथ बाहुयुद्ध किया। इसी बीचमें बलदेव आदि यादव द्वारका लौट गये और सबको श्रीकृष्णके मारे जानेकी सूचना दे दी। इधर भगवान् वासुदेवने महाबली जाम्बवान्‌को परास्त करके उनकी कन्या जाम्बवतीको



उन्हींके अनुरोधसे ग्रहण किया। साथ ही अपनी सफाई देनेके लिये वह स्यमन्तक मणि भी ले ली। तत्पश्चात् ऋक्षराजकी अभ्यर्थना करके वे बिलसे निकले और विनीत सेवकोंके साथ द्वारकामें गये। वहाँ सब यादवोंसे भरी हुई सभामें श्रीकृष्णने वह मणि सत्राजित्‌को दे दी। इस प्रकार मिथ्या



कलङ्क लगनेपर भगवान् श्रीकृष्णने स्यमन्तक मणिको ढूँढ़

निकाला और उसे देकर अपने ऊपर आये हुए कलङ्कका मार्जन किया। सत्राजित्के दस पत्नियाँ थीं। उनके गर्भसे उन्हें सौ पुत्र प्राप्त हुए, जिनमें तीन अधिक प्रसिद्ध थे—भगंकार, वातपति और वसुमेध। सत्राजित्के तीन कन्याएँ भी थीं, जो सब दिशाओंमें विख्यात थीं—सत्यभामा, व्रतिनी तथा प्रस्वापिनी। इनमें सत्यभामा सबसे उत्तम थी। उसका विवाह पिताने श्रीकृष्णके साथ कर दिया। जो भगवान् श्रीकृष्णके इस मिथ्या कलङ्कका श्रवण करता है, उसे मिथ्या कलङ्क कभी स्पर्श नहीं करते।

श्रीकृष्णने सत्राजित्को जो स्यमन्तक मणि दी थी, उसका अक्रूरने भोजवंशी शतधन्वाके द्वारा अपहरण करा दिया। महाबली शतधन्वा सत्राजित्को मारकर वह मणि ले आया तथा अक्रूरको दे दी। अक्रूरने उस उत्तम रत्नको लेते हुए शतधन्वासे प्रतिज्ञा करा ली कि 'मेरा नाम न बताना।'

पिताके मारे जानेपर मनस्विनी सत्यभामा दुःखसे आतुर हो उठी और रथपर आरूढ़ हो वारणावत नगरमें गयी। वहाँ अपने स्वामी श्रीकृष्णको शतधन्वाकी सारी करतूतें बतलाकर उनके पास खड़ी हो आँसू बहाने लगी। तब भगवान् श्रीकृष्ण तुरंत ही द्वारका आ पहुँचे और अपने बड़े भाई बलरामजीसे बोले—'प्रभो! प्रसेनको तो सिंहने मार डाला और सत्राजित्को शतधन्वाने। अब स्यमन्तक मणि मेरे अधिकारमें आनेवाली है। अब मैं ही उसका उत्तराधिकारी हूँ; इसलिये शीघ्र ही रथपर बैठिये और महारथी शतधन्वाको मारकर मणि छीन लीजिये। महाबाहो! अब स्यमन्तक हमलोगोंका ही होगा।' तदनन्तर शतधन्वा और श्रीकृष्णमें घोर युद्ध हुआ। शतधन्वा सब ओर अक्रूरके आनेकी बाट देखने लगा। वह और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों ही एक दूसरेपर कुपित हो रहे थे। जब अक्रूरने साथ नहीं दिया, तब शतधन्वाने भयभीत हो भाग जानेका विचार किया। उसके पास हृदया नामकी एक घोड़ी थी, जो सौ योजन चलती थी। वह उसीपर आरूढ़ हो श्रीकृष्णसे युद्ध कर रहा था। सौ योजनका मार्ग वेगसे तै करनेके कारण वह घोड़ी थककर शिथिल हो गयी। यह देख भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीसे कहा—'महाबाहो! आप यहीं खड़े रहें। मैंने उस घोड़ीकी कमजोरी देख ली है। अब तो मैं पैदल ही जाकर मणिरत्न स्यमन्तकको छीन लाऊँगा।' यह कहकर भगवान् पैदल ही शतधन्वाके पास गये और मिथिलाके समीप उन्होंने उसका वध कर डाला; परंतु उसके पास स्यमन्तक नहीं दिखायी दिया। महाबली शतधन्वाको मारकर जब श्रीकृष्ण लौटे, तब बलरामजीने कहा—'मणि मुझको दे दो।' भगवान् श्रीकृष्णने उत्तर दिया—'मणि नहीं मिली।' कुछ दिनके बाद नरश्रेष्ठ अक्रूर अन्धकवंशी वीरोंके साथ द्वारकामें लौट आये। भगवान् श्रीकृष्णने योगके द्वारा यह जान लिया कि मणि वास्तवमें अक्रूरके ही पास है। तब उन्होंने सभामें बैठकर अक्रूरसे कहा—'आर्य! मणिश्रेष्ठ स्यमन्तक आपके हाथ लग गया है। उसे मुझे दे दीजिये। उसकी प्रतीक्षामें बहुत समय व्यतीत हो चुका है।'

सम्पूर्ण यादवोंकी सभामें श्रीकृष्णके यों कहनेपर महामति अक्रूरजीने बिना किसी कष्टके वह मणि दे दी। सरलतासे उसकी प्राप्ति हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने वह मणि फिर अक्रूरको ही लौटा



दी। भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे प्राप्त हुए मणिरत्न स्यमन्तकको गलेमें पहनकर अक्रूर सूर्यकी भाँति प्रकाशित होने लगे।

—∾—

जम्बूद्वीप तथा उसके विभिन्न वर्षोंसहित भारतवर्षका वर्णन

मुनियोंने कहा—अहो ! आपने समस्त भरतवंशी राजाओंका यह बहुत बड़ा इतिहास कह सुनाया। अब हम समस्त भूमण्डलका वर्णन सुनना चाहते हैं। जितने समुद्र, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ तथा पवित्र देवताओंके स्थान हैं, समस्त भूतलका मान जितना बड़ा है, जिसके आधारपर यह टिका हुआ है तथा जो इसका उपादान कारण है, वह सब यथार्थ रूपसे बतलाइये।

लोमहर्षणजी बोले—मुनिवरो ! सुनो, मैं इस भूमण्डलका वृत्तान्त संक्षेपमें सुनाता हूँ। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर—ये सात द्वीप हैं, जो क्रमशः लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध तथा जलरूप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। इन सबके बीचमें जम्बूद्वीपकी स्थिति है। उसके मध्यभागमें सुवर्णमय मेरु पर्वत है, जिसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। वह पृथ्वीके भीतर सोलह हजार योजनतक चला गया है तथा उसके शिखरकी चौड़ाई बत्तीस हजार योजन है। उसके मूलका विस्तार सोलह हजार योजन है। वह पर्वत पृथ्वी-रूपी कमलकी कर्णिकाके रूपमें स्थित है। उसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषध पर्वत हैं तथा उत्तरमें नील, श्वेत और शृङ्गवान् गिरि हैं। मध्यके दो पर्वत (निषध और नील) एक-एक लाख योजन लंबे हैं। शेष पर्वत क्रमशः दस-दस हजार योजन छोटे होते गये हैं। उन सबकी ऊँचाई और चौड़ाई दो-दो हजार योजन है। मेरुके दक्षिणमें भारतवर्ष है। उससे उत्तर किम्पुरुष-वर्ष तथा उससे भी उत्तर हरिवर्ष है। इसी प्रकार मेरुके उत्तर भागमें सबके अन्तमें रम्यकवर्ष, उससे दक्षिण हिरण्मयवर्ष तथा उससे भी दक्षिण उत्तरकुरु है। इन छहों वर्षोंके बीचमें इलावृत वर्ष है, जिसके मध्यभागमें सुवर्णमय ऊँचा मेरु-पर्वत खड़ा है। यह वर्ष मेरुके चारों ओर नौ हजार योजन-तक फैला हुआ है। उसमें मेरुसे पूर्व मन्दराचल, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल तथा उत्तरमें सुपार्श्व पर्वतकी स्थिति है। इन चारों पर्वतोंपर क्रमशः कदम्ब, जम्बू, पीपल और वट—ये चार वृक्ष हैं, जो ग्यारह-ग्यारह सौ योजन विस्तारके हैं। वे वृक्ष उन पर्वतोंकी ध्वजाके रूपमें सुशोभित हैं। वह जम्बू वृक्ष ही इस द्वीपके जम्बूद्वीप नाम पड़नेका कारण है। उसके फल विशाल गजराजके बराबर होते हैं। वे गन्धमादन पर्वत-पर सब ओर गिरकर फूट जाते हैं। उनके रससे वहाँ जम्बू नामकी नदी बहती है। वहाँके निवासी उसी नदीका जल पीते हैं। उसके पीनेसे लोगोंके शरीर और मन स्वस्थ रहते हैं। उन्हें खेद नहीं होता। उनके शरीरमें दुर्गन्ध नहीं होती तथा उनकी इन्द्रियाँ कभी क्षीण नहीं होतीं। जम्बूके रसको पाकर उस नदीके तटकी मिट्टी जाम्बूनद नामक सुवर्णके रूपमें परिणत हो जाती है, जो सिद्धोंके आभूषणके काम आती है। मेरुसे पूर्व भद्राश्व और पश्चिममें केतुमाल वर्ष हैं। इन दोनोंके बीचमें इलावृत वर्ष है। मेरुके पूर्वमें चैत्ररथ, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें वैभ्राज तथा उत्तरमें नन्दनवन है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न दिशाओंमें अरुणोद, महाभद्र, असितोद तथा मानस—ये चार सरोवर हैं, जो सदा देवताओंके उपभोगमें आते हैं। शान्तवान्, चक्रकुञ्ज, कुररी, माल्यवान् तथा वैकङ्क आदि पर्वत मेरुके पूर्वभागमें केसराचलके रूपमें स्थित हैं। त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक तथा निषध आदि दक्षिण भागके केसर-पर्वत हैं। शिखिवास, वैदूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि आदि पश्चिमभाग-के केसराचल हैं। शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग तथा कालञ्जर आदि अन्य पर्वत उत्तरभागके केसराचल हैं। मेरु-गिरिके ऊपर चौदह हजार योजनके विस्तारवाली एक विशाल पुरी है, जो ब्रह्माजीकी सभा कहलाती है। उसमें सब ओर आठों दिशाओं और विदिशाओंमें इन्द्र आदि लोक-पालोंके विख्यात नगर हैं।

भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकलकर चन्द्रमण्डलको आप्लावित करनेवाली गङ्गा ब्रह्मपुरीके चारों ओर गिरती हैं। वहाँ गिरकर वे चार भागोंमें बँट जाती हैं। उस समय उनके क्रमशः सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नाम होते हैं। पूर्व ओर सीता एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर होती हुई पूर्ववर्ती भद्राश्ववर्षके मार्गसे समुद्रमें जा मिलती है। इसी प्रकार अलकनन्दा दक्षिण-पथसे भारतवर्षमें आती और वहाँ सात भेदोंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिल जाती है। चक्षु-की धारा पश्चिमके सम्पूर्ण पर्वतोंको लाँघकर केतुमालवर्षमें आती और समुद्रमें मिल जाती है। इसी प्रकार भद्रा उत्तर-गिरि तथा उत्तरकुरुको लाँघकर उत्तरसमुद्रमें मिलती है। माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत नीलगिरिसे लेकर निषध-पर्वततक फैले हुए हैं। उन दोनोंके मध्यभागमें मेरु कर्णिका-

वैश्य और शूद्र माने जाते हैं। ये सब लोग यज्ञपरायण हो सबके आत्मा, अविनाशी एवं यज्ञमें स्थित भगवान् विष्णुकी वायुरूपमें आराधना करते हैं। इस अत्यन्त मनोहर द्वीपमें देवताओंका सांनिध्य बना रहता है। वहाँ शाल्मलि नामका महान् वृक्ष है, जो उस द्वीपके नामकरणका कारण बना है। यह द्वीप अपने समान विस्तारवाले सुराके समुद्रसे घिरा हुआ है और वह सुराका समुद्र शाल्मलद्वीपसे दुगने विस्तारवाले कुशद्वीपद्वारा सब ओरसे आवृत है। कुशद्वीपमें ज्योतिष्मान् राजा हैं; अब उनके पुत्रोंके नाम बतलाये जाते हैं, सुनो— उद्भिद्, वेणुमान्, सुरथ, रन्धन, धृति, प्रभाकर और कपिल। इन्हींके नामोंपर वहाँके सात वर्ष प्रसिद्ध है। वहाँ मनुष्योंके साथ-साथ दैत्य, दानव, देवता, गन्धर्व, यक्ष और किंनर आदि भी निवास करते हैं। वहाँके मनुष्योंमें भी चार ही वर्ण हैं, जो अपने-अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहते हैं। उन वर्णोंके नाम इस प्रकार हैं—दमी, शुष्मी, स्नेह तथा मन्देह। ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी श्रेणीमें बताये गये हैं। वे शास्त्रोक्त कर्मोंका ठीक-ठीक पालन करते और अपने अधिकारके आरम्भक कर्मोंका क्षय होनेके लिये कुशद्वीपमें ब्रह्मारूपी भगवान् जनार्दनका यजन करते हैं। विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्टिमान्, कुशेशय, हरि और मन्दराचल—ये सात उस द्वीपके वर्ष-पर्वत हैं। नदियाँ भी सात ही हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत्, अम्भस् तथा मही। ये सब पापोंका अपहरण करनेवाली नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त भी वहाँ बहुत-सी छोटी-छोटी नदियाँ और पर्वत हैं। कुशद्वीपमें कुशोंका बहुत बड़ा वन है, अतः उसीके नामपर उस द्वीपकी प्रसिद्धि हुई है। वह द्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा हुआ है।

मुनिवरो! उपर्युक्त घीका समुद्र क्रौञ्चद्वीपसे घिरा हुआ है। उसका विस्तार कुशद्वीपसे दुगना है। क्रौञ्चद्वीपके राजा द्युतिमान् हैं। महात्मा द्युतिमान्के सात पुत्र हैं। महामना द्युतिमान्ने अपने पुत्रोंके ही नामसे क्रौञ्चद्वीपके सात विभाग किये, जिनके नाम ये हैं—कुशग, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि। क्रौञ्चद्वीपमें भी बड़े ही मनोरम सात वर्ष-पर्वत हैं, जिनपर देवता और गन्धर्व निवास करते हैं। उनके नाम ये हैं—क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, देवव्रत, धर्म, पुण्डरीकवान् तथा दुन्दुभि। ये एक दूसरेसे दुगने बड़े हैं। जितने द्वीप हैं, द्वीपोंमें जितने पर्वत हैं तथा पर्वतोंद्वारा सीमित जितने वर्ष हैं, उन सभी रमणीय प्रदेशोंमें देवताओंसहित समस्त प्रजा बेखटके निवास करती है। क्रौञ्चद्वीपमें पुष्कल, पुष्कर, धन्य तथा ख्यात—ये चार वर्ण हैं, जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रकी कोटिके माने गये हैं। वहाँ छोटी-बड़ी सैकड़ों नदियाँ हैं, जिनमें सात प्रधान हैं—गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति तथा पुण्डरीका। क्रौञ्चद्वीपके निवासी इन्हीं नदियोंका जल पीते हैं। वहाँ पुष्कर आदि वर्णोंके लोग यज्ञके समीप ध्यानयोगके द्वारा रुद्रस्वरूप भगवान् जनार्दनका यजन करते हैं। क्रौञ्चद्वीप अपने समान परिमाणवाले दधिमण्डोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है तथा वह समुद्र भी शाकद्वीपसे आवृत है। शाकद्वीपका विस्तार क्रौञ्चद्वीपसे दूना है। उसके स्वामी महात्मा भव्य हैं। उनके सात पुत्र हैं, जिन्हें राजाने उस द्वीपके सात विभाग करके वहाँका राज्य दिया है। राजपुत्रोंके नाम ये हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, मनीरक, कुसुमोद, मोदाकि तथा महाद्रुम। इन्हींके नामोंपर वहाँके सात वर्ष प्रसिद्ध हुए हैं। वहाँ भी सात पर्वत हैं, जो जलद आदि वर्षोंकी सीमा निर्धारित करते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—उदयगिरि, जलधार, रैवतक, श्याम, अम्भोगिरि, आस्तिकेय तथा केसरी। वहाँ शाक (सागवान)का बहुत बड़ा वृक्ष है, जहाँ सिद्ध और गन्धर्व निवास करते हैं। उसके पत्तोंको छूकर बहनेवाली वायुका स्पर्श होनेसे बड़ा आनन्द मिलता है। वहाँके पवित्र जनपद चार वर्णोंके लोगोंसे सुशोभित हैं। शाकद्वीपमें महात्मा पुरुष निर्भय एवं नीरोग होकर निवास करते हैं। वहाँकी नदियाँ भी परम पवित्र तथा सब पापोंका नाश करनेवाली हैं। उनके नाम ये हैं—सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षु, धेनुका तथा गभस्ति। इनके अतिरिक्त वहाँ छोटी-छोटी हजारों नदियाँ हैं। पर्वत भी सहस्रोंकी संख्यामें हैं। जलदादि वर्षोंके निवासी बड़ी प्रसन्नताके साथ पूर्वोक्त नदियोंका जल पीते हैं। मग, मागध, मानस तथा मन्दग—ये ही वहाँके चार वर्ण हैं। मग ब्राह्मण, मागध क्षत्रिय, मानस वैश्य तथा मन्दग शूद्र जानने चाहिये। शाकद्वीपमें रहनेवाले लोग अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर शास्त्रोक्त सत्कर्मोंके द्वारा सूर्यरूपधारी भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। शाकद्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले क्षीरसागरद्वारा सब ओरसे घिरा हुआ है।

क्षीरसागरको पुष्करद्वीपने चारों ओरसे घेर रक्खा है। उसका विस्तार शाकद्वीपसे दुगना है। पुष्करके महाराज

सवनके दो पुत्र हुए—महावीर और धातकि। उन्हीं दोनोंके नामपर उस द्वीपके दो विभाग हुए हैं। एकका नाम महावीत-वर्ष और दूसरेका धातकिवर्ष है। उस द्वीपमें एक ही वर्ष-पर्वत है, जो मानसोत्तरके नामसे विख्यात है। मानसोत्तर पर्वत पुष्करद्वीपके मध्यभागमें वलयाकार स्थित है। उसकी ऊँचाई पचास हजार योजनकी है, चौड़ाई भी उतनी ही है। वह उस द्वीपके चारों ओर मण्डलाकार स्थित है। वह पुष्करद्वीपको बीचसे चीरता हुआ-सा खड़ा है। उसीसे विभक्त होकर उस द्वीपके दो खण्ड हो गये हैं। प्रत्येक खण्ड गोलाकार है और उन दोनों खण्डोंके बीचमें वह महापर्वत स्थित है। वहाँके मनुष्य दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। वे सब लोग रोग-शोकसे वर्जित तथा राग-द्वेषसे शून्य होते हैं। उनमें ऊँच-नीचका कोई भेद नहीं है। वहाँ न कोई वध्य है, न वधिक। वहाँके लोगोंमें ईर्ष्या, असूया, भय, रोष, दोष और लोभ आदि नहीं होते। महावीतवर्ष मानसोत्तर पर्वतके बाहर है और धातकिवर्ष भीतर। उसमें देवता और दैत्य आदि सभी निवास करते हैं। पुष्करद्वीपमें सत्य और असत्य नहीं हैं। उसके दोनों खण्डोंमें न कोई नदी है न दूसरा पर्वत। वहाँके मनुष्य देवताओंके समान रूप और वेषवाले होते हैं। उन दोनों वर्षोंमें वर्ण और आश्रमका आचार नहीं है। वहाँ किसीके धर्मका अपहरण होता। वेदत्रयी, वार्ता (कृषि-वाणिज्य आदि), दण्डनीति तथा शुश्रूषा आदिका व्यवहार भी नहीं देखा जाता; अतः उक्त दोनों वर्ष भूमण्डलके उत्तम स्वर्ग समझे जाते हैं। वहाँका प्रत्येक समय सबके लिये सुखद होता है। किसीको जरा-अवस्था या रोगका कष्ट नहीं होता। पुष्करद्वीपमें एक बरगदका विशाल वृक्ष है, जो ब्रह्माजीका उत्तम स्थान माना गया है। उसके नीचे देवता और असुरोंसे पूजित भगवान् ब्रह्मा निवास करते हैं। पुष्करद्वीप अपने समान विस्तारवाले मीठे जलके समुद्रसे घिरा है। इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे आवृत हैं। एक द्वीप और समुद्रका विस्तार समान माना गया है। उसकी अपेक्षा दूसरे समुद्र और द्वीप दुगने बड़े हैं। सब समुद्रोंमें सदा समान जल रहता है। उसमें कभी न्यूनता या अधिकता नहीं होती। जैसे बटलोईमें रक्खा हुआ जल आगका संयोग होनेसे उफन उठता है, उसी प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धि होनेपर समुद्रके जलमें ज्वार आता है। उसका जल बढ़ता है और फिर घट जाता है; तथापि उसमें न्यूनता या अधिकता नहीं होती। शुक्ल और कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाके उदय और अस्त होनेपर समुद्रके जलका उत्थान पंद्रह सौ अंगुल ऊँचेतक देखा गया है। उत्थानके बाद जल पुनः उतारसे आ जाता है। पुष्करद्वीपमें सबके लिये भोजन स्वतः उपस्थित हो जाता है। वहाँकी समस्त प्रजा सदा षड्रसयुक्त भोजन करती है। स्वादिष्ठ जलवाले समुद्रके दोनों तटोंपर लोकोंकी स्थिति देखी जाती है। उसके आगेकी भूमि सुवर्णमयी है, जिसका विस्तार पुष्करद्वीपसे दुगना है। वहाँ किसी भी जीव-जन्तुका निवास नहीं है। उसके आगे लोकालोक पर्वत है, जो दस हजार योजनतक फैला हुआ है। उसकी ऊँचाई भी उतने ही योजनोंकी है। लोकालोक पर्वतके बाद अन्धकार है, जो उस पर्वतको सब ओरसे आच्छादित करके स्थित है। अन्धकार भी अण्डकटाहके द्वारा सब ओरसे घिरा है। इस प्रकार अण्डकटाह, द्वीप तथा पर्वतोसहित इस सम्पूर्ण पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। यह भूमि सबका धारण-पोषण करनेवाली है। इसमें सब भूतोंकी अपेक्षा अधिक गुण हैं। यह सम्पूर्ण जगत्की आधारभूता है।

पाताल और नरकोंका वर्णन तथा हरिनाम-कीर्तनकी महिमा

लोमहर्षणजी कहते हैं—मुनिवरो! इस प्रकार यह पृथ्वीका विस्तार बतलाया गया। इसकी ऊँचाई भी सत्तर हजार योजन है। पृथ्वीके भीतर सात तल हैं, जिनमेंसे प्रत्येककी ऊँचाई दस-दस हजार योजनकी है। उन सातों तलोंके नाम ये हैं—अतल, वितल, नितल, सुतल, तलातल, रसातल तथा पाताल। इनकी भूमि क्रमशः काली, सफेद, लाल, पीली, कँकरीली, पथरीली तथा सुवर्णमयी है। सातों ही तल बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित हैं। उनमें दानव और दैत्योंकी सैकड़ों जातियाँ निवास करती हैं। विशालकाय नागोंके कुटुम्ब भी उनके भीतर रहते हैं। एक समय पातालसे लौटे हुए देवर्षि नारदजीने स्वर्गलोककी सभामें कहा था—'पाताललोक स्वर्गलोकसे भी रमणीय है। वहाँ सुन्दर प्रभायुक्त चमकीली मणियाँ हैं, जो परम आनन्द प्रदान करनेवाली हैं। वे नागोंके अलंकारों एवं आभूषणोंके काम आती हैं। भला,

के आकारमें स्थित है । भारत, केतुमाल, भद्राश्व तथा कुरु—ये द्वीप लोकरूपी कमलके पत्र हैं । जठर और देवकूट—ये दो मर्यादा-पर्वत हैं । ये नीलसे निषध पर्वततक उत्तर-दक्षिण फैले हुए हैं । ये दोनों मेरुके पश्चिमभागमें पूर्ववत् स्थित हैं । त्रिशृङ्ग और जारुधि—ये उत्तर-दिशाके वर्ष-पर्वत हैं, जो पूर्वसे पश्चिम ओर समुद्रके भीतरतक चले गये हैं । ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने मर्यादा-पर्वतोंका वर्णन किया, जो मेरुके चारों ओर दो-दो करके स्थित हैं । मेरु-पर्वतके सब ओर जो केसर-पर्वत बतलाये गये हैं, उनकी गुफाएँ बड़ी मनोहर हैं, जिनमें सिद्ध और चारण निवास करते हैं । वहाँ सुरम्य वन और नगर हैं । लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य तथा इन्द्र आदि देवताओंके बड़े-बड़े मन्दिर हैं, जो किन्नरोंसे सेवित हैं । उन पर्वतोंकी रमणीय गुफाओंमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव दिन-रात विहार किया करते हैं । वे पर्वत इस पृथ्वीके स्वर्ग माने गये हैं । वहाँ धर्मात्माओंका निवास है, पापी मनुष्य सैकड़ों जन्म धारण करनेपर भी वहाँ नहीं जा सकते । भद्राश्ववर्षमें भगवान् विष्णु हयग्रीवरूपसे विराजमान हैं । केतुमालमें वाराह, भारतवर्षमें कच्छप तथा उत्तरकुरुमें मत्स्यरूप धारण करके रहते हैं । सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि सर्वस्वरूप हैं तथा विश्वरूपमें वे सर्वत्र सुशोभित होते हैं । अखिल जगत्स्वरूप भगवान् विष्णु सबके आधारभूत हैं । किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें शोक, आयास, उद्वेग तथा क्षुधाका भय आदि दोष नहीं हैं । वहाँकी प्रजा सब प्रकारसे स्वस्थ, निर्भय तथा सब प्रकारके दुःखोंसे रहित है । उन सबकी स्थिर आयु दस-बारह हजार वर्षोंतककी होती है । इन स्थानोंमें पृथ्वीके क्षुधा, पिपासा आदि अन्य दोष भी नहीं प्रकट होते । इन सभी वर्षोंमें सात-सात कुल-पर्वत हैं, जिनसे सैकड़ों नदियाँ प्रकट हुई हैं ।

समुद्रके उत्तर और हिमालयके दक्षिणका जो देश है, उसका नाम भारतवर्ष है । उसीमें राजा भरतकी संतान तथा प्रजा रहती है । उसका विस्तार नौ हजार योजन है । भारतवर्ष कर्मभूमि है । वहाँ इच्छानुसार साधन करनेवालोंको स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं । भारतमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुल-पर्वत हैं । यहाँ सकाम साधनसे स्वर्ग प्राप्त होता है, निष्काम साधनासे मोक्ष मिलता है तथा यहाँके लोग पाप करनेपर तिर्यग्योनि और नरकोंमें भी पड़ते हैं । भारतके सिवा अन्यत्र मनुष्योंके लिये कर्मभूमि नहीं है । इस भारतवर्षके नौ भेद हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गन्धर्वद्वीप, वारुणद्वीप तथा समुद्रसे घिरा हुआ यह नवाँ द्वीप भारत । यह नवम द्वीप दक्षिणसे उत्तरतक एक हजार योजन लंबा है । इसके अंदर पूर्व-दिशामें किरात तथा पश्चिम-दिशामें यवन रहते हैं; मध्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातिके लोग रहते हैं, जिनकी क्रमशः यज्ञ, युद्ध, वाणिज्य तथा सेवा—ये चार वृत्तियाँ हैं । शतद्रू (सतलज) और चन्द्रभागा (चनाब) आदि नदियाँ हिमालयकी शाखाओंसे निकली हैं । वेदस्मृति आदि सरिताओंका उद्गम पारियात्र पर्वत है । नर्मदा और सुरमा आदि नदियाँ विन्ध्यपर्वतसे प्रकट हुई हैं । तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या तथा कावेरी आदि सरिताएँ ऋक्षकी शाखासे निकली हैं । इनका नाम श्रवण करनेमात्रसे ये सब पापोंको हर लेती हैं । गोदावरी, भीमरथी तथा कृष्णवेणी आदि पापनाशिनी नदियाँ सह्यपर्वतकी संतानें हैं । कृतमाला, ताम्रपर्णी आदिका उद्गमस्थान मलयपर्वत है । त्रिसामा, ऋषिकुल्या आदि नदियाँ महेन्द्र-पर्वतसे प्रकट हुई हैं । ऋषिकुल्या और कुमारा आदि नदियाँ शुक्तिमान्‌के शाखापर्वतोंसे निकली हैं । इन नदियोंकी शाखाभूत सहस्रों उपनदियाँ भी हैं । इनके मध्यमें कुरु, पाञ्चाल, मध्यदेश, पूर्वदेश, कामरूप (आसाम), पौण्ड्र, कलिङ्ग (उड़ीसा), मगध, दक्षिणके प्रदेश, अपरान्त, सौराष्ट्र (काठियावाड़), शूद्र, आभीर, अर्बुद (आबू), मरु (मारवाड़), मालवा, पारियात्र, सौवीर, सिंध, शाल्व, शाकल्य, मद्र, अम्बष्ठ तथा पारसीक आदि प्रदेश और वहाँके निवासी रहते हैं । वे उपर्युक्त नदियोंके जल पीते तथा समभावसे रहते हैं । उक्त प्रदेशोंके लोग बड़े सौभाग्यशाली एवं हृष्ट-पुष्ट हैं । उन सबका निवास भारतवर्षमें ही है । महामुने ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार युग इस भारतवर्षमें ही होते हैं, अन्यत्र कहीं नहीं होते । यहीं पारलौकिक लाभके लिये यति तपस्या करते, यज्ञकर्ता अग्निमें आहुति डालते तथा दाता आदरपूर्वक दान देते हैं । जम्बूद्वीपमें मनुष्य सदा अनेक यज्ञोंद्वारा यज्ञमय यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुका यजन करते हैं । अन्य द्वीपोंमें दूसरे प्रकारकी उपासनाएँ हैं । महामुने ! जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि यह कर्मभूमियाँ हैं और अन्य देश भोगभूमि हैं । यहाँ लाखों जन्म धारण करनेके बाद बहुत बड़े पुण्यके संचयसे जीव कभी मनुष्य-जन्म पाता है । देवता यह गीत गाते हैं कि 'जो जीव स्वर्ग और मोक्षके हेतुभूत भारतवर्षके भूभागमें

बारंबार मनुष्यरूपमें उत्पन्न होते हैं और फलेच्छासे रहित कर्मका अनुष्ठान करके उन्हें परमात्मस्वरूप श्रीविष्णुको अर्पण कर देते हैं, वे धन्य हैं।* जो इस कर्मभूमिमें उत्पन्न हो सत्कर्मोंद्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध करके भगवान् अनन्तमें लीन होते हैं, उनका जीवन धन्य है। हमें पता नहीं, इस स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले पुण्यलोकके क्षीण होनेपर हम फिर कहाँ देह धारण करेंगे। वे मनुष्य, जो भारतवर्षमें जन्म लेकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे सम्पन्न हैं, धन्य हैं।' विप्रवरो! यह नौ वर्षोंसे युक्त जम्बूद्वीपका वर्णन किया गया। उसका विस्तार एक लाख योजन है। तथापि यहाँ संक्षेपसे ही बताया गया। जम्बूद्वीपको गोलाकारमें चारों ओरसे घेरकर खारे पानीका समुद्र स्थित है। उसका विस्तार भी एक लाख योजन है।

प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन और भूमिका मान

लोमहर्षणजी कहते हैं—जिस प्रकार जम्बूद्वीप खारे पानीके समुद्रसे घिरा हुआ है, उसी प्रकार उस समुद्रको भी घेरकर प्लक्षद्वीप स्थित है। जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन बताया गया है। प्लक्षद्वीपका विस्तार उससे दुगना है। प्लक्षद्वीपके स्वामी राजा मेधातिथिके सात पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ पुत्रका नाम शान्तमय है। उससे छोटे क्रमशः शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक तथा ध्रुव हैं। ये सभी प्लक्षद्वीपके राजा हुए। इन्हींके नामपर उस द्वीपके सात वर्ष हैं। उनकी सीमा बनानेवाले सात ही वर्षपर्वत हैं। उनके नाम बतलाता हूँ, सुनो। गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना तथा वैभ्राज—ये सात वर्षपर्वत हैं। इन रमणीय पर्वतोंपर देवताओं और गन्धर्वोंसहित वहाँकी प्रजा निवास करती है। उन सबमें पवित्र जनपद हैं, वीर पुरुष हैं। वहाँ किसीकी मृत्यु नहीं होती। मानसिक चिन्ताएँ तथा व्याधियाँ भी नहीं सतातीं। वहाँ हर समय सुख मिलता है। प्लक्षद्वीपके वर्षोंमें सात ही ऐसी नदियाँ हैं, जो समुद्रमें जा मिलती हैं। अनुतप्ता, शिखा, विपाशा, त्रिदिवा, क्रमु, अमृता तथा शुक्रा—ये सात वहाँकी नदियाँ हैं। इस प्रकार प्लक्षद्वीपके प्रधान-प्रधान पर्वतों और नदियोंका वर्णन किया गया। छोटी-छोटी नदियाँ और छोटे-छोटे पहाड़ तो वहाँ हजारों हैं। उन वर्षोंमें युगोंकी व्यवस्था नहीं है। वहाँ सदा ही त्रेतायुगके समान समय रहता है। प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपतकके लोग पाँच हजार वर्षोंतक नीरोग जीवन व्यतीत करते हैं। उन द्वीपोंमें वर्णाश्रम-विभागपूर्वक चार प्रकारका धर्म है तथा वहाँ चार ही वर्ण हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—आर्यक, कुरु, विविंश तथा भावी। ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी कोटिके हैं। उस द्वीपके मध्यभागमें प्लक्ष (पाकड़) नामका बहुत विशाल वृक्ष है, जो जम्बूद्वीपमें स्थित जम्बू (जामुन) वृक्षके ही बराबर है। उसीके नामपर उस द्वीपका प्लक्षद्वीप नाम रक्खा गया है। प्लक्षद्वीपमें आर्यक आदि वर्णोंके लोग जगत्स्रष्टा सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिका चन्द्रमाके रूपमें यजन करते हैं। प्लक्षद्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले मण्डलाकार इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है। अब शाल्मलद्वीपका वर्णन सुनो।

शाल्मलद्वीपके स्वामी वीर वपुष्मान् हैं। उनके सात पुत्र हैं। और उन्हींके नामपर वहाँ सात वर्ष स्थित हैं; जिनके नाम इस प्रकार हैं—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस तथा सुप्रभ। इक्षुरसका जो समुद्र बताया गया है, वह अपने दुगने विस्तारवाले शाल्मलद्वीपके द्वारा सब ओरसे घिरा हुआ है। वहाँ भी सात ही वर्षपर्वत हैं, जहाँ रत्नोंकी खानें हैं। नदियाँ भी सात ही हैं। पहले पर्वतोंके नाम सुनो। कुमुद, उन्नत, बलाहक, द्रोण, कङ्क, महिष तथा पर्वतश्रेष्ठ ककुद्मान्—ये सात पर्वत हैं। इनमें द्रोण-पर्वतपर कितनी ही महौषधियाँ हैं। नदियोंके नाम इस प्रकार हैं—श्रोणी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्रा, विमोचनी तथा निवृत्ति। वहाँ श्वेत आदि सात वर्ष हैं, जिनमें चारों वर्णोंके लोग निवास करते हैं। शाल्मलद्वीपमें कपिल, अरुण, पीत तथा कृष्ण वर्णके लोग होते हैं, जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय,

* अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने। यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः॥
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम। कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात्॥
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः॥
कर्माण्यसंकल्पिततत्फलानि संन्यस्य विष्णौ परमात्मरूपे।

(१९।२३—२६)

वैश्य और शूद्र माने जाते हैं। वे सब लोग यज्ञपरायण हो सबके आत्मा, अविनाशी एवं यज्ञमें स्थित भगवान् विष्णुकी वायुरूपमें आराधना करते हैं। इस अत्यन्त मनोहर द्वीपमें देवताओंका सांनिध्य बना रहता है। वहाँ शाल्मलि नामका महान् वृक्ष है, जो उस द्वीपके नामकरणका कारण बना है। यह द्वीप अपने समान विस्तारवाले सुराके समुद्रसे घिरा हुआ है और वह सुराका समुद्र शाल्मलद्वीपसे दुगने विस्तारवाले कुशद्वीपद्वारा सब ओरसे आवृत है। कुशद्वीपमें ज्योतिष्मान् राजा हैं; अब उनके पुत्रोंके नाम बतलाये जाते हैं, सुनो— उद्भिद्, वेणुमान्, सुरथ, रन्धन, धृति, प्रभाकर और कपिल। इन्हींके नामोंपर वहाँके सात वर्ष प्रसिद्ध हैं। वहाँ मनुष्योंके साथ-साथ दैत्य, दानव, देवता, गन्धर्व, यक्ष और किंनर आदि भी निवास करते हैं। वहाँके मनुष्योंमें भी चार ही वर्ण हैं, जो अपने-अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहते हैं। उन वर्णोंके नाम इस प्रकार हैं—दमी, शुष्मी, स्नेह तथा मन्देह। ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी श्रेणीमें बताये गये हैं। वे शास्त्रोक्त कर्मोंका ठीक-ठीक पालन करते और अपने अधिकारके आरम्भक कर्मोंका क्षय होनेके लिये कुशद्वीपमें ब्रह्मारूपी भगवान् जनार्दनका यजन करते हैं। विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्टिमान्, कुशेशय, हरि और मन्दराचल—ये सात उस द्वीपके वर्ष-पर्वत हैं। नदियाँ भी सात ही हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत्, अम्भस् तथा मही। ये सब पापोंका अपहरण करनेवाली नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त भी वहाँ बहुत-सी छोटी-छोटी नदियाँ और पर्वत हैं। कुशद्वीपमें कुशोंका बहुत बड़ा वन है, अतः उसीके नामपर उस द्वीपकी प्रसिद्धि हुई है। वह द्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा हुआ है।

मुनिवरो! उपर्युक्त घीका समुद्र क्रौञ्चद्वीपसे घिरा हुआ है। उसका विस्तार कुशद्वीपसे दुगना है। क्रौञ्चद्वीपके राजा द्युतिमान् हैं। महात्मा द्युतिमान्‌के सात पुत्र हैं। महामना द्युतिमान्‌ने अपने पुत्रोंके ही नामसे क्रौञ्चद्वीपके सात विभाग किये, जिनके नाम ये हैं—कुशग, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि। क्रौञ्चद्वीपमें भी बड़े ही मनोरम सात वर्ष-पर्वत हैं, जिनपर देवता और गन्धर्व निवास करते हैं। उनके नाम ये हैं—क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, देवव्रत, धर्म, पुण्डरीकवान् तथा दुन्दुभि। ये एक दूसरेसे दुगने बड़े हैं। जितने द्वीप हैं, द्वीपोंमें जितने पर्वत हैं तथा पर्वतोंद्वारा सीमित जितने वर्ष हैं, उन सभी रमणीय प्रदेशोंमें देवताओंसहित समस्त प्रजा बेखटके निवास करती है। क्रौञ्चद्वीपमें पुष्कल, पुष्कर, धन्य तथा ख्यात—ये चार वर्ण हैं, जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रकी कोटिके माने गये हैं। वहाँ छोटी-बड़ी सैकड़ों नदियाँ हैं, जिनमें सात प्रधान हैं—गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति तथा पुण्डरीका। क्रौञ्चद्वीपके निवासी इन्हीं नदियोंका जल पीते हैं। वहाँ पुष्कर आदि वर्णोंके लोग यज्ञके समीप ध्यानयोगके द्वारा रुद्रस्वरूप भगवान् जनार्दनका यजन करते हैं। क्रौञ्चद्वीप अपने समान परिमाणवाले दधिमण्डोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है तथा वह समुद्र भी शाकद्वीपसे आवृत है। शाकद्वीपका विस्तार क्रौञ्चद्वीपसे दूना है। उसके स्वामी महात्मा भव्य हैं। उनके सात पुत्र हैं, जिन्हें राजाने उस द्वीपके सात विभाग करके वहाँका राज्य दिया है। राजपुत्रोंके नाम ये हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, मनीरक, कुसुमोद, मोदाकि तथा महाद्रुम। इन्हींके नामोंपर वहाँके सात वर्ष प्रसिद्ध हुए हैं। वहाँ भी सात पर्वत हैं, जो जलद आदि वर्षोंकी सीमा निर्धारित करते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—उदयगिरि, जलधार, रैवतक, श्याम, अम्भोगिरि, आस्तिकेय तथा केसरी। वहाँ शाक (सागवान)का बहुत बड़ा वृक्ष है, जहाँ सिद्ध और गन्धर्व निवास करते हैं। उसके पत्तोंको छूकर बहनेवाली वायुका स्पर्श होनेसे बड़ा आनन्द मिलता है। वहाँके पवित्र जनपद चार वर्णोंके लोगोंसे सुशोभित हैं। शाकद्वीपमें महात्मा पुरुष निर्भय एवं नीरोग होकर निवास करते हैं। वहाँकी नदियाँ भी परम पवित्र तथा सब पापोंका नाश करनेवाली हैं। उनके नाम ये हैं—सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षु, धेनुका तथा गभस्ति। इनके अतिरिक्त वहाँ छोटी-छोटी हजारों नदियाँ हैं। पर्वत भी सहस्रोंकी संख्यामें हैं। जलदादि वर्षोंके निवासी बड़ी प्रसन्नताके साथ पूर्वोक्त नदियोंका जल पीते हैं। मग, मागध, मानस तथा मन्दग—ये ही वहाँके चार वर्ण हैं। मग ब्राह्मण, मागध क्षत्रिय, मानस वैश्य तथा मन्दग शूद्र जानने चाहिये। शाकद्वीपमें रहनेवाले लोग अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर शास्त्रोक्त सत्कर्मोंके द्वारा सूर्यरूपधारी भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। शाकद्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले क्षीरसागरद्वारा सब ओरसे घिरा हुआ है।

क्षीरसागरको पुष्करद्वीपने चारों ओरसे घेर रक्खा है। उसका विस्तार शाकद्वीपसे दुगना है। पुष्करके महाराज

सवनके दो पुत्र हुए—महावीर और धातकि। उन्हीं दोनोंके नामपर उस द्वीपके दो विभाग हुए हैं। एकका नाम महावीत-वर्ष और दूसरेका धातकिवर्ष है। उस द्वीपमें एक ही वर्ष-पर्वत है, जो मानसोत्तरके नामसे विख्यात है। मानसोत्तर पर्वत पुष्करद्वीपके मध्यभागमें वलयाकार स्थित है। उसकी ऊँचाई पचास हजार योजनकी है, चौड़ाई भी उतनी ही है। वह उस द्वीपके चारों ओर मण्डलाकार स्थित है। वह पुष्करद्वीपको बीचसे चीरता हुआ-सा खड़ा है। उसीसे विभक्त होकर उस द्वीपके दो खण्ड हो गये हैं। प्रत्येक खण्ड गोलाकार है और उन दोनों खण्डोंके बीचमें वह महापर्वत स्थित है। वहाँके मनुष्य दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। वे सब लोग रोग-शोकसे वर्जित तथा राग-द्वेषसे शून्य होते हैं। उनमें ऊँच-नीचका कोई भेद नहीं है। वहाँ न कोई वध्य है, न वधिक। वहाँके लोगोंमें ईर्ष्या, असूया, भय, रोष, दोष और लोभ आदि नहीं होते। महावीतवर्ष मानसोत्तर पर्वतके बाहर है और धातकिवर्ष भीतर। उसमें देवता और दैत्य आदि सभी निवास करते हैं। पुष्करद्वीपमें सत्य और असत्य नहीं हैं। उसके दोनों खण्डों-में न कोई नदी है न दूसरा पर्वत। वहाँके मनुष्य देवताओंके समान रूप और वेषवाले होते हैं। उन दोनों वर्षोंमें वर्ण और आश्रमका आचार नहीं है। वहाँ किसीके धर्मका अपहरण नहीं होता। वेदत्रयी, वार्ता (कृषि-वाणिज्य आदि), दण्डनीति तथा शुश्रूषा आदिका व्यवहार भी नहीं देखा जाता; अतः उक्त दोनों वर्ष भूमण्डलके उत्तम स्वर्ग समझे जाते हैं। वहाँका प्रत्येक समय सबके लिये सुखद होता है। किसी-को जरा-अवस्था या रोगका कष्ट नहीं होता। पुष्करद्वीपमें एक बरगदका विशाल वृक्ष है, जो ब्रह्माजीका उत्तम स्थान माना गया है। उसके नीचे देवता और असुरोंसे पूजित भगवान् ब्रह्मा निवास करते हैं। पुष्करद्वीप अपने समान विस्तारवाले मीठे जलके समुद्रसे घिरा है। इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे आवृत हैं। एक द्वीप और समुद्रका विस्तार समान माना गया है। उसकी अपेक्षा दूसरे समुद्र और द्वीप दुगने बड़े हैं। सब समुद्रोंमें सदा समान जल रहता है। उसमें कभी न्यूनता या अधिकता नहीं होती। जैसे बटलोईमें रक्खा हुआ जल आगका संयोग होनेसे उफन उठता है, उसी प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धि होनेपर समुद्रके जलमें ज्वार आता है। उसका जल बढ़ता है और फिर घट जाता है; तथापि उसमें न्यूनता या अधिकता नहीं होती। शुक्ल और कृष्ण पक्षमें चन्द्रमाके उदय और अस्त होनेपर समुद्रके जलका उत्थान पंद्रह सौ अंगुल ऊँचेतक देखा गया है। उत्थानके बाद जल पुनः उतारसे आ जाता है। पुष्करद्वीपमें सबके लिये भोजन स्वतः उपस्थित हो जाता है। वहाँकी समस्त प्रजा सदा षड्रसयुक्त भोजन करती है। स्वादिष्ठ जलवाले समुद्रके दोनों तटोंपर लोकोंकी स्थिति देखी जाती है। उसके आगेकी भूमि सुवर्णमयी है, जिसका विस्तार पुष्करद्वीपसे दुगना है। वहाँ किसी भी जीव-जन्तुका निवास नहीं है। उसके आगे लोकालोक पर्वत है, जो दस हजार योजनतक फैला हुआ है। उसकी ऊँचाई भी उतने ही योजनोंकी है। लोकालोक पर्वतके बाद अन्धकार है, जो उस पर्वतको सब ओरसे आच्छादित करके स्थित है। अन्धकार भी अण्डकटाहके द्वारा सब ओरसे घिरा है। इस प्रकार अण्डकटाह, द्वीप तथा पर्वतोंसहित इस सम्पूर्ण पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। यह भूमि सबका धारण-पोषण करनेवाली है। इसमें सब भूतोंकी अपेक्षा अधिक गुण हैं। यह सम्पूर्ण जगत्‌की आधारभूता है।

पाताल और नरकोंका वर्णन तथा हरिनाम-कीर्तनकी महिमा

लोमहर्षणजी कहते हैं—मुनिवरो! इस प्रकार यह पृथ्वीका विस्तार बतलाया गया। इसकी ऊँचाई भी सत्तर हजार योजन है। पृथ्वीके भीतर सात तल हैं, जिनमेंसे प्रत्येककी ऊँचाई दस-दस हजार योजनकी है। उन सातों तलोंके नाम ये हैं—अतल, वितल, नितल, सुतल, तलातल, रसातल तथा पाताल। इनकी भूमि क्रमशः काली, सफेद, लाल, पीली, कँकरीली, पथरीली तथा सुवर्णमयी है। सातों ही तल बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित हैं। उनमें दानव और दैत्योंकी सैकड़ों जातियाँ निवास करती हैं। विशालकाय नागोंके कुटुम्ब भी उनके भीतर रहते हैं। एक समय पाताल-से लौटे हुए देवर्षि नारदजीने स्वर्गलोककी सभामें कहा था—'पाताललोक स्वर्गलोकसे भी रमणीय है। वहाँ सुन्दर प्रभायुक्त चमकीली मणियाँ हैं, जो परम आनन्द प्रदान करनेवाली हैं। वे नागोंके अलंकारों एवं आभूषणोंके काम आती हैं। भला,

पातालकी तुलना किससे हो सकती है। वहाँ सूर्यकी किरणें दिनमें केवल प्रकाश फैलाती हैं, धूप नहीं। इसी प्रकार चन्द्रमाकी किरणें रातमें केवल उजाला करती हैं, सर्दी नहीं फैलातीं। वहाँ सर्प और दैत्य आदि भक्ष्य, भोज्य तथा सुरापानके मदसे उन्मत्त होकर यह नहीं जान पाते कि कब कितना समय बीता है। वहाँ वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर, कमलवन तथा अन्य मनोहर वस्तुएँ हैं, जो बड़े सौभाग्यसे भोगनेको मिलती हैं। पातालनिवासी दानव, दैत्य तथा सर्पगण सदा ही उन सबका उपभोग करते हैं। सब पातालोंके नीचे भगवान् विष्णुका तमोमय विग्रह है, जिसे शेषनाग कहते हैं। दैत्य और दानव उनके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। सिद्ध पुरुष उन्हें अनन्त कहते हैं, देवता और देवर्षि उनकी पूजा करते हैं। वे सहस्रों मस्तकोंसे सुशोभित हैं। स्वस्तिकाकार निर्मल आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे अपने फणोंकी सहस्रों मणियोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हैं तथा संसारका कल्याण करनेके लिये सम्पूर्ण असुरोंकी शक्ति हर लेते हैं। उनके कानोंमें एक ही कुण्डल शोभा पाता है। मस्तकपर किरीट और गलेमें मणियोंकी माला धारण किये भगवान् अनन्त अग्निकी ज्वालासे प्रकाशमान श्वेत पर्वतकी भाँति शोभा पाते हैं। वे नील वस्त्र धारण करते, मदसे मत्त रहते और श्वेत हारसे ऐसे सुशोभित होते हैं, मानो आकाशगङ्गाके प्रपातसे युक्त उत्तम कैलास पर्वत शोभा पा रहा हो। उनके एक हाथका अग्रभाग हलपर टिका रहता है और दूसरे हाथमें वे उत्तम मूसल धारण किये हुए हैं। प्रलयकालमें विषाग्निकी ज्वालाओंसे युक्त संकर्षणात्मक रुद्र उन्हींके मुखोंसे निकलकर तीनों लोकोंका संहार करते हैं। सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित वे भगवान् शेष पातालके मूलभागमें स्थित हो अपने मस्तकपर समस्त भूमण्डलको धारण किये रहते हैं। उनके वीर्य, प्रभाव, स्वरूप तथा रूपका वर्णन देवता भी नहीं कर सकते। जिनके मस्तकपर रक्खी हुई समूची पृथ्वी उनके फणोंकी मणियोंके प्रकाशसे लाल रंगकी फूलमाला-सी दिखायी देती है, उनके पराक्रमका वर्णन कौन कर सकता है। भगवान् अनन्त जब जँभाई लेते हैं, उस समय पर्वत, समुद्र और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी डोलने लगती है। गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किंनर और सर्प—कोई भी उनके गुणोंका अन्त नहीं पाते; इसीलिये उन अविनाशी प्रभुको अनन्त कहते हैं। जिनके ऊपर नागवधुओंके हाथोंसे चढ़ाया हुआ हरिचन्दन बारंबार श्वास-वायुके लगनेसे सम्पूर्ण दिशाओंको सुवासित करता रहता है, प्राचीन ऋषि गर्गने जिनकी आराधना करके सम्पूर्ण ज्यौतिष-शास्त्रका यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया था, उन्हीं नागश्रेष्ठ भगवान् शेषने इस पृथ्वीको धारण कर रक्खा है और वे ही देवता, असुर तथा मनुष्योंके सहित समस्त लोकोंका भरण-पोषण करते हैं।'

ब्राह्मणो! पातालके अनन्तर रौरव आदि नरक हैं, जिनमें पापियोंको गिराया जाता है। उन नरकोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो। रौरव, शौकर, रोध, तान, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, महालोभ, विमोहन, रुधिरान्ध, वसातप्त, कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, लालाभक्ष्य, पूयवह, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदंश, कृष्णसूत्र, तम, अवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ तथा अवीचि इत्यादि बहुत-से नरक हैं, जो अत्यन्त भयंकर हैं। ये सब यमके राज्यमें हैं। शस्त्र, अग्नि और विषके द्वारा यातना देनेके कारण वे सभी नरक अत्यन्त भयंकर हैं। जो मनुष्य पापकर्मोंमें लगे रहते हैं, वे ही उन नरकोंमें गिरते हैं। जो झूठी गवाही देता, पक्षपातपूर्वक बोलता तथा असत्य भाषण करता है, वह मनुष्य रौरव-नरकमें पड़ता है। जो गर्भके बच्चेकी हत्या कराता, गुरुके प्राण लेता, गायको मारता तथा दूसरोंके श्वास रोककर मार डालता है, वे सभी घोर रौरव नरकमें गिरते हैं। शराबी, ब्रह्महत्यारा, सुवर्णकी चोरी करनेवाला तथा इन पापियोंसे संसर्ग रखनेवाला मानव शौकर नरकमें जाता है। जो क्षत्रिय और वैश्यकी हत्या करता, गुरुपत्नीसे संसर्ग रखता, बहिनके साथ व्यभिचार करता तथा राजदूतके प्राण लेता है, वह तप्तकुम्भ नामक नरकमें पड़ता है। जो शराब तथा सिंहको बेचता और अपने भक्तका त्याग करता है, वह तप्तलोह नामक नरकमें गिरता है। पुत्री और पुत्र-वधूके साथ समागम करनेवाला पापी महाज्वाल नामक नरकमें गिराया जाता है। जो नीच अपने गुरुजनोंका अपमान करता, उन्हें गालियाँ देता, वेदोंको दूषित करता, उन्हें बेचता तथा अगम्या स्त्रियोंके साथ समागम करता है, वे सभी शबल नामक नरकमें जाते हैं। चोर तथा मर्यादामें कलङ्क लगानेवाला मनुष्य विमोह नामक नरकमें गिरता है। देवताओं, द्विजों तथा पितरोंसे द्वेष रखनेवाला एवं रत्नको दूषित करनेवाला मनुष्य कृमिभक्ष्य नामक नरकमें पड़ता है। जो दूषित यज्ञ करता और देवताओं, पितरों एवं अतिथियोंको दिये बिना ही स्वयं खा लेता है, वह लालाभक्ष्य नामक भयंकर नरकमें जाता है। बाण बनानेवाला वेधक नामके नरकमें गिरता है। जो कर्णी नामक बाण तथा खड्ग आदि आयुधोंका

निर्माण करता है, वह अत्यन्त भयंकर विशसन नामक नरकमें गिराया जाता है। जो द्विज नीच प्रतिग्रह स्वीकार करता है, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करवाता है तथा केवल नक्षत्र बताकर जीविका चलाता है, वह अधोमुख नामक नरकमें जाता है। जो अकेला ही मिठाई खाता है, वह मनुष्य कृमिपूय नामक नरकमें जाता है। लाख, मांस, रस, तिल और नमक बेचनेवाला ब्राह्मण भी उसी नरकमें पड़ता है। बिल्ली, मुर्गी, बकरा, कुत्ता, सूअर तथा चिड़िया पालनेवाला भी कृमिपूयमें ही गिरता है। जो ब्राह्मण रङ्गमञ्चपर नाचकर जीविका चलाता, नाव चलाता, जारज मनुष्यका अन्न खाता, दूसरोंको जहर देता, चुगली खाता, भैंससे जीविका चलाता, पर्वके दिन स्त्रीसम्भोग करता, दूसरोंके घरमें आग लगाता, मित्रोंकी हत्या करता, शकुन बताकर पैसे लेता, गाँवभरकी पुरोहिती करता तथा सोम-रस बेचता है, वह रुधिरान्ध नामक नरकमें गिरता है। भाईको मारनेवाला और समूचे गाँवको नष्ट करनेवाला मनुष्य वैतरणी नदीमें जाता है। जो वीर्य पान करते, मर्यादा तोड़ते, अपवित्र रहते और बाजीगरीसे जीविका चलाते हैं, वे कृच्छ्र नामक नरकमें गिरते हैं। जो अकारण ही जंगल कटवाता है, वह असिपत्रवन नामक नरकमें जाता है। भेड़के व्यापारसे जीविका चलानेवाले और मृगोंका वध करनेवाले वह्निज्वाल नामक नरकमें गिराये जाते हैं। जो व्रतका लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे भ्रष्ट हैं, वे दोनों ही संदंश नरककी यातनामें पड़ते हैं। जो मनुष्य ब्रह्मचारी होकर दिनमें सोते और स्वप्नमें वीर्यपात करते हैं तथा जो लोग अपने पुत्रोंद्वारा पढ़ाये जाते हैं, वे श्वभोजन नामक नरकमें गिरते हैं। ये तथा और भी सहस्रों नरक हैं, जिनमें पापी मनुष्य यातनामें डालकर पीड़ित किये जाते हैं। ऊपर जो पाप गिनाये गये हैं, उनके अतिरिक्त दूसरे भी सहस्रों प्रकारके पाप हैं, जिनका फल नरकमें पड़े हुए पापी जीव भोगते हैं।

जो लोग मन, वाणी और क्रियाद्वारा अपने वर्ण और आश्रमके विपरीत आचरण करते हैं, वे नरकोंमें पड़ते हैं। नरकमें पड़े हुए जीव नीचे मुँह करके लटका दिये जाते हैं और उसी अवस्थामें वे स्वर्गमें सुख भोगनेवाले देवताओंको देखते हैं। इसी प्रकार देवता भी उक्त अवस्थामें पड़े हुए नरकके जीवोंको देखते रहते हैं। ऐसा होनेसे उनकी धर्मके प्रति श्रद्धा और पापके प्रति विरक्ति बढ़ती है। स्थावर, कीट, जलचर पक्षी, पशु, मनुष्य, धर्मात्मा, देवता तथा मोक्षप्राप्त महात्मा—ये क्रमशः एकसे दूसरे सहस्रगुने श्रेष्ठ हैं। महर्षियोंने पापोंके अनुरूप प्रायश्चित्त भी बतलाये हैं। स्वायम्भुव मनु आदि स्मृतिकारोंने बड़े पापके लिये बड़े और छोटे पापके लिये छोटे प्रायश्चित्त बतलाये हैं। वे सब तपस्यारूप हैं; तपस्यारूप जो समस्त प्रायश्चित्त हैं, उन सबमें भगवान् श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण श्रेष्ठ है। पाप कर लेनेपर जिस पुरुषको उसके लिये पश्चात्ताप होता है, उसके लिये एक बार भगवान् श्रीहरिका स्मरण कर लेना ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। प्रातःकाल, रात्रि, संध्या तथा मध्याह्न आदिमें भगवान् नारायणका स्मरण करनेवाला मनुष्य तत्काल पापमुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुके स्मरण और कीर्तनसे समस्त क्लेशराशिके क्षीण हो जानेपर मनुष्य मुक्त हो जाता है। विप्रवरो! जप, होम और अर्चन आदिके समय जिसका मन भगवान् वासुदेवमें लगा होता है, वह तो मोक्षका अधिकारी है। उसके लिये फलरूपसे इन्द्र आदिके पदकी प्राप्ति विघ्नमात्र है। कहाँ तो जहाँसे पुनः लौटना पड़ता है, ऐसे स्वर्गलोकमें जाना और कहाँ मोक्षके सर्वोत्तम बीज वासुदेव-मन्त्रका जप! इनमें कोई तुलना ही नहीं है।* इसलिये जो पुरुष रात-दिन भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह अपने समस्त पातकोंका नाश हो जानेके कारण कभी नरकमें नहीं पड़ता। एक ही वस्तु समय-समयपर दुःख-सुख, ईर्ष्या और क्रोधका कारण बनती है। अतः केवल दुःखरूप वस्तु कहाँसे आयी। वही वस्तु पहले प्रसन्नताका कारण होकर फिर दुःख देनेवाली बन जाती है। फिर वही क्रोध और प्रसन्नताका भी हेतु बनती है। इसलिये कोई भी वस्तु न तो

---

* प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्॥
प्रातर्निशि तथा संध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः॥
विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसंचयः।
मुक्तिं प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्तनात्॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु।
तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम्॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्।
क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम्॥
(२२।३७-४२)

दुःखरूप है न सुखरूप । यह सुख और दुःख आदि तो मनका विकारमात्र है । * ज्ञान ही परब्रह्मका स्वरूप है और अज्ञान बन्धनका कारण है । यह सम्पूर्ण विश्व ज्ञानस्वरूप है । ज्ञानसे बढ़कर कुछ भी नहीं है । ब्राह्मणो ! विद्या और अविद्याको भी ज्ञानरूप ही समझो । इस प्रकार मैंने तुमसे समस्त भूमण्डल, पाताल, नरक, समुद्र, पर्वत, द्वीप, वर्ष तथा नदियोंका संक्षेपमे वर्णन किया । अब और क्या सुनना चाहते हो ?

ग्रहों तथा भुवः आदि लोकोंकी स्थिति, श्रीविष्णुशक्तिका प्रभाव तथा शिशुमारचक्रका वर्णन

मुनियोंने कहा—महाभाग लोमहर्षणजी ! अब हम भुवः आदि लोकोंका, ग्रहोंकी स्थितिका तथा उनके परिमाणका यथार्थ वर्णन सुनना चाहते हैं । आप कृपापूर्वक बतलायें।

लोमहर्षणजी बोले—सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंसे समुद्र, नदी और पर्वतोंसहित जितने भागमें प्रकाश फैलता है, उतने भागको पृथ्वी कहते हैं । पृथ्वी विस्तृत होनेके साथ ही गोलाकार है । पृथ्वीसे एक लाख योजन ऊपर सूर्यमण्डलकी स्थिति है और सूर्यमण्डलसे लाख योजन दूर चन्द्रमण्डल स्थित है । चन्द्रमण्डलसे लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र-मण्डल प्रकाशित होता है । नक्षत्र-मण्डलसे दो लाख योजन ऊँचे बुधकी स्थिति है । बुधसे दो लाख योजन शुक्र स्थित हैं । शुक्रसे दो लाख योजन मङ्गल, तथा मङ्गलसे दो लाख योजन ऊँचे देवगुरु बृहस्पति स्थित हैं । बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर हैं और उनसे एक लाख योजन ऊँचे सप्तर्षिमण्डल स्थित है । सप्तर्षियोंसे लाख योजन ऊपर ध्रुव हैं, जो समस्त ज्योतिर्मण्डलके केन्द्र हैं। ध्रुवसे ऊपर महर्लोक है, जहाँ एक कल्पतक जीवित रहनेवाले महात्मा पुरुष निवास करते हैं । उसका विस्तार एक करोड़ योजन है । उसके ऊपर जनलोक है, जिसका विस्तार दो करोड़ योजन है । वहाँ शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मकुमार सनन्दन आदि महात्मा वास करते हैं । जनलोकसे ऊपर उससे चौगुने विस्तारवाला तपोलोक स्थित है, जहाँ शरीररहित वैराज आदि देवता रहते हैं । तपोलोकसे ऊपर सत्यलोक प्रकाशित होता है, जो उससे छः गुना बड़ा है । वहाँ सिद्ध आदि एवं मुनिजन निवास करते हैं । वह पुनर्जन्म एवं पुनर्मृत्युका निवारण करनेवाला लोक है । जहाँतक पैरोंसे जाने योग्य पार्थिव वस्तु है, उसे भूलोक कहा गया है; उसका विस्तार पहले बताया जा चुका है । भूमि और सूर्यके बीचमें जो सिद्ध एवं मुनियोंसे सेवित प्रदेश है, वह भुवर्लोक कहा गया है । यही दूसरा लोक है । ध्रुव और सूर्यके बीचमें जो चौदह लाख योजन विस्तृत स्थान है, उसे लोक-स्थितिका विचार करनेवाले पुरुषोंने स्वर्गलोक बतलाया है । भूः, भुवः और स्वः—इन्हीं तीनोंको त्रैलोक्य कहते हैं । विद्वान् ब्राह्मण इन तीनों लोकोंको कृतक (नाशवान्) कहते हैं । इसी प्रकार ऊपरके जो जन, तप और सत्य नामक लोक हैं, वे तीनों अकृतक (अविनाशी) कहलाते हैं । कृतक और अकृतकके बीचमें महर्लोक है, जो कृतकाकृतक कहलाता है । यह कल्पान्तमें जनशून्य हो जाता है, किन्तु नष्ट नहीं होता । ब्राह्मणो ! इस प्रकार ये सात महालोक बतलाये गये हैं । पाताल भी सात ही हैं । यही समूचे ब्रह्माण्डका विस्तार है ।

यह ब्रह्माण्ड ऊपर, नीचे तथा किनारेकी ओरसे अण्डकटाहद्वारा घिरा हुआ है—ठीक उसी तरह, जैसे कैथका बीज सब ओर छिलकेसे ढका रहता है । उसके बाद समूचे अण्डकटाहसे दसगुने विस्तारवाले जलके आवरणद्वारा यह ब्रह्माण्ड आवृत है । इसी प्रकार जलका आवरण भी बाहरकी ओरसे अग्निमय आवरणद्वारा घिरा हुआ है । अग्नि वायुसे, वायु आकाशसे और आकाश महत्तत्त्वसे आवृत है । इस प्रकार ये सातों आवरण उत्तरोत्तर दसगुने बड़े हैं । महत्तत्त्वको आवृत करके प्रधान—प्रकृति स्थित है । प्रधान अनन्त है । उसका अन्त नहीं है और न उसके मापकी कोई संख्या ही है । वह अनन्त एवं असंख्यात बताया गया है । वही सम्पूर्ण जगत्का उपादान है । उसे ही परा प्रकृति कहा गया है । उसके भीतर ऐसे-ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं । जैसे लकड़ीमें आग और तिलमें तेल व्याप्त रहता

* वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्योदयाय च । कोपाय च यतस्तस्माद् वस्तु दुःखात्मकं कुतः ॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते । तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किंचित्सुखात्मकम् । मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥
(२१ । ४५-४७)

है, उसी प्रकार प्रधान अर्थात् प्रकृतिमें चेतन पुरुष व्याप्त है। ये प्रकृति और पुरुष एक दूसरेके आश्रित हो भगवान् विष्णुकी शक्तिसे टिके हुए हैं। श्रीविष्णुकी शक्ति ही प्रकृति और पुरुषके पृथक् एवं संयुक्त होनेमें कारण है। विप्रवरो! वही सृष्टिके समय प्रकृतिमें क्षोभका कारण होती है। जैसे वायु जलके कणोंमें रहनेवाली शीतलताको धारण करती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति प्रकृति-पुरुषरूप सम्पूर्ण जगत्को धारण करती है। जैसे प्रथम बीजसे मूल, तने और शाखा आदिसहित विशाल वृक्ष उत्पन्न होता है, फिर उस वृक्षसे अन्यान्य बीज प्रकट होते हैं और उन बीजोंसे भी पहले-ही-जैसे वृक्ष उत्पन्न होते रहते हैं, उसी प्रकार पहले अव्याकृत प्रकृतिसे महत्तत्त्व आदि उत्पन्न होते हैं, फिर उनसे देवता आदि प्रकट होते हैं, देवताओंसे उनके पुत्र और उन पुत्रोंके भी पुत्र होते रहते हैं। जैसे एक वृक्षसे दूसरा वृक्ष उत्पन्न होनेपर पहले वृक्षकी कोई हानि नहीं होती, उसी प्रकार नूतन भूतोंकी सृष्टिसे भूतोंका ह्रास नहीं होता। जैसे समीपवर्ती होने मात्रसे आकाश और काल आदि भी वृक्षके कारण हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि स्वयं विकृत न होते हुए ही सम्पूर्ण विश्वके कारण होते हैं। जैसे धानके बीजमें जड़, नाल, पत्ते, अङ्कुर, काण्ड, कोंप, फूल, दूध, चावल, भूसी और कन—सभी रहते हैं तथा अङ्कुरित होनेके योग्य कारण-सामग्री पाकर प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मोंमें देव आदि सभी शरीर स्थित रहते हैं तथा कारणभूत श्रीविष्णुशक्तिका सहारा पाकर प्रकट हो जाते हैं।

वे भगवान् विष्णु परब्रह्म हैं; उन्हींसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, वे ही जगत्स्वरूप हैं तथा उन्हींमें इस जगत्का लय होगा। वे परब्रह्म और परम धामस्वरूप हैं, सत् और असत् भी वे ही हैं, वे ही परम पद हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उनसे भिन्न नहीं है। वे ही अव्याकृत मूल प्रकृति और व्याकृत जगत्स्वरूप हैं। यह सब कुछ उन्हींमें लय होता और उन्हींके आधारपर स्थित रहता है। वे ही क्रियाओंके कर्ता (यजमान) हैं, उन्हींका यज्ञोंद्वारा यजन किया जाता है, यज्ञ और उसके फल भी वे ही हैं। युग आदि सब कुछ उन्हींसे प्रवृत्त होता है। उन श्रीहरिसे भिन्न कुछ भी नहीं है।*

लोमहर्षणजी कहते हैं—आकाशमें शिशुमार (गोह) के आकारमें जो भगवान्का तारामय स्वरूप है, उसके पुच्छभागमें ध्रुवकी स्थिति है। ध्रुव स्वयं अपनी परिधिमें भ्रमण करते हुए सूर्य, चन्द्र आदि अन्य ग्रहोंको भी घुमाते हैं। ध्रुवके घूमनेपर उनके साथ ही समस्त नक्षत्र चक्रकी भाँति घूमने लगते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और ग्रह—ये सभी वायुमयी डोरीसे ध्रुवसे बँधे हुए हैं। शिशुमारके आकारका आकाशमें जो तारामय रूप बताया गया है, उसके आधार परम धामस्वरूप साक्षात् भगवान् नारायण हैं, जो शिशुमारके हृदयदेशमें स्थित हैं। देवता, असुर और मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायणके ही आधारपर टिका हुआ है। सूर्य आठ महीनोंमें अपनी किरणोंद्वारा रसात्मक जलका संग्रह करते हैं और उसे वर्षाकालमें बरसा देते हैं। उस वृष्टिके जलसे अन्न पैदा होता है और अन्नसे सम्पूर्ण जगत्का भरण-पोषण होता है। सूर्य अपनी तीखी किरणोंसे जगत्का जल लेकर उसके द्वारा चन्द्रमाकी पुष्टि करते हैं। धूम, अग्नि और वायुरूप मेघोंमें स्थापित किया हुआ जल अपभ्रष्ट नहीं होता, अतएव मेघोंको अभ्र कहते हैं। वायुकी प्रेरणासे मेघस्थ जल पृथ्वीपर गिरता है। नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियोंके शरीरसे निकला हुआ—ये चार प्रकारके जल सूर्य अपनी किरणोंद्वारा ग्रहण करते हैं और उन्हींको समयपर बरसाते हैं। इसके सिवा वे आकाशगङ्गाके जलको भी लेकर उसे बादलोंमें स्थापित किये बिना ही शीघ्र पृथ्वीपर बरसा देते हैं। उस जलका स्पर्श होनेसे मनुष्यके पाप-पङ्क धुल जाते हैं, जिससे वह नरकमें नहीं पड़ता। यह दिव्य स्नान माना गया है। कृत्तिका आदि विषम नक्षत्रोंमें सूर्यके दिखायी देते हुए आकाशसे जो जल गिरता है, उसे दिग्गजोंद्वारा फेंका हुआ आकाशगङ्गाका जल समझना चाहिये। इसी प्रकार भरणी आदि सम संख्यावाले नक्षत्रोंमें सूर्यके दिखायी देते हुए आकाशसे जो जल गिरता है, वह भी आकाशगङ्गाका ही जल है, जिसे सूर्यकी किरणें तत्काल ले आकर बरसाती हैं। यह दोनों ही प्रकारका जल अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंका पाप

* स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिन् विलयमेष्यति॥
तद् ब्रह्म परमं धाम सदसत्परमं पदम्।
यस्य सर्वममेदेन जगदेतच्चराचरम्॥
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः।
तस्मिन्नेव लयं सर्वं याति तत्र च तिष्ठति॥
कर्ता क्रियाणां स च इज्यते क्रतुः स एव तत्कर्मफलं च तस्य यत्।
युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो हरेर्न किंचिद् व्यतिरिक्तमस्ति तत्॥
(२३ । ४१–४४)

दूर करनेवाला है। आकाशगङ्गाके जलका स्पर्श दिव्य स्नान है। बादलोंके द्वारा जो जलकी वर्षा होती है, वह प्राणियोंके जीवनके लिये सब प्रकारके अन्न आदिकी पुष्टि करती है। अतः वह जल अमृत माना गया है। उसके द्वारा अत्यन्त पुष्ट हुई सब प्रकारकी ओषधियाँ फलती, पकती एवं प्रजाके उपयोगमें आती हैं। उन ओषधियोंसे शास्त्रदर्शी मनुष्य प्रतिदिन विहित यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करते हैं। इस प्रकार यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, सम्पूर्ण देवता, पशु, भूतगण तथा स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत्—ये सब वृष्टिके द्वारा ही धारण किये गये हैं। वृष्टि सूर्यके द्वारा होती है। सूर्यके आधार ध्रुव, ध्रुवका शिशुमार चक्र तथा शिशुमार चक्रके आश्रय साक्षात् भगवान् नारायण हैं। वे शिशुमार चक्रके हृदय-देशमें स्थित हैं। वे ही सम्पूर्ण भूतोंके आदि, पालक तथा सनातन प्रभु हैं। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने पृथ्वी, समुद्र आदिसे युक्त ब्रह्माण्डका वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

तीर्थ-वर्णन

मुनियोंने कहा—धर्मके ज्ञाता सूतजी! पृथ्वीपर जो-जो पवित्र तीर्थ और मन्दिर हैं, उनका वर्णन कीजिये। इस समय हमारे मनमें उन्हींका वर्णन सुननेकी इच्छा है।

लोमहर्षणजी बोले—जिसके हाथ, पैर और मन काबूमें हों तथा जिसमें विद्या, तप और कीर्ति हो, वह मनुष्य तीर्थके फलका भागी होता है। पुरुषका शुद्ध मन, शुद्ध वाणी तथा वशमें की हुई इन्द्रियाँ—ये शारीरिक तीर्थ हैं, जो स्वर्गका मार्ग सूचित करती हैं। भीतरका दूषित चित्त तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता। जिसका अन्तःकरण दूषित है, जो दम्भमें रुचि रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ चञ्चल हैं, उसे तीर्थ, दान, व्रत और आश्रम भी पवित्र नहीं कर सकते। मनुष्य इन्द्रियोंको अपने वशमें करके जहाँ-जहाँ निवास करता है, वहीं-वहीं कुरुक्षेत्र, प्रयाग और पुष्कर आदि तीर्थ वास करने लगते हैं। द्विजवरो! अब मैं पृथ्वीके पवित्र तीर्थों और मन्दिरोंका संक्षेपसे वर्णन आरम्भ करता हूँ, सुनो। पुष्कर, नैमिषारण्य, प्रयाग, धर्मारण्य, धेनुक, चम्पकारण्य, सैन्धवारण्य, मगधारण्य, दण्डकारण्य, गया, प्रभास, श्रीतीर्थ, कनखल, भृगुतुङ्ग, हिरण्याक्ष, भीमारण्य, कुशस्थली, लोहाकुल, केदार, मन्दरारण्य, महाबल, कोटितीर्थ, रूपतीर्थ, शूकर, चक्रतीर्थ, योगतीर्थ, सोमतीर्थ, शाखोटक, कोकामुख, बदरीशैल, तुङ्गकूट, स्कन्दाश्रम, अग्निपद, पञ्चशिख, धर्मोद्भव, बन्धप्रमोचन, गङ्गाद्वार, पञ्चकूट, मध्यकेसर, चक्रप्रभ, मतङ्ग, कुशदण्ड, दंष्ट्राकुण्ड, विष्णुतीर्थ, सार्वकामिक तीर्थ, मत्स्यतिल, ब्रह्मकुण्ड, वह्निकुण्ड, सत्यपद, चतुःस्रोत, चतुःशृङ्ग, द्वादशधार, मानस, स्थूलशृङ्ग, स्थूलदण्ड, उर्वशी, लोकपाल, मनुवर, सोमशैल, सदाप्रभ, मेरुकुण्ड, सोमाभिषेचन तीर्थ, महास्रोत, कोटरक, पञ्चधार, त्रिधार, सप्तधार, एकधार, अमरकण्टक, शालग्राम, कोटिद्रुम, बिल्वप्रभ, देवहृद, विष्णुहृद, शङ्खप्रभ, देवकुण्ड, वज्रायुध, अग्निप्रभ, पुंनाग, देवप्रभ, विद्याधरतीर्थ, गान्धर्वतीर्थ, मणिपूर गिरि, पञ्चहृद, पिण्डारक, मलव्य, गोप्रभाव, गोवर, वटमूल, स्नानदण्ड, विष्णुपद, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूमार्ग, गभस्ति-तीर्थ, ययातिपतन, भद्रवट, महाकालवन, नर्मदा-तीर्थ, तीर्थवज्र, अर्बुद, पिङ्गतीर्थ, वासिष्ठतीर्थ, पृथुसंगम, दौर्वासिक, पिञ्जरक, ऋषितीर्थ, ब्रह्मतुङ्ग, वसुतीर्थ, कुमारिक, शक्रतीर्थ, पञ्चनद, रेणुकातीर्थ, पैतामह, विमलतीर्थ, रुद्रपाद, मणिमान्, कामाख्य, कृष्णतीर्थ, कुलिङ्गक, यजनतीर्थ, याजनतीर्थ, ब्रह्मवालुक, पुष्पन्यास, पुण्डरीक, मणिपूर, दीर्घसत्र, हयपद, अनशनतीर्थ, गङ्गोद्भेद, शिवोद्भेद, नर्मदोद्भेद, वस्त्रापद, दारुबल, छायारोहण, सिद्धेश्वर, मित्रबल, कालिकाश्रम, वटावट, भद्रवट, कौशाम्बी, दिवाकर, सारस्वतद्वीप, विजयतीर्थ, कामद-तीर्थ, रुद्रकोटि, सुमनस्तीर्थ, समन्तपञ्चक, ब्रह्मतीर्थ, सुदर्शनतीर्थ, पारिप्लव, पृथूदक, दशाश्वमेधिक, सार्छिद, विजय, पञ्चनद, वाराह, यक्षिणीहृद, पुण्डरीक, सोम-तीर्थ, मुञ्जवट, बदरीवन, रत्नमूलक, स्वर्लोकद्वार, पञ्चतीर्थ, कपिलातीर्थ, सूर्यतीर्थ, शङ्खिनीतीर्थ, गोभवनतीर्थ, यक्षराज-तीर्थ, ब्रह्मावर्त, कामेश्वर, मातृतीर्थ, शातवनतीर्थ, स्नानलोमापह, माससंसरक, केदार, ब्रह्मोदुम्बर, सप्तर्षिकुण्ड, देवीतीर्थ, जम्बुकतीर्थ, ईहास्पद, कोटिकूट, किंदान, किंजप, कारण्डव, अवेध्य, त्रिविष्टप, पाणिखात, मिश्रक, मधुवट, मनोजव, कौशिकीतीर्थ, देवतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, नृगधूम, अमरहृद, श्रीकुञ्ज, शालितीर्थ, नैमिषेयतीर्थ, ब्रह्म-

स्थान, कन्यातीर्थ, मनसतीर्थ, कारुपावन तीर्थ, सौगन्धिक वन, मणितीर्थ, सरस्वतीतीर्थ, ईशानतीर्थ, पाञ्चयज्ञिकतीर्थ, त्रिशूलधार, माहेन्द्र, देवस्थान, कृतालय, शाकम्भरी, देवतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, कलिहृद, क्षीरस्रव, विरूपाक्ष, भृगुतीर्थ, कुशोद्भवतीर्थ, ब्रह्मयोनि, नीलपर्वत, कुब्जाम्बक, वसिष्ठपद, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, कलिकाश्रम, रुद्रावर्त, सुगन्धाश्व, कपिलावन, भद्रकर्णहृद, शङ्कुकर्णहृद, सप्तसारस्वत, औशनसतीर्थ, कपालमोचन, अवकीर्ण, काम्यक, चतुःसामुद्रिक, शतिक, सहस्रिक, रेणुक, पञ्चवटक, विमोचन, स्थाणुतीर्थ, कुरुतीर्थ, कुशध्वज, विश्वेश्वर, मानवकूप, नारायणाश्रम, गङ्गाहृद, बदरीपावन, इन्द्रमार्ग, एकरात्र, क्षीरकावास, दधीच, श्रुततीर्थ, कोटितीर्थस्थली, भद्रकालीहृद, अरुन्धतीवन, ब्रह्मावर्त, अश्ववेदी, कुब्जावन, यमुनाप्रभव, वीर, प्रमोक्ष, सिन्धूत्थ, ऋषिकुल्या, कृत्तिका, उर्वीसंक्रमण, मायाविद्योद्भव, महाश्रम, वेतसिका, सुन्दरिकाश्रम, बाहुतीर्थ, चारुनदी, विमलाशोक, मार्कण्डेयतीर्थ, सितोद, मत्स्योदरी, सूर्यप्रभ, अशोकवन, अरुणास्पद, शुक्रतीर्थ, वालुकातीर्थ, पिशाचमोचन, सुभद्राहृद, विरलदण्डकुण्ड, चण्डेश्वरतीर्थ, ज्येष्ठस्थानहृद, ब्रह्मसर, जैगीषव्यगुहा, हरिकेशवन, अजामुखसर, घण्टाकर्णहृद, कर्कोटकवापी, सपर्णास्योदपान, श्वेततीर्थहृद, घर्घरिकाकुण्ड, श्यामाकूप, चन्द्रिकातीर्थ, श्मशानस्तम्भकूप, विनायकहृद, सिन्धूद्भवकूप, ब्रह्मसर, रुद्रावास, नागतीर्थ, पुलोमतीर्थ, भक्तहृद, क्षीरसर, प्रेताधार, कुमारतीर्थ, कुशावर्त, दधिकर्णोदपानक, शृङ्गतीर्थ, महातीर्थ, महानदी, गयशीर्ष, अक्षयवट, कपिलाहृद, गृध्रवट, सावित्रीहृद, प्रभासन, सीतावन, योनिद्वार, धन्यक, कोकिलातीर्थ, मतङ्गहृद, पितृकूप, सप्तकुण्ड, मणिरत्नहृद, कौशिक्यतीर्थ, भरततीर्थ, ज्येष्ठालिकातीर्थ, कलसर, कुमारधारा, श्रीधारा, गौरीशिखर, शुनःकुण्ड, नन्दितीर्थ, कुमारवास, श्रीवास, कुम्भकर्णहृद, कौशिकीहृद, धर्मतीर्थ, कामतीर्थ, उद्दालकतीर्थ, संध्यातीर्थ, लोहितार्णव, शोणोद्भव, वंशगुल्म, ऋषभ, कालतीर्थ, पुण्यावर्तहृद, बदरिकाश्रम, रामतीर्थ, पितृवन, विरजातीर्थ, कृष्णतीर्थ, कृष्णवट, रोहिणीकूप, इन्द्रद्युम्नसरोवर, सानुगर्त, माहेन्द्र, श्रीनद, इषुतीर्थ, वार्षभतीर्थ, कावेरीहृद, गोकर्ण, गायत्रीस्थान, बदरीहृद, मध्यस्थान, विकर्णक, जातीहृद, देवकूप, कुशप्रथन, सर्वदेवव्रत, कन्याश्रमहृद, वालखिल्यहृद तथा अखण्डितहृद—ये सब पवित्र तीर्थ हैं। जो मनुष्य इन तीर्थोंमें उत्तम श्रद्धासे सम्पन्न हो उपवास एवं इन्द्रियसंयमपूर्वक विधिवत् स्नान, देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरोंका तर्पण, देवताओंका पूजन एवं तीन रात्रितक निवास करता है, वह प्रत्येक तीर्थके पृथक्-पृथक् फलरूपसे अश्वमेध-यज्ञका पुण्य प्राप्त करता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो प्रतिदिन इस उत्तम तीर्थ-माहात्म्यको सुनता, पढ़ता अथवा सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

भारतवर्षका वर्णन

मुनियोंने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! इस पृथ्वीपर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली जो उत्तम भूमि एवं श्रेष्ठ तीर्थ हो, उसे बतलाइये।

लोमहर्षणजी बोले—ब्राह्मणो! पूर्वकालमें महर्षियोंने मेरे गुरु व्यासजीसे यही प्रश्न पूछा था। मैं वही प्रसङ्ग कहता हूँ। कुरुक्षेत्रकी बात है, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ व्यासजी, जो सब शास्त्रोंके विद्वान्, महाभारतके रचयिता, अध्यात्मनिष्ठ, सर्वज्ञ, सब भूतोंके हितमें संलग्न, पुराण और आगमोंके वक्ता तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत पण्डित हैं, अपने परम पवित्र आश्रममें बैठे हुए थे। भाँति-भाँतिके पुष्प उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसी समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अनेक महर्षि उनके दर्शनके लिये आये। कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, जैमिनि, धौम्य, मार्कण्डेय, वाल्मीकि, विश्वामित्र, शतानन्द, वात्स्य, गार्ग्य, आसुरि, सुमन्तु, भार्गव, कण्व, मेधातिथि, माण्डव्य, च्यवन, धूम्र, असित, देवल, मौद्गल्य, तृणयज्ञ, पिप्पलाद, अकृतव्रण, संवर्त, कौशिक, रैभ्य, मैत्रेय, हरित, शाण्डिल्य, विभाण्ड, दुर्वासा, लोमश, नारद, पर्वत, वैशम्पायन, गालव, भास्करि, पूरण, सूत, पुलस्त्य, कपिल, पुलह, देवस्थान, सनत्कुमार, पैल, कृष्ण तथा कृष्णानुभौतिक—ये तथा और भी बहुत-से मुनिवर सत्यवतीनन्दन व्यासको घेरकर बैठ गये। उनके बीचमें व्यासजी नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाते थे। कुछ बातचीतके बाद उन्होंने व्यासजीसे अपना सन्देह इस प्रकार पूछा।



मुनि बोले—मुने! आप वेद, शास्त्र, पुराण, तन्त्रशास्त्र, महाभारत, भूत, वर्तमान, भविष्य तथा सम्पूर्ण वाङ्मयका ज्ञान रखते हैं। यह संसार एक समुद्रके समान है। इसमें दुःख-ही-दुःख भरा है। यह कष्टमय एवं निःसार है। इस भयानक भवसागरमें रागरूपी ग्राह रहते हैं। यह विषयरूपी जलसे भरा रहता है। इन्द्रियाँ ही इसमें भँवर हैं। यह क्षुधा, पिपासा आदि सैकड़ों ऊर्मियोंसे व्याप्त है। इसे मोहरूपी कीचड़ने मलिन बना रक्खा है। लोभकी गहराईके कारण इसके पार जाना अत्यन्त कठिन है। हम देखते हैं सम्पूर्ण जगत् इसमें डूबकर कोई सहारा न पा सकनेके कारण अचेत बहा जा रहा है। अतः आपसे पूछते हैं, इस भयंकर संसारमें कौन-सा साधन कल्याणकारी है? इस बातका उपदेश देकर आप सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार कीजिये। इस पृथ्वीपर जो परम दुर्लभ मोक्षदायक क्षेत्र एवं कर्मभूमि है, उसे बतलाइये। हम उसका श्रवण करना चाहते हैं।

व्यासजीने कहा—पूर्वकालमें महर्षियोंका ब्रह्माजीके साथ जो संवाद हुआ था, उसे आप सब लोग सुनें। नाना रत्नोंसे विभूषित मेरुगिरिके विशाल शिखरपर भगवान् ब्रह्माजी विराजमान थे। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, नाग, मुनि तथा सिद्ध उनकी सेवामें उपस्थित थे। उस समय भृगु आदि महर्षियोंने पितामहको प्रणाम करके इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! इस पृथ्वीपर कर्मभूमि कौन है? तथा दुर्लभ मोक्ष-क्षेत्र कौन है? यह बतानेकी कृपा करें।'



ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! सुनो, इस पृथ्वीपर भारत वर्षको कर्मभूमि बतलाया गया है। वह परम प्राचीन, वेदोंसे सम्बन्ध रखनेवाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला उत्तम क्षेत्र है। वहीं किये हुए कर्मोंके फलरूपसे स्वर्ग और नरक प्राप्त होते हैं। भारतवर्षमें पाप या पुण्य करके मनुष्य निश्चय ही उसके अशुभ अथवा शुभ फलका भागी होता है। वहाँ ब्राह्मण आदि वर्ण भलीभाँति संयमपूर्वक रहते हुए अपने-अपने कर्मोंका अनुष्ठान करके उत्तम सिद्धिको प्राप्त होते हैं। भारतवर्षमें संयमशील पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्राप्त करता है। इन्द्र आदि देवताओंने भारतवर्षमें शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके देवत्व प्राप्त किया है। इनके सिवा अन्य जितेन्द्रिय पुरुषोंने भी भारतवर्षमें शान्त, वीतराग एवं मात्सर्यरहित जीवन बिताते हुए मोक्ष प्राप्त किया है। देवता सदा इस बातकी अभिलाषा करते हैं कि हमलोग कब स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले भारतवर्षमें जन्म लेकर निरन्तर उसका दर्शन करेंगे।

इसके पूर्वमें किरात और पश्चिममें यवन रहते हैं। मध्यभागमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका निवास है। वे क्रमशः यज्ञ, युद्ध और व्यापार आदि

विशुद्ध कर्मोंके द्वारा अपनेको पवित्र करते हैं। उनका जीवन-निर्वाह भी इन्हीं कर्मोंसे होता है। यहाँ किया हुआ पुण्य सकाम होनेपर स्वर्ग आदिका तथा निष्काम होनेपर मोक्षका साधक होता है। इसी प्रकार पाप भी अपना फल प्रदान करता है। महेन्द्र, मलय, शुक्तिमान्, ऋक्षपर्वत, विन्ध्य और पारियात्र—ये ही सात यहाँ कुलपर्वत हैं। उनके आस-पास और भी हजारों पर्वत हैं। वे सभी विस्तृत, ऊँचे और रमणीय हैं। उनके शिखर भाँति-भाँतिके और सुन्दर हैं। कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुराचल, वातंधय, वैद्युत, मैनाक, सुरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, गोधन, पाण्डुराचल, पुष्पगिरि, वैजयन्त, रैवत, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कृतशैल, कृताचल, श्रीपर्वत, चकोर तथा अन्य अनेक पर्वत ऐसे हैं, जिनसे मिले हुए म्लेच्छ आदि जनपद पृथक्-पृथक् बसे हुए हैं। वहाँके लोग जिन श्रेष्ठ नदियोंका जल पीते हैं, उनके नाम इस प्रकार जानो—गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा (चनाब), यमुना, शतद्रु (सतलज), विपाशा (व्यास), वितस्ता (झेलम), इरावती (रावी), कुहू (गोमती), धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी तथा कौशिकी। ये हिमालयकी घाटीसे निकली हुई नदियाँ हैं। देवस्मृति, देववती, वातघ्नी, सिन्धु, वेण्या, चन्दना, सदानीरा, मही, चर्मण्वती (चंबल), वृषी, विदिशा, वेदवती, क्षिप्रा तथा अवन्ती—ये पारियात्र पर्वतका अनुसरण करनेवाली नदियाँ हैं। शोणा (सोन), महानदी, नर्मदा, सुरथा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, चित्रोत्पला, वेत्रवती (बेतवा), कर्मोदा, पिशाचिका, अतिलघुश्रोणी, विपाप्मा, शैवला, सधेरुजा, शक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा, क्रमु तथा वेगवाहिनी—ये नदियाँ ऋक्षपर्वतकी संतानें हैं। चित्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, वेणा, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा तथा अन्तःशिला—ये पुण्यसलिला सरिताएँ विन्ध्याचलकी घाटियोंमें निकली हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा पापनाशिनी—ये श्रेष्ठ नदियाँ सह्यगिरिकी शाखामें प्रकट हुई हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पवती, उत्पलावती—ये शीतल जलवाली पवित्र नदियाँ मलयाचलसे निकली हैं। पितृकुल्या, सोमकुल्या, ऋषिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा, लाङ्गलिनी तथा वंशकरा—इनका प्राकट्य महेन्द्रपर्वतसे हुआ है। सुविकाला, कुमारी, मनुगा, मन्दगामिनी, क्षया और पलाशिनी—ये शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं। समुद्रमें मिलनेवाली सभी नदियाँ पुण्य-सलिला सरस्वती तथा गङ्गाके समान हैं। सभी इस विश्वकी जननी एवं पापहारिणी मानी गयी हैं। इनके अतिरिक्त भी सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ बतायी गयी हैं, जिनमेंसे कुछ तो केवल वर्षा-कालमें बहती हैं और कुछ सदा ही जलसे पूर्ण रहती हैं। मत्स्य, मुकुटकुल्य, कुन्तल, काशी, कोसल, अन्ध्रक, कलिङ्ग, शमक तथा वृक—ये प्रायः मध्यदेशके जनपद बताये गये हैं। सह्य पर्वतके उत्तरका प्रदेश, जहाँ गोदावरी नदी बहती है, सम्पूर्ण भूमण्डलमें सर्वाधिक मनोरम है।

वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमके धर्मोंका पालन करनेसे जो फल होता है, कुआँ, बावली आदि खुदवाने, बगीचे लगाने, यज्ञ करने तथा अन्य शुभ कर्मोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, वह सब केवल भारतवर्षमें ही सुलभ है। ब्राह्मणो! भारतवर्षके समस्त गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है। इस प्रकार मैंने भारतवर्षका वर्णन किया। यह सबसे उत्तम, सब पापोंका नाश करनेवाला, पवित्र, धन्य तथा बुद्धिको बढ़ानेवाला है। जो सदा अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर इस प्रसङ्गका पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

कोणादित्यकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—भारतवर्षमें दक्षिणसमुद्रके किनारे ओण्ड्र देशके नामसे विख्यात एक प्रदेश है, जो स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरज मण्डलतकका प्रदेश पुण्यात्माओंके सम्पूर्ण गुणोंद्वारा सुशोभित है। उस देशमें उत्पन्न जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण तपस्या एवं स्वाध्यायमें संलग्न रहते हैं, वे सदा ही वन्दनीय एवं पूजनीय हैं। उस देशके ब्राह्मण श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ अथवा आचार्यकर्म—सभी कार्योंके लिये उत्तम हैं। वे षट्कर्मपरायण, वेदोंके पारंगत विद्वान्, इतिहासवेत्ता, पुराणार्थविशारद, सर्वशास्त्रार्थकुशल, यज्ञशील और राग-द्वेषसे रहित होते हैं। कोई वैदिक अग्निहोत्रमें लगे रहते और कोई स्मार्त अग्निकी उपासना करते हैं। वे स्त्री, पुत्र और धनसे सम्पन्न, दानी और सत्यवादी होते हैं तथा यज्ञोत्सवसे विभूषित पवित्र उत्कल देशमें निवास करते हैं। वहाँ क्षत्रिय आदि अन्य तीन वर्णोंके

एवं एकाग्रचित्त हो सूर्यको अर्घ्य देता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। रोगी पुरुष रोगसे मुक्त हो जाता है, धनकी इच्छा रखनेवालेको धन मिलता है, विद्यार्थीको विद्या प्राप्त होती है और पुत्रकी कामना रखनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है।

इस प्रकार समुद्रमें स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दे, उन्हें प्रणाम करे, फिर हाथमें फूल लेकर मौन हो सूर्यके मन्दिरमें जाय। मन्दिरके भीतर प्रवेश करके भगवान् कोणादित्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करे और अत्यन्त भक्तिके साथ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, जय-जयकार तथा स्तोत्रोंद्वारा उनकी पूजा करे। इस प्रकार सहस्र किरणोंद्वारा मण्डित जगदीश्वर सूर्यदेवका पूजन करके मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। इतना ही नहीं, वह सब पापोंसे मुक्त हो दिव्य शरीर धारण करता है। और अपने आगे-पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार करके सूर्यके समान तेजस्वी एवं इच्छानुसार गमन करनेवाले विमानपर बैठकर सूर्यके लोकमें जाता है। उस समय गन्धर्वगण उसका यशोगान करते हैं। वहाँ एक कल्पतक श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके पुण्य क्षीण होनेपर वह पुनः इस संसारमें आता और योगियोंके उत्तम कुलमें जन्म ले चारों वेदोंका विद्वान्, स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होता है। तदनन्तर भगवान् सूर्यसे ही योगकी शिक्षा प्राप्त करके मोक्ष पा लेता है। चैत्र मासके शुक्लपक्षमें भगवान् कोणादित्यकी यात्रा होती है। यह यात्रा दमनभञ्जिकाके नामसे विख्यात है। जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे भी पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्यके शयन और जागरणके समय, संक्रान्तिके दिन, विषुव योगमें, उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेपर, रविवारको, सप्तमी तिथिको अथवा पर्वके समय जो जितेन्द्रिय पुरुष वहाँकी श्रद्धापूर्वक यात्रा करते हैं, वे सूर्यकी ही भाँति तेजस्वी विमानके द्वारा उनके लोकमें जाते हैं। वहाँ (पूर्वोक्त क्षेत्रमें) समुद्रके तटपर रामेश्वर नामसे विख्यात भगवान् महादेवजी विराजमान हैं, जो समस्त अभिलषित फलोंके देनेवाले हैं। जो समुद्रमें स्नान करके वहाँ श्रीरामेश्वरका दर्शन करते और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तोत्र, गीत और मनोहर वाद्यों-द्वारा उनकी पूजा करते हैं, वे महात्मा पुरुष राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंका फल पाते और परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं।

लोग भी परम संयमी, स्वकर्मपरायण, शान्त और धार्मिक होते हैं। उक्त प्रदेशमें भगवान् सूर्य कोणादित्यके नामसे विख्यात होकर रहते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ! पूर्वोक्त ओण्ड्र देशमें जो सूर्यका क्षेत्र है, जहाँ भगवान् भास्कर निवास करते हैं, उसका वर्णन कीजिये। इस समय हम उसे ही सुनना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! लवणसमुद्रका उत्तरतट अत्यन्त मनोहर और पवित्र है। वह सब ओर बालुकाराशिसे आच्छादित है। उस सर्वगुणसम्पन्न प्रदेशमें चम्पा, अशोक, मौलसिरी, करवीर (कनेर), गुलाब, नागकेसर, ताड़, सुपारी, नारियल, कैथ और अन्य नाना प्रकारके वृक्ष चारों ओर शोभा पाते हैं। वहाँ भगवान् सूर्यका पुण्यक्षेत्र है, जो सम्पूर्ण जगत्में विख्यात है। उसका विस्तार सब ओरसे एक योजनसे अधिक है। वहाँ सहस्र किरणोंसे सुशोभित साक्षात् भगवान् सूर्य निवास करते हैं, वे 'कोणादित्य'के नामसे विख्यात एवं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। वहाँ माघमासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको इन्द्रिय-संयमपूर्वक उपवास करे। फिर प्रातःकाल शौच आदिसे निवृत्त एवं विशुद्धचित्त हो सूर्यदेवका स्मरण करते हुए विधिपूर्वक समुद्रमें स्नान करे। देवता, ऋषि और मनुष्योंका तर्पण करे। तत्पश्चात् जलसे बाहर आकर दो स्वच्छ वस्त्र धारण करे। फिर आचमन करके पवित्रतापूर्वक सूर्योदयके समय समुद्रके तटपर पूर्वाभिमुख होकर बैठे। लाल चन्दन और जलसे ताँबेके पात्रमें एक अष्टदल कमलकी आकृति बनाये, जो केसरयुक्त और गोलाकार हो। उसकी कर्णिका ऊपरकी ओर उठी हो। फिर तिल, चावल, जल, लाल चन्दन, लाल फूल और कुशा उस पात्रमें रख दे। ताँबेका बर्तन न मिले तो मदारके पत्तेका दोना बनाकर उसीमें तिल आदि रक्खे। उस पात्रको एक दूसरे पात्रसे ढककर रक्खे। इसके बाद हृदय आदि अङ्गोंके क्रमसे अङ्गन्यास और करन्यास करके पूर्ण श्रद्धाके साथ अपने आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यका ध्यान करे। इसके बाद पूर्वोक्त अष्टदल कमलके मध्यभागमें तथा अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोणोंके दलोंमें एवं पुनः मध्यभागमें क्रमशः प्रभूत, विमल, सार, आराध्य, परम और सुखरूप सूर्यदेवका पूजन करे। इसके अनन्तर वहाँ आकाशसे सूर्यदेवका आवाहन करके कर्णिकाके ऊपर उनकी स्थापना करे। तत्पश्चात् हाथोंसे सुमुख-संपुट आदि मुद्राएँ दिखाये। फिर देवताका स्नान आदि कराकर एकाग्रचित्त हो इस प्रकार ध्यान करे। भगवान् सूर्य श्वेत कमलके आसनपर तेजोमण्डलमें विराजमान हैं। उनकी आँखें पीली और शरीरका रंग लाल है। उनके दो भुजाएँ हैं। उनका वस्त्र कमलके समान लाल है। वे सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे युक्त और सभी तरहके आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनका रूप सुन्दर है। वे वर देनेवाले, शान्त एवं प्रभापुञ्जसे देदीप्यमान हैं। तदनन्तर उदयकालमें स्निग्ध सिन्दूरके समान अरुण वर्णवाले भगवान् सूर्यका दर्शन करके अर्घ्यपात्र ले। उसे सिरके पास लगाये और पृथ्वीपर घुटने टेककर मौन हो एकाग्रचित्तसे त्र्यक्षर मन्त्रका उच्चारण करते हुए सूर्यको अर्घ्य दे। जिस पुरुषको दीक्षा नहीं दी गयी है, वह भावयुक्त श्रद्धाके साथ सूर्यका नाम लेकर ही अर्घ्य दे; क्योंकि भगवान् सूर्य भक्तिके द्वारा ही वशमें होते हैं।

अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं ईशान कोण, मध्यभाग तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्रकी पूजा करे।* फिर अर्घ्य दे, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन कर जप, स्तुति, नमस्कार तथा मुद्रा करके देवताका विसर्जन करे। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्र अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा संयमपूर्वक भक्तिभाव और विशुद्ध चित्तसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करके परम गतिको प्राप्त होते हैं।† जो मनुष्य तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाले आकाशविहारी भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं, वे सुखके भागी होते हैं। जबतक भगवान् सूर्यको विधिपूर्वक अर्घ्य न दे लिया जाय, तबतक श्रीविष्णु, शंकर अथवा इन्द्रका पूजन नहीं करना चाहिये। अतः प्रतिदिन पवित्र हो प्रयत्न करके मनोहर फूलों और चन्दन आदिके द्वारा सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये। इस प्रकार जो सप्तमी तिथिको स्नान करके शुद्ध

---

* पूजनके वाक्य इस प्रकार हैं—'ह्रां हृदयाय नमः, अग्निकोणे। ह्रीं शिरसे नमः, नैर्ऋत्ये। ह्रूं शिखायै नमः, वायव्ये। ह्रैं कवचाय नमः, ऐशाने। ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः, मध्यभागे। ह्रः अस्त्राय नमः, चतुर्दिक्षु' इति।

† ये चार्घ्यं संप्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च संयताः॥
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना।
ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥
(२८। ३७-३८)

एवं एकाग्रचित्त हो सूर्यको अर्घ्य देता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। रोगी पुरुष रोगसे मुक्त हो जाता है, धनकी इच्छा रखनेवालेको धन मिलता है, विद्यार्थीको विद्या प्राप्त होती है और पुत्रकी कामना रखनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है।

इस प्रकार समुद्रमें स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दे, उन्हें प्रणाम करे, फिर हाथमें फूल लेकर मौन हो सूर्यके मन्दिरमें जाय। मन्दिरके भीतर प्रवेश करके भगवान् कोणादित्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करे और अत्यन्त भक्तिके साथ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, जय-जयकार तथा स्तोत्रोंद्वारा उनकी पूजा करे। इस प्रकार सहस्र किरणोंद्वारा मण्डित जगदीश्वर सूर्यदेवका पूजन करके मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। इतना ही नहीं, वह सब पापोंसे मुक्त हो दिव्य शरीर धारण करता है। और अपने आगे-पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार करके सूर्यके समान तेजस्वी एवं इच्छानुसार गमन करनेवाले विमानपर बैठकर सूर्यके लोकमें जाता है। उस समय गन्धर्वगण उसका यशोगान करते हैं। वहाँ एक कल्पतक श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके पुण्य क्षीण होनेपर वह पुनः इस संसारमें आता और योगियोंके उत्तम कुलमें जन्म ले चारों वेदोंका विद्वान्, स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होता है। तदनन्तर भगवान् सूर्यसे ही योगकी शिक्षा प्राप्त करके मोक्ष पा लेता है। चैत्र मासके शुक्लपक्षमें भगवान् कोणादित्यकी यात्रा होती है। यह यात्रा दमनभञ्जिकाके नामसे विख्यात है। जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे भी पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्यके शयन और जागरणके समय, संक्रान्तिके दिन, विषुव योगमें, उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेपर, रविवारको, सप्तमी तिथिको अथवा पर्वके समय जो जितेन्द्रिय पुरुष वहाँकी श्रद्धापूर्वक यात्रा करते हैं, वे सूर्यकी ही भाँति तेजस्वी विमानके द्वारा उनके लोकमें जाते हैं। वहाँ (पूर्वोक्त क्षेत्रमें) समुद्रके तटपर रामेश्वर नामसे विख्यात भगवान् महादेवजी विराजमान हैं, जो समस्त अभिलषित फलोंके देनेवाले हैं। जो समुद्रमें स्नान करके वहाँ श्रीरामेश्वरका दर्शन करते और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तोत्र, गीत और मनोहर वाद्योंद्वारा उनकी पूजा करते हैं, वे महात्मा पुरुष राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंका फल पाते और परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं।

भगवान् सूर्यकी महिमा

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ! आपने भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् भास्करके उत्तम क्षेत्रका जो वर्णन किया है, वह सब हमलोगोंने सुना। अब यह बताइये कि उनकी भक्ति कैसे की जाती है? और वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं? इस समय यही सब सुननेकी हमारी इच्छा है।

ब्रह्माजी बोले—मनके द्वारा इष्टदेवके प्रति जो भावना होती है, उसे ही भक्ति और श्रद्धा कहते हैं। जो इष्टदेवकी कथा सुनाता, उनके भक्तोंकी पूजा करता तथा अग्निकी उपासनामें संलग्न रहता है, वह सनातन भक्त है। जो इष्टदेवका चिन्तन करता, उन्हींमें मन लगाता, उन्हींकी पूजामें रत रहता तथा उन्हींके लिये कर्म करता है, वह निश्चय ही सनातन भक्त है। जो इष्टदेवके लिये किये जानेवाले कर्मोंका अनुमोदन करता, उनके भक्तोंमें दोष नहीं देखता, अन्य देवताकी निन्दा नहीं करता, सूर्यके व्रत रखता तथा चलते, फिरते, ठहरते, सोते, सूँघते और आँख खोलते-मीचते समय भगवान् भास्करका स्मरण करता है, वह मनुष्य अधिक भक्त माना गया है। विज्ञ पुरुषको सदा ऐसी ही भक्ति करनी चाहिये। भक्ति, समाधि, स्तुति और मनसे जो नियम किया जाता और जो ब्राह्मणको दान दिया जाता है, उसे देवता, मनुष्य और पितर--सभी ग्रहण करते हैं। पत्र, पुष्प, फल और जल--जो कुछ भी भक्तिपूर्वक अर्पण किया जाता है, उसे देवता ग्रहण करते हैं; परंतु वे नास्तिकोंकी दी हुई वस्तु नहीं स्वीकार करते। नियम और आचारके साथ भावशुद्धिका भी उपयोग करना चाहिये। हृदयके भावको शुद्ध रखते हुए जो कुछ किया जाता है, वह सब सफल होता है। भगवान् सूर्यके स्तवन, जप, उपहार-समर्पण, पूजन, उपवास (व्रत) और भजनसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो पृथ्वीपर मस्तक रखकर भगवान् सूर्यको नमस्कार करता है, वह तत्काल सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। जो सूर्यदेवको अपने हृदयमें धारण करके केवल आकाशकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा निश्चय ही सम्पूर्ण

देवताओंकी परिक्रमा हो जाती है ।* जो षष्ठी या सप्तमीको एक समय भोजन करके नियम और व्रतका पालन करते हुए सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है । जो षष्ठी अथवा सप्तमीको दिन-रात उपवास करके भगवान् भास्करका पूजन करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है ।

जब शुक्लपक्षकी सप्तमीको रविवार हो, उस दिन विजयासप्तमी होती है । उसमें दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है । विजयासप्तमीको किया हुआ स्नान, दान, तप, होम और उपवास—सब कुछ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है । जो मनुष्य रविवारके दिन श्राद्ध करते और महातेजस्वी सूर्यका यजन करते हैं, उन्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । जिनके समस्त धार्मिक कार्य सदा भगवान् सूर्यके उद्देश्यसे होते हैं, उनके कुलमें कोई दरिद्र अथवा रोगी नहीं होता । जो सफेद, लाल अथवा पीली मिट्टीसे भगवान् सूर्यके मन्दिरको लीपता है, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है । जो निराहार रहकर भाँति-भाँतिके सुगन्धित पुष्पोंद्वारा सूर्यदेवका पूजन करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । जो घी अथवा तिलके तेलसे दीपक जलाकर भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी अंधा नहीं होता । दीप-दान करनेवाला मनुष्य सदा ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित रहता है । जो सदा देव-मन्दिरों, चौराहों और सड़कोंपर दीप-दान करता है, वह रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है । दीपकी शिखा सदा ऊपरकी ही ओर उठती है, उसकी गति कभी नीचेकी ओर नहीं होती । इसी प्रकार दीप-दान करनेवाला पुरुष भी दिव्य तेजसे प्रकाशित होता है । वह कभी तिर्यग्योनिमें नहीं पड़ता । जलते हुए दीपकको न कभी चुराये, न नष्ट करे । दीपहर्ता मनुष्य बन्धन, नाश, क्रोध एवं तमोमय नरकको प्राप्त होता है । उदयकालमें प्रतिदिन सूर्यको अर्घ्य देनेसे एक ही वर्षमें सिद्धि प्राप्त होती है । सूर्यके उदयसे लेकर अस्ततक उनकी ओर मुँह करके खड़ा हो किसी मन्त्र अथवा स्तोत्रका जप करना आदित्यव्रत कहलाता है । यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है । सूर्योदयके समय श्रद्धापूर्वक अर्घ्य देकर सब कुछ साङ्गोपाङ्ग दान करे । इससे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है ।* अग्नि, जल, आकाश, पवित्र भूमि, प्रतिमा तथा पिण्डी (प्रतिमाकी वेदी) में यत्नपूर्वक सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये ।† उत्तरायण अथवा दक्षिणायनमें सूर्यदेवका विशेषरूपसे पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । इस प्रकार जो मानव प्रत्येक वेलामें अथवा कुवेलामें भी भक्तिपूर्वक श्रीसूर्यदेवका पूजन करता है, वह उन्हींके लोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो तीर्थोंमें पवित्र हो भगवान् सूर्यको स्नान करानेके लिये एकाग्रतापूर्वक जल भरकर लाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है । छत्र, ध्वजा, चँदोवा, पताका और चँवर आदि वस्तुएँ सूर्यदेवको श्रद्धापूर्वक समर्पित करके मनुष्य अभीष्ट गतिको प्राप्त होता है । मनुष्य जो-जो पदार्थ भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, उसे वे लाखगुना करके उस पुरुषको देते हैं । भगवान् सूर्यकी कृपासे मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । सूर्यदेवके एक दिनके पूजनसे भी जो फल प्राप्त होता है, वह शास्त्रोक्त दक्षिणासे युक्त सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिलता ।

मुनियोंने कहा—जगत्पते ! भगवान् सूर्यका यह अद्भुत माहात्म्य हमने सुन लिया । अब पुनः हम जो कुछ पूछते हैं, उसे बतलाइये । गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी—जो भी मोक्ष प्राप्त करना चाहे, उसे किस देवताका पूजन करना चाहिये ? कैसे उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी ? किस उपायसे वह उत्तम मोक्षका भागी होगा ? तथा वह किस साधनका अनुष्ठान करे, जिससे स्वर्गमें जानेपर उसे पुनः नीचे न गिरना पड़े ?

ब्रह्माजी बोले—द्विजवरो ! भगवान् सूर्य उदय होते

---

* भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता ।
भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत्सर्वं सफलं भवेत् ॥
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः ।
उपवासेन भक्त्या वै सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः ।
तत्क्षणात्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥
भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा ॥
सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्याद् व्योमप्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि ॥
(२९ । १७-२१)

* अर्घ्येण सहितं चैव सर्वं साङ्गं प्रदापयेत् ।
उदये श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
(२९ । ४६)

† अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च ।
प्रतिमायां तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥
(२९ । ४८)

ही अपनी किरणोंसे संसारका अन्धकार दूर कर देते हैं। अतः उनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। वे आदि-अन्तसे रहित, सनातन पुरुष एवं अविनाशी हैं तथा अपनी किरणोंसे प्रचण्ड रूप धारणकर तीनों लोकोंको ताप देते हैं। सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये तपनेवालोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, साक्षी तथा पालक हैं। ये ही बारंबार जीवोंकी सृष्टि और संहार करते हैं तथा ये ही अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते, तपते और वर्षा करते हैं। ये धाता, विधाता, सम्पूर्ण भूतोंके आदि कारण और सब जीवोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। ये कभी क्षीण नहीं होते। इनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। ये पितरोंके भी पिता और देवताओंके भी देवता हैं। इनका स्थान ध्रुव माना गया है, जहाँसे फिर नीचे नहीं गिरना पड़ता। सृष्टिके समय सम्पूर्ण जगत् सूर्यसे ही उत्पन्न होता है और प्रलयके समय अत्यन्त तेजस्वी भगवान् भास्करमें ही उसका लय होता है। असंख्य योगीजन अपने कलेवरका परित्याग करके वायुस्वरूप हो तेजोराशि भगवान् सूर्यमें ही प्रवेश करते हैं। राजा जनक आदि गृहस्थ योगी, वालखिल्य आदि ब्रह्मवादी महर्षि, व्यास आदि वानप्रस्थ ऋषि तथा कितने ही संन्यासी योगका आश्रय ले सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर चुके हैं। व्यासपुत्र श्रीमान् शुकदेवजी भी योगधर्म प्राप्त करनेके अनन्तर सूर्यकी किरणोंमें पहुँचकर ही मोक्षपदमें स्थित हुए। इसलिये आप सब लोग सदा भगवान् सूर्यकी आराधना करें; क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत्के माता, पिता और गुरु हैं।

अव्यक्त परमात्मा समस्त प्रजापतियों और नाना प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करके अपनेको बारह रूपोंमें विभक्त करके आदित्यरूपसे प्रकट होते हैं। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, विष्णु, अंशुमान्, वरुण और मित्र—इन बारह मूर्तियोंद्वारा परमात्मा सूर्यने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। भगवान् आदित्यकी जो प्रथम मूर्ति है, उसका नाम इन्द्र है। वह देवराजके पदपर प्रतिष्ठित है। वह देवशत्रुओंका नाश करनेवाली मूर्ति है। भगवान्के दूसरे विग्रहका नाम धाता है, जो प्रजापतिके पदपर स्थित हो नाना प्रकारके प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं। सूर्यदेवकी तीसरी मूर्ति पर्जन्यके नामसे विख्यात है, जो बादलोंमें स्थित हो अपनी किरणोंद्वारा वर्षा करती है। उनके चतुर्थ विग्रहको त्वष्टा कहते हैं। त्वष्टा सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओषधियोंमें स्थित रहते हैं। उनकी पाँचवीं मूर्ति पूषाके नामसे प्रसिद्ध है, जो अन्नमें स्थित हो सर्वदा प्रजाजनोंकी पुष्टि करती है। सूर्यकी जो छठी मूर्ति है, उसका नाम अर्यमा बताया गया है। वह वायुके सहारे सम्पूर्ण देवताओंमें स्थित रहती है। भानुका सातवाँ विग्रह भगके नामसे विख्यात है। वह ऐश्वर्य तथा देहधारियोंके शरीरोंमें स्थित होता है। सूर्यदेवकी आठवीं मूर्ति विवस्वान् कहलाती है, वह अग्निमें स्थित हो जीवोंके खाये हुए अन्नको पचाती है। उनकी नवीं मूर्ति विष्णुके नामसे विख्यात है, जो सदा देवशत्रुओंका नाश करनेके लिये अवतार लेती है। सूर्यकी दसवीं मूर्तिका नाम अंशुमान् है, जो वायुमें प्रतिष्ठित होकर समस्त प्रजाको आनन्द प्रदान करती है। सूर्यका ग्यारहवाँ स्वरूप वरुणके नामसे प्रसिद्ध है, जो सदा जलमें स्थित होकर प्रजाका पोषण करता है। भानुके बारहवें विग्रहका नाम मित्र है, जिसने सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये चन्द्र नदीके तटपर स्थित होकर तपस्या की। परमात्मा सूर्यदेवने इन बारह मूर्तियोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। इसलिये भक्त पुरुषोंको उचित है कि वे भगवान् सूर्यमें मन लगाकर पूर्वोक्त बारह मूर्तियोंमें उनका ध्यान और नमस्कार करें। इस प्रकार मनुष्य बारह आदित्योंको नमस्कार करके उनके नामोंका प्रतिदिन पाठ और श्रवण करनेसे सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

मुनियोंने पूछा—यदि ये सूर्य सनातन आदिदेव हैं, तो इन्होंने वर पानेकी इच्छासे प्राकृत मनुष्योंकी भाँति तपस्या क्यों की ?

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! यह सूर्यका परम गोपनीय रहस्य है। पूर्वकालमें मित्र देवताने महात्मा नारदको जो बात बतलायी थी, वही मैं तुमलोगोंसे कहता हूँ। एक समयकी बात है, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले महायोगी नारदजी मेरुगिरिके शिखरसे गन्धमादन नामक पर्वतपर उतरे और सम्पूर्ण लोकोंमें विचरते हुए उस स्थानपर आये, जहाँ मित्र देवता तपस्या करते थे। उन्हें तपस्यामें संलग्न देख नारदजीके मनमें कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे, 'जो अक्षय, अविकारी, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप और सनातन पुरुष हैं, जिन महात्माने तीनों लोकोंको धारण कर रक्खा है, जो सब देवताओंके पिता एवं परोंसे भी पर हैं, वे किन देवताओं अथवा पितरोंका यजन करते रहे हैं और करेंगे ।' इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके नारदजी मित्र देवतासे बोले—'भगवन् ! अङ्गोपाङ्गों-सहित सम्पूर्ण वेदों एवं पुराणोंमें आपकी महिमाका गान किया

जाता है। आप अजन्मा, सनातन, धाता तथा उत्तम अधिष्ठान हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब कुछ आपमें ही प्रतिष्ठित है। गृहस्थ आदि चारों आश्रम प्रतिदिन आपका ही यजन करते हैं। आप ही सबके पिता, माता और सनातन देवता हैं। फिर भी आप किस देवता अथवा पितरकी आराधना करते हैं, यह हमारी समझमें नहीं आता।'

मित्रने कहा—ब्रह्मन्! यह परम गोपनीय सनातन रहस्य कहने योग्य तो नहीं है; परंतु आप भक्त हैं, इसलिये आपके सामने मैं उसका यथावत् वर्णन करता हूँ। वह जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियरहित, इन्द्रियोंके विषयोंसे रहित तथा सम्पूर्ण भूतोंसे पृथक् है, वही समस्त जीवोंका अन्तरात्मा है; उसीको क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। वह तीनों गुणोंसे भिन्न पुरुष कहा गया है, उसीका नाम भगवान् हिरण्यगर्भ है। वह सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, शर्व (संहारकारी) और अक्षर (अविनाशी) माना गया है। उसने इस एकात्मक त्रिलोकीको अपने आत्माके द्वारा धारण कर रक्खा है। वह स्वयं शरीरसे रहित है, किंतु समस्त शरीरोंमें निवास करता है। शरीरमें रहते हुए भी वह उसके कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। वह मेरा, तुम्हारा तथा अन्य जितने भी देहधारी हैं, उनका भी आत्मा है। सबका साक्षी है, कोई भी उसका ग्रहण नहीं कर सकता। वह सगुण, निर्गुण, विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य माना गया है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।* सम्पूर्ण मस्तक उसके मस्तक, सम्पूर्ण भुजाएँ उसकी भुजा, सम्पूर्ण पैर उसके पैर, सम्पूर्ण नेत्र उसके नेत्र एवं सम्पूर्ण नासिकाएँ उसकी नासिका हैं। वह स्वेच्छाचारी है और अकेला ही सम्पूर्ण क्षेत्रमें सुखपूर्वक विचरता है। यहाँ जितने शरीर हैं, वे सभी क्षेत्र कहलाते हैं। उन सबको वह योगात्मा जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। अव्यक्त पुरमें शयन करता है, अतः उसे पुरुष कहते हैं। विश्वका अर्थ है बहुविध; वह परमात्मा सर्वत्र बतलाया जाता है, इसलिये बहुविधरूप होनेके कारण वह विश्वरूप माना गया है। एकमात्र वही महान् है और एकमात्र वही पुरुष कहलाता है; अतः वह एकमात्र सनातन परमात्मा ही महापुरुष नाम धारण करता है। वह परमात्मा स्वयं ही अपने आपको सौ, हजार, लाख और करोड़ों रूपोंमें प्रकट कर लेता है। जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल भूमिके रसविशेषसे दूसरे स्वादका हो जाता है, उसी प्रकार गुणमय रसके सम्पर्कसे वह परात्मा अनेक रूप प्रतीत होने लगता है। जैसे एक ही वायु समस्त शरीरोंमें पाँच रूपोंमें स्थित है, उसी प्रकार आत्माकी भी एकता और अनेकता मानी गयी है। जैसे अग्नि दूसरे स्थानकी विशेषतासे अन्य नाम धारण करती है, उसी प्रकार वह परमात्मा ब्रह्मा आदिके रूपोंमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करता है। जैसे एक दीप हजारों दीपोंको प्रकट करता है, वैसे ही वह एक ही परमात्मा हजारों रूपोंको उत्पन्न करता है। संसारमें जो चराचर भूत हैं, वे नित्य नहीं हैं; परंतु वह परमात्मा अक्षय, अप्रमेय तथा सर्वव्यापी कहा जाता है। वह ब्रह्म सदसत्स्वरूप है। लोकमें देवकार्य तथा पितृकार्यके अवसरपर उसीकी पूजा होती है। उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। उसका ज्ञान अपने आत्माके द्वारा होता है। अतः मैं उसी सर्वात्माका पूजन करता हूँ। देवर्षे! स्वर्गमें भी जो जीव उस परमेश्वरको नमस्कार करते हैं, वे उसीके द्वारा दिये हुए अभीष्ट गतिको प्राप्त होते हैं। देवता और अपने-अपने आश्रमोंमें स्थित मनुष्य भक्तिपूर्वक सबके आदिभूत उस परमात्माका पूजन करते हैं और वे उन्हें सद्गति प्रदान करते हैं। वे सर्वात्मा, सर्वगत और निर्गुण कहलाते हैं। मैं भगवान् सूर्यको ऐसा मानकर अपने ज्ञानके अनुसार उनका पूजन करता हूँ। नारदजी! यह गोपनीय उपदेश मैंने अपनी भक्तिके कारण आपको बतलाया है। आपने भी इस उत्तम रहस्यको भलीभाँति समझ लिया। देवता, मुनि और पुराण—सभी उस परमात्माको वरदायक मानते हैं। और इसी भावसे सब लोग भगवान् दिवाकरका पूजन करते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार मित्र देवताने पूर्वकालमें नारदजीको यह उपदेश दिया था। भानुके उपदेशको मैंने भी आपलोगोंसे कह सुनाया। जो सूर्यका भक्त न हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन इस

---

* वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः।
ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः॥
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्।
सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः॥
सर्वतःपाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
(३०। ६२-६५)

प्रसङ्गको सुनाता और जो सुनता है, वह निःसंदेह भगवान् सूर्यमें प्रवेश करता है। आरम्भसे ही इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है और जिज्ञासुको उत्तम ज्ञान एवं अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। मुनियो! जो इसका पाठ करता है, वह जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही प्राप्त कर लेता है।

सूर्यकी महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवान् सूर्य सबके आत्मा, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर, देवताओंके भी देवता और प्रजापति हैं। वे ही तीनों लोकोंकी जड़ हैं, परम देवता हैं। अग्निमें विधिपूर्वक डाली हुई आहुति सूर्यके पास ही पहुँचती है। सूर्यसे वृष्टि होती, वृष्टिसे अन्न पैदा होता और अन्नसे प्रजा जीवन-निर्वाह करती है। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु और युग—इनकी काल-संख्या सूर्यके बिना नहीं हो सकती। कालका ज्ञान हुए बिना न कोई नियम चल सकता है और न अग्निहोत्र आदि ही हो सकते हैं। सूर्यके बिना ऋतुओंका विभाग भी नहीं होगा और उसके बिना वृक्षोंमें फल और फूल कैसे लग सकते हैं, खेती कैसे पक सकती है और नाना प्रकारके अन्न कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। उस दशामें स्वर्गलोक तथा भूलोकमें जीवोंके व्यवहारका भी लोप हो जायगा। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि—इन बारह सामान्य नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका ही बोध होता है। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये बारह सूर्य पृथक्-पृथक् माने गये हैं। चैत्र मासमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में अंशुमान्, श्रावणमें पर्जन्य, भादोंमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, अगहनमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा नामक सूर्य तपते हैं। इस प्रकार यहाँ एक ही सूर्यके चौबीस नाम बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी हजारों नाम विस्तारपूर्वक कहे गये हैं।

मुनियोंने पूछा—प्रजापते! जो एक हजार नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करते हैं, उन्हें क्या पुण्य होता है? तथा उनकी कैसी गति होती है?

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! मैं भगवान् सूर्यका कल्याणमय सनातन स्तोत्र कहता हूँ, जो सब स्तुतियोंका सारभूत है। इसका पाठ करनेवालेको सहस्र नामोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती। भगवान् भास्करके जो पवित्र, शुभ एवं गोपनीय नाम हैं, उन्हींका वर्णन करता हूँ; सुनो। विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत—इस प्रकार इक्कीस नामोंका यह स्तोत्र भगवान् सूर्यको सदा प्रिय है।* यह शरीरको नीरोग बनानेवाला, धनकी वृद्धि करनेवाला और यश फैलानेवाला स्तोत्रराज है। इसकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। द्विजवरो! जो सूर्यके उदय और अस्तकालमें—दोनों संध्याओंके समय इस स्तोत्रके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भगवान् सूर्यके समीप एक बार भी इसका जप करनेसे मानसिक, वाचिक, शारीरिक तथा कर्मजनित सब पाप नष्ट हो जाता है। अतः ब्राह्मणो! आपलोग यत्नपूर्वक सम्पूर्ण अभिलषित फलोंके देनेवाले भगवान् सूर्यका इस स्तोत्रके द्वारा स्तवन करें।

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने भगवान् सूर्यको निर्गुण एवं सनातन देवता बतलाया है; फिर आपके ही मुँहसे हमने यह भी सुना है कि वे बारह स्वरूपोंमें प्रकट हुए। वे तेजकी राशि और महान् तेजस्वी होकर किसी स्त्रीके गर्भमें कैसे प्रकट हुए, इस विषयमें हमें बड़ा संदेह है।

ब्रह्माजी बोले—प्रजापति दक्षके साठ कन्याएँ हुईं, जो श्रेष्ठ और सुन्दरी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीसे किया था। अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी

---

* विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः।
लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा
तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः
एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः॥
(३१।३१-३३)

देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलाभिमानी भयंकर दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य स्त्रियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। इन दक्षसुताओंके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं, वे सात्त्विक हैं; इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया है। परंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे, अतः वे मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंको अपने स्थानसे हटा दिया और सारी त्रिलोकी नष्टप्राय कर दी। तब उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया। वे नियमित आहार करके कठोर नियमका पालन करती हुई एकाग्रचित्त हो आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोलीं—भगवन्! आप अत्यन्त सूक्ष्म, परम पवित्र और अनुपम तेज धारण करते हैं। तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार तथा सनातन देवता हैं। आपको नमस्कार है। गोपते! जगत्का उपकार करनेके लिये मैं आपकी स्तुति—आपसे प्रार्थना करती हूँ। प्रचण्ड रूप धारण करते समय आपकी जैसी आकृति होती है, उसको मैं प्रणाम करती हूँ। क्रमशः आठ मासतक पृथ्वीके जलरूप रसको ग्रहण करनेके लिये आप जिस अत्यन्त तीव्र रूपको धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। आपका वह स्वरूप अग्नि और सोमसे संयुक्त होता है। आप गुणात्माको नमस्कार है। विभावसो! आपका जो रूप ऋक्, यजुष् और सामकी एकतासे त्रयीसंज्ञक इस विश्वके रूपमें तपता है उसको नमस्कार है। सनातन! उससे भी परे जो ॐ नामसे प्रतिपादित स्थूल एवं सूक्ष्मरूप निर्मल स्वरूप है, उसको मेरा प्रणाम है। *

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत दिनोंतक आराधना करनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया।

अदिति बोलीं—जगत्के आदि कारण भगवान् सूर्य! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोपते! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके रूपका भलीभाँति दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें।

तब भगवान् भास्करने अपने सामने पड़ी हुई देवीको स्पष्ट दर्शन देकर कहा—'देवि! आपकी जो इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे कोई एक वर माँग लें।'



अदिति बोलीं—देव! आप प्रसन्न हों। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकीका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं। गोपते! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें। अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें।

भगवान् सूर्यने कहा—देवि! मैं अपने हजारवें

---

* नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम्।
धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम्॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते।
आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम्॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम्।
बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत्॥
समेतमग्निसोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने।
यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येन तपते तव॥
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो।
यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम्।
अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन॥

(३२। १२—१६)

भगवान् सूर्यका अदितिपर अनुग्रह



ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः। अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः॥

[पृष्ठ १२९

अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रके शत्रुओंका नाश करूँगा ।

यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं । तत्पश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सविताने उनके गर्भमें निवास किया । उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मैं पवित्रतापूर्वक ही इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी· एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं । उनका यह कठोर नियम देखकर कश्यपजीने कुछ कुपित होकर कहा—'तू नित्य उपवास करके गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती है ।' तब वे भी रुष्ट होकर बोलीं—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा । मैंने इसे नहीं मारा है, यही अपने शत्रुओंका मारनेवाला होगा ।' यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया । वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकाशित हो उठा । उसे देखकर कश्यपजीने वैदिक वाणीके द्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया । स्तुति करनेपर उस गर्भसे बालक प्रकट हो गया । उसके श्रीअङ्गोंकी आभा पद्मपत्रके समान श्याम थी । उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया । इसी समय अन्तरिक्षसे कश्यप मुनिको सम्बोधित करके सजल मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'मुने ! तुमने अदितिसे कहा था—'त्वया मारितम् अण्डम्' (तूने गर्भके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र मार्तण्डके नामसे विख्यात होगा और यज्ञभागका अपहरण करनेवाले अपने शत्रुभूत असुरोंका संहार करेगा ।' यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये । तत्पश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा । दानवोंने भी आकर उनका सामना किया । उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ । उस युद्धमें भगवान् मार्तण्डने दैत्योंकी ओर देखा, अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे जलकर भस्म हो गये । फिर तो देवताओंके



हर्षकी सीमा नहीं रही । उन्होंने अदिति और मार्तण्डका स्तवन किया । तदनन्तर देवताओंको पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार और यज्ञभाग प्राप्त हो गये । भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारका पालन करने लगे । ऊपर और नीचे सब ओर किरणें फैली होनेसे भगवान् सूर्य कदम्बपुष्पकी भाँति शोभा पाते थे । वे आगमें तपाये हुए गोलेके सदृश दिखायी देते थे । उनका विग्रह अधिक स्पष्ट नहीं जान पड़ता था ।

श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आप पुनः हमें सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाइये ।

ब्रह्माजी बोले—स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके नष्ट हो जानेपर जब समस्त लोक अन्धकारमें विलीन हो गये थे, उस समय सबसे पहले प्रकृतिसे गुणोंकी हेतुभूत समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व) का आविर्भाव हुआ । उस बुद्धिसे पञ्च-महाभूतोंका प्रवर्तक अहंकार प्रकट हुआ । आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हुए । तदनन्तर एक अण्ड उत्पन्न हुआ । उसमें ये सातों लोक प्रतिष्ठित थे । सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वी भी थी । उसीमें मैं, विष्णु और महादेवजी भी थे । वहाँ सब लोग तमोगुणसे अभिभूत एवं विमूढ़ थे और परमेश्वरका ध्यान करते थे । तदनन्तर अन्धकारको दूर करनेवाले एक महातेजस्वी देवता प्रकट हुए । उस समय हमलोगोंने ध्यानके द्वारा जाना कि ये भगवान्

सूर्य हैं। उन परमात्माको जानकर हमने दिव्य स्तुतियोंके द्वारा उनका स्तवन आरम्भ किया—'भगवन्! तुम आदिदेव हो। ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण तुम देवताओंके ईश्वर हो। सम्पूर्ण भूतोंके आदिकर्ता भी तुम्हीं हो। तुम्हीं देवाधिदेव दिवाकर हो। सम्पूर्ण भूतों, देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों, मुनियों, किंनरों, सिद्धों, नागों तथा पक्षियोंका जीवन तुमसे ही चलता है। तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं महादेव, तुम्हीं विष्णु, तुम्हीं प्रजापति तथा तुम्हीं वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान् एवं वरुण हो। तुम्हीं काल हो। सृष्टिके कर्ता, धर्ता, संहर्ता और प्रभु भी तुम्हीं हो। नदी, समुद्र, पर्वत, बिजली, इन्द्र-धनुष, प्रलय, सृष्टि, व्यक्त, अव्यक्त एवं सनातन पुरुष भी तुम्हीं हो। साक्षात् परमेश्वर तुम्हीं हो। तुम्हारे हाथ और पैर सब ओर हैं। नेत्र, मस्तक और मुख भी सब ओर हैं। तुम्हारे सहस्रों किरणें, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं। तुम सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण हो। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य—ये सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हारा जो स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी, सबका प्रकाशक, दिव्य, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश बिखेरनेवाला और देवेश्वरोंके द्वारा भी कठिनतासे देखे जाने योग्य है, उसको हमारा नमस्कार है। देवता और सिद्ध जिसका सेवन करते हैं, भृगु, अत्रि और पुलह आदि महर्षि जिसकी स्तुतिमें संलग्न रहते हैं तथा जो अत्यन्त अव्यक्त है, उस तुम्हारे स्वरूपको हमारा प्रणाम है। सम्पूर्ण देवताओंमें उत्कृष्ट तुम्हारा जो रूप वेदवेत्ता पुरुषोंके द्वारा जानने योग्य, नित्य और सर्वज्ञानसम्पन्न है, उसको हमारा नमस्कार है। तुम्हारा जो स्वरूप इस विश्वकी सृष्टि करनेवाला, विश्वमय, अग्नि एवं देवताओंद्वारा पूजित, सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक और अचिन्त्य है, उसे हमारा प्रणाम है। तुम्हारा जो रूप यज्ञ, वेद, लोक तथा द्युलोकसे भी परे परमात्मा नामसे विख्यात है, उसको हमारा नमस्कार है। जो अविज्ञेय, अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यय, अनादि और अनन्त है, आपके उस स्वरूपको हमारा प्रणाम है। प्रभो! तुम कारणके भी कारण हो, तुमको बारंबार नमस्कार है। पापोंसे मुक्त करनेवाले तुम्हें प्रणाम है, प्रणाम है। तुम दैत्योंको पीड़ा देनेवाले और रोगोंसे छुटकारा दिलानेवाले हो। तुम्हें अनेकानेक नमस्कार हैं। तुम सबको वर, सुख, धन और उत्तम बुद्धि प्रदान करनेवाले हो। तुम्हें बारंबार नमस्कार है।*

इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोमय रूप धारण करनेवाले भगवान् भास्करने कल्याणमयी वाणीमें कहा—'आपलोगोंको कौन-सा वर प्रदान किया जाय?'

देवताओंने कहा—प्रभो! आपका रूप अत्यन्त तेजोमय है, इसका ताप कोई सह नहीं सकता। अतः जगत्के हितके लिये यह सबके सहने योग्य हो जाय।

तब 'एवमस्तु' कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंके कार्य सिद्ध करनेके लिये समय-समयपर गर्मी, सर्दी

---

* आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः।
आदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः॥
जीवनः सर्वभूतानां देवगन्धर्वरक्षसाम्।
मुनिकिंनरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम्॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान् वरुणस्तथा॥
त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता भर्ता तथा प्रभुः।
सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च॥
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः।
ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः।
सर्वतःपाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः॥
सहस्रांशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षणः।
भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महः सत्यं तपो जनः॥
प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम्।
दुर्निरीक्षं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः।
स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः॥
वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम्।
सर्वदेवादिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः॥
विश्वकृद्विश्वभूतं च वैश्वानरसुरार्चितम्।
विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः॥
परं यज्ञात्परं वेदात्परं लोकात्परं दिवः।
परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः॥
अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम्।
अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः॥
नमो नमः कारणकारणाय नमो नमः पापविमोचनाय
नमो नमस्ते दितिजार्दनाय नमो नमो रोगविमोचनाय॥
नमो नमः सर्ववरप्रदाय नमो नमः सर्वसुखप्रदाय।
नमो नमः सर्वधनप्रदाय नमो नमः सर्वमतिप्रदाय॥
(११। ९—२१)

और वर्षा करने लगे। तदनन्तर ज्ञानी, योगी, ध्यानी तथा अन्यान्य मोक्षाभिलाषी पुरुष अपने हृदय-मन्दिरमें स्थित भगवान् सूर्यका ध्यान करने लगे। समस्त शुभ लक्षणोंसे हीन अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे युक्त ही क्यों न हो, भगवान् सूर्यकी शरण लेनेसे मनुष्य सब पापोंसे तर जाता है। अग्निहोत्र, वेद तथा अधिक दक्षिणावाले यज्ञ भगवान् सूर्यकी भक्ति एवं नमस्कारकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। भगवान् सूर्य तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, मङ्गलोंमें परम मङ्गलमय और पवित्रोंमें परम पवित्र हैं। अतः विद्वान् पुरुष उनकी शरण लेते हैं। जो इन्द्र आदिके द्वारा प्रशंसित सूर्यदेवको नमस्कार करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें जाते हैं।

मुनियोंने कहा—ब्रह्मन्! हमारे मनमें चिरकालसे यह इच्छा हो रही है कि भगवान् सूर्यके एक सौ आठ नामोंका वर्णन सुनें। आप उन्हें बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो! भगवान् भास्करके परम गोपनीय एक सौ आठ नाम, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले हैं, बतलाता हूँ; सुनो। ॐ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा (पोषक), अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान् (किरणोंवाले), अज (अजन्मा), काल, मृत्यु, धाता (धारण करनेवाले), प्रभाकर (प्रकाशका खजाना), पृथ्वी, आप (जल), तेज, ख (आकाश), वायु, परायण (शरण देनेवाले), सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक (मङ्गल), इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु (प्रज्वलित किरणोंवाले), शुचि (पवित्र), सौरि (सूर्यपुत्र मनु), शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द (कार्तिकेय), वैश्रवण (कुबेर), यम, वैद्युत (बिजलीमें रहनेवाली) अग्नि, जाठराग्नि, ऐन्धन (ईंधनमें रहनेवाली) अग्नि, तेजःपति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, कृत (सत्ययुग), त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वामराश्रय, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा (रात्रि), याम (पहर), क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु (अग्नि), पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद (अन्धकारको भगानेवाले), वरुण, सागर, अंश, जीमूत (मेघ), जीवन, अरिहा (शत्रुओंका नाश करनेवाले), भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक (प्रलयकालीन) अग्नि, सर्वादि, अलोलुप (निर्लोभ), अनन्त, कपिल, भानु, कामद (कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सर्वतोमुख (सब ओर मुखवाले), जय, विशाल, वरद, सर्वभूतनिषेवित, मन, सुपर्ण (गरुड़), भूतादि, शीघ्रग (शीघ्र चलनेवाले), प्राणधारण, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिपुत्र, द्वादशात्मा (बारह स्वरूपोंवाले), रवि, दक्ष, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप (स्वर्ग), देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मैत्रेय तथा करुणान्वित (दयालु)*—ये अमित तेजस्वी एवं कीर्तन करने योग्य भगवान् सूर्यके एक सौ आठ सुन्दर नाम मैंने बताये हैं। जो मनुष्य देवश्रेष्ठ भगवान् सूर्यके इस स्तोत्रका शुद्ध एवं एकाग्र चित्तसे कीर्तन करता है, वह शोकरूपी दावानलके समुद्रसे मुक्त हो जाता और मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

---

* ॐ सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः। गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च॥
इन्द्रो विवस्वान्दीप्तांशुः शुचिः सौरिः शनैश्चरः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः। धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च क्षपा यामास्तथा क्षणाः॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वभूतनिषेवितः॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः॥
द्वादशात्मा रविर्दक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः॥
(३३।३४—४५)

पार्वतीदेवीकी तपस्या, वरदान-प्राप्ति तथा उनके द्वारा ग्राहके मुखसे ब्राह्मण-बालकका उद्धार

मुनियोंने पूछा—प्रभो ! दक्षकन्या सतीने क्रोधवश पूर्व-शरीरका परित्याग करके फिर गिरिराज हिमालयके घरमें कैसे जन्म लिया ? महादेवजीके साथ उनका संयोग कैसे हुआ ? तथा उस दम्पतिमें वार्तालाप किस प्रकार हुआ ?

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो ! पार्वती और महादेवजीकी पवित्र कथा पापोंका नाश करनेवाली और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली है; उसे कहता हूँ, सुनो । एक समयकी बात है, महर्षि कश्यप हिमवान्‌के घरपर पधारे । उस समय हिमवान्‌ने पूछा—'मुने ! किस उपायसे मुझे अक्षय लोक प्राप्त होंगे, मेरी अधिक प्रसिद्धि होगी और सत्पुरुषोंमें मैं पूजनीय समझा जाऊँगा ?'

कश्यपने कहा—महाबाहो ! उत्तम संतान होनेसे यह सब कुछ प्राप्त हो जाता है । ब्रह्मा और ऋषियों-सहित मेरी प्रसिद्धि तो केवल संतानके ही कारण है । अतः गिरिराज ! तुम घोर तपस्या करके गुणवान् संतान—श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न करो ।

ब्रह्माजी कहते हैं—कश्यपजीके यों कहनेपर गिरिराज हिमालयने नियममें स्थित होकर ऐसी तपस्या की, जिसकी कहीं तुलना नहीं है । उस तपस्याने मुझे बड़ा संतोष हुआ । तब मैंने उनके पास जाकर कहा—'उत्तम व्रतके पालन करनेवाले गिरिराज ! अब मैं तुम्हारी इस तपस्यासे संतुष्ट हूँ । तुम इच्छानुसार वर माँगो ।'

हिमालयने कहा—भगवन् ! मैं सब गुणोंसे सुशोभित सन्तान चाहता हूँ । यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं तो ऐसा ही वर दीजिये ।

गिरिराजकी यह बात सुनकर मैंने उन्हें मनोवाञ्छित वर देते हुए कहा—'शैलेन्द्र ! इस तपस्याके प्रभावसे तुम्हारे कन्या उत्पन्न होगी, जिससे तुम सर्वत्र उत्तम कीर्ति प्राप्त करोगे । तुम्हारे यहाँ कोटि-कोटि तीर्थ वास करेंगे । तुम सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित होगे तथा अपने पुण्यसे देवताओंको भी पावन बनाओगे ।' तदनन्तर गिरिराजने समयानुसार अपनी पत्नी मेनाके गर्भसे अपर्णा नामकी एक कन्या उत्पन्न की । अपर्णा बहुत समयतक निराहार रही, उसे उपवाससे रोकते हुए माताने कहा—'बेटी ! 'उ मा' (ऐसा मत करो) । उस समय वे मातृस्नेहसे दुखित हो रही थीं ।'

माताके यों कहनेपर कठोर तपस्या करनेवाली पार्वतीदेवी उमा नामसे ही संसारमें प्रसिद्ध हुईं । पार्वतीकी तपस्यासे तीनों लोक संतप्त हो उठे । तब मैंने उससे कहा—'देवि ! क्यों इस कठोर तपस्यासे तुम सम्पूर्ण लोकोंको संताप दे रही हो । कल्याणी ! तुम्हींने इस सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की है । स्वयं ही इसे रचकर अब इसका विनाश न करो । जगन्माता ! तुम अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करती हो; फिर कौन ऐसी वस्तु है, जिसे तुम इस समय तपस्याद्वारा प्राप्त करना चाहती हो ? वह हमें बतलाओ ।'



देवीने कहा—पितामह ! मैं जिसके लिये यह तपस्या करती हूँ, उसे आप भलीभाँति जानते हैं । फिर मुझसे क्यों पूछते हैं ।

तब मैंने पार्वतीसे कहा—'शुभे ! तुम जिनके लिये तप करती हो, वे स्वयं ही तुम्हारा वरण करेंगे । भगवान् शंकर ही सर्वश्रेष्ठ पति हैं । वे सम्पूर्ण लोकेश्वरोंके भी ईश्वर हैं । हम सदा ही उनके अधीन रहनेवाले किंकर हैं । देवि ! वे देवताओंके भी देवता, परमेश्वर और स्वयम्भू हैं । उनका स्वरूप बहुत ही उदार है । उनकी समानता करनेवाला कहीं कोई भी नहीं है ।'

तत्पश्चात् देवताओंने आकर परम सुन्दरी पार्वतीसे कहा—'देवि ! भगवान् शंकर थोड़े ही दिनोंमें आपके स्वामी होंगे। अब इसके लिये तपस्या न कीजिये।' यों कहकर देवताओंने गिरिराजकुमारीकी प्रदक्षिणा की और वहाँसे अन्तर्धान हो गये। पार्वती भी तपस्यासे निवृत्त हो गयीं, किंतु अपने आश्रममें ही रहने लगीं। एक दिन जब वे अपने आश्रमपर उगे हुए अशोक वृक्षका सहारा लेकर खड़ी थीं, देवताओंकी पीड़ा दूर करनेवाले भगवान् शंकर पधारे। उनके ललाटमें चन्द्राकार तिलक लगा था, वे बाँहके बराबर नाटा एवं विकृत रूप धारण करके आये थे। उनकी नाक कटी हुई थी, कूबड़ निकला हुआ था और केशोंका अन्तिम भाग पीला पड़ गया था। उनके मुखकी आकृति भी बिगड़ी हुई थी। उन्होंने पार्वतीसे कहा—'देवि ! मैं तुम्हारा वरण करता हूँ। उमा योगसिद्ध हो गयी थीं। आन्तरिक भावकी शुद्धिसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। वे समझ गयीं कि साक्षात् भगवान् शंकर पधारे हैं। तब उनकी कृपा प्राप्त करनेकी इच्छासे पार्वतीने अर्घ्य, पाद्य और मधुपर्कके द्वारा उनका पूजन करके कहा—'भगवन् ! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। घरमें मेरे पिता मालिक हैं। वे ही मुझे देनेमें समर्थ हैं। मैं तो उनकी कन्या हूँ।' यह सुनकर देवाधिदेव भगवान् शंकरने उस विकृत रूपमें ही गिरिराज हिमालयके पास जाकर कहा—'शैलेन्द्र ! मुझे अपनी कन्या दीजिये।' उस विकृत वेषमें अविनाशी रुद्रको ही आया जान गिरिराजको शापसे भय हुआ। उन्होंने उदास होकर कहा—'भगवन् ! ब्राह्मण इस पृथ्वीके देवता हैं, मैं उनका अनादर नहीं करता; किन्तु मेरे मनमें पहलेसे जो कामना है, उसे सुनिये। मेरी पुत्रीका स्वयंवर होगा। उसमें वह जिसको वरण करेगी, वही उसका पति होगा।' हिमालयकी यह बात सुनकर भगवान् शंकरने देवीके पास आकर कहा—'तुम्हारे पिताने स्वयंवर होनेकी बात कही है। उसमें तुम जिसका वरण करोगी, वही तुम्हारा पति होगा। उस समय किसी रूपवान्‌को छोड़कर तुम मुझ-जैसे अयोग्यका वरण कैसे करोगी।'

उनके यों कहनेपर पार्वतीने उनकी बातोंपर विचार करते हुए कहा—'महाभाग ! आपको अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मैं आपका ही वरण करूँगी। इसमें कोई अनोखी बात नहीं है। अथवा यदि आपको मुझपर सन्देह है तो मैं यहीं आपका वरण करती हूँ।' यों कहकर पार्वतीने अपने हाथोंसे अशोकका गुच्छा लेकर भगवान् शंकरके कंधेपर रक्खा और कहा—'देव ! मैंने आपका वरण कर लिया।' भगवती पार्वतीके इस प्रकार वरण करनेपर भगवान् शंकरने उस अशोक वृक्षको अपनी वाणीसे सजीव करते हुए-से कहा—'अशोक ! तुम्हारे परम पवित्र गुच्छेसे मेरा वरण हुआ है, इसलिये तुम जरावस्थासे रहित एवं अमर रहोगे। तुम जैसा चाहोगे, वैसा रूप धारण कर सकोगे। तुममें इच्छानुसार फूल लगेंगे। तुम सब कामनाओंको देनेवाले, सब प्रकारके आभूषण-रूप फूल और फलोंसे सम्पन्न एवं मेरे अत्यन्त प्रिय होगे। तुममें सब प्रकारकी सुगन्ध होगी तथा तुम देवताओंके अधिक प्रिय बने रहोगे।'

यों कहकर जगत्‌की सृष्टि और सम्पूर्ण भूतोंका पालन करनेवाले भगवान् शंकर हिमालयकुमारी उमासे विदा ले वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर पार्वतीदेवी भी उन्हींकी ओर मन लगाये एक शिलापर बैठ गयीं, इसी समय देवाधिदेव शिव स्वयं लीला करनेके लिये ब्राह्मण-बालकका रूप धारण-कर निकटवर्ती सरोवरमें प्रकट हुए। उस समय उन्हें ग्राहने पकड़ रक्खा था। वे बोले—'हाय ! ग्राहसे पकड़े जानेके कारण मैं अचेत हो रहा हूँ। कोई हो तो मुझे आकर बचाये।' पीड़ित ब्राह्मणकी वह पुकार सुनकर कल्याणमयी देवी पार्वती सहसा उठ खड़ी हुईं और उस स्थानपर गयीं, जहाँ वह ब्राह्मण-बालक खड़ा था। वहाँ पहुँचकर चन्द्रमुखी देवीने देखा, एक बहुत सुन्दर बालक ग्राहके मुखमें पड़ा थरथर काँप रहा है। ग्राहके खींचनेपर वह तेजस्वी बालक बड़ा आर्तनाद करता था। उस ग्राहग्रस्त बालकको देखकर देवी उमा दुःखसे आतुर हो उठीं और बोलीं—'ग्राहराज ! यह अपने पिता-माताका एक ही बालक है, इसे शीघ्र छोड़ दो।'

ग्राहने कहा—देवि ! छठे दिनपर जो सबसे पहले मेरे पास आ जाता है, उसीको विधाताने मेरा आहार निश्चित किया है। महाभागे ! यह बालक आज छठे दिन ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर ही मेरे पास आया है, अतः मैं इसे किसी प्रकार न छोड़ूँगा।

देवी बोलीं—ग्राहराज ! मैंने हिमालयके शिखरपर जो उत्तम तपस्या की है, उसका पुण्य लेकर इस बालकको छोड़ दो। मैं तुम्हे नमस्कार करती हूँ।

ग्राहने कहा—देवि ! आपने थोड़ी या उत्तम जो कुछ भी तपस्या की है, वह सब मुझे दे दो तो शीघ्र ही यह छुटकारा पा जायगा।

देवी बोलीं—महाग्राह ! मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो पुण्य किया है, वह सब तुम्हें समर्पित है। इस बालकको छोड़ दो।

देवीके इतना कहते ही उनकी तपस्यासे विभूषित हो वह ग्राह दोपहरके सूर्यकी भाँति तेजसे प्रज्वलित हो उठा। उस समय उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। ग्राहने संतुष्ट होकर विश्वको धारण करनेवाली देवीसे कहा—'महाव्रते ! तुमने यह क्या किया। भलीभाँति सोचकर देखो तो सही। तपस्याका उपार्जन बड़े कष्टसे होता है, अतः उसका परित्याग अच्छा नहीं माना गया है। तुम अपनी तपस्या ले लो। साथ ही इस बालकको भी मैं छोड़े देता हूँ।'

देवीने कहा—ग्राह ! मुझे अपना शरीर देकर भी यत्नपूर्वक ब्राह्मणकी रक्षा करनी चाहिये। तपस्या तो मैं फिर भी कर सकती हूँ, किंतु यह ब्राह्मण पुनः नहीं मिल सकता। महाग्राह ! मैंने भलीभाँति सोचकर तपस्याके द्वारा बालकको छुड़ाया है। तपस्या ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ नहीं है। मैं ब्राह्मणोंको ही श्रेष्ठ मानती हूँ। ग्राहराज ! मैं तपस्या देकर फिर नहीं लूँगी। कोई मनुष्य भी अपनी दी हुई वस्तुको वापस नहीं लेता। अतः यह तपस्या तुममें ही सुशोभित हो। इस बालकको छोड़ दो।

पार्वतीके यों कहनेपर सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले ग्राहने उनकी प्रशंसा की, उस बालकको छोड़ दिया और देवीको नमस्कार करके वहीं अन्तर्धान हो गया। अपनी तपस्या-



की हानि समझकर पार्वतीने पुनः नियमपूर्वक तपका आरम्भ किया। उन्हें पुनः तपस्या करनेके लिये उत्सुक जान साक्षात् भगवान् शंकरने प्रकट होकर कहा—'देवि ! अब तपस्या न करो। तुमने अपना तप मुझे ही समर्पित किया है। अतः वही सहस्रगुना होकर तुम्हारे लिये अक्षय हो जायगा।

इस प्रकार तपस्याके अक्षय होनेका उत्तम वरदान पाकर उमादेवीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे स्वयंवरकी प्रतीक्षा करने लगीं।

पार्वतीजीका स्वयंवर और महादेवजीके साथ उनका विवाह

ब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर समयानुसार हिमालयके विशाल पृष्ठभागपर पार्वतीका स्वयंवर रचाया गया। उस समय वह स्थान सैकड़ों विमानोंसे घिर रहा था। गिरिराज हिमवान् किसी बातको सोचने-विचारनेमें बड़े निपुण थे। पुत्रीने देवाधिदेव महादेवजीके साथ जो मन्त्रणा की थी, वह उन्हें ज्ञात हो गयी थी; अतः उन्होंने सोचा, यदि मेरी कन्या सम्पूर्ण लोकोंमें निवास करनेवाले देवता, दानव तथा सिद्धोंके समक्ष महादेवजीका वरण करे तो वही वाञ्छनीय पुण्य होगा। उसीमें मेरा अभ्युदय निहित है। यों विचारकर शैलराजने मन-ही-मन महेश्वरका स्मरण करके रत्नोंसे मण्डित प्रदेशमें स्वयंवर रचाया। गिरिराजकुमारीके स्वयंवरकी घोषणा होते ही सम्पूर्ण लोकोंमें निवास करनेवाले देवता आदि सुन्दर वेष-भूषा धारण करके वहाँ आने लगे। हिमवान्‌की सूचना पाकर मैं भी देवताओंके साथ वहाँ उपस्थित हुआ। मेरे साथ सिद्ध और योगी भी थे। इन्द्र, विवस्वान्, भग, कृतान्त (यम), वायु, अग्नि, कुबेर, चन्द्रमा, दोनों अश्विनीकुमार तथा अन्यान्य देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग और किंनर भी मनोहर वेष बनाये वहाँ आये थे। शचीपति इन्द्र उस समाजमें अधिक दर्शनीय जान पड़ते थे। वे अप्रतिहत आज्ञा, बल और ऐश्वर्यके कारण हर्षमग्न हो स्वयंवरकी शोभा बढ़ा रहे थे।

जो तीनों लोकोंकी उत्पत्तिमें कारण, जगत्‌को जन्म देनेवाली तथा देवता और असुरोंकी माता हैं, जो परम बुद्धिमान् आदिपुरुष भगवान् शिवकी पत्नी मानी गयी हैं, तथा पुराणोंमें परा प्रकृति बतायी गयी हैं, वे ही भगवती सती दक्षपर कुपित हो देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हिमवान्‌के घरमें अवतीर्ण हुई थीं। वे जिस विमानपर बैठी थीं, उसमें सुवर्ण और रत्न जड़े हुए थे। उनके दोनों ओर चँवर डुलाये जा रहे थे। वे सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले सुगन्धित पुष्पोंकी माला हाथमें लिये स्वयंवर-सभामें जानेको प्रस्थित हुईं।

इन्द्र आदि देवताओंसे स्वयंवर-मण्डप भरा हुआ था। भगवती उमा माला हाथमें लिये देव-समाजमें खड़ी थीं। इसी समय देवीकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शंकर पाँच शिखावाले शिशु बनकर सहसा उनकी गोदमें आकर सो गये। देवीने उस पञ्चशिख बालकको देखा और ध्यानके द्वारा उसके स्वरूपको जानकर बड़े प्रेमके साथ उसे अङ्कमें ले लिया। पार्वतीका संकल्प शुद्ध था। वे अपना मनोवाञ्छित पति पा गयीं, अतः भगवान् शंकरको हृदयमें रखकर स्वयंवरसे लौट पड़ीं। देवीके अङ्कमें सोये हुए उस शिशुको देखकर देवता आपसमें सलाह करने लगे कि यह कौन है। कुछ पता न लगनेसे अत्यन्त मोहमें पड़कर वे बहुत कोलाहल करने लगे और वृत्रासुरको मारनेवाले इन्द्रने अपनी एक बाँह ऊँचे उठाकर उस बालकपर वज्रका प्रहार करनेकी चेष्टा की; किंतु शिशुरूपधारी देवाधिदेव शंकरने उन्हें स्तम्भित कर दिया। अब वे न तो वज्र चला सके और न हिल-डुल सके। तब भग नामवाले बलवान् आदित्यने एक तेजस्वी शस्त्र चलाना चाहा, किंतु भगवान्‌ने उनकी बाँहको भी जडवत् बना दिया। साथ ही उनका बल, तेज और योगशक्ति भी व्यर्थ हो गयी। उस समय मैंने परमेश्वर शिवको पहचाना और शीघ्र उठकर उनके चरणोंमें आदरपूर्वक मस्तक झुकाया। इसके बाद मैंने उनकी स्तुति करते हुए कहा—'भगवन्! आप अजन्मा और अजर देवता हैं; आप ही जगत्‌के स्रष्टा, सर्वव्यापक, परावरस्वरूप, प्रकृति-पुरुष तथा ध्यान करनेयोग्य अविनाशी हैं। अमृत, परमात्मा, ईश्वर, महान् कारण, मेरे भी उत्पादक, प्रकृतिके स्रष्टा, सबके रचयिता और प्रकृतिसे भी परे हैं। ये देवी पार्वती भी प्रकृतिरूपा हैं, जो सदा ही आपके सृष्टिकार्यमें सहायक होती हैं। ये प्रकृतिदेवी पत्नीरूपमें प्रकट होकर जगत्‌के कारणभूत आप परमेश्वरको प्राप्त हुई हैं। महादेव! देवी पार्वतीके साथ आपको नमस्कार है। देवेश्वर! आपके ही प्रसाद और आदेशसे मैंने इन देवता आदि प्रजाओंकी सृष्टि की है। ये देवगण आपकी योगमायासे मोहित हो रहे हैं। आप इनपर कृपा कीजिये, जिससे ये पहले-जैसे हो जायँ।'

तदनन्तर मैंने सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'अरे! तुम सब लोग कितने मूढ़ हो! इन्हें नहीं जानते? ये साक्षात् भगवान् शंकर हैं। अब शीघ्र इन्हींकी शरणमें जाओ।' तब वे सब जडवत् बने हुए देवता शुद्धचित्तसे मन-ही-मन महादेवजीको प्रणाम करने लगे। इससे देवाधिदेव महेश्वरने प्रसन्न होकर उनका शरीर पहले-जैसा कर दिया। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवने परम अद्भुत त्रिनेत्रधारी विग्रह धारण किया। उस समय उनके तेजसे तिरस्कृत हो सम्पूर्ण देवताओंने नेत्र बंद कर लिये। तब उन्होंने देवताओंको दिव्य दृष्टि प्रदान की, जिससे वे उनके स्वरूपको देख सकते थे। वह दृष्टि पाकर देवताओंने परम देवेश्वर भगवान् शिवका दर्शन किया। उस समय पार्वतीदेवीने अत्यन्त प्रसन्न हो समस्त देवताओंके देखते-देखते अपने हाथकी माला भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ा दी। यह देख



सब देवता साधु-साधु कहने लगे। फिर उन लोगोंने पृथ्वीपर मस्तक टेककर देवीसहित महादेवजीको प्रणाम किया। इसके बाद देवताओंसहित मैंने हिमवान्‌से कहा—'शैलराज! तुम सबके लिये स्पृहणीय, पूजनीय, वन्दनीय तथा महान् हो; क्योंकि साक्षात् महादेवजीके साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो रहा है। यह

तुम्हारे लिये महान् अभ्युदयकी बात है। अब शीघ्र ही कन्याका विवाह करो, विलम्ब क्यों करते हो?'

मेरी बात सुनकर हिमवान्ने नमस्कारपूर्वक मुझसे कहा—'देव! मेरे सब प्रकारके अभ्युदयमें आप ही कारण हैं। पितामह! जब जिस विधिसे विवाह करना उचित हो, वह सब आप ही करायें।' तब मैंने भगवान् शिवसे कहा—'देव! अब उमाके साथ विवाह करें।' उन्होंने उत्तर दिया—'जैसी आपकी इच्छा।' फिर तो हमलोगोंने महादेवजीके विवाहके लिये तुरंत ही एक मण्डप तैयार किया, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित था। बहुत-से रत्न, चित्र-विचित्र मणियाँ, सुवर्ण और मोती आदि द्रव्य स्वयं ही मूर्तिमान् होकर उस मण्डपको सजाने लगे। मरकत मणिका बना हुआ फर्श विचित्र दिखायी देने लगा। सोनेके खंभोंसे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। स्फटिक मणिकी बनी हुई दीवार चमक रही थी। द्वारपर मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं। चन्द्रकान्त और सूर्यकान्तमणि सूर्य और चन्द्रमाके प्रकाश पाकर पिघल रहे थे। वायु मनोहर सुगन्ध लेकर भगवान् शिवके प्रति अपनी भक्तिका परिचय देती हुई मन्द गतिसे बहने लगी। उसका स्पर्श सुखद जान पड़ता था। चारों समुद्र, इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता, देवनदियाँ, महानदियाँ, सिद्ध, मुनि, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, राक्षस, जलचर, खेचर, किंनर तथा चारणगण भी उस विवाहोत्सवमें (मूर्तिमान् होकर) सम्मिलित हुए थे। तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहू आदि सामगान करनेवाले गन्धर्व मनोहर बाजे लेकर उस विशाल मण्डपमें आये थे। ऋषि कथाएँ कहते, तपस्वी वेद पढ़ते तथा मन-ही-मन प्रसन्न होकर वे पवित्र वैवाहिक मन्त्रोंका जप करते थे। सम्पूर्ण जगन्माताएँ और देवकन्याएँ हर्षमग्न हो मङ्गलगान कर रही थीं। भगवान् शंकरका विवाह हो रहा है, यह जानकर भाँति-भाँतिकी सुगन्ध और सुखका विस्तार करनेवाली छहों ऋतुएँ वहाँ साकार होकर उपस्थित थीं।

इस प्रकार जब सम्पूर्ण भूत वहाँ एकत्रित हुए, और नाना प्रकारके बाजे बजने लगे, उस समय मैं पार्वतीको योग्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कराकर स्वयं ही मण्डपमें ले आया। फिर मैंने भगवान् शंकरसे कहा—'देव! मैं आपका आचार्य बनकर अग्निमें हवन करूँगा। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो विधिपूर्वक इस कार्यका अनुष्ठान आरम्भ हो।' तब देवाधिदेव शंकरने मुझसे इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! जो भी शास्त्रोक्त विधान हो, उसे इच्छानुसार कीजिये; मैं आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करूँगा।' यह सुनकर मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने तुरंत ही कुश हाथमें लेकर महादेवजी तथा पार्वतीदेवीके हाथोंको योगबन्धसे युक्त कर दिया। उस समय वहाँ अग्निदेव स्वयं ही हाथ जोड़कर



उपस्थित हो गये। श्रुतियोंके गीत और महामन्त्र भी मूर्तिमान् होकर आ गये थे। मैंने शास्त्रीय विधिसे अमृतस्वरूप घृतका होम किया और उस दिव्य दम्पतिके द्वारा अग्निकी प्रदक्षिणा करायी। उसके बाद उनके हाथोंको योगबन्धसे मुक्त किया। इस प्रकार क्रमशः वैवाहिक विधि पूर्ण की गयी। इस कार्यमें सम्पूर्ण देवताओं, मेरे मानस पुत्रों तथा सिद्धोंका भी सहयोग था। विवाह समाप्त होनेपर मैंने भगवान् शंकरको प्रणाम किया। योगशक्तिसे ही पार्वती और परमेश्वरका उत्तम विवाह सम्पन्न हुआ। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने तुम सब लोगोंसे पार्वतीजीके स्वयंवर और महादेवजीके उत्तम विवाहकी कथा कह सुनायी।

देवताओंद्वारा महादेवजीकी स्तुति, कामदेवका दाह तथा महादेवजीका मेरुपर्वतपर गमन

ब्रह्माजी कहते हैं—अमिततेजस्वी महादेवजीका विवाह हो जानेपर इन्द्र आदि देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने भगवान् शंकरको प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति आरम्भ की।

देवता बोले—पर्वत जिनका लिङ्गमय स्वरूप है, जो पर्वतोंके स्वामी हैं, जिनका वेग पवनके समान है, जो विकृत रूप धारण करनेवाले तथा अपराजित हैं, जो क्लेशोंका नाश करके शुभ सम्पत्ति प्रदान करते हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है। नीले रंगकी चोटी धारण करनेवाले अम्बिका-पतिको नमस्कार है; वायु जिनका स्वरूप है और जो सैकड़ों रूप धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको प्रणाम है। दैत्योंके योगका नाश करनेवाले तथा योगियोंके गुरु महादेव-जीको प्रणाम है। सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं तथा जो ललाटमें भी नेत्र धारण करते हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है। जो श्मशानमें क्रीड़ा करते और वर देते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, उन देवेश्वर शिवको प्रणाम है। जो गृहस्थ होते हुए भी साधु हैं, नित्य जटा एवं ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है। जो जलमें तपस्या करते, योगजनित ऐश्वर्य देते, मनको शान्त रखते, इन्द्रियोंका दमन करते तथा प्रलय और सृष्टिके कर्ता हैं, उन महादेवजीको प्रणाम है। अनुग्रह करनेवाले भगवान्को नमस्कार है। पालन करनेवाले शिवको प्रणाम है। रुद्र, वसु, आदित्य और अश्विनीकुमारोंके रूपमें वर्तमान भगवान् शंकरको नमस्कार है। जो सबके पिता, सांख्यवर्णित पुरुष, विश्वेदेव, शर्व, उग्र, शिव, वरद, भीम, सेनानी, पशुपति, शुचि, वैरिहन्ता, सद्योजात, महादेव, चित्र, विचित्र, प्रधान, अप्रमेय, कार्य और कारण नामसे प्रतिपादित होते हैं, उन भगवान् शिवको प्रणाम है। भगवन्! पुरुषरूपमें आपको नमस्कार है। पुरुषमें इच्छा उत्पन्न करनेवाले आपको प्रणाम है। आप ही पुरुषका प्रकृतिके साथ संयोग कराते हैं और आप ही प्रकृतिमें गुणोंका आधान करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप प्रकृति और पुरुषके प्रवर्तक, कार्य और कारणके विधायक तथा कर्मफलोंकी प्राप्ति करानेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप कालके ज्ञाता, सबके नियन्ता, गुणोंकी विषमताके उत्पादक तथा प्रजावर्गको जीविका प्रदान करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। देवदेवेश्वर! आपको प्रणाम है। भूतभावन! आपको नमस्कार है। कल्याणमय प्रभो! आप हमें दर्शन देनेके लिये प्रसन्नमुख एवं सौम्य हो जायँ।

इस प्रकार देवताओंके द्वारा अपनी स्तुति होनेपर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् उमापतिने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हें दर्शन देनेको सदा ही प्रसन्नमुख और सौम्य हूँ। तुम शीघ्र कोई वर माँगो। मैं निश्चय ही उसे दूँगा।'

देवता बोले—भगवन्! यह वर आपके ही हाथमें रहे। जब आवश्यकता होगी, तब हम माँग लेंगे। उस समय आप हमें मनोवाञ्छित वर दीजियेगा।

'एवमस्तु' कहकर महादेवजीने देवताओं तथा अन्य लोगोंको विदा किया और स्वयं प्रमथगणोंके साथ अपने धामको चले गये। ब्राह्मणो! जो इस स्तोत्रका श्रवण या पाठ करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें जानेकी शक्ति प्राप्त करता और देवराज इन्द्रकी भाँति देवताओंद्वारा पूजित होता है।

महादेवजी अपने धाममें प्रवेश करके जब सुन्दर आसन-पर विराजमान हुए, तब वक्र स्वभाववाले क्रूर कामदेवने उन्हें अपने बाणोंसे बींधनेका विचार किया। वह अनाचारी, दुरात्मा और कुलाधम काम सब लोकोंको पीड़ित करनेवाला है। वह नियम तथा व्रतोंका पालन करनेवाले ऋषियोंके कार्यमें विघ्न डाला करता है। उस दिन चक्रवाकका रूप धारण करके अपनी पत्नी रतिके साथ उसका आगमन हुआ था। देवताओंके स्वामी भगवान् शंकरने अपनेको बींधनेकी इच्छा रखनेवाले आततायी कामदेवको तीसरे नेत्रसे अवहेलना-पूर्वक देखा। फिर तो उनके नेत्रसे प्रकट हुई आग सहस्रों लपटोंके साथ प्रज्वलित हो उठी और रतिके स्वामी मदनको उसके साज-शृङ्गारके साथ सहसा दग्ध करने लगी। उस समय जलता हुआ कामदेव बड़े करुण स्वरमें आर्तनाद करने लगा और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेके लिये धरतीपर गिर पड़ा। इतनेमें उसके सब अङ्गोंमें आग फैल गयी और सब लोकोंको ताप देनेवाला काम स्वयं ही पृथ्वीपर गिरकर क्षण भरमें मूर्च्छित हो गया। उसकी पत्नी रति अत्यन्त दुःखित हो करुणामय विलाप करने लगी। उस दुःखिनीने महादेवजी तथा पार्वतीदेवीसे अपने पतिके लिये याचना की। उसके दुःखको जानकर दयालु दम्पतिने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'कल्याणी! कामदेव तो अब निश्चय ही दग्ध हो

गया, अब यहाँ इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती; परंतु शरीर-रहित होते हुए भी यह तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करता रहेगा। शुभे ! जब भगवान् विष्णु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके रूपमें इस पृथ्वीपर अवतार लेंगे, उस समय उन्हींके पुत्ररूपमें तुम्हारे पतिका जन्म होगा। इस प्रकार वरदान पाकर कामपत्नी रति खेदरहित एवं प्रसन्न हो अपने अभीष्ट स्थानको चली गयी। इधर भगवान् शंकर कामदेवको दग्ध करनेके पश्चात् भगवती उमाके साथ हिमालयपर प्रसन्नतापूर्वक रमण करने लगे।

पार्वतीजीने कहा—भगवन् ! देवदेवेश्वर ! अब मैं इस पर्वतपर नहीं रहूँगी। अब मेरे लिये दूसरा कोई निवास-स्थान बनाइये।



महादेवजी बोले—देवि ! मैं तो सदा तुमसे अन्यत्र रहनेको कहता था, किन्तु तुम्हें कभी अन्य किसी स्थानका निवास पसंद नहीं आया। आज स्वयं ही तुम अन्यत्र रहनेकी इच्छा क्यों करती हो ? इसका कारण बताओ।

देवीने कहा—देवेश्वर ! आज मैं अपने महात्मा पिताके घर गयी थी। वहाँ माताने मुझे एकान्त स्थानमें देख उत्तम आसन आदिके द्वारा मेरा सत्कार किया और कहा—'उमे ! तुम्हारे स्वामी दरिद्र हैं, इसलिये सदा खिलौनोंसे खेला करते हैं। देवताओंकी क्रीड़ा ऐसी नहीं होती।' महादेव ! आप जो नाना प्रकारके गणोंके साथ विहार करते हैं, यह मेरी माताको पसंद नहीं है।

यह सुनकर महादेवजी हँस पड़े और देवीको हँसाते हुए बोले—'प्रिये ! बात तो ऐसी ही है, इसके लिये तुम्हें दुःख क्यों हुआ ? मैं कभी हाथीके चमड़े लपेटता, कभी दिगम्बर बना रहता, श्मशानभूमिमें निवास करता, बिना घर-द्वारका होकर जंगलोंमें और पर्वतकी कन्दराओंमें रहता तथा अपने गणोंके साथ घूमता-फिरता हूँ। इसके लिये तुम्हें मातापर क्रोध नहीं करना चाहिये। तुम्हारी माताने सब ठीक ही कहा है। इस पृथ्वीपर प्राणियोंका माताके समान हितकारी कोई बन्धु-बान्धव नहीं है।

देवीने कहा—सुरेश्वर ! मुझे अपने बन्धु-बान्धवोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। आप वही करें, जिससे मुझे सुख हो।

देवीका यह वचन सुनकर देवेश्वर महादेवजीने उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उस पर्वतको छोड़ दिया और पत्नी तथा पार्षदोंको साथ ले देवताओं और सिद्धोंसे सेवित सुमेरुपर्वतके लिये प्रस्थान किया।

दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

ऋषियोंने कहा—ब्रह्मन् ! वैवस्वत मन्वन्तरमें प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षका अश्वमेध-यज्ञ कैसे नष्ट हुआ ?

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! महादेवजीने सती देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे जिस प्रकार दक्षके यज्ञका विध्वंस किया था, उसका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालकी बात है, महादेवजी मेरुगिरिके ज्योतिःस्थल नामक शिखर-पर, जो सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित और पलंगकी भाँति फैला हुआ था, विराजमान थे। गिरिराजकुमारी पार्वती सदा उनके पार्श्वभागमें बैठी रहती थीं। आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, गुह्यकोंसहित कुबेर, महामुनि शुक्राचार्य तथा सनत्कुमार आदि महर्षि उनकी सेवामें उपस्थित रहते थे। अत्यन्त भयंकर राक्षस एवं महाबली पिशाच, जो अनेक रूप धारण करनेवाले तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे, भगवान् शिवके समीप रहा करते थे। भगवान्‌के पार्षद भी वहाँ मौजूद थे। वे सब अग्निके समान तेजस्वी

जान पड़ते थे। महादेवजीकी इच्छासे भगवान् नन्दीश्वर भी वहाँ खड़े रहते थे। नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी मूर्तिमती होकर उनकी सेवामें संलग्न रहती थीं। इस प्रकार परम सौभाग्यशाली देवर्षियों और देवताओंसे पूजित होकर भगवान् शंकर वहाँ सदा निवास करने लगे। कुछ कालके बाद प्रजापति दक्षने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार यज्ञ करनेकी तैयारी की। उनके उस यज्ञमें इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता स्वर्गसे आकर एकत्रित होने लगे। वे अग्निके समान तेजस्वी देवता दक्षके अनुरोधसे प्रकाशमान विमानोंपर बैठकर गङ्गाद्वारको गये। पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्गलोकमें रहनेवाले सभी देवता प्रजापतिके पास हाथ जोड़कर उपस्थित हुए। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य तथा मरुद्गण—ये सब यज्ञमें भाग लेनेके लिये भगवान् विष्णुके साथ वहाँ पधारे थे। ऊष्मप, धूमप, आज्यप तथा सोमप नामवाले देवता भी अश्विनीकुमारोंके साथ वहाँ उपस्थित थे। ये तथा और भी अनेक भूत-प्राणियोंका समुदाय वहाँ एकत्रित हुआ था। जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज भी उस यज्ञमें सम्मिलित थे। देवतालोग अपनी स्त्रियों तथा महर्षियोंके साथ वहाँ पधारे थे।

देवताओंको वहाँ जाते देख गिरिराजकुमारी पार्वतीने भगवान् शंकरसे पूछा—'भगवन्! ये इन्द्र आदि देवता कहाँ जाते हैं?'



महादेवजी बोले—महाभागे! प्रजापति दक्ष अश्वमेध यज्ञ करते हैं। उसीमें सब देवता जा रहे हैं।

देवीने पूछा—महाभाग! आप इस यज्ञमें क्यों नहीं जाते? ऐसी कौन-सी रुकावट है, जिससे आपका वहाँ जाना नहीं होता।

महादेवजी बोले—महाभागे! देवताओंने ही यह सब किया है। उन्होंने किसी भी यज्ञमें मेरा भाग नहीं रक्खा है। पहलेसे जो मार्ग चला आता है, उसीसे अपनेको भी चलना चाहिये।

उमाने कहा—भगवन्! आप सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपके गुण और प्रभाव सबसे अधिक हैं। आप अपने तेज, यश और श्रीके द्वारा अजेय एवं अधृष्य हैं। महाभाग! यज्ञमें आपके भागका जो यह निषेध है, इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ है। मेरे शरीरमें कम्प छा गया है।

महादेवजी बोले—देवि! क्या तुम मुझे नहीं जानतीं? आज तुम्हें जो मोह हुआ है, उससे इन्द्र आदि देवताओंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्ट हो सकती है। मैं ही यज्ञका स्वामी हूँ। मेरी ही सब लोग निरन्तर स्तुति करते हैं। मेरे ही संतोषके लिये सब लोग रथन्तर सामका गान करते हैं। ब्राह्मण वेद-मन्त्रोंसे मेरा ही यजन करते हैं तथा अध्वर्यु लोग यज्ञमें मेरे ही लिये भागोंकी कल्पना करते हैं।

प्राणोंके समान प्रियतमा पत्नीसे यों कहकर भगवान् शंकरने अपने मुखसे क्रोधाग्निजनित एक महाभूतकी सृष्टि की। फिर उससे कहा—'तुम मेरी आज्ञासे दक्षके यज्ञमें



जाओ और उसका शीघ्र विनाश करो ।' तब उसने रुद्रकी आज्ञासे सिंहका वेष धारण करके दक्षके यज्ञका विनाश कर डाला । उसने अपने कर्मका साक्षी बनानेके लिये अत्यन्त भयंकर भद्रकालीको भी साथ ले लिया था । भगवान्‌का वह क्रोध वीरभद्रके नामसे विख्यात हुआ, जो श्मशानभूमिमें निवास करता है । उसने पार्वतीदेवीके खेदका निवारण किया था । वीरभद्रने अपने रोमकूपोंसे अनेक रुद्रगण उत्पन्न किये, जो रुद्रके समान ही वीर्यवान् और पराक्रमी थे । वे सब सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें झुंड बनाकर उस यज्ञ-मण्डपमें गये । उनकी किलकिलाहटसे समस्त आकाश गूँज उठा । अग्नि और सूर्यका प्रकाश मन्द पड़ गया । चारों ओर अन्धकार छा गया । उस समय वे समस्त रुद्र-गण यज्ञमण्डपमें आग लगाने लगे; किसीने यूपोंको तोड़ डाला, किसीने उन्हें उखाड़ दिया, कोई सिंहनाद करता और कोई वहाँकी सब वस्तुओंको तहस-नहस कर डालता था । कितने ही वायुके समान वेगसे इधर-उधर दौड़ लगाने लगे । यज्ञपात्र चूर-चूर हो गये । वहाँके मण्डप ढह गये । ऐसा जान पड़ता था, आकाशसे तारे टूटकर गिर रहे हैं । कोई यज्ञमें रखे हुए भोज्य पदार्थोंको खाते और सब ओर लोगोंको डराते फिरते थे । कितने ही पर्वताकार भूत देवाङ्गनाओंको उठाकर फेंक देते थे । ऐसे गणोंके साथ प्रतापी वीरभद्रने पहुँचकर देवताओंद्वारा सुरक्षित यज्ञको भद्रकालीके सामने ही भस्म कर डाला । अन्य रुद्रगण सबको भय उपजानेवाली गर्जना करने लगे । कुछ लोगोंने यज्ञका मस्तक काटकर भयंकर नाद किया । तब इन्द्र आदि देवताओं और प्रजापति दक्षने हाथ जोड़कर पूछा—'बताइये, आप कौन हैं ?'

वीरभद्रने कहा—मैं न देवता हूँ न दैत्य हूँ । न इस यज्ञमें भोजन करने आया हूँ और न कौतूहलवश इसे देखनेको ही मेरा आना हुआ है । मैं इस यज्ञका विध्वंस करनेके लिये आया हूँ । मेरा नाम वीरभद्र है । मैं रुद्रके कोपसे प्रकट हुआ हूँ । ये भद्रकाली हैं । इनका प्रादुर्भाव पार्वती देवीके क्रोधसे हुआ है । ये देवाधिदेव महादेवजीके भेजनेसे यज्ञके समीप आयी हैं । राजेन्द्र ! तुम देवदेव भगवान् उमापतिकी शरणमें जाओ । उनका क्रोध भी वरदानके ही तुल्य है ।

तब प्रजापति दक्ष मन-ही-मन भगवान् शंकरकी शरण-में गये । उन्होंने प्राण और अपानको हृदयमें रोककर यत्नपूर्वक उनका ध्यान किया । तब भगवान् शिव प्रकट हुए और उन्होंने मुसकराकर पूछा—'कहो, तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?' तब दक्षने हाथ जोड़कर कहा—



'भगवन् ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं अथवा यदि मैं आपका प्रिय एवं कृपापात्र हूँ तो मुझे यह वरदान दें—'जो भी भोजन-सामग्री यहाँ खा-पी ली गयी, नष्ट कर दी गयी, यज्ञ-का जो सामान चूर-चूर करके फेंक दिया गया, वह सब बहुत दिनोंसे यत्न करके संचित किया गया था । महेश्वर ! आपकी कृपासे वह व्यर्थ न जाय ।'

ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कहकर दक्षकी कामना पूर्ण की । प्रजापति दक्षने भगवान्‌से वरदान पाकर पृथ्वीपर घुटने टेक दिये और भगवान् शिवका स्तवन आरम्भ किया ।

दक्षद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

दक्ष बोले—देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार प्रणाम है । देवेन्द्र ! आप बलमें श्रेष्ठ और है । अन्धकासुरको मारनेवाले रुद्र ! आपको देवता तथा दानवोंद्वारा पूजित हैं ।* आप

* दक्ष उवाच—नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन । देवेन्द्र त्वं बलश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥

सहस्राक्ष[१], विरूपाक्ष[२] और त्र्यक्ष[३] कहलाते हैं। यक्षराज कुबेरके आप इष्टदेव हैं। आपके हाथ और पैर सब ओर हैं। नेत्र, मस्तक और मुख भी सब ओर हैं। आपके सब ओर कान हैं। आप संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। शङ्कुकर्ण[४], महाकर्ण[५], कुम्भकर्ण[६], अर्णवालय[७], गजेन्द्रकर्ण[८], गोकर्ण[९], शतकर्ण[१०], शतोदर[११], शतावर्त[१२], शतजिह्व[१३] और सनातन हैं। आपको नमस्कार है। गायत्रीके उपासक आपका ही गान करते हैं। सूर्यके भक्त आपकी ही सूर्यरूपसे अर्चना करते हैं। आप देवता और दानवोंके रक्षक, ब्रह्मा तथा इन्द्र हैं। आप मूर्तिमान्, महामूर्ति और जलके भंडाररूप समुद्र हैं। जैसे गोशालामें गौएँ रहती हैं, उसी प्रकार आपमें सम्पूर्ण देवता निवास करते हैं। आपके शरीरमें मैं चन्द्रमा, अग्नि, वरुण, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा तथा बृहस्पतिको देखता हूँ। क्रिया, करण, कार्य, कर्ता, कारण, असत्, सदसत्, उत्पत्ति तथा प्रलय भी आप ही हैं। भव (सृष्टिकर्ता), शर्व, रुद्र (रुलानेवाले), वरद, पशुपति, अन्धकासुरघाती, त्रिजट, त्रिशीर्ष, त्रिशूलधारी, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र और त्रिपुरनाशक आप भगवान् शिवको नमस्कार है।

आप चण्ड (अत्यन्त क्रोधी), मुण्ड (सिर मुँड़ाये हुए), प्रचण्ड विश्वको धारण करनेवाले, दण्डी, शङ्कुकर्ण तथा दण्डिदण्ड (दण्डधारियोंको भी दण्ड देनेवाले) हैं। आपको नमस्कार है। आप अर्धचण्डिकेश (अर्द्धनारीश्वर), शुष्क, विकृत, विलोहित, धूम्र और नीलग्रीव हैं। आपको नमस्कार है। आप अप्रतिरूप हैं--आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आपको नमस्कार है। आप विरूप (विकराल रूपवाले) होते हुए भी शिव (कल्याणमय) हैं। आप ही सूर्य और उनके स्वामी हैं। आपकी ध्वजा और पताकामें सूर्यके चिह्न हैं। आपको नमस्कार है। प्रमथगणोंके स्वामी आपको नमस्कार है। आपके कंधे वृषभके कंधेके समान मांसल हैं। आपको नमस्कार है। आप हिरण्यगर्भ एवं हिरण्यकवच हैं। आपको नमस्कार है। आप हिरण्य (सुवर्ण) की चूड़ा धारण करनेवाले और हिरण्यपति हैं। आपको नमस्कार है। आप शत्रुओंके घातक, अत्यन्त क्रोधी तथा पत्तोंके समूहपर शयन करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आपकी स्तुति की गयी है, इस समय भी आपकी स्तुति की जाती है तथा आप ही स्तुतिस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप सर्वस्वरूप, सर्वभक्षी एवं सब भूतोंके अन्तरात्मा हैं। आपको नमस्कार है। *

---

१. सहस्रों नेत्रोंवाले, २. विकराल नेत्रोंवाले, ३. तीन नेत्रोंवाले, ४. कीलके समान नुकीले कानोंवाले, ५. बड़े-बड़े कानोंवाले, ६. घड़ेके समान कानोंवाले, ७. समुद्र जिनका निवासस्थान है वे, ८. हाथीके समान कानोंवाले, ९. गायके समान कानोवाले, १०. सैकड़ों कानोंवाले, ११. सैकड़ों उदरवाले, १२. सैकड़ो भँवरवाले, १३. सैकड़ों जिह्वावाले।

* सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय। सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः॥
सर्वतः श्रुतिमॉल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि। शङ्कुकर्णो महाकर्णः कुम्भकर्णोऽर्णवालयः॥
गजेन्द्रकर्णो गोकर्णः शतकर्णो नमोऽस्तु ते। शतोदरः शतावर्तः शतजिह्वः सनातनः॥
गायन्ति त्वां गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्किणः। देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः॥
मूर्तिमांस्त्वं महामूर्तिः समुद्रः सरसां निधिः। त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवासते॥
त्वत्तः शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम्। आदित्यमथ विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम्॥
क्रिया करणकार्ये च कर्ता कारणमेव च। असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाप्ययौ॥
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूनां पतये चैव नमोऽस्त्वन्धकघातिने॥
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे। त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः॥
नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वचण्डधराय च। दण्डिने शङ्कुकर्णाय दण्डिदण्डाय वै नमः॥
नमोऽर्धचण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च। विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः॥
नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च। सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताकिने॥
नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय वै नमः। नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च॥
हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः। शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसङ्घशयाय च॥
नमः स्तुताय स्तुतये स्तूयमानाय वै नमः। सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने॥

आप ही होम और मन्त्र हैं। आपकी ध्वजा-पताका श्वेत रंगकी है, आपको नमस्कार है। आप ही अनम्य और आप ही नमन करनेके योग्य हैं। आप हर्षमग्न होकर किलकारियाँ भरनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। सोते हुए, सोये हुए, सोकर उठे हुए, खड़े हुए और दौड़ते हुए आपको नमस्कार है। कुबड़े और कुटिलरूपमें आपको नमस्कार है। आप सदा ताण्डव नृत्य करनेवाले और मुख-से बाजा बजानेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप बाधा निवारण करनेवाले, लुब्ध एवं गाना-बजाना करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। ज्येष्ठ और श्रेष्ठरूपमें आपको नमस्कार है। बलका मन्थन करनेवाले आपको नमस्कार है। उग्र रूपवाले आपको सदा नमस्कार है। दस भुजाओं-वाले आपको नित्य प्रणाम है। हाथमें कपाल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। श्वेत भस्म आपको अधिक प्रिय है। आप भयभीत करनेवाले, भयंकर एवं कठोर व्रत धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

आपका मुख नाना प्रकारसे विकृत है, जिह्वा तलवारके समान है और दाँत बड़े भयंकर हैं। पक्ष, मास और लवार्ध आदि कालके भेद आपके ही स्वरूप हैं। आपको तूँबी और वीणा बहुत ही प्रिय है। आपको नमस्कार है। आपका रूप घोर और अघोर दोनों ही है। आप घोर और अघोरतर हैं; ऐसे होते हुए भी आप शिव, शान्त तथा अत्यन्त शान्त हैं। आपको नमस्कार है। शुद्ध बुद्धिरूप आपको नमस्कार है। सबको बाँटना आप अधिक पसंद करते हैं। आप पवन, सूर्य एवं सांख्यपरायण हैं। आप एक प्रचण्ड घण्टा धारण करनेवाले और घण्टा-ध्वनिके समान बोलनेवाले हैं। आपके पास बराबर घण्टा रहा करता है। आप लाखों घंटेवाले हैं। घंटोंकी माला आपको अधिक प्रिय है। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप प्राणोंको दण्ड देनेवाले, नित्य एवं लोहितरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप हूँ-हूँ करनेवाले, रुद्र एवं भगाकारप्रिय हैं। आपको नमस्कार है। आपका कहीं पार नहीं है। आप सदा पर्वतीय वृक्षोंको अधिक पसंद करते हैं। आपको नमस्कार है। यज्ञोंके अधिपतिरूपमें आपको नमस्कार है। आप भूत एवं प्रस्तुत (वर्तमान)-रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप यज्ञवाहक, जितेन्द्रिय, सत्य-स्वरूप, भग, तट, तटपर होने योग्य तथा तटिनीपति (समुद्र) हैं। आपको नमस्कार है। आप अन्नदाता, अन्नपति और अन्नके भोगी हैं। आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक और सहस्रों चरण हैं। आप सहस्रों शूल उठाये रहने-वाले और सहस्रों नेत्रोंवाले हैं। आपको नमस्कार है। आपका वर्ण उदयकालीन सूर्यके समान लाल है। आप बालकरूप धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप बालसूर्यस्वरूप हैं और काल आपका खिलौना है। आपको नमस्कार है। आप शुद्ध, बुद्ध, क्षोभण तथा क्षयरूप हैं। आपको नमस्कार है।*

---

* नमो होमाय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने। नमोऽनम्याय नम्याय नमः किलकिलाय च॥
नमस्त्वां शयमानाय शयितायोत्थिताय च। स्थिताय धावमानाय कुब्जाय कुटिलाय च॥
नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे। बाधापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे॥
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च। उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाहवे॥
नमः कपालहस्ताय सितभस्मप्रियाय च। विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च॥
नानाविकृतवक्त्राय खड्गजिह्वोग्रदंष्ट्रिणे। पक्षमासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च॥
अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च। नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय संविभागप्रियाय च। पवनाय पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च॥
नमश्चण्डैकघण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने। सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च॥
प्राणदण्डाय नित्याय नमस्ते लोहिताय च। हूंहूंकाराय रुद्राय भगाकारप्रियाय च॥
नमोऽपारवते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च। नमो यज्ञाधिपतये भूताय प्रस्तुताय च॥
यज्ञवाहाय दान्ताय तथ्याय च भगाय च। नमस्तटाय तट्याय तटिनीपतये नमः॥
अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च॥
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च॥
नमो बालार्करूपाय कालक्रीडनकाय च। नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च॥

आपके केश गङ्गाजीकी तरङ्गोंसे अङ्कित रहते हैं। आप अपने मस्तकके बाल खुले रखते हैं। आप [संध्यादि] छः कर्मोंमें निष्ठा रखनेवाले हैं तथा [सृष्टि आदि] तीन कर्मोंका निरन्तर पालन करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप वर्णों और आश्रमोंके पृथक्-पृथक् धर्मकी विधिपूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप श्रेष्ठ, ज्येष्ठ तथा पक्षियोंके समान कलकल शब्द करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आपके नेत्र श्वेत, पीले, काले और लाल रंगवाले हैं। आप धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष, क्रथ (संहार), क्रथन (संहारकर्ता), सांख्य, सांख्य-प्रधान और योगके अधिपति हैं। आपको नमस्कार है। आप रथ-संचारयोग्य सड़कसे रथपर बैठकर चलते हैं। चौराहा आपका मार्ग है। आपको नमस्कार है। आप काला मृगचर्म ओढ़ते और सर्पका यज्ञोपवीत पहनते हैं। ईशान! आप रुद्रसमुदायरूप हैं। हरिकेश (पीले केशवाले)! आपको नमस्कार है। व्यक्ताव्यक्तस्वरूप अम्बिकानाथ! आप त्रिनेत्रधारीको नमस्कार है। काल और कामदेवके मदको इच्छानुसार चूर्ण करनेवाले तथा दुष्टों और उद्दण्डोंका नाश करनेवाले महेश्वर! आपको नमस्कार है। सबके द्वारा निन्दित और सबके संहारक सद्योजात! आपको नमस्कार है। दूसरोंको उन्मत्त बनानेवाले सैकड़ों आवर्तोंसे युक्त शिव! आपके मस्तकके बाल गङ्गाजीके जलसे भीगे रहते हैं। आपको नमस्कार है। चन्द्रार्धसंयुगावर्त और मेधावर्त नामसे पुकारे जानेवाले! आपको नमस्कार है। आप अन्न-दान करनेवाले, अन्नदाताओंके प्रभु, अन्नभोक्ता और रक्षक हैं। आपको नमस्कार है। आप ही प्रलयकालीन अग्नि हैं। देवदेवेश्वर! आप ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके जीव हैं। चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले भी आप ही हैं।

विश्वेश्वर! आप ही ब्रह्मा हैं। जलमें स्थित जो ब्रह्म है, उसे आपका ही स्वरूप बतलाते हैं। आप ही सबकी परम योनि हैं। चन्द्रमा और ज्योतिके भंडार भी आप ही हैं। ब्रह्मवादी महर्षि आपको ही ऋक्, साम तथा ॐकार कहते हैं। सामगान करनेवाले ब्रह्मवेत्ता तथा श्रेष्ठ देवता 'हायि हायि हरे हायि हुवा हाव' आदि साम-ऋचाओंका निरन्तर उच्चारण करते हुए आपका ही यशोगान करते हैं। आप ही यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेदमय हैं। ब्रह्मवेत्ता कल्प और उपनिषदादिके समूहोंसे आपके ही स्वरूपका अध्ययन करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जो-जो वर्ण और आश्रम हैं, वह सब आप ही हैं। बिजलीकी चमक, मेघकी गर्जना, संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, कला, काष्ठा, निमेष, नक्षत्र और युग—सब आपके ही स्वरूप हैं। बैलोंके ककुद (थूहे) और पर्वतोंके शिखर भी आप ही हैं।* आप मृगोंमें मृगराज सिंह, सर्पोंमें तक्षक और शेषनाग, समुद्रोंमें क्षीरसागर, मन्त्रोंमें प्रणव, शस्त्रोंमें वज्र और व्रतोंमें सत्य हैं। आप ही इच्छा,

---

* तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः। नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनियताय च ॥
वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथग्धर्मप्रवर्तिने। नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च ॥
श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च। धर्मकामार्थमोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च ॥
सांख्याय सांख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः। नमो रथ्याधिरथ्याय चतुष्पथपथाय च ॥
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने। ईशान रुद्रसंघात हरिकेश नमोऽस्तु ते ॥
त्र्यम्बकायाम्बिकानाथ व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते। कालकामदकामघ्न दुष्टोद्वृत्तनिषूदन ॥
सर्वगर्हित सर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते। उन्मादनशतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज ॥
चन्द्रार्धसंयुगावर्त मेधावर्त नमोऽस्तु ते। नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः ॥
अन्नभोक्त्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल। जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च ॥
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः। चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च ॥
त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते। सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः ॥
ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः। हायि हायि हरे हायि हुवा हावेति वासकृत् ॥
गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः। यजुर्मय ऋङ्मयश्च सामाथर्वयुतस्तथा ॥
पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णाश्रमाश्च ये ॥
त्वमेवाश्रमसंघाश्च विद्युत्स्तनितमेव च। संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्धमेव च ॥
कला काष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च। वृषाणां ककुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च ॥

राग, द्वेष, मोह, शान्ति, क्षमा, व्यवसाय (दृढ़ निश्चय), धैर्य, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजय हैं। आप गदा, बाण, धनुष, खट्वाङ्ग और मुद्गर धारण करनेवाले हैं। आप ही छेदन, भेदन और प्रहार करनेवाले हैं। नेता और मन्ता (आदर देनेवाले) भी आप ही माने गये हैं। [मनूक्त] दस लक्षणोंवाला धर्म, अर्थ एवं काम भी आपके ही स्वरूप हैं। चन्द्रमा, समुद्र, नदी, छोटा तालाब, सरोवर, लता, बेल, घास, अन्न, पशु, मृग और पक्षी भी आप ही हैं। द्रव्य, कर्म और गुणोंका आरम्भ भी आपसे ही होता है। आप ही समयपर फूल और फल देनेवाले हैं। आदि, अन्त, मध्य, गायत्री और ॐकार भी आप ही हैं।

हरा, लाल, काला, नीला, पीला, अरुण, चितकबरा, कपिल, बभ्रु (भूरा), फाखता और श्याम आदि रंग भी आप ही हैं। आप सुवर्णरेता (अग्नि) के नामसे विख्यात हैं। आप ही सुवर्ण माने गये हैं। सुवर्ण आपका नाम है और सुवर्ण आपको प्रिय है। आप ही इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, वायु, प्रज्वलित अग्नि, स्वर्भानु (राहु) और भानु (सूर्य) हैं। होता (हवन करनेवाले), होत्र (हवन), होम्य (हवनद्वारा पूज्य), हुत (हवि) और प्रभु भी आप ही हैं। त्रिसौपर्ण ऋचा और यजुर्वेदका शतरुद्रिय आपका ही स्वरूप है। आप पवित्रोंमें पवित्र तथा मङ्गलोंके भी मङ्गल हैं। आप ही प्राण, रजोगुण, तमोगुण तथा सत्त्वगुण हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष-निमेष (आँखका खोलना-मीचना), भूख, प्यास तथा जृम्भा (जँभाई) हैं। आप लोहिताङ्ग (लाल शरीरवाले), दंष्ट्री (दाढ़ोंवाले), महावक्त्र (बड़े मुखवाले), महोदर (बड़े पेटवाले), शुचिरोमा (पवित्र रोयेंवाले), हरिच्छ्मश्रु (पीली दाढ़ी-मूँछवाले), ऊर्ध्वकेश (ऊपर उठे हुए केशवाले) तथा चलाचल (स्थावर-जङ्गम) हैं। गीत, वाद्य और नृत्य आपके ही अङ्ग हैं। गाना-बजाना आपको बहुत प्रिय है। आप ही मत्स्य, उसे जीवन देनेवाले जल और उसे फँसानेवाले जाल हैं। आपको कोई जीत नहीं सकता। आप जलव्याल (पानीमें रहनेवाले साँप) और कुटीचर (एकान्तवासी गृहस्थ) हैं। आप ही विकाल (विपरीत काल), सुकाल, दुष्काल तथा कालनाशक हैं। मृत्यु, अक्षय एवं अन्त भी आप ही हैं। आप क्षमा, माया एवं किरणोंका प्रसार करनेवाले हैं।

आप संवर्त (प्रलयकाल), वर्तक (नित्य विद्यमान), संवर्तक (प्रलयकालीन) और बलाहक (मेघ) हैं। आप घण्टा धारण करनेके कारण घण्टाकी, घण्टकी और घण्टी कहलाते हैं। मस्तकपर चोटी धारण करते हैं। खारे पानीका समुद्र आपका ही स्वरूप है।* आप ब्रह्मा हैं। आपके मुखमें

---

* सिंहो मृगाणां च पतिस्तक्षकोऽनन्तभोगिनाम्। क्षीरोदो ह्युदधीनां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा॥
वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च। त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोहः शमः क्षमा॥
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ। त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी मुद्गरी तथा॥
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता मन्तासि नो मतः। दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च॥
इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरांसि च। लतावल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः॥
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः। आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योङ्कार एव च॥
हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथारुणः। कद्रुश्च कपिलो बभ्रुः कपोतो मेचकस्तथा॥
सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्णश्चाप्यथो मतः। सुवर्णनामा च तथा सुवर्णप्रिय एव च॥
त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनिलः। उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च॥
होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः। त्रिसौपर्णस्तथा ब्रह्मन् यजुषां शतरुद्रियम्॥
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्। प्राणश्च त्वं रजश्च त्वं तमः सत्त्वयुतस्तथा॥
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च। उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तृड् जृम्भा तथैव च॥
लोहिताङ्गश्च दंष्ट्री च महावक्त्रो महोदरः। शुचिरोमा हरिच्छ्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः॥
गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः। मत्स्यो जालो जलोऽजय्यो जलव्यालः कुटीचरः॥
विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः। मृत्युश्चैवाक्षयोऽन्तश्च क्षमा माया करोत्करः॥
संवर्तो वर्तकश्चैव संवर्तकबलाहकौ। घण्टाकी घण्टकी घण्टी चूडाली लवणोदधिः॥

कालाग्निका निवास है। दण्ड धारण करनेवाले, सिर मुँड़ाये रहनेवाले तथा त्रिदण्ड धारण करनेवाले यति आपके ही स्वरूप हैं। चारों युग, चारों वेद, चार प्रकारके होता और चौराहा आप ही हैं। चारों आश्रमोंके नेता और चारों वर्णोंकी उत्पत्ति करनेवाले भी आप ही हैं। क्षर (विनाशी), अक्षर (अविनाशी), प्रिय, धूर्त, गणोंद्वारा गणनीय एवं गणपति भी आप ही हैं। आप लाल रंगकी माला और वस्त्र धारण करते हैं। पर्वत एवं वाणीके स्वामी हैं। पार्वतीजीके प्रियतम हैं। शिल्पकारोंके स्वामी, शिल्पियोंमें श्रेष्ठ तथा समस्त शिल्पकारोंके प्रवर्तक हैं। आपने ही भगके नेत्रोंका विनाश किया है। आप अत्यन्त क्रोधी हैं। पूषाके दाँत भी आपने ही तोड़े हैं। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार—सब आप ही हैं। आपको नमस्कार है। आपका व्रत गूढ़ रहता है। आप स्वयं भी गूढ़ हैं तथा गूढ़ व्रतका आचरण करनेवाले महापुरुष सदा आपकी सेवामें रहते हैं। आप ही तरने और तारनेवाले हैं। सब भूतोंमें आप ही संचालकरूपसे स्थित हैं। धाता (धारण करनेवाले), विधाता (विधान करनेवाले), संधाता (जोड़नेवाले), निधाता (बीज डालनेवाले), धारण, धर, तप, ब्रह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य तथा आर्जव (सरलता) आपके ही नाम हैं। आप सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, सब भूतोंको उत्पन्न करनेवाले, भूतस्वरूप, भूत, भविष्य तथा वर्तमानके उद्भावक, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, भूत, अग्नि और महेश्वर हैं। ब्रह्मावर्त, सुरावर्त और कामावर्त आपके ही नाम हैं। आपको नमस्कार है। आप कामदेवके विग्रहको दग्ध करनेवाले हैं। कर्णिकार (कनेर) पुष्पोंकी माला आपको अधिक प्रिय है। आप गौओंके नेता, गोप्रचारक (इन्द्रियोंके संचालक) तथा गौओंके स्वामी नन्दीपर सवारी करनेवाले हैं।

तीनों लोकोंकी रक्षा आपके ही हाथमें है। गोविन्द (गोरक्षक), गोपालक और गौओंके मार्ग भी आप ही हैं। आपका मुख पूर्ण चन्द्रके समान आह्लादक है। आप सुन्दर मुखवाले हैं। जिनका मुख सुन्दर नहीं है, जो मुखसे रहित हैं, जिनके चार या अनेक मुख हैं तथा जो सदा युद्धमें सम्मुख डटे रहते हैं, वे सब भी आपके ही स्वरूप हैं। आप हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), शकुनि (बाज), धनद (धन देनेवाले), धनके स्वामी, विराट्, अधर्मका नाश करनेवाले, महादक्ष, दण्डधारी तथा युद्धके प्रेमी हैं। खड़े रहनेवाले, स्थिर, स्थाणु, निष्कम्प, अत्यन्त निश्चल, दुर्वारण (कठिनतासे निवारण किये जाने योग्य), दुर्विषह (असह्य), दुस्सह और दुरतिक्रम (दुर्लङ्घ्य) हैं। आपको धारण करना या वशमें लाना कठिन है। आप नित्य दुर्दम्य (कठिनतासे दमन करनेयोग्य), विजय एवं जय हैं। आप शश (खरगोश)-रूप हैं। चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। आप एक ही साथ शीत और उष्ण दोनों ही धारण करते हैं। क्षुधा, तृषा, बुढ़ापा, आधि (मानसिक पीड़ा) और व्याधि भी आप ही हैं। व्याधिके नाशक और पालक भी आप ही हैं। आप सहन करने योग्य, यज्ञरूपी मृगके मारनेवाले व्याध, व्याधियोंके आकर (भंडार) तथा अकर (कुछ भी न करनेवाले) हैं। आप शिखण्डी (मोरपंखधारी), पुण्डरीक (कमलरूप) तथा पुण्डरीकलोचन हैं। दण्डधृक्[1], चक्रदण्ड[2] तथा रौद्रभागाविनाशन[3]—ये सब आपके ही नाम हैं। * आप

---

* ब्रह्मा कालाग्निवक्त्रश्च दण्डी मुण्डस्त्रिदण्डधृक्। चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ॥
चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह। क्षराक्षरः प्रियो धूर्तो गणैर्गण्यो गणाधिपः ॥
रक्तमाल्याम्बरधरो गिरीशो गिरिजाप्रियः। शिल्पीशः शिल्पिनः श्रेष्ठः सर्वशिल्पिप्रवर्तकः ॥
भगनेत्रान्तकश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः। स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कार नमोऽस्तु ते ॥
गूढव्रतश्च गूढश्च गूढव्रतनिषेवितः। तरणस्तारणश्चैव सर्वभूतेषु तारणः ॥
धाता विधाता संधाता निधाता धारणो धरः। तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यं तथाऽऽर्जवम् ॥
भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः। भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्निर्महेश्वरः ॥
ब्रह्मावर्तः सुरावर्तः कामावर्त नमोऽस्तु ते। कामबिम्बविनिर्हन्ता कर्णिकारस्रजप्रियः ॥
गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः। त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्ता गोमार्ग एव च ॥
अखण्डचन्द्राभिमुखः सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः। चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वभिमुखः सदा ॥
हिरण्यगर्भः शकुनिर्धनदोऽर्थपतिर्विराट्। अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रियः ॥
तिष्ठन् स्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः। दुर्वारणो दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रमः ॥
दुर्धरो दुर्वशो नित्यो दुर्दर्पो विजयो जयः। शशः शशाङ्कनयनः शीतोष्णः क्षुत्तृषा जरा ॥
आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिपश्च यः। सह्यो यज्ञमृगव्याधो व्याधीनामाकरोऽकरः ॥
शिखण्डी पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः। दण्डधृक् चक्रदण्डश्च रौद्रभागाविनाशनः ॥

१. दण्डधारी, २. चक्रद्वारा दण्ड देनेवाले। ३. रुद्रके भागका नाश न होने देनेवाले।

विष, अमृत, देवपेय, दुग्ध, सोम, मधु, जल तथा सब कुछ पान करनेवाले हैं। बल और अबल सब आप ही हैं।

आप धर्ममय वृषभके शरीरपर सवार होने योग्य हैं, वृषभ-स्वरूप हैं। आपके नेत्र वृषभके नेत्रोंके समान हैं। आप वृषभके नामसे लोकमें विख्यात हैं। सम्पूर्ण लोक आपका संस्कार (पूजन और अभिषेक) करता है। शिव! चन्द्रमा और सूर्य आपके नेत्र, ब्रह्माजी हृदय, अग्निष्टोम शरीर और धर्म-कर्म शृङ्गार हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि भी आपके माहात्म्यको यथार्थरूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं। भगवन्! आपकी कल्याणमयी एवं सूक्ष्म जो मूर्तियाँ हैं, उनका मुझे दर्शन हो। आप उन मूर्तियोंके द्वारा मेरी सब ओरसे रक्षा करें—ठीक वैसे ही, जैसे पिता अपने औरस पुत्रकी रक्षा करता है। अनघ! आपको नमस्कार है। मैं रक्षा करनेयोग्य हूँ। आप मेरी रक्षा करें। आप भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान् हैं और मैं सदा ही आपमें भक्ति रखता हूँ।

जो खोटी दृष्टि रखनेवाले अनेक सहस्र पुरुषोंको अपनी मायासे आवृत करके अकेले ही समुद्रके भीतर निवास करते हैं, वे भगवान् प्रतिदिन मेरे रक्षक हों। निद्रासे रहित, प्राणों-को वशमें रखनेवाले, सत्त्वगुणमें स्थित, समदर्शी योगीजन योगाभ्यास करते समय जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका दर्शन करते हैं, उन योगात्माको नमस्कार है। जो प्रलयकाल उप-स्थित होनेपर सम्पूर्ण भूतोंको अपना ग्रास बनाकर जलके भीतर शयन करते हैं, उन भगवान् जलशायीकी मैं शरण लेता हूँ। जो रात्रिमें राहुके मुखमें प्रवेश करके चन्द्रमाका अमृत पीते हैं और केतु बनकर सूर्यको भी ग्रस लेते हैं तथा जो अग्नि और सोमस्वरूप हैं, उन भगवान्‌की मैं शरण लेता हूँ। समस्त देहधारियोंकी देहोंमें स्थित, अँगूठेके बराबर आकारवाले जितने भी जीवात्मा हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं; अतः वे सदा मेरी रक्षा करें और सदा मुझे तृप्त बनाये रक्खें। जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं तथा जो जलके भीतर स्थित हैं, उन सब गर्भोंको जिनसे स्वाहा (पुष्टि) प्राप्त होती है तथा जिनकी कृपासे उन्हें स्वधा (स्वादिष्ट रस) का आस्वादन सुलभ होता है, जो शरीरके भीतर रहकर स्वयं नहीं रोते और प्राणियोंको रुलाते हैं, जो सबको हर्ष प्रदान करते, किंतु स्वयं हर्षका अनुभव नहीं करते, उन सबको शिवरूपमें सदा-सर्वदा नमस्कार है।

जो समुद्र, नदी, दुर्गम स्थान, पर्वत, गुफा, वृक्षोंकी जड़, गोशाला, अगम्य पथ, गहन वन, चौराहा, सड़क, सभा, गजशाला, अश्वशाला, रथशाला, प्राचीन वाटिका, पुराने घर, पाँचों भूत, दिशा, विदिशा, इन्द्र और सूर्यके मध्य, चन्द्रमा और सूर्यकी किरण तथा रसातलमें जो शिवस्वरूप जीव रहते हैं और उन स्थानोंसे परे जिनकी स्थिति है, उन सबको सब प्रकारसे नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।* भगवन्!

* विषपोऽमृतपश्चैव सुरापः क्षीरसोमपः। मधुपश्चापपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः॥
वृषाङ्कवाह्यो वृषभस्तथा वृषभलोचनः। वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंस्कृतः॥
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः। अग्निष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधितः॥
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च। माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव॥
शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तु दर्शनम्। ताभिर्मां सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम्॥
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते। भक्तानुकम्पी भगवान् भक्तश्चाहं सदा त्वयि॥
यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्य दुर्दृशाम्। तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्तास्तु नित्यशः॥
यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः। ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः॥
सम्भक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते। यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽम्बुशायिनम्॥
प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि। ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च॥
अङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम्। रक्षन्तु ते च मां नित्यं नित्यं चाप्याययन्तु माम्॥
येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्च ये। तेषां स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च॥
ये न रोदन्ति देहस्थाः प्राणिनो रोदयन्ति च। हर्षयन्ति न हृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः॥
ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च। हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च॥
ये तु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च। इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु॥
रसातलगता ये च ये च तस्मात्परं गताः। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वशः॥

आप सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी देवता, सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी, सबकी उत्पत्तिके कारण तथा सम्पूर्ण भूतोंके अन्तरात्मा हैं। इसीलिये आपको पृथक् निमन्त्रित नहीं किया गया। देव! भाँति-भाँतिकी दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा आपका ही यजन किया जाता है। आप ही सबके कर्ता-धर्ता हैं, इसलिये आपको मैंने निमन्त्रित नहीं किया। अथवा देव! आपकी सूक्ष्म—दुर्बोध मायासे मैं मोहित था। इसी कारण आपको निमन्त्रण नहीं दिया। देवेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये। आप ही मुझे शरण देनेवाले हैं। आप ही मेरी गति और प्रतिष्ठा हैं, दूसरा कोई नहीं है। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।*

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके प्रजापति दक्ष चुप हो गये। तब भगवान् शिवने कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दक्ष! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ। अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम्हें मेरा सामीप्य प्राप्त होगा।' यों कहकर देवेश्वर महादेवजी अपनी पत्नी और पार्षदोंके साथ अमिततेजस्वी दक्षकी दृष्टिसे ओझल हो गये। जो मनुष्य दक्षद्वारा किये हुए इस स्तोत्रका श्रवण या कीर्तन करता है, उसका तनिक भी अमङ्गल नहीं होता। उसे दीर्घ आयुकी प्राप्ति होती है। जैसे सम्पूर्ण देवताओंमें भगवान् शिव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब स्तोत्रोंमें यह दक्षनिर्मित स्तोत्र श्रेष्ठ है। जो लोग यश, स्वर्ग, देवताओंका ऐश्वर्य, धन, विजय और विद्या आदिकी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें यत्नपूर्वक भक्तिके साथ इस स्तोत्रद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति करनी चाहिये। रोगी, दुखी, दीन, भय आदिसे ग्रस्त तथा राज-काजमें नियुक्त मनुष्य इस स्तोत्रके प्रभावसे महान् भयसे मुक्त हो जाता है तथा भगवान् शिवसे इस लोकमें सुख पाकर उसी शरीरसे गणोंका स्वामी बन जाता है। यक्ष, पिशाच, नाग और विनायक उस मनुष्यके घरमें विघ्न नहीं डालते, जिसके यहाँ भगवान् शिवकी स्तुति होती है। दक्षद्वारा किये हुए इस स्तोत्रका पाठ करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। और मरनेके बाद देवताओंद्वारा पूजित होता है। इस परम गोपनीय स्तोत्रका श्रवण करके पापयोनिवाले मनुष्य तथा वैश्य, स्त्री एवं शूद्र भी रुद्रलोक प्राप्त करते हैं। जो द्विज प्रत्येक पर्वमें ब्राह्मणोंको सदा इस स्तोत्रका श्रवण कराता है, वह निःसंदेह भगवान् शिवके लोकमें जाता है।

एकाम्रकक्षेत्र तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा

लोमहर्षणजी कहते हैं—'महर्षियो! ब्रह्माजीकी कही हुई पवित्र कथा सुनकर उन महर्षियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने कहा—'ब्रह्मन्! अब आप एकाम्रकक्षेत्रका वर्णन कीजिये।'

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! वह क्षेत्र सब पापोंको हरनेवाला, पवित्र एवं परम दुर्लभ है। मैं उसका संक्षेपसे वर्णन करूँगा, सुनो। एकाम्रक नामसे विख्यात क्षेत्र वाराणसीके समान कोटि शिवलिङ्गोंसे युक्त एवं शुभ है। उसमें आठ तीर्थ हैं। पूर्व कल्पमें वहाँ एक आमका वृक्ष था। उसीके नामसे वह एकाम्रकक्षेत्रके रूपमें विख्यात हुआ। वह स्थान हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरा रहता है, वहाँ स्त्रियाँ भी रहती हैं और पुरुष भी। उस क्षेत्रमें विद्वानोंकी अधिकता है, वह धन-धान्यसे सम्पन्न स्थान है। घर और गोपुर वहाँकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ अनेकों व्यवसायी भरे हुए हैं। भाँति-भाँतिके रत्न उस क्षेत्रकी शोभा बढ़ाते हैं। नगर, अटारी, सड़क और राजहंसोंके समान श्वेत महल आदिके द्वारा उसकी बड़ी शोभा होती है। उसके चारों ओर सफेद चहारदीवारी बनी है। शस्त्रोंद्वारा उस पुरकी रक्षा होती है।

---

* सर्वस्त्वं सर्वगो देवः सर्वभूतपतिर्भवः। सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः॥
त्वमेव चेज्यसे देव यज्ञैर्विविधदक्षिणैः। त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः॥
अथवा मायया देव मोहितः सूक्ष्मया तव। तस्मात्तु कारणाद्वापि त्वं मया न निमन्त्रितः॥
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम। त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः॥

अनेकों खाइयोंसे वह क्षेत्र अलङ्कृत है। वहाँ प्रतिदिन उत्सवका आनन्द छाया रहता है। नाना प्रकारके बाजोंकी ध्वनि सुनायी पड़ती है। चहारदीवारी और बगीचोंसे युक्त अनेक दिव्य देवमन्दिर सब ओर उस क्षेत्रकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बड़े धार्मिक हैं। वे अपने-अपने धर्मोंमें संलग्न रहते हैं। उस क्षेत्रमें निर्धन, मूर्ख, दूसरोंसे द्वेष रखनेवाले, रोगी, मलिन, नीच, मायावी, रूपहीन: दुराचारी तथा परद्रोही मनुष्य नहीं हैं। वहाँ सर्वत्र सुखपूर्वक सब लोग घूमते-फिरते हैं। वह स्थान सब जीवोंके लिये सुखद है। वहाँ नाना प्रकारके पक्षियोंका कलरव सुनायी पड़ता है। वहाँके उद्यान नन्दनवनके समान एवं सबके सेवन करने योग्य हैं। वहाँके वृक्ष फलोंके भारसे झुके रहते हैं और सभी ऋतुओंमें उनसे फूल झड़ते रहते हैं। दीर्घिका, तड़ाग, पुष्करिणी, वापी तथा अन्यान्य जलाशय सदा कमल-वनसे सुशोभित रहते हैं। भाँति-भाँतिके वृक्ष, नाना प्रकारके सुन्दर पुष्प तथा अनेक प्रकारके पवित्र जलाशय सब ओरसे उस स्थानकी शोभा बढ़ाते हैं।

उस क्षेत्रमें साक्षात् भगवान् शंकर सब लोकोंका हित करनेके लिये निवास करते हैं। वे भोग और मोक्ष दोनोंके दाता हैं। इस पृथ्वीपर जितने तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, पुष्करिणी, तड़ाग, वापी, कूप और सागर हैं, उन सबसे पृथक्-पृथक् जलकी बूँदें संगृहीत करके देवताओंसहित भगवान् शंकरने उस क्षेत्रमें सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये विन्दुसर नामक तीर्थ स्थापित किया। इसीलिये वह विन्दुसरके नामसे विख्यात है। अगहनके कृष्णपक्षकी अष्टमीको जो वहाँकी यात्रा करता है तथा जो जितेन्द्रिय भावसे विषुवयोगमें श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक विन्दुसरोवरमें स्नान करके तिल और जलसे नाम-गोत्रके उच्चारणपूर्वक देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों एवं पितरोंका तर्पण करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। जो ग्रहण, विषुवयोग, संक्रान्ति, अयनारम्भ, छियासी युगादि तिथि तथा अन्यान्य शुभ तिथियोंमें वहाँ ब्राह्मणोंको धन आदिका दान करते हैं, वे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा सौगुना फल पाते हैं। जो विन्दुसरोवरके तटपर पितरोंको पिण्डदान देते हैं, वे उन पितरोंकी अक्षय तृप्तिका सम्पादन करते हैं।

स्नानके पश्चात् मौन एवं जितेन्द्रिय भावसे भगवान् शंकरके मन्दिरमें प्रवेश करके उनकी पूजा करे। तीन बार शिवकी प्रदक्षिणा करे। घृत और दुग्ध आदिके द्वारा पवित्रतापूर्वक भगवान् शङ्करको स्नान कराकर उनके सब अङ्गोंमें सुगन्धित चन्दन एवं केसर लगाये। तदनन्तर नाना प्रकारके पवित्र पुष्पों तथा बिल्वपत्र, आक और कमल आदिके द्वारा वैदिक एवं तान्त्रिक मन्त्रोंसे तथा केवल नाममय मूल मन्त्रसे गन्ध, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, स्तुति, दण्डवत्-प्रणाम, मनोहर गीत-वाद्य, नृत्य, जप, नमस्कार, जय-शब्द तथा प्रदक्षिणा समर्पण करते हुए महादेवजीका पूजन करे। इस प्रकार देवाधिदेवका विधिपूर्वक पूजन करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें जाता है। जो उत्तम बुद्धिवाले पुरुष वहाँ हर समय महादेवजीका दर्शन करते हैं, वे भी पापमुक्त होकर शिवलोकमें जाते हैं। भगवान् शिवसे पश्चिम, पूर्व, दक्षिण, उत्तर—चारों ओर ढाई-ढाई योजनतक वह क्षेत्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। उस उत्तम क्षेत्रमें भास्करेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक शिवलिङ्ग है। जो लोग वहाँ कुण्डमें स्नान करके भगवान् सूर्यद्वारा पूजित त्रिनेत्रधारी देवाधिदेव महादेवका दर्शन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो उत्तम विमानपर बैठकर गन्धर्वोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए शिवलोकमें जाते हैं अथवा योगियोंके घरमें वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत, सर्वभूतहितकारी श्रेष्ठ द्विजके रूपमें उत्पन्न होते हैं। उस समय वे मोक्षशास्त्रके तात्पर्यको समझनेमें कुशल और सर्वत्र समबुद्धि होते हैं तथा भगवान् शंकरसे श्रेष्ठ योग प्राप्त करके भव-बन्धनसे मुक्ति पा जाते हैं। द्विजवरो! स्त्री भी श्रद्धापूर्वक वहाँ भगवान् शिवका पूजन करके पूर्वोक्त फलको प्राप्त कर लेती है। मुनिवरो! भगवान् महेश्वरके अतिरिक्त दूसरा कौन ऐसा है, जो उस उत्तम क्षेत्रके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन कर सके। भगवान् शिवका एकाम्रक क्षेत्र वाराणसीके समान शुभ है। जो वहाँ स्नान करता है, वह निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

वहाँ और भी अनेक पवित्र तीर्थ एवं मन्दिर हैं। उनका भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। समुद्रके उत्तर-तटपर उस प्रदेशमें एक परम गोपनीय मुक्तिदायक क्षेत्र है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। उस परमदुर्लभ क्षेत्रका विस्तार दस योजन है। वहाँकी भूमिपर सब ओर बालू बिछी हुई है। वह परम पवित्र एवं सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। अशोक, अर्जुन, पुंनाग, मौलसिरी, सरल, कटहल, नारियल, शाखू, ताड़, कैथ, चम्पा, कनेर, आम, बेल, गुलाब, कदम्ब, कचनार, लकुच, नागकेसर, पीपल, छितवन,

महुआ, सहिजन, शीशम, आँवला, नीम तथा बहेड़ा आदिके वृक्षोंसे उसकी बड़ी शोभा होती है। वहाँ पक्षियोंके मुखसे निकले हुए अत्यन्त मधुर कलरव कानों और मनको बहुत सुख देते हैं। ऊपर बताये हुए वृक्षोंके अतिरिक्त अन्यान्य मनोहर पुष्पों, लताओं और भाँति-भाँतिके जलाशयोंसे वह क्षेत्र सुशोभित है। अनेकानेक ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा स्वधर्मपरायण ब्राह्मणादि वर्णोंसे उस क्षेत्रकी शोभा होती है। वह हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों तथा अनेक नर-नारियोंसे भरा हुआ है। वह सम्पूर्ण विद्याओंका स्थान तथा समस्त धर्मों एवं गुणोंका आकर है। इस प्रकार वह परम दुर्लभ क्षेत्र सर्वगुणसम्पन्न है। मुनिवरो! वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम नामसे विख्यात हैं। उत्कल प्रान्तकी सीमा समुद्रकी ओर जहाँतक बतायी गयी है, वह सब स्थान श्रीकृष्णके प्रसादसे अत्यन्त पवित्र है। उस देशमें विश्वात्मा भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं। वे जगद्व्यापी जगन्नाथ हैं। उन्हींमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। मैं, भगवान् शिव, इन्द्र तथा अग्नि आदि देवता सदा उस देशमें निवास करते हैं। गन्धर्व, अप्सरा, पितर, देवता, मनुष्य, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, उत्तम व्रतवाले मुनि, वालखिल्य आदि ऋषि, कश्यप आदि प्रजापति, गरुड़, किंनर, नाग, अन्यान्य स्वर्गवासी, अङ्गोंसहित चारों वेद, नाना प्रकारके शास्त्र, इतिहास-पुराण, उत्तम दक्षिणावाले यज्ञ, अनेक पवित्र नदियाँ, पुण्यतीर्थ, मन्दिर, समुद्र तथा पर्वत—सब उस देशमें स्थित हैं। इस प्रकार देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंद्वारा सेवित उन पावन प्रदेशमें, जहाँ सब प्रकारके उपभोग सुलभ हैं, निवास करना किसको रुचिकर नहीं प्रतीत होगा। भला, उसके सिवा कौन देश श्रेष्ठ है, उससे बढ़कर दूसरा कौन स्थान है, जहाँ मुक्तिदाता भगवान् पुरुषोत्तम स्वयं ही विराजमान हैं। वे मनुष्य, जो उत्कल देशमें निवास करते हैं, देवताओंके समान और धन्य हैं। जो समस्त तीर्थोंके राजा समुद्रमें स्नान करके भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें बसते हैं, यमलोकमें नहीं जाते। जो उत्कलदेशीय पवित्र पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करते हैं, उन श्रेष्ठ बुद्धिवाले मनुष्योंका जीवन सफल है; क्योंकि वे देवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णके मुखकमलका दर्शन करते हैं। भगवान्‌का मुखकमल तीनों लोकोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है। उनके नेत्र प्रसन्न एवं विशाल हैं। उनकी भौंहें, केश तथा मुकुट सुन्दर हैं; कानोंमें मनोहर कुण्डल शोभा पाते हैं। उनकी मुसकान मनोहर और दन्तपङ्क्ति सुन्दर है। वे सुन्दर नाक, सुन्दर कपोल, सुन्दर ललाट और उत्तम लक्षणोंवाले हैं।

अवन्तीके महाराज इन्द्रद्युम्नका पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाना तथा वहाँकी इन्द्रनीलमयी प्रतिमाके गुप्त होनेकी कथा

ब्रह्माजी कहते हैं—प्राचीन सत्ययुगकी बात है, इन्द्रद्युम्न नामसे विख्यात एक राजा थे, जो इन्द्रके समान पराक्रमी थे। वे सत्यवादी, पवित्र, दक्ष, सर्वशास्त्रविशारद, रूपवान्, सौभाग्यशाली, शूरवीर, दानी, उपभोगमें समर्थ, प्रिय वचन बोलनेवाले, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, सत्यप्रतिज्ञ, धनुर्वेद और वेद-शास्त्रमें निपुण, विद्वान् तथा पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति सब स्त्री-पुरुषोंके प्रेमपात्र थे। सूर्यकी भाँति उनकी ओर देखना कठिन था। वे शत्रुसमुदायके लिये भयंकर, विष्णुभक्त, सत्त्वगुण-सम्पन्न, क्रोधको जीतनेवाले, जितेन्द्रिय, अध्यात्मविद्याके प्रेमी, मुमुक्षु और धर्मपरायण थे। इस प्रकार वे सर्वगुणसम्पन्न राजा इन्द्रद्युम्न समूची पृथ्वीका पालन करते थे। एक समय उनके मनमें भगवान् श्रीहरिकी आराधनाका विचार उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे, 'मैं किस क्षेत्रमें, किस तीर्थमें, किस नदीके तटपर अथवा किस आश्रममें देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी आराधना करूँ?' इस चिन्तामें पड़कर उन्होंने मन-ही-मन समस्त पृथ्वीपर दृष्टिपात किया, समस्त तीर्थों, क्षेत्रों और नगरोंकी ओर देखा; परंतु सबको छोड़कर वे विश्वविख्यात मोक्षदायक पुरुषोत्तमक्षेत्रमें गये। वहाँ उन्होंने बहुत ऊँचा मन्दिर बनवाकर उसमें बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राकी स्थापना की तथा विधिपूर्वक स्नान, दान, तप, होम और देव-दर्शनरूप पञ्चतीर्थोंका अनुष्ठान करके प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्रीपुरुषोत्तमकी आराधना की और उन्हींकी कृपासे मोक्ष प्राप्त किया।

मुनियोंने पूछा—सुरश्रेष्ठ! राजा इन्द्रद्युम्न मुक्तिदायक पुरुषोत्तमक्षेत्रमें किस लिये गये? और वहाँ जाकर उन्होंने वह त्रिभुवनविख्यात प्रासाद किस प्रकार बनवाया? प्रजापते!

उन्होंने श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राकी स्थापना कैसे की ? ये सब बातें विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें ।

ब्रह्माजी बोले—द्विजवरो ! तुमलोग जो प्राचीन वृत्तान्त पूछ रहे हो, वह सब पापोंको दूर करनेवाला, पवित्र, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा शुभ है । इस प्रश्नके लिये तुम्हें साधुवाद देता हूँ । तुम जितेन्द्रिय एवं विशुद्धचित्त होकर सुनो । मैं सत्ययुगके राजा इन्द्रद्युम्नका चरित्र बतलाता हूँ । इस पृथ्वीपर मालवामें अवन्ती (उज्जैन) नामकी नगरी विख्यात है । वही राजा इन्द्रद्युम्नकी राजधानी थी । अवन्ती इस पृथ्वीके मुकुटके समान थी । वहाँ हृष्ट-पुष्ट मनुष्य भरे थे । उसकी चहारदीवारी और दरवाजे दृढ़ बने हुए थे । दरवाजोंपर मजबूत किंवाड़ और सुदृढ़ यन्त्र लगे थे । नगरके चारों ओर अनेकों खाइयाँ बनी हुई थीं । नगरमें बहुत-से व्यापारी बसते थे । नाना प्रकारके बर्तनोंकी अच्छी बिक्री होती थी । रथ चलने लायक सड़कें और बाजार सुन्दर थे । चौराहोंसे चारों ओर जानेके लिये मार्गोंका अच्छी प्रकार विभाग हुआ था । अनेकों घर और गोपुर बने हुए थे । बहुत-सी गलियाँ उस नगरकी शोभा बढ़ाती थीं । राजहंसोंके समान श्वेत और मनोहर महल लाखोंकी संख्यामें बने हुए थे, जो उस पुरीकी श्रीवृद्धि कर रहे थे । अनेकों यज्ञसम्बन्धी उत्सवोंके कारण उस नगरमें आनन्द छाया रहता था । गाने और बजानेकी ध्वनि गूँजती रहती थी । भाँति-भाँतिकी ध्वजा और पताकाओंसे वह पुरी सुशोभित थी । हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी सेना सब ओर व्याप्त थी । अनेक प्रकारके सैनिक वहाँ भरे थे । अनेकों जनपदोंके लोग वहाँ बसे हुए थे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा विद्वान् पुरुषोंसे वह नगरी सुशोभित थी । वहाँ मलिन, मूर्ख, निर्धन, रोगी, अङ्गहीन तथा जुवारी मनुष्योंका अभाव था । वहाँके स्त्री-पुरुष सदा प्रसन्नचित्त दिखायी देते थे । वे सब रत्नोंके दाता तथा सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको भोगनेवाले थे । वहाँकी कुलवती स्त्रियाँ सब गुणोंमें आचार्य थीं । वे पतिव्रता, सौभाग्यशालिनी तथा सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न थीं । उस नगरमें अनेकों वन, उपवन, पवित्र एवं मनोरम उद्यान, भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित दिव्य देवमन्दिर, शाल, ताल, तमाल, बकुल, नागकेसर, पीपल, कनेर, चन्दन, अगर, चम्पा तथा अन्यान्य मनोहर वृक्ष, लता-गुल्म आदि शोभा पाते थे । अनेकों जलाशय उस महापुरीकी शोभा बढ़ा रहे थे । अवन्तीपुरीमें त्रिनेत्रधारी त्रिपुरशत्रु भगवान् शिव महाकाल नामसे प्रसिद्ध होकर रहते हैं । वे समस्त कामनाओंके पूर्ण करनेवाले हैं । वहाँ एक शिवकुण्ड है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है । उसमें विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे । फिर शिवालयमें जाकर भगवान् शिवकी तीन बार प्रदक्षिणा करे । तत्पश्चात् स्नान, पुष्प, गन्ध, धूप और दीप आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक महाकालका विधिवत् पूजन करे । ऐसा करनेवाला मनुष्य एक हजार अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है । वह सब पापोंसे मुक्त हो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंद्वारा भगवान् शिवके परम धाममें जाता है ।

अवन्तीमें शिप्रा नामसे प्रसिद्ध पवित्र नदी है । उसमें विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता और श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकमें नाना प्रकारके भोग भोगता है । वहीं देवाधिदेव भगवान् जनार्दन भी निवास करते हैं, जो गोविन्दस्वामीके नामसे प्रसिद्ध हैं । वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । उनका दर्शन करके मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंसहित मुक्त हो जाता है । उनके सिवा वहीं विक्रमस्वामीके नामसे भी भगवान् विष्णुका निवास है । स्त्री अथवा पुरुष, कोई भी उनका दर्शन करके पूर्वोक्त फल प्राप्त कर लेता है । वहाँ इन्द्र आदि देवता और समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली देवियाँ भी निवास करती हैं । उन सबकी भक्तिपूर्वक पूजा और प्रणाम करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें जाता है । इस प्रकार राजाओंमें श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नके द्वारा पालित वह रमणीय पुरी इन्द्रकी अमरावतीके समान नित्य उत्सवके आनन्दसे परिपूर्ण रहती थी । वहाँ दिन-रात इतिहास-पुराण, नाना प्रकारके शास्त्र तथा काव्यचर्चा सुनी जाती थी । इस तरह वह उज्जैनी पुरी सब गुणोंसे सम्पन्न बतायी गयी है, जिसमें पूर्वकालमें परम बुद्धिमान् राजा इन्द्रद्युम्न हुए थे ।

उस नगरीमें अपने उत्तम राज्यका उपभोग करते हुए राजा इन्द्रद्युम्न औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते थे । वे सत्यवादी, परम बुद्धिमान्, शूरवीर, समस्त गुणोंके आकर, मतिमान्, धर्मात्मा तथा सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ थे । उनमें सत्य, शील और इन्द्रिय-संयमके गुण थे । दान, यज्ञ और तपस्यामें उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई राजा नहीं था । वे अपने प्रत्येक यज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सोना, मणि, मोती, हाथी और घोड़े दान किया करते थे ।

उनके पास अच्छे-अच्छे हाथी, घोड़े, रथ, कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, रत्न और धन-धान्यकी कमी अन्त नहीं होता था। इस प्रकार समस्त वैभवसे युक्त और सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत राजा इन्द्रद्युम्न निष्कण्टक राज्यका उपभोग करते थे। एक बार उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सर्वयोगेश्वर श्रीहरिकी आराधना किस प्रकार करूँ। उन्होंने समस्त शास्त्र, तन्त्र, आगम, इतिहास, पुराण, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, ऋषियोंके बताये हुए नियम तथा सम्पूर्ण विद्यास्थानोंका विचार किया। यत्नपूर्वक गुरुजनोंकी सेवा की और वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंका सत्सङ्ग किया। फिर इन्द्रियोंको वशमें करके मोक्षकी इच्छासे विचार किया—'मैं देवाधिदेव सनातन पुरुष पीताम्बरधारी चतुर्भुज शङ्ख-चक्र-गदाधर वनमालाविभूषित कमलनयन श्रीवत्सशोभित और मुकुट-अङ्गद आदि आभूषणोंसे अलंकृत श्रीहरिकी आराधना किस प्रकार करूँ ?' यह विचारकर वे बहुत बड़ी सेनाको साथ ले पुरोहित और भृत्योंके साथ अपनी नगरी उज्जैनीसे बाहर निकले। उनके पीछे रथारूढ़ सैनिक हथियार हाथमें



लिये प्रस्थित हुए। उनके रथ विमानके समान जान पड़ते थे। उनपर ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं। रथियोंके पीछे गजयुद्धकी विद्यामें निपुण असंख्य पैदल भी चले, जिनके हाथोंमें धनुष, प्रास और खड्ग शोभा पा रहे थे। वे सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको चलानेमें कुशल, शूरवीर तथा सर्वदा संग्रामकी अभिलाषा रखनेवाले थे। अन्तःपुरकी सब स्त्रियाँ भी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो महाराजके साथ चलीं। उनके नेत्र पद्मपत्रके समान विशाल थे और शस्त्रधारी सैनिक उन्हें घेरकर चलते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंने भी राजाका अनुसरण किया। अनेक नगरोंके निवासी व्यापारी भी धन, रत्न, सुवर्ण, स्त्री तथा अन्य उपकरणोंके साथ प्रस्थित हुए। अन्न, शस्त्र, ताम्बूल, तृण, काठ, तेल, वस्त्र, फल और पत्र आदिकी बिक्री करनेवाले लोग अपनी-अपनी दूकान लेकर राजाके साथ चले। घसियार, धोबी, ग्वाले, नाई और दर्जी भी हजारोंकी संख्यामें साथ-साथ चल रहे थे। मङ्गल-पाठ करनेवाले, पुराणोंका अर्थ करनेमें प्रवीण कथावाचक, काव्य-रचयिता कवि, विष झाड़नेवाले, गरुड़-विद्याके जानकार, भाँति-भाँतिके रत्नोंकी परीक्षा करनेवाले, गजचिकित्सक, मनुष्य-चिकित्सक, वृक्ष-चिकित्सक, गो-चिकित्सक तथा समस्त पुरवासी राजाके पीछे-पीछे चलने लगे। जैसे दूसरे गाँवको जाते हुए पिताके पीछे पुत्र भी उत्सुक होकर जाने लगते हैं, उसी प्रकार समस्त पुरवासियोंने भी राजा इन्द्रद्युम्नका अनुसरण किया।

इस प्रकार हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसहित महान् जनसमुदायके साथ धीरे-धीरे यात्रा करते हुए महाराज इन्द्रद्युम्न दक्षिण समुद्रके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने रमणीय समुद्रका दर्शन किया, जो लाखों उत्ताल तरङ्गोंसे व्याप्त होनेके कारण नृत्य करता-सा प्रतीत होता था। उसमें नाना प्रकारके रत्न और भाँति-भाँतिके प्राणी भरे थे। उसमें बड़े जोरका शब्द हो रहा था। वह अगाध समुद्र अत्यन्त भयंकर, अपार तथा मेघमालाके समान श्याम दिखायी देता था। उसीमें भगवान् श्रीहरिके शयनका स्थान है। खारे पानीसे भरा हुआ वह नदियोंका स्वामी सिन्धु परम पवित्र, सब पापोंको दूर करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। ऐसे समुद्रको देखकर राजाओंमें श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने समुद्रके तटपर पहुँचकर एक मनोहर प्रदेशमें, जो सर्वगुणसम्पन्न एवं पवित्र था, निवास किया।

मुनियोंने पूछा—ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुके उस परम पवित्र पुरुषोत्तमक्षेत्रमें क्या पहले भगवान्‌की कोई प्रतिमा नहीं थी, जो राजाने सेना और सवारियोंके साथ वहाँ जाकर श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राजीकी स्थापना की ?

ब्रह्माजी बोले—महर्षियो! इस विषयमें समस्त पापों-

का विनाश करनेवाली प्राचीन कथा सुनो। मैं उसे संक्षेपसे कहूँगा। एक समय समस्त लोकोंकी सृष्टि करनेवाले अविनाशी भगवान् वासुदेवको प्रणाम करके भगवती लक्ष्मीने सब लोगोंके हितके लिये इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! आप समस्त लोकोंके स्वामी हैं। मेरे हृदयमें एक संदेह खड़ा हुआ है, उसका इस समय निवारण कीजिये। अत्यन्त आश्चर्यमय मर्त्यलोकको, जो परम दुर्लभ कर्मभूमि है, लोभ और मोहरूपी ग्रहने ग्रस लिया है। वहाँ काम और क्रोधका महासागर लहराता है। देवेश! उस संसार-सागरसे जिस प्रकार मुक्ति मिल सके, वह उपाय बतलाइये। इस संसारमें मेरे संदेहका निवारण करनेके लिये आपको छोड़कर दूसरा कोई वक्ता नहीं है।'



देवीका यह वचन सुनकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दनने बड़ी प्रसन्नताके साथ यह सारभूत अमृतमय वचन कहा—'देवि! समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तमक्षेत्र विख्यात तीर्थ है। वह बहुत ही सुन्दर, सुखपूर्वक सेवन करनेयोग्य, अनायास-साध्य तथा उत्तम फल देनेवाला है। तीनों लोकोंमें उसके समान कोई तीर्थ नहीं है। देवेश्वरि! पुरुषोत्तमतीर्थका नाम लेनेमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसे सम्पूर्ण देवता, दैत्य, दानव तथा मरीचि आदि मुनिवर भी भलीभाँति नहीं जानते। उसको मैंने अबतक गुप्त ही रक्खा है। इस समय उस तीर्थराजकी महिमाका वर्णन करता हूँ, तुम एकचित्त होकर सुनो!

'दक्षिणसमुद्रके तटपर जहाँ एक वटका महान् वृक्ष खड़ा है, वह अत्यन्त दुर्लभ क्षेत्र है। उसका विस्तार दस योजनका है। वह वट कल्पका संहार होनेपर भी नष्ट नहीं होता। उस वटवृक्षके दर्शनसे तथा उसकी छायाके नीचे चले जानेसे ब्रह्महत्या भी छूट जाती है, फिर अन्य पापोंकी तो बात ही क्या है। जिन्होंने उसकी परिक्रमा की है, उसे मस्तक झुकाया है, वे सब पापरहित होकर भगवान् विष्णुके धामको पहुँच गये हैं। उस वटवृक्षके उत्तर और भगवान् केशवके कुछ दक्षिण जो बहुत बड़ा महल खड़ा है, वह धर्ममय पद है। वहाँ स्वयं भगवान्‌की बनायी हुई प्रतिमाका दर्शन करके पृथ्वीके सब मनुष्य अनायास ही मेरे धाममें चले जाते हैं। प्रिये! इस प्रकार सब लोगोंको वैकुण्ठधाममें जाते देख एक दिन धर्मराज मेरे पास आये और मुझे प्रणाम करके इस प्रकार बोले।'

यमराजने कहा—भगवन्! आपको नमस्कार है। देव! आप सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी और समस्त विश्वके पालक हैं। आपको नमस्कार है। आप क्षीर-सागरके निवासी और शेषनागके शरीरकी शय्यापर शयन करनेवाले हैं। आप सबसे श्रेष्ठ, वरेण्य और वरदाता हैं। सबके कर्ता होते हुए भी स्वयं अकृत हैं—आपको किसी दूसरेने नहीं बनाया है। आप प्रभु-शक्तिसे सम्पन्न, सम्पूर्ण विश्वके ईश्वर, अजन्मा, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ तथा किसीसे परास्त न होनेवाले हैं। आपका श्रीविग्रह नील कमलदलके समान श्याम है, नेत्र खिले हुए कमलकी शोभा धारण करते हैं। आप सबके ज्ञाता, निर्गुण, शान्त, जगदाधार, अविनाशी, सर्वलोकस्रष्टा तथा सबको सुख देनेवाले हैं। जानने योग्य पुराणपुरुष, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप सनातन परमेश्वर, कार्य-कारणके उत्पादक, लोकनाथ एवं जगद्गुरु हैं। आपका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है। आप वनमालासे विभूषित हैं। आपका वस्त्र पीले रंगका है। आपकी चार बाँहें हैं। आप शङ्ख, चक्र, गदा, हार, केयूर, मुकुट और अङ्गद धारण करनेवाले हैं। सब लक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त इन्द्रियोंसे रहित, कूटस्थ, अविचल, सूक्ष्म, ज्योतिःस्वरूप, सनातन, भाव और अभावसे मुक्त, व्यापक तथा प्रकृतिसे परे हैं। सबको सुख देनेवाले सामर्थ्यशाली ईश्वर हैं। आप भगवान् जगन्नाथको मैं नमस्कार करता हूँ।



भगवान् विष्णु कहते हैं--महाभागे ! यमराजको हाथ जोड़े मस्तक झुकाये खड़ा देख मैंने उनसे स्तोत्र कहनेका कारण पूछा—'महाबाहु सूर्यनन्दन ! तुम सब देवताओंमें श्रेष्ठ हो। तुमने इस समय मेरी स्तुति किस लिये की है ? संक्षेपसे बताओ।'

धर्मराज बोले—भगवन् ! इस विख्यात पुरुषोत्तम-तीर्थमें जो इन्द्रनील मणिकी बनी हुई श्रेष्ठ प्रतिमा है, वह सब कामनाओंको देनेवाली है। उसका अनन्य भक्ति तथा श्रद्धासे दर्शन करके सभी मनुष्य कामनारहित हो आपके श्वेतधाममें चले जाते हैं। अतः अब मैं अपना व्यापार नहीं चला सकता। प्रभो ! आप कृपा करके उस प्रतिमाको समेट लीजिये।

धर्मराजका यह वचन सुनकर मैंने उनसे कहा—'यम ! मैं सब ओरसे बालूके द्वारा उस प्रतिमाको छिपा दूँगा।' तदनन्तर वह प्रतिमा छिपा दी गयी। अब उसे मनुष्य नहीं देख पाते थे। उसे छिपा देनेके बाद मैंने यमराजको दक्षिण दिशामें भेज दिया।

ब्रह्माजी कहते हैं--पुरुषोत्तमतीर्थमें इन्द्रनीलमयी प्रतिमाके लुप्त हो जानेपर आगे चलकर जो-जो बातें हुईं, उन सबको भगवान् विष्णुने लक्ष्मीदेवीसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया।

राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा अश्वमेध-यज्ञ तथा पुरुषोत्तम-प्रासाद-निर्माणका कार्य

मुनियोंने कहा—भगवन् ! अब हम राजा इन्द्रद्युम्नका शेष वृत्तान्त सुनना चाहते हैं। उस श्रेष्ठ तीर्थमें जाकर उन्होंने क्या किया ?

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो ! सुनो, मैं उस क्षेत्रके दर्शन और राजाके कृत्यका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। उस त्रिभुवनविख्यात पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाकर महाराज इन्द्रद्युम्नने रमणीय स्थानों और नदियोंका दर्शन किया। वहाँ एक बड़ी पवित्र नदी बहती है, जो विन्ध्याचलकी घाटीसे निकली है। वह स्वित्रोत्पलाके नामसे विख्यात, सब पापोंको दूर करनेवाली तथा कल्याणमयी है। उसका स्रोत बहुत बड़ा है। उसकी महत्ता गङ्गाजीके समान है। वह दक्षिणसमुद्रमें मिली है। वह पुण्यसलिला सरिता महानदीके नामसे भी विख्यात है। उसके दोनों किनारोंपर अनेकों गाँव और नगर बसे हुए हैं। वे सभी गाँव अच्छी फसल होनेके कारण बड़े मनोहर दिखायी देते हैं। वहाँके लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट होते हैं और वहाँ रहनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र शान्त-



भावसे पृथक्-पृथक् अपने धर्मोंमें तत्पर दिखायी देते हैं। ब्राह्मणोंके मुखसे छहों अङ्ग, पद और क्रमसे युक्त वैदिक वाणी निकलती रहती है। कोई अग्निहोत्रमें लगे रहते हैं और कोई उपासनामें। वे समस्त शास्त्रोंके अर्थ समझनेमें कुशल, यज्ञकर्ता एवं प्रचुर दक्षिणा देनेवाले होते हैं। वहाँ चबूतरों, सड़कों, वनों, उपवनों, सभामण्डपों, महलों और देवमन्दिरोंमें महान् जनसमुदाय एकत्रित होकर इतिहास, पुराण, वेद, वेदाङ्ग, काव्य एवं शास्त्रोंकी कथा सुनते रहते हैं। उस देशकी स्त्रियोंको अपने रूप और यौवनपर गर्व होता है। वे सभी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न होती हैं। उस क्षेत्रमें संन्यासी, वानप्रस्थ, सिद्ध, स्नातक, ब्रह्मचारी, मन्त्रसिद्ध, तपस्यासिद्ध और यज्ञसिद्ध पुरुष निवास करते हैं। इस प्रकार राजाने उस क्षेत्रको परम शोभायमान देखा, इसलिये मनमें यह निश्चय किया कि यहीं रहकर परम देव, परम अपार, परमपद, अनन्त, अपराजित, सर्वेश्वरेश्वर, जगद्गुरु, सनातन भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना करूँगा। यही भगवान्‌का मानस तीर्थ पुरुषोत्तमक्षेत्र है, यह बात मुझे मालूम हो गयी; क्योंकि यहाँ कल्पवृक्षस्वरूप विशाल वटवृक्ष खड़ा है। यहीं इन्द्रनीलमणिकी बनी हुई मणिमयी प्रतिमा है, जिसे भगवान्‌ने स्वयं छिपा दिया है। क्योंकि यहाँ दूसरी कोई प्रतिमा नहीं दिखायी देती। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे सत्यपराक्रमी जगदीश्वर भगवान् विष्णु मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दें। मैं अनन्य भावसे भगवान्‌में मन लगाकर यहाँ यज्ञ, दान, तपस्या, होम, ध्यान, पूजन तथा उपवास आदिके द्वारा विधिपूर्वक उत्तम व्रतका पालन करूँगा। साथ ही यहाँ श्रीविष्णु भगवान्‌के मन्दिर बनानेका कार्य भी प्रारम्भ करूँगा।

द्विजवरो! यह सोचकर महाराज इन्द्रद्युम्नने वहाँ भगवान्‌का मन्दिर बनवानेके लिये कार्य आरम्भ किया। उन्होंने ज्योतिषशास्त्रके पारंगत समस्त आचार्योंको बुलाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ यत्नपूर्वक भूमिका शोधन कराया। इस कार्यमें ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मणों, वेद-शास्त्रके पारंगत अमात्यों, मन्त्रियों तथा वास्तुविद्याके विद्वानोंका भी सहयोग प्राप्त था। उन सबके साथ भलीभाँति विचार करके शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें, जब कि उत्तम चन्द्रमा और नक्षत्रोंका योग था तथा ग्रहोंकी भी अनुकूलता थी, राजाने श्रद्धापूर्वक अर्घ्य दिया। उस समय जय-जयकार तथा मङ्गलमय शब्द हो रहे थे, भाँति-भाँतिके वाद्योंकी मनोहर ध्वनि गूँज रही थी। वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोष और मधुर संगीत हो रहे थे। फूल, लाजा, अक्षत, चन्दन, भरे हुए कलश तथा दीपक आदिके द्वारा पूजा-कार्य सम्पन्न किया गया था। इस प्रकार अर्घ्य-दान दे महाराज इन्द्रद्युम्नने शूरवीर कलिङ्गराज, उत्कलराज और कोसलराजको बुलाकर कहा—'राजाओ! तुम सब लोग एक ही साथ मन्दिरके निमित्त शिला ले आनेके लिये जाओ। अपने साथ प्रधान-प्रधान शिल्पियोंको भी, जो शिला खोदनेके काममें निपुण हों, ले लो। विन्ध्याचल बहुत विस्तृत पर्वत है। वह अनेकों कन्दराओंसे सुशोभित है। उसके सभी शिखरोंको भलीभाँति देखकर सुन्दर-सुन्दर शिलाएँ कटवाओ और उन्हें छकड़ों तथा नावोंपर लादकर ले आओ, विलम्ब न करो।'

इस प्रकार राजाओंको शिलाके लिये जानेकी आज्ञा दे महाराजने अमात्यों और पुरोहितोंसे कहा—'सर्वत्र शीघ्रगामी दूत भेजे जायँ और वे पृथ्वीके समस्त राजाओंके पास जाकर मेरी यह आज्ञा सुना दें—'राजाओ! महाराज इन्द्रद्युम्नकी आज्ञाके अनुसार तुम सब लोग हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना तथा अमात्यों एवं पुरोहितोंके साथ चलो।' ऐसी आज्ञा पाकर दूत राजाओंके पास गये और सबको महाराजकी आज्ञा सुना दी। दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व देशोंके रहनेवाले, दूर और समीप निवास करनेवाले, पर्वत तथा भिन्न-भिन्न द्वीपोंके निवासी नरेश महाराज इन्द्रद्युम्नका आदेश सुनकर रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेनाके साथ बहुत धन लेकर भारी संख्यामें एकत्रित हुए। राजाओंको अमात्यों और पुरोहितोंसहित आया देख महाराजको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—'नृपवरो! मैं आपलोगोंसे कुछ निवेदन करना



चाहता हूँ, सुनें। यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला कल्याणमय क्षेत्र है। मैं यहाँ अश्वमेध यज्ञ करना और भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाना चाहता हूँ; किन्तु मैं इसे कैसे पूर्ण कर सकता हूँ, इस चिन्तासे मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। यदि आपलोग भलीभाँति मेरी सहायता करें तो मेरा सब कार्य सम्पन्न हो सकता है।'

महाराज इन्द्रद्युम्नके यों कहनेपर सब राजाओंको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने महाराजकी आज्ञासे धन, रत्न, सुवर्ण, मणि, मोती, कम्बल, मृगचर्म, सुन्दर बिछौने, हीरे, पुखराज, माणिक, लाल, नीलम, हाथी, घोड़े, रथ, हथिनी, भाँति-भाँतिके द्रव्य, भक्ष्य, भोज्य तथा अनुलेप आदि पदार्थोंकी वर्षा की। राजा इन्द्रद्युम्नने देखा, यज्ञकी सब सामग्री एकत्रित हो गयी है और यज्ञकर्मके ज्ञाता, वेद-वेदाङ्गोंमें पारंगत, शास्त्रज्ञानमें निपुण तथा सब कर्मोंमें कुशल ऋषि, महर्षि, देवर्षि, तपस्वी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, स्नातक तथा अग्निहोत्रपरायण ब्राह्मण भी उपस्थित हैं; तब उन्होंने अपने पुरोहितसे कहा—'ब्रह्मन्! कुछ विद्वान् ब्राह्मण, जो वेदोंके पारंगत पण्डित हों, जाकर अश्वमेध-यज्ञकी सिद्धिके लिये उत्तम स्थान देखें।' राजाके यों कहनेपर विद्वान् पुरोहितने यज्ञकर्ममें कुशल ब्राह्मणोंको आगे करके शिल्पियोंके साथ प्रस्थान किया। और उस देशमें, जहाँ धीवरोंका गाँव था, विधिपूर्वक यज्ञशाला बनवायी। उसमें गली-कूचे और छतरियाँ भी बनवायी गयी थीं। सैकड़ों महल बनाये गये थे। सारा यज्ञमण्डप सुवर्ण, रत्न तथा श्रेष्ठ मणियोंसे विभूषित हो इन्द्रभवनके समान रमणीय दिखायी देता था। खंभोंपर सुवर्णसे चित्रकारी की गयी थी। दरवाजे बहुत बड़े-बड़े बने हुए थे। यज्ञके प्रत्येक भवनमें शुद्ध सुवर्णका उपयोग किया गया था। धर्मात्मा पुरोहितने भिन्न-भिन्न देशोंके निवासी राजाओंके लिये अन्तःपुर भी बनवाये थे। नाना देशोंसे आये हुए ब्राह्मणों और वैश्योंके लिये भी उन्होंने अनेक शालाएँ बनवायी थीं। महाराज इन्द्रद्युम्नका प्रिय करनेके लिये समस्त राजा अनेक प्रकारके रत्न लेकर वहाँ आये थे। साथ ही उनकी स्त्रियाँ भी उत्सवमें सम्मिलित हुई थीं। महाराजने उन समस्त समागत अतिथियोंके लिये ठहरनेके स्थान, शय्या, भाँति-भाँतिके भोज्य पदार्थ, महीन चावल, ईखका रस और गोरस आदि प्रदान किये। उस महायज्ञमें जो भी श्रेष्ठ ब्राह्मण पधारे, उन सबको राजाने स्वागतपूर्वक ग्रहण किया। महातेजस्वी नरेशने दम्भ छोड़कर स्वयं ही सब ब्राह्मणोंका सब तरहसे स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् शिल्पियोंने अपनी शिल्प-रचनाका कार्य पूरा करके राजाको यज्ञमण्डप तैयार हो जानेकी सूचना दी। यह सुनकर मन्त्रियोंसहित राजा बहुत प्रसन्न हुए। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। यज्ञमण्डप तैयार हो जानेपर महाराजने ब्राह्मण-भोजनका कार्य आरम्भ कराया। प्रतिदिन जब एक लाख ब्राह्मण भोजन कर लेते, तब बारंबार मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर स्वरमें दुन्दुभिकी ध्वनि होने लगती थी। इस प्रकार राजाके यज्ञकी वृद्धि होने लगी। उसमें अन्नका इतना दान किया गया, जिसकी कहीं उपमा नहीं थी। लोगोंने देखा वहाँ दूध, दही और घीकी नदियाँ बह रही हैं। भिन्न-भिन्न जनपदोंके साथ समूचे जम्बूद्वीपके लोग वहाँ जुटे थे। वहाँ कितने ही सहस्र पुरुष बहुत-से पात्र लेकर इधर-उधरसे एकत्र हुए थे। राजाके अनुगामी पुरुष ब्राह्मणोंको तरह-तरहके अनुपान और राजाओंके उपभोगमें आनेवाले भोज्य पदार्थ परोसते थे। यज्ञमें आये हुए वेदवेत्ता ब्राह्मणों तथा राजाओंका महाराजने पूर्ण स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद उन्होंने राजकुमारोंसे कहा।

राजा बोले—राजपुत्रो! अब समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त श्रेष्ठ अश्व ले आओ और उसे समूची पृथ्वीपर घुमाओ। विद्वान् और धर्मात्मा ब्राह्मण यहाँ होम करें और यह यज्ञ उस समयतक चालू रहे, जबतक कि भगवान् इसके समीप प्रकट होकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन न दें।



यों कहकर राजाओंमें श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नने बहुत-सा सुवर्ण, करोड़ोंके आभूषण, लाखों हाथी-घोड़े, अरबों बैल तथा सुवर्णमय सींगोंवाली दुधारू गौएँ, जिनके साथ काँसेके दुग्ध-पात्र थे, वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको दान किये । इसके सिवा बहुमूल्य वस्त्र, हरिणके बालोंसे बने हुए बिछौने, मूँगा, मणि तथा हीरा, पुखराज, माणिक और मोती आदि भाँति-भाँतिके रत्न भी दिये । उस अश्वमेध-यज्ञमें याचकों और ब्राह्मणोंको भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ प्रदान किये गये । मीठे पूवे तथा स्वादिष्ट अन्न सब जीवोंकी तृप्तिके लिये बारंबार दिये जाते थे । वहाँ दिये गये तथा दिये जानेवाले धनका कभी अन्त नहीं होता था । इस प्रकार उस महायज्ञको देखकर देवता, दैत्य, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, ऋषि और प्रजापति—सब-के-सब बड़े विस्मयमें पड़ गये । उस श्रेष्ठ यज्ञकी सफलता देख पुरोहित, मन्त्री तथा राजा—सबको बड़ी प्रसन्नता हुई । वहाँ कोई भी मनुष्य मलिन, दीन अथवा भूखा नहीं रहा । उस यज्ञमें किसी प्रकारका उपद्रव, ग्लानि, आधि, व्याधि, अकाल-मृत्यु, दंशन, ग्रहपीड़ा अथवा विषका कष्ट नहीं हुआ । इस प्रकार राजाने अश्वमेध-यज्ञ तथा पुरुषोत्तम-प्रासाद-निर्माणका कार्य विधिपूर्वक पूर्ण किया ।

राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति

ब्रह्माजी कहते हैं—अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठान और प्रासाद-निर्माणका कार्य पूर्ण हो जानेपर राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें दिन-रात प्रतिमाके लिये चिन्ता रहने लगी । वे सोचने लगे—कौन-सा उपाय करूँ, जिससे सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले लोकपावन भगवान् पुरुषोत्तमका मुझे दर्शन हो । इसी चिन्तामें निमग्न रहनेके कारण उन्हें न रातमें नींद आती न दिनमें । वे न तो भाँति-भाँतिके भोग भोगते और न स्नान एवं शृङ्गार ही करते थे । वाद्य, सुगन्ध, संगीत, अङ्गराग, इन्द्रनील, महानील, पद्मराग, सोना, चाँदी, हीरा, स्फटिक आदि मणियाँ, राग, अर्थ, काम, वन्य पदार्थ अथवा दिव्य वस्तुओंसे भी उनके मनको संतोष नहीं होता था । पत्थर, मिट्टी और लकड़ीमेंसे इस पृथ्वीपर सर्वोत्तम वस्तु कौन है ? किससे भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका निर्माण ठीक हो सकता है ? इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े-पड़े उन्होंने पाञ्चरात्रकी विधिसे भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन किया और अन्तमें इस प्रकार स्तवन आरम्भ किया—

'वासुदेव ! आपको नमस्कार है । आप मोक्षके कारण हैं । आपको मेरा नमस्कार है । सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी परमेश्वर ! आप इस जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये । पुरुषोत्तम ! आपका स्वरूप निर्मल आकाशके समान है । आपको नमस्कार है । सबको अपनी ओर खींचनेवाले संकर्षण ! आपको प्रणाम है । धरणीधर ! आप मेरी रक्षा कीजिये । हेमगर्भ (शालग्राम-शिला)की-सी आभावाले प्रभो ! आपको नमस्कार है । मकरध्वज ! आपको प्रणाम है । रतिकान्त ! आपको नमस्कार है । शम्बरासुरका संहार करनेवाले प्रद्युम्न ! आप मेरी रक्षा कीजिये । भगवन् ! आपका श्रीअङ्ग अञ्जनके समान श्याम है । भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है । अनिरुद्ध ! आपको प्रणाम है । आप मेरी रक्षा करें और वरदायक बनें । सम्पूर्ण देवताओंके निवासस्थान ! आपको नमस्कार है । देवप्रिय ! आपको प्रणाम है । नारायण ! आपको नमस्कार है । आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये । बलवानोंमें श्रेष्ठ बलराम ! आपको प्रणाम है । हलायुध ! आपको नमस्कार है । चतुर्मुख ! जगद्धाम ! प्रपितामह ! मेरी रक्षा कीजिये । नील मेघके समान आभावाले घनश्याम ! आपको नमस्कार है । देवपूजित परमेश्वर ! आपको प्रणाम है । सर्वव्यापी जगन्नाथ ! मैं भव-सागरमें डूबा हुआ हूँ, मेरा उद्धार कीजिये ।*

* वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण । त्राहि मां सर्वलोकेश जन्मसंसारसागरात् ॥
निर्मलाम्बरसंकाश नमस्ते पुरुषोत्तम । संकर्षण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां धरणीधर ॥
नमस्ते हेमगर्भाय नमस्ते मकरध्वज । रतिकान्त नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शम्बरान्तक ॥
नमस्तेऽञ्जनसंकाश नमस्ते भक्तवत्सल । अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु त्राहि मां वरदो भव ॥
नमस्ते विबुधावास नमस्ते विबुधप्रिय । नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम् ॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गलायुध । चतुर्मुख जगद्धाम त्राहि मां प्रपितामह ॥
नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रिदशार्चित । त्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्नं मां भवसागरे ॥
(४९ । १—७)

प्रलयाग्निके समान तेजस्वी तथा दहकते हुए नेत्रोंवाले महापराक्रमी दैत्यशत्रु नृसिंह ! आपको नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिये। पूर्वकालमें महावाराहरूप धारणकर आपने जिस प्रकार इस पृथ्वीका रसातलसे उद्धार किया था, उसी प्रकार मेरा भी दुःखके समुद्रसे उद्धार कीजिये। कृष्ण ! आपके इन वरदायक स्वरूपोंका मैंने स्तवन किया है। ये बलदेव आदि, जो पृथक्‌रूपसे स्थित दिखायी देते हैं, आपके ही अङ्ग हैं। देवेश ! प्रभो ! अच्युत ! गरुड़ आदि पार्षद, आयुधोंसहित दिक्पाल तथा केशव आदि जो आपके अन्य भेद मनीषियोंद्वारा बतलाये गये हैं, उन सबका मैंने पूजन किया है। प्रसन्न तथा विशाल नेत्रोंवाले जगन्नाथ ! देवेश्वर ! पूर्वोक्त सब स्वरूपोंके साथ मैंने आपका स्तवन और वन्दन किया है। आप मुझे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला वर प्रदान करें। हरे ! संकर्षण आदि जो आपके भेद बताये गये हैं, वे सब आपकी पूजाके लिये ही प्रकट हुए हैं; अतः वे आपके ही आश्रित हैं। देवेश ! वस्तुतः आपमें कोई भेद नहीं है। आपके जो अनेक प्रकारके रूप बताये जाते हैं, वे सब उपचारसे ही कहे गये हैं; आप तो अद्वैत हैं। फिर कोई भी मनुष्य आपको द्वैतरूप कैसे कह सकता है। हरे ! आप एकमात्र व्यापक, चित्स्वभाव तथा निरञ्जन हैं। आपका जो परम स्वरूप है, वह भाव और अभावसे रहित, निर्लेप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, समस्त उपाधियोंसे निर्मुक्त और सत्तामात्र रूपसे स्थित है। प्रभो ! उसे देवता भी नहीं जानते, फिर मैं ही कैसे उसे जान सकता हूँ। इसके सिवा आपका जो अपर स्वरूप है, वह पीताम्बरधारी और चार भुजाओंवाला है। उसके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित हैं। वह मुकुट और अङ्गद धारण करता है। उसका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे युक्त है तथा वह वनमालासे विभूषित रहता है। उसीकी देवता तथा आपके अन्यान्य शरणागत भक्त पूजा करते हैं। देवदेव ! आप सब देवताओंमें श्रेष्ठ एवं भक्तोंको अभय देनेवाले हैं। कमलनयन ! मैं विषयोंके समुद्रमें डूबा हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। लोकेश ! मैं आपके सिवा और किसीको नहीं देखता, जिसकी शरणमें जाऊँ। कमलाकान्त ! मधुसूदन ! मुझपर प्रसन्न होइये।*

मैं बुढ़ापे और सैकड़ों व्याधियोंसे युक्त हो भाँति-भाँतिके दुःखोंसे पीड़ित हूँ तथा अपने कर्मपाशमें बँधकर हर्ष-शोकमें मग्न हो विवेकशून्य हो गया हूँ। अत्यन्त भयंकर घोर संसार-समुद्रमें गिरा हुआ हूँ। यह विषयरूपी जलराशिके कारण दुस्तर है। इसमें राग-द्वेषरूपी मत्स्य भरे पड़े हैं। इन्द्रियरूपी भँवरोंसे यह बहुत गहरा प्रतीत होता है। इसमें तृष्णा और शोकरूपी लहरें व्याप्त हैं। यहाँ न कोई आश्रय है, न कोई अवलम्ब। यह सारहीन एवं अत्यन्त चञ्चल है। प्रभो ! मैं मायासे मोहित होकर इसके भीतर चिरकालसे भटक रहा हूँ। हजारों भिन्न-भिन्न योनियोंमें बारंबार जन्म लेता हूँ। जनार्दन ! मैंने इस संसारमें नाना प्रकारके हजारों

* प्रलयानलसंकाश नमस्ते दितिजान्तक। नरसिंह महावीर्य त्राहि मां दीप्तलोचन॥
यथा रसातलादुर्वी त्वया दंष्ट्रोद्धृता पुरा। तथा महावराहस्त्वं त्राहि मां दुःखसागरात्॥
तवैता मूर्तयः कृष्ण वरदाः संस्तुता मया। तवेमे बलदेवाद्याः पृथग्रूपेण संस्थिताः॥
अङ्गानि तव देवेश गरुत्माद्यास्तथा प्रभो। दिक्पालाः सायुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाच्युत॥
ये चान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः। तेऽपि सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन॥
मयार्चिताः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः। प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम्॥
भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकर्षणादयः। तव पूजार्थसम्भूतास्ततस्त्वयि समाश्रिताः॥
न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः। विविधं तव यद्रूपमुक्तं तदुपचारतः॥
अद्वैतं त्वां कथं द्वैतं वक्तुं शक्नोति मानवः। एकस्त्वं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः॥
परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम्। तद्देवाश्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभो॥
अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गदधारिणम्॥
श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्। तदर्चयन्ति विबुधा ये चान्ये तव संश्रयाः॥
देवदेव सुरश्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद। त्राहि मां पद्मपत्राक्ष मग्नं विषयसागरे॥
नान्यं पश्यामि लोकेश यस्याहं शरणं व्रजे। त्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन॥
(४९। ८—२२)

जन्म धारण किये हैं। अङ्गोंसहित वेद, नाना प्रकारके शास्त्र, इतिहास-पुराण तथा अनेक शिल्पोंका अध्ययन किया है। यहाँ मुझे कभी असंतोष मिला है, कभी संतोष। कभी धन-का संग्रह किया है, कभी हानि उठायी है और कभी बहुत खर्च किये हैं। जगन्नाथ! इस प्रकार मैंने ह्रास-वृद्धि, उदय और अस्त अनेक बार देखे हैं; स्त्री, शत्रु, मित्र तथा बन्धु-बान्धवोंके संयोग और वियोग भी देखनेको मिले हैं। मैंने अनेक पिता देखे हैं और अनेक माताओंका दर्शन किया है। अनेक प्रकारके जो दुःख और सुख हैं, उनके अनुभवका भी मुझे अवसर मिला है। भाई, बन्धु, पुत्र और कुटुम्बी भी प्राप्त हुए हैं। विष्ठा और मूत्रकी कीचसे भरे हुए स्त्रियोंके गर्भाशयमें भी मैंने निवास किया है। प्रभो! गर्भवासमें जो महान् दुःख होता है, उसका भी मैंने अनुभव किया है। बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थामें जो अनेक प्रकारके दुःख होते हैं, उनसे भी मैं वञ्चित नहीं रहा। मृत्युके समय, यमलोकके मार्गमें तथा यमराजके घरमें जो दुःख प्राप्त होते हैं, उनको तथा नरकोंमें होनेवाली यातनाओंको भी मैंने भोगा है। कृमि, कीट, वृक्ष, हाथी, घोड़े, मृग, पक्षी, भैंसे, ऊँट, गाय तथा अन्य वनवासी जन्तुओं-की योनिमें मुझे जन्म लेना पड़ा है। समस्त द्विजातियों और शूद्रोंके यहाँ भी मेरा जन्म हुआ है। देव! धनी क्षत्रियों, दरिद्र तपस्वियों, राजाओं, राजाके सेवकों तथा अन्य देहधारियोंके घरोंमें भी मैं अनेक बार उत्पन्न हो चुका हूँ। नाथ! मुझे अनेकों बार ऐसे मनुष्योंका दास होना पड़ा है, जो स्वयं दूसरोंके दास हैं। मैं दरिद्र, धनी और स्वामी भी रह चुका हूँ।*

मुझे दूसरोंने मारा और मेरे हाथसे दूसरे मारे गये। मुझे दूसरोंने मरवाया और मैंने भी दूसरोंकी हत्या करवायी। मुझे दूसरोंने और मैंने दूसरोंको अनेकों बार दान दिये हैं। जनार्दन! पिता, माता, सुहृद्, भाई और पत्नीके लिये मैंने लज्जा छोड़कर धनियों, श्रोत्रियों, दरिद्रों और तपस्वियोंके सामने दीनतासे भरी बातें की हैं। प्रभो! देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य तथा अन्य स्थावर-जङ्गम भूतोंमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मेरा जाना न हुआ हो। जगत्पते! कभी नरकमें और कभी स्वर्गमें मेरा निवास रहा है। कभी मनुष्यलोकमें और कभी तिर्यग्योनियोंमें जन्म लेना पड़ा है। सुरश्रेष्ठ! जैसे रहटमें रस्सीसे बँधी हुई घटी कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती और कभी बीचमें ठहरी रहती है, उसी प्रकार मैं कर्मरूपी रज्जुमें बँधकर दैवयोगसे ऊपर, नीचे तथा मध्यवर्ती लोकमें भटकता रहता हूँ। इस प्रकार यह संसार-चक्र बड़ा ही भयानक एवं रोमाञ्चकारी है। मैं इसमें दीर्घकालसे घूम रहा हूँ, किन्तु कभी इसका अन्त नहीं दिखायी देता। समझमें नहीं आता, अब क्या करूँ। हरे! हमारी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ

* जराव्याधिशतैर्युक्तो नानादुःखैर्निपीडितः। हर्षशोकान्वितो मूढः कर्मपाशैः सुयन्त्रितः॥
पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे। विषयोदकदुष्पारे रागद्वेषझषाकुले॥
इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णाशोकोर्मिसंकुले। निराश्रये निरालम्बे निःसारेऽत्यन्तचञ्चले॥
मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो। नानाजातिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः॥
मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च। विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन॥
वेदाः साङ्गा मयाधीताः शास्त्राणि विविधानि च। इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः॥
असंतोषाश्च संतोषाः संचयापचया व्ययाः। मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्ध्युदयेतराः॥
भार्यारिमित्रबन्धूनां वियोगाः संगमास्तथा। पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया॥
दुःखानि चानुभूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः। प्राप्ताश्च बान्धवाः पुत्रा भ्रातरो ज्ञातयस्तथा॥
मयोषितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विण्मूत्रपिच्छले। गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो॥
दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययौवनगोचरे। वार्धके च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया॥
मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये। मया तान्यनुभूतानि नरके यातनास्तथा॥
कृमिकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम्। महिषोष्ट्रगवां चैव तथान्येषां वनौकसाम्॥
द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु। धनिनां क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम्॥
नृपाणां नृपभृत्यानां तथान्येषां च देहिनाम्। गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः॥
गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम्। दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः॥
(४९। २३—३८)

व्याकुल हो गयी हैं। मैं शोक और तृष्णासे आक्रान्त होकर अब कहाँ जाऊँ? मेरी चेतना लुप्त हो रही है। देव! इस समय व्याकुल होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। कृष्ण! मैं संसार-समुद्रमें डूबकर दुःख भोगता हूँ। मुझे बचाइये। जगन्नाथ! यदि आप मुझे अपना भक्त मानते हैं तो मुझपर कृपा कीजिये। आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा बन्धु नहीं है, जो मेरी चिन्ता करेगा। देव! प्रभो! आप-जैसे स्वामीकी शरणमें आकर अब मुझे जीवन, मरण अथवा योगक्षेमके लिये कहीं भी भय नहीं होता। देव! जो नराधम आपकी विधिपूर्वक पूजा नहीं करते, उनकी इस संसार-बन्धनसे मुक्ति एवं सद्गति कैसे हो सकती है। जगदाधार भगवान् केशवमें जिनकी भक्ति नहीं होती, उनके कुल, शील, विद्या और जीवनसे क्या लाभ है। जो आसुरी प्रकृतिका आश्रय ले विवेकशून्य हो आपकी निन्दा करते हैं, वे बारंबार जन्म लेकर घोर नरकमें पड़ते हैं तथा उस नरक-समुद्रसे उनका कभी उद्धार नहीं होता। देव! जो दुराचारी नीच पुरुष आपपर दोषारोपण करते हैं, वे कभी नरकसे छुटकारा नहीं पाते। हरे! अपने कर्मोंमें बँधे रहनेके कारण मेरा जहाँ कहीं भी जन्म हो, वहाँ सर्वदा आपमें मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे। देव! आपकी आराधना करके देवता, दैत्य, मनुष्य तथा अन्य संयमी पुरुषोंने परम सिद्धि प्राप्त की है; फिर कौन आपकी पूजा न करेगा। भगवन्! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, फिर मानव-बुद्धि लेकर मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ। क्योंकि आप प्रकृतिसे परे परमेश्वर हैं। प्रभो! मैंने अज्ञानके भावसे आपकी स्तुति की है। यदि आपकी मुझपर दया हो तो मेरे इस अपराधको क्षमा करें। हरे! साधु पुरुष अपराधीपर भी क्षमाभाव ही रखते हैं, अतः देवेश्वर! आप भक्तस्नेहके वशीभूत होकर मुझपर प्रसन्न होइये। देव! मैंने भक्तिभावित चित्तसे आपकी जो स्तुति की है, वह साङ्गोपाङ्ग सफल हो। वासुदेव! आपको नमस्कार है।*

---

* हतो मया हताश्चान्ये घातितो घातितास्तथा। दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः॥
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च। धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम्॥
उक्तं दैन्यं च विविधं त्यक्त्वा लज्जां जनार्दन। देवतिर्यङ्मनुष्येषु स्थावरेषु चरेषु च॥
न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गतः प्रभो। कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते॥
कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्गतेषु च। जलयन्त्रे यथा चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना॥
याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति। तथा चाहं सुरश्रेष्ठ कर्मरज्जुसमावृतः॥
अधश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन् गच्छामि योगतः। एवं संसारचक्रेऽस्मिन् भैरवे रोमहर्षणे॥
भ्रमामि सुचिरं कालं नान्तं पश्यामि कर्हिचित्। न जाने किं करोम्यद्य हरे व्याकुलितेन्द्रियः॥
शोकतृष्णाभिभूतोऽहं कांदिशीको विचेतनः। इदानीं त्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः॥
त्राहि मां दुःखितं कृष्ण मग्नं संसारसागरे। कृपां कुरु जगन्नाथ भक्तं मां यदि मन्यसे॥
त्वदृते नास्ति मे बन्धुर्योऽसौ चिन्तां करिष्यति। देव त्वां नाथमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित्॥
जीविते मरणे चैव योगक्षेमेऽथवा प्रभो। ये तु त्वां विधिवद्देव नार्चयन्ति नराधमाः॥
सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्धनात्। किं तेषां कुलशीलेन विद्यया जीवितेन च॥
येषां न जायते भक्तिर्जगद्धातरि केशवे। प्रकृतिं त्वासुरीं प्राप्य ये त्वां निन्दन्ति मोहिताः॥
पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः। न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात्॥
ये दूषयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरुषाधमाः। यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात्॥
तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु दृढा सदा। आराध्य त्वां सुरा दैत्या नराश्चान्येऽपि संयताः॥
अवापुः परमां सिद्धिं कस्त्वां देव न पूजयेत्। न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां त्रिदशा हरे॥
कथं मानुषबुद्ध्याहं स्तौमि त्वां प्रकृतेः परम्। तथा चाज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो॥
तत्क्षमस्वापराधं मे यदि तेऽस्ति दया मयि। कृतापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः॥
तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं समाश्रितः। स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा।
साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते॥ (४९।३९–५९)

ब्रह्माजी कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्नके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् गरुड़ध्वजने प्रसन्न होकर उनका सब मनोरथ पूर्ण किया। जो मनुष्य भगवान् जगन्नाथका पूजन करके प्रतिदिन इस स्तोत्रसे उनका स्तवन करता है, वह बुद्धिमान् निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो विद्वान् पुरुष तीनों संध्याओंके समय पवित्र हो इस श्रेष्ठ स्तोत्रका जप करता है, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पाता है। जो एकाग्रचित्त हो इसका पाठ या श्रवण करता अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह पापरहित हो भगवान् विष्णुके सनातन धाममें जाता है। यह स्तोत्र परम प्रशंसनीय, पापोंको दूर करनेवाला, भोग एवं मोक्ष देनेवाला, कल्याणमय, गोपनीय, अत्यन्त दुर्लभ तथा पवित्र है। इसे जिस किसी मनुष्यको नहीं देना चाहिये। नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, मानी, दुष्टबुद्धि तथा अभक्त मनुष्यको कभी इसका उपदेश न दे। जिसके हृदयमें भक्ति हो, जो गुणवान्, शीलवान्, विष्णुभक्त, शान्त तथा श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करनेवाला हो, उसीको इसका उपदेश देना चाहिये।

जो निर्मल हृदयवाले मनुष्य उन परम सूक्ष्म नित्य पुराण-पुरुष मुरारि श्रीविष्णुभगवान्का ध्यान करते हैं, वे मुक्तिके भागी हो भगवान् विष्णुमें प्रवेश कर जाते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मन्त्रोंद्वारा यज्ञाग्निमें हवन किया हुआ हविष्य भगवान् विष्णुको प्राप्त होता है। एकमात्र वे देवदेव भगवान् विष्णु ही संसारके दुःखोंका नाश करनेवाले तथा परोंसे भी पर हैं। उनसे भिन्न किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। वे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। वे ही समस्त संसारमें सारभूत हैं। मोक्ष-सुख देनेवाले जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें यहाँ जिनकी भक्ति नहीं होती, उन्हें विद्यासे, अपने गुणोंसे तथा यज्ञ, दान और कठोर तपस्यासे क्या लाभ हुआ। जिस पुरुषकी भगवान् पुरुषोत्तमके प्रति भक्ति है, वही संसारमें धन्य, पवित्र और विद्वान् है। वही यज्ञ, तपस्या और गुणोंके कारण श्रेष्ठ है तथा वही ज्ञानी, दानी और सत्यवादी है।*

राजाको स्वप्नमें और प्रत्यक्ष भी भगवान्का दर्शन, भगवत्प्रतिमाओंका निर्माण, स्थापन और यात्राकी महिमा



ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिवरो! इस प्रकार स्तुति करके राजाने समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले सनातन पुरुष जगन्नाथ भगवान् वासुदेवको प्रणाम किया और चिन्तामग्न हो पृथ्वीपर कुश और वस्त्र बिछाकर भगवान्का चिन्तन करते हुए वे उसीपर सो गये। सोते समय उनके मनमें यही संकल्प था कि सबकी पीड़ा दूर करनेवाले देवाधिदेव भगवान् जनार्दन कैसे मुझे प्रत्यक्ष दर्शन देंगे। सो जानेपर देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् वासुदेवने राजाको स्वप्नमें अपने शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले स्वरूपका दर्शन कराया। राजा इन्द्रद्युम्नने बड़े प्रेमसे भगवान्का दर्शन किया। वे शङ्ख और चक्र धारण किये हुए थे। उन्होंने शार्ङ्ग नामक धनुष और बाण भी धारण कर रक्खे थे। उनका स्वरूप प्रलयकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा था। वे प्रज्वलित तेजके विशाल मण्डल प्रतीत होते थे। उनका श्रीअङ्ग नीले पुखराजके समान श्याम था। वे गरुड़के कंधेपर विराजमान थे और उनके आठ भुजाएँ शोभा पा रही थीं। दर्शन देकर भगवान्ने उनसे

* ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारिं ध्यायन्ति नित्यं पुरुषं पुराणम्। ते मुक्तिभाजः प्रविशन्ति विष्णुं मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हुतमध्वराग्नौ॥
एकः स देवो भवदुःखहन्ता परं परेषां न ततोऽस्ति चान्यत्। स्रष्टा स पाता स तु नाशकर्ता विष्णुः समस्ताखिलसारभूतः॥
किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषां यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरुग्रैः। येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च॥
लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान्मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः। ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये॥
(४९। ६८-७१)

कहा—'राजन् ! तुम्हें साधुवाद है। तुम्हारे इस दिव्य यज्ञसे, भक्तिसे और श्रद्धासे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। महीपाल ! तुम व्यर्थ क्यों सोचमें पड़े हो। सजन् ! यहाँ जो जगत्पूज्य सनातनी प्रतिमा है, उसकी प्राप्तिका उपाय तुम्हें बतलाता हूँ। आजकी रात बीतनेपर निर्मल प्रभातमें जब सूर्योदय हो, उस समय अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित समुद्रके जल-प्रान्तमें, जहाँ तरङ्गोंसे प्रेरित महान् जलकी राशि दिखायी देती है, वहीं एक बहुत बड़ा वृक्ष खड़ा है, जिसका कुछ भाग तो जलमें है और कुछ स्थलमें है। वह समुद्रकी लहरोंसे आहत होनेपर भी कम्पित नहीं होता। तुम हाथमें कुल्हाड़ी लेकर लहरोंके बीचसे अकेले ही वहाँ चले जाना। तुम्हें वह वृक्ष दिखायी देगा। मेरे बताये अनुसार उसको पहचानकर निःशङ्क भावसे उस वृक्षको काट डालना। उसे काटते समय तुम्हें कोई अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। उसीसे सोच-विचारकर तुम दिव्य प्रतिमाका निर्माण करो। मोहमें डालनेवाली चिन्ता छोड़ दो।'

यों कहकर महाभाग श्रीहरि अदृश्य हो गये। वह स्वप्न देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उस रात्रिको देखते हुए वे भगवान्में मन लगा उठ बैठे और वैष्णव मन्त्र एवं विष्णुसूक्तका जप करने लगे। प्रातःकाल उठे और भगवत्स्मरण करते हुए विधिपूर्वक उन्होंने समुद्रमें स्नान किया। फिर ब्राह्मणोंको नगर और गाँव आदि दानमें दे पूर्वाह्न-कृत्य करके समुद्रके तटपर गये। वहाँ अकेले ही महाराजने समुद्रकी महावेलामें प्रवेश किया और उस तेजस्वी महावृक्षको देखा। वह बहुत ऊँचा था और उससे बड़ी-बड़ी जटाएँ लटक रही थीं। उसे देखकर राजा इन्द्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तीखे फरसेसे उस वृक्षको काट गिराया और उसके दो टुकड़े करनेका विचार किया। फिर उन्होंने जब काष्ठका भलीभाँति निरीक्षण किया, तब एक अद्भुत बात दिखायी दी। विश्वकर्मा और भगवान् विष्णु दोनों ब्राह्मणका रूप धरकर वहाँ आये। उनके कण्ठमें दिव्य हार और शरीरमें दिव्य अङ्गराग शोभा पा रहे थे। वे दोनों अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। राजाके पास आकर उन्होंने पूछा—'महाराज ! आप यहाँ कौन-सा कार्य करेंगे ? किसलिये इस वनस्पतिको काट गिराया है ?'

उन दोनोंकी बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मीठी वाणीमें उत्तर दिया—'मैं यहाँ आदि-अन्तसे रहित देवाधिदेव जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये प्रतिमा बनवाना चाहता हूँ। इसके लिये स्वयं भगवान्ने ही मुझे स्वप्नमें प्रेरित किया है।' राजाकी यह बात सुनकर भगवान् जगन्नाथने हँसकर कहा—'महाराज ! आपका विचार बड़ा उत्तम है। इसके लिये आपको साधुवाद है। यह भयंकर संसार-सागर केलेके पत्तेकी भाँति सारहीन है। इसमें दुःखकी ही अधिकता है। काम-क्रोध इसमें पूर्णरूपसे व्याप्त हैं। इन्द्रियरूपी भँवर और कीचड़के कारण यह दुस्तर है। नाना प्रकारके सैकड़ों रोग यहाँ भँवरके समान हैं। यह संसार पानीके बुलबुलेकी भाँति क्षणभङ्गुर है। इसमें रहते हुए जो आपके मनमें भगवान् विष्णुकी आराधनाका विचार उत्पन्न हुआ, यह बहुत ही उत्तम है। महाभाग ! आइये, इस वृक्षकी शीतल छायामें हम दोनोंके साथ बैठिये। ये मेरे साथी एक श्रेष्ठ शिल्पी हैं। ये सब प्रकारके शिल्प-कर्ममें साक्षात् विश्वकर्माके समान निपुण हैं। आप किनारा छोड़कर चले आइये। ये मेरे बताये अनुसार प्रतिमा तैयार कर देंगे।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न समुद्रका तट छोड़ उनके पास चले गये और वृक्षकी शीतल छायामें बैठे। तदनन्तर ब्राह्मणरूपधारी विश्वात्मा भगवान्ने शिल्पियोंमें प्रधान विश्वकर्माको आज्ञा दी—'तुम प्रतिमा बनाओ। भगवान् श्रीकृष्णका रूप परम शान्त हो। उनके नेत्र पद्मपत्रके समान विशाल होने चाहिये। वे वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणि और हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये हुए हों। दूसरी प्रतिमाका विग्रह दुग्धके समान गौरवर्ण हो। उसमें स्वस्तिकका चिह्न होना चाहिये। वे अपने हाथमें हल धारण किये हुए हों, उनका नाम महाबली अनन्त (बलरामजी) होगा। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर और नाग—कोई भी उनका अन्त नहीं जानते; इसलिये वे भगवान् अनन्त कहलाते हैं। तीसरी प्रतिमा भगवान् वासुदेवकी बहिन सुभद्रादेवीकी होगी। उनके शरीरका रंग सुवर्णके समान गौर एवं सुन्दर शोभासे युक्त होना चाहिये। उनमें समस्त शुभ लक्षणोंका समावेश होना आवश्यक है।'

भगवान्का यह कथन सुनकर उत्तम कर्म करनेवाले विश्वकर्माने तत्काल उत्तम लक्षणोंसे युक्त प्रतिमाएँ तैयार कर दीं। पहले उन्होंने बलभद्रजीकी मूर्ति बनायी। उनका वर्ण शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति श्वेत था। नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा थी। उनका शरीर विशाल और मस्तक फणाकार

होनेसे विकट जान पड़ता था। वे नील वस्त्र धारण किये बलके अभिमानसे उद्धत प्रतीत होते थे। उन्होंने एक कुण्डल धारण कर रक्खा था। उनके हाथोंमें गदा और मूसल शोभा पाते थे। उनका स्वरूप दिव्य था। द्वितीय विग्रह साक्षात् भगवान् वासुदेवका था। उनके नेत्र कमलके समान प्रफुल्लित थे। शरीरकी कान्ति नील मेघके समान श्याम थी। उनकी श्याम आभा तीसीके फूलकी-सी प्रतीत होती थी। बड़े-बड़े नेत्र कमल-पत्रकी उपमा धारण करते थे। शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न तथा हाथमें चक्र था। इस प्रकार वे सर्वपापहारी श्रीहरि बड़े दिव्य दिखायी देते थे। तीसरी प्रतिमा सुभद्राकी थी, जिनके देहकी दिव्य कान्ति सोनेकी-सी दमक रही थी। नेत्र कमल-पत्रके समान विशाल थे। उनका अङ्ग विचित्र वस्त्रसे आच्छादित था। वे हार और केयूर आदि विचित्र आभूषणोंसे सुशोभित थीं। गलेमें रत्नमय हार लटक रहा था। इस प्रकार विश्वकर्माने उनकी बड़ी रमणीय प्रतिमा बनायी। राजा इन्द्रद्युम्नने यह बड़ी ही अद्भुत बात देखी। सब प्रतिमाएँ एक ही क्षणमें बन गयीं। सभी दो दिव्य वस्त्रोंसे आच्छादित थीं। सबका भाँति-भाँतिके रत्नोंसे शृङ्गार किया गया था और सभी अत्यन्त मनोहर एवं समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। उन्हें देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्यमग्न होकर बोले—'आप दोनों ब्राह्मणके रूपमें साक्षात् देवता तो नहीं पधारे हैं? आप दोनोंके कर्म अद्भुत हैं। आपके व्यवहार देवताओंके-से हैं। निश्चय ही आप मनुष्य नहीं जान पड़ते। आप देवता हैं या मनुष्य? यक्ष हैं अथवा विद्याधर! आप ब्रह्मा और विष्णु तो नहीं हैं? दोनों अश्विनीकुमार तो नहीं हैं? आप मायामयरूपसे स्थित हैं। अतः आपके यथार्थ स्वरूपको मैं नहीं जानता। अब आप ही दोनोंकी शरणमें आया हूँ। मेरे सामने अपने स्वरूपको प्रकाशित कीजिये।'

श्रीभगवान् बोले—मैं देवता, यक्ष, दैत्य, देवराज इन्द्र, ब्रह्मा अथवा रुद्र नहीं हूँ। मुझे पुरुषोत्तम समझो। मैं समस्त लोकोंकी पीड़ा दूर करनेवाला अनन्त बल-पौरुषसे सम्पन्न और सम्पूर्ण भूतोंका आराध्य हूँ। मेरा कभी अन्त नहीं होता। जिसका सब शास्त्रोंमें उल्लेख किया जाता है, वेदान्त-ग्रन्थोंमें वर्णन मिलता है, जिसे योगीजन ज्ञानगम्य एवं वासुदेव कहते हैं, वह परमात्मा मैं ही हूँ। स्वयं मैं ही ब्रह्मा, मैं ही विष्णु, मैं ही शिव, मैं ही देवराज इन्द्र तथा मैं ही जगत्का नियन्त्रण करनेवाला यम हूँ। पृथ्वी आदि पाँच भूत, त्रिविध अग्नि, जलाधिप वरुण, धरती और पर्वत भी मैं ही हूँ। संसारमें जो कुछ भी वाणीसे कहा जानेवाला स्थावर-जङ्गम भूत है, वह मेरा ही स्वरूप है। यह चराचर विश्व मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। नृपश्रेष्ठ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। सुव्रत! मुझसे वर माँगो। तुम्हारे हृदयमें जो अभीष्ट वस्तु हो, वह तुम्हें दूँगा। जो पुण्यवान् नहीं हैं, उनको स्वप्नमें भी मेरा दर्शन नहीं होता। तुम्हारी तो मुझमें दृढ़ भक्ति है, इसलिये तुमने मेरा प्रत्यक्ष दर्शन किया है।

भगवान् वासुदेवका यह वचन सुनकर राजाके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे इस प्रकार स्तोत्र-गान करने लगे—'लक्ष्मीकान्त! आपको नमस्कार है। श्रीपते! आपके दिव्य विग्रहपर पीत वस्त्र शोभा पाता है। आप लक्ष्मी प्रदान करनेवाले और लक्ष्मीके स्वामी हैं। श्रीनिवास! आप लक्ष्मीके धाम हैं, आपको नमस्कार है। आप आदिपुरुष, ईशान, सबके ईश्वर, सब ओर मुखवाले, निष्कल एवं सनातन परम देव हैं; आपको मेरा प्रणाम है। आप शब्द और गुणोंसे अतीत, भाव और अभावसे रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, सर्वज्ञ तथा सबके रक्षक हैं। आपका स्वरूप वर्षाकालके मेघके समान श्याम है। आप गौ तथा ब्राह्मणोंके हितमें संलग्न रहते हैं। सबकी रक्षा करते हैं। सर्वत्र व्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं। आप शङ्ख, चक्र, गदा और मूसल धारण करनेवाले देवता हैं। आपके श्रीअङ्गोंकी सुषमा नील कमल-दलके समान श्याम है। आप क्षीरसागरके भीतर शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले हैं। इन्द्रियोंके नियन्ता, सर्वपापहारी श्रीहरि हैं। आपको नमस्कार करता हूँ। आप देवदेवेश्वर, वरदाता, व्यापक, सर्वलोकेश्वर, मोक्षके साधक तथा अविनाशी भगवान् विष्णु हैं; आपको पुनः मेरा प्रणाम है।'

इस प्रकार भगवान्का स्तवन करके राजाने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और धरतीपर मस्तक टेककर कहा—'नाथ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यह उत्तम वर माँगता हूँ—देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महानाग, सिद्ध, विद्याधर, साध्य, किंनर, गुह्यक, महाभाग ऋषि, नाना शास्त्रोंके प्रवीण विद्वान्, संन्यासी, योगी, वेदतत्त्वका विचार करनेवाले तथा अन्यान्य मोक्षमार्गके ज्ञाता मनीषी पुरुष जिस निर्गुण, निर्मल एवं शान्त परम पदका ध्यान करते हैं, उस परम दुर्लभ पदको मैं आपके प्रसादसे प्राप्त करना चाहता हूँ।'

श्रीभगवान् बोले—राजन्! तुम्हारा कल्याण हो, सब कुछ तुम्हारी इच्छाके अनुसार होगा। मेरे प्रसादसे तुम्हें अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति होगी। नृपश्रेष्ठ! तुम दस हजार नौ सौ वर्षोंतक अपने अखण्ड साम्राज्यका उपभोग करो। इसके बाद उस दिव्य पदको प्राप्त होओगे, जो देवता और असुरोंके लिये भी दुर्लभ है, जिसे पाकर सब मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। जो शान्त, गूढ़, अव्यक्त, अव्यय, परसे भी पर, सूक्ष्म, निर्लेप, निष्कल, ध्रुव, चिन्ता और शोकसे मुक्त तथा कार्य और कारणसे वर्जित ज्ञेय नामक परम पद है, उसका तुम्हें साक्षात्कार कराऊँगा। उस परमानन्दमय पदको पाकर तुम परम पद—मोक्षको प्राप्त हो जाओगे। राजेन्द्र! इस पृथ्वीपर जबतक बादल पानी बरसाते रहेंगे, जबतक आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और तारे दीखते रहेंगे, जबतक सात समुद्र तथा मेरु आदि पर्वत मौजूद रहेंगे तथा जबतक द्युलोकमें देवताओंकी सत्ता बनी रहेगी, तबतक इस भूतलपर सर्वत्र तुम्हारी अक्षय कीर्ति छायी रहेगी। तुम्हारे यज्ञाङ्गसे प्रकट होनेवाला तालाब इन्द्रद्युम्न-सरोवरके नामसे प्रसिद्ध तीर्थ होगा, जिसमें एक बार स्नान करके भी मनुष्य इन्द्रलोक प्राप्त कर सकते हैं। जो इस सरोवरके सुन्दर तटपर पिण्डदान करेगा, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके इन्द्रलोकको जायगा और वहाँ विमानपर बैठकर अप्सराओंसे पूजित हो गन्धर्वोंके गीत सुनता हुआ चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त निवास करेगा। सरोवरके दक्षिण भागमें नैर्ऋत्य कोणकी ओर जो बरगदका वृक्ष खड़ा है, उसके समीप केवड़ेके वनसे आच्छादित एक मण्डप है, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है। आषाढ़के शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको महानक्षत्रमें हमारी इन प्रतिमाओंको ले आकर लोग सात दिनोंतक मण्डपमें स्थापित रक्खेंगे। उस समय बड़ा उत्सव होगा। सोनेके दण्ड लगे हुए चँवर तथा रत्नभूषित व्यजनोंद्वारा सब लोग हमें हवा करेंगे। इस प्रकार मङ्गल-पाठपूर्वक हमारी स्थापना होगी। ब्रह्मचारी, संन्यासी, स्नातक, वानप्रस्थ, गृहस्थ, सिद्ध तथा अन्य ब्राह्मण नाना प्रकारके पदोंवाले स्तोत्रों तथा ऋक्, यजु एवं सामवेदकी ध्वनिसे बलराम और श्रीकृष्णकी स्तुति करेंगे। उस समय जो मनुष्य भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन, दर्शन अथवा नमन करेगा, वह श्रीहरिके शोभामय धाममें विराजेगा।

इस प्रकार राजाको वरदान दे विश्वकर्मासहित भगवान् विष्णु वहाँसे अन्तर्धान हो गये। राजाके हर्षकी सीमा न रही। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। उन्होंने भगवान्‌के दर्शनसे अपनेको कृतकृत्य माना। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, बलराम और वरदायिनी सुभद्राको मणिकाञ्चनजटित विमानाकार रथोंमें बिठाकर वे बुद्धिमान् नरेश अमात्य और मन्त्रियों-सहित मङ्गलपाठ तथा बाजे-गाजेके साथ ले आये और उन्हें परम मनोहर पवित्र स्थानमें पधराया। फिर शुभ तिथि, शुभ समय, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणोंके द्वारा उनकी प्रतिष्ठा करायी। उत्तम प्रासादमें वेदोक्त विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करके उन सब विग्रहोंको स्थापित किया; फिर भाँति-



भाँतिके सुगन्धित पुष्पोंसे विधिवत् पूजा करके सुवर्ण, मणि, मोती और नाना प्रकारके सुन्दर वस्त्र अर्पण किये। विविध प्रकारके दिव्य रत्न, आसन, ग्राम, नगर, राज्य तथा पुर आदि भी दान किये। इस तरह अनेक प्रकारका दान करके राजाने समुचित रीतिसे राज्य किया और भाँति-भाँतिके यज्ञ करके अनेक बार दान दिये। फिर कृतकृत्य होकर राजाने समस्त परिग्रहोंका त्याग कर दिया और अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान—भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लिया।

मुनियोंने पूछा—सुरश्रेष्ठ! किस समय पुरुषोत्तम-तीर्थकी यात्रा करनी उचित है और प्रभो! किस विधिसे पञ्चतीर्थोंका सेवन करना चाहिये। स्नान-दानरूप एक-एक तीर्थका और देव-दर्शनका जो पृथक्-पृथक् फल हो, वह सब बताइये।

ब्रह्माजी बोले—जो कुरुक्षेत्रमें अपनी इन्द्रियों और क्रोधको जीतकर बिना खाये-पीये सत्तर हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़ा होकर तपस्या करता है तथा जो ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह पहलेकी अपेक्षा अधिक फलका भागी होता है। अतः मुनिवरो! स्वर्गलोककी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण आदिको चाहिये कि वे ज्येष्ठ मासमें प्रयत्न करके इन्द्रिय-संयमपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करें। श्रेष्ठ मनुष्यको उचित है कि ज्येष्ठ मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको विधिपूर्वक पञ्चतीर्थोंका सेवन करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करे। जो ज्येष्ठकी द्वादशीको अविनाशी देवता भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे विष्णुलोकमें पहुँचकर कभी वहाँसे नीचे नहीं गिरते। अतः ज्येष्ठमें प्रयत्नपूर्वक वहाँकी यात्रा करनी चाहिये और वहाँ पञ्चतीर्थ-सेवनपूर्वक पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। जो अत्यन्त दूर होनेपर भी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमका कीर्तन करता है, वह शुद्धचित्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। जो श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त हो श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यात्रा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो दूरसे भगवान् पुरुषोत्तमके प्रासाद-शिखरपर स्थित नीलचक्रका दर्शन करके उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है, वह मनुष्य सहसा पापसे मुक्त हो जाता है।

मार्कण्डेय मुनिको प्रलयकालमें बालमुकुन्दका दर्शन और उनका वरदान प्राप्त होना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिवरो! कल्पके अन्तमें जब महासंहार आरम्भ हुआ, चन्द्रमा, सूर्य और वायुका नाश हो गया, स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी नष्ट होने लगे, उस समयकी बात बतलाता हूँ। पहले प्रलयकालीन प्रचण्ड सूर्यका उदय होता है, फिर मेघोंकी घोर गर्जना होने लगती है। बिजली गिरती है, जिससे वृक्ष और पर्वत टूट-फूट जाते हैं। सारे जगत्का संहार हो जाता है। उल्कापात होता रहता है, सरोवरों और नदियोंका सारा जल सूख जाता है। फिर वायुका सहारा पाकर संवर्तक नामक अग्नि समस्त विश्वमें फैल जाती है। ऊपरसे बारह सूर्य तपने लगते हैं। वह आग पृथ्वीको भेदकर रसातलमें भी पहुँच जाती है और देवता, दानव तथा यक्षोंको अत्यन्त भय देने लगती है। पृथ्वीपर जो कुछ रहता है, वह सब जलाकर नागलोकको भी दग्ध करती है और फिर क्रमशः नीचेके समस्त लोकोंको तत्काल नष्ट कर देती है। बीस लाख योजनतक फैली हुई वायु और संवर्तक अग्नि देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस—सबको भस्म कर डालती है। ऐसे घोर महाप्रलयके समय परम धर्मात्मा मार्कण्डेय मुनि अकेले ध्यानस्थ होकर बैठे थे। प्रलयाग्निकी लपट उनके पास भी पहुँची। उनके कण्ठ, तालु और ओठ सूख गये। उस महाभयानक अग्निको देखकर वे भयसे विह्वल हो उठे और कोई रक्षक न पा सकनेके कारण इधर-उधर भागने लगे। उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिली। वे सोचने लगे—क्या करूँ, समझमें नहीं



आता; किसकी शरणमें जाऊँ? किस प्रकार सनातनदेव पुरुषेशका दर्शन करूँ? इस प्रकार एकाग्रभावसे चिन्तन करते-करते वे महाप्रलयके कारणभूत सनातन दिव्य पद पुरुषेश नामक वटराजके पास पहुँच गये। उस दिव्य वटको सामने देख मुनि बड़ी उतावलीके साथ उसके निकट गये और उसकी जड़पर जा बैठे। वहाँ न तो कालाग्निका भय था, न अँगारोंकी वर्षा का। न वहाँ संवर्तक अग्नि आ सकती थी और न वज्रपात आदिका ही डर था।

तदनन्तर विद्युन्मालाओंसे विभूषित गजराजोंके समान कान्तिवाले महामेघ आकाशमें घुमड़ आये। उन्होंने समूचे आकाशको ढक लिया और इतनी वृष्टि की कि पर्वत, वन और आकरोंसहित समस्त पृथ्वी जलराशिमें डूब गयी। सम्पूर्ण दिशाएँ पानीसे भर गयीं। मूसलाधार वृष्टि करके वसुंधराको डुबोनेवाले मेघोंने उस भयंकर संवर्तकाग्निको बुझा दिया। इस प्रकार बारह वर्षोंतक भारी वृष्टि होती रही। समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी, पर्वत गल-गलकर बह गये और पृथ्वी पानीमें डूब गयी। तत्पश्चात् प्रचण्ड आँधी उठी। उस प्रबल प्रभञ्जनके वेगसे सारे मेघ छिन्न-भिन्न हो गये। उसके बाद भगवान् विष्णु उस भयंकर वायुको पीकर एकार्णवमें शयन करने लगे। उस समय समस्त स्थावर-जङ्गमका अभाव हो गया था। देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष और राक्षस भी नष्ट हो गये थे। उस समय मार्कण्डेय मुनिने विश्रामके अनन्तर श्रीपुरुषोत्तमका ध्यान करनेके पश्चात् जब आँखें खोलीं, तब पृथ्वीको जलमें निमग्न पाया। वह वटवृक्ष, पृथ्वी, दिशा आदि, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, देवता, असुर और नाग आदि कोई भी दिखायी नहीं देते थे। मुनिवर मार्कण्डेय भी स्वयं जलमें गोते खाने लगे। तब उन्होंने तैरना आरम्भ किया। वे आर्तभावसे इधर-उधर तैरते हुए भटकने लगे। उन्हें कोई अपना रक्षक नहीं मिलता था। उनके ध्यान करनेसे भगवान् पुरुषोत्तमको प्रसन्नता हुई थी। अतः मुनिको भयसे व्याकुल देख वे कृपापूर्वक बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले बेटा मार्कण्डेय! तुम अभी बालक हो। थक गये होगे। आओ, आओ। शीघ्र मेरे पास चले आओ। अब तुम्हें डरनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरे सामने आ गये हो।'

भगवान्‌की यह बात सुनकर मुनि चिन्तामें निमग्न हो गये। सोचने लगे, क्या मैंने स्वप्न देखा है अथवा मुझपर यह मोह छा गया है? यह विचार आते ही उनके मनमें दुःखनाशक बुद्धिका उदय हुआ। उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी शरणमें जाऊँगा। इस निश्चयके अनुसार मार्कण्डेय मुनि मन-ही-मन भगवान्‌का स्मरण करते हुए उनकी शरणमें गये। तब उन्होंने जलके ऊपर पुनः उस विशाल वट-वृक्षको देखा। उसके ऊपर सुन्दर दिव्य पलंग बिछा हुआ था, जिसपर बालरूपधारी भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान थे। वे कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी शरीरसे देदीप्यमान हो रहे थे। चार भुजा, सुन्दर अङ्ग, पद्मपत्रके समान विशाल नेत्र, श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित वक्षःस्थल और हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा थे। हृदय वनमालासे आवृत था। वे दिव्य कुण्डल धारण किये हुए थे। गलेमें बहुत-से हार शोभा पाते थे। दिव्य रत्नोंसे उनका शृङ्गार किया गया था। भगवान्‌को इस रूपमें देखकर मार्कण्डेय मुनिके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। वे भगवान्‌को प्रणाम करके बोले—



अहो! इस भयानक एकार्णवमें यह बालक कैसे निर्भय रहता है। इस प्रकार विचार करते हुए वे इधर-उधर बह रहे थे। उनकी चेतना लुप्त होती जा रही थी। वे अपने उद्धारके लिये व्याकुल हो गये। उस समय उन्हें बड़ा खेद हुआ। उधर वटवृक्षपर सोया हुआ बालक बालसूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। वह अपनी महिमामें ही स्थित था। मार्कण्डेय मुनि उस सम्पूर्ण तेजोमय बालककी ओर देखनेमें भी असमर्थ हो गये। मुनिको अपनी ओर आते देख बालकने हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा—'बेटा! जानता हूँ, तुम बहुत थक गये हो और अपनी रक्षाके लिये मेरे पास आये हो। अब शीघ्र ही मेरे शरीरमें प्रवेश कर जाओ। यहाँ तुम्हें पूर्ण विश्राम मिलेगा।' बालककी बात सुनकर मार्कण्डेय मुनि कुछ बोल न सके। वे भगवान्‌की मायासे मोहित हो विवश होकर बालकके खुले हुए मुँहमें प्रवेश कर गये। उसके

उदरमें प्रवेश करनेपर उन्होंने वहाँ अनेक जनपदोंसे घिरी हुई समूची पृथ्वी देखी । खारे पानी, ईखके रस, घी, दही, दूध और मीठे जलके समुद्रोंको देखा। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर नामक द्वीपोंका अवलोकन किया। भारत आदि सम्पूर्ण वर्ष और पर्वतोंका निरीक्षण किया। सब रत्नोंसे सम्पन्न सुवर्णमय मेरुगिरिको भी देखा, जो अनेक प्रकारके रत्नमय शिखरोंसे विभूषित, अनेक कन्दराओंसे युक्त, नाना मुनिजनोंसे व्याप्त, भाँति-भाँतिके वृक्षों और वनोंसे परिपूर्ण, अनेक जीव-जन्तुओंसे सेवित, अनेकानेक आश्चर्योंसे युक्त, बाघ, सिंह, सूअर, चँवरी गाय, भैंसे, हाथी, हरिन, वानर तथा अन्य जीव-जन्तुओंसे सुशोभित एवं अत्यन्त मनोहर था। इन्द्र आदि अनेक देवता, सिद्ध, चारण, नाग, मुनि, यक्ष, अप्सरा तथा अन्य स्वर्गवासियोंसे उस पर्वतकी पूर्ण शोभा हो रही थी। इस प्रकार शोभामय सुमेरु पर्वतको देखते हुए वे बालकके उदरमें भ्रमण करने लगे। उन्होंने क्रमशः हिमवान्, हेमकूट, निषध, गन्धमादन, श्वेत, दुर्धर, नील, कैलास, मन्दरगिरि, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, अर्बुद, सह्य, शुक्तिमान् तथा मैनाक आदि बहुत-से पर्वतोंको देखा। उन्होंने इस लोकमें जितने भी चराचर भूत देखे थे, वे सब उन्हें भगवान्‌की कुक्षिमें दृष्टिगोचर हुए। अथवा बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता, ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत्—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, अतल, वितल, सुतल, पाताल, रसातल और महातलरूप ब्रह्माण्डको उन्होंने बालरूपधारी भगवान्‌के उदरमें देखा। उस समय मार्कण्डेयजीकी सर्वत्र बेरोक-टोक गति थी। भगवान्‌की कृपासे उनकी स्मरण-शक्तिका लोप नहीं होता था। वे भगवान्‌के उदरमें सम्पूर्ण जगत्‌का अवलोकन करते हुए घूमते फिरे, किंतु उनके शरीरका कहीं अन्त नहीं मिला। तब वे वरदायक देवता श्रीहरिकी शरणमें गये। इसी समय सहसा वे वायुके वेगसे खिंचकर भगवान्‌के खुले हुए मुखसे बाहर निकल आये।

बाहर निकलनेपर उन्हें पुनः मनुष्योंसे शून्य सारी पृथ्वी एकार्णवके जलमें निमग्न दिखायी दी। साथ ही वट-वृक्षकी शाखापर पलंगके ऊपर विराजमान शिशुरूपधारी भगवान्‌का भी दर्शन हुआ, जो सम्पूर्ण जगत्‌को अपने उदरमें लेकर विराजमान थे। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित, नेत्र पद्मपत्रके समान विशाल और श्रीअङ्ग पीताम्बरसे आच्छादित था। उनकी चार भुजाएँ शोभा पा रही थीं। भगवान्‌ने देखा मार्कण्डेय मुनि मुखसे निकलकर जलमें तैरते हुए अचेत-से हो रहे हैं। तब उन्होंने हँसकर कहा—'बेटा! क्या तुमने मेरे उदरमें रहकर विश्राम कर लिया? वहाँ घूमते समय तुमने क्या-क्या आश्चर्य देखा? मुनिश्रेष्ठ! एक तो तुम मेरे भक्त, दूसरे थके-माँदे और तीसरे मेरे शरणागत हो। अतः तुम्हारा उपकार करनेके लिये मैं तुमसे बातचीत करता हूँ। इधर मेरी ओर देखो तो सही।' भगवान्‌का यह वचन सुनकर मार्कण्डेय मुनिका रोम-रोम हर्षसे खिल उठा। यद्यपि दिव्य रत्नोंसे अलंकृत तेजोमय भगवान्‌की ओर देखना अत्यन्त कठिन था, तो भी उन्होंने उनको देखा। भगवान्‌की कृपासे उन्हें क्षणभरमें नूतन, प्रसन्न एवं निर्मल दृष्टि प्राप्त हो गयी। तब मार्कण्डेयजीने भगवान्‌के देववन्दित चरणोंको, जिनकी अँगुलियाँ और तलवे लाल-लाल थे, मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। हर्षसे युक्त और विस्मित होकर बारंबार उनकी ओर देखा तथा हाथ जोड़कर हर्षगद्गद वाणीमें उन परमात्माका स्तवन आरम्भ किया।

मार्कण्डेयजी बोले—मायासे बाल-रूप धारण करनेवाले देवदेव जगन्नाथ! कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले सुरश्रेष्ठ पुरुषोत्तम! मैं दुःखित होकर आपकी शरणमें आया हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। संवर्तक नामक अग्निने मुझे संतप्त कर रक्खा है। मैं अँगारोंकी वर्षासे भयभीत हो रहा हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। देवेश! पुरुषोत्तम! मैंने आपके उदरमें चराचर जगत्‌का अवलोकन किया है। इससे मुझे बड़ा विस्मय हुआ है। मैं विषादग्रस्त तो हूँ ही। मेरी रक्षा कीजिये। पुरुषोत्तम! इस अवलम्बशून्य संसारमें आपके सिवा दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं है। मुझपर प्रसन्न होइये। सुरश्रेष्ठ! प्रसन्न होइये। विबुधप्रिय! प्रसन्न होइये। देवताओंके नाथ! प्रसन्न होइये। देवताओंके निवासस्थान! प्रसन्न होइये। जगत्‌के कारणोंके भी कारण सर्वलोकेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये। सबकी सृष्टि करनेवाले देव! प्रसन्न होइये। धरणीधर! मुझपर प्रसन्न होइये। जलमें निवास करनेवाले परमेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये। मधुसूदन! मुझपर प्रसन्न होइये। कमलाकान्त! प्रसन्न होइये। त्रिदशेश्वर! प्रसन्न होइये। कंस और केशीका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण! प्रसन्न होइये। अरिष्टासुरका नाश करनेवाले गोविन्द! प्रसन्न होइये। दैत्यनाशक श्रीकृष्ण! प्रसन्न होइये। दानवोंका अन्त करनेवाले वासुदेव! प्रसन्न होइये। मथुरावासी हरे! प्रसन्न होइये। यदुनन्दन! प्रसन्न होइये। इन्द्रके

छोटे भाई उपेन्द्र ! प्रसन्न होइये । वरदायक अविनाशी देव ! प्रसन्न होइये । भगवन् ! आप ही पृथ्वी, आप ही जल, आप ही अग्नि और आप ही वायु हैं । जगत्पते ! आकाश, मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति तथा सत्त्वादि गुण भी आप ही हैं । आप सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक पुरुष हैं । पुरुषसे भी उत्तम पुरुषोत्तम हैं । प्रभो ! आप ही सम्पूर्ण इन्द्रियाँ और उनके शब्द आदि विषय हैं । आप ही दिक्पाल, धर्म, वेद, दक्षिणासहित यज्ञ, इन्द्र, शिव, देवता, हविष्य और अग्नि हैं । वसु, रुद्र, आदित्य और ग्रह भी आपके ही स्वरूप हैं । और जितनी भी जातियाँ हैं, जो कुछ भी जीव-नामधारी पदार्थ है, वह सब आप ही हैं । अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक जो कुछ भी भूत, भविष्य और वर्तमान चराचर जगत् है, वह आप ही हैं । देव ! आपका जो परम स्वरूप है, वह कूटस्थ, अचल एवं ध्रुव है । उसे ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जान पाते । फिर हम-जैसे छोटी बुद्धिवाले मनुष्य कैसे उसका तत्त्व समझ सकते हैं । भगवन् ! आप शुद्धस्वभाव, नित्य, प्रकृतिसे परे, अव्यक्त, शाश्वत, अनन्त एवं सर्वव्यापी महेश्वर हैं । आप ही आकाशस्वरूप, परम शान्त, अजन्मा, व्यापक एवं अविनाशी हैं । इस प्रकार आपके निर्गुण एवं निरञ्जन (मायारहित शुद्ध) रूपकी स्तुति कौन कर सकता है । देव ! अविनाशी देवदेवेश्वर ! मैंने जो विकल एवं अल्पज्ञान होनेके कारण आपके स्तवनकी धृष्टता की है, उसे आप क्षमा करनेकी कृपा करें ।

मार्कण्डेयके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—'मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहो । ब्रह्मर्षे ! तुम मुझसे जो कुछ चाहोगे, वह सब तुम्हें दूँगा ।'

मार्कण्डेयजी बोले—देव ! मैं आपको और आपकी मायाको जानना चाहता हूँ । देवेश ! आपकी कृपासे मेरी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं हुई है । पुण्डरीकाक्ष ! आप अव्यय हैं, मैं आपके तत्त्वको समझना चाहता हूँ । इस सम्पूर्ण जगत्को पीकर आप साक्षात् परमेश्वर यहाँ बालरूपसे क्यों रहते हैं ? ये सब बातें बतानेकी कृपा करें ।

मुनिके इस प्रकार पूछनेपर परम कान्तिमान् देवाधिदेव श्रीहरिने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—"ब्रह्मन् ! देवता भी मुझे ठीक-ठीक नहीं जानते; किंतु तुमपर प्रेम होनेके कारण मैं अपना रहस्य बतलाऊँगा कि कैसे इस जगत्की सृष्टि करता हूँ । ब्रह्मर्षे ! तुम पितृभक्त हो और मेरी शरणमें आये हो; इसीलिये तुम्हें मेरे स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है । तुम्हारा ब्रह्मचर्य महान् है । पूर्वकालमें मैंने जलको 'नार' नाम दिया था, उस 'नार' में मेरा सदा अयन (निवास) रहता है; इसलिये मैं 'नारायण' कहलाता हूँ । द्विजोत्तम ! मैं नारायण ही सबकी उत्पत्तिका कारण, सनातन, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतोंका स्रष्टा और संहर्ता हूँ । मैं ही विष्णु, मैं ही ब्रह्मा और मैं ही देवराज इन्द्र हूँ । यक्षराज कुबेर और प्रेतराज यम भी मैं ही हूँ । मैं ही शिव, चन्द्रमा, प्रजापति कश्यप, धाता, विधाता और यज्ञ हूँ । अग्नि मेरा मुख, पृथ्वी चरण, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र, द्युलोक मस्तक, आकाश और दिशाएँ कान तथा जल स्वेद है । दिशाओंसहित आकाश मेरा शरीर और वायु मेरे मनमें स्थित है । मैंने पर्याप्त दक्षिणावाले अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है । पृथ्वीपर वेदके विद्वान् देवयज्ञमें स्थित मुझ विष्णुका ही यजन करते हैं । स्वर्गकी इच्छा रखनेवाले मुख्य-मुख्य क्षत्रिय और वैश्य भी यज्ञके द्वारा मेरी आराधना करते हैं । मैं ही शेषनाग होकर चारों ओरके समुद्रों और मेरुपर्वतसहित समस्त पृथ्वीको अकेला ही धारण करता हूँ । पूर्वकालमें वाराहरूप धारण करके मैंने ही जलमें डूबी हुई इस पृथ्वीका अपनी शक्तिसे उद्धार किया था । द्विजश्रेष्ठ ! मैं ही बडवानल होकर समुद्रका जल पीता और मेघरूपसे उसकी वर्षा करता हूँ । ब्राह्मण मेरा मुख, क्षत्रिय मेरी भुजाएँ, वैश्य जाँघ और शूद्र चरण हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद मुझसे ही प्रकट होते और फिर मुझमें ही प्रवेश कर जाते हैं । ज्ञानपरायण संन्यासी, संयमशील जिज्ञासु तथा काम, क्रोध एवं द्वेषसे रहित, अनासक्त, निष्पाप, सत्त्वस्थ, अहंकारशून्य तथा अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता ब्राह्मण सदा मेरा ही चिन्तन करते हुए उपासना करते हैं । मैं ही संवर्तक ज्योति, मैं ही संवर्तक अग्नि, मैं ही संवर्तक सूर्य और मैं ही संवर्तक वायु हूँ । आकाशमें जो ये तारे दिखायी देते हैं, इन सबको मेरे ही रोम-कूप समझो । रत्नोंसे भरे हुए समुद्र और चारों दिशाओंको मेरे ही स्वरूप जानो । मनुष्य जिस कर्मका अनुष्ठान करके कल्याणके भागी होते हैं, वह भी मेरा ही स्वरूप है । सत्य, दान, उग्र तपस्या और अहिंसा—ये मेरे बनाये हुए विधानके अनुसार ही विहित माने जाते हैं । और मेरे ही स्वरूपमें इनकी स्थिति है । जिनकी ज्ञानशक्ति मेरे द्वारा अभिभूत हो जाती है, वे इच्छानुसार चेष्टा नहीं कर पाते । वेदोंका सम्यक् स्वाध्याय करके भाँति-भाँतिके यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले शान्तचित्त

एवं क्रोधपर विजय पानेवाले ब्राह्मण मुझे प्राप्त करते हैं। पापाचारी, लोभी, कृपण, अनार्य तथा मनको वशमें न रखनेवाले मनुष्योंको मैं कभी नहीं मिल सकता। जिनके अन्तःकरण शुद्ध हैं, उन्हें प्राप्त होनेवाला महान् फल मुझे ही समझो। कुयोगसेवी मूढ़ मनुष्योंके लिये मैं अत्यन्त दुर्लभ हूँ। संतशिरोमणे! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब मैं अपनेको प्रकट करता हूँ।* हिंसापरायण दैत्य तथा भयंकर राक्षस, जो बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी अवध्य हैं, जब इस संसारमें जन्म लेते हैं, तब मैं पुण्यात्मा पुरुषोंके घरोंमें अवतार लेता हूँ। मनुष्य-देहमें प्रवेश करके समस्त बाधाओंका शमन करता हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग तथा राक्षसों और स्थावर भूतोंकी अपनी मायासे सृष्टि करके मैं पुनः उनका संहार करता हूँ। फिर कर्मकालमें उनके योग्य शरीरका विचार करके सृष्टि करता हूँ। मेरा स्वरूपभूत धर्म सत्ययुगमें श्वेत रहता है, त्रेतामें श्याम होता है, द्वापर आनेपर लाल हो जाता है और कलियुगमें काला पड़ जाता है। प्रलयकाल आनेपर मैं ही अत्यन्त दारुण कालरूप हो अकेला ही समस्त त्रिलोकीका नाश करता हूँ। उत्पत्ति, पालन और संहार—ये तीन मेरे ही धर्म हैं। मैं सम्पूर्ण विश्वका आत्मा और सब लोकोंको सुख पहुँचानेवाला हूँ। मेरा किसीसे पार्थक्य नहीं है। मैं सर्वव्यापी, अनन्त और इन्द्रियोंका नियन्ता हूँ। मेरे डग बहुत बड़े हैं। मैं अकेला ही काल-चक्रका संचालन करता हूँ। जो ब्रह्मका रूप है, वह मेरा ही है। वही सम्पूर्ण भूतोंको शान्ति देनेवाला है। उसका उद्यम सम्पूर्ण भूतोंके हितके लिये ही होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मेरा आत्मा सम्पूर्ण भूतोंमें संनिहित है। फिर भी मुझे कोई नहीं जानता। भक्तगण सब लोकोंमें सर्वथा मेरा पूजन करते हैं। ब्रह्मन्! मुझमें तुमने जो कुछ भी क्लेशका अनुभव किया है, वह सब तुम्हारे सुखके उदय और कल्याणकी प्राप्तिका कारण है। तुमने लोकमें स्थावर-जङ्गमरूप जो कुछ भी देखा है, वह सब सम्पूर्ण भूतोंको उत्पन्न करनेवाला मेरा आत्मा ही है, जिसे मैंने उस रूपमें प्रकट किया है। मैं ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाला नारायण हूँ। जबतक एक हजार महायुगोंका समय नहीं बीत जाता, तबतक सम्पूर्ण विश्वको मोहित करके यहाँ जलमें शयन करता हूँ। मुनिश्रेष्ठ! जबतक ब्रह्मा सोकर उठ नहीं जाते, तबतक मैं हर समय यहाँ शिशुरूपमें निवास करता हूँ। विप्रेन्द्र! मुझ ब्रह्मरूपी परमात्माने अनेक बार संतुष्ट होकर तुम्हें वरदान दिया है। समस्त चराचर जगत्का नाश होकर सब कुछ एकार्णवमें मग्न हो जानेपर तुम मेरी ही आज्ञासे यहाँ आ निकले हो। फिर जब मेरे शरीरके भीतर प्रविष्ट हुए हो, तब मैंने तुम्हें सम्पूर्ण जगत्का अवलोकन कराया है। वहाँ सम्पूर्ण लोकोंको देखकर तुम विस्मयमें पड़ गये और मुझे समझ नहीं पाये। तब तुरंत ही मैंने तुम्हें अपने मुखसे बाहर निकाल दिया। और जो देवता और असुरोंके लिये दुर्ज्ञेय है, उस अपने आत्मतत्त्वका तुमसे वर्णन किया है। ब्रह्मर्षे! जबतक महातपस्वी ब्रह्माजी जागते नहीं, तबतक तुम यहीं निर्भय होकर सुखपूर्वक विचरो। उनके जागनेके बाद मैं अकेला ही समस्त भूतों और उनके शरीरोंकी सृष्टि करूँगा।''

इतना कहकर भगवान्‌ने मुनिवर मार्कण्डेयजीसे पूछा—'मुने! तुमने जिस अभिप्रायसे मेरी स्तुति की है, उसे कहो। मैं तुम्हें शीघ्र ही उत्तम वरदान दूँगा।' भगवान्‌का यह कल्याणमय वचन सुनकर मार्कण्डेय मुनि सहसा उनके चरणोंमें गिर पड़े और इस प्रकार बोले—'देवेश! मैंने आपके उत्कृष्ट स्वरूपका दर्शन किया, इससे मेरा सारा मोह दूर हो गया। नाथ! अब मैं आपकी कृपासे यह चाहता हूँ कि सम्पूर्ण लोकोंके हित, भिन्न-भिन्न भावनाओंकी पूर्ति तथा शैव और वैष्णवोंके विवाद-निवारणके लिये मैं इस परम उत्तम पवित्र पुरुषोत्तम-तीर्थमें भगवान् शिवका बहुत बड़ा मन्दिर बनवाऊँ और उसमें शंकरजीकी प्रतिष्ठा करूँ। इससे संसारके लोग यह जान लेंगे कि विष्णु और शिव एकरूप ही हैं।' यह सुनकर भगवान् जगन्नाथने पुनः महामुनि मार्कण्डेयजीसे कहा—'ब्रह्मन्! तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र ही एक मन्दिर बनवाओ और उसमें नाना भावोंकी पूर्ति एवं आराधनाके लिये परम कारणभूत भुवनेश्वर लिङ्गकी स्थापना करो। उनके प्रभावसे तुम्हारा भगवान् शिवके लोकमें अक्षय निवास होगा। शिवकी स्थापना करनेपर मेरी ही स्थापना होती है। हम दोनोंमें तनिक भी अन्तर नहीं है। हम एक ही तत्त्व दो रूपोंमें व्यक्त हुए हैं। जो रुद्र हैं, वही विष्णु हैं; जो विष्णु हैं, वही महादेव हैं। वायु और आकाशकी भाँति हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जो अज्ञानसे मोहित है, वह इस बातको नहीं जानता कि जो गरुडध्वज हैं, वही वृषभध्वज हैं। अतः ब्रह्मन्! तुम

* यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
(५६। ३५-३६)

अपने नामसे शिवालय बनवाओ और देवाधिदेव भगवान्से उत्तरकी ओर एक सुन्दर तीर्थ (सरोवर) का निर्माण करो। वह तीर्थ मनुष्यलोकमें मार्कण्डेयह्रदके नामसे विख्यात होगा। उसमें स्नान करनेसे सब पापोंका नाश हो जायगा।'

मार्कण्डेय मुनिसे यों कहकर सर्वव्यापी जनार्दन वहीं अन्तर्धान हो गये।

मार्कण्डेयेश्वर शिव, वटवृक्ष, श्रीकृष्ण, बलभद्र एवं सुभद्राके दर्शन-पूजनका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं पञ्चतीर्थकी विधि बतलाऊँगा तथा स्नान, दान और देव-दर्शनसे जो फल होता है, उसका वर्णन करूँगा। मार्कण्डेयह्रदमें जाकर मनुष्य उत्तराभिमुख हो तीन बार डुबकी लगाये और निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च।
स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम्॥

'भगके नेत्रोंका नाश करनेवाले त्रिपुरशत्रु भगवान् शिव! मैं संसार-सागरमें निमग्न, पापग्रस्त एवं अचेतन हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है। समस्त पापोंको दूर करनेवाले शान्तस्वरूप शिवको नमस्कार है। देवेश्वर! मैं यहाँ स्नान करता हूँ। मेरा सारा पातक नष्ट हो जाय।'

यों कहकर बुद्धिमान् पुरुष नाभिके बराबर जलमें स्नान करनेके पश्चात् देवताओं और ऋषियोंका विधिपूर्वक तर्पण करे। फिर तिल और जल लेकर पितरोंकी भी तृप्ति करे। उसके बाद आचमन करके शिव-मन्दिरमें जाय। उसके भीतर प्रवेश करके तीन बार देवताकी परिक्रमा करे। तदनन्तर 'मार्कण्डेयेश्वराय नमः' इस मूलमन्त्रसे अथवा अघोरमन्त्रसे शंकरजीकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करे और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर उन्हें प्रसन्न करे—

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण।
त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते॥

'तीन नेत्रोंवाले शंकर! आपको नमस्कार है, चन्द्रमाको भूषणरूपमें धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। विकट नेत्रोंवाले शिवजी! आप मेरी रक्षा कीजिये। महादेव! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार मार्कण्डेयह्रदमें स्नान करके भगवान् शंकरका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो शिवके लोकमें जाता है।

वहाँसे कल्पान्तस्थायी वटवृक्षके पास जाकर उसकी तीन परिक्रमा करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रद्वारा बड़ी भक्तिके साथ उस वटकी पूजा करे—

ॐ नमोऽव्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे।
महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते॥
अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चायतनं वट।
न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते॥

'अव्यक्तस्वरूप महाप्रलयकारी एवं महान् रससे युक्त आप वटवृक्षको नमस्कार है। हे वट! आप प्रत्येक कल्पमें अमर हैं। आपपर भगवान् श्रीहरिका निवास है। न्यग्रोध! मेरे पाप हर लीजिये। कल्पवृक्ष! आपको नमस्कार है।'

इसके बाद भक्तिपूर्वक परिक्रमा करके उस कल्पान्त-स्थायी वटको नमस्कार करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य केंचुलसे छूटे हुए सर्पकी भाँति सहसा पापोंसे मुक्त हो जाता है। उस वृक्षकी छायामें पहुँच जानेपर मनुष्य ब्रह्महत्यासे भी मुक्त हो जाता है, फिर अन्य पापोंकी तो बात ही क्या है। भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुए ब्रह्मतेजोमय वटवृक्षरूपी विष्णुको प्रणाम करके मानव राजसूय और अश्वमेध-यज्ञसे भी अधिक फल पाता है और अपने कुलका उद्धार करके विष्णुलोकमें जाता है। भगवान् श्रीकृष्णके सामने खड़े हुए गरुड़को जो नमस्कार करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके वैकुण्ठधाममें जाता है। वटवृक्ष और गरुड़का दर्शन करनेके पश्चात् जो पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्रादेवीका दर्शन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जगन्नाथ श्रीकृष्णके मन्दिरमें प्रवेश करके तीन बार प्रदक्षिणा करे। फिर नाममन्त्रसे बलभद्रजीका भक्तिपूर्वक पूजन करके निम्नाङ्कित रूपसे प्रार्थना करे—

नमस्ते हलधृग्राम नमस्ते मुसलायुध।
नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर।
प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज॥

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः।

'हलधारण करनेवाले राम ! आपको नमस्कार है । मूसलको आयुध रूपमें रखनेवाले ! आपको नमस्कार है । रेवतीरमण ! आपको नमस्कार है । भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है । बलवानोंमें श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है । पृथ्वीको मस्तकपर धारण करनेवाले शेषजी ! आपको नमस्कार है । प्रलम्बशत्रो ! आपको नमस्कार है । श्रीकृष्णके अग्रज! मेरी रक्षा कीजिये ।'

इस प्रकार कैलासशिखरके समान आकार और चन्द्रमासे भी कमनीय मुखवाले, नीलवस्त्रधारी, देवपूजित, अनन्त, अजेय, एक कुण्डलसे विभूषित, फणोंके द्वारा विकट मस्तकवाले, महाबली हलधरको प्रसन्न करे । बलरामजीकी पूजाके पश्चात् विद्वान् पुरुष एकाग्रचित्त हो द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) से भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे । जो द्वादशाक्षर मन्त्रके द्वारा भक्तिपूर्वक सदा भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं । देवता, योगी तथा सोमपान करनेवाले याज्ञिक भी जिस गतिको नहीं पाते, उसीको द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करनेवाले पुरुष प्राप्त कर लेते हैं । अतः उसी मन्त्रसे भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्प आदि सामग्रियोंद्वारा जगद्गुरु श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करे । फिर इस प्रकार प्रार्थना करे—'जगन्नाथ श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो । सब पापोंका नाश करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो । चाणूर और केशीके नाशक ! आपकी जय हो । कंसनाशन ! आपकी जय हो । कमललोचन ! आपकी जय हो । चक्र-गदाधर ! आपकी जय हो । नील मेघके समान श्यामवर्ण ! आपकी जय हो । सबको सुख देनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो । जगत्पूज्य देव ! आपकी जय हो । संसार-संहारक ! आपकी जय हो । लोकपते नाथ ! आपकी जय हो । मनोवाञ्छित फल देनेवाले देवता ! आपकी जय हो । यह भयङ्कर संसार-सागर सर्वथा निःसार है । इसमें दुःखमय फेन भरा हुआ है । यह क्रोधरूपी ग्राहसे पूर्ण है । इसमें विषयरूपी जलराशि भरी हुई है । भाँति-भाँतिके रोग ही इसमें उठती हुई लहरें हैं । मोहरूपी भँवरोंके कारण यह अत्यन्त दुस्तर जान पड़ता है । सुरश्रेष्ठ ! मैं इस घोर संसाररूपी समुद्रमें डूबा हुआ हूँ । पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ।' इस प्रकार प्रार्थना करके जो देवेश्वर, वरदायक, भक्तवत्सल, सर्वपापहारी, समस्त अभिलषित फलोंके दाता, मोटे कंधे और दो भुजाओंवाले, श्यामवर्ण, कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाले, चौड़ी छाती, विशाल भुजा, पीत वस्त्र और सुन्दर मुखवाले, शङ्ख-चक्र-गदाधर, मुकुटाङ्गदभूषित, समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त और वनमालाविभूषित भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन और उन्हें प्रणाम करता है, वह हजारों अश्वमेध-यज्ञोंका और सब तीर्थोंमें स्नान और दान करनेका फल पाता है । सम्पूर्ण वेद, समस्त यज्ञ, सारे दान, व्रत, नियम, उग्र तपस्या और ब्रह्मचर्यके सम्यक् पालनसे जो फल मिलता है, वही भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन और वन्दनसे प्राप्त होता है । शास्त्रोक्त आचारका पालन करनेवाले गृहस्थको, वनवासके नियमोंका पालन करनेसे वानप्रस्थको और शास्त्रोक्त रीतिसे संन्यास-धर्मका पालन करनेपर संन्यासीको जो फल प्राप्त होता है, वही श्रीकृष्णका दर्शन और उन्हें प्रणाम करनेवाला मनुष्य प्राप्त कर लेता है । भगवद्दर्शनके माहात्म्यके सम्बन्धमें अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, भगवान् श्रीकृष्णका भक्तिपूर्वक दर्शन करके मनुष्य दुर्लभ मोक्षतक प्राप्त कर लेता है ।

तत्पश्चात् भक्तोंपर स्नेह रखनेवाली सुभद्रादेवीका भी नाममन्त्रसे पूजन करके उन्हें प्रणाम करे और हाथ जोड़कर निम्नाङ्कित रूपसे प्रार्थना करे—

नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे ।
त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥

'देवि ! तुम सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली और शुभ सौख्य प्रदान करनेवाली हो । तुम्हें बारंबार नमस्कार है । पद्मपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली कात्यायनि ! मेरी रक्षा करो । तुम्हें नमस्कार है ।'

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली, लोकहित-कारिणी, वरदायिनी एवं कल्याणमयी बलभद्रभगिनी सुभद्रा-देवीको प्रसन्न करके मनुष्य इच्छानुसार गतिसे चलनेवाले विमानके द्वारा श्रीविष्णुके वैकुण्ठधाममें जाता है ।

पुरुषोत्तमक्षेत्रमें भगवान् नृसिंह तथा श्वेतमाधवका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राको प्रणाम करके भगवान्‌के मन्दिरसे बाहर निकले । उस समय मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । तत्पश्चात् जगन्नाथजीके मन्दिरको प्रणाम करके एकाग्रचित्त हो उस स्थानपर जाय, जहाँ भगवान् विष्णुकी इन्द्रनीलमयी प्रतिमा बालूके भीतर छिपी है । वहाँ अदृश्यरूपसे स्थित भगवान्‌को प्रणाम करके मनुष्य

श्रीविष्णुके धाममें जाता है । ब्राह्मणो ! जो भगवान् सर्वदेवमय हैं, जिन्होंने आधा शरीर सिंहका बनाकर असुरराज हिरण्यकशिपुका वध किया था, वे भगवान् नृसिंह भी पुरुषोत्तम-तीर्थमें निवास करते हैं । जो भक्तिपूर्वक उनका दर्शन करके प्रणाम करता है, वह समस्त पातकोंसे निश्चय ही मुक्त हो जाता है । जो मानव इस पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहके भक्त होते हैं, उन्हें पाप कभी छू नहीं सकते और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है । अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके भगवान् नृसिंहकी शरण ले; क्योंकि वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल प्रदान करते हैं ।

मुनियोंने कहा—इस पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहका माहात्म्य सुखदायक और दुर्लभ है । हम उनका प्रभाव विस्तारके साथ सुनना चाहते हैं । इसके लिये हमें बड़ी उत्कण्ठा है ।

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! मैं अजित, अप्रमेय तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नृसिंहका प्रभाव बतलाता हूँ; सुनो । उनके समस्त गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है, अतः मैं भी संक्षेपसे ही बतलाऊँगा । इस लोकमें जो कोई दैवी अथवा मानुषी सिद्धियाँ सुनी जाती हैं, वे सब भगवान्के प्रसादसे ही सिद्ध होती हैं । स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल, दिशा, जल, गाँव तथा पर्वत—इन सब स्थानोंमें भगवान्के प्रसादसे मनुष्यकी अबाध गति होती है । इस चराचर जगत्में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो भक्तवत्सल भगवान् नृसिंहके लिये असाध्य हो । मुनिवरो ! सनातन कल्पराज (पूजाकी सर्वश्रेष्ठ विधि) एवं नरसिंहका तत्त्व, जिसे देवता या असुर भी नहीं जानते, तुम्हें बताता हूँ; सुनो ! उत्तम साधकको चाहिये कि साग, जौकी लपसी, मूल, फल, खली अथवा सत्तूसे भोजनकी आवश्यकता पूर्ण करे अथवा दूध पीकर रहे । इन्द्रियोंको काबूमें रखकर धर्मपरायण रहे । वन, एकान्त प्रदेश, पर्वत, नदी-संगम, ऊसर, सिद्धक्षेत्र अथवा नृसिंहके मन्दिरमें जाकर अथवा स्वयं स्थापना करके भगवान्की विधिपूर्वक पूजा करे । शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास करके जितेन्द्रियभावसे बीस लाख भगवन्नामका जप करे । ऐसा करनेवाला साधक उपपातक और महापातकोंसे युक्त होनेपर भी मुक्त हो जाता है । पहले भगवान् नृसिंहकी प्रदक्षिणा करके चन्दन और धूप आदिके द्वारा उनकी पूजा करे । मस्तक झुकाकर प्रभुको प्रणाम करे तथा उनके माथेपर कपूर और चन्दन मिले हुए चमेलीके फूल चढ़ावे । इससे सिद्धि प्राप्त होती है । किसी भी कार्यमें भगवान्की गति कुण्ठित नहीं होती । ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता भी उनके तेजको नहीं सह सकते । फिर संसारमें सिद्ध, गन्धर्व, मानव, दानव, विद्याधर, यक्ष, किंनर और महानागोंकी तो बात ही क्या है । अन्य साधक जिन असुरोंका नाश करनेके लिये मन्त्र-जप करते हैं, वे सब नृसिंहभक्तोंको सूर्यके समान तेजस्वी देखकर तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं । महाबली भगवान् नरसिंह सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं । अतः मुनीश्वरो ! समस्त अभिलषित फलोंके दाता महापराक्रमी भगवान् नरसिंहकी सदा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्त्यज भी सुरश्रेष्ठ नृसिंहका भक्तिपूर्वक पूजन करके कोटिजन्मोंके पाप और दुःखोंसे मुक्त हो जाते हैं। मनोवाञ्छित फल पाते हैं । देव, गन्धर्व एवं इन्द्रका पद भी प्राप्त कर लेते हैं । एक बार भी भगवान् नरसिंहका भक्तिपूर्वक दर्शन करनेसे करोड़ों जन्मोंके पापों और दुःखोंसे छुटकारा मिल जाता है । संग्राम, संकट, दुर्गमस्थान, चोर-व्याघ्र आदिकी पीड़ा, प्राणसंशय, विष, अग्नि, जल, राजभय, समुद्रभय तथा ग्रह-रोग आदि-जनित कष्ट प्राप्त होनेपर जो पुरुष भगवान् नरसिंहका स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी आपत्तियोंसे छुटकारा पा जाता है । जैसे सूर्योदय होनेपर महान् अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् नरसिंहका दर्शन होनेपर सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं ।

अनन्त नामक वासुदेवका भक्तिपूर्वक दर्शन और उन्हें वन्दन करनेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो परम पदको प्राप्त होता है । मैंने, इन्द्रने तथा विभीषणने भी उनकी आराधना की है । फिर कौन मनुष्य उनकी आराधना न करेगा । जो मनुष्य श्वेतगङ्गामें स्नान करके श्वेतमाधव तथा मत्स्यमाधवका दर्शन करता है, वह श्वेतद्वीपमें जाता है ।

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आप श्वेतमाधवके माहात्म्यका पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये । साथ ही भगवान्की प्रतिमाका वृत्तान्त भी विस्तारके साथ बतलाइये । भूतलमें विख्यात भगवान्के पवित्र क्षेत्रमें श्वेतमाधवकी स्थापना किसने की थी ?

ब्रह्माजी बोले—सत्ययुगमें श्वेत नामके एक बलवान् राजा थे । वे बड़े बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, शूरवीर, सत्यप्रतिज्ञ और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले थे । उनके राज्यमें दस हजार वर्षोंतक मनुष्योंकी आयु होती थी और किसी बालककी मृत्यु नहीं होती थी । इस प्रकार राजा श्वेतके राज्यमें

कुछ काल व्यतीत होनेके पश्चात् एक घटना घटित हुई। कपालगौतम नामक एक परम धर्मात्मा ऋषि थे। उनके एक पुत्र हुआ, जो कालवश दाँत निकलनेके पहले ही चल बसा। उसे गोदमें लेकर बुद्धिमान् ऋषि राजाके निकट आये। राजाने ऋषिकुमारको अचेत अवस्थामें सोया देख उसको जीवित करनेके लिये प्रतिज्ञा की।

राजा बोले—यदि यमलोकमें गये हुए इस बालकको मैं सात दिनके भीतर न ला सकूँ तो जलती हुई चितापर चढ़ जाऊँगा।

यों कहकर राजाने लाख नीलकमलोंसे महादेवजीकी पूजा करके उनके मन्त्रका जप आरम्भ किया। जगदीश्वर भगवान् शिव राजाकी अत्यन्त भक्तिका विचार करके पार्वतीजीके साथ उनकेसामने प्रकट हुए और बोले, 'राजन्! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।' महादेवजीका यह वचन सुनकर राजा श्वेतने सहसा उनकी ओर देखा। वे सब अङ्गोंमें भस्म रमाये हुए थे। उनके शरीरकी कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमा और कुन्दके समान थी। उनके नेत्र विकट थे। व्याघ्रचर्मका वस्त्र और ललाटमें चन्द्रमाकी रेखा थी। उनपर दृष्टि पड़ते ही राजाने सहसा पृथ्वीपर गिरकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, यदि आपकी मुझपर दया है, तो कालके वशमें पड़ा हुआ यह ब्राह्मण-बालक पुनः जीवित हो जाय। यही मेरी प्रतिज्ञा है। महेश्वर! आप इसे यथायोग्य आयुसे युक्त और कल्याणका भागी बनायें।'

श्वेतकी यह बात सुनकर महादेवजीको बड़ी प्रसन्नता हुई।



उन्होंने सब भूतोंको भय देनेवाले कालको आज्ञा दी। और कालने मृत्युके मुखमें पड़े हुए उस बालकको जीवित कर दिया। इसके बाद वे पार्वतीदेवीके साथ अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर राजाने हजारों वर्षोंतक एकाग्रचित्त होकर राज्य किया। फिर लौकिक धर्मों और वैदिक नियमोंका विचार करके भगवान् केशवकी आराधनाका निश्चित व्रत ग्रहण किया। इसके बाद वे दक्षिणसमुद्रके पुरुषोत्तमक्षेत्रमें गये और जगन्नाथजीके पास ही सुन्दर रमणीय प्रदेशमें एक सुन्दर मन्दिर बनवाया और श्वेतशिलाके द्वारा भगवान् श्वेत-माधवकी प्रतिमा बनवाकर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा की। उस समय ब्राह्मणों, दीनों, अनाथों और तपस्वियोंको दान दे राजाने भगवान् माधवके समीप पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर एक मासतक मौन एवं निराहार रहकर द्वादशाक्षर मन्त्रका जप किया। जप समाप्त होनेपर भगवान् देवेश्वरकी इस प्रकार स्तुति आरम्भ की।

श्वेत बोले—ॐ वासुदेवको नमस्कार है। सबको अपनी ओर खींचनेवाले संकर्षणको नमस्कार है। अत्यन्त द्युतिमान् प्रद्युम्न, कभी रुद्ध न होनेवाले अनिरुद्ध तथा नारायणको नमस्कार है। जिनके अनेक रूप हैं, जो विश्वरूप, विधाता, निर्गुण, अतर्क्य, शुद्ध एवं उज्ज्वल कर्मवाले हैं, उनको नमस्कार है। जिनकी नाभिमें कमल है, जो पद्मगर्भ ब्रह्माजीकी उत्पत्तिके कारण हैं, उनको नमस्कार है। जिनका वर्ण कमलके समान है, जो हाथमें भी कमल लिये रहते हैं, उनको नमस्कार है। जिनके नेत्र कमलके समान हैं, जो सहस्रों नेत्रोंसे युक्त और शिवस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार है। जिनके सहस्रों पैर और सहस्रों भुजाएँ हैं, उन मन्युरूप परमेश्वरको नमस्कार है। ॐ वराहरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। जो वर देनेवाले, उत्तम बुद्धिसे युक्त, वरिष्ठ, वरेण्य, शरणागतरक्षक और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले हैं, उन भगवान्‌को प्रणाम है। ॐ बालरूपधारी, बाल-कमलके समान कान्तिमान्, बालसूर्य और चन्द्रमारूप नेत्रोंवाले, मनोहर केशोंसे सुशोभित, बुद्धिमान् भगवान् विष्णुको प्रणाम है। केशवको नमस्कार है, नारायणको नित्य नमस्कार है। सर्वश्रेष्ठ माधव एवं गोविन्दको नमस्कार है। ॐ विष्णुको नमस्कार है। हिरण्यरेता अग्निदेवको नित्य नमस्कार है। मधुसूदनको प्रणाम है। शुद्ध स्वरूप एवं किरणोंको धारण करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। अनन्तको नमस्कार है। सूक्ष्मस्वरूप एवं श्रीवत्सधारीको प्रणाम

है। तीन बड़े-बड़े डगोंवाले तथा दिव्य पीताम्बर धारण करनेवाले वामनको नमस्कार है। भगवन्! आप सृष्टिकर्ता हैं। आपको नमस्कार है। आप ही सबके धारण-पोषण करनेवाले हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। गुणस्वरूप एवं निर्गुणको नमस्कार है। वामनरूप भगवान्‌को नमस्कार है। वामनकर्मा श्रीहरिको प्रणाम है। वामननेत्र प्रभुको नमस्कार है और वामनवाहन माधवको प्रणाम है। रमणीय, पूज्य तथा अव्यक्तस्वरूप भगवान्‌को नमस्कार है। अतर्क्य, शुद्ध एवं भयहारी हरिको प्रणाम है। जो संसाररूपी समुद्रसे तारनेके लिये नौकाके समान हैं, जो परम शान्त एवं चैतन्यस्वरूप हैं, शिव, सौम्यरूप, रुद्र तथा उद्धारकर्ता हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। जो संसारका संहार करनेवाले और उसे भोग प्रदान करनेवाले हैं, समस्त विश्व जिनका स्वरूप है और जो समस्त विश्वकी सृष्टि करनेवाले हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। ॐ दिव्यरूप सोम, अग्नि और वायुस्वरूप भगवान्‌को नमस्कार है। चन्द्रमा और सूर्यकी किरणें जिनके केश हैं, जो गौओं तथा ब्राह्मणोंका हित करनेवाले हैं, उन भगवान्‌को प्रणाम है। ॐ ऋक्स्वरूप पद और क्रमरूप भगवान्‌को प्रणाम है। ऋग्वेदके मन्त्रोंद्वारा जिनकी स्तुति होती है, ऋचाओंका जप जिनकी प्राप्तिका साधन है, उन भगवान्‌को नमस्कार है। ॐ यजुर्वेदको धारण करनेवाले और यजुर्वेदरूपधारी भगवान्‌को प्रणाम है। जिनका यजुर्वेदके मन्त्रोंसे यजन किया जाता है, जो सबसे सेवित और यजुर्वेदके मन्त्रोंके अधिपति हैं, उन परमात्माको नमस्कार है। ॐ देव श्रीपते! आपको नमस्कार है। सर्वश्रेष्ठ श्रीधरको प्रणाम है। जो लक्ष्मीके प्रियतम, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले योगियोंके ध्येय और योगी हैं, उन भगवान्‌को प्रणाम है। ॐ सामस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जो श्रेष्ठ सामध्वनि हैं, साम (शान्तभाव) के कारण जो सौम्य प्रतीत होते हैं तथा जो सामयोगके ज्ञाता हैं, उन भगवान्‌को प्रणाम है। जो साक्षात् सामवेद, सामगान और सामवेदको धारण करनेवाले हैं, जिन्हें सामवेदोक्त यज्ञोंका ज्ञान है, जो सामवेदको करतलगत किये हुए हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। जो अथर्वशीर्ष, अथर्वस्वरूप, अथर्वपाद और अथर्वकर हैं अर्थात् जिनका सिर आदि सब कुछ अथर्वमय है, उन परमेश्वरको प्रणाम है। ॐ वज्रशीर्ष (वज्रके समान मस्तकवाले) प्रभुको नमस्कार है। जो मधु और कैटभके घातक, महासागरके जलमें शयन करनेवाले और वेदोंका उद्धार करके लानेवाले हैं, उन भगवान्‌को प्रणाम है। जिनके स्वरूप अत्यन्त दीप्तिमान् हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। इन्द्रियोंके नियन्ता हृषीकेशको प्रणाम है। प्रभो! आप भगवान् वासुदेवको बारंबार नमस्कार है। नारायण! आपको प्रणाम है। लोकहितकारी श्रीहरिको नमस्कार है। ॐ मोहनाशक तथा विश्वसंहारकारी प्रभुको प्रणाम है। जो उत्तम गतिके दाता और बन्धनका अपहरण करनेवाले हैं, त्रिलोकीमें तेजका आविर्भाव करनेवाले और तेजःस्वरूप हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। जो योगियोंके ईश्वर, शुद्धस्वरूप, सबके भीतर रमण करनेवाले तथा जगत्‌को पार उतारनेवाले हैं, सुख ही जिनका स्वरूप है, जो सुखरूप नेत्रोंवाले तथा सुकृत धारण करनेवाले हैं, उन भगवान्‌को प्रणाम है। वासुदेव, वन्दनीय और वामदेवको नमस्कार है। जो देहधारियोंके देहकी उत्पत्ति करनेवाले तथा भेददृष्टिको भङ्ग करनेवाले हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। देवगण जिनके श्रीअङ्गकी वन्दना करते हैं, जो दिव्य मुकुट धारण करनेवाले हैं, उन श्रीविष्णुको प्रणाम है। जो निवासके भी निवास हैं, तथा निवासस्थानको व्यवहारमें लाते हैं, उन परमात्माको नमस्कार है। ॐ जो वसु (धन) की उत्पत्ति करनेवाले और वसुको स्थान देनेवाले हैं, उन्हें प्रणाम है। यज्ञस्वरूप, यज्ञेश्वर एवं योगी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। आप संयमी पुरुषोंको योगकी प्राप्ति करानेवाले ईश्वर हैं, आपको प्रणाम है। यज्ञरूप शरीर धारण करनेवाले भगवान् वराहको नमस्कार है। प्रलम्बासुरको मारनेवाले भगवान् संकर्षणको प्रणाम है। जिनकी वाणी मेघके समान गम्भीर है, जो प्रचण्ड वेगयुक्त हल धारण करते हैं, उन बलरामको नमस्कार है। सबको शरण देनेवाले नारायण! आप ही ज्ञानियोंके ज्ञान हैं। आपको नमस्कार है। प्रभो! आपके सिवा नरकसे उद्धार करनेवाला मेरा कोई बन्धु नहीं है। शरणागतवत्सल! मैं सम्पूर्ण भावसे आपके चरणोंमें पड़ा हूँ। केशव! अच्युत! मेरा जो शारीरिक और मानसिक मल है, उसे धोनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। भगवन्! मैंने समस्त सङ्ग त्यागकर आपकी शरण ली है। केशव! अब आपके ही साथ मेरा सङ्ग हो। इससे मुझे आत्मलाभ होगा। मुझे यह संसार कष्ट एवं आपत्तियोंका घर तथा दुस्तर जान पड़ता है। मैं आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे खिन्न हूँ। इसलिये आपकी शरणमें आया हूँ। आपकी मायासे यह समस्त जगत् नाना प्रकारकी कामनाओंद्वारा मोहित हो रहा है। इसमें लोभ आदिका पूरा आकर्षण है। अतः मैंने

आपकी शरण ली है। विष्णो! संसारी जीवको तनिक भी सुख नहीं है। यज्ञेश्वर! मनुष्यका मन जैसे-जैसे आपमें लगता जाता है, वैसे-वैसे निष्काम होकर वह परमानन्दको प्राप्त होता रहता है। मैं विवेकशून्य होकर नष्ट हो गया हूँ। सारा जगत् मुझे दुखी दिखायी देता है। गोविन्द! मेरी रक्षा कीजिये। आप ही संसारसे मेरा उद्धार कर सकते हैं। यह संसार-समुद्र मोहरूपी जलसे परिपूर्ण है। इसके पार जाना असम्भव है। मैं इसमे गलेतक डूबा हुआ हूँ। पुण्डरीकाक्ष! आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो इससे मेरा उद्धार कर सके।

उस विख्यात दिव्य पुरुषोत्तमक्षेत्रमें राजा श्वेतके इस प्रकार स्तुति करनेपर देवाधिदेव जगद्गुरु श्रीहरि उनकी



भक्तिका विचार करके सम्पूर्ण देवताओंके साथ राजाके सामने आये। नील मेघके समान श्यामवर्ण, कमल-पत्रके समान बड़ी-बड़ी आँखें, हाथोंमें देदीप्यमान सुदर्शन, बायें हाथमें पाञ्चजन्य शङ्ख तथा अन्य हाथोंमें गदा, शार्ङ्गधनुष और खड्ग—यही उनकी झाँकी थी। भगवान्‌ने कहा—'राजन्! तुम्हारी बुद्धि बड़ी उत्तम है। तुममें पापका लेश भी नहीं है। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अपनी इच्छाके अनुसार कोई उत्तम वर माँगो।'

देवाधिदेव भगवान्‌का यह अमृतमय वचन सुनकर महाराज श्वेतने मस्तक नवाकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हींमें मन लगाये हुए कहा—'भगवन्! यदि मैं आपका भक्त हूँ तो मुझे यह उत्तम वरदान दीजिये। ब्रह्मलोकसे भी ऊपर जो अविनाशी वैकुण्ठधाम है, जिसे निर्मल, रजोगुणरहित, शुद्ध एवं संसारकी आसक्तिसे शून्य बताया गया है, मैं उसीको प्राप्त करना चाहता हूँ। जगत्पते! आपकी कृपासे मेरा यह मनोरथ सफल हो।'

श्रीभगवान् बोले—राजेन्द्र! सम्पूर्ण देवता, मुनि, सिद्ध और योगी भी जिस रमणीय और रोग-शोकरहित पदको नहीं प्राप्त होते, उसे ही तुम प्राप्त करोगे। सम्पूर्ण लोकोंको लाँघकर मेरे लोकमें जाओगे। यहाँ तुमने जो कीर्ति प्राप्त की है, वह तीनों लोकोंमें फैलेगी। और मैं सदा ही यहाँ निवास करूँगा। इस तीर्थको देवता और दानव आदि सब लोग श्वेतगङ्गा कहेंगे। जो कुशके अग्रभागसे भी श्वेतगङ्गाका जल अपने ऊपर छिड़केगा, वह स्वर्गलोकमें जायगा। जो यहाँ स्थापित श्वेतमाधव नामकी प्रतिमाका दर्शन और उसे प्रणाम करेगा, वह देह त्यागकर भगवान्‌का स्मरण करते हुए शान्त पदको प्राप्त होगा।

मत्स्यमाधवकी महिमा, समुद्रमें मार्जन आदिकी विधि, अष्टाक्षर मन्त्रकी महत्ता, स्नान, तर्पण-विधि तथा भगवान्‌की पूजाका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—श्वेतमाधवका दर्शन करके उनके समीप ही मत्स्यमाधवका दर्शन करे। जो भगवान् पहले एकार्णवके जलमें मत्स्यरूप धारण करके वेदोंका उद्धार करनेके लिये रसातलमें स्थित थे, वे ही मत्स्यमाधव कहलाते हैं। वे भगवान्‌के आदि अवतार हैं। पहले पृथ्वीका चिन्तन करके उसपर प्रतिष्ठित हुए भगवान्‌को प्रणाम करे। ऐसा करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है और उस वैकुण्ठधाममें जाता है, जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने मत्स्यमाधवके माहात्म्यका वर्णन किया।

मुनियोंने कहा—भगवन्! समुद्रमें जो मार्जन और स्नान-दान आदि किया जाता है, उसका फल बतलाइये।

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! मार्जनकी विधि सुनो। मार्कण्डेयह्रदका स्नान पूर्वाह्णकालमें उत्तम माना गया है। विशेषतः चतुर्दशीको उसमें किया हुआ स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। समुद्रका स्नान सब समय उत्तम होता है, विशेषतः पूर्णिमाको उसमें स्नान करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। मार्कण्डेयह्रद, अक्षयवट, श्रीकृष्ण-बलराम, समुद्र तथा इन्द्रद्युम्न—ये पुरुषोत्तमक्षेत्रके पाँच तीर्थ हैं। जब ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र हो, तब विशेषरूपसे तीर्थराज समुद्रकी यात्रा करनी चाहिये। उस समय मन, वाणी और शरीरसे शुद्ध हो भगवान्‌में मन लगाये रहे, और कहीं मनको न ले जाय। सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे मुक्त रहे, राग और द्वेषको दूर कर दे। कल्पवृक्ष-वट बहुत रमणीय स्थान है, वहाँ स्नान करके एकाग्र चित्तसे तीन बार भगवान् जनार्दनकी परिक्रमा करे। उनके दर्शनसे सात जन्मोंके पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। प्रचुर पुण्य तथा अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। प्रत्येक युगके अनुसार वटके नाम और प्रमाण बतलाये जाते हैं। वट, वटेश्वर, कृष्ण तथा पुराण-पुरुष—ये सत्य आदि युगोंमें क्रमशः वटके नाम कहे गये हैं। सत्ययुगमें वटका विस्तार एक योजन, त्रेतामें पौन योजन, द्वापरमें आधा योजन और कलियुगमें चौथाई योजनका माना गया है। पहले बताये हुए मन्त्रसे वटको नमस्कार करके वहाँ तीन सौ धनुषकी दूरीपर दक्षिण दिशाकी ओर जाय। वहाँ भगवान् विष्णुका दर्शन होता है। उसे मनोरम स्वर्गद्वार कहते हैं। वहाँ समुद्रके जलसे आकृष्ट सर्वगुणसम्पन्न काष्ठ है, उसे प्रणाम करके पूजन करनेपर मनुष्य सम्पूर्ण रोगों तथा पापग्रह आदिकी पीडासे मुक्त हो जाता है।

स्वर्गद्वारसे समुद्रपर जाकर आचमन करे तथा पवित्र भावसे भगवान् नारायणका ध्यान करके उनके अष्टाक्षर मन्त्रसे अङ्गन्यास और करन्यास करे। मनको भुलावेमें डालनेवाले अन्य बहुत-से मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता है, ॐ नमो नारायणाय—यह अष्टाक्षर मन्त्र ही सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। नरसे प्रकट होनेके कारण जलको नार कहते हैं। वह पूर्वकालमें भगवान् विष्णुका अयन (निवास-स्थान) रहा है इसलिये उन्हें नारायण कहते हैं। समस्त वेदोंका तात्पर्य भगवान् नारायणमें ही है। सम्पूर्ण द्विज नारायणकी ही उपासनामें तत्पर रहते हैं। यज्ञों और क्रियाओंकी समाप्ति भी नारायणमें ही है। पृथ्वी नारायणपरक है, जल नारायणपरक है। अग्नि नारायणपरक है और आकाश भी नारायणपरक है। वायु और मनके आश्रय भी नारायण ही हैं। अहंकार और बुद्धि दोनों नारायणस्वरूप हैं। भूत, वर्तमान तथा आनेवाले सभी जीव, स्थूल और सूक्ष्म—सब कुछ नारायणस्वरूप है। शब्द आदि विषय, श्रवण आदि इन्द्रियाँ, प्रकृति और पुरुष—सभी नारायणस्वरूप हैं। जल, स्थल, पाताल, स्वर्गलोक, आकाश तथा पर्वत—इन सबको व्याप्त करके भगवान् नारायण स्थित हैं। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, ब्रह्मा आदिसे लेकर तृणपर्यन्त समस्त चराचर जगत् नारायणस्वरूप है। ब्राह्मणो! मैं नारायणसे बढ़कर यहाँ कुछ नहीं देखता। यह दृश्य-अदृश्य, चर-अचर—सब उन्हींके द्वारा व्याप्त है। जल भगवान् विष्णुका घर है और विष्णु ही जलके स्वामी हैं। अतः जलमें सर्वदा पापहारी नारायणका स्मरण करना चाहिये। विशेषतः स्नानके समय जलमें उपस्थित हो पवित्रभावसे नारायणका ध्यान करे और हाथ तथा शरीरमें नामाक्षरोंका न्यास करे। ओंकार और नकारका दोनों हाथोंके अँगूठेमें तथा शेष अक्षरोंका तर्जनी आदिके क्रमसे करतल और करपृष्ठतक न्यास करे। 'ॐ' कारका बायें और 'न' कारका दायें चरणमें न्यास करे। कटिके बायें भागमें 'मो' का और दायें भागमें 'ना' का न्यास करे। 'रा' का नाभिदेशमें, 'य' का बायीं भुजामें, 'णा' का दाहिनी भुजामें और 'य' का मस्तकपर न्यास करे। नीचे-ऊपर, हृदयमें, पार्श्वभागमें, पीठकी ओर तथा अग्रभागमें श्रीनारायणका ध्यान करके विद्वान् पुरुष कवचका पाठ आरम्भ करे। 'पूर्वमें गोविन्द, दक्षिणमें मधुसूदन, पश्चिमकी ओर श्रीधर, उत्तरमें केशव, अग्निकोणमें विष्णु, नैर्ऋत्यमें अविनाशी माधव, वायव्यमें हृषीकेश, ईशानमें वामन, नीचे वाराह और ऊपर भगवान् त्रिविक्रम मेरी रक्षा करें।'

इस प्रकार कवचका पाठ करके निम्नाङ्कित मन्त्रोंका उच्चारण करे—

त्वमग्निर्द्विपदां नाथ रेतोधाः कामदीपनः।
प्रधानः सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्ययः॥
अमृतस्यारणिस्त्वं हि देवयोनिरपां पते।
वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥

'नाथ! आप अग्नि हैं, मनुष्य आदि सब जीवोंके वीर्यका आधान और कामका दीपन करनेवाले हैं। सम्पूर्ण भूतोंमें प्रधान हैं तथा जीवोंके अविनाशी प्रभु हैं। समुद्र! आप अमृतकी उत्पत्तिके स्थान तथा देवताओंकी योनि हैं। तीर्थराज! आप मेरे सब पाप हर लें। आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार विधिवत् उच्चारण करके स्नान करना चाहिये, अन्यथा वह स्नान उत्तम नहीं माना जाता। वैदिक मन्त्रोंसे अभिषेक और मार्जन करके जलमें डुबकी लगा तीन बार अघमर्षण-मन्त्रका जप करे। जैसे अश्वमेध यज्ञ सब पापोंको दूर करनेवाला है, वैसे ही अघमर्षण-सूक्त सब पापोंका नाशक है। स्नानके पश्चात् जलसे निकलकर दो निर्मल वस्त्र धारण करे। फिर प्राणायाम, आचमन एवं संध्योपासन करके ऊपरकी ओर फूल और जल डालकर सूर्योपस्थान करे। उस समय अपनी दोनों भुजाएँ ऊपरकी ओर उठाये रक्खे। तदनन्तर गायत्री-मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। गायत्रीके अतिरिक्त सूर्यदेवतासम्बन्धी अन्य मन्त्रोंका भी एकाग्र चित्तसे खड़ा होकर जप करे। फिर सूर्यकी प्रदक्षिणा और उन्हें नमस्कार करके पूर्वाभिमुख बैठकर स्वाध्याय करे। उसके बाद देवता और ऋषियोंका तर्पण करके दिव्य मनुष्यों और पितरोंका भी तर्पण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि चित्तको एकाग्र करके तिलमिश्रित जलके द्वारा नाम-गोत्रोच्चारणपूर्वक पितरोंकी तृप्ति करे। पहले देवताओंका तर्पण करनेके पश्चात् ही द्विज पितरोंके तर्पणका अधिकारी होता है। श्राद्ध और हवनके समय एक हाथसे सब वस्तुएँ अर्पित करे, परन्तु तर्पणमें दोनों हाथोंका उपयोग करना चाहिये। यही सदाकी विधि है। बायें और दायें हाथकी सम्मिलित अञ्जलिसे नाम-गोत्रके साथ 'तृप्यताम्' बोलकर मौनभावसे जल दे।* अपने अङ्गोंमें स्थित तिलके द्वारा देवताओं और पितरोंका तर्पण न करे। वैसे तिलोंके साथ दिया हुआ जल रुधिरके तुल्य होता है। उसे देनेवाला पापका भागी होता है। मुनिवरो! यदि दाता जलमें स्थित होकर पृथ्वीपर जल दे तो वह व्यर्थ होता है, किसीके पास नहीं पहुँचता। जो मनुष्य स्थलमें खड़ा होकर जलमें जल देता है, उसका दिया हुआ जल भी पितरोंको नहीं मिलता, व्यर्थ जाता है। अतः जलमें कदापि पितरोंको जल न दे, बल्कि वहाँसे निकलकर पवित्र देशमें जलद्वारा तर्पण करना चाहिये। न जलमें, न पात्रमें, न कुपित होकर और न एक हाथसे ही जल दे। जो पृथ्वीपर नहीं दिया जाता, वह जल पितरोंतक नहीं पहुँचता। मैंने पितरोंके लिये अक्षय स्थानके रूपमें पृथ्वी ही दी है, अतः उनकी प्रीति चाहनेवाले पुरुषोंको पृथ्वीपर ही जल देना चाहिये। पितर भूमिपर ही उत्पन्न हुए, भूमिपर ही रहे और भूमिमें ही उनके शरीरका लय हुआ। अतः भूमिपर ही उनके लिये जल देना चाहिये। अग्रभागसहित कुशोंको बिछाकर उसपर मन्त्रोंद्वारा देवताओं और पितरोंका आवाहन करना चाहिये। पूर्वाग्र कुशोंपर देवताओंका और दक्षिणाग्र कुशोंपर पितरोंका आवाहन करना उचित है।

देवताओं और अन्यान्य पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् मौनभावसे आचमन करके समुद्रके तटपर एक हाथका चौकोर मण्डल बनाये। उसमें चार दरवाजे रहें। उसके भीतर कर्णिकासहित अष्टदल कमलकी आकृति बनाये। इस प्रकार मण्डल बनाकर उसमें अष्टाक्षर मन्त्रकी विधिसे अजन्मा भगवान् नारायणका पूजन करे। अब शरीर-शुद्धिकी उत्तम विधि बतलाता हूँ। चक्ररेखासहित अकारका हृदयमें ध्यान करे। वह तीन शिखाओंसहित प्रज्वलित हो पापोंका दाह करता है और सब पापोंका नाश करनेवाला है, ऐसी भावना करनेके बाद मस्तकमें 'रा' का चिन्तन करना चाहिये। वह चन्द्रमण्डलके मध्यभागमें स्थित और शुक्लवर्णका है तथा अमृतकी वर्षा करके पृथ्वीको आप्लावित कर रहा है, इस प्रकार चिन्तन करनेसे पाप धुल जाते और साधकका शरीर दिव्य हो जाता है। तदनन्तर अपने बायें पैरसे आरम्भ करके क्रमशः सब अङ्गोंमें अष्टाक्षर मन्त्रका न्यास करे। वैष्णवाख्याङ्गन्यास तथा चतुर्व्यूहन्यास भी करे। साधकको मूलमन्त्रके द्वारा कर-शुद्धि भी करनी चाहिये। इसकी विधि यों है। दोनों हाथोंकी आठ अँगुलियोंमें अँगूठोंद्वारा एक-एक अक्षरका न्यास करने चाहिये। पहले बायें हाथमें, फिर दायें हाथमें। ॐकारसहित शुक्लवर्णा पृथ्वीका बायें पैरमें न्यास करे। नकारका वर्ण श्याम और देवता शम्भु हैं। उसका न्यास दक्षिण पैरमें है। मोकारको कालस्वरूप माना गया है। इसका न्यास कटिके वामभागमें होता है। नाकार सर्वबीज-स्वरूप है। उसकी स्थिति कटिके दक्षिण भागमें है। राकार तेजका स्वरूप बताया गया है। उसका स्थान नाभिप्रदेशमें होता है। यकारका देवता वायु है, उसका न्यास बायें कंधेमें है। णाकारको सर्वव्यापी समझना चाहिये। उसकी स्थिति दायें कंधेमें है। यकारकी स्थिति सिरमें है, जहाँ सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। तात्पर्य यह कि येकारका न्यास मस्तकमें करना चाहिये।

* श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्।
तर्पणे तूभयं कुर्यादेष एव विधिः सदा॥
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु।
तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः॥
(६०। ५५-५६)

वैष्णव पञ्चाङ्गन्यास

'ॐ विष्णवे नमः शिरः', 'ॐ ज्वलनाय नमः शिखा', 'ॐ विष्णवे नमः कवचम्', 'ॐ विष्णवे नमः स्फुरणं दिशोबन्धाय', 'ॐ हुं फट् अस्त्रम्' ।*

चतुर्व्यूहन्यास

'ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति', 'ॐ आं ललाटे रक्तः संकर्षणो गरुत्मान् वह्निस्तेज आदित्य इति', 'ॐ आं ग्रीवायां पीतः प्रद्युम्नो वायुमेघ इति', 'ॐ आं हृदये कृष्णोऽनिरुद्धः सर्वशक्तिसमन्वित इति' । †

इस प्रकार अपने आत्माका चतुर्व्यूहरूपसे चिन्तन करके कार्य आरम्भ करे ।

'मेरे आगे भगवान् विष्णु और पीछे केशव हैं । दक्षिण-भागमें गोविन्द और वामभागमें मधुसूदन हैं । ऊपर वैकुण्ठ और नीचे वाराह हैं । बीचकी सम्पूर्ण दिशाओंमें माधव हैं । चलते, खड़े होते, जागते अथवा सोते समय भगवान् नृसिंह मेरी रक्षा करते हैं । मैं वासुदेवस्वरूप हूँ ।' इस प्रकार विष्णुमय होकर पूजन आरम्भ करे । अपने शरीरकी भाँति भगवान्‌के विग्रहमें भी सम्पूर्ण तत्त्वोंका न्यास करे । प्रणवका उच्चारण करके शरीरपर जलके छींटे दे । 'ॐ फट्'का उच्चारण सब विघ्नोंका निवारण करनेवाला और शुभ माना गया है । वहाँ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु और आकाश-मण्डलका चिन्तन करे । कमलके मध्यभागमें विष्णुका न्यास करे । फिर हृदयमें ज्योतिःस्वरूप ॐकारका चिन्तन करके कमलकी कर्णिकामें ज्योतिःस्वरूप सनातन विष्णुकी स्थापना करे । फिर क्रमशः प्रत्येक दलमें अष्टाक्षर मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करे । एक-एक अक्षरके द्वारा तथा समस्त मन्त्रके द्वारा भी पूजन करना अत्यन्त उत्तम माना गया है । सनातन परमात्मा विष्णुका द्वादशाक्षर मन्त्रसे पूजन करे । इसके बाद भगवान्‌का पहले हृदयमें ध्यान करके बाहर कर्णिकामें भी उनकी भावना करे । उनके ध्यानका स्वरूप इस प्रकार है । भगवान्‌की चार भुजाएँ हैं । वे महान् सत्त्वमय हैं, कोटि-कोटि सूर्योंके समान उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा है और वे महायोगस्वरूप, ज्योतिःस्वरूप एवं सनातन हैं । इसके बाद मन-ही-मन भगवान्‌का स्मरण करते हुए मन्त्रोच्चारणपूर्वक उनका आवाहन आदि करे ।

आवाहनमन्त्र

मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'मीन, वराह, नरसिंह एवं वामन-अवतारधारी वर-दायक देवता भगवान् नारायण मेरे सम्मुख पधारें । सच्चिदा-नन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

आसन-मन्त्र

कर्णिकायां सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम् ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'यहाँ कमलकी कर्णिकामें सुन्दर पीठपर कमलका आसन बिछा हुआ है । मधुसूदन ! सब प्राणियोंका हित करनेके लिये आप इसपर विराजमान हों । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायण-को नमस्कार है ।'

अर्घ्य-मन्त्र

ॐ त्रैलोक्यपतीनां पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नमः । ॐ नमो नारायणाय नमः ।

'त्रिभुवनपतियोंके भी पति, देवताओंके भी देवता, इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् विष्णुको नमस्कार है । सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

पाद्य-मन्त्र

ॐ पाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन ।
विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'देव पद्मनाभ ! सनातन विष्णो !! कमलनयन मधुसूदन !!! आपके चरणोंमें यह पाद्य (पाँव पखारनेके लिये जल) समर्पित है, आप इसे स्वीकार करें । सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

---

* उक्त मन्त्रोंमेंसे पहले तीन मन्त्रोंको पढ़कर हाथकी अँगुलियोंसे क्रमशः मस्तक, शिखा तथा दोनों बाहु-मूलोंका स्पर्श करे । चौथेसे सब ओर चुटकी बजाये और पाँचवेंको पढ़कर ताली बजाये ।

† उक्त चार वाक्योंमेंसे एक-एकका उच्चारण करके क्रमशः मस्तक, ललाट, ग्रीवा और हृदयका स्पर्श करे । इनका भावार्थ संक्षेपसे इस प्रकार है—शुक्लवर्ण वासुदेव मस्तकमें हैं । रक्तवर्ण बलरामजी, गरुड, अग्नि, तेज और सूर्य ललाटमें स्थित हैं । पीत-वर्ण प्रद्युम्न तथा वायुसहित मेघ ग्रीवामें हैं । कृष्णवर्ण अनिरुद्ध सम्पूर्ण शक्तियोंके साथ हृदयमें निवास करते हैं ।

मधुपर्क-मन्त्र

मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'महादेव ! पुरुषोत्तम ! ब्रह्मा आदि देवताओंने आपके लिये जिसकी व्यवस्था की थी, वही मधुपर्क मैं भक्तिपूर्वक आपको निवेदन करता हूँ, कृपया स्वीकार कीजिये । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

आचमनीय-मन्त्र

मन्दाकिन्याः सितं वारि सर्वपापहरं शिवम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'भगवन् ! मैंने गङ्गाजीका स्वच्छ जल, जो सब पापोंको दूर करनेवाला तथा कल्याणमय है, आचमनके लिये भक्तिपूर्वक आपको अर्पित किया है; कृपया ग्रहण कीजिये । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

स्नान-मन्त्र

त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च ।
लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'लोकेश्वर ! आप ही जल, पृथ्वी तथा अग्नि और वायुरूप हैं । मैं जीवनरूप जलके द्वारा आपको स्नान कराता हूँ । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

वस्त्र-मन्त्र

देवतत्त्वसमायुक्त यज्ञवर्णसमन्वित ।
स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'देवतत्त्वसमायुक्त, यज्ञवर्णसमन्वित केशव ! मैं सुनहरे रंगके दो वस्त्र आपकी सेवामें समर्पित करता हूँ । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

विलेपन-मन्त्र

शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव न केशव ।
मया निवेदितो गन्धः प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'केशव ! मुझे आपके शरीर और चेष्टाका ज्ञान नहीं है; मैंने जो यह गन्ध (रोली-चन्दन आदि) निवेदन किया है, इसे लेकर अपने अङ्गमें लगावें । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

यज्ञोपवीत-मन्त्र

ऋग्यजुःसाममन्त्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना ।
सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीतं तवार्पये ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'भगवन् ! ब्रह्माजीने ऋक्, यजुः और सामवेदके मन्त्रोंसे जिसको त्रिवृत् (त्रिगुण) बनाया है, वह सावित्री-ग्रन्थिसे युक्त यज्ञोपवीत मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

अलंकार-मन्त्र

दिव्यरत्नसमायुक्त वह्निभानुसमप्रभ ।
गात्राणि तव शोभन्तु सालंकाराणि माधव ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'अग्नि और सूर्यके समान प्रभावाले, दिव्यरत्नविभूषित माधव ! इन अलंकारोंको धारण करके आपके श्रीअङ्ग सुशोभित हों । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

'ॐ नमः' यह अष्टाक्षर मन्त्रके प्रत्येक अक्षरके साथ लगाकर पृथक्-पृथक् पूजा करे अथवा समस्त मूल-मन्त्रका एक ही साथ उच्चारण करके पूजन करे ।

धूप-मन्त्र

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुरभिश्च ते ।
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'भगवन् ! यह धूप सुगन्धद्रव्योंसे मिश्रित वनस्पतिका दिव्य रस है, अतएव अत्यन्त सुगन्धित है; मैंने भक्तिपूर्वक इसे आपकी सेवामें अर्पित किया है, आप इसे स्वीकार करें । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

दीप-मन्त्र

सूर्यचन्द्रमसोर्ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च ।
त्वमेव ज्योतिषां देव दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ नमो नारायणाय नमः

'देव ! आप ही सूर्य और चन्द्रमाकी, बिजली और अग्निकी तथा ग्रहों और नक्षत्रोंकी ज्योति हैं । यह दीप ग्रहण कीजिये । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

नैवेद्य-मन्त्र

अन्नं चतुर्विधं चैव रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

'केशव ! मैंने [मधुर आदि] छः रसोंसे युक्त चार प्रकारका (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) अन्न आपको भक्तिपूर्वक समर्पित किया है । आप यह नैवेद्य ग्रहण करें । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

पूर्वोक्त अष्टदल कमलके पूर्वदलमें वासुदेवका, दक्षिण-दलमें संकर्षणका, पश्चिमदलमें प्रद्युम्नका, उत्तरदलमें अनिरुद्धका, अग्निकोणवाले दलमें वाराहका, नैर्ऋत्यकोणमें नरसिंहका, वायव्यकोणमें माधवका तथा ईशानमें भगवान् त्रिविक्रमका न्यास करे । फिर अष्टाक्षरदेवके सम्मुख गरुड़की स्थापना करे । भगवान्‌के वामभागमें चक्र और दक्षिण-भागमें शङ्खकी स्थापना करे । इसी प्रकार उनके दक्षिण-भागमें महागदा कौमोदकी और वामभागमें शार्ङ्ग नामक धनुषको स्थापित करे । दक्षिणभागमें दो दिव्य तरकस और वामभागमें खड्गका न्यास करे । दक्षिणभागमें श्रीदेवी और वामभागमें पुष्टिदेवीकी स्थापना करे । भगवान्‌के सामने वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ रक्खे । फिर पूर्व आदि चारों दिशाओंमें हृदय आदिका न्यास करे । कोणमें देवदेव विष्णुके अस्त्रका न्यास करे । पूर्व आदि आठ दिशाओंमें तथा ऊपर और नीचे तान्त्रिक मन्त्रोंसे क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त तथा ब्रह्माजीका पूजन करे । इस प्रकार मण्डलमें स्थित देवेश्वर जनार्दनका पूजन करके मनुष्य निश्चय ही मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त करता है । इसी विधिसे पूजित मण्डलस्थ भगवान् जनार्दनका जो दर्शन करता है, वह भी अविनाशी विष्णुमें प्रवेश करता है । जिसने उपर्युक्त विधिसे एक बार भी श्रीकेशवका पूजन किया है, वह जन्म-मृत्यु और जरा-अवस्थाको लाँघकर भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त होता है । 'नमः' सहित ॐकार जिसके आदिमें और 'नमः' जिसके अन्तमें है, वह 'ॐ नमो नारायणाय नमः' यह तेजस्वी मन्त्र सम्पूर्ण तत्त्वोंका मन्त्र कहलाता है । इसी विधिसे प्रत्येकको गन्ध, पुष्प आदि वस्तुएँ क्रमशः निवेदन करनी चाहिये । इसी तरह क्रमशः आठ मुद्राएँ बाँधकर दिखाये । फिर मन्त्रवेत्ता पुरुष 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूलमन्त्रका एक सौ आठ या अट्ठाईस अथवा आठ बार जप करे । किसी कामनाके लिये जप करना हो तो उसके लिये शास्त्रोंमें जितना बताया गया हो, उतनी संख्यामें जप करे । अथवा निष्कामभावसे जितना हो सके, उतना एकाग्र चित्तसे जप करे । पद्म, शङ्ख, श्रीवत्स, गदा, गरुड, चक्र, खड्ग और शार्ङ्गधनुष—ये आठ मुद्राएँ बतलायी गयी हैं । जो लोग शास्त्रोक्त मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिकी पूजाका विधान न जानते हों, वे 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मूलमन्त्रसे ही सदा भगवान् अच्युतका पूजन करें ।

भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा और दर्शनका फल, इन्द्रद्युम्नसरोवरके सेवनकी विधि एवं महिमाका वर्णन तथा ज्येष्ठकी पूर्णिमाको दर्शनका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—उपर्युक्त प्रकारसे भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये । इसके बाद समुद्रसे प्रार्थना करे—'सरिताओंके स्वामी तीर्थराज ! आप सम्पूर्ण भूतोंके प्राण और योनि हैं । आपको नमस्कार है । अच्युतप्रिय ! मेरी रक्षा कीजिये ।' इस प्रकार उत्तम क्षेत्र समुद्रमें स्नान करके तथा तटपर अविनाशी नारायणकी विधिपूर्वक पूजा करके बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राको प्रणाम करे । ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है और अन्तमें सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर, जहाँ दिव्य गन्धर्वोंकी संगीतध्वनि होती रहती है, बैठकर अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके श्रीविष्णुके लोकमें जाता है । ग्रहण, संक्रान्ति, अयनारम्भ, विषुव योग, युगादि तिथियाँ, व्यतीपात, तिथिक्षय, आषाढ़, कार्तिक तथा माघकी पूर्णिमा और अन्य शुभ तिथियोंमें जो वहाँ ब्राह्मणोंको दान देते हैं, वे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा हजारगुना फल पाते हैं । जो लोग वहाँ विधिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान करते हैं, उनके पितर अक्षय तृप्ति-लाभ करते हैं । इस प्रकार मैंने समुद्रमें स्नान करनेका उत्तम फल बतलाया । वह सब पापोंको दूर करनेवाला, पवित्र तथा इच्छानुसार सब फलोंका दाता है । यह पुराण-रहस्य नास्तिकको नहीं बतलाना चाहिये । भूतलमें जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं, वे सब समुद्रमें प्रवेश करते हैं । इसलिये वह सबसे श्रेष्ठ है । सरिताओंका स्वामी समुद्र समस्त तीर्थोंका राजा है । वह सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और समस्त

इच्छित पदार्थको देनेवाला है। जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार तीर्थराज समुद्रमें स्नान करनेपर सब पापोंका क्षय हो जाता है। जहाँ साक्षात् भगवान् नारायणका निवासस्थान है, उस तीर्थराज समुद्रके गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है। जहाँ निन्यानबे करोड़ तीर्थ रहते हैं, उसकी श्रेष्ठताके विषयमें क्या कहा जा सकता है। इसलिये वहाँ स्नान, दान, होम, जप और देवपूजन आदि जो कुछ भी कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है। वहाँसे उस तीर्थमें जाय, जो अश्वमेध-यज्ञके अङ्गसे उत्पन्न हुआ है। उसका नाम है इन्द्रद्युम्नसरोवर। वह पवित्र एवं शुभ तीर्थ है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ जाकर पवित्र भावसे आचमन करे और मन-ही-मन श्रीहरिका ध्यान करके जलमें उतरे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थ सर्वाघनाशन।
स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते॥

'अश्वमेध-यज्ञके अङ्गसे प्रकट हुए तथा सम्पूर्ण पापोंके विनाशक तीर्थ! आज मैं तुम्हारे जलमें स्नान करता हूँ। मेरे पाप हर लो। तुमको नमस्कार है।'

इस प्रकार उच्चारण करके विधिपूर्वक स्नान करे और देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्यान्य लोगोंका तिल-जलसे तर्पण करके आचमन करे। फिर पितरोंको पिण्डदान दे पुरुषोत्तमका पूजन करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। वह सात पीढ़ी ऊपर और सात पीढ़ी नीचेके पुरुषोंका उद्धार करके इच्छानुसार गतिवाले विमानके द्वारा विष्णुलोकमें जाता है। इस प्रकार पाँच तीर्थोंका सेवन करके एकादशीको उपवास करे। जो मनुष्य ज्येष्ठकी पूर्णिमाको भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होकर परम धामको जाता है, जहाँसे पुनः उसका लौटना नहीं होता।

मुनियोंने पूछा—पितामह! आप माघ आदि महीनोंको छोड़कर ज्येष्ठ मासकी इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं? प्रभो! इसका कारण बतलाइये।

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! सुनो। अन्य मासोंकी अपेक्षा जो ज्येष्ठ मासकी बारंबार प्रशंसा करता हूँ, उसका कारण संक्षेपसे बतलाता हूँ। पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, पुष्करिणी, तड़ाग, वापी, कूप, ह्रद और समुद्र हैं, वे सब ज्येष्ठके शुक्लपक्षकी दशमीसे लेकर पूर्णिमातक एक सप्ताह प्रत्यक्षरूपसे पुरुषोत्तमतीर्थमें जाकर रहते हैं। यह उनका सदाका नियम है। इसलिये वहाँ स्नान-दान, देवदर्शन आदि जो कुछ पुण्य कार्य उस समय किया जाता है, वह अक्षय होता है। द्विजवरो! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि दस पापोंको हरती है, इसलिये उसे दशहरा कहा गया है। उस दिन जो लोग अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राका दर्शन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायनके आरम्भके दिन श्रीपुरुषोत्तम, बलराम और सुभद्राका दर्शन करनेवाला मानव वैकुण्ठ-धाममें जाता है। जो मनुष्य फाल्गुनकी पूर्णिमाके दिन एकचित्त हो पुरुषोत्तम श्रीगोविन्दको झूलेपर विराजमान देखता है, वह उनके धाममें जाता है। विषुवयोगके दिन विधिपूर्वक पञ्चतीर्थविधिका पालन करके जो श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो वैशाख-कृष्णा तृतीयाको चन्दन-चर्चित श्रीकृष्णका दर्शन करता है, वह विष्णु-धाममें जाता है। ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त ज्येष्ठमासकी पूर्णिमाके दिन जो श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके श्रीविष्णुलोकमें जाता है।

जिस दिन राशि और नक्षत्रके योगसे महाज्येष्ठी (ज्येष्ठकी पूर्णिमा) हो, उस दिन यत्नपूर्वक श्रीपुरुषोत्तमतीर्थमें पहुँचना चाहिये। महाज्येष्ठी पर्वके दिन श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका दर्शन करके मनुष्य बारह यात्राओंसे भी अधिक फलका भागी होता है। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, हरिद्वार, कुशावर्त, गङ्गा-सागर-संगम, महानदी, वैतरणी तथा अन्य जितने तीर्थ हैं, अथवा अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, पृथ्वीतलके सब तीर्थ, सब मन्दिर, सब समुद्र, सब पर्वत, सब नदी और सब सरोवरोंमें ग्रहणके समय स्नान-दानसे जो फल होता है, वही महाज्येष्ठीको श्रीकृष्णका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य पा लेता है। अतः महाज्येष्ठीको सर्वथा प्रयत्न करके पुरुषोत्तमतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। सुभद्राके साथ श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करनेवाला मनुष्य अपने समस्त कुलका उद्धार करके भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

ज्येष्ठपूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राके स्नानका उत्सव तथा उनके दर्शनका माहात्म्य

मुनियोंने पूछा—ब्रह्माजी ! भगवान् श्रीकृष्णका स्नान किस समय और किस विधिसे होता है? विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ ! हमें उसकी विधि बताइये।

ब्रह्माजी बोले—मुनियो ! श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राका स्नान परम पुण्यमय और सब पापोंका नाशक है। मैं उसकी विधि आदिका वर्णन करता हूँ, सुनो। ज्येष्ठ मासमें पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र आनेपर वहाँ हर समय श्रीहरिका स्नान होता है। वहाँ सर्वतीर्थमय कूप है, जो अत्यन्त निर्मल और पवित्र माना गया है। उक्त पूर्णिमाको उसमें भगवती गङ्गा प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होती हैं। अतः ज्येष्ठकी पूर्णिमाको सुवर्णमय कलशोंसे श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राके स्नानके लिये उस कूपसे जल निकाला जाता है। इसके लिये एक सुन्दर मञ्च बनवाकर उसे पताका आदिसे अलंकृत किया जाता है। वह सुदृढ़ और सुखपूर्वक चलने योग्य बना होता है। वस्त्र और फूलोंसे उसे सजाया जाता है। वह खूब विस्तृत होता है और धूपसे सुवासित किया जाता है। उसपर श्रीकृष्ण और बलरामको स्नान करानेके लिये श्वेत वस्त्र बिछाया जाता है। उसे सजानेके लिये मोतीके हार लटकाये जाते हैं। भाँति-भाँतिके वाद्योंकी ध्वनि होती रहती है। उस मञ्चपर एक ओर भगवान् श्रीकृष्ण और दूसरी ओर भगवान् बलराम विराजते रहते हैं। बीचमें सुभद्रादेवीको पधराकर जय-जयकार और मङ्गलघोषके साथ स्नान कराया जाता है। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जातिके लाखों स्त्री-पुरुष उन्हें घेरे रहते हैं। गृहस्थ, स्नातक, संन्यासी और ब्रह्मचारी—सभी मञ्चपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको स्नान कराते हैं। पूर्वोक्त सम्पूर्ण तीर्थ अपने पुष्पमिश्रित जलोंसे पृथक्-पृथक् भगवान्को स्नान कराते हैं। फिर शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, झाँझ और घण्टा आदि वाद्योंकी तुमुल ध्वनिके साथ स्त्रियोंके मङ्गलगीत, स्तुतियोंके मनोहर शब्द, जय-जयकार, वीणारव तथा वेणुनादका महान् शब्द समुद्रकी गर्जनाके समान जान पड़ता है। उस समय मुनिलोग वेद-पाठ और मन्त्रोच्चारण करते हैं। सामगानके साथ भाँति-भाँतिकी स्तुतियोंके पुण्यमय शब्द होते रहते हैं। यति, स्नातक, गृहस्थ और ब्रह्मचारी स्नानके समय बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान्का स्तवन करते हैं। श्रीकृष्ण और बलरामके ऊपर रत्न-दण्डविभूषित चँवर डुलाये जाते हैं। आकाशमें यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किंनर, अप्सराएँ, देव, गन्धर्व, चारण, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, लोकपाल तथा अन्य लोग भी भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करते हैं—'देवदेवेश्वर ! पुराणपुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। जगत्पालक भगवान् जगन्नाथ ! आप सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले हैं। जो त्रिभुवनको धारण करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, मोक्षके कारणभूत और समस्त मनोवाञ्छित फलोंके दाता हैं, उन भगवान्को हम प्रणाम करते हैं।' इस प्रकार आकाशमें खड़े हुए देवता श्रीकृष्ण, महाबली बलराम तथा सुभद्रा देवीकी स्तुति करते, गन्धर्व गाते और अप्सराएँ नृत्य करती हैं। देवताओंके बाजे बजते और शीतल वायु चलती है। उस समय आकाशमें उमड़े हुए मेघ पुष्प-मिश्रित जलकी वर्षा करते हैं। मुनि, सिद्ध और चारण जय-जयकार करते हैं।

तत्पश्चात् देवतागण मङ्गल-सामग्रियोंके साथ विधि और मन्त्रयुक्त अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर भगवान्का अभिषेक करते हैं। इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, धाता, विधाता, वायु, अग्नि, पूषा, भग, अर्यमा, त्वष्टा, दोनों पत्नियोंसहित विवस्वान्, मित्र, वरुण, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, मरुद्गण, साध्य, पितर, विद्याधर, पितामह, पुलस्त्य, पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष, धर्म, काल, यम, मृत्यु, यमदूत तथा अन्य अनेकों देवता भगवान्का अभिषेक करनेके लिये इधर-उधरसे आते हैं। और सुवर्णमय कलशोंमें रक्खे हुए पुष्प-मिश्रित आकाशगङ्गाके जलसे श्रीकृष्ण, सुभद्रा तथा बलरामजीको स्नान कराते हैं और प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं—

सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले जगन्नाथ ! आपकी जय हो ! जय हो !! आप भक्तोंके रक्षक तथा शरणागतवत्सल हैं। सम्पूर्ण भूतोंमें व्यापक आदिदेव ! आपकी जय हो। नानात्वके कारणभूत वासुदेव ! आप असुरोंके संहारक, दिव्य मत्स्यरूप धारण करनेवाले, समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ तथा समुद्रमें शयन करनेवाले हैं। योगिवर ! आपकी जय हो, जय हो। सूर्य आपके नेत्र हैं तथा आप देवताओंके राजा हैं। वेदोंमें आप ही सर्वश्रेष्ठ बताये गये हैं। आपने कच्छप-अवतार धारण किया था। आप श्रेष्ठ यज्ञस्वरूप हैं।

आपकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ था, इसलिये आप पद्मनाभ कहलाते हैं। आप पहाड़ोंपर विचरनेवाले तथा योगशायी हैं। आपकी जय हो, जय हो। महान् वेग धारण करनेवाले विश्वमूर्ते! चक्रधर! भूतनाथ! धरणीधर! शेषशायिन्! आपकी जय हो, जय हो। आप पीताम्बरधारी, चन्द्रमाके समान कान्तिमान्, योगमें वास करनेवाले, अग्निमुख, धर्मके आवासस्थान, गुणोंके भंडार, लक्ष्मीके निवासस्थान और गरुड़वाहन हैं। आपकी जय हो, जय हो। आप आनन्द-निकेतन, धर्मध्वज, पृथ्वीके आश्रयस्थान और दुर्बोध चरित्र-वाले हैं। योगी पुरुष ही आपको जान पाते हैं। आप यज्ञोंमें निवास करनेवाले तथा वेदोंके वेद्य हैं। शान्ति प्रदान करने-वाले और योगियोंके ध्येय हैं। आपकी जय हो, जय हो। आप ही सबका पालन-पोषण करते हैं। ज्ञान आपका स्वरूप है। आप लक्ष्मीनिधि हैं। भाव-भक्तिसे ही आपका ज्ञान होना सम्भव है। मुक्ति आपके हाथमें है। आपका शरीर निर्मल है। आप सत्त्वगुणके अधिष्ठान, समस्त गुणोंसे समृद्धि-शाली, यज्ञकर्ता, निर्गुण तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। भूमण्डलको शरण देनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो, जय हो। आप दिव्य कान्तिसे सम्पन्न, समस्त लोकोंको शरण देनेवाले, भगवती लक्ष्मीसे संयुक्त, कमलके-से नेत्रोंवाले, सृष्टिकारक, योगयुक्त, अलसीके फूलकी भाँति श्याम अङ्गोंवाले, समुद्रके भीतर शयन करनेवाले, लक्ष्मीरूपी कमलके भ्रमर तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले हैं। लोककान्त! आपकी जय हो, जय हो। आप परम शान्त, परम सारभूत, चक्र धारण करनेवाले, सर्पोंके साथ रहनेवाले, नीलवस्त्रधारी, शान्तिकारक, मोक्षदायक तथा समस्त पापोंको दूर करनेवाले हैं। आपकी जय हो, जय हो। बलरामजीके छोटे भाई जगदीश्वर श्रीकृष्ण! आपकी जय हो; पद्मपत्रके समान नेत्रों-वाले तथा इच्छानुसार फल देनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। चक्र और गदा धारण करनेवाले नारायण! आपका वक्षः-स्थल वनमालासे आच्छादित है। आपकी जय हो। लक्ष्मी-कान्त विष्णो! आपको नमस्कार है। आपकी जय हो।

इस प्रकार श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राका स्तवन, दर्शन और वन्दन करके देवतालोग अपने-अपने स्थानको चले जाते हैं। उस समय जो मनुष्य मञ्चपर विराजमान पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राका दर्शन करते हैं, वे अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। सहस्र गो-दान, विधिवत् भूमि-दान, अर्घ्य और आतिथ्यपूर्वक अन्नदान, विधिवत् वृषोत्सर्ग, ग्रीष्मकालमें जल-दान, चान्द्रायण व्रतके अनुष्ठान तथा शास्त्रोक्त विधिसे एक मासतक उपवास करनेसे जो फल होता है, वही मञ्चपर विराजमान श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे मिल जाता है। अथवा अधिक कहने-की क्या आवश्यकता, सम्पूर्ण तीर्थोंमें व्रत और दानका जो फल बतलाया गया है, वह मञ्चस्थ श्रीकृष्ण, सुभद्रा और बलरामका दर्शन करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। अतः स्त्री हो या पुरुष, सबको उस समय पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। इससे सब तीर्थोंमें स्नान आदि करनेका फल मिलता है। भगवान्के स्नान किये हुए शेष जलको अपने शरीरपर छिड़कना चाहिये। इससे पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। सुख चाहनेवालीको सौभाग्य मिलता है। रोगार्त्त नारी रोगसे मुक्त हो जाती है और धनकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्रीको धन मिलता है। अतः भगवान् श्रीकृष्णके स्नानावशेष जलको अपने अङ्गोंपर छिड़कना चाहिये। वह सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको देनेवाला है। जो स्नानके पश्चात् दक्षिणाभिमुख जाते हुए भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, वे निश्चय ही ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। शास्त्रोंमें पृथ्वीकी तीन परिक्रमा करनेका जो फल बताया गया है, वही दक्षिणाभिमुख यात्रा करते हुए श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाय—वेद, शास्त्र, पुराण, महाभारत तथा समस्त धर्मशास्त्रोंमें पुण्यकर्मका जो कुछ भी फल बताया गया है, वह सब सुभद्राके साथ दक्षिणाभिमुख यात्रा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करनेमात्रसे मिल जाता है।

गुण्डिचा-यात्राका माहात्म्य तथा द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठा-विधि

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनियो! भगवान् श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्रा—ये रथपर विराजमान होकर जब गुण्डिचा[1]-मण्डपकी यात्रा करते हैं, उस समय जिन्हें उनका दर्शन प्राप्त होता है तथा जो लोग एक सप्ताहतक उक्त

१. गुण्डिचा नामक उद्यान-मन्दिर, जो पुरीमें इन्द्रद्युम्नसरोवरके तटपर स्थित है। इसके गुण्डिजा, गुडिवा आदि नाम भी मिलते हैं।

मण्डपमें विराजमान श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राकी झाँकी करते हैं, वे विष्णुलोकमें जाते हैं।

मुनियोंने पूछा—जगत्पते ! इस यात्राका आरम्भ किसने किया ? तथा उसमें सम्मिलित होनेवाले मनुष्योंको क्या फल मिलता है ?

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान्से प्रार्थना की कि 'मेरे सरोवरके तटपर एक सप्ताहके लिये आपकी यात्रा हो।'

श्रीभगवान् बोले—राजन् ! तुम्हारे सरोवरके तटपर सात दिनोंके लिये मेरी यात्रा होगी, वह यात्रा गुण्डिचा नामसे विख्यात और समस्त अभिलषित फलोंको देनेवाली होगी। जो लोग वहाँ मण्डपमें स्थित होनेपर मेरी, बलरामजीकी और सुभद्राकी एकाग्र चित्तसे श्रद्धापूर्वक पूजा करेंगे तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्र पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, भाँति-भाँतिके उपहार, नमस्कार, परिक्रमा, जय-जयकार, स्तोत्र-गीत तथा मनोहर वाद्योंके द्वारा आराधना करेंगे, उन्हें मेरी कृपासे कोई भी मनोरथ दुर्लभ नहीं रहेगा।

यों कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये और वे महाराज इन्द्रद्युम्न कृतकृत्य हो गये। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके गुण्डिचा-मण्डपमें समस्त अभिलषित वस्तुओंको देनेवाले भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। वहाँ पुरुषोत्तमका दर्शन करके स्त्री या पुरुष जिन-जिन भोगोंको चाहें, उन्हें प्राप्त कर सकते हैं।

मुनियोंने पूछा—भगवन् ! गुण्डिचाकी एक-एक यात्राका पृथक्-पृथक् क्या फल है ? उसे करनेसे नर या नारीको कौन-सा फल मिलता है ?

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! सुनो। मैं प्रत्येक यात्राका फल बताता हूँ। गुण्डिचामें प्रबोधिनी एकादशीके दिन, फाल्गुनकी पूर्णिमाको तथा विषुव योगमें विधिपूर्वक यात्रा करके श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राका दर्शन करनेसे मनुष्य वैकुण्ठ-धाममें जाता है। क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तमतीर्थ बड़ा ही पवित्र, रमणीय, मनुष्योंको भोग और मोक्षका दाता तथा सब जीवोंको सुख पहुँचानेवाला है। जो जितेन्द्रिय स्त्री या पुरुष ज्येष्ठमासमें वहाँ शास्त्रोक्त विधिके अनुसार बारह यात्राएँ करके एकाग्र चित्तसे उनकी प्रतिष्ठा करता है और उस समय धन खर्च करनेमें कृपणता नहीं करता, वह भाँति-भाँतिके भोगोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष-पदको प्राप्त होता है।

मुनियोंने कहा—देव ! जगत्पते ! हम आपके मुँहसे द्वादशयात्राकी प्रतिष्ठाकी विधि, पूजन, दान और फल सुनना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! जब बारह यात्राएँ पूरी हो जायँ, तब विधिपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा करे। वह सब पापोंका नाश करनेवाली है। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिको एकाग्र चित्तसे किसी पवित्र जलाशयपर जाकर आचमन करे और इन्द्रियसंयमपूर्वक पवित्र भावसे सब तीर्थोंका आवाहन करके भगवान् नारायणका ध्यान करते हुए विधिवत् स्नान करे। ऋषियोंने स्नान-कर्ममें जिसके लिये जैसी विधि बतलायी है, उसको उसी विधिसे स्नान करना चाहिये। स्नानके पश्चात् नाम, गोत्र और विधिका ज्ञाता पुरुष शास्त्रोक्त विधिसे देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्य जीवोंका तर्पण करे। फिर जलसे निकलकर दो स्वच्छ वस्त्र पहने और विधिपूर्वक आचमन करके एक सौ आठ बार गायत्रीका मानसिक जप करे। गायत्री सब वेदोंकी माता, सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाली तथा परम पवित्र है। इसके सिवा अन्यान्य सूर्यसम्बन्धी मन्त्रोंका भी श्रद्धापूर्वक जप करना चाहिये। तत्पश्चात् तीन बार परिक्रमा करके सूर्यदेवको प्रणाम करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंका स्नान और जप वैदिक विधिके अनुसार बताया गया है; किंतु स्त्री और शूद्रोंके स्नान और जपमें वैदिक विधिका निषेध है।

इसके बाद मौन होकर घरमें जाय और हाथ-पैर धोकर विधिवत् आचमन करके श्रीपुरुषोत्तमकी पूजा करे। पहले भगवान्‌को घीसे स्नान कराये। फिर दूधसे; उसके बाद मधु, गन्ध और जलसे; फिर तीर्थके चन्दन और जलसे स्नान कराये। तदनन्तर भक्तिपूर्वक दो उत्तम वस्त्र पहनावे; फिर चन्दन, अगर, कपूर और केसर भगवान्‌के अङ्गोंमें लगाये। पुनः पराभक्तिके साथ कमलसे तथा विष्णुदेवतासम्बन्धी मल्लिका आदि अन्य पुष्पोंसे श्रीपुरुषोत्तमकी पूजा करे। भोग और मोक्षके दाता जगदीश्वर श्रीहरिकी इस प्रकार पूजा करके उनके समक्ष अगर, गूगल तथा अन्य सुगन्धित पदार्थोंके साथ धूप जलाये। अपनी शक्तिके अनुसार घीसे दीपक जलाकर रक्खे, घी अथवा तिलके तेलसे अन्य बारह दीपक जलाकर रक्खे। नैवेद्यके रूपमें खीर, पूआ, पूड़ी, बड़ा, लड्डू, खाँड़ और फल निवेदन करे। इस प्रकार पञ्चोपचारसे श्रीपुरुषोत्तमका पूजन करके 'ॐ नमः पुरुषोत्तमाय' इस

मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। इसके बाद भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमस्ते सर्वलोकेश भक्तानामभयप्रद।
संसारसागरे मग्नं त्राहि मां पुरुषोत्तम॥
यास्ते मया कृता यात्रा द्वादशैव जगत्पते।
प्रसादात्तव गोविन्द सम्पूर्णास्ता भवन्तु मे॥

'भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले सर्वलोकेश्वर पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। मैं इस संसार-सागरमें डूबा हुआ हूँ। मेरा उद्धार कीजिये। जगत्पते! गोविन्द! आपके दर्शनके लिये मैंने जो बारहों यात्राएँ की हैं, वे सब आपके प्रसादसे मेरे लिये परिपूर्ण हों।'

इस प्रकार भगवान्‌को प्रसन्न करके साष्टाङ्ग दण्डवत् करे। तत्पश्चात् पुष्प, वस्त्र और चन्दन आदिसे भक्तिपूर्वक गुरुकी पूजा करे। क्योंकि गुरु और भगवान्‌में कोई अन्तर नहीं है। तदनन्तर भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे भगवान्‌के ऊपर एक सुन्दर पुष्प-मण्डप बनाये, फिर श्रद्धा और एकाग्रतापूर्वक रात्रिमें जागरण करे। भगवान् वासुदेवकी कथा और गीतकी व्यवस्था रक्खे। इस प्रकार विद्वान् पुरुष ध्यान, पाठ और स्तुति करते हुए रात्रि व्यतीत करे। तत्पश्चात् निर्मल प्रभात होनेपर द्वादशीको बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। वे ब्राह्मण स्नातक, वेदोंमें पारंगत, इतिहास-पुराणके ज्ञाता, श्रोत्रिय और जितेन्द्रिय होने चाहिये। इसके बाद स्वयं भी विधिपूर्वक स्नान करके धुला हुआ वस्त्र पहने और इन्द्रिय-संयमपूर्वक पहले भगवान्‌को स्नान कराकर उनकी पूजा करे। भगवान्‌की पूजाके बाद ब्राह्मणोंकी भी पूजा करे। उनके लिये बारह गौएँ दान करके श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सुवर्ण, छतरी और जूते, धन तथा वस्त्र आदि समर्पित करे। सद्भावसे पूजित होनेपर भगवान् गोविन्द संतुष्ट होते हैं। आचार्यको भी भक्तिपूर्वक गौ, वस्त्र, सुवर्ण, छतरी, जूते तथा काँसेका पात्र अर्पित करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको खीर, पकवान, गुड़ और घीमें बने हुए पदार्थ भोजन कराये। जब वे भोजन करके तृप्त हो जायँ, तब उनके लिये बारह जलसे भरे हुए घट दान करे। उन घड़ोंके साथ लड्डू और यथाशक्ति दक्षिणा भी होनी चाहिये। आचार्यको भी कलश और दक्षिणा निवेदन करे। इस तरह ब्राह्मणोंकी पूजा करके विष्णुतुल्य ज्ञानदाता गुरुकी भी पूर्ण भक्तिके साथ पूजा करे। पूजनके पश्चात् नमस्कार करके यह मन्त्र पढ़े—

सर्वव्यापी जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः।
अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः॥

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, सर्वव्यापी, जगन्नाथ एवं आदि-अन्तसे रहित भगवान् पुरुषोत्तम मुझपर प्रसन्न हों।'

यों कहकर ब्राह्मणोंकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। इसके बाद मस्तक झुकाकर आचार्यको भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। प्रणामके पश्चात् उन्हें विदा करे। फिर अन्य ब्राह्मणोंको भी गाँवकी सीमातक पहुँचा दे। अन्तमें सबको नमस्कार करके लौट आये। फिर स्वजनों, बान्धवों, अन्य उपासकों, दीनों, भिखमंगों और अन्न चाहनेवाले अन्य लोगोंको भोजन कराकर फिर मौन होकर भोजन करे। ऐसा करके समस्त नर-नारी एक हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञोंका फल पाते हैं तथा ऐसा करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष सूर्यके समान तेजस्वी और इच्छानुसार चलनेवाले विमानके द्वारा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

तीर्थोंके भेद, वामनका बलिसे भूमिदान-ग्रहण तथा गङ्गाजीका महेश्वरकी जटामें गमन

ब्रह्माजी कहते हैं—द्विजवरो! सब तीर्थों और क्षेत्रोंमें जो जप, होम, व्रत और तपस्या तथा दानके फल प्राप्त होते हैं, उनमेंसे कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो पुरुषोत्तमक्षेत्रमें रहनेके फलकी समानता कर सके। अब बारंबार अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, वह पुरुषोत्तमक्षेत्र सबसे महान् है—यह बात सत्य है, सत्य है, सत्य है। समुद्रके जलसे घिरे हुए पुरुषोत्तम-तीर्थका एक बार भी दर्शन कर लेनेपर तथा ब्रह्मविद्याका एक बार बोध हो जानेपर मनुष्य फिर गर्भमें नहीं आता। जहाँ भगवान् विष्णुका संनिधान है, उस उत्तम पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें एक वर्ष अथवा एक मासतक भगवान्‌की उपासना करे। ऐसा करनेवाले पुरुषने जप, होम तथा भारी तपस्या की है। वह उस परम धाममें जाता है, जहाँ साक्षात् योगेश्वर श्रीहरि विराजमान रहते हैं।

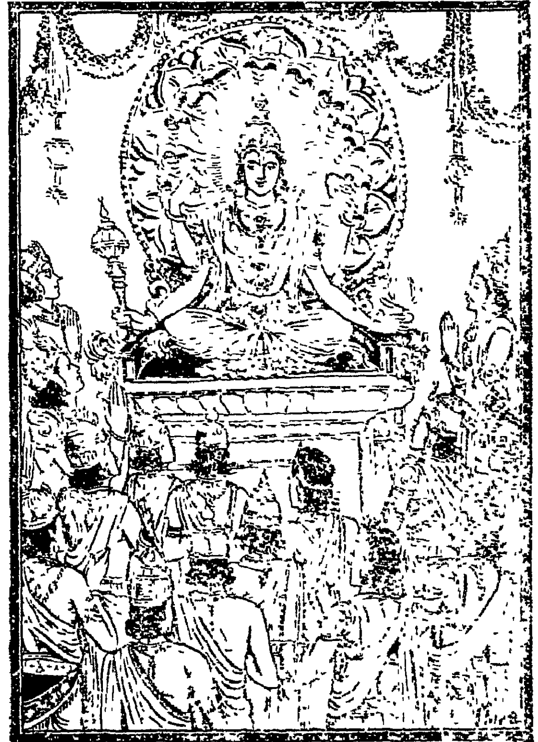
मुनियोंने कहा—भगवन्! हमें तीर्थकी महिमाका विस्तारपूर्वक श्रवण करनेपर भी तृप्ति नहीं होती। आप पुनः किसी गोपनीय तीर्थका वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—श्रेष्ठ ब्राह्मणो! पूर्वकालमें देवर्षि नारदने मुझसे यही प्रश्न पूछा था। उस समय मैंने प्रयत्नपूर्वक जो कुछ उनसे कहा था, वही तुम्हें भी बतलाता हूँ।

नारदजीने पूछा—जगत्पते! स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातलमें कुल कितने तीर्थ हैं? तथा सब तीर्थोंमें सदा कौन सबसे बढ़कर है?

ब्रह्माजी बोले—देवर्षे! स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातलमें चार प्रकारके तीर्थ हैं—दैव, आसुर, आर्ष और मानुष। ये तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। जम्बूद्वीपमें भारतवर्ष तीर्थभूमि है। वह तीनों लोकोंमें विख्यात है। बेटा! वह कर्मभूमि है, इसलिये उसे तीर्थ कहते हैं। पहले मैंने तुम्हें जो बताये हैं, वे सब तीर्थ भारतवर्षमें ही हैं। हिमालय और विन्ध्यपर्वतके बीचमें छः ऐसी नदियाँ हैं, जिनका प्राकट्य ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन देवताओंसे हुआ है। इसी प्रकार दक्षिणसमुद्र तथा विन्ध्यपर्वतके बीचमें भी छः देवसम्भवा नदियाँ हैं। ये बारह नदियाँ प्रधानरूपसे बतलायी गयी हैं। गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, कृष्णवेणी, तापी और पयोष्णी—ये विन्ध्यपर्वतके दक्षिणकी नदियाँ हैं। भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता—ये विन्ध्याचल और हिमालय पर्वतसे सम्बन्ध रखनेवाली नदियाँ हैं। इन पुण्यमयी नदियोंको देवतीर्थ बताया गया है। गय, कोल्लासुर, वृत्र, त्रिपुर, अन्धक, हयमूर्धा, लवण, नमुचि, शृङ्गक, यम, पातालकेतु, मय तथा पुष्कर—इनके द्वारा आवृत तीर्थ आसुर कहलाते हैं। प्रभास, भार्गव, अगस्ति, नर-नारायण, वसिष्ठ, भरद्वाज, गोतम और कश्यप—इन ऋषि-मुनियोंद्वारा सेवित तीर्थ ऋषितीर्थ हैं। अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्धाता, मनु, कुरु, कनखल, भद्राश्व, सगर, अश्वयूप, नचिकेता, वृषाकपि तथा अरिन्दम आदि मानवोंद्वारा निर्मित तीर्थ मानुष कहलाते हैं। ये सब यश तथा उत्तम फलकी सिद्धिके लिये निर्मित हुए हैं। तीनों लोकोंमें कहीं भी जो स्वतः प्रकट हुए दैव तीर्थ हैं, उन्हें पुण्यतीर्थ कहा गया है। इस प्रकार मैंने तीर्थ-भेद बतलाये हैं।

महादैत्य राजा बलि देवताओंके अजेय शत्रु हुए; उन्होंने धर्म, यश, प्रजापालन, गुरुभक्ति, सत्यभाषण, बल, पराक्रम, त्याग और क्षमाके द्वारा वह सम्मान प्राप्त किया, जिसकी तीनों लोकोंमें कहीं उपमा नहीं है। उनकी बढ़ती हुई समृद्धि देखकर देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई। वे आपसमें सलाह करने लगे कि हम बलिको कैसे जीतें। राजा बलिके शासनकालमें तीनों लोक निष्कण्टक थे। कहींपर आधि-व्याधि अथवा शत्रुओंकी बाधा नहीं थी। अनावृष्टि और अधर्मका तो नाम भी नहीं था। स्वप्नमें भी किसीको दुष्ट पुरुषका दर्शन नहीं होता था। देवताओंको उनकी उन्नति बाणकी तरह चुभती थी। बलिकी कीर्तिरूपी तलवारसे वे टुकड़े-टुकड़े हुए जाते थे तथा उनके शासनरूपी शक्तिसे देवताओंके समस्त अङ्ग विदीर्ण हो रहे थे। अतः उन्हें कभी शान्ति नहीं मिलती थी। देवता उनसे द्वेष करने लगे। उनके यशरूपी अग्निसे जलने लगे। अतः वे व्याकुल होकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये।



देवता बोले—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगन्नाथ! हम पीड़ित हैं। हमारी सत्ता छिन गयी है। आप हमारी ही रक्षाके लिये अस्त्र-शस्त्र धारण करते हैं। आप-जैसे स्वामीके होते हुए हमपर ऐसा दुःख आ पड़ा है। हमारी जो वाणी आपको प्रणाम करती थी, वही एक दैत्यको कैसे नमस्कार करेगी। सुरेश्वर! आपके ऐश्वर्यसे पुष्ट हो अपने ही पराक्रमसे तीनों लोकोंको जीतकर हम स्थिर होंगे। दैत्यको कैसे नमस्कार करें।

देवताओंका यह वचन सुनकर दैत्योंका संहार करनेवाले भगवान्ने देवकार्यकी सिद्धिके लिये इस प्रकार कहा—

श्रीभगवान् बोले—देवताओ ! बलि मेरा भक्त है, उसे देवता और असुर कोई भी नहीं मार सकते । जैसे तुम-लोग मेरे द्वारा पालन-पोषणके योग्य हो, वैसे बलि भी है । मैं बिना युद्धके ही स्वर्गमें बलिका राज्य छीन लूँगा और बलिको बाँधकर तुम्हारा राज्य तुम्हें लौटा दूँगा ।

ब्रह्माजी कहते हैं—'बहुत अच्छा' कहकर देवता स्वर्गमें चले गये । इधर देवताओंके स्वामी भगवान् विष्णुने अदितिके गर्भमें प्रवेश किया । उनके जन्मके समय अनेक प्रकारके उत्सव होने लगे । यज्ञेश्वर यज्ञपुरुष स्वयं ही वामनरूपमें अवतीर्ण हुए । इसी समय बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिने अश्वमेध-यज्ञकी दीक्षा ली । प्रधान-प्रधान ऋषि तथा वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता पुरोहित शुक्राचार्यने उस यज्ञका आरम्भ कराया । स्वयं शुक्र ही यज्ञके आचार्य थे । उस यज्ञमें हविष्यका भाग लेनेके लिये जब सब देवता निकट आये, 'दान दो', 'भोजन करो', 'सबका सत्कार करो,' 'पूर्ण हो गया', 'पूर्ण हो गया' इत्यादि शब्द यज्ञमण्डपमें गूँजने लगे, उसी समय विचित्र कुण्डल धारण किये साम-गान करते हुए वामनजी धीरे-धीरे यज्ञशालामें आये । आनेपर वे यज्ञकी प्रशंसा करने लगे । शुक्राचार्यने उन्हें देखते ही समझ लिया कि ये ब्राह्मणरूपधारी वामन देवता वास्तवमें दैत्योंके विनाशक, यज्ञ और तपस्याके फल देनेवाले और राक्षसकुलका संहार करनेवाले साक्षात् विष्णु हैं । बलवानोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी राजा बलि क्षत्रिय-धर्मके अनुसार विजयी होकर भक्तिपूर्वक धनका दान करते हुए अपनी पत्नीके साथ यज्ञकी दीक्षा लेकर बैठे थे और हविष्यका हवन करते हुए यज्ञपुरुषका ध्यान कर रहे थे । शुक्राचार्यजी-ने वामनजीको पहचानकर तुरंत ही राजा बलिसे कहा—'राजन् ! ये जो बौने शरीरवाले ब्राह्मण तुम्हारे यज्ञमें आये हैं, ये वास्तवमें ब्राह्मण नहीं, यज्ञवाहन यज्ञेश्वर विष्णु हैं । प्रभो ! इसमें तनिक संदेह नहीं कि ये देवताओंका हित करनेके लिये बालकरूप धारणकर तुमसे कुछ याचना करने आये हैं । अतः पहले मुझसे सलाह लेकर पीछे इन्हें कुछ देना चाहिये ।'

यह सुनकर शत्रुविजयी बलिने अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे कहा—'मैं धन्य हूँ, जिसके घरपर साक्षात् यज्ञेश्वर मूर्तिमान् होकर पधारते और कुछ याचना करते हैं । अब इसमें सलाह लेनेके योग्य कौन-सी बात रह जाती है ।' यों कहकर पत्नी और पुरोहित शुक्राचार्यके साथ राजा बलि उस स्थानपर आये, जहाँ अदितिनन्दन वामनजी विराजमान थे । राजाने हाथ जोड़कर पूछा—'भगवन् ! बताइये, आप क्या चाहते हैं ?' तब वामनजीने कहा—'महाराज ! केवल तीन पग भूमि दे दीजिये, और किसी धनकी मुझे आवश्यकता नहीं है ।' 'बहुत अच्छा' कहकर राजा बलिने रत्नजटित कलशसे जल लिया और वामनजीको भूमि संकल्प करके दे दी । सभी महर्षि और शुक्राचार्य चुपचाप देखते रहे । वामनजीने धीरेसे कहा—'राजन् ! स्वस्ति, आप सुखी रहें । मुझे मेरी नापी हुई तीन पग भूमि दे दीजिये ।' बलिने 'तथास्तु' कहकर ज्यों ही वामनजीकी ओर देखा, वे विराट्रूप हो गये । चन्द्रमा और सूर्य उनकी छातीके सामने आ गये । उन्हें इस रूपमें देखकर स्त्रीसहित दैत्यराज बलिने विनयपूर्वक कहा—'जगन्मय विष्णो ! आप अपनी शक्तिभर पैर बढ़ाइये ।'

विष्णु बोले—दैत्यराज ! देखो, मैं पैर बढ़ाता हूँ ।

बलिने कहा—बढ़ाइये, अवश्य बढ़ाइये ।

तब भगवान्ने पृथ्वीके नीचे स्थित कच्छपकी पीठपर पैर रखकर पहला पग बलिके यज्ञमें रक्खा, किंतु उनका दूसरा पग ब्रह्मलोकतक जा पहुँचा । उस समय उन्होंने बलिसे कहा—'दैत्यराज ! मेरा तीसरा पग रखनेके लिये तो स्थान ही नहीं है, कहाँ रक्खूँ ? स्थान दो ।'

यह सुनकर बलिने हँसते हुए कहा—'जगन्मय देवेश्वर ! आपने ही तो जगत्की सृष्टि की है, मैं तो इसका स्रष्टा नहीं हूँ । यदि यह छोटा या थोड़ा हो गया तो इसमें आपका ही दोष है, मैं क्या करूँ । केशव ! फिर भी मैं कभी असत्य नहीं बोलता, अतः मेरे सत्यकी रक्षा करते हुए आप अपना तीसरा पग मेरी पीठपर ही रखिये ।'

बलिका यह वचन सुनकर वेदत्रयीरूप देवपूजित भगवान् प्रसन्न होकर बोले—'दैत्यराज ! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो, कोई वर माँगो ।' तब बलिने जगत्के स्वामी भगवान् त्रिविक्रमसे कहा—'अब मैं आपसे याचना नहीं करूँगा ।' तब भगवान्ने स्वयं ही प्रसन्न होकर उन्हें मनोवाञ्छित वर दिया । वर्तमान समयमें रसातलका राज्य, भविष्यमें इन्द्र-पद, स्वतन्त्रता तथा अविनाशी यश आदि प्रदान किये । इस प्रकार दैत्यराज बलिको यह सब कुछ देकर भगवान्ने उन्हें पुत्र और पत्नीसहित रसातलमें भेज दिया और इन्द्रको देवताओंका राज्य अर्पित किया । इसी बीचमें उनका जो दूसरा पग मेरे लोकमें पहुँचा था, उसे देखकर मैंने सोचा,



'यह मेरे जन्मदाता भगवान् विष्णुका चरण है, जो सौभाग्य-वश मेरे घरपर आ पहुँचा है। इसके लिये मैं क्या करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो? मेरे पास जो यह श्रेष्ठ कमण्डलु है, इसमें भगवान् शंकरका दिया हुआ पवित्र जल है। यह जल उत्तम, वरदायक, शान्तिकारक, शुभद, भोग और मोक्षका दाता, विश्वके लिये मातृरूप, अमृतमय, पवित्र औषध, पावन, पूज्य, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, गुणमय तथा स्मरणमात्रसे लोकोंको पवित्र करनेवाला है। यह जल मैं अपने पिताको अर्घ्यरूपमें अर्पित करूँगा।' यह सोचकर मैंने वह जल भगवान्‌के चरणोंमें अर्घ्यरूपसे चढ़ा दिया। वह मन्त्रयुक्त अर्घ्यजल भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिरकर मेरुपर्वतपर पड़ा और चार भागोंमें बँटकर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशामें पृथ्वीपर जा पहुँचा। दक्षिणमें गिरे हुए जलको भगवान् शंकरने जटाओंमें रख लिया। पश्चिममें जो जल गिरा, वह फिर कमण्डलुमें ही चला आया। उत्तरमें गिरे हुए जलको भगवान् विष्णुने ग्रहण किया तथा पूर्वमें जो जल गिरा, उसे देवताओं, पितरों और लोकपालोंने ग्रहण किया; अतः यह जल अत्यन्त श्रेष्ठ कहा जाता है। भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकलकर दक्षिण दिशामें गया हुआ जल, जो भगवान् शंकरकी जटामें स्थित हुआ, पर्वके समय शुभोदय करनेवाला है। उसके प्रभावका स्मरण करनेसे समस्त अभिलषित वस्तुओंकी प्राप्ति होती है।

गौतमके द्वारा भगवान् शंकरकी स्तुति, शिवका गौतमको जटासहित गङ्गाका अर्पण तथा गौतमी गङ्गाका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! भगवान् शंकरकी जटामें जो दिव्य जल आकर स्थित हुआ, उसके दो भेद हुए; क्योंकि उसे पृथ्वीपर उतारनेवाले दो व्यक्ति थे। उस जलके एक भागको तो व्रत, दान और समाधिमें तत्पर रहनेवाले गौतम नामक ब्राह्मणने भगवान् शिवकी आराधना करके भूतलतक पहुँचाया, जो सम्पूर्ण लोकमें विख्यात हुआ; तथा दूसरा भाग बलवान् क्षत्रिय राजा भगीरथने इस पृथ्वीपर उतारा। इसके लिये उन्हें नियमोंका पालन करते हुए तपस्याद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना करनी पड़ी थी। इस प्रकार एक ही गङ्गाके दो स्वरूप हो गये।

एक समयकी बात है, महर्षि गौतम कैलासपर्वतपर गये और मौनभावसे कुशा बिछाकर उसपर बैठे; फिर पवित्र होकर इस स्तोत्रका गान करने लगे।

गौतम बोले—भोगकी अभिलाषा रखनेवाले जीवोंके मनोवाञ्छित भोग प्रदान करनेके लिये पार्वतीसहित भगवान् शंकर उत्तम गुणोंसे युक्त आठ विराट् स्वरूप धारण करते हैं। इस प्रकार विद्वान् पुरुष प्रतिदिन भगवान् महादेवजीकी स्तुति किया करते हैं। महेश्वरका जो पृथ्वीमय शरीर है, वह अपने विषयोंद्वारा सुख पहुँचाने, समस्त चराचर जगत्‌का भरण-पोषण करने, उसकी सम्पत्ति बढ़ाने तथा सबका अभ्युदय करनेके लिये है। शान्तिमय शरीरवाले भगवान् शिवने जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेके लिये पृथ्वीके आधारभूत जलका स्वरूप धारण किया है। उनका वह लोक-प्रतिष्ठित रूप सब लोगोंको सुख पहुँचाने तथा धर्मकी सिद्धि करनेका भी हेतु है। महेश्वर! आपने समयकी व्यवस्था करने, अमृतका स्रोत बहाने, जीवोंकी

सृष्टि, पालन और संहार करने तथा प्रजाको मोद, सुख एवं उन्नतिका अवसर देनेके लिये सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निका शरीर धारण किया है। ईश ! आपने जो वायुका रूप ग्रहण किया है, उसमें भी एक रहस्य है। सब लोग प्रतिदिन बढ़ें, चलें, फिरें, शक्तिका उपार्जन करें, अक्षरोंका उच्चारण कर सकें, जीवन कायम रहे और अनेक प्रकारके आमोद-प्रमोदकी सृष्टि हो, इसीलिये आपका वह रूप है। भगवन् ! इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि अपने आपको आप ही ठीक-ठीक जानते हैं। भेद (अवकाश) के बिना न कोई क्रिया हो सकती है न धर्म हो सकता है, न अपने या परायेका बोध होगा न दिशा, अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथ्वी तथा भोग और मोक्षका ही अन्तर जान पड़ेगा; अतः महेश्वर ! आपने यह आकाशरूप ग्रहण किया है। धर्मकी व्यवस्था करनेका निश्चय करके आपने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, उनकी शाखाओं और शास्त्रोंका विभाग किया है तथा लोकमें भी इसी उद्देश्यसे गाथाओं, स्मृतियों और पुराणोंका प्रसार किया है। ये सब शब्दस्वरूप ही हैं। शम्भो ! यजमान, यज्ञ, यज्ञोंके साधन, ऋत्विक्, यज्ञका स्थान, फल, देश और काल--ये सब आप ही हैं। आप ही परमार्थतत्त्व हैं। विद्वान् पुरुष आपके शरीरको यज्ञाङ्गमय बतलाते हैं। केवल वाग्विलास करनेसे क्या लाभ—कर्ता, दाता, प्रतिनिधि, दान, सर्वज्ञ, साक्षी, परम पुरुष, सबका अन्तरात्मा तथा परमार्थस्वरूप सब कुछ आप ही हैं। भगवन् ! वेद, शास्त्र और गुरु भी आपके तत्त्वका भलीभाँति उपदेश नहीं कर सके हैं। निश्चय ही आपतक बुद्धि आदिकी भी पहुँच नहीं है। आप अजन्मा, अप्रमेय और शिव-शब्दसे वाच्य हैं, आप ही सत्य हैं। आपको नमस्कार है। किसी समय भगवान् शिवने अपनी प्रकृतिको इस भावसे देखा कि यह मेरी सम्पत्ति है; उसी समय वे एकसे अनेक हो गये, विश्वरूपमें प्रकट हो गये। वास्तवमें उनका प्रभाव अतर्क्य और अचिन्त्य है। भगवान् शिवकी प्रिया शिवा देवी भी नित्य हैं। भव (भगवान् शंकर) में उनका भाव (हार्दिक अनुराग) पूर्णरूपसे बढ़ा हुआ है; वे इस भव (संसार) की उत्पत्तिमें स्वयं कारण हैं, तथा सर्वकारण महेश्वरके आश्रित हैं। शिवा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा विश्वविधाता शिवकी विलक्षण शक्ति हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, अन्नकी वृद्धि तथा लय—ये सनातन भाव जहाँ होते रहते हैं, वह एकमात्र पार्वतीदेवीका ही स्वरूप है। वे भगवान् शंकरकी प्राणवल्लभा हैं। उनके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। समस्त जीव जिनके लिये अन्नदान देते और तपस्या करते हैं, वे जगज्जननी माता पार्वती ही हैं। उनकी उत्तम कीर्ति बहुत बड़ी है। वे शिवकी प्रियतमा हैं। इन्द्र भी जिनकी कृपादृष्टि चाहते हैं, जिनका नाम लेनेसे मङ्गलकी प्राप्ति होती है, जो सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हो इसे निर्मल बनाती हैं, वे भगवती उमा ही हैं। उनका रूप सदा चन्द्रमाके समान ही मनोरम है। जिनके प्रसादसे ब्रह्मा आदि चराचर जीवोंकी बुद्धि, नेत्र, चेतना और मनमें सदा सुखकी प्राप्ति होती है, वे जगद्गुरु शिवकी सुन्दरी शक्ति शिवा वाणीकी अधीश्वरी हैं। आज ब्रह्माजीका भी मन मलिन हो रहा है, फिर अन्य जीवोंकी तो बात ही क्या—यह सोचकर जगन्माता उमाने अनेक उपायोंसे सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेके लिये गङ्गाका अवतार धारण किया है। श्रुतियोंको देखकर तथा सब प्रमाणोंसे भगवान् शंकरकी प्रभुतापर विश्वास करके लोग जो धर्मोंका अनुष्ठान करते और उनके फलस्वरूप जो उत्तम भोग भोगते हैं, यह भगवान् सदाशिवकी ही विभूति है। वैदिक अथवा लौकिक कार्य, क्रिया, कारक और साधनोंका जो सबसे उत्तम एवं प्रिय साध्य है, वह अनादि कर्त्ता शिवकी प्राप्ति ही है। जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म, परप्रधान, सारभूत और उपासनाके योग्य है, जिसका ध्यान तथा जिसकी प्राप्ति करके श्रेष्ठ योगी पुरुष मुक्त हो जाते—पुनः संसारमें जन्म नहीं लेते, वे भगवान् उमापति ही मोक्ष हैं। माता पार्वती ! भगवान् शंकर जगत्का कल्याण करनेके लिये जैसे-जैसे अपार मायामय रूप धारण करते हैं, वैसे-ही-वैसे तुम भी उनके योग्य रूप धारण करती हो। इस प्रकार तुममें पातिव्रत्य जाग्रत् रहता है।

गौतमजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर वृषभाङ्कित ध्वजावाले साक्षात् भगवान् शिव उनके सामने प्रकट हुए और प्रसन्न होकर बोले—'गौतम ! तुम्हारी भक्ति, स्तुति तथा उत्तम व्रतसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। माँगो, तुम्हें क्या दूँ ! जो वस्तु देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो, वह भी तुम माँग सकते हो।'



गौतमने कहा—जगदीश्वर ! समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली इन पावन देवीको, जो आपकी जटामें स्थित और आपको परम प्रिय हैं, ब्रह्मगिरिपर छोड़ दीजिये । ये समुद्रमें मिलनेतक सबके लिये तीर्थरूप होकर रहें । इनमें स्नान करनेमात्रसे मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप नष्ट हो जायँ । चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, अयनारम्भ, विषुवयोग, संक्रान्ति तथा वैधृति योग आनेपर अन्य पुण्यतीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वह इनके स्मरणमात्रसे ही प्राप्त हो जाय । ये समुद्रमें पहुँचनेतक जहाँ-जहाँ जायँ, वहाँ-वहाँ आप अवश्य रहें । यह श्रेष्ठ वर मुझे प्राप्त हो । तथा इनके तटसे एक योजनसे लेकर दस योजनतककी दूरीके भीतर आये हुए महापातकी मनुष्य भी यदि स्नान किये बिना ही मृत्युको प्राप्त हो जायँ तो वे भी मुक्तिके भागी हों ।

ब्रह्माजी कहते हैं—गौतमकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर बोले—'इससे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न तो हुआ है न होगा; यह बात सत्य है, सत्य है, सत्य है और वेदमें भी निश्चित की गयी है कि गौतमी गङ्गा (गोदावरी) सब तीर्थोंसे अधिक पवित्र हैं ।' यों कहकर वे अन्तर्धान हो गये । लोकपूजित भगवान् शिवके चले जानेपर गौतमने उनकी आज्ञासे जटासहित सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाको साथ ले देवताओंसे घिरकर ब्रह्मगिरिमें प्रवेश किया । उस समय महाभाग महर्षि, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय भी आनन्दमग्न होकर जय-जयकार करते हुए ब्रह्मर्षि गौतमकी प्रशंसा करने लगे ।

पवित्र एवं संयत चित्तवाले गौतमने जटाको ब्रह्मगिरिके शिखरपर रक्खा और भगवान् शङ्करका स्मरण करते हुए गङ्गाजीसे हाथ जोड़कर कहा—'तीन नेत्रोंवाले भगवान् शिवकी जटासे प्रकट हुई माता गङ्गा ! तुम सब अभीष्टोंको देनेवाली और शान्त हो । मेरा अपराध क्षमा करो और सुखपूर्वक यहाँसे प्रवाहित होकर जगत्का कल्याण करो । देवि ! मैंने तीनो लोकोंका उपकार करनेके लिये तुम्हारी याचना की है और भगवान् शंकरने भी इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये तुम्हें दिया है । अतः हमारा यह मनोरथ असफल नहीं होना चाहिये ।'

गौतमका यह वचन सुनकर भगवती गङ्गाने उसे स्वीकार किया और अपने-आपको तीन स्वरूपोंमें विभक्त करके स्वर्गलोक, मर्त्यलोक एवं रसातलमें फैल गयीं । स्वर्गलोकमें उनके चार रूप हुए, मर्त्यलोकमें वे सात धाराओंमें बहने लगीं तथा रसातलमें भी उनकी चार धाराएँ हुईं । इस प्रकार एक ही गङ्गाके पंद्रह आकार हो गये । गङ्गा देवी सर्वत्र हैं, सर्वभूतस्वरूपा हैं, सब पापोंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हैं । वेदमें सदा उन्हींके यशका गान किया जाता है । जिनकी बुद्धि अज्ञानसे मोहित है, वे मर्त्यलोकके निवासी समझते हैं कि गङ्गा केवल मर्त्यलोकमें ही हैं, पाताल अथवा स्वर्गमें नहीं हैं । भगवती गङ्गा जहाँतक पहुँचकर सागरमें मिली हैं, वहाँतक वे देवमयी मानी गयी हैं । महर्षि गौतमके छोड़नेपर वे पूर्वसमुद्रकी ओर चली गयीं । उस समय देवर्षियोंद्वारा सेवित कल्याणमयी जगन्माता गङ्गाकी मुनिश्रेष्ठ गौतमने परिक्रमा की । इसके बाद उन्होंने देवेश्वर भगवान् त्र्यम्बकका पूजन किया । उनके स्मरण करते ही करुणासिन्धु भगवान् शिव वहाँ प्रकट हो गये । पूजा करके महर्षि गौतमने कहा—'देवदेव महेश्वर ! आप सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये मुझे इस तीर्थमें स्नान करनेकी विधि बताइये ।'

भगवान् शिव बोले—महर्षे ! गोदावरीमें स्नान करनेकी सम्पूर्ण विधि सुनो । पहले नान्दीमुख श्राद्ध करके शरीरकी शुद्धि करे, फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उनसे स्नान करनेकी आज्ञा ले । तदनन्तर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गोदावरी नदीमें स्नान करनेके लिये जाय । उस समय पतित मनुष्योंके साथ वार्तालाप न करे । जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयममें रहते हैं, वही तीर्थका पूरा फल पाता है । भावदोष (दुर्भावना) का परित्याग करके अपने धर्ममें स्थिर रहे और थके-माँदे, पीड़ित मनुष्योंकी सेवा करते हुए उन्हें यथायोग्य अन्न दे । जिनके पास कुछ नहीं है, ऐसे साधुओंको वस्त्र और कम्बल दे । भगवान् विष्णुकी तथा गङ्गाजीके प्रकट होनेकी दिव्य कथा सुने । इस विधिसे यात्रा करनेवाला मनुष्य तीर्थके उत्तम फलका भागी होता है ।

गौतम ! गोदावरी नदीमें दो-दो हाथ भूमिपर तीर्थ होंगे । उनमें मैं स्वयं सर्वत्र रहकर सबकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करता रहूँगा । सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा अमरकण्टक पर्वतपर अधिक उत्तम मानी गयी हैं । यमुनाका विशेष महत्त्व उस स्थानपर है, जहाँ वे गङ्गासे मिली हैं । सरस्वती नदी प्रभासतीर्थमें श्रेष्ठ बतायी गयी है । तृष्णा, भीमरथी और तुङ्गभद्रा—इन तीन नदियोंका जहाँ समागम हुआ है, वह तीर्थ मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला है । इसी प्रकार पयोष्णी नदी भी जहाँ तपती (तापती) में मिली हैं, वह तीर्थ मोक्षदायक है; परंतु ये गौतमी गङ्गा मेरी आज्ञासे सर्वत्र सर्वदा और सब मनुष्योंको स्नान करनेपर मोक्ष प्रदान करेंगी । कोई-कोई तीर्थ किसी विशेष समयमें देवताका शुभागमन होनेपर अधिक पुण्यमय माना जाता है, किंतु गोदावरी नदी सदा ही सबके लिये तीर्थ है । मुनिश्रेष्ठ ! दो सौ योजनके भीतर गोदावरी नदीमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ होंगे । ये गङ्गा निम्नाङ्कित नामोंसे प्रसिद्ध होंगी—माहेश्वरी, गङ्गा, गौतमी, वैष्णवी, गोदावरी, नन्दा, सुनन्दा, कामदायिनी, ब्रह्मतेजःसमानीता तथा सर्वपापप्रणाशिनी । गोदावरी मुझे सदा ही प्रिय हैं । ये स्मरणमात्रसे पाप-राशिका विनाश करनेवाली हैं । पाँचों भूतोंमें जल श्रेष्ठ है ! जलमें भी जो तीर्थका जल है, वह सर्वश्रेष्ठ माना गया है । तीर्थ-जलमें भी भागीरथी गङ्गा श्रेष्ठ हैं और उनसे भी गौतमी गङ्गा उत्कृष्ट मानी गयी हैं; क्योंकि ये भगवान् शंकरकी जटाके साथ लायी गयी थीं । अतः इनसे बढ़कर कल्याणकारी तीर्थ दूसरा कोई नहीं है । मुने ! स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें भी गङ्गा सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली हैं ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार साक्षात् भगवान् शंकरने संतुष्ट होकर महात्मा गौतमको गोदावरीका यह माहात्म्य बतलाया था । वही मैंने तुमको सुनाया है ।

भागीरथी गङ्गाके अवतरणकी कथा

नारदजीने कहा—सुरश्रेष्ठ ! एक ही गङ्गाके आपने दो भेद बतलाये हैं । एक तो वह है, जो गौतम नामक ब्राह्मणके द्वारा लाया गया और दूसरा अंश भगवान् शंकरकी जटामें ही रह गया, जिसे क्षत्रिय राजा भगीरथ ले आये । अतः उसीका प्रसङ्ग मुझे सुनाइये ।

ब्रह्माजी बोले—देवर्षे ! वैवस्वत मनुके वंशमें राजा इक्ष्वाकुके कुलमें पहले सगर नामके एक अत्यन्त धार्मिक राजा हो गये हैं । वे यज्ञ करते, दान देते और सदा धार्मिक आचार-विचारसे रहते थे । उनके दो पत्नियाँ थीं । वे दोनों ही पतिभक्ति-परायणा थीं, किंतु उनमेंसे किसीको भी संतान न हुई । इसलिये राजाके मनमें बड़ी चिन्ता थी । एक दिन उन्होंने महर्षि वसिष्ठको अपने घर बुलाया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके पूछा—'किस उपायसे मुझे संतान होगी ?' उनकी यह बात सुनकर महर्षि वसिष्ठने कुछ कालतक ध्यान किया । उसके बाद राजासे कहा—'राजन् ! तुम पत्नीसहित सदा ऋषि-महर्षियोंका सेवन करते रहो ।' यों कहकर महर्षि वसिष्ठ अपने आश्रमको चले गये । एक समयकी बात है—राजर्षि सगरके घरपर एक तपस्वी महात्मा पधारे । राजाने उन महर्षिका पूजन किया । इससे संतुष्ट होकर वे बोले—'महाभाग ! वर माँगो ।' यह सुनकर राजाने पुत्र होनेके लिये प्रार्थना की । मुनि बोले—'तुम्हारी एक पत्नीके गर्भसे एक ही पुत्र होगा, किंतु वह वंशधर होगा; और दूसरी स्त्रीके गर्भसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे ।' वरदान देकर जब मुनि चले गये, तब उनके कथनानुसार यथासमय राजाके हजारों पुत्र हुए । राजा सगरने उत्तम दक्षिणासे युक्त बहुतेरे अश्वमेध-यज्ञ किये ।

फिर एक अश्वमेध यज्ञके लिये उन्होंने विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की और अश्वकी रक्षाके लिये सेनासहित अपने पुत्रोंको नियुक्त किया। अश्व पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा। इसी बीचमें कहीं अवसर पाकर इन्द्रने उस अश्वको हर लिया और रक्षकोंको सौंप दिया। राजकुमार घोड़ेको इधर-उधर ढूँढ़ने लगे, परंतु कहीं भी वह उन्हें दिखायी न दिया। तब उन्होंने देवलोकमें जाकर ढूँढ़ा, पर्वतों और सरोवरोंमें खोजा और कितने ही जङ्गल छान डाले; मगर कहीं भी उसका पता न लगा। इसी समय आकाशवाणी हुई—'सगरपुत्रो! तुम्हारा घोड़ा रसातलमें बँधा है, और कहीं नहीं है।' यह सुनकर वे रसातलमें जानेके लिये सब ओरसे पृथ्वीको खोदने लगे। क्षुधासे पीड़ित होनेपर वे सूखी मिट्टी खाते और दिन-रात भूमि खोदते रहते। इस प्रकार वे शीघ्र ही रसातलमें जा पहुँचे। सगरके बलवान् पुत्रोंको वहाँ आया सुनकर राक्षस थर्रा उठे और उनके वधका उपाय करने लगे। वे बिना युद्ध किये ही भयभीत हो उस स्थानपर आये, जहाँ महामुनि कपिल सो रहे थे। कपिलजीका क्रोध बड़ा प्रचण्ड था। राक्षसोंने वह घोड़ा ले जाकर तुरंत कपिलजीके सिरहानेकी ओर बाँध दिया और स्वयं चुपचाप दूर खड़े होकर देखने लगे कि अब क्या होता है। इतनेमें ही सगरके पुत्र रसातलमें घुसकर देखते हैं कि घोड़ा बँधा है और पास ही कोई पुरुष सो रहा है। उन्होंने कपिलजीको ही अश्व चुराकर यज्ञमें विघ्न डालनेवाला माना और यह निश्चय किया कि इस महापापीको मारकर हमलोग अपना अश्व महाराजके निकट ले चलें। कोई बोले—'अपना पशु बँधा है, इसे ही खोलकर ले चलें। इस सोये हुए पुरुषको मारनेसे क्या लाभ।' यह सुनकर दूसरे बोल उठे—'हम शूरवीर राजा हैं, शासक हैं। इस पापीको उठायें और क्षत्रियोचित तेजसे इसका वध कर डालें।' फिर क्या था, वे मुनिको कटु वचन सुनाते हुए लातोंसे मारने लगे।

इससे मुनिश्रेष्ठ कपिलको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सगरपुत्रोंकी ओर रोषपूर्ण दृष्टिसे देखा और भस्म कर डाला। वे सब-के-सब जलकर राख हो गये। नारद! यज्ञमें दीक्षित महाराज सगरको इन सब बातोंका पता न लगा। उस समय तुमने ही जाकर सगरको यह सब समाचार सुनाया। इससे राजाको बड़ी चिन्ता हुई। अब क्या करना चाहिये, यह बात उनकी समझमें न आयी। राजा सगरके एक दूसरा पुत्र भी था, जिसका नाम असमञ्जा था। वह मूर्खतावश नगरके बालकोंको उठाकर पानीमें फेंक देता था। तब



पुरवासियोंने एकत्रित होकर राजा सगरको इस बातकी सूचना दी। पुत्रका यह अन्याय जानकर महाराजको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने अमात्योंसे कहा—'यह असमञ्जा बालकोंकी हत्या करनेवाला तथा क्षत्रियधर्मका त्यागी है। अतः यह इस देशका त्याग कर दे।' महाराजका यह आदेश सुनकर अमात्योंने राजकुमारको तुरंत देशनिकाला दे दिया। असमञ्जा वनमें चला गया। अब राजा सगर चिन्ता करने लगे कि 'हमारे सब पुत्र ब्राह्मणके शापसे रसातलमें नष्ट हो गये। एक बचा था, वह भी वनमें चला गया। इस समय मेरी क्या गति होगी?'

असमञ्जाके एक पुत्र था, जो अंशुमान् नामसे विख्यात हुआ। यद्यपि अंशुमान् अभी बालक था, तो भी राजाने उसे बुलाकर अपना कार्य बतलाया। अंशुमान्ने भगवान् कपिलकी आराधना की और घोड़ा ले आकर राजा सगरको दे दिया। इससे वह यज्ञ पूर्ण हुआ। अंशुमान्के तेजस्वी पुत्रका नाम दिलीप था। दिलीपके पुत्र परम बुद्धिमान् भगीरथ हुए। भगीरथने जब अपने समस्त पितामहोंकी दुर्गतिका हाल सुना, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने नृपश्रेष्ठ सगरसे विनयपूर्वक पूछा—'महाराज! उन सबका उद्धार कैसे

होगा ?' राजाने उत्तर दिया—'बेटा ! यह तो भगवान् कपिल ही जानते हैं ।' यह सुनकर बालक भगीरथ रसातलमें गये और कपिलको नमस्कार करके अपना सब मनोरथ उन्हें कह सुनाया । कपिल मुनि बहुत देरतक ध्यान करके बोले—'राजन् ! तुम तपस्याद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना करो और उनकी जटामें स्थित गङ्गाके जलसे अपने पितरोंकी भस्मको आप्लावित करो । इससे तुम तो कृतार्थ होगे ही, तुम्हारे पितर भी कृतकृत्य हो जायँगे ।' यह सुनकर भगीरथने कहा—'बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा । मुनिश्रेष्ठ ! बताइये, मैं कहाँ जाऊँ और कौन-सा कार्य करूँ ?'

कपिलजी बोले—नरश्रेष्ठ ! कैलासपर्वतपर जाकर महादेवजीकी स्तुति करो और अपनी शक्तिके अनुसार तपस्या करते रहो । इससे तुम्हारे अभीष्टकी सिद्धि होगी ।

मुनिका यह वचन सुनकर भगीरथने उन्हें प्रणाम किया और कैलासपर्वतकी यात्रा की । वहाँ पहुँचकर पवित्र हो बालक भगीरथने तपस्याका निश्चय किया और भगवान् शंकरको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—'प्रभो ! मैं बालक हूँ, मेरी बुद्धि भी बालककी ही है और आप भी अपने मस्तकपर बाल चन्द्रमाको धारण करते हैं । मैं कुछ भी नहीं जानता । आप मेरे इस अनजानपनसे ही प्रसन्न होइये । अमरेश्वर ! जो लोग वाणीसे, मनसे और क्रियासे कभी मेरा उपकार करते हैं तथा हितसाधनमें संलग्न रहते हैं, उनका कल्याण करनेके लिये मैं उमासहित आपको प्रणाम करता हूँ । आप देवता आदिके लिये भी पूज्य हैं । जिन पूर्वजोंने मुझे अपने सगोत्र और समानधर्माके रूपमें उत्पन्न किया और पाल-पोसकर बड़ा बनाया, भगवान् शिव उनका अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करें । मैं बालचन्द्रका मुकुट धारण करनेवाले भगवान् शंकरको नित्य प्रणाम करता हूँ ।'

भगीरथके यों कहते ही भगवान् शिव उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—'महामते ! तुम निर्भय होकर कोई वर माँगो । जो वस्तु देवताओंके लिये भी सुलभ नहीं है, वह भी मैं तुम्हें निश्चय ही दे दूँगा ।' यह आश्वासन पाकर भगीरथने महादेवजीको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर कहा—'देवेश्वर ! आपकी जटामें जो सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी विराजमान हैं, उन्हें ही मेरे पितरोंका उद्धार करनेके लिये दे दीजिये । इससे मुझे सब कुछ मिल जायगा ।' तब महेश्वरने हँसकर कहा—'बेटा ! मैंने तुम्हें गङ्गा दे दी । अब तुम उनकी स्तुति करो ।' महादेवजीका वचन सुनकर भगीरथने गङ्गाजीकी प्राप्तिके लिये भारी तपस्या की और मनको संयममें रखकर भक्तिपूर्वक गङ्गाका स्तवन किया । बालक होनेपर भी भगीरथने अबालकोचित पुरुषार्थ करके गङ्गाजीकी भी कृपा प्राप्त की । महादेवजीसे प्राप्त हुई गङ्गाको पाकर उन्होंने उनकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर कहा—'देवि ! महामुनि कपिलके शापसे मेरे पितर दुर्गतिमें पड़े हुए हैं । माता ! आप उनका उद्धार करें ।'



देवनदी गङ्गा सबका उपकार करनेवाली हैं । वे स्मरणमात्रमें सब पापोंका नाश कर देती हैं । उन्होंने भगीरथकी प्रार्थना सुनकर 'तथास्तु' कहा और लोकोंका उपकार एवं पितरोंका उद्धार करनेके लिये भगीरथके कथनानुसार सब कार्य किया । राजा सगरके जो पुत्र भस्म होकर रसातलमें पड़े थे, उन्हें अपने जलसे आप्लावित करके गङ्गाजीने उनके खोदे हुए गड्ढेको भर दिया । महामुने ! इस प्रकार तुम्हें क्षत्रिया गङ्गाका वृत्तान्त सुनाया । ये माहेश्वरी, वैष्णवी, ब्राह्मी, पावनी, भागीरथी, देवनदी तथा हिमगिरिशिखराश्रया (हिमालयकी चोटीपर रहनेवाली) आदि नामोंसे पुकारी जाती हैं । इस प्रकार महादेवजीकी जटामें स्थित गङ्गाका जल दो स्वरूपोंमें विभक्त हुआ । विन्ध्यगिरिके दक्षिण-भागमें जो गङ्गा हैं, उन्हें गौतमी (गोदावरी) कहते हैं और विन्ध्यगिरिके उत्तरभागमें स्थित गङ्गा भागीरथी कहलाती हैं ।

वाराहतीर्थ, कुशावर्त, नीलगङ्गा और कपोततीर्थकी महिमा; कपोत और कपोतीके अद्भुत त्यागका वर्णन



नारदजीने कहा—भगवन्! आपके मुखसे कथा सुनते-सुनते मेरे मनको तृप्ति नहीं होती। पहले गौतम ब्राह्मणके द्वारा लायी हुई गङ्गाका वर्णन कीजिये। उनके पृथक्-पृथक् तीर्थोंके फल, पुण्य तथा इतिहासपर भी क्रमशः प्रकाश डालिये।

ब्रह्माजी बोले—नारद! गोदावरीके पृथक्-पृथक् तीर्थों, फलों और माहात्म्योंका पूरा-पूरा वर्णन न तो मैं कर सकता हूँ और न तुम सुननेमें ही समर्थ हो; तथापि कुछ बतलाता हूँ। जहाँ भगवान् त्र्यम्बक गौतमके सामने प्रत्यक्ष प्रकट हुए थे, वह तीर्थ त्र्यम्बकके नामसे प्रसिद्ध है (वही गौतमी गङ्गाका उद्गमस्थान)। वह भोग और मोक्ष देनेवाला है। दूसरा वाराहतीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसका स्वरूप बतलाता हूँ। पूर्वकालकी बात है, सिन्धुसेन नामक राक्षस देवताओंको परास्त करके यज्ञ छीनकर रसातलमें जा पहुँचा। यज्ञके रसातल चले जानेपर पृथ्वीपर उसका सर्वथा अभाव हो गया। देवताओंने सोचा, यज्ञके बिना न तो यह लोक रह जायगा और न परलोक ही; अतः अपने शत्रुके पीछे उन्होंने रसातलमें भी धावा किया। परंतु इन्द्र आदि देवता सिन्धुसेनको जीत न सके। तब उन्होंने पुराणपुरुष भगवान् विष्णुके पास जाकर यज्ञापहरण आदि राक्षसकी सब करतूत कह सुनायी। भगवान्‌ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, 'मैं वाराहरूप धारण करके शङ्ख, चक्र और गदा हाथमें ले रसातलमें जाऊँगा और मुख्य-मुख्य राक्षसोंका संहार करके पुण्यमय यज्ञको लौटा लाऊँगा। देवताओ! तुम सब लोग स्वर्गमें जाओ। तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये।'

गङ्गाजी जिस मार्गसे रसातलमें गयी थीं, उसी मार्गसे पृथ्वीको छेदकर चक्रधारी भगवान् भी रसातलमें पहुँच गये। उन्होंने वाराहरूप धारण करके रसातलवासी राक्षसों और दानवोंका वध किया तथा महायज्ञको मुखमें रखकर रसातलसे निकल आये। उस समय देवता ब्रह्मगिरिपर श्रीहरिकी प्रतीक्षा करते थे। उस मार्गसे निकलकर भगवान् गङ्गास्रोतमें आये और रक्तसे लथपथ हुए अपने अङ्गोंको गङ्गाजीके जलसे धोया। उस स्थानपर वाराह नामक कुण्ड हो गया। इसके बाद भगवान्‌ने मुँहमें रक्खे हुए महायज्ञको दे दिया। इस प्रकार उनके मुखसे यज्ञका प्रादुर्भाव हुआ, इसलिये वाराहतीर्थ परम पवित्र और सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको देनेवाला है। वहाँ किया हुआ स्नान और दान सब यज्ञोंका फल देता है। जो पुण्यात्मा पुरुष वहाँ रहकर अपने पितरोंका स्मरण करता है, उसके पितर सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गमें चले जाते हैं। त्र्यम्बकमें एक कुशावर्त नामक तीर्थ है, उसके स्मरणमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। वह समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला । कुशावर्त उस तीर्थका नाम है, जहाँ महात्मा गौतमने गङ्गाका कुशोंसे आवर्तन किया था। वे वहाँ गङ्गाको कुशसे लौटाकर ले आये थे। कुशावर्तमें किया हुआ स्नान और दान पितरोंको तृप्ति देनेवाला है। जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा नीलपर्वतसे निकली हैं, वहाँ वे नीलगङ्गाके नामसे विख्यात हैं। मनुष्य शुद्धचित्त होकर नीलगङ्गामें स्नान आदि जो कुछ भी शुभ कर्म करता है, वह सब अक्षय जानना चाहिये। उससे पितरोंको बड़ी तृप्ति होती है।

गोदावरीमें परम उत्तम कपोततीर्थ भी है, जिसकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। मुने! मैं उस तीर्थका स्वरूप और महान् फल बतलाता हूँ, सुनो। ब्रह्मगिरिपर एक बड़ा भयंकर व्याध रहता था। वह ब्राह्मणों, साधुओं, यतियों, गौओं, पक्षियों तथा मृगोंकी हत्या किया करता था। वह पापात्मा बड़ा ही क्रोधी और असत्यवादी था। उसके हाथमें सदा पाश और धनुष मौजूद रहते थे। उस महापापी व्याधके मनमें सदा पापके ही संकल्प उठते थे। उसकी स्त्री और पुत्र भी उसी स्वभावके थे। एक दिन अपनी पत्नीकी प्रेरणासे वह घने जङ्गलमें घुस गया। वहाँ उस पापीने अनेक प्रकारके मृगों और पक्षियोंका वध किया। कितनोंको जीवित ही पकड़कर पिंजड़ेमें डाल दिया। इस प्रकार बहुत दूरतक घूम-फिरकर वह अपने घरकी ओर लौटा। तीसरे पहरका समय था। चैत्र और वैशाख बीत चुके थे। एक ही क्षणमें बिजली कौंधने लगी और आकाशमें मेघोंकी घटा छा गयी। हवा चली और पानीके साथ पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। मूसलाधार वर्षा होनेके कारण बड़ी भयंकर अवस्था हो गयी। व्याध राह चलते-चलते थक गया था। जलकी अधिकताके कारण मार्गका ज्ञान नहीं हो पाता था। जल, थल और गड्ढेकी पहचान असम्भव हो गयी थी। उस समय वह पापी सोचने लगा, 'कहाँ जाऊँ, कहाँ ठहरूँ, क्या करूँ? मैं यमराजकी भाँति सब प्राणियोंके प्राण लिया करता हूँ। आज

मेरा भी प्राणान्त कर देनेवाली पत्थरोंकी वृष्टि हो रही है। आसपास कोई ऐसी शिला अथवा वृक्ष नहीं दिखलायी देता, जहाँ मेरी रक्षा हो सके।'

इस प्रकार भाँति-भाँतिकी चिन्तामें पड़े हुए व्याधने थोड़ी ही दूरपर एक उत्तम वृक्ष देखा, जो शाखा और पल्लवोंसे सुशोभित हो रहा था। वह उसीकी छायामें आकर बैठ गया। उसके सब वस्त्र भीग गये थे। वह इस चिन्तामें पड़ा था कि मेरे स्त्री-बच्चे जीवित होंगे या नहीं। इसी समय सूर्यास्त भी हो गया। उसी वृक्षपर एक कबूतर अपनी स्त्री और पुत्र-पौत्रोंके साथ रहता था। वह वहाँ सुखसे निर्भय होकर पूर्ण तृप्त और प्रसन्न था। उस वृक्षपर रहते हुए उसके कई वर्ष बीत चुके थे। उसकी स्त्री कबूतरी बड़ी पतिव्रता थी। वह अपने पतिके साथ उस वृक्षके खोखलेमें रहा करती थी। वहाँ हवा और पानीसे पूरा बचाव था। उस दिन दैववश कपोत और कपोती दोनों ही चारा चुगनेके लिये गये थे, किंतु केवल कपोत ही लौटकर उस वृक्षपर आया। भाग्यवश कपोती भी वहीं व्याधके पिंजड़ेमें पड़ी थी। व्याधने उसे पकड़ लिया था, परंतु अभीतक उसके प्राण नहीं गये थे। कपोत अपनी संतानोंको मातृहीन देखकर चिन्तित हुआ। भयानक वर्षा हो रही थी। सूर्य डूब चुका था, फिर भी वह वृक्षका खोखला कपोतीसे खाली ही रह गया—यह विचारकर कपोत विलाप करने लगा। उसे इस बातका पता नहीं था कि कपोती यहीं पिंजड़ेमें बँधी पड़ी है। कपोतने अपनी प्रियाके गुणोंका वर्णन आरम्भ किया—'हाय! मेरे हर्षको बढ़ानेवाली कल्याणमयी कपोती न जाने क्यों अभीतक नहीं आयी। वही मेरे धर्मकी जननी है—उसके सहयोगसे ही मैं धर्मका सम्पादन कर पाता हूँ। मेरे इस शरीरकी स्वामिनी भी वही है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिमें वही सर्वदा मेरी सहायता करती है। मुझे प्रसन्न देखकर वह हँसती है और खिन्न जानकर मेरे दुःखोंका निवारण करती है। उचित सलाह देनेमें वह मेरी सखी है और सदा मेरी आज्ञाके ही पालनमें संलग्न रहती है। सूर्य अस्त हो गया, तो भी वह कल्याणी अभीतक नहीं आयी। वह पतिके सिवा दूसरा कोई व्रत, मन्त्र, देवता, धर्म अथवा अर्थ नहीं जानती। वह पतिव्रता है। पतिमें ही उसके प्राण बसते हैं। पति ही उसका मन्त्र और पति ही उसका प्रियतम है। मेरी कल्याणमयी भार्या अभीतक नहीं आयी। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरा यह घर उसके बिना आज जङ्गल-सा दिखायी देता है। उसके रहनेपर भयंकर स्थान भी शोभासम्पन्न और सुन्दर दिखायी देता है। जिसके रहनेपर यह घर वास्तवमें घर कहलाता है, वह मेरी प्रिय भार्या अबतक नहीं आयी। मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकूँगा। अपने प्रिय शरीरको भी त्याग दूँगा। किंतु ये बच्चे क्या करेंगे। ओह! आज मेरा धर्म लुप्त हो गया है।'

इस प्रकार विलाप करते हुए स्वामीके वचन सुनकर पिंजड़ेमें पड़ी हुई कपोती बोली—'खगश्रेष्ठ! मैं यहाँ पिंजड़ेमें बँधी हुई बेबस हो गयी हूँ। महामते! यह व्याध मुझे जालमें फँसाकर ले आया है। आज मैं धन्य हूँ और अनुगृहीत हूँ; क्योंकि पतिदेव मेरे गुणोंका बखान करते हैं। मुझमें जो गुण हैं और जो नहीं हैं, उन सबका मेरे पतिदेव गान कर रहे हैं। इससे मैं निस्संदेह कृतार्थ हो गयी। पतिके संतुष्ट होनेपर स्त्रियोंपर सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि पति असंतुष्ट हो तो स्त्रियोंका अवश्य नाश हो जाता है। प्राणनाथ! तुम्हीं मेरे देवता, तुम्हीं प्रभु, तुम्हीं सुहृद्, तुम्हीं शरण, तुम्हीं व्रत, तुम्हीं स्वर्ग, तुम्हीं परब्रह्म और तुम्हीं मोक्ष हो।* आर्य! मेरे लिये चिन्ता न करो। अपनी बुद्धिको धर्ममें स्थिर करो। तुम्हारी कृपासे मैंने बहुतेरे भोग भोग लिये हैं।'

अपनी प्रिया कपोतीका यह वचन सुनकर कपोत उस वृक्षसे उतर आया और पिंजड़ेमें पड़ी हुई कपोतीके पास गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा, मेरी प्रिया जीवित है और व्याध मृतककी भाँति निश्चेष्ट हो रहा है। तब उसने उसे बन्धनसे छुड़ानेका विचार किया। कपोतीने रोकते हुए कहा—'महाभाग! संसारका सम्बन्ध स्थिर रहनेवाला नहीं है, ऐसा जानकर मुझे बन्धनसे मुक्त न करो। इसमें मुझे व्याधका अपराध नहीं जान पड़ता। तुम अपनी धर्ममयी बुद्धिको दृढ़ करो। ब्राह्मणोंके गुरु अग्नि हैं। सब वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है। स्त्रियोंका गुरु उसका पति है और सब लोगोंका गुरु अभ्यागत है। जो लोग अपने घरपर आये हुए अतिथिको वचनोंद्वारा संतुष्ट करते हैं, उनके उन वचनोंसे वाणीकी अधीश्वरी सरस्वती देवी तृप्त होती हैं। अतिथिको अन्न देनेसे इन्द्र तृप्त होते हैं। उसके पैर धोनेसे पितर, उसके भोजन करनेसे प्रजापति,

* तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः।
विपर्यये तु नारीणामवश्यं नाशमाप्नुयात्॥
त्वं दैवं त्वं प्रभुर्मह्यं त्वं सुहृत्त्वं परायणम्।
त्वं व्रतं त्वं परं ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च॥
(८०। ४०-४१)

उसकी सेवा-पूजासे लक्ष्मीसहित श्रीविष्णु तथा उसके सुखपूर्वक शयन करनेपर सम्पूर्ण देवता तृप्त होते हैं। अतः अतिथि सबके लिये परम पूजनीय है। यदि सूर्यास्तके बाद थका-माँदा अतिथि घरपर आ जाय तो उसे देवता समझे; क्योंकि वह सब यज्ञोंका फलरूप है। थके हुए अतिथिके साथ गृहस्थके घरपर सम्पूर्ण देवता, पितर और अग्नि भी पधारते हैं। यदि अतिथि तृप्त हुआ तो उन्हें भी बड़ी प्रसन्नता होती है; और यदि वह निराश होकर चला गया तो वे भी निराश होकर ही लौटते हैं।* अतः प्राणनाथ! आप सर्वथा दुःख छोड़कर शान्ति धारण कीजिये और अपनी बुद्धिको शुभमें लगाकर धर्मका सम्पादन कीजिये। दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकार और अपकार दोनों ही साधु पुरुषोंके विचारसे श्रेष्ठ हैं। उपकार करनेवालोंपर तो सभी उपकार करते हैं। अपकार करनेवालोंके साथ जो अच्छा बर्ताव करे, वही पुण्यका भागी बताया गया है। †

कपोत बोला—सुमुखि! तुमने हम दोनोंके योग्य ही उत्तम बात कही है; किंतु इस विषयमें मुझे कुछ और भी कहना है, उसे सुनो। कोई एक हजार प्राणियोंका भरण-पोषण करता है। दूसरा दसका ही निर्वाह करता है और कोई ऐसा है, जो सुखपूर्वक केवल अपनी जीविकाका काम चला लेता है; किंतु हमलोग ऐसे जीवोंमेंसे हैं, जो अपना ही पेट बड़े कष्टसे भर पाते हैं। कुछ लोग खाई खोदकर उसमें अन्न भरकर रखते हैं। कुछ लोग कोठेभर धानके धनी होते हैं और कितने ही घड़ोंमें धान भरकर रखते हैं; परंतु हमारे पास तो उतना ही संग्रह होता है, जितना अपनी चोंचमें आ जाय। शुभे! तुम्हीं बताओ, ऐसी दशामें इस थके-माँदे अतिथिका आदर-सत्कार मैं किस प्रकार करूँ?

कपोतीने कहा—नाथ! अग्नि, जल, मीठी वाणी, तृण और काष्ठ आदि जो भी सम्भव हो, वह अतिथिको देना चाहिये। यह व्याध सर्दीसे कष्ट पा रहा है।*

अपनी प्यारी स्त्रीका कथन सुनकर पक्षिराज कपोतने पेड़पर चढ़कर सब ओर देखा तो कुछ दूरीपर उसे आग दिखायी दी। वहाँ जाकर वह चोंचमें एक जलती हुई लकड़ी उठा लाया और व्याधके आगे रखकर अग्निको प्रज्वलित किया; फिर सूखे काठ, पत्ते और तिनके बार-बार आगमें डालने लगा। आग प्रज्वलित हो उठी। उसे देखकर सर्दीसे दुखी व्याधने अपने जडवत् बने हुए अङ्गोंको तपाया। इससे उसको बड़ा आराम मिला। कपोतीने देखा व्याध क्षुधाकी आगमें जल रहा है, तब उसने अपने स्वामीसे कहा—'महाभाग! मुझे आगमें डाल दीजिये। मैं अपने शरीरसे इस दुखी व्याधको तृप्त करूँगी। सुव्रत! ऐसा करनेसे तुम अतिथि-सत्कार करनेवाले पुण्यात्माओंके लोकमें जाओगे।'

कपोत बोला—शुभे! मेरे जीते-जी यह तुम्हारा धर्म नहीं है। मुझे ही आज्ञा दो। मैं ही आज अतिथि-यज्ञ करूँगा।

यों कहकर कपोतने सबको शरण देनेवाले भक्तवत्सल विश्वरूप चतुर्भुज महाविष्णुका स्मरण करते हुए अग्निकी तीन बार परिक्रमा की; फिर व्याधसे यह कहते हुए अग्निमें प्रवेश किया कि 'मुझे सुखपूर्वक उपयोगमें लाओ।' कपोतने अपने जीवनको अग्निमें होम दिया, यह देख व्याध कहने लगा—'अहो! मेरे इस मनुष्य-शरीरका जीवन धिक्कार देने योग्य है, क्योंकि मेरे ही लिये पक्षिराजने यह साहसपूर्ण कार्य किया है।' यों कहते हुए व्याधसे कपोतीने कहा—'महाभाग! अब मुझे छोड़ दो। देखो, मेरे ये पतिदेव मुझसे दूर चले जा रहे हैं।' उसकी बात सुनकर व्याध सहम गया और तुरंत ही पिंजड़ेमें पड़ी हुई कपोतीको उसने छोड़ दिया। तब उसने भी पति और अग्निकी परिक्रमा करके कहा—'स्वामीके

---

* गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ।
अभ्यागतमनुप्राप्तं वचनैस्तोषयन्ति ये ॥
तेषां वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम् ।
तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ।
तस्योपचाराद्वै लक्ष्मीर्विष्णुना प्रीतिमाप्नुयात् ॥
शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः ।
अभ्यागतमनुश्रान्तं सूर्योढं गृहमागतम् ॥
तं विद्याद्देवरूपेण सर्वक्रतुफलो ह्यसौ ।
अभ्यागतं श्रान्तमनुव्रजन्ति देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च ।
तस्मिन् हि तृप्ते मुदवाप्नुवन्ति गते निराशेऽपि च ते निराशाः ॥
(८०।४७—५२)

† उपकारोऽपकारश्च प्रवराविति सम्मतौ ।
उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः ॥
अपकारिषु यः साधुः पुण्यभाक् स उदाहृतः ॥
(८०।५४-५५)

* अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठादिकं च यत् ।
एतदप्यर्थिने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम् ॥
(८०।६०)

साथ चितामें प्रवेश करना स्त्रियोंके लिये बहुत बड़ा धर्म है। वेदमें इस मार्गका विधान है और लोकमें भी सबने इसकी प्रशंसा की है। जैसे साँप पकड़नेवाला मनुष्य साँपको बिलसे बलपूर्वक निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिका अनुगमन करनेवाली नारी पतिके साथ ही स्वर्गलोकमें जाती है।'*

यों कहकर कपोतीने पृथ्वी, देवता, गङ्गा तथा वनस्पतियोंको नमस्कार किया और अपने बच्चोंको सान्त्वना देकर व्याधसे कहा—'महाभाग! तुम्हारी ही कृपासे मेरे लिये ऐसा शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। मैं पतिके साथ स्वर्गलोकमें जाती हूँ।' यों कहकर वह पतिव्रता कपोती आगमें प्रवेश कर गयी। इसी समय आकाशमें जय-जयकारकी ध्वनि गूँज उठी। तत्काल ही सूर्यके समान तेजस्वी अत्यन्त सुन्दर विमान उतर आया। दोनों दम्पति देवताके समान दिव्य शरीर धारण करके उसपर आरूढ़ हुए और आश्चर्यमें पड़े हुए व्याधसे प्रसन्न होकर बोले—'महामते! हम देवलोकमें जाते हैं और तुम्हारी आज्ञा चाहते हैं। तुम अतिथिके रूपमें हम दोनोंके लिये स्वर्गकी सीढ़ी बनकर आ गये। तुम्हें नमस्कार है।'

उन दोनोंको श्रेष्ठ विमानपर बैठे देख व्याधने अपना धनुष और पिंजड़ा फेंक दिया और हाथ जोड़कर कहा—'महाभाग! मेरा त्याग न करो। मैं अज्ञानी हूँ। मुझे भी कुछ दो। मैं तुम्हारे लिये आदरणीय अतिथि होकर आया था, इसलिये मेरे उद्धारका उपाय बतलाओ।'

उन दोनोंने कहा—व्याध! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भगवती गोदावरीके तटपर जाओ और उन्हींको अपना पाप भेंट कर दो। वहाँ पंद्रह दिनोंतक डुबकी लगानेसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे। पापमुक्त होनेपर जब पुनः गौतमी गङ्गामें स्नान करोगे, तब अश्वमेध-यज्ञका फल पाकर अत्यन्त पुण्यवान् हो जाओगे। नदियोंमें श्रेष्ठ



गोदावरी ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवजीके अंशसे प्रकट हुई हैं। उनके भीतर पुनः गोते लगाकर जब तुम अपने मलिन शरीरको त्याग दोगे, तब निश्चय ही श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकमें पहुँच जाओगे।

उन दोनोंकी बात सुनकर व्याधने वैसा ही किया, फिर वह भी दिव्यरूप धारण करके एक श्रेष्ठ विमानपर जा बैठा। कपोत, कपोती और व्याध—तीनों ही गौतमी गङ्गाके प्रभावसे स्वर्गमें चले गये। तभीसे वह स्थान कपोततीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ स्नान, दान, पितरोंकी पूजा, जप और यज्ञ आदि कर्म करनेपर वे अक्षय फलको देनेवाले होते हैं।

दशाश्वमेधिक और पैशाचतीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—गोदावरी गङ्गामें कार्तिकेयजीका भी एक तीर्थ है, जो बहुत उत्तम है। वह कौमार तीर्थके नामसे भी प्रसिद्ध है। उसका नाम सुननेमात्रसे मनुष्य कुलीन और रूपवान् होता है। उसके आगे कृत्तिकातीर्थ है, जिसके श्रवणमात्रसे सोमपानका फल मिलता है। महामुने! अब दशाश्वमेधिक तीर्थका माहात्म्य सुनो। उसके श्रवणमात्रसे

* स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम्। वेदे च विहितो मार्गः सर्वलोकेषु पूजितः॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्। एवं त्वनुगता नारी सह भर्त्रा दिवं व्रजेत्॥
(८० । ७५-७६)

अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। विश्वकर्माके पुत्र महाबली विश्वरूप हुए। विश्वरूपके प्रथम नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्रका नाम भौवन हुआ। महाबाहु भौवन सार्वभौम राजा हुए। उनके पुरोहित कश्यप थे, जो सब प्रकारके ज्ञानमें निपुण थे। एक दिन महाबाहु भौवनने अपने पुरोहितसे पूछा—'मुने! मैं एक ही साथ दस अश्वमेध-यज्ञ करना चाहता हूँ। वह यज्ञ कहाँ करूँ?' कश्यपने प्रयागका नाम लिया और उन-उन स्थानोंपर यज्ञ करनेको बताया, जहाँ श्रेष्ठ द्विजोंने पूर्वकालमें बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। राजाके यज्ञमें बहुत-से ऋषि ऋत्विज हुए। पुरोहितने एक ही साथ दस अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ किये, किंतु उनमेंसे एक भी पूर्ण न हुआ। यह देखकर राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रयाग छोड़कर अन्य स्थानोंमें उन यज्ञोंका आरम्भ किया, किंतु वहाँ भी विघ्न-दोष आ पहुँचे। इस प्रकार अपने यज्ञोंको अपूर्ण देख राजाने पुरोहितसे कहा—'देश और कालके दोषसे अथवा मेरे और आपके दोषसे हमारे दस अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण नहीं हो पाते।' यों कहकर दुखी हुए राजा भौवन अपने पुरोहित कश्यपके साथ बृहस्पतिजीके ज्येष्ठ भ्राता संवर्तके पास गये और इस प्रकार बोले—'भगवन्! मुझे ऐसा कोई उत्तम प्रदेश बतलाइये, जहाँ एक ही साथ आरम्भ किये हुए दस अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण हो जायँ।' तब मुनिश्रेष्ठ संवर्तने कुछ कालतक ध्यान करके महाराज भौवनसे कहा—'ब्रह्माजीके पास जाओ। वे ही उत्तम प्रदेश बतायेंगे।'

महाबुद्धिमान् भौवन महात्मा कश्यपको साथ ले मेरे पास आ पहुँचे और मुझसे भी उत्तम देश आदिके विषयमें प्रश्न करने लगे। उस समय मैंने भौवन और कश्यपसे कहा—'राजेन्द्र! तुम गोदावरीके तटपर जाओ। वही यज्ञके लिये पुण्यवान् प्रदेश है। वेदोंके पारगामी विद्वान् ये महर्षि कश्यप ही श्रेष्ठ गुरु हैं। इनकी कृपा और गौतमी गङ्गाके प्रसादसे एक ही अश्वमेधसे अथवा वहाँ स्नान करनेमात्रसे तुम्हारे दस अश्वमेध-यज्ञ सिद्ध हो जायँगे।' यह सुनकर राजा भौवन कश्यपजीके साथ गौतमीके तटपर आये और वहाँ अश्वमेध-यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की। वह महायज्ञ आरम्भ होकर जब पूर्ण हो गया, तब राजा इस पृथ्वीका दान करनेको उद्यत हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई—'राजन्! तुमने पुरोहित कश्यपजीको पर्वत, वन और काननोंसहित पृथ्वी देनेकी कामना करके सब कुछ दान कर दिया। अब भूमिदानकी अभिलाषा छोड़कर अन्नदान करो। वह महान् फल देनेवाला है। तीनों लोकोंमें अन्नदानके समान दूसरा पुण्यकार्य नहीं है। विशेषतः गङ्गाजीके तटपर श्रद्धाके साथ किये हुए अन्नदानकी महिमा अकथनीय है।*

तुमने जो प्रचुर दक्षिणासे युक्त यह अश्वमेध-यज्ञ किया है, इससे तुम कृतार्थ हो गये। अब इस विषयमें तुम्हें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। तिल, गौ, धन, धान्य—जो कुछ भी गोदावरीके तटपर दिया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है।

यह सुनकर सम्राट् भौवनने ब्राह्मणोंको बहुत-सा अन्नदान किया। तबसे वह तीर्थ दशाश्वमेधिकके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ स्नान करनेसे दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

उससे आगे पैशाचतीर्थ है, जो ब्रह्मवादी महर्षियोंद्वारा सम्मानित है। वह गोदावरीके दक्षिण-तटपर स्थित है। अब मैं उसका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनो। मुनिश्रेष्ठ नारद! ब्रह्मगिरिके पार्श्वभागमें अञ्जन नामसे प्रसिद्ध एक पर्वत है। वहाँ एक सुन्दरी अप्सरा शापभ्रष्ट होकर उत्पन्न हुई। उसका नाम अञ्जना था। उसके सब अङ्ग बहुत सुन्दर थे, किंतु मुँह वानरीका था। केसरी नामक श्रेष्ठ वानर अञ्जनाके पति थे। केसरीके एक दूसरी भी स्त्री थी, जिसका नाम अद्रिका था। वह भी शापभ्रष्ट अप्सरा ही थी। उसके भी सब अङ्ग सुन्दर थे। किंतु मुँह बिल्लीके समान था। अद्रिका भी अञ्जन पर्वतपर ही रहती थी। एक समय केसरी दक्षिणसमुद्रके तटपर गये थे। इसी बीचमें महर्षि अगस्त्य अञ्जन पर्वतपर आये। अञ्जना और अद्रिका दोनोंने महर्षिका यथोचित पूजन किया। इससे प्रसन्न होकर महर्षिने कहा—'तुम दोनों वर माँगो।' वे बोलीं—'मुनीश्वर! हमें ऐसे पुत्र दीजिये, जो सबसे बलवान्, श्रेष्ठ और सब लोगोंका उपकार करनेवाले हों।' 'तथास्तु' कहकर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य दक्षिण दिशामें चले गये। कुछ कालके बाद अञ्जनाने वायुके अंशसे हनुमान्जीको जन्म दिया और अद्रिकाके गर्भसे निर्ऋतिके अंशसे पिशाचोंका राजा अद्रि उत्पन्न हुआ। इसके बाद उन दोनों स्त्रियोंने उक्त देवताओंसे कहा—'हमें मुनिके वरदानसे पुत्र तो प्राप्त हुए, किंतु इन्द्रके शापसे हमारा मुख कुरूप होनेके कारण सारा शरीर ही विकृत हो गया है।

* भूमिदानस्पृहां त्यक्त्वा अन्नं देहि महाफलम्।
नान्नदानसमं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते॥
विशेषतस्तु गङ्गायाः श्रद्धया पुलिने मुने।
(८३। २१-२२)

इसे दूर करनेके लिये हम क्या उपाय करें—इसे आप दोनों बतायें।' तब भगवान् वायु और निर्ऋतिने कहा—'गोदावरीमें स्नान और दान करनेसे तुम्हें शापसे छुटकारा मिल जायगा।' यों कहकर वे दोनों वहीं अन्तर्धान हो गये। तब पिशाचरूपधारी अद्रिने अपने भाई हनुमान्जीको प्रसन्न करनेके लिये माता अञ्जनाको लाकर गोदावरीमें नहलाया। इसी प्रकार हनुमान्जी भी अद्रिकाको लेकर बड़ी उतावलीके साथ गौतमी गङ्गाके तटपर आये। तबसे वह पैशाच और आञ्जन तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वह समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला शुभ तीर्थ है। ब्रह्मगिरिसे तिरपन योजन पूर्वकी ओर मार्जार-तीर्थ है। मार्जार-तीर्थसे आगे हनुमत्-तीर्थ और वृषाकपि-तीर्थ है। उसके आगे फेना-संगमतीर्थ बताया गया है, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। उसका स्वरूप और फल उसीके प्रसङ्गमें बताया जायगा।

क्षुधातीर्थ और अहल्या-संगम तीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! अब क्षुधातीर्थका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। वह परम पुण्यमय तीर्थ मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। पूर्वकालमें कण्व नामसे प्रसिद्ध एक ऋषि थे। वे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और तपस्वी थे। महर्षि कण्व भूखसे पीड़ित होकर अनेक आश्रमोंपर घूमा करते थे। एक दिन वे गौतमके पवित्र आश्रमपर आये। वह आश्रम अन्न और जलसे सम्पन्न था। अपनेको क्षुधासे पीड़ित और गौतमको वैभवशाली देख कण्वका मन विरक्तिसे भर गया। वे सोचने लगे—'गौतम भी एक श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और मैं भी उन्हींकी भाँति तपोनिष्ठ हूँ। बराबरवालेके पास याचना करना कदापि उचित नहीं है। अतः यद्यपि मैं भूखसे व्याकुल हूँ और मेरे शरीरमें पीड़ा भी हो रही है, तथापि गौतमके घरमें भोजन नहीं करूँगा। इस समय गौतमी गङ्गाके तटपर चलूँ और उन्हींसे सम्पत्ति माँगूँ।' ऐसा निश्चय करके महर्षि कण्व परम पावन गङ्गाजीके तटपर गये और स्नान करके पवित्र एवं संयतचित्त हो कुशासनपर बैठकर गौतमी गङ्गा तथा क्षुधादेवीकी स्तुति करने लगे।

कण्व बोले—भारी पीड़ाओंको हरनेवाली भगवती गङ्गा! तुम्हें नमस्कार है। तथा सब लोगोंको पीड़ा देनेवाली क्षुधादेवी! तुमको भी नमस्कार है। महादेवजीकी जटासे प्रकट हुई कल्याणमयी गौतमी! तुम्हें नमस्कार है। तथा महामृत्युके मुखसे निकली हुई क्षुधादेवी! तुम्हें भी नमस्कार है। देवि! तुम्हीं पुण्यात्माओंके लिये शान्तिरूपा और दुरात्माओंके लिये क्रोधस्वरूपा हो। नदीके रूपसे सबके पाप-ताप हर लेती हो और क्षुधारूपमें आकर सबको पाप-ताप देती रहती हो। कल्याणकारिणी देवी! तुम्हें नमस्कार है। पापोंका दमन करनेवाली गङ्गा! तुम्हें प्रणाम है। भगवती शान्तिकरी! तुम्हें नमस्कार है। दरिद्रताका विनाश करनेवाली देवी! तुम्हें प्रणाम है।

कण्वके इस प्रकार स्तुति करनेपर उनके सामने दो रूप प्रकट हुए—एक तो गङ्गाका मनोहर स्वरूप और दूसरी क्षुधाकी भयानक मूर्ति। द्विजश्रेष्ठ कण्वने पुनः हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा—'देवि गोदावरी! तुम सम्पूर्ण मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलमयी हो। शुभे! ब्राह्मी, माहेश्वरी, वैष्णवी और त्र्यम्बका—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं। तुम्हें नमस्कार है। भगवान् त्र्यम्बककी जटासे प्रकट होकर महर्षि गौतमका पाप नष्ट करनेवाली गोदावरी! तुम सात धाराओंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिलती हो। तुम्हें नमस्कार है। क्षुधादेवी! तुम समस्त पापियोंके लिये पापमयी, दुःखमयी और लोभमयी हो। धर्म, अर्थ और कामका नाश करनेवाली भी तुम्हीं हो। तुम्हें बारंबार नमस्कार है।'

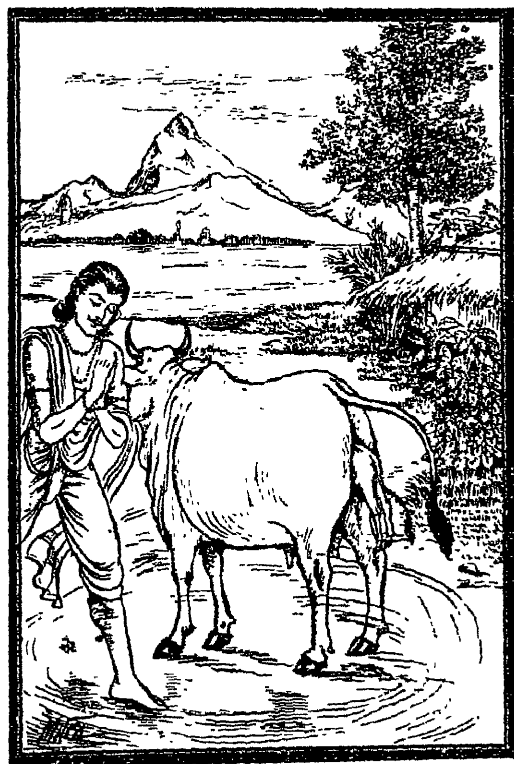


कण्वका यह वचन सुनकर गङ्गा और क्षुधा दोनों ही बहुत प्रसन्न हुईं और बोलीं—'सुव्रत ! तुम मनोवाञ्छित वर माँगो।' तब कण्वने गङ्गाजीको प्रणाम करके कहा—'देवि ! मुझे मनके अनुकूल भोग, वैभव, आयु, धन और मोक्ष प्रदान कीजिये।' गङ्गासे यों कहकर द्विजश्रेष्ठ कण्वने क्षुधादेवीसे कहा—'क्षुधे ! तुम तृष्णा एवं दरिद्रता रूपिणी, अत्यन्त पापमयी तथा रूक्ष स्वभाववाली हो। मेरे अथवा मेरे वंशजोंके यहाँ तुम कभी न रहना। जो क्षुधातुर मनुष्य इस स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करें, उनके दारिद्र्य और दुःखका नाश हो जाय।* जो लोग इस परम पुण्यमय तीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान, दान और जप आदि करें, वे धन-सम्पत्तिके भागी हों। जो तीर्थ अथवा अपने घरमें इस स्तोत्रका पाठ करे, उसे दरिद्रता और दुःखसे कभी भय न हो।'

'एवमस्तु' कहकर गङ्गा और क्षुधा दोनों अपने-अपने स्थानको चली गयीं। तबसे उस तीर्थके तीन नाम हो गये—काण्वतीर्थ, गाङ्गतीर्थ और क्षुधातीर्थ। नारद ! वह तीर्थ सब पापोंको दूर करनेवाला और पितरोंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है।

गोदावरीमें अहल्यासंगम नामक एक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला है। मुनिश्रेष्ठ ! उस तीर्थकी उत्पत्तिका वृत्तान्त सुनो। पूर्वकालकी बात है, मैंने अत्यन्त कौतूहलवश कुछ सुन्दरी कन्याओंकी सृष्टि की। उनमेंसे एक कन्या सबसे श्रेष्ठ और उत्तम लक्षणोंसे युक्त थी। उसके सब अङ्ग बड़े मनोहर तथा रूप और गुणोंसे सम्पन्न थे। उस समय मेरे मनमें यह विचार हुआ कि कौन पुरुष इस कन्याका पालन-पोषण करनेमें समर्थ है। सोचनेपर महर्षि गौतम ही मुझे समस्त गुणोंमें श्रेष्ठ, तपस्वी, बुद्धिमान्, समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित और वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता प्रतीत हुए। अतः उन्हींको मैंने वह कन्या दे दी और कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! जबतक यह युवती न हो जाय, तबतक तुम्हीं इसका पालन-पोषण करना। युवावस्था होनेपर पुनः इस साध्वी कन्याको मेरे पास ले आना।' यों कहकर मैंने गौतमको वह कन्या समर्पित कर दी। गौतम अपने तपोबलसे निष्पाप हो चुके थे। उन्होंने विधिपूर्वक उस कन्याका पालन-पोषण किया और युवती होनेपर उसे वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके मेरे पास ले आये। उस समय उनके मनमें कोई विकार नहीं था। अहल्याको देखकर इन्द्र, अग्नि और वरुण आदि सब देवता बारी-बारीसे मेरे पास आये और कहने लगे—'सुरेश्वर ! यह कन्या मुझे दे दीजिये।' इन्द्रका तो उसके लिये विशेष आग्रह था। महर्षि गौतमकी महत्ता, गम्भीरता और धीरताका विचार करके मुझे बड़ा विस्मय हुआ। मैंने सोचा—'यह सुमुखी कन्या गौतमको ही देने योग्य है, और किसीको नहीं। अतः उन्हींको दूँगा।' ऐसा निश्चय करके मैंने देवताओं और ऋषियोंसे कहा—'यह सुन्दरी कन्या उसीको दी जायगी, जो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके सबसे पहले यहाँ उपस्थित हो जाय; दूसरे किसीको नहीं मिलेगी।

मेरी बात सुनकर सब देवता अहल्याकी प्राप्तिके लिये पृथ्वीकी परिक्रमा करने चले गये। इसी बीचमें कामधेनु सुरभि बच्चा देने लगी। अभी बच्चेका आधा शरीर ही बाहर निकला था। उसी अवस्थामें गौतमने उसे देखा और उसीको पृथ्वीभावसे देखते हुए उसकी परिक्रमा की। साथ ही उन्होंने



शिवलिङ्गकी भी प्रदक्षिणा की। इसके बाद सोचा, सम्पूर्ण देवताओंने अभी पृथ्वीकी एक परिक्रमा भी पूरी नहीं की और मेरेद्वारा दो परिक्रमाएँ पूरी हो गयीं। ऐसा निश्चय करके वे मेरे समीप आये और मुझे प्रणाम करके बोले—'कमलासन ! विश्वात्मन् ! आपको बारंबार नमस्कार है। ब्रह्मन् ! मैंने सारी वसुधाकी प्रदक्षिणा कर ली।' मैंने ध्यानके

---

* मयि मद्वंशजे चापि क्षुधे तृष्णे दरिद्रिणि।
याहि पापतरे रूक्षे न भूयास्त्वं कदाचन॥
अनेन स्तवेन ये वै त्वां स्तुवन्ति क्षुधातुराः।
तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्वरोऽपरः॥
(८५। २०-२१)

द्वारा सब बातें जानकर गौतमसे कहा—'ब्रह्मर्षे ! तुम्हींको यह सुन्दरी कन्या दी जाती है । वास्तवमें तुमने पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी कर ली । जो वेदोंके लिये भी दुर्बोध है, उस धर्मका स्वरूप तुम जानते हो । जो गाय आधा प्रसव कर चुकी हो, वह सात द्वीपोंवाली पृथ्वीके तुल्य है । उसकी परिक्रमा कर ली जाय तो समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है । शिवलिङ्गकी प्रदक्षिणाका भी यही फल है । अतः उत्तम व्रतका पालन करनेवाले गौतम ! मैं तुम्हारे धैर्य, ज्ञान और तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ ।' यों कहकर मैंने गौतमको अहल्या सौंप दी । उन दोनोंका विवाह हो जानेपर देवतालोग पृथ्वीकी परिक्रमा करके धीरे-धीरे आने लगे । आनेपर सबने अहल्याके साथ गौतमका विवाह हुआ देखा । इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । अन्तमें सब देवता स्वर्गमें चले गये, परंतु इन्द्रके मनमें इससे बड़ी ईर्ष्या हुई । मैंने प्रसन्न होकर महात्मा गौतमको रहनेके लिये ब्रह्मगिरि प्रदान किया, जो परम पवित्र, समस्त अभिलषित वस्तुओंको देनेवाला तथा मङ्गलमय है । मुनिश्रेष्ठ गौतम वहाँ अहल्याके साथ विहार करने लगे ।

इन्द्रने स्वर्गमें भी गौतमकी पवित्र कथा सुनी । अतः मुनिको, उनके आश्रमको और उनकी सुन्दरी पत्नीको देखनेके लिये वे ब्राह्मणका वेष धारण करके आये । वहाँ आनेपर उन्होंने मनमें पापकी भावना लेकर अहल्याको देखा । उस समय वे अपने आपको भी भूल गये । देश-कालकी भी सुध न रही और ऋषिके शापका भय भी उन्होंने भुला दिया । उनका हृदय कामके वशीभूत हो रहा था । एक समय महर्षि गौतम मध्याह्नसे पहलेकी क्रिया समाप्त करके शिष्योंके साथ आश्रमसे बाहर गये । उस समय अवसर देखकर इन्द्रने अपने मनके अनुकूल कार्य किया । वे गौतमका रूप धारण करके आश्रममें आये और सर्वाङ्ग-सुन्दरी अहल्यासे बोले—'प्रिये ! मैं तुम्हारे गुणोंसे आकृष्ट हूँ । तुम्हारे रूपका स्मरण करके मेरा मन विचलित हो गया है । पाँव लड़खड़ा रहे हैं ।' यों कहकर हँसते-हँसते उन्होंने अहल्याका हाथ पकड़ लिया और आश्रमके भीतर चले गये । अहल्याने उन्हें गौतम ही समझा । यह कोई जार पुरुष है—यह बात उसके ध्यानमें नहीं आयी । वह इन्द्रके साथ सुखपूर्वक रमण करने लगी । इतनेमें ही महर्षि गौतम पुनः अपने शिष्योंके साथ लौट आये । प्रतिदिनका ऐसा नियम था कि जब वे बाहरसे आश्रमपर आते, तब प्रियवादिनी अहल्या आगे बढ़कर उनका स्वागत करती, प्रिय लगनेवाली बातें कहती और अपने सद्गुणोंसे उन्हें संतुष्ट करती थी । उस दिन अहल्याको न देखकर परम बुद्धिमान् गौतमको ऐसा जान पड़ा मानो कोई बड़ी अद्भुत बात हो गयी । मुनिश्रेष्ठ गौतम द्वारपर खड़े हैं और सब लोग उनकी ओर देखते हैं । अग्निहोत्र और शालाके रक्षक तथा घरमें काम-काज करनेवाले अनुचर उन्हें देखकर बड़े विस्मयमें पड़े और भयभीत होकर बोले—'भगवन् ! यह कैसी विचित्र बात है कि आप भीतर और बाहर दोनों जगह देखे जाते हैं । अहो ! आपकी तपस्याका ही यह प्रभाव है कि आप अनेक रूप धारण करके विचरते हैं ।'

यह सुनकर गौतमके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ । वे सोचने लगे—आश्रमके भीतर कौन गया है । उन्होंने पुकारा—'प्रिये ! अहल्ये ! आज तुम मुझसे बोलती क्यों नहीं ?' महर्षिका वचन सुनकर अहल्याने उस जारसे कहा—'अरे ! तू कौन है, जो मुनिका रूप धारण करके तूने मेरे साथ यह पापकर्म किया है ?' यह कहती हुई वह भयके मारे शय्यासे सहसा उठकर खड़ी हो गयी । पापाचारी इन्द्र भी मुनिके भयसे बिलाव बन गया । अहल्या थर-थर काँप रही थी । उसके वेष-भूषा बिगड़ चुके थे । अपनी प्यारी पत्नीको कलङ्कित हुई देख महर्षिने क्रोधमें आकर कहा—'तुमने यह दुःसाहस कैसे किया ?' उनके इस प्रकार पूछनेपर भी अहल्याने लज्जावश कोई उत्तर नहीं दिया । तब मुनि उस जारकी खोज करने लगे । इतनेमें उस बिलावपर उनकी दृष्टि पड़ी । अरे ! ठीक-ठीक बता, तू कौन है ? यदि झूठ बोलेगा तो मैं तुझे अभी भस्म कर दूँगा ।'

इन्द्र हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—'तपोधन ! मैं शचीका स्वामी इन्द्र हूँ, मुझसे ही यह पाप हो गया है । मैंने जो कुछ कहा है, वह सत्य है । ब्रह्मन् ! कामदेवके बाणोंसे जिनका हृदय विदीर्ण हो चुका है, वे कौन-सा दुष्कर्म नहीं करते । आप करुणाके सागर हैं, मुझ महापापीको क्षमा करें । साधु पुरुष अपराधीपर भी कठोरता नहीं दिखाते ।'

गौतम बोले—इन्द्र ! तूने स्त्रीकी योनिमें आसक्त होकर यह पापकर्म किया है, अतः तेरे शरीरमें योनिके सहस्रों चिह्न हो जायँगे ।

इसके बाद मुनिने अहल्यासे भी कुपित होकर कहा—'तू सूखी नदी हो जा ।'



अहल्या बोली—भगवन् ! जो पापिनी स्त्रियाँ मनसे भी दूसरे पुरुषकी कामना करती हैं, वे तथा उनके समस्त पूर्वज भी अक्षय नरकोंमें पड़ते हैं। आप कृपा करके मेरी बातोंपर ध्यान दें। यह इन्द्र आपका रूप धारण करके मेरे पास आया था। ये सब लोग इस बातके साक्षी हैं

रक्षकोंने कहा—'ऐसी ही बात है। अहल्या ठीक कहती हैं।' मुनिने भी ध्यानके द्वारा सच्ची बातको जान लिया और शान्त होकर अपनी पतिव्रता पत्नीसे कहा—'कल्याणी ! नदी होनेपर जब तुम सरिताओंमें श्रेष्ठ गौतमी गङ्गामें मिलोगी, उस समय पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त कर लोगी।' महर्षिका वचन सुनकर पतिव्रता अहल्याने वैसा ही किया। गौतमी गङ्गासे मिलनेपर पुनः उसका वही स्वरूप हो गया, जैसा मैंने बनाया था। तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने हाथ जोड़कर महर्षि गौतमसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! अपने घरपर आये हुए मुझ पापिष्ठकी रक्षा कीजिये।' यों कहकर इन्द्र उनके चरणोंमें गिर पड़े। यह देख महर्षिने कृपापूर्वक कहा—'पुरंदर ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम गोदावरीके तटपर जाओ और उसमें स्नान करो। इससे तुम्हारे सारे पाप क्षणभरमें धुल जायँगे। तुम्हारे शरीरमें योनिके जो सहस्रों चिह्न हैं, वे नेत्रोंके रूपमें परिणत हो जायँगे। तुम सहस्राक्ष हो जाओगे। नारद! गौतमीके प्रभावसे ये दो आश्चर्यजनक बातें मैंने देखी हैं—अहल्या नदी होकर पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त हुई और शचीपति इन्द्र सहस्राक्ष हो गये। तबसे वह तीर्थ अहल्या-संगमके नामसे विख्यात हुआ, उसे इन्द्रतीर्थ भी कहते हैं। वह मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

जनस्थान, अश्वतीर्थ, भानुतीर्थ और अरुणा-वरुणा-संगमकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—उसके बाद विश्वविख्यात जनस्थान नामक तीर्थ है, जिसका विस्तार चार योजनका है। वह स्मरणमात्रसे मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला है। पूर्वकालकी बात है, वैवस्वत मनुके वंशमें जनक नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए। उन्होंने वरुणकी पुत्री गुणार्णवाके साथ विवाह किया था। गुणार्णवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि करनेवाली थी। जनकमें भी ये ही गुण थे, अतः राजाको अपने गुणोंके अनुरूप सुयोग्य भार्या मिली। विप्रवर याज्ञवल्क्य राजा जनकके पुरोहित थे। एक दिन राजाने अपने पुरोहितसे पूछा—'द्विजश्रेष्ठ ! बड़े-बड़े मुनियोंने यह निर्णय किया है कि भोग और मोक्ष दोनों श्रेष्ठ हैं; अन्तर इतना ही है कि भोग अन्तमें विरस हो जाता है और मुक्ति नित्य एवं निर्विकार है। अतः भोगसे भी मुक्तिको ही श्रेष्ठ माना गया है। आप बतायें, भोगसे मुक्तिकी प्राप्ति कैसे होती है ? सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करनेसे जो मुक्ति प्राप्त होती है, वह तो अत्यन्त दुःखसाध्य है; अतः जिस उपायसे अत्यन्त सुखपूर्वक मुक्ति हो सके, वह बताइये।

याज्ञवल्क्य बोले—राजन् ! साक्षात् भगवान् वरुण तुम्हारे गुरुजन, श्वशुर और हितकारी हैं। उन्हींके पास चलकर पूछो। वे तुम्हें हितका उपदेश देंगे।

तदनन्तर याज्ञवल्क्य और जनक दोनों राजा वरुणके पास गये और वहाँ उन्होंने मुक्तिका मार्ग पूछा।



वरुणने कहा—दो प्रकारसे मुक्ति प्राप्त होती है—एक तो कर्म करनेसे और एक कर्म न करनेसे। वेदमें यह मार्ग निश्चित किया गया है कि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ कर्मसे बँधे हुए हैं। नृपश्रेष्ठ! कर्मद्वारा सब प्रकारके साध्योंकी सिद्धि होती है, इसलिये मनुष्योंको सब तरहसे वैदिक कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। इससे वे इस लोकमें भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करते हैं। अकर्मसे कर्म पवित्र है। कर्म भिन्न-भिन्न आश्रमों और वर्णोंके अनुसार अनेक प्रकारके होते हैं। वर्णों और आश्रमोंमें भी चार आश्रम कर्मके द्वार माने गये हैं। उनमें भी गृहस्थाश्रम अधिक पुण्यदायक है। उससे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हो सकते हैं।* यही मेरा मत है।†

यह सुनकर राजा जनक और बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यने वरुणका पूजन किया और पुनः यह बात पूछी—'सुरश्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। आप सर्वज्ञ हैं। बताइये, कौन-सा देश और तीर्थ ऐसा है जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है?

वरुणने कहा—इस पृथ्वीपर भारतवर्ष और उसमें भी दण्डकवन पुण्यदायक है। इसमें किया हुआ शुभ कर्म मनुष्योंको भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करता है। तीर्थोंमें गौतमी गङ्गा श्रेष्ठ हैं। वे मुक्तिदायिनी मानी गयी हैं। वहाँ यज्ञ और दान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

वरुणका यह उपदेश सुनकर याज्ञवल्क्य और जनक उनकी आज्ञा ले अपनी पुरीमें लौट आये, फिर गङ्गातीर्थपर जाकर राजा जनकने अश्वमेध आदि यज्ञ किये और विप्रवर याज्ञवल्क्यने उन यज्ञोंमें आचार्यका कार्य किया। गौतमी-गङ्गाके तटपर यज्ञ करनेसे राजाको मोक्षकी प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् जनकवंशके बहुत-से राजा क्रमशः वहाँ आकर यज्ञ करते और गोदावरीकी कृपासे मोक्षके भागी होते रहे। तभीसे वह तीर्थ जनस्थानके नामसे विख्यात हुआ। जनकोंका यज्ञस्थान होनेसे उसका नाम जनस्थान पड़ गया। वहाँ स्नान, दान और पितरोंका तर्पण करनेसे तथा उस तीर्थका चिन्तन करने, वहाँ जाने और भक्तिपूर्वक उसका सेवन करनेसे मनुष्य सब अभिलषित वस्तुओंको पाता और मोक्षका भागी होता है।

अरुणा और वरुणा नामकी दो परम पवित्र नदियाँ हैं। उन दोनोंका गोदावरीमें संगम हुआ है, जो बहुत ही पवित्र तीर्थ है। उसकी उत्पत्तिकी कथा सब पापोंका नाश करनेवाली है। उसे बताता हूँ, सुनो। महर्षि कश्यपके ज्येष्ठ पुत्र आदित्य (सूर्य) समस्त लोकोंमें विख्यात हैं। वे तीनों लोकोंके नेत्र हैं। उनकी किरणें अत्यन्त दुस्सह हैं। भगवान् सूर्यके रथमें सात घोड़े जुते होते हैं। सूर्यदेव सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित हैं। उनकी पत्नीका नाम उषा है। उषा विश्वकर्माकी पुत्री और त्रिभुवनकी अद्वितीय सुन्दरी है। उसे अपने स्वामीके तीव्र तापका सहन नहीं हो पाता था। वह सदा इसी चिन्तामें पड़ी रहती कि 'मुझे क्या करना चाहिये?' उषाके दो बुद्धिमान् पुत्र थे—वैवस्वत मनु और यम। एक कन्या भी थी, जो परम पवित्र यमुना नदीके रूपमें विख्यात हुई। एक दिन उषाने अपने ही समान रूपवाली अपनी छाया उत्पन्न की और उससे कहा—'तू मेरी-ही-जैसी होकर मेरी आज्ञासे पतिकी सेवा तथा मेरे पुत्रोंका पालन कर। मैं जबतक लौट न आऊँ, तबतक तुम्हीं पतिकी प्रेयसी बनकर रहो; यह रहस्य किसीको न बताना। मेरी संतानोंपर भी यह भेद प्रकट न होने पाये।' छायाने 'बहुत अच्छा'

* गृहस्थ-आश्रममें भोगकी प्राप्ति तो स्वाभाविक है और मोक्षकी प्राप्ति निष्काम धर्मका अनुष्ठान करनेसे होती है।

† अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च।
जात्याश्रितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित्॥
आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद।
चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यदं स्मृतम्॥
(८८। १३—१५)

कहकर उषाकी आज्ञा स्वीकार कर ली और उषा घरसे निकल गयी। उसने तपस्याके लिये उत्तरकुरु नामक देशको प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उसने घोड़ीका रूप धारण करके कठोर तपस्या आरम्भ की। जब सूर्यदेवको इसका पता लगा, तब वे भी घोड़ेका रूप धारण करके उसके पास गये। पतिव्रता उषा परपुरुषकी आशङ्कासे भागकर भारतवर्षमें गौतमीके तटपर आयी। वहाँ उसका पतिके साथ समागम हुआ, जिससे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई। वह स्थान अश्वतीर्थ, भानुतीर्थ और पञ्चवटी आश्रमके नामसे विख्यात हुआ। तापी और यमुना दोनों सूर्यकी कन्याएँ थीं। वे गौतमी-तटपर अपने पितासे मिलनेके लिये अरुणा-वरुणा नामक नदियोंके रूपमें आयी थीं। उन दोनोंका जहाँ गङ्गामें संगम हुआ है, वह बहुत उत्तम तीर्थ है। उसमें भिन्न-भिन्न देवताओं और तीर्थोंका पृथक्-पृथक् समागम हुआ है। उक्त संगममें सत्ताईस हजार तीर्थोंका समुदाय है। वहाँ किया हुआ स्नान और दान अक्षय पुण्य देनेवाला है। नारद! उस तीर्थके स्मरण, कीर्तन और श्रवणसे भी मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो धर्मवान् और सुखी होता है।

गारुडतीर्थ और गोवर्धनतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! गारुड नामक तीर्थ सब विघ्नोंकी शान्ति करनेवाला है। उसके प्रभावका वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। शेषनागके एक महाबली पुत्र था, जो मणिनागके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसे सदा गरुड़का भय बना रहता था, अतः उसने अपनी भक्तिके द्वारा भगवान् शंकरको संतुष्ट किया। प्रसन्न होनेपर भगवान् महेश्वरने कहा—'नाग! कोई वर माँगो।' नागने कहा—'प्रभो! मुझे गरुड़से अभय-दान दीजिये।' भगवान् शिवने कहा—'ऐसा ही होगा। तुम्हें गरुड़से भय न हो।' वरदान पाकर मणिनाग गरुड़से निर्भय हो बाहर निकला। वह क्षीरसागरके समीप, जहाँ भगवान् विष्णु शयन करते हैं, इधर-उधर विचरने लगा। जहाँ गरुड़ निवास करते थे, उस स्थानपर भी वह जाया करता। गरुड़ने उस नागको निर्भय विचरते देख पकड़ लिया और अपने घरमें लाकर डाल दिया।

इसी बीचमें नन्दीने जगदीश्वर भगवान् शिवसे कहा—'देवेश्वर! अब मणिनाग नहीं आता। जान पड़ता है गरुड़ने उसे खा लिया या बाँध रक्खा है। यदि वह जीवित होता तो यहाँ आये बिना न रहता।' नन्दीकी बात सुनकर भगवान् शिवने नागकी अवस्थाको जान लिया और कहा—'वह नाग गरुड़के घरमें बँधा पड़ा है। तुम शीघ्र जाकर जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी स्तुति करो और गरुड़के द्वारा बन्धनमें डाले हुए नागको मेरे कहनेसे ले आओ।' प्रभुकी बात सुनकर नन्दी स्वयं ही-लक्ष्मीपतिके पास उपस्थित हुए और भगवान् शिवकी कही हुई बातें वहाँ निवेदन कीं। तब भगवान् नारायणने प्रसन्न होकर गरुड़से कहा—'विनता-नन्दन! मेरी बात मानकर नन्दीको वह नाग लौटा दो।' गरुड़ने नाग देना स्वीकार नहीं किया और गर्वसे कहा—'मैं आपका भृत्य हूँ; मैं नागको लाया, आप उसे नन्दीको दे रहे हैं। स्वामी तो सेवकोंको दिया करते हैं, परंतु आप तो मेरी प्राप्य वस्तुको छीन रहे हैं। मेरी शक्ति आप जानते ही हैं। मेरे ही बलसे तो आपने संग्राममें दैत्योंपर विजय प्राप्त की है।'

भगवान् विष्णुने गरुड़की बात सुनकर सबके सामने हँसकर कहा—'पक्षिराज! ठीक है, तुम्हारे ही बलसे मैंने असुरोंपर विजय पायी है।' फिर भगवान्ने क्रोध न करके कहा—'गरुड़! मैं मानता हूँ तुममें विलक्षण शक्ति है; पर तुम मेरी इस कनिष्ठ अँगुलीको तो वहन करो।' इतना कहकर भगवान्ने अपनी अँगुली गरुड़के मस्तकपर रख दी। गरुड़ अँगुलीका भार सह नहीं सके। तब गरुड़ने दीनभावसे लज्जित होकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की और कहा—'मैं आपका अपराधी सेवक हूँ। मेरा परित्राण कीजिये।' फिर उन्होंने माता लक्ष्मीसे प्रार्थना की। लक्ष्मीजीने कृपाकुल होकर जनार्दनसे कहा—'नाथ! विपन्न भृत्य गरुड़की रक्षा कीजिये।' तब भगवान्ने नन्दीसे कहा—'नन्दिकेश्वर! तुम गरुड़के साथ ही नागको महादेवजीके पास ले जाओ।' 'बहुत अच्छा' कहकर नन्दी गरुड़ और नागके साथ धीरे-धीरे शंकरजीके पास गये और सब समाचार उन्हें कह सुनाया।

तब शंकरजीने गरुड़से कहा—'महाबाहो! तुम लोकपावनी गौतमी गङ्गाके पास जाओ। वे समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हैं। उस शान्तिमयी सरितामें स्नान करनेसे तुम्हें समस्त इच्छित वस्तुएँ चौगुनी अथवा सहस्रगुनी होकर मिलेंगी। गरुड़! जो सब प्रकारके पापोंसे सन्तप्त हैं, दुर्दैवसे जिनका

उद्योग नष्ट हो गया है, उन प्राणियोंके लिये मनोवाञ्छित फल देनेवाली गोदावरी नदी ही शरण हैं।' भगवान् शिवकी यह बात सुनकर गरुड़ प्रणाम करके चले गये। गोदावरीके तटपर पहुँचकर उन्होंने जलमें स्नान किया और भगवान् शिव तथा विष्णुके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर उनमें पूर्ववत् वेग आ गया और वे उड़कर भगवान् विष्णुके समीप चले गये। तबसे वह समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला तीर्थ 'गारुड़ तीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। वत्स नारद! मनुष्य मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए वहाँ स्नान आदि जो भी कर्म करता है, वह सब अक्षय तथा शिव और विष्णुको प्रिय लगनेवाला होता है।

उसके आगे सब पापोंका नाश करनेवाला गोवर्धनतीर्थ है। वह पितरोंके लिये पुण्यजनक तथा स्मरणमात्रसे पाप दूर करनेवाला है। नारद! मैंने उसका प्रभाव प्रत्यक्ष देखा है। पूर्वकालमें जाबालि नामसे प्रसिद्ध एक किसान ब्राह्मण रहता था। वह दोपहर हो जानेपर भी हलसे बैलोंको खोलता नहीं था। उनके दोनों बगलमें और पीठपर चाबुक मारता रहता था। उसके दोनों बैल सदा आँखोंसे आँसू बहाते रहते थे। एक दिन कामधेनु गौ जगन्माता सुरभिने नन्दीसे सब हाल कहा। नन्दीने भी खिन्न होकर भगवान् शंकरको सब बातें बतायीं। तब शंकरजीने नन्दीसे कहा—'तुम्हारी प्रत्येक बात सिद्ध हो।'

महादेवजीकी यह आज्ञा पाकर नन्दीने समस्त गोजातिको अपनेमें समेट लिया। स्वर्गलोक और मर्त्यलोककी समस्त गौएँ अदृश्य हो गयीं। तब देवताओंने मेरे पास आकर कहा—'भगवन्! गौओंके बिना जीवन नहीं रह सकता।' उस समय मैंने देवताओंसे कहा—'जाओ, भगवान् शंकरसे याचना करो।' तदनन्तर उन्होंने भगवान् शंकरकी स्तुति करके उनसे सब हाल कहा। महादेवजीने भी देवताओंको उत्तर दिया—'इस विषयमें नन्दी जानते हैं।' तब सब देवता नन्दिकेश्वरके पास जाकर बोले—'हमें जगत्का उपकार करनेवाली गौएँ दीजिये।' नन्दी बोले—'आपलोग गो-यज्ञ कीजिये, तभी दिव्य और मानस गौएँ प्राप्त होंगी।' तत्पश्चात् गौतमी गङ्गाके तटपर देवताओंने गोयज्ञका आयोजन किया। फिर वहाँसे गौएँ



बढ़ने लगीं। तभीसे वह तीर्थ 'गोवर्धन' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह देवताओंकी प्रीति बढ़ानेवाला है। मुनिश्रेष्ठ! वहाँ किया हुआ केवल स्नान भी सहस्र गो-दानोंका फल देनेवाला है।

श्वेततीर्थ, शुक्रतीर्थ और इन्द्रतीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! श्वेततीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। पूर्वकालमें श्वेत नामके एक ब्राह्मण थे, जो महर्षि गौतमके प्रिय सखा थे। वे गोदावरीके तटपर रहकर अतिथियोंके स्वागत-सत्कारमें लगे रहते और मन-वाणी तथा क्रियाद्वारा भगवान् शिवका भजन करते थे। वे सदा भगवान् सदाशिवकी पूजा और ध्यान करते रहते थे। शिवके भजनमें ही उनकी आयु पूरी हो गयी। तब यमराजके दूत उन्हें ले जानेके लिये आये; परंतु नारदजी! वे ब्राह्मण-देवताके घरमें प्रवेश न कर सके। जब ब्राह्मणकी मृत्युका समय व्यतीत हो गया, तब चित्रकने मृत्युसे पूछा—'मृत्यो! श्वेतका जीवन समाप्त हो चुका है, वह अबतक क्यों नहीं आता? तुम्हारे

दूत भी अभीतक नहीं लौटे। ऐसा होना उचित नहीं।' यह सुनकर मृत्युको बड़ा क्रोध हुआ और वे स्वयं ही श्वेतके घरपर पधारे। उनके दूत भयभीत होकर बाहर ही खड़े थे। उन्हें देखकर मृत्युने पूछा—'दूतो! यह क्या बात है?' दूत बोले—'श्वेत भगवान् शिवके द्वारा सुरक्षित हैं। हम उनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते। जिनके ऊपर भगवान् शंकर प्रसन्न हो जायँ, उन्हें भय कैसा!'

तब मृत्युने अपना फंदा हाथमें लेकर स्वयं ही ब्राह्मणके घरमें प्रवेश किया। ब्राह्मण तो भक्तिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा कर रहे थे। उन्हें न तो मृत्युके आनेका पता था और न यमदूतोंके। श्वेतके समीप पाशधारी मृत्युको खड़ा देख दण्डधारी भैरवने विस्मित होकर पूछा—'मृत्युदेव! यहाँ क्या देखते हो?' मृत्युने उत्तर दिया—'मैं श्वेतको ले जानेके लिये यहाँ आया हूँ, अतः इन्हींको देखता हूँ।' भैरवने कहा—'लौट जाओ।' मृत्युने श्वेतपर अपना फंदा फेंका। यह देखकर भैरव कुपित हो उठे। उन्होंने शिवके दिये हुए दण्डसे मृत्युपर गहरी चोट की। मृत्युदेवता पाश हाथमें लिये हुए ही धरतीपर गिर पड़े। मृत्युको मारा गया देख यमदूत भाग गये। उन्होंने मृत्युके वधका समाचार यमराजसे कहा। यह सुनकर महिषवाहन यमराजको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अधिक बलवान् चित्रगुप्त, अपनी रक्षा करनेवाले यमदण्ड, महिष, भूत, वेताल तथा आधि-व्याधियोंको शीघ्रतापूर्वक चलनेका आदेश दे तुरंत वहाँसे प्रस्थान किया। अपने साथियोंसहित यमराज उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ द्विजश्रेष्ठ श्वेत भगवान् शिवकी आराधनामें संलग्न थे।

उस समय यमराज तथा भगवान् शिवके पार्षदोंमें अत्यन्त भयानक संग्राम छिड़ गया। कार्तिकेयने स्वयं ही शक्ति सँभाली और यमराजके दूतोंको विदीर्ण कर डाला। साथ ही दक्षिण-दिशाके स्वामी अत्यन्त बलवान् यमराजको भी मौतके घाट उतार दिया। मरनेसे बचे हुए यमदूतोंने भगवान् सूर्यको यह सब समाचार कह सुनाया। यह अद्भुत बात सुनकर सूर्य समस्त देवताओं और लोकपालोंके साथ मेरे समीप आये। फिर मैं, भगवान् विष्णु, इन्द्र, अग्नि, वरुण तथा अन्य बहुत-से देवता यमराजके पास गये। वे गोदावरीके तटपर मरे पड़े थे। यमराजको सेनासहित मरा देख देवता भयसे व्याकुल हो उठे और हाथ जोड़कर बारंबार भगवान् शिवकी प्रार्थना करने लगे।

देवता बोले—भगवन्! आपको अपने भक्त सदा ही प्रिय हैं तथा आप दुष्टोंका वध किया करते हैं। संसारके आदि स्रष्टा नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। ब्रह्मप्रिय! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको नमस्कार है। विप्रवर श्वेत आपके भक्त हैं। इनकी आयु क्षीण हो जानेपर भी यम आदि सब लोग इन्हें ले जानेमें समर्थ न हो सके। आपका अपने भक्तोंपर ऐसा महान् प्रेम देखकर हम सबको बड़ा संतोष हुआ। नाथ! सचमुच ही आप बड़े भक्तवत्सल हैं। जो लोग आप-जैसे दयालु परमेश्वरकी शरणमें आ गये हैं, उन्हें यमराज भी नहीं देख सकता। यह जानकर ही सब लोग पराभक्तिके साथ आपका भजन करते हैं। शंकर! आप ही इस जगत्के स्वामी हैं। क्या यह बात आप भूल गये? आपके बिना यहाँ व्यवस्था करनेमें कौन समर्थ हो सकता है।

इस प्रकार स्तुति करनेवाले देवताओंके समक्ष भगवान् शंकर स्वयं प्रकट हो गये और बोले—'देवताओ! तुम्हें क्या दूँ?'

देवताओंने कहा—देवेश्वर! ये सूर्यके पुत्र धर्म हैं, जो समस्त देहधारियोंका नियन्त्रण करते हैं। इन्हें धर्म और अधर्मकी व्यवस्थामें नियुक्त किया गया है। ये लोकपाल हैं। अपराधी और पापी नहीं हैं। अतः इनका वध नहीं होना चाहिये। इनके बिना ब्रह्माजीका कोई कार्य नहीं चल सकता। इसलिये सेना और वाहनोंसहित यमराजको जीवित कर दीजिये। नाथ! महात्माओंके सामने की हुई प्रार्थना सफल ही होती है। वह कभी व्यर्थ नहीं जाती।

भगवान् शिव बोले—देवताओ! मेरी बात सुनो—जो मेरे तथा भगवान् विष्णुके भक्त हैं, गौतमी गङ्गाका निरन्तर सेवन करनेवाले हैं, उनके स्वामी हमलोग स्वयं ही हैं। मृत्युका उनके ऊपर कोई अधिकार नहीं है। यमराजको तो कभी उनकी बाततक नहीं चलानी चाहिये। व्याधि-आधिके द्वारा उनका पराभव करना कदापि उचित नहीं है। जो मेरी शरणमें आ जाते हैं, वे तत्काल मुक्त हो जाते हैं। यमराजको तो चाहिये अपने अनुचरोंसहित उन्हें प्रणाम करे।

'बहुत अच्छा' कहकर देवताओंने भगवान् शिवकी बातका अनुमोदन किया। तब भगवान् शिवने अपने वाहन नन्दीसे कहा—'तुम गौतमीका जल लेकर मरे हुए यमराज आदिके शरीरपर छिड़क दो।' आज्ञा पाकर नन्दीने यम आदि सब

लोगोंपर गोदावरीका जल छिड़का । इससे वे जीवित होकर उठ बैठे और दक्षिण दिशाकी ओर चले गये । गौतमीके उत्तर-तटपर विष्णु आदि सब देवता ठहर गये और देवाधिदेव महेश्वरकी पूजा करने लगे । उस समय वहाँ एक लाख बारह हजार तीर्थ एकत्रित हुए थे । इसी प्रकार गोदावरीके दक्षिण-तटपर तीस हजार तीर्थ एकत्रित हुए। यही श्वेततीर्थका पवित्र उपाख्यान है । जहाँ मृत्यु देवता मरकर गिरे थे, वह स्थान मृत्युतीर्थ कहलाता है । वहाँ किया हुआ स्नान और दान सब पापोंका नाश करनेवाला है । उसके माहात्म्यका श्रवण, पठन और स्मरण अन्तःकरणके मलको धोनेवाला और सब लोगोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है ।

इसके आगे शुक्रतीर्थ है, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है । वह सब पापोंको शान्त करनेवाला तथा सब-प्रकारकी व्याधियोंका नाशक है । अङ्गिरा और भृगु— ये दो परम धर्मात्मा ऋषि हुए हैं । इन दोनोंके दो-दो पुत्र हुए, जो बड़े ही विद्वान् और रूप तथा बुद्धिसे सुशोभित थे । अङ्गिराके पुत्रका नाम था— जीव और भृगुके पुत्रका नाम था—कवि । ये दोनों अपने माता-पिताके अधीन रहते थे । जब दोनोंका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया, तब उनके पिता परस्पर कहने लगे—'हम दोनोंमेंसे एक ही इन दोनों पुत्रोंका शिक्षक हो । इससे एक ही शासन करेगा और दूसरा सुखसे बैठा रहेगा ।' यह सुनकर अङ्गिराने कहा—'मैं कविको भी अपने पुत्रके समान ही पढ़ाऊँगा । वह सुखपूर्वक मेरे यहाँ रहे ।'

अङ्गिराकी बात सुनकर भृगुने कहा—'ठीक है' और उन्होंने अपने पुत्र शुक्रको अङ्गिराकी सेवामें सौंप दिया । परन्तु अङ्गिरा उन दोनों बालकोंमें विषम बुद्धि रखते थे । इसलिये दोनोंको पृथक्-पृथक् पढ़ाते थे । बहुत दिनोंतक किसी प्रकार चलता रहा, तब एक दिन शुक्रने कहा— 'गुरुदेव ! आप मुझे प्रतिदिन विषमभावसे पढ़ाते हैं । गुरुओंके लिये यह उचित नहीं कि वे पुत्र और शिष्यमें भेदभाव समझें । जो लोग विषम बुद्धि रखते हैं, उनके पापकी कोई गणना नहीं है । आचार्य ! अब मैंने आपको अच्छी तरह समझ लिया । आपको बारंबार नमस्कार करता हूँ । अब दूसरे किसी गुरुके यहाँ जाऊँगा । मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये ।'

इस प्रकार गुरु और बृहस्पतिसे पूछकर उनकी आज्ञा ले शुक्र चले गये । उन्होंने सोचा अब पूर्ण विद्या प्राप्त करके ही पिताके पास चलूँ । किन्तु किससे पूछूँ, कौन सबसे श्रेष्ठ गुरु हो सकता है ? इन्हीं सब बातोंका विचार करते हुए शुक्रने महाप्राज्ञ गौतमके पास जाकर पूछा—'मुनिश्रेष्ठ ! बताइये, कौन मेरा गुरु हो सकता है ? जो तीनों लोकोंका गुरु हो, उसीके पास मैं जाऊँगा ।'

गौतमने कहा—जगद्गुरु भगवान् शंकर ही गुरु होने योग्य हैं ।

शुक्रने पूछा—मैं कहाँ रहकर शङ्करजीकी आराधना करूँ ?

गौतम बोले—गौतमी गङ्गामें स्नान करके पवित्र हो स्तोत्रोंद्वारा भगवान् शंकरको संतुष्ट करो । संतुष्ट होनेपर वे जगदीश्वर तुम्हें विद्या प्रदान करेंगे ।

गौतमके कहनेसे शुक्र गोदावरीके तटपर गये और वहाँ स्नान करके पवित्र हो भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे ।

शुक्र बोले—प्रभो ! मैं बालक हूँ । मेरी बुद्धि बालककी ही है और आप बालचन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले हैं । मुझे आपकी स्तुति करनेका कुछ भी ज्ञान नहीं है । केवल आपको नमस्कार करता हूँ । गुरुने मुझे त्याग दिया है । मेरा कोई सुहृद् अथवा सखा नहीं है । आप ही सब प्रकारसे मेरे प्रभु हैं । जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है । आप गुरुवालोंके भी गुरु और बड़ोंके भी बड़े हैं । मैं छोटा बच्चा हूँ । मुझपर कृपा कीजिये । जगन्मय ! आपको नमस्कार है । सुरेश्वर ! मैं विद्याके लिये आपकी शरणमें आया हूँ । मुझे आपके स्वरूपका कुछ भी ज्ञान नहीं है । आप स्वयं ही कृपा करके मेरी ओर देखें । लोकसाक्षी शिव ! आपको नमस्कार है ।

शुक्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर बोले—'वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम इच्छानुसार वर माँगो, भले ही वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ क्यों न हो ।' उदारबुद्धि कविने भी हाथ जोड़कर कहा—'नाथ ! ब्रह्मा आदि देवताओं तथा ऋषियोंको भी जो विद्या नहीं प्राप्त हुई हो, उसके लिये मैं याचना करता हूँ । आप ही मेरे गुरु और देवता हैं ।'



ब्रह्माजी कहते हैं—शुक्रने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब देवश्रेष्ठ भगवान् शिवने उन्हें मृतसंजीवनी विद्या प्रदान की, जिसका ज्ञान देवताओंको भी नहीं था। साथ ही उन्होंने लौकिकी, वैदिकी तथा अन्यान्य विद्याएँ भी दीं। जब साक्षात् भगवान् शंकर ही प्रसन्न हो गये थे, तब क्या बाकी रह जाता। वह महाविद्या पाकर शुक्र अपने पिता और गुरुके पास गये। अपनी विद्यासे पूजित होकर वे दैत्योंके गुरु हुए। किसी समय कुछ कारणवश बृहस्पतिके पुत्र कचने शुक्राचार्यसे मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की। कचसे बृहस्पतिने और बृहस्पतिसे पृथक्-पृथक् देवताओंने उस विद्याको ग्रहण किया। गौतमीके उत्तरतटपर, जहाँ भगवान् महेश्वरकी आराधना करके शुक्रने विद्या पायी थी, वह स्थान शुक्रतीर्थ कहलाता है। मृत्यु-संजीवनी तीर्थ भी उसका नाम है। वह आयु और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला है। वहाँ स्नान, दान आदि जो कुछ भी शुभ कर्म किया जाता है, वह अक्षय पुण्य देनेवाला होता है।

शुक्रतीर्थके बाद इन्द्रतीर्थ है। वह ब्रह्महत्याका विनाश करनेवाला है। उसके स्मरणमात्रसे पाप-राशि तथा क्लेश-समुदायका नाश हो जाता है। नारद! पूर्वकालकी बात है। जब इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया, तब ब्रह्महत्या उनके पीछे लग गयी। उसे देखकर इन्द्रको बड़ा भय हुआ। वे इधर-उधर भागने लगे। किंतु जहाँ-जहाँ वे जाते, ब्रह्महत्या उनका पीछा नहीं छोड़ती थी। तब वे एक बहुत बड़े सरोवरमें प्रवेश करके कमलकी नालमें छिप गये और उसमें तन्तुकी भाँति होकर रहने लगे। ब्रह्महत्या भी उस सरोवरके तटपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक बैठी रही। इस बीचमें सब देवता बिना इन्द्रके हो गये थे। उन्होंने आपसमें सलाह की, किस प्रकार इन्द्र प्रकट हों? उस समय मैंने देवताओंसे कहा—'ब्रह्महत्याके लिये दूसरा स्थान दे दिया जाय और इन्द्रको शुद्ध करनेके लिये गोदावरी नदीमें नहलाया जाय। उसमें स्नान करनेसे इन्द्र पुनः शुद्ध हो जायँगे।'

इन्द्रका प्रथम अभिषेक नर्मदा-तटपर हुआ। वहाँ उनके मलका शोधन होनेके कारण उस देशका नाम मालव पड़ा। तत्पश्चात् वे गौतमी गङ्गाके तटपर लाये गये। वहाँ पुण्या नदीके जलमें गौतमीका जल लाकर उसीसे समस्त देवता, ऋषि, मैं, विष्णु, वसिष्ठ, गौतम, अगस्त्य, अत्रि, कश्यप, अन्यान्य ऋषि, यक्ष तथा पन्नगोंने इन्द्रका अभिषेक किया। तत्पश्चात् मैंने उन्हें अपने कमण्डलुके जलसे भी अभिषिक्त किया। इस प्रकार वहाँ 'पुण्या' और 'सिक्ता' दो नदियाँ हो गयीं और वे दोनों गौतमी गङ्गामें आकर मिलीं। उन दोनोंके संगम मुनियोंद्वारा सेवित विख्यात तीर्थ बन गये। तबसे उस तीर्थको पुण्यासंगम कहते हैं। सिक्तासङ्गमका ही नाम इन्द्रतीर्थ हो गया। वहाँ सात हजार मङ्गलमय तीर्थ निवास करने लगे। उन तीर्थोंमें तथा विशेषतः संगमके जलमें जो स्नान-दान किया जाता है, वह सब अक्षय जानना चाहिये। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो इस पवित्र उपाख्यानको पढ़ता अथवा सुनता है, वह मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाले समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

पौलस्त्य, अग्नि और ऋणमोचन नामक तीर्थोंका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—उसके आगे पौलस्त्य तीर्थ है, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। मैं उसके प्रभावका वर्णन करता हूँ—वह छिने हुए राज्यकी भी प्राप्ति कराता है। विश्रवा मुनिके ज्येष्ठ पुत्र कुबेर, जो ऋद्धि-सिद्धिसे

सम्पन्न और उत्तर दिशाके स्वामी हैं, पहले लङ्काके राजा थे। उनके सौतेले भाई रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण बड़े बलवान् थे। यद्यपि वे भी विश्रवाके ही पुत्र थे, तथापि राक्षसपुत्री कैकसीके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण राक्षस कहलाते थे। वे तीनों भाई तपस्या करनेके लिये वनमें गये। वहाँ उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की और मुझसे वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर अपने मामा मारीचके तथा नाना और माताके कहनेसे रावणने कुबेरसे लङ्काकी राजधानी अपने लिये माँगी। इस बातको लेकर दोनों भाइयोंमें भारी शत्रुता हो गयी। फिर तो देवताओं और दानवोंमें भयंकर युद्ध हुआ। रावणने अपने बड़े भाई कुबेरको युद्धमें हराकर पुष्पक विमान और लङ्कापुरीपर अधिकार जमा लिया और तीनों लोकोंमें घोषणा करा दी कि जो मेरे भाईको आश्रय देगा, वह मेरे हाथसे मारा जायगा। कुबेरको कहीं आश्रय न मिला। तब वे अपने पितामह पुलस्त्यके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'मेरे दुष्ट भ्राताने मुझे लङ्कासे निकाल दिया।



बताइये, अब क्या करूँ? अब मेरे लिये दैव अथवा तीर्थ ही आश्रय या शरण हैं।' पौत्रकी यह बात सुनकर पुलस्त्यने कहा—'बेटा! तुम गौतमी गङ्गामें जाकर भगवान् शंकरकी स्तुति करो। वहाँ गङ्गाके जलमें रावणका प्रवेश नहीं हो सकता। अतः मेरे साथ वहीं चलकर कल्याणमयी सिद्धि प्राप्त करो।'

कुबेरने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और पत्नी, पिता, माता तथा वृद्ध महर्षि पुलस्त्यके साथ गौतमी गङ्गाके तटपर गये। वहाँ गङ्गामें स्नान करके पवित्र हो कुबेर भोग-मोक्षके दाता देवदेवेश्वर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे—"शम्भो! आप ही इस चराचर जगत्के स्वामी हैं, दूसरा कोई नहीं। जो लोग आपकी भी अवहेलना करके मोहवश धृष्टता करते हैं, वे शोकके ही योग्य हैं। आप अपनी आठ मूर्तियोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्का भरण-पोषण करते हैं। आपकी आज्ञासे ही सब लोग चेष्टा करते हैं, तथापि विद्वान् पुरुष ही आपकी महिमाको कुछ-कुछ जान पाते हैं। अज्ञानी पुरुष आप पुरातन प्रभुको कभी नहीं जान सकता। एक दिन जगदम्बा पार्वतीने अपने शरीरके मैलसे एक पुतला बनाकर रख दिया और परिहासमें आपसे कहा—'देव! यह आपका शूरवीर पुत्र है।' उसपर आपकी कृपादृष्टि हुई और वह विघ्नोंका राजा गणेश बन गया। अहो, महेश्वरकी दृष्टिका कितना अद्भुत प्रभाव है! जब कामदेव भस्म हो गया और रति उसके लिये विलाप करने लगी, तब दयामयी माता पार्वतीने आँसू बहाते हुए आपकी ओर देखकर कहा—'भगवन्! इन बेचारोंका दाम्पत्य-सुख छिन गया।' तब आपने उसपर भी कृपा की। कामदेव मनोभव हो गया—वह रतिकी मनोभूमिमें प्रकट हो गया। इस प्रकार उमासहित महादेवजीकी कृपासे रतिने पूर्ण सौभाग्य प्राप्त किया।"

इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शंकर कुबेरके सामने प्रकट हुए। उन्होंने वर माँगनेके लिये कहा, किंतु हर्षातिरेकके कारण कुबेरके मुखसे कोई बात नहीं निकली। इसी समय आकाशवाणी हुई। उसने मानो पुलस्त्य, विश्रवा और कुबेरके हार्दिक अभिप्रायको जानकर यह कल्याणमय वचन कहा—'भगवन्! ये लोग धनका प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हैं। इनके लिये भविष्य भूत-सा बन जाय। जिस वस्तुको ये किसीके लिये देना चाहें, वह दी हुईके समान हो जाय तथा जो वस्तु ये स्वयं प्राप्त करना चाहें, वह पहले ही इनके सामने प्रस्तुत हो जाय। ये भगवान् शंकरकी आराधना करके इस बातकी अभिलाषा रखते हैं कि हमारे शत्रु परास्त हों, दुःख दूर हो जाय, दिक्पालका पद प्राप्त हो, धनका प्रभुत्व मिले,'

अपरिमित दान-शक्ति हो। साथ ही स्त्री और पुत्रका सुख भी बना रहे।'

कुबेरने वह आकाशवाणी सुनकर त्रिशूलधारी भगवान् शंकरसे कहा—'देव! ऐसा ही हो।' 'तथास्तु' कहकर शिवने उस दैवी वाणीका अनुमोदन किया। इस प्रकार पुलस्त्य, विश्रवा और कुबेरका वरदानसे अभिनन्दन करके भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तबसे उस तीर्थके तीन नाम पड़े—पौलस्त्य-तीर्थ, धनद-तीर्थ और वैश्रवसतीर्थ। वह समस्त कामनाओंको देनेवाला शुभ तीर्थ है। वहाँ स्नान आदि जो कुछ भी पुण्यकर्म किया जाता है, वह अधिक पुण्यदायक होता है।

पौलस्त्य-तीर्थके बाद अग्नितीर्थ है। वह सब यज्ञोंका फल देनेवाला और समस्त विघ्नोंको शान्त करनेवाला है। उस तीर्थका फल सुनो। अग्निके भाई जातवेदा हैं, जो देवताओंके पास हविष्य पहुँचाया करते हैं। एक दिनकी बात है—गोदावरीके तटपर ऋषियोंके यज्ञमण्डपमें यज्ञ हो रहा था। अग्निके प्रिय भाई जातवेदा देवताओंके हविष्यका वहन कर रहे थे। उसी समय दितिके बलवान् पुत्र मधुने प्रधान-प्रधान ऋषियों और देवताओंके देखते-देखते जातवेदाको मार डाला। उनके मरनेपर देवताओंको हविष्य मिलना बंद हो गया। इधर अपने प्रिय भाई जातवेदाके मारे जानेसे अग्निको बड़ा क्रोध हुआ। वे गौतमी गङ्गाके जलमें समा गये। अग्निके जलमें प्रवेश करनेपर देवता और मनुष्य जीवनका त्याग करने लगे, क्योंकि अग्नि ही उनका जीवन है। अग्निदेव जहाँ जलमें प्रविष्ट हुए थे, उस स्थानपर सम्पूर्ण देवता, ऋषि और पितर आये और यह सोचकर कि बिना अग्निके हम जीवित नहीं रह सकते उनकी स्तुति करने लगे। इतनेमें ही जलके भीतर उन्हें अग्निका दर्शन हुआ। उन्हें देखकर देवता बोले—'अग्ने! आप हविष्यके द्वारा देवताओंको, कव्य (श्राद्ध) से पितरोंको तथा अन्नको पचाने और बीजको गलाने आदिके द्वारा मनुष्योंको जीवित कीजिये।'

अग्निने उत्तर दिया—'मेरा छोटा भाई, जो इस कार्यमें समर्थ था, चला गया। आपलोगोंका काम करनेमें जातवेदाकी जो गति हुई है, वही मेरी भी हो सकती है। अतः मुझे आपलोगोंके कार्य-साधनमें उत्साह नहीं है।' तब देवताओं और ऋषियोंने सब प्रकारसे अग्निकी प्रार्थना करते हुए कहा—'हव्यवाहन! हमलोग आपको आयु, कर्म करनेमें उत्साह और सर्वत्र व्यापक होनेकी शक्ति देते हैं। साथ ही प्रयाज और अनुयाज भी देंगे। देवताओंके आप ही श्रेष्ठ मुख होंगे। पहली आहुतियाँ आपको ही मिलेंगी। आप जो द्रव्य हमें देंगे, वही हम भोजन करेंगे।'

इस आश्वासनसे अग्निदेव प्रसन्न हुए। उन्हें इस लोक और परलोकमें व्यापक रहनेकी शक्ति प्राप्त हुई। वे सर्वत्र निर्भय हो गये। जातवेदा, बृहद्भानु, सप्तार्चि, नीललोहित, जलगर्भ, शमीगर्भ और यज्ञगर्भ—इन नामोंसे उन्हींका बोध होने लगा। देवताओंने अग्निको जलसे निकाला और जातवेदा तथा अग्नि दोनोंके पदपर उनका अभिषेक किया। कार्य सिद्ध होनेपर देवता भी अपने-अपने स्थानको चले गये। तभीसे वह स्थान 'वह्नितीर्थ' कहलाता है। वहाँ सात सौ उत्तम तीर्थोंका निवास है। जो जितात्मा पुरुष उन तीर्थोंमें स्नान और दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका पूरा फल प्राप्त होता है। वहीं देवतीर्थ, अग्नितीर्थ और जातवेदस्तीर्थ भी हैं। अग्निद्वारा स्थापित अनेक वर्णोंके शिवलिङ्गका भी वहाँ दर्शन होता है। उसके दर्शनसे सब यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

उसके बाद 'ऋणप्रमोचन' नामक तीर्थ है, जिसके महत्त्वको वेदवेत्ता पुरुष जानते हैं। नारद! मैं उसके स्वरूपको बतलाता हूँ, मन लगाकर सुनो। कक्षीवान्‌का ज्येष्ठ पुत्र पृथुश्रवा था। वह वैराग्यके कारण न तो विवाह करता था और न अग्निहोत्र ही। कक्षीवान्‌का कनिष्ठ पुत्र भी विवाहके योग्य हो गया था, तो भी उसने परिवित्ति* होनेके भयसे विवाह और अग्निहोत्र नहीं किये। तब पितरोंने कक्षीवान्‌के दोनों पुत्रोंसे पृथक्-पृथक् कहा—'तुम देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये विवाह करो।' ज्येष्ठ पुत्रने कहा, 'नहीं, कैसा ऋण और कौन उससे मुक्त होता है।' छोटे पुत्रने उत्तर दिया, 'बड़े भाईके अविवाहित रहते मेरा विवाह करना उचित नहीं है। अन्यथा परिवित्ति होनेका भय है।' तब पितरोंने उन दोनोंसे कहा—'तुमलोग गौतमी गङ्गामें जाकर स्नान करो। गौतमीका स्नान सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। गौतमी गङ्गा तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली हैं। उनके जलमें श्रद्धापूर्वक स्नान और तर्पण करो। गौतमीका दर्शन, वन्दन और ध्यान करनेसे वे समस्त कामनाएँ पूर्ण करती हैं। वहाँ स्नान करनेके लिये कोई देश,

* बड़े भाईकी अविवाहित अवस्थामें विवाह कर लेनेवाला छोटा भाई परिवित्ति कहलाता है। इसे शास्त्रोंमें दोष माना गया है।

काल और जाति आदिका नियम नहीं है। गौतमीमें स्नान करनेसे बड़े भाईपर कोई ऋण नहीं रहता और छोटा भाई परिवित्ति नहीं होता।'

पितरोंके आदेशसे कक्षीवान्‌का ज्येष्ठ पुत्र पृथुश्रवा गौतमीमें स्नान और तर्पण करके तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया। तबसे वह तीर्थ 'ऋणमोचन' कहलाता है। वहाँ स्नान और दान करनेसे ऋणवान् मनुष्य श्रौत-स्मार्त तथा अन्य ऋणोंसे भी मुक्त होकर सुखी होता है।

सुपर्णा-संगम, पुरूरवस्तीर्थ, पञ्चतीर्थ, शमीतीर्थ, सोम आदि तीर्थ तथा वृद्धा-संगम तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—इसके बाद सुपर्णा-संगम तथा काद्रवा-संगम नामक तीर्थ हैं, जहाँ भगवान् महेश्वर गङ्गाके तटपर स्थित हैं। वहीं अग्निकुण्ड, रुद्रकुण्ड, विष्णुकुण्ड, सूर्यकुण्ड, सोमकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, कुमारकुण्ड तथा वरुणकुण्ड भी हैं। उस स्थानपर अप्सरा नामकी नदी गौतमी गङ्गामें मिली है। उस तीर्थके स्मरणमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। वह सब पापोंका निवारण करनेवाला है।

उससे आगे पुरूरवस् नामक तीर्थ है। उसके दर्शनकी तो बात ही क्या, स्मरणमात्रसे ही पापोंका नाश हो जाता है। एक समय राजा पुरूरवा ब्रह्माजीकी सभामें गये। वहाँ देवनदी सरस्वती ब्रह्माजीके पास बैठी हँस रही थीं। उस रूपवती देवीको देखकर राजाने उर्वशीसे पूछा, 'ब्रह्माजीके पास यह रूपवती साध्वी स्त्री कौन है? यह तो सबसे सुन्दरी युवती है और अपने सौन्दर्यके प्रकाशसे इस सभाको उद्दीप्त कर रही है।' उर्वशीने कहा—'यह कल्याणमयी ब्रह्मकुमारी देवनदी सरस्वती हैं। ये प्रतिदिन आती-जाती रहती हैं।' यह सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने उर्वशीसे कहा—'इसको मेरे पास बुला लाओ।' उर्वशीने जाकर राजाका संदेश सुना दिया। सरस्वतीने स्वीकार कर लिया और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वह पुरूरवाके पास आयी। राजाने सरस्वती नदीके तटपर उसके साथ अनेक वर्षोंतक विहार किया। यह देख मैंने सरस्वतीको शाप दे दिया। मेरे शापके कारण वह मृत्युलोकमें कहीं लुप्त हो गयी है और कहीं दिखायी देती है। जहाँ सरस्वती नदी गङ्गामें मिली है, वहाँ पहुँचकर राजा पुरूरवाने तपस्या की और महादेवजीकी आराधना करके गङ्गाजीके प्रसादसे सम्पूर्ण अभीष्ट प्राप्त कर लिया। तबसे उस स्थानका नाम पुरूरवस्तीर्थ, सरस्वती-संगम और ब्रह्मतीर्थ पड़ गया। वहाँ सिद्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध महादेवजी रहते हैं। वह तीर्थ समस्त कामनाओंको देनेवाला है।

उसके सिवा सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा और सरस्वती—ये पाँच पुण्य तीर्थ हैं। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। ये पाँचों मेरी कन्याएँ हैं, जो नदीरूपमें परिणत हो गयी हैं। जहाँ वे भगवती गङ्गासे मिली हैं, वहाँ पाँच तीर्थ हैं। वे पाँच नदियाँ और सरस्वती पवित्र तीर्थ हैं। मनुष्य उनमें स्नान, दान आदि जो कुछ भी करता है, वह सब अभिलषित वस्तुओंको देनेवाला तथा नैष्कर्म्यसे भी बढ़कर मोक्षका साधक माना गया है।

शमीतीर्थके नामसे जिसकी प्रसिद्धि है, वह भी सब पापोंकी शान्ति करनेवाला है। नारद! उस तीर्थकी कथा सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनो। पूर्वकालमें प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय राजा हो गये हैं। उन्होंने गोदावरीके दक्षिण-तटपर अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली। उस यज्ञके पुरोहित हुए वसिष्ठजी। एक दिन उस यज्ञमें हिरण्यक नामका दानव आया। महर्षि वसिष्ठने अपने ब्रह्मदण्डसे सब दैत्योंको मार भगाया। तदनन्तर पुनः यज्ञ आरम्भ हुआ। दैत्य अपनी सेनाके साथ भाग खड़ा हुआ। वहाँ निम्नाङ्कित तीर्थोंने अश्वमेध यज्ञके फल दिये—शमीतीर्थ, विष्णुतीर्थ, अर्कतीर्थ, शिवतीर्थ, सोमतीर्थ और वसिष्ठतीर्थ। यज्ञ समाप्त होनेपर देवताओं और ऋषियोंने वसिष्ठ और प्रियव्रतसे कहा—इन तीर्थोंने अश्वमेध यज्ञका फल दिया है; अतः इनमें स्नान-दान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका पुण्य-फल प्राप्त करेगा—इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है।

मुने! गौतमीमें एक स्थानपर अनेक नद-नदियाँ मिली हैं। उन सबके नामपर पृथक्-पृथक् तीर्थ हैं। उन तीर्थोंके नाम ये हैं—सोमतीर्थ, गन्धर्वतीर्थ, देवतीर्थ, पूर्णातीर्थ, शालतीर्थ, श्रीपर्णा-संगम, स्वागता-संगम, कुसुमा-संगम, पुष्टि-संगम, कर्णिका-संगम, वैणवी-संगम, कुशरा-संगम, वासवी-संगम, शिवशर्मा, शिखी, कुसुम्भिका, उपारथ्या, शान्तिजा, देवजा, अज, वृद्ध, सुर और भद्र आदि। ये तथा और भी बहुत-से नद-नदीगण गौतमीमें मिले हैं। पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी देवगिरिपर गये थे। फिर वे ही क्रमशः गङ्गामें आ मिले। कोई नदीरूपमें था और कोई नदरूपमें।

किसीका रूप सरोवरके आकारमें था और किसीका स्रोतके आकारमें। वे ही सब तीर्थ पृथक्-पृथक् विख्यात हुए। उन सबमें किया हुआ स्नान, जप, होम, पितृ-तर्पण आदि कर्म समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला और मुक्तिदायक माना गया है। जो इनके नामोंका पाठ अथवा स्मरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

वृद्धा-संगम नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ वृद्धेश्वर नामक शिवका निवास है। उस तीर्थकी कथा सब पापोंका नाश करनेवाली है। पूर्वकालमें एक महातपस्वी मुनि थे। उनका नाम वृद्धगौतम था। वे जब बालक थे, तब किसी तरह पिताने उनका यज्ञोपवीत मात्र कर दिया। इसके बाद वे बाहर भ्रमण करनेको चले गये। उन्हें केवल गायत्री-मन्त्र याद था। वे वेदोंका अध्ययन और शास्त्रोंका अभ्यास नहीं कर सके। केवल गायत्रीका जप और अग्निहोत्र नियमपूर्वक कर लेते थे। इतनेसे ही उनका ब्राह्मणत्व सुरक्षित था। विधिपूर्वक अग्निकी उपासना और गायत्री-जप करनेसे उनकी आयु बहुत बढ़ गयी। यों भी उनकी अवस्था अधिक हो चुकी थी। किंतु विवाह न हो सका, कोई उन्हें कन्या देनेवाला नहीं मिला।

गौतम भिन्न-भिन्न तीर्थों, वनों और पवित्र आश्रमोंमें भ्रमण करते रहे। घूमते-घूमते शीत-गिरिपर चले गये और वहीं रहने लगे। वहाँ उन्होंने एक रमणीय गुफा देखी, जो लताओं और वृक्षोंसे घिरी हुई थी। उसमें एक अत्यन्त दुर्बल तपस्विनी वृद्धा रहती थी, उसके सब अङ्ग शिथिल हो गये थे। वह वीतरागा ब्रह्मचारिणी थी और एकान्तमें रहा करती थी। उसे देख मुनिश्रेष्ठ गौतम नमस्कारके लिये खड़े हो गये।

तब वृद्धाने कहा—आप मेरे गुरु होंगे, अतः मुझे प्रणाम न करें। जिसे गुरु नमस्कार करता है, उसकी आयु, विद्या, धन, कीर्ति, धर्म और स्वर्ग आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

यह सुनकर गौतम बड़े आश्चर्यमें पड़े। वे हाथ जोड़कर बोले—'तुम वृद्धा तपस्विनी हो, गुणोंमें भी मुझसे बढ़ी-चढ़ी हो। मैं बहुत कम पढ़ा-लिखा और अवस्थामें भी छोटा हूँ, फिर तुम्हारा गुरु कैसे हो सकता हूँ।'



वृद्धाने कहा—आर्ष्टिषेणके प्रिय पुत्र ऋतध्वज थे; वे बड़े गुणवान्, बुद्धिमान्, शूरवीर तथा क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाले थे। एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये वनमें आये और इसी गुफामें आकर विश्राम करने लगे। यहाँ उनपर एक सुन्दरी अप्सराकी दृष्टि पड़ी, उसका नाम सुश्यामा था। वह गन्धर्वराजकी कन्या थी। राजाने भी उसे देखा। दोनोंके मनमें एक-दूसरेसे मिलनेकी इच्छा हुई। ऋतध्वजने सुश्यामाके साथ विहार किया। भोगेच्छा निवृत्त होनेपर राजा उसकी अनुमति ले अपने घर चले गये। तदनन्तर सुश्यामाके गर्भसे मेरा जन्म हुआ। जब माता यहाँसे जाने लगी, तब बोली—'कल्याणी! जो पुरुष इस गुफामें पहले आ जाय, वही तुम्हारा पति होगा।' तबसे आजतक तुम्हीं यहाँ आये हो। दूसरा कोई पुरुष कभी यहाँ नहीं आया। ब्रह्मन्! और किसीने मेरा वरण नहीं किया है। न मेरी माता है, न पिता। मैं आप ही अपनी मालिक हूँ। अबतक ब्रह्मचर्य-व्रतमें रही। अब पुरुषकी इच्छा रखती हूँ, आप मुझे स्वीकार करें।

गौतम बोले—भद्रे! मेरी अवस्था तो अभी एक हजार वर्षकी ही है और तुम नब्बे हजार वर्षकी हो गयी हो। मैं बालक और तुम वृद्धा; यह सम्बन्ध योग्य नहीं जान पड़ता।

वृद्धाने कहा—पूर्वकालमें ही आप मेरे पति नियत कर दिये गये हैं। अब दूसरा कोई मेरा पति नहीं हो सकता, विधाताने आपको मुझे दिया है; अतः अब आप मुझे अस्वीकार न करें। मुझमें कोई दोष नहीं है। मैं आपमें भक्ति रखती हूँ; तब भी यदि आप मुझे ग्रहण करना नहीं चाहते तो आपके देखते-देखते अभी अपने प्राण त्याग दूँगी। यदि अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति न हो तो प्राणियोंके लिये मर जाना ही अच्छा है। प्रेमीजनके परित्यागसे जो पातक लगता है, उसका अन्त नहीं है।

वृद्धाकी बात सुनकर गौतमने कहा—'मुझमें न तपस्या है न विद्या। मैं कुरूप और निर्धन हूँ, अतः तुम्हारे लिये योग्य वर नहीं हो सकता। पहले सुन्दर रूप और उत्तम विद्याकी प्राप्ति करके मुझे तुम्हारी बात माननी चाहिये।'

वृद्धाने कहा—ब्रह्मन्! मैंने अपनी तपस्यासे सरस्वती-देवीको संतुष्ट किया है, साथ ही रूप देनेवाले अग्नि भी मुझ-पर प्रसन्न हैं; अतः वागीश्वरी देवी आपको विद्या देंगी और रूपवान् अग्निदेव रूप प्रदान करेंगे।

यों कहकर वृद्धाने सरस्वती और अग्निकी प्रार्थना करके गौतमको विद्वान् और सुरूपवान् बना दिया। तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ वृद्धाको अपनी पत्नी बनाया और कितने ही वर्षोंतक उसके साथ विहार किया। एक दिन वसिष्ठ और वामदेव आदि महर्षि पुण्यतीर्थोंमें भ्रमण करते हुए उस गुफामें आये। गौतम और उनकी पत्नीने वहाँ आये हुए ऋषि-मुनियोंका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया। उनमेंसे कुछ लोगोंने गौतमका उपहास करते हुए पूछा—'बूढ़ी माँ! यह तो बताओ, ये गौतम तुम्हारे पुत्र लगते हैं या पोते? कल्याणी! सच-सच बताना। वृद्ध पुरुषके लिये युवती स्त्री विषके समान है और वृद्धा स्त्रीके लिये युवा पुरुष अमृतके समान। प्रिय और अप्रियका संयोग हमने दीर्घकालके पश्चात् यहीं देखा है।' गौतम और उनकी पत्नी दोनों इस परिहासको सुनकर चुप रह गये। आतिथ्य ग्रहण करके सब महर्षि चले गये। उनकी बातोंको याद करके ये दोनों दम्पति बहुत दुखी हुए। एक दिन स्त्रीसहित गौतमने मुनिवर अगस्त्य-जीसे पूछा—'महर्षे! कौन-सा देश या तीर्थ ऐसा है, जहाँ जानेसे कल्याणकी प्राप्ति होती है?'

अगस्त्यने कहा—ब्रह्मन्! मैंने मुनियोंके मुखसे सुना है, गोदावरी नदीमें स्नान करनेसे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

अगस्त्यकी यह बात सुनकर गौतम उस वृद्धाके साथ गौतमी-तटपर गये और कठोर तपस्या करने लगे। उन्होंने भगवान् शंकर और विष्णुका स्तवन किया तथा पत्नीके लिये गङ्गाजीको भी संतुष्ट किया।

गौतम बोले—शिव! जिनका हृदय व्यथित है, ऐसे पुरुषोंके लिये संसारमें पार्वतीसहित आप ही शरण हैं—ठीक वैसे ही, जिस प्रकार मरुभूमिके पथिकोंके लिये वृक्ष ही आश्रय होता है। भगवान् श्रीकृष्ण! आप ही छोटे-बड़े सब भूतोंके पापोंका सर्वथा निवारण करनेवाले हैं, जैसे सूखती हुई खेतीको मेघ ही सींचकर हरा-भरा करता है। सुधामयी तरङ्गोंसे सुशोभित गौतमी! तुम वैकुण्ठरूपी दुर्गमें पहुँचनेके लिये सीढ़ी हो। हम अधोगतिमें पड़कर संतप्त हो रहे हैं, माता! तुम हमारे लिये शरण हो जाओ।

सबको शरण देनेवाली गौतमी गङ्गा गौतमके स्तोत्रसे प्रसन्न होकर बोलीं—'ब्रह्मन्! तुम मन्त्र पढ़ते हुए मेरे जलसे अपनी पत्नीका अभिषेक करो। इससे यह रूपवती हो जायगी। इसके सभी अङ्ग मनोहर होंगे। नेत्रोंमें भी सुन्दरता आ जायगी तथा यह सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे शोभा पाने लगेगी।'

गङ्गाजीके आदेशसे दोनोंने ऐसा ही किया, अतः उनकी कृपासे दोनों पति-पत्नी सुन्दर रूपवाले हो गये। उनके अभिषेकका जो जल था, वह नदीरूपमें परिणत हो गया। वृद्धा नामसे ही उस नदीकी ख्याति हुई। गौतमने जो शिवलिङ्गकी स्थापना की, वह भी वृद्धाके ही नामपर 'वृद्धेश्वर' कहलाया। वहीं मुनिश्रेष्ठ गौतमने वृद्धाके साथ पूर्ण आनन्द प्राप्त किया। तबसे उस तीर्थका नाम 'वृद्धा-संगम' हो गया। वहाँ किया हुआ स्नान और दान सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है।

इलातीर्थके आविर्भावकी कथा

ब्रह्माजी कहते हैं—इलातीर्थके नामसे जिस तीर्थकी प्रसिद्धि है, वह मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला, ब्रह्महत्या आदि पापोंको दूर करनेवाला तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। वैवस्वत मनुके वंशमें इल नामक

एक राजा हो गये हैं। वे बहुत बड़ी सेना साथ लेकर शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ उनकी बुद्धिमें कुछ दूसरा ही निश्चय हुआ। उन्होंने अमात्योंसे कहा—'आप सब लोग मेरे पुत्रद्वारा पालित नगरमें चले जायँ। देश, कोश, बल, राज्य तथा मेरे पुत्रकी भी रक्षा करें। महर्षि वसिष्ठ भी हमारे लिये पिताके समान हैं। वे भी अग्निहोत्रकी अग्नियोंको लेकर मेरी पत्नियोंके साथ लौट जायँ। मैं अभी इस वनमें ही निवास करूँगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर सब लोग चले गये और राजा धीरे-धीरे रत्नमय हिमालय पर्वतपर जाकर वहीं निवास करने लगे। एक दिन उन्होंने उस पर्वतपर एक गुफा देखी, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र शोभा पा रही थी। उस गुफामें यक्षोंका राजा समन्यु रहता था। उसके साथ उसकी पतिव्रता पत्नी समा भी रहा करती थी। उस समय वह यक्ष मृगरूप धारण करके अपनी पत्नीके साथ विचर रहा था। भाँति-भाँतिके रत्नोंसे चित्रित उसका वह विशाल गृह सूना पड़ा था। अतः राजा अपनी भारी सेनाके साथ वहीं ठहर गये। वह यक्ष अधर्मके कोपसे पत्नीके साथ मृगरूप धारण करके रहता था। उसने सोचा—'इस राजाने मेरा घर छीन लिया। मैं इसे जीत सकता नहीं और यह माँगनेपर देगा नहीं। अब क्या करूँ?' इसी चिन्तामें पड़कर वह मृगीरूपधारिणी अपनी पत्नीसे बोला—'कान्ते! इस राजाका मन मृगयाके व्यसनमें आसक्त है। यह कैसे विपत्तिमें फँसे—इसके लिये कोई उपाय सोचो। मेरा विचार है कि तुम मनोहर मृगीका रूप धारण करके इसके सामनेसे निकलो और इसे अपनी ओर आकृष्ट करके किसी तरह अम्बिका-वनमें पहुँचा दो। उसके भीतर प्रवेश करते ही यह राजा स्त्री हो जायगा। भद्रे! यह काम तुम्हीं कर सकती हो। मेरे लिये यह उचित न होगा।'

यक्षिणीने पूछा—नाथ! अम्बिका-वन तो बड़ा सुन्दर है। तुम उसमें क्यों नहीं जा सकते? यदि तुम भी चले जाओ तो क्या दोष होगा? यह हमें ठीक-ठीक बताओ।

यक्षने कहा—एक समय पार्वतीने एकान्तमें बैठे हुए भगवान् शंकरसे कहा—'देवेश्वर! स्त्रियोंकी यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि उनकी रतिक्रीड़ा सदा गुप्त रहे। इसलिये मुझे ऐसा नियत स्थान दीजिये, जो आपकी आज्ञासे सुरक्षित हो। मैं स्थान वही चाहती हूँ, जो उमावनके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें आप, गणेश, कार्तिकेय और नन्दीके सिवा जो कोई भी प्रवेश करे, वह स्त्री हो जाय।' शंकरजीने प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा ही हो।' इसलिये उमाके उस वनमें मुझे नहीं जाना चाहिये।

अपने स्वामीका यह वचन सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली वह यक्षिणी विशाल नेत्रोंवाली मृगी बनकर राजाके सामने आयी। यक्ष वहीं ठहर गया। राजाने मृगीको देखा। मृगयामें तो उनकी आसक्ति थी ही। मृगीपर दृष्टि पड़ते ही वे अकेले घोड़ेपर जा बैठे और उसका पीछा करने लगे। वह धीरे-धीरे राजाको अम्बिका-वनतक खींच ले गयी। जब घोड़ेपर बैठे-ही-बैठे उमावनमें प्रविष्ट हो गये, तब यक्षिणीने मृगीका रूप छोड़कर दिव्य रूप धारण कर लिया, और अशोक वृक्षके नीचे खड़ी हो राजाको देखकर हँसने लगी। पतिकी कही हुई बातोंको याद करके वह राजासे बोली—'सुन्दरी इला! तुम अकेली अबला घोड़ेपर चढ़कर पुरुषके वेषमें कहाँ जाती हो, किसके पास जाओगी?' उसके मुखसे 'इला' शब्द सुनकर राजा क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे और यक्षिणीको डाँटकर मृगीका पता पूछने लगे। यक्षिणीने पुनः कहा—'इले! इले! अपने आपको अच्छी तरह देख तो लो; फिर मुझे मिथ्यावादिनी या सत्यवादिनी कहना।' तब राजाने देखा—उनकी छातीमें दो ऊँचे-ऊँचे स्तन उभर आये थे। 'यह मुझे क्या हो गया' यह कहते हुए राजा चकित हो गये। उन्होंने यक्षिणीसे पूछा—'सुव्रते! यह मुझे क्या हो गया—इस बातको आप ठीक-ठीक जानती हैं। अतः बताइये। आप कौन हैं? इसका भी परिचय दीजिये।'

यक्षिणी बोली—हिमालयकी श्रेष्ठ गुफामें मेरे पति यक्षराज समन्यु निवास करते हैं। मैं उन्हींकी पत्नी हूँ। जिस शीतल कन्दरामें आप ठहरे हुए हैं, वह हमारा ही घर है। मैं ही मृगी बनकर आपको यहाँतक ले आयी हूँ। यह उमावन है। यहाँके लिये पूर्वकालमें महादेवजी यह वर दे चुके हैं कि जो पुरुष इसमें प्रवेश करेगा, वह स्त्री हो जायगा। अतः आप भी स्त्री हो गये, इससे आपको दुखी नहीं होना चाहिये। कोई कितना ही प्रौढ़ क्यों न हो, भवितव्यताको कोई नहीं जानता।

इस प्रकार इलाको आश्वासन दे वह सुन्दरी यक्षिणी अन्तर्धान हो गयी। उसने पतिसे सारा हाल कह सुनाया। यक्ष भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। इधर इला गाती और नृत्य करती हुई उमावनमें ही रहने लगी। वह कर्मकी गतिका स्मरण करती हुई स्त्रीस्वभावके अनुसार ही चेष्टा करती थी। एक दिन जब इला नृत्य कर रही थी, बुधने

उसे देखा। वे अपने पिताको नमस्कार करनेके लिये जा रहे थे। इलापर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने यात्रा स्थगित कर दी और उसके पास आकर कहा—'देवि ! तू स्वर्गमें रहकर मेरी प्रिया भार्या हो जा।' इलाने भक्तिपूर्वक बुधकी आज्ञाका अभिनन्दन करके उसे स्वीकार कर लिया। बुध अपने उत्तम स्थानपर ले जाकर इलाके साथ प्रेमपूर्वक विहार करने लगे। उसने भी सब प्रकारकी सेवाओंसे पतिको संतुष्ट किया। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर बुधने प्रसन्न हो अपनी प्रियासे कहा—'कल्याणी ! मैं तुझे क्या दूँ ? तेरे मनमें जो प्रिय वस्तु हो, उसे माँग ले।' इला सहसा बोल उठी—'पुत्र दीजिये।'

बुधने कहा—यह मेरा वीर्य अमोघ तथा प्रेमसे प्रकट हुआ है। अतः तेरे गर्भसे विश्वविख्यात क्षत्रिय-पुत्र उत्पन्न होगा। उससे चन्द्रवंशकी वृद्धि होगी। वह तेजमें सूर्य, बुद्धिमें बृहस्पति, क्षमामें पृथ्वी, युद्धसम्बन्धी पराक्रममें भगवान् विष्णु तथा क्रोधमें अग्निके समान होगा।

समय आनेपर महात्मा बुधका पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय देवलोकमें सब ओर जय-जयकारका शब्द गूँज उठा। उसके जन्मोत्सवमें सभी प्रधान-प्रधान देवता आये। मैं भी बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें सम्मिलित हुआ। वह बालक जन्म लेते ही उच्चस्वरसे रोया था। अतः वहाँ एकत्रित हुए देवताओं तथा ऋषियोंने एक दूसरेसे कहा—'इस बालकने पुरु (अत्यन्त उच्च स्वरसे) रव (शब्द) किया है, अतः इसका नाम पुरूरवा होना चाहिये।' सबने संतुष्ट होकर यही नाम रक्खा। तदनन्तर बुधने अपने पुत्रको क्षत्रियोचित विद्या पढ़ायी और प्रयोगसहित धनुर्वेदका ज्ञान कराया। पुरूरवा शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति शीघ्र ही बढ़कर बड़ा हो गया। उसने अपनी माताको दुखी देख विनीत भावसे नमस्कार करके कहा—'माताजी ! बुध मेरे पिता और आपके प्रियतम पति हैं। मुझ-जैसा कर्मठ पुरुष आपका पुत्र है। फिर आपके मनमें चिन्ता किस बातकी है ?'

इला बोली—बेटा ! ठीक कहते हो। बुध मेरे स्वामी हैं और तुम मेरे गुणाकर पुत्र हो। अतः मुझे पति और पुत्रके लिये कभी चिन्ता नहीं होती। तथापि मेरे मनमें पहलेका ही कुछ दुःख है, जिसका बारंबार स्मरण हो आनेसे मैं चिन्तामें डूब जाती हूँ।

पुरूरवाने कहा—माँ ! पहले मुझे अपना वही दुःख बताओ।

तब इलाने पुरूरवाको इक्ष्वाकुवंशका परिचय देते हुए अपने जन्म, नाम, राज्यप्राप्ति, पुत्रजन्म, पुरोहित वसिष्ठ, प्रिय पत्नी, वनमें आगमन, हिमालयकी कन्दरामें निवास, उमावनमें प्रवेश, स्त्रीत्वकी प्राप्ति, बुधसे समागम, प्रेम तथा पुनः पुत्र-जन्म आदिसे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातें कह सुनायीं। सुनकर पुरूरवाने मातासे पूछा—'मैं क्या करूँ ? क्या करनेसे शुभ परिणाम होगा ?'

इला बोली—बेटा ! तुम्हारे अनुग्रहसे मैं पुरुषत्वकी प्राप्ति, उत्तम राज्य, तुम्हारा तथा अन्य पुत्रोंका अभिषेक, दान देना, यज्ञ करना तथा मुक्तिके मार्गका अवलोकन करना आदि सब कुछ चाहती हूँ। तुम अपने पिता बुधके पास जाकर सब बातें यथार्थरूपसे पूछो। वे सब जानते हैं। तुम्हारे लिये हितकर उपदेश देंगे।

माताके कहनेसे पुरूरवा अपने पिताके पास गये और उन्हें प्रणाम करके उन्होंने अपनी माताका तथा अपना कर्तव्य पूछा।

बुधने कहा—महामते ! मैं राजा इलको जानता हूँ। उनके इला होनेका वृत्तान्त भी मुझसे छिपा नहीं है। उमाके वनमें आना और उस वनके विषयमें भगवान् शंकरकी आज्ञाका हाल भी मुझे मालूम है। बेटा ! भगवान् शिव और माता पार्वतीके प्रसादसे इलका शाप दूर हो सकता है। उन दोनोंकी आराधनाके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। तुम गोदावरी नदीके तटपर जाओ। वहाँ भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ सदा विराजमान रहते हैं। वे ही वरदान देकर शापका नाश करेंगे।

पिताकी बात सुनकर पुरूरवा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने माताको पुरुषत्व प्राप्त होनेकी इच्छासे हिमालय पर्वत, माता, पिता तथा गुरुको मस्तक झुकाया और तपस्या करनेके लिये तुरंत ही त्रिभुवनपावनी गौतमी गङ्गाकी ओर प्रस्थान किया। पुत्रके पीछे-पीछे इला और बुध भी गये। वे सब लोग गौतमीके तटपर पहुँचे और वहाँ स्नान करके तपस्या करते हुए भगवान्की स्तुति करने लगे। पहले बुधने, फिर इलाने, तत्पश्चात् पुरूरवाने देवी पार्वती तथा भगवान् शंकरका स्तवन किया।

बुध बोले—जो अपने शरीरकी केसरसे स्वभावतः सुवर्णके सदृश कान्तिमान् एवं सुन्दर दिखायी देते हैं, कार्तिकेय और गणेशजीके द्वारा जिनकी सदा अर्चना होती रहती है, वे शरणागतवत्सल उमा-महेश्वर मुझे शरण दें।

इला बोली—संसारके त्रिविध तापरूपी दावानलसे दग्ध होनेवाले देहधारी जिनका चिन्तन करनेसे तत्काल परम शान्तिको प्राप्त होते हैं, वे कल्याणकारी उमा-महेश्वर मुझे शरण दें। देव! मैं आर्त हूँ। मेरे हृदयमें बड़ी पीड़ा है। क्लेश आदिसे मेरी रक्षा करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। शरणागतकी रक्षा करनेवाले आपके जो दोनों परम पवित्र चरण हैं, वे मुझे शरण दें।

पुरूरवा बोले—जिनसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है तथा प्रलयकालमें यह सब जिनके ही भीतर लयको प्राप्त होता है, वे संसारको शरण देनेवाले जगदात्मा उमा-महेश्वर मुझे शरण दें। देवताओंके समुदायमें एक महान् उत्सवके अवसरपर गिरिराजकुमारी पार्वतीने महादेवजीसे कहा था—'ईश! आप मेरे दोनों चरण पकड़ें।' इसपर शिवजीने अत्यन्त प्रीतिवश पार्वतीके जिन दोनों शरणागतपालक चरणोंको ग्रहण किया था, वे मुझे शरण दें।

यह स्तुति सुनकर उमावर महेश्वर प्रकट हो गये। भगवती उमाने कहा—'तुमलोगोंका मनोरथ क्या है? बताओ, मैं उसे पूर्ण करूँगी। तुम्हारा कल्याण हो। तुम सब लोग कृतार्थ हो गये। जो वस्तु देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो, वह भी मैं तुम्हें दूँगी।'

पुरूरवा बोले—जगदम्बिके! राजा इल अज्ञानवश आपके वनमें घुस गये थे। देवेश्वरि! आप उनके उस अपराधको क्षमा करें और पुनः उन्हें पुरुषत्व दें।

पार्वतीने भगवान् शंकरकी सम्मतिके अनुसार 'तथास्तु' कहकर उन सबकी प्रार्थना स्वीकार की। इसके बाद शिवजीने कहा—'राजा इल गौतमी गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे पुरुष हो जायँगे।' तब युवककी पत्नी इलाने गङ्गामें स्नान किया। स्नानके पश्चात् इलाके शरीरसे जो जल चू रहा था, उसके साथ उसके नारीजनोचित सौन्दर्य, नृत्य और संगीत भी गङ्गाकी धारामें मिल गये। वे ही नृत्या, गीता और सौभाग्या नामकी नदियोंके रूपमें परिणत हुए। वे नदियाँ भी गङ्गामें आ मिलीं। इससे वहाँ तीन पवित्र संगम हो गये। उनमें किया हुआ स्नान और दान इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला है। शिव और पार्वतीके प्रसादसे पुरुषत्व प्राप्त करनेके पश्चात् राजा इलने महान् अभ्युदयकी सिद्धिके लिये वहाँ अश्वमेध यज्ञ किया। पुरोहित वसिष्ठ, अपनी पत्नी, पुत्र, अमात्य, सेना और कोशको भी लाकर उन्होंने वह यज्ञ सम्पन्न किया। दण्डक वनमें इलने चतुरङ्गिणी सेनासहित राज्यकी स्थापना की। वहाँ इलके नामसे विख्यात उनका नगर भी है। सूर्यवंशकी परम्परामें जो उन्होंने पहले पुत्र उत्पन्न किये थे, उनको राज्यपर अभिषिक्त करके पीछे स्नेहवश पुरूरवाका भी अभिषेक किया। ये राजा पुरूरवा ही चन्द्रवंशके प्रवर्तक हुए। जहाँ राजाको पुरुषत्वकी प्राप्ति हुई, वहाँ गौतमीके दोनों तटोंपर सोलह हजार तीर्थोंका निवास है। वहाँ इलेश्वर नामक भगवान् शंकरकी भी स्थापना हुई है। उन तीर्थोंमें स्नान और दान करनेसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

चक्रतीर्थ और पिप्पलतीर्थकी महिमा, महर्षि दधीचि, उनकी पत्नी गभस्तिनी तथा उनके पुत्र पिप्पलादके त्यागकी अद्भुत कथा

ब्रह्माजी कहते हैं—चक्रतीर्थ ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ भगवान् शंकर चक्रेश्वरके नामसे निवास करते हैं। उन्हींसे भगवान् विष्णुको चक्र प्राप्त हुआ था। श्रीविष्णुने वहाँ रहकर चक्रके लिये भगवान् शंकरकी आराधना की थी। इसीलिये उसे चक्रतीर्थ कहते हैं। उसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। चक्रतीर्थके बाद पिप्पलतीर्थ है। उसकी महिमाका वर्णन करनेमें शेषनाग भी समर्थ नहीं हैं। नारद! चक्रेश्वर ही पिप्पलेश्वर हैं। उनके नामका कारण सुनो। दधीचि नामसे विख्यात एक मुनि थे। वे सभी उत्तम गुणोंसे सुशोभित थे। उनकी पत्नी श्रेष्ठ वंशकी कन्या और पतिव्रता थीं। उनका नाम गभस्तिनी था। वे लोपामुद्राकी बहिन थीं। दधीचिकी पत्नी सदा भारी तपस्यामें लगी रहती थीं। दधीचि प्रतिदिन अग्निकी उपासना करते और गृहस्थ-धर्मके पालनमें तत्पर रहते थे। उनका आश्रम गङ्गाके तटपर था। वे देवता और अतिथियोंकी सेवा करते, अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखते और शान्तभावसे रहते थे। उनके प्रभावसे उस देशमें शत्रुओं और दैत्य-दानवोंका आक्रमण नहीं होता था।

एक दिनकी बात है—दधीचि मुनिके आश्रमपर रुद्र,

आदित्य, अश्विनीकुमार, इन्द्र, विष्णु, यम और अग्नि पधारे। वे दैत्योंको परास्त करके वहाँ आये थे और उस विजयके कारण उनके हृदयमें हर्षकी हिलोरें उठ रही थीं। मुनिवर दधीचिको देखकर सब देवताओंने प्रणाम किया। दधीचि भी देवताओंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सबका पृथक्-पृथक् पूजन किया, फिर पत्नीके साथ देवताओंके लिये गृहस्थोचित स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध किया। इसके बाद उन्होंने देवताओंसे कुशल पूछी और देवता भी उनसे वार्तालाप करने लगे।



देवता बोले—मुने! आप इस पृथ्वीके कल्पवृक्ष हैं। आप-जैसा महर्षि जब हमलोगोंपर इतनी कृपा रखता है, तब अब हमारे लिये संसारमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ होगी। मुनिश्रेष्ठ! जीवित पुरुषोंके जीवनका इतना ही फल है कि वे तीर्थोंमें स्नान, समस्त प्राणियोंपर दया और आप-जैसे महात्माओंका दर्शन करें।* मुने! इस समय स्नेहवश हम आपसे जो कुछ कहते हैं, उसे ध्यान देकर सुनें। हम बड़े-बड़े राक्षसों और दैत्योंको जीतकर यहाँ आये हैं। इससे हम बहुत सुखी हैं। विशेषतः आपका दर्शन करके हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब हमें अस्त्र-शस्त्रोंके रखनेसे कोई लाभ नहीं दिखायी देता। हम उन अस्त्रोंका बोझ ढो भी नहीं सकते। हम स्वर्गमें जब इन अस्त्रोंको रखते हैं, तब हमारे शत्रु इनका पता लगाकर वहाँसे हड़प ले जाते हैं। इसलिये हम आपके पवित्र आश्रमपर इन सब अस्त्रोंको रख देते हैं। ब्रह्मन्! यहाँ दानवों और राक्षसोंसे तनिक भी भय नहीं है। आपकी आज्ञासे यह सारा प्रदेश पवित्र और सुरक्षित हो गया है। तपस्याद्वारा आपकी समानता करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं। अब हम कृतार्थ होकर इन्द्रके साथ अपने-अपने स्थानको चले जाते हैं। अब इन आयुधोंकी रक्षा आपके अधीन है।

देवताओंकी यह बात सुनकर दधीचिने कहा—'एवमस्तु'। उस समय उनकी प्यारी पत्नीने उन्हें रोका—'मुने! यह देवताओंका कार्य विरोध उत्पन्न करनेवाला है। अतः इसमें आपको पड़नेकी क्या आवश्यकता है। जो शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके परमार्थ-तत्त्वमें स्थित हो चुके हैं, संसारके कार्योंमें जिनकी कोई आसक्ति नहीं है, उन्हें दूसरोंके लिये ऐसा संकट मोल लेनेसे क्या लाभ, जिससे न इस लोकमें सुख है और न परलोकमें। विप्रवर! मेरी बातें ध्यान देकर सुनो। यदि आपने इन आयुधोंको स्थान दे दिया तो इन देवताओंके शत्रु आपसे भी द्वेष करेंगे। यदि इनमेंसे कोई अस्त्र नष्ट हुआ या चोरी चला गया तो ये देवता भी कुपित होकर हमारे शत्रु बन जायँगे। अतः मुनीश्वर! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपके लिये इस पराये द्रव्यमें ममत्व जोड़ना ठीक नहीं। यदि धन देनेकी शक्ति हो तो याचकको देना ही चाहिये—उसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि धन देनेकी शक्ति न हो तो साधु पुरुष केवल मन, वाणी तथा शारीरिक क्रियाओंद्वारा दूसरोंका कार्य-साधन करते हैं। प्राणनाथ! पराये धनको अपने यहाँ धरोहरके रूपमें रखना साधु पुरुषोंने कभी स्वीकार नहीं किया है। इसका उन्होंने सदा बहिष्कार ही किया है। अतः आप यह कार्य न कीजिये।'*

---

* एतदेव फलं पुंसां जीवतां मुनिसत्तम।
तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशाम्॥
(११०।१६)

* चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते दातव्यमेवार्थिने किं विचार्यम्।
नो चेत् सन्तः परकार्याणि कुर्युर्वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिस्तथैव॥
परस्वसंधारणमेतदेव सद्भिर्निरस्तं त्यज कान्त सद्यः।
(११०।२९-३०)

अपनी प्यारी पत्नीकी यह बात सुनकर ब्राह्मणने कहा—"भद्रे ! मैं देवताओंकी प्रार्थनापर पहले ही 'हाँ' कह चुका हूँ। अब 'नहीं' कर दूँ तो मुझे सुख नहीं मिलेगा।" पतिका कथन सुनकर ब्राह्मणी यह सोचकर चुप हो गयी कि दैवके सिवा और किसीका किसीपर वश नहीं चल सकता। देवतालोग अपने अत्यन्त तेजस्वी अस्त्र आश्रमपर रखकर मुनीश्वरको नमस्कार करके कृतार्थ हो अपने-अपने लोकमें चले गये। देवताओंके चले जानेपर मुनि अपनी पत्नीके साथ धर्ममें तत्पर हो प्रसन्नतापूर्वक वहाँ रहने लगे। इस प्रकार एक हजार दिव्य वर्ष बीत गये। तब दधीचिने अपनी पत्नीसे कहा—'देवि ! देवता यहाँसे अस्त्र ले जाना नहीं चाहते और दैत्य मुझसे द्वेष करते हैं। अब तुम्हीं बताओ—क्या करना चाहिये ?' पत्नीने विनयपूर्वक कहा—'नाथ ! मैंने तो पहले ही निवेदन किया था। अब आप ही जानें और जो उचित हो, सो करें। दैत्योंमें जो बड़े-बड़े वीर, तपस्वी और बलवान् हैं, वे इन अस्त्र-शस्त्रोंको निश्चय ही हड़प लेंगे।' तब दधीचिने उन अस्त्रोंकी रक्षाके लिये एक काम किया—उन्होंने पवित्र जलसे मन्त्र पढ़ते हुए अस्त्रोंको नहलाया। फिर वह सर्वास्त्रमय परम पवित्र और तेजयुक्त जल स्वयं पी लिया। तेज निकल जानेसे वे सभी अस्त्र-शस्त्र शक्तिहीन हो गये, अतः क्रमशः समयानुसार नष्ट हो गये। तदनन्तर देवताओंने आकर दधीचिसे कहा—'मुनिवर ! हमारे ऊपर शत्रुओंका महान् भय आ पहुँचा है। अतः हमने जो अस्त्र आपके यहाँ रख दिये थे, उन्हें इस समय दे दीजिये।' दधीचिने कहा—'आपलोग बहुत दिनोंतक उन्हें लेने नहीं आये। अतः दैत्योंके भयसे हमने उन अस्त्रोंको पी लिया है। अब वे हमारे शरीरमें स्थित हैं। इसलिये जो उचित हो, वह कहें।' यह सुनकर देवताओंने विनीत भावसे कहा—'मुनीश्वर ! इस समय तो हम इतना ही कह सकते हैं कि अस्त्र दे दीजिये।' ब्राह्मणने कहा—'सब अस्त्र मेरी हड्डियोंमें मिल गये हैं। अतः उन हड्डियोंको ही ले जाओ।' उस समय प्रिय वचन बोलनेवाली दधीचिकी पत्नी प्रातिथेयी उनके पास नहीं थीं। देवता उनसे बहुत डरते थे। उन्हें न देखकर दधीचिसे बोले—'विप्रवर ! जो कुछ करना हो, शीघ्र करें।' दधीचिने अपने दुस्त्यज प्राणोंका परित्याग करते हुए कहा—'देवताओ ! तुम सुखपूर्वक मेरा शरीर ले लो। मेरी हड्डियोंसे प्रसन्नता प्राप्त करो। मुझे इस देहसे क्या काम है।'

आदित्य, अश्विनीकुमार, इन्द्र, विष्णु, यम और अग्नि पधारे। वे दैत्योंको परास्त करके वहाँ आये थे और उस विजयके कारण उनके हृदयमें हर्षकी हिलोरें उठ रही थीं। मुनिवर दधीचिको देखकर सब देवताओंने प्रणाम किया। दधीचि भी देवताओंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सबका पृथक्-पृथक् पूजन किया, फिर पत्नीके साथ देवताओंके लिये गृहस्थोचित स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध किया। इसके बाद उन्होंने देवताओंसे कुशल पूछी और देवता भी उनसे वार्तालाप करने लगे।



देवता बोले—मुने! आप इस पृथ्वीके कल्पवृक्ष हैं। आप-जैसा महर्षि जब हमलोगोंपर इतनी कृपा रखता है, तब अब हमारे लिये संसारमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ होगी। मुनिश्रेष्ठ! जीवित पुरुषोंके जीवनका इतना ही फल है कि वे तीर्थोंमें स्नान, समस्त प्राणियोंपर दया और आप-जैसे महात्माओंका दर्शन करें।* मुने! इस समय स्नेहवश हम आपसे जो कुछ कहते हैं, उसे ध्यान देकर सुनें। हम बड़े-बड़े राक्षसों और दैत्योंको जीतकर यहाँ आये हैं। इससे हम बहुत सुखी हैं। विशेषतः आपका दर्शन करके हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब हमें अस्त्र-शस्त्रोंके रखनेसे कोई लाभ नहीं दिखायी देता। हम उन अस्त्रोंका बोझ ढो भी नहीं सकते। हम स्वर्गमें जब इन अस्त्रोंको रखते हैं, तब हमारे शत्रु इनका पता लगाकर वहाँसे हड़प ले जाते हैं। इसलिये हम आपके पवित्र आश्रमपर इन सब अस्त्रोंको रख देते हैं। ब्रह्मन्! यहाँ दानवों और राक्षसोंसे तनिक भी भय नहीं है। आपकी आज्ञासे यह सारा प्रदेश पवित्र और सुरक्षित हो गया है। तपस्याद्वारा आपकी समानता करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं। अब हम कृतार्थ होकर इन्द्रके साथ अपने-अपने स्थानको चले जाते हैं। अब इन आयुधोंकी रक्षा आपके अधीन है।

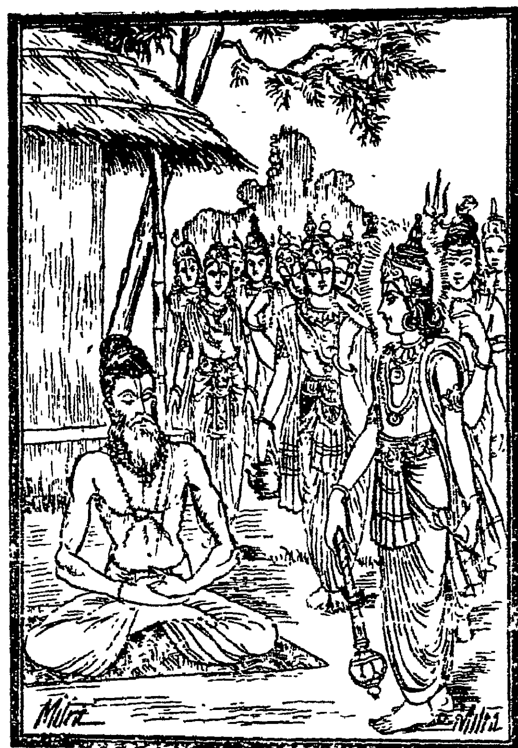
देवताओंकी यह बात सुनकर दधीचिने कहा—'एवमस्तु'। उस समय उनकी प्यारी पत्नीने उन्हें रोका—'मुने! यह देवताओंका कार्य विरोध उत्पन्न करनेवाला है। अतः इसमें आपको पड़नेकी क्या आवश्यकता है। जो शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके परमार्थ-तत्त्वमें स्थित हो चुके हैं, संसारके कार्योंमें जिनकी कोई आसक्ति नहीं है, उन्हें दूसरोंके लिये ऐसा संकट मोल लेनेसे क्या लाभ, जिससे न इस लोकमें सुख है और न परलोकमें। विप्रवर! मेरी बातें ध्यान देकर सुनो। यदि आपने इन आयुधोंको स्थान दे दिया तो इन देवताओंके शत्रु आपसे भी द्वेष करेंगे। यदि इनमेंसे कोई अस्त्र नष्ट हुआ या चोरी चला गया तो ये देवता भी कुपित होकर हमारे शत्रु बन जायँगे। अतः मुनीश्वर! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपके लिये इस पराये द्रव्यमें ममत्व जोड़ना ठीक नहीं। यदि धन देनेकी शक्ति हो तो याचकको देना ही चाहिये—उसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि धन देनेकी शक्ति न हो तो साधु पुरुष केवल मन, वाणी तथा शारीरिक क्रियाओंद्वारा दूसरोंका कार्य-साधन करते हैं। प्राणनाथ! पराये धनको अपने यहाँ धरोहरके रूपमें रखना साधु पुरुषोंने कभी स्वीकार नहीं किया है। इसका उन्होंने सदा बहिष्कार ही किया है। अतः आप यह कार्य न कीजिये।'*

* एतदेव फलं पुंसां जीवतां मुनिसत्तम।
तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशाम्॥
(११०।१६)

* चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते दातव्यमेवार्थिने किं विचार्यम्।
नो चेत् सन्तः परकार्याणि कुर्युर्वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिस्तथैव॥
परस्वसंधारणमेतदेव सद्भिर्निरस्तं त्यज कान्त सद्यः।
(११०।२९-३०)

अपनी प्यारी पत्नीकी यह बात सुनकर ब्राह्मणने कहा—"भद्रे ! मैं देवताओंकी प्रार्थनापर पहले ही 'हाँ' कह चुका हूँ। अब 'नहीं' कर दूँ तो मुझे सुख नहीं मिलेगा।" पतिका कथन सुनकर ब्राह्मणी यह सोचकर चुप हो गयी कि दैवके सिवा और किसीका किसीपर वश नहीं चल सकता। देवतालोग अपने अत्यन्त तेजस्वी अस्त्र आश्रमपर रखकर मुनीश्वरको नमस्कार करके कृतार्थ हो अपने-अपने लोकमें चले गये। देवताओंके चले जानेपर मुनि अपनी पत्नीके साथ धर्ममें तत्पर हो प्रसन्नतापूर्वक वहाँ रहने लगे। इस प्रकार एक हजार दिव्य वर्ष बीत गये। तब दधीचिने अपनी पत्नीसे कहा—'देवि ! देवता यहाँसे अस्त्र ले जाना नहीं चाहते और दैत्य मुझसे द्वेष करते हैं। अब तुम्हीं बताओ—क्या करना चाहिये ?' पत्नीने विनयपूर्वक कहा—'नाथ ! मैंने तो पहले ही निवेदन किया था। अब आप ही जानें और जो उचित हो, सो करें। दैत्योंमें जो बड़े-बड़े वीर, तपस्वी और बलवान् हैं, वे इन अस्त्र-शस्त्रोंको निश्चय ही हड़प लेंगे।' तब दधीचिने उन अस्त्रोंकी रक्षाके लिये एक काम किया—उन्होंने पवित्र जलसे मन्त्र पढ़ते हुए अस्त्रोंको नहलाया। फिर वह सर्वास्त्रमय परम पवित्र और तेजयुक्त जल स्वयं पी लिया। तेज निकल जानेसे वे सभी अस्त्र-शस्त्र शक्तिहीन हो गये, अतः क्रमशः समयानुसार नष्ट हो गये। तदनन्तर देवताओंने आकर दधीचिसे कहा—'मुनिवर ! हमारे ऊपर शत्रुओंका महान् भय आ पहुँचा है। अतः हमने जो अस्त्र आपके यहाँ रख दिये थे, उन्हें इस समय दे दीजिये।' दधीचिने कहा—'आपलोग बहुत दिनोंतक उन्हें लेने नहीं आये। अतः दैत्योंके भयसे हमने उन अस्त्रोंको पी लिया है। अब वे हमारे शरीरमें स्थित हैं। इसलिये जो उचित हो, वह करें।' यह सुनकर देवताओंने विनीत भावसे कहा—'मुनीश्वर ! इस समय तो हम इतना ही कह सकते हैं कि अस्त्र दे दीजिये।' ब्राह्मणने कहा—'सब अस्त्र मेरी हड्डियोंमें मिल गये हैं। अतः उन हड्डियोंको ही ले जाओ।' उस समय प्रिय वचन बोलनेवाली दधीचिकी पत्नी प्रातिथेयी उनके पास नहीं थीं। देवता उनसे बहुत डरते थे। उन्हें न देखकर दधीचिसे बोले—'विप्रवर ! जो कुछ करना हो, शीघ्र करें।' दधीचिने अपने दुस्त्यज प्राणोंका परित्याग करते हुए कहा—'देवताओ ! तुम सुखपूर्वक मेरा शरीर ले लो। मेरी हड्डियोंसे प्रसन्नता प्राप्त करो। मुझे इस देहसे क्या काम है।'

यों कहकर दधीचि पद्मासन बाँधकर बैठ गये। उनकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागपर स्थिर हो गयी। मुखपर प्रकाश और प्रसन्नता विराज रही थी। उन्होंने हृदयाकाशमें स्थित अग्निसहित वायुको धीरे-धीरे ऊपरकी ओर उठाकर अप्रमेय परम पद ब्रह्मके स्वरूपमें स्थापित कर दिया। इस प्रकार महात्मा दधीचिने ब्रह्मसायुज्य प्राप्त किया। उनका शरीर निष्प्राण हो गया। यह देख देवताओंने विश्वकर्मासे



उतावलीपूर्वक कहा—'अब आप अभी बहुत-से अस्त्र-शस्त्र बना डालिये।' विश्वकर्माने कहा—'देवताओ ! यह ब्राह्मणका शरीर है। मैं इसका उपयोग कैसे करूँ। जब केवल इनकी हड्डियाँ रह जायँगी, तभी उनका अस्त्रनिर्माण करूँगा।' तब देवताओंने गौओंसे कहा—'हम तुम्हारा मुख वज्रके समान किये देते हैं। तुम हमारे हितके लिये अस्त्र-शस्त्र निर्माण करनेके उद्देश्यसे दधीचिके शरीरको क्षणभरमें विदीर्ण कर डालो और शुद्ध हड्डियाँ निकालकर दे दो।' देवताओंके आदेशसे गौओंने वैसा ही किया। उन्होंने दधीचिके शरीरको चाट-चाटकर हड्डियाँ निकाल लीं और देवताओंको दे दीं। देवता उत्साहके साथ अपने लोकमें चले गये और गौएँ भी अपने स्थानको लौट गयीं।

तदनन्तर बहुत देरके बाद दधीचिकी सुशीला पत्नी हाथमें जलसे भरा हुआ कलश ले फल और फूलोंसे पार्वती देवीकी अर्चना और वन्दना करके अग्नि, पति तथा आश्रमके दर्शनकी उत्सुकतासे शीघ्रतापूर्वक पैर बढ़ाती हुई आयीं। उस समय उनके गर्भमें बालक आ गया था। आश्रमपर पहुँचनेपर जब उन्होंने अपने स्वामीको नहीं देखा, तब बड़े विस्मयमें पड़कर अग्निसे पूछा—'मेरे पतिदेव कहाँ चले गये ?' अग्निने जो कुछ हुआ था, सब सुना दिया। पतिकी मृत्युका दुःखद समाचार सुनकर वे दुःख और उद्वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उस समय अग्निदेवने ही उन्हें धीरे-धीरे आश्वासन दिया।

प्रातिथेयी बोलीं—मैं देवताओंको शाप देनेमें समर्थ नहीं हूँ, अतः स्वयं ही अग्निमें प्रवेश करूँगी। अब जीवन रखकर क्या होगा। संसारमें जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह सब नश्वर है; अतः उसके लिये शोक नहीं होना चाहिये। परंतु मनुष्योंमें वे ही पुण्यके भागी होते हैं, जो गौ, ब्राह्मण तथा देवताओंके लिये अपने प्यारे प्राणोंका उत्सर्ग कर देते हैं।* इस परिवर्तनशील संसार-चक्रमें धर्मपरायण तथा शक्तिशाली शरीर पाकर जो प्राणी देवताओं तथा ब्राह्मणोंके लिये अपने प्यारे प्राणोंका त्याग करते हैं, वे ही धन्य हैं। जिसने देह धारण किया है, उसके प्राण एक-न-एक दिन अवश्य जायँगे—यह जानकर जो ब्राह्मण, गौ, देवता तथा दीन आदिके लिये इन प्राणोंका उत्सर्ग करते हैं, वे ईश्वर हैं।†

यों कहकर उन्होंने अग्नियोंका यथावत् पूजन किया और अपना पेट चीरकर गर्भके बालकको हाथसे निकाल दिया; फिर गङ्गा, पृथ्वी, आश्रम तथा आश्रमके वनस्पतियों और अन्न आदि ओषधियोंको प्रणाम करके पतिकी त्वचा और लोम आदिके साथ चितामें प्रवेश करनेका विचार किया। उस समय वे बोलीं—'मेरे गर्भका यह बालक पिता-मातासे हीन है, इसके कोई सगोत्र बन्धु भी नहीं हैं; अतः सम्पूर्ण भूतगण, ओषधियाँ तथा लोकपाल इसकी रक्षा करें। जो लोग माता-पितासे हीन बालकको अपने औरस पुत्रोंके समान देखते और उसी भावसे रक्षा करते हैं, वे निश्चय ही ब्रह्मा आदि देवताओंके भी वन्दनीय हैं।'*

यों कहकर दधीचिकी पत्नीने बालकको पीपलके समीप रख दिया और स्वामीमें चित्त लगाकर अग्निको प्रणाम किया; फिर अग्निकी परिक्रमा करके यज्ञपात्रोंके साथ ही चितामें प्रवेश किया और पतिसहित दिव्यलोकको चली गयीं। उस समय आश्रमके वनवासी वृक्ष भी रोने लगे। प्रातिथेयी और दधीचिने उनका अपने पुत्रोंकी भाँति पालन किया था। मृग, पक्षी तथा वृक्ष सब रो-रोकर एक-दूसरेसे कहने लगे—'हम पिता दधीचि और माता प्रातिथेयीके बिना जीवित नहीं रह सकते। जो लोग स्वर्गवासी माता-पिताकी संतानोंपर निरन्तर स्वाभाविक स्नेह रखते हैं, वे ही पुण्यात्मा और कृतार्थ हैं।† दधीचि और प्रातियेयी हमें जिस स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा करते थे, वैसे सगे माता-पिता भी नहीं देखते। हमें धिक्कार है। हम पापी हैं; जो उनके दर्शनसे वञ्चित हो गये। आजसे हम सब लोगोंका यही निश्चय होना चाहिये कि यह बालक ही हमलोगोंके लिये दधीचि और प्रातिथेयी है, तथा यह बालक ही हमारा सनातन धर्म है।'

यों कहकर वनस्पतियों और ओषधियोंने अपने राजा सोमके पास जाकर उत्तम अमृतकी याचना की। सोमने उन्हें बहुत उत्तम अमृत दिया और वनस्पतियोंने वह लाकर बालकको दे दिया। अमृतसे तृप्त हुआ बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ने लगा। पीपलके वृक्षोंने उसका पालन किया था, इसलिये वह पिप्पलादके नामसे प्रसिद्ध हुआ। बड़ा होनेपर पिप्पलादने पीपलके वृक्षोंसे अत्यन्त विसित होकर कहा—'लोकमें यह देखा जाता है कि मनुष्योंसे मनुष्य, पक्षियोंसे पक्षी तथा वनस्पतियोंसे वनस्पति उत्पन्न होते हैं; इसमें कहीं विषमता नहीं दिखायी देती। परंतु मैं वृक्षका पुत्र होकर हाथ-पैर आदिसे विशिष्ट जीव कैसे हो गया ?' उनकी बात सुनकर वृक्षोंने क्रमशः उनके पिता दधीचिकी मृत्यु और

---

* उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके।
गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति प्राणान् प्रियान् पुण्यभाजो मनुष्याः॥ (११०। ६३)

† प्राणाः सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य यातारो वै नात्र संदेहलेशः।
एवं ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीनाद्यर्थं चैनानुत्सृजन्तीश्वरास्ते॥ (११०। ६५)

* ये बालकं मातृपितृप्रहीणं सन्निर्विशेषं स्वतनुप्ररूढैः।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नूनं ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः॥ (११०। ७०)

† स्वर्गमासेदुषोः पित्रोस्तदपत्येष्वकृत्रिमम्।
ये कुर्वन्त्यनिशं स्नेहं त एव कृतिनो नराः॥ (११०। ७५)

पतिव्रता माताके अग्निप्रवेशका सब समाचार कह सुनाया । सुनते ही वे दुःखसे व्याप्त होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । उस समय वृक्षोंने धर्म और अर्थयुक्त वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी । आश्वस्त होनेपर उन्होंने ओषधियों और वनस्पतियोंसे कहा, 'जिन्होंने मेरे पिताकी हत्या की है, उनका मैं भी वध करूँगा, अन्यथा जीवित नहीं रह सकता । जो पिताके मित्र और शत्रु होते हैं, उनके साथ पुत्र भी वैसा ही वर्ताव करता है । जो ऐसा करता है, वही पुत्र है । जो इसके विपरीत आचरण करता है, वह पुत्रके रूपमें शत्रु माना गया है ।'

तब वृक्षोंने कहा—महाद्युते ! तुम्हारी माताने परलोकमें जाते समय यह उद्गार प्रकट किया था—'जो दूसरोंके द्रोहमें लगे रहते हैं, जो अपने कल्याणकी बातें भूल जाते हैं तथा जो भ्रान्तचित्त होकर इधर-उधर भटकते हैं, वे नरकके गड्ढेमें गिरते हैं ।' माताकी कही हुई वह बात सुनकर पिप्पलाद कुपित होकर बोले—'जिसके अन्तःकरणमें अपमानकी आग प्रज्वलित हो रही हो, उसके सामने साधुताकी बातें व्यर्थ हैं ।' फिर उन्होंने भगवान् चक्रेश्वर महादेवके स्थानपर जाकर उनसे कहा—'मुझे तो शत्रुओंका नाश करनेके लिये कोई शक्ति दीजिये ।' पिप्पलादके इतना कहते ही भगवान् शंकरके नेत्रोंसे भयंकर कृत्या प्रकट हुई । उसकी आकृति बडवा (घोड़ी) के समान थी । सम्पूर्ण जीवोंका विनाश करनेके लिये उसने अपने गर्भमें भयंकर अग्नि छिपा रक्खी थी । मृत्युकी लपलपाती हुई जीभके समान वह महारौद्ररूपा भीषण कृत्या पिप्पलादसे बोली—'बताओ, मुझे क्या करना है ?' पिप्पलादने कहा—'देवता मेरे शत्रु हैं । उन्हें खा जा ।' फिर तो उस बडवाके गर्भसे महाभयंकर अग्नि प्रकट हुई, जो समस्त लोकोंका प्रलय करनेमें समर्थ थी । देवता उसे देखते ही थर्रा उठे और पिप्पलाद-द्वारा आराधित पिप्पलेश नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिवकी शरणमें आये । उन्होंने भयभीत होकर शिवजीकी स्तुति करते हुए कहा—'शम्भो ! आप हमारी रक्षा करें । कृत्या और उससे प्रकट हुई आग हमें बड़ा कष्ट दे रही है । सर्वेश्वर ! आप भयभीत मनुष्योंको अभय देनेवाले हैं । शिव ! जो सब ओरसे सताये हुए, पीड़ित तथा भ्रान्तचित्त प्राणी हैं, उन सबकी आप ही शरण हैं । जगन्मय ! आप पिप्पलादको शान्त कीजिये ।'

'बहुत अच्छा' कहकर जगदीश्वर शिवने पिप्पलादके पास



आकर उससे कहा—'बेटा ! देवताओंका नाश कर दिया जाय, तो भी तुम्हारे पिता लौटकर नहीं आयेंगे । उन्होंने देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने प्राण दिये हैं । संसारमें उनके समान दीन-दुखियोंका दयामय बन्धु कौन होगा ! तुम्हारी पतिव्रता माता भी उन्हींके साथ दिव्यलोकमें चली गयीं । यहाँ उनकी समता करनेवाली कौन स्त्री है । क्या लोपामुद्रा और अरुन्धती भी उनकी बराबरी कर सकती हैं ? जिनकी हड्डियोंसे सम्पूर्ण देवता सदा विजयी और सुखी बने रहते हैं, वे तुम्हारे पिता कितने शक्तिशाली थे ! उन्होंने जिस उज्ज्वल सुयश-राशिका उपार्जन किया है, उसे तुम्हारी माताने अपने दिव्य त्यागसे अक्षय बना दिया है । तुम उन्हींके पुत्र हो । उनसे बढ़कर तुमने अभीतक कुछ नहीं किया । तुम्हारे प्रताप और भयसे आज देवता स्वर्गसे भ्रष्ट हो चुके हैं । वे सोच नहीं पाते कि हम किस दिशाको भागकर जायँ । तुम उन्हें बचाओ । अमरोंकी रक्षा करो । आर्त्त प्राणियोंकी रक्षासे बढ़कर पुण्य कहीं भी नहीं है । मनुष्यलोकमें जबतक मनोहर यश फैला रहता है, तबतक एक-एक दिनके बदले एक-एक वर्षके क्रमसे दीर्घकालतक स्वर्गलोकमें मनुष्य निर्विकार चित्तसे निवास

करते हैं। इस जगत्‌में वे ही मुर्देके समान हैं, जिन्होंने यशका उपार्जन नहीं किया; वे ही अंधे हैं, जिन्होंने शास्त्र नहीं पढ़े। वे ही नपुंसक हैं, जो सदा दान नहीं देते तथा वे ही शोकके योग्य हैं, जो सदा धर्मपालनमें संलग्न नहीं रहते।*

देवाधिदेव महादेवजीका यह वचन सुनकर पिप्पलाद मुनि शान्त हो गये। उन्होंने भगवान् शिवको नमस्कार किया और हाथ जोड़कर कहा—'जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा मेरे हितमें संलग्न रहकर मेरा उपकार करते रहते हैं, उनका तथा अन्य लोगोंका हित करनेके लिये मैं देवता आदिके पूजनीय उमासहित भगवान् शंकरको प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने मेरी रक्षा की, हमें पाल-पोसकर बड़ा किया, अपना सगोत्र और सहधर्मी बनाया, भगवान् शिव उनके मनोरथ पूर्ण करें। मैं बाल-चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले महादेवजीको नित्य प्रणाम करता हूँ। प्रभो! जिन्होंने माता-पिताकी भाँति मेरा भरण-पोषण किया है, उनके नामसे तीनों लोकोंके लिये यह तीर्थ हो। इससे उनका यश होगा और मैं उनके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा। पृथ्वीपर देवताओंके जो-जो क्षेत्र और तीर्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा इस तीर्थका अधिक माहात्म्य हो। इस बातका यदि देवतालोग अनुमोदन करें तो मैं उनके अपराध क्षमा कर सकता हूँ।'

पिप्पलादने यह बात इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंके सामने कही और सबने आदरपूर्वक इसका समर्थन किया। बालक पिप्पलादकी बुद्धि, विनय, विद्या, शौर्य, बल, साहस, सत्यभाषण, माता-पिताके प्रति भक्ति तथा भाव-शुद्धिको जानकर शंकरजीने उनसे कहा—'बेटा! जो तुम्हारा अभीष्ट हो, उसे बताओ। वह तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा। तुम अपने मनमें अन्यथा विचार न करना।'

पिप्पलाद बोले—महेश्वर! जो धर्मनिष्ठ पुरुष गङ्गाजीमें स्नान करके आपके चरणकमलोंका दर्शन करते हैं, उन्हें समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त हों और शरीरका अन्त होनेपर वे शिवके धाममें जायँ। नाथ! मेरे पिता और माता आपके चरणोंमें पड़े थे। ये पीपल और देवता भी आपके स्थानमें आकर सुखी हुए हैं। ये सब लोग सदा आपका दर्शन करें और आपके ही धाममें जायँ।

पिप्पलादकी यह बात सुनकर देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उनके भयसे मुक्त हो इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! तुमने वही किया है, जो देवताओंको अभीष्ट था। देवाधिदेव भगवान् शिवकी आज्ञाका भी पालन किया और पहले वरदान भी दूसरोंके ही लिये माँगा, अपने लिये नहीं; इसलिये हम भी संतुष्ट होकर तुम्हें कुछ देना चाहते हैं। तुम हमसे कोई वर माँगो।'

पिप्पलादने कहा—देवताओ! मैं अपने माता-पिताको देखना चाहता हूँ। मैंने केवल उनका नाम सुना है। संसारमें वे ही प्राणी धन्य हैं, जो माता-पिताके अधीन रहकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं। अपनी इन्द्रियोंको, शरीरको, कुल, शक्ति और बुद्धिको माता-पिताके कार्यमें लगाकर पुत्र कृतकृत्य हो जाता है। यदि मैं उनका दर्शन भी पा जाऊँ तो मेरे मन, वचन, शरीर और क्रियाओंका फल प्राप्त हो जायगा।

पिप्पलाद मुनिका यह कथन सुनकर देवताओंने परस्पर सलाह करके कहा—'ब्रह्मन्! तुम्हारे माता-पिता दिव्य विमानपर आरूढ़ हो तुम्हें देखनेके लिये आते हैं। तुम भी निश्चय ही उन्हें देखोगे। विषाद छोड़कर अपने मनको शान्त करो। देखो, देखो, वे श्रेष्ठ विमानपर बैठे आ रहे हैं। उनके दिव्य शरीरपर स्वर्गीय आभूषण शोभा पाते हैं।' पिप्पलादने भगवान् शिवके समीप अपने माता-पिताको देखकर प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये थे। वे किसी तरह गद्गद कण्ठसे बोले—'अन्य कुलीन पुत्र अपने माता-पिताको तारते हैं; किंतु मैं ऐसा भाग्यहीन हूँ, जो अपनी माताके उदरको विदीर्ण करनेमें कारण बना।'

उस समय उसके माता-पिताने कहा—'पुत्र! तुम धन्य हो, जिसकी कीर्ति स्वर्गलोकतक फैली है। तुमने भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया और देवताओंको सान्त्वना दी। तुम-जैसे पुत्रसे पितरोंके उत्तम लोक कभी क्षीण नहीं होते।' इसी समय पिप्पलादके मस्तकपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंने जय-जयकार किया। पत्नीसहित दधीचिने भी पुत्रको आशीर्वाद दिया और शंकर, गङ्गा तथा देवताओं-को नमस्कार करके पिप्पलादसे कहा—'बेटा! विवाह करके भगवान् शिवकी भक्ति और गङ्गाजीका सेवन करो। पुत्रोंकी उत्पत्ति करके विधिपूर्वक दक्षिणासहित यज्ञोंका अनुष्ठान करो और सब प्रकारसे कृतार्थ हो दीर्घकालके लिये दिव्यलोकमें स्थान प्राप्त करो।'

---

* मृतास्त एवात्र यशो न येषामन्धास्त एव श्रुतवर्जिता ये।
ये दानशीला न नपुंसकास्ते ये धर्मशीला न त एव शोच्याः ॥

(११० । १५६)

पिप्पलादने कहा—पिताजी ! मैं ऐसा ही करूँगा ।

तदनन्तर पत्नीसहित दधीचि पुत्रको बारंबार सान्त्वना दे देवताओंकी आज्ञा ले पुनः दिव्यलोकमें चले गये । इसके बाद देवताओंने भगवान् शिवसे कहा—'जगदीश्वर ! अब दधीचिकी हड्डियोंकी, हमारी तथा इन गौओंकी पवित्रताके लिये कोई उपाय बताइये ।' शिवने कहा—'गङ्गाजीमें स्नान करके सम्पूर्ण देवता और गौएँ पापमुक्त हो सकती हैं। इसी प्रकार दधीचिके शरीरकी हड्डियाँ भी गङ्गाजीके जलमें धोनेसे पवित्र हो जायँगी ।' शिवजीकी आज्ञाके अनुसार देवता स्नान करके शुद्ध हो गये और हड्डियाँ धोनेमात्रसे पवित्र हो गयी । जहाँ देवता पापमुक्त हुए, वह 'पापनाशन' तीर्थ कहलाता है । वहाँका स्नान और दान ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला है । जहाँ गौएँ पवित्र हुईं, उस स्थानका नाम 'गो-तीर्थ' हुआ । जहाँ दधीचिकी हड्डियाँ पवित्र की गयीं, उसे 'पितृतीर्थ' जानना चाहिये । वह पितरोंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है । जिस किसी प्राणीके, वह कितना ही पापी क्यों न हो, शरीरकी राख, हड्डी, नख और रोएँ उस तीर्थमें पड़ जाते हैं, वह तबतक स्वर्गलोकमें निवास करता है जबतक कि चन्द्रमा, सूर्य और तारोंका अस्तित्व बना रहता है । इस प्रकार उस तीर्थसे तीन तीर्थ प्रकट हुए । उस समय देवताओं और गौओंने पवित्र होकर भगवान् शंकरसे कहा—'हमलोग अपने-अपने स्थानको जायँगे । यहाँ सूर्यदेवकी प्रतिष्ठा की गयी है । इनके प्रतिष्ठित होनेसे सब देवता प्रतिष्ठित हो जायँगे । इसलिये आप हमें आज्ञा दें । सनातन सूर्यदेव स्थावर-जङ्गमरूप जगत्के आत्मा हैं । जहाँ जगज्जननी गङ्गा और साक्षात् भगवान् त्र्यम्बक विराज रहे हैं; वहाँ प्रतिष्ठान नामक तीर्थ भी हो ।'

यों कहकर देवताओंने पिप्पलादसे भी अनुमति ली और अपने-अपने निवासस्थानको चले गये । वहाँ जितने पीपल थे, कालान्तरमें अक्षय स्वर्गको प्राप्त हुए । प्रतापी पिप्पलादने उस क्षेत्रके अधिष्ठाता देवताके रूपमें भगवान् शंकरकी स्थापना करके उनका पूजन किया । फिर गौतमकी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त करके कई पुत्र उत्पन्न किये, लक्ष्मी और यशका उपार्जन किया तथा अन्तमें वे सुहृज्जनोंके साथ स्वर्गलोकको चले गये । तबसे वह क्षेत्र पिप्पलेश्वरतीर्थ कहलाने लगा । वह सब यज्ञोंका फल देनेवाला पवित्र तीर्थ है । उसके स्मरणमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है । फिर स्नान, दान और सूर्यके दर्शनसे जो लाभ होता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है । वहाँ देवाधिदेव महादेवजीके दो नाम हैं—चक्रेश्वर और पिप्पलेश्वर । इस रहस्यको जानकर मनुष्य सब अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है । देवमन्दिरमें सूर्यकी प्रतिष्ठा होनेसे वह क्षेत्र प्रतिष्ठान कहलाया, जो देवताओंको भी बहुत प्रिय है । यह उपाख्यान अत्यन्त पवित्र है । जो मनुष्य इसका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह दीर्घजीवी, धनवान् और धर्मात्मा होता है तथा अन्तमें भगवान् शंकरका स्मरण करके उन्हींको प्राप्त कर लेता है ।

नागतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नागतीर्थके नामसे जो प्रसिद्ध क्षेत्र है, वह सब अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला तथा मङ्गलमय है । वहाँ भगवान् नागेश्वर निवास करते हैं । उनके माहात्म्यकी विस्तृत कथा भी सुनो । प्रतिष्ठानपुरमें चन्द्रवंशी राजा शूरसेन राज्य करते थे । वे समस्त गुणोंके सागर और बुद्धिमान् थे । उन्होंने अपनी पत्नीके साथ पुत्र उत्पन्न होनेके लिये बड़े-बड़े यत्न किये । दीर्घकालके पश्चात् उन्हें एक पुत्र हुआ, किंतु वह भयानक आकारवाला सर्प था । राजाने उस पुत्रको बहुत छिपाकर रक्खा । किसीको इस बातका पता न लगा कि राजाका पुत्र सर्प है । अन्तःपुर अथवा बाहरका मनुष्य भी इस भेदसे परिचित न हो सका । माता-पिताके सिवा धाय, अमात्य और पुरोहित भी यह बात नहीं जानते थे । उस भयंकर सर्पको देखकर पत्नीसहित राजाको प्रतिदिन बड़ा संताप होता था । वे सोचते, सर्परूप पुत्रकी अपेक्षा तो पुत्रहीन रहना ही अच्छा है । वह था तो बहुत बड़ा सर्प, किंतु बातें मनुष्योंकी-सी करता था । उसने पितासे कहा—'मेरे चूडाकरण, उपनयन तथा वेदाध्ययन-संस्कार कराइये । द्विज जबतक वेदका अध्ययन नहीं करता, तबतक शूद्रके समान रहता है ।'

पुत्रकी यह बात सुनकर शूरसेन बहुत दुखी हुए । उन्होंने किसी ब्राह्मणको बुलाकर उसके संस्कार आदि कराये । वेदाध्ययन समाप्त करके सर्पने अपने पितासे कहा—'नृपश्रेष्ठ ! मेरा विवाह कर दीजिये । मुझे स्त्री प्राप्त करनेकी इच्छा हो रही है । मेरा विश्वास है, ऐसा किये बिना आपका कोई भी कार्य सिद्ध न हो सकेगा । पुत्रका यह निश्चय जानकर

राजाने अमात्योंको बुलाया और उसके विवाहके लिये इस प्रकार कहा—'मेरा पुत्र युवराज नागेश्वर सब गुणोंकी खान है। वह बुद्धिमान्, शूर, दुर्जय तथा शत्रुओंको संताप देनेवाला है। उसका विवाह करना है। मैं बूढ़ा हुआ। अब पुत्रको राज्यका भार सौंपकर निश्चिन्त होना चाहता हूँ। आपलोग मेरे हित-साधनमें तत्पर हो उसके विवाहके लिये प्रयत्न करें।'

राजाकी बात सुनकर अमात्यगण हाथ जोड़कर बोले—'महाराज! आपके पुत्र सब गुणोंमें श्रेष्ठ हैं और आप भी सर्वत्र विख्यात हैं। फिर आपके पुत्रका विवाह करनेके लिये क्या मन्त्रणा करनी है और किस बातकी चिन्ता।' अमात्योंके यों कहनेपर नृपश्रेष्ठ शूरसेन कुछ गम्भीर हो गये। वे उन अमात्योंको यह बताना नहीं चाहते थे कि मेरा बेटा सर्प है; तथा वे भी इस बातसे अपरिचित ही रहे। राजाने फिर कहा—'कौन कन्या गुणोंमें सबसे अधिक है तथा कौन राजा ऊँचे कुलमें उत्पन्न, श्रीमान् और उत्तम गुणोंके आश्रय हैं?' राजाका यह कथन सुनकर अमात्योंमेंसे एक परम बुद्धिमान् पुरुष, जो महाराजके संकेतको समझनेवाले थे, उनका विचार जानकर बोले—'महाराज! पूर्वदेशमें विजय नामके एक राजा हैं। उनके पास घोड़े, हाथी और रत्नोंकी गिनती नहीं है। महाराज विजयके आठ पुत्र हैं, जो बड़े धनुर्धर हैं। उनकी बहिन भोगवती साक्षात् लक्ष्मीके समान है। राजन्! वह आपके पुत्रके लिये सुयोग्य पत्नी होगी।'

बूढ़े अमात्यकी बात सुनकर राजाने उत्तर दिया—'राजा विजयकी वह कन्या मेरे पुत्रके लिये कैसे प्राप्त हो सकती है, बताओ।'

बूढ़े अमात्यने कहा—'महाराज! आपके मनमें जो बात है, मैं उसे समझ गया। अब आप मुझे कार्य-सिद्धिके लिये जानेकी आज्ञा दें।' महाराज शूरसेनने भूषण, वस्त्र तथा मधुर वाणीसे बूढ़े मन्त्रीका सत्कार करके उन्हें बहुत बड़ी सेनाके साथ भेजा। वे पूर्वदेशमें जाकर महाराज विजयसे मिले और नाना प्रकारके वचनों तथा नीतिजनित उपायोंसे राजाको संतुष्ट किया। मन्त्रीने राजकुमारी भोगवती और युवराज नागका विवाह तय करा दिया। राजा विजयने कन्या देना स्वीकार कर लिया। बूढ़े मन्त्री लौट आये और शूरसेनसे उन्होंने विवाह निश्चित होनेका सब वृत्तान्त सुना दिया। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत हो जानेपर वृद्ध मन्त्री अन्य सब सचिवोंको साथ लेकर सहसा राजा विजयके वहाँ पहुँचे और इस प्रकार बोले—'राजन्! महाराज शूरसेनके राजकुमार नाग बड़े ही बुद्धिमान् और गुणोंके समुद्र हैं। वे स्वयं यहाँ आना नहीं चाहते। क्षत्रियोंके विवाह अनेक प्रकारसे होते हैं। अतः यह विवाह शस्त्रों द्वारा हो जाय तो अच्छा है।'

वृद्ध मन्त्रीकी बात सुनकर राजा विजयने उसे सत्य ही माना और भोगवतीका विवाह शस्त्रके साथ ही शास्त्र-विधिके अनुसार सम्पन्न हुआ। विवाहके पश्चात् महाराजने बड़े हर्षके साथ बहुत-सी गौएँ, सुवर्ण और अश्व आदि सामग्री दहेजमें देकर कन्याको विदा किया। साथ ही अपने अमात्योंको भी भेजा। बूढ़े मन्त्री आदि सचिवोंने प्रतिष्ठानमें आकर महाराज शूरसेनको उनकी पुत्रवधू समर्पित कर दी। राजा विजयने जो विनयपूर्ण वचन कहे थे, उनको भी सुनाया और उनकी दी हुई दहेजकी सामग्री—विचित्र आभूषण, दासियाँ तथा वस्त्र आदि निवेदन किये। इन सब कार्योंका सम्पादन करके वे लोग कृतकृत्य हो गये। राजकुमारी भोगवतीके साथ जो विजयके अमात्य पधारे थे, उनका महाराज शूरसेनने बड़े सम्मानके साथ स्वागत-सत्कार किया। जिसे सुनकर राजा विजयको प्रसन्नता हो, ऐसा बर्ताव करके सबको विदा किया। राजा विजयकी कन्या रूपवती थी। वह सुन्दरी सदा अपने सास-ससुरकी सेवामें संलग्न रहती थी। भोगवतीका पति अत्यन्त भीषण महानाग रत्नोंसे सुशोभित एकान्त गृहमें सुगन्धित पुष्पोंसे बिछी हुई सुखद शय्यापर आराम करता था। उसने अपने माता-पितासे बार-बार कहा, 'मेरी पत्नी राजकुमारी मेरे समीप क्यों नहीं आती?' पुत्रकी यह बात सुनकर उसकी माताने धायसे कहा—'तुम भोगवतीसे जाकर कहो, 'तुम्हारा पति एक सर्प है। देखो, इसपर क्या कहती है।' 'बहुत अच्छा' कहकर धाय भोगवतीके पास गयी और एकान्तमें विनीत भावसे बोली—'कल्याणी! मैं तुम्हारे पतिको जानती हूँ। वे देवता हैं। किंतु यह बात किसीपर प्रकट न करना—वे मनुष्य नहीं, सर्पके रूपमें हैं।' धायकी बात सुनकर भोगवतीने कहा—'मनुष्य-कन्याको सामान्यतः मनुष्य ही पति मिला करता है; यदि देवजातिका पुरुष पतिरूपमें प्राप्त हो, तब तो क्या कहना। वह तो बड़े पुण्यसे मिलता है।' धायने भोगवतीकी बात सर्पसे, उसकी मातासे और

महाराज शूरसेनसे भी कही । भोगवतीने भी धायको बुलाकर कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, मुझे मेरे स्वामीका दर्शन तो कराओ ।'

तब धायने उसे ले जाकर अत्यन्त भयानक सर्पका दर्शन कराया । वह सुगन्धित फूलोंसे आच्छादित पलंगपर विराजमान था । एकान्त गृहमें रत्नोंसे विभूषित भयानक सर्पके आकारमें बैठे हुए अपने स्वामीको देखकर भोगवतीने हाथ जोड़कर कहा—'मैं धन्य और अनुगृहीत हूँ, जिसके पति देवता हैं । पति ही स्त्रीकी गति है ।' यह सुनकर नागको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने हँसकर कहा—"सुन्दरी ! मैं तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हूँ । बोलो, तुम्हें क्या अभीष्ट वरदान दूँ ? तुम्हारे अनुग्रहसे मेरी सम्पूर्ण स्मरणशक्ति जाग उठी है । मुझे पिनाकधारी देवाधिदेव भगवान् शंकरने शाप दिया है । शेषनागका पुत्र महाबलवान् नाग जो भगवान् शंकरके हाथका कङ्कण बना रहता है, वही मैं तुम्हारा पति हूँ और तुम भी वही पूर्वजन्मकी मेरी पत्नी भोगवती हो । एक दिन भगवान् शंकर एकान्तमें पार्वतीजीके साथ बैठे थे । वहाँ पार्वतीजीने एक बात कही, जिसे सुनकर भगवान् शिव ठठाकर हँस पड़े । उस समय मुझे भी हँसी आ गयी । इससे कुपित होकर भगवान्ने मुझे यह शाप दिया—'तू मनुष्य-योनिमें सर्परूपसे जन्म लेकर ज्ञानी होगा ।' कल्याणी ! यह शाप सुनकर तुमने और मैंने भी भगवान्को प्रसन्न करनेकी चेष्टा की । तब उन्होंने कहा—'जब तुम गौतमीके तटपर मेरा पूजन करोगे और मैं तुम्हारे अन्तःकरणमें ज्ञानका आधान करूँगा, उस समय तुम भोगवतीके प्रसादसे शाप-मुक्त हो जाओगे ।' इसीलिये मुझपर यह संकट आया है । तुम मुझे गौतमीके तटपर ले चलो और मेरे साथ ही भगवान्‌की पूजा करो । इससे मेरा शाप छूट जायगा और हम दोनों पुनः भगवान् शिवका सांनिध्य प्राप्त करेंगे । कष्टमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंके लिये सदा भगवान् शिव ही परम गति हैं ।" पतिकी यह बात सुनकर भोगवती उन्हें साथ ले गौतमी-तटपर गयी और वहाँ गौतमीमें स्नान करके उसने शिवका पूजन किया । इससे प्रसन्न होकर भगवान्ने उस सर्पको दिव्यरूप प्रदान किया । तब वह अपने माता-पितासे पूछकर शिवलोकमें



जानेको उद्यत हुआ । यह जानकर पिताने कहा—'बेटा ! तुम एक ही मेरे पुत्र और युवराज हो; इसलिये इस समस्त राज्यका पालन करो और बहुत-से पुत्र उत्पन्न करके मेरे स्वर्ग-गमनके पश्चात् शिवलोकमें जाओ ।' पिताका यह कथन सुनकर नागराजने कहा—'अच्छा, ऐसा ही करूँगा ।' फिर वे इच्छानुसार रूप धारण करके अपनी पत्नीके साथ रहने लगे । पिता, माता और पुत्रोंके साथ उन्होंने उस विशाल राज्यका उपभोग किया और जब पिता स्वर्गलोकमें चले गये, तब अपने पुत्रोंको राज्यपर बिठाकर वे पत्नी और अमात्य आदिके साथ शिवपुरमें गये । तबसे वह तीर्थ नागतीर्थके नामसे विख्यात हुआ । वहाँ भोगवतीके द्वारा स्थापित भगवान् नागेश्वर निवास करते हैं । उस तीर्थमें किया हुआ स्नान और दान सब तीर्थोंका फल देनेवाला है ।

मातृतीर्थ, अविघ्नतीर्थ और शेषतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—गौतमीके तटपर मातृतीर्थके नामसे विख्यात जो उत्तम तीर्थ है, वह मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है । जीव उसके स्मरण करनेमात्रसे समस्त मानसिक चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है । पूर्वकालमें

देवताओं और असुरोंके बीच बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ा था। उस समय देवतालोग दानवोंको परास्त न कर सके। तब मैं सब देवताओंके साथ शूलपाणि भगवान् शंकरके पास गया और हाथ जोड़कर नाना प्रकारके वाक्योंद्वारा उनका स्तवन करने लगा—'महेश! जिस समय सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंने एक दूसरेसे सलाह करके समुद्रका मन्थन किया और उसमेंसे एक कालकूट विष निकला, उसे खा लेनेमें आपके सिवा दूसरा कौन समर्थ हो सकता था। जिसके सामने दूसरे देवता मस्तक झुकाते हैं तथा जो केवल फूलोंकी मारसे तीनों लोकोंको अपने अधीन करनेमें समर्थ है, वही कामदेव जब आपपर आक्रमण करने चला, तब स्वयं ही नष्ट हो गया। अतः आपसे बढ़कर शक्तिशाली दूसरा कौन है।'

यह स्तुति सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये और बोले—'देवताओ! बतलाओ, क्या चाहते हो? मैं तुम्हें अभीष्ट वरदान दूँगा।' देवता बोले—'वृषभध्वज! हमपर दानवोंकी ओरसे बड़ा भारी भय उपस्थित हुआ है। आप वहाँ चलकर शत्रुओंका संहार और देवताओंकी रक्षा करें। प्रभो! हम आपसे सनाथ हैं।' देवताओंके इतना कहते ही भगवान् शंकर उस स्थानपर आये, जहाँ दैत्य युद्धके लिये खड़े थे। वहाँ दैत्योंका शंकरजीके साथ घमासान युद्ध छिड़ गया। दैत्य इधर-उधर भागने लगे। युद्ध करते समय शंकरजीके ललाटसे पसीनेकी बूँदें गिरने लगीं। वे बूँदें जहाँ-जहाँ गिरीं, वहाँ-वहाँ शिवके आकारकी ही माताएँ प्रकट हो गयीं। वे भगवान् महेश्वरसे बोलीं—'आप आज्ञा दें तो हम सब असुरोंको खा जायँ।' तब देवताओंसे घिरे हुए भगवान्ने कहा—'शत्रु जहाँ-जहाँ जायँ, सर्वत्र उनका पीछा करो। इस समय वे मेरे डरसे रसातलमें जा पहुँचे हैं। तुम भी रसातलतक उनके पीछे-पीछे जाओ।' यह आज्ञा पाकर सब माताएँ पृथ्वी छेदकर रसातलमें गयीं और अत्यन्त भयंकर दैत्यों तथा दानवोंका संहार करके फिर उसी मार्गसे देवताओंके पास लौट आयीं। माताओंके जानेसे लौटनेतक देवता गौतमीके तटपर खड़े रहे। लौटनेपर देवताओंने माताओंको वर दिया—'संसारमें जिस प्रकार शिवकी पूजा होती है, उसी प्रकार माताओंकी भी हो।' यों कहकर देवता अन्तर्धान हो गये और माताएँ वहीं रह गयीं। जहाँ-जहाँ वे देवियाँ स्थित हुईं, वह सब स्थान मातृतीर्थ माना जाता है। वे सभी तीर्थ देवताओंके लिये भी सेव्य हैं, फिर मनुष्य आदिके लिये तो बात ही क्या है। शिवजीके कथनानुसार उन तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, दान और तर्पण—सब अक्षय होता है। जो मनुष्य मातृतीर्थोंके इस उपाख्यानको प्रतिदिन सुनता, स्मरण रखता और पढ़ता है, वह दीर्घायु और सुखी होता है।

मातृतीर्थके अनन्तर अविघ्नतीर्थ है, जो सब विघ्नोंका नाश करनेवाला है। नारद! वहाँका वृत्तान्त भी बतलाता हूँ, भक्तिपूर्वक सुनो। "एक बार गौतमीके उत्तर-तटपर देवताओंका यज्ञ आरम्भ हुआ, किन्तु विघ्न-दोषके कारण उसकी समाप्ति नहीं हुई। तब सब देवताओंने मुझसे और भगवान् विष्णुसे इसका कारण पूछा। उस समय मैंने ध्यानस्थ होकर कारणका पता लगाया और कहा—'इसमें गणेशजी विघ्न डाल रहे हैं। इसीलिये इस यज्ञकी समाप्ति नहीं हो पाती। अतः सब लोग आदिदेव विनायककी स्तुति करें।' मेरा आदेश पाकर सब देवता गौतमीमें स्नान करके आदिदेव गणेशकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सदा सब कार्योंमें सम्पूर्ण देवता तथा शिव, विष्णु और ब्रह्माजी भी जिनका पूजन, नमस्कार और चिन्तन करते हैं, उन विघ्नराज गणेशकी हम शरण लेते हैं। विघ्नराज गणेशके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाला कोई देवता नहीं है, ऐसा निश्चय करके त्रिपुरारि महादेवजीने भी त्रिपुरवधके समय पहले उनका पूजन किया था। जिनका ध्यान करनेसे सम्पूर्ण देहधारियोंके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, वे अम्बिकानन्दन गणेश इस महायज्ञमें शीघ्र ही हमारे विघ्नोंका निवारण करें। 'देवी पार्वतीके चिन्तनमात्रसे ही गणेशजी-जैसा पुत्र उत्पन्न हो गया। इससे सम्पूर्ण जगत्‌में महान् उत्सव छा गया है।' यह बात उन देवताओंने अपने मुखसे कही थी, जो नवजात शिशुके रूपमें गणेशजीको नमस्कार करके कृतार्थ हुए थे। माताकी गोदमें बैठे हुए और माताके मना करनेपर भी उन्होंने पिताके ललाटमें स्थित चन्द्रमाको बलपूर्वक पकड़कर उनकी जटाओंमें छिपा दिया, यह गणेशजीका बालविनोद था। यद्यपि वे पूर्ण तृप्त थे, तो भी अधिक देरतक माताके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं बड़े भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगें। उनकी बुद्धिमें बालस्वभाववश भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने विनोदवश कहा—'विघ्नराज! तुम बहुत दूध पीते हो, इसलिये लम्बोदर हो जाओ।' यों कहकर उन्होंने उनका नाम 'लम्बोदर' रख दिया। देवसमुदायसे घिरे हुए महेश्वरने कहा—'बेटा! तुम्हारा नृत्य होना चाहिये।' यह सुनकर उन्होंने अपने घूँघुरकी आवाजसे ही शंकरजीको संतुष्ट कर दिया। इससे

प्रसन्न होकर शिवने अपने पुत्रको गणेशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। जो एक हाथमें विघ्नपाश और दूसरे हाथसे कंधेपर कुठार लिये रहते हैं तथा पूजा न पानेपर अपनी माताके कार्यमें भी विघ्न डाल देते हैं, उन विघ्नराजके समान दूसरा कौन है। जो धर्म, अर्थ और काम आदिमें सबसे पहले पूजनीय हैं तथा देवता और असुर भी प्रतिदिन जिनकी पूजा करते हैं, जिनके पूजनका फल कभी नष्ट नहीं होता, उन प्रथम-पूजनीय गणेशको हम पहले मस्तक नवाते हैं। जिनकी पूजासे सबको प्रार्थनाके अनुरूप सब प्रकारके फलकी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है, जिन्हें अपने स्वतन्त्र सामर्थ्यपर अत्यन्त गर्व है, उन बन्धुप्रिय मूषकवाहन गणेशजीकी हम स्तुति करते हैं। जिन्होंने अपने सरस संगीत, नृत्य, समस्त मनोरथोंकी सिद्धि तथा विनोदके द्वारा माता पार्वतीको पूर्ण संतुष्ट किया है, उन अत्यन्त संतुष्ट हृदयवाले श्रीगणेशकी हम शरण लेते हैं।

इस प्रकार देवताओंके स्तवन करनेपर गणेशजीने उनसे कहा—'देवताओ! अब तुम्हारे यज्ञमें विघ्न नहीं पड़ेगा।'



जब देवयज्ञ निर्विघ्न पूरा हो गया, तब गणेशजीने उन देवताओंसे कहा—'जो लोग इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे, उन्हें कभी दरिद्रता और दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा। जो इस तीर्थमें आलस्य छोड़कर भक्तिपूर्वक स्नान और दान करेंगे, उनके शुभ कार्य निर्विघ्न सिद्ध होंगे। इस बातका आपलोग भी अनुमोदन करें।' उनके इतना कहनेके साथ ही देवताओंने एक स्वरसे कहा—'ऐसा ही होगा।' यज्ञ समाप्त होनेपर देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। तबसे वह तीर्थ 'अविघ्न' तीर्थ कहलाने लगा। वह मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा सम्पूर्ण विघ्नोंको मिटानेवाला है।

अविघ्नतीर्थके बाद शेषतीर्थ है, वह भी समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। मैं उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ। रसातलके स्वामी महानाग शेष सम्पूर्ण नागोंके साथ रसातलमें रहनेके लिये गये। परंतु राक्षसों, दैत्यों और दानवोंने, जिनका रसातलमें पहलेसे ही प्रवेश हो चुका था, नागराजको वहाँसे निकाल दिया। तब वे मेरे पास आकर बोले—'भगवन्! आपने राक्षसोंको तथा हमलोगोंको भी रसातल दे रक्खा है, किंतु दैत्य और राक्षस हमें वहाँ स्थान नहीं देना चाहते; इसलिये आपकी शरणमें आया हूँ।' तब मैंने नागसे कहा—'तुम गौतमीके तटपर जाओ, वहाँ महादेवजीकी स्तुति करनेसे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। उनके सिवा दूसरा कोई तीनों लोकोंमें ऐसा नहीं है, जो सबके मनोरथ सिद्ध कर सके। मेरे कहनेसे शेषनाग वहाँ गये और गङ्गामें स्नान करके हाथ जोड़कर देवेश्वर महादेवकी स्तुति करने लगे—'तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् शंकरको नमस्कार है। जो दक्षयज्ञके विध्वंसक, जगत्के आदि विधाता तथा त्रिभुवनरूप हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनके सहस्रों मस्तक हैं, उन भगवान् सदाशिवको नमस्कार है। सबका संहार करनेवाले रुद्रदेवको नमस्कार है। भगवन्! आप सोम, सूर्य, अग्नि और जलरूप हैं; आपको नमस्कार है। जो सर्वदा सर्वस्वरूप और कालरूप हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। सर्वेश्वर शंकर! मेरी रक्षा कीजिये। सर्वव्यापी सोमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये। जगन्नाथ! आपको नमस्कार है। मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।'

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर महेश्वरने नागराजको मनोवाञ्छित वर दिया, जो देवताओंसे शत्रुता रखनेवाले दैत्य, दानव तथा राक्षसोंके विनाशमें सहायक था। भगवान्ने शेषनागको शूल देकर कहा—'इससे अपने शत्रुओंका संहार करो।' भगवान् शिवकी यह आज्ञा पाकर शेषनाग सर्पोंके साथ रसातलमें गये। वहाँ उन्होंने शूलसे अपने शत्रु दैत्य, दानव तथा राक्षसोंका वध किया और फिर भगवान् शेषेश्वरका दर्शन करनेके लिये वे गौतमी-तटपर लौट आये। नागराज जिस मार्गसे आये थे, उसमें रसातलसे वहाँतक छेद हो गया

था। उस बिलसे गौतमी गङ्गाका अत्यन्त पुण्यदायक जल पातालगङ्गामें जा मिला। इस प्रकार उन दोनोंका संगम हुआ। भगवान् शेषेश्वरके सामने एक विशाल कुण्ड बनाकर शेषनागने उसमें हवन किया। उस कुण्डमें सदा अग्निदेव स्थित रहते हैं। उसमें गङ्गाके जलका संगम होनेसे वह जल गरम हो गया। महायशस्वी शेषनाग महादेवजीकी आराधना करके पुनः अपने अभीष्ट स्थान रसातलमें चले गये। तबसे वह तीर्थ नागतीर्थ एवं शेषतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला, पवित्र तथा रोग और दरिद्रताका नाशक है। उससे आयु एवं लक्ष्मीकी भी प्राप्ति होती है। वह पवित्र तीर्थ स्नान और दानसे मोक्ष देनेवाला है। जो मनुष्य इस प्रसङ्गका भक्तिपूर्वक श्रवण, पाठ अथवा मनन करता है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जहाँ शेषेश्वरतीर्थ है और जहाँ शक्ति प्रदान करनेवाले भगवान् शिव हैं, वहाँ गौतमीके दोनों तटोंपर इक्कीस सौ तीर्थ हैं, जो सब प्रकारकी सम्पत्ति देनेवाले हैं।

अश्वत्थ-पिप्पलतीर्थ, शनैश्वरतीर्थ, सोमतीर्थ, धान्यतीर्थ और विदर्भा-संगम तथा रेवती-संगम तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—गोदावरीके उत्तर-तटपर अश्वत्थ-तीर्थ, पिप्पल-तीर्थ और शनैश्वर-तीर्थ हैं। उनका फल सुनो। पूर्वकालकी बात है—देवताओंने महर्षि अगस्त्यसे अनुरोध किया था कि आप विन्ध्यपर्वतको आदेश देकर ऊपर उठनेसे रोकें। महर्षि अगस्त्य धीरे-धीरे सहस्रों मुनियोंके साथ विन्ध्य-पर्वतके समीप गये। उन्होंने देखा नगश्रेष्ठ विन्ध्य असंख्य वृक्षोंसे व्याप्त, सैकड़ों शिखरोंसे घिरा हुआ और बहुत ही ऊँचा है। ऊँचाईमें वह मेरुगिरि और सूर्यसे टक्कर ले रहा है। मुनिके आनेपर विन्ध्य पर्वतने उनका आतिथ्य-सत्कार किया। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने सब ब्राह्मणोंके साथ विन्ध्य गिरि-की प्रशंसा की और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये इस प्रकार कहा—'पर्वतश्रेष्ठ! मैं तत्त्वदर्शी मुनियोंके साथ तीर्थ-यात्राके उद्देश्यसे दक्षिण दिशाकी यात्रा करना चाहता हूँ, तुम मुझे जानेका मार्ग दो। मैं तुमसे आतिथ्यमें यही माँगता हूँ—जबतक लौट न आऊँ, तबतक तुम नीचे होकर ही रहना। इसके विपरीत न करना।' विन्ध्य पर्वतने कहा—'बहुत अच्छा। ऐसा ही करूँगा।' महर्षि अगस्त्य उन मुनियों-के साथ दक्षिण दिशामें चले गये। वे धीरे-धीरे गौतमीके तटपर पहुँचकर सांवत्सरिक यज्ञमें दीक्षित हो गये। उन्होंने ऋषियोंके साथ एक वर्षतकके लिये यज्ञ आरम्भ कर दिया।

उन दिनों कैटभके दो पापी पुत्र राक्षस धर्मके कण्टक हो रहे थे। उनका नाम था—अश्वत्थ और पिप्पल। वे देव-लोकमें भी प्रसिद्ध थे। ब्राह्मणोंको पीड़ा देना उनका नित्यका काम था। ब्राह्मणोंका कष्ट देख महर्षिगण गोदावरीके दक्षिण-तटपर नियमपूर्वक तपस्या करनेवाले सूर्यपुत्र शनैश्वरके पास गये और उनसे उन राक्षसोंके सब अत्याचार कह सुनाये। यह सुनकर शनैश्वर ब्राह्मणके वेषमें रहनेवाले अश्वत्थ नामक राक्षसके पास गये और स्वयं भी ब्राह्मण बनकर उन्होंने उसकी परिक्रमा की। उन्हें परिक्रमा करते देख राक्षसने ब्राह्मण ही समझा और प्रतिदिनकी भाँति माया करके उस पापी राक्षसने उनको भी अपना ग्रास बना लिया। उसके शरीरमें प्रवेश करके शनिने उसकी आँतोंको देखा। शनिकी दृष्टि पड़ते ही वह पापात्मा राक्षस वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति क्षणभरमें जलकर भस्म हो गया। अश्वत्थको भस्म करके वे ब्राह्मण-रूपधारी शनि दूसरे राक्षसके पास गये। वहाँ उन्होंने अपनेको वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मणके रूपमें उपस्थित किया, मानो वे विनीत शिष्य थे और पिप्पल गुरु। पिप्पलने पहले-की ही भाँति अन्य शिष्योंके समान शनैश्वरको भी अपना आहार बनाया, किंतु उदरमें प्रवेश करनेपर शनिने उसकी आँतोंपर दृष्टि डाली। उनके देखते ही वह भी जलकर भस्म हो गया। इस प्रकार उन दोनोंको मारकर सूर्यपुत्र शनैश्वरने मुनियोंसे पूछा—'अब मेरे लिये कौन-सा कार्य है? आपलोग बतायें।' मुनियोंको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने शनिको इच्छानुसार वर देना चाहा। शनैश्वर बोले—'जो मेरे दिनको नियमसे रहकर अश्वत्थका स्पर्श करें, उनके सब कार्य सिद्ध हो जायँ और मेरेद्वारा होनेवाली पीड़ा भी उन्हें न हो। जो मनुष्य अश्वत्थ-तीर्थमें स्नान करें, उनके भी सब कार्य सिद्ध हो जायँ। जो मानव शनिवारको प्रातःकाल उठकर अश्वत्थ-का स्पर्श करते हैं, उनकी समस्त ग्रहपीड़ा दूर हो जाय।' तबसे उस तीर्थको अश्वत्थतीर्थ, पिप्पलतीर्थ और शनैश्वर-तीर्थ भी कहते हैं। अगस्त्य, सात्त्विक, याज्ञिक और सामग आदि सोलह हजार एक सौ आठ तीर्थ वहाँ वास करते हैं। उन तीर्थोंमें किया हुआ स्नान और दान सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाला है।

इसके आगे विख्यात सोमतीर्थ है। उसमें स्नान और दान करनेसे सोमपानका फल मिलता है। ओषधियाँ पूर्वकाल-से ही सम्पूर्ण जगत्की माताएँ हैं। उन्हींमें यज्ञ, स्वाध्याय और धर्मकार्य प्रतिष्ठित है। ओषधियोंसे ही समस्त रोगोंका

निवारण होता है । उन्हींसे अन्नकी उत्पत्ति और सबके प्राणोंकी रक्षा होती है । एक दिन ओषधियोंने मुझसे कहा—'सुरश्रेष्ठ ! हमलोगोंको एक ऐसा पति दीजिये, जो राजा हो ।' उनकी बात सुनकर मैंने कहा—'तुम सबको राजा पतिरूपमें प्राप्त होगा ।' तब उन्होंने पुनः प्रश्न किया—'इसके लिये हमें कहाँ जाना होगा ?' मैंने कहा—'माताओ ! तुम गौतमीके तटपर जाओ । गौतमीके प्रसन्न होनेपर तुम्हें लोकपूजित राजाकी प्राप्ति होगी ।' यह सुनकर वे वहाँ गयीं और गौतमीकी स्तुति करने लगीं ।

ओषधियाँ बोलीं—भगवान् शंकरकी प्रियतमा पुण्यसलिला गौतमी ! यदि आप इस भूतलपर न आतीं तो संसारके प्राणी, जो नाना प्रकारकी पापराशियोंसे तिरस्कृत एवं दुखी हो रहे हैं, क्या करते । नदीश्वरि ! भूमण्डलके मनुष्योंके सौभाग्यका अनुमान कौन कर सकता है, जिनके महापातकोंका नाश करनेवाली आप जगन्माता गङ्गा उनके लिये सदा ही सुलभ हैं । तीनों लोकोंकी वन्दनीया जगज्जननी गङ्गा ! आपके वैभवको कोई नहीं जानता; क्योंकि कामदेवके शत्रु भगवान् शंकर भी आपको सदा मस्तकपर लिये रहते हैं । मनोवाञ्छित फल देनेवाली माता ! तुम्हें नमस्कार है । पापोंका विनाश करनेवाली ब्रह्ममयी देवी ! तुम्हें नमस्कार है । भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे निकली हुई गङ्गा ! तुम्हें नमस्कार है । भगवान् शंकरकी जटासे प्रकट हुई गौतमी देवी ! तुम्हें नमस्कार है ।

इस प्रकार स्तुति करनेवाली ओषधियोंसे गङ्गाजीने कहा—'देवियो ! बताओ, तुम्हें क्या दूँ ?' ओषधियाँ बोलीं—'जगन्माता ! हमें अत्यन्त तेजस्वी राजाको पतिरूपमें दीजिये ।' गङ्गाजीने कहा—'माता ओषधियो ! मैं अमृतरूप हूँ । तुम भी अमृतस्वरूपा हो । अतः तुम्हें तुम्हारे योग्य ही अमृतात्मा सोमको पतिरूपमें देती हूँ ।' गौतमीके इस वरदानका देवताओं, ऋषियों, चन्द्रमा तथा ओषधियोंने भी अनुमोदन किया । इसके बाद वे सब अपने-अपने स्थानको चली गयीं । जिस स्थानपर ओषधियोंने समस्त पापसंतापका निवारण करनेवाले अमृतस्वरूप राजा सोमको पतिरूपमें प्राप्त किया, वह सोमतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ । वहाँ स्नान और दान करनेसे पितर स्वर्गमें जाते हैं । जो प्रतिदिन इस प्रसङ्गको पढ़ता, सुनता अथवा भक्तिपूर्वक स्मरण करता है, वह दीर्घायु, पुत्रवान् और धनवान् होता है ।

तदनन्तर धान्यतीर्थ है, जो मनुष्योंकी सब अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है । वह सुकाल उपस्थित करनेवाला, कल्याणप्रद तथा मनुष्योंको सब प्रकारकी आपत्तिसे मुक्त करनेवाला है । राजा सोमको पतिरूपमें पाकर ओषधियाँ बहुत प्रसन्न हुई थीं । उन्होंने सब लोगों तथा गङ्गाजीके सामने यह अभीष्ट वचन कहा—'वेदमें एक पवित्र गाथा है, जिसे वेदोंके विद्वान् जानते हैं । जिस भूमिमें फसल उगी हुई है, वह माताके समान किंवा साक्षात् माता ही है । जो गङ्गाजीके समीप उसका दान करता है, वह समस्त अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है । जो मानव खेती लगी हुई भूमि, गौ तथा ओषधियोंको ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप ब्राह्मणके लिये भक्तिपूर्वक दान देता है, उसका किया हुआ सब दान अक्षय होता है तथा वह अपने सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त कर लेता है । ओषधियाँ सोम राजाकी प्रिया हैं और सोम भी ओषधियोंके पति हैं—यह जानकर जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको ओषधि (अन्न) दान करता है, वह सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको पाता और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है । ओषधियाँ राजा सोमसे बातचीत करती हुई कहती हैं—'राजन् ! हम ब्रह्मरूपिणी और प्राणरूपिणी हैं । जो हमें ब्राह्मणोंको दान करे, उसे तुम पार लगाओ । स्थावर-जङ्गमरूप जितना भी जगत् है, वह सब हमलोगोंसे व्याप्त है । हव्य, कव्य, अमृत तथा जो कुछ भी भोजनके काम आता है, वह हमारा ही श्रेष्ठ अंश है—यह जानकर जो अन्नका दान करता है, राजन् ! उसे पार लगाओ । राजा सोम ! जो भक्तिपूर्वक इस वैदिकी गाथाका श्रवण, स्मरण अथवा पाठ करे, उसे तुम पार लगाओ ।'

गङ्गाके किनारे जिस स्थानपर राजा सोमके साथ ओषधियोंने इस वैदिकी गाथाका पाठ किया था, वह धान्यतीर्थ कहलाता है । उस दिनसे उसके कई नाम हो गये—औषध्य-तीर्थ, सौम्यतीर्थ, अमृततीर्थ, वेदगाथातीर्थ और मातृ-तीर्थ । जो मनुष्य इन तीर्थोंमें स्नान, जप, होम, दान, पितृ-तर्पण और अन्न-दान करता है, उसका वह सब कर्म अक्षय फल देनेवाला होता है । वहाँ दोनों तटोंपर एक हजार छः सौ तीर्थ हैं, जो सब पापोंका नाश करनेवाले और सब प्रकारकी सम्पत्ति बढ़ानेवाले हैं ।

वहाँ विदर्भा-संगम और रेवती-संगम तीर्थ भी हैं । अब उनका वृत्तान्त बतलाऊँगा । पुराणवेत्ता पुरुष उसे जानते हैं । महर्षि भरद्वाज एक बड़े तपस्वी महात्मा थे । उनकी बहिनका नाम रेवती था । वह कुरूप थी । उसका स्वर बड़ा विकृत था । प्रतापी भरद्वाज गङ्गाजीके दक्षिण-तटपर बैठकर बड़ी चिन्ता करने लगे कि 'इस भयंकर आकारवाली अप-

बहिनका विवाह किसके साथ करूँ ! कोई भी तो इसे ग्रहण नहीं करता । अहो, किसीके कन्या न हो । कन्या केवल दुःख देनेवाली होती है । जिसके कन्या हो, उस प्राणीकी जीते-जी पग-पगपर मृत्यु होती रहती है ।' इस प्रकार वे अपने सुन्दर आश्रमपर तरह-तरहके विचार कर रहे थे । इतनेमें ही कठनामके एक मुनि वहाँ भरद्वाज मुनिका दर्शन करनेके लिये आये । उनकी अवस्था सोलह वर्षकी थी । शरीर सुन्दर था । वे शान्त, जितेन्द्रिय और सद्गुणोंकी खान थे । कठने आते ही भरद्वाजको प्रणाम किया । भरद्वाजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया और आश्रमपर पधारनेका कारण पूछा । कठने



कहा—'मैं विद्यार्थी हूँ, और इसी उद्देश्यसे आपका दर्शन करने आया हूँ । जो उचित हो, वह कीजिये ।' भरद्वाजने कठसे कहा—'महामते ! तुम्हारी जो इच्छा हो, पढ़ो । मैं पुराण, स्मृति, वेद तथा अनेक प्रकारके धर्मशास्त्र—सब जानता हूँ । तुम शीघ्र अपनी रुचि बतलाओ । कुलीन, धर्मपरायण, गुरु-सेवक तथा सुनी हुई विद्याको तत्काल धारण करनेवाला शिष्य बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है ।'

कठने कहा—ब्रह्मन् ! मैं निष्पाप, सेवापरायण, भक्त, कुलीन और सत्यवादी शिष्य हूँ । मुझे अध्ययन कराइये ।

'एवमस्तु' कहकर भरद्वाजने कठको सम्पूर्ण विद्या पढ़ायी । विद्या पाकर कठ बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने भरद्वाजसे कहा—'गुरुदेव ! आपको नमस्कार है । मैं आपके मनके अनुकूल दक्षिणा देना चाहता हूँ । आप कोई दुर्लभ वस्तु भी माँग सकते हैं । बताइये, क्या दूँ ? जो शिष्य अपने गुरुसे विद्या प्राप्त करके भी उन्हें मोहवश दक्षिणा नहीं देते, वे जबतक सूर्य और चन्द्रमाकी सत्ता रहती है, तबतक नरकमें पड़े रहते हैं ।'

भरद्वाजने कहा—यह मेरी बहिन अभी कुमारी है; इसको विधिपूर्वक ग्रहण करो और पत्नी बनाओ । इसके प्रति प्रेमपूर्ण बर्ताव करना, यही मैं दक्षिणा माँगता हूँ ।

कठने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुके आदेशसे विधिपूर्वक दी हुई रेवतीका पाणिग्रहण किया और उसके सुन्दर रूपकी प्राप्तिके लिये वहीं रहकर देवेश्वर शङ्करकी आराधना की । रेवतीने भी शिवकी प्रसन्नताके लिये उनका पूजन किया । इससे वह सुन्दर रूपवती हो गयी । उसका प्रत्येक अङ्ग मनोहर दिखायी देने लगा । अब उसके रूपकी कहीं समता नहीं थी । वहाँ रेवतीके स्नान करनेसे जो जलकी धारा प्रकट हुई, वह 'रेवती' नामकी नदी हुई, जो रूप और सौभाग्य प्रदान करनेवाली है । फिर कठने उसकी पुण्यरूपताकी सिद्धिके लिये नाना प्रकारके दर्भों (कुशों) से अभिषेक किया । इससे 'विदर्भा' नामकी नदी प्रकट हुई । जो मनुष्य रेवती और गङ्गामें श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । इसी प्रकार जो विदर्भा और गौतमीके संगममें स्नान करता है, उसे तत्काल भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है । वहाँ दोनों तटोंपर सौ उत्तम तीर्थ हैं, जो सब पापोंके नाशक तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता हैं ।

पूर्णतीर्थ और गोविन्द आदि तीर्थोंकी महिमा, धन्वन्तरि और इन्द्रपर भगवान्‌की कृपा

ब्रह्माजी कहते हैं—गौतमी गङ्गाके उत्तर-तटपर पूर्णतीर्थ है । वहाँ यदि मनुष्य अनजानमें नहा ले, तो भी कल्याणका भागी होता है । पूर्णतीर्थके माहात्म्यका वर्णन कौन कर सकता है, जहाँ स्वयं चक्रधारी भगवान् विष्णु और पिनाकधारी भगवान् शंकर निवास करते हैं । पूर्वकालमें आयुके पुत्र धन्वन्तरि राजा थे । उन्होंने अश्वमेध आदि

अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया, भाँति-भाँतिके दान दिये तथा प्रचुर भोग भोगे। फिर भोगोंकी विषमताका अनुभव करके उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। धन्वन्तरि यह जानते थे कि पर्वतके शिखरपर, गङ्गा नदीके किनारे, समुद्रके तटपर, शिव और विष्णुके मन्दिरमें अथवा विशेषतः किसी पवित्र संगमपर किया हुआ जप, तप, होम—सब अक्षय होता है; इसलिये उन्होंने गङ्गा-सागर-संगमपर भारी तपस्या आरम्भ की।

एक बार राजा धन्वन्तरिने राज्य करते समय एक महान् असुरको रणभूमिसे मार भगाया था। उसका नाम था तम। वह एक हजार वर्षोंतक राजाके भयसे समुद्रमें छिपा रहा। जब उसे मालूम हुआ कि राजा धन्वन्तरि विरक्त होकर वनमें चले आये हैं और उनका पुत्र राज्यसिंहासनपर आसीन हुआ है, तब वह समुद्रसे निकला और उस स्थानपर आया, जहाँ महाराज धन्वन्तरि गङ्गातटका आश्रय ले जप और होममें संलग्न तथा ब्रह्मचिन्तनमें तत्पर थे। उसने सोचा, 'इस बलवान् राजाने मुझे अनेक बार नष्ट करनेका प्रयत्न किया है, अतः मैं भी क्यों न अपने इस शत्रुको नष्ट कर डालूँ।' ऐसा निश्चय करके उसने मायासे एक स्त्रीका रूप बनाया और राजाके पास आया। वह मायामयी सुन्दरी तरुणी देखनेमें बड़ी मनोहर थी। उसने हँसते हुए नाचना और गाना आरम्भ किया। उस सुन्दरीको बहुत समयतक इस अवस्थामें देख राजाने कृपापूर्वक पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो? किसके लिये इस गहन वनमें निवास करती हो और किसे देखकर तुम्हें इतना उल्लास-सा हो रहा है?'

तरुणी बोली—राजन्! आपके रहते संसारमें दूसरा कौन है, जो मेरे उल्लासका कारण हो सके। मैं इन्द्रकी लक्ष्मी हूँ। आपको सब भोगोंसे सम्पन्न देख बारंबार आपके सामने विचरती हूँ। असंख्य पुण्यके बिना मैं सभीके लिये अत्यन्त दुर्लभ हूँ।

उसकी यह बात सुनकर राजाने वह अत्यन्त कठोर तपस्या त्याग दी और मन-ही-मन उसीका चिन्तन करने लगे। उसीके आश्रय तथा उसीके आज्ञा-पालनमें रहने लगे। जब सब तरहसे वे एकमात्र उसीकी शरणमें चले गये, तब उनकी भारी तपस्याका नाश करके तम अन्तर्धान हो गया। इसी बीचमें मैं राजाको वर देनेके लिये गया। वे तपोभ्रष्ट एवं विह्वल होकर मृतकके समान हो रहे थे। मैंने अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे महाराज धन्वन्तरिको सान्त्वना दी और कहा—'राजन्! तुम्हारा शत्रु तम तुम्हें तपस्यासे भ्रष्ट करके कृतकार्य होकर चला गया। तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। प्रायः सभी तरुणी स्त्रियाँ पुरुषको पहले कुछ आनन्द और पीछे भारी संताप देती हैं, फिर वह तो मायामयी थी; अतः उसका संतापप्रद होना क्या आश्चर्यकी बात है।'*

तब राजा धन्वन्तरिका भ्रम दूर हुआ। वे हाथ जोड़कर बोले—'ब्रह्मन्! क्या करूँ? तपस्याके पार कैसे जाऊँ?' मैंने उत्तर दिया—'देवाधिदेव जनार्दनकी यत्नपूर्वक स्तुति करो। उससे तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। भगवान् विष्णु वेद-वेद्य पुरातन परमात्मा हैं। उन्होंने ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। तीनों लोकोंमें उनके सिवा दूसरा कोई पुरुष ऐसा नहीं है, जो प्राणियोंके समस्त मनोरथोंकी सिद्धि कर सके।' मेरी आज्ञा मानकर राजा धन्वन्तरि गिरिराज हिमालय-पर चले गये और वहाँ दोनों हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे।



* आनन्दयन्ति प्रमदास्तापयन्ति च मानवम्।
सर्वा एव विशेषेण किमु मायावती तु सा॥
(१२२। २३-२४)

धन्वन्तरि बोले—सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले विष्णो ! आपकी जय हो। अचिन्त्य परमेश्वर ! आपकी जय हो। विजय-शील अच्युत ! आपकी जय हो। गोपाल ! आपकी जय हो। लक्ष्मीके स्वामी, जगन्मय श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो। भूतपते ! आपकी जय हो। नाथ ! आपकी जय हो। आप शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। सर्वव्यापी गोविन्द ! आपकी जय हो, जय हो। आप विश्वकी सृष्टि करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। देव ! आपकी जय हो, जय हो। आप विश्वका पालन और धारण करनेवाले हैं। ईश ! आपकी जय हो। आप सदसत्स्वरूप हैं। माधव ! आपकी जय हो। आप धर्मनिष्ठ परमात्माको नमस्कार है। कामनाओंको पूर्ण करनेवाले और कामस्वरूप केशव ! आपकी जय हो। गुणोंके सागर श्रीराम ! आपकी जय हो। आप पुष्टि देनेवाले और पुष्टिके स्वामी हैं। आपकी जय हो, जय हो। कल्याणदाता ! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण भूतोंके पालक ! आपकी जय हो। भूतेश्वर ! आपकी जय हो। आप मौन धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। कर्मफलोंके दाता ! आपकी जय हो। आप ही कर्मस्वरूप हैं। पीताम्बरधारी प्रभो ! आपकी जय हो। सर्वेश्वर ! आपकी जय हो। आप सर्वस्वरूप हैं। आप मङ्गलरूप प्रभुको नमस्कार है। नाथ ! आप सत्त्वगुणके अधिनायक हैं। आपकी जय हो, जय हो। आप सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता हैं। आपको मेरा नमस्कार है। आप ही जन्मदाता हैं और आप ही जन्म लेनेवाले प्राणियोंके भीतर निवास करते हैं। आपकी जय हो। परमात्मन् ! आपको नमस्कार है। मुक्तिदाता ! आपकी जय हो। आप ही मुक्ति हैं। भोग प्रदान करनेवाले केशव ! आपकी जय हो। लोकप्रद परमेश्वर ! आपकी जय हो। पापोंका नाश करनेवाले लोकेश्वर ! आपकी जय हो। भक्तवत्सल ! आपकी जय हो, जय हो। चक्र धारण करनेवाले आप परमेश्वरको प्रणाम है। मानदाता ! आपकी जय हो। आप ही मान हैं। विश्ववन्दित देव ! आपकी जय हो। धर्मदाता ! आपकी जय हो। आप धर्मस्वरूप हैं। संसारसे पार लगानेवाले परमात्मन् ! आपकी जय हो। अन्नदाता ! आपकी जय हो, जय हो। आप ही अन्न हैं। वाचस्पते ! आपको नमस्कार है। शक्तिदाता ! आपकी जय हो, आप ही शक्ति हैं। विजयका वरदान देनेवाले ईश्वर ! आपकी जय हो। यशदाता ! आपकी जय हो। आप ही यश हैं। आपके नेत्र पद्मपत्रकी तरह विशाल हैं। आपकी जय हो। दान देनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो। आप ही दान हैं। कैटभका नाश करनेवाले नारायण ! आपकी जय हो। कीर्ति-दाता ! आपकी जय हो। आप ही कीर्ति हैं। मूर्तिदाता ! आपकी जय हो। आप ही मूर्ति धारण करनेवाले हैं। सौख्य-दाता ! आपकी जय हो। आप ही सौख्यस्वरूप हैं। पावनको भी पावन बनानेवाले परमात्मन् ! आपकी जय हो। शान्ति-दाता ! आपकी जय हो ! आप ही शान्ति हैं। भगवान् शंकरकी भी उत्पत्तिके कारण ! आपकी जय हो। ज्योतिःस्वरूप ! आपकी जय हो। वामन ! आपकी जय हो। वित्तेश ! आपकी जय हो। धूममयी पताकावाले ! आपकी जय हो। सम्पूर्ण जगत्के लिये दातारूप परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। पुण्डरीकाक्ष ! आप ही त्रिलोकीमें रहनेवाले जीवसमुदायका क्लेश निवारण करनेमें दक्ष हैं। कृपानिधे ! विष्णो ! आप मेरे मस्तकपर अपना वरद हाथ रखिये।

समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान् विष्णुने इस प्रकार स्तुति करनेवाले धन्वन्तरिसे वर माँगनेको कहा। तब राजाने विनीत होकर कहा—'मैं देवताओंका राजा होना चाहता हूँ।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् वहाँसे अन्तर्धान हो गये और राजा धन्वन्तरिने क्रमशः उन्नति करते हुए देवेन्द्रपद प्राप्त किया। पूर्वजन्ममें किये हुए अनेक कर्मोंके परिणामवश इन्द्रको तीन बार अपने पदसे भ्रष्ट होना पड़ा। वृत्रासुरका वध होनेपर नहुषके द्वारा इन्द्रका पद छीना गया। इसके बाद इन्द्रने सिन्धुसेनकी हत्या कर डाली। अतः उस पापसे भी उनके पदकी हानि हुई। तीसरी बार अहल्याके साथ समागम करनेके कारण तथा अन्य कारणोंसे भी उन्हें पदभ्रष्ट होना पड़ा। इन्द्र उन बातोंको याद करके चिन्ताजनित संतापसे उदास रहा करते थे। तदनन्तर एक दिन उन्होंने बृहस्पतिजीसे पूछा—'वागीश्वर ! क्या कारण है कि बीच-बीचमें मुझे अपने राज्यसे भ्रष्ट होना पड़ता है ? इस प्रकार पदभ्रष्ट होनेकी अपेक्षा तो निर्धन हो जाना ही अच्छा है। कर्मोंकी गहन गतिको कौन ठीक-ठीक जानता है। सब पदार्थोंके रहस्यको जाननेमें आपके सिवा और कोई समर्थ नहीं है।'

तब बृहस्पतिजीने इन्द्रसे कहा—'चलकर ब्रह्माजीसे पूछो। वे ही भूत, भविष्य और वर्तमानकी बातें जानते हैं। महामते ! जिस कारणसे ऐसा होता है, वह सब वे बता देंगे।' ऐसा निश्चय करके वे दोनों मेरे पास आये और मुझे नमस्कार

करके हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! किस दोषसे शचीपति इन्द्र अपने राज्यसे भ्रष्ट होते हैं? नाथ! इस संदेहका निवारण कीजिये।'

उनका यह प्रश्न सुनकर मैंने बहुत देरतक विचार किया। तत्पश्चात् बृहस्पतिसे कहा—'ब्रह्मन्! खण्डधर्म नामक दोषके कारण इन्द्रको राज्यपदसे च्युत होना पड़ता है। देश-काल आदिके दोषसे, श्रद्धा और मन्त्रका अभाव होनेसे, यथावत् दक्षिणा न देनेसे, असत् वस्तुका दान करनेसे और विशेषतः देवता तथा ब्राह्मणोंकी अवहेलनाके पातकसे जो देह-धारियोंका अपना धर्म खण्डित हो जाता है, उससे अत्यधिक मानसिक संतापका सामना करना पड़ता है तथा पदकी हानि भी अनिवार्य हो जाती है। क्षोभपूर्ण चित्तसे किया हुआ धर्म भी अनिष्टका ही कारण होता है। उससे कार्यकी सिद्धि नहीं होती। अपना धर्म पूर्ण न होनेपर कौन-सा अनिष्ट नहीं होता।' यों कहकर मैंने उनके पूर्वजन्मका वृत्तान्त भी बतलाया। पूर्वजन्ममें इन्द्र राजा आयुके पुत्र धन्वन्तरि थे। उनकी तपस्यामें तम नामक राक्षसने विघ्न डाल दिया, फिर भगवान् विष्णुने उस विघ्नका निवारण किया। इस तरह इनके पूर्व-जन्मोंमें ऐसे वृत्तान्त अनेक हो सकते हैं। उन्हींके फलसे इन्हें कभी-कभी अपने राज्यसे वञ्चित रहना पड़ता है।'

मेरी बात सुनकर इन्द्र और बृहस्पति दोनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने फिर मुझसे ही पूछा—'सुरश्रेष्ठ! खण्डधर्मत्व दोषका निवारण कैसे होगा?' तब मैंने पुनः सोचकर कहा—'सुनो; एक उपाय बताता हूँ, जो समस्त दोषोंका हारक, समस्त सिद्धियोंका कारक और दुःखमय संसार-सागरसे समस्त प्राणियोंका तारक है। जिनके चित्तमें संताप रहता है, उनको इसी उपायकी शरण लेनी चाहिये। यह समस्त जीवोंको शान्ति प्रदान करनेवाला है। वह उपाय है—गौतमी देवीके तटपर जाकर भगवान् विष्णु और शिवकी स्तुति करना।' यह सुनकर वे उसी समय गौतमीके तटपर गये और स्नान करके बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् विष्णु और शिवकी स्तुति करने लगे। इन्द्रने श्रीविष्णुकी स्तुति की और बृहस्पतिने श्रीशिवकी।

इन्द्र बोले—मत्स्य, कूर्म और वाराहरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको बारंबार नमस्कार है। नरसिंह-देव तथा वामनको भी नमस्कार है। हयग्रीवरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। त्रिविक्रम! आपको नमस्कार है। श्रीराम, बुद्ध और कल्किरूप भगवान्‌को नमस्कार है। परमेश्वर! आप अनन्त एवं अच्युत हैं। आपको नमस्कार है। परशुरामरूपधारी! आपको नमस्कार है। मैं इन्द्र, वरुण और यम आपके ही स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। त्रिलोकी-रूपधारी देवता परमेश्वरको नमस्कार है। भगवन्! आप अपने मुखमें सरस्वतीको धारण करते हैं और सर्वज्ञ हैं। आप लक्ष्मीवान् हैं। अतएव लक्ष्मीको वक्षःस्थलपर धारण करते हैं। पाप-ताप आपको छू भी नहीं सकते। आपकी बाँहें, जङ्घा तथा चरण अनेक हैं। कान, नेत्र तथा मस्तक भी बहुत हैं। आप ही वास्तवमें सुखी हैं। आपको पाकर बहुत-से जीव सुखी हो गये। हरे! आप करुणाके सागर हैं। मनुष्योंको तभीतक निर्धनता, मलिनता और दीनताका सामना करना पड़ता है, जबतक वे आपकी शरणमें नहीं जाते।

बृहस्पति बोले—ईश! आप परम सूक्ष्म, ज्योतिर्मय, अनन्त, ओंकार मात्रसे अभिव्यक्त होनेवाले, प्रकृतिसे परे, चित्स्वरूप, आनन्दमय और पूर्णरूप हैं। मुमुक्षु पुरुष आपका स्वरूप ऐसा ही बतलाते हैं। भगवन्! जिनके हृदय-में एक भी कामना नहीं है अथवा जो सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर चुके हैं, वे भी पञ्चमहायज्ञोंद्वारा आपकी आराधना करते हैं और उसके फलस्वरूप आपके दिव्य धाम अथवा दिव्य स्वरूपमें, जो संसार-सागरसे परे है, प्रवेश कर जाते हैं। शम्भो! वे निष्काम अथवा आप्तकाम पुरुष समत्वबुद्धिके द्वारा सब प्राणियोंमें आपका दर्शन करके क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जरा-मृत्युरूप छः ऊर्मियोंके प्राप्त होनेपर शान्तभावसे रहते, ज्ञानके द्वारा कर्मफलोंको त्याग देते और ध्यानके द्वारा आपमें प्रवेश कर जाते हैं। मुझमें न जातिके धर्म हैं न वेद-शास्त्रका ज्ञान है। न ध्यानका अभ्यास है और न मैं समाधि ही लगाता हूँ। केवल शान्तचित्त भगवान् शिवको, जो रुद्र, शिव और सोम आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं, भक्तिके साथ प्रणाम करता हूँ। भगवन्! आपके चरणोंमें भक्ति रखनेसे मूर्ख मनुष्य भी आपके मोक्षमय स्वरूपको प्राप्त कर लेता है। ज्ञान, यज्ञ, तप, ध्यान तथा बड़े-बड़े फल देनेवाले होम आदि कर्मोंका सर्वोत्तम फल यही है कि भगवान् सोमनाथमें निरन्तर भक्ति बनी रहे। जगदाधार शिव! सब जीवोंके लिये सदा देखे और सुने हुए प्रिय फलकी, स्वर्गकी तथा मोक्षकी प्राप्तिके लिये आपकी यह भक्ति ही सीढ़ी है। धीर पुरुष आपके चरणोंकी प्राप्तिरूपी फलके लिये दूसरी किसी सीढ़ीको नहीं बतलाते। दयालो! इसलिये आपके प्रति मेरी भक्ति बनी

रहे। आपके श्रीविग्रहकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त होता रहे। दूसरा कोई उपाय नहीं है। ईश्वर! यद्यपि हमलोग पापी हैं, तथापि आप अपनी महिमाकी ओर देखकर हमपर कृपा कीजिये। आप स्थूल, सूक्ष्म, अनादि, नित्य, पिता, माता, असत् और सत्स्वरूप हैं—श्रुतियों और पुराणोंने इस प्रकार जिनका स्तवन किया है, उन परमेश्वर सोमनाथको मैं प्रणाम करता हूँ।

इन दोनोंकी स्तुतियोंसे भगवान् विष्णु और शिव बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'तुम दोनों अत्यन्त दुर्लभ अभीष्ट वर माँगो।' तब इन्द्रने कहा—'भगवन्! मेरा राज्य बार-बार



अधिकारमें आता और छिन जाता है। जिस पापके कारण ऐसा होता है, वह पाप नष्ट हो जाय। यदि आप दोनों देवेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हों तो मेरा सब कुछ सदा स्थिर रहे।' यह सुनकर भगवान् शिव और विष्णुने मुसकराते हुए इन्द्रके वाक्यका अनुमोदन किया और इस प्रकार कहा—'यह गोदावरी नदी ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाला महान् तीर्थ है। यहाँ सबके मनोरथ पूर्ण होते हैं। तुम दोनों यहाँ श्रद्धापूर्वक स्नान करो। इन्द्रके मङ्गलके लिये तथा इनके वैभवकी स्थिरताके लिये बृहस्पति हम दोनोंका स्मरण करते हुए इन्द्रका अभिषेक करें तथा उस समय निम्नाङ्कित मन्त्र भी पढ़ें—

इह जन्मनि पूर्वस्मिन् यत्किंचित् सुकृतं कृतम्।
तत् सर्वं पूर्णतामेतु गोदावरि नमोऽस्तु ते॥

'गोदावरि! मैंने इस जन्ममें अथवा पूर्वजन्ममें जो कुछ भी पुण्यकर्म किया हो, वह सब पूर्णताको प्राप्त हो। आपको नमस्कार है।'

जो इस प्रकार स्मरण करके गौतमी गङ्गामें स्नान करता है, उसका धर्म हम दोनोंकी कृपासे परिपूर्ण होता है। तथा वह साधक अपने पूर्वजन्मके दोषसे भी मुक्त होकर पुण्यवान् हो जाता है।'

इन्द्र और बृहस्पतिने 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार की और दोनों प्रसन्न होकर उस कार्यमें लग गये। देवगुरुने इन्द्रका महाभिषेक किया। उससे एक नदी प्रकट हुई, जो पुण्या और मङ्गला कहलायी। उस नदीके साथ जो गङ्गाजीका संगम हुआ, वह बड़ा ही पवित्र एवं कल्याणकारक है। इन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर जगन्मय भगवान् विष्णु प्रत्यक्ष प्रकट हुए और उनसे इन्द्रने त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया। अतः (इन्द्रं गामविन्दयत्—इस व्युत्पत्तिके अनुसार) भगवान् वहाँ गोविन्दके नामसे विख्यात हुए, क्योंकि इन्द्रने उनसे त्रिलोकमयी गौ प्राप्त की थी। देवगुरु बृहस्पतिने जहाँ इन्द्रके राज्यकी स्थिरताके लिये महादेवजीका स्तवन किया, वहाँ वे सिद्धेश्वर नामसे निवास करते हैं। सिद्धेश्वर नामक शिवलिङ्गकी सम्पूर्ण देवता भी पूजा करते हैं। तबसे वह तीर्थ गोविन्दतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहीं मङ्गला-संगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ और बार्हस्पत्यतीर्थ भी हैं। उन तीर्थोंमें जो स्नान, दान अथवा किंचिन्मात्र भी पुण्यका उपार्जन किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। वहाँका श्राद्ध पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस तीर्थके माहात्म्यको सुनता, पढ़ता और स्मरण करता है, उसे खोये हुए राज्यकी प्राप्ति होती है। नारद! वहाँ गौतमीके दोनों तटोंपर सैंतीस हजार तीर्थ रहते हैं, जो सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाले हैं।

श्रीरामतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! रामतीर्थ भ्रूणहत्याका नाश करनेवाला है । उसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । इक्ष्वाकुवंशमें दशरथ नामके क्षत्रिय राजा हुए, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे । वे इन्द्रकी ही भाँति बलवान्, बुद्धिमान् और शूरवीर थे तथा बलिकी भाँति अपने पिता-पितामहोंके राज्यका पालन करते थे । महाराज दशरथके तीन रानियाँ थीं—कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी । वे तीनों कुलीन, सौभाग्यशालिनी, रूपवती और सुलक्षणा थीं । राजा दशरथ जब अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन थे और ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी उनके पुरोहितके पदपर प्रतिष्ठित थे, उस समय देशमें न रोग थे न मानसिक चिन्ताएँ । न तो अनावृष्टि होती थी और न अकाल ही पड़ता था । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंको और चारों आश्रमोंको भी पृथक्-पृथक् बड़ा सुख मिलता था । एक समयकी बात है, देवताओं और दानवोंमें राज्यके लिये युद्ध छिड़ गया । न तो उसमें देवताओंकी जीत होती थी और न दैत्यों एवं दानवोंकी ही । वह युद्ध कई दिनोंतक लगातार चलता रहा । इसी बीचमें आकाशवाणी हुई—'राजा दशरथ जिनका पक्ष ग्रहण करेंगे, वे ही विजयी होंगे, दूसरे नहीं ।' यह सुनकर देवता और दानव दोनों अपनी विजयके लिये राजाके पास चले । देवताओंकी ओरसे वायु शीघ्र जा पहुँचे और राजासे बोले—'महाराज ! देव-दानव-संग्राममें आपको चलना चाहिये । वहाँ यह आकाशवाणी सुनायी दी है कि जिस ओर राजा दशरथ रहेंगे, उसी पक्षकी जीत होगी; अतः आप देवताओंका पक्ष ग्रहण कीजिये, जिससे देवता विजयी हों ।'

वायुकी यह बात सुनकर राजा दशरथने कहा—'वायुदेव ! आप सुखपूर्वक पधारें । मैं अवश्य चलूँगा ।' वायुके चले जानेपर दैत्यगण राजाके पास आये और बोले—'भगवन् ! हमारी सहायता कीजिये । महाराज ! विजय आपपर ही अवलम्बित है, अतः आप दैत्यराजकी सहायता करें ।' राजा बोले—'वायुदेवने पहले मुझसे प्रार्थना की है और मैंने देवताओंकी सहायता करनेका वचन दे दिया है; अतः दैत्य और दानव लौट जायँ ।' राजा दशरथने वैसा ही किया । स्वर्गमें पहुँचकर उन्होंने दैत्यों, दानवों तथा राक्षसोंके साथ लोहा लिया । उस समय नमुचिके भाइयोंने देवताओंके देखते-देखते तीखे बाण मारकर राजाके रथकी धुरी तोड़ डाली । राजा बड़े वेगसे युद्धमें लगे थे । उन्हें धुरी टूटनेका पता न लगा । नारद ! उस युद्धमें रानी कैकेयी भी राजाके पास ही बैठी थी । उसे रथकी अवस्थाका पता लग गया, परंतु उसने राजाको इस बातकी सूचना नहीं दी । धुरी टूटी देख उसने उसकी जगह अपना हाथ ही लगा दिया । यह बड़ा अद्भुत कार्य था । रथियोंमें श्रेष्ठ महाराज दशरथने कैकेयीके हाथसे थँमे हुए रथके द्वारा दैत्यों और दानवोंपर विजय पायी, फिर देवताओंसे अनेक वर पाकर उनकी अनुमति ले वे पुनः अयोध्या लौट आये । आते समय मार्गके बीचमें जब महाराज दशरथने अपनी प्रिया कैकेयीकी ओर दृष्टिपात किया, तब उसका वह साहसपूर्ण कार्य देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ । नारद ! इस कार्यसे प्रसन्न होकर राजाने कैकेयीको वर दिये । रानी कैकेयीने भी राजाकी आज्ञा स्वीकार करके इस प्रकार कहा—'महाराज ! आपके दिये हुए ये वर आपके ही पास रहें [आवश्यकता पड़नेपर ले लूँगी] ।'*

राजा दशरथ पुरस्कारमें अनेक आभूषण देकर अपनी प्रिया कैकेयीके साथ अपने नगरको गये । विजयी होनेसे वे बहुत प्रसन्न थे । तदनन्तर बहुत समयके बाद मुनीश्वर ऋष्यशृङ्गकी कृपासे देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये राजा दशरथके चार देवोपम पुत्र हुए । कौसल्यासे राम, कैकेयीसे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भरत तथा सुमित्रासे लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए । वे सभी पुत्र बुद्धिमान्, प्रिय तथा राजाके आज्ञाकारी थे । एक बार महर्षि विश्वामित्र आये और उन्होंने यज्ञकी रक्षाके लिये राजासे राम और लक्ष्मणको माँगा । विश्वामित्र उनके महत्त्वको जानते थे ।

राजा दशरथ बोले—मुने ! इस बुढ़ापेमें किसी तरह दैवयोगसे मेरे ये बालक उत्पन्न हुए हैं, जो मेरे मनको आनन्द देनेवाले हैं । मैं अपना शरीर और यह राज्य दे दूँगा, किंतु इन पुत्रोंको न दे सकूँगा ।

---

* स तु मध्ये महाराजो मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम् ।
कैकेय्याः कर्म तद् दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ॥
ततस्तस्यै वरान् प्रादात्त्रींस्तु नारद सा अपि ।
अनुमान्य नृपप्रोक्तं कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥
त्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी ॥
(१२३ । २९–३१)

उस समय वसिष्ठने राजा दशरथसे कहा—'राजन्! रघुवंशियोंने किसीकी प्रार्थनाको ठुकराना नहीं सीखा है।' उनके यों कहनेपर राजाने किसी तरह श्रीराम और लक्ष्मणसे कहा—'पुत्रो! तुम ब्रह्मर्षि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करो।' यों कहकर उन्होंने अपने दोनों पुत्र विश्वामित्रजीको सौंप दिये। राम और लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर राजा दशरथको नमस्कार किया और यज्ञकी रक्षाके लिये विश्वामित्रजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक चल दिये। तब महर्षि विश्वामित्रने उन दोनों भाइयोंको माहेश्वरी महाविद्या, धनुर्वेद, शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, लोकविद्या, रथविद्या, गजविद्या, अश्वविद्या, गदाविद्या तथा मन्त्रद्वारा अस्त्रोंके आवाहन और विसर्जनकी शिक्षा दी। इस प्रकार सम्पूर्ण विद्याएँ प्राप्तकर श्रीराम और लक्ष्मणने वनवासियोंका हित करनेके लिये वनमें ताड़काको मार डाला और हाथमें धनुष लेकर यज्ञकी रक्षा करने लगे। तत्पश्चात् महायज्ञ पूर्ण होनेपर मुनिवर विश्वामित्र दोनों राजकुमारोंके साथ राजा जनकसे मिलने गये। वहाँ लक्ष्मणसहित श्रीरामने राजाओंकी मण्डलीमें अपने गुरुसे सीखी हुई अद्भुत धनुर्विद्याका परिचय दिया। इससे प्रसन्न होकर राजा जनकने अपनी अयोनिजा कन्या लक्ष्मीस्वरूपा सीताका श्रीरामके साथ विवाह कर दिया। इसी प्रकार लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका विवाह भी राजा जनकके ही घर हुआ। तदनन्तर दीर्घकाल व्यतीत होनेपर राजा दशरथ समस्त प्रजा और गुरुकी अनुमतिसे श्रीरामको राज्य देने लगे। उस समय मन्थरारूपी दुर्दैवसे प्रेरित होकर रानी कैकेयी ईर्ष्यासे व्याकुल हो उठी। उसने श्रीरामके राज्याभिषेकमें विघ्न डाला और उन्हें वनवास भेजनेके लिये कहा। साथ ही उसने वही राज्य भरतके लिये माँगा, परंतु राजाने स्वीकार नहीं किया। पिताके सत्यकी रक्षाके लिये श्रीराम स्वयं ही घोर जङ्गलमें चले गये। सीता और लक्ष्मणने भी उन्हींका साथ दिया। श्रीरामने अपने सद्गुणोंके कारण सत्पुरुषोंके शुद्ध हृदयमें घर बना लिया था। जब श्रीराम राज्यकी तृष्णासे रहित और वनवासके लिये दीक्षित हो लक्ष्मण और सीताके साथ चले गये, तब राम, लक्ष्मण और गुणशालिनी सीताका स्मरण करके महाराजको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। इधर श्रीरामचन्द्रजी चलते-चलते चित्रकूटमें आये। वहीं उन्होंने तीन वर्ष व्यतीत किये। फिर वहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर चलकर वे क्रमशः दण्डकारण्यमें पहुँचे, जो समस्त देशोंमें पवित्र और तीनों लोकोंमें विख्यात है। वह महान् वन दैत्योंसे सेवित होनेके कारण बड़ा भयंकर था। ऋषियोंने भयभीत होकर उसे छोड़ दिया था। श्रीरामने वहाँ दैत्यों और राक्षसोंको मारकर दण्डकवनको ऋषि-मुनियोंके रहनेयोग्य बना दिया। फिर पाँच योजन आगे जाकर वे धीरे-धीरे गौतमीके तटपर पहुँचे। भगवान् शिवकी जो पुञ्जीभूत एवं अनिर्वचनीय पराशक्ति है, वही जलस्वरूपमें प्रकट हुई गौतमी नदी है—ऐसा संत-महात्माओंका कथन है। गौतमी ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लिये भी माननीय तथा वन्दनीय है।

श्रीराम बोले—अहो, गङ्गाका कैसा अद्भुत प्रभाव है! तीनों लोकोंमें इसकी कहीं उपमा नहीं है। हम धन्य हैं कि इस त्रिभुवनपावनी गङ्गाका दर्शन पा सके।

यों कहकर श्रीरामने बड़े हर्षके साथ महादेवजीकी स्थापना की और यत्नपूर्वक षोडशोपचारसे छत्तीस कलाओंवाले महादेवजीकी आवरणसहित पूजा करके हाथ जोड़ उनकी स्तुति करने लगे।

श्रीराम बोले—मैं पुराणपुरुष शम्भुको नमस्कार करता हूँ। जिनकी असीम सत्ताका कहीं पार या अन्त नहीं है, उन सर्वज्ञ शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। अविनाशी प्रभु रुद्रको नमस्कार करता हूँ। सबका संहार करनेवाले शर्वको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। अविनाशी परमदेवको नमस्कार करता हूँ। लोकगुरु उमापतिको प्रणाम करता हूँ। दरिद्रताका विनाश करनेवाले शिवको नमस्कार करता हूँ। रोगोंका अपहरण करनेवाले महेश्वरको प्रणाम करता हूँ। जिनका रूप चिन्तनका विषय नहीं है, उन कल्याणमय शिवको नमस्कार करता हूँ। विश्वकी उत्पत्तिके बीजभूत भगवान् भवको प्रणाम करता हूँ। जगत्‌का पालन करनेवाले परमात्माको नमस्कार करता हूँ। संहारकारी रुद्रको बारंबार प्रणाम करता हूँ। पार्वतीजीके प्रियतम अविनाशी प्रभुको नमस्कार करता हूँ। नित्य, क्षर-अक्षरस्वरूप शंकरको प्रणाम करता हूँ। जिनका स्वरूप चिन्मय है और अप्रमेय है, उन भगवान् त्रिलोचनको मैं मस्तक झुकाकर बारंबार नमस्कार करता हूँ। करुणा करनेवाले भगवान् शिवको प्रणाम करता हूँ तथा संसारको भय देनेवाले भगवान् भूतनाथको सर्वदा नमस्कार करता हूँ। मनोवाञ्छित फलोंके दाता महेश्वरको प्रणाम करता हूँ। भगवती उमाके स्वामी श्रीसोमनाथको नमस्कार करता हूँ। तीनों वेद जिनके तीन नेत्र हैं, उन त्रिलोचनको प्रणाम करता हूँ। त्रिविध मूर्तिसे रहित सदा शिव-

को नमस्कार करता हूँ। पुण्यमय शिवको प्रणाम करता हूँ। सत्-असत्से पृथक् परमात्माको नमस्कार करता हूँ। पापोंका अपहरण करनेवाले भगवान् हरको प्रणाम करता हूँ। जो सम्पूर्ण विश्वके हितमें लगे रहते हैं, उन भगवान्को नमस्कार करता हूँ। जो बहुत-से रूप धारण करते हैं, उन भगवान् शंकरको प्रणाम करता हूँ। जो संसारके रक्षक तथा सत् और असत्के निर्माता हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ। जो सम्पूर्ण विश्वके स्वामी हैं, उन विश्वनाथको प्रणाम करता हूँ। हव्य-कव्यस्वरूप यज्ञेश्वरको नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण लोकोंका सर्वदा कल्याण करनेवाले जो भगवान् शिव आराधना करनेपर उत्तम गति एवं सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करते हैं, उन दानप्रिय इष्टदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् सोमनाथको प्रणाम करता हूँ। जो स्वतन्त्र न रहकर भक्तोंके पराधीन रहते हैं, उन विजयशील उमानाथको मैं नमस्कार करता हूँ। विघ्नराज गणेश तथा नन्दीके स्वामी पुत्रप्रिय भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। संसारके दुःख और शोकका नाश करनेवाले देवता भगवान् चन्द्रशेखरको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ। जो स्तुति करने योग्य और मस्तकपर गङ्गाको धारण करनेवाले हैं, उन महेश्वरको नमस्कार करता हूँ। देवताओंमें श्रेष्ठ उमापतिको प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा आदि ईश्वर, इन्द्र आदि देवता तथा असुर भी जिनके चरण-कमलोंकी पूजा करते हैं, उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने पार्वतीदेवीके मुखसे निकलनेवाले वचनोंपर दृष्टिपात करनेके लिये मानो तीन नेत्र धारण कर रक्खे हैं, उन भगवान्को प्रणाम करता हूँ। पञ्चामृत, चन्दन, उत्तम धूप, दीप, भाँति-भाँतिके विचित्र पुष्प, मन्त्र तथा अन्न आदि समस्त उपचारोंसे पूजित भगवान् सोमको मैं नमस्कार करता हूँ।

तदनन्तर भगवान् शंकरने प्रकट होकर श्रीराम और लक्ष्मणसे कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, वर माँगो।'

श्रीराम बोले—सुरश्रेष्ठ! महेश्वर! जो लोग इस स्तोत्रके द्वारा भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करें, उनके सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जायँ। शम्भो! जिनके पितर नरकके समुद्रमें डूबे हों, उनके वे पितर यहाँ पिण्ड आदि देनेसे पवित्र हो स्वर्गलोकमें चले जायँ। जन्मभरके कमाये हुए मानसिक, वाचिक और शारीरिक पाप यहाँ स्नान करनेमात्रसे तत्काल नष्ट हो जायँ। जो लोग यहाँ याचकोंको भक्तिपूर्वक थोड़ा भी दान दें, वह सब अक्षय होकर दाताओंके लिये उत्तम फल देनेवाला हो।

यह सुनकर शंकरजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर श्रीरामचन्द्रकी बातका अनुमोदन किया। सुरश्रेष्ठ भगवान् शिवके अन्तर्धान हो जानेपर श्रीराम अपने अनुगामियोंके साथ धीरे-धीरे उस प्रदेशमें गये, जहाँसे गोदावरी नदी प्रकट हुई हैं। तबसे वह तीर्थ श्रीरामतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जहाँ लक्ष्मणने स्नान और शंकरका पूजन किया, वह लक्ष्मणतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ और जहाँ सीताने स्नानादि किया, वह सीतातीर्थके नामसे कहलाया। सीतातीर्थ नाना प्रकारकी समस्त पापराशिको निर्मूल करनेमें समर्थ है। जिनके चरणोंसे त्रिभुवनपावनी गङ्गा प्रकट हुई, उन्होंने ही जहाँ स्नान किया, उस तीर्थकी विशिष्टताके विषयमें क्या कहा जा सकता है। अतः श्रीरामतीर्थके समान कहीं कोई भी तीर्थ नहीं है।

पुत्रतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—गौतमी-तटपर जो विख्यात पुत्रतीर्थ है, वह पुण्यतीर्थ कहलाता है। उसकी महिमाके श्रवणमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। नारद! मैं उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो। जब दिति एवं दनुके पुत्र दैत्य और दानवोंका देवताओंद्वारा क्षय होने लगा, तब दिति पुत्र-वियोगके दुःखसे मनमें स्पर्धा लेकर अपनी बहन दनुके पास आयी और इस प्रकार कहने लगी—'भद्रे! हम दोनोंके ही पुत्र क्षीण होते जा रहे हैं। हम संसारमें कौन ऐसा गुरुतर कार्य करें, जिससे हमारा यह संकट दूर हो। देखो, अदितिका वंश कितना संगठित और उत्तम है। उसका कभी क्षय नहीं होता। वह उत्तम राज्य, सुयश और विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित है। अदितिकी संतानोंका वैभव और अभ्युदय देखकर मैं दुबली होती जा रही हूँ। सम्भव है, जीवित न रह सकूँ। अदितिके महान् ऐश्वर्यपर दृष्टि डालते ही मैं अवर्णनीय दुरवस्थाका अनुभव करने लगती हूँ। दावानलमें प्रवेश कर जाना भी सुखद है, किंतु स्वप्नमें भी सौतकी समृद्धि नहीं देखी जाती।

दनु बोली—भद्रे! तुम अपने गुणोंसे पतिदेव कश्यप-

कश्यपजीने कहा–बेटा ! गर्भके बाहर निकलो । तुमने यह क्या पाप कर डाला । उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुष कभी पापमें मन नहीं लगाते ।

पिताका आदेश सुनकर वज्रधारी इन्द्र गर्भसे बाहर निकले । उस समय लज्जाके मारे उनका मुँह नीचा हो रहा था । वे बोले—'पिताजी ! जिस साधनसे मेरा कल्याण हो, वह बताइये । मैं उसे अवश्य करूँगा ।' तब कश्यपजी लोकपालोंके साथ मेरे पास आये और सब बातें बताकर पूछने लगे—'दितिके गर्भकी शान्ति, गर्भस्थ बालकोंकी इन्द्रके साथ मित्रता, उन बालकोंकी नीरोगता, इन्द्रकी निर्दोषता तथा अगस्त्यके दिये हुए शापका क्रमशः उद्धार कैसे हो ?' तब मैंने कश्यपसे कहा—'प्रजापते ! तुम वसुओं, लोकपालों तथा इन्द्रको साथ लेकर शीघ्र ही गौतमी नदीके तटपर जाओ और वहाँ स्नान करके सबके साथ महादेवजीकी स्तुति करो । फिर शिवकी कृपासे सब कल्याण ही होगा ।' 'अच्छा, ऐसा ही करूँगा ।' यों कहकर कश्यप मुनि गौतमी नदीके तटपर गये और देवेश्वर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे । समस्त दुःखोंको दूर करनेके लिये दो ही देवता समर्थ बताये गये हैं—एक तो परम पवित्र गौतमी नदी और दूसरे करुणानिधि शिव ।

कश्यप बोले–देवेश्वर शंकर ! मेरी रक्षा कीजिये । लोकवन्दित परमेश्वर ! मेरी रक्षा कीजिये । सबको पवित्र करनेवाले वागीश ! रक्षा कीजिये । सर्पोंका आभूषण पहननेवाले शिव ! रक्षा कीजिये । धर्मस्वरूप वृषभपर सवारी करनेवाले देवता ! रक्षा कीजिये । तीनों वेद जिनके नेत्र हैं, ऐसे भगवान् त्रिलोचन ! रक्षा कीजिये । गोधर[1] लक्ष्मीश ! रक्षा कीजिये । गजचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले शर्व ! रक्षा कीजिये । त्रिपुरहर ! रक्षा कीजिये । अर्द्धचन्द्रसे विभूषित नाथ ! रक्षा कीजिये । यज्ञेश्वर सोमनाथ ! रक्षा कीजिये । मनोवाञ्छित फलोंके दाता ! रक्षा कीजिये । करुणाधाम ! रक्षा कीजिये । मङ्गलदाता ! रक्षा कीजिये । सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत परमात्मन् ! रक्षा कीजिये । पालन करनेवाले वासव ! रक्षा कीजिये । भास्कर ! वित्तेश ! रक्षा कीजिये । ब्रह्मवन्दित शिव ! रक्षा कीजिये । विश्वेश्वर ! रक्षा कीजिये । सिद्धेश्वर ! रक्षा कीजिये । पूर्ण परमेश्वर ! आपको नमस्कार है । करुणासागर शिव ! भयंकर संसाररूपी दुर्गम प्रदेशमें विचरनेके कारण जिनका चित्त उद्विग्न हो रहा है, ऐसे जीवोंके लिये आप ही शरण हैं ।

इस प्रकार स्तुति करनेवाले कश्यपजीके समक्ष भगवान् शंकर प्रकट हुए और उनसे वर माँगनेके लिये कहा । कश्यपजीने विनीत होकर भगवान् शिवसे इन्द्रकी समस्त चेष्टाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया । साथ ही यह भी बताया कि मेरे पुत्रोंका जो नाश हो रहा है, उनमें परस्पर शत्रुता बढ़ रही है, इन्द्रको पाप और शापकी प्राप्ति हुई है, यह सब शान्त हो जाय । यह सुनकर भगवान् शंकरने कहा—'आपके जो उन्चास पुत्र मरुद्गण हैं, वे सब सौभाग्यशाली और इन्द्रके साथ सदा यज्ञके भागी होंगे । जिस-जिस यज्ञमें इन्द्रका भाग होगा, उसमें उनसे भी पहले मरुद्गणोंका भाग होगा—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । मरुद्गणोंके साथ रहनेपर कभी कोई इन्द्रको जीत नहीं सकता । फिर तो वे ही सदा विजयी रहेंगे ।' इतना कहकर शंकरजीने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यसे कहा—'मुने ! तुम शचीपति इन्द्रपर क्रोध न करो । महामते ! शान्त हो जाओ । मरुद्गण अमर हो गये ।' फिर दितिसे भी शिवजीने कहा—'देवि ! मेरे एक ऐसा पुत्र हो, जो तीनों लोकोंके ऐश्वर्यसे सुशोभित रहे—इस बातका चिन्तन करती हुई तुम तपस्यामें प्रवृत्त हुई थीं । तुम्हारा यह मनोरथ अब सफल हो गया । तुम्हारे ये पुत्र अधिक गुणशाली, बलवान् और शूरवीर हैं । अतः अब तुम अपनी मानसिक चिन्ता छोड़ दो । सुन्दरी ! तुम संशयरहित होकर अन्य वर भी माँगो ।'

दिति बोलीं–भगवन् ! लोकमें यही बड़ी बात समझी जाती है कि माता-पिताको पुत्रका दर्शन हो । विशेषतः माताके लिये यह बहुत ही प्रिय बात है । इसमें भी रूप, सम्पत्ति, शौर्य और पराक्रमसे सम्पन्न एक भी पुत्र हो तो बड़े भाग्यकी बात है । फिर यदि बहुत-से उत्तम और गुणवान् पुत्र प्राप्त हों तो क्या कहना । मेरे पुत्र आपके प्रभावसे विजयी और बली हुए । वे वास्तवमें इन्द्रके भाई और प्रजापतिके पुत्र हैं । देव ! जहाँ अगस्त्य और गौतमी गङ्गाके

---

[1] गौ अर्थात् वृषभ (नन्दी) को धारण करनेसे 'गोधर' और लक्ष्मीस्वरूपा पार्वतीके स्वामी होनेसे 'लक्ष्मीश' हैं । अथवा गोधरका अर्थ भूधर (गिरिराज हिमालय) है, उनकी लक्ष्मीस्वरूपा कन्याके स्वामी होनेके कारण शिव 'गोधरलक्ष्मीश' हैं ।

प्रसादके साथ-साथ आपका भी प्रसाद प्राप्त हो, वहाँ शुभ होनेमें क्या संदेह है। यद्यपि मैं कृतार्थ हो गयी, तथापि भक्तिपूर्वक आपसे कुछ निवेदन करती हूँ। देव! मेरी बात सुनें और संसारका कल्याण करें। देववन्द्य! संतानकी प्राप्ति संसारमें दुर्लभ है। विशेषतः माताके लिये पुत्रका होना और भी प्रिय है। पुत्र भी यदि गुणवान्, धनवान् और आयुष्मान् हुआ, तब तो कहना ही क्या है। इहलोक और परलोकमें उत्तम फलकी इच्छा रखनेवाले सभी प्राणियोंको गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति सदा ही अभीष्ट है। अतः यहाँ स्नान करनेसे इस दुर्लभ फलकी प्राप्ति हो सके—ऐसा अनुग्रह कीजिये।

भगवान् शंकर बोले—निःसंतान होना बहुत बड़े पापका फल है। स्त्री या पुरुष—कोई भी यदि बाँझ हो तो यहाँ स्नान करनेमात्रसे उसके इस दोषका नाश हो जाता है। जो इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसे यहाँ स्नान करनेका फल प्राप्त होगा। जो तीन मासतक यहाँ स्नान और दान करता है, उसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। पुत्रहीन स्त्री यहाँ स्नान करके पुत्र पा सकती है। ऋतुस्नाता स्त्री यदि यहाँ आकर स्नान करे तो उसे अनेकों पुत्र प्राप्त होते हैं। वह तीन महीनेके भीतर ही गर्भवती हो जाती है। जो पितृदोषसे तथा धन अपहरण करनेके दोषसे पुत्र-लाभसे वञ्चित हैं, उनके लिये यह गौतमी नदी परम उद्धारका कारण है। यहाँ पितरोंको पिण्डदान देने, तर्पण करने तथा कुछ सुवर्ण-दान करनेसे निश्चय ही पुत्र होता है। जो धरोहर हड़प लेते, रत्नोंकी चोरी करते तथा पितरोंका श्राद्ध-कर्म छोड़ देते हैं, उनके वंशकी वृद्धि नहीं होती।* जो पाप करके उसका प्रायश्चित्त किये बिना ही मर जाते हैं, उन सबकी यही गति होती है। जो तीर्थोंका सेवन करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें श्रेष्ठ संतानकी प्राप्ति होती है। जो दिति और गङ्गाके संगममें स्नान करके अनादि, अपार, अजर, सच्चिदानन्दमय, लिङ्गस्वरूप, ज्योतिर्मय तथा अनामय महादेव भगवान् सिद्धेश्वरका अनेक उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करता है, चतुर्दशी और अष्टमीको इस स्तोत्रद्वारा स्तुति करता है तथा यहाँ गङ्गाके तटपर ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण देता और भोजन कराता है, उसे अनेक पुत्र प्राप्त होते हैं। वह सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त करके अन्तमें भगवान् शिवके धाममें जाता है। जो इस स्तोत्रके द्वारा कहीं भी मेरी छः महीने स्तुति करता है, उसे पुत्र प्राप्त होता है। यदि उसकी स्त्री वन्ध्या हो, तो भी वह निःसंदेह पुत्रवती होती है।

तबसे उस तीर्थका नाम पुत्रतीर्थ हो गया। वहाँ स्नान-दान आदि करनेसे समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है। मरुद्गणोंके साथ मैत्री होनेके कारण उसे मित्रतीर्थ भी कहते हैं। यहाँ स्नान करनेसे इन्द्र निष्पाप हुए थे, इसलिये वह इन्द्रतीर्थ या शक्रतीर्थ भी कहलाता है। जहाँ इन्द्रको अपनी खोयी हुई लक्ष्मी प्राप्त हुई, वह कमलातीर्थ कहलाया। ये सब तीर्थ समस्त अभीष्ट पदार्थोंको देनेवाले हैं। भगवान् शिव यह कहकर कि 'यहाँ सब कामनाएँ पूर्ण होंगी' अन्तर्धान हो गये और कश्यप आदि सब लोग कृतकृत्य होकर जैसे आये थे, वैसे लौट गये।

यम, आग्नेय, कपोत और उलूक-तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—यमतीर्थ पितरोंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। वह प्रत्यक्ष और परोक्ष—सब प्रकारकी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। सम्पूर्ण देवता और मुनि उस तीर्थका सेवन करते हैं। मैं उसके प्रभावका वर्णन करता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। एक बलवान् कपोत था, जो अनुह्लादके नामसे विख्यात था। उसकी पत्नी हेति नामकी यक्षिणी थी, जो इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। अनुह्लाद मृत्युके पुत्रका पुत्र था और हेति मृत्युकी पुत्रीकी पुत्री थी। समयानुसार उन दोनोंके भी अनेक पुत्र-पौत्र हुए। पक्षियोंका राजा उलूक अनुह्लादका प्रबल शत्रु था। गङ्गाके उत्तर-तटपर कपोतका आश्रम था और दक्षिण-किनारे पक्षिराज उलूक रहता था। उलूक भी अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ निवास करता था। कपोत और उलूक दोनों बहुत समयतक एक-दूसरेके विरोधी होकर युद्ध करते रहे।

* ये न्यासाद्यपहर्तारो रत्नापह्नवकारकाः। श्राद्धकर्मविहीनाश्च तेषां वंशो न वर्धते॥ (१२४।१३०)

दोनों ही अपने पुत्र-पौत्रोंको साथ लेकर लड़ते थे। यह बलवान् शत्रुओंके साथ बलवानोंका युद्ध था। उनमेंसे उलूक अथवा कपोत—किसीकी भी जय-पराजय नहीं होती थी। कपोतने यमराज तथा अपने पितामह मृत्युकी आराधना करके याम्य अस्त्र प्राप्त किया, अतः वह सबसे अधिक शक्तिशाली हो गया। इसी प्रकार उलूक भी अग्निकी आराधना करके अत्यन्त बलवान् हो गया। वर पाकर दोनों ही उन्मत्त हो गये थे, अतः फिर उनमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया। उसमें उलूकने कपोतके ऊपर आग्नेय अस्त्रका प्रहार किया। कपोतने भी उलूकपर यमपाश तथा यमदण्डका प्रयोग किया। कपोतकी स्त्री हेति बड़ी पतिव्रता थी। उस महायुद्धमें अपने स्वामीके निकट अग्निको प्रज्वलित देख वह दुःखसे विह्वल हो गयी। विशेषतः पुत्रोंको अग्निसे आवृत देख उसकी व्याकुलता और भी बढ़ गयी। उसने अग्निदेवके पास जाकर नाना प्रकारकी उक्तियोंसे स्तवन करना आरम्भ किया।

हेति बोली—जिनका रूप और दान प्रत्यक्ष है, सम्पूर्ण पदार्थ जिनके आत्मस्वरूप हैं और देवता जिनके द्वारा हवनीय पदार्थोंका भोजन करते हैं, उन यज्ञभोक्ता स्वाहापति अग्निको मैं नमस्कार करती हूँ। जो देवताओंके मुख, देवताओंके हविष्यको वहन करनेवाले, देवताओंके होता और देवताओंके दूत हैं, उन आदिदेव भगवान् अग्निकी मैं शरण लेती हूँ। जो शरीरके भीतर प्राणरूपमें स्थित हैं और बाहर अन्नदातारूपमें विद्यमान हैं तथा जो यज्ञके साधन हैं, उन धनंजय (अग्निदेव) की मैं शरण लेती हूँ।*

अग्नि बोले—पतिव्रते! मेरा यह अस्त्र अमोघ है; अतः जिस लक्ष्यपर इसका विश्राम हो सके, उसको बताओ।

कपोतीने कहा—अग्निदेव! आपका अस्त्र मुझपर ही विश्राम करे, मेरे पुत्र और पतिपर नहीं। मुझे मारकर आप सत्यवादी हों। आपको नमस्कार है।

अग्निदेवने कहा—पतिव्रते! तुम्हारे सुवचन और पतिभक्तिसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। तुम्हारे स्वामी और पुत्रोंका अनिष्ट नहीं होगा। मैं उनकी रक्षाका वचन देता हूँ। यह मेरा आग्नेय अस्त्र तुम्हारे पतिको, पुत्रोंको तथा तुमको भी नहीं जलायेगा; अतः तुम सुखपूर्वक लौट जाओ।

इसी बीचमें उलूकीने भी अपने पतिको देखा। वे यमपाशमें बँधकर यमदण्डसे ताड़ित हो रहे थे। सती-साध्वी उलूकी यह देखकर बहुत दुःखी हुई और भयसे व्याकुल हो यमराजके पास गयी।

उलूकी बोली—देव! मनुष्य आपसे भयभीत होकर भागते हैं, आपसे डरकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। आपके ही भयसे धीर पुरुष उत्तम बर्ताव करते हैं और आपके ही डरसे कर्मोंके अनुष्ठानमें लगते हैं। आपसे भय पाकर लोग उपवास करते और गाँव छोड़कर वनमें जाते हैं। आपके ही डरसे सौम्यभाव ग्रहण करते और आपके ही भयसे सोमपान करते हैं। आपसे भयभीत पुरुष ही अन्नदान और गोदानमें प्रवृत्त होते हैं और आपसे डरकर ही मुमुक्षु ब्रह्मवादकी चर्चा करते हैं।*

इस प्रकार स्तुति करती हुई उलूकीसे दक्षिण दिशाके स्वामी यमराजने कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुम वर माँगो। मैं तुम्हें मनके अनुकूल वर दूँगा।' यमराजकी यह बात सुनकर पतिव्रता उलूकीने उनसे कहा—'सुरश्रेष्ठ! मेरे स्वामी आपके पाशमें बँधे हैं और आपके ही दण्डसे पीड़ित हो रहे हैं। आप उससे मेरे पति और पुत्रोंकी रक्षा करें।' उसकी यह कातर वाणी सुनकर यमराजको बड़ी दया आयी। उन्होंने बार-बार कहा—'सुमुखि! मेरे ये पाश और दण्ड किसपर पड़ें? इनके लिये स्थान बताओ।' उसने कहा—'जगदीश्वर! आपके पाश मुझे ही बाँधें और आपका दण्ड भी मुझपर ही पड़े।'

---

* रूपं न दानं न परोक्षमस्ति
यस्यात्मभूतं च पदार्थजातम्।
अश्नन्ति हव्यानि च येन देवाः
स्वाहापतिं यज्ञभुजं नमस्ये॥
मुखभूतं च देवानां देवानां हव्यवाहनम्।
होतारं चापि देवानां देवानां दूतमेव च॥
तं देवं शरणं यामि आदिदेवं विभावसुम्।
अन्तःस्थितः प्राणरूपो बहिश्चान्नप्रदो हि यः॥
यो यज्ञसाधनं यामि शरणं तं धनंजयम्॥
(१२५। १५-१७)

* त्वद्भीता अनुद्रवन्ते जनास्त्वद्भीता ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
त्वद्भीताः साधु चरन्ति धीरास्त्वद्भीताः कर्मनिष्ठा भवन्ति॥
त्वद्भीता अनाशकमाचरन्ति ग्रामादरण्यमभि यच्चरन्ति।
त्वद्भीताः सौम्यतामाश्रयन्ते त्वद्भीताः सोमपानं भजन्ते॥
त्वद्भीताश्चान्नगोदाननिष्ठास्त्वद्भीता ब्रह्मवादं वदन्ति॥
(१२५। २३-२४)

यमराजने कहा—शुभे ! तुम्हारे पुत्र, पति और तुम स लोग निश्चिन्त होकर जीवन व्यतीत करो ।

यों कहकर यमराजने अपने पाश समेट लिये और अग्निदेवने आग्नेयास्त्रका निवारण कर दिया । इतना ही नहीं, उन दोनों देवताओंने मिलकर कपोत और उलूकमें प्रेम करा दिया । फिर उन पक्षियोंसे कहा—'तुमलोग इच्छानुसार वर



मागो ।' दोनों पक्षी बोले—'भगवन् ! हमने आपसके वैरके कारण आपलोगोंका दुर्लभ दर्शन प्राप्त किया । हम तो पापयोनि पक्षी हैं । वरदान लेकर क्या करेंगे । तथापि यदि आपलोग प्रेमपूर्वक वर देना ही चाहते हैं तो हमलोग उस कल्याणमय वरको अपने लिये नहीं चाहते । देवेश्वरो ! जो अपने लिये याचना करता है, वह शोकका पात्र है । जो सदा परोपकारके लिये उद्यत रहता है, उसीका जीवन सफल है । अग्नि, जल, सूर्य, पृथ्वी और नाना प्रकारके धान्योंका तथा विशेषतः संत-महात्माओंका उपयोग सदा दूसरोंके भलेके लिये ही होता है । क्योंकि ब्रह्मा आदि देवता भी एक दिन मृत्युको प्राप्त होते हैं, देवेश्वरो ! यह जानकर स्वार्थ-सिद्धिके लिये परिश्रम करना व्यर्थ है । विधाताने प्राणियोंके जन्मके साथ ही उनके लिये जो विधान रच दिया है, वह कभी बदल नहीं सकता । अतः जीव व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ।* इसलिये हम जगत्के कल्याणके लिये ही कुछ याचना करते हैं । हमारी यह याचना सबके लिये गुणदायक है । आप दोनों इसका अनुमोदन करें । गङ्गाके दोनों तटोंपर जो हमारे आश्रम हैं, वे तीर्थरूपमें परिणत हो जायँ । वहाँ कोई पापी या पुण्यात्मा जिस किसी तरह जो कुछ भी स्नान, दान, जप, होम और पितरोंका पूजन आदि करे, वह सब अक्षय पुण्य देनेवाला हो ।

यमराज बोले—जो लोग गौतमीके उत्तर-तटपर यमस्तोत्रका पाठ करेंगे, उनके वंशमें सात पीढ़ियोंतक किसीकी अकालमृत्यु नहीं होगी । वे पुरुष सदा सब प्रकारकी सम्पत्तियोंके भागी होंगे । जो जितात्मा पुरुष प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह अट्ठासी हजार व्याधियोंसे कभी पीड़ित न होगा । इस तीर्थमें तीन मासतक स्नान करनेसे सती-साध्वी स्त्री गर्भवती होगी । वन्ध्या भी छः महीनेतक स्नान करनेसे गर्भवती होगी । गर्भिणी स्त्री एक सप्ताह स्नान करे तो वह वीर पुत्रकी जननी होगी और उसका पुत्र भी सौ वर्षकी आयुवाला, धनवान्, बुद्धिमान्, शूरवीर तथा पुत्र-पौत्रोंका विस्तार करनेवाला होगा । इस तीर्थमें पिण्ड आदि देनेसे पितरोंकी मुक्ति हो जायगी । कोई भी मनुष्य इसमें स्नान करनेसे मन, वाणी तथा शरीरजन्य पापसे मुक्त हो जायगा ।

अग्निदेवने कहा—जो लोग नियमपूर्वक रहते हुए दक्षिण-तटपर मेरे स्तोत्रका पाठ करेंगे, उन्हें मैं आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी तथा रूप प्रदान करूँगा । जो कोई मानव कहीं भी इस स्तोत्रका पाठ करेगा अथवा लिखकर भी इसे घरमें रख देगा, उसको तथा उसके घरको कभी भी अग्निसे भय न होगा । जो मनुष्य पवित्र होकर अग्नितीर्थमें स्नान और दान करेगा, उसे निश्चय ही अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलेगा ।

---

* आत्मार्थं यस्तु याचेत स शोच्यो हि सुरेश्वरौ ।
जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा ॥
अग्निरापो रविः पृथ्वी धान्यानि विविधानि च ।
परार्थं वर्तनं तेषां सतां चापि विशेषतः ॥
ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह ।
एवं ज्ञात्वा तु देवेशौ वृथा स्वार्थपरिश्रमः ॥
जन्मना सह यत्पुंसां विहितं परमेष्ठिना ।
कदाचिन्नान्यथा तद्वै वृथा क्लिश्यन्ति जन्तवः ॥
(१२५ । ३६–३९)

तबसे वह तीर्थ याम्यतीर्थ, आग्नेयतीर्थ, कपोततीर्थ, उलूकतीर्थ और हेत्युलूकतीर्थके नामसे विद्वानोंमें प्रसिद्ध हुआ। वहाँ तीन हजार तीन सौ नब्बे तीर्थ हैं और उनमेंसे प्रत्येक तीर्थ मोक्ष देनेवाला है। उन तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होते, पुत्र और धन पाते तथा अन्तमें स्वर्गलोकको जाते हैं।

तपस्तीर्थ, इन्द्रतीर्थ और वृषाकपि एवं अब्जक-तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—तपस्तीर्थ बहुत बड़ा तीर्थ है। वह तपस्याकी वृद्धि करनेवाला, समस्त अभिलषित वस्तुओंका दाता, पवित्र तथा पितरोंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। उस तीर्थमें जो पापनाशक घटना घटी है, उसे बतलाता हूँ; सुनो। ऋषियोंमें अग्नि और जलकी श्रेष्ठताको लेकर परस्पर संवाद हुआ। एक पक्ष कहता था, जल श्रेष्ठ है और दूसरे पक्षके लोग अग्निकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करते थे। अग्निकी श्रेष्ठता बतलानेवाले अपनी युक्तियाँ इस प्रकार उपस्थित करते थे—'अग्निके बिना जीवन कहाँ रह सकता है, क्योंकि अग्नि ही जीवरूप है। आत्मा और हविष्य भी वही है। अग्निसे ही समस्त जगत्‌की उत्पत्ति होती है। अग्निने समस्त विश्वको धारण कर रक्खा है। अग्नि ही ज्योतिर्मय जगत् है। अतः अग्निसे बढ़कर दूसरा कोई भी अत्यन्त पावन देवता नहीं है। अग्निको ही अन्तर्ज्योति तथा परमज्योति कहते हैं। अग्निके बिना कोई भी वस्तु नहीं है। यह त्रिलोकी अग्निका धाम है। इसलिये पाँचों भूतोंमें अग्निसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। नारीकी योनिमें पुरुष जो वीर्य स्थापित करता है और उसमें जो देह आदिके निर्माणकी शक्ति होती है, वह सब अग्निकी ही है। अग्नि देवताओंका मुख है; अतः उससे बड़ा कुछ भी नहीं है।'

दूसरे वेदवादी पुरुष जलको श्रेष्ठ मानते थे। उनका कहना था, 'जलसे ही अन्नकी उत्पत्ति होती है तथा जलसे ही मनुष्य शुद्ध होता है। जलने ही सबको धारण कर रक्खा है, अतः जलको माता माना गया है। पुराणवेत्ताओंका कथन है कि जल ही तीनों लोकोंका जीवन है। जलसे ही अमृत उत्पन्न हुआ है और जलसे ही ओषधियाँ होती हैं।' इस प्रकार एक पक्ष अग्निको श्रेष्ठ कहता था और दूसरा पक्ष जलको। यों ही मीमांसा करते हुए एक-दूसरेके विरुद्ध तर्क उपस्थित करनेवाले वेदवादी ऋषि मेरे पास आकर बोले—'भगवन्! आप तीनों लोकोंके प्रभु हैं। बतलाइये, अग्नि श्रेष्ठ है या जल?' मैंने कहा—'दोनों ही इस जगत्‌में परम पूजनीय हैं। दोनोंसे जगत् उत्पन्न होता है। दोनोंसे हव्य-कव्य और अमृतका प्राकट्य होता है। दोनोंसे ही जीवन है। दोनों ही शरीरको धारण करनेवाले हैं। इनमें परस्पर कोई विशेषता नहीं है। दोनों समानरूपसे ही श्रेष्ठ माने गये हैं।'

मेरे कथनसे यह बात सिद्ध हुई कि दोनों ही श्रेष्ठ हैं, कोई एक नहीं; परंतु वे ऋषि ऐसा ही मानते थे कि इन दोनोंमेंसे एक ही श्रेष्ठ है। अतः उन्हें मेरी बातोंसे संतोष नहीं हुआ। तब वे क्षीरसागरमें शयन करनेवाले शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुके पास गये और नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषि बोले—जो भविष्यमें होनेवाला है, जो जन्म ले चुका है तथा जो अभी गुहा (गर्भ) में प्रविष्ट हुआ है, उस सम्पूर्ण भुवनको जो सदा अपनी ज्ञानदृष्टिमें रखते हैं, यह चित्र-विचित्र रूपोंवाली समस्त त्रिलोकी अन्तमें जिनके भीतर लीन होती है, जिन्हें महर्षिगण अक्षर, सनातन, अप्रमेय तथा वेदवेद्य बतलाते हैं, जिनकी शरणमें गये हुए प्राणी अपने अभीष्ट पदार्थको प्राप्त कर लेते हैं, उन परमार्थ-वस्तुरूप परमेश्वरकी हम शरण लेते हैं। जगन्निवास! महाभूतमय जगत्‌में जो भूत सबसे प्रधान और श्रीविष्णुका स्वरूप है, जिसे योगी भी नहीं जान पाते, उसीका प्रतिपादन करनेके लिये ये महर्षिगण यहाँ आये हुए हैं। आप यहाँ सत्यको प्रकट कर दें। जगदीश्वर! आप सम्पूर्ण देहधारियोंके अन्तरात्मा हैं। आप ही सब कुछ हैं। आपमें ही यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है। तथापि कितने आश्चर्यकी बात है कि प्रकृतिसे प्रभावित होनेके कारण कोई कहीं भी आपकी सत्ताका अनुभव नहीं करते। वास्तवमें आप बाहर और भीतर सब ओर विद्यमान हैं। सम्पूर्ण विश्वके रूपमें आप ही सब ओर उपलब्ध हो रहे हैं।

ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगज्जननी दैवी वाक् (आकाशवाणी) ने कहा—'तुमलोग तपस्या, भक्ति और नियमके साथ दोनोंकी आराधना करो। जिसकी आराधनासे पहले सिद्धि प्राप्त हो, वही भूत सबसे श्रेष्ठ कहा जायगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर सम्पूर्ण लोकमान्य महर्षि वहाँसे चल

दिये। वे थक गये थे। उनका अन्तःकरण खिन्न हो रहा था। उन्होंने उत्तम वैराग्यका आश्रय लिया और तपस्या करनेका दृढ़ संकल्प लेकर वे सब लोग त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली जगज्जननी गौतमीके तटपर आये और जलदेवता तथा अग्निदेवताकी पृथक्-पृथक् पूजा करनेको उद्यत हुए। जो अग्निके पूजक थे, वे जलके पूजनमें प्रवृत्त हुए। उस समय वहाँ वेदमाता दैवी वाणी सरस्वतीने फिर कहा—'जलसे ही शुद्धि होती है। जो अग्निके पूजक हैं, वे विचार तो करें—बिना जलका पूजन कैसा। जल होनेपर ही मनुष्य सब कर्मोंके अनुष्ठानका अधिकारी होता है। वेदवेत्ता पुरुष जबतक शीतल जलमें श्रद्धापूर्वक स्नान नहीं कर लेता, तबतक अपवित्र, मलिन एवं शुभ कर्मका अनधिकारी रहता है। इसलिये जल सबसे श्रेष्ठ है। उसे माताकी पदवी दी गयी है। अतः जल ही श्रेष्ठ है।'

वेदवादी ऋषियोंने यह आकाशवाणी सुनी। इससे उन्हें निश्चय हो गया कि जल ही श्रेष्ठ है। जिस तीर्थमें यह ऋषिसत्र सम्पन्न हुआ, उसे तपस्तीर्थ और सत्रतीर्थ भी कहते हैं। अग्नितीर्थ और सारस्वत तीर्थ भी उसीके नाम हैं। वहाँ चौदह सौ पुण्यदायक तीर्थोंका निवास है। उनमें किया हुआ स्नान और दान स्वर्ग एवं मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है। जहाँ आकाशवाणीने ऋषियोंका संदेह निवारण किया था, वहाँ सरस्वती नामकी नदी प्रकट हुई, जो गङ्गामें मिली है। सरस्वती और गङ्गाके संगमका माहात्म्य बतलानेमें कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है।

गौतमी-तटपर इन्द्रतीर्थके नामसे जो प्रसिद्ध तीर्थ है, वही वृषाकपितीर्थ भी है। उसे ही फेना-संगम, हनुमत्तीर्थ तथा अब्जकतीर्थ भी कहते हैं। वहाँ भगवान् त्रिविक्रमका निवास है। उस तीर्थमें स्नान और दान करनेसे संसारमें लौटना नहीं पड़ता। अब वहाँका वृत्तान्त बतलाते हैं। गङ्गाके दक्षिण और उत्तर तटपर इन्द्रेश्वरतीर्थ है। पूर्वकालमें नमुचि नामक दैत्य देवराज इन्द्रका प्रबल शत्रु था। वह मदसे उन्मत्त रहता था। एक बार इन्द्रके साथ उसका युद्ध हुआ। इन्द्रने फेनसे उसका मस्तक काट डाला। वह वज्ररूपधारी फेन शत्रुका मस्तक काटनेके पश्चात् गङ्गाके दक्षिण-तटपर गिरा और पृथ्वीको छेदकर रसातलमें समा गया। रसातलमें जो गङ्गाजीका जल है, वह सम्पूर्ण विश्वको पवित्र करनेवाला है। वज्रने पृथ्वीको छेदकर जो मार्ग बना दिया था, उसी मार्गसे वह पातालगङ्गाका जल पृथ्वीके ऊपर निकल आया। उसीको फेना नदी कहते हैं। गङ्गाजीके साथ जो उसका पवित्र संगम हुआ है, वह सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात है। गङ्गा-यमुनाके संगमकी भाँति वह भी समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे हनुमान्‌जीकी उपमाता, जिनका मुख बिलावका-सा हो गया था, उस संकटसे मुक्त हुई थीं। उस तीर्थको मार्जारतीर्थ और हनुमत्तीर्थ भी कहते हैं। उनका उपाख्यान पहले कहा जा चुका है। अब वृषाकपि और अब्जकतीर्थकी कथा सुनो। हिरण्य नामसे विख्यात एक दैत्योंका पूर्वज था, वह तपस्या करके सम्पूर्ण देवताओंसे अजेय हो गया था। हिरण्य बड़ा भयंकर दैत्य था। उसका बलवान् पुत्र महाशनिके नामसे विख्यात था। वह भी देवताओंके लिये सदा दुर्जय था। उसकी स्त्रीका नाम पराजिता था। एक बार महापराक्रमी महाशनिने युद्धके मुहानेपर ऐरावतसहित इन्द्रको परास्त किया और उन्हें ले जाकर अपने पिताको सौंप दिया। इन्द्रपर विजय पानेके बाद महाशनिने वरुणको जीतनेके लिये उनपर आक्रमण किया; किंतु वरुण बड़े बुद्धिमान् थे, उन्होंने महाशनिको अपनी कन्या ब्याह दी। इधर तीनों लोक बिना इन्द्रके हो गये। तब सब देवताओंने मिलकर सलाह की कि 'भगवान् विष्णु ही पुनः इन्द्रको दे सकते हैं; क्योंकि वे ही दैत्योंके हन्ता हैं। मन्त्रद्रष्टा भी वे ही हैं। अतः वे दूसरेको भी इन्द्र बना देंगे।'

ऐसा निश्चय करके सब देवता भगवान् विष्णुके पास गये और उन्हें सब हाल कह सुनाया। भगवान् विष्णुने कहा—'महादैत्य महाशनि मेरे लिये अवध्य है।' यों कहकर वे महाशनिके श्वशुर वरुणके पास गये और उन्हें इन्द्रके पराभवका समाचार बतलाते हुए बोले—'तुम्हें ऐसा यत्न करना चाहिये, जिससे इन्द्र पुनः अपने पदपर लौट आयें।' भगवान् विष्णुके आदेशसे वरुण शीघ्र ही वहाँ गये। दैत्यने विनयपूर्वक अपने श्वशुरसे वहाँ पधारनेका कारण पूछा। वरुणने कहा—'महाबाहो! कुछ दिन पहले तुमने इन्द्रको परास्त करके रसातलमें बंदी बना लिया है। वे देवताओंके राजा हैं। उन्हें लौटा दो। यदि शत्रुको बाँधकर फिर छोड़ दिया जाय तो वह सत्पुरुषोंके लिये महान् यशका कारण होता है।' 'बहुत अच्छा' कहकर दैत्यराज महाशनिने ऐरावतसहित इन्द्रको लौटा दिया और उनसे यह बात कही—'इन्द्र! आजसे तुम शिष्य हुए और मेरे श्वशुर वरुणजी तुम्हारे गुरु

हुए; क्योंकि इन्होंने तुम्हें मुक्ति दिलायी है। अब तुम वरुणके प्रति स्वामिभाव रखकर स्वयं भृत्यका-सा बर्ताव करना, नहीं तो फिर तुम्हें बाँधकर रसातलके कारागृहमें डाल दूँगा।'

इस प्रकार इन्द्रको फटकारकर उसने बारंबार हँसते हुए कहा—'जाओ, जाओ; वरुणजीका सदा आदर करना।' इन्द्र अपने घर आये। वे अपमानपूर्ण लज्जासे काले पड़ गये थे। उन्होंने शत्रुद्वारा तिरस्कृत होनेकी सारी बातें इन्द्राणीको कह सुनायीं और पूछा—'सुमुखि! शत्रुने मुझसे इस तरह कठोर बातें कहीं और मेरे साथ ऐसा अनुचित बर्ताव किया। इससे मेरे हृदयमें आग लग रही है। तुम्हीं बताओ—कैसे अपने हृदयको शीतल करूँ?'

इन्द्राणीने कहा—बलसूदन! मैं दानवोंकी उत्पत्ति, पराजय, माया, वरदान तथा मृत्यु—सब जानती हूँ। महाशनिको तपस्यासे ही यह शक्ति प्राप्त हुई है। तपस्यासे कुछ भी असाध्य नहीं है। यज्ञ-कर्मसे कोई बात असम्भव नहीं है। जगन्नाथ भगवान् विष्णु तथा विश्वनाथ शिवकी भक्तिसे कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जो सिद्ध न हो सके।* प्राणनाथ! मैंने और भी एक बहुत सुन्दर बात सुन रक्खी है। कारण कि स्त्रियाँ ही स्त्रियोंके स्वभावको जानती हैं। प्रभो! भूमि तथा जलकी अधिष्ठात्री देवियोंके द्वारा कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। तपस्या अथवा यज्ञ आदि उन्हीं दोनोंके सहयोगसे होते हैं। उसमें भी जो तीर्थभूमि हो, वहीं आप चलें। उस स्थानपर भगवान् विष्णु तथा शिवकी पूजा करके सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त कर लेंगे। मैंने यह भी सुना है कि जो स्त्रियाँ पतिव्रता हैं, वे ही सब कुछ जानती हैं। उन्होंने ही चराचर जगत्‌को धारण कर रक्खा है।† पृथ्वीपर सबसे सारभूत स्थान है दण्डकवन। वहाँ जगज्जननी गङ्गा बहती हैं। वहीं चलकर आप दीन-दुखियोंकी पीड़ा दूर करनेवाले जगदीश्वर श्रीविष्णु अथवा शिवकी आराधना करें। दुःखके समुद्रमें डूबनेवाले अनाथ मनुष्योंको श्रीशिव तथा श्रीविष्णु अथवा गङ्गाके सिवा दूसरा कोई कहीं भी शरण देनेवाला नहीं है। अतः एकाग्रचित्त होकर पूर्ण प्रयत्न करके आप इनको संतुष्ट करें। मेरे साथ रहकर भक्ति, स्तोत्र तथा तपस्याके द्वारा इनकी आराधना करें। तत्पश्चात् भगवान् शिव और विष्णुके प्रसादसे आप कल्याणके भागी होंगे। बिना जाने किया हुआ कर्म कर्मनिष्ठ पुरुषको एकगुना फल देता है। उसके विधि-विधान और तत्त्वको अच्छी प्रकार जानकर करनेसे सौ-गुना फल मिलता है और पत्नीके साथ उसका अनुष्ठान करनेसे वही कर्म अनन्त फल देनेवाला होता है।* गृहस्थ पुरुषके सब कार्योंमें यहाँ पत्नी ही सहायता करनेवाली है। उसके सहयोग बिना छोटे-से-छोटे कार्य भी सिद्ध नहीं होते। नाथ! पुरुष अकेले जो कर्म करता है, उसका आधा फल ही उसे मिलता है। किंतु पत्नीके साथ जो कर्म किया जाता है, उसका पूरा फल पुरुषको प्राप्त होता है। सुना जाता है—दण्डकारण्यमें सरिताओंमें श्रेष्ठ गौतमी गङ्गा बहती हैं। वे समस्त पापोंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको देनेवाली हैं। अतः मेरे साथ वहाँ चलिये और महान् फलदायक पुण्यकर्मका अनुष्ठान कीजिये। इससे आप संग्राममें अपने शत्रुओंका संहार करके महान् सुखके भागी होंगे।

'अच्छा, ऐसा ही करूँगा' यों कहकर अपने गुरु बृहस्पति और पत्नी शचीको साथ ले इन्द्र जगज्जननी गौतमीके तटपर गये। दण्डकारण्यके भीतर उनकी पावन धाराका दर्शन करके इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने देवाधिदेव शिवकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करनेका विचार किया। पहले गङ्गामें स्नान करके उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा एकमात्र भगवान् शिवके शरण होकर उनका स्तवन आरम्भ किया।

इन्द्र बोले—जो अपनी मायासे सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं, किंतु उसमें आसक्त नहीं होते, जो एक, स्वतन्त्र तथा अद्वैत चिदानन्दस्वरूप हैं, वे पिनाकधारी भगवान् शंकर हमपर प्रसन्न हों। वेदान्तके रहस्योंको भलीभाँति जाननेवाले सनकादि मुनि भी जिनके तत्त्वको ठीक-ठीक नहीं जानते, वे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंके दाता अन्धकासुरविनाशक पार्वतीपति भगवान् शिव हमपर प्रसन्न हों। जब पाप, दरिद्रता, लोभ, याचना, मोह और विपत्ति आदि अनन्त सांसारिक दुःख प्रकट हुए, उनका प्रभाव फैलने लगा और उनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया, तब यह

---

* नासाध्यमस्ति तपसो नासाध्यं यज्ञकर्मणः।
नासाध्यं लोकनाथस्य विष्णोर्भक्त्या हरस्य च॥
(१२९। ५०)

† श्रुतमस्ति पुनश्चेदं स्त्रियो याश्च पतिव्रताः।
ता एव सर्वं जानन्ति धृतं ताभिश्चराचरम्॥
(१२९। ५४)

* अज्ञात्वैकगुणं कर्म फलं दास्यति कर्मिणः।
ज्ञात्वा शतगुणं तत्स्याद् भार्यया च तदक्षयम्॥
(१२९। ५९)

सब अवस्था देखकर देवेश्वर महादेवजी बड़े चकित हुए और देवी पार्वतीसे बोले—'लोकेश्वरि! यह सम्पूर्ण जगत् नष्ट होना चाहता है। तुम इसकी रक्षा करो। लोकमाता उमा! तुम सबको शरण देनेवाली, उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त, परम कल्याणमयी तथा सम्पूर्ण जगत्की प्रतिष्ठा हो। वरदायिनि! तुम्हारी जय हो। तुम भोग, समाधि, परम मुक्ति, स्वाहा, स्वधा, स्वस्ति, अनादि सिद्धि, वाणी, बुद्धि तथा अजर-अमर हो। मेरी आज्ञाके अनुसार तीनों लोकोंमें विद्या आदि रूपसे तुम रक्षा करती हो। तुमने ही प्रकृतिरूपसे इस विचित्र त्रिलोकीकी सृष्टि की है।' शंकरजीके यों कहनेपर उनकी प्राणवल्लभा भगवती उमा उनका आलिङ्गन करके प्रेमालाप करने लगीं और थककर भगवान्‌के आधे शरीरमें लग गयीं तथा अपने हाथकी अँगुलियोंसे पसीनेका जल पोंछकर फेंका। उस जलसे पहले धर्मका प्रादुर्भाव हुआ। उसके बाद लक्ष्मी प्रकट हुईं। फिर दान, उत्तम वृष्टि, सत्त्व, सरोवर, धान्य, पुष्प, फल, शस्त्र, शास्त्र, गृहोपयोगी अस्त्र, तीर्थ, वन तथा चराचर जगत्का आविर्भाव हुआ। देवि! यह सब पापरहित सृष्टि थी। भगवती उमा! तुम्हारे प्रभावसे संसारमें प्रचुर सुखकी वृद्धि हुई। सदा सब ओर मङ्गलमय कृत्य शोभा पाने लगे। जगदम्ब! तुम सम्पूर्ण जगत्की स्वामिनी हो और हम भयसे डरे हुए हैं। अतः तुम हमारी रक्षा करो। कोई तर्क करते-करते मोहित हो जाते हैं और कोई उसीमें लीन रहते हैं। परन्तु हम तो शिव और शक्तिके सुन्दर अद्वैत रूपको सर्वदा नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार स्तुति करनेवाले इन्द्रके समक्ष भगवान् शंकर प्रकट हुए और बोले—'देवराज! तुम क्या चाहते हो? अपना अभीष्ट मनोरथ कहो।' इन्द्रने कहा—'भगवन्! मेरा बलवान् शत्रु महाशनि, जो देखनेमें वज्रके समान भयंकर है, मुझे बाँधकर रसातल ले गया था। वहाँ उसने अनेक बार मेरा तिरस्कार किया और वचनरूपी बाणोंसे बींधता रहा। मेरा यह प्रयत्न उसीका वध करनेके लिये है। आप मुझे वह शक्ति प्रदान कीजिये, जिससे शत्रुका नाश कर सकूँ। जिसने मेरा अपमान किया है, उसका नाश करनेपर ही मैं अपना नया जन्म मानूँगा। विजय और लक्ष्मीकी अपेक्षा कीर्ति ही श्रेष्ठ है।' यह सुनकर शिवने इन्द्रसे कहा—'अकेले मेरे द्वारा तुम्हारे शत्रुका वध नहीं हो सकता। अतः तुम अविनाशी भगवान् जनार्दनकी भी आराधना करो। शची भी ऐसा ही करें। भगवान् नारायण तीनों लोकोंके एकमात्र आश्रय हैं। उनकी अनन्य चित्तसे उपासना करो।'

भगवान् शिवकी आज्ञासे इन्द्र गङ्गाजीके दक्षिण-तटपर मुनीश्वर आपस्तम्बके पास गये और उनको साथ लेकर फेना तथा गङ्गाके पवित्र संगमपर भाँति-भाँतिके वैदिक मन्त्रों एवं तपस्याके द्वारा भगवान् जनार्दनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुतिसे भगवान् विष्णुको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे प्रत्यक्ष प्रकट होकर बोले—'इन्द्र! तुम्हें क्या वरदान दूँ?' वे बोले—'मुझे एक ऐसा वीर दीजिये, जो मेरे शत्रुका वध कर सके।' भगवान्‌ने कहा—'दे दिया।' फिर तो शिव, गङ्गा तथा विष्णुके प्रसादसे जलके भीतरसे एक पुरुष प्रकट हुआ। उसने भगवान् शिव और विष्णु दोनोंके स्वरूप धारण किये थे। उसके हाथमें चक्र भी था और त्रिशूल भी। उसने रसातलमें जाकर इन्द्रशत्रु महाशनिका वध किया। उसका नाम अब्जक और वृषाकपि हुआ। वह इन्द्रका सखा बन गया। इन्द्र स्वर्गमें रहते हुए भी प्रतिदिन वृषाकपिके पास आते थे। उन्हें अन्यत्र आसक्त देख शचीके हृदयमें प्रणयकोपका उदय हुआ।

तब इन्द्रने हँसकर उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—'प्रिये! मैं अपने शरीरकी शपथ खाकर कहता हूँ—मित्रवर वृषाकपिके सिवा और किसीके घर नहीं जाता। अतः तुम्हें मुझपर संदेह नहीं करना चाहिये। तुम पतिव्रता और मेरी प्रियतमा हो। धर्म करने तथा उचित सलाह देनेमें मेरी सदा सहायता करती हो। साथ ही संतानवती और कुलीन भी हो। फिर तुम्हारे सिवा दूसरी कौन स्त्री मेरी प्रियतमा हो सकती है। तुम्हारे ही उपदेशसे मैं महानदी गौतमी गङ्गाके तटपर गया और वहाँ भगवान् विष्णु, शिव तथा मित्र वृषाकपिके प्रसादसे दुःखसागरके पार हुआ और अब यहाँ राज्यसे च्युत न होनेवाला इन्द्र हूँ। यह सब तुम्हारे सहयोगका फल है। जहाँ स्वामीके चित्तका अनुसरण करनेवाली पतिव्रता स्त्री हो, वहाँ कौन-सा कार्य असाध्य है। वहाँ तो मोक्ष भी दुर्लभ नहीं है। फिर अर्थ, काम आदिकी तो बात ही क्या है। पत्नी भी परम मित्र है। वह लोक और परलोक दोनोंमें हितकारिणी होती है। पत्नी भी यदि कुलीन, प्रिय बोलनेवाली, पतिव्रता, रूपवती, गुणवती तथा सम्पत्ति और विपत्तिमें समान रूपसे साथ देनेवाली हो तो उसके द्वारा इस त्रिलोकीमें कुछ भी असाध्य नहीं है। प्रिये! तुम्हारी बुद्धिसे ही मुझे यह मङ्गलमय अवसर प्राप्त हुआ है। अब तो तुम जो कहो, वही मुझे करना है; और

कुछ नहीं। परलोक और धर्मके लिये उत्तम पुत्रके समान कोई सहायक नहीं है। संकटमें पड़े हुए पुरुषके लिये स्त्रीके समान दूसरी कोई ओषधि नहीं है। निःश्रेयस-पदकी प्राप्ति तथा पापसे मुक्ति करानेके लिये गङ्गाके समान कोई नदी नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि तथा पापसे छुटकारा पानेके लिये श्रीशिव और श्रीविष्णुके एकत्व-ज्ञानसे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। पतिव्रते! तुम्हारी बुद्धिसे तथा श्रीशिव, श्रीविष्णु और गङ्गाके प्रसादसे मुझे यह सब अभीष्ट वस्तु प्राप्त हुई है। मैं समझता हूँ मेरे मित्रके बलसे अब यह इन्द्र-पद स्थिर रहेगा। तीर्थोंमें गौतमी गङ्गा और देवताओंमें भगवान् विष्णु और शिव श्रेष्ठ हैं। इन्हींकी कृपासे मुझे सब मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यह त्रिलोकविख्यात तीर्थ मेरी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। अतः मैं क्रमशः सम्पूर्ण देवताओंसे यह प्रार्थना करता हूँ; महर्षिगण, गङ्गा, विष्णु तथा शिव भी मेरी प्रार्थनाका अनुमोदन करें। देवताओ! गङ्गाके दोनों तटोंपर एक ओर इन्द्रेश्वरतीर्थ है और दूसरी ओर अब्जकतीर्थ। इन्द्रेश्वरमें भगवान् शिव रहते हैं और अब्जकमें साक्षात् भगवान् विष्णु। वे अपनी उपस्थितिसे दण्डक वनको पवित्र करते हैं। इनके बीचमें जो-जो तीर्थ हैं, वे सब पुण्यदायक हैं। उनमें स्नान करनेमात्रसे सबकी मुक्ति होती है। पापी पापसे मुक्त होते हैं और धर्मात्मा पुरुष अपनी पाँच-पाँच पीढ़ीके पितरोंसहित परममोक्षके भागी होते हैं। यहाँ आकर जो लोग याचकोंको तिलभर भी दान करते हैं, वह दान दाताओंके लिये अक्षय होता है तथा मनो-वाञ्छित भोग और मोक्ष प्रदान करता है। यहाँ भगवान् श्रीविष्णु और शिवके उपाख्यानको जानकर स्नान करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। यह उपाख्यान धन, यश, आयु, आरोग्य और पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है। जो लोग इस तीर्थके माहात्म्यको सुनते और पढ़ते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। उन्हें यहीं—इसी जीवनमें भगवान् विष्णु और शिवकी स्मृति प्राप्त होती है, जो समस्त पापराशिका संहार करनेवाली है तथा जिसके लिये जितेन्द्रिय एवं मनोजयी मुनि भी प्रार्थना करते रहते हैं।

इन्द्रके इस कथनका अनुमोदन करते हुए देवताओं और ऋषियोंने कहा, 'ऐसा ही होगा।'

आपस्तम्बतीर्थ, शुक्लतीर्थ और श्रीविष्णु-तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—आपस्तम्बतीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। वह स्मरण करनेमात्रसे समस्त पापराशिका विध्वंस करनेमें समर्थ है। आपस्तम्ब एक मुनि थे। वे परम बुद्धिमान् और महायशस्वी थे। उनकी पत्नीका नाम अक्ष-सूत्रा था, वह पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली थी। मुनिके एक पुत्र थे, जो 'कर्की' नामसे विख्यात थे। वे बड़े विद्वान् और तत्त्ववेत्ता थे। एक दिन उनके आश्रमपर मुनि-श्रेष्ठ अगस्त्य आये। शिष्योंसहित मुनीश्वर आपस्तम्बने अगस्त्यजीका पूजन किया और इस प्रकार पूछा—'मुनिवर! तीनों देवताओंमें कौन पूज्य है? अनादि और अनन्त कौन है? तथा वेदोंमें किसका यशोगान किया गया है? महामुने! यही मेरा संशय है, इसे दूर करनेके लिये आप कुछ उपदेश करें।'

अगस्त्यजी बोले—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिमें शब्द प्रमाण बतलाया जाता है। उसमें भी वैदिक शब्द सबसे श्रेष्ठ प्रमाण है। वेदके द्वारा जिनका यशोगान होता है, वे परात्पर पुरुष परमात्मा हैं। जो मृत्युके अधीन होता है, उसे अपर (क्षर पुरुष) जानना चाहिये और जो अमृत है, उसे पर (अक्षर पुरुष) कहते हैं। अमृतके भी दो स्वरूप हैं—मूर्त और अमूर्त। जो अमूर्त (निराकार) है, उसे परब्रह्म जानना चाहिये और मूर्तको अपर ब्रह्म कहते हैं। गुणोंकी व्यापकताके अनुसार मूर्तके भी तीन भेद हैं—ब्रह्मा, विष्णु और शिव। ये एक होते हुए भी तीन कहलाते हैं। इन तीनों देवताओंका भी वेद्यतत्त्व एक ही है। उसे ही परब्रह्म कहते हैं। गुण और कर्मके भेदसे एककी ही अनेक रूपोंमें अभिव्यक्ति होती है। लोकोंका उपकार करनेके लिये एक ही ब्रह्मके तीन रूप हो जाते हैं। जो इस परम तत्त्वको जानता है, वही विद्वान् है; दूसरा नहीं। जो इन तीनोंमें भेद बतलाता है, उसे लिङ्गभेदी कहते हैं। उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है।* तीनों देवताओंके रूप एक दूसरेसे भिन्न और पृथक्-पृथक् हैं। सम्पूर्ण साकार रूपोंमें पृथक्-पृथक् वेद प्रमाण हैं। जो

* लोकानामुपकारार्थमाकृतिस्त्रितयं भवेत्। यस्तत्त्वं वेत्ति परमं स च विद्वान्न चेतरः॥
तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदी स उच्यते। प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैषां व्याहरेद् भिदाम्॥ (१३०। ११-१३)

निराकार तत्त्व है, वह एक है। वह उन तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट माना गया है।

आपस्तम्ब बोले—इससे मैं किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सका। इसमें जो रहस्यकी बात हो, उसे विचारकर बतलाइये।

अगस्त्यने कहा—यद्यपि इन देवताओंमें परस्पर कोई भेद नहीं है, तथापि सुखस्वरूप शिवसे ही सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मुने! पराभक्तिके साथ भगवान् शिवकी ही आराधना करो। दण्डकारण्यमें गौतमीके तटपर भगवान् शिव समस्त पापराशिका निवारण करते हैं।

महर्षि अगस्त्यकी यह बात सुनकर आपस्तम्ब मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने गङ्गामें जाकर स्नान किया और व्रतपालनका नियम लेकर भगवान् शंकरका स्तवन करना आरम्भ किया।

आपस्तम्ब बोले—जो काष्ठोंमें अग्नि, फूलोंमें सुगन्ध, बीजोंमें वृक्ष आदि, पत्थरोंमें सुवर्ण तथा सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे छिपे रहते हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने खेल-खेलमें ही इस विश्वकी रचना की, जो तीनों लोकोंके भरण-पोषण करनेवाले तथा उसके रचयिता हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है और जो सत्-असत्से परे हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिनका स्मरण करनेसे देहधारी जीवको दरिद्रताके महान् अभिशाप और रोग आदि स्पर्श नहीं करते तथा जिनकी शरणमें गये हुए मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेते हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने पहले तीनों वेदोंमें वर्णित धर्मका साक्षात्कार करके उसमें ब्रह्मा आदि देवताओंको नियुक्त किया और इस प्रकार जिन्होंने दो शरीर धारण किये, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। नमस्कार, मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन किया हुआ हविष्य तथा श्रद्धापूर्वक किया हुआ पूजन—ये सब जिनको प्राप्त होते हैं तथा सम्पूर्ण देवता जिनकी दी हुई हविको ग्रहण करते हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिनसे बढ़कर दूसरी कोई उत्तम वस्तु नहीं है, जिनसे बढ़कर अत्यन्त सूक्ष्म भी कोई नहीं है तथा जिनसे बढ़कर महान्-से-महान् वस्तु भी दूसरी नहीं है, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिनकी आज्ञासे यह विचित्र, अचिन्त्य, नाना प्रकारका और महान् विश्व एक ही कार्यमें संलग्न हो निरन्तर परिचालित रहता है, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिनमें ऐश्वर्य, सबका आधिपत्य, कर्तृत्व, दातृत्व, महत्त्व, प्रीति, यश और सौख्य—ये अनादि धर्म हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जो सदा शरण लेने योग्य, सबके पूजनीय, शरणागतके प्रिय, नित्य कल्याणमय तथा सर्वस्वरूप हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर कहा—'मुने! कोई वर माँगो।' आपस्तम्बने कहा—'मेरा और दूसरोंका कल्याण हो। जो मनुष्य यहाँ स्नान करके सम्पूर्ण जगत्के स्वामी आपका दर्शन करें, वे अपनी समस्त अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त करें।' भगवान् शिवने 'एवमस्तु' कहकर इसका अनुमोदन किया। तबसे वह तीर्थ आपस्तम्बके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह अनादि अविद्यामय अन्धकार-राशिका उन्मूलन करनेमें समर्थ है।

शुक्लतीर्थ मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। उसके स्मरण मात्रसे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। भरद्वाज नामसे विख्यात एक बड़े धर्मात्मा मुनि थे। उनकी पत्नीका नाम पैठीनसी था। वह पातिव्रत धर्मका पालन करती हुई पतिके साथ गौतमीके तटपर निवास करती थी। एक बार मुनिने अग्नि और सोम देवताओंके लिये तथा इन्द्र और अग्नि देवताओंके लिये पुरोडाश (खीर) बनाया। पुरोडाश जब पक रहा था, तब धूँएसे एक पुरुष प्रकट हुआ,



जो तीनों लोकोंको भयभीत करनेवाला था। उसने पुरोडाश खा लिया। यह देखकर मुनिने क्रोधपूर्वक पूछा—'तू कौन है, जो मेरा यज्ञ नष्ट कर रहा है ?' ऋषिकी बात सुनकर राक्षसने उत्तर दिया—'मेरा नाम हव्यघ्न (यज्ञघ्न) है। मैं संध्याका पुत्र हूँ। प्राचीनबर्हिषुका ज्येष्ठ पुत्र मैं ही हूँ। ब्रह्माजीने मुझे वरदान दिया है कि तुम सुखपूर्वक यज्ञोंका भक्षण करो। मेरा छोटा भाई कलि भी बलवान् और अत्यन्त भीषण है। मैं काला, मेरे पिता काले, मेरी माँ काली तथा मेरा छोटा भाई भी काला ही है। मैं कृतान्त बनकर यज्ञका नाश और यूपका छेदन करूँगा।'

भरद्वाजने कहा—तुम मेरे यज्ञकी रक्षा करो, क्योंकि यह प्रिय एवं सनातन धर्म है। मैं जानता हूँ तुम यज्ञका नाश करनेवाले हो। तो भी मेरा अनुरोध है कि तुम ब्राह्मणों-सहित मेरे यज्ञकी रक्षा करो।

यज्ञघ्नने कहा—भरद्वाज ! तुम संक्षेपसे मेरी बात सुनो। पूर्वकालमें देवताओं और दानवोंके समीप ब्रह्माजीने मुझे शाप दिया। उस समय मैंने लोकपितामह ब्रह्माजीको प्रार्थना करके प्रसन्न किया। तब उन्होंने कहा—'जब श्रेष्ठ मुनि तुम्हारे ऊपर अमृतका छींटा दें, तब तुम शापसे मुक्त हो जाओगे। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।' ब्रह्मन् ! जब आप ऐसा करेंगे, तब आपकी जो-जो इच्छा होगी, वह सब पूर्ण होगी। यह बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती।

भरद्वाजने फिर कहा—महामते ! तुम मेरे सखा हो। अतः जिस उपायसे यज्ञकी रक्षा हो, वह बताओ। मैं उसे अवश्य करूँगा। देवताओं और दैत्योंने एकत्रित होकर कभी क्षीरसमुद्रका मन्थन किया था। उस समय बड़े कष्टसे उन्हें अमृत मिला। वही अमृत मुझे कैसे सुलभ हो सकता है। यदि तुम प्रेमवश प्रसन्न हो तो जो सुलभ वस्तु हो, वही माँगो। ऋषिकी यह बात सुनकर राक्षसने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'गौतमी गङ्गाका जल अमृत है। सुवर्ण अमृत कहलाता है। गायका घी भी अमृत है और सोमको भी अमृत ही माना जाता है। इन सबके द्वारा मेरा अभिषेक करो। अथवा गङ्गाका जल, घी और सुवर्ण—इन तीनों वस्तुओंसे ही अभिषेक करो। सबसे उत्कृष्ट एवं दिव्य अमृत है—गौतमी गङ्गाका जल।'

यह सुनकर भरद्वाज मुनिको बड़ा संतोष हुआ। उन्होंने बड़े आदरके साथ गङ्गाका अमृतमय जल हाथमें लिया और उससे राक्षसका अभिषेक किया। इससे वह महाबली राक्षस शुक्ल वर्णका होकर प्रकट हुआ। जो पहले काला था, वह क्षण-भरमें गोरा हो गया। प्रतापी भरद्वाजने सम्पूर्ण यज्ञ समाप्त



करके ऋत्विजोंको विदा किया। इसके बाद राक्षसने पुनः भरद्वाजसे कहा—'मुने ! अब मैं जाता हूँ। तुमने मुझे गौर वर्णका कर दिया। तुम्हारे इस तीर्थमें जो लोग स्नान, दान और पूजन आदि करें, उन सबके अभीष्ट फलोंकी सिद्धि हो। इसके स्मरण मात्रसे सब पाप नष्ट हो जायँ।' तबसे वह शुक्ल-तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। दण्डकारण्यमें गौतमी गङ्गाके तटपर वह तीर्थ स्वर्गका खुला हुआ दरवाजा है। वहाँ गङ्गाजीके दोनों तटोंपर सात हजार तीर्थ हैं, जो सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

श्रीविष्णुतीर्थके नामसे जो विख्यात तीर्थ है, उसका वृत्तान्त सुनो। मुद्गलके पुत्र मौद्गल्य एक प्रसिद्ध महर्षि थे। उनकी पत्नीका नाम जाबाला था। वह उत्तम पुत्रोंकी जननी थी। मौद्गल्यके पिता मुद्गल ऋषि भी सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे। उनकी पत्नी भागीरथीके नामसे प्रसिद्ध थी। मौद्गल्य ऋषि प्रातःकाल ही गङ्गा-स्नान करते थे। यह उनका नित्यका कार्य था। गङ्गाके तटपर कुश, मिट्टी और शमीके फूलोंसे वे प्रतिदिन भगवान्‌का पूजन करते थे। गुरुके बताये हुए मार्गसे अपने हृदयकमलके भीतर वे प्रतिदिन भगवान् विष्णुका आवाहन करते थे। उनके आवाहन करते ही शङ्ख, चक्र

और गदा धारण करनेवाले लक्ष्मीपति जगन्नाथ गरुड़पर आरूढ़ हो तुरंत वहाँ आते थे। फिर मौद्गल्य ऋषिके द्वारा यत्नपूर्वक पूजित होनेपर वे कुछ कालतक उन्हें विचित्र-विचित्र कथाएँ सुनाया करते थे। कथा-वार्तामें जब तीसरे पहरका समय हो जाता, तब भगवान् विष्णु उनसे बार-बार कहते—'बेटा! अब अपने घर जाओ, तुम बहुत थक गये होगे।' इस प्रकार भगवान्‌के आग्रह करनेपर वे घर लौटते थे। उनके जानेपर भगवान् देवताओंके साथ अपने धामको लौटते थे। मौद्गल्य भी प्रतिदिन कुछ लेकर अपने घर आते और पत्नीको अपना उपार्जित धन देते थे। मौद्गल्यकी पत्नी जाबाला बड़ी पतिव्रता थी। उसके स्वामी शाक, फल अथवा मूल—जो कुछ भी ला देते, उसे ही लेकर वह उसका संस्कार करती और पहले अतिथियों, बालकों तथा अपने पतिको परोसती थी। इन सबको भोजन देकर वह पीछे स्वयं अन्न ग्रहण करती। जब सब लोग भोजन कर लेते, तब मौद्गल्य मुनि प्रतिदिन रातमें प्रसन्नतापूर्वक श्रीविष्णुके मुखसे सुनी हुई कथाएँ सबको सुनाते थे। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेके बाद मौद्गल्य मुनिने पत्नी, पुत्र, भाई, बन्धु और माता-पिताके साथ उत्तम भोग भोगे और अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त कर लिया। तबसे वह तीर्थ मौद्गल्यतीर्थ और श्रीविष्णु-तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँका स्नान और दान भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। यदि किसी तरह उस तीर्थके नामका श्रवण अथवा उसका स्मरण ही हो जाय तो भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं और वह मनुष्य पापोंसे मुक्त होकर सुखी हो जाता है। वहाँ गौतमीके दोनों तटोंपर ग्यारह हजार तीर्थ हैं, जो स्नान, दान और जप आदि करनेसे सब पदार्थ देनेवाले हैं।

लक्ष्मीतीर्थ और भानुतीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! विष्णुतीर्थके बाद लक्ष्मी-तीर्थ है, जो लक्ष्मीकी वृद्धि और दरिद्रताका नाश करनेवाला है। उसका पवित्र इतिहास बतलाता हूँ, सुनो। पूर्वकालकी बात है—लक्ष्मी और दरिद्रा देवीमें संवाद हुआ। वे दोनों एक दूसरीका विरोध करती हुई संसारमें आयीं। तीनों लोकोंमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जहाँ ये व्याप्त न हों। दोनों ही कहने लगीं—मैं बड़ी हूँ, मैं बड़ी हूँ। लक्ष्मीने युक्ति दी—'देहधारियोंका कुल, शील और जीवन मैं ही हूँ। मेरे बिना वे जीते हुए भी मृतकके समान हैं।' दरिद्राने भी तर्क उपस्थित किया—'मैं ही सबसे बड़ी हूँ। क्योंकि मुक्ति सदा मेरे ही अधीन है। जहाँ मैं हूँ, वहाँ काम, क्रोध, मद, लोभ और मात्सर्य—ये दोष कभी नहीं रहते। भय, उन्माद, ईर्ष्या और उद्दण्डताका भी अभाव रहता है।' दरिद्राकी बात सुनकर लक्ष्मीने प्रतिवाद किया—"मुझसे अलंकृत होनेपर सभी प्राणी सम्मानित होते हैं। निर्धन मनुष्य शिवके ही तुल्य क्यों न हो, सबके द्वारा तिरस्कृत होता रहता है। 'मुझे कुछ दीजिये' यह वाक्य मुँहसे निकालते ही बुद्धि, श्री, लज्जा, शान्ति और कीर्ति—ये शरीरके पाँच देवता तुरंत निकलकर चल देते हैं। गुण और गौरव तभी-तक टिके रहते हैं, जबतक मनुष्य दूसरोंके सामने हाथ नहीं फैलाता। जब पुरुष याचक बन गया, तब कहाँ गुण और कहाँ गौरव। जीव तभीतक सबसे उत्तम, समस्त गुणोंका भंडार और सब लोगोंका वन्दनीय रहता है, जबतक वह दूसरेसे याचना नहीं करता। प्राणियोंके लिये निर्धनता सबसे बड़ा कष्ट और पाप है। क्योंकि निर्धन मनुष्य-को न तो कोई आदर देता, न उससे बात करता और न उसका स्पर्श ही करता है।* अतः दरिद्रे! मैं ही श्रेष्ठ हूँ। तू मेरी बात कान खोलकर सुन ले।"

---

* देहीति वचनद्वारा देहस्थाः पञ्च देवताः। सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धीश्रीह्रीशान्तिकीर्तयः॥
तावद् गुणा गुरुत्वं च यावन्नार्थयते परम्। अर्थी चेत् पुरुषो जातः क्व गुणाः क्व च गौरवम्॥
तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालयः। नमस्यः सर्वलोकानां यावन्नार्थयते परम्॥
कष्टमेतन्महत्पापं निर्धनत्वं शरीरिणाम्। न मानयति नो वक्ति न स्पृशत्यधनं जनः॥
(१३७। १०–१३)

लक्ष्मीका यह दर्पयुक्त वचन सुनकर दरिद्रा बोली—'लक्ष्मी! मैं बड़ी हूँ—यह बारंबार कहते तुझे लज्जा नहीं आती? तू श्रेष्ठ पुरुषोंको छोड़कर सदा पापियोंमें ही रमती रहती है। जो तेरा विश्वास करता है, उसके साथ तू वञ्चना करती है। फिर बड़ी-बड़ी डींगें कैसे हाँक रही है। तेरे मिलनेपर मनुष्यको जैसा भारी पश्चात्ताप सहना पड़ता है, वैसा उसे सुख नहीं मिलता। मदिरा पीनेसे भी पुरुषको वैसा भयंकर नशा नहीं होता, जैसा तेरे समीप रहनेमात्रसे विद्वानोंको भी हो जाता है। लक्ष्मी! तू सदा प्रायः पापियोंके साथ ही क्रीड़ा करती है। मैं योग्य और धर्मशील पुरुषोंमें सदा निवास करती हूँ। भगवान् शिव और श्रीविष्णुके भक्त, कृतज्ञ, महात्मा, सदाचारी, शान्त, गुरुसेवा-परायण, साधु, विद्वान्, शूरवीर तथा पवित्र बुद्धिवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें मेरा निवास है। अतः श्रेष्ठता तो सदा मुझमें ही है। तेजस्वी ब्राह्मण, व्रतपरायण संन्यासी तथा निर्भय मनुष्योंके साथ मैं रहा करती हूँ। किंतु तू कहाँ रहती है—यह भी सुन ले। पापपरायण राजकर्मचारी, निष्ठुर, खल, चुगलखोर, लोभी, विकृताङ्ग, शठ, अनार्य, कृतघ्न, धर्मघाती, मित्रद्रोही, अनिष्टकारी तथा हृदयहीन मनुष्योंमें ही तेरा निवास है।'

इस तरह विवाद करती हुई वे दोनों मेरे पास आयीं। मैंने उनकी बातें सुनीं और इस प्रकार कहा—'पृथ्वी तथा आप (जल)—ये दोनों देवियाँ मुझसे ही प्रकट हुई हैं। स्त्री होनेके कारण वे ही स्त्रीके विवादको समझ सकती हैं, और कोई नहीं। उनमें भी जो कमण्डलुसे प्रकट होनेवाली नदियाँ हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उन सरिताओंमें भी गौतमी देवी तो सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः वे ही तुम्हारे विवादका निर्णय करेंगी। वे ही सबकी पीड़ाओंको हरनेवाली तथा सबके संदेहका निवारण करनेवाली हैं।' मेरे कहनेसे वे दोनों पृथ्वी और जलके पास गयीं और उन सबको साथ ले गौतमी देवीके समीप पहुँचीं। भूदेवी और आपोदेवीने गौतमीसे लक्ष्मी और दरिद्राका विवाद स्पष्टरूपसे कह सुनाया। उन दोनोंके विवादको समस्त लोकपाल, पृथ्वी और जल—ये मध्यस्थकी भाँति सुन रहे थे।

उस समय गङ्गाने दरिद्रासे कहा—'ब्रह्मश्री, तपःश्री, यज्ञश्री, कीर्ति, धनश्री, यशःश्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती, भोगश्री, मुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, जल, पृथ्वी, अहंशक्ति, ओषधि, श्रुति, शुद्धि, रात्रि, द्युलोक, ज्योत्स्ना, आशीः, स्वस्ति, व्याप्ति,



माया, उषा, शिवा आदि जो कुछ भी संसारमें विद्यमान है, वह सब लक्ष्मीके द्वारा व्याप्त है। ब्राह्मण, धीर, क्षमावान्, साधु, विद्वान्, भोगपरायण तथा मोक्षपरायण पुरुषोंमें जो-जो रमणीय अथवा सुन्दर है, वह सब लक्ष्मीका ही विस्तार है। अधिक सुननेसे क्या लाभ—समस्त जगत् लक्ष्मीमय ही है। जिस किसी व्यक्तिमें जो कुछ भी उत्कृष्ट वस्तु दिखायी देती है, वह सब लक्ष्मीमय है। लक्ष्मीसे शून्य कोई वस्तु नहीं है। दरिद्रे! क्या तू इन सुन्दरी लक्ष्मी देवीके साथ स्पर्द्धा करती हुई लज्जित नहीं होती? जा, चली जा यहाँसे।'

तबसे गङ्गाका जल दरिद्राका शत्रु हो गया। तभीतक दरिद्रताका कष्ट उठाना पड़ता है, जबतक गङ्गाजीका सेवन न किया जाय। तबसे लक्ष्मीतीर्थ अलक्ष्मीनाशक हो गया। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य लक्ष्मीवान् तथा पुण्यवान् होता है। महामते! वहाँ देवताओं तथा ऋषि-मुनियोंद्वारा सेवित छः हजार तीर्थ हैं, जो सब-के-सब सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

तदनन्तर विख्यात भानुतीर्थ है, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। वहाँका वृत्तान्त महापातकोंका नाश करनेवाला है। उसे बतलाता हूँ, सुनो। शर्याति नामसे विख्यात एक परम धर्मात्मा राजा थे। उनकी स्त्रीका

नाम स्थविष्ठा था । रानी इस भूतलपर अप्रतिम सुन्दरी थी । संयमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रकुमार ब्रह्मर्षि मधुच्छन्दा राजा शर्यातिके पुरोहित थे । एक समयकी बात है— वीरवर राजा शर्याति अपने पुरोहितको साथ ले दिग्विजयके लिये निकले । सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पाकर लौटते समय राजाने मार्गमें सेनाका पड़ाव डाला । उस समय उन्होंने अपने पुरोहितको उदास देखकर पूछा—'विप्रवर ! आप खिन्न क्यों हैं ? मैंने पृथ्वीको जीता और बड़े-बड़े राजाओंपर विजय पायी, यह तो महान् हर्षका अवसर है । ऐसे समयमें आप दुखी क्यों हैं ? सच-सच बताइये ।' तब मधुच्छन्दाने राजाको सम्बोधित करके कहा—'राजन् ! जब एक पहर दिन रहेगा, तब हमलोग यात्रा करेंगे । इसीमें रात आधी बीत जायगी । उधर इस शरीरकी स्वामिनी मेरी प्रियतमा कामके वशीभूत होकर मेरी राह देखती है । उसका स्मरण करके मेरा शरीर सूखा जाता है । कामजनित विकार उत्पन्न होनेपर वह कमलके समान मुखवाली सुन्दरी जीवित तो मिलेगी न ?'

यह सुनकर राजा हँस पड़े और पुरोहितसे बोले— 'ब्रह्मन् ! आप मेरे गुरु और मित्र हैं । फिर अपने-आपको क्यों विडम्बनामें डाल रहे हैं । संसारका सुख तो क्षणभङ्गुर है । उसमें आप-जैसे महात्माओंकी आस्था कैसी ।' मधुच्छन्दा बोले—'राजन् ! जहाँ पति-पत्नी दोनों एक दूसरेके अनुकूल रहते हैं, वहीं धर्म, अर्थ और कामकी वृद्धि होती है । अतः अपनी पत्नीके प्रति यह अनुराग दूषण नहीं, भूषण ही मानना चाहिये ।'

तदनन्तर राजा विशाल सेनाके साथ अपने देशमें आये । उन्होंने पत्नीके प्रेमकी परीक्षा करनेके लिये नगरमें यह संदेश भेज दिया—'राजा शर्याति दिग्विजयके लिये गये थे । वहाँ एक राक्षस पुरोहितसहित राजाको मारकर रसातलमें चला गया ।' दूतके मुखसे यह संदेश सुनकर रानी इसकी सत्यताका पता लगाने लगीं, किंतु मधुच्छन्दाकी पत्नीने तुरंत प्राण त्याग दिये । यह एक अद्भुत बात हो गयी । दूतोंने उसकी मृत्युका हाल महाराजसे जाकर कहा । साथ ही रानियोंकी चेष्टा भी बतायी । इससे राजाको बड़ा विस्मय और दुःख हुआ; उन्होंने दूतोंसे कहा— 'तुमलोग जाकर ब्राह्मणीके शरीरकी रक्षा करो और नगरमें यह बात फैला दो कि राजा अपने पुरोहितके साथ राजधानीमें आ रहे हैं ।'

यों कहकर राजा चिन्तामें व्याकुल हो उठे । इसी समय आकाशवाणी हुई—'राजन् ! इस पृथ्वीपर गौतमी गङ्गा सब प्रकारके संकटोंकी शान्ति करनेवाली तथा पावन हैं, वे आपका सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करेंगी ।' आकाशवाणी सुनकर शर्याति गौतमीके तटपर गये । उन्होंने ब्राह्मणोंको धन दिया, पितरों और द्विजोंको तृप्त किया और अपने पुरोहितको धनके साथ यह कहकर भेजा—'आप अन्य तीर्थोंमें जाकर धन-दान करें ।' राजाका यह सब कार्य पुरोहित नहीं जानते थे । उनके चले जानेपर राजाने सेनाको भी भेज दिया और स्वयं अकेले ही गङ्गातटपर रह गये । उन्होंने गङ्गा, सूर्य तथा देवताओंको सुनाकर कहा—'यदि मैंने दान, होम और प्रजा-पालन किया हो तो इस सत्यके प्रभावसे वह पतिव्रता ब्राह्मणी मेरी आयु लेकर जीवित हो जाय ।' यों कहकर राजा अग्निमें प्रवेश कर गये । उसी समय पुरोहितकी पत्नी जीवित हो गयी ।



राजगुरु मधुच्छन्दाको जब यह बात मालूम हुई कि 'राजा अग्निमें प्रवेश कर गये, मेरी पतिव्रता पत्नी मरकर फिर जी उठी और उसीके लिये महाराजने अपने जीवनका परित्याग किया है,' तब उनका ध्यान अपने कर्तव्यकी ओर गया । उन्होंने सोचा, 'मैं भी अग्निमें प्रवेश करके अपने प्रिय मित्रके पास जाऊँ अथवा यहीं रहकर

तपस्या करूँ ?' अन्तमें वे इस निश्चयपर पहुँचे कि 'मेरा कर्तव्य तथा पुण्यकार्य यही है कि पहले राजाको जीवित करूँ, उसके बाद प्रियाके पास जाऊँ ।' यह विचारकर उन्होंने सूर्यदेवका स्तवन किया; क्योंकि उनके सिवा दूसरा कोई सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला नहीं है ।

मधुच्छन्दा बोले—मुक्तिस्वरूप, अमित तेजस्वी भगवान् सूर्यको नमस्कार है । ओंकारके अर्थभूत छन्दोमय देवको नमस्कार है । जो विरूप, सुरूप, त्रिगुण, त्रिमूर्ति, सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तथा सबके प्रभु हैं, उन भगवान् सूर्यको नमस्कार है ।

इस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने कहा—'कोई वर माँगो ।' मधुच्छन्दा बोले—'देवेश्वर ! राजाका जीवन-दान दीजिये । प्रिय वचन बोलनेवाली मेरी पत्नीको भी जीवित रखिये और मुझे तथा राजाके लिये भी उत्तम पुत्र प्रदान कीजिये ।' जगदीश्वर भगवान् सूर्यने रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित राजा शर्यातिको जीवित करके दे दिया, ब्राह्मणकी पत्नीको भी जिलाया तथा और भी श्रेष्ठ एवं कल्याणमय वर प्रदान किये । तदनन्तर राजा प्रसन्न हो पुरोहितके साथ प्रियजनोंसे घिरे हुए सुखपूर्वक अपने देशको गये । उस स्थानपर तीन हजार गुणवान् तीर्थोंका निवास है । मुने ! उसी समयसे उस स्थानका नाम भानु-तीर्थ, मृतसंजीवनतीर्थ, शार्याततीर्थ और माधुच्छन्दसतीर्थ हो गया । वह स्मरण मात्रसे पापोंको दूर भगाता है । उन तीर्थोंमें किया हुआ स्नान और दान सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाला है ।

खड्गतीर्थ और आत्रेयतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—गौतमीके उत्तर-तटपर खड्गतीर्थ है, जहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है । नारद ! मैं वहाँका वृत्तान्त बतलाता । पैलूष नामसे विख्यात एक ब्राह्मण थे, जो कवषके पुत्र थे । वे कुटुम्बके भारसे विवश हो धनके लिये इधर-उधर दौड़ा करते थे, किंतु उन्हें कहींसे भी कुछ नहीं मिलता था । दैव तो अत्यन्त विमुख था ही, पुरुषार्थ भी निष्फल हो गया । इससे पैलूषको बड़ा वैराग्य हुआ । वे सोचने लगे, 'यह तृष्णा मुझे बलपूर्वक पापकी ओर खींचती है । तृष्णे ! तूने मेरे अज्ञानवश बड़ा अपकार किया है, किंतु अब तुझे दूरसे ही नमस्कार है ।' यह सोचकर बुद्धिमान् पैलूषने मन-ही-मन विचार किया—'इस तृष्णाका नाश करनेके लिये क्या होना चाहिये ?' फिर उन्होंने अपने पिता कवषसे पूछा—'तात ! मैं ज्ञानरूपी खड्गसे क्रोध और लोभका तथा अत्यन्त दुस्तर संसारका कैसे छेदन करूँ ? इसका उपाय बतलाइये ।'

कवषने कहा—वैदिक श्रुतिका कथन है कि ईश्वरसे ज्ञानकी इच्छा करे; अतः तुम महादेवजीकी आराधना करो । उससे तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा ।

'बहुत अच्छा' कहकर पैलूषने ज्ञान-प्राप्तिके उद्देश्यसे महेश्वरकी अर्चना की । इससे संतुष्ट होकर उन्होंने ब्राह्मणको ज्ञान प्रदान किया । ज्ञान प्राप्त होनेपर परम बुद्धिमान् कवषने इस प्रकार मुक्तिदायिनी गाथाका गान किया—'मनुष्यका पहला शत्रु है क्रोध । उसका फल तो कुछ भी नहीं है, उलटे वह शरीरका नाश करता है; अतः ज्ञानरूपी खड्गसे उसका नाश करके परम आनन्दको प्राप्त करे । नाना प्रकारकी तृष्णा बन्धनमें डालनेवाली माया है, वह पाप कराती है; अतः ज्ञानरूपी खड्गसे उसका नाश कर देनेपर मनुष्य सुखसे रहता है ।* आसक्ति देवता आदिके लिये भी बहुत बड़ा अधर्म है । आत्मा असङ्ग है, उसकेलिये भी आसक्ति महान् शत्रु है । ज्ञानरूपी खड्गसे इस आसक्तिका नाश करके शिव-सायुज्य प्राप्त करे । संशय महानाशका कारण है । वह धर्म और अर्थका भी विनाश करनेवाला है । उस संशयका नाश करके जीव अपने परम अभीष्टकी सिद्धि कर सकता है । आशा पिशाचीकी भाँति चित्तमें प्रवेश करती है और सम्पूर्ण सुखोंको भस्म कर डालती है । पूर्ण अहंता (अपरिच्छिन्न आत्मबोध) रूपी खड्गसे उसका नाश करके जीवन्मुक्ति प्राप्त करनी चाहिये ।'

तदनन्तर पैलूष ज्ञान प्राप्त करके गङ्गा-तटपर रहने लगे । ज्ञानरूपी खड्गसे उनका मोह नष्ट हो गया था, अतः

* क्रोधस्तु प्रथमं शत्रुर्निष्फलो देहनाशनः ।
ज्ञानखड्गेन तं छित्त्वा परमं सुखमाप्नुयात् ॥
तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी ।
छित्त्वैतां ज्ञानखड्गेन सुखं तिष्ठति मानवः ॥
(१३९ । १३-१४)

उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया। तबसे वह स्थान खड्गतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। ज्ञानतीर्थ, कवषतीर्थ, पैलूषतीर्थ और सर्वकामद तीर्थ आदि छः हजार तीर्थ वहाँ वास करते हैं, जो पापराशिके नाशक और अभीष्ट वस्तुओंके दाता हैं।

उसके बाद आत्रेयतीर्थ है। उसीको अन्विन्द्र-तीर्थ भी कहते हैं। वह बहुत ही उत्तम है। वह खोये हुए राज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। उसका माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो। एक बार गौतमीके उत्तर-तटपर आत्रेय ऋषिने अनेकों ऋत्विज मुनियोंके साथ सत्र आरम्भ किया। उसमें हव्यवाहन अग्नि ही होता थे। इस प्रकार सत्र पूरा होनेपर महर्षिने माहेश्वरी इष्टिका अनुष्ठान किया। इससे अणिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई तथा उनमें सर्वत्र आने-जानेकी शक्ति हो गयी। वे परम मनोहर इन्द्रभवन, स्वर्गलोक तथा रसातलमें अपनी तपस्याके प्रभावसे आने-जाने लगे। एक समय वे इन्द्रलोकमें गये। वहाँ उन्होंने देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रको देखा, जो अप्सराओंका उत्तम नृत्य देख रहे थे। सिद्ध और साध्यगण उनकी स्तुति कर रहे थे। वह सब



देखकर पुनः अपने आश्रमपर लौट आये। कहाँ पवित्र गुणोंवाले रत्नोंसे भरी हुई अत्यन्त रमणीय इन्द्रपुरी और कहाँ श्रीहीन, सुवर्णरहित अपना आश्रम! यह देखकर ब्राह्मणको अपने आश्रमसे वैराग्य-सा हो गया। उनके मनमें शीघ्र ही देवताओंका राज्य प्राप्त करनेकी अभिलाषा हुई। तब उन्होंने अपनी प्रियासे कहा—'देवि! अब मैं उत्तम-से-उत्तम फल-मूल भी, चाहे वे कितने ही अच्छे ढंगसे क्यों न बने हों, नहीं खा सकता। मुझे तो स्वर्गलोकके अमृत, परम पवित्र भक्ष्य-भोज्य, श्रेष्ठ आसन, स्तुति, दान, सुन्दर सभा, अस्त्र-शस्त्र, मनोहर वस्त्र, अमरावतीपुरी और नन्दनवनकी याद आती है।' यों कहकर महात्मा आत्रेयने तपस्याके प्रभावसे विश्वकर्माको बुलाया और इस प्रकार कहा—'महात्मन्! मैं इन्द्रका पद चाहता हूँ। आप शीघ्र ही यहाँ इन्द्रपुरीका निर्माण कीजिये। इसके विपरीत यदि आपने कोई बात मुँहसे निकाली तो मैं निश्चय ही आपको भस्म कर डालूँगा।'

आत्रेयके यों कहनेपर प्रजापति विश्वकर्माने तत्काल ही वहाँ मेरुपर्वत, देवपुरी, कल्पवृक्ष, कल्पलता, कामधेनु, वज्र आदि मणियोंसे विभूषित, सुन्दर तथा अत्यन्त चित्रकारी किये हुए गृह बनाये। इतना ही नहीं, उन्होंने सर्वाङ्गसुन्दरी शचीकी भी आकृति बनायी, जो कामदेवकी विहारशाला-सी प्रतीत होती थी। क्षणभरमें सुधर्मा सभा, मनोहारिणी अप्सराएँ, उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत हाथी, वज्र आदि अस्त्र और सम्पूर्ण देवताओंका निर्माण हो गया। अपनी पत्नीके मना करनेपर भी आत्रेयने शचीके समान रूपवाली उस स्त्रीको अपनी भार्या बना लिया। वज्र आदि अस्त्रोंको भी धारण किया। नृत्य और संगीत आदि सब कुछ वहाँ उसी तरहसे होने लगा, जिस प्रकार वह इन्द्रपुरीमें देखा गया था। स्वर्गलोकका सम्पूर्ण सुख पाकर मुनिवर आत्रेयका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। आपात-रमणीय विषयोंकी भी भला, किस पुरुषको अपेक्षा नहीं होती। दैत्यों और दानवोंने जब स्वर्गका वैभव पृथ्वीपर उतरा हुआ सुना, तब उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे परस्पर कहने लगे—'क्या कारण है कि इन्द्र स्वर्गलोकको छोड़कर पृथ्वीपर सुख भोगनेके लिये आया है? हमलोग अभी वृत्रासुरका वध करनेवाले उस इन्द्रसे युद्ध करनेके लिये चलें।' ऐसा निश्चय करके असुरोंने वहाँ आकर महर्षि आत्रेयको और उनके द्वारा निर्मित इन्द्रपुरीको भी घेर लिया। फिर तो उनपर बड़े-बड़े शस्त्रोंकी मार पड़ने लगी। इससे भयभीत होकर आत्रेयने कहा—'मैं इन्द्र नहीं हूँ। मेरी यह भार्या भी शची नहीं है। न तो यह इन्द्रपुरी है और न यहाँ इन्द्रका नन्दनवन है। वृत्रहन्ता, वज्रधारी और सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र तो स्वर्गमें ही हैं। मैं तो वेदवेत्ता ब्राह्मण हूँ और ब्राह्मणोंके साथ ही गौतमीके तटपर निवास करता हूँ। दुर्दैवकी प्रेरणासे मैंने यह कर्म कर डाला, जो

न तो वर्तमान कालमें सुख देनेवाला है और न भविष्यमें ही।'

असुर बोले—मुनिश्रेष्ठ आत्रेय! यह इन्द्रका अनुकरण छोड़कर यहाँका सारा वैभव समेट लो, तभी तुम कुशलसे रह सकते हो; अन्यथा नहीं।

तब आत्रेयने कहा—'मैं अग्निकी शपथ खाकर सच-सच कहता हूँ—आपलोग जैसा कहेंगे, वैसा ही करूँगा।' दैत्योंसे यों कहकर वे पुनः विश्वकर्मासे बोले—'प्रजापते! आपने मेरी प्रसन्नताके लिये जो इन्द्रपदका निर्माण किया था, इसका फिर उपसंहार कर लीजिये और ऐसा करके मुझ ब्राह्मण मुनिकी शीघ्र रक्षा कीजिये। मुझे फिर अपना वही आश्रम लौटा दीजिये, जहाँ मृग, पक्षी, वृक्ष और जल हैं। मुझे इन दिव्य भोगोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। शास्त्रीय मर्यादाका उल्लङ्घन करके प्राप्त की हुई कोई भी वस्तु सुखद नहीं होती।'

'बहुत अच्छा' कहकर प्रजापतिने उस इन्द्रपुरीके वैभवको समेट लिया। उस देशको निष्कण्टक बनाकर दैत्य फिर अपने स्थानको चले गये। विश्वकर्मा भी हँसते-हँसते अपने धामको पधारे। आत्रेय भी अपने शिष्यों और पत्नीके साथ गौतमी-तटपर रहते हुए तपस्यामें संलग्न हो गये। उनका जो यज्ञ चल रहा था, उसमें उन्होंने लज्जित होकर कहा—'अहो! मोहकी कैसी महिमा है कि मेरे चित्तमें भी भ्रान्ति आ गयी। यह क्या मैंने महेन्द्र-पद पाया और क्या-क्या उसके लिये किया।'



इस प्रकार लज्जित हुए आत्रेयसे देवताओंने कहा—'महाबाहो! लज्जा छोड़ो। इससे तुम्हारी बड़ी ख्याति होगी। जो लोग इस आत्रेयतीर्थमें स्नान करेंगे, वे भविष्यमें इन्द्र होंगे और इसके स्मरणसे उन्हें सुखकी प्राप्ति होगी।' यों कहकर देवता चले गये और आत्रेय मुनि भी बहुत संतुष्ट हुए।

परुष्णीतीर्थ, नारसिंहतीर्थ, पैशाचनाशन तीर्थ, निम्नभेद तीर्थ और शङ्खह्रद तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—परुष्णी नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसके पापनाशक स्वरूपका वर्णन करता हूँ, सुनो। एक बार महर्षि अत्रिने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीकी आराधना की। उन तीनोंके संतुष्ट होनेपर महर्षिने कहा—'आपलोग मेरे पुत्र हों। साथ ही मेरे एक परम सुन्दरी कन्या भी हो।' इस वरदानके अनुसार वे तीनों देवता उनके पुत्र हुए। महर्षिने जो कन्या उत्पन्न की, उसका नाम आत्रेयी हुआ। अत्रिके तीनों पुत्र क्रमशः दत्त, सोम और दुर्वासाके नामसे प्रसिद्ध हुए। अग्निसे अङ्गिराकी उत्पत्ति हुई थी। अङ्गारसे उत्पन्न होनेके कारण ही उन्हें अङ्गिरा कहते हैं। महर्षि अत्रिने अङ्गिरासे ही अपनी तेजस्वी कन्या आत्रेयीको ब्याह दिया। अङ्गिरामें अग्निकी तीव्रताका प्रभाव था। अतः वे आत्रेयीसे सदा परुष (कठोर) भाषण किया करते थे। आत्रेयी भी सदा पतिकी सेवामें संलग्न रहती थी। आत्रेयीके गर्भसे महान् बलवान् और पराक्रमी आङ्गिरस नामक पुत्र हुए। अङ्गिरा आत्रेयीको प्रतिदिन कटु वचन सुनाते और आङ्गिरस नामवाले पुत्र सदा अपने पिताको शान्त किया करते थे। एक दिन आत्रेयी पतिके कठोर वाक्यसे उद्विग्न हो उठीं और दीन भावसे हाथ जोड़कर अपने श्वशुर अग्निदेवसे बोलीं—'भगवन् हव्यवाह! मैं अत्रिकी कन्या और आपके पुत्रकी पत्नी हूँ, पुत्रों और पतिकी सेवामें सदा संलग्न रहती हूँ; तो भी पतिदेव मुझे कटु वचन सुनाते और व्यर्थ ही रोषपूर्ण दृष्टिसे देखा करते हैं। सुरश्रेष्ठ! आप मेरे पति-देवताको समझा दें।'

अग्नि बोले—कल्याणी! तुम्हारे पति अङ्गिरा ऋषि अङ्गारसे प्रकट हुए हैं। वे जिस प्रकार शान्त हो सकें, वैसी नीति बर्तनी

चाहिये। तुम्हारे पति अङ्गिरा जब अग्निमें प्रवेश करें, तब तुम मेरी आज्ञासे जलरूप होकर उन्हें बहा ले जाना।

आत्रेयीने कहा—भगवन्! मैं उनकी कठोर बातें सह लूँगी, किंतु मेरे स्वामी अग्निमें प्रवेश न करें। जो स्त्रियाँ अपने स्वामीसे प्रतिकूल चलती हैं, उनके जीवनसे क्या लाभ। मैं तो इतना ही चाहती थी कि वे शान्तिमय वचन बोलें।

अग्नि बोले—जलमें, शरीरमें तथा स्थावर-जङ्गमरूप जगत्में सर्वत्र मेरा निवास है। मैं तुम्हारे पतिका नित्य आश्रय हूँ, क्योंकि मैं ही उनका जनक हूँ। जो मैं हूँ, वही वे भी हैं। यह जानकर तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। एक बात और है—जलको तो तुम माता समझो और अग्निको श्वशुर। इस बातका अपनी बुद्धिसे भलीभाँति निश्चय करके तुम विषाद न करो।

आत्रेयीने कहा—भगवन्! आप जलको माता कहते हैं और मैं आपके पुत्रकी पत्नी हूँ। जननी होकर फिर पत्नी कैसे रह सकूँगी, जलका रूप धारण करनेसे यह विरोध सामने आता है।

अग्नि बोले—स्त्री पहले तो पत्नी होती है। फिर स्वामीका भरण-पोषण करनेसे भार्या बनती है। पुत्रका जन्म देनेपर उसे जाया कहते हैं। इसी प्रकार अपने गुणोंके कारण वह कलत्र कहलाती है। भद्रे! तुम भी यही रूप धारण करती हो। अतः मेरी आज्ञाका पालन करो। जो एक बार पत्नीके गर्भमें आकर पुत्ररूपसे उत्पन्न हो चुका, वह वास्तवमें उसका पुत्र ही है और वह स्त्री भी जननी ही है। अतः वैदिक तत्त्वके विद्वान् कहते हैं कि पुत्र उत्पन्न हो जानेपर नारी पत्नी नहीं रह जाती।

श्वशुरके मुखसे यह वचन सुनकर आत्रेयीने अग्निरूपमें आये हुए अपने पतिको जलसे आप्लावित कर दिया। फिर वे दोनों पति-पत्नी गङ्गाजीके जलसे जा मिले। उस समय दोनोंके स्वरूप शान्त थे। जैसे लक्ष्मीके साथ श्रीविष्णु, उमाके साथ शंकर तथा रोहिणीके साथ चन्द्रमा हैं, उसी प्रकार वे दोनों शोभा पाने लगे। पतिको आप्लावित करती हुई आत्रेयीने जलमय शरीर धारण किया था, अतः वह परुष्णी नदीके नामसे विख्यात हुई और गङ्गामें जा मिली। उसमें स्नान करनेसे सौ गोदानोंका पुण्य प्राप्त होता है। आङ्गिरस नामवाले पुत्रोंने गङ्गा और परुष्णीके संगमपर बहुत-से यज्ञ किये। वहाँ स्नान-दान आदिमें जो पुण्य होता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

गङ्गाके उत्तर-तटपर नारसिंह नामक विख्यात तीर्थ है, जो सबकी रक्षा करनेवाला है। उसके प्रभावका वर्णन करता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें हिरण्यकशिपु नामक दैत्य हुआ था, जो बलवानोंमें श्रेष्ठ था। तपस्या और पराक्रमकी दृष्टिसे भी वह बहुत बढ़ा हुआ था। देवता भी उसे परास्त नहीं कर पाते थे। उसका पुत्र भगवानका भक्त हुआ। उसके साथ द्वेष करनेके कारण हिरण्यकशिपुका अन्तःकरण मलिन हो गया था। उस समय भगवान् अपनी विश्वरूपताका परिचय देते हुए सभामण्डपके खंभेसे नरसिंहरूपमें प्रकट हुए और उस दैत्यका वध करके उन्होंने उसकी सेनाको भी मार भगाया। क्रमशः युद्धमें समस्त दैत्योंका संहार करके रसातलके शत्रुओंपर विजय पायी। उसके बाद वे स्वर्गलोकमें गये। वहाँ रहनेवाले दैत्योंको परास्त करके वे पुनः पृथ्वीपर आये। यहाँ पर्वत, समुद्र, नदी, ग्राम और वनोंमें नाना रूप धारण करके जो दैत्य निवास करते थे, उन सबका भगवान् नृसिंहने संहार कर डाला। आकाश, वायु तथा ज्योतिर्मय लोकमें पहुँचे हुए दैत्योंको भी जीवित नहीं छोड़ा। उनके नख वज्रपातसे भी कठोर थे। गर्दन और मुखपर बड़े-बड़े बाल थे। उनकी गर्जना सुनकर दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर जाते थे। उन्होंने समस्त राक्षसोंको परास्त किया। भयंकर सिंहनाद, प्रलयाग्निके समान दृष्टि, थप्पड़ और शरीरके धक्केसे समस्त असुरोंको चूर्ण कर डाला।

इस प्रकार अनेक दैत्योंका संहार करके नरसिंहजी गौतमीके तटपर गये, जो उन्हींके चरणकमलोंसे निकली हुई और मन तथा नेत्रोंको आनन्द देनेवाली थी। वहाँ दण्डकारण्यका स्वामी आम्बर्य नामक दैत्य रहता था, जो देवताओंके लिये भी दुर्जय था। उसके साथ बहुत बड़ी सेना थी। भगवान् नृसिंहका उस दैत्यके साथ अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। श्रीहरिने गोदावरीके उत्तर-तटपर अपने शत्रुका संहार कर डाला। वह स्थान तीनों लोकोंमें नारसिंहतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ किया



हुआ स्नान-दान आदि पुण्यकार्य समस्त पापरूपी ग्रहोंका शमन, वृद्धावस्था और मृत्युका निवारण तथा सबकी रक्षा करनेवाला है। जैसे सम्पूर्ण देवताओंमें कोई भी भगवान् विष्णुके समान नहीं है, उसी प्रकार समस्त तीर्थोंमें नारसिंहतीर्थ अनुपम और सर्वोत्तम है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य भगवान् नृसिंहका पूजन करे तो उसे स्वर्ग, मर्त्यलोक और पातालका भी कोई सुख दुर्लभ नहीं रहता। बिना श्रद्धा भी जिनका नाम लेनेपर समस्त पापोंका संहार हो जाता है, वे साक्षात् भगवान् नरसिंह ही जहाँ विराजमान हैं, उस तीर्थके सेवनसे प्राप्त होनेवाले फलका कौन वर्णन कर सकता है। जैसे नृसिंहजीसे बड़ा कहीं कोई देवता नहीं है, उसी प्रकार नृसिंहतीर्थके समान कहीं कोई तीर्थ नहीं है।

गङ्गाके उत्तर-तटपर पैशाचनाशन तीर्थ विख्यात है। नारद! वहाँ पूर्वकालमें एक ब्राह्मण पिशाच-योनिसे मुक्त हुआ था। सुयज्ञके पुत्र अजीगर्ति एक विख्यात ब्राह्मण थे। एक समय अकाल पड़नेपर कुटुम्ब-पालनके भारसे दुखी एवं पीड़ित होकर उन्होंने अपने मझले पुत्र शुनःशेपको वधके लिये क्षत्रियके हाथ बेच दिया। उसके बदलेमें अजीगर्तिको बहुत धन मिला था। शुनःशेप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ था। ऐसे पुत्रको भी अजीगर्तिने धनके लोभसे बेच डाला। आपत्तिमें पड़नेपर विद्वान् पुरुष भी कौन-सा पाप नहीं कर डालता। समय आनेपर अजीगर्तिकी मृत्यु हुई और वे नरकमें डाले गये। क्योंकि इस लोकमें पूर्वजन्मके किये हुए पापोंका भोगके बिना क्षय नहीं होता। अनेक पाप-योनियोंमें पड़नेके पश्चात् अजीगर्ति भयंकर आकारवाले पिशाच हुए। उन्हें निर्जल और निर्जन वनमें सूखे काठपर रहना पड़ता था। गर्मीमें जहाँ दावानल फैल जाता, वहीं यमराजके दूत उस प्रेतको डाल देते थे। कन्या, पुत्र, पृथ्वी, अश्व तथा गौओंका विक्रय करनेवाले मनुष्य महाप्रलय-कालतक नरकसे छुटकारा नहीं पाते।* अपने किये हुए पापोंके फलस्वरूप भयंकर यमदूतोंद्वारा नरकमें पकाये जानेपर वह प्रेत जोर-जोरसे रोने लगा।

एक दिन अजीगर्तिका मझला पुत्र शुनःशेप मार्गमें कहीं जा रहा था। उसने रोते हुए पिशाचकी कातर वाणी सुनी और पूछा—'आप कौन हैं, जो अत्यन्त दुखी होकर रोते हैं?' अजीगर्तिने बड़े दुःखसे कहा—'मैं शुनःशेपका



पिता हूँ। भारी पापकर्म करके भयानक प्रेतयोनिमें पड़ा हूँ

* कन्यापुत्रमहीवाजिगवां विक्रयकारिणः।
नरकान्न निवर्तन्ते यावदाभूतसंप्लवम्॥

पहले तो बारंबार नरकोंमें यातनाएँ सहता रहा और अब प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ हूँ। जो-जो पापकर्म करनेवाले हैं, उन सबकी यही गति होती है।' यह सुनकर अजीगर्तिके पुत्रको बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा—'पिताजी! मैं ही आपका पुत्र शुनःशेप हूँ। हाय, मेरे दोषसे आपकी यह दशा हुई! मुझे बेचनेके कारण आपको इस प्रकार नरकोंमें आना पड़ा है। अब मैं आपको स्वर्गमें पहुँचाऊँगा।' ऐसी प्रतिज्ञा करके उसने गङ्गाजीका चिन्तन किया और पिताको उत्तम लोक प्राप्त करानेकी चेष्टामें संलग्न हो वहाँसे चल दिया। उसने सोचा—'जो सम्पूर्ण दुःखरूपी अग्निसे संतप्त हैं और मोहके महासागरमें डूब रहे हैं, उन देहधारियोंके लिये गङ्गाजीको छोड़कर तीनों लोकोंमें दूसरा कोई सहारा नहीं है। ऐसा निश्चय करके पिताका दुर्गतिसे उद्धार करनेकी कामना लेकर शुनःशेप पवित्र भावसे गौतमीके तटपर गया और वहाँ स्नान करके भगवान् विष्णु और शिवका स्मरण करते हुए उसने प्रेतरूपी दुखी पिताको जल दिया। जलाञ्जलि देते ही अजीगर्तिने पवित्र होकर परम पुण्यमय दिव्य शरीर धारण कर लिया और विमानपर बैठकर देवसमुदायसे सेवित वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया। गङ्गा, भगवान् विष्णु, शिव और ब्रह्माजीके प्रभावसे अजीगर्ति हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी रूप धारण करके वैकुण्ठधाममें रहने लगे। तबसे वह स्थान पैशाचनाशन तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके स्मरणमात्रसे मनुष्योंके बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे इस तीर्थका माहात्म्य सुनाया। यहाँ और भी तीन सौ तीर्थ हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

निम्नभेद नामक तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है। वह गङ्गाके उत्तर-तटपर है। उसकी प्रसिद्धि तीनों लोकोंमें है। उसके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका क्षय हो जाता है। वहीं वेदद्वीप है। उसके दर्शनसे मनुष्य वेदोंका विद्वान् होता है। एक समयकी बात है—परम धर्मात्मा राजा पुरूरवाने उर्वशी नामक अप्सराकी कामना की। मादक नेत्रोंवाली कामिनीको देखकर कौन पुरुष मोहमें नहीं पड़ता। उर्वशी राजाके स्थानपर गयी। उसने राजासे यह शर्त की कि मैं जबतक आपको नग्न न देखूँ, तभीतक आपके पास रह सकती हूँ। उसके रहनेकी यह अवधि स्वीकार करके राजाने उस रमणीया अप्सराको ग्रहण किया। एक दिन जब वह पलंगपर सोयी हुई थी, राजा पुरूरवा उठे। उसी समय उन्हें नग्न देखकर उर्वशी वहाँसे चली गयी। उसके जानेसे राजाको बड़ा दुःख हुआ। उनका अग्निहोत्र और भोजन छूट गया। वे न किसीकी बात सुनते थे और न किसीकी ओर देखते थे। मृतककी-सी अवस्थामें पड़े रहते थे। उस समय पुरोहितने युक्तियुक्त वचनोंद्वारा उन्हें समझाया—'राजन्! तुम तो बुद्धिमान् हो; क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि इन स्त्रियोंका हृदय भेड़ियोंकी तरह कठोर होता है। तुम शोक न करो। महाराज! इस संसारमें कौन ऐसा पुरुष है, जो कामिनियोंसे ठगा न गया हो। वञ्चना, क्रूरता, चञ्चलता और दुश्चरित्रता—ये जिन स्त्रियोंके स्वाभाविक दुर्गुण हैं, वे सुखदायिनी कैसे हो सकती हैं। कालने किसको नहीं मारा। याचक होनेपर किसको गौरव प्राप्त हुआ। धन-सम्पत्तिसे किसका मन भ्रान्त नहीं हुआ और युवती स्त्रियोंने किसको धोखा नहीं दिया।* राजन्! जिनका हृदय मदसे उन्मत्त रहता है, वे युवतियाँ स्वप्न और मायाके समान मिथ्या हैं। वे किसको सुख दे सकती हैं। यह जानकर तुम निश्चिन्त हो जाओ। महामते! भगवान् शंकर, विष्णु तथा गोदावरी नदीको छोड़कर तीनों लोकोंमें दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो दुखियोंको शरण दे सके।'

पुरोहितका यह कथन सुनकर राजाने यत्नपूर्वक अपने दुःखको दूर किया। वे गोदावरीके मध्यभागमें (जहाँ रेत थी) रहकर भगवान् शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गङ्गा तथा अन्यान्य देवताओंकी आराधना करने लगे। जो विपत्तिमें पड़नेपर तीर्थों और देवताओंका सेवन नहीं करता, वह कालके वशमें पड़ा हुआ जीव किस दशाको प्राप्त होगा। राजा पुरूरवा एकमात्र भगवान्के शरण हो उत्सुकतापूर्वक गौतमीका सेवन करने लगे। संसारकी ओरसे उनका मन हट गया और भगवान्के भजनमें उनकी बड़ी श्रद्धा हो गयी। उन्होंने ऋत्विजोंको साथ लेकर बहुत दक्षिणावाले अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। तबसे वह स्थान वेदद्वीप और यज्ञद्वीप कहलाने लगा। वहाँ सदा ही पूर्णिमाकी रातमें उर्वशी आया

---

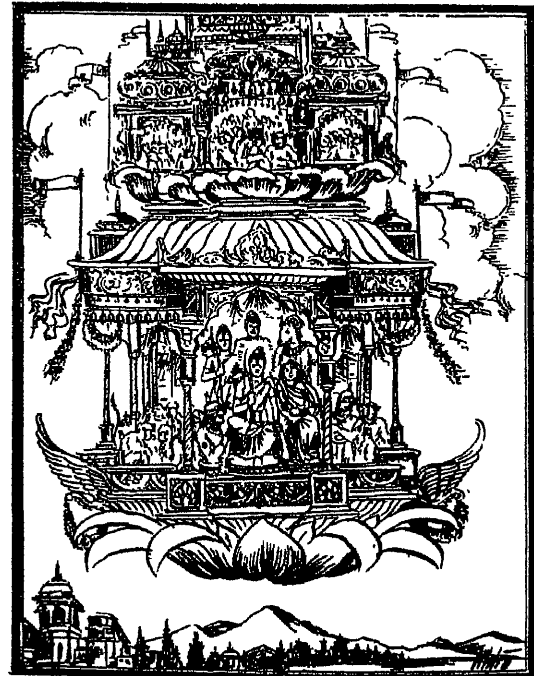
* को नाम लोके राजेन्द्र कामिनीभिर्न वञ्चितः।
वञ्चकत्वं नृशंसत्वं चञ्चलत्वं कुशीलता॥
इति स्वाभाविकं यासां ताः कथं सुखहेतवः।
कालेन को न निहतः कोऽर्थी गौरवमागतः॥
श्रिया न भ्रामितः को वा योषिद्भिः को न खण्डितः।
(१५१। १३—१५)

करती है। जो मनुष्य उस द्वीपकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा समुद्रसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। जो पुण्यात्मा वहाँ वेदों और यज्ञोंका स्मरण करता है, उसे वेदोंके स्वाध्याय और यज्ञोंके अनुष्ठानका फल मिलता है। उसको ऐलतीर्थ जानना चाहिये। वही पुरूरवस्-तीर्थ है। उसे ही वासिष्ठतीर्थ और निम्नभेदतीर्थ भी कहते हैं। राजा पुरूरवाके किसी भी कार्यमें कुछ भी निम्नता (न्यूनता) नहीं होती थी। एक ही कार्य उनसे निम्नश्रेणीका हुआ, यह कि वे सर्वथा उर्वशीमें आसक्त हो गये थे; परंतु गौतमी गङ्गा और महर्षि वसिष्ठने उनके इस निम्नत्वका भी भेदन कर दिया, इसलिये वह तीर्थ निम्नभेदके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकारके अभीष्टकी सिद्धि देनेवाला है। जो निम्नभेद तीर्थमें स्नान करके इन देवताओंका दर्शन करता है, उसके इस लोक और परलोकमें कुछ भी निम्न नहीं होता। वह सब प्रकारसे उन्नतिको प्राप्त हो स्वर्गमें इन्द्रकी भाँति सुख भोगता है।

उसके आगे शङ्खह्रद नामक तीर्थ है। वहाँ शङ्ख और गदा धारण करनेवाले भगवान् निवास करते हैं। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। वहाँका इतिहास बतलाता हूँ, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। पूर्वकालमें सत्ययुगके आरम्भमें ब्रह्माण्डके भीतर अनेक रूपधारी राक्षस उत्पन्न हुए, जो सामवेदका गान करनेवाले थे। वे बलोन्मत्त राक्षस हाथमें आयुध धारण किये मुझे खा जानेके निमित्त आये। उस समय मैंने अपनी रक्षाके लिये जगद्गुरु भगवान् विष्णुको पुकारा। उन्होंने अपने चक्रसे राक्षसोंका संहार करके पातालको निष्कण्टक और स्वर्गको शत्रुशून्य बना दिया। फिर उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर शङ्ख बजाया, जिससे समस्त राक्षस नष्ट हो गये। श्रीविष्णुके शङ्खके प्रभावसे जिस स्थानपर यह घटना हुई, वह शङ्खतीर्थ कहलाया, जो मनुष्योंके लिये सब प्रकारसे कल्याणकारक, समस्त अभीष्ट वस्तुओंका दाता, स्मरणमात्रसे मङ्गलदायक, आयु और आरोग्यका जनक तथा लक्ष्मी और पुत्रकी वृद्धि करनेवाला है। उसके माहात्म्यके स्मरण अथवा पाठमात्रसे मनुष्य समस्त अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है।

किष्किन्धातीर्थ और व्यासतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—किष्किन्धातीर्थ बहुत विख्यात है। वह मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और समस्त पापोंको शान्त करनेवाला है। वहाँ भगवान् शंकर निवास करते हैं। नारद! उस तीर्थके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, भक्तिपूर्वक सुनो। पूर्वकालमें दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने किष्किन्धानिवासी वानरोंको साथ लेकर जब समस्त लोकोंको रुलानेवाले रावणको युद्धमें सेना और पुत्रोंसहित मार डाला, तब सीताको पुनः प्राप्त करके अपने भाई लक्ष्मण, महाबली वानर, बलवान् विभीषण और देवताओंके साथ वे स्वस्तिवाचनपूर्वक पुष्पक विमानसे अयोध्याकी ओर लौटे। पुष्पक विमान कुबेरका था। वह शीघ्रगामी और इच्छानुसार चलनेवाला था। भगवान् राम शत्रुओंका संहार करनेवाले और शरणार्थी पुरुषोंको शरण देनेवाले थे। उन्होंने विमानसे अयोध्या लौटते समय मार्गमें लोकपावनी गौतमी गङ्गाको देखा, जो समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली तथा मन और नेत्रोंके संतापका निवारण करनेवाली हैं। गङ्गाजीका दर्शन करके महाराज श्रीराम उनके तटपर उतरे



और हनुमान् आदि सम्पूर्ण वानरोंको सम्बोधित करके हर्ष-गद्गद वाणीमें कहने लगे—'ये गौतमी गङ्गा सम्पूर्ण जीवोंकी जननी हैं। ये भोग तो देती ही हैं, मोक्ष भी दे सकती हैं। भयंकर पापोंका भी संहार कर डालती हैं। इनकी समानता करनेवाली दूसरी कौन नदी है, जिन्हें महर्षि गौतमने सबको शरण देनेवाले भगवान् शंकरकी आराधना करके जटासहित प्राप्त किया था। ये सम्पूर्ण अभिलषित फलोंकी जननी और अमङ्गलोंका नाश करनेवाली हैं। ये समस्त संसारको पवित्र करनेमें समर्थ हैं। समस्त सरिताओंकी जननी गङ्गाका आज प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। मैं मन, वाणी और शरीरद्वारा सदा ही इन शरणागत-वत्सला गङ्गाकी शरण लेता हूँ।'

भगवान् श्रीरामका यह वचन सुनकर समस्त वानरोंने गङ्गाजीमें डुबकी लगायी और सम्पूर्ण लौकिक उपहारों तथा अनेक प्रकारके पुष्पोंद्वारा उनकी विधिवत् पूजा की। महाराज श्रीरामचन्द्रजीने श्रीमहादेवजीका यथावत् पूजन करके सर्व-भावोपयुक्त वाक्योंद्वारा स्तवन किया। सम्पूर्ण वानरोंने भी प्रसन्न होकर नृत्य और गान किया। भगवान् श्रीरामने अपनी प्रिया जानकी तथा प्रेमी वानरोंके साथ सुखपूर्वक वह रात व्यतीत की। सबेरे उठकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक गोदावरी देवीकी स्तुति करने लगे। फिर अपने भृत्यगणोंका सम्मान करके वे वहाँ अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव करने लगे। उस निर्मल प्रभातमें सूर्योदय होनेपर विभीषणने दशरथ-नन्दन श्रीरामसे कहा—'भगवन्! हमलोग इस तीर्थमें रहनेसे अभी तृप्त नहीं हुए। अतः कुछ समय और निवास करें। मेरा विचार है, चार रात और यहाँ ठहरें। फिर सब लोग साथ ही अयोध्या चलेंगे।' विभीषणकी बातका वानरोंने भी अनुमोदन किया। फिर भगवान् शिवकी पूजा करते हुए चार रात और ठहरे। वहाँ महादेवजी सिद्धेश्वरके नामसे प्रसिद्ध थे और उन्हींके प्रभावसे रावण अत्यन्त प्रबल हो गया था। इस प्रकार सब लोग अपने द्वारा स्थापित किये हुए शिवलिङ्गकी पूजा करते हुए पाँच दिनों-तक वहाँ ठहरे रहे। श्रीरामने अपने सम्पूर्ण सहायकोंके साथ शुद्धातिशुद्ध हृदयसे सम्पूर्ण शिवलिङ्गोंको मस्तक झुकाया। किष्किन्धानिवासी सभी वानरोंद्वारा सेवित होनेके कारण वह स्थान किष्किन्धातीर्थ कहलाया। वहाँ स्नान करने मात्रसे बड़े-बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं। भगवान्ने गौतमी गङ्गाको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—'माता गौतमी! मुझपर प्रसन्न होओ।' इस तरह बारंबार कहकर वे विस्मित चित्तसे गोदावरीको देखते और उन्हें प्रणाम करते जाते थे। तबसे विद्वान् पुरुष उस पुण्यमय तीर्थको किष्किन्धातीर्थ कहने लगे। जो इस प्रसङ्गका पाठ, स्मरण अथवा भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके पापको भी यह तीर्थ हर लेता है। फिर जो लोग वहाँ स्नान और दान करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है।

उसके बाद व्यासतीर्थ और प्राचेतसतीर्थ हैं। उनका माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो। मेरे दस मानस पुत्र हुए, जो जगत्की सृष्टि करनेवाले थे। वे पृथ्वीका अन्त कहाँ है—इस बातका पता लगानेके लिये चले गये। तब मैंने पुनः अन्य पुत्रोंको उत्पन्न किया, किंतु वे भी अपने भाइयोंकी खोज करनेके लिये चले गये। जो पहलेके गये थे, वे तो गये ही थे; ये भी लौटकर नहीं आये। उस समय परम बुद्धिमान् दिव्य आङ्गिरस नामक मुनि उत्पन्न हुए, जो वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्वको जाननेवाले और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रवीण थे। वे अङ्गिराकी आज्ञासे पिताको नमस्कार करके तपस्याके लिये उद्यत हुए। गुरुजनोंमें गौरवकी दृष्टिसे माताका स्थान सबसे ऊँचा है, तो भी मातासे बिना पूछे ही आङ्गिरसोंने तपस्या करनेका निश्चय कर लिया। इससे कुपित होकर माताने अपने पुत्रोंको शाप दिया—'जो पुत्र मेरी अवहेलना करके तपस्यामें प्रवृत्त हुए हैं, उन्हें किसी प्रकार सिद्धि नहीं प्राप्त होगी।' आङ्गिरसोंने अनेकों देशोंमें जाकर तपस्या की, किंतु उन्हें कहीं भी सिद्धि न मिली। वे सब इधर-उधर दौड़ते रहे, परंतु सभी स्थानोंमें कोई-न-कोई विघ्न आ जाता था। कहीं राक्षसोंसे, कहीं मनुष्योंसे, कहीं युवती स्त्रियोंसे और कहीं अपने शरीरके ही दोषसे तपस्यामें विघ्न पड़ जाता था। इस प्रकार भटकते हुए सब आङ्गिरस तपस्वियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीके पास गये और उन्हें नमस्कार करके विनीत भावसे बोले—'भगवन्! हम अनेक उपायोंसे बारंबार प्रयत्न करते हैं, तो भी किस दोषसे हमारी तपस्या सिद्ध नहीं होती? आप तपस्यामें सबसे बढ़े-चढ़े हैं; अतः कोई उपाय हो तो बतायें। ब्रह्मन्! आप ज्ञानियोंमें भी ज्ञानी, वक्ताओंमें भी श्रेष्ठ वक्ता, संयमी पुरुषों-में भी सबसे अधिक शान्त, दयावान्, प्रियकारी, क्रोधशून्य तथा द्वेषसे रहित हैं। अतः हमने जो पूछा है, उसे बताइये। जो अहंकारी, दयाहीन, गुरु-सेवारहित, असत्य-वादी और क्रूर हैं, वे तत्त्वको नहीं जानते।'*

* साहंकारा दयाहीना गुरुसेवाविवर्जिताः।
असत्यवादिनः क्रूरा न ते तत्त्वं विजानते॥

अगस्त्यने थोड़ी देरतक ध्यान किया, उसके बाद उन सब लोगोंसे धीरे-धीरे कहा—'आपलोग शान्तचित्त महात्मा हैं। ब्रह्माजीने आपको प्रजापति बनाया है। अबतक आपलोगोंकी तपस्या पूर्ण नहीं हुई—इसमें कोई-न-कोई कारण अवश्य है। आपलोग उस कारणका स्मरण करें। ब्रह्माजीने पहले जिन मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया था, वे चले गये और बहुत सुखी हुए; परंतु जो उनकी खोजमें गये, वे ही फिर आङ्गिरस हुए हैं। वे ही आपलोग हैं, जो समय पाकर इस रूपमें आये हैं। आप धीरे-धीरे प्रयत्न करते रहें तो प्रजापतिसे भी बढ़-चढ़कर हो जायँगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। यहाँसे तपस्या करनेके लिये आप त्रिभुवन-पावनी गङ्गाके तटपर जायँ। संसारमें शिववल्लभा गङ्गाके सिवा दूसरा कोई सिद्धिका उपाय नहीं है। वहाँ पावन प्रदेशमें आश्रमके भीतर ज्ञानद गुरुकी पूजा करें। वे आप लोगोंके सब संशयोंका निवारण करेंगे।'

तब आङ्गिरसोंने महर्षि अगस्त्यसे पूछा—'ज्ञानद किसको कहते हैं? ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदित्य, चन्द्रमा, अग्नि और वरुण—इनमें कौन ज्ञानद है?' अगस्त्यजीने फिर कहा—'ज्ञानदका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनो। जो जल है, वही अग्नि है। जो अग्नि है, वही सूर्य कहलाता है। जो सूर्य है, वही विष्णु है और जो विष्णु है, वही सूर्य। जो ब्रह्मा हैं, वही रुद्र हैं। जो रुद्र हैं, वही सब कुछ हैं। इस प्रकार जिसको एककी सर्वरूपताका ज्ञान हो, उसीको ज्ञानद कहते हैं। देशिक, प्रेरक, व्याख्याकार, उपाध्याय और शरीरका जनक आदि बहुत-से गुरु हैं; किंतु उनमें जो ज्ञानदाता गुरु है, वह सबसे बड़ा है। यहाँ उस ज्ञानकी बात कही गयी है, जिससे भेद-बुद्धिका नाश हो। एकमात्र अद्वितीय शिव ही सब कुछ हैं। विद्वान् ब्राह्मण उन्हींका इन्द्र, मित्र और अग्निआदि अनेक नामोंसे वर्णन करते हैं। अनेक नाम और अनेक रूपोंमें जो भगवान्‌के तत्त्वका वर्णन किया जाता है, वह अज्ञानी जनोंका उपकार करनेके लिये है।'

मुनिका यह वचन सुनकर वे गाथा-गान करते हुए वहाँसे चले गये। उनमेंसे पाँच तो उत्तर-गङ्गाके तटपर गये और पाँच दक्षिण-गङ्गाके। वहाँ महर्षि अगस्त्यके बताये हुए देवताओंकी विधिपूर्वक पूजा करने लगे। विशेषतः आसनोंपर बैठकर वे तत्त्वका विचार किया करते थे। इससे उनके ऊपर समस्त देवता प्रसन्न हुए और बोले—'विश्वयोनि ब्रह्माजीने युगके आदिमें जो स्रष्टाके पदकी कल्पना की थी, वह इसलिये कि अधर्मोंकी निवृत्ति हो, वेदोंकी स्थापना हो, सम्पूर्ण लोकोंका उपकार हो, धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि हो तथा पुराण, स्मृति, वेद और धर्मशास्त्रोंके अर्थका ठीक-ठीक निश्चय हो। इसके अनुसार तुम सब लोगोंको जगत्-स्रष्टाका पद प्राप्त होगा। तुम सब उस पदके अनुरूप होओगे।' नारद! वे क्रमशः धीरे-धीरे प्रजापति होंगे। जब अधर्म बढ़ेगा, वेदोंका पराभव होगा और उनपर संकट आयेगा, उस समय वेदोंका उद्धार करनेके लिये वे भावी व्यास होंगे। गङ्गाका उत्तम तट ही उनकी तपस्याका उत्तम स्थान होगा और वहाँ शिव, विष्णु, मैं, सूर्य, अग्नि और जल—ये सब उपस्थित रहेंगे। इनसे बढ़कर पवित्र और इनसे श्रेष्ठ कहीं कुछ भी नहीं है। केवल परब्रह्म ही इन सबके आकारोंमें प्रकट हुआ है। सर्वस्वरूप शिव, जो व्यापक तथा सम्पूर्ण भावपदार्थोंका रूप धारण करनेवाले हैं, समस्त प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये उस तीर्थमें विशेष रूपसे रहते हैं। उनके साथ सम्पूर्ण देवता भी निवास करते हैं। भगवान् शिव सबपर अनुग्रह करनेवाले हैं। वे आङ्गिरस धर्मव्यास और वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उनका तीर्थ भी व्यासतीर्थके नामसे ही तीनों लोकोंमें विख्यात है। व्यासतीर्थ बहुत ही उत्तम है। उसका जल पापरूपी कीचड़को धोनेवाला, मोहरूप अन्धकार और मदका नाश करनेवाला तथा मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है।

कुशतर्पण एवं प्रणीता-संगम तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! कुशतर्पण एवं प्रणीता-संगम नामक तीर्थ सब लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। वे भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। मैं उनके पापहारी स्वरूपका वर्णन करता हूँ, सुनो। विन्ध्य पर्वतके दक्षिणभागमें सह्य नामक महान् पर्वत है। उसीके शाखा-पर्वतोंसे गोदावरी और भीमरथी आदि नदियाँ निकली हैं। वहीं विरजतीर्थ और एकवीरा नदी भी हैं। उस पर्वतकी महिमाका कोई वर्णन नहीं कर सकता। उसी सह्यगिरिके पावन प्रदेशमें जो वृत्तान्त घटित हुआ था,

वह गोपनीयसे भी गोपनीय है; साक्षात् वेदमें उसका वर्णन है। उसे देवता, मुनि, पितर और असुर भी नहीं जानते। वही गुह्य रहस्य आज मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये प्रकट करता हूँ, वह श्रवणमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है।

जो अव्यक्त एवं अक्षर परमात्मा है, उसे परम पुरुष जानना चाहिये। वही जब प्रकृतिसे संयुक्त होता है, तब क्षर एवं अपर कहलाता है। पुरुष पहले निराकारसे साकाररूपमें प्रकट हुआ। फिर उससे जलकी उत्पत्ति हुई। जलसे पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ। फिर जल और पुरुषसे कमल प्रकट हुआ। उस कमलसे मेरी उत्पत्ति हुई। मुने! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व मुझसे पहले एक ही समयमें प्रकट हुए थे। मैंने उत्पन्न होनेपर सबसे पहले इन्हींको देखा, और कोई स्थावर-जङ्गम भूत मेरे देखनेमें नहीं आये। उस समय वेद नहीं प्रकट हुए थे। दूसरी कोई वस्तु ही मैंने नहीं देखी। अधिक क्या कहूँ—जिनसे स्वयं मेरी उत्पत्ति हुई, उनको भी मैं न देख सका। उस समय मैं मौन बैठा था। इतनेमें ही उत्तम आकाशवाणी सुनायी दी—'ब्रह्मन्! तुम स्थावर और जङ्गम जगत्की सृष्टि करो।' नारद! यह आकाशवाणी सुनकर मैंने कहा—'कैसे सृष्टि करूँगा, कहाँ सृष्टि करूँगा और किस साधनसे इस जगत्की सृष्टि करूँगा?' आकाशवाणीने पुनः उत्तर दिया—'ब्रह्मन्! यज्ञ करो, इससे तुम्हें शक्ति प्राप्त होगी। यज्ञ ही विष्णु है—यह सनातन श्रुतिका कथन है। यज्ञ करनेवालोंके लिये इस लोक और परलोकमें कौन-सी वस्तु असाध्य है।' मैंने फिर पूछा—'कहाँ और किस वस्तुसे यज्ञ करूँ?' पुनः आकाशवाणी सुन पड़ी—'कर्मभूमिमें यज्ञेश्वर यज्ञपुरुषका यजन करो। स्वयं पुरुष ही तुम्हारे यज्ञके साधन होंगे। तुम उन्हींसे उनका यजन करो। यज्ञ, स्वाहा, स्वधा, मन्त्र, ब्राह्मण और हविष्य आदि सब कुछ श्रीहरि ही हैं। उन्हींसे सबकी प्राप्ति होती है।'

नारद! उस समय भागीरथी, नर्मदा, यमुना, तापी, सरस्वती, गौतमी, समुद्र, नद, सरोवर तथा अन्यान्य निर्मल सरिताएँ नहीं थीं। अतः मैंने पूछा—'कर्मभूमि कहाँ है?' आकाशवाणीसे उत्तर मिला—'मेरुगिरिके दक्षिण हिमालय, विन्ध्य और सह्यसे भी दक्षिण जो प्रदेश हैं, उन्हें कर्मभूमि कहते हैं। वह सबके लिये सर्वदा कल्याणका उदय करनेवाली है।' यह सुनकर मैंने मेरुगिरिको त्याग दिया और सह्यगिरिके समीप आकर सोचने लगा—'कहाँ ठहरूँ?' इतनेमें ही फिर आकाशवाणी हुई—'इधर आओ। यहीं रहो और बैठकर यज्ञका संकल्प करो। संकल्प करनेके बाद सम्पूर्ण वेद प्रकट होंगे। फिर वे जो कुछ भी कहें, वही करो।'

तदनन्तर इतिहास, पुराण तथा अन्य जो भी वाङ्मय शास्त्र है, वह मेरे मुखमें स्वतः आ गया और मुझे उनका स्मरण होने लगा। तत्काल ही सम्पूर्ण वेदार्थ भी मुझे ज्ञात हो गया। तब मैंने लोकविख्यात पुरुषसूक्तका स्मरण किया। वेदमें जो यज्ञकी सामग्री बतायी गयी थी, उसके अनुसार ही मैंने उसकी कल्पना की। वेदोक्त प्रकारसे ही यज्ञपात्र भी कल्पित हुए। मैंने जहाँ पवित्रता और संयमपूर्वक बैठकर यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की, वह मेरे यज्ञका स्थान मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह ब्रह्मगिरि कहलाने लगा। ब्रह्मगिरिसे पूर्वकी ओर चौरासी हजार योजनतक मेरे यज्ञका स्थान है। उस भूमिके मध्यभागमें वेदी थी तथा दक्षिणभागमें गार्हपत्य अग्निकी स्थापना हुई। इसी प्रकार एक ओर आहवनीय अग्निकी प्रतिष्ठा की गयी। श्रुतिमें यह कहा है कि बिना पत्नीके यज्ञ सिद्ध नहीं होता, इसलिये मैंने अपने शरीरके दो भाग किये। पूर्वार्द्धसे मेरी पत्नी प्रकट हुई, जो यज्ञ-सिद्धिके लिये सहधर्मिणी बनी। उत्तरार्द्धसे मैं स्वयं पुरुषरूपमें स्थित हुआ। श्रुति भी कहती है 'अर्द्धो जाया'—पत्नी आधा अङ्ग है। नारद! मैंने वसन्त-ऋतुको उत्तम घृत बनाया। ग्रीष्मसे ईंधनका काम लिया। शरद्-ऋतुको हविष्य बनाया। वर्षाको कुशके स्थानमें रक्खा। सात छन्द सात परिधि हुए। कला, काष्ठा और निमेष—ये क्रमशः समिधा, पात्र और कुश माने गये। जो अनादि और अनन्त काल है, वही यूपके रूपमें कल्पित हुआ। इसके बाद पशु बाँधनेके लिये रस्सीकी आवश्यकता हुई। सत्त्व आदि तीनों गुण ही रस्सीकी जगह काम आये, किंतु उसमें बाँधनेके लिये पशुका अभाव था। तब मैंने आकाशवाणीसे कहा—'बिना पशुके यह यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता।' उत्तर मिला—'पुरुषसूक्तसे परमपुरुषकी स्तुति करो।'

'बहुत अच्छा'—कहकर मैंने अपने जन्मदाता देवाधिदेव जनार्दनका भक्तिपूर्वक पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा स्तवन किया। उस समय फिर आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! तुम मुझे ही पशु बनाओ।' मैं समझ गया, ये मेरे जन्मदाता अविनाशी पुरुष हैं। मैंने त्रिगुणमयी डोरियोंसे कालयूपके पार्श्वभागमें उन्हें बाँध दिया। सबसे पहले प्रकट हुए पुरुषरूपी पशुका, जो कुशोंपर विराजमान थे, प्रोक्षण किया। इसी समय

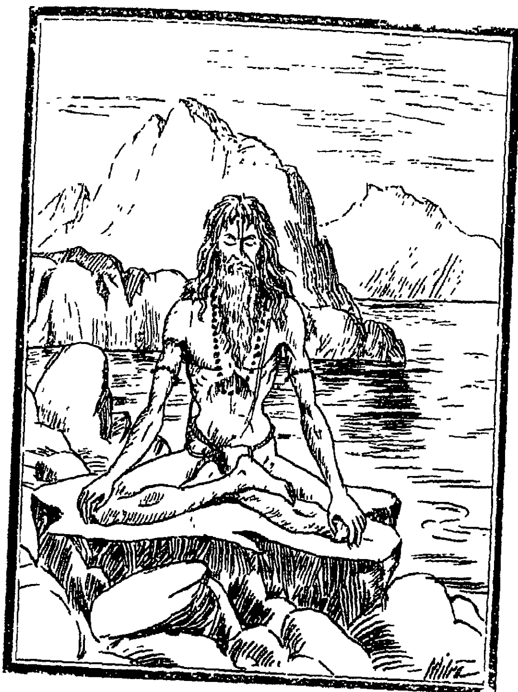
पुरुषमें ये सब वस्तुएँ प्रकट हुईं—उनके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, मुखसे इन्द्र और अग्नि, प्राणसे वायु, कानसे दिशाएँ, तथा मस्तकसे सम्पूर्ण स्वर्गलोककी उत्पत्ति हुई। मनसे चन्द्रमा, नेत्रसे सूर्य, नाभिसे अन्तरिक्ष, दोनों जाँघोंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र तथा पृथ्वीका प्राकट्य हुआ। रोमकूपोंसे ऋषि और केशोंसे ओषधियाँ प्रकट हुईं। नखोंसे ग्रामीण तथा जंगली पशु हुए। पायु और उपस्थसे कृमि, कीट एवं पतङ्ग आदिका जन्म हुआ। इनके सिवा जो कुछ भी स्थावर-जङ्गम तथा दृश्य-अदृश्य जगत् है, वह सब पुरुषसे प्रकट हुआ। इसी समय भगवान्की दैवी वाणीने पुनः मुझसे कहा—'ब्रह्मन्! सब पूरा हो गया। मनोवाञ्छित सृष्टि उत्पन्न हुई। इस समय जितने पात्र हैं, उन सबकी अग्निमें आहुति कर दो। यूप, प्रणीता, कुश, ऋत्विक्, यज्ञ, स्रुवा, पुरुष और पाश—सबका विसर्जन कर दो।'

आकाशवाणीके इतना कहते ही मैंने क्रमशः गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्निमें हवन किया। प्रत्येक होममें विश्वकी उत्पत्तिके कारणभूत पुरुषका ध्यान किया। लोककर्ता जगन्नाथ भगवान् विष्णु शुक्लरूप धारण करके आहवनीयाग्निमें स्थित हुए, श्यामरूपसे दक्षिणाग्निमें और पीतरूपसे गार्हपत्याग्निमें स्थित हुए। उन सभी देशोंमें भगवान् विष्णुका नित्य निवास है। कोई ऐसा स्थान या वस्तु नहीं है, जहाँ विश्वयोनि भगवान् विष्णु न हों। उस यज्ञमें मन्त्रोंद्वारा मैंने प्रणीतापात्रका भी सम्पादन किया था। वह प्रणीताका जल ही प्रणीता नदीके रूपमें परिणत हुआ। फिर कुशोंसे मार्जन करके प्रणीताका मैंने विसर्जन कर दिया। मार्जन करते समय जो प्रणीताके जलकी बूँदें इधर-उधर गिरीं, वे गुणवान् तीर्थोंके रूपमें प्रकट हुईं। वे तीर्थ स्नान करनेसे यज्ञके फल देनेवाले हैं। देवाधिदेव भगवान् विष्णुने जिसे सदा सुशोभित किया है, वह गौतमी वैकुण्ठ धामपर पहुँचनेके लिये सीढ़ियोंकी पंक्ति है। संमार्जन करनेके बाद जहाँ कुश इस पृथ्वीपर गिरे थे, वह स्थान कुशतर्पण नामक तीर्थ हुआ, जो बहुत पुण्यफल देनेवाला है। मैंने विन्ध्यपर्वतके उत्तर जहाँ यूप खड़ा किया था, वह स्थान भगवान् विष्णुका आश्रय बना तथा वह यूप अक्षयवटके रूपमें परिणत हुआ। वह वृक्ष नित्य एवं कालस्वरूप है और स्मरण करनेमात्रसे यज्ञका पुण्य देनेवाला है। मेरे यज्ञका मुख्य स्थान यह दण्डकारण्य है। जब यज्ञ पूरा हुआ, तब मैंने भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया। जिन्हें वेदमें विराट् कहते हैं, जिनसे मूर्तिमान् जगत्की उत्पत्ति हुई है तथा जिनसे मेरा जन्म हुआ है, उन देव-देवेश्वर भगवान् विष्णुकी आराधना करके मैंने उनका विसर्जन कर दिया।

नारद! मेरे देवयजनका स्थान चौबीस योजन है। आज भी वहाँ तीन कुण्ड हैं, जो यज्ञेश्वरस्वरूप हैं। तभीसे वह स्थान मेरे देवयजनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ रहनेवाले जो कीड़े-मकोड़े आदि हैं, वे भी अन्तमें मोक्षके भागी होते हैं। दण्डकारण्य धर्म और मोक्षका बीज बताया जाता है। विशेषतः वह प्रदेश, जिसे गौतमी गङ्गाने स्पर्श किया है, अधिक पुण्यमय हो गया है। प्रणीता-संगम तथा कुशतर्पण तीर्थमें जो स्नान और दान आदि करते हैं, वे परमपदको प्राप्त होते हैं। उनके वृत्तान्तका स्मरण, पठन अथवा भक्तिपूर्वक श्रवण भी मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और भोग एवं मोक्षको देनेवाला है। मुने! कुशतर्पण तीर्थ काशीसे भी उत्तम है। चराचर जगत्में इसके समान दूसरा कोई भी तीर्थ नहीं है। इसके स्मरण मात्रसे ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश हो जाता है। नारद! यह तीर्थ इस पृथ्वीपर स्वर्गका द्वार बताया जाता है।

सारस्वत तथा चिच्चिकतीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—सारस्वत नामक तीर्थ समस्त अभीष्ट वस्तुओंके साथ भोग और मोक्षको भी देनेवाला है। वह मनुष्योंके सब पापोंका नाशक, समस्त रोगोंको दूर करनेवाला और सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता है। नारद! उसके माहात्म्यका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनो। पुष्पोत्कटसे पूर्व और गौतमीके दक्षिणतटपर एक विश्वविख्यात पर्वत है, जिसे शुभ्रगिरि कहते हैं। शाकल्य नामसे प्रसिद्ध एक परम निष्ठावान् मुनि उस पुण्यमय शुभ्र पर्वतपर उत्तम तपस्या कर रहे थे। गौतमीके तटपर रहकर तपस्या करनेवाले उन श्रेष्ठ ब्राह्मणको सभी भूतगण प्रतिदिन प्रणाम और उनका स्तवन



किया करते थे। ऋषियों, गन्धर्वों तथा देवताओंसे सेवित उस परमपवित्र पर्वतपर देवताओं और ब्राह्मणोंको भय पहुँचानेवाला परशु नामक एक राक्षस रहता था। वह यज्ञसे द्वेष रखता, ब्राह्मणोंकी हत्या करता और इच्छानुसार अनेक रूप धारण करके वनमें विचरता रहता था। जहाँ विद्वान् ब्राह्मण शाकल्यमुनि रहते थे, वहाँ भी वह महापापी राक्षस आया करता था। विप्रवर शाकल्य बड़े तेजस्वी थे। पापाचारी परशु प्रतिदिन उन्हें उठा ले जाने अथवा मार डालनेकी चेष्टामें लगा रहता था, किंतु वह अपने उद्योगमें सफल न हो सका। एक दिन द्विजश्रेष्ठ शाकल्य देवताओंकी पूजा करके भोजन करनेकी इच्छासे आश्रमपर आये। इसी समय परशु ब्राह्मणका रूप धारण करके किसी कन्याको साथ लिये वहाँ आया। उसका शरीर शिथिल हो गया था, सिरके बाल पक गये थे और वह अत्यन्त दुर्बल दिखायी देता था। उसने शाकल्यसे कहा—'ब्रह्मन्! आप मुझे और इस कन्याको भोजनार्थी जानिये। मानद! हमलोग आतिथ्यके समयपर आये हैं। आप कृतकृत्य हो गये। इस संसारमें वे ही धन्य हैं, जिनके घरसे अतिथि अपनी अभिलाषाको पूर्ण करके निकलते हैं। जो अतिथि-सत्कार नहीं करते, वे जीते हुए भी मृतकके समान हैं। जो भोजनके लिये बैठकर भी अपने लिये बने हुए अन्नको अतिथिके लिये दे देता है, उसने मानो पृथ्वीका दान कर दिया।'*

यह सुनकर शाकल्यने कहा—'मैं तुम्हें भोजन देता हूँ।' यों कहकर उन्होंने उसे आसनपर बिठाया और विधिवत् पूजा करके भोजन परोसा। परशुने हाथमें आचमनके लिये जल लेकर कहा—'दूरसे थके-माँदे आये हुए अतिथिके पीछे देवता भी आते हैं। जब अतिथि तृप्त होता है, तब वे भी तृप्त हो जाते हैं। यदि अतिथिकी तृप्ति न हुई तो वे भी अतृप्त रह जाते हैं। अतिथि और निन्दक—ये दोनों विश्वके बन्धु हैं। निन्दक तो पाप हर लेता है और अतिथि स्वर्गकी सीढ़ी बन जाता है। जो मार्गसे थककर आये हुए अतिथिको अवहेलनापूर्वक देखता है, उसके धर्म, यश और लक्ष्मीका तत्काल नाश हो जाता है।† इसलिये मैं थका-माँदा अभ्यागत आपसे कुछ याचना करता हूँ। आप मुझे अभीष्ट वस्तु देंगे, तभी भोजन करूँगा; अन्यथा नहीं।' शाकल्यने कहा—'उसे दिया हुआ ही समझो। तुम निश्चिन्त होकर भोजन करो।' तब राक्षसोंमें श्रेष्ठ परशुने कहा—'मुने! मैं पके बालोंवाला दुर्बल एवं बूढ़ा ब्राह्मण नहीं, तुम्हारा शत्रु हूँ। तुम्हें मारकर खा जानेका अवसर देखते-देखते मेरे कितने वर्ष व्यतीत हो गये। जैसे थोड़ा जल गर्मीमें सूख जाता है, वैसे ही मेरे सब अङ्ग भूखके मारे सूख रहे हैं। अतः मैं तुम्हारे अनुचरोंसहित तुम्हें ले चलूँगा और अपना आहार बनाऊँगा।'

परशुका यह कथन सुनकर शाकल्यने कहा—'जो उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं और जिन्हें सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान है, उनकी की हुई प्रतिज्ञा कभी झूठी नहीं होती। अतः सखे! तुम्हें जैसा उचित जान पड़े, करो। तथापि मेरी एक बात सुन लो; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषोंका कर्तव्य है कि जो मारनेको

* त एव धन्या लोकेऽस्मिन् येषामतिथयो गृहात्।
पूर्णाभिलाषा निर्यान्ति जीवन्तोऽपि मृताः परे॥
भोजने तूपविष्टे तु आत्मार्थं कल्पितं तु यत्।
अतिथिभ्यस्तु यो दद्याद्दत्ता तेन वसुंधरा॥
(१६३। १५-१६)

† अतिथिश्चापवादी च द्वावेतौ विश्वबान्धवौ।
अपवादी हरेत्पापमतिथिः स्वर्गसंक्रमः॥
अभ्यागतं पथि श्रान्तं सावज्ञं योऽभिवीक्षते।
तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः॥
(१६३। २०-२१)

उद्यत हों, उनसे भी हितकी ही बात कहे। यह बात ध्यानमें रक्खो कि मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा शरीर वज्रके समान कठोर है और भगवान् श्रीहरि मेरी सब ओरसे रक्षा करते हैं। भगवान् विष्णु मेरे पैरोंकी रक्षा करें। देव जनार्दन मेरे मस्तककी, भगवान् वाराह दोनों भुजाओंकी, कूर्मराज पृष्ठभागकी, कृष्ण हृदयकी, नृसिंहजी अँगुलियोंकी, वाणीके अधीश्वर मुखकी, गरुडवाहन नेत्रोंकी, धनेश दोनों कानोंकी और भगवान् भव सब ओरसे मेरे शरीरकी रक्षा करें। नाना प्रकारकी आपत्तियोंमें एकमात्र साक्षात् भगवान् नारायण ही मेरे लिये शरण हैं।'

यों कहकर शाकल्यने कहा—'राक्षसराज! अब तुम्हारी इच्छा हो तो इस समय आलस्य छोड़कर मुझे यहाँसे उठा ले चलो या यहीं सुखपूर्वक खा जाओ।' उनके यों कहनेपर भी वह राक्षस खानेको तैयार हो गया। सच है, पापीके हृदयमें करुणाका एक कण भी नहीं होता। बड़ी-बड़ी दाढ़ें और विकराल मुख बनाये जब वह ब्राह्मणके समीप पहुँचा, तब उन्हें देखकर बोला—'विप्रवर! तुमको तो शङ्ख, चक्र और



गदा हाथमें लिये देखता हूँ। तुम्हारे सहस्रों चरण, सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों हाथ हैं। तुम सर्वव्यापी दिखायी देते हो। सम्पूर्ण भूतोंके एकमात्र निवास हो। तुम्हारा स्वरूप छन्दोमय है। तुम जगन्मय हो! इस रूपमें आज मैं तुम्हें देखता हूँ। तुम्हारा पहला शरीर इस समय नहीं है। इसलिये मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ—अब तुम्हीं मुझे शरण दो। महामते! मुझे ज्ञान प्रदान करो और ऐसा कोई तीर्थ बताओ, जो मेरा पापोंसे उद्धार करनेवाला हो। ब्रह्मन्! महापुरुषोंका दर्शन निष्फल नहीं होता, भले ही वह द्वेष अथवा अज्ञानसे ही क्यों न हुआ हो। लोहेका पारसमणिसे प्रसङ्ग या प्रमादसे भी स्पर्श हो जाय, तो भी वह उसे सोना ही बनाता है।'*

राक्षसका यह वचन सुनकर शाकल्यको बड़ी दया आयी। वे बोले—'दैत्यराज! तुम्हें शीघ्र ही सरस्वतीका वरदान प्राप्त होगा। इससे तुममें भगवत्स्तवनकी शक्ति आ जायगी। फिर तुम भगवान् जनार्दनकी स्तुति करना। मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिये श्रीनारायणकी स्तुतिके सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है।' 'बहुत अच्छा' कहकर परशु त्रिभुवनपावनी गङ्गाके तटपर गया और स्नान करके पवित्र हो गङ्गाजीकी ओर मुँह करके खड़ा हुआ। उसी समय उसने देखा, शाकल्य मुनिके कथनानुसार जगज्जननी सरस्वती सामने खड़ी हैं। उनका रूप दिव्य है। उन्होंने दिव्य चन्दनका लेप कर रक्खा है। संसारकी जडता दूर करनेवाली जगन्माता जगदम्बा भुवनेश्वरीका दर्शन करके परशुने विनीतभावसे कहा—'देवि! मेरे गुरु शाकल्यने कहा है कि तुम लक्ष्मीकान्त भगवान् गरुडध्वजकी स्तुति करो। आपके प्रसादसे वह शक्ति मुझे प्राप्त हो जाय—ऐसी कृपा कीजिये।' सरस्वतीने 'तथास्तु' कहा। उनकी कृपासे शक्ति पाकर परशुने भगवान् जनार्दनकी भाँति-भाँतिके वचनोंद्वारा स्तुति की। इससे भगवान् श्रीहरि बहुत संतुष्ट हुए। उन कृपासिन्धुने राक्षसको वरदान दिया—'तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे।'

इस प्रकार शाकल्य मुनि, गौतमी गङ्गा, सरस्वती देवी तथा भगवान् नरसिंहके प्रसादसे वह राक्षस महापापी होनेपर भी स्वर्गलोकमें चला गया। जिनके चरणकमलोंमें सम्पूर्ण तीर्थोंका निवास है, उन शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् विष्णुकी कृपाका ही यह फल है। तबसे वह तीर्थ सारस्वत नामसे विख्यात हुआ। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

---

* महतां दर्शनं ब्रह्मन् जायते न हि निष्फलम्।
द्वेषादज्ञानतो वापि प्रसङ्गाद्वा प्रमादतः॥
अयसःस्पर्शसंस्पर्शो रुक्मत्वायैव जायते।
(१६३। ३८-३९)

चिच्चिकतीर्थ सब रोगोंका नाश, सब प्रकारकी चिन्ताओंका निवारण और मनुष्योंको सब प्रकारसे शान्तिका दान करनेवाला है। उस तीर्थके स्वरूपका वर्णन करता हूँ। पूर्वोक्त शुभ्रगिरिपर, जहाँ गौतमीके उत्तरतटपर भगवान् गदाधर विराजमान हैं, पक्षियोंका राजा चिच्चिक रहता था। उसीको भेरुण्ड भी कहते हैं। वह मांसाहारी पक्षी सदा उस पर्वतपर ही रहता था। वहाँ नाना प्रकारके फूल और फलोंसे लदे हुए तथा सभी ऋतुओंमें फूलनेवाले वृक्ष व्याप्त थे। श्रेष्ठ ब्राह्मण भी उस पर्वतके शिखरपर निवास करते थे। गौतमी गङ्गासे उस पर्वतकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। इस प्रकार वह शुभ्रगिरि विविध गुणोंसे सम्पन्न और अनेकों मुनिजनोंसे घिरा हुआ था। एक दिन पूर्वदेशके राजा पवमान, जो क्षत्रियधर्मपरायण, श्रीसम्पन्न और देवताओं तथा ब्राह्मणोंके रक्षक थे, बहुत बड़ी सेना और पुरोहितके साथ वनमें आये। वनमें घूमते-घूमते थककर किसी समय वे एक वृक्षके नीचे आये, जो गौतमीके तटपर था। बहुत-से पक्षी उस वृक्षपर निवास करते थे। वहाँ पहुँचकर राजाने चिच्चिक पक्षीको देखा, जिसके दो मुँह थे। वह स्थूलकाय और सुन्दर था। उसे चिन्तामें निमग्न देख राजाने पूछा—'तुम दो मुखवाले पक्षीके रूपमें कौन हो? चिन्तित-से दिखायी देते हो। यहाँ तो कोई भी दुःखसे पीड़ित नहीं है। फिर तुम कैसे कष्ट पा रहे हो?'



राजाके इन प्रश्नसे पक्षीका मन कुछ आश्वस्त हुआ। उसने बारंबार लंबी साँसें लेकर धीरे-धीरे कहा—'राजन्! मुझसे न तो दूसरोंको भय है और न दूसरोंसे मुझे भयकी आशङ्का है। यह पर्वत भाँति-भाँतिके फूलों और फलोंसे भरा है। अनेकानेक मुनि यहाँ निवास करते हैं। फिर भी यह पर्वत मुझे सूना ही दिखायी देता है। अतः मैं अपने लिये शोक करता हूँ। मुझे न तो यहाँ कुछ सुख मिलता है और न मेरी कभी तृप्ति ही होती है। इतना ही नहीं; मैं निद्रा, विश्राम और शान्तिसे भी वञ्चित हूँ।' दो मुखवाले पक्षीकी यह बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'तुम कौन हो? तुमने कौन-सा पाप किया है? और क्यों तुम्हें यह पर्वत सूना दिखायी देता है? यहाँ रहनेवाले प्राणी तो एक मुखसे ही तृप्त रहते हैं। तुम्हारे तो दो मुख हैं। तुम्हें क्यों नहीं तृप्ति होती? तुमने इस जन्ममें अथवा पूर्वजन्ममें कौन-सा पाप किया है? ये सब बातें मुझसे सच्च-सच्च बताओ। मैं तुम्हें महान् भयसे बचाऊँगा।'

चिच्चिकने पुनः लंबी साँस लेकर राजासे कहा—'महाराज! मैं तुम्हें अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाता हूँ; सुनो! पूर्वजन्ममें मैं वेद-वेदाङ्गोंमें पारंगत श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उत्तम कुलमें मेरा जन्म हुआ था और अच्छे पण्डितके रूपमें मेरी प्रसिद्धि थी; किंतु मैं सबका कार्य बिगाड़नेवाला और कलहप्रिय था। लोगोंके मुँहपर कुछ और कहता तथा पीठ-पीछे कुछ और। दूसरोंकी उन्नति देखकर सदा दुखी होता और माया फैलाकर संसारको ठगा करता था। मैं कृतघ्न, असत्यवादी, परनिन्दाकुशल, मित्रद्रोही, स्वामिद्रोही, गुरुद्रोही, दम्भाचारी और अत्यन्त निर्दय था। मन, वाणी और क्रियाद्वारा बहुत लोगोंको कष्ट पहुँचाता था। दूसरोंकी हिंसा करना ही मेरा सदाका मनोरञ्जन था। स्त्री-पुरुषके जोड़ेमें फूट डाल देना, समूह-के-समूहका विनाश करना, मर्यादा तोड़ना आदि दुष्कर्म मैं बिना विचारे किया करता था। विद्वान् पुरुषोंकी सेवासे दूर ही रहता था। तीनों लोकोंमें मेरे-जैसा पापी दूसरा कोई नहीं था। इसीसे मेरे दो मुँह हो गये। दूसरोंको दुःख देनेसे मैं स्वयं भी दुःखका भागी हुआ हूँ और इसीलिये यह पर्वत सूना दिखायी देता है। राजन्! और भी धर्मयुक्त वचन सुनो, जिसके पालन किये बिना ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। क्षत्रिय युद्धमें जाकर अथवा युद्धसे अन्यत्र भी यदि भागनेवाले, हथियार रख देनेवाले, अपना विश्वास करनेवाले, युद्धसे पीठ

दिखानेवाले, अपरिचित, बैठे हुए तथा 'मैं डरता हूँ' यों कहनेवाले मनुष्यको मार डालता है तो उसे ब्रह्महत्यारा कहते हैं। जो सामने प्रिय बोलता, परोक्षमें कटुवचन कहता, मनमें दूसरी बात सोचता, वाणीसे दूसरी बात कहता और क्रियारूपमें सदा दूसरा ही कार्य करता है, जो गुरुजनोंकी शपथ खाता, द्वेष रखता, ब्राह्मणोंकी निन्दा करता और झूठ-मूठकी विनय दिखाता, वह पापात्मा ब्रह्महत्यारा है। जो द्वेषवश देवता, वेद, अध्यात्मशास्त्र, धर्म और ब्राह्मणके सङ्गकी निन्दा करता है, वह ब्रह्मघाती है।* राजन्! मैं ऐसा ही था, तो भी लज्जावश दिखानेके लिये सदाचारी-सा बना रहता था; इससे मुझे पक्षी होना पड़ा है। इस अवस्थामें रहनेपर भी मुझसे कहीं कुछ पुण्यकर्म भी बन गया था, जिससे मुझे स्वतः ही अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो आया है।'

चिच्चिककी बात सुनकर राजा पवमानको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—'किस कर्मसे तुम्हारी मुक्ति होगी?' उसने कहा—'सुव्रत! गौतमीके उत्तरतटपर गदाधर नामक तीर्थ है। वहीं मुझे ले चलो'। वह तीर्थ परम पवित्र और सब पापोंका नाश करनेवाला है। मैंने बड़े-बड़े मुनियोंसे सुना है कि वह सब अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। गौतमी गङ्गा तथा भगवान् विष्णुके सिवा दूसरा कोई क्लेशोंका नाश करनेवाला नहीं है। मैं चाहता हूँ 'सर्वतोभावेन' उस तीर्थका दर्शन करूँ। किंतु मेरे प्रयत्नसे यह कभी सम्भव नहीं है। भला, पापियोंको मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। वीर! मैं यत्न करनेपर भी उस तीर्थका दर्शन नहीं कर पाता। यह कार्य मेरे लिये अत्यन्त दुष्कर है। तुम्हारी कृपा हो तो मैं भगवान् गदाधरका दर्शन कर सकता हूँ। भगवान् करुणाके सागर हैं। वे बिना बताये ही सबके दुःखोंको जानते हैं। उनका दर्शन कर लेनेपर पुनः मनुष्योंको सांसारिक क्लेशका अनुभव नहीं करना पड़ता। राजन्! मैं तुम्हारे प्रसादसे भगवान्‌का दर्शन करते ही स्वर्गलोकको चला जाऊँगा।'

पक्षीके यों कहनेपर राजा पवमानने उसे उठा लिया और ले जाकर उसे गौतमी गङ्गा तथा भगवान् गदाधरका दर्शन कराया। चिच्चिकने स्नान करके त्रैलोक्यपावनी गङ्गासे कहा—'माता गौतमी! तुम तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली हो। मनुष्य जबतक तुम्हारा दर्शन नहीं करता, तभीतक इस लोक और परलोकमें पातकी कहलाता है। यद्यपि मैंने सब प्रकारके पाप किये हैं, तो भी अब तुम्हारी शरणमें आया हूँ। मेरा उद्धार करो। तुम भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे निकली हो। संसारके प्राणियोंकी तुम्हारे सिवा कहीं कोई भी गति नहीं है।'

पक्षीका अन्तःकरण श्रद्धासे शुद्ध हो गया था। उसने एकमात्र गङ्गाकी शरण ली और 'गङ्गे! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार कहते हुए स्नान किया। तदनन्तर भगवान् गदाधरको प्रणाम करके राजा पवमानसे विदा ले पर्वत-निवासियोंके देखते-देखते वह स्वर्गमें चला गया। पवमान भी अपनी सेनाके साथ अपने नगरको लौट गये। तबसे वेदवेत्ता विद्वानोंने उस तीर्थका नाम पावमानतीर्थ, चिच्चिकतीर्थ और गदाधरतीर्थ रख दिया। उस तीर्थमें किया हुआ पुण्यकर्म कोटि-कोटिगुना हो जाता है।

भद्रतीर्थ, पतत्रितीर्थ और विप्रतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—भद्रतीर्थ सब प्रकारके अनिष्टोंका निवारण करनेवाला है। वह समस्त पापोंका नाशक तथा परम शान्तिदायक है। विश्वकर्माकी पुत्री उषा भगवान् सूर्यकी पतिव्रता एवं प्रिया भार्या हैं। छाया भी उनकी ही भार्या हैं। छायाके पुत्र शनैश्चर हैं। शनैश्चरकी बहिन विष्टि हुई। उसकी आकृति भयानक थी। वह पापमयी थी। भगवान् सूर्यने सोचा, 'यह कन्या किसको दूँ?' वे जिस-जिसको कन्या देना चाहते, वही-वही उसकी भयंकरताका समाचार सुनकर उसे लेना अस्वीकार कर देता और कहता, 'ऐसी भार्या लेकर हम क्या करेंगे।' ऐसी अवस्थामें विष्टिने दुखी होकर अपने पितासे कहा—'पिताजी! धनवान्, विद्वान्, तरुण, कुलीन, यशस्वी, उदार

* प्रत्यक्षे च प्रियं वक्ति परोक्षे परुषाणि च। अन्यद्धृदि वचस्यन्यत्करोत्यन्यत्सदैव यः॥
गुरूणां शपथं कर्ता द्वेष्टा ब्राह्मणनिन्दकः। मिथ्याविनीतः पापात्मा स तु स्याद्ब्रह्मघातकः॥
देवं वेदमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसङ्गतिम्। एतान्निन्दति यो द्वेषात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः॥
(१६४। ३३—३५)

और सनाथ वरको कन्या देनी चाहिये ।* जो पिता इसके विपरीत आचरण करता है, वह नरकमें पड़ता है । सूर्यदेव ! कन्या विद्वानोंके लिये भी धर्मका साधन है । एक ओर पर्वत, वन और काननोंसहित समूची पृथ्वी और दूसरी ओर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत नीरोग कन्या—दोनों एक समान हैं । उस कन्याके दानसे पृथ्वीदानका फल होता है । जो कन्या, अश्व, गौ और तिलकी बिक्री करता है, उसका रौरव आदि नरकोंसे कभी छुटकारा नहीं होता । कन्याके विवाहमें कभी विलम्ब नहीं करना चाहिये । उसमें विलम्ब करनेपर पिताको जो पाप होता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है ।† कन्याके पिता जो उसके लिये दान-पूजन आदि करते हैं, वही सफल समझना चाहिये । कन्याओंको जो कुछ दिया जाता है, उसका पुण्य अक्षय होता है ।' ‡

कन्याके यों कहनेपर भगवान् सूर्य बोले—'बेटी ! मैं क्या करूँ । तुम्हारी आकृति भयंकर है, इसलिये कोई तुम्हें ग्रहण नहीं करता । स्त्री और पुरुषके विवाहसम्बन्धमें लोग एक-दूसरेके कुल, रूप, वय, धन, विद्या, सदाचार और सुशीलता आदि देखा करते हैं । मेरे यहाँ सब कुछ है, केवल तुममें गुणोंका अभाव है । क्या करूँ, कहाँ तुम्हारा विवाह करूँ ? यदि तुम्हारा ऐसा विचार हो कि जिस किसीके साथ विवाह कर दिया जाय तो तुम अपनी स्वीकृति दो । मैं आज ही तुम्हारा विवाह किये देता हूँ ।' यह सुनकर विष्टिने अपने पितासे कहा—'पति, पुत्र, धन, सुख, आयु, रूप और परस्पर प्रेम—ये पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके अनुसार प्राप्त होते हैं । जीव पहले जन्ममें जो बुरा भला कर्म किये रहता है, उसके अनुकूल ही दूसरे जन्ममें उसे फल मिलता है; अतः पिताको तो उचित है कि वह अपने दोषसे मुक्त हो जाय—कन्याका कहीं योग्य वरके साथ विवाह कर दे । फल तो उसे पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही मिलेगा । पिता अपने वंशकी मर्यादाके अनुसार कन्याका दान और विवाह-सम्बन्ध करता है । शेष बातें जो प्रारब्धमें होती हैं, वे मिल जाती हैं ।'

कन्याका यह कथन सुनकर भगवान् सूर्यने अपनी लोकभयंकरी भीषण कन्या विष्टिका विवाह विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूपसे कर दिया । विश्वरूप भी वैसे ही भयंकर



आकारवाले थे । उन दोनोंके शील और रूपमें समानता थी, अतः सदा आपसमें प्रेम बना रहता था । उस दम्पतिसे गण्ड, अतिगण्ड, रक्ताक्ष, क्रोधन, व्यय और दुर्मुख नामक पुत्र उत्पन्न हुए । इन सबसे छोटा एक पुत्र और हुआ, जिसका नाम हर्षण था । वह पुण्यात्मा, सुशील, सुन्दर, शान्त, शुद्धचित्त तथा बाहर-भीतरसे पवित्र था । एक दिन वह अपने मामाको देखनेके लिये यमराजके घर आया । वहाँ उसने बहुत-से ऐसे जीव देखे, जो स्वर्गकी ही भाँति सुखी थे और बहुतेरे दुखी भी दिखायी दिये ।

* श्रीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने ।
उदाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै ॥
(१६५ । ८)

† एकतः पृथिवी कृत्स्ना सशैलवनकानना ।
स्वलंकृतोपाधिहीना सुकन्या चैकतः स्मृता ॥
विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलान्यपि ।
न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥
विवाहातिक्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन ।
तस्मिन् कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कथ्यते ॥
(१६५ । १०-१३)

‡ यत्कन्यायाः पिता कुर्याद् दानं पूजनमीक्षणम् ।
यत्कृतं तत्कृतं विद्यात्तासु दत्तं तदक्षयम् ॥
(१६५ । १५-१६)

हर्षणने सनातन धर्मस्वरूप अपने मामाको प्रणाम करके पूछा—'तात ! ये कौन सुखी हैं और कौन नरकमें कष्ट भोगते हैं ?'

उसके इस प्रकार पूछनेपर धर्मराजने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। उन्होंने कर्मोंकी सम्पूर्ण गतियोंका पूर्णरूपसे निरूपण किया। वे बोले—'जो मनुष्य विहित कर्मका कभी उल्लङ्घन नहीं करते, उन्हें नरक नहीं देखना पड़ता। जो शास्त्र और शास्त्रीय सदाचारको नहीं मानते, बहुश्रुत विद्वानोंका आदर नहीं करते और विहित कर्मोंका उल्लङ्घन करते हैं, वे मनुष्य नरकगामी होते हैं।'* धर्मराजका यह वचन सुनकर हर्षणने पुनः कहा—'सुरश्रेष्ठ ! मेरे पिता विश्वरूप बड़े भयंकर हैं। मेरी माता विष्टि भी भयानक ही हैं। मेरे महाबली भ्राता भी वैसे ही हैं। जिस उपायसे उन लोगोंकी बुद्धि शान्त हो, वे सुरूप, निर्दोष और मङ्गलदायक हो जायँ, वह मुझे बताइये। मैं उसे करूँगा, अन्यथा मैं उनके पास लौटकर नहीं जाऊँगा।' हर्षणके यों कहनेपर धर्मराजने उस शुद्ध बुद्धिवाले बालकसे कहा—'हर्षण ! तुम वास्तवमें हर्षण ही हो। पुत्र तो बहुत-से होते हैं, किंतु वे सभी कुलका विस्तार करनेवाले नहीं होते। एक ही कोई ऐसा पुत्र होता है, जो समूचे कुलको धारण करता है। जो कुलका आधारभूत, पिता-माताका प्रियकारक और पूर्वजोंका उद्धार करनेवाला है, वही वास्तवमें पुत्र है; अन्य जितने हैं, वे रोग हैं। हर्षण ! तुमने मेरे मनके अनुकूल बात कही है। यह तुम्हारे नाना भगवान् सूर्यको भी पसंद आयेगी। अतः तुम गौतमी-तटपर जाओ और वहाँ स्नान करके मनको वशमें रखते हुए प्रसन्नचित्तसे जगद्योनि शान्तस्वरूप भगवान् विष्णुकी स्तुति करो। वे यदि प्रसन्न हो जायँ तो तुम्हारे समस्त मनोरथोंको पूर्ण कर देंगे।'

यह सुनकर हर्षण गौतमी-तटपर गया और स्नान आदिसे पवित्र हो देवेश्वर भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगा। इससे प्रसन्न होकर श्रीहरिने हर्षणको वरदान दिया—'तुम्हारे कुलका कल्याण हो। समस्त अभद्रों (अमङ्गलों) की शान्ति होकर भद्र (मङ्गल) का विस्तार हो।' 'भद्रम् अस्तु' कहनेसे हर्षणके पिता भद्र कहलाये और माता विष्टिका नाम भद्रा हुआ। तबसे वह स्थान भद्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह सब प्रकारसे मङ्गलदायक तथा तीर्थसेवी पुरुषोंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। वहाँ भद्रपतिके नामसे प्रसिद्ध होकर साक्षात् देवाधिदेव भगवान् जनार्दन श्रीहरि निवास करते हैं, जो मङ्गलके एकमात्र भंडार हैं।

पतत्रितीर्थ रोगों तथा पापोंका नाश करनेवाला है। उसके स्मरण मात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। कश्यपके दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड़। उनके कुलमें पक्षियोंमें श्रेष्ठ सम्पाति उत्पन्न हुए। सम्पातिके छोटे भाईका नाम जटायु था। वे दोनों अपने बलसे उन्मत्त और एक-दूसरेसे लाग-डाँट रखनेवाले थे। एक दिन वे दोनों भगवान् सूर्यको नमस्कार करनेके लिये आकाशमें गये। ज्यों ही सूर्यके समीप पहुँचे, दोनोंके पंख जल गये और दोनों थककर पर्वतके शिखरपर गिर पड़े। दोनों भाइयोंको निश्चेष्ट एवं अचेत होकर गिरा देख अरुण उनके दुःखसे दुखी हो गये और भगवान् सूर्यसे बोले—'भगवन् ! ये दोनों पक्षी पृथ्वीपर गिर पड़े हैं। इन्हें आश्वासन दें, जिससे इनकी मृत्यु न हो।' 'तथास्तु' कहकर सूर्यने उनको जीवित कर दिया। गरुड़ भी उनकी अवस्था सुनकर भगवान् विष्णुके साथ वहाँ आये और उन्हें सान्त्वना देकर सुख पहुँचाया। तदनन्तर सब लोग अपने संतापका निवारण करनेके लिये गङ्गातटपर गये। जटायु, अरुण, सम्पाति, गरुड़, सूर्य तथा भगवान् विष्णु—सबने उस प्रचुर पुण्यदायक तीर्थमें प्रवेश किया। तबसे वह तीर्थ पतत्रितीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वह निगका नाशक तथा सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। साक्षात् सूर्य तथा विष्णु गरुड़ और अरुणके साथ वहाँ गौतमी-तटपर रहते हैं। भगवान् शिवका भी उस तीर्थमें निवास है। इन तीनों देवताओंकी उपस्थितिसे वह तीर्थ बहुत उत्तम हो गया है। जो वहाँ स्नान करके पवित्र हो उन देवताओंको नमस्कार करता है, वह आधि-व्याधिसे मुक्त हो परम सौख्यका भागी होता है।

गौतमीके तटपर विप्रतीर्थ भी बहुत विख्यात है। उसे नारायणतीर्थ भी कहते हैं। उसका उपाख्यान आश्चर्यमें डालनेवाला है। अन्तर्वेदी (गङ्गायमुनाके बीचके भूभाग)में एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। उनके कई पुत्र हुए, जो बड़े विद्वान्, गुणवान्, रूपवान् और दयालु थे। उनमें जो सबसे छोटे भाई थे, वे अनेक गुणोंसे सम्पन्न, शान्त, सर्वज्ञ और परम बुद्धिमान् थे।

---

* न मानयन्ति ये शास्त्रं नाचारं न बहुश्रुतान्।
विहितातिक्रमं कुर्युर्ये ते नरकगामिनः॥

उनका नाम आसन्दिव था। आसन्दिवके पिता उनका विवाह करनेके लिये प्रयत्नशील थे। इसी बीचमें एक दिन रातको ब्राह्मण-कुमार आसन्दिव सोये हुए थे। उस दिन उन्होंने भगवान् विष्णुका स्मरण नहीं किया था। वे उत्तर ओर सिरहाना करके सोये थे और उनका चित्त एकाग्र नहीं था; इसलिये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एक क्रूर राक्षसी वहाँ आयी और आसन्दिवको उठाकर तुरंत गौतमीके दक्षिण-तटपर चली गयी। वह उस ब्राह्मणके साथ इच्छानुसार रूप धारण करके गोदावरीके दक्षिण किनारेकी भूमिपर विचरती रहती थी। उसके शरीरमें बुढ़ापा आ गया था। एक दिन उस भयानक राक्षसीने ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर! ये गङ्गाजी हैं। तुम अन्य ब्राह्मणोंके साथ मिलकर यहाँ संध्योपासन करो। जो ब्राह्मण समयपर यत्नपूर्वक संध्योपासन नहीं करते,



वे ही देवेश्वरोंद्वारा नीच बताये गये हैं। वे चाण्डालोंसे भी बढ़कर हैं। तुम यहाँ सब लोगोंसे मुझको अपनी जन्मदायिनी माता बतलाना, नहीं तो अभी तुम्हारा नाश हो जायगा। द्विजश्रेष्ठ! यदि मेरी बात मानते रहोगे तो मैं तुम्हें सुख दूँगी और तुम्हारा जो प्रिय कार्य होगा, उसे भी पूर्ण करूँगी। कुछ कालके बाद फिर मैं तुम्हें तुम्हारे देशमें, तुम्हारे घरमें और तुम्हारे गुरुजनोंके पास पहुँचा दूँगी। यह मैं सत्य कहती हूँ।' ब्राह्मणने पूछा—'तुम कौन हो?' आनन्दिनी राक्षसीने कहा—'मेरा नाम कङ्कालिनी है। मैं संसारमें प्रसिद्ध हूँ।' परिचय पाकर मुनिकुमार आसन्दिवका चित्त भयसे व्याकुल हो उठा, परंतु राक्षसीने अनेक प्रकारकी शपथ खाकर उन्हें अपना विश्वास दिलाया। तब ब्राह्मणने कहा—'तुमने जो कुछ कहा है, मैं वैसा ही करूँगा। तुम्हें जो प्रिय लगेगा, वही बात बोलूँगा और वही कार्य करूँगा।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसीने बुड्ढी होनेपर भी मनोहर रूप धारण किया और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो ब्राह्मणको अपने साथ ले इधर-उधर घूमने लगी। वह सर्वत्र यही कहती कि 'यह मेरा पुत्र गुणाकर है।' ब्राह्मणकुमार रूप, सौभाग्य, वय और विद्यासे विभूषित थे और वह वृद्धा भी गुणवती दिखायी देती थी; अतः सब लोग उसे ब्राह्मणकी माता ही समझते थे। वहाँ किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणने वस्त्राभूषणोंसे विभूषित अपनी सुन्दरी कन्या उस राक्षसीको आगे करके आसन्दिवको ब्याह दी। ऐसे सुयोग्य पतिको पाकर कन्याने अपनेको कृतार्थ माना। किंतु वे ब्राह्मण अपनी गुणवती पत्नीको देखकर बहुत दुखी हुए। उन्होंने मन-ही-मन सोचा, 'यह पापिनी राक्षसी एक दिन मुझे खा ही जायगी। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? अथवा किससे यह बात कहूँ? मैं भारी संकटमें पड़ा हूँ। कौन यहाँ मेरी रक्षा करेगा? मेरी यह कल्याणमयी पत्नी गुणवती, रूपवती और नयी अवस्थाकी है। इसे भी यह राक्षसी अकस्मात् अपना आहार बना लेगी।'

इसी बीचमें वह बुढ़िया कहीं चली गयी। उस समय अपने पतिको दुःखित जानकर ब्राह्मणकी पतिव्रता पत्नीने एकान्तमें विनीत भावसे पूछा—'नाथ! आप क्यों कष्टमें पड़े हैं? ठीक-ठीक बताइये।' ब्राह्मणने सब बातें विस्तारके साथ बता दीं। प्रिय मित्र और कुलीन पत्नीसे कौन-सी बात अकथनीय है। पतिकी बात सुनकर स्त्रीने कहा—'प्राणनाथ! जिसका मन अपने वशमें नहीं है, उसको तो सब ओर भय है। वह घरमें भी निर्भय नहीं है। परंतु जिन्होंने अपने

आत्मापर अधिकार प्राप्त कर लिया है; उन्हें किससे भय है ! वह भी गौतमी-तटपर, जहाँ कितने ही वैष्णव, विरक्त और विवेकी पुरुष निवास करते हैं। यहाँ स्नान करके पवित्र हो भगवान् नारायणकी स्तुति कीजिये।' यह सुनकर ब्राह्मणने गङ्गामें स्नान किया और गौतमीके तटपर भगवान् नारायणका स्तवन आरम्भ किया—'नाथ ! आप इस जगत्के अन्तरात्मा हैं। मुकुन्द ! आप ही इसकी सृष्टि और संहार करनेवाले हैं। अनाथबन्धु नृसिंह ! आप ही सबके पालक हैं। मुझ दीनकी रक्षा क्यों नहीं करते ?' यह प्रार्थना सुनकर संसारका शोक दूर करनेवाले भगवान् नारायणने सहस्र अरोंवाले तेजोमय सुदर्शन चक्रसे उस पापिनी राक्षसीको मार डाला और उस ब्राह्मणको अभीष्ट वरदान दे उसे माता-पिताके पास पहुँचा दिया। तबसे वह स्थान विप्रतीर्थ और नारायण-तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ स्नान, दान और पूजा आदि करनेसे मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि होती है।



चक्षुस्तीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—चक्षुस्तीर्थ रूप और सौभाग्य देनेवाला है। जहाँ भगवान् योगेश्वर गौतमीके दक्षिण-तटपर निवास करते हैं, वहाँ पर्वतके शिखरपर भौवन नगर विख्यात स्थान है। वहाँ क्षात्र-धर्मपरायण राजा भौवन निवास करते थे। उसी नगरमें वृद्धकौशिक नामके एक ब्राह्मण थे, जिनके वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गौतम नामक पुत्र हुआ। गौतमकी एक वैश्यके साथ मित्रता हुई। वैश्यका नाम मणिकुण्डल था। इनमें एक दरिद्र और दूसरा धनी था, तो भी दोनों एक-दूसरेके हितैषी थे। एक दिन गौतमने अपने धनी मित्र मणिकुण्डलसे एकान्तमें प्रेमपूर्वक कहा—'मित्र ! हमलोग धनका उपार्जन करनेके लिये पर्वतों और समुद्रोंकी यात्रा करें। यदि अनुकूल सुख न प्राप्त हुआ तो समझना चाहिये जवानी व्यर्थ गयी। धनके बिना सौख्य कैसे प्राप्त हो सकता है। अहो ! निर्धन मनुष्यको धिक्कार है।' कुण्डलने ब्राह्मणसे कहा—'मेरे पिताने बहुत धन कमाया है। अब अधिक धन लेकर क्या करूँगा।' तब ब्राह्मणने पुनः मणिकुण्डलसे कहा—'जो धर्म, अर्थ, ज्ञान और भोगोंसे तृप्त हो जाय, ऐसा कौन पुरुष प्रशंसनीय माना जाता है। सखे ! इन सबकी अधिकाधिक वृद्धि ही समस्त शरीरधारियोंको अभीष्ट होती है। जो प्राणी अपने ही व्यवसायसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे धन्य हैं। जो दूसरेके दिये हुए धनसे संतोष-लाभ करते हैं, वे कष्टसे ही जीते हैं। जो पुत्र अपने बाहु-बलका आश्रय लेकर धनका उपार्जन करता है और पिताके धनको हाथसे नहीं छूता, वही संसारमें कृतार्थ होता है।'

धनाभिलाषी ब्राह्मणका यह कथन सुनकर वैश्यने उसे सत्य माना और घरसे रत्न लाकर गौतमको देते हुए कहा—'मित्र ! इस धनसे हमलोग सुखपूर्वक देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करेंगे और धन कमाकर फिर अपने घरको लौट आयेंगे।' वैश्य तो अपनी सद्भावनाके अनुसार सत्य ही कहता था, किंतु ब्राह्मण उसे धोखा दे रहा था। उसके मनमें पाप था। किंतु वैश्य उसे ऐसा नहीं समझता था। दोनोंने आपसमें सलाह की और माता-पिताको सूचना दिये बिना ही धन कमानेके लिये देश-देशान्तरमें चल दिये। ब्राह्मण सोचने लगा—'जिस किसी उपायसे हो सके, वैश्यका धन ले लूँ। अहो, पृथ्वीपर सहस्रों सुन्दर नगर हैं, जहाँ कामकी अधिष्ठात्री देवी-जैसी अभीष्ट भोग प्रदान करनेवाली युवतियाँ हैं। यदि यत्नपूर्वक

धन लाकर उनको दिया जाय तो वे सदा भोगी जा सकती हैं और वही जीवन सफल है। किस प्रकार वैश्यसे अपने हाथमें आये हुए धनको हड़पकर उसका इच्छानुसार उपभोग करूँ ?' यह सोचते हुए गौतमने मणिकुण्डलसे हँसते-हँसते कहा—'पापसे ही जीवोंकी उन्नति होती है और वे मनोवाञ्छित सुख प्राप्त करते हैं। संसारमें धर्मात्मा लोग दुःखके ही भागी देखे जाते हैं। अतः एक मात्र दुःख ही जिसका फल है, उस धर्मसे क्या लाभ।'

वैश्यने कहा—ऐसी बात नहीं है। धर्ममें ही सुखकी स्थिति है। पापमें तो केवल दुःख, भय, शोक, दरिद्रता और क्लेश ही रहते हैं। जहाँ धर्म है, वहीं मुक्ति है। भला, अपना धर्म क्या नष्ट हो सकता है ?* इस प्रकार विवाद करते हुए दोनोंमें यह शर्त लग गयी कि जिसका पक्ष श्रेष्ठ सिद्ध हो, वह दूसरेका धन ले ले। वे बोले—'अब चलकर हम दोनों किसीसे पूछें—धर्मात्मा प्रबल होता है या अधर्मी ? वेदसे लोकका ही मत श्रेष्ठ है, क्योंकि लोकमें ही धर्मसे सुख होता है।' इस प्रकार विवाद करके दोनों सब लोगोंसे पूछने लगे कि 'पृथ्वीपर धर्म प्रबल है या अधर्म ?' यह प्रश्न सामने आनेपर कोई बोले—'जो धर्मके अनुसार चलते हैं, उन्हें दुःख भोगना पड़ता है और बड़े-बड़े पापी मनुष्य सुखी हैं।' यह निर्णय सुनकर वैश्यने अपना सारा धन ब्राह्मणको दे दिया। मणिमान् धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ था। वह बाजी हार जानेपर भी धर्मकी ही प्रशंसा करता रहा। ब्राह्मणने मणिमान्से पूछा—'क्या तुम अब भी धर्मकी प्रशंसा करते हो ?' वैश्य बोला—'हाँ।' ब्राह्मण फिर कहने लगा—'वैश्य ! मैंने तुम्हारा सारा धन जीत लिया, फिर भी निर्लज्जकी तरह धर्मकी बात क्यों करते हो ? देखो, स्वेच्छाचारी होनेपर भी मैंने ही धर्मको जीता है।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर वैश्यने मुसकराते हुए कहा—'सखे ! जैसे धान्योंमें पुलाक (पैया) और पंखधारी चिड़ियोंमें छोटी मक्खियाँ होती हैं, वैसे ही मैं उन मनुष्योंको भी सारहीन मानता हूँ, जिनमें धर्म नहीं होता। चारों पुरुषार्थोंमें पहले धर्मका नाम आता है। अर्थ और काम उसके बाद आते हैं। वह धर्म मुझमें मौजूद है। फिर तुम कैसे कहते हो कि मैंने जीत लिया ?' यह सुनकर ब्राह्मणने पुनः वैश्यसे कहा—'अब दोनों हाथोंकी बाजी लगायी जाय।' वैश्य बोला—'ठीक है।' फिर दोनोंने पहलेकी ही भाँति लौकिक मनुष्योंसे पूछा। निर्णय ज्यों-का-त्यों रहा। ब्राह्मण बोला—'फिर मेरी विजय हुई।' यों कहकर उसने वैश्यके दोनों हाथ काट डाले और पूछा—'अब धर्मको कैसा मानते हो ?' ब्राह्मणके इस प्रकार आक्षेप करनेपर वैश्यने कहा—'मेरे प्राण कण्ठतक आ जायँ, तो भी मैं धर्मको ही श्रेष्ठ मानता रहूँगा। धर्म ही देहधारियोंकी माता, पिता, सुहृद् और बन्धु है।' इस तरह दोनोंका विवाद चलता रहा। ब्राह्मण धनवान् हो गया और वैश्य धनके साथ-साथ दोनों बाँहोंसे भी हाथ धो बैठा। इस तरह भ्रमण करते हुए दोनों गौतमी गङ्गाके तटपर आ पहुँचे। जहाँ योगेश्वर श्रीहरिका निवासस्थान है, वहाँ आनेपर फिर दोनोंमें विवाद आरम्भ हो गया। वैश्य गङ्गा, योगेश्वर और धर्मकी ही प्रशंसा करता था। इससे ब्राह्मणको बड़ा क्रोध हुआ। वह वैश्यपर आक्षेप करते हुए बोला—'धन चला गया। दोनों हाथ कट गये। अब केवल तुम्हारे प्राण बाकी हैं। यदि फिर मेरे मतके विपरीत कोई बात मुँहसे निकालोगे तो मैं तलवारसे तुम्हारा सिर काट लूँगा।' वैश्य हँस पड़ा। उसने पुनः गौतमको चुनौती देते हुए कहा—'मैं तो धर्मको ही बड़ा मानता हूँ; तुम्हारी जैसी इच्छा हो, कर लो। जो ब्राह्मण, गुरु, देवता, वेद, धर्म और भगवान् विष्णुकी निन्दा करता है, वह पापाचारी मनुष्य पापरूप है। वह स्पर्श करने योग्य नहीं है। धर्मको दूषित करनेवाले उस दुराचारी पापात्माका परित्याग कर देना चाहिये।'† तब ब्राह्मणने कुपित होकर कहा—'यदि तुम धर्मकी प्रशंसा करते हो तो हम दोनोंके प्राणोंकी बाजी लग जाय।' वैश्यने कहा—'ठीक है।' फिर दोनोंने साधारण लोगोंसे पूछा, किंतु लोगोंने पहले-ही-जैसा उत्तर दिया। उस समय गौतमीके दक्षिण-तटपर भगवान् योगेश्वरके सामने ब्राह्मणने वैश्यको गिरा दिया और उसकी आँखें निकाल लीं। फिर कहा—'वैश्य ! प्रतिदिन धर्मकी प्रशंसा करनेसे ही तुम इस

* नेत्युवाच ततो वैश्यः सुखं धर्मे प्रतिष्ठितम्।
पापे दुःखं भयं शोको दारिद्र्यं क्लेश एव च ॥
यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति ॥

(१७० । १६)

† धर्ममेव परं मन्ये यथेच्छसि तथा कुरु।
ब्राह्मणांश्च गुरून् देवान् वेदान् धर्मं जनार्दनम् ॥
यस्तु निन्दयते पापो नासौ स्पृश्योऽथ पापकृत्।
उपेक्षणीयो दुर्वृत्तः पापात्मा धर्मदूषकः ॥

(१७० । ४५-४९)

दशाको पहुँचे हो। तुम्हारा धन गया, आँखें गयीं और दोनों हाथ काट लिये गये। मित्र! अब तुमसे विदा लेकर जाता हूँ। फिर कभी बातचीतमें इस तरह धर्मकी प्रशंसा न करना।' यों कहकर गौतम चला गया। उसके जानेपर वैश्यप्रवर मणिकुण्डल धन, बाहु और नेत्रसे रहित होनेके कारण शोकग्रस्त हो गया। तथापि वह निरन्तर धर्मका ही स्मरण करता था। अनेक प्रकारकी चिन्ता करते हुए वह भूतलपर निश्चेष्ट होकर पड़ा था। उसके हृदयमें उत्साह नहीं रह गया था। वह शोक-सागरमें डूबा हुआ था। दिन बीता, रजनीका आगमन हुआ और चन्द्रमण्डलका उदय हो गया। उस दिन शुक्ल पक्षकी एकादशी थी। एकादशीको वहाँ लङ्कासे विभीषण आया करते थे। उस दिन भी आये; उन्होंने पुत्र और राक्षसोंसहित गौतमी गङ्गामें स्नान किया और योगेश्वर भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा की। विभीषणका पुत्र भी दूसरे विभीषणके ही समान धर्मात्मा था। उसे लोग वैभीषणि कहते थे। वैभीषणिने वैश्यको देखा और उससे वार्तालाप किया। वैश्यका यथावत् वृत्तान्त जानकर उस धर्मज्ञने अपने पिता लङ्कापति महात्मा विभीषणको बतलाया।



लङ्केश्वरने अपने गुणाकर पुत्रसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बेटा! भगवान् श्रीराम मेरे गुरु—आराध्यदेव हैं और उनके आदरणीय भक्त हनुमान्‌जी मेरे सखा हैं। आजसे बहुत पहले एक कार्य आ पड़नेपर हनुमान्‌जी बहुत बड़ा पर्वत उठा लाये थे, जो सब प्रकारकी ओषधियोंका भंडार था। उस समय दो ओषधियोंकी आवश्यकता थी—विशल्यकरणी और मृतसंजीवनी। उन दोनों ओषधियोंको लाकर उन्होंने भगवान् श्रीरामको अर्पित किया। जब उनकी आवश्यकता पूर्ण हो गयी, तब वे पुनः उस पर्वतको उठाकर हिमालयपर ले गये और वहीं रख आये। हनुमान्‌जी बड़े वेगसे जा रहे थे, इसलिये विशल्यकरणी नामकी ओषधि गौतमी गङ्गाके तटपर गिर पड़ी थी। जहाँ भगवान् योगेश्वरका स्थान है, वहीं वह ओषधि है। उसे ले आकर तुम भगवान्‌का स्मरण करते हुए इसके हृदयपर रख दो। उससे यह उदारबुद्धि वैश्य अपने सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त कर लेगा।'

वैभीषणि बोला—पिताजी! मुझे शीघ्र ही वह ओषधि दिखा दीजिये। विलम्ब न कीजिये। दूसरोंकी पीड़ा दूर करनेसे बढ़कर तीनों लोकोंमें दूसरा कोई कल्याणकारी कार्य नहीं है।

विभीषणने 'बहुत अच्छा' कहकर पुत्रको वह ओषधि दिखा दी। उसने 'इषे त्वा' इत्यादि मन्त्रको पढ़कर उस वृक्षकी एक शाखा तोड़ ली और उसे ले आकर वैश्यके हृदयपर रख दिया। उसका स्पर्श होते ही वैश्यके नेत्र और हाथ ज्यों-के-त्यों हो गये। मणि, मन्त्र और ओषधियोंके प्रभावको कोई नहीं जानता। वैश्यने धर्मका चिन्तन करते हुए गौतमीगङ्गामें स्नान किया और योगेश्वर भगवान् विष्णुको नमस्कार करके पुनः वहाँसे यात्रा की। उसने अपने साथ ओषधिकी टूटी हुई शाखा भी ले ली थी। देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करता हुआ मणिकुण्डल एक राजधानीमें पहुँचा, जो महापुरके नामसे विख्यात थी। वहाँके महाबली राजा महाराजके नामसे प्रसिद्ध थे। राजाके कोई पुत्र नहीं था, एक पुत्री थी; उसकी भी आँखें नष्ट हो चुकी थीं। वह कन्या ही राजाके लिये पुत्र थी। राजाने यह निश्चय किया था कि 'देवता, दानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गुणवान् या निर्गुण—कोई भी क्यों न हो, मैं उसीको यह कन्या दूँगा, जो इसकी आँखें अच्छी कर देगा। मुझे अपने राज्यके साथ ही कन्याका दान करना है।' महाराजने यह घोषणा सब ओर करा दी थी। वैश्यने वह घोषणा सुनकर कहा—'मैं निश्चय ही राजकुमारीकी खोयी हुई आँखें पुनः ला दूँगा।'

राजकर्मचारी शीघ्र ही वैश्यको लेकर गया और महाराजको उसने सब बातें बतायीं। वैश्यने उस काष्ठका स्पर्श कराया और राजकुमारीके नेत्र ठीक हो गये। यह देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं?' वैश्यने राजासे अपना सब हाल ठीक-ठीक कह सुनाया। फिर बोला—'ब्राह्मणोंके प्रसादसे तथा धर्म, तपस्या, दान, यज्ञ और दिव्य ओषधिके प्रभावसे मुझमें ऐसी शक्ति आयी है।' वैश्यका यह कथन सुनकर महाराजको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वे बोले—'अहो, ये महानुभाव कोई देवता ही होंगे। अन्यथा देवेतर मनुष्यमें ऐसी शक्ति कैसे देखी जाती। अतः इन्हें राज्यके साथ ही अपनी कन्या अवश्य दूँगा।' मनमें ऐसा संकल्प करके राजाने कन्यासहित राज्य वैश्यको दे दिया। मणिकुण्डल राज्यको पाकर भी मित्रके बिना संतुष्ट न हुआ। वह सोचने लगा—'मित्रके बिना न तो राज्य अच्छा है और न सुख ही अच्छा लगता है।' इस प्रकार वह सदा गौतम ब्राह्मणका ही चिन्तन किया करता था। इस पृथ्वीपर उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए साधुपुरुषोंका यही लक्षण है कि अहित करनेवालेके प्रति भी उनके मनमें सदा करुणा ही भरी रहती है।*

एक दिन महाराज मणिकुण्डल वनमें गये थे। वहाँ उन्होंने अपने पूर्व मित्र गौतम ब्राह्मणको देखा। पापी जुआरिओंने उसका सब धन छीन लिया था। धर्मज्ञ मणिकुण्डलने अपने ब्राह्मण मित्रको साथ ले लिया, उसका विधिपूर्वक पूजन किया और धर्मका सब प्रभाव भी बतलाया। फिर समस्त पापोंकी निवृत्तिके लिये गौतमको गङ्गामें स्नान कराया। वैश्यके देशमें जो सगोत्र बन्धु-बान्धव थे, उनको तथा गौतम ब्राह्मणके बन्धु-बान्धव वृद्धकौशिक आदिको उन्होंने बुलवाया और सबके साथ देवपूजनपूर्वक गौतमीके तटपर यज्ञ किया। तदनन्तर शरीरका अन्त होनेपर वे स्वर्गलोकमें गये। वह स्थान मृतसंजीवनतीर्थ, चक्षुस्तीर्थ और योगेश्वर-तीर्थ कहलाने लगा। वह स्मरणमात्रसे पुण्य देनेवाला, मनको प्रसन्न रखनेवाला और समस्त दुर्भावनाओंका नाश करनेवाला है।

सामुद्र, ऋषिसत्र आदि तीर्थोंकी महिमा तथा गौतमी-माहात्म्यका उपसंहार

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! सामुद्रतीर्थ सब तीर्थोंका फल देनेवाला है। उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो। गौतमके विदा करनेपर पापनाशिनी गङ्गा जब तीनों लोकोंका उपकार करनेके लिये ब्रह्मगिरिसे पूर्व-समुद्रकी ओर चलीं, तब मार्गमें मैंने उनके जलको लेकर कमण्डलुमें धारण किया। परमात्मा शिवने उन्हें मस्तकपर चढ़ाया। वे भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हैं। ब्रह्मर्षि गौतमने मर्त्यलोकमें उनका अवतरण कराया है। वे स्मरण-मात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाली हैं और गुरुओंकी भी गुरु हैं। समुद्रने जब उन्हें अपनी ओर आते देखा, तब मन-ही-मन विचार किया—'जो सम्पूर्ण जगत्की वन्दनीया और सबकी ईश्वरी हैं, जिन्हें ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता भी मस्तक झुकाते हैं, उनके स्वागतमें मुझे कुछ दूर आगेतक जाना चाहिये। नहीं तो मेरे धर्ममें दोष आयेगा। जो अपने घर आते हुए महापुरुषको लेनेके लिये मोहवश स्वयं उपस्थित नहीं होता, उस पापीकी रक्षा करनेवाला दोनों लोकोंमें कोई नहीं है।' यों विचारकर समुद्र मूर्तिमान् हो हाथ जोड़े विनीत भावसे गङ्गाजीके समीप आया और इस प्रकार बोला—'देवि! तुम्हारा यह जल, जो आकाश, पाताल और मर्त्यलोकमें फैला हुआ है, मुझमें आकर मिले—इसके लिये मैं कुछ नहीं कहूँगा। मेरे भीतर रत्न, अमृत, पर्वत, राक्षस और असुर रहते हैं। इनको तथा अन्यान्य भयंकर जलजन्तुओंको भी मैं धारण करता हूँ। मेरे जलमें लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु सदा शयन करते हैं। इस चराचर जगत्में मेरे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। मैं तुम्हारे स्वागतमें यहाँतक आया हूँ। जो अपनेसे बड़ेके आनेपर अहंकारवश आगे बढ़कर उसका स्वागत नहीं करता, वह धर्म आदिसे भ्रष्ट होकर नरकमें पड़ता है।† भगवती गङ्गा! तुमसे एक प्रार्थना करता हूँ। तुम सात धाराओंमें आकर मुझसे मिलो। यदि एक

---

* एतदेव सुजातानां लक्षणं भुवि देहिनाम्। कृपार्द्रं यन्मनो नित्यं तेषामप्यहितेषु हि॥ (१७०। ८३)

† महत्यभ्यागते कुर्यात्प्रत्युत्थानं न यो मदात्। स धर्मादिपरिभ्रष्टो निरयं तु समाप्नुयात्॥ (१७२। ११)

ही धाराके रूपमें आकर मिलोगी तो मैं तुम्हारे दुःसह वेगको धारण न कर सकूँगा।' समुद्रका यह वचन सुनकर गौतमी गङ्गाने कहा—'तुम मेरी यह बात मानो; सप्तर्षियोंकी जो अरुन्धती आदि पत्नियाँ हैं उन सबको उनके पतियोंसहित ले आओ; तब मैं छोटे रूपमें हो जाऊँगी।' 'बहुत अच्छा' कहकर समुद्र सप्तर्षियों और उनकी पत्नियोंको ले आया। तब गोदावरी देवी सात धाराओंमें विभक्त हो गयीं और उसी रूपमें उनका समुद्रसे संगम हुआ। सप्तर्षियोंके नामपर वे सप्तगङ्गाके नामसे विख्यात



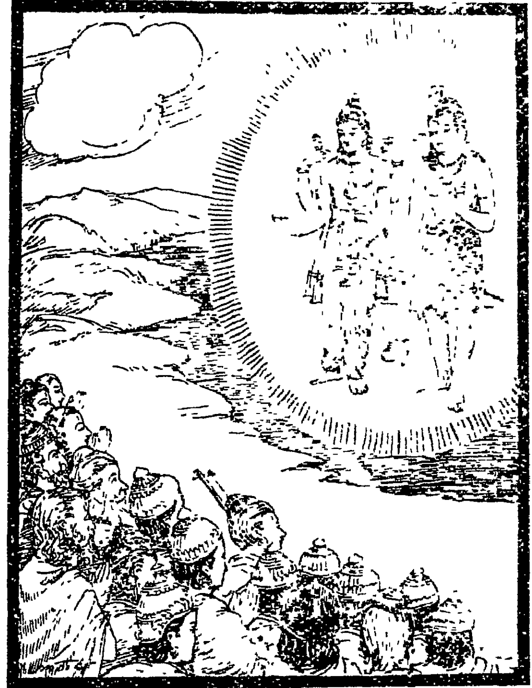
हुईं। वहाँ भक्तिपूर्वक जो स्नान, दान, श्रवण, पाठ और स्मरण आदि शुभ कर्म किया जाता है, वह समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला होता है। पापकी हानि, भोग और मोक्षकी प्राप्ति तथा मनकी प्रसन्नताके लिये तीनों लोकोंमें सामुद्रतीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है।

सामुद्रतीर्थके अतिरिक्त वहाँ ऋषिसत्र-तीर्थ भी है, जहाँ सातों ऋषि तपस्याके लिये बैठे थे और जहाँ भीमेश्वर शिव विराजमान हैं। वहाँका वृत्तान्त इस प्रकार है। सात ऋषियोंने गङ्गाको सात धाराओंमें विभक्त किया। सबसे दक्षिणकी धारा वासिष्ठी कहलायी। उससे उत्तर वैश्वामित्री, उससे उत्तर वामदेवी, बीचकी धारा गौतमी, उससे उत्तर भारद्वाजी, उससे उत्तर आत्रेयी और अन्तिम धारा जामदग्नी है। उन सब ऋषियोंने मिलकर वहाँ बहुत बड़े सत्रका अनुष्ठान किया। इसी बीचमें देवताओंका प्रबल शत्रु विश्वरूप वहाँ आया और ब्रह्मचर्य तथा तपस्याके द्वारा उन ऋषियोंको प्रसन्न करके विनयपूर्वक पूछा—'मुनिवरो! यज्ञ अथवा तपस्या—जिस उपायसे भी मुझे बलवान् पुत्र प्राप्त हो, जिसे देवता भी परास्त न कर सकें, वह उपाय बतलाइये।'

तब परम बुद्धिमान् विश्वामित्रने कहा—'तात! कर्मसे नाना प्रकारके फल प्राप्त होते हैं। तीन कारणोंमें कर्म ही पहला कारण है। दूसरा कारण कर्ता है तथा तीसरे कारणके अन्तर्गत उपादान और बीज आदि अन्य उपकरण हैं। उपादान और बीजको विद्वानोंने कर्म नहीं माना है। जहाँ बहुत-से कारण उपस्थित हों, वहाँ कर्म ही प्रधान कारण सिद्ध होता है। क्योंकि कर्म करनेमें फलकी सिद्धि देखी जाती है और न करनेसे नहीं। अतः फलकी सिद्धि कर्मके ही अधीन है। कर्म भी दो प्रकारके जानने चाहिये—क्रियमाण और कृत। क्रियमाण कर्मका जो-जो साधन है, वह कर्तव्य बताया गया है। विद्वान् पुरुष कर्म करते हुए जो-जो भावना करता है, उसके अनुरूप ही फलकी सिद्धि होती है। यदि बिना भावनाके विधिपूर्वक कर्मका अनुष्ठान करता है तो उसे अन्य प्रकारका फल मिलता है। किंतु भावना करनेपर सम्पूर्ण फल उस भावनाके अनुरूप ही होता है; अतः तप, व्रत, दान, जप और यज्ञ आदि क्रियाएँ कर्मके अनुरूप भाव होनेसे ही अभीष्ट फल देती हैं। भाव भी तीन प्रकारका जानना चाहिये—सात्त्विक, राजस और तामस। जिस भावनाके अनुरूप कर्म होगा, वैसा ही फल मिलेगा। अतः फलकी प्राप्ति कर्मके अनुसार और भावनाके अनुरूप भी होती है; इसलिये कर्मोंकी स्थिति विचित्र है, यों समझकर विद्वान् पुरुषको अपनी इच्छाके अनुकूल भाव भी बनाना चाहिये। फिर उसके अनुरूप कर्म भी करना चाहिये। फल देनेवाला भी जब फल चाहनेवालोंको फल देनेमें प्रवृत्त होता है, तब उसके कर्म और भावनाके अनुसार ही फल देता है। कर्म धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका कारण है। यदि निष्काम भावसे कर्म हो तो वह मुक्तिदायक होता है और सकामभावसे होनेपर वही बन्धनका कारण बन जाता है। अपने भावके अनुसार ही कर्म बनता है तथा वही इस लोक और परलोकमें भाँति-भाँतिके फल देता है। भावके अनुकूल कर्म होता और तदनुसार भोग मिलता है; अतः भाव सबसे बढ़कर है। तुम भी भावके अनुसार कर्म करो। फिर जो चाहोगे, प्राप्त कर लोगे।'

बुद्धिमान् विश्वामित्र मुनिका कथन सुनकर विश्वरूपने तामस भावका आश्रय ले दीर्घकालतक तपस्या की। प्रधान-प्रधान ऋषियोंके मना करनेपर भी उसने अपने क्रोधके अनुरूप देवताओंके लिये भयंकर कार्य किया। भयंकर कुण्ड खोदकर उसमें भयानक अग्निदेवको प्रज्वलित किया और उसीमें बैठकर मन-ही-मन अत्यन्त भयंकर रौद्रपुरुषका आत्मरूपसे चिन्तन किया। उसे इस प्रकार तपस्या करते देख आकाशवाणी हुई—'भीमस्वरूप जगदीश्वर शिवकी महिमाको कौन जानता है। वे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं, तो भी उसकी आसक्तिसे लिप्त नहीं होते।' यों कहकर आकाशवाणी मौन हो गयी। मुनीश्वरगण भगवान् भीमेश्वरको नमस्कार करके अपने-अपने आश्रमको चले गये। विश्वरूप महाभीम (अत्यन्त भयंकर) था। उसके कर्म भी भयंकर थे। उसकी आकृति भी बड़ी भयानक थी। उसके हृदयका भाव भी भयंकर ही था। उसने भीमस्वरूप भगवान् रुद्रका ध्यान करके अग्निमें अपनी आहुति दे दी। तबसे उसके द्वारा आराधित भगवान् शङ्कर भीमेश्वर कहलाते हैं। वहाँ किया हुआ स्नान और दान निस्सन्देह मोक्ष देनेवाला होता है। जो सदा भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गका पाठ और श्रवण करता है तथा देवताओंके स्वामी भीमस्वरूप भगवान् शिवको प्रणाम करता है, उसे भगवान् शिव अपने सर्वपापापहारी चरणोंकी शरणमें लेकर मुक्ति प्रदान करते हैं। यों तो भगवती गोदावरी सर्वत्र और सदा ही सम्पूर्ण पाप-राशिका विनाश करनेवाली तथा परम पुरुषार्थ (मोक्ष) देनेवाली हैं, तथापि जहाँ वे समुद्रमें मिली हैं, वहाँ उनका माहात्म्य विशेषरूपसे बढ़ा हुआ है। जो पुण्यात्मा प्राणी गोदावरी-सागर-संगममें स्नान कर लेता है, वह अपने पूर्वजोंका दुःसह नरकसे उद्धार करके स्वयं भी भगवान् शिवके धाममें जाता है। जो वेदान्तद्वारा जानने योग्य तथा सबका उपास्य है, साक्षात् वह ब्रह्म ही भीमेश्वरके रूपमें प्रकट है। भीमेश्वरका दर्शन कर लेनेपर जीव फिर भयंकर दुःख देनेवाले संसारमें नहीं प्रवेश करते।

देवताओंकी भी वन्दनीया गङ्गा जब समुद्रमें मिलीं, तब सम्पूर्ण देवता और मुनि उनके पीछे-पीछे स्तुति करते हुए गये। वसिष्ठ, जाबालि, याज्ञवल्क्य, क्रतु, अङ्गिरा, दक्ष, मरीचि, अन्यान्य वैष्णवगण, शातातप, शौनक, देवरात, भृगु, अग्निवेश, अत्रि, मरीचि, मनु, गौतम, कौशिक, तुम्बुरु, पर्वत, अगस्त्य, मार्कण्डेय, पिप्पल, गालव, योगीजन, वामदेव, आङ्गिरस तथा भार्गव—ये समस्त पुराणवेत्ता महर्षि प्रसन्न चित्तसे वैदिक मन्त्रोंद्वारा देवी गोदावरीकी स्तुति करते थे। गोदावरीको समुद्रमें मिली हुई देख भगवान् शिव और विष्णुने भी मुनियोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। देवताओं और पितरोंने भी सबकी पीड़ा दूर करनेवाले उन दोनों देवताओंका दर्शन और स्तवन किया। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, लोकपाल—ये सब हाथ जोड़कर भगवान्



शिव और विष्णुकी स्तुति करते थे। समुद्र और गङ्गाके सातों प्रसिद्ध संगमोंपर सदा भगवान् शिव और विष्णु स्थित रहते हैं। वहाँ महादेवजी गौतमेश्वरके नामसे विख्यात हैं। लक्ष्मी-सहित भगवान् विष्णु भी वहाँ नित्य निवास करते हैं। मैंने जो वहाँ शिवकी स्थापना की है, वह शिवलिङ्ग ब्रह्मेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। देवताओंसहित मैंने अपने लिये कारण उपस्थित होनेपर सम्पूर्ण लोकोंके उपकारके लिये भगवान् विष्णुका भी स्तवन किया था। वे विष्णु वहाँ चक्रपाणिके नामसे विख्यात हैं। वहीं ऐन्द्रतीर्थ भी है और उसीको हयग्रीवतीर्थ भी कहते हैं। वहाँ सोमतीर्थ भी है, जहाँ भगवान् शिव सोमेश्वर-के नामसे प्रसिद्ध हैं। एक समय इन्द्रने बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा मेरी आराधना करके मेरे प्रसादसे अपना मनोरथ सिद्ध किया था। तबसे मैं भी वहीं सब लोगोंका उपकार करनेके लिये रहता हूँ, विष्णु और शिव तो वहाँ हैं ही। अग्निने जहाँ

यज्ञ किया, वह स्थान आग्नेयतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। तदनन्तर आदित्यतीर्थ है, जहाँ वेदमय आदित्य प्रतिदिन मध्याह्नकालमें दूसरा रूप धारण करके मेरा, शिवका तथा विष्णुका दर्शन एवं उपासना करनेके लिये आते हैं। वहाँ मध्याह्नकालमें सब लोग वन्दनीय हैं, क्योंकि न मालूम सूर्य वहाँ किस रूपमें आ जायँ। उसके सिवा पर्वतश्रेष्ठ इन्द्रगोपपर एक दूसरा तीर्थ भी है। वहाँ किसी कारणवश गिरिराज हिमालयने महान् शिवलिङ्गकी स्थापना की थी, अतः उसे अद्रितीर्थ कहते हैं। वहाँ किया हुआ स्नान और दान सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला तथा शुभ है। इस प्रकार गौतमी गङ्गा ब्रह्मगिरिसे निकलकर जहाँ समुद्रमें मिली हैं, वहाँतकके कुछ तीर्थोंका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है। गौतमी गङ्गा वेद और पुराणमें भी प्रसिद्ध हैं। ऋषियोंद्वारा भी उनकी बड़ी ख्याति हुई है। सम्पूर्ण विश्वने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया है। उनका प्रभाव अत्यन्त महान् है। नारद! किसमें इतनी शक्ति है, जो गोदावरीकी महिमाका पूरा-पूरा वर्णन कर सके। जो भक्तिपूर्वक उनके गुणगानमें प्रवृत्त हो यथाकथंचित् उनकी महिमाका दिग्दर्शन कराता है, उसके ऐसा करनेमें निःसंदेह कोई अपराध नहीं है; इसलिये मैंने भी लोक-कल्याणके उद्देश्यसे अत्यन्त प्रयास करके गङ्गाके माहात्म्यको संक्षेपसे सूचित किया है। कौन गोदावरीके प्रत्येक तीर्थका प्रभाव बता सकता है। कहीं, किसी स्थानपर, किसी विशेष समयमें कोई उत्तम तीर्थ प्रकट होते हैं; परंतु गौतमीमें सर्वत्र और सदा ही तीर्थोंका वास है। वे मनुष्योंके लिये सब जगह और सब समय पवित्र हैं। उनके गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है। उनके लिये तो केवल नमस्कार करना ही उचित जान पड़ता है।

नारदजीने कहा—सुरेश्वर! आप गङ्गाको तीनों देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाली बताते हैं। ब्रह्मर्षि गौतमद्वारा लायी हुई लोकपावनी गङ्गा परम पवित्र और कल्याणमयी हैं। उनके आदि, मध्य और अन्तमें दोनों तटोंपर भगवान् विष्णु, शिव तथा आप व्याप्त हैं। उनकी महिमा सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं होती, आप पुनः संक्षेपसे उनका महत्त्व बतलाइये।

ब्रह्माजी बोले—बेटा! गङ्गा पहले मेरे कमण्डलुमें थीं, फिर भगवान्‌के चरणोंसे प्रकट हुईं। उसके बाद महादेवजीके जटा-जूटमें निवास करने लगीं। महर्षि गौतमने अपने ब्रह्मतेजके प्रभावसे यत्नपूर्वक भगवान् शिवकी आराधना की, जिससे ये ब्रह्मगिरिपर आयीं और वहाँसे चलकर पूर्व-समुद्रमें जा मिलीं। भगवती गोदावरी सर्वतीर्थमयी हैं। वे मनुष्योंको मनोवाञ्छित फल देती हैं। उनका प्रभाव सबसे बढ़कर है। मैं तीनों लोकोंमें कोई भी तीर्थ गोदावरीसे बड़ा नहीं मानता। उन्हींके प्रभावसे मनकी सारी अभिलाषा पूर्ण होती है। आज भी उनकी महिमाका यथावत् वर्णन कोई नहीं कर सकता। सब लोग भक्तिसे सदा उनकी वन्दना करते हैं। वे वस्तुतः साक्षात् ब्रह्म हैं। नारद! मुझे तो यही सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात जान पड़ती है कि मेरी वाणीमें गङ्गाके गुणोंका वर्णन सुनकर भी तीनों लोकोंमें रहनेवाले सब प्राणियोंकी बुद्धि उन्हींकी ओर क्यों नहीं लग जाती।

नारदजीने कहा—भगवन्! आप धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके ज्ञाता और उपदेशक हैं। आपके वचनोंमें रहस्योंसहित छन्द (वेद), पुराण, स्मृति और धर्मशास्त्र आदि समस्त वाङ्मय प्रतिष्ठित है। अतः आप बताइये—तीर्थ, दान, यज्ञ, तप, देव-पूजन, मन्त्र-जप और सेवामें सबसे श्रेष्ठ क्या है? भगवन्! आप जैसा कहेंगे, वैसा ही होगा। उसके विपरीत कोई बात नहीं हो सकती। अतः मेरे इस संशयका निवारण कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—नारद! सुनो, मैं रहस्यमय उत्तम धर्मका वर्णन करता हूँ। चार प्रकारके तीर्थ हैं। चार ही युग हैं। तीन गुण, तीन पुरुष और तीन ही सनातन देवता हैं। स्मृतियोंसहित वेद चार बताये गये हैं। पुरुषार्थ भी चार ही हैं और वाणीके भी चार ही भेद हैं। ये सब समान हैं। धर्म सर्वत्र एक ही है। क्योंकि वह सनातन है। साध्य और साधनके भेदसे उसके अनेक रूप माने गये हैं। धर्मके दो आश्रय हैं, देश और काल। कालके आश्रित जो धर्म है, वह सदा घटता-बढ़ता रहता है। युगोंके अनुसार उसमें एक-एक चरणकी न्यूनता होती जाती है। कालाश्रित धर्म भी देशमें सदा प्रतिष्ठित रहता है। युगोंका क्षय होनेपर भी देशाश्रित धर्मकी हानि नहीं होती। जो धर्म दोनों आश्रयोंसे हीन है, उसका अभाव हो जाता है। अतः देशके आश्रित रहनेवाला धर्म अपने चारों चरणोंके साथ प्रतिष्ठित होता है। देशाश्रित धर्म भिन्न-भिन्न देशोंमें तीर्थरूपसे स्थित रहता है। सत्ययुगमें धर्म देश और काल दोनोंके आश्रित होता है। त्रेतामें उसके एक चरणकी, द्वापरमें दो चरणोंकी और कलियुगमें उसके तीन चरणोंकी हानि होती है। द्वापर और कलिमें क्रमशः आधे और चौथाई रूपमें

शेष रहकर धर्म चालू रहता है । कलिमें उसकी संकटमयी स्थिति होती है । जो इस प्रकार धर्मको जानता है, उसके धर्मकी हानि नहीं होती ।

जो घरसे तीर्थयात्राके लिये निकलना चाहता है, उसके सामने अनेक प्रकारके विघ्न आते हैं; परंतु जो उन विघ्नोंके मस्तकपर पैर रखकर गङ्गाजीके पास नहीं पहुँचता, उसने अपने जीवनमें क्या फल पाया । गौतमीके प्रभावका कौन वर्णन कर सकता है । साक्षात् सदाशिव भी उसके वर्णनमें असमर्थ हैं । मैंने संक्षेपसे इतिहाससहित गङ्गाके माहात्म्यका प्रतिपादन किया है । चराचर जगत्में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका जो भी साधन है, वह सब इस विस्तृत इतिहासमें मौजूद है । इसमें वेदोक्त श्रुतियोंका सम्पूर्ण रहस्य बताया गया है । जगत्के कल्याणके लिये जो उत्तम साधन, जो उत्तम नामवाला प्राचीन तीर्थ देखा गया है, उसीका वर्णन किया गया है । जो इस माहात्म्यका एक श्लोक अथवा एक पद भी भक्तिपूर्वक पढ़ता और सुनता है अथवा 'गङ्गा-गङ्गा' का उच्चारण करता है, वह पुण्यका भागी होता है । गङ्गाका यह उत्तम माहात्म्य कलिके कलङ्कका विनाश करनेवाला, सब प्रकारकी सिद्धि और मङ्गल देनेवाला है । संसारमें यह समादरके योग्य है । इसके पढ़ने और सुननेसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है । जो सौ योजन दूरसे भी 'गङ्गा-गङ्गा'-का उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और भगवान् विष्णुके धाममें जाता है । तीनों लोकोंमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं । वे सभी बृहस्पतिके सिंहराशिमें स्थित होनेपर गौतमी गङ्गामें स्नान करनेके लिये आते हैं ।* बेटा ! ये गौतमी मेरी आज्ञासे सदा सब मनुष्योंको स्नान करनेपर मोक्ष प्रदान करेंगी । हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ करनेपर जो फल मिलता है, वह इस माहात्म्यके श्रवणमात्रसे प्राप्त हो जाता है । नारद ! जिसके घरमें यह मेरा कहा हुआ पुराण मौजूद है, उसे कलिकालका कोई भय नहीं है । यह उत्तम पुराण जिस-किसी मनुष्यके सामने कहने योग्य नहीं है । श्रद्धालु, शान्त एवं वैष्णव महात्माके सामने ही इसका कीर्तन करना चाहिये । यह भोग और मोक्ष देनेवाला तथा पापोंका नाश करनेवाला है । इसके श्रवणमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । जो अपने हाथसे लिखकर यह पुस्तक ब्राह्मणोंको देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर फिर कभी गर्भमें नहीं आता ।

अनन्त वासुदेवकी महिमा तथा पुरुषोत्तम-क्षेत्रके माहात्म्यका उपसंहार

मुनि बोले—देव ! भगवान्की यह कथा सुननेसे हमें तृप्ति नहीं होती । आप पुनः परम गोपनीय रहस्यका वर्णन कीजिये । अनन्त वासुदेवकी महिमाका आपने भलीभाँति वर्णन नहीं किया । अब हम उसीको सुनना चाहते हैं । आप विस्तारपूर्वक बतलायें ।

ब्रह्माजीने कहा—मुनिवरो ! अनन्त वासुदेवका माहात्म्य सारसे भी अत्यन्त सारतर वस्तु है । वह इस पृथ्वीपर दुर्लभ है । विप्रगण ! आदि कल्पकी बात है, मैंने देवशिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माको बुलाकर कहा—'तुम पृथ्वीपर भगवान् वासुदेवकी शिलामयी प्रतिमा बनाओ, जिसका दर्शन करके इन्द्र आदि देवता और मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् वासुदेवकी आराधना करें और उनकी कृपासे निर्भय होकर रहें ।' मेरी बात सुनकर विश्वकर्माने तत्काल ही एक सुन्दर और सुदृढ़ प्रतिमा बनायी, जिसके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे । भगवान्का वह विग्रह सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और अत्यन्त प्रभावशाली था । नेत्र कमलदलके समान विशाल थे । वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था । हृदयदेश वनमालासे आवृत हो रहा था । मस्तकपर मुकुट और भुजाओंमें अङ्गद शोभा पाते थे । कंधे मोटे जान पड़ते थे । कानोंमें कुण्डल झिलमिला रहे थे । श्याम अङ्गपर पीताम्बरकी अपूर्व शोभा थी । इस प्रकार वह प्रतिमा दिव्य थी । स्थापनाका समय आनेपर स्वयं मैंने ही गूढ़ मन्त्रोंद्वारा उसे स्थापित किया । † उस समय देवराज इन्द्र ऐरावतपर सवार

* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये । तानि स्नातुं समायान्ति गङ्गायां सिंहगे गुरौ ॥ (१७५ । ८२-८३)

† चकार प्रतिमां शुद्धां शङ्खचक्रगदाधराम् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम् । श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम् ॥
वनमालावृतोरस्कां मुकुटाङ्गदधारिणीम् । पीतवस्त्रां सुपीनांसां कुण्डलाभ्यामलंकृताम् ॥
एवं सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम् । प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयासौ निर्मिता पुरा ॥ (१७६ । ८-११)

हो समस्त देवताओंके साथ मेरे लोकमें आये। उन्होंने स्नान-दान आदिके द्वारा भगवत्प्रतिमाको प्रसन्न किया और उसे लेकर वे अपनी अमरावती पुरीमें चले गये। वहाँ इन्द्रभवनमें उसे पधराकर उन्होंने मन, वाणी और शरीरको संयममें रखते हुए दीर्घकालतक भगवान्‌की आराधना की और उन्हींके प्रसादसे वृत्र एवं नमुचि आदि क्रूर राक्षसों तथा भयंकर दानवोंका संहार करके तीनों लोकोंका राज्य भोगा।

द्वितीय युग त्रेता आनेपर महापराक्रमी राक्षसराज रावण बड़ा प्रतापी हुआ। उसने दस हजार वर्षोंतक निराहार और जितेन्द्रिय रहकर अत्यन्त कठोर व्रतका पालन करते हुए भारी तपस्या की, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर थी। उस तपस्यासे संतुष्ट होकर मैंने रावणको वरदान दिया, 'तुम्हें सम्पूर्ण देवताओं, दैत्यों, नागों और राक्षसोंमेंसे कोई नहीं मार सकेगा। शापके भयंकर प्रहारसे भी तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। तुम यमदूतोंसे भी अवध्य रहोगे।' ऐसा वर पाकर वह राक्षस सम्पूर्ण यक्षों और उनके राजा धनाध्यक्ष कुबेरको भी परास्त करके इन्द्रको भी जीतनेके लिये उद्यत हुआ। उसने देवताओंके साथ बड़ा भयङ्कर संग्राम किया। उसके पुत्रका नाम मेघनाद था। मेघनादने इन्द्रको जीत लिया, अतः वह इन्द्रजित्‌के नामसे प्रसिद्ध हुआ। तदनन्तर बलवान् रावणने अमरावतीपुरीमें प्रवेश करके देवराज इन्द्रके सुन्दर भवनमें भगवान् वासुदेवकी प्रतिमा देखी, जो अञ्जनके समान श्यामवर्ण और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। पद्मपत्रके समान विशाल नेत्र, वनमालासे ढके हुए वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका सुन्दर चिह्न, मस्तकपर मुकुट, भुजाओंमें भुजबंध, हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म, शरीरपर पीताम्बर, चार भुजाएँ तथा अङ्गोंमें समस्त आभूषण शोभा दे रहे थे। वह प्रतिमा समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली थी। रावणने वहाँ रक्खे हुए ढेर-के-ढेर रत्नोंको तो छोड़ दिया और उस सुन्दर प्रतिमाको तुरंत ही पुष्पक विमानसे लङ्कामें भेज दिया।

वहाँ रावणके छोटे भाई धर्मात्मा विभीषण नगराध्यक्ष थे। वे सदा भगवान् नारायणके भजनमें लगे रहते थे। देवराजकी भूमिसे आयी हुई उस दिव्य प्रतिमाको देखकर उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। विभीषणने प्रसन्न चित्तसे मस्तक झुकाकर भगवान्‌को प्रणाम किया और कहा—'आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरी तपस्याका फल मिल गया।' यों कहकर धर्मात्मा विभीषण बारंबार भगवान्‌को प्रणाम करके अपने बड़े भाईके पास गये और हाथ जोड़कर बोले—'राजन्! आप यह प्रतिमा देकर मुझपर कृपा कीजिये। मैं उसकी आराधना करके भवसागरसे पार होना चाहता हूँ।' भाईकी बात सुनकर रावणने कहा—'वीर! तुम प्रतिमा ले लो, मैं उसे लेकर क्या करूँगा। मैं तो ब्रह्माजीकी आराधना करके तीनों लोकोंपर विजय पा रहा हूँ।' विभीषण बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने वह कल्याणमयी प्रतिमा ले ली और उसके द्वारा एक सौ आठ वर्षोंतक भगवान् विष्णुकी आराधना की। इससे उन्होंने अणिमा आदि आठों सिद्धियोंके साथ अजर-अमर रहनेका वरदान प्राप्त कर लिया।

रावण बड़ा पापी और क्रूर राक्षस था। उसने देवता, गन्धर्व, किंनर, लोकपाल, मनुष्य, मुनि और सिद्धोंको भी युद्धमें जीतकर उनकी स्त्रियोंको हर लिया और उन्हें लङ्का नगरीमें लाकर रक्खा। फिर सीताके लिये मोहित होकर उसने उनको भी हर लानेका प्रयत्न किया। श्रीरामके सम्मुख जानेमें उसे भय होता था; इसलिये मारीचको सुवर्णमय मृगके रूपमें भेजकर उन्हें आश्रमसे दूर हटा दिया और सीताको अकेली पाकर हर लिया। इसका पता लगनेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने रावणको मार डालनेका निश्चय किया। इस कार्यमें सुग्रीव सहायक हुए। सुग्रीवका वालीके साथ वैर था, अतः श्रीरामने वालीको मारकर सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और अङ्गदको युवराज बनाया। फिर हनुमान्, नल, नील, जाम्बवान्, पनस, गवय, गवाक्ष और पाठीन आदि असंख्य महाबली वानरोंके साथ कमलनयन श्रीरामने लङ्काकी यात्रा की। उन्होंने समुद्रमें पर्वतोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें डालकर पुल बँधाया और विशाल सेनाके साथ समुद्रको पार किया। रावणने राक्षसोंको साथ लेकर भगवान् श्रीरामके साथ घोर संग्राम किया। परम पराक्रमी श्रीरघुनाथजीने महोदर, प्रहस्त, निकुम्भ, कुम्भ, नरान्तक, यमान्तक, मालाढ्य, माल्यवान्, इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण तथा रावणको मारकर विदेहकुमारी सीताको अग्निपरीक्षाद्वारा शुद्ध प्रमाणित किया और विभीषणको राज्य दे भगवान् वासुदेवकी प्रतिमाको साथ लेकर वे पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए और अनायास ही पूर्वजोंद्वारा पालित अयोध्या नगरीमें जा पहुँचे। भक्तवत्सल श्रीरघुनाथजीने अपने छोटे भाई भरत और शत्रुघ्नको भिन्न-भिन्न राज्योंपर अभिषिक्त किया और स्वयं सम्राट्‌की भाँति समस्त भूमण्डलके राज्यपर आसीन हुए। उन्होंने अपने पुरातन स्वरूप श्रीविष्णुकी उस प्रतिमाका आराधन करते हुए समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका ग्यारह हजार वर्षोंतक पालन किया। उसके बाद वे अपने वैष्णव धाममें प्रवेश कर गये। उस समय श्रीरामने वह प्रतिमा

समुद्रको दे दी और कहा—'अपने जल और रत्नोंके साथ तुम इस प्रतिमाकी भी रक्षा करना।'

द्वापर आनेपर जब जगदीश्वर भगवान् विष्णु पृथ्वीकी प्रार्थनासे कंस आदिका वध करनेके लिये बलभद्रजीके साथ वसुदेवजीके कुलमें अवतीर्ण हुए, उस समय नदियोंके स्वामी समुद्रने उस परम दुर्लभ पुण्यमय पुरुषोत्तमक्षेत्रमें सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये उक्त प्रतिमाको प्रकट किया, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली थी। तबसे उस मुक्तिदायक क्षेत्रमें ही देवाधिदेव अनन्त वासुदेव विराजमान हैं, जो मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाले हैं। जो लोग मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा सर्वेश्वर भगवान् अनन्त वासुदेवकी भक्तिपूर्वक शरण लेते हैं, वे परमपदको प्राप्त होते हैं। भगवान् अनन्तका एक बार दर्शन, भक्तिपूर्वक पूजन और प्रणाम करके मनुष्य राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंसे दसगुना फल पाता है। वह समस्त भोग-सामग्रीसे सम्पन्न, छोटी-छोटी घंटियोंसे सुशोभित, सूर्यके समान तेजस्वी और इच्छानुसार चलनेवाले विमानसे वैकुण्ठधाममें जाता है। उस समय दिव्याङ्गनाएँ उसकी सेवामें रहती हैं और गन्धर्व उसके यशका गान करते हैं। वह अपने साथ कुलकी इक्कीस पीढ़ियोंका भी उद्धार कर देता है। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने भगवान् अनन्तके सम्बन्धमें कुछ निवेदन किया। कौन ऐसा मनुष्य है, जो सौ वर्षोंमें भी उनके गुणोंका वर्णन कर सके।

इस प्रकार मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाले परम दुर्लभ पुरुषोत्तमक्षेत्र तथा अनन्त वासुदेवके माहात्म्यका वर्णन किया गया। पुरुषोत्तमक्षेत्रमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर धारण करनेवाले कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं, जिन्होंने कंस और केशीका संहार किया था। जो लोग वहाँ देव-दानव-वन्दित श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राका दर्शन करते हैं, वे धन्य हैं। भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोकोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंके दाता हैं। जो सदा उनका ध्यान करते हैं, वे निश्चय ही मुक्त हो जाते हैं। जो सदा श्रीकृष्णमें अनुरक्त रहते हैं, रातको सोते समय श्रीकृष्णका चिन्तन करते हैं और फिर सोकर उठनेके बाद श्रीकृष्णका स्मरण करते हैं, वे शरीर त्यागनेके बाद श्रीकृष्णमें ही प्रवेश करते हैं—ठीक वैसे ही जैसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम किया हुआ हविष्य अग्निमें लीन हो जाता है।* अतः मुनिवरो! मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको पुरुषोत्तमक्षेत्रमें सदा यत्नपूर्वक कमलनयन श्रीकृष्णका दर्शन करना चाहिये। जो मनीषी पुरुष शयन और जागरणकालमें श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राका दर्शन करते हैं, वे श्रीहरिके धाममें जाते हैं। जो हर समय भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, रोहिणीनन्दन बलभद्र और सुभद्रादेवीका दर्शन करते हैं, वे भगवान् विष्णुके लोकमें जाते हैं। जो वर्षाके चार महीनोंमें पुरुषोत्तमक्षेत्रके भीतर निवास करते हैं, उन्हें सारी पृथ्वीकी तीर्थ-यात्रासे भी अधिक फल प्राप्त होता है। जो इन्द्रियोंको जीतकर और क्रोधको वशीभूत करके सदा पुरुषोत्तमक्षेत्रमें ही निवास करते हैं, वे तपस्याका फल पाते हैं। मनुष्य अन्य तीर्थोंमें दस हजार वर्षोंतक तपस्या करके जो फल पाता है, उसे पुरुषोत्तमक्षेत्रमें एक ही मासमें प्राप्त कर लेता है। तपस्या, ब्रह्मचर्य-पालन तथा आसक्ति-त्यागसे जो फल मिलता है, उसे मनीषी पुरुष वहाँ सदा ही पाते रहते हैं। सब तीर्थोंमें स्नान-दान करनेका जो पुण्य फल बताया गया है, वह मनीषी पुरुषोंको यहाँ सर्वदा प्राप्त होता है। विधिपूर्वक तीर्थसेवन तथा व्रत और नियमोंके पालनसे जो फल बताया गया है, उसे वहाँ इन्द्रियसंयमपूर्वक पवित्रतासे रहनेवाला पुरुष प्रतिदिन प्राप्त करता है। नाना प्रकारके यज्ञोंसे मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वह जितेन्द्रिय पुरुषको वहाँ प्रतिदिन मिला करता है। जो पुरुषोत्तमक्षेत्रमें कल्पवृक्ष (अक्षयवट) के पास जाकर शरीरत्याग करते हैं, वे निःसंदेह मुक्त हो जाते हैं। जो मानव बिना इच्छाके भी वहाँ प्राणत्याग करता है, वह भी दुःखोंसे मुक्त हो दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लेता है। कृमि, कीट, पतङ्ग आदि तथा पशु-पक्षियोंकी योनिमें पड़े हुए जीव भी वहाँ देहत्याग करनेपर परमगतिको प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य एक बार भी श्रद्धापूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन कर लेता है, वह सहस्रों पुरुषोंमें उत्तम है। भगवान् प्रकृतिसे परे और पुरुषसे भी उत्तम हैं। इसलिये वे वेद, पुराण तथा इस लोकमें पुरुषोत्तम कहलाते हैं। जो पुराण और वेदान्तमें परमात्मा कहे गये हैं, वे ही सम्पूर्ण जगत्का उपकार करनेके लिये उस क्षेत्रमें पुरुषोत्तमरूपसे

---

* कृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्ति रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये।
ते भिन्नदेहाः प्रविशन्ति कृष्णं हविर्यथा मन्त्रहुतं हुताशम्॥ (१७७।५)

विराजमान हैं।* पुरुषोत्तमक्षेत्रके भीतर मार्गमें, श्मशान-भूमिमें, घरके मण्डपमें, सड़कों और गलियोंमें—जहाँ कहीं इच्छा या अनिच्छासे भी शरीरत्याग करनेवाला मनुष्य मोक्षका भागी होता है। पुरुषोत्तमतीर्थके समान किसी तीर्थका माहात्म्य न हुआ है और न होगा। मैंने उस क्षेत्रके गुणोंका एक अंशमात्र यहाँ बताया है। कौन पुरुष सौ वर्षोंमें भी उसके समस्त गुणोंका वर्णन कर सकता है। मुनिवरो! यदि तुम सनातन मोक्ष पाना चाहते हो तो आलस्य छोड़कर उस पवित्र तीर्थमें निवास करो।

व्यासजी कहते हैं—अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर मुनियोंने वहाँ निवास किया और परमपद प्राप्त कर लिया। द्विजवरो! यदि आपलोग भी मोक्ष प्राप्त करना चाहते हों तो परम उत्तम पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करें।

कण्डुमुनिका चरित्र और मुनिपर भगवान् पुरुषोत्तमकी कृपा

व्यासजी कहते हैं—मुनिवरो! पुरुषोत्तमक्षेत्र सम्पूर्ण जीवोंके लिये सुखदायी है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका फल देनेवाला है। उस तीर्थमें कण्डु नामके एक महातेजस्वी मुनि रहा करते थे, जो परम धार्मिक, सत्यवादी, पवित्र, जितेन्द्रिय और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले थे। उन्होंने इन्द्रियोंको जीतकर क्रोध-पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। वे वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् थे और भगवान् पुरुषोत्तमकी आराधना करके उत्तम सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उनके सिवा और भी बहुत-से मुनि वहाँ उत्तम व्रतका पालन करते हुए सिद्ध हो चुके हैं।

मुनियोंने पूछा—साधुशिरोमणे! कण्डु कौन थे और उन्होंने किस प्रकार वहाँ परमगति प्राप्त की? हम उनका चरित्र सुनना चाहते हैं, बताइये।

व्यासजी बोले—मुनीश्वरो! कण्डुमुनिकी कथा बड़ी मनोहर है। मैं संक्षेपसे ही कहूँगा, सुनो। गोमती नदीके परम मनोरम एकान्त तटपर, जहाँ कन्द, मूल, फल, समिधा, पुष्प और कुश आदिकी अधिकता थी, कण्डुमुनिका आश्रम था। वहाँ सभी ऋतुओंके फल और फूल सुलभ थे। केलोंका उद्यान उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहा था। वहाँ कण्डुमुनि-ने व्रत, उपवास, नियम, स्नान, मौन और संयम आदिके द्वारा बड़ी भारी एवं अत्यन्त अद्भुत तपस्या की। वे ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्निका ताप सहते, वर्षामें खुली वेदीपर सोते और हेमन्त ऋतुमें भीगे वस्त्र धारण करके कठोर तपस्या करते थे। मुनिकी तपस्याका बढ़ता हुआ प्रभाव देख देवता, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधरोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे कहने लगे—'इनका महान् धैर्य अद्भुत है। इनकी कठोर तपस्या नितान्त आश्चर्यजनक है।' उन्हें तपस्यामें स्थित देख इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता उनके भयसे व्याकुल हो आपसमें परामर्श करने लगे। वे उनकी तपस्यामें विघ्न डालना चाहते थे। त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र देवताओंका अभिप्राय जानकर एक सुन्दरी अप्सरासे बोले—'प्रम्लोचे! तुम शीघ्र कण्डुमुनिके आश्रम-पर जाओ। मुनि वहाँ तपस्या करते हैं। उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये ही तुम्हें भेजा जाता है। सुन्दरी! तुम शीघ्र ही उनके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न कर दो।'

प्रम्लोचा बोली—सुरश्रेष्ठ! मैं सदा आपकी आज्ञा-का पालन करती हूँ। किंतु इस कार्यमें तो मेरे जीवनका ही संदेह है। मैं मुनिवर कण्डुसे बहुत डरती हूँ। वे ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें स्थित हैं। अत्यन्त उग्र हैं। उनकी तपस्या बहुत तीव्र है। वे अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी हैं। मुझे अपनी तपस्यामें विघ्न डालने आयी हुई जानकर परम तेजस्वी कण्डु मुनि कुपित हो उठेंगे और दुःसह शाप दे देंगे।

यह सुनकर इन्द्रने कहा—'सुन्दरी! मैं कामदेव, ऋतुराज वसन्त और दक्षिण समीरको तुम्हारी सहायतामें देता हूँ। इन सबके साथ उस स्थानपर जाओ, जहाँ वे महामुनि रहते हैं।' इन्द्रका यह कथन सुनकर मनोहर नेत्रोंवाली प्रम्लोचा कामदेव आदिके साथ आकाशमार्गसे कण्डुमुनिके आश्रमपर गयी। वहाँ पहुँचकर उसने एक बहुत सुन्दर वन देखा।

* प्रकृतेः स परो यस्मात् पुरुषादपि चोत्तमः। तस्माद् वेदे पुराणे च लोकेऽस्मिन् पुरुषोत्तमः॥
योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मेत्युदाहृतः। आस्ते विश्वोपकाराय प्रदेशे पुरुषोत्तमः॥
(१७७। २२-२३)

तीव्र तपस्यामें लगे हुए पापरहित मुनिवर कण्डु भी आश्रमपर ही दिखायी दिये। प्रम्लोचा और कामदेव आदिने देखा—वह वन नन्दनवनके समान रमणीय था। सभी ऋतुओंमें विकसित होनेवाले सुन्दर पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। नाना प्रकारके पक्षी वृक्षोंपर बैठकर अपने श्रवणसुखद कलरवोंसे उस वनको मुखरित कर रहे थे। अप्सराने क्रमशः सम्पूर्ण वनका निरीक्षण किया। उस परम अद्भुत मनोहर काननकी शोभा देख उसके नेत्र आश्चर्य-चकित हो उठे। उसने वायु, कामदेव और वसन्तसे कहा—'अब आपलोग पृथक्-पृथक् मेरी सहायता करें।' उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकृति दे दी। तब प्रम्लोचा बोली—'अब मैं मुनिके पास जाऊँगी। जो इन्द्रियरूपी अश्वोंसे जुते हुए देहरूपी रथके सारथि बने हुए हैं, उन्हें आज कामबाणसे आहत करके ऐसी दशाको पहुँचा दूँगी कि मनरूपी बागडोर उनके काबूसे बाहर हो जायगी। इस प्रकार उन्हें मैं अयोग्य सारथि सिद्ध कर दिखाऊँगी।' यों कहकर वह उस स्थानकी ओर चल दी, जहाँ मुनि निवास करते थे। मुनिकी तपस्याके प्रभावसे वहाँके हिंसक जीव भी शान्त हो गये थे। नदीके तटपर, जहाँ कोयलकी मीठी तान सुनायी देती थी, वह ठहर गयी। थोड़ी देरतक तो वह खड़ी रही, फिर उसने संगीत छेड़ दिया। इसी समय वसन्तने भी अपना पराक्रम दिखाया। समय न होनेपर भी समस्त काननमें मधुऋतुकी मनोहर शोभा छा गयी। कोकिलकी काकलीसे माधुर्यकी वर्षा होने लगी। मलयवायु मनोहर सुगन्ध लिये मन्द-मन्द गतिसे बहने लगी, और छोटे-बड़े सभी वृक्षोंके पवित्र पुष्प धीरे-धीरे भूतलपर गिरने लगे। कामने अपने फूलोंका बाण सँभाला और मुनिके समीप जाकर उनके मनको विचलित कर दिया। संगीतकी मधुर ध्वनि सुनकर मुनिके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कामबाणसे अत्यन्त पीड़ित हो जहाँ सुन्दरी अप्सरा गीत गा रही थी, गये। मुनिने अप्सराको देखा और अप्सराने भी मुनिपर दृष्टिपात किया। उनके नेत्र आश्चर्यसे खिल गये। चादर खिसककर गिर पड़ी। मुनिके मनमें विकलता छा गयी। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे पूछने लगे—'सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी हो? तुम्हारी मुसकान बड़ी मनोहर है। सुभ्रू! तुम मेरे मनको मोहे लेती हो। सुमध्यमे! अपना सच्चा परिचय दो।'

प्रम्लोचा बोली-मुने! मैं आपकी सेविका हूँ और फूल लेनेके लिये यहाँ आयी हूँ। शीघ्र आज्ञा दीजिये। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

अप्सराकी यह बात सुनकर मुनिका धैर्य छूट गया। उन्होंने मोहित होकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे साथ लेकर अपने आश्रममें प्रवेश किया। यह देख कामदेव, वायु और वसन्त कृतकृत्य हो जैसे आये थे, उसी प्रकार स्वर्गको लौट गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने इन्द्रसे प्रम्लोचा और मुनिकी सारी चेष्टा कह सुनायी। सुनकर इन्द्र और सम्पूर्ण देवताओंका चित्त प्रसन्न हो गया। कण्डुने अप्सराके साथ आश्रममें प्रवेश करते ही अपना रूप कामदेवके समान मनोहर एवं तरुण बना लिया। दिव्य वस्त्र और आभूषण धारण कर लिये। देखनेमें उनकी अवस्था सोलह वर्षोंकी जान पड़ती थी। मुनिकी वह शक्ति देखकर प्रम्लोचाको बड़ा आश्चर्य हुआ। 'अहो, इनकी तपःशक्ति अद्भुत है!' यों कहकर वह बहुत प्रसन्न हुई। कण्डु मुनि स्नान, संध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन, व्रत, उपवास, नियम और ध्यान—सब छोड़कर रात-दिन उसीके साथ विहार करने लगे। इसीमें वे आनन्द मानते थे। उनका हृदय कामदेवके वशीभूत हो गया था। अतः वे अपनी तपस्याकी हानि नहीं समझ पाते थे। इस प्रकार कण्डु मुनि उसके साथ सांसारिक विषयभोगमें आसक्त हो सौसे कुछ अधिक वर्षोंतक मन्दराचलकी गुफामें पड़े रहे। एक दिन प्रम्लोचाने महाभाग कण्डुमुनिसे कहा—'ब्रह्मन्! अब मैं स्वर्गमें जाना चाहती हूँ। आप प्रसन्न होकर मुझे जानेकी आज्ञा दें।' मुनिका मन तो उसीमें आसक्त हो रहा था। उसके इस प्रकार पूछनेपर वे बोले—'कल्याणी! कुछ दिन और ठहरो।' तब उसने पुनः सौ वर्षोंसे कुछ अधिक कालतक उन कण्डुमुनिके साथ विषय भोगा। तदनन्तर उसने पुनः जानेकी आज्ञा माँगी, किंतु मुनिने स्वीकार नहीं किया। अतः उसे लगभग दो सौ वर्षोंतक और ठहरना पड़ा। वह जब-जब उनसे देवलोकमें जानेकी आज्ञा माँगती, तब-तब वे उसे यही उत्तर देते—कुछ दिन और ठहरो। प्रम्लोचा एक तो मुनिके शापसे डरती थी। दूसरे उसमें दक्षिणा नायिकाकी स्वाभाविक उदारता थी और तीसरे वह प्रणयभङ्गकी पीड़ाको जानती थी। इसलिये मुनिको छोड़ न सकी। महर्षि कामभोगमें आसक्त हो दिन-रात उसके साथ रमण करते रहे। किंतु तृप्ति न हुई। उसके प्रति नित्य नूतन प्रेम बढ़ता गया।

एक दिन कण्डुमुनि बड़ी उतावलीके साथ आश्रमसे बाहर जाने लगे। अप्सराने पूछा—'कहाँ चले?' मुनिने

उत्तर दिया—'शुभे ! दिन बीत चला है । संध्योपासन कर लूँ । नहीं तो कर्मका लोप हो जायगा ।' प्रम्लोचाको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने हँसकर पूछा—'सब धर्मोंके ज्ञाता महात्माजी ! क्या आज ही आपका दिन बीता है ? आपकी यह बात सुनकर किसको आश्चर्य न होगा ।'



मुनि बोले—कल्याणी ! अभी प्रातःकाल ही तो तुम इस नदीके सुन्दर तटपर आयी हो । उसी समय मैंने तुम्हें देखा, परिचय पूछा और तुम मेरे साथ आश्रममें आयी । अब वह दिन बीता है और यह संध्याका समय उपस्थित हुआ है । फिर यह परिहास किसलिये ? सच्ची बात बताओ ।

प्रम्लोचाने कहा—ब्रह्मन् ! यह ठीक है कि मैं प्रातःकालमें ही आयी थी; इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है । किंतु आज तबसे सैकड़ों वर्ष बीत गये ।

यह सुनकर मुनिको बड़ा भय हुआ । उन्होंने विशाल नेत्रोंवाली अप्सरासे पूछा—'भीरु ! बताओ तो सही, तुम्हारे साथ निरन्तर रमण करते हुए अबतक मेरा कितना समय बीता है ?'

प्रम्लोचा बोली—मुने ! मेरे साथ आपके नौ सौ सात वर्ष, छः महीने और तीन दिन बीते हैं ।

ऋषिने कहा—शुभे ! क्या यह सत्य कहती हो अथवा परिहासकी बात है ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे साथ एक ही दिन रहा हूँ ।

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन् ! आपके समीप मैं झूठ कैसे बोलूँगी । विशेषतः ऐसे अवसरपर, जब कि आप धर्म-मार्गका अनुसरण करते हुए पूछ रहे हैं ।

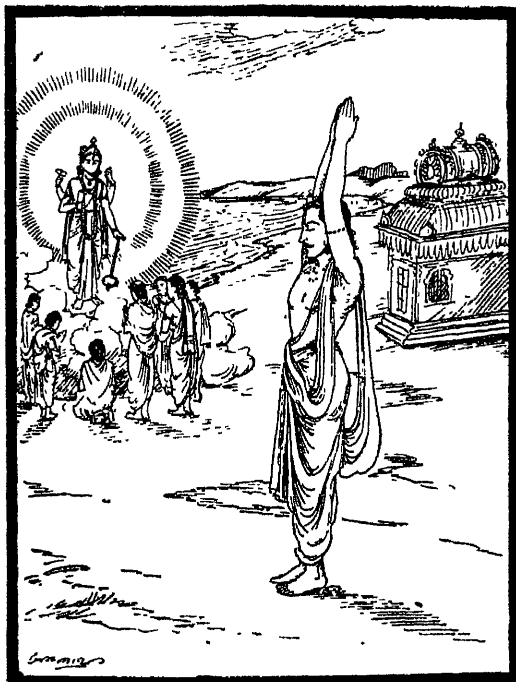
अप्सराकी बात सुनकर मुनिको बड़ा कष्ट हुआ । वे स्वयं ही अपनी निन्दा करते हुए बोले—'हाय, मुझ दुराचारीको धिक्कार है । हाय, मेरी तपस्या नष्ट हो गयी । ब्रह्मवेत्ताओंका जो धन है, वह चला गया और मेरा विवेक भी छिन गया । जान पड़ता है, मनुष्यको मोहमें डालनेके लिये ही किसीने युवती नारीकी सृष्टि की है । मुझे तो अपने मनको जीतकर क्षुधा-पिपासा, राग-द्वेष और जरा-मृत्यु—इन छहों ऊर्मियोंसे अतीत परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । इसके विपरीत जिसने मेरी ऐसी दुर्गति की है, उस कामरूपी महान् ग्रहको धिक्कार है । यह काम नरकग्राममें ले जानेवाला मार्ग है । इसने आज मेरे सम्पूर्ण वेदोंके स्वाध्याय, व्रत और समस्त साधनोंपर पानी फेर दिया ।'

इस प्रकार स्वयं ही अपनी निन्दा करके वे धर्मके ज्ञाता मुनि पास ही बैठी हुई उस अप्सरासे बोले—'पापिनी ! तेरी जहाँ इच्छा हो, चली जा । तुझे जो करना था, उसे तूने पूरा कर लिया । मैं तुझे अपने क्रोधकी प्रचण्ड आगसे जो भस्म नहीं करता, इसमें एक कारण है—सत्पुरुषोंकी मैत्री सात पग एक साथ चलनेसे ही हो जाती है । मैं तो तेरे साथ चिरकालतक निवास कर चुका हूँ । अथवा तेरा क्या दोष है । तेरी क्या हानि करूँ । सारा दोष तो मेरा ही है । क्योंकि मैं ही ऐसा अजितेन्द्रिय निकला ! तू तो इन्द्रका प्रिय करनेके लिये आयी थी और मेरी तपस्याका सत्यानाश कर चुकी । अपने कटाक्षके महामोहमय मन्त्रसे तूने मुझे घृणित बना दिया । अरी, अब जा ! जा ! चली जा !!'

इस प्रकार मुनिवर कण्डुने जब क्रोधपूर्वक उसे फटकारा, तब वह काँपती हुई आश्रमसे बाहर निकली और आकाश-मार्गसे जाने लगी । उसके अङ्ग-अङ्गसे पसीनेकी बूँदें निकल रही थीं और वह वृक्षोंके पल्लवोंसे उन्हें पोंछती जाती थी । ऋषिने उसके उदरमें जो गर्भ स्थापित किया था, वह पसीनेके रूपमें ही बाहर निकल गया । वृक्षोंने उन स्वेद-बिन्दुओंको ग्रहण किया और वायुने इन सबको एकत्रित करके एक गर्भका रूप दिया । फिर चन्द्रमाने अपनी अमृतमयी किरणोंसे

उस गर्भको धीरे-धीरे पुष्ट किया। उससे मारिषा नामकी कन्या उत्पन्न हुई, जो वृक्षोंकी पुत्री कहलायी। उसके नेत्र बड़े मनोहर थे। वही प्राचेतसोंकी पत्नी और दक्षकी जननी हुई।

इधर महर्षि कण्डु तपस्या क्षीण होनेपर श्रीविष्णुके निवास-स्थान पुरुषोत्तमक्षेत्रको गये। वहाँ सम्पूर्ण देवताओंसे सुशोभित श्रीहरिका दर्शन किया। ब्राह्मण आदि चारों वर्णों और आश्रमोंके लोग भगवान्‌की सेवामें उपस्थित थे। पुरुषोत्तमक्षेत्र और भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करके मुनिने अपनेको कृतकृत्य माना और वहाँ अपनी दोनों बाँहें ऊपर उठाकर एकाग्रचित्तसे ब्रह्मपार स्तोत्रका जप करते हुए वे भगवान्‌की आराधना करने लगे।



मुनि बोले-व्यासजी! हम परम कल्याणमय ब्रह्मपार स्तोत्रको श्रवण करना चाहते हैं, जिसका जप करते हुए कण्डु मुनिने भगवान् विष्णुकी आराधना की थी।

व्यासजीने कहा-भगवान् विष्णु सबके परम पार (अन्तिम प्राप्य) हैं; वे अपार भवसागरसे पार उतारनेवाले, पर-शब्द-वाच्य, आकाश आदि पञ्च महाभूतोंसे परे और परमात्म-स्वरूप हैं। वेदोंकी भी पहुँचसे परे होनेके कारण उन्हें ब्रह्मपार कहते हैं। वे दूसरोंके लिये पारस्वरूप हैं—उन्हें पाकर सब प्राणी सदाके लिये पार हो जाते हैं। वे परके भी पर—इन्द्रिय, मन आदिके भी अगोचर हैं। सबके पालक और सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। वे कारणमें स्थित होते हुए भी स्वयं ही कारणरूप हैं। कारणके भी कारण हैं। परम कारणभूत प्रकृतिके कारण भी वे ही हैं। कार्योंमें भी उन्हींकी स्थिति है। इस प्रकार कर्म और कर्ता आदि अनेक रूप धारण करके वे सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं। ब्रह्म ही प्रभु हैं, ब्रह्म ही सर्वस्वरूप हैं, ब्रह्म ही प्रजापति तथा अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाला है। वह ब्रह्म अविनाशी, नित्य और अजन्मा है। वही क्षय आदि सम्पूर्ण विकारोंके सम्पर्कसे रहित भगवान् विष्णु हैं। वे भगवान् पुरुषोत्तम ही अविनाशी, अजन्मा एवं नित्य ब्रह्म हैं। उनके प्रभावसे मेरे राग आदि समस्त दोष नष्ट हो जायँ।

मुनिके उस ब्रह्मपार स्तोत्रका जप सुनकर और उनकी सुदृढ़ पराभक्तिको जानकर भक्तवत्सल भगवान् पुरुषोत्तम बड़े प्रसन्न हुए और उनके पास जाकर बोले—'मुने! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहो। मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। सुव्रत! तुम कोई वर माँगो।' देवाधिदेव भगवान् चक्रपाणिके ये वचन सुनकर मुनिने सहसा आँखें खोल दीं और देखा, भगवान् सामने खड़े हैं। उनका श्रीअङ्ग तीसीके फूलकी भाँति श्याम है। नेत्र पद्मपत्रके समान विशाल हैं। हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा शोभा पाते हैं। माथेपर मुकुट और भुजाओंमें भुजबन्ध सुशोभित हैं। चार भुजाएँ हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता टपकती है। सुन्दर शरीरपर पीताम्बर शोभा दे रहा है। श्रीवत्स-चिह्नसे युक्त वक्षःस्थल वनमालासे विभूषित है। श्रीहरि समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त दिखायी देते हैं। उनके अङ्गोंमें सब प्रकारके रत्नमय आभूषण शोभा पाते हैं। श्रीअङ्गमें दिव्य चन्दन लगा है और दिव्य हार उनकी शोभा बढ़ा रहा है।* इस प्रकार भगवान्‌की झाँकी देखकर कण्डुमुनिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज मेरी तपस्याका

* अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम्॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं पीनवस्त्रधरं शुभम्।
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम्।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यविभूषितम्॥
(१७८ । १२३-१२५)

फल मिल गया ।' यों कहकर मुनिने भगवान्‌की स्तुति आरम्भ की ।



कण्डु बोले—नारायण ! हरे ! श्रीकृष्ण ! श्रीवत्साङ्क ! जगत्पते ! जगद्बीज ! जगद्धाम ! जगत्साक्षिन् ! आपको नमस्कार है। अव्यक्त विष्णो ! आप ही सबकी उत्पत्तिके कारण हैं। प्रकृति और पुरुष दोनोंसे उत्तम होनेके कारण आपको पुरुषोत्तम कहते हैं। कमलनयन गोविन्द ! जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है। आप हिरण्यगर्भ, लक्ष्मीपति, पद्मनाभ और सनातन पुरुष हैं। यह पृथ्वी आपके गर्भमें है। आप ध्रुव और ईश्वर हैं। हृषीकेश ! आपको नमस्कार है। आप अनादि, अनन्त और अजेय हैं। विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! आपकी जय हो। श्रीकृष्ण ! आप अजित और अखण्ड हैं। श्रीनिवास ! आपको नमस्कार है। आप ही बादल और धूम—वर्षा और गर्मी करनेवाले हैं। आपका पार पाना कठिन है। आप बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं। दुःख और पीड़ाओंका नाश करनेवाले हरे ! जलमें शयन करनेवाले नारायण ! आपको नमस्कार है। अव्यक्त परमेश्वर ! आप सम्पूर्ण भूतोंके पालक और ईश्वर हैं। भौतिक तत्त्वोंसे आप कभी क्षुब्ध होनेवाले नहीं हैं। सम्पूर्ण प्राणी आपमें ही निवास करते हैं। आप सब भूतोंके आत्मा हैं। सम्पूर्ण भूत आपके गर्भमें स्थित हैं। आपको नमस्कार है। आप यज्ञ, यज्वा, यज्ञधर, यज्ञधाता और अभय देनेवाले हैं। यज्ञ आपके गर्भमें स्थित है। आपका श्रीअङ्ग सुवर्णके समान कान्तिमान् है। पृश्निगर्भ ! आपको नमस्कार है। आप क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपालक, क्षेत्री, क्षेत्रहन्ता, क्षेत्रकर्ता, जितेन्द्रिय, क्षेत्रात्मा, क्षेत्ररहित और क्षेत्रके स्रष्टा हैं। आपको नमस्कार है। गुणालय, गुणावास, गुणाश्रय, गुणावह, गुणभोक्ता, गुणाराम और गुणत्यागी—ये सब आपके ही नाम हैं। आपको नमस्कार है। आप ही श्रीविष्णु हैं। आप ही श्रीहरि और चक्री कहलाते हैं। आप ही श्रीविष्णु और आप ही जनार्दन हैं। आप ही वषट्कार कहे गये हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानके प्रभु भी आप ही हैं। आप भूतोंके उत्पादक और अव्यक्त हैं। सबकी उत्पत्तिके कारण होनेसे आप 'भव' कहलाते हैं। आप सम्पूर्ण प्राणियोंके भरण-पोषण करनेवाले हैं। आप ही भूतभावन देवता हैं। आपको अजन्मा और ईश्वर कहते हैं।

आप विश्वकर्मा हैं, श्रीविष्णु हैं, शम्भु हैं और वृषभकी आकृति धारण करनेवाले हैं। आप ही शंकर, आप ही शुक्राचार्य, आप ही सत्य, आप ही तप और आप ही जनलोक हैं। आप विश्वविजेता, कल्याणमय, शरणागतपालक, अविनाशी, शम्भु, स्वयम्भू, ज्येष्ठ और परायण (परम आश्रय) हैं। आदित्य, ओंकार, प्राण, अन्धकारनाशक सूर्य, मेघ, सर्वत्र विख्यात तथा देवताओंके स्वामी ब्रह्मा भी आप ही हैं। ऋक्, यजुः और साम भी आप ही हैं। आप ही सबके आत्मा माने गये हैं। आप ही अग्नि, आप ही वायु, आप ही जल और आप ही पृथ्वी हैं। स्रष्टा, भोक्ता, होता, हविष्य, यज्ञ, प्रभु, विभु, श्रेष्ठ, लोकपति और अच्युत भी आप ही हैं। आप सबके द्रष्टा और लक्ष्मीवान् हैं। आप ही सबका दमन करनेवाले और शत्रुओंके नाशक हैं। आप ही दिन और आप ही रात्रि हैं, विद्वान् पुरुष आपको ही वर्ष कहते हैं। आप ही काल हैं। कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, क्षण और लव—सब आपके ही स्वरूप हैं। आप ही बालक, आप ही वृद्ध तथा आप ही पुरुष, स्त्री और नपुंसक हैं। आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान हैं। आप ही सबके नेत्र हैं। आप ही स्थाणु (स्थिर रहनेवाले) और आप ही शुचिश्रवा(पवित्र यशवाले) हैं। आप सनातन पुरुष हैं। आपको कोई जीत नहीं सकता। आप इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्र और सबसे उत्तम हैं। आप सम्पूर्ण विश्वको सुख देनेवाले हैं। वेदोंके अङ्ग भी आप ही हैं। आप अविनाशी, वेदोंके भी वेद (ज्ञेय तत्त्व), धाता, विधाता और समाहित रहनेवाले

हैं। आप जलराशि समुद्र हैं। आप ही उसके मूल हैं। आप ही धाता और आप ही वसु हैं। आप वैद्य, आप धृतात्मा, और आप इन्द्रियातीत हैं। आप सबसे आगे चलनेवाले और गाँवके नेता हैं। आप ही गरुड़ और आप ही आदिमान् हैं। आप ही संग्रह (लघु) और आप ही परम महान् हैं। अपने मनको वशमें रखनेवाले और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भी आप ही हैं। आप यम और नियम हैं। आप प्रांशु (उन्नत शरीरवाले) और चतुर्भुज हैं। अन्न, अन्तरात्मा और परमात्मा भी आप ही कहलाते हैं। आप गुरु और गुरुतम हैं, वाम और दक्षिण हैं। आप ही पीपल एवं अन्य वृक्ष हैं। व्यक्त जगत् और प्रजापति भी आप ही हैं। आपकी नाभिसे सुवर्णमय कमल प्रकट हुआ है। आप दिव्य शक्तिसे सम्पन्न हैं। आप ही चन्द्रमा और आप ही प्रजापति हैं। आपके स्वरूपका वर्णन नहीं किया जा सकता। आप ही यम और आप ही दैत्योंके नाशक श्रीविष्णु हैं। आप ही संकर्षण देव हैं। आप ही कर्ता और आप ही सनातन पुरुष हैं। अमेयात्मा वासुदेव भी आप ही हैं। आप तीनों गुणोंसे रहित हैं।

आप ज्येष्ठ, वरिष्ठ और सहिष्णु हैं। लक्ष्मीके पति हैं। आपके सहस्रों मस्तक हैं। आप अव्यक्त देवता हैं। आपके सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं। आप विराट् और देवताओंके स्वामी हैं। देवदेव! तथापि आप दस अंगुलके होकर रहते हैं। जो भूत है, वह आपका ही स्वरूप बताया गया है। आप ही अन्तर्यामी पुरुष, इन्द्र और उत्तम देवता हैं। जो भविष्य है, वह भी आप ही हैं। आप ही ईशान, आप अमृत और आप ही मर्त्य हैं। यह सम्पूर्ण संसार आपसे ही अङ्कुरित होता है, अतः आप परम महान् और सबसे उत्तम हैं। देव! आप सबसे ज्येष्ठ हैं, पुरुष हैं और आप ही दस प्राणवायुओंके रूपमें स्थित हैं। आप विश्वरूप होकर चार भागोंमें स्थित हैं। अमृतस्वरूप होकर नौ भागोंके साथ द्युलोकमें रहते हैं और नौ भागोंसहित सनातन पौरुषेय रूप धारण करके अन्तरिक्षमें निवास करते हैं। आपके दो भाग पृथ्वीमें स्थित हैं और चार भाग भी यहाँ हैं। आपसे यज्ञोंकी उत्पत्ति होती है, जो जगत्में वृष्टि करनेवाले हैं। आपसे ही विराट्की उत्पत्ति हुई, जो सम्पूर्ण जगत्के हृदयमें अन्तर्यामी पुरुषरूपसे विराजमान हैं। वह विराट् पुरुष अपने तेज, यश और ऐश्वर्यके कारण सम्पूर्ण भूतोंसे विशिष्ट है। आपसे ही देवताओंका आहारभूत हवनीय घृत उत्पन्न हुआ। ग्राम्य और जंगली ओषधियाँ तथा पशु एवं मृग आदि भी आपसे ही प्रकट हुए हैं। देवदेव! आप ध्येय और ध्यानसे परे हैं। आपने ही ओषधियोंको उत्पन्न किया है। आप ही सात मुखोंवाले देदीप्यमान विग्रहसे युक्त काल हैं। यह स्थावर और जङ्गम तथा चर और अचर सम्पूर्ण जगत् आपसे ही प्रकट हुआ है और आपमें ही स्थित है। आप अनिरुद्ध, वासुदेव, प्रद्युम्न तथा दैत्यनाशक संकर्षण हैं। देव! आप सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ और समस्त विश्वके परम आश्रय हैं। कमलनयन! मेरी रक्षा कीजिये। नारायण! आपको नमस्कार है। भगवन्! विष्णो! आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। सर्वलोकेश्वर! आपको नमस्कार है। कमलालय! आपको नमस्कार है। गुणालय! आपको नमस्कार है। गुणाकर! आपको नमस्कार है। वासुदेव! आपको नमस्कार है। नुरोत्तम! आपको नमस्कार है। जनार्दन! आपको नमस्कार है। सनातन! आपको नमस्कार है।

योगिगम्य परमेश्वर! आपको नमस्कार है। योगके आश्रयस्थान! आपको नमस्कार है। गोपते! श्रीपते! मरुत्पते! श्रीविष्णो! आपको नमस्कार है। जगत्पते! आप जगत्को उत्पन्न करनेवाले और ज्ञानियोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। दिवस्पते! आपको नमस्कार है। महीपते! आपको नमस्कार है। पुण्डरीकाक्ष! आप मधु दैत्यका वध करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है, नमस्कार है। कैटभको मारनेवाले नारायण! आपको नमस्कार है। सुब्रह्मण्य! आपको नमस्कार है। पीठपर वेदोंको धारण करनेवाले महामत्स्यरूप अच्युत! आपको नमस्कार है। आप समुद्रके जलको मथ डालनेवाले और लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। विशाल नासिकावाले अश्वमुख भगवान् हयग्रीव! महापुरुष-विग्रह! आप मधु और कैटभका नाश करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! आप पृथ्वीको ऊपर उठानेके लिये विशाल कच्छपका शरीर धारण करनेवाले हैं, आपने अपनी पीठपर मन्दराचलको धारण किया था। महाकूर्मस्वरूप आप भगवान्को नमस्कार है। पृथ्वीका उद्धार करनेवाले महावराह-को नमस्कार है। भगवन्! आपने ही पहले-पहल वराहरूप धारण किया था, अतः आप आदिवराह कहलाते हैं। आप विश्वरूप और विधाता हैं, आपको नमस्कार है। आप अनन्त, सूक्ष्म, मुख्य, श्रेष्ठ, परमाणुस्वरूप तथा योगिगम्य हैं। आपको नमस्कार है। जो परम कारण (प्रकृति) के भी कारण हैं, योगीश्वर-मण्डलके आश्रयस्थान हैं, जिनके स्वरूपका

ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है, जो क्षीरसागरके भीतर निवास करनेवाले महान् सर्प—शेषनागकी सुन्दर शय्यापर शयन करते हैं तथा जिनके कानोंमें सुवर्ण एवं रत्नोंके बने हुए दिव्य कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, उन आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है।

कण्डुमुनिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! तुम मुझसे जो कुछ पाना चाहते हो, उसे शीघ्र कहो।'

कण्डु बोले—जगन्नाथ ! यह संसार अत्यन्त दुस्तर और रोमाञ्चकारी है। इसमें दुःखोंकी ही अधिकता है। यह अनित्य और केलेके पत्तेकी भाँति सारहीन है। इसमें न कहीं आश्रय है, न अवलम्ब। यह जलके बुलबुलोंकी भाँति चञ्चल है। इसमें सब प्रकारके उपद्रव भरे हुए हैं। यह दुस्तर होनेके साथ ही अत्यन्त भयानक है। मैं आपकी मायासे मोहित होकर चिरकालसे इस संसारमें भटक रहा हूँ, किंतु कहीं भी शान्ति नहीं पाता। मेरा मन विषयोंमें आसक्त है। देवेश ! इस संसारके भयसे पीड़ित होकर आज मैं आपकी शरणमें आया हूँ। श्रीकृष्ण ! आप इस भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। सुरेश्वर ! मैं आपकी कृपासे आपके ही सनातन परम पदको प्राप्त करना चाहता हूँ, जहाँ जानेसे फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता।

श्रीभगवान् बोले—मुनिश्रेष्ठ ! तुम मेरे भक्त हो। सदा मेरी ही आराधना करते रहो। तुम्हें मेरे प्रसादसे अभीष्ट मोक्षपदकी प्राप्ति होगी। विप्रवर ! मेरे भक्त क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र तथा अन्त्यज भी परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं; फिर तुम-जैसे तपोनिष्ठ ब्राह्मणकी तो बात ही क्या है ! चाण्डाल भी यदि उत्तम श्रद्धासे युक्त एवं मेरा भक्त हो तो उसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है; फिर औरोंकी तो चर्चा ही क्या है।*

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर मुनिवर कण्डु बहुत प्रसन्न हुए और समस्त कामनाओंका त्याग करके स्वस्थचित्त हो गये। समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके ममता और अहंकारसे रहित हो एकाग्र चित्तसे भगवान् पुरुषोत्तमका ध्यान करने लगे। भगवान्के निर्लेप, निर्गुण, शान्त और सन्मात्र स्वरूपका चिन्तन करते हुए उन्होंने दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लिया। जो महात्मा कण्डुकी कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें जाता है। मुनिवरो ! इस प्रकार मैंने इस कर्मभूमि तथा मोक्षदायक पुरुषोत्तमक्षेत्रका वर्णन किया, जहाँ साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं। जो मनुष्य संसारजनित दुःखोंका नाश और मोक्ष प्रदान करनेवाले वरदायक भगवान् श्रीपुरुषोत्तमका भक्तिपूर्वक दर्शन, स्तवन और ध्यान करते हैं, वे समस्त दोषोंसे मुक्त हो भगवान्के अविनाशी धाममें जाते हैं।

मुनियोंका भगवान्के अवतारके सम्बन्धमें प्रश्न और श्रीव्यासजीद्वारा उसका उत्तर

मुनि बोले—पुरुषश्रेष्ठ व्यासजी ! आपने भारतवर्ष तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रके अद्भुत गुणोंका वर्णन किया। उस क्षेत्रके उत्तम माहात्म्यको सुनकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। हमारे मनमें बहुत दिनोंसे एक संदेह है। उसका निवारण करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। हम भूतलपर श्रीकृष्ण, बलदेव और सुभद्राके अवतारका रहस्य सुनना चाहते हैं। वीरवर श्रीकृष्ण और बलभद्र किसलिये अवतीर्ण हुए थे ? वे वसुदेवके पुत्र होकर नन्दके घरमें क्यों रहे ? यह मर्त्यलोक सर्वथा निःसार है। इसमें अधिकतर दुःख ही भरा है। यह पानीके बुलबुलेकी भाँति अत्यन्त चञ्चल—क्षणभङ्गुर है। इसकी भयंकरता इतनी बढ़ी हुई है कि उसका विचार आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसे संसारमें उन्हें जन्म ग्रहण करनेकी क्या आवश्यकता थी ? इस भूतलपर अवतीर्ण हो उन्होंने जो-जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। उनका सम्पूर्ण चरित्र अद्भुत और अलौकिक है। भगवान् सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी एवं सुरश्रेष्ठ हैं और पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाले तथा अविनाशी परमात्मा हैं। उन्होंने अपने दिव्य स्वरूपको मनुष्योंके बीचमें कैसे प्रकट किया ? जो भगवान् सम्पूर्ण जङ्गम प्राणियोंकी गति हैं, वे मानव-शरीरमें कैसे आये ? इसे देवता और दैत्य भी बड़े आश्चर्यकी बात

* मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक् श्रद्धासमन्वितः। प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा ॥
(१७८ । १८५-१८६)

मानते हैं। महामुने ! आप भगवान् विष्णुके आश्चर्यजनक अवतारकी कथा सुनाइये । भगवान्‌के बल और पराक्रम विख्यात हैं। उनके तेजकी कोई माप नहीं है । वे अपने अलौकिक चरित्रोंके द्वारा आश्चर्यरूप जान पड़ते हैं। आप उनके तत्त्वका वर्णन कीजिये । भगवान् पुरुषोत्तम देवताओंकी पीड़ा दूर करनेवाले और सर्वव्यापी हैं। जगत्के रक्षक और सर्वलोकमहेश्वर हैं। संसारकी सृष्टि, पालन और संहार—सब वे ही करते हैं। वे ही सब लोकोंको सुख देनेवाले हैं। वे अक्षय, सनातन, अनन्त, क्षय और वृद्धिसे रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्तामात्ररूपसे स्थित, अविकारी, विभु, नित्य, अचल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त, निरामय तथा शाश्वत परमात्मा हैं। सत्ययुगमें उनका विशुद्ध 'हरि' नाम सुना जाता है। देवताओंमें वे वैकुण्ठ और मनुष्योंमें श्रीकृष्ण नामसे विख्यात हैं। उन्हीं परमेश्वरकी भूत और भविष्य लीलाओंको, जिनका रहस्य अत्यन्त गहन है, हम सुनना चाहते हैं।

व्यासजी बोले—जो सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी, सबकी उत्पत्तिके कारण, पुराणपुरुष, सनातन, अविनाशी, चतुर्व्यूहस्वरूप, निर्गुण, गुणरूप, परम महान्, परमगुरु, वरेण्य, असीम, यज्ञाङ्ग और देवता आदिके प्रियतम हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनसे लघु और जिनसे महान् दूसरा कोई नहीं है, जिन अजन्मा प्रभुने सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रक्खा है, जो आविर्भाव, तिरोभाव, दृष्ट और अदृष्टसे विलक्षण हैं; सृष्टि और संहारको भी जिनका स्वरूप बतलाया जाता है, उन आदिदेव परब्रह्म परमात्माको मैं समाधिके द्वारा प्रणाम करता हूँ। जो सम्पूर्ण विकारोंसे रहित, शुद्ध, नित्य, सदा एकरूप रहनेवाले और विजयी हैं, उन परमात्मा श्रीविष्णुको नमस्कार है। जो हिरण्यगर्भ, हरि, शंकर तथा वासुदेव कहलाते हैं, जिनसे समस्त प्राणियोंका तरण-तारण होता है, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। जो एक होते हुए भी अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं, स्थूल और सूक्ष्म, व्यक्त और अव्यक्त जिनके स्वरूप हैं और जो मोक्षके कारण हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो जगन्मय हैं, जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके मूल कारण हैं, उन परमात्मा भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर, सम्पूर्ण विश्वके आधारभूत, समस्त प्राणियोंके भीतर विराजमान और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको प्रणाम है। जो वास्तवमें अत्यन्त निर्मल ज्ञानस्वरूप होते हुए भी भ्रमपूर्ण दृष्टिके कारण भिन्न-भिन्न पदार्थोंके रूपमें स्थित दिखायी देते हैं; जिनका आदि नहीं है, जो सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर, अजन्मा, अक्षय और अविनाशी हैं; उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार करके मैं उनके अवतारकी कथा आरम्भ करता हूँ।

पूर्वकालमें दक्ष आदि श्रेष्ठ मुनियोंके पूछनेपर कमलयोनि भगवान् ब्रह्माने जो कुछ कहा था, वही मैं भी आप लोगोंसे कहूँगा। जो अपने चारों मुखोंसे ऋक्, साम आदि चारों वेदोंका उच्चारण करते हुए तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं, जिनका प्रादुर्भाव एकार्णवके जलसे हुआ है, असुरगण जिनके यज्ञोंका लोप नहीं कर पाते, उन भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम करके मैं उन्हींकी कही हुई कथा आरम्भ करता हूँ। जिन्होंने सृष्टिके उद्देश्यसे धर्म आदिको प्रकट किया है, उन अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके सम्पूर्ण मतका ही मैं वर्णन करूँगा। तत्त्वदर्शी मुनियोंने जलको 'नार' कहा है। वह नार पूर्वकालमें भगवान्‌का अयन (निवासस्थान) हुआ। इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। वे भगवान् नारायण सबको व्याप्त करके स्थित हैं। वे ही सगुण और निर्गुण कहलाते हैं। वे दूर भी हैं और समीप भी। उनकी 'वासुदेव' संज्ञा है। ममताका त्याग करनेपर ही उनका साक्षात्कार होता है। उनमें रूप और वर्ण आदि काल्पनिक भाव नहीं हैं। वे सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित और एकरूप हैं। जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब वे अपने आपको संसारमें प्रकट करते हैं। पूर्वकालमें उन्हीं प्रजापालक भगवान्‌ने वाराहरूप धारण करके थूथुनसे जलको हटाया और रसातलमें डूबी हुई पृथ्वीको अपनी एक दाढ़से कमलके फूलकी भाँति ऊपर उठा लिया। उन्होंने ही नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुका वध किया और विप्रचित्ति आदि अन्य दानवोंको भी मार गिराया। फिर वामन अवतार लेकर मायासे बलिको बाँधा और दैत्योंको जीतकर तीनों लोकोंको अपने तीन पगोंसे ही नाप लिया। वे ही भृगु-वंशमें परमप्रतापी जमदग्निकुमार परशुरामके रूपमें उत्पन्न हुए, जिन्होंने पिताके वधका बदला लेनेके लिये क्षत्रियोंका संहार कर डाला। उन्हीं भगवान्‌ने अत्रिकुमार प्रतापी दत्तात्रेयके रूपमें अवतीर्ण हो महात्मा अलर्कको अष्टाङ्गयोगका उपदेश दिया। त्रेतामें दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें प्रकट होकर उन्होंने ही त्रिभुवनको भय देनेवाले रावणका युद्धमें संहार किया।

प्रलयकालमें जब सारी सृष्टि एकार्णवमें निमग्न हो गयी, उस समय देवताओंके भी देवता जगत्पति श्रीविष्णु एक सहस्र युगोंतक शेषनागकी शय्यापर सोते रहे। वास्तवमें वे योगनिद्राका आश्रय ले अपनी योगमहिमामें स्थित हो गये थे। सम्पूर्ण चराचर जगत्को उन्होंने अपने उदरमें स्थापित कर रक्खा था। जनलोकनिवासी सिद्ध और महर्षि उनकी स्तुति करते थे। उसी समय उनकी नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ, जो दिशारूपी पत्रोंसे सुशोभित, अग्नि और सूर्यके समान तेजोमय और पर्वतरूपी केसरोंसे अलंकृत था। सुवर्णमय मेरुगिरि उसका किञ्जल्क (केसरका मध्यभाग) था। वह कमल ही पितामह ब्रह्माजीका सुन्दर गृह था। उसीमें चार मुखोंवाले देवाधिदेव ब्रह्माजी प्रकट हुए। उस समय भगवान् विष्णुके कानोंकी मैलसे दो महाबली और महापराक्रमी दानव उत्पन्न हुए, जो ब्रह्माजीको मार डालनेके लिये उद्यत हो गये। उनका नाम मधु और कैटभ था। भगवान्ने समुद्ररूपी शयनगृहसे उठकर उन दोनों दुर्धर्ष दैत्योंका वध किया। ये तथा और भी भगवान्की असंख्य लीलाएँ हैं, जिनकी मैं गणना नहीं कर सकता। इस समय अजन्मा भगवान्के जिस अवतारका प्रसङ्ग चल रहा है, वह मथुरामें हुआ था। इस प्रकार भगवान्की जो सात्त्विक मूर्ति है, वही अवतार धारण करती है। वह प्रद्युम्न नामसे विख्यात है और सदा रक्षाकार्यमें संलग्न रहती है। वह भगवान् वासुदेवकी इच्छाके अनुसार देवता, मनुष्य और तिर्यक् योनिमें अवतीर्ण होती है और उसीके अनुकूल स्वभाव बना लेती है। भक्त पुरुषोंद्वारा पूजित होनेपर वह उनकी मनोवाञ्छित कामनाओंको भी पूर्ण करती है। इस तरह मैंने यहाँ भगवान्के अवतारका रहस्य बतलाया है। भगवान् विष्णु यद्यपि कृतकृत्य हैं, उन्हें कुछ करना अथवा पाना नहीं है, तो भी वे लोक-कल्याणके लिये ही मानवरूपमें प्रकट हुए थे।

भगवान्के अवतारका उपक्रम

व्यासजी कहते हैं—मुनिवरो! अब मैं संक्षेपसे श्रीहरिके अवतारका वर्णन करता हूँ, सुनो। भगवान् इस पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छासे अवतार लेते हैं। जब-जब अधर्मकी वृद्धि होती है और धर्मका ह्रास होने लगता है, तब-तब भगवान् जनार्दन अपने स्वरूपके दो भाग करके यहाँ अवतीर्ण होते हैं। साधु पुरुषोंकी रक्षा, धर्मकी स्थापना, दुष्टों तथा अन्य देव-द्रोहियोंका दमन और प्रजावर्गका पालन करनेके लिये वे प्रत्येक युगमें अवतार धारण करते हैं। पहलेकी बात है, यह पृथ्वी अत्यन्त भारसे पीड़ित हो मेरु-पर्वतपर देवताओंके समाजमें गयी और ब्रह्मा आदि सब देवताओंको प्रणाम करके खेद और करुणामिश्रित वाणीमें अपना सब हाल सुनाने लगी—'सुवर्णके गुरु अग्नि, गौओंके गुरु सूर्य तथा मेरे गुरु सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय भगवान् नारायण हैं। इस समय ये कालनेमि आदि दैत्य मर्त्यलोकमें जन्म लेकर दिन-रात प्रजाको कष्ट देते रहते हैं। सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने जिस कालनेमि नामक महान् असुरका वध किया था, वही अब उग्रसेनकुमार कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ है। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्दासुर, अत्यन्त भयंकर बलिकुमार बाणासुर तथा और भी जो महापराक्रमी दुरात्मा दैत्य राजाओंके घरमें उत्पन्न हुए हैं, उनकी मैं गणना नहीं कर सकती। दिव्यमूर्तिधारी देवताओ! इस समय मेरे ऊपर महाबली और गर्वीले दैत्योंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं। सुरेश्वरो! मैं आपलोगोंको बताये देती हूँ कि उन दैत्योंके भारी भारसे पीड़ित होनेके कारण अब मुझमें अपनेको धारण करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी है। अतः आपलोग मेरा भार उतारिये।'



पृथ्वीका यह वचन सुनकर सम्पूर्ण देवताओंने उसका भार उतारनेके लिये ब्रह्माजीको प्रेरित किया। तब ब्रह्माजी बोले—'देवताओ ! पृथ्वी जो कुछ कहती है, वह सब ठीक है। वास्तवमें मैं, महादेवजी और तुमलोग—सब भगवान् नारायणके ही स्वरूप हैं। भगवान्‌की जो विभूतियाँ हैं, उन्हींकी परस्पर न्यूनता और अधिकता बाध्य-बाधकरूपसे रहा करती है। इसलिये आओ, हमलोग क्षीरसागरके उत्तम तटपर चलें और वहाँ श्रीहरिकी आराधना करके यह सब वृत्तान्त उनसे निवेदन करें। वे सबके आत्मा हैं, सम्पूर्ण जगत् उनका ही रूप है, वे सदा ही जगत्‌का कल्याण करनेके लिये अपने अंशसे अवतार ले धर्मकी स्थापना करते हैं।'

यों कहकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंके साथ क्षीरसागरके तटपर गये और एकाग्रचित्त होकर भगवान् गरुड़ध्वजकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—सहस्रमूर्ते ! आपको बारंबार नमस्कार है। आपके सहस्रों बाँहें, अनेक मुख और अनेक चरण हैं। आप जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारमें संलग्न रहते हैं। अप्रमेय परमेश्वर ! आपको बारंबार नमस्कार है। भगवन् ! आप सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, परम महान् और बड़े-बड़े गुरुओंसे भी अधिक गौरवशाली हैं। आप प्रकृति, समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व), अहंकार तथा वाणीके भी प्रधान मूल हैं। अपरा-प्रकृतिमय सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है। आप हमपर प्रसन्न होइये। देव ! यह पृथ्वी आपकी शरणमें आयी है। इस समय भूतलपर जो बड़े-बड़े असुर उत्पन्न हुए हैं, उनके द्वारा पीड़ित होनेसे इसके पर्वतरूपी बन्धन शिथिल पड़ गये हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌के परम आश्रय हैं। आपकी महिमा अपरंपार है। अतः यह वसुधा अपना भार उतरवानेके लिये आपकी ही सेवामें उपस्थित हुई है। हमलोग भी यहाँ उपस्थित हुए हैं। ये इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, वरुण, रुद्र, वसु, आदित्य, वायु, अग्नि तथा अन्य सम्पूर्ण देवता यहाँ खड़े हैं। देवेश्वर ! मुझे तथा इन देवताओंको जो कुछ करना हो, उसके लिये आज्ञा दीजिये। आपके ही आदेशका पालन करते हुए हमलोग सदा सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त रहेंगे।

ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर परमेश्वर भगवान् श्रीविष्णुने अपने श्वेत और कृष्ण—दो केश उखाड़े और देवताओंसे कहा—'मेरे ये दोनों केश ही भूतलपर अवतार ले पृथ्वीके भार और क्लेशका नाश करेंगे। सम्पूर्ण देवता भी अपने-अपने अंशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हो पहलेसे उत्पन्न हुए उन्मत्त दैत्योंके साथ युद्ध करें। इसमें संदेह नहीं कि नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे चूर्ण होकर सम्पूर्ण दैत्य नष्ट हो जायँगे। वसुदेवकी पत्नी जो देवकीदेवी हैं, उनके आठवें गर्भसे मेरा यह श्याम केश प्रकट होगा। भूतलपर अवतीर्ण हो यह कालनेमिके अंशसे उत्पन्न हुए कंसका वध करेगा।' यों कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। अदृश्य हो जानेपर उन परमात्माको प्रणाम करके सम्पूर्ण देवता मेरुपर्वतके शिखरपर चले गये और वहाँसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए।

एक दिन महर्षि नारदने कंससे जाकर कहा—'देवकीके आठवें गर्भमें भगवान् विष्णु उत्पन्न होंगे, जो तुम्हारा वध करेंगे।' यह सुनकर कंसको बड़ा क्रोध हुआ और उसने देवकी तथा वसुदेवको कारागृहमें बंदी बना लिया। वसुदेवने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'देवकीके गर्भसे जो-जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसे मैं स्वयं लाकर दे दिया करूँगा।' इसके अनुसार उन्होंने अपना प्रत्येक पुत्र कंसको अर्पित कर दिया। सुना गया है प्रथम उत्पन्न हुए छः गर्भ हिरण्यकशिपुके पुत्र थे, जिन्हें भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे योगनिद्राने क्रमशः देवकीके उदरमें स्थापित कर दिया था। योगनिद्रा भगवान् विष्णुकी महामाया है, जिसने अविद्यारूपसे सम्पूर्ण जगत्‌को मोहित कर रक्खा है। उससे श्रीहरिने कहा—'निद्रे ! तू मेरी आज्ञासे जा और पातालवासी छः गर्भोंको एक-एक करके देवकीके गर्भमें पहुँचा दे। ये सब कंसके हाथसे मारे जायँगे। तत्पश्चात् मेरा शेष नामक अंश अपने अंशांशसे देवकीके उदरमें सातवें गर्भके रूपमें प्रकट होगा। वसुदेवजीकी दूसरी भार्या रोहिणी आजकल गोकुलमें रहती हैं। तू प्रसवकालमें वह गर्भ रोहिणीके ही उदरमें डाल देना। उसके विषयमें लोग यही कहेंगे कि 'देवकीका सातवाँ गर्भ भोजराज कंसके डरसे गिर गया।' गर्भका संकर्षण होनेसे रोहिणीका वह वीर पुत्र लोकमें 'संकर्षण' नामसे विख्यात होगा। उसके शरीरका वर्ण श्वेतगिरिके शिखरकी भाँति गौर होगा। तदनन्तर मैं देवकीके उदरमें प्रवेश करूँगा। उस समय तुझे भी यशोदाके गर्भमें अविलम्ब प्रवेश करना होगा। वर्षाऋतुमें श्रावण[1]मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको आधीरातके समय मेरा प्रादुर्भाव होगा और तू नवमी तिथिमें यशोदाके गर्भसे जन्म लेगी। उस समय वसुदेव मेरी शक्तिसे प्रेरित होकर मुझे तो यशोदाकी शय्यापर पहुँचा देंगे और तुझे देवकीके पास लायेंगे। फिर कंस तुझे लेकर पत्थरकी शिला-

१. यहाँ श्रावणका अर्थ भाद्रपद समझना चाहिये। जहाँ अमावस्याके बाद शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ माना जाता है, वहाँकी मास गणनाकी दृष्टिमें रखकर श्रावण मास कहा गया है। जहाँ कृष्णपक्षसे मासका आरम्भ होता है, वहाँ वह तिथि भाद्रपद मासमें ही होगी।

पर पछाड़ेगा, किंतु तू उसके हाथसे निकलकर आकाशमें ठहर जायगी। यों करनेपर इन्द्र मेरे गौरवका स्मरण करके तुझे सौ-सौ बार प्रणाम करेंगे और विनीतभावसे अपनी बहिन बना लेंगे। फिर तू शुम्भ-निशुम्भ आदि सहस्रों दैत्यों-का वध करके अनेक स्थान बनाकर सारी पृथ्वीकी शोभा बढ़ायेगी। भूति, संनति, कीर्ति, कान्ति, पृथ्वी, धृति, लज्जा, पुष्टि, उषा तथा अन्य जो भी स्त्री-नामधारी वस्तु है, वह सब तू ही है। जो प्रातःकाल और अपराह्णमें तेरे सामने मस्तक झुकायेंगे और तुझे आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या तथा क्षेमंकरी आदि कहकर तेरी स्तुति करेंगे, उनके समस्त मनोरथ मेरे प्रसादसे सिद्ध हो जायँगे। जो लोग भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थसे तेरी पूजा करेंगे, उन मनुष्योंपर प्रसन्न होकर तू उनकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करेगी। वे सब लोग सदा मेरी कृपासे निश्चय ही कल्याणके भागी होंगे; अतः देवि! जो कार्य मैंने तुझे बताया है, उसे पूर्ण करनेके लिये जा।'

भगवान्‌का अवतार, गोकुलगमन, पूतना-वध, शकट-भञ्जन, यमलार्जुन-उद्धार, गोपोंका वृन्दावनगमन तथा बलराम और श्रीकृष्णका बछड़े चराना

व्यासजी कहते हैं—देवाधिदेव श्रीहरिने पहले जैसा आदेश दिया था, उसके अनुसार जगज्जननी योगमायाने देवकीके उदरमें क्रमशः छः गर्भ स्थापित किये और सातवेंको खींचकर रोहिणीके उदरमें डाल दिया। तदनन्तर तीनों लोकोंका उपकार करनेके लिये साक्षात् श्रीहरिने देवकीके गर्भमें प्रवेश किया और उसी दिन योगनिद्रा यशोदाके उदरमें प्रविष्ट हुई। भगवान् विष्णुके अंशके भूतलपर आते ही आकाशमें ग्रहोंकी गति यथावत् होने लगी। समस्त ऋतुएँ सुखदायिनी हो गयीं। देवकीके शरीरमें इतना तेज आ गया कि कोई उनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता था। देवतागण स्त्री-पुरुषोंसे अदृश्य रहकर अपने उदरमें श्रीविष्णु-को धारण करनेवाली माता देवकीका प्रतिदिन स्तवन करने लगे।

देवता बोले—देवि! तुम स्वाहा, तुम स्वधा और तुम्हीं विद्या, सुधा एवं ज्योति हो। इस पृथ्वीपर सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये तुम्हारा अवतार हुआ है। तुम प्रसन्न होकर सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण करो। हमारी प्रसन्नताके लिये उन परमेश्वरको अपने गर्भमें धारण करो, जिन्होंने स्वयं सम्पूर्ण जगत्‌को धारण कर रक्खा है।

इस प्रकार देवताओंद्वारा की हुई स्तुतिको सुनती हुई माता देवकीने जगत्‌की रक्षा करनेवाले कमलनयन भगवान् विष्णुको अपने गर्भमें धारण किया। तदनन्तर वह शुभ समय उपस्थित हुआ, जब कि समस्त विश्वरूपी कमलको विकसित करनेके लिये महात्मा श्रीविष्णुरूपी सूर्यदेवका देवकी-रूपी प्रभातवेलामें उदय हुआ। आधी रातका समय था। मेघ मन्द-मन्द स्वरमें गरज रहे थे। शुभ मुहूर्तमें भगवान् जनार्दन प्रकट हुए। उस समय सम्पूर्ण देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे। विकसित नील कमलके समान श्यामवर्ण, श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित वक्षःस्थलवाले चतुर्भुज बालकको उत्पन्न हुआ देख परम बुद्धिमान् वसुदेवजीने उल्लासपूर्ण वचनोंमें भगवान्‌का स्तवन किया और कंससे भयभीत होकर कहा—



'शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर! मैंने जान लिया, आप साक्षात् भगवान् हैं; परंतु देव! आप मुझपर कृपा करके अपने इस दिव्य रूपको छिपा लीजिये। आप मेरे भवनमें अवतीर्ण हुए हैं, यह बात जान लेनेपर कंस अभी मुझे कष्ट देगा।'

देवकी बोलीं—जिनके अनन्त रूप हैं, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका ही स्वरूप है, जो गर्भमें स्थित होकर भी अपने शरीरसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करते हैं तथा जिन्होंने अपनी मायासे ही बालरूप धारण किया है, वे देवदेव मुझपर प्रसन्न हों। सर्वात्मन्! आप अपने इस चतुर्भुज रूपका उपसंहार कीजिये। दैत्योंका संहार करनेवाले देवेश्वर! आपके इस अवतारका वृत्तान्त कंस न जानने पाये।

श्रीभगवान् बोले—देवि! पूर्वजन्ममें तुमने मुझ-जैसे पुत्रको पानेकी अभिलाषासे जो मेरा स्तवन किया था, वह आज सफल हो गया; क्योंकि आज मैंने तुम्हारे उदरसे जन्म लिया है।

मुनिवरो! यों कहकर भगवान् मौन हो गये तथा वसुदेवजी भी रातमें ही उन्हें लेकर घरसे बाहर निकले। वसुदेवजीके जाते समय पहरा देनेवाले मथुराके द्वारपाल योगनिद्राके प्रभावसे अचेत हो गये थे। उस रातमें बादल वर्षा कर रहे थे। यह देख शेषनागने छत्रकी भाँति अपने फणोंसे भगवान्‌को ढँक लिया और वे वसुदेवजीके पीछे-पीछे चलने लगे। मार्गमें अत्यन्त गहरी यमुना बह रही थीं। उनके जलमें नाना प्रकारकी सैंकड़ों लहरें उठ रही थीं, किंतु भगवान् विष्णुको ले जाते समय वे वसुदेवजीके घुटनोंतक होकर बहने लगीं। वसुदेवजीने उसी अवस्थामें यमुनाको पार किया। उन्होंने देखा, नन्द आदि बड़े-बूढ़े गोप राजा कंसका कर लेकर यमुनाके तटपर आये हुए हैं। इसी समय यशोदाजीने भी योगमायाको कन्यारूपमें जन्म दिया। परंतु वे योगनिद्रासे मोहित थीं; अतः 'पुत्र है या पुत्री' इस बातको जान न सकीं। प्रसूतिगृहमें और भी जो स्त्रियाँ थीं, वे सब निद्राके कारण अचेत पड़ी थीं। वसुदेवजीने चुपकेसे अपने बालकको यशोदाकी शय्यापर सुला दिया और कन्याको लेकर तुरंत लौट आये। जागनेपर यशोदाने देखा, 'मेरे नील कमलके समान श्यामसुन्दर बालक हुआ है।' इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वसुदेवजी भी कन्याको लेकर अपने घर लौट आये और देवकीकी शय्यापर उसे सुलाकर पहलेकी भाँति बैठ रहे। इतनेमें ही बालकके रोनेका शब्द सुनकर पहरा देनेवाले द्वारपाल सहसा उठकर खड़े हो गये। उन्होंने देवकीके संतान होनेका समाचार कंससे निवेदन किया। कंसने शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर उस बालिकाको उठा लिया। देवकी रुँधे हुए कण्ठसे 'छोड़ो, छोड़ दो इसे' यों कहकर उसे रोकती ही रह गयीं। कंसने उस कन्याको एक शिलापर दे मारा; किंतु वह आकाशमें ही ठहर गयी और आयुधोंसहित आठ बड़ी-बड़ी भुजाओंवाली देवीके रूपमें प्रकट हुई। उसने ऊँचे स्वरसे अट्टहास किया और कंससे रोषपूर्वक कहा—'ओ कंस! मुझे पटकनेसे क्या लाभ हुआ। जो तेरा वध करेंगे, वे प्रकट हो चुके हैं। देवताओंके सर्वस्वभूत वे श्रीहरि पूर्वजन्ममें भी तेरे काल थे। इन सब बातोंपर विचार करके तू शीघ्र ही अपने कल्याणका उपाय कर।' यों कहकर देवी कंसके देखते-देखते आकाश-मार्गसे चली गयी। उसके शरीरपर दिव्य हार, दिव्य चन्दन और दिव्य आभूषण शोभा पा रहे थे और सिद्धगण उसकी स्तुति करते थे।

तदनन्तर कंसके मनमें बड़ा उद्वेग हुआ। उसने प्रलम्ब और केशी आदि समस्त प्रधान असुरोंको बुलाकर कहा—'महाबाहु प्रलम्ब! केशी! धेनुक! और पूतना! अरिष्ट आदि अन्य सब वीरोंके साथ तुमलोग मेरी बात सुनो। दुरात्मा देवताओंने मुझे मार डालनेका यत्न प्रारम्भ किया है। किंतु वे मेरे पराक्रमसे भलीभाँति पीड़ित हो चुके हैं। अतः मैं उन्हें वीरोंकी श्रेणीमें नहीं गिनता। दैत्यवीरो! मुझे तो कन्याकी कही हुई बात आश्चर्य-सी प्रतीत होती है। देवता मेरे विरुद्ध प्रयत्न कर रहे हैं—यह जानकर मुझे हँसी आ रही है। तथापि दैत्येश्वरो! अब हमें उन दुष्टोंका और अधिक अपकार करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुई बालिकाने यह भी कहा है कि 'भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी विष्णु, जो पूर्वजन्ममें भी मेरी मृत्युके कारण बन चुके हैं, कहीं-न-कहीं उत्पन्न हो गये।' अतः इस भूतलपर बालकोंके दमनका हमें विशेष प्रयत्न करना चाहिये। जिस बालकमें बलकी अधिकता जान पड़े, उसे यत्नपूर्वक मौतके घाट उतार देना चाहिये।'

असुरोंको ऐसी आज्ञा देकर कंस अपने घर गया और विरोध छोड़कर वसुदेव तथा देवकीसे बोला—'मैंने आप दोनोंके इतने बालक व्यर्थ ही मारे। मेरे नाशके लिये तो कोई दूसरा ही बालक उत्पन्न हुआ है। आपलोग संताप न करें। आपके बालकोंकी भवितव्यता ही ऐसी थी। आयु पूरी होनेपर कौन नहीं मारा जाता?' इस प्रकार सान्त्वना दे कंसने उन दोनोंके बन्धन खोल दिये और उन्हें सब प्रकारसे संतुष्ट किया। तत्पश्चात् वह अपने महलके भीतर चला गया।



बन्धनसे मुक्त होनेपर वसुदेवजी नन्दके छकड़ेके पास आये। नन्द बड़े प्रसन्न दिखायी दिये। मुझे पुत्र हुआ है, यह सोचकर वे फूले नहीं समाते थे। वसुदेवजीने भी कहा—'बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस समय वृद्धावस्थामें आपको पुत्र हुआ है। अब तो आपलोगोंने राजाका वार्षिक कर चुका दिया होगा। जिसके लिये यहाँ आये थे, वह काम पूरा हो गया। यहाँ किसी श्रेष्ठ पुरुषको अधिक नहीं ठहरना चाहिये। नन्दजी! जब कार्य हो गया, तब आपलोग क्यों यहाँ बैठे हैं। शीघ्र ही अपने गोकुलमें जाइये। वहाँ रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न मेरा भी एक बालक है। उसका भी अपने ही पुत्रकी भाँति लालन-पालन कीजियेगा।'

वसुदेवजीके यों कहनेपर नन्द आदि गोप छकड़ोंपर सामान लादकर वहाँसे चल दिये। उनके गोकुलमें रहते समय रातमें बालकोंकी हत्या करनेवाली पूतना आयी और सोये हुए श्रीकृष्णको लेकर अपना स्तन पिलाने लगी। पूतना रातमें जिस-जिसके मुखमें अपना स्तन डालती थी, उस-उस बालकका शरीर क्षणभरमें निर्जीव हो जाता था। श्रीकृष्णने उसके स्तनको दोनों हाथोंसे पकड़कर खूब जोरसे दबाया और क्रोधमें भरकर उसके प्राणोंसहित दूध पीना आरम्भ किया। उस राक्षसीके शरीरकी नस-नाड़ियोंके बन्धन छिन्न-भिन्न हो गये। वह जोर-जोरसे कराहती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी। मरते समय उसका शरीर बड़ा भयंकर हो गया। पूतनाका चीत्कार सुनकर समस्त व्रजवासी भयके मारे जाग उठे। उन्होंने आकर देखा, पूतना मरी पड़ी है और श्रीकृष्ण उसकी गोदमें बैठे हैं। यह देखकर माता यशोदा थर्रा उठीं और श्रीकृष्णको शीघ्र ही गोदमें उठाकर गायकी पूँछ घुमाने आदिके द्वारा अपने बालकके ग्रह-दोषको शान्त किया। नन्दने भी गायका गोबर ले श्रीकृष्णके मस्तकमें लगाया और उनकी रक्षा करते हुए इस प्रकार बोले—'समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाले भगवान् श्रीहरि, जिनके नाभिकमलसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, तुम्हारी रक्षा करें। जिनकी दाढ़के अग्रभागपर रक्खी हुई यह पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करती है, वे वराहरूपधारी केशव तुम्हारी रक्षा करें। तुम्हारे गुदाभाग और उदरकी रक्षा भगवान् विष्णु तथा जङ्घा और चरणोंकी रक्षा श्रीजनार्दन करें। जो एक ही क्षणमें वामनसे विराट् बन गये और तीन पगोंसे सारी त्रिलोकीको नापकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न दिखायी देने लगे, वे भगवान् वामन तुम्हारी सदा रक्षा करें। तुम्हारे सिरकी गोविन्द तथा कण्ठकी केशव रक्षा करें। मुख, बाहु, प्रबाहु (कोहनीके नीचेका भाग), मन और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी अखण्ड ऐश्वर्यशाली अविनाशी भगवान् नारायण रक्षा करें। भगवान् वैकुण्ठ दिशाओंमें, मधुसूदन विदिशाओं (कोणों)में, हृषीकेश आकाशमें और पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् अनन्त पृथ्वीपर तुम्हारी रक्षा करें।'

इस प्रकार नन्दगोपद्वारा स्वस्तिवाचन होनेपर बालक श्रीकृष्ण छकड़ेके नीचे एक खटोलेपर सुलाये गये। गोपोंको मरी हुई पूतनाका विशाल शरीर देखकर अत्यन्त भय और आश्चर्य हुआ। एक दिनकी बात है, मधुसूदन श्रीकृष्ण छकड़ेके नीचे सोये हुए थे। उस समय वे दूध पीनेके लिये जोर-जोरसे रोने लगे। रोते-ही-रोते उन्होंने अपने दोनों पैर ऊपरकी ओर फेंकने आरम्भ किये। उनका एक पैर छकड़ेसे छू गया। उसके हल्के आघातसे ही वह छकड़ा उलटकर गिर पड़ा। उसपर रक्खे हुए मटके और घड़े आदि टूट-फूट गये। उस समय समस्त गोप-गोपियाँ हाहाकार करती हुई वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने देखा, 'बालक श्रीकृष्ण उतान सोये हुए हैं।' तब गोपोंने पूछा—'किसने इस छकड़ेको उलट दिया?' वहीं कुछ बालक खेल रहे थे। उन्होंने कहा—'इस बच्चेने ही गिराया है।' यह सुनकर गोपोंके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। नन्दगोपने अत्यन्त

विस्मित होकर बालकको गोदमें उठा लिया। यशोदाने भी आश्चर्यचकित हो, टूटे-फूटे भाँड़ोंके टुकड़ों और छकड़ेकी दही, फूल, फल और अक्षतसे पूजा की।



एक दिन वसुदेवजीकी प्रेरणासे गर्गजी गोकुलमें आये और अन्य गोपोंसे छिपे-छिपे ही उन्होंने उन दोनों बालकोंके द्विजोचित संस्कार किये। उनके नामकरण संस्कार करते हुए परम बुद्धिमान् गर्गजीने बड़े बालकका नाम 'राम' और छोटेका 'कृष्ण' रक्खा। थोड़े ही दिनोंमें वे दोनों बालक महाबलवान‍्के रूपमें प्रसिद्ध हो गये। घुटनोंके बलसे चलनेके कारण उनके दोनों घुटनों और हाथोंमें रगड़ पड़ गयी थी। वे शरीरमें गोबर और राख लपेटे इधर-उधर घूमा करते थे। यशोदा और रोहिणी उन्हें रोक नहीं पाती थीं। कभी गौओंके बाड़ेमें खेलते-खेलते बछड़ोंके बाड़ेमें निकल जाते थे। कभी उसी दिन पैदा हुए बछड़ोंकी पूँछ पकड़कर खींचने लगते थे। वे दोनों बालक एक ही स्थानपर साथ-साथ खेलते और अत्यन्त चपलता दिखाते थे। एक दिन, जब यशोदा उन्हें किसी प्रकार रोक न सकी, तब उनके मनमें कुछ क्रोध हो आया। उन्होंने अनायास ही बड़े-बड़े कार्य करनेवाले श्रीकृष्णकी कमरमें रस्सी कस दी और उन्हें ऊखलसे बाँध दिया। उसके बाद कहा—'ओ चञ्चल! तू बहुत ऊधम मचा रहा था। अब तुझमें सामर्थ्य हो तो जा।' यों कहकर गृहस्वामिनी यशोदा अपने काम-काजमें लग गयीं। जब यशोदा घरके काम-धंधेमें फँस गयीं, तब कमलनयन श्रीकृष्ण ऊखलको घसीटते हुए दो अर्जुन वृक्षोंके बीचसे जा निकले। वे दोनों वृक्ष जुड़वें उत्पन्न हुए थे। उन वृक्षोंके बीचमें तिरछी पड़ी हुई ऊखलीको ज्यों ही उन्होंने खींचा, उसी समय ऊँची शाखाओंवाले वे दोनों वृक्ष जड़से उखड़कर गिर पड़े। वृक्षोंके उखड़ते समय बड़े जोरसे कड़कड़ाहटकी आवाज हुई। उसे सुनकर समस्त व्रजवासी कातरभावसे वहाँ दौड़े आये। आनेपर सबने देखा वे दोनों महावृक्ष पृथ्वीपर गिरे पड़े हैं। उनकी मोटी-मोटी डालियाँ और पतली शाखाएँ भी टूट-टूटकर बिखर गयी हैं। उन दोनोंके बीचमें बालक कृष्ण मन्द-मन्द मुसकरा रहा है। उसके खुले हुए मुखमें थोड़े-से दाँत झलक रहे हैं। उसकी कमरमें खूब कसकर रस्सी बँधी हुई है। उदरमें दाम (रस्सी) बँधनेके कारण ही श्रीकृष्णकी दामोदरके नामसे प्रसिद्धि हुई।

तदनन्तर नन्द आदि समस्त बड़े-बूढ़े गोप, जो बड़े-बड़े उत्पातोंके कारण बहुत डर गये थे, उद्विग्न होकर आपसमें सलाह करने लगे—'अब हमें इस स्थानपर रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किसी दूसरे महान् वनमें चलना चाहिये। यहाँ नाशके हेतुभूत अनेक उत्पात देखे जाते हैं—जैसे पूतनाका विनाश, छकड़ेका उलट जाना और बिना आँधी-वर्षाके ही दोनों वृक्षोंका गिरना आदि। अतः अब हम विलम्ब न करके शीघ्र ही यहाँसे वृन्दावनको चल दें। जबतक कोई भूमिसम्बन्धी दूसरा महान् उत्पात व्रजको नष्ट न कर दे, तबतक ही हमें उसकी व्यवस्था कर लेनी चाहिये।' इस प्रकार वहाँसे चले जानेका निश्चय करके समस्त व्रजवासी अपने-अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहने लगे—'शीघ्र चलो, विलम्ब न करो।' फिर तो एक ही क्षणमें छकड़ों और गौओंके साथ सब लोग वहाँसे चल दिये। बछड़ोंके चरवाहे झुंड-के-झुंड एक साथ होकर उन बछड़ोंको चराते हुए चलते थे। व्रजका वह खाली किया हुआ स्थान अन्नके दाने बिखरे होनेके कारण क्षणभरमें कौए आदि पक्षियोंसे व्याप्त हो गया। लीलापूर्वक सब कार्य करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने गौओंके अभ्युदयकी कामनासे अपने शुद्ध अन्तःकरणके द्वारा नित्य वृन्दावन धामका चिन्तन किया। अतः अत्यन्त रूक्ष ग्रीष्मकालमें भी वहाँ सब ओर वर्षाकालकी भाँति नयी-नयी घास जम गयी। वृन्दावनमें पहुँचकर वह समस्त गोप-गौओं-

का समुदाय चारों ओरसे अर्धचन्द्राकार छकड़ोंकी बाड़ लगाकर बस गया।

तत्पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण बछड़ोंकी चरवाही करने लगे। गोष्ठमें रहकर वे दोनों भाई अनेक प्रकारकी बाललीलाएँ किया करते थे। मोरके पंखका मुकुट बनाकर पहनते, जंगली पुष्पोंको कानोंमें धारण करते, कभी मुरली बजाते और कभी पत्तोंको लपेटकर उन्हींके छिद्रोंसे तरह-तरहकी ध्वनि निकालते थे। दोनों काक-पक्षधारी बालक हँसते-खेलते हुए उस महान् वनमें विचरण करते थे। कभी आपसमें ही एक दूसरेको हँसाते हुए खेलते और कभी दूसरे ग्वालवालोंके साथ बालोचित क्रीड़ाएँ करते-फिरते थे। इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर बलराम और श्रीकृष्ण सात वर्षके हो गये। जो सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करनेवाले हैं, वे उस महाव्रजमें बछड़ोंके पालक बने हुए थे। धीरे-धीरे ग्रीष्म ऋतुके बाद वहाँ वर्षाका समय आया। मेघोंकी घटासे सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो गया। निरन्तर धारावाहिक वृष्टि होनेसे सम्पूर्ण दिशाएँ एक-सी जान पड़ती थीं। पानी पड़नेसे नयी-नयी घास उग आयी। स्थान-स्थानपर बीरबहूटियोंसे पृथ्वी आच्छादित हो गयी। जैसे पन्नेके फर्शपर लाल मणिकी ढेरी शोभा पाती है, उसी प्रकार बीरबहूटियोंसे ढकी हुई हरी-भरी पृथ्वी सुशोभित होती थी। जैसे नूतन सम्पत्ति पाकर उद्धत मनुष्योंके मन कुमार्गमें प्रवृत्त होने लगते हैं,



उसी प्रकार वर्षाके जलसे भरी हुई नदियोंका पानी बाँध तोड़कर तटके ऊपरसे बहने लगा। संध्या होनेपर महाबली राम और श्रीकृष्ण इच्छानुसार व्रजमें लौट आते और अपने समवयस्क ग्वाल-बालोंके साथ देवताओंकी भाँति क्रीड़ा करते थे।

कालिय नागका दमन

व्यासजी कहते हैं—एक दिनकी बात है—श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामजीको साथ लिये बिना ही वृन्दावन-के भीतर गये और ग्वाल-बालोंके साथ विचरने लगे। जंगली पुष्पोंका हार पहननेके कारण वे बड़े सुन्दर दिखायी देते थे। घूमते-घूमते श्रीकृष्ण चञ्चल लहरोंसे सुशोभित यमुना-के तटपर गये, जो तटपर लगे हुए फेनोंके रूपमें मानो सब ओर हास्यकी छटा बिखेर रही थी। उस समय यमुनामें एक कालिय नागका कुण्ड था, जो विषाग्निके कणोंसे दूषित होनेके कारण अत्यन्त भयंकर हो गया था। श्रीकृष्णने उस भयानक कुण्डको देखा। उसकी फैलती हुई विषाग्निसे तटके बड़े-बड़े वृक्ष दग्ध हो गये थे। वायुके आघातसे जो जलमें हिलोर उठती थी और उससे जो जलके छींटे चारों ओर पड़ते थे, उनका स्पर्श हो जानेपर पक्षी जलकर भस्म हो जाते थे। वह महाभयंकर कुण्ड मृत्युका दूसरा मुख था। उसे देखकर भगवान् मधुसूदनने सोचा, 'इस कुण्डके भीतर दुष्टात्मा कालिय नाग रहता है, जिसका विष ही शस्त्र है। इसने यहाँ सागरगामिनी यमुनाका सारा जल दूषित कर दिया है। प्याससे पीड़ित मनुष्य अथवा गौएँ इस जलका उपयोग नहीं कर सकते। अतः मुझे नागराज कालियका दमन करना चाहिये, जिससे सदा भयभीत रहने-वाले व्रजवासी यहाँ सुखपूर्वक विचर सकें। मैंने मनुष्य-लोकमें इसीलिये अवतार धारण किया है कि इन कुमार्गगामी दुरात्माओंको दण्ड देकर राहपर लाऊँ। वहाँ पास ही बहुत-सी शाखाओंसे सम्पन्न कदम्बका वृक्ष है। उसीपर चढ़कर जीवोंका नाश करनेवाले इस सर्पके कुण्डमें कूदूँगा।'

ऐसा निश्चय करके भगवान्‌ने अच्छी तरह कमर कस ली और वे वेगपूर्वक नागराजके कुण्डमें कूद पड़े। उनके कूदनेसे वह महान् कुण्ड क्षुब्ध हो उठा। पानीकी ऐसी

हिलोर उठी कि बहुत दूरके वृक्ष भी भीग गये। सर्पकी विषाग्निद्वारा तपे हुए जलसे भीगनेके कारण वे सभी वृक्ष सहसा जल उठे। चारों दिशाओंमें आगकी लपटें फैल गयीं। उस नागकुण्डमें पहुँचकर श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंपर ताल ठोंकी। उसका शब्द सुनकर नागराज उनके पास आया। उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। उसके फणोंसे विषाग्निकी लपटें निकल रही थीं। और भी बहुत-से विषैले नाग उसे घेरे हुए थे। सैकड़ों नागपत्नियाँ भी वहाँ उपस्थित थीं, जो मनोहर हार पहनकर बड़ी शोभा पा रही थीं। उनके अङ्गोंके हिलने-डुलनेसे कानोंके चञ्चल कुण्डल झिलमिला रहे थे। सर्पोंने श्रीकृष्णको अपने शरीरमें लपेट लिया और वे विषकी ज्वालासे भरे हुए मुखोंद्वारा उन्हें डसने लगे। श्रीकृष्णको कुण्डमें पड़कर नागके फणोंसे पीड़ित होते देख ग्वाल-बाल व्रजमें दौड़े आये और शोकाकुल होकर रोते हुए बोले—'व्रजवासियो! श्रीकृष्ण कालियह्रदमें डूबकर मूर्च्छित हो गये हैं। नागराज उन्हें खाये लेता है। तुम जल्दी आओ, विलम्ब न करो।'

यह बात सुनकर मानो गोपोंपर वज्र टूट पड़ा। समस्त गोप और यशोदा आदि गोपियाँ तुरंत कालियह्रदपर दौड़ी आयीं। 'हाय, हाय, प्यारे कृष्ण कहाँ हैं?' इस प्रकार



विलाप करती हुई गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो उठीं और यशोदाके साथ गिरती-पड़ती हुई वहाँ आयीं। नन्दगोप, अन्य गोपगण तथा अद्भुत पराक्रमी बलवान् भी श्रीकृष्णको देखनेके लिये तुरंत यमुनातटपर जा पहुँचे। पुत्रको हृद देखकर नन्दगोप और माता यशोदा दोनों जड़वत् हो गये। अन्यान्य गोपियाँ भी शोकसे आतुर हो रोती हुई श्रीकृष्णकी ओर देखने लगीं। वे भयसे कातर हो गद्गद वाणीमें प्रेमपूर्वक बोलीं—'हम सब लोग यशोदाके साथ नागराजके महान् कुण्डमें प्रवेश करें। अब व्रजमें लौटना हमारे लिये उचित नहीं है। भला, सूर्यके बिना दिन और चन्द्रमाके बिना रात कैसी। दूधके बिना गौएँ और श्रीकृष्णके बिना व्रज किस कामका। हम श्रीकृष्णके बिना गोकुलमें नहीं जायँगी।'

गोपियोंके ये वचन सुनकर रोहिणीनन्दन महाबली बलरामने देखा—गोपगण बहुत दुःखी हैं। इनकी आँखें आँसुओंसे भीगी हुई हैं। नन्दजी भी पुत्रके मुखपर दृष्टि लगाये अत्यन्त कातर हो रहे हैं और यशोदा अपनी सुध-बुध खो बैठी हैं। तब उन्होंने अपनी संकेतमयी भाषामें श्रीकृष्णको उनके माहात्म्यका स्मरण दिलाते हुए कहा—'देवदेवेश्वर! तुम क्यों इस प्रकार मानवभाव व्यक्त कर रहे हो। क्या इस बातको नहीं जानते कि तुम इन मानवोंसे भिन्न साक्षात् परमात्मा हो? तुम्हीं इस जगत्के केन्द्र हो। देवताओंका आश्रय भी तुम्हीं हो। तुम्हीं त्रिभुवनकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले त्रयीमय परमेश्वर हो। हम दोनों इस समय यहाँ अवतीर्ण हुए हैं। इस व्रजमें ये गोप-गोपियाँ ही हमारे बान्धव हैं। ये सब-के-सब तुम्हारे लिये दुखी हो रहे हैं। फिर क्यों अपने इन बन्धुओंकी उपेक्षा करते हो। तुमने मनुष्यभाव अच्छी तरह दिखा लिया। बालोचित चपलता दिखानेमें भी कोई कमी नहीं की। अब यह खेल रहने दो और दाँतोंमें ही अस्त्र-शस्त्रोंका काम लेनेवाले इस दुरात्मा नागका दमन करो।'

बलरामजीके द्वारा इस प्रकार स्मरण दिलाये जानेपर श्रीकृष्णके होठ मन्द मुसकानसे खिल उठे। उन्होंने अँगड़ाई लेकर अपने शरीरको साँपोंके बन्धनसे छुड़ा लिया और दोनों हाथोंसे उसके बीचके फणको नीचे झुकाकर वे उसीपर चढ़ गये और शीघ्रतापूर्वक पैर चलाते हुए नृत्य करने लगे। श्रीकृष्णके चरणोंके आघातसे उस नागके फणमें कई घाव हो गये। वह जिस फणको ऊपर उठाता, उसीको भगवान् अपने

पैरोंसे झुकाकर दबा देते थे। श्रीकृष्णके द्वारा कुचले जानेसे नागको चक्कर आने लगा। वह मूर्च्छित होकर डंडेकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसने मुखसे बहुत रक्त वमन किया। उसके मस्तक और गर्दन टेढ़े हो गये थे। मुखसे रक्तकी अजस्र धारा बह रही थी। यह देखकर नागराजकी पत्नियाँ भगवान् मधुसूदनकी शरणमें गयीं।



नागपत्नियाँ बोलीं—देवदेवेश्वर ! हमने आपको पहचान लिया। आप सबके ईश्वर और सबसे उत्तम हैं। अचिन्त्य परमज्योतिःस्वरूप जो ब्रह्म है, उसीके अंशभूत आप परमेश्वर हैं। देवता भी जिन स्वयम्भू प्रभुकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, उन्हींके स्वरूपका वर्णन हम-जैसी साधारण स्त्रियाँ कैसे कर सकती हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायुरूप यह ब्रह्माण्ड जिनके छोटे-से अंशका भी अंश है, उन भगवान्की स्तुति हम कैसे कर सकती हैं। जगन्नाथ ! हम बड़े कष्टमें पड़ गयी हैं। आप हमपर कृपा करें। यह नाग अब प्राण त्यागना चाहता है। हमें पतिकी भिक्षा दें।

उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर कालिय नागको कुछ आश्वासन मिला। यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया था, तो भी वह धीरे-धीरे बोला—'देवदेव ! मुझपर प्रसन्न हों। नाथ ! आपमें अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य स्वाभाविक हैं। आपसे बढ़कर अन्यत्र कहीं भी उनकी स्थिति नहीं है। ऐसे आप परमेश्वरकी मैं क्या स्तुति करूँगा। आप पर हैं। पर (मूल प्रकृति) के भी आदि कारण हैं। परकी प्रवृत्ति भी आपसे ही हुई है। परात्मन् ! आप परसे भी पर हैं। फिर मैं कैसे आपकी स्तुति कर सकता हूँ। ईश्वर ! आपने जाति, रूप और स्वभावसे मुझे जैसा बनाया है, उसके अनुसार ही मैंने यह चेष्टा की है। देवदेव ! यदि इन सबके विपरीत कोई चेष्टा करूँ तो मुझे दण्ड देना उचित हो सकता है। क्योंकि आपका ऐसा ही आदेश है। तथापि आप जगत्के स्वामी हैं। आपने मुझको जो दण्ड दिया है, उसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया; क्योंकि आपसे मिला हुआ दण्ड भी वरदान है। अब मेरे लिये दूसरे वरकी आवश्यकता नहीं है। अच्युत ! आपने मेरे बलका नाश किया, मेरे विषको भी हर लिया और पूर्णरूपसे मेरा दमन भी कर दिया। अब एकमात्र जीवन रह गया है। उसे छोड़ दीजिये और कहिये, आपकी क्या सेवा करूँ ?'

श्रीभगवान् बोले—सर्प ! अब तुम्हें यहाँ यमुना-जलमें कदापि नहीं रहना चाहिये। अपने भृत्य और परिवारके साथ समुद्रके जलमें चले जाओ। नाग ! तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणचिह्न देखकर नागोंके शत्रु गरुड़ तुमपर प्रहार नहीं करेंगे।

यों कहकर भगवान् श्रीहरिने नागराजको छोड़ दिया। वह भी श्रीकृष्णको प्रणाम करके समुद्रको चला गया। उसने सबके देखते-देखते सेवक, संतान, बन्धु-बान्धव और पत्नियोंके साथ सदाके लिये वह कुण्ड त्याग दिया। सर्पके चले जानेपर गोपोंने दौड़कर श्रीकृष्णको छातीसे लगाया, मानो वे मरकर पुनः लौट आये हों। उनके नेत्रोंसे आँसू निकलकर श्रीकृष्णके मस्तकपर गिरने लगे। कुछ गोप विस्मित होकर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। यमुना नदीका जल विषसे रहित हो गया—यह देख समस्त गोपोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। गोपियाँ श्रीकृष्णकी मनोहर लीलाओंका गान करने लगीं और ग्वाल-बाल उनके गुणोंकी प्रशंसा करने लगे। उन सबके साथ श्रीकृष्ण व्रजमें आये।

धेनुक और प्रलम्बका वध तथा गिरियज्ञका अनुष्ठान

व्यासजी कहते हैं—एक दिन बलराम और श्रीकृष्ण साथ-साथ गौएँ चराते हुए वनमें विचरने लगे। घूमते-घूमते वे परम रमणीय ताड़के वनमें जा पहुँचे। वहाँ धेनुक नामका दानव गदहेके रूपमें सदा निवास करता था। मनुष्यों और गौओंका मांस ही उसका भोजन था। फलकी समृद्धिसे पूर्ण मनोहर तालवनको देखकर ग्वाल-बाल वहाँके फल लेनेको ललचा उठे और बोले—'भैया राम! ओ कृष्ण! धेनुकासुर सदा इस भूभागकी रक्षा करता है। इसीलिये ये ताड़ोंके सुगन्धित फल लोगोंने छोड़ रक्खे हैं। हम इन्हें प्राप्त करना चाहते हैं। यदि आपलोगोंको जँचे तो इन फलोंको गिराइये।' ग्वाल-बालोंकी यह बात सुनकर बलराम और श्रीकृष्णने बहुत-से तालफल पृथ्वीपर गिराये। गिरते हुए फलोंका शब्द सुनकर वह गर्दभाकार दुष्ट दैत्य क्रोधमें भरा हुआ आया। आते ही उसने अपने दोनों पिछले पैरोंसे बलरामजीकी छातीमें प्रहार किया। बलरामजीने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाशमें घुमाना आरम्भ किया। घुमानेसे आकाशमें ही उसके प्राणपखेरू उड़ गये। फिर वेगसे बलरामजीने उसे एक महान् ताल वृक्षपर दे मारा। जैसे आँधी बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार उस दैत्यने गिरते-गिरते अपने शरीरके आघातसे बहुतेरे फल गिरा दिये। उसके मारे जानेपर और भी बहुत-से गर्दभाकार दैत्य आये, किंतु श्रीकृष्ण और बलभद्रने उन सबको खेल-खेलमें ही उठाकर वृक्षोंपर फेंक दिया। एक ही क्षणमें पके हुए ताड़के फलों और गर्दभाकार दैत्योंके शरीरसे सारी पृथ्वी पट गयी। इससे उस स्थानकी बड़ी शोभा होने लगी। तबसे उस तालवनमें गौएँ बाधारहित होकर नयी-नयी घास चरने लगीं।

अनुचरोंसहित धेनुकासुरके मारे जानेपर वह मनोहर तालवन समस्त गोप-गोपियोंके लिये सुखदायक हो गया। इससे वसुदेवके दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। वे दोनों महात्मा छोटे-छोटे सींगोंवाले बछड़ोंकी भाँति शोभा पा रहे थे। कंधेपर गाय बाँधनेकी रस्सी लिये, वनमालासे विभूषित हो वे दूर-दूरतक गौएँ चराते और उनके नाम ले-लेकर पुकारते थे। श्रीकृष्णका वस्त्र सुनहरे रंगका था और बलरामजीका नीले रंगका। उन्हें धारण किये वे दोनों भाई दो इन्द्रधनुषों एवं श्वेत-श्याम मेघोंकी भाँति शोभा पाते थे। लोकमें बालकोंके जो-जो खेल प्रचलित हैं, उन सबके द्वारा परस्पर क्रीड़ा करते हुए वनमें विचरते थे। समस्त लोकनाथोंके नाथ होकर भी वे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए और मानवधर्ममें तत्पर रहकर मनुष्ययोनिको गौरवान्वित करते थे। मानव-जातिके गुणोंसे युक्त भाँति-भाँतिके खेल खेलते हुए वनमें घूमते थे। कभी झूला झूलकर और कभी आपसमें कुश्ती लड़कर महाबली श्रीराम और श्रीकृष्ण व्यायाम करते थे। उन दोनोंको खेलते देख प्रलम्ब नामक दानव उन्हें पकड़ ले जानेकी इच्छासे वहाँ आया। उसने ग्वाल-बालोंके वेषमें अपने वास्तविक रूपको छिपा रक्खा था। मनुष्य न होते हुए भी मनुष्यका रूप धारण करके दानवोंमें श्रेष्ठ प्रलम्ब ग्वाल-बालोंकी उस मण्डलीमें बेखटके जा मिला। वह राम और कृष्ण दोनोंको उठा ले जानेका अवसर ढूँढ़ने लगा। उसने कृष्णको तो सर्वथा अजेय समझा। अतः रोहिणीनन्दन बलरामको ही मारनेका निश्चय किया।

तदनन्तर उन ग्वाल-बालोंमें हरिणाक्रीडन नामक खेल आरम्भ हुआ। यह बालकोंका वह खेल है, जिसमें दो-दो बालक एक साथ हिरणकी तरह उछलते हुए किसी निश्चित लक्ष्यतक जाते हैं। आगे पहुँचनेवाला विजयी होता है। हारा हुआ बालक विजयीको अपनी पीठपर बिठाकर नियत स्थानतक ले आता है। इस खेलमें सब लोग सम्मिलित हुए। दो-दो बालक एक साथ उछलते हुए चले। श्रीदामाके साथ श्रीकृष्ण, प्रलम्बके साथ बलराम तथा अन्य ग्वाल-बालोंके साथ दूसरे-दूसरे बालक कूद रहे थे। श्रीकृष्णने श्रीदामाको और बलरामने प्रलम्बको जीत लिया। इसी प्रकार श्रीकृष्ण-पक्षके अन्य बालकोंने भी अपने साथियोंको हरा दिया। अब वे हारे हुए बालक एक दूसरेको अपनी पीठपर लादे हुए भाण्डीर-वट तक आये और पुनः वहाँसे लौट चले। किन्तु दानव प्रलम्ब बलरामको अपने कंधेपर चढ़ाकर शीघ्र ही उड़ चला। वह चलता ही गया। कहीं रुका नहीं। जब वह बलरामजीका भार नहीं सह सका, तब बड़े क्रोधमें आकर वर्षाकालके मेघकी भाँति उसने अपने शरीरको बढ़ा लिया। बलरामजीने देखा, उस दैत्यका रंग जले हुए पर्वतके समान है। उसके गलेमें बहुत बड़ा हार लटक रहा था। मस्तकपर बहुत बड़ा मुकुट था। आँखें गाड़ीके पहिये-जैसी घूम रही थीं। उसके पैर रखनेसे

धरती डगमगाने लगती थी। उसका रूप बड़ा ही भयंकर था। ऐसे राक्षसके द्वारा अपनेको हरे जाते देख बलरामने श्रीकृष्णसे कहा—'कृष्ण! कृष्ण! इधर तो देखो, ग्वाल-बालोंके वेषमें छिपा हुआ कोई दैत्य मुझे हरकर लिये जाता है। इसकी विकराल मूर्ति पर्वतके समान दिखायी देती है। मधुसूदन! बताओ, इस समय मुझे क्या करना चाहिये। यह दुरात्मा बड़ी उतावलीके साथ भागा जाता है।'

यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके ओठ मन्द मुसकानसे खिल उठे। वे रोहिणीनन्दन बलरामके बल और पराक्रमको जानते थे। अतः उनसे बोले—'सर्वात्मन्! यह क्या बात है, आप तो स्पष्टरूपसे मनुष्यकी-सी चेष्टा करने लगे। आप सम्पूर्ण गुह्य पदार्थोंमें गुह्यसे भी गुह्य हैं। जरा अपने उस स्वरूपका तो स्मरण कीजिये, जो सम्पूर्ण जगत्का कारण, कारणोंका भी पूर्ववर्ती, अद्वितीय आत्मा और प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाला है। विश्वात्मन्! आप और मैं दोनों ही इस संसारके एकमात्र कारण हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यहाँ दो रूपोंमें प्रकट हैं। अप्रमेयात्मन्! आप अपने स्वरूपको स्मरण कीजिये और इस दानवको मार डालिये। तत्पश्चात् मानुष-भावका आश्रय लेकर बन्धुजनोंका हित कीजिये।'



महात्मा श्रीकृष्णके द्वारा इस प्रकार अपने स्वरूपका स्मरण कराये जानेपर महाबली बलरामने हँसकर प्रलम्बासुरको दबाया और क्रोधसे लाल आँखें करके उसके मस्तकपर एक मुक्का मारा। उनके इस प्रहारसे प्रलम्बके दोनों नेत्र बाहर निकल आये, मस्तिष्क फट गया और वह दैत्य मुँहसे खून उगलता हुआ पृथ्वीपर गिरकर मर गया। अद्भुत कर्म करनेवाले बलदेवजीके द्वारा प्रलम्बको मारा गया देख ग्वाल-बाल 'बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार प्रलम्बासुरके मारे जानेपर ग्वाल-बालोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए बलरामजी श्रीकृष्णके साथ पुनः गौओंके समूहमें आये।

इस तरह नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए बलराम और श्रीकृष्ण वनमें विहार करते रहे। इतनेमें ही वर्षा बीत गयी और शरद् ऋतुका आगमन हुआ। जलाशयोंमें कमल खिलने लगे, आकाश और नक्षत्र निर्मल हो गये। ऐसे समयमें समस्त व्रजवासी इन्द्रोत्सवका आयोजन करने लगे। उन्हें उत्सवके लिये अत्यन्त उत्सुक देख परम बुद्धिमान् श्रीकृष्णने बड़े-बूढ़े गोपोंसे कौतूहलवश पूछा—'यह इन्द्रोत्सव क्या वस्तु है, जिससे आपलोगोंको इतना हर्ष हुआ है?' श्रीकृष्णको अत्यन्त आदरपूर्वक प्रश्न करते देख नन्द गोपने कहा—'बेटा! देवराज इन्द्र मेघ और जलके स्वामी हैं। उन्हींसे प्रेरित होकर मेघ जलमय रसकी वृष्टि करते हैं। उस वृष्टिसे ही अन्न पैदा होता है, जिसे हम तथा अन्य देहधारी खाकर जीवन-निर्वाह करते और देवता आदिको भी तृप्त करते हैं। ये दूध और बछड़ोंवाली गौएँ इन्द्रके बढ़ाये हुए अन्नसे ही संतुष्ट हो हृष्ट-पुष्ट रहती हैं। जहाँ वर्षा करनेवाले मेघ होते हैं, वहाँ बिना खेतीकी भूमि नहीं दिखायी देती, कोई ऋणग्रस्त नहीं रहता और वहाँ एक भी भूखसे पीड़ित मनुष्य नहीं दृष्टिगोचर होता। मेघ सूर्यकी किरणोंद्वारा इस पृथ्वीका जल ग्रहण करते और फिर सम्पूर्ण लोकोंकी भलाईके लिये उसे बरसा देते हैं। अतः वर्षाकालमें सब राजालोग, हम तथा अन्य देहधारी भी बड़ी प्रसन्नताके साथ उत्सव मनाते और देवराज इन्द्रकी पूजा करते हैं।'

इन्द्रपूजाके विषयमें नन्दगोपका ऐसा कथन सुनकर भगवान् दामोदरने इन्द्रको कुपित करनेके उद्देश्यसे कहा—'पिताजी! हमलोग न तो खेती करते हैं और न व्यापारसे ही जीविका चलाते हैं। हमारे देवता तो ये गौएँ ही हैं। क्योंकि हम सब लोग वनवासी हैं। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्ड-

नीति—ये चार प्रकारकी विद्याएँ हैं। इनमेंसे वार्ताका सम्बन्ध हमलोगोंसे है। अतः उसका वर्णन सुनिये। कृषि, वाणिज्य और पशुपालन—इन तीन वृत्तियोंपर वार्ता अवलम्बित रहती है। कृषि किसानोंकी वृत्ति है और वाणिज्य क्रय-विक्रय करनेवाले वैश्योंकी। हमलोगोंकी सबसे प्रधान वृत्ति है—गोपालन। इस प्रकार ये वार्ताके तीन भेद हैं। उपर्युक्त चार विद्याओंमेंसे जो जिस विद्यासे निर्वाह करता है, वही उसके लिये महान् देवता है। उसे उसीकी पूजा-अर्चा करनी चाहिये। वही उसके लिये उपकारक है। जो मनुष्य एकका दिया हुआ फल भोगता और किसी दूसरेकी पूजा करता है, वह इस लोक या परलोकमें—कहीं भी कल्याणका भागी नहीं होता। हमारे इस व्रजकी जो प्रख्यात सीमाएँ हैं, उनका पूजन होना चाहिये। सीमाके भीतर वन है और वनके भीतर सम्पूर्ण पर्वत हैं, जो हमारे लिये परम आश्रय हैं। अतः हमें गिरियज्ञ और गोयज्ञ आरम्भ करना चाहिये। इन्द्रसे हमारा क्या लाभ होता है। हमारे लिये तो गौएँ और गिरिराज ही देवता हैं। ब्राह्मण मन्त्रयुक्त यज्ञको प्रधानता देते हैं। किसानोंके यहाँ सीरयज्ञ (हल-पूजन) होता है और हम-जैसे वन एवं पर्वतोंमें रहनेवाले लोग गिरियज्ञ और गोयज्ञका अनुष्ठान करें तो उत्तम है। इसलिये मेरा विचार तो यह है कि आपलोग भाँति-भाँतिकी पूजा-सामग्रियोंसे गिरिराज गोवर्धनकी पूजा करें। सम्पूर्ण व्रजका दूध एकत्र किया जाय और उससे ब्राह्मणों तथा अन्य याचकोंको भोजन कराया जाय। इस प्रकार गोवर्धनका पूजन, होम और ब्राह्मण-भोजन हो जानेपर गौओंका शरद् ऋतुमें प्राप्त होनेवाले पुष्पोंद्वारा शृङ्गार किया जाय और वे गिरिराजकी परिक्रमा करें। गोपगण ! यही मेरी सम्मति है। यदि आपलोग प्रेमपूर्वक यह यज्ञ करेंगे तो इसके द्वारा गौएँ और गिरिराज गोवर्धन प्रसन्न होंगे। साथ ही मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होगी।'

श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर नन्द आदि व्रजवासियोंके मुख हर्षसे प्रफुल्लित हो उठे। वे बोले, 'बहुत ठीक, बहुत ठीक। बेटा ! तुमने जो अपना मत प्रकट किया है, वह बहुत सुन्दर है। हमलोग वही करेंगे। अब गिरियज्ञका ही आरम्भ किया जाय।' यों कहकर व्रजवासियोंने गिरियज्ञका अनुष्ठान किया। गिरिराज गोवर्धनको दही और खीर आदिकी बलि चढ़ायी। सैकड़ों-हजारों ब्राह्मणोंको भोजन कराया। फिर गायों और साँड़ोंकी पूजा की गयी और उनके द्वारा गिरिराजकी परिक्रमा करायी गयी। साँड़ जलसे भरे मेघकी भाँति गर्जना करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण दूसरे रूपमें पर्वतके शिखरपर जा बैठे और मैं ही मूर्तिमान् गिरिराज हूँ—यों कहकर गोपोंद्वारा अर्पित किये हुए नाना प्रकारके अन्नोंका भोग लगाने लगे तथा अपने कृष्णरूपसे ही गोपोंके साथ पर्वत-शिखरपर चढ़कर उन्होंने अपने द्वितीय शरीर गिरिराजका पूजन भी किया। तदनन्तर



गिरिराजरूपमें प्रकट हुए भगवान् अन्तर्धान हो गये और गोपगण उनसे मनोवाञ्छित वरदान पाकर गिरियज्ञकी समाप्ति करके पुनः अपने व्रजमें लौट आये।

इन्द्रके द्वारा भगवान्का अभिषेक, श्रीकृष्ण और गोपोंकी बातचीत, रासलीला और अरिष्टासुरका वध

व्यासजी कहते हैं—इन्द्रयज्ञमें बाधा पड़नेसे देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने मेघोंके संवर्तक नामक गणसे कहा—'बादलो ! मेरी बात सुनो और मैं जो भी आज्ञा दूँ, उसे बिना विचारे शीघ्र पूरा करो। खोटी बुद्धिवाले

नन्दगोपने अन्य ग्वालोंके साथ श्रीकृष्णके बलपर उन्मत्त हो मेरे यज्ञको बंद कर दिया है। इसलिये उनकी जो सबसे बड़ी आजीविका हैं और जिनका पालन करनेके कारण वे गोप कहलाते हैं, उन गौओंको मूसलाधार वृष्टिसे पीड़ित करो। मैं भी पर्वत-शिखरके समान ऊँचे ऐरावतपर सवार हो वायुके संयोगसे तुमलोगोंकी सहायता करूँगा।' देवराजकी ऐसी आज्ञा पाकर मेघोंने गौओंका संहार करनेके लिये बड़ी भयंकर आँधी और वर्षा आरम्भ की। एक ही क्षणमें पृथ्वी, दिशाएँ और आकाश धारावाहिक वृष्टिके कारण एक हो गये। वर्षाके साथ ही वायु भी बड़े वेगसे चल रही थी। इससे काँपती हुई गौएँ प्राण त्यागने लगीं। कुछ गौएँ अपने अङ्कमें बछड़ोंको छिपाकर खड़ी थीं। जलकी तेज धारा बहनेसे कितनी ही गायोंके बछड़े बह गये। बछड़ोंका मुख अत्यन्त दयनीय हो रहा था। वायुके वेगसे उनकी गर्दन काँप रही थी। मानो वे आर्त होकर मन्द स्वरमें श्रीकृष्णसे त्राहि-त्राहिकी पुकार कर रही थीं। भगवान्‌ने देखा—गौओं, गोपियों और ग्वालोंसे भरा हुआ सम्पूर्ण व्रज अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। तब उन्होंने उनकी रक्षाके लिये इस प्रकार विचार किया—'जान पड़ता है यह सब देवराज इन्द्रकी करतूत है। अपना यज्ञ बंद होनेसे वे हमलोगोंके विरोधी हो गये हैं। इस समय मुझे समस्त व्रजकी रक्षा करनी चाहिये। यह गोवर्धन पर्वत बड़ी-बड़ी शिलाओंसे युक्त है। इसीको अपने बलसे उखाड़कर मैं व्रजके ऊपर छत्रकी भाँति धारण करूँगा।'

ऐसा निश्चय करके श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको उखाड़ लिया और उसे लीलापूर्वक एक ही हाथसे धारण किया। पर्वत उखाड़नेके बाद जगदीश्वर श्रीकृष्णने गोपोंसे कहा—'मैंने वर्षाका उपाय कर दिया। तुम सब लोग इसके नीचे आ जाओ और जहाँ वायुका झोंका न लगे, ऐसे स्थानोंमें यथायोग्य बैठ जाओ। किसी प्रकारका भय न करो। पर्वतके गिरनेकी आशङ्का बिल्कुल छोड़ दो।' भगवान्‌के यों कहनेपर समस्त गोप छकड़ोंपर बर्तन-भाँड़े लादे गौओंके साथ उसके नीचे आ गये। वर्षाकी धारासे पीड़ित हुई गोपियाँ भी वहीं आ गयीं। श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको स्थिरतापूर्वक धारण कर रक्खा था। वह तनिक भी हिलता-डुलता नहीं था। व्रजमें रहनेवाले गोप-गोपीजन हर्ष और विस्मयपूर्ण दृष्टिसे उन्हें देखते रहे। वे प्रेमपूर्वक निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए भगवान्‌की स्तुति करते रहे। नन्दके व्रजमें मेघोंने लगातार सात रातोंतक वर्षा की। वे इन्द्रकी आज्ञासे गोपोंका विनाश करनेपर तुले थे। परंतु



श्रीकृष्ण तबतक उस पर्वतको धारण किये खड़े ही रह गये। इससे गोकुलकी पूर्ण रक्षा हुई और इन्द्रकी प्रतिज्ञा झूठी हो गयी। तब उन्होंने बादलोंको वर्षा करनेसे रोक दिया। बादल हट गये। आकाश स्वच्छ हो गया और इन्द्रका षड्यन्त्र सफल न हो सका। तब समस्त व्रजके लोग प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे निकलकर पुनः अपने स्थानपर आये। फिर श्रीकृष्णने भी महापर्वत गोवर्धनको यथास्थान रख दिया। व्रजवासी विस्मित होकर उनकी यह लीला देख रहे थे।

श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वत धारण करके समूचे गोकुलको बचा लिया, यह जानकर इन्द्रको उनके दर्शनकी इच्छा हुई। वे महागज ऐरावतपर आरूढ़ हो व्रजमें आये। वहाँ देवराजने गोवर्धन पर्वतके समीप श्रीकृष्णका दर्शन किया। वे गोप-शरीर धारण करके गौएँ चरा रहे थे। उनका पराक्रम अनन्त था। सम्पूर्ण जगत्‌के रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ ग्वाल-बालोंसे घिरे हुए खड़े थे। ऊपर पक्षिराज गरुड़ अन्य प्राणियोंसे अदृश्य रहकर श्रीहरिके मस्तकपर अपने पंखोंसे छाया कर रहे थे। यह देखकर इन्द्र एकान्तमें ऐरावत हाथीसे उतरे और प्रेमसे एकटक देखते हुए भगवान् मधुसूदनसे मुसकराकर बोले—'महाबाहु श्रीकृष्ण! मैं आपके समीप जिस कार्यके लिये आया हूँ, उसे सुनिये। मेरे प्रति कोई अन्यथा विचार

नहीं करना चाहिये। परमेश्वर! आप ही सम्पूर्ण जगत्के आधार हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं। मेरा यज्ञ बंद होनेसे मेरे मनमें विरोध जाग उठा और मैंने गोकुलका नाश करनेके लिये बड़े-बड़े मेघोंको वर्षा करनेकी आज्ञा दे दी। उन्होंने ही यह संहार मचाया है। परंतु आपने महापर्वत गोवर्धनको उखाड़कर समस्त गौओंको कष्टसे बचा लिया। वीरवर! आपके इस अद्भुत कर्मसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। कृष्ण! मैं तो अब ऐसा मानता हूँ कि आज ही देवताओंका सारा प्रयोजन सिद्ध हो गया। क्योंकि आपने एक ही हाथसे इस गिरिराजको ऊपर उठा रक्खा था। श्रीकृष्ण! आपने गोवंशकी बहुत बड़ी रक्षा की है। अतः आपका आदर करनेके लिये मैं गौओंकी प्रेरणासे यहाँ आपके समीप आया हूँ। गौओंके आदेशानुसार आज मैं उपेन्द्रके पदपर आपका अभिषेक करूँगा। आजसे आप गौओंके इन्द्र होकर गोविन्द नामसे विख्यात होंगे।'

यों कहकर इन्द्रने ऐरावत हाथीसे घण्टा उतारा। उसमें पवित्र जल भरा हुआ था। उस दिव्य जलसे उन्होंने श्रीकृष्णका अभिषेक किया। श्रीकृष्णका अभिषेक होते समय



गौओंने तत्काल अपने थनोंसे दूधकी धारा बहाकर वसुधाको भिगो दिया। अभिषेकका कार्य पूरा करके शचीपति इन्द्रने प्रेम और विनयपूर्वक श्रीकृष्णसे फिर कहा—महाभाग! यह सब तो मैंने गौओंके आदेशसे किया है। अब पृथ्वीका भार उतरवानेकी इच्छासे मैं जो और कुछ बातें निवेदन करता हूँ, उन्हें भी सुनिये। मेरे अंशसे इस पृथ्वीपर एक श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न हुआ है, जिसका नाम अर्जुन है। आप उनकी सदा रक्षा करते रहें। मधुसूदन! अर्जुन वीर पुरुष है। वह इस भूमिका भार उतारनेमें आपकी सहायता करेगा। जैसे अपनी रक्षा की जाती है, वैसे ही आपको अर्जुनकी भी रक्षा करनी चाहिये।'

श्रीभगवान् बोले—देवराज! मैं जानता हूँ, भरतवंशमें आपके अंशसे अर्जुनकी उत्पत्ति हुई है। मैं जबतक इस भूतलपर रहूँगा, अर्जुनकी रक्षा करूँगा। मेरे रहते अर्जुनको युद्धमें कोई भी जीत न सकेगा। महाबाहु कंस, अरिष्टासुर, केशी, कुवलयापीड़ और नरकासुर आदि दैत्योंके मारे जानेके पश्चात् महाभारत युद्ध होगा। उसकी समाप्ति होनेपर यह जानना चाहिये कि पृथ्वीका भार उतर गया। अब आप जाइये, पुत्रके लिये चिन्ता न कीजिये। मेरे आगे अर्जुनका कोई भी शत्रु सफल न हो सकेगा। केवल अर्जुनके लिये ही मैं युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंको महाभारतके अन्तमें कुन्ती देवीके समीप सकुशल लौटाऊँगा।

श्रीकृष्णके यों कहनेपर देवराज इन्द्रने उन्हें छातीसे लगाया और ऐरावतपर आरूढ़ हो पुनः स्वर्गको प्रस्थान किया। तदनन्तर श्रीकृष्ण गौओं और ग्वाल-बालोंके साथ पुनः व्रजमें लौट आये। गोपियोंकी आँखें उनके पथपर लगी हुई थीं। उनकी दृष्टिसे वह मार्ग पवित्र हो गया था।

इन्द्रके चले जानेपर गोपोंने अनायास ही अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णसे प्रेमपूर्वक कहा—'महाभाग! आपने गोवर्धन पर्वत उठाकर हमारी और गौओंकी बहुत बड़े भयसे रक्षा की है। तात! यह अनुपम बाललीला, समाजमें नीचा समझा जानेवाला ग्वालेका शरीर और आपका दिव्य कर्म—यह सब क्या है? आपने जलमें प्रवेश करके कालिय नागका दमन किया, प्रलम्बको मार गिराया और गोवर्धन-पर्वतको हाथपर उठा लिया। इससे हमारे मनमें सन्देह पैदा होता है। अमितपराक्रमी श्रीकृष्ण! हम श्रीहरिके चरणोंकी शपथ खाकर सत्य-सत्य कहते हैं कि आपकी इस दिव्य शक्तिको देखते हुए हमें विश्वास नहीं होता कि आप मनुष्य हैं। आप देवता हैं या दानव, यक्ष हैं या गन्धर्व—इन सब बातोंका विचार करनेसे हमारा क्या लाभ है। आप

कोई भी क्यों न हों, इस समय हमारे बान्धव हैं। अतः आपको नमस्कार है। हम देखते हैं, स्त्री और बालकोंसहित समस्त व्रजका आपके प्रति प्रेम बढ़ रहा है और यह कर्म भी आपका ऐसा है, जिसे सम्पूर्ण देवता भी नहीं कर सकते। अभी आप बालक हैं, फिर भी आपके बलकी कोई सीमा नहीं है। इधर आपने हमलोगोंमें जन्म लिया है, जो अच्छी श्रेणीमें नहीं गिना जाता। अमेयात्मन्! इन सब बातोंपर विचार करनेसे आप हमारे मनमें शङ्का उत्पन्न कर देते हैं।'

गोपोंकी यह बात सुनकर भगवान् कुछ कालतक प्रेमसे रूठकर चुपचाप बैठे रहे। फिर इस प्रकार बोले—'गोपगण! यदि मेरे साथ सम्बन्ध होनेसे आपको लज्जा नहीं आती हो अथवा यदि मैं आपलोगोंका प्रिय हूँ तो इस प्रकार विचार करनेकी क्या आवश्यकता है। यदि मुझपर आपका प्रेम है अथवा मैं आपकी प्रशंसाका पात्र हूँ तो मेरे प्रति अपने बन्धु-बान्धवोंके समान ही स्नेह रखिये। मैं न देवता हूँ न गन्धर्व हूँ, न यक्ष हूँ और न दानव ही हूँ। मैं तो आपका बन्धु होकर उत्पन्न हुआ हूँ। अतः यही आपको मानना चाहिये। इसके विपरीत किसी भी विचारको मनमें स्थान नहीं देना चाहिये।'

श्रीहरिका यह वचन सुनकर गोप मौन हो गये। वे यह सोचकर कि कन्हैया हमारी बातें सुनकर रूठ गया है, वहाँसे चुपचाप चले गये।

तदनन्तर एक दिन निशाकालमें श्रीकृष्णने देखा—आकाश स्वच्छ है, शरच्चन्द्रकी मनोरम चाँदनी चारों ओर फैली है, कुमुदिनी खिली है, जिसकी आमोदमय सुगन्धसे सम्पूर्ण दिशाएँ महक रही हैं। वनमें सब ओर भौंरे गूँज रहे हैं, जिससे वह वनश्रेणी अत्यन्त मनोहारिणी जान पड़ती है। प्रकृतिकी यह नैसर्गिक शोभा देखकर उन्होंने गोपियोंके साथ रास करनेका विचार किया। श्रीकृष्णने अत्यन्त मधुर स्वरमें संगीतकी मधुर तान छेड़ दी, जो वनिताओंको बहुत ही प्रिय थी। गीतकी मनोरम ध्वनि सुनकर गोपियाँ घर छोड़कर निकल पड़ीं और बड़ी उतावलीके साथ उस स्थानपर आ पहुँचीं, जहाँ मधुसूदन मुरली बजा रहे थे। वहाँ आकर कोई गोपी तो उनके स्वरमें स्वर मिलाकर धीरे-धीरे गाने लगी। कोई ध्यान देकर सुनती हुई मन-ही-मन भगवान्का स्मरण करने लगी। कोई 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर लजा गयी। कोई प्रेमान्ध होकर लज्जाको तिलाञ्जलि दे उनके बगलमें खड़ी हो गयी। कोई गोपी बाहर गुरुजनोंको खड़ा



देख घरके भीतर ही रह गयी और नेत्र बंद करके तन्मय हो गोविन्दका ध्यान करने लगी। गोपियोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण रासलीलाका रसास्वादन करनेको उत्सुक थे। अतः उन्होंने शरत्कालीन चन्द्रमाकी ज्योत्स्नासे अत्यन्त मनोरम प्रतीत होनेवाली उस रजनीका सम्मान किया— रास आरम्भ करके उसे गौरव प्रदान किया।

इसी बीचमें श्रीकृष्ण गायब होकर कहीं अन्यत्र चले गये। गोपियोंका शरीर श्रीकृष्णकी चेष्टाओंके अधीन था। वे झुंड-की-झुंड अपने प्रियतमकी खोजके लिये वृन्दावनमें विचरने लगीं। उनके मनमें केवल श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा थी। वे वृन्दावनकी भूमिपर रात्रिमें श्रीकृष्णके चरण-चिह्न देखकर उन्हें चारों ओर ढूँढ़ रही थीं। श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करती हुई उन्हींमें व्यग्र हो सब गोपियाँ एक ही साथ वृन्दावनमें विचरने लगीं। बहुत खोजनेपर भी जब श्रीकृष्ण नहीं मिले, तब उनके दर्शनसे निराश हो वे सब-की-सब लौटकर यमुनाके तटपर आयीं और उनके मनोहर चरित्रोंका गान करने लगीं। इतनेमें ही श्रीकृष्ण उन्हें आते दिखायी दिये। उनका मुखकमल खिला था। त्रिभुवनके रक्षक और लीलासे ही सब कुछ करनेवाले श्रीकृष्णको आते देख कोई गोपी अत्यन्त हर्षसे भर गयी। उसके नेत्र प्रसन्नता-

से खिल उठे और वह 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाने लगी। किसीने भौंहें टेढ़ी करके उनकी ओर देखा और नेत्ररूपी भ्रमरोंके द्वारा उनके मुखकमलकी सौन्दर्य-माधुरीका पान करने लगी। किसी गोपीने गोविन्दको निहारकर अपने नेत्र बंद कर लिये और उन्हींके रूपका ध्यान करती हुई वह योगारूढ़-सी प्रतीत होने लगी।

तब माधवने किसीको प्रिय वचन कहकर और किसीको कुटिल भ्रूभङ्गीसे निहारकर मनाया। सबका चित्त प्रसन्न हो गया। फिर उदार चरित्रोंवाले श्रीकृष्णने रासमण्डली बनायी और समस्त गोपियोंके साथ आदरपूर्वक रासलीला की। उस समय कोई भी गोपी श्रीकृष्णके पाससे हटना नहीं चाहती थी, अतः एक स्थानपर स्थिर हो जानेके कारण रासोचित मण्डल न बन सका। तब श्रीकृष्णने एक-एक गोपीका हाथ पकड़कर रासमण्डलकी रचना की। उस समय उनके हाथका स्पर्श पाकर प्रत्येक गोपीकी आँखें आनन्दसे मुँद जाती थीं। इसके बाद रासलीला आरम्भ हुई। चञ्चल चूड़ियोंकी झनकारके साथ क्रमशः शरद्-ऋतुकी शोभाके रमणीय गीत गाये जाने लगे। उस समय श्रीकृष्ण शरद्-ऋतुके चन्द्रमाका, उनकी चारु-चन्द्रिकाका और मनोहर कुमुद-वनका वर्णन करते हुए गीत गाते थे; किंतु गोपियाँ बारंबार केवल श्रीकृष्णके नामका ही गान करती थीं। श्रीकृष्ण जितने ऊँचे स्वरसे रासके गीत गाते, उससे दुगने स्वरमें समस्त गोपियाँ 'धन्य कृष्ण! धन्य कृष्ण!!' का उच्चारण करती थीं। भगवान् जब आगे चलते, तब गोपियाँ उनके पीछे चलती थीं और जब वे पीछेकी ओर घूमकर लौट पड़ते, तब वे उनके सामने मुँह किये पीछे हटती थीं। इस प्रकार वे अनुलोम और प्रतिलोम गतिसे श्रीहरिका साथ देती थीं। मधुसूदनने उस समय गोपियोंके साथ ऐसा रास किया, जिससे उन्हें उनके बिना एक क्षण भी करोड़ वर्षोंके समान प्रतीत होने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण सबके ईश्वर हैं। वे गोपियोंमें, उनके पतियोंमें तथा सम्पूर्ण भूतोंमें भी निवास करते हैं। वे आत्मारूपसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं। जैसे सब प्राणियोंमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और आत्मा हैं, उसी प्रकार भगवान् भी सबको व्याप्त करके स्थित हैं।

एक दिन आधी रातके समय जब श्रीकृष्ण रासलीलामें संलग्न थे, अरिष्टासुर नामका उन्मत्त दानव व्रजवासियोंको त्रास देता हुआ वहाँ साँड़के रूपमें आ पहुँचा। उसका शरीर जलपूर्ण मेघके समान काला था। सींग तीखे थे। नेत्र सूर्यकी भाँति तेजस्वी दिखायी देते थे। वह अपने खुरोंके अग्रभागसे पृथ्वीको विदीर्ण किये डालता था और दाँत पीसता हुआ अपने दोनों ओठोंको बार-बार जीभसे चाटता था। उसके कंधोंकी गाँठें अत्यन्त कठोर थीं और उसने क्रोधके मारे अपनी पूँछ ऊपर उठा रक्खी थी। उसकी गर्दन लंबी और मुख विशाल था। वृक्षोंसे टक्कर लेनेके कारण उसके ललाटमें घावके कई चिह्न थे। साँड़का रूप धारण करनेवाला वह दैत्य गौओंके गर्भ गिरा देता और सबको बड़े वेगसे मारता हुआ सदा वनमें घूमा करता था। उसके नेत्र बड़े भयंकर थे। उसे देखकर समस्त गोप और गोपाङ्गनाएँ अत्यन्त भयसे व्याकुल हो उठीं और 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारने लगीं। उनका आर्त्तनाद सुनकर श्रीकृष्णने ताल ठोंकते हुए सिंहके समान गर्जना की। वह शब्द सुनकर दुरात्मा वृषभासुर श्रीकृष्णकी ओर ही दौड़ा। उसकी आँखें श्रीकृष्णके पेटकी ओर लगी थीं और सामने उन्हींकी सीधमें उसने सींगोंका अग्रभाग कर रक्खा था। उस महाबली दैत्यको आते देख श्रीकृष्ण अवहेलनापूर्वक हँसने लगे और अपने स्थानसे तिलभर भी पीछे न हटे। ज्यों ही वह दैत्य समीप आया, मधुसूदनने झट उसके दोनों सींग पकड़ लिये और अपने घुटनेसे उसकी कोखमें प्रहार किया। सींग पकड़ लिये



जानेसे वह दानव हिल-डुल नहीं पाता था। उसका अहंकार और बल दोनों नष्ट हो चुके थे। श्रीकृष्णने उसकी गर्दनको भीगे हुए कपड़ेकी भाँति निचोड़ डाला और एक सींग उखाड़कर उसीसे उसपर प्रहार किया। इससे वह महादैत्य मुँहसे रक्त वमन करके मर गया। उसके मारे जानेपर गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की—ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें जम्भासुरके मारे जानेपर देवताओंने इन्द्रकी स्तुति की थी।

कंसका अक्रूरको नन्दगाँव जानेकी आज्ञा देना और केशीका वध तथा भगवान्‌के पास नारदका आगमन

व्यासजी कहते हैं– महर्षियो! जब वृषभरूपधारी अरिष्टासुर, धेनुक और प्रलम्ब आदि असुर मारे जा चुके, गोवर्धन पर्वत धारण करके श्रीकृष्णने गोकुलको बचा लिया, उनके द्वारा कालिय नागका दमन, दोनों यमलार्जुन वृक्षोंका भङ्ग, पूतनाका वध और शकट-भङ्ग आदि घटनाएँ हो गयीं, तब देवर्षि नारदने कंसके पास जाकर क्रमशः सब समाचार कह सुनाया। यशोदा और देवकीके बालकोंमें जो अदला-बदली हुई, वहाँसे लेकर अरिष्ट-वधतककी सारी बातें नारद-जीके मुखसे सुनकर खोटी बुद्धिवाले कंसने वसुदेवजीके प्रति बड़ा क्रोध किया और समस्त यादवोंकी सभामें अत्यन्त रोषपूर्वक उलाहना देकर उसने यदुवंशियोंकी बड़ी निन्दा की; फिर आगेके कर्तव्यके विषयमें इस प्रकार विचार किया—'बलराम और कृष्ण दोनों अभी बालक हैं। जबतक वे युवा होकर अत्यन्त बलवान् नहीं हो जाते, तबतक ही मुझे उनका वध कर डालना चाहिये। युवा होनेपर तो वे मेरे काबूके बाहर हो जायँगे। यहाँ महापराक्रमी चाणूर और बलवान् मुष्टिक दोनों पहलवान मौजूद हैं। इनके द्वारा मल्ल-युद्धमें उन दोनों मतवाले बालकोंको मरवा डालूँगा। धनुष-यज्ञ नामक उत्सव देखनेके बहाने दोनोंको व्रजसे बुलाकर ऐसा यत्न करूँगा, जिससे उनका नाश हो जाय।'

इस प्रकार सोच-विचारकर दुष्टात्मा कंसने बलराम और श्रीकृष्णको मार डालनेका निश्चय किया और वीरवर अक्रूरको बुलाकर कहा–'दानपते! तुम मेरी प्रसन्नताके लिये एक बात मानो, यहाँसे रथपर बैठकर नन्दगाँवको जाओ। वहाँ वसुदेवके दो पुत्र हैं, जो मेरा विनाश करनेके लिये विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। वे दोनों दुष्ट बढ़ते जा रहे हैं। चतुर्दशीको धनुषयज्ञका उत्सव होनेवाला है। उसमें कुश्ती लड़नेके लिये उन दोनोंको बुला लाओ। मेरे दो पहलवान चाणूर और मुष्टिक दाँव-पेचमें बहुत कुशल हैं। इनके साथ यहाँ उन दोनोंकी कुश्ती हो और सब लोग देखें। वसुदेवके दोनों पापी पुत्र अभी बालक ही हैं। द्वारपर आते ही उन दोनोंको महावतकी प्रेरणासे मेरा कुवलयापीड़ हाथी मार डालेगा। उन दोनोंको मारकर मैं दुष्ट बुद्धिवाले वसुदेव, नन्द और अपने पिता उग्रसेनको भी मौतके घाट उतारूँगा। तत्पश्चात् समस्त गोपोंका गोधन और सारा वैभव छीन लूँगा, क्योंकि वे दुष्ट मेरे वधकी इच्छा करते हैं। दानपते! तुम्हारे सिवा ये सभी यादव बड़े दुष्ट हैं, अतः मैं क्रमशः इनका भी वध करनेके लिये प्रयत्न करूँगा। तदनन्तर यादवोंसे रहित यह समस्त अकण्टक राज्य अकेला ही भोगूँगा। अतः वीर! तुम मेरी प्रसन्नताके लिये वहाँ जाओ। गोपोंसे ऐसा कहना जिससे वे भैंसका घी, दही आदि उपहारकी वस्तुएँ लेकर शीघ्र यहाँ आयें।'

अक्रूरजी बड़े भगवद्भक्त थे। कंसके इस प्रकार आदेश देने-पर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी बहाने कल भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन तो करूँगा, इस विचारने उन्हें उतावला बना दिया। राजा कंससे 'बहुत अच्छा' कहकर अक्रूरजी शीघ्र ही रथपर सवार हुए और मथुरापुरीसे निकलकर नन्दगाँवकी ओर चल दिये।

इधर कंसका दूत महाबली केशी कंसके ही आदेशसे वृन्दावनमें आया। श्रीकृष्णचन्द्रका वध करना ही उसकी यात्राका उद्देश्य था। उसने घोड़ेका रूप धारण कर रक्खा था। वह अपनी टापोंसे पृथ्वीको खोदता, गर्दनके बालोंसे बादलोंको उड़ाता तथा वेगसे उछलकर चन्द्रमा और सूर्यके भी मार्गको लाँघता हुआ गोपोंके समीप आया। उसके हींसनेके शब्दसे समस्त गोप और गोपाङ्गनाएँ भयभीत हो भगवान् गोविन्दकी शरणमें गयीं। उनकी त्राहि-त्राहिकी पुकार सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण जलपूर्ण मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर वाणीमें इस प्रकार बोले—'गोपालगण! इस केशीसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। आपलोग तो गोप-जातिके हैं। इस तरह भयसे व्याकुल होकर अपने वीरोचित पराक्रमका लोप क्यों कर रहे हैं। अरे! इस दैत्यमें शक्ति ही कितनी है।

यह हमारा क्या कर लेगा। यह तो जोर-जोरसे हिनहिनाकर केवल आतङ्क फैला रहा है। इसपर तो दैत्योंकी सेना सवारी करती है। यह दुष्ट अश्व व्यर्थ ही उछल-कूद मचा रहा है।' ग्वालोंसे यों कहकर भगवान्‌ने उस दैत्यसे कहा—'ओ दुष्ट! इधर आ। मैं कृष्ण हूँ। जैसे पिनाकधारी वीरभद्रने पूषाके दाँत तोड़ दिये थे, उसी तरह मैं भी तेरे सारे दाँत गिराये देता हूँ।'

यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण केशीके सामने गये। वह दैत्य भी मुँह फैलाकर उनकी ओर दौड़ा। श्रीकृष्णने अपनी बाँहको बढ़ाकर दुष्ट केशीके मुखमें घुसेड़ दिया। उससे टकराकर केशीके सारे दाँत शुभ्र मेघ-खण्डोंकी भाँति छिन्न-भिन्न हो गिर गये। श्रीकृष्णकी भुजा केशीके शरीरमें बढ़ती ही चली गयी। जैसे अवहेलनापूर्वक उपेक्षा किया हुआ रोग धीरे-धीरे बढ़कर विनाशका कारण बन जाता है, वैसे ही वह भुजा भी उस दैत्यकी मृत्युका साधन बन गयी। उसके जबड़े फट गये। वह मुखसे फेन और रक्त फेंकने लगा। नस-नाड़ियोंके बन्धन टूट जानेसे उसके दोनों जबड़े शिथिल हो गये। वह लीद और पेशाब करता हुआ धरतीपर पैर पटकने लगा। उसका सारा शरीर पसीनेसे तर हो गया और वह थककर प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उसकी सारी हलचल समाप्त हो गयी। जैसे बिजली गिरनेसे किसी वृक्षके दो टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी भुजासे वह महाभयंकर असुर दो टुकड़े होकर गिर पड़ा। केशीको मारनेसे श्रीकृष्णके शरीरमें कोई थकावट नहीं हुई। वे स्वस्थरूपमें हँसते हुए वहीं खड़े रहे। उस दैत्यके मारे जानेसे गोप और गोपियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे श्रीकृष्णको सब ओरसे घेरकर आश्चर्यचकित हो उनकी स्तुति करने लगे। इसी समय देवर्षि नारद बड़ी उतावलीके साथ वहाँ आये और बादलोंमें स्थित हो गये। केशीको मारा गया देख वे हर्षसे फूले नहीं समाते थे।



नारदजी बोले—जगन्नाथ! आपको धन्यवाद है! अच्युत! आपने खेल-खेलमें ही इस केशीको मार डाला। यह देवताओंको बड़ा क्लेश दिया करता था। मधुसूदन! आपने इस अवतारमें जो-जो महान् कर्म किये हैं, उनसे मेरे चित्तको बड़ा आश्चर्य और संतोष हुआ है। यह अश्वरूपधारी दैत्य जब गर्दनके बालोंको हिलाते और हिनहिनाते हुए आकाशकी ओर देखता था, उस समय देवराज इन्द्र और सम्पूर्ण देवता भी थर्रा उठते थे। जनार्दन! आपने दुष्टात्मा केशीका वध किया है, इसलिये अब लोकमें आप 'केशव' नामसे विख्यात होंगे। आपका कल्याण हो, अब मैं जाऊँगा। और परसों कंसके यहाँ आपके साथ जो युद्ध होगा, उसमें फिर सम्मिलित होऊँगा। धरणीधर! उग्रसेनकुमार कंस जब अपने अनुचरोंसहित मारा जायगा, उस समय पृथ्वीका भार आप बहुत कुछ उतार देंगे। उसके बाद भी राजाओंके साथ आपके अनेक युद्ध हमें देखनेको मिलेंगे। गोविन्द! आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया और मुझे भी बहुत आदर दिया। आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ।

यों कहकर नारदजी चले गये। तब श्रीकृष्ण अत्यन्त विस्मित होकर ग्वालोंके साथ गोकुलमें आये।

अक्रूरका नन्दगाँवमें जाना, श्रीराम-कृष्णकी मथुरायात्रा, गोपियोंकी कथा, अक्रूरको यमुनामें भगवद्दर्शन, उनके द्वारा भगवान्‌की स्तुति, मथुरा-प्रवेश, रजक-वध और मालीपर कृपा

व्यासजी कहते हैं—अक्रूरजी शीघ्र चलनेवाले रथपर चढ़कर मथुरासे निकले और श्रीकृष्णके दर्शनका लोभ लेकर नन्दगाँवकी ओर चल दिये। मार्गमें सोचने लगे—"अहा! मुझसे बढ़कर सौभाग्यशाली कोई नहीं है, क्योंकि आज मैं अंशसहित

अवतीर्ण हुए साक्षात् भगवान् विष्णुका मुख देखूँगा । आज मेरा जन्म सफल हुआ और आनेवाला प्रभात बहुत ही सुंदर होगा । क्योंकि मैं विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् विष्णुके मुखका दर्शन करूँगा । जो स्मरण अथवा ध्यानमें आकर भी मनुष्यके सारे पाप हर लेता है, वही कमल-सदृश नेत्रोंवाला श्रीविष्णुका सुन्दर मुख आज मुझे देखनेको मिलेगा । जिससे सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गोंका प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो देवताओंके लिये सर्वश्रेष्ठ आश्रय है, भगवान्‌के उसी मुखका आज मैं दर्शन करूँगा ।* ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्गण जिनके स्वरूपको नहीं जानते, वे श्रीहरि आज मेरा स्पर्श करेंगे । जो सर्वात्मा, सर्वव्यापी, सर्वस्वरूप, सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित, अव्यय एवं व्यापी परमात्मा हैं, वे ही आज मेरे नेत्रोंके अतिथि होंगे । जिन्होंने अपनी योगशक्तिसे मत्स्य, कूर्म, वराह और नरसिंह आदि अवतार ग्रहण किये थे, वे ही भगवान् आज मुझसे वार्तालाप करेंगे । स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले अविनाशी जगन्नाथ इस समय कार्यवश व्रजमें निवास करनेके लिये मानवरूप धारण किये हुए हैं । जो भगवान् अनन्त अपने मस्तकपर इस पृथ्वीको धारण करते हैं, वे ही जगत्‌का हित करनेके लिये अवतीर्ण हो आज मुझे 'अक्रूर' कहकर बुलायेंगे । पिता, पुत्र, सुहृद्, भ्राता, माता और बन्धु-बान्धवरूपिणी जिनकी मायाको यह जगत् हटा नहीं पाता, उन भगवान्‌को बारंबार नमस्कार है । जिनको हृदयमें स्थापित करके मनुष्य इस योगमायारूप फैली हुई अविद्याको तर जाते हैं, उन विद्यास्वरूप परमात्माको नमस्कार है । जिन्हें यज्ञपरायण मनुष्य यज्ञपुरुष, भगवद्भक्त जन वासुदेव और वेदान्तवेत्ता सर्वव्यापी श्रीविष्णु कहते हैं, उनको मेरा नमस्कार है । जो सम्पूर्ण जगत्‌के निवासस्थान हैं, जिनमें सत् और असत् दोनों प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् अपने सहज सत्त्वगुणसे मुझपर प्रसन्न हों । जिनका स्मरण करनेपर मनुष्य पूर्ण कल्याणका भागी होता है, उन पुरुषश्रेष्ठ श्रीहरिकी मैं सदाके लिये शरण लेता हूँ ।†

अक्रूरका हृदय भक्तिसे विनम्र हो रहा था । वे इस प्रकार श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए कुछ दिन रहते नन्दगाँवमें पहुँच गये । वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको उस स्थानपर देखा, जहाँ गौएँ दुही जा रही थीं । वे बछड़ोंके बीचमें खड़े थे । उनका श्रीअङ्ग विकसित नीलकमलकी आभासे सुशोभित था । नेत्र खिले हुए कमलकी शोभा धारण करते थे । वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न दिखायी देता था । बड़ी-बड़ी बाँहें, चौड़ी और उभरी हुई छाती, ऊँची नासिका, विलासयुक्त मुसकानसे सुशोभित मुख, लाल-लाल



* चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया । योऽहमंशावतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चक्रिणः ॥
अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाता च मे निशा । यदुन्निद्राब्जपत्राक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥
पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं संकल्पनामयम् । तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥
निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च । द्रक्ष्यामि यत्परं धाम देवानां भगवन्मुखम् ॥
(१९१ । २—५)

† न ब्रह्मा नेन्द्ररुद्राश्विवस्वादित्यमरुद्गणाः । यस्य स्वरूपं जानन्ति स्पृशत्यद्य स मे हरिः ॥
सर्वात्मा सर्वगः सर्वः सर्वभूतेषु संस्थितः । यो भवत्यव्ययो व्यापी स वीक्ष्यते मयाऽद्य ह ॥
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैः सिंहरूपादिभिः स्थितम् । चकार योगतो योगं स मामालापयिष्यति ॥
साम्प्रतं च जगत्स्वामी कार्यजाते व्रजे स्थितिम् । कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्वेच्छादेहधृगव्ययः ॥

नख, शरीरपर पीताम्बर, गलेमें जंगली पुष्पोंके हार, हाथमें स्निग्ध नील लता और कानोंमें श्वेत कमलपुष्पके आभूषण—यही उनकी झाँकी थी। उनके दोनों चरण भूमिपर विराजमान थे। श्रीकृष्णका दर्शन करनेके बाद अक्रूरजीकी दृष्टि यदुनन्दन बलभद्रजीपर पड़ी, जो हंस, चन्द्रमा और कुन्दके समान गौरवर्ण थे। उनके शरीरपर नील वस्त्र शोभा पा रहे थे। उनकी कद ऊँची और बाँहें बड़ी-बड़ी थीं। मुख प्रफुल्ल कमल-सा सुशोभित था। नीलाम्बरधारी गौराङ्ग बलभद्रजी ऐसे जान पड़ते थे, मानो मेघमालासे घिरा हुआ दूसरा कैलास पर्वत हो।* उन दोनों भाइयोंको देखकर महाबुद्धिमान् अक्रूरजीका मुखकमल प्रसन्नतासे खिल उठा। सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे मन-ही-मन इस प्रकार कहने लगे—'इन दोनों बन्धुओंके रूपमें यहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु विराज रहे हैं। ये ही वह परम धाम और ये ही वह परम पद हैं। अनन्तमूर्ति भगवान् आज ही मेरे हाथका स्पर्श करके उसे शोभासम्पन्न बनायेंगे। इन्हीं भगवान्‌की अँगुलियोंके स्पर्शसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जानेके कारण मनुष्य उत्तमोत्तम सिद्धि प्राप्त करते हैं तथा अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र और वसु आदि देवता प्रसन्न होकर उन्हें उत्तम वर देते हैं। इन्हीं भगवान्‌ने दैत्यराजकी सेनाका विनाश करके दैत्यपत्नियोंकी आँखोंका काजल भी छीन लिया। राजा बलिने जिनके हाथमें संकल्पका जल छोड़कर रसातलमें रहते हुए भी मनोहर स्वर्गीय भोग प्राप्त कर लिये तथा देवराज इन्द्रने जिनकी आराधना करके एक मन्वन्तरके लिये देवलोकका अखण्ड साम्राज्य प्राप्त किया, वे ही भगवान् कंसके साथ रहनेके कारण निर्दोष होते हुए भी दोषके पात्र बने हुए मुझ अक्रूरका क्या आदर न करेंगे? जो साधु पुरुषोंमें बहिष्कृत है, उसके जन्मको धिक्कार है। भगवान् श्रीहरि ज्ञानस्वरूप हैं। परिपूर्ण सत्त्वके पुञ्ज हैं। सब प्रकारके दोषोंसे रहित हैं, अव्यक्त हैं और समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं। जगत्‌में कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो उन्हें ज्ञात न हो। अतः मैं भक्तिसे विनीत होकर आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, पुरुषोत्तम, भगवान् विष्णुके अंशावतार तथा ईश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णकी शरणमें जाता हूँ।'

इस प्रकार विचार करते हुए वे भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और 'मैं यदुवंशी अक्रूर हूँ'—यों कहकर उनके चरणोंमें पड़ गये। भगवान्‌ने भी ध्वजा, वज्र और कमल आदि चिह्नोंसे सुशोभित अपने करकमलद्वारा उनका स्पर्श किया और उन्हें खींचकर प्रेमपूर्वक गाढ़ आलिङ्गन दिया। फिर बलराम और श्रीकृष्णने उनसे बातचीत की और उन्हें साथ ले अपने भवनमें चले गये। परस्पर प्रणाम आदिके बाद अक्रूरने दोनों भाइयोंके साथ बैठकर भोजन किया और यथायोग्य उनसे सब बातें निवेदन कीं। दुरात्मा दानव कंसने वसुदेव और देवकीको जिस प्रकार धमकाया था, उग्रसेनके प्रति जैसा उसका बर्ताव था और जिस उद्देश्यसे कंसने उन्हें व्रजमें भेजा था, वह सब विस्तारके साथ कह सुनाया। सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'ये सब बातें मुझे ज्ञात हैं। इस विषयमें जो उचित कर्तव्य है, उसे मैं करूँगा। आप अन्यथा विचार

योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थिताम्। सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्रूरेति वक्ष्यति॥
पितृबन्धुसुहृद्भ्रातृमातृबन्धुमयीमिमाम्। यन्मायां नालमुद्धर्तुं जगत्तस्मै नमो नमः॥
तरन्त्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते। योगमायामिमां मर्त्यास्तस्मै विद्यात्मने नमः॥
यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च सात्वतैः। वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम्॥
तथा यत्र जगद्धाम्नि धार्यते च प्रतिष्ठितम्। सदसत्त्वं स तत्त्वेन मय्यसौ यातु सौम्यताम्॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषप्रवरं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥
(१९१। ८—१७)

* स ददर्श तदा तत्र कृष्णमादोहने गवाम्। वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम्॥
प्रफुल्लपद्मपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्। प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरःस्थलमुन्नसम्॥
सविलासस्मिताधारं बिभ्राणं मुखपङ्कजम्। तुङ्गरक्तनखं पद्भ्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम्॥
बिभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम्। सान्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम्॥
हंसेन्दुकुन्दधवलं नीलाम्बरधरं द्विजाः। तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम्॥
प्रांशुमुत्तुङ्गबाहुं च विकासिमुखपङ्कजम्। मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम्॥
(१९१। १९—२४)

न करें। कंसको मारा गया ही समझें। मैं बलरामजीसहित कल आपके साथ मथुरा चलूँगा। बड़े-बूढ़े गोप भी भेंटकी बहुत-सी सामग्री लेकर जायँगे। वीर! आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। आरामसे यहाँ रात बितायें। आजसे तीन रातके भीतर ही मैं अनुचरोंसहित कंसको मार डालूँगा।'

तदनन्तर गोपोंको मथुरा चलनेका आदेश दे अक्रूर, श्रीकृष्ण तथा बलभद्रजी नन्दके घरमें सोये। सबेरा होनेपर महाबली राम और श्रीकृष्ण अक्रूरके साथ मथुरा जानेको तैयार हो गये, यह देख गोपियोंके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे चिन्तासे इतनी दुर्बल हो गयीं कि उनके कंगन और बाजूबंद खिसक-खिसककर गिरने लगे। वे दुःखसे पीड़ित हो लंबी साँस लेती हुई एक दूसरीसे कहने लगीं—'सखी! गोविन्द मथुरा जाते हैं। वहाँ जाकर वे इस गोकुलमें फिर क्यों आने लगे। वहाँ तो अपने कानोंद्वारा नगरकी स्त्रियोंके मधुर वार्तालापका रस पान करेंगे। नगरकी नारियोंके विलासपूर्ण वचनोंमें जब इनका मन आसक्त हो जायगा, तब फिर गाँवोंकी रहनेवाली इन गँवार गोप-गोपियोंकी ओर उनका झुकाव कैसे हो सकेगा। हाय! श्रीहरि सम्पूर्ण व्रजके प्राण थे। इन्हें छीनकर दुरात्मा और निर्दयी विधाताने हम गोपियोंपर निष्ठुर प्रहार किया है। नगरकी युवतियाँ भावभरी मुसकानके साथ बात करती हैं। उनकी गतिमें लालित्य है। वे कटाक्षपूर्ण नेत्रोंसे देखती हैं। अतः ये हमलोगोंके पास क्यों आने लगे। यह देखो, गोविन्द रथपर बैठकर मथुरा जाते हैं। क्रूर अक्रूरने उन्हें चकमा दिया है। क्या इस निर्दयीको प्रेमीजनोंकी मानसिक वेदनाका अनुभव नहीं है, जो यह हमारे नयनानन्द गोविन्दको अन्यत्र लिये जाता है? गोविन्द भी आज अत्यन्त निष्ठुर हो गये हैं। देखो न, बलरामजीके साथ रथपर बैठकर चले जा रहे हैं। अरी! इन्हें रोकनेमें शीघ्रता करो। ऐं! क्या कहती हो—गुरुजनोंके सामने हमारा कुछ बोलना उचित नहीं है? अरी! हम तो यों ही विरहकी आगमें जल रही हैं। अब ये गुरुजन हमारा क्या कर लेंगे। हाय! ये नन्दबाबा आदि भी जानेको उद्यत हैं। कोई भी श्रीकृष्णको लौटानेका उद्योग नहीं करता। आज मथुरावासिनी युवतियोंके नेत्ररूपी भ्रमर श्रीकृष्णके मुखकमलका मकरन्द पान करेंगे। वे लोग धन्य हैं, जो मार्गमें पुलकित शरीरसे बेरोक-टोक श्रीकृष्णका दर्शन करेंगे। आज गोविन्दका दर्शन पाकर मथुराकी नागरियोंके नेत्रोंमें महान् आनन्द छा जायगा। आज उन भाग्यशालिनी युवतियोंने कौन-सा शुभ स्वप्न देखा है, जो वे



अपने विशाल एवं कमनीय नेत्रोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरीका पान करेंगी। अहो! विधाताको किञ्चिन्मात्र भी दया नहीं है। उसने हम गोपियोंको बहुत बड़ी निधिका दर्शन कराकर हमारी आँखें ही निकाल लीं। हमारे प्रति श्रीकृष्णका अनुराग ज्यों-ज्यों शिथिल होता जाता है, त्यों-ही-त्यों हमारे हाथोंके कङ्कण भी शीघ्रतापूर्वक ढीले होते जा रहे हैं। अक्रूरका हृदय बहुत ही क्रूर है। वह घोड़ोंको बहुत जल्दी-जल्दी हाँकता है। हम-जैसी आर्त स्त्रियोंपर उसे छोड़ किसको दया नहीं आयेगी। अरी! वह देखो, श्रीकृष्णके रथकी धूल बहुत ऊँचेपर दिखायी देती है। हाय! अब वह धूल भी नहीं दिखायी देती। अब वह भगवान्‌को बहुत दूर ले गयी।' इस प्रकार गोपियोंके अत्यन्त अनुरागपूर्वक देखते-देखते बलरामसहित श्रीकृष्णने व्रजके उस भूभागका परित्याग किया। रथके घोड़े बहुत तेज चलनेवाले थे; अतः बलराम, अक्रूर और श्रीकृष्ण दोपहर होते-होते मथुराके समीपवर्ती यमुना-तटपर पहुँच गये।

तब अक्रूरने श्रीकृष्णसे कहा—'आप दोनों भाई यहीं रथपर बैठे रहें। तबतक मैं यमुनाके जलमें नैत्यिक स्नान और पूजन कर लेता हूँ।' श्रीकृष्णने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली। परम बुद्धिमान् अक्रूरने यमुनाके जलमें प्रवेश करके स्नान और आचमन किया। तत्पश्चात् वे परब्रह्मका चिन्तन

करने लगे। उन्हें जलके भीतर सहस्रों फणोंसे युक्त बलभद्रजी दिखायी दिये। उनका शरीर कुन्दके समान गौर और नेत्र कमलपत्रके समान विशाल थे। वासुकि तथा रम्भ आदि बड़े-बड़े नाग उन्हें घेरे हुए स्तुति कर रहे थे। गलेमें सुगन्धित वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। वे दो नील वस्त्र और सुन्दर कर्णभूषण धारण किये मनोहर गेंडुली मारे जलके भीतर विराजमान थे। उनकी गोदमें भगवान् श्रीकृष्ण दृष्टिगोचर हुए, जो सजल मेघके समान श्याम, किञ्चित् लालिमायुक्त विशाल नेत्रोंवाले, चतुर्भुज, सुन्दर और चक्र आदि आयुधोंसे विभूषित थे। उन्होंने दो पीताम्बर धारण कर रक्खे थे। विचित्र-विचित्र हार उनकी शोभा बढ़ाते थे। इन्द्रधनुष और विद्युन्मालासे विभूषित मेघकी भाँति उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न सुशोभित था। भुजाओंमें भुजबन्ध और मस्तकपर मुकुट देदीप्यमान था। कानोंमें कमलपुष्प कुण्डलका काम देता था। सनन्दन आदि पापरहित सिद्ध योगी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये मन-ही-मन भगवान्का ध्यान करते थे। बलराम और श्रीकृष्णको वहाँ पहचानकर अक्रूर बड़े आश्चर्यमें पड़े। वे सोचने लगे, 'दोनों भाई इतना शीघ्र यहाँ कैसे आ गये?' अक्रूरने कुछ



बोलना चाहा, किंतु श्रीकृष्णने उनकी वाणीको स्तम्भित कर दिया। तब वे जलसे निकलकर रथके पास आये, किंतु वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण पहलेकी ही भाँति बैठे दिखायी दिये। तब उन्होंने पुनः जलमें डुबकी लगायी। भीतर वही दृश्य दिखायी दिया। गन्धर्व, मुनि, सिद्ध तथा बड़े-बड़े नाग श्रीकृष्ण और बलरामकी स्तुति करते थे। यह सब देखकर दानपति अक्रूरको वास्तविक रहस्यका पता लग गया। वे पूर्ण विज्ञानमय भगवान् अच्युतकी स्तुति करने लगे—

'जिनका सत्तामात्र स्वरूप है, महिमा अचिन्त्य है, जो सर्वत्र व्यापक हैं, जो कारणरूपसे एक, किंतु कार्यरूपसे अनेक हैं, उन परमात्माको बारंबार नमस्कार है। अचिन्त्य परमेश्वर! आप शब्द (वैदिक मन्त्र) रूप और हविःस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। प्रभो! आप प्रकृतिसे परे विज्ञानस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और परमात्मा हैं। इस प्रकार एक होते हुए भी आप पाँच प्रकारसे स्थित हैं। सर्वधर्मात्मन् महेश्वर! आप ही क्षर और अक्षर हैं। मुझपर प्रसन्न होइये। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि नामोंसे आपका ही वर्णन किया जाता है। भगवन्! आपके स्वरूप, प्रयोजन और नाम आदि सभी अनिर्वचनीय हैं। आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है। नाथ! जहाँ नाम और जाति आदि कल्पनाओंका अस्तित्व नहीं है, वह नित्य, अविकारी और अजन्मा परब्रह्म आप ही हैं। कल्पनाके बिना—कोई व्यावहारिक नाम रक्खे बिना किसी भी पदार्थका ज्ञान नहीं होता। इसीलिये कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामोंसे आपकी स्तुति की जाती है। सर्वात्मन्! आप अजन्मा परमेश्वर हैं। जगत्में जितनी कल्पनाएँ हैं, उन सबके द्वारा आपका ही बोध होता है। आप ही देवता हैं, सम्पूर्ण जगत् हैं तथा विश्वरूप हैं। विश्वात्मन्! आप विकार और भेदसे सर्वथा रहित हैं, सम्पूर्ण विश्वमें आपके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। आप ही ब्रह्मा, महादेवजी, सूर्य, धाता, विधाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम हैं। एकमात्र आप ही भिन्न-भिन्न रूप धारण करके अपनी विभिन्न शक्तियोंसे जगत्की रक्षा करते हैं। आप ही विश्वकी सृष्टि करते हैं और आप ही प्रलयकालीन सूर्य होकर सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं। अज! यह गुणमय प्रपञ्च आपका ही स्वरूप है। सत्स्वरूप परमेश्वरका वाचक जो ॐकाररूप अक्षर है, वह आपका उत्कृष्ट स्वरूप है। वही सत्, असत् और ज्ञानात्मा है। आपके उस स्वरूपको मेरा

प्रणाम है। भगवन्! वासुदेवरूपमें आपको नमस्कार है। संकर्षण-संज्ञा धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। प्रद्युम्न कहलानेवाले आपको नमस्कार है और अनिरुद्ध नामसे पुकारे जानेवाले आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार जलके भीतर यदुवंशी अक्रूरने सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करके मानसिक धूप और पुष्पोंद्वारा उनका पूजन किया। अन्य विषयोंका चिन्तन छोड़कर मनको उन ब्रह्मभूत परमात्मामें लगा दीर्घकालतक ध्यान किया। तत्पश्चात् समाधिसे विरत हो अपनेको कृतार्थ मानते हुए यमुना-जलसे निकलकर वे पुनः रथके समीप आये। आनेपर उन्होंने बलराम और श्रीकृष्णको पूर्ववत् बैठे देखा। अक्रूरजीके नेत्रोंसे विस्मयका आभास मिलता था। यह देख श्रीकृष्णने उनसे कहा—'अक्रूरजी! आपने यमुनाके जलमें कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है, जो आपके नेत्र आश्चर्यचकित दिखायी देते हैं?'

अक्रूर बोले—अच्युत! जलके भीतर मैंने जो आश्चर्य देखा है, उसे यहीं अपने सामने मूर्तिमान् बैठा देखता हूँ। यह परम आश्चर्यमय जगत् जिन महात्माका स्वरूप है, उन्हीं आश्चर्यस्वरूप आपके साथ मेरा समागम हुआ है। मधुसूदन! अब इस विषयमें अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। चलिये, मथुरा चलें। मैं कंससे डरता हूँ। जो दूसरोंके टुकड़ोंपर जीवन निर्वाह करनेवाले हैं, उन मनुष्योंके जन्मको धिक्कार है।

यों कहकर अक्रूरने घोड़ोंको हाँक दिया और सायंकालके समय मथुरापुरीमें जा पहुँचे। मथुराको देखकर अक्रूरने बलराम और श्रीकृष्णसे कहा—'महापराक्रमी वीरो! अब आपलोग पैदल जाइये। रथसे मैं अकेला ही जाऊँगा। मथुरामें पहुँचकर आप दोनों वसुदेवजीके घर न जायँ, क्योंकि आपके ही कारण वह बेचारा बूढ़ा कंसके द्वारा सदा अपमानित होता है।'

यों कहकर अक्रूर मथुरापुरीमें चले गये। राम और श्रीकृष्ण भी पुरीमें पहुँचकर राजमार्गपर आ गये। उस समय नगरके सभी स्त्री-पुरुष आनन्दपूर्ण नेत्रोंसे उन्हें निहारते थे। वे दोनों वीर तरुण हाथियोंकी भाँति लीलापूर्वक चल रहे थे। घूमते-घूमते उन दोनों भाइयोंने कपड़ा रँगनेवाले एक रजकको देखा। उससे अपने शरीरके अनुरूप सुन्दर वस्त्र माँगे। वह राजा कंसका रजक था। राजाकी कृपा पाकर उसका अहंकार बहुत बढ़ गया था। उसने बलराम और श्रीकृष्णके प्रति ललकारकर अनेक आक्षेपयुक्त कटुवचन कहे। उस दुरात्मा रजकका बर्ताव देख श्रीकृष्ण कुपित हो उठे। उन्होंने थप्पड़से मारकर उस रजकका मस्तक पृथ्वीपर गिरा दिया। उसे मारकर राम और कृष्णने उसके सारे वस्त्र छीन लिये और अपनी रुचिके अनुसार पीले एवं नीले वस्त्र धारण करके वे बड़ी प्रसन्नताके साथ मालीके घर गये। उन्हें देखते ही मालीके नेत्र आनन्दसे खिल उठे। वह अत्यन्त विस्मित होकर मन-ही-मन सोचने लगा, 'ये दोनों किसके पुत्र हैं? कहाँसे आये हैं? एकके अङ्गपर पीताम्बर शोभा पाता है तो दूसरेके शरीरपर नीलाम्बर। दोनों ही अत्यन्त मनोहर दिखायी देते हैं।' उन्हें देखकर मालीने समझा—दो देवता इस भूतलपर उतरे हैं। उन दोनों भाइयोंके मुखकमल प्रफुल्लित दिखायी देते थे। मालीने दोनों हाथ पृथ्वीपर फैलाकर सिरसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'नाथ! आप दोनों बड़ी कृपा करके मेरे घर पधारे हैं! मैं धन्य हो गया। अब पुष्पोंसे आप दोनोंकी पूजा करूँगा।' यों कहकर उसने रुचिके अनुसार फूल भेंट किये। 'ये सुन्दर हैं, ये मनोहर हैं,' यों कहते हुए उसने उनके मनमें फूलोंके प्रति आकर्षण पैदा किया, और जो-जो उन्हें पसंद आया, वह सब दिया। प्रायः सभी फूल मनोहर, निर्मल और सुगन्धित थे। श्रीकृष्णने भी प्रसन्न



होकर मालीको वर दिया—'भद्र! मेरे अधीन रहनेवाली लक्ष्मी तेरा कभी त्याग न करेगी। सौम्य! तेरे बल और धनकी

कभी हानि न होगी। जबतक यह पृथ्वी और सूर्य रहेंगे, तबतक तेरी पुत्र-पौत्र आदि वंश-परम्परा कायम रहेगी। तू बहुत-से भोग भोगकर अन्तमें मेरी कृपासे मुझे स्मरण करते हुए दिव्यलोक प्राप्त करेगा। भद्र! तेरा मन हर समय धर्ममें लगा रहेगा।'

यों कहकर बलरामसहित श्रीकृष्ण मालीद्वारा पूजित हो उसके घरसे चले आये।

कुब्जापर कृपा, कुवलयापीड़, चाणूर, मुष्टिक, तोशल और कंसका वध तथा वसुदेवद्वारा भगवान्‌का स्तवन

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीकृष्णने राजमार्गपर एक कुब्जा स्त्री देखी, जो अङ्गरागसे भरा हुआ पात्र लिये आ रही थी। उसे देखकर श्रीकृष्णने पूछा—'कमललोचने! तू यह अङ्गराग किसके पास लिये जाती है? सच-सच बता।' उनकी बात सुनकर वह श्रीहरिके प्रति अनुरक्त हो गयी और बोली—'प्रिय! क्या आप नहीं जानते, कंसने मुझे अङ्गराग लगानेका कार्य सौंप रक्खा है? मैं अनेकवक्राके नामसे विख्यात हूँ। मेरे सिवा दूसरे किसीका घिसा हुआ चन्दन कंसको पसंद नहीं आता।'

श्रीकृष्ण बोले—सुमुखि! यह सुन्दर सुगन्धयुक्त अनुलेपन तो राजाके ही योग्य है। हमारे शरीरके योग्य भी कोई अनुलेपन हो तो दो।

यह सुनकर कुब्जाने आदरपूर्वक कहा—'लीजिये न।' फिर उन दोनोंको उनके शरीरके अनुरूप चन्दन आदि अनुलेप प्रदान किया। कुब्जाने ही उनके कपोल आदि अङ्गोंमें पत्रभङ्गी-रचनापूर्वक अङ्गराग लगाया। इससे वे दोनों पुरुषरत्न इन्द्रधनुषके साथ शोभा पानेवाले श्वेत-श्याम मेघोंके समान सुशोभित हुए। तत्पश्चात् उल्लापन-विधि (कुब्जत्व दूर करनेकी क्रिया) के जाननेवाले श्रीकृष्णने उसकी ठोढ़ीमें अपने हाथकी दो उँगलियाँ लगा दीं और उसे उचकाकर ऊपरकी ओर खींचा। साथ ही उसके पैर अपने दोनों पैरोंसे दबा लिये। इस प्रकार केशवने उसके शरीरको सीधा कर दिया। फिर तो वह युवतियोंमें श्रेष्ठ परम सुन्दरी बन गयी और प्रेमसे शिथिल वाणीमें बोली—'प्यारे! आप मेरे घरमें पधारें।' 'अच्छा, तुम्हारे घर आऊँगा' यों कहकर श्रीकृष्णने कुब्जाको विदा किया और बलरामजीके मुँहकी ओर देखकर वे जोरसे हँसे। तदनन्तर पत्र-रचनापूर्वक अङ्गराग लगाये और पीताम्बर तथा नीलाम्बर धारण किये विचित्र पुष्पोंके हारसे सुशोभित वे दोनों भाई धनुषशालामें गये। वहाँ उन्होंने रक्षकोंसे धनुषके विषयमें पूछा और उनके बतलानेपर उसे उठाकर चढ़ाया। बलपूर्वक चढ़ाते ही वह धनुष टूट गया। उससे बड़े जोरका शब्द हुआ, जिससे मानो मथुरापुरी गूँज उठी। धनुष टूटनेपर रक्षकोंने उनपर आक्रमण किया। तब वे रक्षक-सेनाका संहार करके धनुषशालासे बाहर निकले। कंसको अक्रूरके लौटनेका हाल मालूम हो चुका था। फिर धनुष टूटनेका शब्द सुनकर उसने चाणूर और मुष्टिकसे कहा, 'दोनों गोपपुत्र यहाँ आ गये हैं। उन्हें मेरे सामने मल्लयुद्ध करके तुम दोनों अवश्य मार डालना, क्योंकि वे दोनों मेरे प्राण लेनेवाले हैं। यदि युद्धमें उन्हें मारकर तुमने मुझे संतुष्ट किया तो मैं तुम्हारी जो-जो इच्छा होगी, वह सब पूर्ण करूँगा। वे दोनों मेरे शत्रु हैं, अतः न्यायसे अथवा अन्यायसे उनको अवश्य मार डालो। उनके मारे जानेपर इस राज्यपर मेरा और तुम्हारा समान अधिकार होगा।'

इस प्रकार उन दोनों मल्लोंको आदेश दे कंसने हाथीवानको बुलाया और उच्च स्वरसे कहा—'महावत! तू कुवलयापीड़ हाथीको मतवाला करके रङ्गभूमिके द्वारपर खड़ा रखना। जब दोनों गोपपुत्र मल्लयुद्धके लिये आयें, तब उन्हें द्वारपर ही मरवा डालना।' महावतको यह आज्ञा दे कंसने देखा, रङ्गभूमिमें सब ओर यथायोग्य मञ्च लग गये हैं; तब वह सूर्योदय होनेकी प्रतीक्षा करने लगा। उसकी मृत्यु समीप आ गयी थी। सबेरा होनेपर सब मञ्चोंपर नागरिकगण आ विराजे। जो मञ्च केवल राजाओंके लिये बिछे थे, वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानोंके राजा अपने सेवकोंसहित आ बैठे। जो लोग मल्लोंकी जोड़का चुनाव करनेवाले थे, उन्हें कंसने रङ्गभूमिके बीचमें अपने पास ही बिठाया। वह स्वयं भी बहुत ऊँचे मञ्चपर विराजमान था। रनिवासकी स्त्रियोंके लिये अलग मञ्च लगे थे और नगरकी स्त्रियोंके लिये अलग। नन्द आदि गोप दूसरे-दूसरे मञ्चोंपर बैठे थे। अक्रूर और वसुदेव मञ्चोंके किनारे खड़े थे। बेचारी देवकी नगरकी स्त्रियोंमें खड़ी थी। वह सोचती थी, अन्तकालमें भी तो एक बार पुत्रका मुँह देख लूँ।

इसी समय रङ्गभूमिमें तुरही आदि बाजे बज उठे। चाणूर उछलने और मुष्टिक ताल ठोंकने लगा। लोगोंमें हाहाकार मच गया। श्रीराम और श्रीकृष्ण रङ्गभूमिके द्वारपर आये और महावतसे प्रेरित कुवलयापीड़ नामक हाथीको मारकर भीतर घुस गये। उस समय उनके अङ्गोंमें हाथीका मद और रक्त लगे हुए थे। उसके बड़े-बड़े दाँतोंको ही उन्होंने अपना आयुध बना लिया था। वे दोनों भाई गर्वपूर्ण लीलामयी चितवनसे निहारते हुए उस महान् रङ्गोत्सवमें इस प्रकार प्रविष्ट हुए, मानो मृगोंके झुंडमें दो सिंह आ गये हों। उनके आते ही रङ्गभूमिमें चारों ओर महान् कोलाहल हुआ। सब लोग विस्मयके साथ कहने लगे, 'ये ही कृष्ण हैं, ये ही बलभद्र हैं। ये कृष्ण वे ही हैं, जिन्होंने भयंकर राक्षसी पूतनाका वध किया, छकड़े उलट दिये और दोनों अर्जुन वृक्षोंको उखाड़ डाला। जिन्होंने बालक होते हुए भी कालियनागके मस्तकपर नृत्य किया, सात रातोंतक गोवर्धन पर्वतको हाथपर रक्खा और अरिष्ट, धेनुक तथा केशी आदि दुराचारियोंको खेल-खेलमें ही मार डाला, वे ही ये श्रीकृष्ण दिखायी देते हैं। और ये जो दूसरे महाबाहु युवतियोंके मन और नयनोंको आनन्द देते हुए लीलापूर्वक आगे-आगे चल रहे हैं, वे श्रीकृष्णके बड़े भाई बलदेवजी हैं। पौराणिक रहस्यको जाननेवाले विद्वान् पुरुष इन्हीं गोपालके विषयमें यों कहते हैं कि ये शोकसागरमें डूबे हुए यदुवंशका उद्धार करेंगे। निश्चय ही ये सबको जन्म देनेवाले सर्वभूतस्वरूप भगवान् विष्णुके अंश हैं, जो पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं।'

इस प्रकार जब नगरके लोग श्रीराम और श्रीकृष्णका वर्णन कर रहे थे, उस समय देवकीके हृदयमें स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा। वसुदेवजी तो मानो समीप आयी हुई वृद्धावस्थाको छोड़कर युवा हो गये। उनकी दृष्टि अपने दोनों पुत्रोंपर ही लगी हुई थी, मानो वे ही उनके लिये महान् उत्सव हों। रनिवासकी स्त्रियाँ एकटक नेत्रोंसे श्रीकृष्ण और बलरामको निहारती थीं। नगरकी स्त्रियाँ तो उनकी ओरसे दृष्टि ही नहीं हटाती थीं।

स्त्रियाँ आपसमें कहने लगीं—'सखियो! श्रीकृष्णका मुख तो देखो, कैसी कमल-जैसी सुन्दर आँखें हैं। कुवलयापीड़ हाथीसे युद्ध करनेके कारण जो परिश्रम हुआ है, उससे इनके मुखपर पसीनेकी बूँदें निकल आयी हैं। इन स्वेद-बिन्दुओंसे सुशोभित इनका प्रसन्न मुख ऐसा जान पड़ता है, मानो खिले हुए कमलपर ओसके कण शोभा पा रहे हों। इस मनोहर मुखकी झाँकी करके आज अपना जन्म सफल कर लो। अहा! भामिनी! इस बालकके वक्षःस्थलपर तो दृष्टिपात करो। श्रीवत्स-चिह्नसे इसकी कैसी शोभा हो रही है। यह सम्पूर्ण जगत्का आश्रय है और इसकी दोनों भुजाएँ शत्रुओंका दर्प दलन करनेमें समर्थ हैं। अरी सखी! उधर देखो, मुष्टिक और चाणूरको उछलते-कूदते देख बलभद्रजीके मुखपर मन्द हास्यकी कैसी छटा छा रही है। हाय, सखी! देखो तो सही, ये श्रीकृष्ण चाणूरके साथ युद्ध करने जा रहे हैं। क्या इस सभामें न्याययुक्त बर्ताव करनेवाले बड़े-बूढ़े नहीं हैं? कहाँ तो अभी युवावस्थामें प्रवेश करनेवाले श्रीहरिका सुकुमार शरीर और कहाँ वज्रके समान कठोर एवं विशाल शरीरवाला यह महान् असुर! ये दोनों भाई रङ्गभूमिमें अभी तरुण दिखायी देते हैं। इनके सभी अङ्ग कोमल हैं और चाणूर आदि दैत्य मल्ल बड़े ही भयंकर हैं। युद्धके लिये जोड़का चुनाव करनेवाले लोगोंका यह बहुत बड़ा अन्याय है कि वे मध्यस्थ होकर भी बालक और बलवान्के युद्धकी उपेक्षा करते हैं।'

जब नगरकी स्त्रियाँ इस प्रकार वार्तालाप कर रही थीं, उसी समय भगवान् श्रीहरि अपने पदाघातसे पृथ्वीको कँपाते हुए सब लोगोंके हृदयमें हर्षातिरेककी वृष्टि करने लगे। बलभद्रजी भी ताल ठोंककर मनोहर गतिसे उछलते हुए चल रहे थे। उस समय यह पृथ्वी पग-पगपर उनके पदाघातसे विदीर्ण नहीं हुई—यही बड़े आश्चर्यकी बात थी। तदनन्तर अमितपराक्रमी श्रीकृष्ण चाणूरके साथ कुश्ती लड़ने लगे तथा मल्लयुद्धकी विद्यामें कुशल मुष्टिक दैत्य बलदेवजीके साथ भिड़ गया। श्रीकृष्ण चाणूरके साथ परस्पर भिड़कर, नीचे गिराकर, उछालकर, घूँसे और वज्रके समान कोहनीसे मारकर, पैरोंसे ठोकरें देकर तथा एक दूसरेके शरीरको रगड़कर लड़ने लगे। इस तरह उन दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस युद्धमें यद्यपि किसी अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग नहीं होता था, तो भी वह अत्यन्त घोर एवं भयंकर था। अपने बल और प्राणशक्तिसे ही साध्य था। ज्यों-ज्यों चाणूर श्रीहरिके साथ युद्ध करता, त्यों-ही-त्यों उसकी प्राणशक्ति घटती जाती थी। जगन्मय श्रीकृष्ण भी उसके साथ लीलापूर्वक युद्ध करने लगे। वह परिश्रमसे थक गया था, अतः क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णके हाथपर हाथ मार रहा था। कंसने देखा, श्रीकृष्णका बल बढ़ रहा है और चाणूर थकता जा रहा है; तब कुपित होकर

उसने बाजे बंद करा दिये। इसी समय आकाशमें देवताओंके अनेक प्रकारके बाजे बज उठे। अदृश्य भावसे खड़े हुए देवता हर्षमें भरकर भगवान्‌की स्तुति करते हुए बोले— 'केशव! चाणूर दानवको मार डालिये, गोविन्द! आपकी जय हो।'

श्रीकृष्ण देरतक चाणूरके साथ खिलवाड़ करते रहे, फिर उसे मार डालनेके लिये सचेष्ट हुए और दैत्यको उठाकर आकाशमें घुमाने लगे। घुमाते समय ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। भगवान्‌ने उसे सौ बार घुमाकर पृथ्वीपर पटक दिया। चाणूरके सौ-सौ टुकड़े हो गये। उसके रक्तकी धारासे अखाड़ेमें गहरी कीचड़ हो गयी। महाबली बलदेवजी भी उतनी देरतक मुष्टिकके साथ लड़ते रहे। अन्तमें उन्होंने भी उस दैत्यके मस्तकपर मुक्केका प्रहार किया और छातीमें घुटनेसे आघात करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर अपने शरीरसे रगड़कर उसका कचूमर निकाल दिया। उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने पुनः महाबली मल्लराज तोशलको बायें घूँसेकी चोटसे मार गिराया। चाणूर, मुष्टिक और तोशलके मारे जानेपर शेष पहलवान भाग खड़े हुए। उस समय श्रीकृष्ण और बलभद्र रंगभूमिमें समवयस्क ग्वालबालोंको साथ ले हर्षमें भरकर उछलने-कूदने लगे। यह देख कंसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने अपने सेवकोंको आज्ञा दी, 'इन दोनों ग्वालोंको बलपूर्वक रङ्गशालासे बाहर निकाल दो। पापी नन्दको भी पकड़कर तुरंत बेड़ियोंमें जकड़ दो। वसुदेवको भी उसकी वृद्धताका विचार न रखते हुए कठोर दण्ड देकर मार डालो। ये जो ग्वाल-बाल श्रीकृष्णके साथ उछल रहे हैं, इन सबकी गौएँ छीन लो और इनके घरमें जो कुछ भी धन-सम्पत्ति हो, उसे लूट लो।'

कंसको इस प्रकार आदेश देते देख भगवान् मधुसूदन हँस पड़े। वे उछलकर मञ्चपर जा चढ़े। राजाका मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़ा। श्रीकृष्णने उसके केश पकड़ लिये और उसे पृथ्वीपर गिराकर स्वयं भी उसीपर कूद पड़े। वे सम्पूर्ण जगत्‌का भार लेकर उसके ऊपर कूदे थे, इसलिये उसके प्राण निकल गये। उग्रसेनकुमार राजा कंस संसारसे चल बसा। मरनेपर भी श्रीकृष्णने उसके मस्तकके बाल पकड़कर उसके शरीरको रङ्गभूमिमें घसीटा। कंसके पकड़े जानेपर उसका भाई सुनामा क्रोधमें भरकर आया, किन्तु बलभद्रजीने उसे खेलमें ही मार गिराया। मथुराका महाराज कंस श्रीकृष्णके हाथसे



अवहेलनापूर्वक मारा गया, यह देखकर रङ्गभूमिमें आये हुए सब लोग हाहाकार करने लगे। तदनन्तर श्रीकृष्णने शीघ्र जाकर वसुदेव और देवकीके चरण पकड़ लिये। बलदेवजीने भी उनका साथ दिया। वसुदेव और देवकीने श्रीकृष्णको उठाया; और जन्मकालमें उन्होंने जो बातें कही थीं, उन्हें याद करके वे स्वयं ही प्रणाम करने लगे।

वसुदेवजी बोले—देवदेवेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न होइये। प्रभो! आप देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। केशव! आपने हम दोनोंपर कृपा करके ही हम दोनोंका उद्धार किया है। हमारे आराधना करनेपर भगवान्‌ने जो दुराचारी दैत्योंका वध करनेके लिये हमारे घरमें अवतार लिया, इससे हमारा कुल पवित्र हो गया। सर्वात्मन्! आप ही सम्पूर्ण भूतोंके अन्त हैं—आपमें ही सबका लय होता है। आप समस्त प्राणियोंके भीतर विराजमान हैं। आपसे ही भूत और भविष्यकी प्रवृत्ति हुई है। सर्वदेवमय अच्युत! अचिन्त्य परमेश्वर! यज्ञमें आपका ही यजन किया जाता है। परमेश्वर! आप ही यज्ञ हैं और आप ही यज्ञोंके कर्ता-धर्ता हैं। आपके प्रति परमात्मभावको हटाकर जो मेरा और देवकीका मन पुत्र-स्नेहके कारण आपकी ओर जाता है, यह हमारे लिये अत्यन्त विडम्बना है। कहाँ तो आप सम्पूर्ण भूतोंके कर्ता, अनादि और अनन्त परमेश्वर और कहाँ हमारी इस मानवीय जिह्वाका

आपको 'पुत्र' कहकर पुकारना ! जिनके भीतर समस्त चराचर जगत् प्रतिष्ठित है, वे किसी मनुष्यसे कैसे उत्पन्न हो सकते हैं, किसी नारीके गर्भमें कैसे शयन कर सकते हैं। जगन्नाथ ! जिनसे यह सम्पूर्ण संसार उत्पन्न हुआ है, वे आप मायाके सिवा किस युक्तिसे मेरे पुत्र हो सकते हैं। परमेश्वर ! आप प्रसन्न हों । इस विश्वकी रक्षा करें । आप मेरे पुत्र नहीं हैं । ईश ! ब्रह्मासे लेकर वृक्षपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है । परमात्मन् ! आप हमारे मनमें मोह क्यों उत्पन्न करते हैं । मेरी दृष्टि मायासे मोहित हो रही थी । आप मेरे पुत्र हैं, यह समझकर मैंने कंससे अत्यन्त भय किया था और शत्रुके भयसे व्याकुल होकर आपको गोकुल ले गया था । गोविन्द ! वहाँ रहकर आप मेरे सौभाग्यसे इतने बड़े हुए हैं । रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और इन्द्रके द्वारा भी जो कार्य सिद्ध नहीं हो सकते, वे भी आपके द्वारा सिद्ध होते देखे गये हैं। ईश ! आप साक्षात् श्रीविष्णु हैं । जगत्का कल्याण करनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं । हमारा सारा मोह अब दूर हो गया ।

भगवान्की माता-पितासे भेंट, उग्रसेनका राज्याभिषेक, श्रीकृष्ण-बलरामका विद्याध्ययन, गुरुपुत्रको यमपुरसे लाना, जरासंधकी पराजय, कालयवनका संहार तथा मुचुकुन्दद्वारा भगवान्का स्तवन

व्यासजी कहते हैं—भगवान्के अलौकिक कर्म देखकर वसुदेव और देवकीको उनके भगवद्भावका ज्ञान हो गया, यह देख भगवान् श्रीहरिने यदुवंशियोंको मोहनेके लिये वैष्णवी माया फैलायी और कहा—'माता और पिताजी ! मैं तथा भैया बलराम बहुत दिनोंसे आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थे, आज दीर्घ कालके बाद हमें आपका दर्शन मिला है। जिसका समय माता-पिताकी सेवा किये बिना ही बीतता है, उस पुत्रका जीवन व्यर्थ है; वह जननीको कष्ट देनेवाला माना गया है। साधु पुरुषोंमें उसकी निन्दा होती है । तात ! जो गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिताका पूजन-सत्कार करते हैं, उन्हींका जन्म सफल होता है । पिताजी ! हमलोग कंसके बल और प्रतापसे पराधीन हो गये थे; अतः हमारे द्वारा जो अपने कर्तव्यका उल्लङ्घन हुआ है, वह सब आप क्षमा करें।'

यों कहकर दोनों भाइयोंने माता-पिताको प्रणाम किया। फिर क्रमशः यदुकुलके सभी बड़े-बूढ़ोंका चरणस्पर्श किया। इस प्रकार अपने विनयपूर्ण बर्तावसे समस्त पुरवासियोंके मनमें अपने प्रति स्नेहका संचार कर दिया। कंसके मारे जानेपर उसकी पत्नियाँ और माताएँ शोक और दुःखमें डूब गयीं तथा उसको सब ओरसे घेरकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगीं। उन्हें घबरायी हुई और दुखी देख श्रीकृष्णने स्वयं भी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उन सबको सान्त्वना दी, उग्रसेनको कैदसे छुड़ाया और अपने राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। राज्यासनपर बैठनेके बाद उग्रसेनने अपने पुत्रके तथा अन्य मरे हुए व्यक्तियोंके पारलौकिक कार्य किये। मृतकोंकी और्ध्वदैहिक क्रिया करनेके पश्चात् जब उग्रसेन पुनः सिंहासनपर बैठे, तब श्रीकृष्णने उनसे कहा—'महाराज ! जो भी आवश्यक कार्य हो, उसके लिये मुझे निःशङ्क होकर आज्ञा दें। जबतक मैं आपकी सेवामें मौजूद हूँ तबतक आप देवताओंको भी आज्ञा दे सकते हैं, फिर इस पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या है।'



उग्रसेनसे यों कहकर श्रीकृष्ण वायुदेवतासे बोले—"वायो ! तुम इन्द्रके पास जाओ और उनसे मेरा यह संदेश

कहो, 'इन्द्र ! तुम अभिमान छोड़कर महाराज उग्रसेनको सुधर्मा सभा दे दो । श्रीकृष्ण कहते हैं, यह राजाके योग्य उत्तम रत्न है; अतः सुधर्मा सभामें यदुवंशियोंका बैठना सर्वथा उचित है ।' भगवान्के यों कहनेपर वायुदेवने शचीपति इन्द्रसे सब कुछ कहा । इन्द्रने वायुको सुधर्मा सभा दे दी । वह दिव्य सभा सब रत्नोंसे सम्पन्न थी । गोविन्दकी भुजाओंकी छत्रछायामें रहनेवाले यादव वायुद्वारा लायी हुई उस सभाका उपभोग करने लगे । श्रीकृष्ण और बलभद्र सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञाता तथा पूर्ण ज्ञानस्वरूप थे, तथापि शिष्य और आचार्यकी परम्पराको सुरक्षित रखनेके लिये उन्होंने काश्यगोत्रमें उत्पन्न अवन्तीपुरनिवासी सांदीपनिजीके यहाँ विद्याध्ययनके लिये यात्रा की । बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई शिष्यता ग्रहण करके निरन्तर गुरु-सेवामें लगे रहते थे । उन्होंने अपने आचरणद्वारा सबको शिष्यके कर्तव्यका उपदेश दिया । चौसठ दिनोंमें ही रहस्य और संग्रह (अस्त्रोंके उपसंहार) सहित धनुर्वेदका उन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया । यह एक अद्भुत बात थी । उनके अलौकिक और अनहोने कर्मोंको देखकर गुरुने ऐसा समझा कि साक्षात् सूर्य और चन्द्रमा इन दोनोंके रूपमें मेरे यहाँ आये हैं । एक बार बतानेमात्रसे ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका उन्हें ज्ञान हो गया । पूरी विद्या पढ़कर उन्होंने गुरुसे कहा—'भगवन् ! आपको क्या गुरुदक्षिणा दी जाय ? बताइये ।' परम बुद्धिमान् गुरुने भी उनके अलौकिक कर्मका विचार करके अपने मरे हुए पुत्रको माँगा, जो प्रभासक्षेत्रमें समुद्रके भीतर डूब गया था । तब बलराम और श्रीकृष्ण हथियार लेकर समुद्रतटपर गये और समुद्रसे बोले—'मेरे गुरुके पुत्रको ले आओ ।' समुद्रने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! मैंने सांदीपनिके पुत्रका अपहरण नहीं किया है । मेरे भीतर पञ्चजन नामका एक दैत्य रहता है, उसका आकार शङ्खका-सा है । उसीने उस बालकको पकड़ लिया था । वह दैत्य आज भी मेरे जलमें मौजूद है ।' समुद्रके यों कहनेपर भगवान्ने जलमें प्रवेश करके पञ्चजनको मार डाला और उसकी हड्डियोंका उत्तम शङ्ख ग्रहण किया । उसका शब्द सुनकर दैत्योंका बल क्षीण होता, देवताओंकी शक्ति बढ़ती और अधर्मका नाश होता है । तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और बलवान् बलरामजी यमपुरीमें गये; वहाँ उन्होंने शङ्ख-नाद किया और वैवस्वत यमको जीतकर गुरुके पुत्रको प्राप्त कर लिया । वह बेचारा वहाँ नरककी यातना भोग रहा था । उसे पहले-जैसा शरीर प्रदानकर दोनों भाइयोंने गुरुको अर्पित किया । तत्पश्चात् वे दोनों बन्धु उग्रसेनद्वारा पालित मथुरापुरीमें चले आये । उनके आगमनसे मथुराके सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो गये ।

महाबली कंसने जरासंधकी पुत्री अस्ति और प्राप्तिसे विवाह किया था । जरासंध मगधदेशका बलवान् राजा था । वह बहुत बड़ी सेना साथ लेकर अपने दामादको मारनेवाले यदुवंशियोंसहित श्रीकृष्णका वध करनेके लिये क्रोधपूर्वक आया । मथुराके पास पहुँचकर उसने उस पुरीको चारों ओरसे घेर लिया । उसके साथ तेईस अक्षौहिणी सेना थी । बलराम और श्रीकृष्ण थोड़े-से सैनिकोंको साथ ले नगरसे बाहर निकले और उसके बलवान् योद्धाओंके साथ युद्ध करने लगे । उस समय उन्हें अपने पुरातन आयुधोंको ग्रहण करनेकी इच्छा हुई । उनके मनमें ऐसा संकल्प आते ही सुदर्शन चक्र, शार्ङ्गधनुष, बाणोंसे भरा हुआ अक्षय तूणीर और कौमोदकी गदा—ये सभी अस्त्र श्रीकृष्णके हाथमें आ गये । इसी प्रकार बलदेवजीके हाथमें भी उनके अभीष्ट अस्त्र हल और मुसल आ गये । उन दिव्य अस्त्रोंको पाकर श्रीकृष्ण और बलरामने मगधराज जरासंधको सेनासहित युद्धमें परास्त कर दिया और फिर वे अपनी पुरीमें लौट आये । दुराचारी जरासंध परास्त होकर भी जीते-जी लौट गया था । अतः श्रीकृष्णने उसे हारा हुआ नहीं समझा । वह पुनः बहुत बड़ी सेनाके साथ मथुरापर चढ़ आया और बलराम तथा श्रीकृष्णसे परास्त होकर भाग खड़ा हुआ । इस प्रकार अत्यन्त दुर्मद मगधराजने श्रीकृष्ण आदि यदुवंशियोंके साथ अठारह बार लोहा लिया । परंतु प्रत्येक युद्धमें उसे यदुवंशियोंद्वारा मुँहकी खानी पड़ी । यद्यपि उसके पास सेना अधिक थी, तो भी थोड़ी-सी सेनावाले यादवोंने उसे मार भगाया । इन अनेक युद्धोंमें लड़नेपर भी जो यदुवंशियोंकी सेना सुरक्षित रह गयी, यह चक्रपाणि भगवान् विष्णुके अंशभूत श्रीकृष्णके सामीप्यकी महिमा थी । भगवान् श्रीकृष्ण शत्रुओंपर जो अनेक प्रकारके अस्त्र चलाते थे, यह मनुष्यधर्मका पालन करनेवाले जगदीश्वरकी लीला थी । जो मनसे ही संसारकी सृष्टि और संहार करते हैं, उन्हें शत्रुपक्षका विनाश करनेमें कितने उद्यमकी आवश्यकता है; तथापि मनुष्योंके धर्मका अनुसरण करते हुए बलवानोंसे संधि और हीन बलवालोंके साथ युद्ध करते थे । कहीं साम, दान और कहीं भेदकी नीति दिखाते हुए, कहीं-कहींपर दण्डनीति-का भी प्रयोग करते थे और आवश्यकता होनेपर कहीं

युद्धसे पलायन भी करते थे । इस प्रकार वे मानव-शरीरकी चेष्टाका अनुसरण करते थे । वास्तवमें यह जगदीश्वरकी लीला है, जो उनकी इच्छाके अनुसार होती है ।

दक्षिणमें एक यवनोंका राजा रहता था, उसने अपने पुत्र कालयवनको अपने राज्यपर अभिषिक्त किया और स्वयं वनमें चला गया। कालयवन बलके मदसे उन्मत्त रहता था। एक बार उसने नारदजीसे पूछा—'पृथ्वीपर बलवान् राजा कौन-कौन-से हैं?' नारदजीने यादवोंको बतलाया । उसने हाथी, घोड़े और रथसहित खरबों म्लेच्छोंकी सेना साथ लेकर यादवोंपर आक्रमण-की तैयारी की । वह प्रतिदिन अविच्छिन्न गतिसे यात्रा करता हुआ मथुराको गया । यादवोंके प्रति उसके हृदयमें बड़ा अमर्ष था । । उसके आक्रमणका समाचार जानकर श्रीकृष्णने सोचा, 'यदि कालयवनने आकर यादवोंकी सेनाका संहार कर दिया तो अवसर देखकर मगधराज जरासंध भी आक्रमण करेगा और यदि पहले जरासंधने ही आकर हमारी सेनाको क्षीण कर दिया तो बलवान् कालयवन बचे-खुचे सैनिकोंको मार डालेगा । अहो ! यदुवंशियोंपर दोनों प्रकारसे संकट उपस्थित है; अतः इससे बचनेके लिये मैं यादवोंके निमित्त अत्यन्त दुर्जय दुर्गका निर्माण करूँगा, जहाँ रहकर स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकती हैं, फिर वृष्णियों और यादवोंकी तो बात ही क्या। यदि मैं सोया अथवा बाहर गया होऊँ, तो भी उस दुर्गमें रहनेपर दुष्ट शत्रु यादवोंको अधिक कष्ट न दे सकें ।' यह सोचकर गोविन्दने समुद्रसे बारह योजन भूमि माँगी और उसीमें द्वारकापुरीका निर्माण किया । उसमें बड़े-बड़े उद्यान शोभा पाते थे । उसकी चहारदीवारी बहुत ऊँची थी । सैकड़ों सरोवरोंसे वह पुरी सुशोभित हो रही थी । उसमें सैकड़ों परकोटे बने हुए थे । वह पुरी इन्द्रकी अमरावती-सी मनोहर जान पड़ती थी । भगवान् श्रीकृष्णने मथुराके निवासियोंको वहीं पहुँचा दिया और जब कालयवन समीप आ गया, तब वे स्वयं मथुरा लौट आये । मथुराके बाहर कालयवनकी सेनाका पड़ाव था । श्रीकृष्ण अस्त्र-शस्त्र लिये बिना ही मथुरासे बाहर निकले । कालयवनने उन्हें देखा और यह जानकर कि ये ही वासुदेव हैं, बिना अस्त्र-शस्त्रके ही उनका पीछा किया । जिन्हें बड़े-बड़े योगी अपने मनके द्वारा भी नहीं प्राप्त कर सकते, उन्हीं भगवान्‌को पकड़नेके लिये कालयवन उनके पीछे-पीछे चला । उसके पीछा करनेपर श्रीकृष्ण भी एक बहुत बड़ी गुफामें प्रवेश कर गये, जहाँ महापराक्रमी राजा मुचुकुन्द सोये हुए थे । कालयवनने भी उस गुफामें प्रवेश करके देखा, एक मनुष्य सो रहा है । उसे श्रीकृष्ण समझकर उस खोटी बुद्धिवाले यवनने लात



मारी । मुचुकुन्दकी आँख खुल गयी और वह यवन राजाकी दृष्टि पड़ते ही उनकी क्रोधाग्निसे जलकर भस्म हो गया ।

पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्द देवासुर-संग्राममें युद्ध करनेके लिये गये थे । वहाँ उन्होंने बड़े-बड़े दैत्योंको परास्त किया । युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें नींद सताने लगी । तब उन्होंने देवताओंसे दीर्घकालतक निद्रामें पड़े रहनेका वरदान माँगा । देवताओंने कहा—'राजन् ! जो तुम्हें सोतेसे उठा देगा, वह तुम्हारे शरीरसे उत्पन्न हुई अग्निसे तत्क्षण जलकर भस्म हो जायगा ।' इस प्रकार पापी कालयवनको भस्म करके राजाने मधुसूदनसे पूछा—'आप कौन हैं?' वे बोले—'मैं चन्द्रवंशके भीतर यदुकुलमें उत्पन्न वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण हूँ।' यह सुनकर उन्होंने सर्वेश्वर श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! मैंने आपको पहचान लिया । आप श्रीहरिके अंशभूत साक्षात् परमेश्वर हैं । पूर्वकालमें गार्ग्यने कहा था—अट्ठाईसवें द्वापर-के अन्तमें यदुकुलमें श्रीहरिका अवतार होगा । वे अवतारधारी श्रीहरि आप ही हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । आप मर्त्यलोकके प्राणियोंका उपकार करनेवाले हैं । आपके इस महान् तेजको मैं नहीं सह सकता । आपकी वाणी महामेघकी गम्भीर गर्जनाके समान है । देवासुर-संग्राममें

दैत्यपक्षके महान् योद्धा भी आपके जिस महान् तेजको सहन न कर सके, वही तेज आज मेरे लिये भी असह्य है। संसार-सागरमें पड़े हुए जीवके लिये एकमात्र आप ही परमाश्रय हैं, शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले हैं। भगवन्! मुझपर प्रसन्न होइये और मेरे अमङ्गलको हर लीजिये। आप ही समुद्र, पर्वत, नदी, वन, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि तथा पुरुष हैं। पुरुषसे भी परे जो व्यापक, जन्म आदि विकारोंसे रहित, शब्द आदिसे शून्य, सदा नवीन तथा वृद्धि और क्षयसे रहित तत्त्व है, वह भी आप ही हैं। देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, अप्सरा, मनुष्य, पशु-पक्षी, सर्प, मृग तथा वृक्ष—सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। इस चराचर जगत्में जो कुछ भी भूत या भविष्य, मूर्त या अमूर्त अथवा स्थूल या सूक्ष्मतर वस्तु है, वह सब आपके सिवा कुछ भी नहीं है। भगवन्! इस संसारचक्रमें आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे पीड़ित हो सदा भटकते हुए मुझे कभी शान्ति नहीं मिली। नाथ! मैंने मृगतृष्णासे जलकी आशा करके दुःखोंको ही सुख समझकर ग्रहण किया, अतः वे सदा मेरे लिये संतापके ही कारण हुए। प्रभो! राज्य, पृथ्वी, सेना, कोष, मित्र, पुत्र, पत्नी, भृत्य और शब्द आदि विषय—यह सब कुछ मैंने सुख-बुद्धिसे ग्रहण किया; परंतु देवेश्वर! परिणाममें ये सब मेरे लिये संतापप्रद ही सिद्ध हुए हैं। नाथ! देवलोककी उत्तम गतिको प्राप्त देवताओंको भी जब मुझसे सहायता लेनेकी इच्छा हुई, तब वहाँ भी नित्य शान्ति कहाँ है। आप सम्पूर्ण जगत्के उद्गम-स्थान हैं। परमेश्वर! आपकी आराधना किये बिना सनातन शान्ति कौन पा सकता है। जिनका चित्त आपकी मायासे मोहित है, वे जन्म-मृत्यु और जरा आदि कष्टोंको भोगकर अन्तमें यमराजका दर्शन करते हैं। तदनन्तर सैकड़ों पाशोंमें आबद्ध हो नरकोंमें अत्यन्त दारुण दुःख भोगते हैं। यह विश्व आपका स्वरूप है। परमेश्वर! मैं अत्यन्त विषयी हूँ और आपकी मायासे मोहित होकर ममताके अगाध गर्त्तमें भटक रहा हूँ। वही मैं आज अपार एवं स्तवन करने योग्य आप परमेश्वरकी शरणमें आया हूँ, जिससे भिन्न दूसरा कोई परम पद नहीं है। मेरा चित्त सांसारिक श्रमसे संतप्त है; अतः मैं निर्वाणस्वरूप आप परमधाम परमात्माकी अभिलाषा करता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दके इस प्रकार स्तुति करनेपर आदि-अन्तरहित, सर्वभूतेश्वर श्रीहरिने कहा—'नरेश्वर! तुम अपनी इच्छाके अनुसार दिव्य लोकोंमें जाओ और मेरे प्रसादसे उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होकर वहाँके दिव्य भोग भोगो। तत्पश्चात् इस पृथ्वीपर श्रेष्ठ कुलमें तुम्हारा जन्म होगा। उस समय तुम्हें अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी और मेरी कृपासे तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे।' यह सुनकर राजाने जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और गुफासे निकलकर देखा तो सब मनुष्य छोटे-छोटे दिखायी दिये। तब कलियुग आया जान वे तपस्या करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके आश्रममें चले गये। श्रीकृष्णने भी युक्तिसे शत्रुका वध कराकर मथुरामें आ हाथी, घोड़े और रथसे सुशोभित उसकी सारी सेना अपने अधिकारमें कर ली तथा द्वारकामें ले जाकर राजा उग्रसेनको समर्पित कर दी। अब सम्पूर्ण यादव शत्रुओंके आक्रमणकी आशङ्कासे निर्भय हो गये।

बलरामजीकी व्रजयात्रा, श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका हरण तथा प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुरका वध

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर बलदेवजी अपने बन्धु-बान्धवोंके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो नन्दगाँवमें आये। उस समय सम्पूर्ण गोप और गोपियाँ उनसे पूर्ववत् मिलीं। बलरामजीने सबको आदर देते हुए सबके साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया। किन्हींने उनको हृदयसे लगाया। कुछ लोगोंका उन्होंने गाढ़ आलिङ्गन किया तथा कुछ गोप-गोपियोंके साथ बैठकर उन्होंने हास्य-विनोद किया। वहाँ गोपोंने बलरामजीसे अनेकों प्रिय लगनेवाली बातें कहीं। कुछ गोपियाँ उन्हें देखकर प्रेमानन्दमें निमग्न हो गयीं तथा कुछ दूसरी गोपियोंने ईर्ष्यापूर्वक पूछा—'चञ्चल प्रेमरसके आस्वादनमें व्यग्र रहनेवाले नागरी स्त्रियोंके प्रियतम श्रीकृष्ण तो सुखसे हैं न? क्षणिक अनुराग दिखानेवाले श्यामसुन्दर क्या कभी हमारी चेष्टाओंका उपहास करते हुए नगरकी महिलाओंके सौभाग्यका मान नहीं बढ़ाते? क्या श्रीकृष्ण कभी हमारे गीतोंका अनुसरण करनेवाले मधुर स्वरका स्मरण करते हैं? क्या वे एक बार भी अपनी माताको देखनेके लिये यहाँ आयेंगे? अथवा उनकी बात करनेसे हमें क्या लाभ। कोई दूसरी बात करो। यदि हमारे बिना उनका काम चल सकता

है तो उनके बिना हमारा भी चल जायगा। हमने उनके लिये पिता, माता, भ्राता, पति और बन्धु-बान्धव—किसको नहीं छोड़ दिया। फिर भी वे कृतज्ञ न हो सके। तथापि बलरामजी! क्या श्रीकृष्ण कभी यहाँ आनेके विषयमें भी आपसे बात करते हैं? दामोदर श्रीकृष्णका मन तो नगरकी स्त्रियोंमें आसक्त हो गया है। हमपर अब उनका प्रेम नहीं रहा। अतः अब हमारे लिये उनका दर्शन दुर्लभ ही जान पड़ता है।'

भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंका चित्त आकृष्ट कर लिया था। वे बलभद्रजीको भी 'हे कृष्ण! हे दामोदर!' कहकर पुकारने और जोर-जोरसे हँसने लगीं। तब बलरामजीने श्रीकृष्णके सौम्य, मधुर, प्रेमगर्भित, अभिमानशून्य और अत्यन्त मनोहर संदेश सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी। फिर गोपोंके साथ प्रेमपूर्वक हास-परिहासयुक्त मनोहर बातें कीं और पहलेकी ही भाँति वे उनके साथ व्रजभूमिमें विचरण करने लगे। दो महीने वहाँ रहकर वे पुनः द्वारकाको चले गये। उनका विवाह राजा रेवतकी कन्या रेवतीसे हुआ। उसके गर्भसे बलरामजीने निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये।

विदर्भ देशमें कुण्डिनपुर नामक एक नगर है, वहाँ राजा भीष्मक राज्य करते थे। उनके पुत्रका नाम रुक्मी और कन्याका रुक्मिणी था। श्रीकृष्ण रुक्मिणीको प्राप्त करना चाहते थे और मनोहर मुसकानवाली रुक्मिणी भी श्रीकृष्णचन्द्रको पतिरूपमें पानेकी अभिलाषा रखती थी। उन्होंने कुण्डिननरेशसे रुक्मिणीके लिये प्रार्थना भी की, किंतु रुक्मीने द्वेषवश श्रीकृष्णकी प्रार्थना ठुकरा दी। जरासंधकी प्रेरणासे परम पराक्रमी राजा भीष्मकने रुक्मीके साथ मिलकर शिशुपालको अपनी कन्या देनेका निश्चय किया। शिशुपालका विवाह सम्पन्न करनेके लिये जरासंध आदि सभी प्रमुख राजा उसे साथ ले कुण्डिनपुरमें गये। श्रीकृष्ण भी बलभद्र आदि यादवोंके साथ चैद्यनरेशका विवाह देखनेके लिये वहाँ उपस्थित हुए।

विवाह होनेमें एक ही दिनकी देर थी, इसी समय श्रीहरिने बलभद्र आदि बन्धुजनोंपर शत्रुओंके रोकनेका भार रखकर राजकुमारी रुक्मिणीको हर लिया। इससे पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध और शाल्व आदि राजा बहुत कुपित हुए। उन्होंने श्रीकृष्णको मार डालनेकी भारी चेष्टा की, किंतु बलराम आदि यादव वीरोंने सामना करके उन सबको परास्त कर दिया। तब रुक्मीने यह प्रतिज्ञा करके कि 'मैं श्रीकृष्णको युद्धमें मारे बिना कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं



करूँगा,' श्रीकृष्णका पीछा किया; परंतु चक्रपाणि श्रीकृष्णने हाथी, घोड़े, पैदल और रथोंसे युक्त रुक्मीकी चतुरङ्गिणी सेनाका वध करके उसे लीलापूर्वक जीत लिया और पृथ्वीपर गिरा दिया। इस प्रकार रुक्मीको जीतकर मधुसूदनने रुक्मिणीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। रुक्मिणीके गर्भसे बलवान् प्रद्युम्नका जन्म हुआ, जो कामदेवके अंश थे, जिन्हें जन्मके समय ही शम्बरासुरने हर लिया था और जिन्होंने बड़े होनेपर शम्बरासुरका वध किया था।

मुनियोंने पूछा—मुने! शम्बरासुरने वीरवर प्रद्युम्नका अपहरण कैसे किया और महापराक्रमी शम्बर प्रद्युम्नके हाथसे किस प्रकार मारा गया?

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! शम्बरासुर कालके समान विकराल था। उसे यह बात मालूम हो गयी थी कि श्रीकृष्णका पुत्र प्रद्युम्न मेरा वध करेगा; अतः उसने जन्मके छठे दिन ही प्रद्युम्नको सूतिकागृहसे हर लिया और उन्हें ले जाकर समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ उस बालकको एक मत्स्यने निगल लिया, किंतु उसकी जठराग्निसे तप्त होनेपर भी बालककी मृत्यु न हो सकी। तदनन्तर मछेरोंने अन्य मछलियोंके साथ उस मत्स्यको भी मारा और असुरोंमें श्रेष्ठ शम्बरासुरको भेंट कर दिया। उसके घरमें मायावती नामकी एक युवती गृहस्वामिनी थी। वह सुन्दरी रसोइयोंका आधिपत्य करती थी। जब मछलीका पेट चीरा

गया, तब उसमें मायावतीने एक अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, जो जले हुए कामरूपी वृक्षका प्रथम अङ्कुर था। 'यह कौन है? किस प्रकार मछलीके पेटमें आ गया?' इस प्रकार कौतूहलमें पड़ी हुई उस कृशाङ्गी तरुणीसे नारदजीने कहा—'यह सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र है। इसे शम्बरासुरने सौरीसे चुराकर समुद्रमें फेंक दिया और वहाँ मत्स्यने निगल लिया था। वही यह बालक है, जो आज तुम्हारे हाथ आ गया। सुन्दरी! यह मनुष्योंमें रत्न है। तुम पूर्ण विश्वासके साथ इसका पालन करो।'

देवर्षि नारदके यों कहनेपर मायावतीने उस बालकका पालन किया। उसका अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर वह मोहित थी और बचपनसे ही अत्यन्त अनुरागपूर्वक उसकी सेवा करने लगी। जिस समय वह बालक युवावस्थाकी संधिसे सुशोभित हुआ, उस समय वह गजगामिनी बाला प्रद्युम्नके प्रति कामनायुक्त भाव प्रकट करने लगी। मायावतीने महात्मा प्रद्युम्नको सारी माया सिखा दी। उसका मन उन्हींमें रमता था और उसके नेत्र सदा उन्हींको निहारते रहते थे। मायावतीको अपने प्रति आसक्त होते देख कमलनयन प्रद्युम्नने कहा—'तू मातृभावका परित्याग करके यह विपरीत भावना कैसे करती है?' मायावतीने कहा—'तुम मेरे नहीं, भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र हो। तुम्हें कालरूपी शम्बरने चुराकर समुद्रमें फेंक दिया था। तुम मुझे मछलीके पेटसे प्राप्त हुए हो। प्रिय! तुम्हारी पुत्रवत्सला माता आज भी तुम्हारे लिये रोती है।'

मायावतीके यों कहनेपर महाबली प्रद्युम्नका चित्त क्रोधसे व्याकुल हो उठा। उन्होंने शम्बरासुरको युद्धके लिये ललकारा और उसकी सारी दैत्यसेनाका संहार करके सातों मायाओंको जीतकर उसके ऊपर आठवीं मायाका प्रयोग किया। उस मायासे प्रद्युम्नने कालरूपी शम्बरको मार डाला और आकाशमार्गसे उड़कर वे मायावतीके साथ अपने पिताके नगरमें आये। अन्तःपुरमें उतरनेपर मायावतीसहित प्रद्युम्नको देखकर श्रीकृष्णकी रानियाँ प्रसन्न हो अनेक प्रकारके संकल्प करने लगीं। रुक्मिणीकी दृष्टि प्रद्युम्नकी ओरसे हटती ही नहीं थी। वे स्नेहमें भरकर कहने लगीं—'यह अवश्य ही किसी बड़भागिनीका पुत्र है। अभी इनकी युवावस्थाका आरम्भ हो रहा है। यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होता तो उसकी भी यही अवस्था होती। बेटा! तुमने अपने जन्मसे किस सौभाग्यशालिनी जननीकी शोभा बढ़ायी है? अथवा तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें जैसा स्नेह उमड़ रहा है, उसके अनुसार मैं यह स्पष्टरूपसे कह सकती हूँ कि तुम श्रीहरिके ही पुत्र हो।'

इसी समय श्रीकृष्णके साथ नारदजी वहाँ आये। उन्होंने अन्तःपुरमें रहनेवाली रुक्मिणी देवीसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'सुभ्रू! यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न है। इस समय शम्बरासुरको मारकर यहाँ आया है। कुछ वर्ष पहले शम्बरासुरने ही तुम्हारे पुत्रको सूतिकागृहसे हर लिया था। यह तुम्हारे पुत्रकी सती भार्या मायावती है। यह शम्बरासुरकी पत्नी नहीं है। इसका कारण सुनो। जब शंकरजीके कोपसे कामदेवका नाश हो गया, तब उनके पुनर्जन्मकी प्रतीक्षा करती हुई रतिने अपने मायामय रूपसे शम्बरासुरको मोहित किया। देवि! तुम्हारे पुत्ररूपमें ये कामदेव ही अवतीर्ण हुए हैं और यह उन्हींकी पत्नी रति है। कल्याणी! यह तुम्हारी पुत्रवधू है, इसमें किसी प्रकारकी विपरीत शङ्का न करना।'

यह सुनकर रुक्मिणी और श्रीकृष्णको बड़ा हर्ष हुआ। समस्त द्वारकापुरी 'धन्य! धन्य!' कहने लगी। चिरकालसे खोये हुए पुत्रके साथ माता रुक्मिणीका मिलन देख द्वारकापुरीके सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ।

श्रीकृष्णकी संतति, अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका वध, भौमासुरका वध, पारिजात-हरण तथा इन्द्रकी पराजय

व्यासजी कहते हैं—रुक्मिणीने प्रद्युम्नके अतिरिक्त चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और बलवानोंमें श्रेष्ठ चारु नामक पुत्र तथा चारुमती नामकी कन्याको जन्म दिया। रुक्मिणीके सिवा श्रीकृष्णकी सात पटरानियाँ और थीं। उनके नाम ये हैं—कालिन्दी, मित्रविन्दा, राजा नग्नजित्की पुत्री सत्या, जाम्बवान्की कन्या इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली रोहिणी-देवी (जाम्बवती), अपने शीलसे विभूषित मद्रराजकुमारी भद्रा, सत्राजित्की पुत्री सत्यभामा तथा मनोहर मुसकानवाली लक्ष्मणा। इनके सिवा श्रीकृष्णके सोलह हजार स्त्रियाँ और थीं। महापराक्रमी प्रद्युम्नने रुक्मीकी सुन्दरी कन्याको और उस कन्याने भी श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नजीको स्वयंवरमें ग्रहण

किया । उसके गर्भसे प्रद्युम्नजीके अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ, जो महाबली, महापराक्रमी, युद्धमें कभी रुद्ध (कुण्ठित) न होनेवाला, बलका समुद्र तथा शत्रुओंका दमन करनेवाला था । अनिरुद्धको भी रुक्मीकी पौत्रीने वरण किया । यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णके साथ लाग-डाँट रखता था, तो भी उसने अपने दौहित्र अनिरुद्धके साथ पौत्रीका विवाह कर दिया । उस विवाहमें बलराम आदि यदुवंशी श्रीकृष्णके साथ रुक्मीके भोजकट नगरमें गये थे । विवाह हो जानेपर कलिङ्गराज आदिने रुक्मीसे कहा—'राजन् ! बलराम जूआ खेलना नहीं जानते, तथापि उन्हें जूएका बड़ा भारी व्यसन है; अतः आज हमलोग उनको जूएसे ही परास्त करें ।' 'बहुत अच्छा' कहकर रुक्मीने सभामें बलरामजीके साथ जूएका खेल आरम्भ किया । पहले ही दाँवमें बलभद्रजी एक हजार स्वर्णमुद्रा हार गये । उसके बाद भी कई बार उनकी हार हुई । यह देख मूर्ख कलिङ्गराज दाँत दिखाते हुए बलरामजीका उपहास करने लगा । मदोन्मत्त रुक्मीने भी कहा—'बलभद्रको तो द्यूत-विद्याका बिल्कुल ज्ञान नहीं है । इसीलिये बार-बार हार खानी पड़ी है । ये व्यर्थ ही घमंडमें आकर अपनेको द्यूत-विद्याका पूर्ण ज्ञाता मानते थे ।' तब बलरामजीने क्रोधमें भरकर एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दाँवपर लगा दीं । रुक्मीने पासा फेंका । अबकी बार बलभद्रजीकी जीत हुई । उन्होंने उच्चस्वरसे कहा—'मैंने जीत लिया ।' रुक्मी बोला—'क्यों झूठ बोलते हो । जीत तो मेरी हुई है । तुमने इस दाँवके विषयमें चर्चा अवश्य की थी, परंतु मैंने उसका अनुमोदन तो नहीं किया था । ऐसी दशामें भी यदि तुम्हारी जीत हुई है तो मेरी जीत कैसे नहीं हुई ।' इसी समय महात्मा बलरामजीके क्रोधको बढ़ाती हुई आकाशवाणी हुई—'जीत तो बलदेवजीकी ही हुई है । रुक्मी झूठ बोलता है । मुँहसे अनुमोदनसूचक वचन न कहनेपर भी जो उसने दाँवको स्वीकार करके पासा फेंका है, इस कर्मसे उसका अनुमोदन सिद्ध हो जाता है ।'

इतना सुनते ही बलरामजी क्रोधसे लाल आँखें करके उठ खड़े हुए । उन्होंने जूआ खेलनेके पासेसे ही रुक्मीको मौतके घाट उतार दिया । फिर काँपते हुए कलिङ्गराजको बलपूर्वक धर दबाया और जिन्हें दिखा-दिखाकर वह हँसता था, उन दाँतोंको कुपित होकर तोड़ डाला । फिर सभाभवनके सुवर्णमय विशाल खम्भको खींच लिया और क्रोधमें आकर रुक्मीके पक्षमें आये हुए समस्त राजाओंका संहार कर डाला । बलरामजीके कुपित होनेपर सम्पूर्ण राजालोग हाहाकार करते हुए भाग खड़े हुए । बलरामजीके द्वारा रुक्मीको मारा गया सुनकर श्रीकृष्ण चुप रहे । रुक्मिणी और बलराम दोनोंके संकोचसे वे कुछ बोल न सके । तदनन्तर विवाहके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्धसहित यादवोंको साथ ले द्वारका चले आये ।

एक दिन त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र मतवाले ऐरावतकी पीठपर बैठकर द्वारकामें श्रीकृष्णके पास आये और इस प्रकार बोले—'मधुसूदन ! यद्यपि आप इस समय मनुष्यरूपमें स्थित हैं, तथापि आपने रक्षक बनकर देवताओंके सम्पूर्ण दुःख दूर कर दिये हैं । तपस्वी जनोंकी रक्षाके लिये अरिष्ट, धेनुक, प्रलम्ब तथा केशी आदि सब दैत्योंका नाश किया और कंस, कुवलयापीड़, बालघातिनी पूतना तथा और जितने इस जगत्के उपद्रव थे, उन सबको आपने शान्त कर दिया है । आपके भुजदण्डसे तीनों लोक सुरक्षित होनेके कारण देवता यज्ञोंमें हविष्य ग्रहण करके तृप्त हो रहे हैं । जनार्दन ! इस समय मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, उसे सुनकर उसके प्रतीकारका उपाय करें । भूमिका पुत्र नरक, जो इस समय प्राग्ज्योतिषपुरका स्वामी है, सम्पूर्ण भूतोंका विनाश कर रहा है । जनार्दन ! उसने देवताओं, सिद्धों और राजाओंकी कन्याओंका अपहरण करके अपने महलमें कैद कर रक्खा है । वरुणका छत्र, जिससे जलकी बूँदें चूती रहती हैं, अपने अधिकारमें कर लिया है । मन्दराचलके शिखर मणिपर्वतको भी हरण कर लिया है; इतना ही नहीं, नरकासुरने मेरी माता अदितिके दोनों दिव्य कुण्डल भी, जिनसे अमृत झरता रहता है, हर लिये हैं । अब वह मुझसे ऐरावत हाथी लेना चाहता है । गोविन्द ! उसका यह दुराचार मैंने आपसे निवेदन कर दिया । इसके बदलेमें उसके साथ जो कुछ करना चाहिये, वह आप स्वयं ही विचारें ।'

यह सुनकर भगवान् देवकीनन्दन मुसकराये और इन्द्रका हाथ पकड़कर अपने सिंहासनसे उठे । उन्होंने गरुड़का आवाहन किया । चिन्तन करते ही गरुड़ आ पहुँचे । भगवान् सत्यभामाको बिठाकर स्वयं भी गरुड़पर सवार हुए और प्राग्ज्योतिषपुरकी ओर चल दिये । इन्द्र भी द्वारकावासियोंके देखते-देखते ऐरावत हाथीपर सवार हुए और प्रसन्नचित्त हो देवलोकको चले गये । प्राग्ज्योतिषपुरके चारों ओर सौ योजनोंतक भयंकर पाशों (लोहेके कँटीले तारों) का घेरा बना था । शत्रुओंकी सेनाको रोकनेके लिये वे पाश लगाये गये थे । श्रीहरिने सुदर्शन चक्र चलाकर उन सब पाशोंको काट डाला । तब

मुर नामक दैत्यने खड़े होकर भगवान्‌का सामना किया, किंतु भगवान्‌ने उसे मार डाला। मुरके सात हजार पुत्र थे, श्रीहरिने चक्रकी धाररूप अग्निसे उन सबको पतंगोंकी भाँति भस्म कर दिया। मुरको मारकर उन्होंने हयग्रीव और पञ्चजनको भी यमलोक पठाया तथा बड़ी उतावलीके साथ प्राग्ज्योतिषपुर-पर धावा किया। नरक बहुत बड़ी सेनाके साथ सामने आया। उसके साथ श्रीकृष्णका घोर युद्ध हुआ। उसमें श्रीगोविन्दने सहस्रों दैत्योंका संहार किया। भूमिपुत्र नरक अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि कर रहा था। दैत्य-मण्डलका विनाश करनेवाले श्रीहरिने चक्र चलाकर उस असुरके दो टुकड़े कर दिये। नरकके मारे जानेपर भूमि अदितिके दोनों कुण्डल लेकर उपस्थित हुई और जगदीश्वर श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोलीं—'नाथ! आपने वाराहरूप धारण करके जिस समय मुझे उठाया था, उस समय आपका स्पर्श होनेपर मेरे गर्भसे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था, अतः इसे आपने ही दिया और आपने ही मार गिराया। ये दोनों कुण्डल लीजिये और नरकासुरकी संतानकी रक्षा कीजिये। प्रभो! मेरा ही भार उतारनेके लिये आप अंशसहित अवतार धारण करके इस लोकमें आये हैं। आप ही कर्ता, विकर्ता (बिगाड़नेवाले) और संहर्ता (नाश करनेवाले) हैं। आप ही अविनाशी कारण हैं और आप ही जगत्स्वरूप हैं। अच्युत! मैं आपकी क्या स्तुति कर सकती हूँ। आप परमात्मा, जीवात्मा और अविनाशी भूतात्मा हैं। अतः आपकी स्तुति हो ही नहीं सकती। फिर किसलिये असम्भव चेष्टा की जाय। सर्वभूतात्मन्! मुझपर प्रसन्न होइये। नरकासुरने जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये। वह आपका पुत्र था, अतः उसे दोषरहित करनेके लिये ही आपने मारा है।'

भूतभावन भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीकी प्रार्थना सुनकर 'तथास्तु' कहा। नरकासुरके महलमें जो रत्न थे, उन्हें अपने अधिकारमें कर लिया। अन्तःपुरमें जाकर उन्होंने सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखीं। चार दाँतवाले छः हजार हाथी और काम्बोज देशके इक्कीस लाख घोड़े भी देखे। श्रीगोविन्दने उन कन्याओं, हाथियों और घोड़ोंको द्वारकापुरी भेज दिया। वरुणके छत्र और मणिपर्वतपर भी दृष्टि पड़ी। उन्हें भगवान्‌ने पक्षिराज गरुड़पर रख लिया। फिर सत्यभामाके साथ स्वयं भी गरुड़पर सवार हो अदितिको कुण्डल देनेके लिये स्वर्गलोकमें गये।



वरुणके छत्र, मणिपर्वत और पत्नीसहित श्रीकृष्णको पीठपर लिये गरुड़जी मौजसे चले जा रहे थे। स्वर्गके द्वार-पर पहुँचकर श्रीकृष्णने शङ्ख बजाया। शङ्खकी आवाज सुनकर सम्पूर्ण देवता अर्घ्यपात्र लिये भगवान्‌की सेवामें उपस्थित हुए। उनके द्वारा पूजित हो भगवान् श्रीकृष्ण देवमाता अदितिके महलमें गये। वह भव्य भवन श्वेत बादलोंके समान धवल और पर्वत-शिखरके सदृश ऊँचा था। उसमें प्रवेश करके भगवान्‌ने अदितिको देखा और इन्द्रसहित उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर दोनों दिव्य कुण्डल उन्हें अर्पित किये और नरकासुरके मारे जानेका समाचार भी कह सुनाया। इससे जगन्माता अदितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने भगवान्‌में मन लगाकर जगदाधार श्रीहरिका इस प्रकार स्तवन किया।

अदिति बोलीं—भक्तोंको अभय देनेवाले कमलनयन परमेश्वर! आपको नमस्कार है। आप सनातन आत्मा, भूतात्मा, सर्वात्मा और भूतभावन हैं। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके प्रेरक हैं। गुणस्वरूप! आप श्वेत, दीर्घ आदि सम्पूर्ण कल्पनाओंसे रहित हैं, जन्म आदि विकारोंसे पृथक् हैं तथा स्वप्न आदि तीनों अवस्थाओंसे परे हैं; आपको नमस्कार है। अच्युत! सन्ध्या, रात्रि, दिन, भूमि, आकाश, वायु, जल,

अग्नि, मन, बुद्धि और अहंकार—सब आप ही हैं। ईश्वर! आप ब्रह्मा, विष्णु और शिवनामक अपनी मूर्तियोंसे जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले हैं। आप कर्ताओंके भी अधिपति हैं। यह चराचर जगत् आपकी मायाओंसे व्याप्त है। जनार्दन! अनात्म वस्तुमें जो आत्मबुद्धि होती है, वह आपकी माया है। उसीके द्वारा अहंता और ममताका भाव उत्पन्न होता है। नाथ! इस संसारमें जो कुछ होता है, वह सब आपकी मायाकी ही चेष्टा है। भगवन्! जो मनुष्य अपने धर्ममें तत्पर हो आपकी निरन्तर आराधना करते हैं, वे अपनी मुक्तिके लिये इस सारी मायाको तर जाते हैं। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता, मनुष्य और पशु—ये सभी श्रीविष्णुमायाके महान् भँवरमें पड़े हुए मोहान्धकारसे आवृत हैं। भगवन्! जो आपकी आराधना करके भोगोंको प्राप्त करना चाहते हैं, वे आपकी मायाद्वारा बँधे हुए हैं। मैंने भी पुत्रकी कामनासे और शत्रुपक्षका नाश करनेके लिये आपकी आराधना की है, मोक्षके लिये नहीं। यह आपकी मायाका ही विलास है। पुण्यरहित मनुष्य यदि कल्पवृक्षसे भी कौपीन मात्र ही लेनेकी इच्छा करे तो यह अपराध उसके अपने ही पापकर्मोंका है। अपनी मायासे सम्पूर्ण जगत्‌को मोहित करनेवाले अविनाशी परमेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये। ज्ञानस्वरूप सम्पूर्ण भूतेश्वर! मेरे अज्ञानका नाश कीजिये। आपके हाथोंमें चक्र, शार्ङ्गधनुष, गदा और शङ्ख शोभा पाते हैं। विष्णो! आपको बारंबार नमस्कार है। परमेश्वर! शङ्ख-चक्र आदि स्थूल चिह्नोंसे सुशोभित आपके इस रूपका मैं दर्शन करती हूँ। आपका जो परम सूक्ष्म स्वरूप है, उसको मैं नहीं जानती। आप मुझपर प्रसन्न होइये।'

देवमाता अदितिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण हँसकर बोले—'देवी! आप हम सब लोगोंकी माता हैं, अतः आप ही प्रसन्न होकर हमें वरदान दें।'

अदिति बोलीं—एवमस्तु। नरश्रेष्ठ! जैसी आपकी इच्छा है, मैं वही करूँगी। आप मर्त्यलोकमें सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंसे अजेय होंगे।

तदनन्तर सत्यभामाने इन्द्राणीसहित अदितिको प्रणाम किया और कहा—'देवि! आप मुझपर भी प्रसन्न हों।' अदितिने कहा—'सुभ्रू! मेरी कृपासे तुम्हें वृद्धावस्था और कुरूपता नहीं स्पर्श कर सकती। तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होंगी।' तत्पश्चात् अदितिकी आज्ञासे देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णका आदरपूर्वक पूजन किया। श्रीकृष्ण भी सत्यभामाके साथ देवताओंके नन्दनवन आदि सम्पूर्ण उद्यानोंमें घूमने-फिरने लगे। एक स्थानपर भगवान् श्रीकृष्णने पारिजातका वृक्ष देखा, जो परम सुगन्धित मञ्जरियोंसे सुशोभित, शीतलता और आह्लाद प्रदान करनेवाला, ताम्रवर्णके पल्लवोंसे अलंकृत और सुवर्णके समान कान्तिमान् था। अमृतके लिये समुद्रका मन्थन होते समय वह प्रकट हुआ था। उसे देखकर सत्यभामाने श्रीगोविन्दसे कहा—'नाथ! इस वृक्षको आप द्वारका क्यों नहीं ले चलते। आप कहते हैं, सत्यभामा मुझे बड़ी प्रिय है। यदि आपकी यह बात सत्य हो तो मेरे घरके आँगनकी शोभा बढ़ानेके लिये इस वृक्षको ले चलिये।'



सत्यभामाके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने पारिजातको गरुड़पर रख लिया। यह देख उस वनके रक्षकोंने कहा—'गोविन्द! देवराजकी महारानी जो शची हैं, उनका इस पारिजातपर अधिकार है। आप उनके इस प्रिय वृक्षको न ले जाइये। देवताओंने अमृतमन्थनके समय महारानी शचीको विभूषित करनेके लिये ही इस वृक्षको प्रकट किया था। आप इसे लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकते। आप अज्ञानवश ही इसे ले जानेकी अभिलाषा करते हैं। भला, इस पारिजातको लेकर कौन कुशलसे जा सकता है।

देवराज इन्द्र इसका बदला लेनेके लिये अवश्य आयेंगे । जब वे हाथमें वज्र लेकर आगे बढ़ेंगे, तब सम्पूर्ण देवता भी उनका साथ देंगे; अतः सम्पूर्ण देवताओंके साथ आपको विवाद करनेसे क्या लाभ । अच्युत ! जिस कार्यका परिणाम कटु हो, उसकी विद्वान् पुरुष प्रशंसा नहीं करते ।'

वनरक्षकोंके यों कहनेपर सत्यभामा देवी अत्यन्त कुपित होकर बोलीं—'शची अथवा देवराज इन्द्र इस पारिजातको लेनेवाले कौन होते हैं । यदि यह अमृतमन्थनके समय समुद्रसे निकला है, तब तो इसपर सम्पूर्ण लोकोंका समान अधिकार है । इसे इन्द्र अकेले कैसे ले सकते हैं । यदि अपने पतिकी भुजाओंके बलका अधिक घमंड होनेके कारण शची इस वृक्षको रोकती है तो तुमलोग शीघ्र शचीके पास जाकर मेरी यह बात कहो—'सत्यभामा अपने पतिपर गर्व करके धृष्टतापूर्वक कहती है कि यदि तुम अपने पतिको अत्यन्त प्रिय हो तो पारिजात वृक्षको लेकर जाते हुए मेरे पतिको उनके द्वारा रोको ।'

यह सुनकर रक्षकोंने शचीके पास जा सत्यभामाकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं । शचीने भी अपने स्वामी देवराज इन्द्रको युद्धके लिये उत्साहित किया । तब इन्द्र पारिजातके लिये सम्पूर्ण देवसेनाको साथ ले श्रीहरिसे युद्ध करनेको उद्यत हुए । जब इन्द्र हाथमें वज्र लेकर युद्ध करनेके लिये खड़े हुए, तब समस्त देवता भी परिघ, खड्ग, गदा और शूल आदि आयुधोंके साथ तैयार हो गये । भगवान् श्रीकृष्णने देखा इन्द्र ऐरावतपर सवार हो देवपरिवारको साथ ले युद्धके लिये उपस्थित हैं; तब उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया । उसकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं । साथ ही उन्होंने सहस्रों और लाखों बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । उन बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ और आकाश आच्छादित हो गये । यह देख सम्पूर्ण देवता भी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् मधुसूदनने देवताओंके छोड़े हुए एक-एक अस्त्र-शस्त्रके खेल-खेलमें ही हजारों टुकड़े कर डाले । पक्षिराज गरुड़ने वरुणके पाशको खींच लिया और छोटे-छोटे साँपोंके शरीरकी भाँति उसके खण्ड-खण्ड कर डाले । भगवान् देवकीनन्दनने यमराजके चलाये हुए दण्डको गदाकी मारसे टूक-टूक करके पृथ्वीपर गिरा दिया । कुबेरकी शिबिकाको चक्रसे तिल-तिल करके काट डाला । सूर्य और चन्द्रमा उनकी दृष्टि पड़ते ही अपना तेज और प्रभाव खो बैठे । अग्निदेवके सैकड़ों टुकड़े हो गये । आठों वसुओंने भगवान्के बाणोंकी चोट खाकर आठों दिशाओंकी शरण ली । ग्यारह रुद्र भी धराशायी हो गये । उनके त्रिशूलोंके अग्रभाग चक्रकी धारसे छिन्न-भिन्न हो गये । साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण और गन्धर्व शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णके बाणोंसे आहत हो सेमरकी रुईके समान आकाशमें उड़ने लगे । गरुड़ तो सदा आकाशमें ही चलनेवाले ठहरे । उन्होंने चोंचसे, पंखोंसे और पंजोंसे भी देवताओंको घायल कर डाला ।

तदनन्तर देवराज इन्द्र और भगवान् मधुसूदन एक-दूसरेपर हजार-हजार बाणोंकी वृष्टि करने लगे, मानो दो मेघ परस्पर जलकी धाराएँ बरसाते हों । ऐरावत और गरुड़में भी घमासान युद्ध होने लगा । जब सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र कटकर गिर गये, तब इन्द्रने वज्र और श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्र हाथमें लिया । उन दोनोंको वज्र और चक्र हाथमें लिये देख चराचर जीवोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया । अन्ततोगत्वा इन्द्रने वज्रको चला ही दिया, किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे हाथमें पकड़ लिया । उन्होंने अपना चक्र नहीं छोड़ा । केवल इतना ही कहा, 'खड़ा रह, खड़ा रह ।' देवराजका वज्र व्यर्थ हो गया और उनके वाहनको गरुड़ने क्षत-विक्षत कर डाला; अतः वे रणभूमिसे भागने लगे ।



उस समय सत्यभामाने कहा—'त्रिलोकीनाथ ! आप तो महारानी शचीके पति हैं। आपका युद्ध-भूमिसे भागना उचित नहीं। पारिजात पुष्पोंके हारसे सुशोभित एवं प्रेमपूर्वक आयी हुई शचीको यदि आप पहलेकी भाँति विजयी होकर नहीं देखेंगे तो आपके लिये यह देवराजका पद कैसा प्रतीत होगा। इन्द्र ! अब अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं। आप लज्जाका अनुभव न करें। आप यह पारिजात ले जाइये, जिससे देवताओंकी पीड़ा दूर हो। मैं आपके घर गयी थी, किंतु शचीने पतिके गर्वमें उन्मत्त होकर मुझे आदरके साथ नहीं देखा। मैं भी स्त्री ही ठहरी और मुझे भी अपने पतिपर गर्व है, तथा स्त्री होनेके कारण मेरा चित्त भी अधिक गम्भीर नहीं है; इसलिये मैंने आपके साथ युद्ध ठान दिया। यह पारिजात दूसरेका धन है। इसका अपहरण करनेसे मुझे कोई लाभ नहीं।'

सत्यभामाके यों कहनेपर देवराज इन्द्र लौट आये और बोले—'मानिनी ! खेदको अधिक बढ़ानेसे क्या लाभ। जो सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन विश्वरूपधारी परमेश्वरसे युद्धमें हार जानेपर भी मुझे लज्जा नहीं हो सकती। देवि ! जिनका आदि, अन्त और मध्य नहीं है, जिनमें सम्पूर्ण जगत्की स्थिति है, जिनसे इसकी उत्पत्ति हुई है और जिन सर्वभूतमय परमेश्वरसे ही इसका संहार होगा, उन सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत परमात्मासे परास्त होनेपर मुझे लज्जा क्यों होने लगी। जिनकी अत्यन्त अल्प और सूक्ष्म मूर्तिको, जो सम्पूर्ण जगत्की जननी है, सब वेदोंके ज्ञाता होनेपर भी दूसरे मनुष्य नहीं जान पाते, जो स्वेच्छासे ही सदा जगत्का उपकार करते हैं, उन अजन्मा, अकर्ता तथा सबके आदि-भूत इन सनातन परमेश्वरको जीतनेमें कौन समर्थ हो सकता है।'

व्यासजी कहते हैं—देवराज इन्द्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने गम्भीर भावसे हँसकर कहा—'जगत्पते ! आप देवराज इन्द्र हैं और हम मनुष्य हैं। आपको मेरे द्वारा किया हुआ यह अपराध क्षमा करना चाहिये। यह रहा आपका पारिजात वृक्ष। इसे इसके योग्य स्थानपर ले जाइये। इन्द्र ! मैंने तो केवल सत्यभामाकी बात रखनेके लिये ही इसको ले लिया था। आपने मेरे ऊपर जो वज्र चलाया था, उसे भी लीजिये। यह शत्रुसंहारक अस्त्र आपका ही है।'

इन्द्र बोले—प्रभो ! मैं मनुष्य हूँ—यों कहकर आप मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं। भगवन् ! हम तो आपके इस सगुण स्वरूपको ही जानते हैं। आपके सूक्ष्म स्वरूपका ज्ञान हमें नहीं है। जगन्नाथ ! आप जो कोई भी हों, इस समय जगत्की रक्षामें तत्पर हैं। असुरसूदन ! आप संसारका कण्टक दूर कर रहे हैं। श्रीकृष्ण ! यह पारिजात आप द्वारकापुरीको ले जायँ। जब आप मर्त्यलोक छोड़ देंगे, तब यह पृथ्वीपर नहीं रहेगा।

'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् श्रीहरि भूलोकमें चले आये। उस समय सिद्ध, गन्धर्व तथा ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे। उत्तम पारिजात वृक्ष लेकर श्रीकृष्ण सहसा द्वारकापुरीके ऊपर जा पहुँचे। उन्होंने शङ्ख बजाकर द्वारका-वासियोंके हृदयमें हर्ष भर दिया। फिर सत्यभामाके साथ गरुड़से उतरकर पारिजातको उनके आँगनमें लगाया। उसके नीचे जानेपर सब लोगोंको अपने पूर्वजन्मकी बातें याद आ जाती थीं। उसके फूलोंकी सुगन्धसे बारह कोसतककी पृथ्वी सुवासित रहती थी। सम्पूर्ण यादवोंने उस वृक्षके पास जाकर जब अपना मुख देखा, तब उन्होंने अपनेको अमानव—देवता-तुल्य पाया।

भगवान् श्रीकृष्णका सोलह हजार स्त्रियोंसे विवाह और उनकी संतति तथा उषाका अनिरुद्धके साथ विवाह

व्यासजी कहते हैं—नरकासुरके सेवकोंने जो हाथी, घोड़े, धन, रत्न तथा स्त्रियोंको द्वारकामें पहुँचाया था, वह सब श्रीकृष्णने ले लिया। शुभ मुहूर्त आनेपर जनार्दनने नरकासुरके महलसे लायी हुई समस्त कन्याओंके साथ विवाह किया। एक ही समय श्रीगोविन्दने अनेक रूप धारण करके उन सबका स्वधर्मके अनुसार विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं, अतः भगवान् मधुसूदनने भी उतने ही रूप धारण किये थे। प्रत्येक कन्या यह समझती थी कि भगवान्

श्रीकृष्णने केवल मेरा पाणिग्रहण किया है । जगत्‌की सृष्टि करनेवाले विश्वरूपधारी श्रीहरि रात्रिके समय उन सभी स्त्रियोंके महलोंमें निवास करते थे ।

श्रीहरिके रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए प्रद्युम्न आदि पुत्रोंकी चर्चा पहले की जा चुकी है । सत्यभामाने भानु आदि पुत्रोंको जन्म दिया । जाम्बवतीसे साम्ब आदिका जन्म हुआ । नाग्नजिती (सत्या) के भद्रविन्द आदि और शैव्या (मित्रविन्दा) से संग्रामजित् आदि पुत्र उत्पन्न हुए । माद्रीके गर्भसे वृक आदिका जन्म हुआ । लक्ष्मणाने गात्रवान् आदि पुत्र प्राप्त किये । कालिन्दीसे श्रुत आदिकी उत्पत्ति हुई । इसी प्रकार भगवान्‌की अन्य पत्नियोंके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उन सबकी संख्या अट्ठासी हजार आठ सौके लगभग थी । रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न श्रीकृष्णके समस्त पुत्रोंमें श्रेष्ठ थे । प्रद्युम्नसे अनिरुद्ध और अनिरुद्धसे वज्रका जन्म हुआ । अनिरुद्ध संग्राममें कभी रुकते नहीं थे । वे बड़े बलवान् थे । उन्होंने बलिकी पौत्री और बाणासुरकी पुत्री उषाके साथ विवाह किया था । उस विवाहमें भगवान् श्रीकृष्ण तथा शंकरमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था । उस समय श्रीकृष्णने चक्रसे बाणासुरकी सहस्र भुजाएँ काट डालीं ।

मुनियोंने पूछा—ब्रह्मन् ! उषाके लिये महादेवजी तथा श्रीकृष्णमें युद्ध क्यों हुआ ? तथा श्रीहरिने बाणासुरकी भुजाओंका उच्छेद क्यों किया ? महाभाग ! आप यह सम्पूर्ण वृत्तान्त हमें बताइये । इस सुन्दर कथाको सुननेके लिये हमें बड़ा कौतूहल हो रहा है ।

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो ! बाणासुरकी पुत्री उषाको स्वप्नमें किसी पुरुषने आलिङ्गन किया । उषाका भी उसके प्रति अनुराग हो गया । इतनेमें ही उसकी नींद खुल गयी । जागनेपर उस पुरुषको न देखनेके कारण उषा उत्कण्ठित होकर बोल उठी—'प्यारे ! तुम कहाँ चले गये ?' उस समय उसे लज्जाका ध्यान न रहा । बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डके एक कन्या थी, जिसका नाम चित्रलेखा था । वह उषाकी सखी थी । उसने पूछा—'राजकुमारी ! तुम किसे पुकारती हो ?' यह सुनकर वह लाजसे गड़-सी गयी । मुँहसे एक शब्द भी बोल न सकी । तब चित्रलेखाने उसे बहुत विश्वास दिलाया और सब बातें उसके मुखसे निकलवा लीं । चित्रलेखाको जब यथार्थ बात मालूम हो गयी, तब उषाने उससे कहा—'पार्वतीदेवीने मुझे इसी प्रकार पतिकी प्राप्ति होनेका वरदान दिया है; अतः तुम उस पुरुषको प्राप्त करनेके लिये जो उपाय हो सके, उसे करो ।'

तब चित्रलेखाने एक पटपर प्रधान-प्रधान देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और मनुष्योंका चित्र लिखकर उषाको दिखाया । उषाने गन्धर्वों, नागों, देवताओं और दैत्योंको छोड़कर मनुष्योंकी ओर दृष्टि दी । उनमें भी अन्धक और वृष्णिवंशोंके लोगोंपर विशेष ध्यान दिया । श्रीकृष्ण और बलरामके चित्रोंको देखकर वह सुन्दरी कुछ लज्जित हो गयी । प्रद्युम्नको देखनेपर उसने लज्जासे आँखें फेर लीं; परंतु अनिरुद्धपर दृष्टि पड़ते ही न जाने उसकी लज्जा कहाँ चली गयी । वह सहसा बोल उठी—'ये ही हैं, ये ही मेरे प्रियतम हैं ।' उषाके यों कहनेपर योगगामिनी चित्रलेखा उसे सान्त्वना दे द्वारकापुरीको गयी ।

एक बार बाणासुरने भगवान् शंकरको प्रणाम करके कहा था—'देव ! युद्धके बिना इन हजार भुजाओंसे मुझे बड़ा खेद हो रहा है; क्या कभी ऐसे युद्धका अवसर आयेगा, जब कि ये मेरी भुजाएँ सफल होंगी ? यदि युद्ध न हो तो इन भुजाओंसे क्या लाभ । फिर तो ये मेरे लिये भाररूप ही सिद्ध होंगी ।' यह सुनकर महादेवजीने कहा—'जिस समय तुम्हारी मयूर-चिह्नवाली ध्वजा टूट जायगी, उस समय तुम्हें वैसा युद्ध प्राप्त होगा ।' इससे बाणासुरको बड़ी प्रसन्नता हुई । वह भगवान् शिवको प्रणाम करके घर चला आया । कुछ कालके बाद उसकी मयूर-ध्वजा टूटकर गिर गयी । यह देखकर उसके हर्षकी सीमा न रही । इसी समय चित्रलेखा अपनी योगविद्याके बलसे अनिरुद्धको बाणासुरके भवनमें ले आयी । अनिरुद्ध कन्याके अन्तःपुरमें उषाके साथ विहार करने लगे । यह बात अन्तःपुरके रक्षकोंको मालूम हो गयी । उन्होंने दैत्यराजसे सब हाल कह सुनाया । बाणासुरने अपने सेवकोंको अनिरुद्धसे युद्ध करनेकी आज्ञा दी; किंतु शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले अनिरुद्धने लोहेका परिघ लेकर उन सबको मार डाला । सेवकोंके मारे जानेपर बाणासुर स्वयं ही रथपर आरूढ़ हो अनिरुद्धका वध करनेके लिये उद्यत हुआ । अपनी शक्ति भर युद्ध करनेपर भी जब उसे वीरवर अनिरुद्धजीने परास्त कर दिया, तब वह मन्त्रीकी प्रेरणासे मायाद्वारा युद्ध करने लगा । इस प्रकार उसने यदुनन्दन अनिरुद्धको नागपाशमें बाँध लिया ।

उधर द्वारकामें अनिरुद्धकी खोज हो रही थी । समस्त यदुवंशी आपसमें कह रहे थे कि 'अनिरुद्ध सहसा कहाँ चले गये ?' उसी समय देवर्षि नारदजी द्वारकामें पहुँचे और

उन्होंने बताया कि 'अनिरुद्धको बाणासुरने शोणितपुरमें बाँध रक्खा है। उन्हें योगविद्यामें चतुर युवती चित्रलेखा अपने साथ ले गयी थी।' यदुवंशियोंको इस बातपर विश्वास हो गया। फिर तो भगवान् श्रीकृष्णने गरुड़का आवाहन किया। वे स्मरण करते ही आ पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्ण बलराम और प्रद्युम्नके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो बाणासुरके नगरमें गये। पुरीमें प्रवेश करते समय महाबली प्रमथोंके साथ उनका युद्ध हुआ। श्रीहरि उन सबका संहार करके बाणासुरके भवनके निकट गये। तत्पश्चात् तीन पैर और तीन मस्तकवाले माहेश्वर ज्वरने बाणासुरकी रक्षाके लिये शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णके साथ युद्ध किया। उसके फेंके हुए भस्मके स्पर्शसे श्रीकृष्णका शरीर संतप्त हो उठा और उससे छू जानेपर बलदेवजीने भी शिथिल होकर अपने नेत्र मूँद लिये। इस प्रकार श्रीकृष्णके साथ युद्ध करते हुए माहेश्वर ज्वरपर शीघ्र ही वैष्णव ज्वरने आक्रमण किया और उसको भगवान्‌के शरीरसे बाहर निकाल दिया। उस समय भगवान् नारायणकी भुजाओंके आघातसे माहेश्वर ज्वरको बड़ी पीड़ा हुई। वह व्याकुल हो उठा। यह देख पितामह ब्रह्माजीने आकर कहा—'भगवन्! इसे क्षमा कीजिये।' भगवान् बोले—'अच्छा, मैंने क्षमा कर दिया।' यों कहकर उन्होंने वैष्णव ज्वरको अपनेमें ही लीन कर लिया। तब माहेश्वर ज्वरने कहा—'भगवन्! जो मनुष्य आपके साथ मेरे युद्धका स्मरण करेंगे, वे ज्वरहीन हो जायँगे।' यों कहकर वह चला गया।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने पाँच अग्नियोंको जीतकर उन्हें नष्ट कर डाला और दानवोंकी सेनाका खेल-खेलमें ही विध्वंस कर दिया, यह देख बलिकुमार बाणासुर सम्पूर्ण दैत्योंकी सेना साथ ले भगवान्‌से युद्ध करने लगा। भगवान् शिव तथा कार्तिकेयजीने भी उसका साथ दिया। श्रीहरि तथा शंकरजीमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उनके चलाये हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी मारसे पीड़ित हो समस्त लोक क्षुब्ध हो उठे। उस महायुद्धको होते देख देवताओंने समझा 'निश्चय ही समस्त संसारके लिये प्रलयकाल आ गया।' तब भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रके द्वारा शंकरजीको स्तब्ध कर दिया। वे युद्ध छोड़कर जँभाई लेने लगे। यह देख दैत्य और प्रमथगण चारों दिशाओंमें भाग गये। भगवान् शंकर जृम्भासे विवश हो रथके पिछले भागमें बैठ गये। उस समय वे अनायास ही सब कुछ करनेवाले श्रीकृष्णके साथ युद्ध न कर सके। गरुड़ने कार्तिकेयकी भुजाओंको क्षत-विक्षत कर दिया। प्रद्युम्नने भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे उन्हें पीड़ित किया तथा श्रीकृष्णके हुंकारसे उनकी शक्ति नष्ट हो गयी; अतः वे युद्धसे भाग गये।

इस प्रकार जब महादेवजी जँभाई लेने लगे, दैत्यसेना नष्ट हो गयी, कार्तिकेयजी परास्त हो गये और प्रमथों (रुद्रके गणों) का संहार हो गया, तब श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और बलरामजीके साथ युद्ध करनेके लिये एक विशाल रथपर आरूढ हो बाणासुर वहाँ आया। साक्षात् नन्दीश्वर सारथि बनकर उसके घोड़ोंकी बागडोर सँभाले हुए थे। महापराक्रमी बलभद्र और प्रद्युम्नने अनेकों बाणोंसे बाणासुरकी सेनाको बींध डाला। वह सेना वीरधर्मसे भ्रष्ट होकर रणभूमिसे भागने लगी। बाणासुरने देखा उसकी सेनाको बलरामजी हलसे खींचकर मूसलसे मारते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण भी उसे अपने बाणोंका निशाना बनाते हैं। तब उसका श्रीकृष्णके साथ घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनों एक दूसरेपर कवचको भी छेद डालनेवाले तेजस्वी बाण छोड़ने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने बाणासुरके चलाये हुए बाणोंको अपने सायकोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला। फिर बाणासुरने श्रीकृष्णको और श्रीकृष्णने बाणासुरको घायल किया। दोनों एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे परस्पर अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार कर रहे थे। जब सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये, तब भगवान् श्रीकृष्णने बाणासुरको मारनेका निश्चय किया। उन्होंने सैकड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सुदर्शन चक्र हाथमें लिया और बाणासुरको लक्ष्य करके चला दिया। वे शत्रुकी भुजाओंको काट डालना चाहते थे। श्रीकृष्णके द्वारा प्रेरित चक्रने क्रमशः उस असुरकी भुजाओंका उच्छेद कर डाला। जब बाणासुरकी भुजाओंका जङ्गल कट गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने उसका नाश करनेके लिये चक्र हाथमें लिया। वे उसे छोड़ना ही चाहते थे कि भगवान् शंकरको उनका मनोभाव ज्ञात हो गया। तब वे तुरंत कूदकर भगवान्‌के सामने आ गये। उन्होंने देखा भुजाओंके कट जानेसे बाणासुरके शरीरसे रक्तकी धारा गिर रही है। तब शान्तिपूर्वक भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहा—'कृष्ण! कृष्ण!! जगन्नाथ!! मैं आपको जानता हूँ। आप पुरुषोत्तम, परमेश्वर, परमात्मा और आदि-अन्तसे रहित परब्रह्म हैं। आप जो देवता, पशु-पक्षी तथा मनुष्योंकी योनिमें शरीर धारण करते हैं, यह आपकी लीलामात्र है। आपकी चेष्टा दैत्योंका वध करनेके लिये होती है। प्रभो! प्रसन्न होइये। मैंने बाणासुरको अभय दे रक्खा है। आपको भी मेरी बात असत्य नहीं करनी चाहिये।

मेरा आश्रय पानेसे यह दैत्य बहुत बढ़ गया है। वास्तवमें यह आपका अपराधी नहीं है। मैंने ही इसे वरदान दिया था, अतः मैं ही इसके लिये आपसे क्षमा चाहता हूँ।'

भगवान् शंकरके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णका मुख प्रसन्न हो गया। बाणासुरके प्रति उनके मनमें कोई अमर्ष नहीं रह गया। उन्होंने शिवजीसे कहा—'शंकर! यदि आपने इसे वर दे रक्खा है तो यह बाणासुर जीवित रहे। आपके वचनोंका गौरव रखनेके लिये हमने अपना चक्र लौटा लिया है। शंकर! आपने जो अभयदान दिया है, वह मैंने भी दिया। आप अपनेको मुझसे पृथक् न देखें। जो मैं हूँ, वही आप हैं और वही यह देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् भी है। जिनका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे ही पुरुष भेददृष्टि रखनेवाले होते हैं।'*

यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्धके पास गये। उनके जाते ही अनिरुद्धको बाँधनेवाले नाग भाग खड़े हुए। गरुड़के पंखोंकी हवा लगनेसे वे सूख गये थे। तदनन्तर पत्नीसहित अनिरुद्धको गरुड़पर चढ़ाकर भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न द्वारकापुरीमें आये।



पौण्ड्रकका वध और बलरामजीके द्वारा हस्तिनापुरका आकर्षण

मुनियोंने कहा—भगवान् श्रीकृष्णने मानव-शरीर धारण करके बहुत बड़ा पराक्रम किया, जो उन्होंने लीलापूर्वक ही इन्द्र, महादेवजी तथा सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया। मुनिश्रेष्ठ! देवताओंकी चेष्टाका विघात करनेवाले भगवान्ने और भी जो कर्म किये थे, वे सब हमसे कहिये। हमें उन्हें सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! बतलाता हूँ; मनुष्यावतारमें श्रीहरिने जो लीलाएँ की थीं, उन्हें आदरपूर्वक सुनो। पुण्ड्रकवंशी वासुदेव नामक एक राजा था। वह 'भगवान् वासुदेव' बन बैठा था। कुछ अज्ञानमोहित मनुष्योंने उससे यह कहा था कि 'आप ही इस पृथ्वीपर वासुदेवके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।' उनकी बातोंमें आकर वह स्वयं भी अपनेको अवतार मानने लगा था। वासुदेव बननेकी धुनमें वह अपने वास्तविक स्वरूपको भूल गया और भगवान् विष्णुके जितने चिह्न हैं, उन सबको धारण करने लगा। इतना ही नहीं, उसने भगवान् श्रीकृष्णके पास अपना दूत भी भेजा और उसके मुखसे कहलाया—'ओ मूढ़! तूने जो चक्र आदि मेरे चिह्न और मेरा वासुदेव नाम धारण किया है, वह सब शीघ्र ही त्याग दे और अपने जीवनकी रक्षाके लिये मेरी शरणमें आ जा।' यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण हँस पड़े और दूतसे बोले—'तुम जाकर राजा पौण्ड्रकसे मेरी यह बात कहना, 'राजन्! मैंने तुम्हारे वचनोंका तात्पर्य भलीभाँति समझ लिया है। अब तुम्हें जो कुछ करना हो, वह करो। मैं अपने चिह्नको साथ लेकर ही तुम्हारे नगरमें आऊँगा और उस चिह्नस्वरूप चक्रको तुम्हारे ऊपर ही छोड़ूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुमने जो आज्ञापूर्वक

* त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमभयं मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर॥
योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः॥
(२०६। ४७-४८)

आनेका संदेश दिया है, उसका मैं अविलम्ब पालन करूँगा। कल सबेरे ही तुम्हारी पुरीमें पहुँच जाऊँगा। तुम्हारे वहाँ आकर मैं वह कार्य करूँगा, जिससे फिर तुमसे कोई भय नहीं रह जायगा।'

श्रीकृष्णके यों कहनेपर दूत चला गया, तब भगवान्‌ने गरुड़का स्मरण किया। गरुड़ तुरंत आ पहुँचे। भगवान् उनकी पीठपर सवार हुए और पौण्ड्रकके नगरमें गये। श्रीकृष्णके आक्रमणकी बात सुनकर काशिराज अपनी समस्त सेनाओंके साथ पौण्ड्रककी सहायतामें आ गया। तब अपनी और काशिराजकी विशाल सेना लेकर पौण्ड्रक वासुदेव श्रीकृष्ण-का सामना करनेके लिये गया। भगवान्‌ने दूरसे ही देखा पौण्ड्रक एक विशाल रथपर बैठा है। उसने अपने हाथोंमें कृत्रिम शङ्ख, चक्र और गदा ले रक्खे हैं। एक हाथमें कमल भी है। गलेमें वनमालाके स्थानपर एक बहुत बड़ा हार लटक रहा है। शार्ङ्गधनुषकी तरहका एक धनुष भी है। रथपर गरुड़चिह्नसे अङ्कित एक ध्वजा फहरा रही है और उसकी छातीमें श्रीवत्सका कृत्रिम चिह्न भी बना हुआ है। उसने मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल और शरीरपर पीताम्बर धारण कर रक्खा है। उसे देखकर भगवान् श्रीकृष्ण गम्भीर-भावसे हँसे और उसकी सेनाके साथ युद्ध करने लगे। शार्ङ्ग-धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे, गदासे और चक्रकी मारसे उन्होंने काशिराजकी सेनाका संहार कर डाला और अपने समान चिह्न धारण करनेवाले अज्ञानी पौण्ड्रकसे कहा—'पौण्ड्रक! तुमने जो दूतके मुखसे मुझे कहला भेजा था कि तुम अपने चिह्न छोड़ दो, सो अब मैं तुम्हारे उस आदेशका पालन करता हूँ। लो, यह चक्र छोड़ा; यह गदा छोड़ दी और इस गरुड़को भी छोड़ा। यह तुम्हारी भुजापर आरूढ़ हो जाय।' यों कहकर भगवान्‌ने अपने छोड़े हुए चक्रसे पौण्ड्रकको विदीर्ण कर डाला। गदाके आघातसे उसे पृथ्वीपर गिरा दिया और गरुड़ने उसके कृत्रिम गरुड़को भी तोड़-फोड़ डाला। पौण्ड्रकके मारे जानेपर वहाँ लोगोंमें हाहाकार मच गया। तब काशिराज अपने मित्रका बदला चुकानेके लिये श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णने शार्ङ्गधनुषद्वारा छोड़े हुए बाणोंसे काशिराजका मस्तक काटकर उसे काशीपुरीमें फेंक दिया। यह लोगोंके लिये बड़े विस्मयका कार्य था। इस प्रकार पौण्ड्रक और काशिराजको सेवकोंसहित मारकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकामें चले आये और वहाँ स्वर्गलोकमें स्थित देवताकी भाँति विहार करने लगे।



मुनियोंने कहा—मुने! अब हम परम बुद्धिमान् बलरामजीके शौर्य और पराक्रमका वृत्तान्त सुनना चाहते हैं। आप उसीका वर्णन कीजिये।

व्यासजी बोले—मुनियो! बलरामजी इस पृथ्वीको धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् शेष हैं। उनकी महिमा अनन्त है। वे अप्रमेय हैं। उन्होंने जो कार्य किया, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। दुर्योधनकी पुत्री कुमारी लक्ष्मणा स्वयंवरमें जा रही थी। उस समय जाम्बवतीके पुत्र वीरवर साम्बने उसे बलपूर्वक हर लिया। यह देख महापराक्रमी कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदि बहुत कुपित हुए। उन्होंने साम्बको युद्धमें जीतकर कैद कर लिया। यह सुनकर सम्पूर्ण यादवोंने दुर्योधन आदिपर बड़ा क्रोध किया और उनका विनाश कर डालनेके लिये बड़ी भारी तैयारी की। तब बलरामजीने यादवोंको रोककर कहा—'मैं अकेला ही कौरवों-के यहाँ जाता हूँ। वे मेरे कहनेसे साम्बको छोड़ देंगे।' तदनन्तर बलरामजी हस्तिनापुरमें जाकर बाहरके उद्यानमें ठहर गये, नगरमें नहीं गये। बलरामजीको आया जान दुर्योधन आदि कौरवोंने उन्हें गौ, अर्घ्य और जल भेंट किये। वह सब विधिपूर्वक स्वीकार करके बलरामजीने कौरवोंसे कहा—'राजा उग्रसेनकी आज्ञा है कि तुम सब लोग साम्बको शीघ्र छोड़ दो।'

बलदेवजीकी यह बात सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदिके क्रोधकी सीमा न रही। राजा बाह्लीक आदि भी कुपित हो उठे। उन्होंने यदुकुलको राज्यके अधिकारसे वञ्चित जान बलरामजीसे कहा—'बलदेव! तुमने यह कैसी बात कह डाली। कौन ऐसा यदुवंशी है, जो कौरवोंको आज्ञा देगा। यदि उग्रसेन भी कौरवोंको आज्ञा दें, तब तो हमें राजाओंके योग्य श्वेत छत्र धारण करनेसे क्या लाभ होगा। अतः तुम लौट जाओ। साम्बने अन्यायपूर्ण कार्य किया है; अतः तुम्हारे या उग्रसेनके कहनेसे हम उसे छोड़ नहीं सकते। हमलोग यदुवंशियोंके माननीय हैं। कुकुर और अन्धक वंशोंके लोग सदा हमको प्रणाम किया करते थे। अब वे ऐसा नहीं करते तो न सही; किंतु स्वामीको सेवककी ओरसे यह आज्ञा देनेकी बात कैसी। हमने तुमलोगोंको अपने समान आसन और भोजन देकर जो सम्मानित किया, उससे तुम्हारा अहंकार बहुत बढ़ गया है। इसमें तुम्हारा क्या दोष है। हमने ही प्रेमवश नीति नहीं देखी। बलराम! हमने तुम्हारे लिये जो यह अर्घ्य निवेदित किया है, इसमें केवल प्रेम ही कारण है। हमारे कुलकी ओरसे तुम्हारे कुलको अर्घ्य देना कदापि उचित नहीं है।'

यों कहकर कौरव चुप हो गये। उन्होंने श्रीकृष्णके पुत्रको बन्धनसे मुक्त नहीं किया। इस विषयमें उन सबने एक राय कर ली थी। वे सब-के-सब बलरामजीको वहीं छोड़ हस्तिनापुरमें चले गये। कौरवोंद्वारा किये हुए आक्षेपसे बलरामजीको बड़ा क्रोध हुआ। वे घूरते हुए उठकर खड़े हो गये और पैरकी एड़ीसे उन्होंने पृथ्वीपर प्रहार किया। महात्मा बलरामकी एड़ीके आघातसे पृथ्वी विदीर्ण हो गयी। वे अपनी गर्जनासे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाकर कम्पित करने लगे। वे आँखें लाल-लाल और भौंहें टेढ़ी करके बोले—'अहो! इन सारहीन दुरात्मा कौरवोंको अपने राजा होनेका इतना मद, इतना अभिमान है! क्या कौरव ही सम्राट्-पदके अधिकारी हैं? हमलोगोंका प्रभुत्व कुछ ही कालके लिये है? क्या बात है, जो ये महाराज उग्रसेनकी अलङ्घनीय आज्ञाको भी नहीं मानते। देवताओं और धर्मके साथ शचीपति इन्द्र भी उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हैं। इन्द्रकी सुधर्मा सभामें इस समय सदा महाराज उग्रसेन ही विराजमान होते हैं। इन कौरवोंका राजसिंहासन तो सैकड़ों मनुष्योंकी जूठन है; उसीपर इनको संतोष है! धिक्कार है इन्हें! आजसे उग्रसेन ही समस्त राजाओंके भी राजा बनकर रहें। अब मैं इस पृथ्वीको कौरवोंसे हीन करके ही द्वारकापुरीको लौटूँगा। कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, बाह्लीक, दुःशासन, भूरि, भूरिश्रवा, सोमदत्त, शल तथा अन्यान्य कौरवोंको उनके हाथी, घोड़े और रथोंके सहित मार डालूँगा और वीरवर साम्बको उसकी पत्नीके साथ द्वारकापुरीमें ले जाकर उग्रसेन आदि बन्धु-बान्धवोंका दर्शन करूँगा। अथवा देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे हमें शीघ्र ही पृथ्वीका भार उतारना है; इसलिये समस्त कौरवोंके साथ उनके हस्तिनापुर नगरको अभी गङ्गामें डाले देता हूँ।'

यों कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये बलभद्रजीने अपने हलका मुख नीचेकी ओर किया और चहारदीवारीकी जड़में धँसाकर खींचा। इससे सम्पूर्ण हस्तिनापुर सहसा डगमगाता-सा जान पड़ा। यह देख समस्त कौरव व्याकुलचित्त होकर हाहाकार करने लगे और बलरामजीके पास आकर बोले—'महाबाहु राम! बलराम!! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये; मुसलायुध! अपना क्रोध शान्त कीजिये और हमपर प्रसन्न होइये। बलराम! ये पत्नीसहित साम्ब आपकी सेवामें समर्पित हैं। हम आपका प्रभाव नहीं जानते; इसीसे हमलोगोंके द्वारा आपका अपराध हुआ है। अब कृपया उसे क्षमा करें।' यों कहकर कौरवोंने पत्नीसहित साम्बको बलभद्रजीके सामने उपस्थित कर दिया। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि



बलरामजीको प्रणाम करके प्रिय वचन कहने लगे। तब बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामने कहा—'अच्छा, मैंने क्षमा कर दिया।' इस समय भी हस्तिनापुर गङ्गाकी ओर कुछ झुका-सा दिखायी देता है। यह बलवान् और शूरवीर बलरामका ही प्रभाव है। तदनन्तर कौरवोंने बलरामजीके सहित साम्बका पूजन करके बहुत-से दहेज और नववधूके साथ उन्हें द्वारकापुरी भेज दिया।

द्विविदका वध, यदुकुलका संहार, अर्जुनका पराभव और पाण्डवोंका महाप्रस्थान

व्यासजी कहते हैं—मुनियो ! बलशाली भगवान् बलरामने जो और पराक्रम किया था, वह भी सुनो। द्विविद नामसे प्रसिद्ध एक महापराक्रमी वानर था, जो देवद्रोही दैत्य-पति नरकासुरका मित्र था। उसने देवताओंसे वैर बाँध लिया था। वह कहता था, 'श्रीकृष्णने देवताओंके कहनेसे ही बलवान् नरकासुरका वध किया है, अतः मैं समस्त देवताओंसे इसका बदला लूँगा।' इस निश्चयके अनुसार वह यज्ञोंका विध्वंस और मर्त्यलोकका विनाश करने लगा। अज्ञानसे मोहित होनेके कारण उसने साधु पुरुषोंकी मर्यादा तोड़ डाली और देहधारी जीवोंका संहार आरम्भ कर दिया। वह चञ्चल वानर देश, नगर और गाँवोंमें आग लगाने लगा। कहीं-कहीं पर्वत गिराकर गाँवों आदिको कुचल डालता था। पर्वतोंको उखाड़कर समुद्रके जलमें डाल देता था और स्वयं भी समुद्रके भीतर घुसकर उसका मन्थन आरम्भ कर देता था। इससे क्षुब्ध होकर समुद्र अपनी सीमा लाँघकर आगे बढ़ जाता और तटपर बसे हुए गाँवों तथा नगरोंको डुबो देता था। वानर द्विविद इच्छानुसार विशाल रूप धारण करके खेतोंमें लोटता, घूमता और खेतीको कुचलकर नष्ट कर डालता था। उस दुरात्माने सम्पूर्ण जगत्के विरुद्ध कार्य आरम्भ कर दिया था। कहीं कोई स्वाध्याय और वषट्कारका नाम लेने-वाला नहीं था। सब संसार अत्यन्त दुखित हो गया था। एक दिन रैवत पर्वतके उद्यानमें बलभद्रजी तथा महाभागा रेवती विहार कर रहे थे। उनके साथ और भी सुन्दरी स्त्रियाँ थीं। बलभद्रजी रमणियोंके बीचमें विराजमान थे और वे उनके सुयशका गान कर रही थीं। इसी समय द्विविद भी वहाँ आया और उनके सम्मुख खड़ा हो उन्हींकी नकल करने लगा। वह दुष्ट वानर उन युवतियोंकी ओर देख-देखकर जोर-जोरसे हँसने लगा। यह देखकर बलभद्रजीने कुपित होकर उसे डाँटा, किंतु उनके डाँटनेकी परवा न करके वह किलकारी मारने लगा। तब बलरामजीने उठकर बड़े रोषके साथ मूसल हाथमें लिया। उधर उस वानरने भी एक भयंकर शिलाखण्ड उठा लिया और उसे बलभद्रजीपर चलाया; किंतु उन्होंने मूसलसे मारकर उस शिलाके सहस्रों टुकड़े कर दिये। द्विविदने बलरामजीके मूसलका वार बचाकर उनकी छातीमें बड़े वेग और रोषके साथ घूसा मारा। यह देख बलरामजीने भी क्रोधमें भरकर मुक्केसे उसके मस्तकपर प्रहार किया। इससे वह रक्त वमन करता हुआ निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते समय उसके शरीरके आघातसे उस पर्वत-शिखरके सैकड़ों टुकड़े हो गये, मानो उसपर वज्र गिरा हो। उस समय देवता बलरामजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा तथा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे और बोले—'वीर ! आपने यह बड़ा अच्छा कार्य किया, यह दुष्ट वानर दैत्य-पक्षका सहायक था। इसने सम्पूर्ण जगत्को संकटमें डाल रखा था। सौभाग्यकी बात है कि आज यह मारा गया।'

इस प्रकार इस पृथ्वीको धारण करनेवाले परम बुद्धिमान् बलरामजीके अनेक अद्भुत पराक्रम हैं, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती।

इस तरह इस जगत्का उपकार करनेके लिये बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने दैत्यों और दुष्ट राजाओंका वध किया। फिर अर्जुनके साथ मिलकर भगवान्ने अनेक अक्षौहिणी सेनाओंका वध कराकर इस पृथ्वीका भार उतारा। इस प्रकार सम्पूर्ण दुष्ट राजाओंका संहार करके भूभार उतारनेके पश्चात् उन्होंने ब्राह्मणोंके शापको निमित्त बनाकर अपने कुलका भी संहार कर डाला। अन्तमें स्वयम्भू श्रीकृष्ण द्वारकापुरी छोड़कर अपने अंशभूत बलराम आदिके साथ पुनः अपने आश्रयभूत परम धामको चले गये।

मुनियोंने पूछा—ब्रह्मन् ! भगवान्ने ब्राह्मणोंके शापको निमित्त बनाकर किस प्रकार अपने कुलका संहार किया ?

व्यासजी बोले—एक समयकी बात है—पिण्डारकनाम-के महातीर्थमें विश्वामित्र, कण्व तथा महामुनि नारद पधारे थे। वहाँ यदुकुलके कुमारोंने उनका दर्शन किया। वे सभी कुमार यौवनके मदसे उन्मत्त थे, अतः भावीकी प्रेरणासे उन्होंने जाम्बवतीकुमार साम्बको स्त्रीके वेषमें विभूषित किया

और मुनियोंको प्रणाम करके विनीत भावसे पूछा—'महर्षियो! यह स्त्री पुत्रकी अभिलाषा रखती है। बताइये, यह अपने पेटसे क्या जनेगी?' वे महर्षि दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न थे, तथापि यदुकुमारोंने उनके साथ छल किया। यह देख उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महर्षियोंने यादवोंके नाशके लिये शाप देते हुए कहा—'यह स्त्री एक मुसल पैदा करेगी, जिससे सम्पूर्ण यदुकुलका संहार हो जायगा।' उनके यों कहनेपर



यदुकुमारोंने पुरीमें आकर राजा उग्रसेनको सब हाल कह सुनाया। साम्बके पेटसे मुसल पैदा हुआ। उग्रसेनने उस मुसलके लोहेको कुटवाकर चूर्ण बना दिया और उसे समुद्रमें फेंक दिया। वह चूर्ण एरका नामकी घासके रूपमें उत्पन्न हो गया। मुसलका जो लोहा था, उसे चूर्ण कर देनेपर भी उसका एक टुकड़ा बचा रह गया। उसे यादवगण किसी प्रकार भी चूर्ण न कर सके। उसकी आकृति तोमरके समान थी। वह टुकड़ा भी समुद्रमें फेंक दिया गया, किंतु उसे एक मत्स्यने निगल लिया। उस मत्स्यको मछेरोंने जाल बिछाकर पकड़ लिया। जब उसका पेट चीरा गया, तब वह लोहा निकला और उसे जरा नामक व्याधने ले लिया। भगवान् श्रीकृष्ण इन सभी बातोंको अच्छी तरह जानते थे, तो भी उन्होंने विधाताके विधानको बदलना नहीं चाहा। इसी बीचमें देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णके पास अपना दूत भेजा; उसने एकान्तमें भगवान्‌को प्रणाम करके कहा—'भगवन्! वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, आदित्य, रुद्र तथा साध्य आदि देवताओंके साथ इन्द्रने मुझे दूत बनाकर भेजा है। प्रभो! देवगण आपसे जो निवेदन करना चाहते हैं, वह इस प्रकार है; सुनिये। देवताओंके प्रार्थना करनेपर आपने जो इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार लिया था, उसे आज सौ वर्षसे अधिक हो गये। दुराचारी दैत्य मारे गये, पृथ्वीका भार उतर गया। अब देवता आपसे सनाथ होकर स्वर्गमें निवास करें। जगन्नाथ! यदि आपको स्वीकार हो तो अब अपने परमधामको पधारें।'

श्रीभगवान् बोले—दूत! तुम जो कुछ कहते हो, वह सब मैं जानता हूँ। इसीलिये मैंने यादवोंके संहारका कार्य आरम्भ कर दिया है। यदि यदुवंशियोंका संहार न हो तो यह पृथ्वीपर बहुत बड़ा भार रह जायगा; अतः मैं सात रातके भीतर जल्दी ही इस भारको भी उतार डालूँगा। जिस प्रकार मैंने द्वारकापुरी बसानेके लिये समुद्रसे भूमि माँगी थी, उसी प्रकार उसे वह भूमि लौटा भी दूँगा और यादवोंका संहार करके अपने परमधामको जाऊँगा। देवराज इन्द्र तथा देवताओंको यों मानना चाहिये कि मैं बलरामजीके साथ अब अपने धाममें आ ही गया। इस पृथ्वीके भाररूप जो जरासंध आदि राजा थे, वे मारे गये; तथापि इन यदुवंशियोंका भार उनसे भी बढ़कर है, अतः पृथ्वीके इस महाभारको उतारकर ही मैं देवलोककी रक्षाके लिये अपने धाममें जाऊँगा।

भगवान् वासुदेवके यों कहनेपर देवदूत उन्हें प्रणाम करके दिव्य गतिसे देवराजके समीप चला गया। इधर द्वारकापुरीमें दिन-रात विनाशके सूचक दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्षसम्बन्धी उत्पात होने लगे। उन्हें देखकर भगवान्‌ने यादवोंसे कहा—'देखो, ये अत्यन्त भयंकर महान् उत्पात हो रहे हैं। इनकी शान्तिके लिये हम सब लोग शीघ्र ही प्रभासक्षेत्रमें चलें।' उस समय महान् भगवद्भक्त उद्धवजीने श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'भगवन्! अब मुझे क्या करना चाहिये? इसके लिये आज्ञा दें। मैं समझता हूँ आप इस समस्त यादवकुलका संहार करना चाहते हैं; क्योंकि मुझे ऐसे निमित्त दिखायी देते हैं, जो इस कुलके विनाशकी सूचना देनेवाले हैं।'

श्रीभगवान् बोले—उद्धव! तुम मेरी कृपासे प्राप्त हुई दिव्य गतिके द्वारा गन्धमादन पर्वतपर परम पवित्र बदरिकाश्रम तीर्थमें चले जाओ। वह श्रीनर-नारायणका स्थान

है। वहाँकी भूमि बड़ी पवित्र है। उस तीर्थमें मेरा चिन्तन करते हुए निवास करो, फिर मेरी कृपासे तुम्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी। मैं इस कुलका संहार करके अपने धामको जाऊँगा। मेरे त्याग देनेपर समुद्र इस द्वारकापुरीको डुबो देगा।

भगवान्‌के यों कहनेपर उद्धवजी उन्हें प्रणाम करके नर-नारायणके आश्रममें चले गये। तदनन्तर सम्पूर्ण यादव शीघ्रगामी रथपर आरूढ़ हो बलराम और श्रीकृष्ण आदिके साथ प्रभासक्षेत्रमें गये। वहाँ पहुँचकर कुकुर और अन्धकवंशके सब लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक मदिरा-पान किया। पीते समय उनमें परस्पर संघर्ष हो गया, जिससे विनाश करनेवाली कलहाग्नि प्रज्वलित हो उठी। दैवके अधीन होकर उन्होंने एक दूसरेको शस्त्रोंसे मारना आरम्भ किया। जब शस्त्र समाप्त हो गये, तब पास ही जमी हुई एरका नामकी घास सबने उखाड़ ली। उनके हाथोंमे आनेपर वह एरका वज्रकी भाँति दिखायी देने लगी। उसके द्वारा वे एक दूसरेपर भयंकर प्रहार करने लगे। प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, सुचारु तथा अक्रूर आदि सभी यदुवंशी एरकारूप वज्रसे एक दूसरेको मारने लगे। श्रीहरिने यादवोंको ऐसा करनेसे रोका; किंतु वे उन्हें अपने विपक्षीका सहायक मानने लगे और उनकी अवहेलना करके परस्पर प्रहार करते ही रहे। इससे भगवान् श्रीकृष्णको भी क्रोध हो आया। अतः उन्होंने भी उनका वध करनेके लिये मुट्ठीभर एरका उखाड़ ली। हाथमें आते ही वह एरका लोहेका मुसल बन गयी। उस मुसलसे भगवान्‌ने सहसा समस्त यादवोंका संहार कर डाला तथा अन्य यादव आपसमें ही लड़कर नष्ट हो गये। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णका जैत्र नामक रथ दारुकके देखते-देखते समुद्रके मध्यवर्ती मार्गद्वारा शीघ्र ही चला गया। उसमें जुते हुए घोड़े उस रथको लेकर उड़ गये। फिर शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, दोनों अक्षय तूणीर और खड्ग—ये सभी अस्त्र-शस्त्र भगवान्‌की परिक्रमा करके सूर्यके मार्गसे चले गये। क्षणभरमें वहाँ सम्पूर्ण यदुवंशियोंका संहार हो गया। केवल महाबाहु श्रीकृष्ण और दारुक रह गये। उन दोनोंने घूमते हुए आगे जाकर देखा, बलरामजी एक वृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठे हैं और उनके मुँहसे एक विशाल नाग निकल रहा है। वह महाकाय सर्प उनके मुखसे निकलकर सिद्धों और नागोंसे पूजित हो समुद्रकी ओर चला गया। समुद्रने सामने आकर उसे अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ नागोंसे पूजित हो समुद्रके जलमें प्रवेश कर गया।

इस प्रकार बलरामजीका प्रयाण देखकर श्रीकृष्णने दारुकसे कहा—"तुम द्वारकामें जाकर यह सब वृत्तान्त वसुदेव-



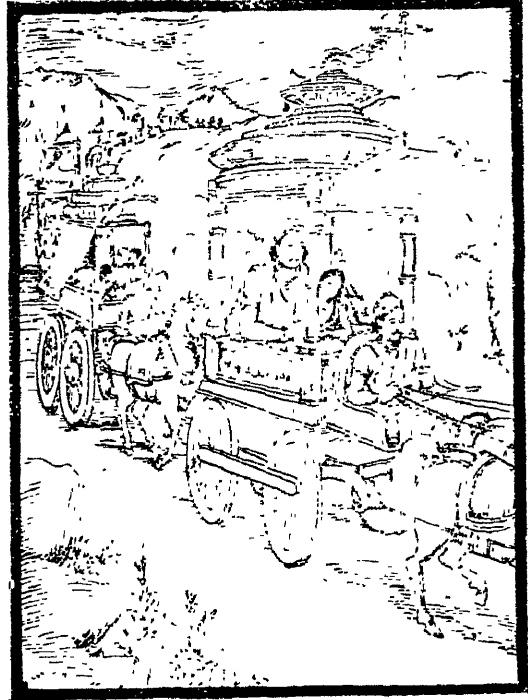
जी तथा राजा उग्रसेनसे कहो—'बलरामजी चले गये। यदुवंशियोंका संहार हो गया और मैं भी योगस्थ होकर परमधामको चला जाऊँगा।' ये सब बातें बताकर द्वारकावासी मनुष्यों और उग्रसेनसे यह भी कहना कि 'अब इस सम्पूर्ण द्वारकापुरीको समुद्र डुबो देगा, अतः आपलोग यहाँसे जानेके लिये रथोंको सुसज्जित करके अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा करें। जब अर्जुन द्वारकासे निकलें, तब कोई भी वहाँ न रहे। सब लोग अर्जुनके साथ ही चले जायँ।' दारुक! तुम कुन्तीनन्दन अर्जुनसे भी जाकर मेरी ये बातें कहो—'द्वारकामें जो मेरी स्त्रियाँ हैं, उनकी वे यथाशक्ति रक्षा करेंगे।' यह कहकर अर्जुनको साथ ले तुम द्वारकामें आना और सबको बाहर निकाल ले जाना। अब यदुकुलमें अनिरुद्धकुमार वज्रनाभ राजा होंगे।"

यह सुनकर दारुकने भगवान् श्रीकृष्णको बारंबार प्रणाम किया और अनेक बार उनकी परिक्रमा करके वह उनके कथनानुसार वहाँसे चला गया। उसने जाकर भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार सब कार्य किया। वह अर्जुनको द्वारकामें बुला ले आया और महाबुद्धिमान् वज्रको यदुवंशियोंका राजा बनाया। उधर भगवान् श्रीकृष्णने वासुदेवस्वरूप परब्रह्मको अपने

आत्मामें आरोपित करके सम्पूर्ण भूतोंमें उनके व्याप्त होनेकी धारणा की और योगयुक्त होकर अपने एक पैरको दूसरे पैरके घुटनेपर रखकर बैठे। वे ब्राह्मण दुर्वासाके वचनका मान रखना चाहते थे।* उसी समय जरा नामका व्याध उस ओर आ निकला। उसने मुसलके बचे हुए लोहखण्डका बाण बनाकर उसे धारण कर रक्खा था। भगवान्‌का चरण उसे मृगके आकारका दिखायी दिया। उसे देखकर वह खड़ा हो गया और उसी तोमरसे उसने भगवान्‌के पैरको बींध डाला। जब वह उनके समीप गया, तब वे उसे चार भुजाधारी मनुष्यके रूपमें दृष्टिगोचर हुए। भगवान्‌को देखते ही वह उनके चरणोंमें पड़ गया और बारंबार कहने लगा—'प्रभो! प्रसन्न होइये। मैंने अनजानमें हरिणके धोखेसे यह अपराध किया है, अतः क्षमा कीजिये।'

तब भगवान्‌ने उससे कहा—'व्याध! तुझे तनिक भी भय नहीं है। तू मेरे प्रसादसे इन्द्रलोकमें चला जा।' भगवान्‌के इतना कहते ही वहाँ विमान आ पहुँचा और वह व्याध उसपर बैठकर भगवान्‌की कृपासे स्वर्गलोकको चला गया। उसके चले जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने त्रिविध गतिको पार करके अपने आत्माको अव्यय, अचिन्त्य, अमल, अजन्मा, अजर, अविनाशी, अप्रमेय, अखिलात्मा एवं ब्रह्मभूत अपने ही वासुदेवस्वरूपमें लीन कर लिया।

तत्पश्चात् अर्जुनने सम्पूर्ण यादवोंका विधिपूर्वक प्रेतकर्म (और्ध्वदैहिक संस्कार) किया। फिर वज्र आदि सब लोगोंको साथ ले वे द्वारकासे बाहर निकले। श्रीकृष्णकी हजारों पत्नियाँ भी साथ ही थीं। उन सबकी रक्षा करते हुए कुन्तीनन्दन अर्जुन धीरे-धीरे चले। भगवान् श्रीकृष्णने मर्त्यलोकमें जो सुधर्मा सभा मँगवायी थी, वह और पारिजात वृक्ष दोनों ही पुनः स्वर्गको चले गये। श्रीहरि जिस दिन इस पृथ्वीको छोड़कर अपने धामको पधारे, उसी दिन यह मलिनकाय कलियुग भूतलपर प्रकट हुआ। समुद्रने मनुष्योंसे सूनी द्वारकाको डुबो



दिया। केवल भगवान् श्रीकृष्णका मन्दिर वह अब भी नहीं डुबाता। वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण नित्य विराजमान रहते हैं। वह परम पवित्र भगवद्धाम सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला है। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंसे युक्त उस पवित्र स्थानका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

अर्जुन द्वारकावासियोंको साथ ले प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न पञ्चनद (पंजाब) देशमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सब लोगोंके साथ एक स्थानपर पड़ाव डाला। वहाँ बहुत-से लुटेरे रहते थे। उन्होंने देखा एकमात्र धनुर्धर अर्जुन ही बहुत-सी अनाथ स्त्रियोंको साथ लिये जाता है। तब उनके मनमें लोभ उत्पन्न हुआ। लोभसे उनकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी, अतः वे अत्यन्त दुर्मद पापाचारी आभीर एकत्रित होकर आपसमें सलाह करने लगे—'भाइयो! यह अर्जुन अकेला हम सब लोगोंकी अवहेलना करके इन अनाथ स्त्रियोंको लिये जाता है। इसके हाथमें केवल धनुष है। इसीके बलपर यह हमें कुछ नहीं समझता। यह हमारे लिये धिक्कारकी बात है। तुम सब लोग बल लगाओ।'

ऐसा निश्चय करके लाठी और ढेले चलानेवाले डाकू हजारोंकी संख्यामें उन स्त्रियोंपर टूट पड़े। यह देख कुन्तीनन्दन अर्जुनने उनका उपहास-सा करते हुए कहा—'ओ

* महाभारतमें प्रसङ्ग आया है कि एक बार महर्षि दुर्वासा भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ पधारे। भगवान्‌ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। दुर्वासाने कहा—'आप मेरी जूठन अपने सारे शरीरमें लगाइये।' भगवान्‌ने ऐसा ही किया। किंतु उसे पैरके नीचे नहीं लगाया, इसलिये कि ब्राह्मणकी जूठनका अपमान न हो जाय। दुर्वासाने कहा, 'जहाँ-जहाँ जूठन लगी है, वह सारा अङ्ग दुर्भेद्य होगा और जहाँ नहीं लगी है, वह किसी शस्त्रसे बिंध जायगा।'

पापियो ! यदि तुम्हारी मरनेकी इच्छा न हो तो लौट जाओ।' आभीरोंपर उनकी धमकीका कुछ भी असर न हुआ। उन्होंने अर्जुनके वचनोंकी अवहेलना करके सारा धन लूट लिया। तब अर्जुनने अपने दिव्य गाण्डीव धनुषको चढ़ाना आरम्भ किया; किंतु बलवान् होनेपर भी वे उसे चढ़ा न सके। बड़ी कठिनाईसे किसी तरह उन्होंने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी भी तो वह पुनः ढीली हो गयी तथा उनके बहुत स्मरण करनेपर भी उन्हें किसी अस्त्र-शस्त्रकी याद न आयी। उन्होंने डाकुओंपर बाण चलाये, किंतु वे बाण उन्हें घायल न कर सके। अग्निदेवके दिये हुए अक्षय बाण उन ग्वालोंके साथ युद्ध करनेमें नष्ट हो गये। अर्जुनकी शक्ति भी क्षीण हो गयी। उस समय अर्जुनके मनमें यह निश्चय हुआ कि 'मैंने अपने बाण-समूहोंसे जो बड़े-बड़े बलवान् राजाओंको परास्त किया है, वह श्रीकृष्णका ही बल था।' बाणोंके नष्ट हो जानेपर अर्जुनने धनुषकी नोकसे डाकुओंको मारना आरम्भ किया, किंतु वे उनके इस प्रहारकी हँसी उड़ाने लगे। वे म्लेच्छ लुटेरे अर्जुनके देखते-देखते वृष्णि और अन्धकवंशकी सुन्दरी स्त्रियोंको लेकर चारों ओर चम्पत हो गये। तब अर्जुनने दुखी होकर कहा—'हाय ! यह बड़े कष्टकी बात हुई। अहो ! भगवान् श्रीकृष्णने मुझे अकेला छोड़ दिया।' यों कहकर वे फूट-फूटकर रोने लगे और रोते-रोते ही बोले—'हाय ! यह वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ और वे ही घोड़े हैं; किंतु आज सब एक साथ ही नष्ट हो गये। अहो ! दैव बड़ा प्रबल है। महात्मा श्रीकृष्णके बिना मुझे सामर्थ्य रहते हुए नीच पुरुषोंसे अपमानित होना पड़ा। वे ही मेरी भुजाएँ, वही मुष्टि और वही मैं अर्जुन; किंतु उन पुण्यपुरुष श्रीकृष्णके बिना आज सब कुछ निःसार हो गया। मेरा अर्जुनत्व और भीमसेनका भीमत्व भगवान्‌के ही कारण था, तभी तो आज उनके न रहनेपर मुझे आभीरोंने जीत लिया। अन्यथा यह कैसे सम्भव था।' इस प्रकार कहते हुए अर्जुन अपने श्रेष्ठ नगर इन्द्रप्रस्थमें गये। वहाँ उन्होंने यादवकुमार वज्रको यदुवंशियोंका राजा बनाया। तदनन्तर वे वनमें आकर मुझसे मिले और मुझे विनयपूर्वक प्रणाम किया। अर्जुनको अपने चरणोंकी वन्दना करते देख मैंने पूछा—'पार्थ ! तुम इस प्रकार अत्यन्त उदास क्यों हो रहे हो ? तुमसे किसी ब्राह्मणकी हत्या तो नहीं हो गयी है ? अथवा विजयकी आशा भङ्ग होनेसे तुम्हें दुःख हो रहा है ? इस समय तुम सर्वथा श्रीहीन हो गये हो। तुमने किसी अगम्या स्त्रीसे रमण तो नहीं किया, जिससे तुम्हारी कान्ति फीकी पड़ गयी है ? या कहीं निम्न श्रेणीके मनुष्योंने तुम्हें युद्धमें परास्त कर दिया है ?'

मेरे ऐसा प्रश्न करनेपर अर्जुनने लंबी साँस छोड़ते हुए कहा—'भगवन् ! सुनिये—जो हमारे तेज, बल, वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति थे, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंको छोड़कर चले गये। मुने ! जो महान् होकर भी साधारण मनुष्योंकी भाँति हमसे हँस-हँसकर बातें किया करते थे, उन्हींके बिना आज हम तिनकोंके पुतलेकी भाँति सारहीन हो गये हैं। मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्य बाणों और गाण्डीव धनुषके जो मूर्तिमान् सार थे, वे भगवान् पुरुषोत्तम हमें छोड़कर चले गये। जिनकी कृपादृष्टिसे लक्ष्मी, विजय, सम्पत्ति और उन्नतिने कभी हमारा साथ नहीं छोड़ा, वे भगवान् गोविन्द हमें छोड़कर चले गये। जिनके प्रभावरूपी अग्निसे भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि वीर जलकर भस्म हो गये, उन भगवान् श्रीकृष्णने इस भूमण्डलको त्याग दिया। तात ! चक्रपाणि गोविन्दके विरहमें केवल मैं ही नहीं, यह सारी पृथ्वी ही यौवन, श्री और कान्तिसे हीन प्रतीत होती है। जिनकी कृपासे भीष्म आदि वीर आगमें पतङ्गोंकी भाँति मेरे पास आकर भस्म हो गये, आज उन्हीं श्रीकृष्णके बिना मुझे ग्वालोंने हरा दिया। जिनके प्रभावसे मेरा गाण्डीव धनुष तीनों लोकोंमें विख्यात हो चुका था, उन्हीं श्रीहरिके बिना उसे आभीरोंने डंडोंसे तिरस्कृत कर दिया। महामुने ! मेरे साथ कई हजार अनाथ स्त्रियाँ थीं और मैं उनकी रक्षाके लिये पूर्ण यत्न कर रहा था; तो भी डाकुओंने केवल लाठीके बलपर उन्हें छीन लिया। पितामह ! ऐसी अवस्थामें मेरा श्रीहीन होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि मैं नीच पुरुषोंद्वारा अपमानके पङ्कमें साना जाकर भी निर्लज्जतापूर्वक जीवन धारण कर रहा हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—द्विजवरो ! पाण्डुनन्दन महात्मा अर्जुन अत्यन्त दुखी और दीन हो रहे थे। उनकी बात सुनकर मैंने कहा—'पार्थ ! तुम लज्जा न करो। शोकमें भी न पड़ो। सोचो और समझो; सम्पूर्ण भूतोंमें कालकी ऐसी ही गति है। पाण्डुनन्दन ! प्राणियोंकी उन्नति और अवनतिका कारण काल ही है। यह जो कुछ होता है और हुआ है, सब कालमूलक ही है—यह जानकर तुम धैर्य धारण करो।

नदी, समुद्र, पर्वत, सम्पूर्ण पृथ्वी, देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष और साँप, बिच्छू आदि सब भूतोंको कालने ही उत्पन्न किया है और कालके द्वारा ही पुनः उनका संहार होगा। यह सारा प्रपञ्च कालस्वरूप ही है—यह जानकर शान्त हो जाओ। धनंजय! तुमने श्रीकृष्णकी जैसी महिमा बतलायी है, वह वैसी ही है। उन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही यहाँ अवतार लिया था। जब पृथ्वीपर भार अधिक हो गया और वह दबने लगी, तब वह देवताओंके पास गयी थी। उसीके लिये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले श्रीहरिने अवतार ग्रहण किया था। वह कार्य पूरा हो गया। सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे गये तथा वृष्णि और अन्धक-वंशका भी संहार हो गया। अब इस भूतलपर भगवान्‌के करनेयोग्य कोई कार्य शेष नहीं रह गया था, अतः अवतार कार्य पूरा करके वे इच्छानुसार अपने धामको चले गये हैं। देवदेव भगवान् श्रीकृष्ण ही सृष्टिके समय संसारकी सृष्टि और पालनके समय पालन करते हैं तथा वे ही संहारकालमें सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करनेमें समर्थ होते हैं, जैसा कि इस समय भी उन्होंने दुष्ट राक्षसोंका संहार किया था। अतः पार्थ! तुम्हें अपनी पराजयसे दुःख नहीं मानना चाहिये। क्योंकि अभ्युदयका समय आनेपर ही पुरुषोंद्वारा बड़े-बड़े पराक्रम होते हैं। जिस समय तुमने अकेले ही भीष्म-जैसे वीरोंका वध किया था, उस समय उनका भी क्या अपनेसे न्यून पुरुषके द्वारा पराभव नहीं हुआ था? किंतु यह पराजय कालकी ही देन थी। भगवान् विष्णुके प्रभावसे जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा उनकी पराजय हुई, उसी प्रकार लुटेरोंके हाथसे तुम्हें भी पराजित होना पड़ा। वे जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण भिन्न-भिन्न शरीरोंमें प्रवेश करके संसारका पालन करते हैं और अन्तमें सब जीवोंका संहार कर डालते हैं। जब तुम्हारे अभ्युदयका समय था, तब भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे सहायक हो गये थे और जब वह समय बीत गया, तब तुम्हारे विपक्षियोंपर भगवान्‌की कृपादृष्टि हुई है। तुम गङ्गानन्दन भीष्मके साथ सम्पूर्ण कौरवोंका संहार कर डालोगे—इस बात-पर पहले कौन विश्वास कर सकता था? और फिर तुम्हें आभीरोंसे परास्त होना पड़ेगा—यह बात कौन मान सकता था। परंतु दोनों ही बातें सम्भव हुईं। पार्थ! यह सम्पूर्ण भूतोंमें श्रीहरिकी लीलाका ही विलास है। अतः तुम्हें तनिक भी शोक नहीं करना चाहिये। सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णने ही सम्पूर्ण यादवोंका संहार किया है। तुम-लोगोंका संहार-काल भी समीप ही है; इसीलिये भगवान्‌ने तुम्हारे बल, तेज, पराक्रम और माहात्म्यका पहले ही संहार कर दिया है। जो जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु निश्चित है। जो ऊँचे चढ़ चुका है, उसका नीचे गिरना भी अवश्यं-भावी है। संयोगका अवसान वियोगमें ही होता है और संग्रह हो जानेके बाद उसका क्षय होना भी निश्चित बात है। यह समझकर विद्वान् पुरुष हर्ष और शोकके वशीभूत नहीं होते और इतर मनुष्य भी उन्हींके आचरणसे शिक्षा लेकर वैसे ही बनते हैं।* नरश्रेष्ठ! यह समझकर तुम्हें भाइयोंके साथ सारा राज्य छोड़कर तपस्याके लिये वनमें जाना चाहिये। अब जाओ, धर्मराज युधिष्ठिरसे मेरी ये सारी बातें कहो। वीर! परसोंतक अपने भाइयोंके साथ जैसे भी हो सके घरसे प्रस्थान कर दो।'

यह सुनकर अर्जुनने धर्मराजके पास जा अपनी देखी और अनुभव की हुई सारी बातें कह सुनायीं। अर्जुनके मुखसे मेरा संदेश सुनकर समस्त पाण्डव परीक्षित्‌को राज्यपर अभिषिक्त करके वनमें चले गये। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे यदुकुलमें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

श्रीहरिके अनेक अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन

मुनियोंने कहा—मुनिश्रेष्ठ! आपने श्रीकृष्ण और बलरामका कैसा अद्भुत माहात्म्य बतलाया! उनकी महिमा अलौकिक है। इस पृथ्वीपर भगवान्‌के माहात्म्यकी चर्चा अत्यन्त दुर्लभ है। महाभाग! आपके मुखसे भगवत्कथा सुनते-सुनते हमें तृप्ति नहीं होती, अतः उनकी लीलाओंका पुनः वर्णन कीजिये। हमने साधु पुरुषोंके मुखसे सुना है कि

* जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः। विप्रयोगावसानस्तु संयोगः संचयः क्षयः॥
विज्ञाय न बुधाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये। तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः॥
(२१२। ८९-९०)

पुराणोंमें अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके वाराह अवतारका वर्णन है। ब्रह्मन्! भगवान् नारायणने किस प्रकार वाराह-रूप धारण किया? और किस प्रकार अपनी दंष्ट्रासे एकार्णव-में डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया? सबको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीहरिकी समस्त लीलाओंका हम विस्तारपूर्वक श्रवण करना चाहते हैं।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! तुमलोगोंने मुझपर यह बहुत बड़े प्रश्नका भार रख दिया। मैं यथाशक्ति तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा। भगवान् विष्णुकी लीलाकथाका श्रवण करो। भगवान् विष्णुके प्रभावको सुननेमें जो तुम्हारा मन लगा है, यह बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है। अतः श्रीविष्णुकी जो-जो लीलाएँ हैं, उन सबका वर्णन सुनो। वेदवेत्ता ब्राह्मण जिन्हें सहस्रमुख, सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, सहस्रशिरा, सहस्रकर, अविनाशी देव, सहस्रजिह्व, भास्वान्, सहस्रमुकुट, प्रभु, सहस्र-दाता, सहस्रादि, सहस्रबाहु, हवन, सवन, होता, हव्य, यज्ञपात्र, पवित्रक, वेदी, दीक्षा, समिधा, स्रुवा, स्रुक्, सोम, सूप, मूसल, प्रोक्षणी, दक्षिणायन, अध्वर्यु, सामग ब्राह्मण, सदस्य, सदन, सभा, यूप, चक्र, ध्रुवा, दर्वी, चरु, उलूखल, प्राग्वंश, यज्ञभूमि, छोटे-बड़े चराचर जीव, प्रायश्चित्त, अर्घ्य, स्थण्डिल, कुश, मन्त्र, यज्ञको वहन करनेवाले अग्निदेव, यज्ञभाग, भागवाहक, अग्राशनभोजी, सोमभोक्ता, हुतार्चि, उदायुध तथा यज्ञमें सनातन प्रभु कहते हैं, उन श्रीवत्सचिह्न-विभूषित देवेश्वर भगवान् विष्णुके सहस्रों अवतार हो चुके हैं और समय-समयपर होते रहते हैं। उनका जो वाराह अवतार है, वह वेदप्रधान यज्ञस्वरूप है। चारों वेद उनके चरण और यूप उनकी दाढ़ें हैं। यज्ञ दाँत और चितियाँ मुख हैं। साक्षात् अग्नि ही उनकी जिह्वा, कुश रोमावलि और ब्रह्म मस्तक है। उनका तप महान् है। दिन और रात्रि उनके नेत्र हैं। वे दिव्यस्वरूप हैं। वेद उनका अङ्ग और श्रुतियाँ आभूषण हैं। हविष्य नासिका, स्रुवा थूथुन और सामवेदका गम्भीर घोष ही उनका स्वर है। वे सत्य धर्म-स्वरूप, श्रीसम्पन्न तथा क्रम (गति) और विक्रम (पराक्रम) के द्वारा सम्मानित हैं। प्रायश्चित्त उनके नख, पशु उनके घुटने तथा यज्ञ उनका स्वरूप है। उद्गाता अन्त्र (आँत), होम लिङ्ग, ओषधि एवं महान् फल बीज हैं। वादी अन्त-रात्मा, मन्त्र नितम्ब और सोमरस उनका रक्त है। वेदी कंधा, हविष्य गन्ध तथा हव्य और गव्य उनका प्रचण्ड वेग हैं। प्राग्वंश (यजमान-गृह) उनका शरीर है। वे परम कान्तिमान् और नाना प्रकारकी दीक्षाओंसे सम्पन्न हैं। दक्षिणा उनका हृदय है। वे महान् योगी और महायज्ञमय हैं। उपाकर्म (वेदोंका स्वाध्याय) उनका हार और प्रवर्ग्य (एक प्रकारकी होमाग्नि) उनका आभूषण है। नाना प्रकारके छन्द उनके चलनेके मार्ग हैं। गूढ़ उपनिषद् उनके बैठनेके लिये आसन हैं। पृथ्वीकी छायारूपा पत्नी सदा उनके साथ रहती हैं, वे मणिमय शिखरकी भाँति पानीके ऊपर प्रकट हुए। समुद्र, पर्वत, वन और काननोंसहित समस्त पृथ्वी एकार्णवके जलमें डूबी थी। सम्पूर्ण जगत्के आदि कारण और सहस्रों मस्तकोंवाले भगवान्ने वाराहरूपमें प्रकट होकर एकार्णवमें प्रवेश किया तथा सब लोकोंका हित करनेकी इच्छासे पृथ्वीको अपनी दाढ़पर उठा लिया। इस प्रकार समस्त जीवोंके हितैषी भगवान् यज्ञवाराहने समुद्र-जलको धारण करनेवाली समूची पृथ्वीका उद्धार किया।

द्विजवरो! यह वाराह-अवतारका वर्णन हुआ। उसके बाद भगवान्का नरसिंह-अवतार हुआ। उस अवतारमें भगवान्ने नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु नामक दैत्य-का वध किया था। प्राचीन कालके सत्ययुगकी बात है,



दैत्योंके आदिपुरुष देवशत्रु बलाभिमानी हिरण्यकशिपुने बड़ी

भारी तपस्या की । वह साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक शम-दम तथा ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ मौनव्रत लेकर जप और उपवासमें संलग्न रहा । उसकी तपस्या और नियम-पालनसे स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने हंससे जुड़े हुए सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा स्वयं आकर दैत्यको वरदान दिया । उनके साथ आदित्य, वसु, मरुद्गण, देवता, रुद्रगण और विश्वेदेव भी थे । ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ चराचर-गुरु ब्रह्माजीने उस दैत्यसे कहा—'सुव्रत ! तुम मेरे भक्त हो । मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । तुम कोई वर माँगो और उसके द्वारा अभीष्ट वस्तु प्राप्त करो ।'

हिरण्यकशिपु बोला—लोकपितामह ! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस मुझे मार न सकें । तपस्वी ऋषि भी क्रोधमें आकर मुझे शाप न दें । किसी अस्त्र या शस्त्रसे, वृक्ष या पर्वतसे, अथवा सूखी या गीली वस्तुसे, ऊपर या नीचे—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो । जो मेरे सेवक, सेना और वाहनोंसहित मुझे एक ही थप्पड़से मार डालनेमें समर्थ हो, उसीके हाथसे मेरी मृत्यु हो ।

ब्रह्माजीने कहा—तात ! ये दिव्य और अद्भुत वर मैंने तुम्हें दिये । इन सम्पूर्ण अभीष्टोंको तुम निःसन्देह प्राप्त करोगे ।

यों कहकर पितामह ब्रह्माजी ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित वैराज-पद—ब्रह्मधामको चले गये । तदनन्तर उस वरदानकी बात सुनकर देवता, नाग, गन्धर्व और मनुष्य ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले—'भगवन् ! इस वरदानसे तो वह असुर हमलोगोंको सदा ही कष्ट पहुँचाता रहेगा, अतः हमारे ऊपर प्रसन्न हो उसके वधका भी उपाय सोचिये ।'

ब्रह्माजीने कहा—देवताओ ! उसे अपनी तपस्याका फल अवश्य प्राप्त होगा । उसका भोग समाप्त होनेपर वह साक्षात् भगवान् विष्णुके हाथसे मारा जायगा ।

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर सब देवता प्रसन्न हो अपने-अपने दिव्य स्थानोंको चले गये । वर पाते ही दैत्यराज हिरण्यकशिपु अभिमानमें आकर समस्त प्रजाको कष्ट देने लगा । आश्रममें रहनेवाले सत्यधर्मपरायण, जितेन्द्रिय एवं उत्तम व्रतधारी महाभाग मुनियोंको भी उसने सताना आरम्भ कर दिया । स्वर्गके देवताओंको हराकर तीनों लोकोंको अपने अधीन करके वह महाबली असुर स्वयं ही स्वर्गमें रहने लगा । वरदानके मदसे उन्मत्त होकर पृथ्वीपर विचरते हुए उस दानवने दैत्योंको तो यज्ञका भागी बनाया और देवताओंको उससे वञ्चित कर दिया । तब आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव और मरुद्गण शरणागतरक्षक सनातन प्रभु महाबली भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और इस प्रकार बोले—'देवेश्वर ! आप हिरण्यकशिपुके भयसे हमारी रक्षा करें । आप ही हमारे परम देवता, परम गुरु और परम विधाता हैं । सुरश्रेष्ठ ! आप ब्रह्मा आदि देवताओंके भी पालक हैं । आपके नेत्र विकसित कमलदलके समान शोभा पाते हैं । आप शत्रुपक्षका नाश करनेवाले हैं । भगवन् ! हमें शरण दीजिये और दैत्योंका संहार कीजिये ।'

भगवान् वासुदेवने कहा—देवताओ ! भय छोड़ो । मैं तुम्हें अभय देता हूँ । तुम शीघ्र ही पहलेकी भाँति स्वर्ग-लोकको प्राप्त करोगे । मैं वरदानसे उन्मत्त दानवराज हिरण्यकशिपुको, जो देवेश्वरोंके लिये अवध्य हो रहा है, उसके सेवकगणोंसहित मार डालूँगा ।

यों कहकर भगवान् उन देवेश्वरोंको विदा करके स्वयं हिरण्यकशिपुके स्थानपर आये । उस समय उन्होंने आधा शरीर मनुष्यका और आधा सिंहका बना रक्खा था । इस प्रकार नृसिंहदेह धारण किये हाथमें हाथ मिलाये हुए आये । उनके शरीरका वर्ण मेघके समान श्याम था । शब्द भी मेघकी गर्जनाके समान ही गम्भीर था । ओज और वेगमें भी वे मेघके ही सदृश थे । मतवाले सिंहके समान उनकी चाल थी । यद्यपि हिरण्यकशिपु बलाभिमानी दैत्योंसे सुरक्षित और अत्यन्त बलशाली था, तो भी भगवान्ने उसे एक ही थप्पड़से मारकर यमलोक पहुँचा दिया ।

यह नृसिंह-अवतारकी कथा कही गयी । अब वामन-अवतारका वर्णन सुनो । भगवान्का वामनरूप दैत्योंका विनाश करनेवाला था । उस रूपको धारणकर श्रीहरि बलवान् बलिके यज्ञमें गये और वहाँ उन्होंने अपने तीन ही पगोंसे त्रिलोकीको नापकर सम्पूर्ण दैत्योंको क्षुब्ध कर डाला । बलिके हाथसे समूची पृथ्वी लेकर भगवान्ने इन्द्रको दे दी । यही महात्मा श्रीविष्णुका वामन अवतार है । वेदवेत्ता ब्राह्मण भगवान् वामनके यशका सदा गान करते हैं ।

तदनन्तर भगवान् विष्णुने दत्तात्रेय नामक अवतार धारण किया । दत्तात्रेयजीमें क्षमाकी पराकाष्ठा थी । उस समय वेद, वेदोंकी प्रक्रिया और यज्ञ—सभी नष्टप्राय हो गये थे । चारों वर्णोंमें संकरता आ गयी थी । धर्म शिथिल हो चला था । अधर्म

बड़े जोरोंके साथ बढ़ रहा था। सत्य मिटता जाता था और सब ओर असत्यका बोलबाला था। प्रजा क्षीण हो रही थी और धर्म पाखण्डमिश्रित हो गया था। ऐसे समयमें भगवान् दत्तात्रेयने यज्ञों तथा क्रियाओंसहित वेदोंका पुनरुद्धार किया और चारों वर्णोंको पृथक्-पृथक् करके उन्हें व्यवस्थितरूप दिया। दत्तात्रेयजी परम बुद्धिमान् और वरदायक थे; उन्होंने हैहयराज कार्तवीर्यको यह वर दिया था कि 'राजन्! तुम्हारी ये दो भुजाएँ मेरी कृपासे एक हजार हो जायँगी। वसुधापते! तुम सम्पूर्ण वसुधाका पालन करोगे। जिस समय तुम युद्धमें खड़े होगे, तुम्हारे शत्रु तुम्हें आँख उठाकर देख भी नहीं सकेंगे—तुम उनके लिये अजेय हो जाओगे।'

यह श्रीविष्णुके दत्तात्रेयावतारकी चर्चा की गयी। इसके बाद भगवान्ने परशुरामावतार ग्रहण किया। राजा



कार्तवीर्य अर्जुन अपनी सहस्र भुजाओंके कारण युद्धमें शत्रुओंके लिये दुर्जय था, तो भी परशुरामजीने उसे सेनाके बीचमें मार डाला। राजा अर्जुन रथपर बैठा था, किंतु परशुरामजीने उसे धरतीपर गिरा दिया और छातीपर चढ़कर तीखे फरसेके द्वारा उसकी हजारों भुजाएँ काट डालीं। उस समय कार्तवीर्य बड़े जोर-जोरसे चीखता, चिल्लाता रहा। उन्होंने मेरुगिरिसे विभूषित समस्त पृथ्वीपर करोड़ों क्षत्रियोंकी लाशें बिछा दीं, इक्कीस बार भूतलको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया और अपने समस्त पापोंका नाश करनेके लिये उन्होंने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें भृगुनन्दन परशुरामने कश्यपजीको सारी पृथ्वी दक्षिणारूपमें दे दी। साथ ही बहुत-से हाथी, घोड़े, सुन्दर रथ और गौएँ भी दान कीं। आज भी वे विश्वका कल्याण करनेके लिये घोर तपस्या करते हुए महेन्द्र पर्वतपर निवास करते हैं।

यह सनातन परमात्मा श्रीहरिके परशुरामावतारका परिचय दिया गया। चौबीसवें त्रेतायुगमें भगवान्ने दशरथनन्दन कमलनयन श्रीरामके रूपमें अवतार लिया। भगवान् विष्णु उस समय चार रूपोंमें प्रकट हुए थे। उनका तेज सूर्यके समान था। वे लोकमें श्रीरामके नामसे विख्यात हुए और विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये उनके पीछे-पीछे गये। महायशस्वी श्रीराम सब लोगोंको प्रसन्न रखने, राक्षसोंको मारने और धर्मकी वृद्धि करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। कहते हैं, राजा श्रीराम सदा सब भूतोंका हित करनेके लिये तत्पर रहते थे। वे सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता थे। उन्होंने लक्ष्मणको साथ ले चौदह वर्षोंतक वनमें निवास किया था। उनके साथ उनकी पत्नी सीता भी गयी थीं, जो मूर्तिमती लक्ष्मी थीं। जनस्थानमें निवास करते हुए श्रीरामने देवताओंके अनेक कार्य सिद्ध किये। उन्होंने रावणके द्वारा अपहृत सीताका पता लगाकर उन्हें प्राप्त किया और रावणका वध किया। पुलस्त्यवंशी राक्षसराज रावण देवता, असुर, यक्ष, राक्षस और नागोंके लिये भी अवध्य था। युद्धमें उसको जीतना बहुत ही कठिन था। उसका शरीर कज्जलराशिके समान काला था। उसे कोटि-कोटि राक्षस सदा घेरे रहते थे। वह तीनों लोकोंको मार भगानेवाला, क्रूर, दुर्जय, दुर्धर, गर्वयुक्त, सिंहके समान पराक्रमी और वरदानसे उन्मत्त था। देवताओंके लिये तो उसकी ओर देखना भी कठिन था। ऐसे रावणको भगवान् श्रीरामने सेना और सचिवोंसहित संग्राममें मार डाला। इसके पहले उन्होंने और भी कई अलौकिक कर्म किये थे। अपने मित्र सुग्रीवके लिये उन्होंने महाबली वानरराज वालीको मारा और सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यपर अभिषिक्त किया। मधुका पुत्र लवण नामका दानव मधुवनमें रहता था। वह वीर तो था ही, वर पाकर मतवाला हो उठा था। उसे भगवान्ने शत्रुघ्नके रूपमें जाकर मारा। मारीच और सुबाहु नामक दो बलवान् राक्षस थे, जो शुद्ध

अन्तःकरणवाले मुनियोंके यज्ञोंमें विघ्न डाला करते थे। उनको और उनके साथी अन्य राक्षसोंको भी युद्धकुशल महात्मा श्रीरामने मार गिराया। विराध और कबन्ध दो बड़े भयंकर राक्षस थे । वे पूर्वजन्ममें गन्धर्व थे, किन्तु शापसे मोहित होकर राक्षसभावको प्राप्त हुए थे। उन्हें भी नरश्रेष्ठ श्रीरामने मारकर शापमुक्त कर दिया। श्रीरामके बाण अग्नि, सूर्यकिरण और विद्युत्के समान तेजस्वी, तपाये हुए स्वर्णसे युक्त विचित्र पंखोंसे सुशोभित तथा महेन्द्र-वज्रके सदृश सारयुक्त थे । उन्हींके द्वारा उन्होंने युद्धमें शत्रुओंका नाश किया । परम बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रने देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष दैत्योंका वध करनेके लिये श्रीरघुनाथजीको अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये थे। पूर्वकालमें, जब कि महात्मा राजा जनकके यहाँ यज्ञ हो रहा था, श्रीरामने खेलमें ही महेश्वरके धनुषको तोड़ डाला था। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरघुनाथजीने ये सब अलौकिक कर्म करके दस अश्वमेध-यज्ञ भी किये थे, जो बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हुए थे। श्रीरामचन्द्रजीके राज्य करते समय कभी अमङ्गल-की बात नहीं सुनी गयी। हवा तेज नहीं चलती थी। कोई किसीका धन नहीं चुराता था। न कभी विधवाओंके विलाप सुने जाते और न अनर्थकी ही प्राप्ति होती थी। उस समय सब कुछ शुभ-ही-शुभ होता था। प्राणियोंको जल, अग्नि अथवा आँधीसे कभी भय नहीं होता था। बूढ़ोंको बालकोंकी प्रेतक्रिया नहीं करनी पड़ती थी। क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी परिचर्या करते थे । वैश्य क्षत्रियोंके प्रति श्रद्धा रखते थे और शूद्र अहंकार छोड़कर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे । श्रीरामके राज्यमें स्त्रियाँ अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें आसक्त नहीं होती थीं और पुरुष भी अपनी पत्नीको छोड़ किसी दूसरी स्त्रीपर कुदृष्टि नहीं डालते थे। उस समय सारा जगत् जितेन्द्रिय था। पृथ्वीपर डाकुओंका कहीं नाम भी नहीं था। एकमात्र श्रीराम ही सबके स्वामी और संरक्षक थे। उनके शासनकालमें मनुष्य हजारों वर्ष जीवित रहते और वे सहस्रों पुत्रोंके पिता होते थे। किसी भी प्राणीको रोग नहीं सताता था। रामराज्यमें इस भूतलपर देवता, ऋषि और मनुष्य एक साथ एकत्रित होते थे। पुराणवेत्ता पुरुष इस विषयमें एक गाथा कहा करते हैं—"श्रीरघुनाथजीका वर्ण श्याम और अवस्था युवा है; उनके नेत्र कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए हैं; मुखसे तेज बरसता रहता है; वे बहुत कम बोलते हैं। उनकी लंबी भुजाएँ घुटनोंतक पहुँचती हैं। उनका मुख बड़ा सुन्दर है। कंधे सिंहके सदृश हैं। महाबाहु श्रीरामने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके राज्यमें सदा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदका घोष सुनायी देता था। धनुषकी टंकार भी सर्वदा कानोंमें आती रहती थी। 'दान करो और स्वयं भी भोगो'का उपदेश कभी बंद नहीं होता था। दशरथनन्दन श्रीराम सत्त्ववान् और गुणवान् होनेके साथ ही सदा अपने तेजसे देदीप्यमान रहते थे। उनकी सूर्य और चन्द्रमासे भी अधिक शोभा होती थी।"*

यह श्रीरामावतारका वर्णन हुआ। इसके बाद श्रीहरिका अवतार मथुरामें हुआ था। वह श्रीकृष्णके नामसे विख्यात हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त संसारका हित करनेके लिये



* .... । श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः ॥
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः । दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥
ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः । अव्युच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति ॥
सत्त्ववान् गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । अति चन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ ॥ (२१३ । १५३--१५६)

अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने मानव-शरीर धारण करके शाल्व, शिशुपाल, कंस, द्विविद, अरिष्ट, वृषभ, केशी, दैत्यकन्या पूतना, कुवलयापीड़ हाथी तथा चाणूर और मुष्टिक नामके मल्लोंका वध किया। अद्भुत कर्म करनेवाले बाणासुरकी हजार भुजाएँ काट डालीं। युद्धमें नरकासुरका संहार किया और महाबली कालयवनको भी भस्म करा दिया। भगवान्‌ने अपने तेजसे दुष्ट दुराचारी राजाओंके समस्त रत्न हर लिये और उन्हें मौतके घाट उतार दिया। यह अवतार सम्पूर्ण लोकोंका हित-साधन करनेके लिये हुआ था।

इसके बाद विष्णुयशा नामसे प्रसिद्ध कल्कि-अवतार होनेवाला है। भगवान् कल्कि शम्भल नामक गाँवमें अवतीर्ण होंगे। उनके अवतारका उद्देश्य भी सब लोकोंका हित करना ही है। ये तथा और भी अनेक दिव्य अवतार हैं, जो पुराणोंमें ब्रह्मवादी पुरुषोंद्वारा वर्णित हैं। भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन करनेमें देवता भी मोहित हो जाते हैं। पुराण वेदोंकी श्रुतियोंद्वारा समर्थित हैं। इस प्रकार यह अवतार-कथा संक्षेपसे कही गयी। जो सम्पूर्ण लोकोंके गुरु और सदा कीर्तन करनेयोग्य हैं, उन भगवान् विष्णुके अवतारोंका वर्णन किया गया। इसके कीर्तनसे पितरोंको प्रसन्नता होती है। जो हाथ जोड़कर अमितपराक्रमी श्रीविष्णुके अवतारकी कथा सुनता है, उसके पितर भी अत्यन्त तृप्त होते हैं। योगेश्वर भगवान् श्रीहरिकी योगमायाका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और भगवान्‌की कृपासे शीघ्र ही उसे ऋद्धि, समृद्धि तथा प्रचुर भोगोंकी प्राप्ति होती है। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने अमिततेजस्वी श्रीहरिके सर्वपापहारी पवित्र अवतारोंका वर्णन किया।

यमलोकके मार्ग और चारों द्वारोंका वर्णन

मुनि बोले—ब्रह्मन्! आपके मुखसे निकले हुए पुण्य-धर्ममय वचनामृतोंसे हमें तृप्ति नहीं होती, अपितु अधिकाधिक सुननेकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। मुने! आप परम बुद्धिमान् हैं और प्राणियोंकी उत्पत्ति, लय और कर्मगतिको जानते हैं; इसलिये हम आपसे और भी प्रश्न करते हैं। सुननेमें आता है कि यमलोकका मार्ग बड़ा दुर्गम है। वह सदा दुःख और क्लेश देनेवाला है तथा समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर है। उस मार्गकी लंबाई कितनी है? तथा मनुष्य उस मार्गसे यमलोककी यात्रा किस प्रकार करते हैं? मुने! कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे नरकके दुःखोंकी प्राप्ति न हो?

व्यासजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिवरो! सुनो। यह संसारचक्र प्रवाहरूपसे निरन्तर चलता रहता है। अब मैं प्राणियोंकी मृत्युसे लेकर आगे जो अवस्था होती है, उसका वर्णन करूँगा। इसी प्रसङ्गमें यमलोकके मार्गका भी निर्णय किया जायगा। यमलोक और मनुष्यलोकमें छियासी हजार योजनोंका अन्तर है। उसका मार्ग तपाये हुए ताँबेकी भाँति पूर्ण तप्त रहता है। प्रत्येक जीवको यमलोकके मार्गसे जाना पड़ता है। पुण्यात्मा पुरुष पुण्यलोकोंमें और नीच पापाचारी मानव पापमय लोकोंमें जाते हैं। यमलोकमें बाईस नरक हैं, जिनके भीतर पापी मनुष्योंको पृथक्-पृथक् यातनाएँ दी जाती हैं। उन नरकोंके नाम ये हैं—नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमोहन, कीटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, पीब बहानेवाली नदी, रक्त बहानेवाली नदी, जल बहानेवाली नदी, अग्निज्वाल, महारौद्र, संदंश, शुनभोजन, घोर वैतरणी और असिपत्रवन। यमलोकके मार्गमें न तो कहीं वृक्षकी छाया है न तालाब और पोखरे हैं, न बावड़ी न पुष्करिणी है, न कूप हैं न पौंसले हैं, न धर्मशाला है न मण्डप है, न घर है न नदी एवं पर्वत हैं और न ठहरनेके योग्य कोई स्थान ही है, जहाँ अत्यन्त कष्टमें पड़ा हुआ थका-माँदा जीव विश्राम कर सके। उस महान् पथपर सब पापियोंको निश्चय ही जाना पड़ता है। जीवकी यहाँ जितनी आयु नियत है, उसका भोग पूरा हो जानेपर इच्छा न रहते हुए भी उसे प्राणोंका त्याग करना पड़ता है। जल, अग्नि, विष, क्षुधा, रोग अथवा पर्वतसे गिरने आदि किसी भी निमित्तको लेकर देहधारी जीवकी मृत्यु होती है। पाँच भूतोंसे बने हुए इस विशाल शरीरको छोड़कर जीव अपने कर्मानुसार यातना भोगनेके योग्य दूसरा शरीर धारण करता है। उसे सुख और दुःख भोगनेके लिये सुदृढ़ शरीरकी प्राप्ति होती है। पापाचारी मनुष्य उसी देहसे अत्यन्त कष्ट भोगता है और धर्मात्मा मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक सुखका भागी होता है।

शरीरमें जो गर्मी या पित्त है, वह तीव्र वायुसे प्रेरित होकर जब अत्यन्त कुपित हो जाता है, उस समय बिना

ईंधनके ही उद्दीप्त हुई अग्निकी भाँति बढ़कर मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर देता है। तत्पश्चात् उदान नामक वायु ऊपरकी ओर उठता है और खाये-पीये हुए अन्न-जलको नीचेकी ओर जानेसे रोक देता है। उस आपत्तिकी अवस्थामें भी उसीको प्रसन्नता रहती है, जिसने पहले जल, अन्न एवं रसका दान किया है। जिस पुरुषने श्रद्धासे पवित्र किये हुए अन्तःकरणके द्वारा पहले अन्न-दान किया है, वह उस रुग्णावस्थामें अन्नके बिना भी तृप्तिलाभ करता है। जिसने कभी मिथ्याभाषण नहीं किया, दो प्रेमियोंके पारस्परिक प्रेममें बाधा नहीं डाली तथा जो आस्तिक और श्रद्धालु है, वह सुखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है। जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहते, किसीकी निन्दा नहीं करते तथा सात्त्विक, उदार और लज्जाशील होते हैं, ऐसे मनुष्योंको मृत्युके समय कष्ट नहीं होता। जो कामनासे, क्रोधसे अथवा द्वेषके कारण धर्मका त्याग नहीं करता, शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाला तथा सौम्य होता है, उसकी मृत्यु भी सुखसे होती है। जिन्होंने कभी जलका दान नहीं किया है, उन मनुष्योंको मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अधिक जलन होती है तथा अन्नदान न करनेवालोंको उस समय भूखका भारी कष्ट भोगना पड़ता है। जो लोग जाड़ेके दिनोंमें लकड़ी दान करते हैं, वे शीतके कष्टको जीत लेते हैं। जो चन्दन दान करते हैं, वे तापपर विजय पाते हैं तथा जो किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाते, वे मृत्युकालमें प्राणघातिनी क्लेशमय वेदनाका अनुभव नहीं करते। ज्ञानदाता पुरुष मोहपर और दीपदान करनेवाले अन्धकारपर विजय पाते हैं। जो झूठी गवाही देते, झूठ बोलते, अधर्मका उपदेश देते और वेदोंकी निन्दा करते हैं, वे सब लोग मूर्च्छाग्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त होते हैं।

ऐसे लोगोंकी मृत्युके समय यमराजके दुष्ट दूत हाथोंमें हथौड़ी एवं मुद्गर लिये आते हैं; वे बड़े भयंकर होते हैं और उनकी देहसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन यमदूतोंपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्य काँप उठता है और भ्राता, माता तथा पुत्रोंका नाम लेकर बारंबार चिल्लाने लगता है। उस समय उसकी वाणी स्पष्ट समझमें नहीं आती। एक ही शब्द, एक ही आवाज-सी जान पड़ती है। भयके मारे रोगीकी आँखें घूमने लगती हैं और उसका मुख सूख जाता है। उसकी साँस ऊपरको उठने लगती है। दृष्टिकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है। फिर वह अत्यन्त वेदनासे पीड़ित होकर उस शरीरको छोड़ देता है और वायुके सहारे चलता हुआ वैसे ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है जो रूप, रंग और अवस्थामें पहले शरीरके समान ही होता है। वह शरीर माता-पिताके गर्भसे उत्पन्न नहीं, कर्मजनित होता है और यातना भोगनेके लिये ही मिलता है; उसीसे यातना भोगनी पड़ती है। तदनन्तर यमराजके दूत शीघ्र ही उसे दारुण पाशोंसे बाँध लेते हैं। मृत्युकाल आनेपर जीवको बड़ी वेदना होती है, जिससे वह अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। उस समय सब भूतोंसे उसके शरीरका सम्बन्ध टूट जाता है। प्राणवायु कण्ठतक आ जाती है और जीव शरीरसे निकलते समय जोर-जोरसे रोता है। माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, मित्र और गुरु—सबसे नाता छूट जाता है। सभी सगे-सम्बन्धी नेत्रोंमें आँसू भरे दुखी होकर उसे देखते रह जाते हैं और वह अपने शरीरको त्यागकर यमलोकके मार्गपर वायुरूप होकर चला जाता है।

वह मार्ग अन्धकारपूर्ण, अपार, अत्यन्त भयंकर तथा पापियोंके लिये अत्यन्त दुर्गम होता है। यमदूत पाशोंमें बाँधकर उसे खींचते और मुद्गरोंसे पीटते हुए उस विशाल पथपर ले जाते हैं। यमदूतोंके अनेक रूप होते हैं। वे देखनेमें बड़े डरावने और समस्त प्राणियोंको भय पहुँचानेवाले होते हैं। उनके मुख विकराल, नासिका टेढ़ी, आँखें तीन, ठोड़ी,



कपोल और मुख फैले हुए तथा ओठ लंबे होते हैं। वे अपने हाथोंमें विकराल एवं भयंकर आयुध लिये रहते हैं। उन आयुधोंसे आगकी लपटें निकलती रहती हैं। पाश, साँकल और डंडेसे भय पहुँचानेवाले, महाबली, महाभयंकर यमकिंकर यमराजकी आज्ञासे प्राणियोंकी आयु समाप्त होनेपर उन्हें लेनेके लिये आते हैं। जीव यातना भोगनेके लिये अपने कर्मके अनुसार जो भी शरीर ग्रहण करता है, उसे ही यमराजके दूत यमलोकमें ले जाते हैं। वे उसे कालपाशमें बाँधकर पैरोंमें बेड़ी डाल देते हैं। बेड़ीकी साँकल वज्रके समान कठोर होती है। यमकिंकर क्रोधमें भरकर उस बँधे हुए जीवको भली-भाँति पीटते हुए ले जाते हैं। वह लड़खड़ाकर गिरता है, रोता है और 'हाय बाप! हाय मैया! हाय पुत्र!' कहकर बारंबार चीखता-चिल्लाता है; तो भी दूषित कर्मवाले उस पापीको वे तीखे शूलों, मुद्गरों, खड्ग और शक्तिके प्रहारों और वज्रमय भयंकर डंडोंसे घायल करके जोर-जोरसे डाँटते हैं। कभी-कभी तो एक-एक पापीको अनेक यमदूत चारों ओरसे घेरकर पीटते हैं। बेचारा जीव दुःखसे पीड़ित हो मूर्च्छित होकर इधर-उधर गिर पड़ता है; तथापि वे दूत उसे घसीटकर ले जाते हैं। कहीं भयभीत होते, कहीं त्रास पाते, कहीं लड़खड़ाते और कहीं दुःखसे करुण क्रन्दन करते हुए जीवोंको उस मार्गसे जाना पड़ता है। यमदूतोंकी फटकार पड़नेसे वे उद्विग्न हो उठते हैं और भयसे विह्वल हो काँपते हुए शरीरसे दौड़ने लगते हैं। मार्गपर कहीं काँटे बिछे होते हैं और कुछ दूरतक तपी हुई बालू मिलती है।

जिन मनुष्योंने दान नहीं किया है, वे उस मार्गपर जलते हुए पैरोंसे चलते हैं। जीवहिंसक मनुष्यके सब ओर मरे हुए बकरोंकी लाशें पड़ी होती हैं, जिनकी जली और फटी हुई चमड़ीसे मेदे और रक्तकी दुर्गन्ध आती रहती है। वे वेदनासे पीड़ित हो जोर-जोरसे चीखते-चिल्लाते हुए यममार्गकी यात्रा करते हैं। शक्ति, भिन्दिपाल, खड्ग, तोमर, बाण और तीखी नोकवाले शूलोंसे उनका अङ्ग-अङ्ग विदीर्ण कर दिया जाता है। कुत्ते, बाघ, भेड़िये और कौए उनके शरीरका मांस नोच-नोचकर खाते रहते हैं। मांस खानेवाले लोग उस मार्गपर चलते समय आरेसे चीरे जाते हैं, सूअर अपनी दाढ़ोंसे उनके शरीरको विदीर्ण कर देते हैं।

जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले स्वामी, मित्र अथवा स्त्रीकी हत्या कराता है, वे शस्त्रोंद्वारा छिन्न-भिन्न और व्याकुल होकर यमलोकके मार्गपर जाते हैं। जो निरपराध जीवोंको मारते और मरवाते हैं, वे राक्षसोंके ग्रास बनकर उस पथसे यात्रा करते हैं। जो परायी स्त्रियोंके वस्त्र उतारते हैं, वे मरनेपर नंगे करके दौड़ते हुए यमलोकमें लाये जाते हैं। जो दुरात्मा पापाचारी अन्न, वस्त्र, सोने, घर और खेतका अपहरण करते हैं, उन्हें यमलोकके मार्गपर पत्थरों, लाठियों और डंडोंसे मारकर जर्जर कर दिया जाता है और वे अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गसे प्रचुर रक्त बहाते हुए यमलोकमें जाते हैं। जो नराधम नरककी परवा न करके इस लोकमें ब्राह्मणका धन हड़प लेते, उन्हें मारते और गालियाँ सुनाते हैं, उन्हें सूखे काठमें बाँधकर उनकी आँखें फोड़ दी जाती और नाक-कान काट लिये जाते हैं। फिर उनके शरीरमें पीब और रक्त पोत दिये जाते हैं तथा कालके समान गीध और गीदड़ उन्हें नोच-नोचकर खाने लगते हैं। इस दशामें भी क्रोधमें भरे हुए भयानक यमदूत उन्हें पीटते हैं और वे चिल्लाते हुए यमलोकके पथपर अग्रसर होते हैं।

इस प्रकार वह मार्ग बड़ा ही दुर्गम और अग्निके समान प्रज्वलित है। उसे रौरव (जीवोंको रुलानेवाला) कहा गया है। वह नीची-ऊँची भूमिसे युक्त होनेके कारण मानवमात्रके लिये अगम्य है। तपाये हुए ताँबेकी भाँति उसका वर्ण है। वहाँ आगकी चिनगारियाँ और लपटें दिखायी देती हैं। वह मार्ग कण्टकोंसे भरा है। शक्ति और वज्र आदि आयुधोंसे व्याप्त है। ऐसे कष्टप्रद मार्गपर निर्दयी यमदूत जीवको घसीटते हुए ले जाते हैं और उन्हें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे मारते रहते हैं। इस तरह पापासक्त अन्यायी मनुष्य विवश होकर मार खाते हुए दुर्धर्ष यमदूतोंके द्वारा यमलोकमें ले जाये जाते हैं। यमराजके सेवक सभी पापियोंको उस दुर्गम मार्गमें अवहेलनापूर्वक ले जाते हैं। वह अत्यन्त भयंकर मार्ग जब समाप्त हो जाता है, तब यमदूत पापी जीवको ताँबे और लोहेकी बनी हुई भयंकर यमपुरीमें प्रवेश कराते हैं।

वह पुरी बहुत विशाल है, उसका विस्तार लाख योजनका है। वह चौकोर बतायी जाती है। उसके चार सुन्दर दरवाजे हैं। उसकी चहारदीवारी सोनेकी बनी है, जो दस हजार योजन ऊँची है। यमपुरीका पूर्वद्वार बहुत ही सुन्दर है। वहाँ फहराती हुई सैकड़ों पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। हीरे, नीलम, पुखराज और मोतियोंसे वह द्वार सजाया जाता है। वहाँ गन्धर्वों और अप्सराओंके गीत और नृत्य होते रहते हैं। उस द्वारसे देवताओं, ऋषियों, योगियों, गन्धर्वों, सिद्धों, यक्षों और विद्याधरोंका प्रवेश होता है। उस नगरका उत्तर-

द्वार घण्टा, छत्र, चँवर तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत है। वहाँ वीणा और वेणुकी मनोहर ध्वनि गूँजती रहती है। गीत, मङ्गलगान तथा ऋग्वेद आदिके सुमधुर शब्द होते रहते हैं। वहाँ महर्षियोंका समुदाय शोभा पाता है। उस द्वारसे उन्हीं पुण्यात्माओंका प्रवेश होता है, जो धर्मज्ञ और सत्यवादी हैं। जिन्होंने गर्मीमें दूसरोंको जल पिलाया और सर्दीमें अग्निका सेवन कराया है, जो थके-माँदे मनुष्योंकी सेवा करते और सदा प्रिय वचन बोलते हैं, जो दाता, शूर और माता-पिताके भक्त हैं तथा जिन्होंने ब्राह्मणोंकी सेवा और अतिथियोंका पूजन किया है, वे भी उत्तरद्वारसे ही पुरीमें प्रवेश करते हैं।

यमपुरीका पश्चिम महाद्वार भाँति-भाँतिके रत्नोंसे विभूषित है। विचित्र-विचित्र मणियोंकी वहाँ सीढ़ियाँ बनी हैं। देवता उस द्वारकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। वहाँ भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनि हुआ करती है। सिद्धोंके समुदाय सदा हर्षमें भरकर उस द्वारपर मङ्गल-गान करते हैं। जो मनुष्य भगवान् शिवकी भक्तिमें संलग्न रहते हैं, जो सब तीर्थोंमें गोते लगा चुके हैं, जिन्होंने पञ्चाग्निका सेवन किया है, जो किसी उत्तम तीर्थस्थानमें अथवा कालिञ्जर पर्वतपर प्राण-त्याग करते हैं और जो स्वामी, मित्र अथवा जगत्‌का कल्याण करनेके लिये ए॰ गौओंकी रक्षाके लिये मारे गये हैं, वे शूर-वीर और तपस्वी पुरुष पश्चिमद्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं। उस पुरीका दक्षिणद्वार अत्यन्त भयानक है। वह सम्पूर्ण जीवोंके मनमें भय उपजानेवाला है। वहाँ निरन्तर हाहाकार मचा रहता है। सदा अँधेरा छाया रहता है। उस द्वारपर तीखे सींग, काँटे, बिच्छू, साँप, वज्रमुख कीट, भेड़िये, व्याघ्र, रीछ, सिंह, गीदड़, कुत्ते, बिलाव और गीध उपस्थित रहते हैं। उनके मुखोंसे आगकी लपटें निकला करती हैं। जो सदा सबका अपकार करनेवाले पापात्मा हैं, उन्हींका उस मार्गसे पुरीमें प्रवेश होता है। जो ब्राह्मण, गौ, बालक, वृद्ध, रोगी, शरणागत, विश्वासी, स्त्री, मित्र और निहत्थे मनुष्यकी हत्या कराते हैं, अगम्या स्त्रीके साथ सम्भोग करते हैं, दूसरोंके धनका अपहरण करते हैं, धरोहर हड़प लेते हैं, दूसरोंको जहर देते और उनके घरोंमें आग लगाते हैं, परायी भूमि, गृह, शय्या, वस्त्र और आभूषणकी चोरी करते हैं, दूसरोंके छिद्र देखकर उनके प्रति क्रूरताका बर्ताव करते हैं, सदा झूठ बोलते हैं, ग्राम, नगर तथा राष्ट्रको महान् दुःख देते हैं, झूठी गवाही देते, कन्या बेचते, अभक्ष्य भक्षण करते, पुत्री और पुत्रवधूके साथ समागम करते, माता-पिताको कटुवचन सुनाते तथा अन्यान्य प्रकारके महापातकोंमें संलग्न रहते हैं, वे सब दक्षिण द्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं।*



यमलोकके दक्षिणद्वार तथा नरकोंका वर्णन

मुनियोंने पूछा—तपोधन! पापी मनुष्य दक्षिण-मार्गसे यमपुरीमें किस प्रकार प्रवेश करते हैं? यह हम सुनना चाहते हैं। आप विस्तारपूर्वक बतलाइये।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! दक्षिणद्वार अत्यन्त घोर और महाभयंकर है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। वहाँ सदा नाना प्रकारके हिंस्र जन्तुओं और गीदड़ियोंके शब्द होते रहते हैं। वहाँ दूसरोंका पहुँचना असम्भव है। उसे देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच और राक्षसोंसे यह द्वार सदा ही घिरा रहता है। पापी जीव दूरसे ही उस द्वारको देखकर त्राससे मूर्च्छित हो जाते हैं और विलाप-प्रलाप करने लगते हैं। तब यमदूत उन्हें साँकलोंसे बाँधकर घसीटते और निर्भय होकर डंडोंसे पीटते हैं। साथ ही डाँटते-फटकारते भी रहते हैं। होशमें आनेपर वे खूनसे लथपथ हो पग-पगपर लड़खड़ाते हुए दक्षिणद्वारको जाते हैं। मार्गमें कहीं तीखे काँटे होते हैं और कहीं छूरेकी धारके समान तीक्ष्ण पत्थरोंके टुकड़े बिछे होते हैं। कहीं कीचड़-ही-कीचड़ भरी रहती है और कहीं ऐसे-ऐसे गड्ढे होते हैं, जिनको पार करना असम्भव-सा होता है। कहीं-कहीं लोहेकी सूईके समान कीलें

* ये घातयन्ति विप्रान् गा बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम्॥
येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवह्निप्रदाश्च ये॥
परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्रालङ्कारहारिणः। पररन्ध्रेषु ये क्रूरा ये सदानृतवादिनः॥
ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने महादुःखप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदातारः कन्याविक्रयकारकाः॥
अभक्ष्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पितरं चैव ये वदन्ति च पौरुषम्॥
अन्ये ये चैव निर्दिष्टा महापातककारिणः। दक्षिणेन तु ते सर्वे द्वारेण प्रविशन्ति वै॥
(२१४। १२३—१२८)

गड़ी होती हैं। कहीं वृक्षोंसे भरे हुए पर्वत होते हैं, जो किनारोंपर झरने गिरते रहनेसे दुर्गम प्रतीत होते हैं और कहीं-कहीं तपे हुए अँगारे बिछे होते हैं। ऐसे मार्गसे दुखी होकर पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। कहीं दुर्गम गर्त्त, कहीं चिकने ढेले, कहीं तपायी हुई बालू और कहीं तीखे काँटे होते हैं। कहीं दावानल प्रज्वलित रहता है। कहीं तपी हुई शिला है तो कहीं जमी हुई बर्फ। कहीं इतनी अधिक बालू है कि उस मार्गसे जानेवाला जीव उसमें आकण्ठ डूब जाता है। कहीं दूषित जलसे और कहीं कंडेकी आगसे वह मार्ग भरा रहता है। कहीं सिंह, भेड़िये, बाघ, डाँस और भयानक कीड़े डेरा डाले रहते हैं। कहीं बड़ी-बड़ी जोंकें और अजगर पड़े रहते हैं। भयंकर मक्खियाँ, विषैले साँप और दुष्ट एवं बलोन्मत्त हाथी सताया करते हैं। खुरोंसे मार्गको खोदते हुए तीखे सींगोंवाले बड़े-बड़े साँड़, भैंसे और मतवाले ऊँट सबको कष्ट देते हैं। भयानक डाइनों और भीषण रोगोंसे पीड़ित होकर जीव उस मार्गसे यात्रा करते हैं।

कहीं धूलिमिश्रित प्रचण्ड वायु चलती है, जो पत्थरोंकी वर्षा करके निराश्रय जीवोंको कष्ट पहुँचाती रहती है; कहीं बिजली गिरनेसे शरीर विदीर्ण हो जाता है; कहीं बड़े जोरसे बाणोंकी वर्षा होती है, जिससे सब अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कहीं-कहीं बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर उल्कापात होते रहते हैं और प्रज्वलित अँगारोंकी वर्षा हुआ करती है, जिससे जलते हुए पापी जीव आगे बढ़ते हैं। कभी जोर-जोरसे धूलकी वर्षा होनेके कारण सारा शरीर भर जाता है और जीव रोने लगते हैं। मेघोंकी भयंकर गर्जनासे बारंबार त्रास पहुँचता रहता है। बाण-वर्षासे घायल हुए शरीरपर खारे जलकी धारा गिरायी जाती है और उसकी पीड़ा सहन करते हुए जीव आगे बढ़ते हैं। कहीं-कहीं अत्यन्त शीतल हवा चलनेके कारण अधिक सर्दी पड़ती है तथा कहीं रूखी और कठोर वायुका सामना करना पड़ता है; इससे पापी जीवोंके अङ्ग-अङ्गमें बिवाई फट जाती है। वे सूखने और सिकुड़ने लगते हैं। ऐसे मार्गसे, जहाँ न तो राह-खर्चके लिये कुछ मिल पाता है और न कहीं कोई सहारा ही दिखायी देता है, पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। सब ओर निर्जल और दुर्गम प्रदेश दृष्टिगोचर होता है। बड़े परिश्रमसे पापी जीव यमलोकतक पहुँच पाते हैं। यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले भयंकर यमदूत उन्हें बलपूर्वक ले जाते हैं। वे एकाकी और पराधीन होते हैं। साथमें न कोई मित्र होता है न बन्धु। वे अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए बारंबार रोते रहते हैं। प्रेतोंका-सा उनका शरीर होता है। उनके कण्ठ, ओठ और तालू सूखे रहते हैं। वे शरीरसे अत्यन्त दुर्बल और भयभीत हो क्षुधाग्निकी ज्वालासे जलते रहते हैं। कोई साँकलमें बँधे होते हैं। किन्हींको उतान सुलाकर यमदूत उनके दोनों पैर पकड़कर घसीटते हैं और कोई नीचे मुँह करके घसीटे जाते हैं। उस समय उन्हें अत्यन्त दुःख होता है। उन्हें खानेको अन्न और पीनेको पानी नहीं मिलता। वे भूख-प्याससे पीड़ित हो हाथ जोड़ दीनभावसे आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बारंबार याचना करते और 'दीजिये, दीजिये' की रट लगाये रहते हैं। उनके सामने सुगन्धित पदार्थ, दही, खीर, घी, भात, सुगन्धयुक्त पेय और शीतल जल प्रस्तुत होते हैं। उन्हें देखकर वे बारंबार उनके लिये याचना करते हैं।

उस समय यमराजके दूत क्रोधसे लाल आँखें करके उन्हें फटकारते हुए कठोर वाणीमें कहते हैं—'ओ पापियो! तुमने समयपर अग्निहोत्र नहीं किया, स्वयं ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया और दूसरोंको भी उन्हें दान देते समय बलपूर्वक मना किया; उसी पापका फल तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ है। तुम्हारा धन आगमें नहीं जला था, जलमें नहीं नष्ट हुआ था, राजाने नहीं छीना था और चोरोंने भी नहीं चुराया था। नराधमो! तो भी तुमने जब पहले ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया है, तब इस समय तुम्हें कहाँसे कोई वस्तु प्राप्त हो सकती है। जिन साधु पुरुषोंने सात्त्विकभावसे नाना प्रकारके दान किये हैं, उन्हींके लिये ये पर्वतोंके समान अन्नके ढेर लगे दिखायी देते हैं। इनमें भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चोष्य—सब प्रकारके खाद्य पदार्थ हैं। तुम इन्हें पानेकी इच्छा न करो, क्योंकि तुमने किसी प्रकारका दान नहीं दिया है। जिन्होंने दान, होम, यज्ञ और ब्राह्मणोंका पूजन किया है, उन्हींका अन्न ले आकर सदा यहाँ जमा किया जाता है। नारकी जीवो! यह दूसरोंकी वस्तु हम तुम्हें कैसे दे सकते हैं।'

यमदूतोंकी यह बात सुनकर वे भूख-प्याससे पीड़ित जीव उस अन्नकी अभिलाषा छोड़ देते हैं। तदनन्तर यमदूत उन्हें भयानक अस्त्रोंसे पीड़ा देते हैं। मुद्गर, लोहदण्ड, शक्ति, तोमर, पट्टिश, परिघ, भिन्दिपाल, गदा, फरसा और बाणोंसे उनकी पीठपर प्रहार किया जाता है और सामनेकी ओरसे सिंह तथा बाघ आदि उन्हें काट खाते हैं। इस प्रकारके पापी जीव न तो भीतर प्रवेश कर पाते हैं और न बाहर ही निकल पाते हैं। अत्यन्त दुःखित होकर करुणक्रन्दन किया

करते हैं। इस प्रकार वहाँ भलीभाँति पीड़ा देकर यमराजके दूत उन्हें भीतर प्रवेश कराते और उस स्थानपर ले जाते हैं, जहाँ सबका संयमन (नियन्त्रण) करनेवाले धर्मात्मा यमराज रहते हैं। वहाँ पहुँचकर वे दूत यमराजको उन पापियोंके



आनेकी सूचना देते हैं और उनकी आज्ञा मिलनेपर उन्हें उनके सामने उपस्थित करते हैं। तब पापाचारी जीव भयानक यमराज और चित्रगुप्तको देखते हैं। यमराज उन पापियोंको बड़े जोरसे फटकारते हैं और चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंसे पापियोंको समझाते हुए कहते हैं—'पापाचारी जीवो! तुमने दूसरोंके धनका अपहरण किया है और अपने रूप और वीर्यके घमंडमें आकर परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया है। जीव स्वयं जो कर्म करता है, उसका फल भी उसे स्वयं ही भोगना पड़ता है—यह जानते हुए भी तुमने अपना विनाश करनेके लिये यह पापकर्म क्यों किया? अब क्यों शोक करते हो। अपने कुकर्मोंसे ही तुम पीड़ित हो रहे हो। तुमने अपने कर्मोंद्वारा जिन दुःखोंका उपार्जन किया है, उन्हें भोगो। इसमें किसीका कुछ दोष नहीं है। ये जो राजा-लोग मेरे समीप आये हुए हैं, इन्हें भी अपने बलका बड़ा घमंड था। ये अपने घोर दुष्कर्मोंद्वारा यहाँ लाये गये हैं। इनकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी।' तत्पश्चात् यमराज राजाओंकी ओर दृष्टिपात करके कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी नरेशो! तुमलोग प्रजाका विध्वंस करनेवाले हो। थोड़े दिनोंतक रहनेवाले राज्यके लिये तुमने क्यों भयंकर पाप किया। राजाओ! तुमने राज्यके लोभ, मोह, बल तथा अन्यायसे जो प्रजाओंको कठोर दण्ड दिया है, उसका यथोचित फल इस समय भोगो। कहाँ गया वह राज्य। कहाँ गयीं वे रानियाँ, जिनके लिये तुमने पापकर्म किये हैं। उन सबको छोड़कर यहाँ तुमलोग एकाकी—असहाय होकर खड़े हो। यहाँ वह सारी सेना नहीं दिखायी देती, जिसके द्वारा तुमने प्रजाका दमन किया है। इस समय यमदूत तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग फाड़े डालते हैं। देखो तो, उस पापका अब कैसा फल मिल रहा है।'

इस प्रकार यमराजके उपालम्भयुक्त अनेक वचन सुनकर वे राजा अपने-अपने कर्मोंका विचार करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब उनके पापोंकी शुद्धिके लिये धर्मराज अपने सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा देते हैं—'ओ चण्ड! ओ महा-चण्ड! इन राजाओंको पकड़कर ले जाओ और क्रमशः नरककी अग्निमें तपाकर इन्हें पापोंसे मुक्त करो।' धर्मराजकी आज्ञा पाते ही यमदूत राजाओंके दोनों पैर पकड़कर वेगसे घुमाते हुए उन्हें ऊपर फेंक देते हैं और फिर लौटकर उनके पापोंकी मात्राके अनुसार उन्हें बड़ी-बड़ी शिलाओंपर देरतक पटकते रहते हैं, मानो वज्रसे किसी महान् वृक्षपर प्रहार करते हों। इससे पापी जीवका शरीर जर्जर हो जाता है। उसके प्रत्येक छिद्रसे रक्तकी धारा बहने लगती है। उसकी चेतना लुप्त हो जाती है और वह हिलने-डुलनेमें भी असमर्थ हो जाता है। तदनन्तर शीतल वायुका स्पर्श होनेपर धीरे-धीरे पुनः वह सचेत हो उठता है। तब यमराजके दूत उसे पापोंकी शुद्धिके लिये नरकमें डाल देते हैं। एकसे निवृत्त होनेपर वे दूसरे-दूसरे पापियोंके विषयमें यमराजसे निवेदन करते हैं—'देव! आपकी आज्ञासे हम दूसरे पापीको भी ले आये हैं। यह सदा धर्मसे विमुख और पापपरायण रहा है। यह दुराचारी व्याध है। इसने महापातक और उपपातक—सभी किये हैं। यह अपवित्र मनुष्य सदा दूसरे जीवोंकी हिंसामें संलग्न रहा है। यह जो दुष्टात्मा खड़ा है, अगम्या स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला है, इसने दूसरेके धनका भी अपहरण किया है। यह कन्या बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, कृतघ्न तथा मित्रोंको धोखा देनेवाला है। इस दुरात्माने

मदोन्मत्त होकर सदा धर्मकी निन्दा की है, मर्त्यलोकमें केवल पापका ही आचरण किया है। देवेश्वर! इस समय इसको दण्ड देना है या इसपर अनुग्रह करना है, यह बताइये। क्योंकि आप ही निग्रहानुग्रह करनेमें समर्थ हैं। हमलोग तो केवल आज्ञापालक हैं।'

यों निवेदन करके वे दूत पापीको यमराजके सामने उपस्थित कर देते हैं और स्वयं दूसरे पापियोंको लानेके लिये चल देते हैं। जब पापीपर लगाये गये दोषकी सिद्धि हो जाती है, तब यमराज अपने भयंकर सेवकोंको उन्हें दण्ड देनेके लिये आदेश देते हैं। वसिष्ठ आदि महर्षियोंने जिसके लिये जो दण्ड नियत किया है, उसीके अनुसार वे यमकिंकर पापीको दण्ड प्रदान करते हैं। अङ्कुश, मुद्गर, डंडे, आरे, शक्ति, तोमर, खड्ग और शूलोंके प्रहारसे पापियोंको विदीर्ण कर डालते हैं।



अब नरकोंके भयंकर स्वरूपका वर्णन सुनो।

महावीचि नामक नरक रक्तसे भरा रहता है। उसमें वज्रके समान काँटे होते हैं। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें डूबा हुआ पापी जीव काँटोंमें बिंधकर अत्यन्त कष्ट भोगता है। गौओंका वध करनेवाला मनुष्य उस भयंकर नरकमें एक लाख वर्षोंतक निवास करता है। कुम्भीपाकका विस्तार सौ लाख योजन है। वह अत्यन्त भयंकर नरक है। वहाँकी भूमि तपाये हुए ताँबेके घड़ोंसे भरी रहनेके कारण अत्यन्त प्रज्वलित दिखायी देती है। वहाँ गरम-गरम बालू और अँगारे बिछे होते हैं। ब्राह्मणकी हत्या तथा पृथ्वीका अपहरण करनेवाले और धरोहरको हड़प लेनेवाले पापी उस नरकमें डालकर प्रलयकालतक जलाये जाते हैं। तदनन्तर रौरव नामक नरक है, जो प्रज्वलित वज्रमय बाणोंसे व्याप्त रहता है। उसका विस्तार साठ हजार योजनका है। उस नरकमें गिराये हुए मनुष्य जलते हुए बाणोंसे बिंधकर यातना भोगते हैं। झूठी गवाही देनेवाले मनुष्य उसमें ईखकी भाँति पेरे जाते हैं। उसके बाद मञ्जूष नामक नरक है, जो लोहेसे बना हुआ है। वह सदा प्रज्वलित रहता है। उसमें वे ही डालकर जलाये जाते हैं, जो दूसरोंको निरपराध बंदी बनाते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक पीब, मूत्र और विष्ठाका भंडार है। उसमें ब्राह्मणको पीड़ा देनेवाला पापी नीचे मुँह करके गिराया जाता है। विलेपक नामका घोर नरक लाहकी आगसे जलता रहता है। उसमें मदिरा पीनेवाले द्विज डालकर जलाये जाते हैं। महाप्रभ नामसे विख्यात नरक बहुत ऊँचा है। उसमें चमकता हुआ शूल गड़ा होता है। जो लोग पति-पत्नीमें भेद डालते हैं, उन्हें वहीं शूलसे छेदा जाता है। उसके बाद जयन्ती नामक अत्यन्त घोर नरक है, जहाँ लोहेकी बहुत बड़ी चट्टान पड़ी रहती है। परायी स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेवाले मनुष्य उसीके नीचे दबाये जाते हैं। शाल्मल नरक जलते हुए सुदृढ़ काँटोंसे व्याप्त है। जो स्त्री अनेक पुरुषोंके साथ सम्भोग करती है, उसे उस शाल्मल नामक वृक्षका आलिङ्गन करना पड़ता है। उस समय वह पीड़ासे व्याकुल हो उठती है। जो लोग सदा झूठ बोलते और दूसरोंके मर्मको चोट पहुँचानेवाली वाणी मुँहसे निकालते हैं, मृत्युके बाद उनकी जिह्वा यमदूतोंद्वारा काट ली जाती है। जो आसक्तिके साथ कटाक्षपूर्वक परायी स्त्रीकी ओर देखते हैं, यमराजके दूत बाण मारकर उनकी आँखें फोड़ देते हैं। जो लोग माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधूके साथ समागम तथा स्त्री, बालक और बूढ़ोंकी हत्या करते हैं, उनकी भी यही दशा होती है; वे चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त नरक-यातनामें पड़े रहते हैं। महारौरव नामक नरक ज्वालाओंसे परिपूर्ण तथा अत्यन्त भयंकर है, उसका विस्तार चौदह हजार योजन है। जो मूढ़ नगर, गाँव, घर अथवा खेतमें आग लगाते हैं, वे एक कल्पतक उस नरकमें पकाये जाते हैं। तामिस्र

नरकका विस्तार एक लाख योजन है। वहाँ सदा खड्ग, पट्टिश और मुद्गरोंकी मार पड़ती रहती है। इससे वह बड़ा भयंकर जान पड़ता है। यमराजके दूत चोरोंको उसीमें डालकर शूल, शक्ति, गदा और खड्गसे उन्हें तीन सौ कल्पोंतक पीटते रहते हैं। महातामिस्र नामक नरक और भी दुःखदायी है। उसका विस्तार तामिस्रकी अपेक्षा दूना है। उसमें जोंकें भरी हुई हैं और निरन्तर अन्धकार छाया रहता है। जो माता, पिता और मित्रकी हत्या करनेवाले तथा विश्वासघाती हैं, वे जबतक यह पृथ्वी रहती है, तबतक उसमें पड़े रहते हैं और जोंकें निरन्तर उनका रक्त चूसती रहती हैं। असिपत्रवन नामक नरक तो बहुत ही कष्ट देनेवाला है। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें अग्निके समान प्रज्वलित खड्ग पत्तोंके रूपमें व्याप्त हैं। वहाँ गिराया हुआ पापी खड्गकी धारके समान पत्तोंद्वारा क्षत-विक्षत हो जाता है। उसके शरीरमें सैकड़ों घाव



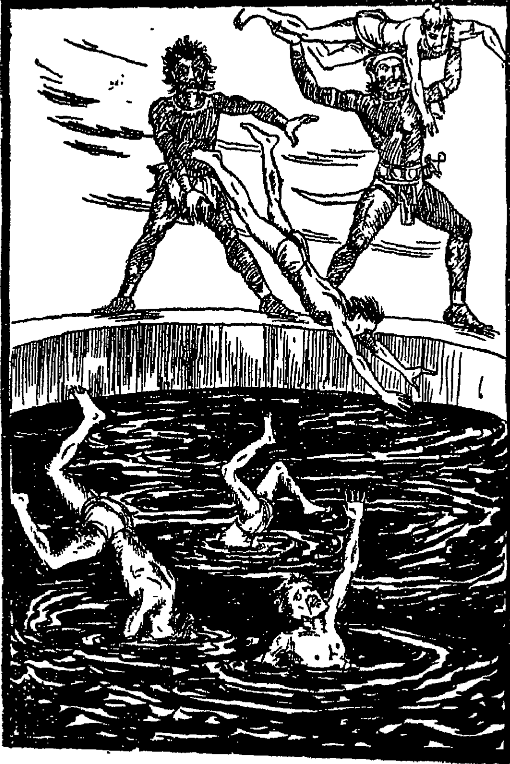
हो जाते हैं। मित्रघाती मनुष्य उसमें एक कल्पतक रखकर काटा जाता है। करम्भबालुका नामक नरक दस हजार योजन विस्तीर्ण है। उसका आकार कुएँकी तरह है। उसमें जलती हुई बालू, अँगारे और काँटे भरे हुए हैं। जो भयंकर उपायोंद्वारा किसी मनुष्यको जला देता है, वह उक्त नरकमें एक लाख दस हजार तीन सौ वर्षोंतक जलाया और विदीर्ण किया जाता है।

काकोल नामक नरक कीड़ों और पीबसे भरा रहता है। जो दुष्टात्मा मानव दूसरोंको न देकर अकेला ही मिष्टान्न उड़ाता है, वह उसीमें गिराया जाता है। कुड्मल नरक विष्ठा, मूत्र और रक्तसे भरा होता है। जो लोग पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान नहीं करते, वे उसीमें गिराये जाते हैं। महाभीम नरक अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मांस और रक्तसे पूर्ण है। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले नीच मनुष्य उसमें गिरते हैं। महावट नरक मुर्दोंसे भरा होता है। वह बहुत-से कीटोंसे व्याप्त रहता है। जो मनुष्य अपनी कन्या बेचता है, वह नीचे मुँह करके उसमें गिराया जाता है। तिलपाक नामसे प्रसिद्ध नरक बहुत ही भयंकर बताया गया है। जो लोग दूसरोंको पीड़ा देते हैं, वे उसमें तिलकी भाँति पेरे जाते हैं। तैलपाक नरकमें खौलता हुआ तेल भूमिपर बहता रहता है। जो मित्रों तथा शरणागतोंकी हत्या करते हैं, वे उसीमें पकाये जाते हैं। वज्रकपाट नरक वज्रमयी शृङ्खलासे व्याप्त रहता है। जिन लोगोंने दूध बेचनेका व्यवसाय किया है, उन्हें वहाँ निर्दयतापूर्वक पीड़ा दी जाती है। निरुच्छ्वास नरक अन्धकारसे पूर्ण और वायुसे रहित होता है। जो ब्राह्मणको दिये जानेवाले दानमें रुकावट डालता है, वह निश्चेष्ट करके उसमें डाल दिया जाता है। अङ्गारोपचय नामक नरक दहकते हुए अँगारोंसे प्रज्वलित रहता है। जो लोग देनेकी प्रतिज्ञा करके भी ब्राह्मणको दान नहीं देते, वे उसीमें जलाये जाते हैं। महापायी नरकका विस्तार एक लाख योजन है। जो सदा असत्य बोला करते हैं, उन्हें नीचे मुख करके उसीमें डाल दिया जाता है। महाज्वाल नामक नरक सदा आगकी लपटोंसे प्रकाशित एवं भयंकर होता है। जो मनुष्य पापमें मन लगाते हैं, उन्हें दीर्घकालतक उसीमें जलाया जाता है। क्रकच नामक नरकमें वज्रकी धारके समान तीखे आरे लगे होते हैं। उसमें अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले मनुष्योंको उन्हीं आरोंसे चीरा जाता है। गुडपाक नरक खौलते हुए गुड़के अनेक कुण्डोंसे व्याप्त है। जो मनुष्य वर्णसंकरता फैलाता है, वह उसीमें डालकर जलाया जाता है।*

क्षुरधार नामक नरक तीखे उस्तुरोंसे भरा रहता है। जो लोग ब्राह्मणोंकी भूमि हड़प लेते हैं, वे एक कल्पतक

* नरकं गुडपाकेति ज्वलद्गुडह्रदैर्वृतम्।
निक्षिप्तो दह्यते तस्मिन् वर्णसंकरकृन्नरः॥
(२१५। १२१-१२२)

उसीमें डालकर काटे जाते हैं । अम्बरीष नामक नरक प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित रहता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य करोड़ कल्पोंतक उसमें दग्ध किया जाता है। वज्रकुठार नामक नरक वज्रसे व्याप्त है । पेड़ काटनेवाले पापी मनुष्य उसीमें डालकर काटे जाते हैं । परिताप नामक नरक भी प्रलयाग्निसे उद्दीप्त रहता है । विष देने तथा मधुकी चोरी करनेवाला पापी उसीमें यातना भोगता है । कालसूत्र नरक वज्रमय सूतसे निर्मित है । जो लोग दूसरोंकी खेती नष्ट करते हैं, वे उसीमें घुमाये जाते हैं, जिससे उनका अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाता है। कश्मल नरक मुख और नाकके मलसे भरा होता है। मासकी रुचि रखनेवाला मनुष्य उसमें एक कल्पतक रक्खा जाता है। उग्रगन्ध नामक नरक लार, मूत्र और विष्ठासे



भरा होता है । जो पितरोंको पिण्ड नहीं देते, वे उसी नरकमें डाले जाते हैं । दुर्धर नरक जोंकों और बिच्छुओंसे भरा रहता है । सूदखोर मनुष्य उसमें दस हजार वर्षोंतक पड़ा रहता है । वज्रमहापीड़ नामक नरक वज्रसे ही निर्मित है । जो दूसरोंके धन-धान्य और सुवर्णकी चोरी करते हैं, उन्हें उसीमें डालकर यातना दी जाती है। यमदूत उन चोरोंको छूरोंसे क्षण-क्षणपर काटते रहते हैं । जो मूर्ख किसी प्राणीकी हत्या करके उसे कोए और गृध्रकी भाँति खाते हैं, उन्हें एक कल्पतक अपने ही शरीरका मांस खाना पड़ता है । जो दूसरों-के आसन, शय्या और वस्त्रका अपहरण करते हैं, उन्हें यमदूत शक्ति और तोमरोंसे विदीर्ण करते हैं। जिन खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंने लोगोंके फल अथवा पत्ते भी चुराये हैं, उन्हें क्रोधमें भरे हुए यमदूत तिनकोंकी आगमें जला डालते हैं । जो मनुष्य पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा दूषित भाव रखता है, यमदूत उसकी छातीमें जलता हुआ शूल गाड़ देते हैं। जो मानव मन, वाणी और क्रियाद्वारा धर्मसे विमुख रहते हैं, उन्हें यमलोकमें बड़ी भयंकर यातना भोगनी पड़ती है । इस प्रकार लाखों, करोड़ों और अरबों नरक हैं, जहाँ पापी मनुष्य अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। इस लोकमें थोड़ा-सा भी पापकर्म करनेपर यमलोकमें भयंकर नरकके भीतर घोर यातना सहनी पड़ती है। मूढ़ मनुष्य साधु पुरुषोंद्वारा बताये हुए धर्मयुक्त वचनोंको नहीं सुनते। जब कोई उनसे परलोककी चर्चा करता है, तब वे झट यही उत्तर देते हैं—किसने स्वर्ग और नरकको प्रत्यक्ष देखा है। ऐसे लोग दिन-रात प्रयत्नपूर्वक पाप करते हैं। धर्मका आचरण तो वे भूलकर भी नहीं करते । इस प्रकार जो इसी लोकमें कर्मोंके फलका भोग होना मानते हैं, परलोकके प्रति जिनकी तनिक भी आस्था नहीं है, ऐसे नराधम भयंकर नरकोंमें पड़ते हैं। नरकका निवास अत्यन्त दुःखदायी और स्वर्गवास सुख देनेवाला है। मनुष्य शुभकर्म करनेसे स्वर्ग पाते हैं और अशुभकर्म करके नरकोंमें पड़ते हैं।

धर्मसे यमलोकमें सुखपूर्वक गति तथा भगवद्भक्तिके प्रभावका वर्णन

मुनियोंने कहा—अहो ! यमलोकके मार्गमें तो बड़ा भयंकर दुःख होता है । साधुश्रेष्ठ ! आपने उन दुःखोंके साथ ही घोर नरकों तथा दक्षिणद्वारका भी वर्णन किया । ब्रह्मन् ! उस भयानक मार्गमें कष्टोंसे बचनेका कोई उपाय है या नहीं ? यदि है तो बताइये, किस उपायसे मनुष्य यमलोकमें सुख-पूर्वक जा सकते हैं ?

व्यासजीने कहा—मुनिवरो ! जो लोग इस लोकमें धर्मपरायण हो अहिंसाका पालन करते, गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न रहते और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे स्त्री और पुत्रोंसहित जिस प्रकार उस मार्गसे यात्रा करते हैं, वह बतलाता हूँ। उपर्युक्त पुण्यात्मा पुरुष सुवर्णमय ध्वजाओंसे सुशोभित भाँति-भाँतिके दिव्य विमानोंपर आरूढ़ हो धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्रकारकी



वस्तुएँ दानमें देते हैं, वे उस महान् पथपर सुखसे यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको, ब्राह्मणोंमें भी विशेषतः श्रोत्रियोंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम रीतिसे तैयार किया हुआ अन्न देते हैं, वे सुसज्जित विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो सदा सत्य बोलते और बाहर-भीतरसे शुद्ध रहते हैं, वे भी देवताओंके समान कान्तिमान् शरीर धारणकर विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें जाते हैं। जो धर्मज्ञ पुरुष जीविकारहित दीन-दुर्बल साधुओंको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे पवित्र गोदान करते हैं, वे मणिजटित दिव्य विमानोंद्वारा धर्मराजके लोकमें जाते हैं। जो जूता, छाता, शय्या, आसन, वस्त्र और आभूषण दान करते हैं, वे दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत हो हाथी, रथ और घोड़ोंकी सवारीसे वहाँकी यात्रा करते हैं। उनके ऊपर सोने-चाँदीका छत्र लगा रहता है। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विशुद्ध हृदयसे भक्तिपूर्वक गुड़का रस और भात देते हैं, वे सुवर्णमय वाहनोंद्वारा यमलोकमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक शुद्ध एवं सुसंस्कृत दूध, दही, घी और गुड़ दान करते हैं, वे चक्रवाक पक्षियोंसे जुड़े हुए सुवर्णमय विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। उस समय गन्धर्वगण वाद्योंद्वारा उनकी सेवा करते हैं। जो सुगन्धित पुष्प दान करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक तिल, तिलमयी धेनु अथवा घृतमयी धेनु दान करते हैं, वे चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें प्रवेश करते हैं। उस समय गन्धर्वगण उनका सुयश गाते रहते हैं। इस लोकमें जिनके बनवाये हुए कुएँ, बावड़ी, तालाब, सरोवर, दीर्घिका, पुष्करिणी तथा शीतल जलाशय शोभा पाते हैं, वे दिव्य घण्टानादसे मुखरित, सुवर्ण और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। मार्गमें उन्हें सुख देनेके लिये दिव्य पंखे डुलाये



जाते हैं। जो लोग समस्त प्राणियोंके जीवनभूत जलका दान करते हैं, वे पिपासासे रहित हो दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखपूर्वक उस महान् पथकी यात्रा करते हैं! जिन्होंने ब्राह्मणोंको

लकड़ीकी बनी खड़ाऊँ, सवारी, पीढ़ा और आसन दान किये हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं। वे विमानोंपर बैठकर सोने और मणियोंके बने हुए उत्तम पीढ़ोंपर पैर रखकर यात्रा करते हैं।

जो मनुष्य दूसरोंके उपकारके लिये फल और पुष्पोंसे सुशोभित विचित्र उद्यान लगाते हैं, वे वृक्षोंकी रमणीय एवं शीतल छायामें सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। जो लोग सोना, चाँदी, मूँगा तथा मोती दान करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर यमलोकमें जाते हैं। भूमिदान करनेवाले पुरुष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे तृप्त हो उदय-कालीन सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर देदीप्यमान शरीरसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो ब्राह्मणोंके लिये भक्तिपूर्वक उत्तम गन्ध, अगर, कपूर, पुष्प और धूपका दान करते हैं, वे मनोहर गन्ध, सुन्दर वेष, उत्तम कान्ति और श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित हो विचित्र विमानोंद्वारा धर्म-नगरकी यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले मनुष्य अग्निके तुल्य प्रकाशमान होकर सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चलते हैं। जो गृह अथवा रहनेके लिये स्थान देते हैं, वे अरुणोदयकी-सी कान्तिवाले सुवर्णमण्डित गृहोंके साथ धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जलपात्र, कुंडी और कमण्डलु दान करनेवाले मानव अप्सराओंसे पूजित हो महान् गजराजोंपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको सिर और पैरमें मलनेके लिये तेल तथा नहाने और पीनेके लिये जल देते हैं, वे घोड़ोंपर सवार होकर यम-लोकमें जाते हैं। जो रास्तेके थके-माँदे दुर्बल ब्राह्मणोंको अपने यहाँ ठहराते हैं, वे चक्रवोंसे जुड़े हुए दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो स्वागतपूर्वक आसन देकर ब्राह्मणकी पूजा करता है, वह अत्यन्त प्रसन्न होकर सुखसे उस मार्गपर जाता है।

जो 'पापहरे!' इत्यादिका उच्चारण करके गौको मस्तक झुकाता है, वह सुखसे यमलोकके मार्गपर आगे बढ़ता है। जो शठता और दम्भका परित्याग करके एक समय भोजन करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। जो जितेन्द्रिय पुरुष एक दिन उपवास करके दूसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे मोरोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो नियमपूर्वक व्रतका पालन करते हुए तीसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे हाथियोंसे जुड़े हुए दिव्य रथोंपर आसीन हो यमराजके लोकमें जाते हैं। जो नित्य पवित्र रहकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए छठे दिन आहार ग्रहण करते हैं, वे साक्षात् शचीपति इन्द्रके समान ऐरावतकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो एक पक्षतक उपवास करके अन्न ग्रहण करते हैं, वे व्याघ्रोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। उस समय देवता और असुर उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। जो जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक उपवास करते हैं, वे सूर्यके समान देदीप्यमान रथोंपर बैठकर यमलोक



की यात्रा करते हैं। जो स्त्री अथवा गौकी रक्षाके लिये युद्धमें प्राणत्याग करता है, वह सूर्यके समान कान्तिमान् शरीर धारण करके देवकन्याओंद्वारा सेवित हो धर्मनगरकी यात्रा करता है।

जो भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए जितेन्द्रियभावसे तीर्थोंकी यात्रा करते हैं, वे सुखदायक विमानोंसे सुशोभित हो उस भयंकर पथकी यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ द्विज प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन करते हैं, वे तपाये हुए सुवर्णसदृश विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं। जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते और भृत्योंका भरण-पोषण करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो समस्त प्राणियोंके प्रति क्षमाभाव रखते, सबको

अभय देते, क्रोध, मोह और मदसे मुक्त रहते तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, वे महान् तेजसे सम्पन्न हो पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विमानपर बैठकर यमराजकी पुरीमें जाते हैं। उस समय देवता और गन्धर्व उनकी सेवामें खड़े रहते हैं। जो सत्य और पवित्रतासे युक्त रहकर कभी भी मांसाहार नहीं करते, वे भी धर्मराजके नगरमें सुखसे ही यात्रा करते हैं। जो एक हजार गौओंका दान करता है और जो कभी मांस भक्षण नहीं करता, वे दोनों समान हैं—यह बात पूर्वकालमें वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ साक्षात् ब्रह्माजीने कही थी। ब्राह्मणो! सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही या उसके समान फल मांस न खानेसे भी प्राप्त होता है।* इस प्रकार दान और व्रतमें तत्पर रहनेवाले धर्मात्मा पुरुष विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं, जहाँ सूर्यनन्दन यम विराजमान रहते हैं। धार्मिक पुरुषोंको देखकर यमराज स्वयं ही स्वागतपूर्वक उन्हें आसन देते और पाद्य, अर्घ्य तथा प्रिय वचनोंद्वारा उनका सम्मान करते हैं। वे कहते हैं—'पुण्यात्मा पुरुषो! आपलोग धन्य हैं। आप अपने आत्माका कल्याण करनेवाले महात्मा हैं, क्योंकि आपने दिव्य सुखके लिये शुभकर्मोंका अनुष्ठान किया है। अब इस विमानपर बैठकर उस अनुपम स्वर्गलोकको जाइये, जहाँ समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। वहाँ महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्य क्षीण होनेपर जो थोड़ा अशुभ कर्म शेष रहेगा, उसका फल यहाँ आकर भोगियेगा।'

धर्मात्मा पुरुष अपने पुण्योंके प्रभावसे धर्मराजको कोमल हृदयवाले अपने पिताके तुल्य देखते हैं, इसलिये धर्मका सदा सेवन करना चाहिये। धर्म मोक्षरूप फलका देनेवाला है। धर्मसे ही अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि बतायी गयी है। धर्म ही माता पिता और भ्राता है, धर्म ही अपना रक्षक और सुहृद् है। स्वामी, सखा, पालक तथा धारण-पोषण करनेवाला धर्म ही है।* धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम और कामसे भोग एवं सुख उपलब्ध होते हैं। धर्मसे ही ऐश्वर्य, एकाग्रता और उत्तम स्वर्गीय गति प्राप्त होती है। विप्रवरो! धर्मका यदि सेवन किया जाय तो वह मनुष्यकी महान् भयसे रक्षा करता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि धर्मसे देवत्व और ब्राह्मणत्व भी प्राप्त हो सकते हैं। जब मनुष्योंके पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाते हैं, तब उनकी बुद्धि इस लोकमें धर्मकी ओर लगती है। हजारों जन्मोंके पश्चात् दुर्लभ मनुष्य-जीवनको पाकर जो धर्मका आचरण नहीं करता, वह निश्चय ही सौभाग्यसे वञ्चित है। जो लोग कुत्सित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूसरोंके सेवक और मूर्ख हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें धर्म नहीं किया है—ऐसा जानना चाहिये। जो दीर्घायु, शूरवीर, पण्डित, भोगसाधनसे सम्पन्न, धनवान्, नीरोग तथा रूपवान् हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही धर्मका अनुष्ठान किया है। ब्राह्मणो! इस प्रकार धर्मपरायण मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं और अधर्मका सेवन करनेवाले लोग पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाते हैं।

जो मनुष्य नरकासुरका विनाश करनेवाले भगवान् वासुदेवके भक्त हैं, वे स्वप्नमें भी यमराज अथवा नरकोंको नहीं देखते। जो दैत्यों और दानवोंका संहार करनेवाले आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणको प्रतिदिन नमस्कार करते हैं, वे भी यमराजको नहीं देखते। जो मन, वाणी और क्रियाके द्वारा भगवान् अच्युतकी शरणमें चले गये हैं, उनपर यमराजका वश नहीं चलता। वे मोक्षरूप फलके भागी होते हैं। ब्राह्मणो! जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ श्रीनारायणको नमस्कार करते हैं, वे वैकुण्ठधामके सिवा अन्यत्र नहीं जाते। श्रीविष्णुको नमस्कार करके मनुष्य यमदूतोंको, यमलोकके मार्गको, यमपुरीको तथा वहाँके नरकोंको किसी प्रकार नहीं देख पाते। मोहमें पड़कर अनेकों बार पाप कर लेनेपर भी यदि मानव सर्वपापहारी श्रीहरिको नमस्कार करते हैं तो वे नरकमें नहीं पड़ते। जो लोग शठतासे भी सदा भगवान् जनार्दनका स्मरण करते हैं, वे भी देहत्यागके पश्चात् रोग-शोकसे रहित श्रीविष्णु-

---

* ये च मांसं न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः।
तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः॥
गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तु मांसं न भक्षयेत्।
समावेतौ पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदां वरः॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्समम्॥
(२१६। ६३, ६५-६६)

* तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदामुक्तिफलप्रदः।
धर्मादर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते॥
धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा।
धर्मः स्वामी सखा गोप्ता तथा धाता च पोषकः॥
(२१६। ७३-७४)

धामको प्राप्त होते हैं। अत्यन्त क्रोधमें आसक्त होकर भी जो कभी श्रीहरिके नामोंका कीर्तन करता है, वह भी चेदिराज शिशुपालकी भाँति सम्पूर्ण दोषोंका क्षय हो जानेसे मोक्षको प्राप्त करता है।*

धर्मकी महिमा एवं अधर्मकी गतिका निरूपण तथा अन्नदानका माहात्म्य

मुनियोंने कहा—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा सब शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं। कृपया बताइये पिता, माता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी और मित्रवर्ग—इनमेंसे कौन मरनेवाले प्राणीका विशेष सहायक होता है? लोग तो मृतकके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति छोड़कर चल देते हैं। फिर परलोकमें कौन उसके साथ जाता है?

व्यासजी बोले—विप्रवरो! प्राणी अकेला ही जन्म लेता, अकेला ही मरता, अकेला ही दुर्गम संकटोंको पार करता और अकेला ही दुर्गतिमें पड़ता है। पिता, माता, भ्राता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी तथा मित्रवर्ग—इनमेंसे कोई भी मरनेवालेका साथ नहीं देता। घरके लोग मृत व्यक्तिके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति त्याग देते और दो घड़ी रोकर उससे मुँह मोड़कर चले जाते हैं। वे सब लोग तो त्याग देते हैं, किन्तु धर्म उसका त्याग नहीं करता। वह अकेला ही जीवके साथ जाता है, अतः धर्म ही सच्चा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त प्राणी उत्तम स्वर्गगतिको प्राप्त होता है, इसी प्रकार अधर्मयुक्त मानव नरकमें पड़ता है; अतः विद्वान् पुरुष पापसे प्राप्त होनेवाले धनमें अनुराग न रक्खे। एकमात्र धर्म ही मनुष्योंका सहायक बताया गया है। बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञाता मनुष्य भी लोभ, मोह, घृणा अथवा भयसे मोहित होकर दूसरेके लिये न करने योग्य कार्य भी कर डालता है। धर्म, अर्थ और काम—तीनों ही इस जीवनके फल हैं। अधर्म-त्यागपूर्वक इन तीनोंकी प्राप्ति करनी चाहिये।†

मुनियोंने कहा—भगवन्! आपका यह धर्मयुक्त वचन, जो परम कल्याणका साधन है, हमने सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह शरीर किन तत्त्वोंका समूह है। मनुष्योंका मरा हुआ शरीर तो स्थूलसे सूक्ष्म—अव्यक्तभावको

* ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुव्रताः। ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकाणि वा॥
अनादिनिधनं देवं दैत्यदानवदारणम्। ये नमन्ति नरा नित्यं न हि पश्यन्ति ते यमम्॥
कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युतं शरणं गताः। न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः॥
ये जना जगतां नाथं नित्यं नारायणं द्विजाः। नमन्ति न हि ते विष्णोः स्थानादन्यत्र गामिनः॥
न ते दूतान्न तन्मार्गं न यमं न च तां पुरीम्। प्रणम्य विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि कथंचन॥
कृत्वापि बहुशः पापं नरा मोहसमन्विताः। न यान्ति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम्॥
शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम्। तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम्॥
अत्यन्तक्रोधसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्धरिम्। सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेच्चेदिपतिर्यथा॥
(२१६। ८२—८९)

† एकः प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति। एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्॥
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः। ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः। मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः॥
तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति। तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः॥
प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं पराम्। तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते॥
तस्मात्पापागतैरर्थैर्नानुरज्येत पण्डितः। धर्म एको मनुष्याणां सहायः परिकीर्तितः॥
लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाथ बहुश्रुतः। नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीवतः फलम्। एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम्॥
(२१७। ४—११)

प्राप्त हो जाता है, वह नेत्रोंका विषय नहीं रह जाता; फिर धर्म कैसे उसके साथ जाता है ?

व्यासजी बोले—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सदा साथ रहकर धर्मपर दृष्टि रखते हैं। ये समस्त प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंके निरन्तर साक्षी रहते हैं। इनके साथ धर्म जीवका अनुसरण करता है। जब शरीरसे प्राण निकल जाता है, तब त्वचा, हड्डी, मांस, वीर्य और रक्त भी उस शरीरको छोड़ देते हैं। उस समय जीव धर्मसे युक्त होनेपर ही इस लोक और परलोकमें सुख एवं अभ्युदयको प्राप्त होता है।

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने यह भलीभाँति समझा दिया कि धर्म किस प्रकार जीवका अनुसरण करता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि [शरीरके कारणभूत] वीर्यकी उत्पत्ति कैसे होती है।

व्यासजीने कहा—द्विजवरो! शरीरमें स्थित जो पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज और मनके अधिष्ठाता देवता हैं, वे जब अन्न ग्रहण करते हैं और उससे मनसहित पृथ्वी आदि पाँचों भूत तृप्त होते हैं, तब उस अन्नसे शुद्ध वीर्य बनता है। उस वीर्यमें कर्मप्रेरित जीव आकर निवास करता है। फिर स्त्रियोंके रजमें मिलकर वह समयानुसार जन्म ग्रहण करता है। पुण्यात्मा प्राणी इस लोकमें जन्म लेनेपर जन्मकालसे ही पुण्यकर्मका उपभोग करता है। वह धर्मके फलका आश्रय लेता है। मनुष्य यदि जन्मसे ही धर्मका सेवन करता है तो सदा सुखका भागी होता है। यदि बीच-बीचमें कभी धर्म और कभी अधर्मका सेवन करता है तो वह सुखके बाद दुःख भी पाता है। पापयुक्त मनुष्य यमलोकमें जाकर महान् कष्ट उठानेके बाद पुनः तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। मोहयुक्त जीव जिस-जिस कर्मसे जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, उसे बतलाता हूँ; सुनो! परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य पहले तो भेड़िया होता है; फिर क्रमशः कुत्ता, सियार, गीध, साँप, कौआ और बगुला होता है। जो पापात्मा कामसे मोहित होकर अपनी भौजाईके साथ बलात्कार करता है, वह एक वर्षतक नर-कोकिल होता है। मित्र, गुरु तथा राजाकी पत्नीके साथ समागम करनेसे कामात्मा पुरुष मरनेके बाद सूअर होता है। पाँच वर्षोंतक सूअर रहकर मरनेके बाद दस वर्षोंतक बगुला; तीन महीनोंतक चींटी और एक मासतक कीटकी योनिमें पड़ा रहता है। इन सब योनियोंमें जन्म लेनेके बाद वह पुनः कृमियोनिमें उत्पन्न होता और चौदह महीनोंतक जीवित रहता है। इस प्रकार अपने पूर्वपापोंका क्षय करनेके बाद वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो पहले एकको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर दूसरेको देना चाहता है, वह भी मरनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है। उस योनिमें वह तेरह वर्षोंतक जीवित रहता है। फिर अधर्मका क्षय होनेपर वह मनुष्य होता है। जो देवकार्य अथवा पितृकार्य न करके देवताओं और पितरोंको संतुष्ट किये बिना ही मर जाता है, वह कौआ होता है। सौ वर्षोंतक कौएकी योनिमें रहनेके बाद वह मुर्गा होता है। तत्पश्चात् एक मासतक सर्पकी योनिमें निवास करता है। उसके बाद वह मनुष्य होता है। जो पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है, वह मृत्युके बाद क्रौञ्च-योनिमें जन्म लेता है और दस वर्षोंतक जीवन धारण करता है। तत्पश्चात् मरनेपर वह मनुष्य होता है। शूद्रजातीय पुरुष ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। उससे मृत्यु होनेपर वह सूअर होता है। सूअरकी योनिमें जन्म लेते ही रोगसे उसकी मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर वह मूर्ख पूर्वोक्त पापके ही फलस्वरूप कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद उसे मानव-शरीरकी प्राप्ति होती है। मानवयोनिमें संतान उत्पन्न करके वह मर जाता है और चूहेका जन्म पाता है। कृतघ्न मनुष्य मृत्युके बाद जब यमराजके लोकमें जाता है, उस समय क्रूर यमदूत उसे बाँधकर भयंकर दण्ड देते हैं। उस दण्डसे उसको बड़ी वेदना होती है। दण्ड, मुद्गर, शूल, भयंकर अग्निदण्ड, असिपत्रवन, तप्तवालुका तथा कूटशाल्मलि आदि अन्य बहुत-सी घोर यातनाओंका अनुभव करके वह संसारचक्रमें आता और कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है; पंद्रह वर्षोंतक कीड़ा रहनेके बाद मानव-गर्भमें आकर वहाँ जन्म लेनेके पहले ही मर जाता है। इस प्रकार सैकड़ों बार गर्भमें मृत्युका कष्ट भोगकर अनेक बार संसार-बन्धनमें पड़ता है। तत्पश्चात् वह पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है। उसमें बहुत वर्षोंतक कष्ट उठाकर अन्तमें वह कछुआ होता है।

दहीकी चोरी करनेसे मनुष्य बगुला और मेढक होता है। फल, मूल अथवा पूआ चुरानेसे वह चींटी होता है। जलकी चोरी करनेसे कौआ और काँसा चुरानेसे हारीत (हरियल) पक्षी होता है। चाँदीका बर्तन चुरानेवाला कबूतर होता है और सुवर्णमय पात्रका अपहरण करनेसे कृमियोनिमें जन्म लेना पड़ता है। रेशमका कीड़ा चुरानेसे मनुष्य वानर होता है। वस्त्रकी चोरी करनेसे तोतेकी योनिमें जन्म होता है। साड़ी

चुरानेवाला मनुष्य मरनेके बाद हंस होता है। रूईका वस्त्र हड़प लेनेवाला मानव मृत्युके पश्चात् क्रौञ्च होता है। सनका वस्त्र, ऊनी वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र चुरानेवाला मनुष्य खरगोश होता है। चूर्णकी चोरी करनेसे मनुष्य दूसरे जन्ममें मोर होता है। अङ्गराग और सुगन्धकी चोरी करनेवाला लोभी मनुष्य छछूँदर होता है। उस योनिमें पंद्रह वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद जब पापका क्षय हो जाता है, तब वह मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो स्त्री दूधकी चोरी करती है, वह बगुली होती है। जो नीच पुरुष स्वयं सशस्त्र होकर वैरसे अथवा धनके लिये किसी शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करता है, वह मरनेपर गदहा होता है। गदहेकी योनिमें दो वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद वह शस्त्रद्वारा मारा जाता है, फिर मृगकी योनिमें जन्म लेकर सदा उद्विग्न बना रहता है। मृगयोनिमें एक वर्ष बीतनेपर वह बाणका निशाना बन जाता है, फिर मछलीकी योनिमें जन्म ले वह जालमें फँसा लिया जाता है। चार महीने बीतनेपर वह शिकारी कुत्तेके रूपमें जन्म लेता है। दस वर्षोंतक कुत्ता रहकर पाँच वर्षोंतक व्याघ्रकी योनिमें रहता है। फिर कालक्रमसे पापोंका क्षय होनेपर मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो मनुष्य खलीमिश्रित अन्नका अपहरण करता है, वह भयंकर चूहा होता है। उसका रंग नेवले-जैसा भूरा होता है। वह पापात्मा प्रतिदिन मनुष्योंको डँसता रहता है। घीकी चोरी करनेवाला दुर्बुद्धि मानव कौआ और बगुला होता है। नमक चुरानेसे चिरिकाक नामक पक्षी होना पड़ता है। जो मनुष्य विश्वासपूर्वक रक्खी हुई धरोहरको हड़प लेता है, वह मृत्युके बाद मछलीकी योनिमें जन्म लेता है। उसके पश्चात् मृत्यु होनेपर फिर मनुष्य होता है। मानव-योनिमें भी उसकी आयु बहुत ही थोड़ी होती है।

ब्राह्मणो! मनुष्य पाप करके तिर्यग्योनिमें जाता है, जहाँ उसे धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। जो मनुष्य पाप करके व्रतोंद्वारा उसका प्रायश्चित्त करते हैं, वे सुख और दुःख दोनोंसे युक्त होते हैं। लोभ-मोहसे युक्त पापाचारी मनुष्य निश्चय ही म्लेच्छयोनिमें जन्म लेते हैं। जो लोग जन्मसे ही पापका परित्याग करते हैं, वे नीरोग, रूपवान् और धनी होते हैं। स्त्रियाँ भी ऊपर बताये अनुसार कर्म करनेसे पापकी भागिनी होती हैं और पापयोनिमें पड़े हुए पूर्वोक्त पापियोंकी ही पत्नी बनती हैं। द्विजवरो! चोरीके प्रायः सभी दोष बता दिये गये। यहाँ जो कुछ कहा गया है, वह बहुत संक्षिप्त है; फिर कभी कथा-वार्ताका अवसर आनेपर तुमलोग इस विषयको विस्तारपूर्वक सुन सकते हो। पूर्वकालमें देवर्षियोंकी सभामें उनके प्रश्नानुसार ब्रह्माजीने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमलोगोंको बतलाया है। ये सब बातें सुनकर तुम धर्मके अनुष्ठानमें मन लगाओ।

मुनि बोले—ब्रह्मन्! आपने अधर्मकी गतिका निरूपण किया, अब हम धर्मकी गति सुनना चाहते हैं। किस कर्मके अनुष्ठानसे मनुष्यकी सद्गति होती है?

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो! जो मोहवश अधर्मका अनुष्ठान कर लेनेपर उसके लिये पुनः सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करता और मनको एकाग्र रखता है, वह पापका सेवन नहीं करता। ज्यों-ज्यों मनुष्यका मन पाप-कर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका शरीर उस अधर्मसे दूर होता जाता है। यदि धर्मवादी ब्राह्मणोंके सामने अपना पाप कह दिया जाय तो वह उस पापजनित अपराधसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे अपने अधर्मकी बात बारंबार प्रकट करता है, वैसे-ही-वैसे वह एकाग्रचित्त होकर अधर्मको छोड़ता जाता है।* जैसे साँप केंचुल छोड़ता है, उसी प्रकार वह पहलेके अनुभव किये हुए पापोंका त्याग करता है। एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणको नाना प्रकारके दान दे। जो मनको ध्यानमें लगाता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त करता है।

ब्राह्मणो! अब मैं दानका फल बतलाता हूँ। सब दानोंमें अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाया गया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह सरलतापूर्वक सब प्रकारके अन्नोंका दान करे। अन्न ही मनुष्योंका जीवन है। उसीसे जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति होती है। अन्नमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं, अतः अन्नको श्रेष्ठ बताया जाता है। देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि अन्नदानसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके लिये

* मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते।
मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम्॥
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते।
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते॥
यदि विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम्।
ततोऽधर्मकृतात्क्षिप्रमपराधात्प्रमुच्यते॥
यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते।
समाहितेन मनसा विमुञ्चति तथा तथा॥
(२१८।४—७)

न्यायोपार्जित उत्तम अन्नका प्रसन्नचित्तसे दान करना चाहिये। जिसके प्रसन्नचित्तसे दिये हुए अन्नको दस ब्राह्मण भोजन कर लेते हैं, वह कभी पशु-पक्षी आदिकी योनिमें नहीं पड़ता। सदा पापोंमें संलग्न रहनेवाला मनुष्य भी यदि दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन करा दे तो वह अधर्मसे मुक्त हो जाता है। वेदोंका अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण भिक्षासे अन्न ले आकर यदि किसी स्वाध्यायशील ब्राह्मणको दान कर दे तो वह संसारमें सुख और समृद्धिका भागी होता है। जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको हानि न पहुँचाकर न्यायतः प्रजाका पालन करते हुए अन्नका उपार्जन करता है और उसे एकाग्रचित्त होकर श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है, वह धर्मात्मा है और उस पुण्यके जलसे अपने पापपङ्कको धो डालता है। अपने द्वारा उपार्जित खेतीके अन्नमेंसे छठा भाग राजाको देनेके बाद जो शेष शुद्ध भाग बच जाता है, वह अन्न यदि वैश्य ब्राह्मणको दान करे तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो शूद्र प्राणोंको संशयमें डालकर और नाना प्रकारकी कठिनाइयोंको सहकर भी अपने द्वारा उपार्जित शुद्ध अन्नको ब्राह्मणोंके निमित्त दान करता है, वह भी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जो कोई भी मनुष्य श्रेष्ठ वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक न्यायोपार्जित अन्नका दान करता है, उसका पाप छूट जाता है। संसारमें अन्न बलकी वृद्धि करनेवाला है। उसका दान करनेसे मनुष्य बलवान् बनता है। सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। दानवेत्ता पुरुषोंने जो मार्ग बताया है और जिसपर मनीषी पुरुष चलते हैं, वही अन्नदाताओंका भी मार्ग है। उन्हींसे सनातन धर्म है। मनुष्यको सभी अवस्थाओंमें न्यायोपार्जित अन्नका दान करना चाहिये। क्योंकि अन्न सर्वोत्तम गति है। अन्नदानसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। इस लोकमें उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मृत्युके बाद भी वह सुखका भागी होता है।*

इस प्रकार पुण्यवान् मनुष्य पापोंसे मुक्त होता है। अतः अन्यायरहित अन्नका दान करना चाहिये। जो गृहस्थ सदा प्राणाग्निहोत्रपूर्वक अन्न-भोजन करता है, वह अन्नदानसे प्रत्येक दिनको सफल बनाता है। जो मनुष्य वेद, न्याय, धर्म और इतिहासके ज्ञाता सौ विद्वानोंको प्रतिदिन भोजन कराता है, वह घोर नरकमें नहीं पड़ता और संसार-बन्धनमें भी नहीं बँधता, अपितु सम्पूर्ण कामनाओंसे तृप्त हो मृत्युके बाद सुखका भागी होता है। इस प्रकार पुण्यकर्मसे युक्त मनुष्य निश्चिन्त होकर आनन्दका भागी होता है। उसे रूप, कीर्ति और धनकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने तुम्हें अन्नदानका महान् फल बतलाया। यह सभी धर्मों और दानोंका मूल है।

श्राद्ध-कल्पका वर्णन

मुनियोंने पूछा—भगवन्! अब श्राद्ध-कल्पका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। तपोधन! कब, कहाँ, किन देशोंमें और किन लोगोंको किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये—यह बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! सुनो, मैं श्राद्ध-कल्पका विस्तारके साथ वर्णन करता हूँ। जब, जहाँ जिन प्रदेशोंमें और जिन लोगोंद्वारा जिस प्रकार श्राद्ध किया जाना चाहिये, वह सब बतलाता हूँ। अपने कुलोचित धर्मका पालन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको उचित है कि वे अपने-अपने वर्णके अनुरूप वेदोक्त विधिसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करें। स्त्रियों और शूद्रोंको ब्राह्मणकी आज्ञाके अनुसार मन्त्रोच्चारणके बिना ही विधिवत् श्राद्ध करना चाहिये। उनके लिये अग्निमें होम आदि वर्जित हैं। पुष्कर आदि तीर्थ, पवित्र मन्दिर, पर्वतशिखर, पावन प्रदेश, पुण्यसलिला नदी, नद, सरोवर, संगम, सात समुद्रोंके तट, लिपे-पुते अपने घर, दिव्य वृक्षोंके मूल और यज्ञ-कुण्ड—ये सभी उत्तम स्थान हैं। इन सबमें श्राद्ध करना चाहिये।

अब श्राद्धके लिये वर्जित स्थान बतलाता हूँ। किरात (किलात), कलिङ्ग (उड़ीसा), कोङ्कण, कृमि, दशार्ण, कुमार्य, तङ्गण, क्रथ, सिन्धु नदीका उत्तर तट, नर्मदाका दक्षिण तट और करतोयाका पूर्व तट—इन प्रदेशोंमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। प्रत्येक मासकी अमावास्या और पूर्णिमाको श्राद्धके योग्य काल

* अन्नस्य हि प्रदानेन नरो याति परां गतिम्। सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्। (२१८। २६-२७)

बताया गया है। नित्यश्राद्धमें विश्वेदेवोंका पूजन नहीं होता। नैमित्तिक श्राद्ध विश्वेदेवोंके पूजनपूर्वक होता है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीन प्रकारके श्राद्ध माने गये हैं। इन तीनोंका प्रतिवर्ष अनुष्ठान करना चाहिये। जातकर्म आदि संस्कारोंके अवसरपर आभ्युदयिक श्राद्ध भी करना उचित है। उसमें युग्म ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करनेका विधान है। आभ्युदयिक श्राद्ध मातासे आरम्भ होता है। जब सूर्य कन्याराशिपर जाते हैं, तब कृष्णपक्षके पंद्रह दिनोंतक पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये। प्रतिपदाको श्राद्ध करनेसे धनकी प्राप्ति होती है। द्वितीया संतान देनेवाली है। तृतीया पुत्रप्राप्तिकी अभिलाषा पूर्ण करती है। चतुर्थी शत्रुका नाश करनेवाली है। पञ्चमीको श्राद्ध करनेसे मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त करता है और षष्ठीको श्राद्ध करके वह पूजनीय होता है। सप्तमीको गणोंका आधिपत्य, अष्टमीको उत्तम बुद्धि, नौमीको स्त्री, दशमीको मनोरथकी पूर्णता और एकादशीको श्राद्ध करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण वेदोंको प्राप्त करता है। द्वादशीको पितरोंकी पूजा करनेवाला मानव विजय-लाभ करता है। त्रयोदशीको श्रद्धासहित श्राद्ध करनेवाला पुरुष संतान-वृद्धि, पशु, मेधा, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु अथवा ऐश्वर्यका भागी होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जिसके पितर युवावस्थामें ही मृत्युको प्राप्त हुए अथवा शस्त्रद्वारा मारे गये हों, वे उन पितरोंको तृप्त करनेकी इच्छासे चतुर्दशी तिथिको श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करें। जो पुरुष पवित्र होकर अमावास्याको यत्नपूर्वक श्राद्ध करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं तथा अक्षय स्वर्गको प्राप्त करता है।

मुनिवरो! अब पितरोंकी प्रसन्नताके लिये जो-जो वस्तु देनी चाहिये, उसका वर्णन सुनो। जो श्राद्धकर्ममें गुडमिश्रित अन्न, तिल, मधु अथवा मधुमिश्रित अन्न देता है, उसका वह सम्पूर्ण दान अक्षय होता है। पितर कहते हैं—'क्या हमारे कुलमें ऐसा कोई पुरुष होगा, जो हमें जलाञ्जलि देगा, वर्षामें और मघा नक्षत्रमें हमको मधुमिश्रित खीर अर्पण करेगा? मनुष्योंको बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये। यदि उनमेंसे एक भी गया चला जाय अथवा कन्याका विवाह करे या नील वृषका उत्सर्ग करे तो पितरोंको पूर्ण तृप्ति और उत्तम गति प्राप्त हो।' कृत्तिका नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेवाला मानव स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। संतानकी इच्छा रखनेवाला पुरुष रोहिणीमें श्राद्ध करे। मृगशिरामें श्राद्ध करनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है। आर्द्रामें शौर्य और पुनर्वसुमें स्त्रीकी प्राप्ति होती है; पुष्यमें अक्षय धन, आश्लेषामें उत्तम आयु, मघामें संतान और पुष्टि तथा पूर्वाफाल्गुनीमें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। उत्तराफाल्गुनीमें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य संतानवान् और श्रेष्ठ होता है। हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे शास्त्रज्ञानमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है। चित्रामें रूप, तेज और संतति मिलती है। स्वातीमें श्राद्ध करनेसे व्यापारमें लाभ होता है। विशाखा पुत्रकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली है। अनुराधामें श्राद्ध करनेसे चक्रवर्ती-पदकी प्राप्ति होती है। ज्येष्ठामें श्राद्धसे प्रभुत्व प्राप्त होता है। मूलमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष उत्तम आरोग्य लाभ करता है। पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें यशकी प्राप्ति होती है। उत्तराषाढ़ामें श्राद्धसे शोक दूर होता है। श्रवणमें श्राद्धके अनुष्ठानसे शुभ लोक प्राप्त होते हैं। धनिष्ठामें श्राद्धसे अधिक धनका लाभ होता है। अभिजित्में श्राद्धसे वेदोंकी विद्वत्ता प्राप्त होती है। शतभिषामें पितरोंकी पूजा करनेसे वैद्यकके कार्यमें सिद्धि प्राप्त होती है। पूर्वाभाद्रपदामें श्राद्धसे भेड़ और बकरी तथा उत्तराभाद्रपदामें गौएँ प्राप्त होती हैं। रेवतीमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे जस्ता आदि धातुओंकी तथा अश्विनीमें घोड़ोंकी प्राप्ति होती है। भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष उत्तम आयु प्राप्त करता है। तत्त्वज्ञ पुरुष उक्त नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेपर ऐसे ही फलोंके भागी होते हैं। अतः अक्षय फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको कन्याराशिपर सूर्यके रहते उक्त नक्षत्रोंमें काम्य श्राद्धका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। सूर्यके कन्याराशिपर स्थित रहते मनुष्य जिन-जिन कामनाओंका चिन्तन करते हुए श्राद्ध करते हैं, उन सबको प्राप्त कर लेते हैं। जब सूर्य कन्याराशिपर स्थित हों, तब नान्दीमुख पितरोंका भी श्राद्ध करना चाहिये; क्योंकि उस समय सभी पितर पिण्ड पानेकी इच्छा रखते हैं। जो राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका दुर्लभ फल प्राप्त करना चाहता हो, उसे कन्याराशिपर सूर्यके रहते जल, शाक और मूल आदिसे भी पितरोंकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। उत्तराफाल्गुनी और हस्त नक्षत्रोंपर सूर्यदेवके स्थित रहते जो भक्तिपूर्वक पितरोंका पूजन करता है, उसका स्वर्गलोकमें निवास होता है। उस समय यमराजकी आज्ञासे पितरोंकी पुरी तबतक खाली रहती है, जबतक कि सूर्य वृश्चिक राशिपर मौजूद रहते हैं। वृश्चिक बीत जानेपर भी जब कोई श्राद्ध नहीं करता, तब देवताओंसहित पितर मनुष्यको दुःसह शाप देकर खेदपूर्वक लंबी साँसें लेते हुए

अपनी पुरीको लौट जाते हैं। अष्टका[1], मन्वन्तरा[2] तथा अन्वष्टका[3] तिथियोंको भी श्राद्ध करना चाहिये। वह मातृवर्गसे आरम्भ होता है[4]।

ग्रहण, व्यतीपात, एक राशिपर सूर्य और चन्द्रमाके संगम, जन्मनक्षत्र तथा ग्रहपीड़ाके अवसरपर पार्वण श्राद्ध करनेका विधान है। दोनों अयनोंके आरम्भके दिन, दोनों विषुव[5] योगोंके आनेपर तथा प्रत्येक संक्रान्तिके दिन विधिपूर्वक उत्तम श्राद्ध करना चाहिये। इन दिनोंमें पिण्डदानको छोड़कर शेष सभी श्राद्ध-सम्बन्धी कार्य करने चाहिये। वैशाखकी शुक्ला तृतीया और कार्तिक शुक्ला नवमीको संक्रान्तिकी विधिसे श्राद्ध करना उचित है। भादोंकी त्रयोदशी और माघकी अमावास्याको खीरसे श्राद्ध करना चाहिये। जब कोई वेदवेत्ता एवं अग्निहोत्री श्रोत्रिय ब्राह्मण घरपर पधारे, तब उस एक ब्राह्मणके द्वारा भी विधिपूर्वक उत्तम श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। जिस दिन साधुपुरुषोंद्वारा प्रशंसित श्राद्धके योग्य कोई वस्तु प्राप्त हो जाय, उस दिन द्विजोंको पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये। माता और पिताकी मृत्युके दिन प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। यदि पिताके भाई अथवा अपने बड़े भाईकी मृत्यु हो गयी हो और उनके कोई पुत्र नहीं हो तो उनके लिये भी निधन-तिथिको प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना उचित है। पार्वण श्राद्धमें पहले विश्वेदेवोंका आवाहन और पूजन होता है। किंतु एकोद्दिष्टमें ऐसा नहीं होता। देवकार्यमें दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही निमन्त्रित करे। इसी प्रकार मातामहोंके श्राद्धकार्यमें भी समझना चाहिये।

जो हालका मरा हो, उसके लिये सदा बाहर जलके समीप पृथ्वीपर तिल और कुशसहित पिण्ड और जल देना चाहिये। मृत्युके तीसरे दिन प्रेतका अस्थि-चयन करना उचित है। घरमें किसीकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है।* सूतक निवृत्त हो जानेपर घरमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना बताया गया है। बारहवें दिन, एक मासपर, फिर डेढ़ मासपर तथा उसके बाद प्रतिमास एक वर्षतक श्राद्ध करना चाहिये। वर्ष बीतनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध करना उचित है। सपिण्डीकरण हो जानेपर उसके लिये पार्वण श्राद्धका विधान है। सपिण्डीकरणके बाद मृत व्यक्ति प्रेतभावसे मुक्त होकर पितरोंके स्वरूपको प्राप्त होते हैं। पितर दो प्रकारके हैं—अमूर्त और मूर्तिमान्। नान्दीमुख नामवाले पितर अमूर्त होते हैं और पार्वण श्राद्धके पितर मूर्तिमान् बताये गये हैं। एकोद्दिष्ट श्राद्ध ग्रहण करनेवाले पितरोंकी 'प्रेत' संज्ञा है। इस प्रकार पितरोंके तीन भेद स्वीकार किये गये हैं।

मुनियोंने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! मरे हुए पिता आदिका सपिण्डीकरण श्राद्ध कैसे करना चाहिये? यह हमें विधिपूर्वक बताइये।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! मैं सपिण्डीकरण श्राद्धकी विधि बतलाता हूँ, सुनो। सपिण्डीकरण श्राद्ध विश्वेदेवोंकी पूजासे रहित होता है। इसमें एक ही अर्घ्य और एक ही पवित्रकका विधान है। अग्निकरण और आवाहनकी क्रिया भी इसमें नहीं होती। सपिण्डीकरणमें अपसव्य होकर अयुग्म ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इसमें जो विशेष क्रिया है, उसका वर्णन करता हूँ; एकाग्रचित्त होकर सुनो। सपिण्डीकरणमें तिल, चन्दन और जलसे युक्त चार पात्र होते हैं। उनमेंसे तीन तो पितरोंके लिये रक्खे और एक प्रेतके लिये। प्रेतके पात्रसे अर्घ्यजल लेकर 'ये समानाः समनसः' इत्यादि मन्त्रका जप करते हुए पितरोंके तीनों पात्रोंमें छोड़ना चाहिये। शेष कार्य अन्य श्राद्धोंकी भाँति करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये भी इसी प्रकार एकोद्दिष्टका विधान है। यदि पुत्र न हो तो स्त्रियोंका सपिण्डीकरण नहीं होता। पुरुषोंको उचित है कि वे स्त्रियोंके लिये भी प्रतिवर्ष उनकी मृत्युतिथिको एकोद्दिष्ट श्राद्ध करें। पुत्रके अभावमें सपिण्ड[1] और सपिण्डके अभावमें सहोदर[2]के इस विधिको पूर्ण करें। जिसके कोई पुत्र न हो, उसका श्राद्ध

---

१. पौष, माघ, फाल्गुन तथा चैत्रके कृष्णपक्षकी अष्टमियोंको अष्टका कहते हैं। उनमें गृह्योक्त अष्टका-कर्म किये जाते हैं। इसीलिये उनका नाम अष्टका है। २. प्राचीन कालका एक प्रकारका उत्सव, जो आषाढ़ शुक्ल दशमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी और भाद्र शुक्ल तृतीयाको होता था। ३. पूर्वोक्त अष्टका तिथियोंके दूसरे दिनकी चारो नवमी तिथियोंको अन्वष्टका कहते हैं। ४. इस श्राद्धको आभ्युदयिक श्राद्ध कहते हैं। इसमें पहले माता, पितामही और प्रपितामहीका आवाहन-पूजन आदि होता है। उसके बाद पिता, पितामह, प्रपितामह और मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामहका पूजन आदि कार्य होता है। ५. जिस समय सूर्य विषुव रेखापर पहुँचते और दिन-रात बराबर होते हैं, उसे विषुव कहते हैं। यह समय वर्षमें दो बार आता है।

* दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥
(२२० । ६३)

१. २. देखिये पृष्ठ ११६ की टिप्पणी।

उसके दौहित्र कर सकते हैं। पुत्रिका-विधिसे ब्याही हुई कन्याके पुत्र तो अपने नाना आदिका श्राद्ध करनेके अधिकारी हैं ही। जिनकी द्व्यामुष्यायण[2] संज्ञा है, ऐसे पुत्र नाना और बाबा दोनोंका नैमित्तिक श्राद्धोंमें भी विधिपूर्वक पूजन कर सकते हैं। कोई भी न हो तो स्त्रियाँ ही अपने पतियोंका मन्त्रोच्चारण किये बिना श्राद्ध कर सकती हैं। वे भी न हों तो राजा मृतकके सजातीय मनुष्योंद्वारा दाह आदि समस्त क्रियाएँ पूर्ण कराये; क्योंकि राजा सब वर्णोंका बन्धु होता है।

ब्राह्मणो! सपिण्डीकरणके बाद पिताके जो प्रपितामह हैं, वे लेपभागभोजी पितरोंकी श्रेणीमें चले जाते हैं। उन्हें पितृपिण्ड पानेका अधिकार नहीं रहता। उनसे आरम्भ करके चार पीढ़ी ऊपरके पितर, जो अबतक पुत्रके लेपभागका अन्न ग्रहण करते थे, उसके सम्बन्धसे रहित हो जाते हैं। अब उनको लेपभागका अन्न पानेका अधिकार नहीं रहता। वे सम्बन्धहीन अन्नका उपभोग करते हैं। पिता, पितामह और प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंको पिण्डका अधिकारी समझना चाहिये। इनसे भिन्न अर्थात् पितामहके पितामहसे लेकर ऊपरके जो तीन पीढ़ीके पुरुष हैं, वे लेपभागके अधिकारी हैं। इस प्रकार छः ये और सातवाँ यजमान—सब मिलकर सात पुरुषोंका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है—ऐसा मुनियोंका कथन है। यह सम्बन्ध यजमानसे लेकर ऊपरके लेपभागभोजी पितरोंतक माना जाता है। इनसे ऊपरके सभी पितर पूर्वज कहलाते हैं। पूर्वजोंमेंसे जो नरकमें निवास करते हैं, जो पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हैं तथा जो भूत आदिके रूपमें स्थित हैं, उन सबको विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला यजमान तृप्त करता है। जिससे जिसकी तृप्ति होती है, वह बतलाता हूँ; सुनो। मनुष्य पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाचयोनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। स्नानके वस्त्रसे जो जल पृथ्वीपर टपकता है, उससे वृक्षयोनिमें पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। नहानेपर अपने शरीरसे जो जलके कण पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे उन पितरोंकी तृप्ति होती है, जो देवभावको प्राप्त हुए हैं। पिण्डोंके उठानेपर जो जलके कण पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। कुलमें जो बालक दाँत निकलनेके पहले दाह आदि कर्मके अनधिकारी रहकर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सम्मार्जनके जलका आहार करते हैं। ब्राह्मणलोग भोजन करके जो हाथ-मुँह धोते हैं और चरणोंका प्रक्षालन करते हैं, उस जलसे अन्यान्य पितरोंकी तृप्ति होती है। ब्राह्मणो! इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंके जो पितर दूसरी-दूसरी योनियोंमें चले गये हैं, वे भी यजमान और ब्राह्मणोंके हाथसे बिखरे हुए अन्न और जलके द्वारा पूर्ण तृप्त होते हैं। मनुष्य अन्यायोपार्जित धनसे जो श्राद्ध करते हैं, उससे चाण्डाल आदि योनियोंमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। इस प्रकार यहाँ श्राद्ध करनेवाले भाई-बन्धुओंके द्वारा जो अन्न और जल पृथ्वीपर डाले जाते हैं, उनके द्वारा बहुत-से पितर तृप्त होते हैं। अतः मनुष्यको उचित है कि वह पितरोंके प्रति भक्ति रखते हुए शाकमात्रके द्वारा भी विधिपूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्ध करनेवाले लोगोंके कुलमें कोई दुःख नहीं भोगता।

श्राद्धका दान संयमी, अग्निहोत्री, शुद्धचरित्र, विद्वान् एवं विशेषतः श्रोत्रिय ब्राह्मणको देना चाहिये। त्रिणाचिकेत[1], त्रिमधु[2], त्रिसुपर्ण[3], षडङ्गवेत्ता, माता-पिताका भक्त, भानजा, सामवेदका ज्ञाता, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, उपाध्याय, मामा, श्वशुर, साला, सम्बन्धी, मण्डल ब्राह्मणका पाठ करनेवाला, पुराणोंका तत्त्वज्ञ, संकल्पहीन, संतोषी और प्रतिग्रह न लेनेवाला—ये श्राद्धमें सम्मिलित करनेयोग्य पंक्तिपावन ब्राह्मण हैं। ऊपर बताये हुए श्रेष्ठ द्विजोंको देवयज्ञ अथवा श्राद्धमें एक दिन पहले ही निमन्त्रण देना चाहिये। उसी समयसे ब्राह्मणों तथा श्राद्धकर्ताको भी संयमसे रहना चाहिये। जो श्राद्धमें दान देकर अथवा श्राद्धमें भोजन करके मैथुन करता है, उसके पितर एक मासतक वीर्यमें शयन करते हैं। जो स्त्री-सहवास करके श्राद्ध करता अथवा श्राद्धमें भोजन करता है, उसके पितर उसीके वीर्य और मूत्रका एक मासतक आहार करते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुषको एक दिन पहले ही ब्राह्मणोंके पास निमन्त्रण भेजना चाहिये। यदि पहले दिन ब्राह्मण न मिल सकें तो श्राद्धके दिन भी निमन्त्रण किया जा सकता है। परन्तु स्त्री-प्रसङ्गी ब्राह्मणोंको कदापि निमन्त्रित न करे। यदि समयपर भिक्षाके लिये संयमी यति स्वयं पधारे हों तो उन्हें भी नमस्कार आदिके द्वारा प्रसन्न करके संयतचित्तसे अवश्य भोजन कराये। विद्वान् पुरुष श्राद्धमें योगियोंको भी भोजन

१. मनुस्मृतिके अनुसार कन्याका विवाह इस शर्तके साथ भी किया जा सकता है कि उसका पुत्र अपने नानाके श्राद्ध करनेका अधिकारी समझा जाय। विवाहकी यह विधि पुत्रिका-विधि कहलाती है। पुत्रहीन पिता ही पुत्रिका-विधिसे अपनी कन्याका विवाह कर सकता है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र औरस पुत्रकी ही भाँति नानाकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी होता है। २. देखिये पृष्ठ ११६ की टिप्पणी।

१.२.३. देखिये पृष्ठ ११७ की टिप्पणी।

कराये। क्योंकि पितरोंका आधार योग है, अतः योगियोंका सदा पूजन करना चाहिये। यदि हजारों ब्राह्मणोंमें एक भी योगी हो तो वह जलसे नौकाकी भाँति यजमान और श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंको भी तार देता है। इस विषयमें ब्रह्मवादी विद्वान् पितरोंकी गायी हुई एक गाथाका गान करते हैं। पूर्वकालमें राजा पुरूरवाके पितरोंने उसका गान किया था। वह गाथा इस प्रकार है—'हमारी वंश-परम्परामें कब किसीको ऐसा श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त होगा, जो योगियोंको भोजन करानेसे बचे हुए अन्नको लेकर पृथ्वीपर हमारे लिये पिण्ड देगा? अथवा गयामें जाकर पिण्डदान करेगा? या हमारी तृप्तिके लिये सामयिक शाक, तिल, घी और खिचड़ी देगा? अथवा त्रयोदशी तिथि और मघा नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करेगा और दक्षिणायनमें हमारे लिये मधु और घीसे मिली हुई खीर देगा?'

इसलिये सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि तथा पापसे मुक्ति चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह भक्तिपूर्वक पितरोंकी पूजा करे। श्राद्धमें तृप्त किये हुए पितर मनुष्योंके लिये वसु, रुद्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह और तारोंकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हैं। इतना ही नहीं, वे आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य भी देते हैं। पितरोंको पूर्वाह्णकी अपेक्षा अपराह्ण अधिक प्रिय है। घरपर आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करके उन्हें पवित्रयुक्त हाथसे आचमन करानेके पश्चात् आसनोंपर बिठाये; फिर विधिपूर्वक श्राद्ध करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और प्रिय वचन कहकर विदा करे। दरवाजेतक उन्हें पहुँचानेके लिये पीछे-पीछे जाय और उनकी आज्ञा लेकर लौटे। तदनन्तर नित्य-क्रिया करे और अतिथियोंको भोजन कराये। किन्हीं-किन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंका विचार है कि यह नित्यकर्म भी पितरोंके ही उद्देश्यसे होता है। दूसरे लोगोंका कहना है कि इससे पितरोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। शेष कार्य सदाकी भाँति करे। किन्हीं-किन्हींका मत है कि पितरोंके लिये पृथक् पाक बनाकर श्राद्ध करना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि ऐसा न करके पहले बने हुए पाकसे ही अन्न लेकर सब कार्य पूर्ववत् करना चाहिये।

तदनन्तर श्राद्धकर्ता मनुष्य अपने भृत्य आदिके साथ अवशिष्ट अन्न भोजन करे। धर्मज्ञ पुरुषको इसी प्रकार एकाग्रचित्त होकर पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये और जिस प्रकार ब्राह्मणोंको संतोष हो, वैसी चेष्टा करनी चाहिये। अब मैं श्राद्धमें त्याग देने योग्य अधम ब्राह्मणोंका वर्णन करता हूँ। मित्रद्रोही, खराब नखोंवाला, नपुंसक, क्षयका रोगी, कोढ़ी, व्यापारी, काले दाँतोंवाला, गंजा, काना, अंधा, बहरा, जड, गूँगा, पङ्गु, हिजड़ा, खराब चमड़ेवाला, हीनाङ्ग, लाल आँखोंवाला, कुबड़ा, बौना, विकराल, आलसी, मित्रके प्रति शत्रुभाव रखनेवाला, कलङ्कित कुलमें उत्पन्न, पशु पालन करनेवाला, अच्छी आकृतिसे हीन, परिवित्ति (छोटे भाईके विवाहित होनेपर भी स्वयं अविवाहित रहनेवाला), परिवेत्ता (बड़े भाईके ब्याहसे पहले ही विवाह कर लेनेवाला), परिवेदनिका (बड़ी बहिनके विवाहके पहले ही ब्याह करनेवाली स्त्री) का पुत्र, शूद्रजातीय स्त्रीका स्वामी और उसका पुत्र—ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध-भोजनके अधिकारी नहीं हैं। शूद्रीके पुत्रका संस्कार करानेवाला, अविवाहित, जो दूसरेकी पत्नी रह चुकी हो, ऐसी स्त्रीका पति, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, वैसे गुरुसे पढ़नेवाला, सूतकके अन्नपर जीविका-निर्वाह करनेवाला, सोमरसका विक्रय करनेवाला, चोर, पतित, ब्याज लेकर खानेवाला, शठ, चुगलखोर, वेदोंका त्याग करनेवाला, अग्निहोत्रका त्यागी, राजाका पुरोहित, सेवक, विद्याहीन, द्वेष रखनेवाला, वृद्ध पुरुषोंसे शत्रुता रखनेवाला, दुर्धर्ष, क्रूर, मूढ़, मन्दिरकी आयपर जीनेवाला, नक्षत्र बतानेवाला, बाण बनानेवाला और यज्ञके अनधिकारी पुरुषोंसे यज्ञ करानेवाला—ये तथा अन्य जितने भी निन्दित और अधम ब्राह्मण हैं, उन्हें श्राद्धमें सम्मिलित न करे; क्योंकि वे पंक्तिको दूषित करनेवाले हैं। जहाँ दुष्ट पुरुषोंका आदर और साधु पुरुषोंकी अवहेलना होती हो, वहाँ देवताओंका दिया हुआ भयंकर दण्ड तत्काल ऊपर पड़ता है। जो शास्त्र-विधिकी अवहेलना करके मूर्खको भोजन कराता है, वह दाता प्राचीन धर्मका त्याग करनेके कारण नष्ट हो जाता है। जो अपने आश्रयमें रहनेवाले ब्राह्मणका परित्याग करके दूसरेको बुलाकर भोजन कराता है, वह दाता उस ब्राह्मणके शोकोच्छ्वासकी आगमें दग्ध होकर नष्ट हो जाता है।

वस्त्रके बिना कोई क्रिया, यज्ञ, वेदाध्ययन और तपस्या नहीं होती। अतः श्राद्धकालमें वस्त्रका दान विशेष रूपसे करना चाहिये।* जो रेशमी, सूती और बिना कटा हुआ वस्त्र श्राद्धमें देता है, वह उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है। जैसे

* वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च।
तस्माद्वासांसि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः॥
(२२०। १३९)

बहुत-सी गौओंमें बछड़ा अपनी माताके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार श्राद्धमें ब्राह्मणोंका भोजन किया हुआ अन्न जीवके पास, वह जहाँ भी रहता है, पहुँच जाता है। नाम, गोत्र और मन्त्र—ये अन्नको वहाँ ढोकर नहीं ले जाते, अपितु मृत्युको प्राप्त हुए जीवोंतकको तृप्ति पहुँचती है—वे श्राद्धसे तृप्ति लाभ करते हैं। 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः।'* इस मन्त्रका श्राद्धके आरम्भ और अन्तमें तीन बार जप करे। पिण्डदान करते समय भी एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना चाहिये। इससे पितर शीघ्र ही आ जाते हैं और राक्षस भाग खड़े होते हैं, तथा तीनों लोकोंके पितर तृप्त होते हैं। यह मन्त्र पितरोंको तारनेवाला है। श्राद्धमें रेशम, सन अथवा कपासका नया सूत देना चाहिये। ऊन अथवा पाटका सूत्र वर्जित है। विद्वान् पुरुष जिसमें कोर न हो, ऐसा वस्त्र फटा न होनेपर भी श्राद्धमें न दे; क्योंकि उससे पितरोंको तृप्ति नहीं होती और दाताके लिये भी अन्यायका फल प्राप्त होता है। पिता आदिमेंसे जो जीवित हो, उसको पिण्ड नहीं देना चाहिये, अपितु उसे विधिपूर्वक उत्तम अन्न भोजन कराना चाहिये। भोगकी इच्छा रखनेवाला पुरुष श्राद्धके पश्चात् पिण्डको अग्निमें डाल दे और जिसे पुत्रकी अभिलाषा हो, वह मध्यम अर्थात् पितामहके पिण्डको मन्त्रोच्चारणपूर्वक अपनी पत्नीके हाथमें दे दे और पत्नी उसे खा ले। जो उत्तम कान्तिकी इच्छा रखनेवाला हो, वह श्राद्धके अनन्तर सब पिण्ड गौओंको खिला दे। बुद्धि, यश और कीर्ति चाहनेवाला पुरुष पिण्डोंको जलमें डाल दे। दीर्घ आयुकी अभिलाषावाला पुरुष उसे कौओंको दे दे। कुमारशालाकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य वह पिण्ड मुर्गोंको दे दे। कुछ ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि पहले ब्राह्मणोंसे 'पिण्ड उठाओ' ऐसी आज्ञा ले ले; उसके बाद पिण्डोंको उठाये। अतः ऋषियोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार श्राद्धका अनुष्ठान करे; अन्यथा दोष लगता है और पितरोंको भी नहीं मिलता।

जौ, धान, तिल, गेहूँ, मूँग, सावाँ, सरसोंका तेल, तिन्नीका चावल और कँगनी आदिसे पितरोंको तृप्त करे। आम, अमड़ा, बेल, अनार, बिजौरा, पुराना आँवला, खीर, नारियल, फालसा, नारंगी, खजूर, अंगूर, नीलकैथ, परवल, चिरौंजी, बेर, जंगली बेर, इन्द्रजौ और भतुआ—इन फलोंको श्राद्धमें यत्नपूर्वक लेना चाहिये। गुड़, शक्कर, खाँड़, गायका दूध, दही, घी, तिलका तेल, सेंधा तथा समुद्र और झीलसे उत्पन्न होनेवाला नमक, पवित्र सुगन्ध, चन्दन, अरगजा तथा केसर भी पितरोंको निवेदन करे। सामयिक शाक, चौलाई, बथुआ, मूली तथा जंगली साग श्राद्धमें देनेयोग्य हैं। चम्पा, चमेली, बेला, लोध, अशोक, तुलसी, तिलक, शतपत्रा, सुगन्धित शेफालिका, कुब्जक, तगर, बनकेवड़ा और जूही आदि पुष्प श्राद्धमें अर्पण करने योग्य हैं। कमल, कुमुद, पद्म, पुण्डरीक, इन्दीवर, कोकनद और कह्लार भी पितरोंको निवेदन करे। गूगल, चन्दन, श्रीवास (बेल), अगर तथा ऋषि-गुग्गुल—ये पितरोंके योग्य धूप हैं। चना और मसूर श्राद्धमें वर्जित हैं। स्त्री, ऊँटनी और भेड़के दूध, दही और घीका परित्याग करे। ताड़, वरुमा, काँकोल, बहुपत्रा (शिवलिंगी), अर्जुनी-फल, नीबू, रक्तबिल्व और सालके फलका भी श्राद्धमें त्याग करे। पितृकर्ममें कस्तूरी, गोरोचन, पद्मचन्दन, कालेयक (काली अगर), हींग, अजवायन और लोहबानकी गन्ध वर्जित है। पालकका साग, बड़ी इलायची, चिरायता, शलजम, गाजर, अमलोनीका साग, चूकाका साग, चनेकी पत्तीका साग, पहाड़ी कन्द, सोवा, सौंफ, पटुआ साग, गन्धशूकर (वाराहीकन्द), हलभृत्य, सरसों, प्याज, लहसुन, शकरकन्द, भैंसाकंद, जिमीकंद, सुथनी, लौकी, पेहँटुल, कुम्हड़ा, मिर्च, सोंठ, पीपल, बैंगन, केवाँच, बहेड़ा, कच्चे गेहूँका अर्क, सत्तू, बासी अन्न, हींग, कचनार और सहिजन—इन सब वस्तुओंका श्राद्धमें उपयोग न करे। जो अत्यन्त खट्टा, अधिक चिकना, सूक्ष्म, बहुत देरका बना हुआ और नीरस हो तथा जिसमेंसे मदिराकी-सी गन्ध आती हो, ऐसे पदार्थोंको श्राद्धमें न दे। चिरायता, नीम, राई, धनिया, तरबूज और अमलबेद भी श्राद्धमें वर्जित हैं। अनार, छोटी इलायची, नारंगी, अदरख, इमली, अमड़ा और नैपाली धनियाका श्राद्धमें उपयोग करना चाहिये। खीर, सेमर, मूँग, लड्डू, पानक, रसाल (आम) और गोदुग्धको भी श्राद्धमें भक्तिपूर्वक देना चाहिये। जो भी स्वादिष्ठ एवं स्निग्ध खाद्य पदार्थ हों, उनका श्राद्धमें उपयोग करना चाहिये। जिनमें खटाई और कड़ुआपन कम हो, ऐसी ही वस्तुओंका उपयोग करना उचित है। अधिक खट्टे, अधिक नमकीन और अधिक कड़वे पदार्थ असुरोंके भोजन हैं; अतः उनको दूरसे ही त्याग दे। मीठे, स्नेहयुक्त, थोड़े चरपरे और थोड़े खट्टे स्वादिष्ठ पदार्थ देवताओंके भोजन हैं। अतः उन्हींका श्राद्धमें उपयोग करे। श्राद्धमें निषिद्ध वस्तु भोजन करानेवाला मनुष्य रौरव

* देवता, पितर, महायोगी, स्वाहा और स्वधाको सदा बारंबार नमस्कार है।

नरकमें पड़ता है। अभक्ष्य वस्तुएँ ब्राह्मणोंको कदापि न दे। बरैंकी पत्तीका साग, जँभीरी नीबू, सहिजन, कचनार, खली, मसूर, गाजर, सनकी पत्तीका साग, कोदो, तालमखाना, चूकाका साग, कम्बुक, पदमकाठका फल, लौकी, ताड़ी और ताड़ वृक्षके फलका श्राद्धमें भोजन करनेसे मनुष्य नरकमें पड़ता है। जो पितरोंके लिये उक्त निषिद्ध वस्तुएँ अर्पित करता है, वह उन पितरोंके साथ ही पूयवह नामक नरकमें गिरता है। यदि अनजानमें या प्रमादवश एक बार इन निषिद्ध वस्तुओं-का भक्षण कर ले तो उसके दोषकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। सात दिनोंतक क्रमशः फल, मूल, दूध, दही, तक्र, गोमूत्र और जौकी लप्सी खाकर रहे। इस प्रकार ब्राह्मणों और विशेषतः भगवान् विष्णुके भक्तोंको उचित है कि वे एक बार भी निषिद्ध आचरण कर लेनेपर इस प्रकार शरीरकी शुद्धि करें। ऊपर बतायी हुई निषिद्ध वस्तुओंका अवश्य त्याग करे। अपनी शक्तिके अनुसार श्राद्धकी सामग्री एकत्रित करके विधिपूर्वक श्राद्ध करना सबका कर्तव्य है। जो अपने वैभवके अनुसार इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह मानव ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्त कर देता है।

मुनियोंने पूछा—ब्रह्मन्! जिसके पिता तो जीवित हों, किंतु पितामह और प्रपितामहकी मृत्यु हो गयी हो, उसे किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये? यह विस्तारपूर्वक बतलाइये।*

व्यासजी बोले—पिता जिनके लिये श्राद्ध करते हैं, उनके लिये स्वयं पुत्र भी श्राद्ध कर सकता है। ऐसा करनेसे लौकिक और वैदिक धर्मकी हानि नहीं होती।†

मुनियोंने पूछा—विप्रवर! जिसके पिताकी मृत्यु हो गयी हो और पितामह जीवित हों, उसे किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये? यह बतानेकी कृपा करें।‡

व्यासजी बोले—पिताको तो पिण्ड दे, पितामहको प्रत्यक्ष भोजन कराये और प्रपितामहको भी पिण्ड दे दे। यही शास्त्रोंका निर्णय है। मरे हुएको पिण्ड देने और जीवितको भोजन करानेका विधान है। उस अवस्थामें सपिण्डीकरण और पार्वणश्राद्ध नहीं हो सकता।§

जो मनुष्य श्राद्ध-सम्बन्धी विधिका पालन करता है, वह आयु, धन और पुत्रोंके साथ ही वृद्धिको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो श्राद्धके समय इस पितृमेध-विषयक अध्यायका पाठ करता है, उसके दिये हुए अन्नको पितरलोग तीन युगोंतक खाते रहते हैं। इस प्रकार मैंने यहाँ श्राद्ध-कल्पका वर्णन किया। यह पापोंका नाश और पुण्योंकी वृद्धि करनेवाला है। श्राद्धके अवसरपर मनुष्यको संयतचित्त होकर इसका श्रवण और पाठ करना चाहिये।

गृहस्थोचित सदाचार तथा कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! इस प्रकार गृहस्थ पुरुष हव्य, कव्य और अन्नसे देवता, पितर तथा अतिथियोंका पूजन करे। सम्पूर्ण भूत, भरण-पोषणके योग्य कुटुम्बीजन, पशु, पक्षी, चींटियाँ, संन्यासी, भिक्षुक, पथिक तथा सदाचारी ब्राह्मण आदि जो भी उपस्थित हों, गृहस्थ पुरुष अपने घरमें सबको संतुष्ट करे। जो नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंका उल्लङ्घन करता है, वह पापभोजी है।

मुनि बोले—महर्षे! आपने पुरुषोंके नित्य, नैमित्तिक

---

* पिता जीवति यस्याथ मृतौ द्वौ पितरौ पितुः। कथं श्राद्धं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरशो वद॥
(२२०।२०५)

† यस्मै दद्यात्पिता श्राद्धं तस्मै दद्यात्सुतः स्वयम्। एवं न हीयते धर्मो लौकिको वैदिकस्तथा॥
(२२०।२०६)

‡ मृतः पिता जीवति च यस्य ब्रह्मन् पितामहः। स हि श्राद्धं कथं कुर्यादेतत्त्वं वक्तुमर्हसि॥
(२२०।२०७)

§ पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम्। प्रपितामहस्य पिण्डं वै ह्ययं शास्त्रेषु निर्णयः॥
मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत्। सपिण्डीकरणं नास्ति न च पार्वणमिष्यते॥
(२२०।२०८-२०९)

और काम्य--त्रिविध कर्मोंका वर्णन किया; अब हम सदाचार-का वर्णन सुनना चाहते हैं, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य इस लोक और परलोकमें भी सुखका भागी हो।

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो! गृहस्थ पुरुषको सदा ही सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। आचारहीन मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है न परलोकमें। जो सदाचारका उल्लङ्घन करके मनमाना बर्ताव करता है, उस पुरुषका कल्याण यज्ञ, दान और तपस्यासे भी नहीं होता। दुराचारी पुरुषको इस लोकमें बड़ी आयु नहीं मिलती, अतः उत्तम आचाररूप धर्म-का सदा पालन करना चाहिये। सदाचार बुरे लक्षणोंका नाश करता है। ब्राह्मणो! अब मैं सदाचारका स्वरूप बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर उसका पालन करना चाहिये। गृहस्थको धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके साधनका यत्न करना चाहिये। उनके सिद्ध होनेपर उसे इस लोक और परलोकमें सिद्धि प्राप्त होती है। मनको वशमें करके अपनी आयका एक चौथाई भाग पारलौकिक कल्याणके लिये संगृहीत करे। आधे भागसे नित्य-नैमित्तिक कार्योंका निर्वाह करते हुए अपना भरण-पोषण करे तथा एक चौथाई भाग अपने लिये मूल पूँजीके रूपमें रखकर उसे बढ़ाये। ब्राह्मणो! ऐसा करनेसे धन सफल होता है। इसी प्रकार पापकी निवृत्ति तथा पार-लौकिक उन्नतिके लिये विद्वान् पुरुष धर्मका अनुष्ठान करे। वह इस लोकमें भी फल देनेवाला होता है। ब्राह्ममुहूर्तमें जागे। जागकर धर्म और अर्थका चिन्तन करे। इसके बाद शय्या त्याग कर नित्यकर्मसे निवृत्त हो, स्नान आदिसे पवित्र होकर मनको संयममें रखते हुए पूर्वाभिमुख बैठे और आचमन करके संध्योपासन करे। प्रातःकालकी संध्या उस समय आरम्भ करे, जब तारे दिखायी देते हों। इसी प्रकार सायंकालकी संध्योपासना सूर्यास्तसे पहले ही विधिपूर्वक आरम्भ करे। आपत्तिकालके सिवा और किसी समय उसका त्याग न करे। द्विजो! बुरी-बुरी बातें बकना, झूठ बोलना, कठोर वचन मुँहसे निकालना, असत् शास्त्र पढ़ना, नास्तिक-वादको अपनाना तथा दुष्ट पुरुषोंकी सेवा करना अवश्य छोड़ देना चाहिये।* मनको वशमें रखते हुए प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल हवन करे। उदय और अस्तके समय सूर्य-मण्डलका दर्शन न करे। बाल सँवारना, दर्पण देखना, दाँतन करना, आँजन लगाना और देवताओंका तर्पण करना—यह सब कार्य पूर्वाह्णकालमें ही करना चाहिये।

ग्राम, निवासस्थान, तीर्थ और क्षेत्रोंके मार्गमें, जोते हुए खेतमें तथा गोशालामें मल-मूत्र न करे। परायी स्त्रीको नंगी अवस्थामें न देखे। अपनी विष्ठापर दृष्टिपात न करे। रजस्वला स्त्रीका दर्शन, स्पर्श तथा उसके साथ भाषण भी वर्जित है। पानीमें मल-मूत्रका त्याग अथवा मैथुन न करे। बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र, केश, राख, खोपड़ी, भूसी, कोयले, सड़ी-गली वस्तुएँ, रस्सी, तथा केवल पृथ्वीपर और मार्गमें कभी न बैठे। गृहस्थ मनुष्य अपने वैभवके अनुसार देवता, पितर, मनुष्य तथा अन्यान्य प्राणियोंका पूजन करके पीछे भोजन करे। भलीभाँति आचमन करके हाथ-पैर धोकर पवित्र हो पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके भोजनके लिये आसनपर बैठे और हाथोंको घुटनोंके भीतर करके मौनभावसे भोजन करे। भोजनके समय मनको अन्यत्र न ले जाय। यदि अन्न किसी प्रकारकी हानि करनेवाला हो तो उस हानिको ही बताये, उसके सिवा अन्नके और किसी दोषकी चर्चा न करे। भोजनके साथ पृथक् नमक लेकर न खाय। जूठा अन्न खाना वर्जित है। मनुष्यको चाहिये कि मनको वशमें रक्खे और खड़े होकर या चलते-चलते मल-मूत्र-का त्याग, आचमन तथा किसी वस्तुका भक्षण न करे। जूठे मुँह वार्तालाप न करे तथा उस अवस्थामें स्वाध्याय भी वर्जित है। जूठी अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी ओर जान-बूझकर न देखे। दूसरेके आसन, शय्या और बर्तनका भी स्पर्श न करे।

गुरुजनोंके आनेपर उन्हें बैठनेको आसन दे। उठकर प्रणाम आदिके द्वारा उनका आदर-सत्कार करे। उनके अनुकूल वार्तालाप करे। जाते समय उनके पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर पहुँचाये। उनके प्रतिकूल कोई बर्ताव न करे। एक वस्त्र धारण करके भोजन और देवपूजन न करे। बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंसे बोझ न ढुलाये। आगमें मूत्र त्याग न करे। नग्न होकर कभी स्नान और शयन न करे। दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये। बिना कारण बार-बार सिरके ऊपरसे स्नान न करे। सिरसे स्नान कर लेनेपर किसी भी अङ्गमें तेल न लगाये। सब अनध्यायोंके दिन स्वाध्याय बंद रक्खे। ब्राह्मण, अग्नि, गौ तथा सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब न

* पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि॥
असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत्।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च वै द्विजाः॥
(२२१। १८-१९)

करे। दिनमें उत्तरकी ओर और रातमें दक्षिणकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे। जहाँ ऐसा करनेमें कोई बाधा हो, वहाँ इच्छानुसार करे। गुरुके दुष्कर्मकी चर्चा न करे। यदि वे क्रुद्ध हों तो उन्हें विनयपूर्वक प्रसन्न करे। दूसरे लोग भी यदि गुरुकी निन्दा करते हों तो उसे न सुने। ब्राह्मण, राजा, दुःखसे आतुर मनुष्य, विद्यावृद्ध पुरुष, गर्भिणी स्त्री, रोगसे व्याकुल मनुष्य, गूँगा, अंधा, बहरा, मत्त, उन्मत्त, व्यभिचारिणी स्त्री, उपकारी, बालक और पतित --ये यदि सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे हटकर इनको जानेके लिये मार्ग देना चाहिये। विद्वान् पुरुष देवालय, चैत्यवृक्ष, चौराहा, विद्यावृद्ध पुरुष और गुरु--इनको दाहिने करके चले। दूसरोंके धारण किये हुए जूते, वस्त्र और माला आदि स्वयं न पहने। चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा तथा पर्वके दिन तैलाभ्यङ्ग एवं स्त्री-सहवास न करे। बुद्धिमान् मनुष्य बाँहों और पिंडलियोंको ऊपर उठाकर न खड़ा हो तथा पैरोंको भी न हिलाये। पैरसे पैरको न दबाये। किसीको चुभती हुई बात न कहे। निन्दा और चुगली छोड़ दे। दम्भ, अभिमान और तीखे व्यवहार-का त्याग करे। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, हीनाङ्ग और निर्धन मनुष्योंकी खिल्ली न उड़ाये। दूसरेको दण्ड न दे, केवल पुत्र और शिष्यको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे दण्ड दिया जा सकता है। आसनको पैरसे खींचकर न बैठे। सायंकाल और प्रातःकाल पहले अतिथिका सत्कार करके पीछे स्वयं भोजन करे।

पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके ही दाँतन करे। दाँतन करते समय मौन रहे। दाँतनके लिये निषिद्ध वृक्ष एवं लताओंका परित्याग करे। उत्तर और पश्चिमकी ओर सिर करके कभी न सोये। दक्षिण या पूर्व दिशाकी ओर ही मस्तक करके सोना चाहिये। जहाँसे दुर्गन्ध आती हो, ऐसे जलमें तथा रात्रिकालमें स्नान न करे। ग्रहणके समय रात्रिमें भी स्नान करना बहुत उत्तम है। इसके सिवा अन्य समयमें दिनमें ही स्नानका विधान है। वस्त्रके छोरसे अथवा वस्त्र हाथमें लेकर उससे शरीरको न मले। बालों और वस्त्रोंको न झटकारे। विद्वान् पुरुष स्नान किये बिना कभी चन्दन न लगाये। एक दूसरेके वस्त्र और आभूषणोंको अदल-बदलकर न पहने। जिसमें कोर न हो और जो बहुत फट गया हो, ऐसा वस्त्र न पहने। जिसमें कीड़े अथवा बाल पड़े हों, जिसे कुत्तेने देखा अथवा चाट लिया हो, अथवा जो सारभाग निकाल लेनेके कारण दूषित हो गया हो, ऐसे अन्नको कभी न खाय। भोजनके साथ अलग नमक रखकर न खाय। बहुत देरके बने हुए सूखे और बासी अन्नको त्याग दे। पिट्ठी, साग, ईखके रस और दूधकी बनी हुई वस्तुएँ भी यदि बहुत दिनोंकी हों तो उन्हें न खाय। सूर्यके उदय और अस्तके समय शयन न करे। बिना नहाये, बिना बैठे, अन्यमनस्क होकर, शय्यापर बैठकर या सोकर, केवल पृथ्वी-पर बैठकर, बोलते हुए तथा भृत्यवर्गको दिये बिना कदापि भोजन न करे। मनुष्य स्नान करके सबेरे और शाम दो समय विधिपूर्वक भोजन करे।

विद्वान् पुरुषको कभी परायी स्त्रीके साथ समागम नहीं करना चाहिये। परस्त्रीसंगम मनुष्योंके इष्ट, पूर्त और आयु-का नाश करनेवाला है। इस संसारमें परस्त्री-गमनके समान पुरुषकी आयुका विघातक कार्य दूसरा कोई नहीं है।* देव-पूजा, अग्निहोत्र, पितरोंका श्राद्ध, गुरुजनोंको प्रणाम तथा भोजन भलीभाँति आचमन करके करना चाहिये। स्वच्छ, फेनरहित, दुर्गन्धशून्य और पवित्र जल लेकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके आचमन करना चाहिये। जलके भीतरकी, घरकी, बाँबीकी, चूहेके बिलकी और शौचसे बची हुई--ये पाँच प्रकारकी मिट्टियाँ त्याग देने योग्य हैं। हाथ-पैर धोकर एकाग्रचित्तसे मार्जन करके घुटनोंको समेटकर तीन या चार बार आचमन करे; फिर दो बार ओठ पोंछकर आँख, कान, मुख, नासिका तथा मस्तकका स्पर्श करे। इस प्रकार जलसे भलीभाँति आचमन करके पवित्र हो देवपूजन तथा श्राद्ध आदिकी क्रिया करनी चाहिये। छींकने, चाटने, वमन करने, थूकने तथा अस्पृश्यका स्पर्श करनेपर आचमन, सूर्यका दर्शन अथवा दाहिने कानका स्पर्श करना चाहिये। इनमें पहलेके अभावमें दूसरा उपाय करना चाहिये। पहले उपायके सम्भव होनेपर उपायान्तरका अवलम्बन अभीष्ट नहीं।

दाँत न कटकटाये। अपने शरीरपर ताल न दे। दोनों संध्याओंके समय अध्ययन, भोजन और शयनका त्याग करे। सन्ध्याकालमें मैथुन और रास्ता चलना भी मना है। पूर्वाह्णमें देवताओंका, मध्याह्नमें मनुष्योंका तथा अपराह्णकालमें पितरों-

* परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता।
इष्टापूर्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम्॥
न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्शनम्॥
(१२१। ६०-६२)

का भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। देवकार्य या पितृकार्यमें सिरसे स्नान करके प्रवृत्त होना उचित है। पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके क्षौर कराये। उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेपर भी जो कन्या किसी अङ्गसे हीन या रोगिणी हो, उसके साथ विवाह न करे। ईर्ष्याका परित्याग करे। दिनमें शयन अथवा मैथुन न करे। दूसरोंको कष्ट देनेवाला कार्य न करे। कभी किसी भी जीवको पीड़ा न दे। रजस्वला स्त्री चार रातोंतक सभी वर्णके पुरुषोंके लिये त्याज्य है। यदि कन्याका जन्म अभीष्ट न हो तो उसे रोकनेके लिये पाँचवीं रातमें भी स्त्री-सहवास न करे। छठी रात आनेपर स्त्रीके पास जाय, क्योंकि युग्म रात्रियाँ ही इसके लिये श्रेष्ठ हैं। युग्म रात्रियोंमें स्त्री-सहवास करनेसे पुत्र होता है और अयुग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे कन्या उत्पन्न होती है। पर्व आदिके अवसरपर मैथुन करनेसे विधर्मी संतान होती है। और संध्याकालमें गर्भाधान करनेसे नपुंसक उत्पन्न होते हैं। विद्वान् पुरुष क्षौरकर्ममें रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी) तिथियोंका परित्याग करे। विनयरहित उद्दण्ड पुरुषोंकी बात कभी न सुने। जो अपनेसे नीचा हो, उसे आदरपूर्वक ऊँचा आसन न दे। हजामत बनवाने, वमन होने, स्त्री-प्रसङ्ग करने तथा श्मशानभूमिमें जानेपर वस्त्रसहित स्नान करे। देवता, वेद, द्विज, साधु, सच्चे महात्मा, गुरु, पतिव्रता, वेद, यज्ञ तथा तपस्वीकी निन्दा और परिहास न करे। सदा माङ्गलिक वेष धारण किये रहे। कभी भी अमङ्गलमय वेष न धारण करे। स्वच्छ वस्त्र पहने और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। उद्धत, उन्मत्त, मूढ़, अविनीत, शीलहीन, अवस्था और जातिसे दूषित, अधिक अपव्ययी, वैरी, कार्यमें असमर्थ, निन्दित, धूर्तोंका संग करनेवाले, निर्धन, विवाद करनेवाले तथा अन्य अधम पुरुषोंके साथ कभी मित्रता न करे। सुहृद्, यज्ञदीक्षित, राजा, स्नातक तथा श्वशुर—इनके साथ मैत्रीका भाव रक्खे और जब ये घरपर पधारें तो उठकर खड़ा हो जाय; साथ ही अपने वैभवके अनुसार इनका पूजन करे। प्रतिवर्ष अपने घर आये हुए ब्राह्मणोंका वैभवके अनुसार स्वागत-सत्कार करे।

अपने घरमें यथास्थान देवताओंका भलीभाँति पूजन करके क्रमशः अग्निमें आहुति दे। पहली आहुति ब्रह्माको, दूसरी प्रजापतिको, तीसरी गृह्याओंको, चौथी कश्यपको तथा पाँचवीं अनुमतिको दे। तत्पश्चात् बलिवैश्वदेव करे। देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् स्थानका विभाग करके उनके लिये बलि अर्पण करे। उसका क्रम इस प्रकार है। एक पात्रमें पहले पर्जन्य, जल और पृथ्वीको तीन बलियाँ दे; फिर पूर्व आदि प्रत्येक दिशामें वायुको बलि देकर क्रमशः उन-उन दिशाओंके नामसे भी बलि समर्पित करे। तत्पश्चात् मध्यमें क्रमशः ब्रह्मा, अन्तरिक्ष और सूर्यको बलि दे। उनके उत्तरभागमें विश्वेदेवों और विश्वभूतोंको बलि दे। फिर उनके भी उत्तर-भागमें उषा और भूतपतिको बलि समर्पित करे। तदनन्तर 'पितृभ्यः स्वधा नमः' यों कहकर दक्षिण दिशामें अपसव्य होकर पितरोंके लिये बलि दे और वायव्य दिशामें अन्नका शेष भाग तथा जल लेकर 'यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनम्' यह मन्त्र पढ़कर उसे विधिपूर्वक छोड़ दे। फिर देवताओं और ब्राह्मणोंको नमस्कार करे। दाहिने हाथमें अँगूठेके उत्तर ओर जो एक रेखा होती है, वह ब्राह्मतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है; उसीसे आचमन किया जाता है। तर्जनी और अँगूठेके बीचका भाग पितृतीर्थ कहलाता है। नान्दीमुख पितरोंको छोड़कर अन्य सब पितरोंको उसी तीर्थसे जल आदि देना चाहिये। अँगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ है। उसीसे देवकार्य करनेका विधान है। कनिष्ठिकाके मूलभागमें कायतीर्थ (प्रजापति-तीर्थ) है। उससे प्रजापतिका कार्य किया जाता है। इस प्रकार इन तीर्थोंसे सदा देवताओं और पितरोंके कार्य करने चाहिये, अन्य तीर्थोंसे कदापि नहीं। ब्राह्मतीर्थसे आचमन उत्तम माना गया है। पितरोंका श्राद्ध और तर्पण पितृतीर्थसे, देवताओंका यज्ञ-यागादि देवतीर्थसे और प्रजापतिका कार्य कायतीर्थसे करना श्रेष्ठ बताया गया है। नान्दीमुख नामवाले पितरोंके लिये पिण्डदान और तर्पण आदि कार्य प्राजापत्यतीर्थसे करने चाहिये।

विद्वान् पुरुष एक साथ जल और अग्नि न ले। गुरु, देवता, पिता तथा ब्राह्मणोंकी ओर पैर न फैलाये। बछड़ेको दूध पिलाती हुई गायको न छेड़े। अञ्जलिसे पानी न पिये। शौचके समय विलम्ब न करे। मुखसे आग न फूँके। ब्राह्मणो! जहाँ ऋण देनेवाला धनी, चिकित्सा करनेवाला वैद्य, श्रोत्रिय ब्राह्मण तथा जलपूर्ण नदी—ये चार न हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये। जहाँ शत्रुविजयी बलवान् और धर्मपरायण राजा हो, वहीं विद्वान् पुरुषको सदा निवास करना चाहिये। दुष्ट राजाके राज्यमें कहाँ सुख है।* जहाँ

---

* तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्।
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी॥
जितामित्रो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः।
तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम्॥
(२२१। १०३-१०४)

पुरवासी परस्पर संगठित और न्यायानुकूल बर्ताव करनेवाले हों तथा सब लोग शान्त एवं ईर्ष्यारहित हों, वहाँका निवास भविष्यमें सुख देनेवाला होता है। जिस राष्ट्रमें किसान बहुत हों, परंतु वे बहुत घमंडी न हों तथा जहाँ सब तरहके अन्न पैदा होते हों, वहीं बुद्धिमान् पुरुषको निवास करना चाहिये। ब्राह्मणो! जहाँ अपनेको जीतनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य, पहलेका शत्रु और सदा उत्सवमें ही मग्न रहनेवाले लोग—ये तीन सदा मौजूद हों, वहाँ कभी निवास नहीं करना चाहिये। जिस स्थानपर अच्छे स्वभाववाले पड़ोसी हों, दुर्धर्ष राजा हो और सदा खेती उपजानेवाली भूमि हो, वहीं विद्वान् पुरुषको रहना उचित है। विप्रवरो! इस प्रकार मैंने तुमलोगोंके हितके लिये ये सब बातें बतायी हैं।

अब मैं भक्ष्य और भोज्यकी विधिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें बतलाऊँगा। घी अथवा तेलमें पका हुआ अन्न बहुत देरका बना हुआ अथवा बासी भी हो तो वह भोजन करने योग्य होता है। गेहूँ, जौ तथा गोरसकी बनी हुई वस्तुएँ तेल, घीमें न बनी हों, तब भी वे पूर्ववत् ग्रहण करने योग्य हैं। शङ्ख, पत्थर, सोना, चाँदी, रस्सी, कपड़ा, साग, मूल, फल, मणि, हीरा, मूँगा, मोती, पात्र और चमस—इन सबकी शुद्धि जलसे होती है। लोहेके पात्रों एवं हथियारोंकी शुद्धि पानीसे धोने तथा पत्थर यानी शानपर रगड़नेसे होती है। जिस पात्रमें तेल या घी रक्खा गया हो, उसकी सफाई गर्म जलसे होती है। सूप, मृगचर्म, मूसल, ओखली तथा कपड़ोंके ढेरकी शुद्धि जल छिड़कनेमात्रसे हो जाती है। वल्कल वस्त्रकी शुद्धि जल और मिट्टीसे होती है, मिट्टीके बर्तन दुबारा पकानेसे शुद्ध होते हैं। भिक्षामें प्राप्त अन्न, कारीगरका हाथ, बाजारमें बिकनेके लिये आयी हुई शाक आदि वस्तुएँ, जिसके गुण-दोषका ज्ञान न हो, ऐसी वस्तु और सेवकोंद्वारा बनायी हुई वस्तु सदा शुद्ध मानी जाती है। जो बहता हो तथा जिससे दुर्गन्ध न आती हो, ऐसा जल शुद्ध माना गया है। समयानुसार अग्निसे तपाने, बुहारने, गायोंके चलने-फिरने, लीपने, जोतने और जल छिड़कनेसे भूमिकी शुद्धि होती है। बुहारने आदिसे घर शुद्ध होता है। जिसमें बाल या कीड़े पड़े हों, जिसे गायने सूँघ लिया हो तथा जिसमें मक्खियाँ पड़ी हों, ऐसे पात्रकी शुद्धिके लिये राख, मिट्टी और जलका उपयोग करना चाहिये। ताँबेका बर्तन खटाईसे, राँगा और शीशा जलसे और काँसेके बर्तन राख और जलसे शुद्ध होते हैं। जिस पात्रमें कोई अपवित्र वस्तु पड़ गयी हो, उसे मिट्टी और जलसे तबतक धोये, जबतक कि उसकी दुर्गन्ध दूर न हो जाय। इससे वह शुद्ध होता है। धूल, अग्नि, घोड़ा, गौ, छाया, किरणें, वायु, भूमि, जलके छींटे और मक्खी आदि—ये सब अशुद्ध वस्तुके संसर्गमें आनेपर भी दूषित नहीं होते। बकरे और घोड़ेका मुख शुद्ध माना गया है, किंतु गायका नहीं। बछड़ेका मुँह तथा माताका स्तन भी पवित्र बताया गया है। पेड़से फल गिराते समय पक्षीकी चोंच भी शुद्ध मानी गयी है। आसन, शय्या, सवारी, नदीका तट और तृण—ये सब बाजारमें बिकनेवाली वस्तुओंकी भाँति सूर्य और चन्द्रमाकी किरणों तथा वायुके स्पर्शसे शुद्ध होते हैं। सड़कों और गलियोंमें घूमने-फिरने, स्नान करने, छींक आने, हवा खुलने तथा वस्त्र बदलनेपर विधिपूर्वक आचमन करना चाहिये। पक्की ईंटके बने हुए चबूतरे आदिमें यदि कोई अस्पृश्य वस्तु, गलियोंकी कीचड़ या जल आदि लग जाय तो उसकी शुद्धि केवल वायुके स्पर्शसे हो जाती है।

अनजानमें यदि दूषित अन्न भोजन कर ले तो तीन रात उपवास करनेसे शुद्धि होती है; और यदि जान-बूझकर किया हो तो उसके दोषकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त करनेसे शुद्धि होती है। रजस्वला स्त्री, नवप्रसूता स्त्री, चाण्डाल तथा मुर्दा ढोनेवाले मनुष्योंसे छू जानेपर शुद्धिके लिये स्नान करना चाहिये। मनुष्यकी गीली हड्डीका स्पर्श कर लेनेपर ब्राह्मण स्नान करनेसे शुद्ध होता है और सूखी हड्डीका स्पर्श करनेपर केवल आचमन करके गायका स्पर्श या सूर्यका दर्शन करनेसे वह शुद्ध हो सकता है। थूक और उबटनको न लाँघे। जूठन, मल-मूत्र और पैरोंकी धोवनको घरसे बाहर फेंके। दूसरोंके खुदाये हुए पोखरे आदिमें पाँच लौंदे मिट्टी निकाले बिना स्नान न करे। देवतासम्बन्धी सरोवरों और गङ्गा आदि नदियोंमें सदा ही स्नान करे। असमयमें उद्यान आदिके भीतर कभी न ठहरे। लोकनिन्दित पुरुषों तथा विधवा स्त्रियोंसे कभी वार्तालाप न करे। रजस्वला स्त्री, पतित, मुर्दा, विधर्मी, प्रसूता स्त्री, नपुंसक, वस्त्रहीन, चाण्डाल, मुर्दा ढोनेवाले तथा परस्त्रीगामी पुरुषोंको देखकर विद्वान् पुरुष अपनी शुद्धिके लिये सूर्यका दर्शन करे। अभक्ष्य पदार्थ, भिक्षुक, पाखण्डी, बिल्ली, गदहा, मुर्गा, पतित, जातिबहिष्कृत, चाण्डाल, ग्रामीण सूअर तथा अशौचदूषित मनुष्योंका स्पर्श कर लेनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। जिसके घरमें प्रतिदिन नित्यकर्मकी अवहेलना होती है तथा जिसे ब्राह्मणोंने त्याग दिया है, वह नराधम पापभोगी है। नित्यकर्मका त्याग

कभी नहीं करना चाहिये। उसे न करनेका विधान तो केवल मरणाशौच और जननाशौचमें ही है। अशौच प्राप्त होनेपर ब्राह्मण दस दिन; क्षत्रिय बारह दिन तथा वैश्य पंद्रह दिनोंतक दान-होम आदि कर्मोंसे अलग रहे। शूद्र एक मासतक अपना कर्म बंद रक्खे। फिर अशौच निवृत्त होनेपर सब लोग अपने शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करें। मृतकका दाह-संस्कार करनेके बाद उसके गोत्रवाले लोगोंको चाहिये कि बाहर जलाशय आदिमें जाकर पहले, चौथे, सातवें और नवें दिन उस प्रेतके लिये जलाञ्जलि दें। दाह-संस्कारके चौथे दिन समान गोत्रवाले भाई-बन्धुओंको प्रेतकी चितासे उसकी अस्थियोंका संचय करना चाहिये। अस्थिसंचयके बाद उनके अङ्गोंका स्पर्श किया जा सकता है। फिर समानोदक पुरुष अपने सब कर्म कर सकते हैं। जिस दिन मृत्यु हुई हो, उस दिन समानोदक और सपिण्ड दोनोंका स्पर्श किया जा सकता है। धनके लिये चेष्टा करते समय अथवा स्वेच्छासे अथवा शस्त्र, रस्सी, बन्धन, अग्नि, विष, पर्वतसे गिरने तथा उपवास आदिके द्वारा मृत्यु होनेपर अथवा बालक, परदेशी एवं परिव्राजककी मृत्यु होनेपर तत्काल अशौच निवृत्त हो जाता है। कुछ लोगोंके मतमें तीन दिनोंतक अशौच बना रहता है। यदि सपिण्डोंमेंसे एककी मृत्यु होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें दूसरेकी भी मृत्यु हो जाय तो पहलेके अशौचके साथ ही दूसरेका अशौच भी निवृत्त हो जाता है। अतः पहलेके अशौचमें जितने दिन शेष हों, उतने ही दिनोंके भीतर दूसरेका भी श्राद्ध आदि कर्म कर देना चाहिये। जननाशौचमें भी यही विधि देखी गयी है। सपिण्ड तथा समानोदक व्यक्तियोंमें एकके बाद दूसरेका जन्म हो तो इसी प्रकार पहलेके साथ दूसरेका अशौच भी निवृत्त हो जाता है।

पुत्रका जन्म होनेपर पिताको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। उसमें भी यदि एकके जन्मके बाद दूसरेका जन्म हो जाय तो पहले जन्मे हुए बालकके दिनपर ही दूसरेकी भी शुद्धि बतायी गयी है। अशौचके बाद क्रमशः दस, बारह, पंद्रह और तीस दिन बीतनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करें। अशौच निवृत्त होनेपर प्रेतके लिये एकोद्दिष्ट करना चाहिये और ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। लोकमें जो-जो वस्तु अधिक प्रिय हो, और घरमें भी जो वस्तु अत्यन्त प्रिय जान पड़े, उसको अक्षय बनानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह उसे गुणवान् पुरुषको दान दे। अशौचके दिन पूरे हो जानेपर जल, वाहन और आयुधका स्पर्श करके पवित्र हो सब वर्णोंके लोग प्रेतके लिये जलदान और पिण्डदान आदिका कार्य करें; तदनन्तर अपने-अपने वर्ण-धर्मका पालन करें। इससे इस लोक और परलोकमें भी कल्याण होता है। तीनों वेदोंका प्रतिदिन स्वाध्याय करे, विद्वान् बने, धर्मानुसार धनका उपार्जन करे और उसे यत्नपूर्वक यज्ञमें लगाये। जिस कर्मको करते समय आत्मामें घृणा न हो और जिसे महापुरुषोंके सामने प्रकट करनेमें कोई संकोच न हो, ऐसा कर्म निःशङ्क होकर करना चाहिये। ब्राह्मणो! ऐसे आचरणवाले गृहस्थ पुरुषको धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है तथा इस लोक और परलोकमें भी उसका कल्याण होता है। यह विषय अत्यन्त गोपनीय तथा आयु, धन और बुद्धिको बढ़ानेवाला है। यह सब पापोंका नाशक, पवित्र तथा श्री, पुष्टि एवं आरोग्य देनेवाला है। इतना ही नहीं, यह कल्याणमय प्रसङ्ग मनुष्योंको यश और कीर्ति देनेवाला तथा उनके तेज और बलकी वृद्धि करनेवाला है। मनुष्योंको सदा इसका अनुष्ठान करना चाहिये। यह स्वर्गका सर्वोत्तम साधन है। सम्यक् श्रेयकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको यत्नपूर्वक इन सब बातोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो इस विषयको भलीभाँति जानकर नित्य-निरन्तर इसका अनुष्ठान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। द्विजवरो! यह मैंने सारसे भी अत्यन्त सारभूत तत्त्वका वर्णन किया है। यह श्रुतियों तथा स्मृतियोंद्वारा प्रतिपादित धर्म है। हर एकको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो नास्तिक हो, जिसकी बुद्धि खोटी हो, जो दम्भी, मूर्ख और कुतर्कपूर्ण वार्तालाप करनेवाला हो, ऐसे मनुष्यको कदापि इसका उपदेश नहीं देना चाहिये।

वर्ण और आश्रमोंके धर्मका निरूपण

मुनियोंने कहा—ब्रह्मन्! अब हम वर्णधर्म और आश्रमधर्मका विशेष रूपसे वर्णन सुनना चाहते हैं। विप्रवर! अब उसीका वर्णन कीजिये।

व्यासजी बोले—द्विजवरो! अब मैं क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्णोंके धर्मका वर्णन करूँगा। तुमलोग एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्राह्मणको सदा दान,

दया, तपस्या, देवयज्ञ और स्वाध्यायमें तत्पर रहना चाहिये। तर्पण और अग्निहोत्र उसका प्रतिदिनका कार्य होना चाहिये। जीविकाके लिये वह अन्य द्विजोंका यज्ञ कराये तथा उन्हें पढ़ाये। यज्ञ करनेके लिये वह जान-बूझकर भी प्रतिग्रह ले सकता है। सब लोगोंका हितसाधन करना और किसीका भी अपने द्वारा अहित न होने देना, यह ब्राह्मणका कर्तव्य है। समस्त प्राणियोंके प्रति मैत्रीका होना, यह ब्राह्मणके लिये सबसे उत्तम धन है।* केवल ऋतुकालमें पत्नीके साथ समागम करना ब्राह्मणके लिये प्रशंसाकी बात है। क्षत्रिय भी अपने इच्छानुसार ब्राह्मणको दान दे, नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करे और स्वाध्यायमें संलग्न रहे। शस्त्र चलाकर जीवन-निर्वाह करना और पृथ्वीका पालन करना—ये दो क्षत्रियकी मुख्य जीविकाएँ हैं। उनमें भी पृथ्वीकी रक्षा उसके लिये मुख्य आजीविका है। पृथ्वीका पालन करनेसे ही राजा कृतार्थ होते हैं, क्योंकि उसीसे उनके यज्ञ आदि कार्योंकी रक्षा होती है। जो राजा दुष्ट पुरुषोंका दमन और साधु पुरुषोंका पालन करके सब वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें स्थापित करता है, वह मनोवाञ्छित लोकोंको प्राप्त होता है। लोकपितामह ब्रह्माजीने वैश्योंके लिये पशुओंका पालन, व्यापार और खेती—ये तीन आजीविकाएँ प्रदान की हैं। वेदोंका अध्ययन, यज्ञ, दान, धर्म तथा नित्य और नैमित्तिक आदि कर्मोंका अनुष्ठान वैश्यके लिये भी उत्तम हैं। शूद्र द्विजातियोंकी सेवाका कार्य करे और उसीसे अर्थोपार्जन करके अपना जीवन-निर्वाह करे। अथवा खरीद-बिक्री या शिल्पकर्मके द्वारा धन पैदा करके उससे जीविका चलाये। शूद्र भी दान दे और मन्त्रहीन पाक-यज्ञोंद्वारा यजन करे। वह श्राद्ध आदि सब कार्य बिना मन्त्रके कर सकता है। भृत्य आदिका भरण-पोषण करनेके लिये सबके लिये संग्रह आवश्यक है। ऋतुकालके समय अपनी पत्नीके पास जाना, सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखना, शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहन करना, अभिमान न रखना, सत्य बोलना, पवित्रतापूर्वक रहना, किसीको कष्ट न पहुँचाना, सबका मङ्गल करना, प्रिय वचन बोलना, सबके प्रति मैत्रीका भाव रखना, किसी वस्तुकी कामना न करना, कृपणता न करना तथा किसीके भी दोष न देखना—ये सभी वर्णोंके लिये सामान्यरूपसे उत्तम गुण बताये गये हैं। चारों आश्रमोंके लिये भी ये सामान्य गुण हैं। ब्राह्मणो! अब ब्राह्मण आदि वर्णोंके उपधर्म बतलाये जाते हैं। आपत्तिकालमें ब्राह्मणके लिये क्षत्रियका कर्म, क्षत्रियके लिये वैश्यका कर्म तथा वैश्य और क्षत्रिय दोनोंके लिये शूद्रका कर्म कर्तव्य बताया गया है। सामर्थ्य रहते इन दोनोंको शूद्रका कर्म नहीं करना चाहिये, परंतु आपत्तिकालमें वही कर्तव्य हो जाता है। आपत्ति न होनेपर कर्म-संकर कदापि न करे। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने वर्णधर्मका वर्णन किया है।

अब आश्रमधर्मका भलीभाँति वर्णन करता हूँ, सुनो। उपनयन-संस्कार होनेपर ब्रह्मचारी बालक एकाग्रचित्त हो गुरुके घरपर रहते हुए वेदोंका अध्ययन करे। शौच और सदाचारका पालन करते हुए गुरुकी सेवा करे। पवित्र बुद्धिसे व्रतके पालनपूर्वक वेदोंकी शिक्षा ग्रहण करे। दोनों संध्याओंके समय एकाग्रचित्त हो सूर्योपस्थान, अग्निहोत्र और गुरुका अभिवादन करे। गुरुदेव खड़े हों तो स्वयं भी खड़ा रहे। वे जाते हों तो पीछे-पीछे जाय और वे बैठे हों तो उनसे नीचे आसनपर बैठे। शिष्यको चाहिये कि वह गुरुके विपरीत कोई आचरण न करे। उन्हींकी आज्ञासे उनके सामने बैठकर एकाग्रचित्तसे वेदका अध्ययन करे। गुरुका आदेश मिलनेपर भिक्षाका अन्न ग्रहण करे। जब आचार्य पहले स्नान कर लें तो स्वयं जलमें प्रवेश करके अवगाहन करे। प्रतिदिन प्रातःकाल आचार्यके लिये समिधा और जल आदि ले आये। जब ग्रहण करनेके योग्य वेदोंका पूर्णरूपसे अध्ययन कर ले, तब विद्वान् पुरुष गुरुदक्षिणा देकर गुरुकी आज्ञा ले गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे।

विधिपूर्वक योग्य स्त्रीसे विवाह करके अपने वर्णोचित कर्मद्वारा धनका उपार्जन करे और उसीसे यथाशक्ति गृहस्थका सारा कार्य पूर्ण करे। श्राद्धके द्वारा पितरों, यज्ञद्वारा देवताओं, अन्नसे अतिथियों, स्वाध्यायसे मुनियों, संतानोत्पादनसे प्रजापति, बलिवैश्वदेवसे सम्पूर्ण भूतों और सत्यवचनके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌का पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अपने कर्मोंद्वारा उपार्जित उत्तम लोकोंमें जाता है। भिक्षापर निर्वाह करनेवाले संन्यासी और ब्रह्मचारी भी गृहस्थोंके ही अवलम्बसे रहते हैं, अतः गार्हस्थ्य-आश्रम श्रेष्ठ माना गया है। जो ब्राह्मण वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और पृथ्वीके दर्शनके लिये भूतलपर भ्रमण करते हैं, जिनका कोई घर नहीं है, जो प्रायः निराहार रहते हैं और जहाँ सन्ध्या हो गयी,

* सर्वलोकहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विजाः।
मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम्॥
(२२२।५)

वहीं डेरा डाल देते हैं, ऐसे लोगोंका सहारा और आधार गृहस्थ ही हैं। पूर्वोक्त द्विज जब घरपर पधारें तो मधुर वाणीसे सदा उनका स्वागत-सत्कार करना चाहिये। उन्हें शय्या, आसन और भोजन देना चाहिये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, वह उसे अपना पाप दे बदलेमें उसका पुण्य लेकर चल देता है।* गृहस्थ पुरुषमें दूसरोंके प्रति अवहेलना, अपनेमें अहंकार, दम्भ, परनिन्दा, दूसरोंपर चोट करनेकी प्रवृत्ति और कटुवचन बोलनेका स्वभाव होना अच्छा नहीं माना गया है। जो गृहस्थ इस प्रकार उत्तम विधिका पालन करता है, वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो उत्तम लोकोंमें जाता है। गृहस्थ पुरुष बुढ़ापा आनेपर अपनी स्त्रीका भार पुत्रोंको सौंप दे और स्वयं तपस्याके लिये वनमें चला जाय अथवा स्त्रीको भी साथ ही लेता जाय। वहाँ पत्तियाँ, मूल और फल आदिका आहार करते हुए पृथ्वीपर शयन करे। सिरके बाल, दाढ़ी और मूँछ न कटाये। वानप्रस्थ मुनिके लिये सब लोग अतिथि हैं। वह मृगचर्म, कास और कुश आदिकी कौपीन एवं चादर धारण करे। उसके लिये तीनों समय स्नान करना उत्तम माना गया है। देवपूजन, होम, सम्पूर्ण अतिथियोंका पूजन, भिक्षा और प्राणियोंको बलिसमर्पण—ये सब बातें वानप्रस्थके लिये श्रेष्ठ मानी गयी हैं। वह अपने शरीरमें जंगली फल आदिके तेल लगा सकता है। उसका मुख्य कर्तव्य है तपस्या—शीत और उष्ण आदि द्वन्द्वोंका सहन। जो वानप्रस्थ मुनि नियमपूर्वक रहकर पूर्वोक्त रूपसे अपने कर्तव्यका पालन करता है, वह अग्निकी भाँति अपने सब दोषोंको जला देता और सनातन लोकोंको प्राप्त होता है।

मुनियो! मनीषी पुरुष जो भिक्षुका चतुर्थ आश्रम बतलाते हैं, उसके स्वरूपका वर्णन सुनो। भिक्षुको चाहिये कि पुत्र, धन, स्त्रीके प्रति स्नेहका त्याग करे और ईर्ष्यारहित होकर चतुर्थ आश्रममें जाय। उसीको संन्यास-आश्रम भी कहते हैं। संन्यासीको समस्त त्रैवर्णिक कर्मोंके आरम्भका त्याग करना चाहिये। वह मित्र और शत्रुमें समान भाव रक्खे। सब प्राणियोंका मित्र बना रहे। जरायुज और अण्डज आदि किसी भी प्राणीके साथ मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी द्रोह न करे। वह सब प्रकारकी आसक्तियोंको त्याग दे। गाँवोंमें एक रात और नगरमें पाँच रातसे अधिक न रहे। पशु, पक्षी आदिके प्रति न तो उसका राग हो और न द्वेष ही रहे। जीवन-निर्वाहके लिये वह उच्चवर्णवाले मनुष्योंके घरपर भिक्षाके लिये जाय—वह भी ऐसे समयमें जब कि रसोईकी आग बुझ गयी हो और घरके सब लोग खा-पी चुके हों। भिक्षा न मिलनेपर खेद और मिलनेपर हर्ष न माने। भिक्षा उतनी ही ले, जिससे प्राणयात्रा होती रहे। विषयासक्तिसे वह नितान्त दूर रहे। अधिक आदर-सत्कारकी प्राप्तिको घृणाकी दृष्टिसे देखे, क्योंकि अधिक आदर-सत्कार मिलनेपर संन्यासी अन्य बन्धनोंसे मुक्त होनेपर भी बँध जाता है। काम, क्रोध, दर्प, लोभ और मोह आदि जितने दोष हैं, उन सबका त्याग करके संन्यासी ममतारहित हो सर्वत्र विचरता रहे।† जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय-दान देकर पृथ्वीपर विचरता रहता है, उस देहाभिमानसे मुक्त यतिको कहीं भय नहीं होता। जो ब्राह्मण अग्निहोत्रको भावनाद्वारा शरीरमें स्थापित करके अपने मुखमें भिक्षाप्राप्त अन्नरूपी हविष्य डालकर उस शरीरस्थ अग्निको आहुति देता है, वह उस संचित अग्निके द्वारा उत्तम लोकोंमें जाता है। जो द्विज पवित्र एवं संयत बुद्धिसे युक्त हो शास्त्रोक्त विधिसे मोक्ष-आश्रमका पालन करता है, वह बिना ईंधनकी प्रज्वलित अग्निके सदृश शान्त तेजोमय ब्रह्मलोकमें जाता है।

उच्च वर्णकी अधोगति और नीच वर्णकी ऊर्ध्व गतिका कारण

मुनियोंने पूछा—महाभाग! आप सर्वज्ञ हैं, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं। मुने! भूत, भविष्य और वर्तमान—कुछ भी आपसे छिपा नहीं है। महामते! किस कर्मसे उच्च वर्णोंकी नीच गति होती है और किस कर्मसे नीच वर्णोंकी उत्तम गति होती है? यह बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! भाँति-भाँतिके वृक्ष और

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥ (२२२। ३६)

† प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारे भुक्तवज्जने। काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थी पर्यटेद् गृहान्॥
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत्। प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः॥
अतिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेच्चैव सर्वतः। अतिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते॥
कामः क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयश्च ये। तांस्तु दोषान् परित्यज्य परिव्राण्निर्ममो भवेत्॥ (२२२। ५०—५३)

लताओंसे आच्छादित, अनेक प्रकारकी धातुओंसे विभूषित तथा विविध आश्चर्योंसे युक्त हिमालयके रमणीय शिखरपर त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर विराजमान थे। वहाँ गिरिराजकुमारी पार्वती देवीने देवेश्वर महादेवजीको प्रणाम करके यही प्रश्न किया था। मैं वही प्रसङ्ग यहाँ सुना रहा हूँ, तुम सब लोग ध्यान देकर सुनो।



पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने पूर्वकालमें चार वर्णोंकी सृष्टि की। उनमेंसे वैश्य किस कर्मसे शूद्रभावको प्राप्त होता है? अथवा क्या करनेसे क्षत्रिय वैश्य हो जाता है? और ब्राह्मण किस कर्मके अनुष्ठानसे क्षत्रिय होता है? देव! इस प्रकार धर्मको प्रतिलोम दशामें कैसे लाया जा सकता है? ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय किस कर्मसे शूद्र होते हैं? भूतनाथ! आप मेरे इस संशयका निवारण कीजिये। क्षत्रिय आदि तीन वर्णोंके लोग, जो जन्मसे ही यहाँ भिन्न वर्णवाले हैं, कैसे ब्राह्मणभावको प्राप्त हो सकते हैं?

शिवजी बोले—देवि! ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। शुभे! ब्राह्मण स्वभावसे ही ब्राह्मण होता है; इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी स्वभावसे ही वैसे होते हैं—ऐसा मेरा विचार है। ब्राह्मण इस लोकमें पापकर्म करनेसे अपने पथसे भ्रष्ट हो जाता है, उत्तम वर्णको पाकर भी फिर उससे नीचे गिर जाता है। जो ब्राह्मणधर्मका पालन करते हुए उसीसे जीवन-निर्वाह करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है; परंतु जो ब्राह्मणत्वका त्याग करके क्षत्रियोचित धर्मोंका सेवन करता है, वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होकर क्षत्रिययोनिमें जन्म लेता है। जो विप्र लोभ और मोहका आश्रय ले अपनी मन्द बुद्धिके कारण दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर भी सदा वैश्यकर्मका अनुष्ठान करता है, वह वैश्ययोनिको प्राप्त होता है; अथवा यदि वैश्य शूद्रोचित कर्म करने लगता है तो वह शूद्र हो जाता है। अपने धर्मसे भ्रष्ट हुआ ब्राह्मण शूद्रत्वको प्राप्त होता है। वर्णसे भ्रष्ट या बहिष्कृत होनेपर वह ब्रह्मलोकसे भी गिर जाता है और नरकमें पड़नेके पश्चात् शूद्रयोनिमें जन्म लेता है। महाभागे! क्षत्रिय अथवा वैश्य भी जब अपना-अपना कर्म छोड़कर शूद्रोचित कर्म करने लगते हैं, तब अपने पदसे भ्रष्ट होकर वर्णसंकर हो जाते हैं। ऐसे कर्म-भ्रष्ट ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों शूद्रभावको प्राप्त होते हैं। जो शूद्र ज्ञान-विज्ञानसे युक्त एवं पवित्र हो अपने धर्मका पालन करते हुए जीवन-निर्वाह करता है, धर्मको जानता और उसके पालनमें तत्पर रहता है, वह धर्मके फलका भागी होता है।*

देवि! ब्रह्माजीने यह एक दूसरी आध्यात्मिक बात बतलायी है, जिसके पालनसे धर्मकामी पुरुषोंको नैष्ठिक सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य क्षत्रियके वीर्य और शूद्र-जातीय स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न अथवा वर्णसंकर है, उसका अन्न अत्यन्त निन्दित माना गया है। इसी प्रकार एक समुदायका अन्न, श्राद्ध और सूतकका अन्न तथा शूद्रका अन्न कभी नहीं खाना चाहिये। देवि! देवताओं और महात्मा पुरुषोंने शूद्रके अन्नकी सदा ही निन्दा की है। यह श्रीब्रह्माजीके श्रीमुखका कथन होनेके कारण अत्यन्त प्रामाणिक है। जो ब्राह्मण अपने पेटमें शूद्रका अन्न लिये मृत्युको प्राप्त होता है, वह अग्निहोत्री और यज्ञकर्ता होते हुए भी शूद्रोचित गतिको प्राप्त होता है। पेटमें शूद्रान्न शेष रहनेके कारण वह ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट हो जाता है। शूद्रान्न-भोजी ब्राह्मण शूद्रत्वको प्राप्त होता है—इसमें अन्यथा विचारके लिये स्थान नहीं

* यस्तु शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्छुचिः।
धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते॥
(२२३। २१)

है।* ब्राह्मण अपने उदरमें जिसका अन्न शेष रहते प्राणत्याग करता है और जिसके अन्नसे जीवन-निर्वाह करता है, उसीकी योनिको प्राप्त होता है। जो लोग दुर्लभ ब्राह्मणत्वको अनायास ही पाकर उसकी अवहेलना करते हैं अथवा अभक्ष्य-भक्षण करते हैं, वे ब्राह्मणत्वसे गिर जाते हैं। शराबी, ब्रह्महत्यारा, चोर, व्रत भङ्ग करनेवाला, अपवित्र, स्वाध्याय न करनेवाला, पापी, लोभी, अपकारी, शठ, व्रतहीन, शूद्रीका पति, दोगलेका अन्न खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला और नीचसेवी ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो जाता है। गुरुस्त्रीगामी, गुरुद्वेषी, गुरुनिन्दापरायण तथा ब्रह्मद्रोही ब्राह्मण भी ब्रह्मयोनिसे गिर जाता है।

जो शूद्र सब कर्म शास्त्रीय विधिके अनुसार न्यायपूर्वक करता है, सबका अतिथि-सत्कार करनेके बाद बचा हुआ अन्न भोजन करता है, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णवाले पुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषामें यत्नपूर्वक लगा रहता है, जो कभी मनमें बुरा नहीं मानता, सदा सन्मार्गपर स्थित रहता है, देवता और द्विजोंका सत्कार करता, सबका आतिथ्य करनेके लिये दृढ़संकल्प रहता, ऋतुकालमें पत्नीके साथ समागम करता, नियमपूर्वक रहकर नियमित भोजन करता और कार्यदक्ष, साधुसेवी तथा अतिथियोंसे बचे हुए अन्नका भोजन करनेवाला होता है, जो कभी भी मांस नहीं ग्रहण करता, ऐसा शूद्र वैश्ययोनिको प्राप्त होता है।

जो वैश्य सत्यवादी, अहंकाररहित, निर्द्वन्द्व, सामवेदका ज्ञाता, पवित्र और स्वाध्यायपरायण होकर प्रतिदिन यज्ञ करता, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखता, ब्राह्मणोंका सत्कार करता, किसी भी वर्णके दोष नहीं देखता, गृहस्थोचित व्रतका पालन करते हुए केवल दो समय भोजन करता है, जो आहारपर विजय पाकर निष्काम एवं अहंकारशून्य हो गया है, अग्निहोत्रकी उपासना करते हुए विधिपूर्वक हवन करता है और सबका आतिथ्यसत्कार करते हुए यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करता है, वह वैश्य पवित्र होकर श्रेष्ठ क्षत्रिय-कुलमें जन्म ग्रहण करता है। क्षत्रियरूपमें उत्पन्न होनेपर वह जन्मसे ही अच्छे संस्कारका होता है। उपनयनके पश्चात् ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनमें तत्पर हो वह संस्कारसम्पन्न द्विज होता है। वह समय-समयपर दान देता, प्रचुर दक्षिणा देकर वैभवपूर्ण यज्ञ करता और वेदाध्ययन करके स्वर्गकी इच्छासे आहवनीय आदि तीनों अग्नियोंकी सदा उपासना करता है। राजा होनेपर वह संकल्पके जलसे भीगे हाथोंद्वारा दान देता और सदा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता है। स्वयं सत्यवादी होकर सदा सत्यका ही अनुष्ठान करता है, शुद्धिपर दृष्टि रखता है और धर्मदण्डसे युक्त हो धर्म, अर्थ एवं कामरूप त्रिवर्गका साधन करता है। शरीर और इन्द्रियोंको वशमें रखकर प्रजासे करके रूपमें केवल उसकी आयका छठा भाग ग्रहण करता है। तत्त्वज्ञ राजाको चाहिये कि वह स्वेच्छाचारी होकर विषय-भोगोंका सेवन न करे, अपितु धर्ममें चित्त लगाकर सदा ऋतुकालमें ही पत्नीके पास जाय। नित्य उपवास करनेवाला, नियमपरायण, स्वाध्यायशील तथा पवित्र रहे। सबका अतिथि-सत्कार करे। धर्म, अर्थ और कामका चिन्तन करते हुए सदा प्रसन्नचित्त रहे। अन्नकी इच्छा रखनेवाले शूद्रोंको भी सदा यही उत्तर दे—'भोजन तैयार है।' स्वार्थ या कामनासे प्रेरित होकर कोई भाव न व्यक्त करे। देवता, पितर और अतिथियोंके लिये सर्वदा साधन-सामग्री उपस्थित रक्खे। अपने घरमें न्यायानुकूल विधिसे उपासना करे। भिक्षुको भिक्षा दे। दोनों समय विधिपूर्वक अग्निहोत्र करे तथा गौओं और ब्राह्मणोंका हितसाधन करनेके लिये संग्राममें सम्मुख होकर प्राण दे दे। त्रिविध अग्नियोंके सेवन तथा मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करनेसे पवित्र होकर क्षत्रिय भी जन्मान्तरमें ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न, वेदोंका पारंगत और संस्कारयुक्त ब्राह्मण हो जाता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर शुभ कर्म करनेसे धर्मात्मा वैश्य कर्मानुसार क्षत्रिय होता है और नीच कुलमें उत्पन्न शूद्र भी उत्तम कर्म करनेसे संस्कार-सम्पन्न द्विज हो जाता है।

देवि! जन्मसे ब्राह्मण होनेपर भी जो दुराचारी और समस्त वर्णसंकरोंका अन्न भोजन करनेवाला है, वह ब्राह्मणत्वको त्यागकर वैसा ही शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार शुद्धात्मा एवं जितेन्द्रिय शूद्र भी शुद्ध कर्मोंके अनुष्ठानसे ब्राह्मणकी भाँति सेवन करने योग्य हो जाता है, यह साक्षात् ब्रह्माजीका कथन है। जो शूद्र अपने स्वभाव और कर्मके अनुसार जीवन बिताता है, उसे द्विजातियोंसे भी अधिक शुद्ध जानना चाहिये—ऐसा मेरा विश्वास है। जन्म, संस्कार, वेदाध्ययन और संतति—ये सब द्विजत्वके कारण नहीं हैं; द्विजत्वका मुख्य कारण तो सदाचार ही है। संसारमें ये सब लोग

* तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः।
ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा॥
(२२३। २६)

आचरणसे ही ब्राह्मण माने जाते हैं। उत्तम आचरणमें स्थित होनेपर शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो सकता है।* पार्वती! ब्रह्मस्वभाव सर्वत्र सम है—यह मेरी मान्यता है। जहाँ निर्गुण एवं निर्मल ब्रह्म स्थित है, वही द्विज है। देवि! ये जो विमल स्वभाववाले पुरुष हैं, वे ब्रह्मके ही स्थान और भावका दर्शन करानेवाले हैं। प्रजाकी सृष्टि करते समय वरदायक भगवान् ब्रह्माने स्वयं ही ऐसी बात कही थी। ब्राह्मण इस संसारमें एक महान् क्षेत्र है, जो हाथ-पैरोंसे युक्त होकर सर्वत्र विचरता रहता है। इसमें जो बीज पड़ता है, वह परलोकमें फल देनेवाली खेती है। ब्राह्मणको सदा संतुष्ट एवं सन्मार्गका पथिक होना चाहिये। उन्नति चाहनेवाले द्विजको सदा ब्रह्ममार्गका अवलम्बन करके रहना चाहिये। गृहस्थ ब्राह्मणको घरपर रहते हुए प्रतिदिन संहिताके मन्त्रोंका अध्ययन और स्वाध्याय करना चाहिये। वह अध्ययनकी वृत्तिसे ही जीवन-निर्वाह करे। जो ब्राह्मण इस प्रकार सदा सन्मार्गमें स्थित हो अग्निहोत्र और स्वाध्याय करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। देवि! ब्राह्मणत्वको प्राप्त करके उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। यह मैंने तुम्हें बड़ी गोपनीय बात बतलायी है। शूद्र धर्माचरणसे ब्राह्मण होता है और ब्राह्मण धर्मभ्रष्ट होनेपर शूद्रत्वको प्राप्त होता है।



स्वर्ग और नरकमें ले जानेवाले धर्माधर्मका निरूपण



पार्वतीजीने कहा—भगवन्! सर्वभूतेश्वर! देव-दानव-वन्दित विभो! मुझे मनुष्योंके धर्म और अधर्मके विषयमें संदेह है। देव! आप उसका समाधान कीजिये। देहधारी जीव सदा मन, वाणी और क्रियारूप त्रिविध बन्धनोंद्वारा बँधते हैं; फिर किन साधनोंसे और किस प्रकार उनकी मुक्ति होती है? यह बताइये। देव! किस स्वभावसे, कैसे कर्मसे अथवा किन सदाचारों एवं सद्गुणोंसे संसारके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं?

शिवजी बोले—देवि! तुम धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाली और निरन्तर धर्ममें तत्पर रहनेवाली हो। तुम्हारा प्रश्न सब प्राणियोंके लिये हितकारी और उनकी बुद्धिको बढ़ानेवाला है। मैं उसका उत्तर देता हूँ, सुनो। जो मनुष्य सब प्रकारके लिङ्गों (बाह्य चिह्नों) से रहित, सत्य-धर्मके परायण तथा शान्त हैं, जिनके सभी संशय नष्ट हो गये हैं, वे अधम या धर्मसे नहीं बँधते। जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग हैं, वे पुरुष कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसीकी हिंसा नहीं करते तथा किसीके प्रति आसक्त नहीं होते, वे कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ते। जो प्राण-संहारसे दूर रहनेवाले, सुशील, दयालु, प्रिय और अप्रियको समान समझनेवाले तथा जितेन्द्रिय हैं, वे भी कर्मोंसे नहीं बँधते। जो सब प्राणियोंपर दया रखते, सब जीवोंके लिये विश्वासपात्र बने रहते और हिंसापूर्ण बर्तावका त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेवाले हैं। जो पराये धनके प्रति कभी ममता नहीं रखते और परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहते हैं तथा जो धर्मतः प्राप्त अर्थका ही उपभोग करनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो परस्त्रियोंके प्रति सदा माता, बहिन और पुत्रीका-सा बर्ताव करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते, ऋतुकाल आनेपर ही पत्नीके साथ समागम करते तथा विषय-सुखोंके उपभोगमें कभी आसक्त नहीं होते, वे ही मनुष्य स्वर्गलोकके यात्री होते हैं। जो अपने सदाचारके कारण परायी स्त्रियोंकी ओरसे सदा आँखें बंद किये रहते हैं, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखते और शीलकी सदा रक्षा करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह देवमार्ग है। मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंको

* ······ ······ । ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकरभोजनः ॥
स ब्राह्मण्यं समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः । कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ॥
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माब्रवीत्स्वयम् । स्वभावकर्मणा चैव यत्र शूद्रोऽधितिष्ठति ॥
विशुद्धः स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मतिः । न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतिर्न च संततिः ॥
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् । सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति । (२२३ । ५२—५८)

सदा उसी मार्गका सेवन करना चाहिये, जो वासनाद्वारा निर्मित न हो, जिसमें किसीका व्यर्थ ही अपकार न होता हो और जहाँ दान, सत्कर्म, तपस्या, शील, शौच और दयाभावका दर्शन होता हो। स्वर्गमार्गकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसके विपरीत मार्गका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

जो अपने अथवा दूसरेके लिये अधर्मयुक्त बात नहीं कहते और कभी झूठ नहीं बोलते, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो जीविका अथवा धर्मके लिये या स्वेच्छासे ही कभी असत्यभाषण नहीं करते, अपितु स्पष्ट, कोमल, मधुर, पापरहित एवं स्वागतपूर्ण वचन बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो कठोर, कड़वी तथा निष्ठुर बात मुँहसे नहीं निकालते, चुगली नहीं खाते, साधुतासे रहते हैं, कठोर भाषण और परद्रोह त्याग देते हैं तथा सम्पूर्ण भूतोंके प्रति सम एवं जितेन्द्रिय होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो शठोंसे बात नहीं करते, विरुद्ध कर्मोंको त्याग देते, कोमल वचन बोलते, क्रोध न करके मनोहर वाणी मुँहसे निकालते और कुपित होनेपर भी शान्ति धारण करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। देवि! यह वाणीद्वारा पाला जानेवाला धर्म है। शुभ तथा सत्य गुणोंवाले विद्वान् मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये।

कल्याणि! मानसिक धर्मसे युक्त मनुष्य सदा स्वर्गमें जाते हैं। मैं उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। निर्जन वनमें रक्खे हुए पराये धनपर जब दृष्टि पड़े, उस समय जो मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, वे स्वर्गगामी होते हैं। इसी प्रकार जो परायी स्त्रियोंको एकान्तमें पाकर मनके द्वारा भी कामवश उन्हें नहीं ग्रहण करते, जो शत्रु और मित्रको सदा एक चित्तसे अपनाते, शास्त्रोंका अध्ययन करते, पवित्र एवं सत्यप्रतिज्ञ होते और अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं, जिनसे दूसरोंको कष्ट नहीं पहुँचता और जिनके चित्तमें सदा मैत्रीका भाव बना रहता है, जो सब प्राणियोंपर निरन्तर दयाभाव बनाये रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो ज्ञानवान्, क्रियावान्, क्षमावान्, सुहृद्-प्रेमी, धर्माधर्मके ज्ञाता और शुभाशुभ कर्मोंके फलसंग्रहके प्रति उदासीन रहते हैं, जो पापियोंको त्याग देते, देवताओं और द्विजोंकी सेवामें संलग्न रहते और गुरुजनोंके आनेपर खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। देवि! जो लोग शुभकर्मोंके फलस्वरूप स्वर्गमार्गपर जाते हैं, उनका मैंने वर्णन किया। अब तुम और क्या सुनना चाहती हो?

पार्वतीजी बोलीं—महेश्वर! मेरे मनमें मनुष्योंके सम्बन्धमें एक और महान् संशय है। अतः आप उसका भलीभाँति समाधान करें। प्रभो! मनुष्य किस कर्मसे इस पृथ्वीपर बड़ी आयु प्राप्त करता है? और किस कर्मसे उसकी आयु क्षीण हो जाती है? आप कर्मोंके परिणामका वर्णन करें।

शिवजी बोले—देवि! कर्मोंका फल जैसे प्राप्त होता है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। मर्त्यलोकमें सब मनुष्य अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। जो मनुष्य सदा हाथमें डंडा लेकर दूसरोंके प्राणोंका संहार करता, सर्वदा हथियार उठाकर प्राणियोंकी हिंसा किया करता, सब जीवोंके प्रति निर्दय बना रहता, सदा सबको उद्वेगमें डालता, कीट और पतङ्गोंको भी शरण नहीं देता और अत्यन्त निष्ठुरतापूर्ण बर्ताव करता है, वह नरकमें पड़ता है। इसके विपरीत जो धर्मात्मा होता है, उसे अपने स्वरूपके अनुरूप ही गति मिलती है। हिंसक नरकमें और अहिंसक स्वर्गमें जाता है। नरकगामी मनुष्य नरकमें पड़कर अत्यन्त दुस्सह एवं भयंकर यातना भोगता है। जो कोई कभी उस नरकसे निकलता है, वह यदि मनुष्य-योनिमें आता है तो भी वहाँ उसकी आयु बहुत थोड़ी होती है। देवि! जो शुभकर्म करते हुए जीवन व्यतीत करता है, प्राणियोंकी हिंसासे दूर रहता है, जो शस्त्र और दण्डका त्याग करके कभी किसीकी हिंसा नहीं करता, न मरवाता है, न मारता है और न मारनेवालेका अनुमोदन ही करता है, जिसका सभी प्राणियोंके प्रति स्नेह है तथा जो अपने और परायेमें समान भाव रखता है, ऐसा पुरुष सदा देवपदको प्राप्त होता है। देवि! वह अपने शुभ कर्मोंसे प्राप्त देवोचित सुख-भोगोंका प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है। वह यदि कभी मनुष्य-लोकमें आता है तो उसकी बड़ी आयु होती है। यह बड़ी आयुवाले सदाचारी एवं पुण्यात्मा मनुष्योंका मार्ग है। जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे इसकी प्राप्ति होती है, यह ब्रह्माजीका कथन है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! कैसे शील और सदाचारवाला पुरुष किन कर्मों अथवा किस दानसे स्वर्गमें जाता है?

महादेवजी बोले—जो ब्राह्मणका सत्कार करनेवाला तथा दीन-दुखी और कृपण आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान एवं वस्त्र देनेवाला है, जो यज्ञमण्डप, धर्मशाला, पौंसला तथा पुष्करिणी बनवाता है, मन और इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्धभावसे नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म करता है, आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, खेतकी उपज तथा खेत

आदि वस्तुओंका सदा शान्त चित्तसे दान करता है, देवि ! ऐसा मनुष्य देवलोकमें जन्म लेता है। वहाँ दीर्घकालतक उत्तम भोगोंका उपभोग करते हुए नन्दन आदि वनोंमें अप्सराओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार करता है। देवि ! वहाँसे च्युत होनेपर वह मनुष्योंके सौभाग्यशाली कुलमें, जो धन-धान्यसे सम्पन्न होता है, जन्म लेता है। वह मानव समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त, प्रसन्न, प्रचुर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न एवं धनवान् होता है। पार्वती ! जो दानशील महाभाग प्राणी हैं, ब्रह्माजीने उन्हें सर्वप्रिय बतलाया है। इनके सिवा दूसरे मनुष्य ऐसे हैं, जो देनेमें कृपण होते हैं। वे मूर्ख घरमें रहते हुए भी किसीको अन्न नहीं देते। दीनों, अंधों, कृपणों, दुखियों, याचकों और अतिथियोंको देखकर मुँह फेर लेते हैं। उनके याचना करते रहनेपर भी अनसुनी करके पीछे लौट जाते हैं। कभी किसीको धन, वस्त्र, भोग, स्वर्ण, गौ और भाँति-भाँतिके खाद्य पदार्थ नहीं देते। जो लोभी, नास्तिक और दानरहित होते हैं, वे अज्ञानी मनुष्य नरकमें पड़ते हैं। कालचक्रके परिवर्तनसे उन्हें जब कभी मनुष्य-योनिमें आना पड़ता है, तब वे निर्धन कुलमें जन्म पाते हैं। बुद्धि भी उनकी बहुत थोड़ी होती है। यहाँ वे भूख-प्यासका कष्ट सहते हैं। सब लोग उन्हें समाजसे बहिष्कृत किये रहते हैं। वे सब भोगोंसे निराश हो पापपूर्ण वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते हैं। उनका जन्म ऐसे कुलमें होता है, जहाँ भोग-सामग्री बहुत थोड़ी होती है; अतः वे अल्पभोगपरायण होते हैं। देवि ! इस प्रकार दान न करनेसे मनुष्य निर्धन होते हैं।

उनसे भिन्न अन्य मनुष्य दम्भी और अभिमानी होते हैं। वे मन्दबुद्धि मानव आसन देने योग्य गुरुजनके आनेपर उन्हें पीढ़ातक नहीं देते। जिन्हें स्वयं किनारे हटकर जानेके लिये मार्ग देना उचित है, उनके लिये वे अज्ञानी मार्ग नहीं देते। जो लोग अर्घ्य पाने योग्य हैं, उनका वे विधिपूर्वक पूजन नहीं करते। उन्हें पाद्य अथवा आचमनीय भी नहीं देते। अभीष्ट एवं श्रेष्ठ गुरुजनसे भी प्रेमपूर्वक वार्तालाप नहीं करते। अभिमानके साथ ही बढ़े हुए लोभके वशीभूत होकर वे माननीय पुरुषोंका भी अनादर और बड़े-बूढ़ोंका तिरस्कार करते हैं। देवि ! ऐसे स्वभाववाले सभी मनुष्य नरकमें जाते हैं। यदि वे कभी उस नरकसे छुटकारा पाते हैं तो बहुत वर्षोंतक अन्यान्य योनियोंमें भटकनेके बाद घृणित, अज्ञानी चाण्डाल आदिके निन्दित कुलमें जन्म पाते हैं। गुरुजनों और वृद्ध पुरुषोंको संताप देनेवाले लोगोंकी यही गति होती है।

जो न दम्भी है न मानी है, जो देवता और अतिथियोंका पूजक, लोकपूज्य, सबको नमस्कार करनेवाला, मधुरभाषी, सब प्रकारकी चेष्टाओंसे दूसरोंका प्रिय करनेवाला, समस्त प्राणियोंको सदा प्रिय माननेवाला, द्वेषरहित, प्रसन्नमुख, कोमलस्वभाव, सबसे स्वागतपूर्वक स्नेहमय वचन बोलनेवाला, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुषोंका विधिवत् सत्कारपूर्वक पूजन करनेवाला, मार्ग देने योग्य पुरुषोंको मार्ग देनेवाला, गुरुपूजक और अतिथिको अन्नका अग्रभाग अर्पित करनेवाला है, ऐसा पुरुष स्वर्गमें जाता है। मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंका फल स्वयं ही भोगता है। यह साक्षात् ब्रह्माजीका बताया हुआ धर्म है, जिसका मैंने वर्णन किया है।

जिसका आचरण निर्दयतापूर्ण होता है, जो सब प्राणियोंके मनमें भय उपजाता है, हाथ, पैर, रस्सी, डंडा, ढेला, खंभा अथवा अन्य साधनोंसे जीवोंको कष्ट देता है, हिंसाके लिये उद्वेग पैदा करता है, जीवोंपर आक्रमण करता और उन्हें उद्विग्न बनाता है, ऐसे स्वभाव और आचरणवाला मनुष्य नरकमें पड़ता है। वह यदि कालक्रमसे मनुष्य-योनिमें जाता है तो अधम कुलमें जन्म लेता है, जहाँ उसे नाना प्रकारकी बाधाएँ और क्लेश सहन करने पड़ते हैं। वह अधम मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप सब लोकोंका द्वेषपात्र होता है। इसके विपरीत जो सब प्राणियोंको दयापूर्ण दृष्टिसे देखता है, सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है, पिताके समान निर्वैर होता है, दयालु होनेके कारण प्राणियोंको न डराता है और न मारता ही है, जिसके हाथ-पैर वशमें होते हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंका विश्वासपात्र है, रस्सी, डंडा, ढेला अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाता, शुभ कर्म करता और सबपर दया रखता है, ऐसे शील और आचरणवाला मनुष्य स्वर्गमें जाता है। वहाँ देवताओंकी भाँति वह दिव्य भवनमें सानन्द निवास करता है। वह यदि पुण्यक्षयके पश्चात् मर्त्यलोकमें आता है तो मनुष्योंमें क्लेशरहित एवं निर्भय होता है। वह सुखसे जन्म लेता और अभ्युदयशील होता है। सुखका भागी तथा उद्वेगशून्य होता है। देवि ! यह साधु पुरुषोंका मार्ग है, जहाँ किसी प्रकारकी बाधा नहीं है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन् ! कुछ मनुष्य ऊहापोहमें कुशल दिखायी देते हैं; अतः कृपया बताइये—किस कर्मसे मनुष्य बुद्धिमान् होते हैं ? तथा जो लोग जन्मसे ही अंधे, रोगी तथा नपुंसक देखे जाते हैं, उनके वैसे होनेमें क्या कारण है ? बतानेकी कृपा करें।

महादेवजी बोले—जो लोग वेदवेत्ता, सिद्ध तथा धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन शुभाशुभ कर्म पूछते हैं और अशुभका त्याग करके शुभ कर्मका सेवन करते हैं, वे इस लोकमें सुखसे रहते और अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं। ऐसे लोग जब फिर कभी मनुष्य-योनिमें आते हैं, तब बुद्धिमान् होते हैं। जिसका वेदाध्ययन यज्ञानुष्ठानमें सहायक होता है, वह कल्याणका भागी होता है। जो परायी स्त्रियोंपर कुदृष्टि डालते हैं, वे उस दुष्ट स्वभावके कारण जन्मान्ध होते हैं। जो दूषित मनसे परायी स्त्रीको नंगी देखते हैं, वे पापी मनुष्य इस लोकमें रोगसे पीड़ित होते हैं। जो मूर्ख और दुराचारी मानव पशु आदिके साथ मैथुन करते हैं, वे मानव नपुंसक होते हैं। जो पशुओंको बाँधे रखते और गुरुपत्नी-गमन करते हैं, वे मनुष्य भी नपुंसक होते हैं।

पार्वतीजीने पूछा—देवश्रेष्ठ! कौन-सा कर्म अनिन्द्य है? क्या करनेसे मनुष्य कल्याणका भागी होता है?

महादेवजी बोले—जो कल्याणमय मार्गकी इच्छा रखता हुआ सदा ब्राह्मणोंसे उसकी जिज्ञासा करता है, जो धर्मका अन्वेषण और गुणोंकी अभिलाषा करता है, वह स्वर्गमें जाता है। देवि! यदि कभी वह फिर मनुष्य-योनिमें आता है तो मेधावी और धारणाशक्तिसे युक्त होता है। यह सत्पुरुषोंका धर्म सबका कल्याण करनेवाला है, अतः इसीपर चलना चाहिये। यह मैंने मनुष्योंके हितके लिये बतलाया है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! कुछ लोग व्रत और तपसे भ्रष्ट एवं राक्षसके समान देखे जाते हैं और कुछ मनुष्य यज्ञपरायण दृष्टिगोचर होते हैं; यह किस कर्मविपाकका फल है?

महादेवजीने कहा—देवि! लोकधर्मके प्रतिपादक शास्त्र और प्राचीन मर्यादाको प्रमाण मानकर जो उसका अनुसरण करते हैं, वे दृढ़संकल्प एवं यज्ञतत्पर देखे जाते हैं। परंतु जो मोहके वशीभूत हो अधर्मको ही धर्म बताते हैं, वे व्रत और मर्यादाका लोप करनेवाले मानव ब्रह्मराक्षस होते हैं। उन्हींमेंसे जो लोग काल-क्रमसे यहाँ फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेते हैं, वे होम और वषट्कारसे शून्य एवं मनुष्योंमें अधम होते हैं। देवि! मैंने तुम्हारे संदेहका निवारण करनेके लिये यह मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मका निरूपण किया है।

भगवान् वासुदेवका माहात्म्य

व्यासजी कहते हैं—जगन्माता पार्वती अपने स्वामीकी कही हुई सब बातें आदिसे ही सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। उस समय वहाँ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे जो मुनि उस पर्वतपर गये थे, उन्होंने भी शूलपाणि महादेवजीका पूजन और प्रणाम करके सब लोकोंके हितके लिये प्रश्न किया।

मुनियोंने कहा—त्रिलोचन! आपको नमस्कार है। इस रोमाञ्चकारी महाभयंकर संसारमें अज्ञानी पुरुष चिरकालसे भटक रहे हैं, वे जन्म-मृत्युरूप संसारबन्धनसे किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं? बताइये। हम यही सुनना चाहते हैं।

महादेवजी बोले—द्विजो! कर्मबन्धनमें बँधकर दुःख भोगनेवाले मनुष्योंके लिये मैं भगवान् वासुदेवसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं देखता। जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् वासुदेवका मन, वाणी और क्रियाद्वारा विधिपूर्वक पूजन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जिनका मन जगन्मय भगवान् वासुदेवमें नहीं लगा, उनके जीवनसे और पशुओंकी भाँति चेष्टासे क्या लाभ हुआ।

मुनियोंने कहा—सर्वलोकवन्दित पिनाकधारी भगवान् शंकर! हम भगवान् वासुदेवका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

महादेवजी बोले—सनातन पुरुष श्रीहरि ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। उनका श्रीविग्रह श्यामवर्ण है, उनकी कान्ति जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान है। वे मेघरहित आकाशमें सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते हैं। उनके दस भुजाएँ हैं। वे महातेजस्वी और देवशत्रुओंके नाशक हैं। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है। वे इन्द्रियोंके नियन्ता और सम्पूर्ण देववृन्दके अधिपति हैं। उनके उदरसे ब्रह्माका और मस्तकसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ है। सिरके बालोंसे नक्षत्र और ग्रह तथा रोमावलियोंसे देवता और असुर उत्पन्न हुए। उनके शरीरसे ऋषि और सनातन लोक प्रकट हुए हैं। वे साक्षात् ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवताओंके निवासस्थान हैं। वे ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीके रचयिता और तीनों लोकोंके स्वामी हैं। स्थावर-जङ्गम भूतोंका संहार करनेवाले वे ही हैं। वे देवताओंके भी देवता और रक्षक हैं। शत्रुओंको ताप देनेवाले, सर्वज्ञ,

सर्वस्रष्टा, सर्वव्यापी और सब ओर मुखवाले हैं। तीनों लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वे सनातन महाभाग गोविन्दके नामसे विख्यात हैं। देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये मानव-शरीरमें अवतीर्ण होकर वे समस्त भूपालोंका युद्धमें संहार करेंगे। भगवान् विष्णुके बिना देवगण अनाथ हैं। अतः उनके बिना वे संसारमें देव-कार्यकी सिद्धि नहीं कर सकते। सम्पूर्ण भूतोंके नायक भगवान् विष्णु समस्त प्राणियोंद्वारा वन्दित हैं। वे देवताओंके नाथ, कार्य-कारण-ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्मर्षियोंको शरण देनेवाले हैं। ब्रह्माजी उनकी नाभिमें हैं और मैं शरीरमें। सम्पूर्ण देवता भी उनके शरीरमें सुखपूर्वक स्थित हैं। वे भगवान् कमलके समान नेत्र धारण करते हैं। उनके गर्भमें श्रीका निवास है। वे सदा लक्ष्मीजीके साथ रहते हैं। शार्ङ्ग नामक धनुष, सुदर्शन चक्र और नन्दक नामक खड्ग उनके आयुध हैं। सम्पूर्ण नागोंके शत्रु गरुड़ उनकी ध्वजामें विराजमान हैं। उत्तम शील, शौच, इन्द्रिय-संयम, पराक्रम, वीर्य, सुदृढ शरीर, ज्ञान, सरलता, कोमलता, रूप और बल आदि सभी गुणोंसे वे सुशोभित हैं। उनके पास सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंका समुदाय है। उनके योगमायामय सहस्रों नेत्र हैं। वे विकराल नेत्रोंवाले भी हैं। उनका हृदय विशाल है। वे अपनी वाणीसे मित्रजनोंकी प्रशंसा करते हैं। कुटुम्बी और बन्धुजनोंके प्रेमी हैं। क्षमाशील, अहंकारशून्य और वेदोंका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। वे भयातुरोंके भयका अपहरण और मित्रोंके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले हैं। समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले और दीनोंके पालक हैं। शास्त्रोंके ज्ञाता और ऐश्वर्यसम्पन्न हैं। शरणमें आये हुए मनुष्योंके उपकारी और शत्रुओंको भय देनेवाले हैं। नीतिज्ञ, नीतिसम्पन्न, ब्रह्मवादी, जितेन्द्रिय और उत्कृष्ट बुद्धिसे युक्त हैं।

वे देवताओंके अभ्युदयके लिये महात्मा मनुके वंशमें अवतार लेंगे। उस अवतारमें वे ब्राह्मणोंका सत्कार करनेवाले, ब्रह्मस्वरूप और ब्राह्मणोंके प्रेमी होंगे। यदुकुलमें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्ण राजगृहमें जरासंधको जीतकर उसकी कैदमें पड़े हुए राजाओंको छुड़ायेंगे। पृथ्वीके समस्त रत्न उनके पास संचित होंगे। वे अत्यन्त पराक्रमी होंगे। भूतलपर दूसरा कोई वीर उन्हें पराक्रमद्वारा परास्त न कर सकेगा। वे विक्रमसे सम्पन्न, समस्त राजाओंके भी राजा और वीरमूर्ति होंगे। भगवान् वासुदेव द्वारकामें रहते हुए दुर्बुद्धि दैत्योंको पराजित करके इस पृथ्वीका पालन करेंगे। आप सब लोग ब्राह्मणों तथा श्रेष्ठ पूजन-सामग्रियोंके साथ भगवान्की सेवामें उपस्थित हो सनातन ब्रह्माजीकी भाँति उनका यथायोग्य पूजन करें। जो मेरा तथा पितामह ब्रह्माका दर्शन करना चाहता हो, उसे परम प्रतापी भगवान् वासुदेवका दर्शन अवश्य करना चाहिये। उनका दर्शन होनेसे ही मेरा भी दर्शन हो जाता है—इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। तपोधनो! भगवान् वासुदेव ही ब्रह्मा हैं, ऐसा जानो। जिनपर कमलनयन भगवान् विष्णु प्रसन्न होंगे, उनपर ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता भी प्रसन्न हो जायँगे। संसारमें जो मानव भगवान् केशवकी शरण लेगा, उसे कीर्ति, यश और स्वर्गकी प्राप्ति होगी। इतना ही नहीं, वह धर्मात्मा होनेके साथ ही धर्मका उपदेश करनेवाला आचार्य होगा।

महातेजस्वी भगवान् विष्णुने प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे धर्मानुष्ठानके लिये कोटि-कोटि ऋषियोंको उत्पन्न किया। वे सनत्कुमार आदि ऋषि गन्धमादन पर्वतपर विधिपूर्वक तपस्यामें संलग्न हैं। इसलिये धर्मज्ञ एवं प्रवचन-कुशल भगवान् विष्णु सबके लिये नमस्कार करनेयोग्य हैं। वे वन्दित होनेपर स्वयं वन्दना करते हैं और सम्मानित होनेपर स्वयं भी सम्मान देते हैं। जो प्रतिदिन उनका दर्शन करता है, उसपर वे भी सदा कृपादृष्टि रखते हैं। जो उनकी शरणमें जाता है, उसकी ओर वे भी बढ़ आते हैं। जो उनकी अर्चना करता है, उसकी वे भी सदा अर्चना करते हैं। इस प्रकार आदिदेव भगवान् विष्णु अनिन्द्य हैं। साधु पुरुषोंने उनकी आराधनाके लिये बड़ी भारी तपस्या की है। देवताओंने भी सनातन देव श्रीहरिका सदा ही पूजन किया है। भगवान्के अनुरूप निर्भयतासे युक्त हो उनकी शरणमें जाकर उनकी आराधनामें मन लगाया है। सम्पूर्ण द्विजोंको चाहिये कि वे मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् देवकीनन्दनकी सेवामें उपस्थित हो यत्नपूर्वक उनका दर्शन और नमस्कार करें। मुनिवरो! मैंने इसी मार्गका अनुष्ठान किया है। उन सर्वदेवेश्वर भगवान्का दर्शन कर लेनेपर सम्पूर्ण देवताओंका दर्शन हो जाता है। उन महावराहरूपधारी सर्वलोकपितामह जगत्पति भगवान् विष्णुको मैं नित्यप्रति प्रणाम करता हूँ। उन्हीं श्रीकृष्णके बड़े भाई हलधर बलरामजी होंगे, जिनका श्वेतगिरिके समान गौर वर्ण होगा। इस पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनाग ही उनके रूपमें अवतीर्ण होंगे। वे भगवान् शेष बड़ी प्रसन्नताके साथ सर्वत्र विचरण करते हैं। वे अपने फणसे पृथ्वीको लपेट करके स्थित हैं। ये जो भगवान् विष्णु

कहलाते हैं, वे ही इस पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् अनन्त हैं। जो बलराम हैं, वही समस्त इन्द्रियोंके स्वामी धरणीधर अच्युत हैं। वे दोनों पुरुषसिंह दिव्यरूप एवं दिव्यपराक्रमी हैं। उन दोनोंका दर्शन और आदर करना चाहिये। वे क्रमशः चक्र और हल धारण करनेवाले हैं। तपोधनो! मैंने तुमलोगोंसे भगवान्‌के अनुग्रहका यह उपाय बताया है, अतः तुम सब लोग प्रयत्नपूर्वक यदुश्रेष्ठ भगवान् वासुदेवका पूजन करो।

श्रीवासुदेवके पूजनकी महिमा तथा एकादशीको भगवान्‌के मन्दिरमें जागरण करनेका माहात्म्य—ब्रह्मराक्षस और चाण्डालकी कथा

मुनियोंने कहा—महर्षे! हमने भगवान् श्रीकृष्णका अद्भुत माहात्म्य सुना। वह सब पापोंको दूर करनेवाला, पुण्यमय, धन्य एवं संसारबन्धनका नाश करनेवाला है। महामुने! श्रीवासुदेवके पूजनमें संलग्न रहनेवाले मनुष्य उनका विधि-पूर्वक भक्तिभावसे पूजन करके किस गतिको प्राप्त होते हैं?

व्यासजी बोले—मुनिवरो! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। यह वैष्णवोंको सुख देनेवाला विषय है, ध्यान देकर सुनो। वैष्णवोंके लिये स्वर्ग और मोक्ष दुर्लभ नहीं हैं। वैष्णव पुरुष जिन-जिन दुर्लभ भोगोंकी अभिलाषा करते हैं, उन सबको प्राप्त कर लेते हैं। जैसे कोई पुरुष कल्पवृक्षके पास पहुँच जानेपर अपनी इच्छाके अनुसार फल पाता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णसे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। भक्त मनुष्य श्रद्धा और विधिके साथ जगद्गुरु भगवान् वासुदेवका पूजन करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके फलस्वरूप स्वयं भगवान्‌को प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग सदा भक्तिपूर्वक अविनाशी वासुदेव-की पूजा करते हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो समस्त मनोवाञ्छित फलोंके देनेवाले सर्वपापहारी श्रीहरिका सदा पूजन करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्त्यज—सभी सुरश्रेष्ठ भगवान् वासुदेवका पूजन करके परम गतिको प्राप्त होते हैं।*

दोनों पक्षोंकी एकादशीको उपवासपूर्वक एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहने। इन्द्रियोंको अपने काबूमें रक्खे और पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, नाना प्रकारके उपहार, जप, होम, प्रदक्षिणा, भाँति-भाँतिके दिव्य स्तोत्र, मनोहर गीत, वाद्य, दण्डवत्-प्रणाम तथा 'जय' शब्दके उच्चारणद्वारा श्रद्धापूर्वक भगवान् विष्णुकी विधिवत् पूजा करे। पूजनके पश्चात् रात्रिमें जागरण करके श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए उनकी कथा-वार्ता करे। अथवा भगवत्सम्बन्धी पदोंका गान करे। यों करनेवाला मनुष्य भगवान् विष्णुके परम धामको जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

मुनियोंने पूछा—महामुने! भगवान् विष्णुके लिये जागरण करके गीत गानेका क्या फल है? उसे बताइये। उसका श्रवण करनेके लिये हमारे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! भगवान् विष्णुके लिये जागरण करते समय गान करनेका जो फल बताया गया है, उसका क्रमशः वर्णन करता हूँ; सुनो। इस पृथ्वीपर अवन्ती नामसे प्रसिद्ध एक नगरी थी, जहाँ शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु विराजमान थे। उस नगरीके किनारे एक चाण्डाल रहता था, जो संगीतमें कुशल था। वह उत्तम वृत्तिसे धन पैदा करके कुटुम्बके लोगोंका भरण-पोषण करता था। भगवान् विष्णुके प्रति उसकी बड़ी भक्ति थी। वह अपने व्रतका दृढ़तापूर्वक पालन करता था। प्रत्येक मासकी एकादशी तिथिको वह उपवास करता और भगवान्‌के मन्दिरके पास जाकर उन्हें गीत सुनाया करता था। वह गीत भगवान् विष्णुके नामोंसे युक्त और उनकी अवतार-कथासे सम्बन्ध रखनेवाला होता था। गान्धार, षड्ज, निषाद, पञ्चम और धैवत आदि स्वरोंसे वह रात्रि-जागरणके समय विभिन्न गाथाओंद्वारा श्रीविष्णुका यशोगान करता था। द्वादशीको

---

* धन्यास्ते पुरुषा लोके येऽर्चयन्ति सदा हरिम्।
सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।
सम्पूज्य तं सुरवरं प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥
(२२६। १३-१४)



प्रातःकाल भगवान्‌को प्रणाम करके अपने घर आता और पहले दामाद, भानजे और कन्याओंको भोजन कराकर पीछे स्वयं सपरिवार भोजन करता था। इस प्रकार विचित्र गीतोंद्वारा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए उस चाण्डालकी आयुका अधिकांश भाग बीत गया। एक दिन चैत्रके कृष्णपक्षकी एकादशी तिथिको वह भगवान् विष्णुकी सेवा करनेके लिये जंगली पुष्पोंका संग्रह करनेके निमित्त भक्तिपूर्वक उत्तम वनमें गया। क्षिप्राके तटपर महान् वनके भीतर एक बहेड़ेका वृक्ष था। उसके नीचे पहुँचनेपर किसी राक्षसने उस चाण्डालको देखा और भक्षण करनेके लिये पकड़ लिया। यह देख चाण्डालने उस राक्षससे कहा—'भद्र! आज तुम मुझे न खाओ, कल प्रातःकाल खा लेना। मैं सत्य कहता हूँ, फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगा। राक्षस! आज मेरा बहुत बड़ा कार्य है, अतः मुझे छोड़ दो। मुझे भगवान् विष्णुकी सेवाके लिये रात्रिमें जागरण करना है। तुम्हें उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। ब्रह्मराक्षस! सम्पूर्ण जगत्‌का मूल सत्य ही है, अतः मेरी बात सुनो। मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, पुनः तुम्हारे पास लौट आऊँगा। परायी स्त्रियोंके पास जाने और पराये धनको हड़प लेनेवाले मनुष्योंको जिस पापकी प्राप्ति होती है, ब्रह्महत्यारे, शराबी और गुरुपत्नीगामी तथा शूद्रजातीय स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले द्विजको जो पाप होता है, कृतघ्न, मित्रघाती, दुबारा ब्याही हुई स्त्रीके पति, क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले पुरुष, कृपण तथा वन्ध्याके अतिथिको जो पाप लगता है, अमावास्या, अष्टमी, षष्ठी और दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीमें स्त्रीसमागमसे जो पाप होता है, ब्राह्मण यदि रजस्वला स्त्रीके पास जाय अथवा श्राद्ध करके स्त्रीसमागम करे, उससे जो पाप लगता है, मल-भोजन करनेपर जिस पापकी प्राप्ति होती है, मित्रकी पत्नीके साथ सम्भोग करनेवालोंको जो दोष प्राप्त होता है, चुगलखोर, दम्भी, मायावी और मधुघातीको जिस पापकी प्राप्ति होती है, ब्राह्मणको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर उसे न देनेवालेको जो दोष लगता है, स्त्री-हत्या, बाल-हत्या और मिथ्याभाषण करनेवालेको जिस पापका भागी होना पड़ता है, देवता, वेद, ब्राह्मण, राजा, मित्र और साध्वी स्त्रीकी निन्दा करनेसे जो पाप होता है, गुरुको झूठा कलङ्क देने, वनमें आग लगाने, गौकी हत्या करने, ब्राह्मणाधम होने और बड़े भाईके अविवाहित रहते स्वयं विवाह कर लेनेपर जो पाप लगता है तथा भ्रूणहत्या करनेवाले मनुष्यको जिस पापकी प्राप्ति होती है—अथवा यहाँ बहुत-से शपथोंका वर्णन करनेसे क्या लाभ, राक्षस! एक भयंकर शपथ सुन लो; यद्यपि वह कहने योग्य नहीं है, तो भी कहता हूँ—अपनी कन्याको बेचकर जीविका चलानेवाले, झूठी गवाही देने एवं यज्ञके अनधिकारीसे यज्ञ करानेवाले मनुष्योंको जिस पापका भागी होना पड़ता है तथा संन्यासी और ब्रह्मचारीको कामभोगमें आसक्त होनेपर जिस पापकी प्राप्ति होती है, उक्त सभी पापोंसे मैं लिप्त होऊँ, यदि तुम्हारे पास लौटकर न आऊँ।'

चाण्डालकी यह बात सुनकर ब्रह्मराक्षसको बड़ा विस्मय हुआ। उसने कहा—'जाओ, सत्यके द्वारा अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करना।' राक्षसके यों कहनेपर चाण्डाल फूल लेकर भगवान् विष्णुके मन्दिरपर आया। उसने सभी फूल ब्राह्मणको दे दिये। ब्राह्मणने उन्हें जलसे धोकर उनके द्वारा भगवान् विष्णुका पूजन किया और अपने घरकी राह ली; किंतु चाण्डालने मन्दिरके बाहर ही भूमिपर बैठकर उपवासपूर्वक गीत गाते हुए रातभर जागरण किया। रात बीती, सबेरा हुआ और चाण्डालने स्नान करके भगवान्‌को नमस्कार किया। फिर अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये वह

राक्षसके पास चल दिया। उसे आते देख किसी मनुष्यने पूछा—'भद्र! कहाँ जाते हो?' चाण्डालने सब बातें कह सुनायीं। तब वह मनुष्य फिर बोला—'यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका साधन है; अतः विद्वान् पुरुषको बड़े यत्नसे इसका पालन करना चाहिये। मनुष्य जीवित रहे तो वह धर्म, अर्थ, सुख और श्रेष्ठ मोक्ष-गतिको प्राप्त कर लेता है। जीवित रहनेपर वह कीर्तिका भी उपार्जन करता है। संसारमें मरे हुए मनुष्यकी कोई चर्चा ही नहीं करता।' उसकी बात सुनकर चाण्डालने युक्तियुक्त वचनोंमें उत्तर दिया—'भद्र! मैंने शपथ खायी है, अतः सत्यको आगे करके राक्षसके पास जाता हूँ।' तब उस मनुष्यने फिर कहा—'साधो! तुम ऐसी मूर्खता क्यों करते हो? क्या तुमने मनुजीका यह वचन नहीं सुना है—'गौ, स्त्री और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये, विवाहके समय, रतिके प्रसङ्गमें, प्राण-संकट-कालमें, सर्वस्वका अपहरण होते समय—इन पाँच अवसरोंपर असत्यभाषणसे पाप नहीं लगता।'*

उस मनुष्यका कथन सुनकर चाण्डालने पुनः उत्तर दिया—'आपका कल्याण हो, आप ऐसी बात मुँहसे न निकालें। संसारमें सत्यका ही आदर होता है। भूतलपर जो कुछ भी सुख-सामग्री है, वह सत्यसे ही प्राप्त होती है। सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही जलमें रसकी स्थिति है, सत्यसे ही आग जलती और सत्यसे ही वायु चलती है। मनुष्योंको सत्यसे ही धर्म, अर्थ, काम और दुर्लभ मोक्षकी प्राप्ति होती है; अतः सत्यका परित्याग न करे। लोकमें सत्य ही परब्रह्म है, यज्ञोंमें भी सत्य ही सबसे उत्तम है तथा सत्य स्वर्गसे आया हुआ है; इसलिये सत्यको कभी नहीं छोड़ना चाहिये।'†

यों कहकर वह चाण्डाल उस मनुष्यको चुप कराकर उस स्थानपर गया, जहाँ प्राणियोंका वध करनेवाला ब्रह्मराक्षस रहता था। चाण्डालको आया देख ब्रह्मराक्षसके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उसने सिर हिलाकर कहा—'महाभाग!



तुम्हें साधुवाद! तुम वास्तवमें सत्य वचनका पालन करनेवाले हो। तुम तो सत्यस्वरूप हो। मैं तुम्हें चाण्डाल नहीं मानता। तुम्हारे इस कर्मसे मैं तुम्हें पवित्र ब्राह्मण समझता हूँ। तुम्हारे मुखमें कल्याणका निवास है। अब मैं तुमसे धर्म-सम्बन्धी कुछ बातें पूछता हूँ, बताओ। 'तुमने भगवान् विष्णुके मन्दिरमें कौन-सा कार्य किया?' मातङ्गने कहा—'सुनो, मैंने मन्दिरके नीचे बैठकर भगवान्‌के सामने मस्तक झुकाया और उनका यशोगान करते हुए सारी रात जागरण किया।' ब्रह्मराक्षसने फिर पूछा—'बताओ, तुम्हें इस प्रकार भक्तिपूर्वक विष्णुमन्दिरमें जागरण करते कितना समय व्यतीत हो गया?' चाण्डालने हँसकर कहा—'राक्षस! मुझे प्रत्येक मासकी एकादशीको जागरण करते बीस वर्ष व्यतीत हो गये!' यह सुनकर ब्रह्मराक्षसने कहा—'साधो! अब मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, वह करो। मुझे एक रातके जागरणका फल अर्पण करो। महाभाग! ऐसा करनेसे तुम्हें छुटकारा मिल जायगा; अन्यथा मैं तीन बार सत्यकी दुहाई देकर कहता हूँ कि तुम्हें कदापि नहीं छोड़ूँगा।' यों कहकर वह चुप हो गया।

---

* गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं विवाहकाले सुरतप्रसङ्गे।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥
(२२७। ५०)

† सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनापो रसात्मिकाः।
ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुतः॥
धर्मार्थकामसम्प्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा।
सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्यं न संत्यजेत्॥
सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्यं यज्ञेषु चोत्तमम्।
सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न संत्यजेत्॥
(२२७। ५३—५५)

चाण्डालने कहा—'निशाचर ! मैंने तुम्हें अपना शरीर अर्पित कर दिया है। अतः अब दूसरी बात करनेसे क्या लाभ। तुम मुझे इच्छानुसार खा जाओ।' तब राक्षसने फिर कहा—'अच्छा, रातके दो ही पहरके जागरण और संगीतका पुण्य मुझे दे दो। तुम्हें मुझपर भी कृपा करनी चाहिये।' यह सुनकर चाण्डालने राक्षससे कहा—'यह कैसी बेसिर-पैरकी बात करते हो। मुझे इच्छानुसार खा लो। मैं तुम्हें जागरणका पुण्य नहीं दूँगा।' चाण्डालकी बात सुनकर ब्रह्मराक्षसने कहा—'भाई! तुम तो अपने धर्म-कर्मसे सुरक्षित हो; कौन ऐसा अज्ञानी और दुष्ट बुद्धिका पुरुष होगा, जो तुम्हारी ओर देखने, तुमपर आक्रमण करने अथवा तुम्हें पीड़ा देनेका साहस कर सके। दीन, पापग्रस्त, विषयविमोहित, नरकपीड़ित और मूढ़ जीवपर साधु पुरुष सदा ही दयालु रहते हैं। महाभाग! तुम मुझपर कृपा करके एक ही यामके जागरणका पुण्य दे दो अथवा अपने घरको लौट जाओ।' चाण्डालने फिर उत्तर दिया—'न तो मैं अपने घर लौटूँगा और न तुम्हें किसी तरह एक यामके जागरणका पुण्य ही दूँगा।' यह सुनकर ब्रह्मराक्षस हँस पड़ा और बोला—'भाई! रात्रि व्यतीत होते समय जो तुमने अन्तिम गीत गाया हो, उसीका फल मुझे दे दो और पापसे मेरा उद्धार करो।'

तब चाण्डालने उससे कहा—'यदि तुम आजसे किसी प्राणीका वध न करो तो मैं तुम्हें अपने पिछले गीतका पुण्य दे सकता हूँ; अन्यथा नहीं।' 'बहुत अच्छा' कहकर ब्रह्मराक्षसने उसकी बात मान ली। तब चाण्डालने उसे आधे मुहूर्तके जागरण और गानका फल दे दिया। उसे पाकर ब्रह्मराक्षसने चाण्डालको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर तीर्थोंमें श्रेष्ठ पृथूदक तीर्थकी ओर चल दिया। वहाँ निराहार रहनेका संकल्प लेकर ब्रह्मराक्षसने प्राण त्याग दिया। उस गीतके फलसे पुण्यकी वृद्धि होनेके कारण उसका उस राक्षसयोनिसे उद्धार हो गया। पृथूदकतीर्थके प्रभावसे दुर्लभ ब्रह्मलोकमें जाकर उसने दस हजार वर्षोंतक वहाँ निर्भय निवास किया। अन्तमें वह



जितेन्द्रिय ब्राह्मण हुआ और उसे पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। अब चाण्डालकी शेष कथा कहता हूँ, सुनो! राक्षसके चले जानेपर वह बुद्धिमान् एवं संयमी चाण्डाल अपने घर आया। उस घटनासे चाण्डालके मनमें बड़ा वैराग्य हुआ। उसने अपनी पत्नीकी रक्षाका भार पुत्रोंपर डाल दिया और स्वयं पृथ्वीकी परिक्रमा आरम्भ कर दी। कोकामुखसे लेकर जहाँ भगवान् स्कन्दके दर्शन होते हैं, वहाँतक गया। स्कन्दका दर्शन करके वह धारा नगरीमें गया। वहाँ भी प्रदक्षिणा करके वह पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचलपर जाकर पापमोचन तीर्थमें पहुँचा। वहाँ उस चाण्डालने स्नान किया, जो सब पापोंको दूर करनेवाला है। फिर पापरहित हो वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ।

श्रीविष्णुमें भक्ति होनेका क्रम और कलि-धर्मका निरूपण

मुनियोंने कहा—महामते ! हमने भगवान् श्रीकृष्णके समीप जागरणपूर्वक गीत सुनानेका फल सुना, जिससे वह चाण्डाल परम गतिको प्राप्त हुआ। अब जिस तपस्या अथवा कर्मसे भगवान् विष्णुमें हमारी भक्ति हो सके, वह हमें बताइये। इस समय हम यही विषय सुनना चाहते हैं।

व्यासजी बोले—मुनिवरो ! भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति महान् फल देनेवाली है। वह मनुष्यको जिस प्रकार होती है, वह सब क्रमशः बतलाता हूँ; ध्यान देकर सुनो। ब्राह्मणो! यह

संसार अत्यन्त घोर और समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर है। नाना प्रकारके सैकड़ों दुःखोंसे व्याप्त और मनुष्योंके हृदयमें महान् मोहका संचार करनेवाला है। इस जगत्में पशु-पक्षी आदि हजारों योनियोंमें बारंबार जन्म लेनेके पश्चात् देहधारी जीव कभी किसी प्रकार मनुष्यका जन्म पाता है। मनुष्योंमें भी ब्राह्मणत्व, ब्राह्मणत्वमें भी विवेक, विवेकसे भी धर्मनिष्ठ बुद्धि और बुद्धिसे भी कल्याणमय मार्गोंका ग्रहण होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्योंके पूर्वजन्मका संचित पाप जबतक नष्ट नहीं हो जाता, तबतक जगन्मय भगवान् वासुदेवमें उनकी भक्ति नहीं होती। अतः ब्राह्मणो! श्रीकृष्णमें जिस प्रकार भक्ति होती है, वह सुनो। अन्य देवताओंके प्रति मनुष्यकी जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा तद्गतचित्तसे भक्ति होती है, उससे यज्ञमें उसका मन लगता है; फिर वह एकाग्रचित्त होकर अग्निकी उपासना करता है। अग्निदेवके संतुष्ट होनेपर भगवान् भास्करमें उसकी भक्ति होती है। तबसे वह निरन्तर सूर्यदेवकी आराधना करने लगता है। भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर उसकी भक्ति भगवान् शंकरमें होती है, फिर वह बड़े यत्नके साथ विधिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करता है। जब महादेवजी संतुष्ट होते हैं, तब मनुष्यकी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णमें होती है। तब वह वासुदेवसंज्ञक अविनाशी भगवान् जगन्नाथका पूजन करके भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है।

मुनियोंने पूछा—महामुने! संसारमें जो अवैष्णव मनुष्य देखे जाते हैं, वे श्रीविष्णुका पूजन क्यों नहीं करते? इसका कारण बतलाइये।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! इस संसारमें दो प्रकारके भूतसर्ग विख्यात हैं—एक आसुर और दूसरा दैव। पूर्वकालमें इन दोनोंकी सृष्टि ब्रह्माजीने ही की थी। दैवी प्रकृतिका आश्रय लेनेवाले मनुष्य भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं और आसुरी प्रकृतिको प्राप्त हुए लोग श्रीहरिकी निन्दा किया करते हैं। ऐसे लोग मनुष्योंमें अधम हैं। श्रीहरिकी मायासे उनकी बुद्धि मारी गयी है। ब्राह्मणो! वे श्रीहरिको न पाकर नीच गतिमें जाते हैं। भगवान्की माया बड़ी गूढ़ है। देवताओं और असुरोंके लिये भी उसका ज्ञान होना कठिन है। वह मनुष्योंके हृदयमें महान् मोहका संचार करती है। जिन्होंने मनको वशमें नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये उस मायाको पार करना कठिन है।

मुनियोंने कहा—महर्षे! अब हम आपसे जगत्के संहारकी कथा सुनना चाहते हैं। कल्पके अन्तमें जो महाप्रलय होता है, उसका वर्णन कीजिये।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! कल्पके अन्तमें तथा प्राकृत प्रलयमें जो जगत्का संहार होता है, उसका वर्णन सुनो। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं, जो देवताओंके बारह हजार दिव्य वर्षोंमें समाप्त होते हैं। समस्त चतुर्युग स्वरूपसे एक-से ही होते हैं। सृष्टिके आरम्भमें सत्ययुग होता है तथा अन्तमें कलियुग रहता है। ब्रह्माजी प्रथम कृतयुगमें जिस प्रकार सृष्टिका आरम्भ करते हैं, वैसे ही अन्तिम कलियुगमें उसका उपसंहार करते हैं।

मुनियोंने कहा—भगवन्! कलिके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, जिसमें चार चरणोंवाले भगवान् धर्म खण्डित हो जाते हैं।

व्यासजी बोले—निष्पाप मुनियो! तुम जो मुझसे कलिका स्वरूप पूछते हो, वह तो बहुत बड़ा है; तथापि मैं संक्षेपसे बतलाता हूँ, सुनो। कलियुगमें मनुष्योंकी वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचारमें प्रवृत्ति नहीं होगी। सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेदकी आज्ञाके पालनमें भी कोई प्रवृत्त न होगा। कलियुगमें विवाहको धर्म नहीं माना जायगा। शिष्य गुरुके अधीन नहीं रहेंगे। पुत्र भी अपने धर्मका पालन नहीं करेंगे। अग्निहोत्रका नियम उठ जायगा। कोई किसी भी कुलमें क्यों न उत्पन्न हुआ हो—जो बलवान् होगा, वही कलियुगमें सबका स्वामी होगा। सभी वर्णोंके लोग कन्या बेचकर जीवन-निर्वाह करेंगे। ब्राह्मणो! कलियुगमें जिस किसीका जो भी वचन होगा, सब शास्त्र ही माना जायगा। कलियुगमें सब देवता होंगे और सबके लिये सब आश्रम होंगे। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान करके उसमें उपवास, परिश्रम और धनका व्यय करना धर्म कहा जायगा। कलियुगमें थोड़े-से ही धनसे मनुष्योंको बड़ा घमंड होगा। स्त्रियोंको अपने केशोंपर ही रूपवती होनेका गर्व होगा। सुवर्ण, मणि और रत्न आदि तथा वस्त्रोंके भी नष्ट हो जानेपर स्त्रियाँ केशोंसे ही शृङ्गार करेंगी। कलियुगकी स्त्रियाँ धनहीन पतिको त्याग देंगी। उस समय धनवान् पुरुष ही युवतियोंका स्वामी होगा। जो-जो अधिक देगा, उसे-उसे ही मनुष्य अपना मालिक मानेंगे। उस समय लोग प्रभुताके ही कारण सम्बन्ध रक्खेंगे। द्रव्यराशि घर बनानेमें ही समाप्त हो जायगी। उससे दान-पुण्यादि न होंगे। बुद्धि द्रव्योंके संग्रहमात्रमें ही लगी रहेगी। उसके द्वारा आत्मचिन्तन न होगा। सारा धन उपभोगमें ही समाप्त हो जायगा। उससे धर्मका

अनुष्ठान न होगा। कलियुगकी स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होंगी। हाव-भाव-विलासमें ही उनकी स्पृहा रहेगी। अन्यायसे धन पैदा करनेवाले पुरुषोंमें ही उनकी आसक्ति होगी। सुहृदोंके निषेध करनेपर भी मनुष्य एक-एक पाईके लिये भी दूसरों-के स्वार्थकी हानि कर देंगे।

ब्राह्मणो! कलियुगमें सब लोग सदा सबके साथ समानताका दावा करेंगे। गायोंके प्रति तभीतक गौरव रहेगा, जबतक कि वे दूध देती रहेंगी। कलियुगकी प्रजा प्रायः अनावृष्टि और क्षुधाके भयसे व्याकुल रहेगी। सबके नेत्र आकाशकी ओर लगे रहेंगे। वर्षा न होनेसे दुखी मनुष्य तपस्वी जनोंकी भाँति मूल-फल और पत्ते खाकर रहेंगे और कितने ही आत्मघात कर लेंगे। कलिमें सदा अकाल ही पड़ता रहेगा। सब लोग सदा असमर्थ होकर क्लेश भोगेंगे। कभी किन्हीं मानवोंको थोड़ा सुख भी मिल जायगा। सब लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे। अग्निहोत्र, देवपूजा, अतिथि-सत्कार, श्राद्ध और तर्पणकी क्रिया कोई नहीं करेंगे। कलियुगकी स्त्रियाँ लोभी, नाटी, अधिक खानेवाली, बहुत संतान पैदा करनेवाली और मन्द भाग्यवाली होंगी। वे दोनों हाथोंसे सिर खुजलाती रहेंगी। गुरुजनों तथा पतिकी आज्ञाका भी उल्लङ्घन करेंगी तथा पर्देके भीतर नहीं रहेंगी। अपना ही पेट पालेंगी, क्रोधमें भरी रहेंगी। देह-शुद्धिकी ओर ध्यान नहीं देंगी और असत्य एवं कटु वचन बोलेंगी। इतना ही नहीं, वे दुराचारिणी होकर दुराचारी पुरुषोंसे मिलनेकी अभिलाषा करेंगी। कुलवती स्त्रियाँ भी अन्य पुरुषोंके साथ व्यभिचार करेंगी। ब्रह्मचारी लोग वेदोक्त व्रतका पालन किये बिना ही वेदाध्ययन करेंगे। गृहस्थ पुरुष न तो हवन करेंगे और न सत्पात्रको उचित दान ही देंगे। वानप्रस्थ आश्रममें रहनेवाले लोग वनके कन्द-मूल आदिसे निर्वाह न करके ग्रामीण आहारका संग्रह करेंगे और संन्यासी भी मित्र आदि-के स्नेह-बन्धनमें बँधे रहेंगे। कलियुग आनेपर राजालोग प्रजाकी रक्षा नहीं करेंगे, अपितु कर लेनेके बहाने प्रजाके ही धनका अपहरण करनेवाले होंगे।* उस समय जिस-जिसके पास हाथी, घोड़े और रथ होंगे, वही-वही राजा होगा। और जो-जो निर्बल होंगे, वे ही सेवक होंगे। वैश्यलोग कृषि, वाणिज्य आदि अपने कर्मोंको छोड़कर शूद्र-वृत्तिसे रहेंगे। शिल्प-कर्मसे जीवन निर्वाह करेंगे। इसी प्रकार शूद्र भी संन्यासका चिह्न धारण करके भिक्षापर जीवन-निर्वाह करेंगे। वे अधम मनुष्य संस्कारहीन होते हुए भी लोगोंको ठगनेके लिये पाखण्ड-वृत्तिका आश्रय लेंगे। दुर्भिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त उपद्रवग्रस्त होकर प्रजाजन ऐसे देशोंमें चले जायँगे, जहाँ गेहूँ और जौ आदिकी अधिकता होगी। उस समय वेदमार्गका लोप, पाखण्डकी अधिकता और अधर्मकी वृद्धि होनेसे लोगोंकी आयु बहुत थोड़ी होगी। कलियुगमें पाँच, छः अथवा सात वर्षकी स्त्री और आठ, नौ या दस वर्षके पुरुषोंके ही संतान होने लग जायँगी। बारह वर्षकी अवस्थामें ही बाल सफेद होने लगेंगे। घोर कलियुग आनेपर कोई मनुष्य बीस वर्षतक जीवित नहीं रहेगा। उस समय लोग मन्दबुद्धि, व्यर्थ चिह्न धारण करनेवाले और दुष्ट अन्तःकरण-वाले होंगे; अतः वे थोड़े ही समयमें नष्ट हो जायँगे।

ब्राह्मणो! जब-जब इस जगत्‌में पाखण्ड-वृत्ति दृष्टिगोचर होने लगे, तब-तब विद्वान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। जब-जब वैदिक मार्गका अनुसरण करनेवाले साधु पुरुषोंकी हानि हो, तब-तब बुद्धिमान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। जब धर्मात्मा मनुष्योंके आरम्भ किये हुए कार्य शिथिल हो जायँ, तब उसमें विद्वानोंको कलि-युगकी प्रधानताका अनुमान करना चाहिये।* जब-जब यज्ञोंके अधीश्वर भगवान् पुरुषोत्तमका लोग यज्ञोंद्वारा यजन न करें, तब-तब यह समझना चाहिये कि कलियुगका बल बढ़ रहा है। द्विजवरो! जब वेदवादमें प्रेम न हो और पाखण्डमें अनुराग बढ़ता जाय, तब विद्वान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। ब्राह्मणो! कलियुगमें पाखण्डसे दूषित चित्तवाले मनुष्य सबकी सृष्टि करनेवाले जगत्पति भगवान् विष्णुकी आराधना नहीं करेंगे। उस समय पाखण्डसे प्रभावित मनुष्य ऐसा कहेंगे कि 'देवताओंसे क्या लेना है। ब्राह्मणों और वेदोंसे क्या लाभ है। जलसे होनेवाली शुद्धिमें

* अरक्षितारो हर्तारः शुल्कव्याजेन पार्थिवाः।
हारिणो जनवित्तानां सम्प्राप्ते तु कलौ युगे॥
(२२९। ३४)

* यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरत्रोपलक्ष्यते।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥
यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम्।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥
प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम्।
तदानुमेयं प्राधान्यं कलेर्विप्रा विचक्षणैः॥
(२२९। ४४-४६)

क्या रक्खा है।' * कलियुगमें मेघ थोड़ी वृष्टि करेंगे। खेतीमें बहुत कम फल लगेंगे और वृक्षोंके फल सारहीन होंगे। कलिमें प्रायः लोग घुटनोंतक वस्त्र पहनेंगे। वृक्षोंमें शमीकी ही अधिकता होगी। चारों वर्णोंके सब लोग प्रायः शूद्रवत् हो जायँगे। † कलियुगके आनेपर प्रायः छोटे-छोटे धान्य होंगे। अधिकतर बकरियोंका दूध मिलेगा और उशीर (खस) ही एक मात्र अनुलेपन होगा। कलियुगमें अधिकतर सास और ससुर ही लोगोंके गुरुजन होंगे। मुनिवरो! उस समय मनोहारिणी भार्या और साले आदि ही सुहृद् समझे जायँगे। लोग अपने ससुरके अनुगामी होकर कहेंगे कि 'कौन किसकी माता है और कौन किसका पिता। सब जीव अपने कर्मोंके अनुसार ही जन्मते और मरते हैं।' ‡ उस समय थोड़ी बुद्धि-वाले मनुष्य मन, वाणी और शरीरके दोषोंसे प्रभावित होकर प्रतिदिन बारंबार पाप करेंगे। सत्य, शौच और लज्जासे रहित मनुष्योंके लिये जो-जो दुःखकी बात हो सकती है, वह सब कलिकालमें होगी। संसारमें स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहाका शब्द नहीं सुनायी देगा। उस समय स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण कोई विरला ही होगा। एक विशेषता अवश्य है, कलियुगमें थोड़ा-सा ही प्रयत्न करनेपर मनुष्य वह उत्तम पुण्यराशि प्राप्त कर सकता है, जो सत्ययुगमें बहुत बड़ी तपस्यासे ही साध्य हो सकती है।

ब्राह्मणो! कलियुग धन्य है, जहाँ थोड़े ही क्लेशसे महान् फलकी प्राप्ति होती है तथा स्त्री और शूद्र भी धन्य हैं। इसके सिवा और भी सुनो। सत्ययुगमें दस वर्षतक तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदिका अनुष्ठान करनेसे जो फल मिलता है, वही त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास तथा कलियुगमें एक दिन-रातके ही अनुष्ठानसे मिल जाता है। इसीलिये मैंने कलियुगको श्रेष्ठ बताया। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें पूजन करनेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वही कलियुगमें केशवका नाम-कीर्तन करनेमात्रसे मिल जाता है। धर्मज्ञ ब्राह्मणो! इस कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही मनुष्यको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है। इसीलिये मैं कलियुगसे अधिक संतुष्ट हूँ।*

अब शूद्रोंकी विशेषताका वर्णन सुनो। द्विजोंको पहले ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है। फिर धर्मतः प्राप्त हुए धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करना पड़ता है। इसमें भी व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन और व्यर्थ धन द्विजोंके पतनके कारण होते हैं; इसलिये उन्हें सदा संयमी रहना आवश्यक है। यदि वे सभी वस्तुओंमें विधिका पालन न करें तो उन्हें दोष लगता है। यहाँतक कि भोजन और पान आदि भी उनकी इच्छाके अनुसार नहीं प्राप्त होते। वे समस्त कार्योंमें परतन्त्र होते हैं। इस प्रकार विनीत भावसे महान् क्लेश उठाकर वे उत्तम लोकोंपर अधिकार प्राप्त करते हैं; परन्तु मन्त्रहीन पाक-यज्ञका अधिकारी शूद्र केवल द्विजोंकी सेवा करने मात्रसे अपने लिये अभीष्ट पुण्यलोकोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिये शूद्र अन्य वर्णोंकी अपेक्षा अधिक धन्य-वादका पात्र है। स्त्रियाँ क्यों धन्य हैं, इसका कारण बतलाया जाता है। पुरुषोंको अपने धर्मके विपरीत न चलकर सदा ही धनोपार्जन करना, उसे सुपात्रोंको देना और विधिपूर्वक यज्ञ करना आवश्यक है। धनके उपार्जन और संरक्षणमें महान् क्लेश उठाना पड़ता है तथा उसे उत्तम कार्यमें लगानेके लिये मनुष्योंको जो गहरी चिन्ता करनी पड़ती है, वह सबको विदित है। ये तथा और भी बहुत-से क्लेश सहन करके पुरुष क्रमशः प्राजापत्य आदि शुभ लोक प्राप्त करते हैं; परंतु स्त्री मन, वाणी और क्रियाद्वारा केवल पतिकी सेवा करने मात्रसे उसके समान लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लेती है। वे महान् क्लेशके

* किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शौचेनाम्बुजन्मना।
इत्येवं प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहता नराः॥
(२२९। ५०)

† जानुप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः।
शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे॥
(२२९। ५२)

‡ कस्य माता पिता कस्य यदा कर्मात्मकः पुमान्।
इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः॥
(२२९। ५५)

* धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पक्लेशैर्महत्फलम्।
तथा भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत॥
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्।
द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साध्विति भाषितम्॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ।
स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलौ॥
(२२९। ६१-६५)

बिना ही उन्हीं लोकोंमें जाती हैं, जिनमें क्लेश-साध्य उपाय करके पुरुष जाता है; इसलिये तीसरी बार मैंने स्त्रियोंको साधुवाद दिया है। ब्राह्मणो! यह मैंने कलियुग आदिकी श्रेष्ठताका कारण बताया है। अब तुमलोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हो, उसे पूछो; मैं तुम्हारे इच्छानुसार उसका भी वर्णन करूँगा। जो अपने सद्गुणरूपी जलसे समस्त पापरूपी पङ्कको धो चुके हैं, उनके द्वारा थोड़े ही प्रयत्नसे कलियुगमें धर्मकी सिद्धि हो जाती है। मुनिवरो! शूद्र केवल द्विजोंकी सेवामें तत्पर रहने तथा स्त्रियाँ पतिकी शुश्रूषा करने मात्रसे अनायास ही पुण्यलोक प्राप्त कर लेती हैं। इसलिये इन तीनोंको ही मैंने परम धन्य माना है। द्विजातियोंको सत्य आदि तीनों युगोंमें धर्मका साधन करते समय अधिक क्लेश उठाना पड़ता है, किंतु कलियुगमें मनुष्य थोड़ी ही तपस्यासे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। मुनिवरो! जो कलियुगमें धर्मका आचरण करते हैं, वे धन्य हैं।* धर्मज्ञो! तुम्हारा जो अभीष्ट विषय था, उसे मैंने बिना पूछे बता दिया; अब और क्या करूँ?

युगान्तकालकी अवस्थाका निरूपण

मुनियोंने कहा—धर्मज्ञ! हमलोग धर्मकी लालसासे अब उस कलिकालके समीप आ पहुँचे हैं, जब कि स्वल्प कर्मके द्वारा हम सुखपूर्वक उत्तम धर्मको प्राप्त कर सकते हैं। अब जिन निमित्तों (लक्षणों) से धर्मका नाश और त्रास एवं उद्वेग करनेवाले युगान्तकालकी उपस्थिति जानी जाय, उन्हें बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! युगान्तकालमें प्रजाकी रक्षा न करके केवल कर लेनेवाले राजा होंगे। वे अपनी ही रक्षामें लगे रहेंगे। उस समय प्रायः क्षत्रियेतर राजा होंगे। ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ रहकर जीवन-निर्वाह करेंगे और शूद्र ब्राह्मणोंके आचारका पालन करनेवाले होंगे। युगान्तकाल आनेपर श्रोत्रिय तथा काण्डपृष्ठ (अपने कुलका त्याग करके दूसरे कुलमें सम्मिलित हुए पुरुष) एक पङ्क्तिमें बैठकर यज्ञकर्मसे हीन हविष्य भोजन करेंगे। मनुष्य अशिष्ट, स्वार्थ-परायण, नीच तथा मद्य और मांसके प्रेमी होकर मित्र-पत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाले होंगे। चोर राजाकी वृत्तिमें रहकर अपना काम करेंगे और राजा चोरोंका-सा बर्ताव करेंगे। सेवक-गण स्वामीके दिये बिना ही उसके धनका उपभोग करनेवाले होंगे। सबको धनकी ही अभिलाषा होगी। साधु-संतोंके बर्तावका कहीं भी आदर न होगा। पतित मनुष्यके प्रति किसीके मनमें घृणा न होगी। पुरुष नकटे, खुले केशवाले और कुरूप होंगे। स्त्रियाँ सोलह वर्षकी आयुके पहले ही बच्चोंकी माँ बन जायँगी। युगान्तमें स्त्रियाँ धन लेकर पराये पुरुषोंसे समागम करेंगी। सभी द्विज वाजसनेयी (बृहदारण्यक उपनिषद्के ज्ञाता) बनकर ब्रह्मकी बात करेंगे। शूद्र तो वक्ता होंगे और ब्राह्मण चाण्डाल हो जायँगे। शूद्र शठतापूर्ण बुद्धिसे जीविका चलाते हुए मूँड़ मुँड़ाकर गेरुआ वस्त्र पहने धर्मका उपदेश करेंगे। युगान्तके समय शिकारी जीव अधिक होंगे, गौओंकी संख्या घटेगी और साधुओंके स्वभावमें परिवर्तन होगा। चाण्डाल तो गाँव या नगरके बीचमें बसेंगे और बीचमें रहनेवाले ऊँचे वर्णके लोग नगर या गाँवसे बाहर बसेंगे। सारी प्रजा लज्जाको तिलाञ्जलि दे उच्छृङ्खलतापूर्ण बर्तावसे नष्ट हो जायगी। दो सालके बछड़े हलमें जोते जायँगे और मेघ कहीं वर्षा करेगा, कहीं नहीं करेगा। शूद्रवीरके कुलमें उत्पन्न हुए सब लोग पृथ्वीके मालिक होंगे। प्रजावर्गके सभी मानव निम्नश्रेणीके हो जायँगे। प्रायः कोई मनुष्य धर्मका आचरण नहीं करेगा। अधिकांश भूमि ऊसर हो जायगी। सभी मार्ग बटमारोंसे घिरे होंगे। सभी वर्णोंके लोग वाणिज्य-वृत्तिवाले होंगे। पिताके धनको उनके दिये बिना ही लड़के आपसमें बाँट लेंगे, उसे हड़प लेनेकी चेष्टा करेंगे और लोभ आदि कारणोंसे वे परस्परविरोधी बने रहेंगे। सुकुमारता, रूप और रत्नका नाश हो जानेसे नारियाँ बालोंसे ही सुसज्जित होंगी। उनमें वीर्यहीन गृहस्थकी रति होगी। युगान्त-कालमें पत्नीके समान दूसरा कोई अनुरागका पात्र नहीं

* अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिद्ध्यति वै कलौ। नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः॥
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्मुनिसत्तमाः। तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि॥
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतमं मतम्। धर्मसंराधने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु॥
तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः। धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः॥
(२२९। ७८–८१)

होगा । पुरुष थोड़े हों और स्त्रियाँ अधिक, यह युगान्तकालकी पहचान है । संसारमें याचक अधिक होंगे और एक दूसरेसे याचना करेंगे । किंतु कोई किसीको कुछ न देगा । सब लोग राजदण्ड, चोरी और अग्निकाण्ड आदिसे क्षीण होकर नष्ट हो जायँगे । खेतीमें फल नहीं लगेंगे । तरुण पुरुष बुड्ढोंकी तरह आलसी और अकर्मण्य होंगे । जो शील और सदाचारसे भ्रष्ट हैं, ऐसे लोग सुखी होंगे । वर्षाकालमें जोरसे आँधी चलेगी और पानीके साथ कंकड़-पत्थरोंकी वर्षा होगी । युगान्तकालमें परलोक संदेहका विषय हो जायगा । क्षत्रिय वैश्योंकी भाँति धन-धान्यके व्यापारसे जीविका चलायेंगे । युगान्तकालमें कोई किसीसे बन्धु-बान्धवका नाता नहीं निभायेगा । प्रतिज्ञा और शपथका पालन नहीं होगा । प्रायः लोग ऋणको चुकाये विना ही हड़प लेंगे । लोगोंका हर्ष निष्फल और क्रोध सफल होगा । दूधके लिये घरमें बकरियाँ बाँधी जायँगी । इसी प्रकार जिसका शास्त्रमें कहीं विधान नहीं है, ऐसे यज्ञका अनुष्ठान होगा । मनुष्य अपनेको पण्डित समझेंगे और बिना प्रमाणके ही सब कार्य करेंगे । जारज, क्रूर कर्म करनेवाले और शराबी भी ब्रह्मवादी होंगे और अश्वमेध-यज्ञ करेंगे । अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले ब्राह्मण धनकी तृष्णासे यज्ञके अनधिकारियोंसे भी यज्ञ करायेंगे । कोई भी अध्ययन नहीं करेगा । तारोंकी ज्योति फीकी पड़ जायगी, दसों दिशाएँ विपरीत होंगी । पुत्र पिताको और बहुएँ सासको अपना काम करनेके लिये भेजेंगी । इस प्रकार युगान्तकालमें पुरुष और स्त्रियाँ ऐसा ही जीवन व्यतीत करेंगी । द्विजगण अग्निहोत्र और अग्राशन[1] किये बिना ही भोजन कर लेंगे । भिक्षा दिये बिना और बलिवैश्वदेव किये बिना ही लोग स्वयं भोजन करेंगे । स्त्रियाँ सोये हुए पतियोंको धोखा देकर अन्य पुरुषोंके पास चली जायँगी ।

मुनियोंने कहा—महर्षे ! इस प्रकार धर्मका नाश होनेपर मनुष्य कहाँ जायँगे ? वे कौन-सा कर्म और कैसी चेष्टा करेंगे ? वे किस प्रमाणको मानेंगे ? उनकी कितनी आयु होगी ? और किस सीमातक पहुँचकर वे सत्ययुग प्राप्त करेंगे ?

व्यासजी बोले—मुनिवरो ! तदनन्तर धर्मका नाश होनेसे समस्त प्रजा गुणहीन होगी । शीलका नाश हो जानेसे सबकी आयु घट जायगी । आयुकी हानिसे बलकी भी हानि होगी । बलकी हानिसे शरीरका रंग बदल जायगा । फिर शरीरमें रोगजनित पीड़ा होगी । उससे निर्वेद (वैराग्य) होगा । निर्वेदसे आत्मबोध होगा और आत्मबोधसे धर्मशीलता आयेगी । इस प्रकार अन्तिम सीमापर पहुँचकर लोगोंको सत्ययुगकी प्राप्ति होगी । कुछ लोग कोई उद्देश्य लेकर धर्मका आचरण करेंगे, कोई मध्यस्थ रहेंगे । कोई बहुत थोड़ी मात्रामें धर्मका आचरण करेंगे और कोई-कोई धर्मके प्रति केवल कौतूहल रक्खेंगे । कुछ लोग प्रत्यक्ष और अनुमानको ही प्रमाण मानेंगे । दूसरे लोग सबको अप्रमाण ही मानेंगे । कोई नास्तिकतापरायण, कोई धर्मका लोप करनेवाले और कोई द्विज अपनेको पण्डित माननेवाले होंगे । युगान्तकालके मनुष्य वर्तमानपर ही विश्वास करनेवाले, शास्त्रज्ञानसे रहित, दम्भी और अज्ञानी होंगे । इस प्रकार धर्मकी डाँवाडोल परिस्थितिमें श्रेष्ठ पुरुष दान और शीलरक्षामें तत्पर हो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करेंगे । जब जगत्के मनुष्य सर्वभक्षी हो जायँ, स्वयं ही आत्मरक्षाके लिये विवश हों—राजा आदिके द्वारा उनकी रक्षा असम्भव हो जाय, जब उनमें निर्दयता और निर्लज्जता आ जाय, तब उसे कषायका लक्षण समझना चाहिये । (क्रोध-लोभ आदिके विकारको कषाय कहते हैं । युगान्तकालमें वह पराकाष्ठाको पहुँच जाता है ।) मुनिवरो ! जब छोटे वर्णोंके लोग ब्राह्मणोंकी सनातन वृत्तिका आश्रय लेने लगें, तब वह भी कषायका ही लक्षण है । युगान्तकालमें बड़े-बड़े भयंकर युद्ध, बड़ी भारी वर्षा, प्रचण्ड आँधी और जोरोंकी गर्मी पड़ेगी । यह सब कषायका लक्षण है । लोग खेती काट लेंगे, कपड़े चुरा लेंगे, पानी पीनेका सामान और पेटियाँ भी चुरा ले जायँगे । कितने ही चोर ऐसे होंगे, जो चोरकी सम्पत्तिका भी अपहरण करेंगे । हत्यारोंकी भी हत्या करनेवाले लोग होंगे । चोरोंके द्वारा चोरोंका नाश हो जानेपर जनताका कल्याण होगा । युगान्तकालमें मर्त्यलोकके मनुष्योंकी आयु अधिक-से-अधिक तीस वर्षकी होगी । लोग दुर्बल, विषय-सेवनके कारण कृश तथा बुढ़ापे और शोकसे ग्रस्त होंगे । उस समय रोगोंके कारण उनकी इन्द्रियाँ क्षीण हो जायँगी । फिर धीरे-धीरे लोग साधु पुरुषोंकी सेवा, दान, सत्य एवं प्राणियोंकी रक्षामें तत्पर होंगे । इससे धर्मके एक चरणकी स्थापना होगी । उस धर्मसे लोगोंको कल्याणकी प्राप्ति होगी । लोगोंके गुणोंमें परिवर्तन होगा और धर्मसे लाभ होनेका अनुमान दृढ़ होता जायगा । फिर श्रेष्ठ क्या है, इस बातपर विचार करनेसे धर्म ही

१. बलिवैश्वदेव करके अतिथि आदिके लिये पहले ही जो अन्न निकाल दिया जाता है, वह 'अग्राशन' कहलाता है ।

श्रेष्ठ दिखायी देगा । जिस प्रकार क्रमशः धर्मकी हानि हुई थी, उसी प्रकार धीरे-धीरे प्रजा धर्मकी वृद्धिको प्राप्त होगी । इस प्रकार धर्मको पूर्णरूपसे अपना लेनेपर सब लोग सत्ययुग देखेंगे । सत्ययुगमें सबका व्यवहार अच्छा होता है और युगान्तकालमें साधु-वृत्तिकी हानि बतायी जाती है । ऋषियोंने प्रत्येक युगमें देश-कालकी अवस्थाके अनुसार पुरुषोंकी स्थिति देखकर उनके अनुरूप आशीर्वाद कहा है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके साधन, देवताओंकी प्रतिक्रिया, पुण्य एवं शुभ आशीर्वाद तथा आयु—ये प्रत्येक युगमें अलग-अलग होते हैं । युगोंके परिवर्तन भी चिरकालसे चलते रहते हैं । उत्पत्ति और संहारके द्वारा नित्य परिवर्तनशील यह संसार कभी क्षणभरके लिये भी स्थिर नहीं रहता ।

नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—समस्त प्राणियोंका प्रलय नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक भेदसे तीन प्रकारका माना गया है । कल्पके अन्तमें जो ब्राह्म प्रलय होता है, वह नैमित्तिक है । मोक्षको आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं । और जो दो परार्द्ध व्यतीत होनेपर हुआ करता है, उसका नाम प्राकृत प्रलय है ।

मुनियोंने कहा—भगवन् ! हमें शास्त्रोंमें बताये अनुसार परार्द्धकी संख्याका वर्णन कीजिये, जिसको दूना करनेसे प्राकृत प्रलयका ज्ञान हो सके ।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो ! एकसे दूसरे स्थानपर क्रमशः दसगुना गिनते चलते हैं, इस प्रकार अठारहवें स्थानतक गिननेपर जो अन्तिम संख्या होती है, उसका नाम परार्ध[1] है । परार्धको दूना करनेसे जो काल-संख्या होती है, वही प्राकृत प्रलयका समय है । उस समय सम्पूर्ण दृश्य जगत् अपने कारणभूत अव्यक्तमें लीन हो जाता है । मनुष्यका निमेष (पलक गिरनेका काल) मात्रा कहलाता है; क्योंकि एकमात्रावाले अक्षरके उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतना निमेषमें भी लगता है । पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा और तीस काष्ठाकी एक कला होती है । पंद्रह कला एक नाड़ीका प्रमाण है । साढ़े बारह पल ताँबेके बने हुए जलके पात्रसे नाड़ीका ज्ञान होता है । उस पात्रमें चार अंगुल लंबी, चार माशेकी सुवर्णमयी शलाकासे छिद्र किया जाता है । उस छिद्रको ऊपर करके जलमें डुबो देनेपर जितनी देरमें वह पात्र भर जाय, वही एक नाड़ीका समय है । मगधदेशीय मापसे वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है । दो नाड़ीका एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्तका एक दिन-रात और तीस दिन-रातका एक मास होता है । बारह मासका एक वर्ष होता है । देवलोकमें यही एक दिन-रात कहलाता है । ऐसे तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष होता है । बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग बताया गया है । एक हजार चतुर्युगको ब्रह्माका एक दिन कहते हैं । यही एक कल्प कहलाता है । द्विजवरो ! उस एक कल्पमें चौदह मनु बीत जाते हैं । उसके अन्तमें जो प्रलय होता है, उसको ब्राह्म या नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । अब मैं उसके भयंकर स्वरूपका वर्णन करता हूँ । इसके बाद प्राकृत प्रलयका वर्णन करूँगा । एक सहस्र

१. विष्णुपुराण ६ । ३ । ४ की विष्णुचित्तीय टीकामें यह संख्या इस प्रकार बतायी गयी है—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शङ्कु, समुद्र, अन्त्य, मध्य और परार्ध । उक्त श्लोककी ही टीका करते हुए श्रीधर स्वामीने वायुपुराणके कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं, जो इस प्रकार हैं—

कोटिकोटिसहस्राणि परार्धमिति कीर्त्यते । परार्धद्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः ॥
स्थानं दशगुणं विद्यादेकं दश शतं ततः । सहस्रमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः ॥
अर्बुदं न्यर्बुदं चैव वृन्दं चैव ततः परम् । खर्वं चैव निखर्वं च शङ्कुं पद्मं तथैव च ॥
समुद्रो मध्यमन्त्यश्च परार्धं परमेव च । एवमष्टादशैतानि पदानि गणनाविधौ ॥

अर्थात् 'कोटि कोटि सहस्र १००००००००००००००००० को एक परार्ध कहते हैं । इसको दूना करनेपर एक 'पर' होता है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है । नीचे लिखे अङ्कोंके १८ स्थान उत्तरोत्तर दसगुने जानने चाहिये—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म, समुद्र, मध्य, अन्त्य तथा परार्ध । परार्धको दूना करनेसे 'पर' होता है । विष्णुचित्तीय और श्रीधरी टीकाकी संख्याओंके नामोंमें कुछ अन्तर है—जैसे पूर्वगणनाके अनुसार 'नियुत' दस लाखका वाचक है और द्वितीय गणनाकी रीतिसे वह एक लाखका बोध कराता है, इत्यादि ।

चतुर्युग बीतनेपर यह भूतल प्रायः क्षीण हो जाता है। उस समय सौ वर्षोंतक अत्यन्त घोर अनावृष्टि होती है—वर्षाका अत्यन्त अभाव हो जाता है। मुनिवरो! उस अनावृष्टिके कारण अल्प शक्तिवाले अनेकानेक पार्थिव जीव अत्यन्त पीड़ित होनेसे नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर रुद्ररूपधारी अविनाशी भगवान् विष्णु जगत्का संहार करनेके लिये सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें लीन कर लेनेका यत्न करते हैं। मुनिवरो! उस समय भगवान् विष्णु सूर्यकी सातों किरणोंमें स्थित होकर पृथ्वीका सम्पूर्ण जल सोख लेते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों और पृथ्वीमें स्थित समस्त जलको सोखकर वे समूची वसुधाको सुखा डालते हैं। समुद्र, नदी, पर्वतीय नदी, झरने तथा पातालोंमें जो जल होता है, वह सब वे सुखा देते हैं। तत्पश्चात् भगवान्के प्रभावसे और सब जगहके जलका शोषण करनेसे परिपुष्ट हुई वे सूर्यकी सात रश्मियाँ सात सूर्योंके रूपमें प्रकट होती हैं। उस समय ऊपर-नीचे सब ओर जाज्वल्यमान होकर वे सातों सूर्य पाताललोकसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको जला डालते हैं। उन तेजस्वी सूर्योंकी किरणोंसे जलती हुई त्रिलोकी पर्वत, नदी और समुद्र आदिके सहित नीरस हो जाती है। तीनों लोकोंके जल और वृक्ष दग्ध हो जानेके कारण यह पृथ्वी कछुएकी पीठकी भाँति दिखायी देती है।

तदनन्तर भूतसर्गका संहार करनेवाले कालाग्निरुद्ररूपधारी श्रीहरि शेषनागके श्वासजनित तापसे नीचेके समस्त पातालोंको जलाना आरम्भ करते हैं। सातों पातालोंको भस्म कर डालनेके पश्चात् वह प्रचण्ड अग्नि भूमिपर पहुँचकर सम्पूर्ण भूमण्डलको भी भस्म कर डालती है। फिर भुवर्लोक और स्वर्लोकको जलाकर ज्वाला-मालाओंके महान् आवर्तके रूपमें वह दारुण अग्नि सब ओर चक्कर लगाने लगती है। उस समय प्रचण्ड लपटोंसे घिरी हुई यह सारी त्रिलोकी जलते हुए कड़ाह-सी प्रतीत होती है। तत्पश्चात् भुवर्लोक और स्वर्लोकके निवासी अत्यन्त तापसे संतप्त एवं क्षीणशक्ति होकर कहीं रहनेके लिये स्थान न होनेसे महर्लोकमें चले जाते हैं। वहाँके लोग भी उस महान् तापसे तप्त हो वहाँसे हटकर जनलोकमें प्रवेश करते हैं। मुनिवरो! इसके बाद रुद्ररूपधारी श्रीजनार्दन सम्पूर्ण जगत्को दग्ध करके अपने मुखके निःश्वाससे मेघोंको प्रकट करते हैं। उस समय आकाशमें घोर संवर्तक मेघ उमड़ आते हैं, जो बड़े-बड़े गजराजोंके समान प्रतीत होते हैं। वे बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर गर्जना करते हैं। उनका आकार विशाल होता है, अपनी विकट गर्जनासे वे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त कर लेते हैं और मूसलाधार पानी बरसाकर त्रिलोकीके भीतर फैले हुए उस अत्यन्त भयंकर अग्निको पूर्णरूपसे बुझा देते हैं। रथकी धुरीके समान स्थूल धाराओंकी वर्षा करते हुए सम्पूर्ण जगत्को जलसे आप्लावित कर देते हैं। सम्पूर्ण भूतलको जलमग्न करनेके पश्चात् वे भुवर्लोक और स्वर्लोकको भी डुबो देते हैं। उस समय संसारमें सब ओर अन्धकार छा जाता है। चर और अचर सब नष्ट हो जाते हैं। उस अवस्थामें वे महान् संवर्तक मेघ सौ वर्षोंसे अधिक कालतक वर्षा करते रहते हैं।

द्विजवरो! जब सारा जल सप्तर्षियोंके स्थानतक पहुँचकर स्थिर होता है, उस समय सम्पूर्ण त्रिलोकी एकार्णवमग्न हो जाती है। तदनन्तर भगवान् विष्णुके निःश्वाससे प्रकट हुई वायु उन मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है और सौ वर्षोंसे अधिक कालतक बहती रहती है। फिर विश्वके आदि कारण, अनादि, अचिन्त्य एवं सर्वभूतमय भूतभावन भगवान् सम्पूर्ण वायुको पीकर एकार्णवके जलमें शेषनागकी शय्यापर आसीन होते हैं। वे आदिकर्ता भगवान् श्रीहरि ब्रह्माजीका रूप धारण करके शयन करते हैं। उस समय जनलोकके सनकादि सिद्ध उनकी स्तुति करते हैं और ब्रह्मलोकके मुमुक्षु उनका चिन्तन करते रहते हैं। वे परमेश्वर अपनी मायामयी दिव्य योगनिद्राका आश्रय ले अपने ही वासुदेव नामक स्वरूपका चिन्तन करते हैं। विप्रवरो! यह नैमित्तिक नामका प्रलय है। इसमें निमित्त यही है कि उस समय ब्रह्मरूपधारी श्रीहरि शयन करते हैं। जबतक सर्वात्मा श्रीहरि जागते हैं, तबतक सारा जगत् सचेष्ट रहता है और जब वे मायामयी शय्यापर शयन करते हैं, उस समय सारा जगत् विलीन हो जाता है। ब्रह्माजीका जो सहस्र चतुर्युगका दिन होता है, एकार्णवमें शयन करनेपर उनकी उतनी ही बड़ी रात्रि होती है। रात्रिके बाद जागनेपर ब्रह्मरूपधारी अजन्मा श्रीविष्णु पुनः सृष्टि करते हैं, यह बात मैं पहले बतला चुका हूँ। यह कल्पका संहार, अन्तर प्रलय अथवा नैमित्तिक प्रलय कहा गया। अब प्राकृत प्रलयका वर्णन सुनो।

अनावृष्टि और अग्नि आदिके द्वारा जब सब प्राणियोंका संहार हो जाता है और सम्पूर्ण लोक तथा समस्त पाताल नष्ट हो जाते हैं, उस समय भगवान् विष्णुकी इच्छासे प्राकृत प्रलयका अवसर उपस्थित होनेपर महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकारोंका क्षय हो जाता है। पहले भूमिके गन्ध

आदि गुणको जल अपनेमें लीन कर लेता है। गन्ध नष्ट हो जानेसे पृथ्वीका लय हो जाता है। गन्धतन्मात्राका नाश हो जानेके कारण सारी पृथ्वी जलरूपमें परिणत हो जाती है। फिर तो जल बड़े वेगसे घोर शब्द करते हुए बढ़ने लगता है और सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर लेता है। वह कहीं तो स्थिर रहता है और कहीं वेगसे बहता रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक सब ओरसे तरङ्गमालाओंसे युक्त जल-राशिद्वारा व्याप्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् जलके गुण रसको तेज पी लेता है। रसतन्मात्राका नाश होनेसे जल अत्यन्त तप्त होकर सूख जाता है। रसका अपहरण होनेसे सम्पूर्ण जल तेजःस्वरूप हो जाता है। इस प्रकार जब तेजसे आवृत होकर जल अग्निकी-सी अवस्थामें पहुँच जाता है, तब अग्नितत्त्व सब ओर फैलकर उस जलको सोख लेता है। उस समय सम्पूर्ण जगत्में धीरे-धीरे आगकी लपटें फैल जाती हैं। जब सारा जगत् ऊपर-नीचे और इधर-उधर अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त हो जाता है, तब अग्निके प्रकाशक गुण रूपको वायुतत्त्व अपनेमें लीन कर लेता है। सबके कारणस्वरूप वायुमें जब अग्निका प्रकाशक तत्त्व—रूप विलीन हो जाता है, तब रूपतन्मात्राके नष्ट हो जानेसे अग्नितत्त्व रूपहीन हो स्वयं ही शान्त हो जाता है। फिर वायु प्रचण्ड गतिसे चलने लगती है। तेजस्तत्त्वके वायुमें स्थित हो जानेसे जगत्में प्रकाश नहीं रह जाता। तब वायुतत्त्व अपने उद्भव और लयस्थान आकाशका आश्रय ले ऊपर-नीचे, अगल-बगल एवं दसों दिशाओंमें बड़े वेगसे बहने लगता है। तदनन्तर वायुके भी गुण स्पर्शको आकाश ग्रस लेता है। इससे वायु शान्त हो जाती है और केवल आवरणशून्य आकाश रह जाता है। वह रूप, रस, स्पर्श, गन्ध तथा आकारसे रहित परम महान् आकाश सबको व्याप्त करके प्रकाशित होता है। आकाश सब ओरसे गोल एवं छत्रस्वरूप है। शब्द उसका गुण है। वह शब्द-तन्मात्रायुक्त आकाश सम्पूर्ण विश्वको आवृत किये रहता है। तत्पश्चात् आकाशको भूतादि (तामस अहंकार), भूतादिको महत्तत्त्व और इन सबके सहित महत्तत्त्वको मूल प्रकृति अपनेमें लीन कर लेती है। द्विजवरो! न्यूनता और अधिकतासे रहित जो सत्त्वादि तीनों गुणोंकी साम्यावस्था है, उसीको प्रकृति कहते हैं। वही प्रधान भी कहलाती है। प्रधान ही सम्पूर्ण सृष्टिका प्रधान कारण है। ब्राह्मणो! इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रकृति व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी है। इसमें जो व्यक्त स्वरूप है, वह अव्यक्तमें लीन होता है।

द्विजवरो! प्रकृतिसे भिन्न जो एक सिद्ध, अक्षर, नित्य तथा सर्वव्यापी पुरुष है, वह भी सर्वभूतमय परमात्माका ही अंश है। जो सत्तामात्रस्वरूप, ज्ञेय, ज्ञानात्मा और देहात्म-संघातसे परे है, जिसमें नाम और जाति आदिकी समस्त कल्पनाएँ विलीन हो जाती हैं, वही परब्रह्म, परमधाम, परमात्मा तथा परमेश्वर है। उसीको विष्णु कहते हैं। भगवान् विष्णु ही इस सम्पूर्ण विश्वके रूपमें स्थित हैं। उनको प्राप्त हो जानेपर मनुष्य फिर इस संसारमें नहीं लौटता। मैंने जिस व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी प्रकृतिका वर्णन किया है, वह तथा पुरुष दोनों ही परमात्मामें लीन होते हैं। वह परमात्मा सबका आधार तथा परमेश्वर है। वेदों और वेदान्तोंमें विष्णुके नामसे उसीकी महिमाका गान किया गया है। प्रवृत्ति (कर्मयोग) और निवृत्ति (सांख्ययोग) के भेदसे वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं। उन दोनों ही कर्मोंद्वारा मनुष्य यज्ञस्वरूप भगवान्की आराधना करते हैं। प्रवृत्तिमार्गके अनुयायी पुरुष ऋक्, यजुः और सामवेदोक्त मार्गोंसे यज्ञोंके स्वामी यज्ञपुरुष भगवान् पुरुषोत्तमका यजन करते हैं तथा निवृत्ति एवं योगमार्गके पथिक ज्ञानयोगके द्वारा ज्ञानात्मा, ज्ञानमूर्ति एवं मुक्तिफलदायक भगवान् विष्णुकी आराधना करते हैं। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरोंके द्वारा जिस किसी वस्तुका प्रतिपादन किया जाता है और जो वाणीका विषय नहीं है, वह सब अविनाशी भगवान् विष्णु ही हैं। वे ही व्यक्त, वे ही अव्यक्त, वे ही अव्यय पुरुष तथा वे ही परमात्मा, विश्वात्मा और विश्वरूपधारी श्रीहरि हैं। वह व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी प्रकृति तथा पुरुष भी उन्हीं अव्याकृत परमात्मामें लीन होते हैं। ब्राह्मणो! मैंने जो परार्धका काल बतलाया है, वह सर्वेश्वर भगवान् विष्णुका दिन कहलाता है। व्यक्त जगत्के अव्यक्त प्रकृतिमें और प्रकृतिके पुरुषमें लीन होनेपर फिर उतने ही कालकी भगवान् विष्णुकी रात्रि होती है। तपोधनो! वास्तवमें नित्यस्वरूप परमात्मा श्रीविष्णुका न तो कोई दिन है और न रात्रि ही; तथापि केवल आरोपसे उनके विषयमें ऐसा कहा जाता है। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने तुमसे प्राकृत प्रलयका वर्णन किया।

आत्यन्तिक प्रलयका निरूपण, आध्यात्मिक आदि त्रिविध तापोंका वर्णन और भगवत्तत्त्वकी व्याख्या

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होनेपर विद्वान् आत्यन्तिक लयको प्राप्त होते हैं। आध्यात्मिक तापके भी दो भेद हैं—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक तापके बहुत-से भेद हैं। उनका वर्णन सुनो। शिरोरोग, प्रतिश्याय (पीनस), ज्वर, शूल, भगंदर, गुल्म (पेटकी गाँठ), अर्श (बवासीर), श्वयथु (सूजन), श्वास (दमा), छर्दि (वमन) आदि तथा नेत्ररोग, अतीसार (पेचिश) और कुष्ठ (कोढ़) आदि शारीरिक कष्टोंके भेदसे दैहिक तापके अनेक भेद हो जाते हैं। अब मानस तापका वर्णन सुनो। काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद (चिन्ता), शोक, असूया (दोषदृष्टि), अपमान, ईर्ष्या, मात्सर्य तथा पराभव आदिके भेदसे मानस तापके अनेक रूप हैं। ये सभी प्रकारके ताप आध्यात्मिक माने गये हैं। मृग, पक्षी, मनुष्य आदि तथा पिशाच, सर्प, राक्षस और बिच्छू आदिसे मनुष्योंको जो पीड़ा होती है, उसका नाम आधिभौतिक ताप है। शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् आदिसे होनेवाले संतापको आधिदैविक कहते हैं। मुनिवरो ! इनके सिवा गर्भ, जन्म, बुढ़ापे, अज्ञान, मृत्यु और नरकसे प्राप्त होनेवाले दुःखके भी सहस्रों भेद हैं।

अत्यन्त मलसे भरे हुए गर्भाशयमें सुकुमार शरीरवाला जीव झिल्लीसे लिपटा हुआ रहता है। उसकी पीठ और ग्रीवाकी हड्डियाँ मुड़ी होती हैं। माताके खाये हुए अत्यन्त तापदायक और अधिक खट्टे, कड़वे, चरपरे, गर्म और खारे पदार्थोंसे कष्ट पाकर उसकी पीड़ा बहुत बढ़ जाती है। वह अपने अङ्गोंको फैलाने या सिकोड़नेमें भी समर्थ नहीं होता। मल और मूत्रके महान् पङ्कमें उसे सोना पड़ता है, जिससे उसके सभी अङ्गोंमें पीड़ा होती है। चेतनायुक्त होनेपर भी वह खुलकर साँस नहीं ले सकता। अपने कर्मोंके बन्धनमें बँधा हुआ वह जीव सैकड़ों जन्मोंका स्मरण करता हुआ बड़े दुःखसे गर्भमें रहता है। जन्मके समय उसका मुख मल-मूत्र, रक्त और वीर्य आदिमें लिपटा रहता है। प्राजापत्य नामक वायुसे उसकी हड्डियोंके प्रत्येक जोड़में बड़ी पीड़ा होती है। प्रबल प्रसूति-वायु उसके मुँहको नीचेकी ओर कर देती है और वह गर्भस्थ जीव अत्यन्त आतुर होकर बड़े क्लेशके साथ माताके उदरसे बाहर निकल पाता है। मुनिवरो ! जन्म लेनेके पश्चात् बाह्य वायुका स्पर्श होनेसे अत्यन्त मूर्च्छाको प्राप्त होकर वह बालक अपनी सुध-बुध खो बैठता है। दुर्गन्धयुक्त फोड़ेसे पृथ्वीपर गिरे हुए कीड़ेकी भाँति वह छटपटाता है। उस समय उसे ऐसी पीड़ा होती है, मानो उसके सारे अङ्गोंमें काँटे चुभो दिये गये हों अथवा वह आरेसे चीरा जा रहा हो। उसे अपने अङ्गोंको खुजलानेकी भी शक्ति नहीं रहती। वह करवट बदलनेमें भी असमर्थ होता है। स्तन-पान आदि आहार भी उसे दूसरोंकी इच्छासे ही प्राप्त होता है। वह अपवित्र बिछौनेपर पड़ा रहता है। उस समय उसे खटमल और डाँस आदि काटते हैं, तो भी वह उन्हें हटानेमें समर्थ नहीं होता।

इस प्रकार जन्मके समय उसे अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं। जन्मके बाद भी वह बाल्यावस्थामें आधिभौतिक आदि अनेक दुःखोंका भागी होता है। अज्ञानान्धकारसे आच्छादित मूढ़ अन्तःकरणवाला मनुष्य यह नहीं जानता कि 'मैं कहाँसे आया हूँ ? कौन हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? क्या मेरा स्वरूप है ? मैं किस बन्धनसे बँधा हुआ हूँ ? क्या इस बन्धनका कुछ कारण भी है, या यह अकारण ही प्राप्त हुआ है ? मुझे क्या करना चाहिये ? और क्या नहीं करना चाहिये ? मेरे लिये क्या कहना और क्या न कहना उचित है ? मेरे लिये क्या धर्म है ? और क्या अधर्म ? किसके प्रति कैसा बर्ताव करना उचित है ? क्या कर्तव्य है ? और क्या अकर्तव्य ? तथा कौन-सा कार्य गुणयुक्त है ? और कौन-सा दोषयुक्त ?' इस प्रकार पशुके समान मूढ़ तथा शिश्नोदरपरायण मनुष्योंको अज्ञानजनित महान् दुःख प्राप्त होते हैं।

ब्राह्मणो ! अज्ञान तामसिक भाव है, अतः अज्ञानी पुरुषोंकी तामसिक कर्मोंके अनुष्ठानमें ही प्रवृत्ति होती है। इससे शास्त्रविहित कर्मोंका लोप हो जाता है। महर्षियोंने शास्त्रविहित कर्मोंके लोपका फल नरक बतलाया है। अतः अज्ञानी पुरुषोंको इस लोक और परलोकमें भारी दुःख भोगना पड़ता है। वृद्धावस्थासे शरीरके जर्जर हो जानेपर पुरुषका प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो जाता है। उसके दाँत कमजोर होकर गिर जाते हैं। शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और सब ओर नस-नाड़ियाँ दिखायी देने लगती हैं। नेत्रोंकी दूरस्थ वस्तुओंको देखनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। नेत्रोंकी पुतलियाँ गोलकोंमें समा जाती हैं। नासिका-

के छिद्रोंमें बहुत-से रोएँ जमकर बाहर निकल आते हैं। शरीर काँपने लगता है। सब हड्डियाँ दिखायी देने लगती हैं। मेरुदण्ड झुक जाता है। जठराग्नि मन्द पड़ जानेके कारण उसका आहार कम हो जाता है। उससे काम-काज भी कम ही हो पाते हैं। घूमने-फिरने, उठने-बैठने और सोने आदिकी चेष्टा भी बड़ी कठिनाईसे होती है। कानों और नेत्रोंकी शक्ति मन्द पड़ जाती है। सदा लार बहते रहनेसे मुख मलिन हो जाता है। समस्त इन्द्रियाँ काबूके बाहर हो जाती हैं। मनुष्य मृत्युके निकट पहुँच जाता है। उसको उसी समय अनुभव किये हुए सभी पदार्थोंकी स्मृति नहीं रहती। एक बार भी कोई बात कहनेमें उसको बड़ा भारी परिश्रम होता है। वह दमे और खाँसी आदिके कष्टसे रातभर जागता रहता है। वृद्ध पुरुषको दूसरा ही उठाता और दूसरा ही सुलाता है। उसे अपने सेवक, पुत्र और स्त्रीके द्वारा भी अपमानित होना पड़ता है। उसका समस्त शौचाचार नष्ट हो जाता है। फिर भी आहार-विहारके लिये वह लालायित रहता है। उसके परिजन भी उसकी हँसी उड़ाते हैं। सभी बन्धु-बान्धव उसकी ओरसे विरक्त रहते हैं। अपनी युवावस्थाकी चेष्टाओंको वह इस प्रकार स्मरण करता है, मानो वे दूसरे जन्ममें अनुभव की हुई बातें हों; उनके स्मरणसे अत्यन्त संतप्त होकर वह लंबी साँसें लेता है। इस प्रकार वृद्धावस्थामें अनेक दुःखोंको भोगकर वह मृत्युके समय जिन क्लेशोंका अनुभव करता है, उनका वर्णन सुनो।

मृत्युकालमें मनुष्यका कण्ठ और हाथ-पैर शिथिल हो जाते हैं। उसका शरीर काँपता रहता है। उसे बार-बार मूर्च्छा होती है और कभी थोड़ी-सी चेतना भी आ जाती है। उस समय वह अपने सुवर्ण, धान्य, पुत्र, पत्नी, सेवक और गृह आदिके लिये ममतासे अत्यन्त व्याकुल होकर सोचता है—'हाय! मेरे बिना इनकी कैसी दशा होगी।' मर्म विदीर्ण करनेवाले महान् रोग भयंकर आरे तथा यमराजके घोर बाणोंकी भाँति उसके अस्थि-बन्धनोंको काटे डालते हैं। उसकी आँखोंकी पुतलियाँ घूमने लगती हैं, वह बारंबार हाथ-पैर पटकता है; उसके तालू, ओठ और कण्ठ सूखने लगते हैं। गला घुरघुराता है। उदान वायुसे पीड़ित होकर कण्ठ रुँध जाता है। उस अवस्थामें मनुष्य महान् ताप, भूख और प्याससे व्यथित हो यमदूतोंद्वारा दी हुई पीड़ा सहकर बड़े कष्टसे प्राण-त्याग करता है। फिर क्लेशसे ही उसे यातनादेहकी प्राप्ति होती है। ये तथा और भी बहुत-से भयंकर दुःख मृत्युके समय मनुष्योंको भोगने पड़ते हैं।

विप्रवरो! नरकमें गये हुए जीवोंको जो पापजनित दुःख भोगने पड़ते हैं, उनकी कोई गणना नहीं है। केवल नरकमें ही दुःखकी परम्परा हो, ऐसी बात नहीं है; स्वर्गमें भी जिसके पुण्यका भोग क्षीण हो रहा है और जो पापके फल-भोगसे भयभीत है, उसे शान्ति नहीं मिलती। जीव पुनः-पुनः गर्भमें आता और जन्म लेता है। कभी वह गर्भमें ही नष्ट हो जाता और कभी जन्म लेनेके समय मृत्युको प्राप्त होता है। कभी जन्मते ही, कभी बाल्यावस्थामें और कभी युवावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो जाती है। विप्रगण! मनुष्यों-के लिये जो-जो वस्तु अत्यन्त प्रीतिकारक होती है, वही-वही उसके लिये दुःखरूपी वृक्षका बीज बन जाती है। स्त्री, पुत्र, मित्र आदि और गृह, क्षेत्र तथा धन आदिसे पुरुषोंको उतना अधिक सुख नहीं मिलता, जितना कि दुःख उठाना पड़ता है। इस प्रकार सांसारिक दुःखरूपी सूर्यके तापसे संतप्त चित्तवाले मानवोंको मोक्षरूपी वृक्षकी शीतल छायाके सिवा अन्यत्र कहाँ सुख है। अतः विद्वानोंने गर्भ, जन्म और बुढ़ापा आदि स्थानोंमें होनेवाले आध्यात्मिक आदि त्रिविध दुःखसमूहको दूर करनेके लिये एकमात्र भगवत्प्राप्तिको ही अमोघ ओषधि बताया है। उससे बढ़कर आह्लादजनक और सुख-स्वरूप दूसरी कोई औषधि नहीं है। अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको भगवत्प्राप्तिके लिये सदा ही यत्न करना चाहिये। द्विजवरो! भगवत्प्राप्तिके दो साधन कहे गये हैं—ज्ञान और कर्म। ज्ञान भी दो प्रकारका है—शास्त्र-जन्य और विवेकज। शास्त्र-जन्य ज्ञान शब्दब्रह्मका और विवेकज ज्ञान परब्रह्मका स्वरूप है। अज्ञान गाढ अन्धकारके समान है। उसको नष्ट करनेके लिये शास्त्र-जन्य ज्ञान दीपकके समान और विवेकजन्य ज्ञान साक्षात् सूर्यके सदृश माना गया है।

मुनिवरो! मनुजीने वेदार्थका स्मरण करके इसके विषयमें जो विचार प्रकट किया है, उसे बताता हूँ; सुनो। ब्रह्मके दो स्वरूप जानने योग्य हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। जो शब्द-ब्रह्ममें पारंगत है, वह परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। अथर्ववेद-की श्रुति कहती है कि परा और अपरा—ये दो विद्याएँ जानने योग्य हैं। परा विद्यासे अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होती है तथा ऋग्वेदादि शास्त्र ही अपरा विद्या हैं। वह जो अव्यक्त, जरावस्थासे रहित, अचिन्त्य, अजन्मा, अविनाशी, अनिर्देश्य, अरूप, हस्त-पादादिसे रहित, सर्वव्यापक, नित्य, सब भूतोंका कारण तथा स्वयं कारणरहित है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्य वस्तु व्याप्त है, जिसे ज्ञानी पुरुष ही ज्ञानदृष्टिसे देखते हैं, वही परब्रह्म और

वही परमधाम है। मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको उसीका चिन्तन करना चाहिये। वही भगवान् विष्णुका वेद-वाक्योंद्वारा प्रतिपादित परम पद है। जो सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, प्रलय, आगमन, गमन तथा विद्या और अविद्याको जानता है, उसीको 'भगवान्' कहना चाहिये। त्यागने योग्य त्रिविध गुण आदिको छोड़कर समग्र ज्ञान, समग्र शक्ति, समग्र बल, समग्र ऐश्वर्य, समग्र वीर्य और समग्र तेज ही 'भगवत्' शब्दके वाच्यार्थ हैं। इस दृष्टिसे श्रीविष्णु ही 'भगवान्' हैं। उन परमात्मा श्रीहरिमें सम्पूर्ण भूत निवास करते हैं तथा वे भी सर्वात्मारूपसे सब भूतोंमें स्थित हैं। अतः वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। पूर्वकालमें महर्षियोंके पूछनेपर स्वयं प्रजापति ब्रह्माने अनन्त भगवान् वासुदेवके नामकी यह यथार्थ व्याख्या बतलायी थी। सम्पूर्ण जगत्के धाता और विधाता भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण भूतोंमें वास करते हैं और सम्पूर्ण भूत उनमें वास करते हैं; इसलिये उनका नाम 'वासुदेव' है। वे परमात्मा निर्गुण, समस्त आवरणोंसे परे और सबके आत्मा हैं। सम्पूर्ण भूतोंकी, प्रकृति तथा उसके गुण और दोषोंकी पहुँचके बाहर हैं। सम्पूर्ण भुवनोंके बीचमें जो कुछ भी स्थित है, वह सब उनके द्वारा व्याप्त है। समस्त कल्याणमय गुण उनके स्वरूप हैं। उन्होंने अपनी मायाशक्तिके लेशमात्रसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि की है। वे अपनी इच्छासे मनके अनुरूप अनेक शरीर धारण करते हैं तथा उन्हींके द्वारा सम्पूर्ण जगत्के कल्याणका साधन होता है। वे तेज, बल और ऐश्वर्यके महान् भंडार हैं। पराक्रम और शक्ति आदि गुणोंकी एक-मात्र राशि हैं तथा परसे भी परे हैं। उन परमेश्वरमें सम्पूर्ण क्लेश आदिका अभाव है। वे ईश्वर ही व्यष्टि और समष्टिरूप हैं। वे ही अव्यक्त और व्यक्तस्वरूप हैं। सबके ईश्वर, सबके द्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध वे ही हैं। जिसके द्वारा दोषरहित, परम शुद्ध, निर्मल तथा एकरूप परमात्माका ज्ञान, साक्षात्कार अथवा प्राप्ति होती है, वही ज्ञान है। जो इसके विपरीत है, उसे अज्ञान बताया गया है।

योग और सांख्यका वर्णन

मुनियोंने कहा—महर्षे! अब हमें योगका उपदेश दीजिये, जो दुःखोंको दूर करनेवाली ओषधि है तथा जिस अविनाशी योगको जानकर हम भगवान् पुरुषोत्तमका संयोग प्राप्त कर सकें।

व्यासजी बोले—विप्रवरो! मैं संसार-बन्धनका नाश करनेवाले योगका वर्णन करता हूँ, सुनो। उसका अभ्यास करके योगी पुरुष परम दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लेता है। पहले गुरुकी भक्तिपूर्वक आराधना करके बुद्धिमान् पुरुष योगशास्त्र, इतिहास, पुराण और वेदोंका श्रवण करे। तत्पश्चात् आहार, योगके दोष, देश और कालका ज्ञान प्राप्त करके निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य होकर योगका अभ्यास करे। सत्तू, जौका माँड़, मट्ठा, मूल, फल, दूध, जौका हलुआ, खुद्दी और तिलकी खली—इन सब वस्तुओंका भोजन योगकी सिद्धि करनेवाला है। जिस समय मन व्याकुल न हो, कानोंमें किसी प्रकारका शब्द न आता हो, भूख-प्यासका कष्ट न हो, हर्ष, शोक आदि द्वन्द्व, सर्दी, गर्मी तथा वायु बाधा न पहुँचाती हो, ऐसे समयमें योग-साधन करना चाहिये। जहाँ कोई शब्द होता हो तथा जो जलके समीप हो, ऐसे स्थानमें, टूटी-फूटी पुरानी गोशालामें, चौराहेपर, साँप-बिच्छू आदिके स्थानमें, श्मशान-भूमिमें, नदीके तटपर, अग्निके समीप, देववृक्षके नीचे, बाँबीपर, भयदायक स्थानमें, कुएँके समीप तथा सूखे पत्तोंपर कभी योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जो मूर्खतावश इन स्थानोंकी परवा न करके वहीं योग-साधन करता है, उसके सामने विघ्नकारक दोष आते हैं। उन दोषोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। बहरापन, जडता, स्मरणशक्तिका लोप, गूँगापन, अंधापन, ज्वर तथा अज्ञान-जनित दोष—ये सभी उसे प्राप्त होते हैं। अतः योगवेत्ता पुरुषको सदा सब प्रकारसे शरीरकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका साधन है। एकान्त आश्रममें, गूढ स्थानमें, शब्द और भयसे रहित पर्वतीय गुफामें, सूने घरमें, अथवा पवित्र रमणीय तथा एकान्त देवमन्दिरमें बैठकर रातके पहले और पिछले पहरमें अथवा दिनके पूर्वाह्न और मध्याह्नकालमें एकाग्रचित्त होकर योग-साधन करे। भोजन थोड़ा और नियमके अनुकूल हो। इन्द्रियोंपर पूरा नियन्त्रण रहे। सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठकर योगाभ्यास करना उचित है। आसन सुखद और स्थिर हो। अधिक ऊँचा या अधिक नीचा न हो। योगके साधकको निःस्पृह, सत्यवादी और पवित्र होना चाहिये। वह निद्रा और क्रोधको अपने वशमें रक्खे। सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर रहे। सब

प्रकारके द्वन्द्वोंका सहन करे। शरीर, चरण और मस्तकको समान स्थितिमें रक्खे। दोनों हाथ नाभिपर रखकर शान्त हो पद्मासनसे बैठे। दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर लगाकर प्राणायामपूर्वक मौन रहे। मनके द्वारा इन्द्रिय-समुदायको विषयोंकी ओरसे हटाकर हृदयमें स्थापित करे। दीर्घस्वरसे प्रणवका उच्चारण करते हुए मुखको बंद रक्खे और स्वयं भी स्थिर रहे। योगी पुरुष नेत्र बंद करके बैठे। वह तमोगुणकी वृत्तिको रजोगुणसे और रजोगुणकी वृत्तिको सत्त्वगुणसे आच्छादित करके निर्मल एवं शान्त हृदयकमलकी कर्णिकामें लीन, सर्वव्यापी, निरञ्जन, मोक्षदायक भगवान् पुरुषोत्तमका निरन्तर चिन्तन करे।

योगवेत्ता पुरुष पहले अन्तःकरणसहित इन्द्रियों और पञ्चभूतोंको क्षेत्रज्ञमें स्थापित करे और क्षेत्रज्ञको परमात्मामें नियुक्त करे। तत्पश्चात् योगाभ्यास करे। जिस पुरुषका चञ्चल मन समस्त विषयोंका परित्याग करके परमात्मामें लीन हो जाता है, उसके सामने योगसिद्धि प्रकाशित होती है। जब योगयुक्त पुरुषका चित्त समाधिकालमें सब विषयोंसे निवृत्त हो परब्रह्ममें एकीभूत हो जाता है, उस समय वह परमपदको प्राप्त होता है। जब योगीका चित्त परमानन्दको प्राप्तकर किसी भी कर्ममें आसक्त नहीं होता, उस समय वह निर्वाण पदको प्राप्त होता है। योगी अपने योगबलसे शुद्ध, सूक्ष्म, गुणातीत तथा सत्त्वगुणसम्पन्न पुरुषोत्तमको प्राप्त करके निस्संदेह मुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण भोगोंकी ओरसे निःस्पृह, सर्वत्र प्रेमपूर्ण दृष्टि रखनेवाला तथा सब अनात्मपदार्थोंमें अनित्य बुद्धि रखनेवाला योगी ही मुक्त हो सकता है। जो योगवेत्ता पुरुष वैराग्यके कारण इन्द्रियोंके विषयोंका सेवन नहीं करता और निरन्तर अभ्यासयोगमें लगा रहता है, उसकी मुक्तिमें तनिक भी संदेह नहीं है। केवल पद्मासन लगानेसे और नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखनेसे ही योगकी सिद्धि नहीं होती। वास्तवमें मन और इन्द्रियोंके संयोग—उनकी एकाग्रताको ही योग कहते हैं। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने संसार-बन्धनसे मुक्तिके साधनभूत मोक्षदायक योगका वर्णन किया।

मुनि बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपके मुखरूपी समुद्रसे निकले हुए वचनामृतका पान करनेसे हमें तृप्ति होती नहीं दिखायी देती। अतः पुनः मोक्षदायक योग और सांख्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। तपस्या, ब्रह्मचर्य, सर्वस्वत्याग और बुद्धि—जिस उपायसे मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता प्राप्त हो सके, वह बतलानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजीने कहा—विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और सर्वस्व-त्यागके बिना कोई भी सिद्धि नहीं पा सकता। सम्पूर्ण महाभूत विधाताकी पहली सृष्टि हैं। वे प्राणियोंके शरीरमें भरे हुए हैं। पृथ्वीसे देहका निर्माण हुआ है। चिकनाहट और पसीने आदि जलके अंश हैं। अग्निसे नेत्र तथा वायुसे प्राण और अपान उत्पन्न हुए हैं। नाक, कान आदिके छिद्र आकाश-तत्त्वके स्वरूप हैं। चरणोंमें विष्णु, हाथोंमें इन्द्र और उदरमें अग्नि देवता भोक्तारूपसे स्थित रहते हैं। कानोंमें श्रोत्र इन्द्रिय और दिशाएँ हैं। जिह्वामें वाक् इन्द्रिय और सरस्वती देवताका निवास है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं; उन्हें विषयानुभवका द्वार बतलाया गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये इन्द्रियोंके विषय हैं। इस महान् आत्माका दर्शन नेत्रों अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता। यह विशुद्ध मनरूपी दीपकसे ही बुद्धिमें प्रकाशित होता है। परमात्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धसे हीन, अविकारी तथा शरीर और इन्द्रियोंसे रहित है; तो भी शरीरके भीतर ही इसका अनुसंधान करना चाहिये। जो इस विनाशशील शरीरमें अव्यक्त भावसे स्थित परमपूजित परमेश्वरका ज्ञानमयी दृष्टिसे निरन्तर साक्षात्कार करता रहता है, वह मृत्युके पश्चात् ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। ज्ञानीजन विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समभावसे ही देखनेवाले होते हैं।* जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, वह परमात्मा समस्त चराचर प्राणियोंके भीतर निवास करता है। जब जीवात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंमें अपनेको और अपनेमें सम्पूर्ण प्राणियोंको स्थित देखता है, उस समय वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। अपने शरीरके भीतर जैसा आत्मा है, वैसा ही दूसरोंके शरीरमें भी है—जिस पुरुषको निरन्तर ऐसा ज्ञान बना रहता है, वह अमृतत्व (मोक्ष)को प्राप्त होता है।† जो सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा होकर सबके हितमें लगा हुआ है, जिसका अपना

---

* विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥
(२३५। २०)

† सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
यावानात्मनि वेदात्मा तावानात्मा परात्मनि।
य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते॥
(२३५। २२-२३)

कोई मार्ग नहीं है तथा जो ब्रह्मपदको प्राप्त करना चाहता है, उसके मार्गकी खोज करनेमें देवता भी मोहित हो जाते हैं। जैसे आकाशमें चिड़ियोंके और जलमें मछलियोंके चलनेके चिह्न दिखायी नहीं पड़ते, उसी प्रकार ज्ञानियोंकी मतिका भी किसीको पता नहीं चलता।

काल सम्पूर्ण प्राणियोंको पकाता (नष्ट करता) है; किंतु जहाँ काल भी पकाया जाता है—जो कालका भी काल है, उस आत्माको कोई नहीं जानता। परब्रह्म परमात्मा न ऊपर है न नीचे है, न इधर-उधर है और न बीचमें ही; कोई किसी अंशमें उसको ग्रहण कर सकता है। सम्पूर्ण लोक उसके भीतर ही स्थित हैं। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। यद्यपि कोई धनुषसे छूटे हुए बाण अथवा मनके समान वेगसे निरन्तर आगेकी ओर दौड़ता रहे, तो भी कभी उस परमेश्वरका अन्त नहीं पा सकता। उससे अधिक सूक्ष्म तथा उससे बढ़कर स्थूल दूसरी कोई वस्तु नहीं है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र हैं तथा सब ओर सिर, मुख और कान हैं। वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा भी वही है। यद्यपि वह सब प्राणियोंके भीतर निश्चय ही स्थित रहता है, तो भी वह किसीको दिखायी नहीं देता। * क्षर और अक्षर—ये पुरुषके दो भेद हैं। सम्पूर्ण भूत तो क्षर (विनाशी) हैं और दिव्य अमृतस्वरूप चेतन आत्मा अक्षर (अविनाशी) है। नौ द्वारोंवाले पुर (शरीर) का निर्माण करके जितेन्द्रिय तथा नियमपरायण हंस (आत्मा) उसमें वास करता है। समस्त चराचर भूतोंका आत्मा ऐसा ही है। अजन्मा आत्मा भाँति-भाँतिके विकल्पोंका त्याग और शरीरोंका संचय करता है, इसलिये पारदर्शी विद्वानोंने उसे 'हंस' कहा है। 'हंस' नामसे जिस अविनाशी जीवात्माका प्रतिपादन किया गया है, वह कूटस्थ अक्षर ही है। इस प्रकार जो विद्वान् उस अक्षर आत्माको जान लेता है, वह जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

ब्राह्मणो! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेपर मैंने ज्ञानयुक्त सांख्यका यथावत् वर्णन किया। अब योगकी बातें बताऊँगा, सुनो। इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्तियोंको सब ओरसे रोककर व्यापक आत्माके साथ उनकी एकता स्थापित करना ही योगशास्त्रके मतमें उत्तम ज्ञान है। योगी पुरुषको शम-दमसे सम्पन्न होना चाहिये। वह अध्यात्मशास्त्रका अनुशीलन करे, आत्मामें ही अनुराग रक्खे, शास्त्रोंका तत्त्व जाने और निष्कामभावसे पवित्र कर्मोंका अनुष्ठान करे। इस प्रकार साधनसम्पन्न होकर योगोक्त उत्तम ज्ञानको प्राप्त करे। काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न—ये पाँच योगके दोष हैं; इन्हें विद्वान् पुरुष जानते हैं। इन सभी दोषोंका उच्छेद करके अपनेको योगका अधिकारी बनायें।

धीर पुरुष मनको वशमें रखनेसे क्रोधपर और संकल्पका त्याग करनेसे कामपर विजय पाता है। सत्त्वगुणका सेवन करनेसे वह निद्राका नाश कर सकता है। धैर्यके द्वारा योगी शिश्न और उदरकी रक्षा करे। नेत्रोंकी सहायतासे हाथ और पैरोंकी रक्षा करे। मनके द्वारा नेत्र और कानोंकी तथा कर्मके द्वारा मन और वाणीकी रक्षा करे। प्रमादके त्यागसे भयका और विद्वान् पुरुषोंके सेवनसे दम्भका त्याग करे। * इस प्रकार योगके साधकको आलस्य छोड़कर इन योग-सम्बन्धी दोषोंको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये। वह अग्नि, ब्राह्मण तथा देवताओंको सदा प्रणाम करे। मनपर प्रभाव डालनेवाली हिंसायुक्त उद्दण्डतापूर्ण वाणी न बोले। तेजोमय ब्रह्म ही वीर्य (सबका आदि कारण) है, यह सम्पूर्ण जगत् उसीका कार्य है। समस्त चराचर जगत् उस ब्रह्मके ही ईक्षण (संकल्प) का परिणाम है। ध्यान, वेदाध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच, आत्मशुद्धि एवं इन्द्रियसंयम—इनसे तेजकी वृद्धि होती है और पापका नाश होता है। †

योगीको चाहिये कि वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान भाव रक्खे; जो कुछ मिल जाय, उसीसे निर्वाह करे। पापरहित, तेजस्वी, मिताहारी और जितेन्द्रिय होकर, काम और क्रोधको

---

* सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्॥
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
तदेवाणोरणुतरं तन्महद्भ्यो महत्तरम्।
तदन्तः सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते॥
(२३५। ३०-३१)

* क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात्।
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति॥
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा॥
अप्रमादाद् भयं जह्याद् दम्भं प्राज्ञोपसेवनात्॥
(२३५। ४०—४२)

† ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा।
शौचं चैवात्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः॥
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति॥
(२३५। ४५-४६)

वशमें करके ब्रह्मपदका सेवन करे। योगी रातके पहले और पिछले पहरमें मन एवं इन्द्रियोंको एकाग्र करके ध्यानस्थ हो मनको आत्मामें लगावे। जैसे मशकमें एक जगह भी छेद हो जानेपर सारा पानी बह जाता है, उसी प्रकार यदि साधककी पाँच इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रिय भी विकृत हो विषयोंकी ओर चली जाय तो वह अपनी बुद्धि और विवेक खो बैठता है। जैसे मछुआ पहले जाल काटनेवाली मछलीको पकड़कर पीछे अन्य मछलियोंको पकड़ता है, उसी प्रकार योगवेत्ता साधक पहले अपने मनको वशमें करे। तत्पश्चात् कान, नेत्र, जिह्वा, तथा नासिका आदि इन्द्रियोंका निग्रह करे। इन सबको अधीन करके मनमें स्थापित करे और मनको भी संकल्प-विकल्पसे हटाकर बुद्धिमें स्थिर करे। इस प्रकार पाँचों इन्द्रियोंको मनमें और मनको बुद्धिमें स्थापित करनेपर जब ये इन्द्रिय और मन स्थिर हो जाते हैं, उस समय इनकी मलिनता दूर होकर इनमें स्वच्छता आ जाती है। फिर अन्तःकरणमें ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। योगी धूमरहित अग्नि, दीप्तिमान् सूर्य तथा आकाशमें चमकती हुई बिजलीकी भाँति आत्माका हृदयदेशमें दर्शन करता है। सब कुछ आत्मामें है और आत्मा सबमें व्यापक है; इसलिये वह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। जो महात्मा ब्राह्मण मनीषी, धैर्यवान्, महाज्ञानी और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं, वे ही उस आत्माका दर्शन कर पाते हैं। जो योगी एकान्तमें बैठकर कठोर नियमोंका पालन करते हुए थोड़े समय भी इस प्रकार योगाभ्यास करता है, वह अक्षर ब्रह्मकी समानताको प्राप्त हो जाता है।

योग-साधनामें अग्रसर होनेपर मोह, भ्रम और आवर्त आदि विघ्न प्राप्त होते हैं। दिव्य सुगन्ध आती है, दिव्य वाणीका श्रवण तथा दिव्य रूपोंके दर्शन होते हैं। अद्भुत बातें देखनेमें आती हैं। अलौकिक रस और स्पर्शका अनुभव होता है। इच्छानुकूल सर्दी और गर्मी प्राप्त होती है। वायुकी भाँति आकाशमें चलने-फिरनेकी शक्ति आ जाती है। प्रतिभा बढ़ जाती है और उपद्रवोंका अभाव हो जाता है। योगसे इन सिद्धियोंके प्राप्त होनेपर भी तत्त्ववेत्ता पुरुष उनकी उपेक्षा करके समभावसे ही उन्हें लौटा दे। वह योगका ही अभ्यास बढ़ाये और नियमपूर्वक रहते हुए पहाड़की चोटीपर, शून्य देवमन्दिरमें अथवा वृक्षोंके नीचे बैठकर योगका अभ्यास करे। इन्द्रिय-समुदायको संयममें रखकर एकाग्रचित्त हो निरन्तर आत्माका चिन्तन करता रहे। योगसे मनको उद्विग्न न होने दे। जिस उपायसे चञ्चल मनको रोका जा सके, उसमें तत्परतापूर्वक लग जाय और साधनासे कभी विचलित न हो। अपने रहनेके लिये शून्य गृहको स्वीकार करे, क्योंकि वहाँ चित्त एकाग्र रह सकता है। योगका साधक मन, वाणी अथवा क्रियाद्वारा भी कहीं आसक्त न हो। वह सबकी ओरसे उपेक्षाका भाव रक्खे, नियमित भोजन करे तथा लाभ और अलाभको समान समझे। जो उस योगीकी निन्दा करे और जो उसको मस्तक झुकाये, उन दोनोंके ही प्रति वह समान भाव रक्खे। वह किसी एककी बुराई या भलाई न सोचे। कुछ लाभ होनेपर हर्षसे फूल न उठे और लाभ न होनेपर चिन्ता न करे। अपि तु वायुका सहधर्मी[1] होकर सब प्राणियोंके प्रति समान भाव रक्खे।* इस प्रकार स्वस्थचित्त होकर सर्वत्र समान दृष्टि रखनेवाला साधक यदि छः महीने भी निरन्तर योगके अभ्यासमें लगा रहे तो उसे ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। दूसरे लोग धनकी इच्छा या संग्रह करनेके कारण अत्यन्त विकल हैं, यह देखकर उसकी ओरसे विरक्त हो जाय। मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझे। इस प्रकार योग-मार्गपर चलनेवाला साधक मोहवश कभी उससे विचलित न हो। कोई नीच वर्णका पुरुष अथवा स्त्री ही क्यों न हो, यदि उसे धर्म करनेकी अभिलाषा हो तो वह भी इस योगमार्गसे परम गतिको प्राप्त कर सकता है। योगी पुरुष अजन्मा, पुरातन, जरावस्थासे रहित, सनातन, इन्द्रियातीत एवं अगोचर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। जो मनीषी पुरुष इस योगकी पद्धतिपर दृष्टिपात करके इसे अपनाते हैं, वे ब्रह्माजीके समान हो उस उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं, जहाँसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता।

---

१. सर्वत्र विचरते हुए भी कहीं आसक्त न होना ही वायुका सहधर्मी होना है।

* यश्चैनमभिनिन्देत यश्चैनमभिवादयेत्। समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम्॥
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत्। समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मा मातरिश्वनः॥
(२३५। ६४-६५)

कर्म तथा ज्ञानका अन्तर, परमात्मतत्त्वका निरूपण तथा अध्यात्मज्ञान और उसके साधनोंका वर्णन

मुनि बोले—महर्षे ! यदि वेदकी ऐसी आज्ञा है कि 'कर्म करो' तथा यह भी आदेश है कि 'कर्मका त्याग करो' तो यह बताइये कि मनुष्य ज्ञानके द्वारा कर्म त्याग देनेपर किस गतिको प्राप्त होते हैं ? तथा कर्म करनेसे उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है ? इस बातको हम सुनना चाहते हैं। क्योंकि उक्त दोनों आज्ञाएँ परस्पर विरुद्ध प्रतीत होती हैं।

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो ! ज्ञानसे मनुष्य जिस गतिको पाते हैं और कर्मसे उन्हें जैसी गति मिलती है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। तुम्हारे इस प्रश्नका उत्तर गहन है। शास्त्रमें दो मार्गोंका वर्णन है—एकका नाम प्रवृत्ति-धर्म है और दूसरेको निवृत्ति-धर्म कहा गया है। प्रवृत्तिमार्ग-को कर्म और निवृत्तिमार्गको ज्ञान भी कहते हैं। कर्म (अविद्या) से मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है; इसलिये पारदर्शी यति कर्म नहीं करते। कर्मसे मरनेके बाद जन्म लेना पड़ता है, सोलह तत्त्वोंसे बने हुए शरीरकी प्राप्ति होती है। किंतु ज्ञानसे नित्य, अव्यक्त एवं अविनाशी परमात्मा प्राप्त होते हैं। कुछ मन्दबुद्धि मानव कर्मकी प्रशंसा करते हैं, अतः वे भोगासक्त होकर बारंबार देहके बन्धनमें पड़ते हैं। परंतु जो धर्मके तत्त्वको भलीभाँति समझते हैं तथा जिन्हें उत्तम बुद्धि प्राप्त है, वे कर्मकी उसी तरह प्रशंसा नहीं करते, जैसे नदीका पानी पीनेवाला मनुष्य कुएँका आदर नहीं करता। कर्मके फल मिलते हैं—सुख और दुःख, जन्म और मृत्यु। किंतु ज्ञानसे उस पदकी प्राप्ति होती है, जहाँ जाकर मनुष्य सदाके लिये शोकसे मुक्त हो जाता है। जहाँ जन्म, मृत्यु, जरा और वृद्धि उसका स्पर्श नहीं करते, वहाँ केवल अव्यक्त, अचल, ध्रुव, अव्याकृत एवं अमृतस्वरूप परब्रह्मकी ही स्थिति है। उस स्थिति-में पहुँचे हुए मनुष्योंको शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व बाधा नहीं पहुँचाते। मानसिक विकार और क्रियाद्वारा भी उन्हें कष्ट नहीं होता। वे समत्वभावसे युक्त, सबके प्रति मैत्री रखने-वाले और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले होते हैं।

ब्राह्मणो ! देह, इन्द्रिय और मन आदि जो प्रकृतिके विकार हैं, वे क्षेत्रज्ञके ही आधारपर स्थित हैं। वे जड होनेके कारण क्षेत्रज्ञको नहीं जानते, किंतु क्षेत्रज्ञ उन सबको जानता है। जैसे चतुर सारथि अपने वशमें किये बलवान् एवं उत्तम घोड़ोंसे अच्छी तरह काम लेता है, उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ भी अपने अधीन किये हुए मन और इन्द्रियोंद्वारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करता है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा उनके विषय (शब्दादि तन्मात्रा) पर—सूक्ष्म और श्रेष्ठ हैं। विषयोंसे मन पर है। मनसे बुद्धि पर है। बुद्धिसे महत्तत्त्व पर है। महत्तत्त्वसे अव्यक्त (मूल प्रकृति) पर है और अव्यक्तसे अविनाशी परमात्मा पर है। अविनाशी परमात्मासे पर कुछ भी नहीं है। वही परताकी सीमा है तथा वही परम गति है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर छिपा हुआ यह परमात्मा सबके जाननेमें नहीं आता। उसे तो सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी महात्मा ही अपनी सूक्ष्म एवं श्रेष्ठ बुद्धिसे देखते हैं।*

मनसहित इन्द्रियोंको तथा इन्द्रियोंके साथ उनके विषयोंको भी बुद्धिके द्वारा अन्तरात्मामें लीन करके नाना प्रकारके दृश्योंका चिन्तन न करे। ध्यानके द्वारा मनको विषयोंकी ओरसे हटाकर विवेकके द्वारा उसे स्थिर करे और शान्तभावसे स्थित हो जाय; ऐसा करनेसे साधक परम पद-को प्राप्त होता है। जो इन्द्रियोंके वशमें रहता है, वह मानव विवेकशक्तिको खो देता है और अपनेको काम आदि शत्रुओं-के हाथमें देकर मृत्युको प्राप्त होता है। इसलिये सब प्रकारके संकल्पोंका नाश करके चित्तको सत्त्वयुक्त बुद्धिमें स्थापित करे। यों करनेसे चित्तमें प्रसाद गुण आता है, जिससे यति पुरुष शुभ और अशुभ दोनोंको जीत लेता है। प्रसन्नचित्त साधक परमात्मामें स्थित होकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करता है। चित्तकी प्रसन्नताका लक्षण यह है कि सदा सुषुप्तिके समान सुखका अनुभव होता रहे, अथवा वायुशून्य स्थानमें जलते हुए निष्कम्प दीपककी लौके समान मन कभी चञ्चल न हो।

जो मिताहारी और शुद्धचित्त होकर रातके पहले तथा पिछले भागमें आत्माको परमात्माके ध्यानमें लगाता है,

---

* इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम्।
अमृतान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥
एवं सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥
(२३६ । २३—२५)

वही अपने अन्तःकरणमें परमात्माका दर्शन करता है। यह उपदेश सम्पूर्ण वेदोंका रहस्य है। यह परमात्माका बोध करानेवाला शास्त्र है। धर्म और सत्यके सम्पूर्ण उपाख्यानोंमें जो सार वस्तु है, उसका दस हजार वर्षोंतक मन्थन करके यह अमृतमय उपदेश निकाला गया है। जैसे दहीसे मक्खन निकलता और काष्ठसे अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार मोक्षके लिये विद्वानोंका ज्ञान यहाँ प्रकट किया गया है। इस शास्त्रका उपदेश स्नातकोंको देना चाहिये। जिसका मन शान्त नहीं है, इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं तथा जो तपस्वी नहीं है, उसे इस ज्ञानका उपदेश नहीं करना चाहिये। जो वेदका ज्ञाता नहीं है, जिसके मनमें गुरुके प्रति भक्ति नहीं है, जो दोष देखनेवाला, कुटिल, आज्ञाका पालन न करनेवाला, व्यर्थ तर्क-वितर्कसे दूषित और चुगलखोर है, उसे भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रशंसनीय, शान्त, तपस्वी तथा सेवापरायण शिष्य अथवा पुत्र हो, उसीको इस गूढ़ धर्मका उपदेश देना उचित है; दूसरे किसीको नहीं। यदि कोई रत्नोंसे भरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी देने लगे, तो भी तत्त्ववेत्ता पुरुष उसकी अपेक्षा इस ज्ञानको ही श्रेष्ठ माने। अतः मैं तुम्हें अत्यन्त गूढ़ अर्थवाले अध्यात्म ज्ञानका उपदेश देता हूँ, जो मानवीय ज्ञानसे बाहर है, जिसे महर्षियोंने ही जाना है तथा जिसका सम्पूर्ण उपनिषदोंमें वर्णन किया गया है। मुनिवरो! तुमलोग जो बात पूछते थे और तुम्हारे हृदयमें जिसके विषयमें संदेह था, वह सब तुमने सुन लिया। मेरे मनमें जैसा निश्चय था, वह सब बता दिया; अब और क्या सुनाऊँ?

मुनियोंने कहा—ऋषिश्रेष्ठ! अब पुनः अध्यात्म ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। अध्यात्म क्या है और उसे हम किस प्रकार जानें?

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! अध्यात्मका जो स्वरूप है, उसे बताता हूँ। तुम उसकी व्याख्या ध्यान देकर सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चमहाभूत सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें स्थित हैं। शब्द, श्रवणेन्द्रिय और शरीरके सम्पूर्ण छिद्र आकाशसे प्रकट हुए हैं। प्राण, चेष्टा और स्पर्शकी उत्पत्ति वायुसे हुई है। रूप, नेत्र और जठरानल—ये तीन अग्निके कार्य हैं। रस, रसना और चिकनाहट—ये जलके गुण हैं। गन्ध, नासिका और देह—ये पृथ्वीके कार्य हैं। यह पाञ्चभौतिक विकार बताया गया। स्पर्श वायुका, रस जलका, रूप तेजका, शब्द आकाशका और गन्ध भूमिका गुण है। मन, बुद्धि और स्वभाव—ये स्वयोनिज गुण हैं। ये गुणोंकी सीमाको लाँघ जाते हैं, अतः उनसे श्रेष्ठ माने गये हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार बुद्धिके द्वारा श्रेष्ठ पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेट लेता है। मनुष्यके शरीरमें पाँच इन्द्रियाँ हैं, छठा तत्त्व मन है, सातवाँ तत्त्व बुद्धि है और क्षेत्रज्ञको आठवाँ समझो। आँख देखनेके लिये ही है, मन संदेह करता है, बुद्धि निश्चय करनेके लिये है और क्षेत्रज्ञको साक्षी कहा जाता है। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण अपने कारणभूत प्रकृतिसे प्रकट हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियोंमें समानभावसे स्थित हैं। उनके कार्योंद्वारा उनकी पहचान करनी चाहिये। जब अन्तःकरण कुछ प्रीतियुक्त-सा जान पड़े, अत्यन्त शान्तिका-सा अनुभव हो, तब उसे सत्त्वगुण जानना चाहिये। जब शरीर और मनमें कुछ संतापका-सा अनुभव हो, तब उसे रजोगुणकी प्रवृत्ति मानना चाहिये। जब अन्तःकरणमें अव्यक्त, अतर्क्य और अज्ञेय मोहका संयोग होने लगे, तब उसे तमोगुण समझना चाहिये। जब अकस्मात् किसी कारणवश अत्यन्त हर्ष, प्रेम, आनन्द, समता और स्वस्थचित्तताका विकास हो, तब उसे सात्त्विक गुण कहते हैं। अभिमान, असत्य-भाषण, लोभ और असहनशीलता—ये रजोगुणके चिह्न हैं। मोह, प्रमाद, निद्रा, आलस्य और अज्ञान आदि दुर्गुण जब किसी तरह प्रवृत्त हों तब उन्हें तमोगुणका कार्य जानना चाहिये।

जैसे जलचर पक्षी जलमें विचरता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार मुक्तात्मा योगी संसारमें रहकर भी उसके गुण-दोषोंसे लिप्त नहीं होता।* इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष विषयोंमें आसक्त न होनेके कारण उनका उपभोग करते हुए भी उनके दोषोंसे लिप्त नहीं होता। जो सदा परमात्माके चिन्तनमें ही लगा रहता है, वह पूर्वकृत कर्मोंके बन्धनसे रहित हो सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा हो जाता है और विषयोंमें कभी आसक्त नहीं होता। गुण आत्माको नहीं जानते, किंतु आत्मा उन्हें सदा जानता रहता है; क्योंकि वह गुणोंका द्रष्टा है। प्रकृति और आत्मामें यही अन्तर है। एक (प्रकृति) तो गुणोंकी सृष्टि करती है, किन्तु दूसरा (आत्मा) ऐसा नहीं करता। वे दोनों स्वभावतः पृथक् होते हुए भी एक

* यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन्।
विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते॥
(२३६।८२)

दूसरेसे संयुक्त हैं। जैसे पत्थरमें सुवर्ण जड़ा होता है, जैसे गूलर और उसके कीड़े साथ-साथ रहते हैं तथा जिस प्रकार मूँजमें सींक होती है, और ये सभी वस्तुएँ पृथक् होते हुए भी परस्पर संयुक्त रहती हैं, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी एक दूसरेसे संयुक्त रहते हैं।

प्रकृति गुणोंकी सृष्टि करती है और क्षेत्रज्ञ आत्मा उदासीनकी भाँति अलग रहकर समस्त विकारशील गुणोंको देखा करता है। प्रकृति जो इन गुणोंकी सृष्टि करती है, वह सब उसका स्वाभाविक कर्म है। जैसे मकड़ी अपने शरीरसे तन्तुओंकी सृष्टि करती है, वैसे ही प्रकृति भी समस्त त्रिगुणात्मक पदार्थोंको जन्म देती है। किन्हींका मत है कि तत्त्वज्ञानसे जब गुणोंका नाश कर दिया जाता है, तब वे फिर उत्पन्न नहीं होते, उनका सर्वथा बाध हो जाता है। क्योंकि फिर उनका कोई चिह्न नहीं उपलब्ध होता। इस प्रकार वे भ्रम या अविद्याके निवारणको ही मुक्ति मानते हैं। दूसरोंके मतमें त्रिविध दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। इन दोनों मतोंपर अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करके सिद्धान्तका निश्चय करे।

आत्मा आदि और अन्तसे रहित है। उसे जानकर मनुष्य हर्ष और क्रोधको त्याग दे और मात्सर्यरहित होकर विचरण करे। जैसे तैरनेकी कला न जाननेवाले मनुष्य यदि भरी हुई नदीमें कूद पड़ते हैं तो वे डूब जाते हैं, किंतु जो तैरना जानते हैं, वे कष्टमें नहीं पड़ते, वे तो जलमें भी स्थलकी ही भाँति विचरते हैं, उसी प्रकार ज्ञानस्वरूप आत्माको प्राप्त हुआ तत्त्ववेत्ता पुरुष संसार-सागरसे पार हो जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आवागमनको जानकर सबके प्रति समभाव रखते हुए बर्ताव करता है, वह उत्तम शान्तिको प्राप्त होता है। ब्राह्मणमें इस ज्ञानको प्राप्त करनेकी सहज शक्ति होती है। मन और इन्द्रियोंका संयम तथा आत्माका ज्ञान—ये मोक्ष-प्राप्तिके लिये पर्याप्त साधन हैं। तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य बुद्ध (ज्ञानी) हो जाता है। बुद्धका इसके सिवा और क्या लक्षण हो सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य इस आत्मतत्त्वको जानकर कृतकृत्य हो संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अज्ञानी पुरुषोंको परलोकमें जो महान् भय प्राप्त होता है, वह ज्ञानीको नहीं होता। ज्ञानी पुरुषोंको जो सनातन गति प्राप्त होती है, उससे बढ़कर दूसरी कोई गति नहीं है।

मुनि बोले—भगवन्! अब आप उस धर्मका वर्णन कीजिये, जो सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है तथा जिससे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है।

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! मैं ऋषियोंके द्वारा प्रशंसित प्राचीन धर्मका, जो सम्पूर्ण धर्मोंसे श्रेष्ठ है, वर्णन करता हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। जैसे पिता अपने छोटे बालकोंको अपनी आज्ञाके अधीन रखता है, उसी प्रकार मनुष्य बुद्धिके बलसे अपनी प्रमथनशील इन्द्रियोंका यत्नपूर्वक संयम करे। मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता ही सबसे बड़ी तपस्या है, उसे ही सब धर्मोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ धर्म जानना चाहिये। पाँचों इन्द्रियोंसहित छठे मनको बुद्धिके द्वारा एकाग्र करके सदा अपने आपमें ही संतुष्ट रहे, नाना प्रकारके चिन्तनीय विषयोंका चिन्तन न करे।* जिस समय ये इन्द्रियाँ अपने विषयोंसे हटकर बुद्धिमें स्थित हो जायँगी, उसी समय तुम्हें सनातन परमात्माका दर्शन होगा। धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान उस परम महान् सर्वात्मा परमेश्वरको मनीषी ब्राह्मण ही देख पाते हैं। जलते हुए ज्ञानमय प्रदीपके द्वारा पुरुष अपने अन्तःकरणमें ही आत्माका दर्शन करता है। ब्राह्मणो! तुमलोग भी इसी प्रकार आत्माका साक्षात्कार करके संसारसे विरक्त हो जाओ। जैसे साँप केंचुल छोड़ता है, वैसे ही तुम भी सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे। इस उत्तम बुद्धिको प्राप्त कर लेनेपर तुम्हारे मनमें चिन्ता तथा वेदना नहीं रहेगी। अविद्या एक भयंकर नदी है, जिसके सब ओर स्रोत हैं; यह लोकोंको प्रवाहित करनेवाली है। पाँचों इन्द्रियाँ इस नदीके भीतर रहनेवाले ग्राह हैं। मानसिक संकल्प-विकल्प ही इसके तट हैं। यह लोभ-मोहरूपी तृण (सेवार आदि) से आच्छादित रहती है। काम और क्रोधरूपी सर्पोंसे युक्त है। सत्य ही इससे पार करनेवाला पुण्यतीर्थ है। इसमें असत्यका तूफान उठा करता है। क्रोध ही इस श्रेष्ठ नदीकी कीचड़ है। इसका उद्गम-स्थान अव्यक्त है। यह काम-क्रोधसे व्याप्त तथा वेगसे बहनेवाली है। अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसे पार करना अत्यन्त कठिन है। यह नदी संसाररूपी समुद्रमें मिलती है। अपना जन्म ही इस नदीकी उत्पत्तिका कारण है। जिह्वारूपी भँवरके कारण इसको पार करना कठिन है। स्थिर बुद्धिवाले पवित्र मनीषी पुरुष ही इस नदीको पार कर पाते हैं। तुम सब लोग भी इस नदीके पार

---

* मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः।
विशेयः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते॥
तानि सर्वाणि संधाय मनःषष्ठानि मेधया।
आत्मतृप्तः सदाऽऽसीत बहुचिन्त्यमचिन्तयन्॥
(२३७। १८-१९)

हो जाओ। इससे पार हो सब बन्धनोंसे मुक्त हुआ पवित्र जितात्मा पुरुष उत्तम बुद्धि पाकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। वह सब क्लेशोंसे छूट जाता है, उसका अन्तःकरण प्रसन्नतासे पूर्ण रहता है तथा वह पापरहित हो जाता है। उसमें हर्ष और क्रोधरूपी विकार नहीं रह जाते। उसकी बुद्धि क्रूर नहीं होती। इस बुद्धिको प्राप्त करके तुमलोग समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयको देख सकोगे। यहाँ बताये हुए धर्मको विद्वानोंने सब धर्मोंसे श्रेष्ठ माना है। यह आत्मज्ञानका उपदेश सम्पूर्ण गुह्य रहस्योंमें भी सबसे अधिक गोपनीय है। जो कोई परम पवित्र, हितैषी तथा भक्त हो, उसीको इसका उपदेश करना चाहिये। ब्राह्मणो! मैंने यहाँ जिस ज्ञानका वर्णन किया है, वह अनायास ही आत्माका साक्षात्कार करानेवाला है। वह आत्मतत्त्व न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। उसमें दुःख और सुख दोनोंका अभाव है। वह साक्षात् ब्रह्म है। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब उसीके रूप हैं। कोई पुरुष हो या स्त्री, जो उस ब्रह्मको जान लेता है, उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। विप्रगण! सब प्रकारके मतोंने इस विषयका जैसा प्रतिपादन किया है, उसके अनुकूल ही मैंने भी वर्णन किया है।

मुनि बोले—ब्रह्माजीने उपायसे ही मोक्षकी प्राप्ति बतायी है, बिना उपायके नहीं। अतः हम न्यायानुकूल उपायको ही सुनना चाहते हैं।

व्यासजीने कहा—महाप्राज्ञ मुनिवरो! हमलोगोंमें ऐसी ही निपुण दृष्टि होनी उचित है। उपायसे ही सब पुरुषार्थोंकी खोज करनी चाहिये। मोक्षका एक ही मार्ग है, उसे सुनो। क्षमाके द्वारा क्रोधका नाश करे। इच्छा, द्वेष और कामको धैर्यसे शान्त करे। तत्त्ववेत्ता योगी ज्ञानके अभ्याससे निद्रा तथा भेद-बुद्धिका निराकरण करे। हितकर, सुपक्व और स्वल्प भोजनसे वह सब प्रकारके उपद्रवोंको मिटाये। विद्वान् पुरुष संतोषसे लोभ और मोहका, तात्त्विक दृष्टिसे विषयोंकी आसक्तिका, दयासे अधर्मका, सबमें अनित्य-बुद्धिके द्वारा स्नेहका तथा योग-साधनसे क्षुधाका निवारण करे। पूर्ण संतोषसे तृष्णाको, उत्थान (उद्यम) से आलस्यको, निश्चयसे तर्क-वितर्कको, मौनावलम्बनसे बहुत बोलनेकी प्रवृत्तिको, शूरतासे भयको, बुद्धिसे मन और वाणीको तथा ज्ञानदृष्टिसे बुद्धिको जीते। शान्तचित्त हो पवित्र कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए इस बातको समझे। जिसके पाप धुल गये हैं, ऐसा तेजस्वी, मिताहारी तथा जितेन्द्रिय पुरुष काम और क्रोधको अपने वशमें करके ब्रह्ममें प्रवेश करता है। अविवेक और आसक्तिका अभाव, दीनताका त्याग, अविनयसे दूर रहना, चित्तमें उद्वेग न आने देना, स्थिरता धारण किये रहना तथा मन, वाणी और शरीरको संयममें रखना—यह सब मोक्षका प्रसादपूर्ण निर्मल एवं पवित्र मार्ग है।

योग और सांख्यका संक्षिप्त वर्णन

व्यासजी कहते हैं—जिस प्रकार दुर्बल मनुष्य पानीके वेगमें बह जाता है, उसी प्रकार निर्बल योगी विषयोंसे विचलित हो जाता है। किंतु उसी महान् प्रवाहको जैसे हाथी रोक देता है, वैसे ही योगका महान् बल पाकर योगी भी समस्त विषयोंको रोक लेता है, उनके द्वारा विचलित नहीं होता। योगशक्तिसम्पन्न पुरुष स्वतन्त्रतापूर्वक समस्त प्रजापतियों, मनुओं तथा महाभूतोंमें प्रवेश कर जाते हैं। अमित तेजस्वी योगीके ऊपर क्रोधमें भरे हुए यमराज, काल और भयंकर पराक्रम दिखानेवाली मृत्युका भी जोर नहीं चलता। वह योगबल पाकर अपने हजारों रूप बना सकता और उन सबके द्वारा इस पृथ्वीपर विचर सकता है। फिर तेजको समेट लेनेवाले सूर्यकी भाँति वह उन सभी रूपोंको अपनेमें लीन करके उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हो जाता है। बलवान् योगी बन्धन तोड़नेमें समर्थ होता है। उसमें अपनेको मुक्त करनेकी पूर्ण शक्ति होती है।

द्विजवरो! ये मैंने योगकी स्थूल शक्तियाँ बतायी हैं। अब दृष्टान्तके लिये योगसे प्राप्त होनेवाली कुछ सूक्ष्म शक्तियोंका वर्णन करूँगा तथा आत्म-समाधिके लिये जो चित्तकी धारणा की जाती है, उसके विषयमें भी कुछ सूक्ष्म दृष्टान्त बतलाऊँगा। जिस प्रकार सदा सावधान रहनेवाला धनुर्धर वीर चित्तको एकाग्र करके प्रहार करनेपर लक्ष्यको बेध देता है, उसी प्रकार जो योगी मनको परमात्माके ध्यानमें लगा देता है, वह निःसंदेह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे सावधान मल्लाह समुद्रमें पड़ी हुई नावको शीघ्र ही किनारे लगा देता है, उसी प्रकार योगके अनुसार तत्त्वको जाननेवाला पुरुष समाधिके द्वारा मनको परमात्मामें लगाकर देहका त्याग करनेके अनन्तर दुर्गम स्थान (परम धाम) को प्राप्त होता है।

जिस प्रकार सावधान सारथि अच्छे घोड़ोंको रथमें जोतकर धनुर्धर श्रेष्ठ वीरको तुरंत अभीष्ट स्थानपर पहुँचा देता है, वैसे ही धारणाओंमें चित्तको एकाग्र करनेवाला योगी लक्ष्यकी ओर छूटे हुए बाणकी भाँति शीघ्र परम पदको प्राप्त कर लेता है। जो समाधिके द्वारा अपने आत्माको परमात्मामें लगाकर स्थिर भावसे बैठा रहता है, उसे अजर (बुढ़ापेसे रहित) पदकी प्राप्ति होती है। योगके महान् व्रतमें एकाग्रचित्त रहनेवाला जो योगी नाभि, कण्ठ, पार्श्वभाग, हृदय, वक्षःस्थल, नाक, कान, नेत्र और मस्तक आदि स्थानोंमें धारणाके द्वारा आत्माको परमात्माके साथ युक्त करता है, वह पर्वतके समान महान् शुभाशुभ कर्मोंको भी शीघ्र ही भस्म कर डालता है और इच्छा करते ही उत्तम योगका आश्रय ले मुक्त हो जाता है।

निर्मल अन्तःकरणवाले यति परमात्माको प्राप्त करके तद्रूप हो जाते हैं। उन्हें अमृतत्व मिल जाता है, फिर वे संसारमें नहीं लौटते। ब्राह्मणो! यही परम गति है। जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित, सत्यवादी, सरल तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले हैं, उन महात्माओंको ही ऐसी गति प्राप्त होती है।

मुनि बोले—साधुशिरोमणे! दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले यति उत्तम स्थानस्वरूप भगवान्‌को प्राप्त होकर क्या निरन्तर उन्हींमें रमण करते रहते हैं? अथवा ऐसी बात नहीं है? यहाँ जो तथ्य हो, उसका यथावत् वर्णन कीजिये। आपके सिवा दूसरे किसीसे हम ऐसा प्रश्न नहीं कर सकते।

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! आपने जो प्रश्न किया है, वह उचित ही है। यह विषय बहुत ही कठिन है। इसमें विद्वानोंको भी मोह हो जाता है। यहाँ भी जो परम तत्त्वकी बात है, उसे बतलाता हूँ; सुनो। इस विषयमें कपिलके सांख्यमतका अनुसरण करनेवाले महात्माओंका विचार उत्तम माना गया है। देहधारियोंकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म शरीरको जानती हैं; क्योंकि वे आत्माके करण हैं और आत्मा भी उनके द्वारा सब कुछ देखता है। आत्मासे सम्बन्ध न रहनेपर वे काठ और दीवारकी भाँति जड़मात्र हैं तथा महासागरमें उसके तटकी भूमिकी भाँति नष्ट हो जाती हैं। विप्रवरो! जब इन्द्रियोंके साथ देहधारी जीव सो जाता है, तब उसका सूक्ष्मशरीर आकाशमें वायुकी भाँति सर्वत्र विचरता रहता है। वह यथायोग्य वस्तुओंको देखता, स्मरण करता, छूता और पहलेकी ही भाँति उन सबका अनुभव करता है। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ स्वयं असमर्थ होनेके कारण विषके द्वारा मारे हुए सर्पोंकी भाँति अपने-अपने गोलकोंमें विलीन रहती हैं। उनकी सूक्ष्मगतिका आश्रय लेकर निश्चय ही आत्मा सर्वत्र विचरता है। सत्त्व, रज, तम, बुद्धि, मन, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—इन सबके गुणोंको व्याप्त करके क्षेत्रज्ञ आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें विचरण करता है। जैसे शिष्य महात्मा गुरुका अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ क्षेत्रज्ञ आत्माका अनुसरण करती हैं। सांख्ययोगी प्रकृतिका भी अतिक्रमण करके शुद्ध, सूक्ष्म, परात्पर, निर्विकार, समस्त पापोंसे रहित, अनामय, निर्गुण तथा आनन्दमय परमात्मा श्रीनारायणको प्राप्त होते हैं। विप्रवरो! इस ज्ञानके समान दूसरा कोई ज्ञान नहीं है। इसके विषयमें तुमको संदेह नहीं करना चाहिये। सांख्यज्ञान सबसे उत्कृष्ट माना गया है। इसमें अक्षर, ध्रुव एवं पूर्ण सनातन ब्रह्मका ही प्रतिपादन हुआ है। वह ब्रह्म आदि, मध्य और अन्तसे रहित, द्वन्द्वोंसे अतीत, सनातन, कूटस्थ और नित्य है—ऐसा शान्तिपरायण विद्वान् पुरुषोंका कथन है। इसीसे जगत्‌की उत्पत्ति और प्रलय आदिरूप सम्पूर्ण विकार होते हैं। गूढ़ तत्त्वोंकी व्याख्या करनेवाले महर्षियोंने शास्त्रोंमें ऐसा ही वर्णन किया है। सम्पूर्ण ब्राह्मण, देवता, वेद तथा सामवेत्ता पुरुष उसी अनन्त, अच्युत, ब्राह्मणभक्त तथा परमदेव परमेश्वरकी प्रार्थना करते और उनके गुणोंका चिन्तन करते रहते हैं।

ब्राह्मणो! महात्मा पुरुषोंमें, वेदोंमें, सांख्य और योगमें तथा पुराणोंमें जो उत्तम ज्ञान देखा गया है, वह सब सांख्यसे ही आया हुआ है। बड़े-बड़े इतिहासोंमें, यथार्थ तत्त्वका वर्णन करनेवाले शास्त्रोंमें तथा इस लोकमें जो कुछ भी ज्ञान श्रेष्ठ पुरुषोंके देखनेमें आया है, वह सब सांख्यसे ही प्राप्त हुआ है। पूर्ण दृष्टि, उत्तम बल, ज्ञान, मोक्ष तथा सूक्ष्म तप आदि जितने भी विषय बताये गये हैं, उन सबका सांख्यशास्त्रमें यथावत् वर्णन किया गया है। सांख्यज्ञानी सदा सुखपूर्वक कल्याणमय ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। उस ज्ञानको धारण करके भी मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं। सांख्यका ज्ञान अत्यन्त विशाल और परम प्राचीन है। यह महासागरके समान अगाध, निर्मल और उदार भावोंसे पूर्ण है। इस अप्रमेय ज्ञानको भगवान् नारायण ही पूर्णरूपसे धारण करते हैं। मुनिवरो! यह मैंने तुमसे परम तत्त्वका वर्णन किया। यह सम्पूर्ण पुरातन विश्व भगवान् नारायणसे ही प्रकट हुआ है। वे ही सृष्टिके समय संसारकी सृष्टि और संहारकालमें उसका संहार करते हैं।

क्षर-अक्षर-तत्त्वके विषयमें राजा करालजनक और वसिष्ठका संवाद



मुनियोंने पूछा—महामुने ! वह अक्षर-तत्त्व क्या है, जिसको प्राप्त कर लेनेपर जीव पुनः इस संसारमें नहीं आता ? तथा क्षर पदार्थ क्या है, जिसको जाननेपर भी आवागमन बना रहता है ? क्षर और अक्षरके स्वरूपको स्पष्टरूपसे जाननेके लिये हम आपसे यह प्रश्न करते हैं ।

व्यासजीने कहा—मुनिवरो ! इस विषयमें राजा करालजनक और वसिष्ठके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ । एक समयकी बात है, सूर्यके समान तेजस्वी मुनिवर-वसिष्ठ अपने आश्रमपर विराजमान थे । वे परमात्म-तत्त्वके प्रतिपादनमें कुशल थे । उन्हें अध्यात्म-तत्त्वका निश्चयात्मक ज्ञान था । उस समय राजा करालजनकने उस आश्रमपर पहुँचकर वसिष्ठजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विनययुक्त मधुरवाणीमें कहा-'भगवन् ! जहाँसे ज्ञानी पुरुषोंको पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता, उस सनातन ब्रह्मके स्वरूपका मैं वर्णन सुनना चाहता हूँ । इसके सिवा जो क्षर कहा गया है, उसका तथा जिसमें इस जगत्का लय होता है, उस अनामय, कल्याणमय, अक्षरतत्त्वका भी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ; अतः आप इस विषयका उपदेश करें ।'

वसिष्ठजीने कहा—राजन् ! सुनो । जिस प्रकार इस जगत्का क्षरण (लय) होता है, उसको तथा जिसमें इसका लय होता है, उस अक्षरको भी बतलाता हूँ । देवताओंके बारह हजार वर्षोंका एक चतुर्युग होता है । एक हजार चतुर्युगको ब्रह्माका एक दिन कहते हैं । इसीको कल्प समझो । दिनके ही बराबर ब्रह्माजीकी रात्रि भी होती है, जिसके अन्तमें वे सोकर उठते हैं और इस विशाल विश्वकी सृष्टि करते हैं । वे यद्यपि निराकार हैं, तो भी साकार जगत्की रचना करते हैं । उनमें अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति आदि शक्तियोंका स्वाभाविक निवास है । वे अविनाशी ज्योतिर्मय परमेश्वर हैं । उनके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं । वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं । वे ही भगवान् हिरण्यगर्भ हैं । वे ही योगशास्त्रमें महान् और विरञ्चि आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं तथा सांख्यशास्त्रमें भी उनका अनेकों नामोंसे वर्णन आता है । उनके नाना प्रकारके अनेक अद्भुत रूप हैं । वे विश्वके आत्मा और एकाक्षर कहे गये हैं । उन्होंने सम्पूर्ण त्रिलोकीको स्वयं ही धारण कर रक्खा है तथा वे बहुत-से रूप धारण करनेके कारण विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं । वे महातेजस्वी भगवान् अपनी शक्तिसे महत्तत्त्वकी सृष्टि करके फिर अहंकार और उसके अभिमानी देवता प्रजापतिको उत्पन्न करते हैं । राजस, तामस और सात्त्विक भेदसे तीन प्रकारके अहंकारोंसे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय तथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । मनके सहित इन सबका प्रादुर्भाव हुआ है । ये चौबीस तत्त्व सम्पूर्ण शरीरोंमें मौजूद रहते हैं । इनके स्वरूपको भलीभाँति जानकर तत्त्वदर्शी ब्राह्मण कभी शोक नहीं करते ।

नरश्रेष्ठ ! यह त्रिलोकी उन्हीं तत्त्वोंसे बनी है । देवता, मनुष्य, यक्ष, भूत, गन्धर्व, किंनर, महानाग, चारण, पिशाच, देवर्षि, निशाचर, दंश, कीट, मशक, दुर्गन्धित कीड़े, चूहे, कुत्ते, चाण्डाल, हिरन, पुक्कस, हाथी, घोड़े, गदहे, व्याघ्र, भेड़िये तथा गौ आदि जितने भी मूर्तिमान् पदार्थ हैं, उन सबमें इन्हीं तत्त्वोंका दर्शन होता है । पृथ्वी, जल और आकाशमें ही प्राणियोंका निवास है; अन्यत्र नहीं । यह सम्पूर्ण जगत् व्यक्त कहलाता है । प्रतिदिन इसका क्षरण (क्षय) होता है, इसलिये इसको क्षर कहते हैं । इससे भिन्न तत्त्व अक्षर कहा गया है । सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा परमेश्वरको ही अक्षर कहते हैं । इस प्रकार उस अव्यक्त अक्षरसे उत्पन्न यह व्यक्त नामवाला मोहात्मक जगत् सदा क्षयशील होनेके कारण 'क्षर' नाम धारण करता है । क्षर तत्त्वोंमें सबसे पहले महत्तत्त्वकी सृष्टि हुई है । यही क्षरका निरूपण है । महाराज ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने क्षर-अक्षरका वर्णन किया । अक्षर तत्त्व पचीसवाँ तत्त्व है । वह नित्य एवं निराकार है । उसको प्राप्त कर लेनेपर इस संसारमें लौटना नहीं होता । जो अव्यक्ततत्त्व इस व्यक्त जगत्की सृष्टि करता है, वह प्रत्येक शरीरमें साक्षीरूपसे निवास करता है । चौबीस तत्त्वोंका समुदाय तो व्यक्त है, किंतु उनका साक्षी पचीसवाँ तत्त्व परमात्मा निराकार होनेके कारण अव्यक्त है । वही सम्पूर्ण देहधारियोंके हृदयमें निवास करता है ।

वह चेतनरूपसे सबको चेतना प्रदान करता है। वह स्वयं अमूर्त होते हुए भी सर्वमूर्तिस्वरूप है। सृष्टि और प्रलयरूप धर्मसे वह सृष्टिस्वरूप भी है और प्रलयस्वरूप भी। वही विश्वरूपमें सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। वह निर्गुण होते हुए भी गुणस्वरूप है। वह परमात्मा करोड़ों सृष्टि और प्रलय करता रहता है, तथापि उसे अपने कर्तृत्वका अभिमान नहीं होता।

अज्ञानी पुरुष तमोगुण, सत्त्वगुण और रजोगुणसे युक्त होकर तदनुकूल योनियोंमें जन्म लेता है। वह ज्ञान न होने, अज्ञानी पुरुषोंका सेवन करने तथा उनके सम्पर्कमें रहनेसे ऐसा अभिमान करने लगता है कि 'मैं बालक हूँ, यह हूँ, वह हूँ और वह नहीं हूँ' इत्यादि। इस अभिमानके कारण वह प्राकृत गुणोंका ही अनुसरण करता है। तमोगुणके सेवनसे वह नाना प्रकारके तामसिक भावोंको प्राप्त होता है। रजोगुणके सेवनसे राजसिक और सत्त्वगुणके आश्रयसे वह सात्त्विक रूप ग्रहण करता है। काले, लाल और श्वेत—ये जो तीन प्रकारके रूप हैं, उन सबको प्राकृत ही जानो। तमोगुणी पुरुष नरकमें पड़ते हैं, रजोगुणी मनुष्यलोकमें आते हैं और सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाले जीव सुखके भागी होकर देवलोकमें जाते हैं। केवल पापसे (पापकी प्रधानतासे) पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाना पड़ता है। पुण्य और पाप दोनोंका मेल होनेसे मनुष्य-लोककी प्राप्ति होती है तथा केवल पुण्यसे (पुण्यकी प्रधानतासे) जीव देवताका स्वरूप प्राप्त करता है। अव्यक्त परमात्मामें जो स्थिति होती है, उसीको मनीषी पुरुष मोक्ष कहते हैं। वे परमात्मा ही पचीसवाँ तत्त्व हैं। ज्ञानसे ही उनकी प्राप्ति होती है।

क्षर-अक्षर तथा योग और सांख्यका वर्णन

जनकने कहा—मुनिश्रेष्ठ! क्षर और अक्षर (प्रकृति और पुरुष) दोनोंका सम्बन्ध तो पत्नी और पतिके सम्बन्धकी भाँति स्थिर जान पड़ता है। जैसे पुरुषके बिना स्त्री तथा स्त्रीके बिना पुरुष संतान नहीं उत्पन्न कर सकते, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी सदा एक दूसरेसे संयुक्त होकर ही सृष्टि करते हैं। ऐसी दशामें पुरुषका मोक्ष असम्भव जान पड़ता है। यदि मोक्षके निकट पहुँचानेवाला (उसके स्वरूपका स्पष्ट बोध करानेवाला) कोई दृष्टान्त हो तो बताइये; क्योंकि आपको सब कुछ प्रत्यक्ष है। हमारे मनमें भी मोक्षकी अभिलाषा है। हम भी उस पदको प्राप्त करना चाहते हैं, जो अनामय, अजेय, बुढ़ापेसे रहित, नित्य, इन्द्रियातीत एवं परम स्वतन्त्र है।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! तुम्हारा कहना ठीक है, तुमने वेद और शास्त्रोंका दृष्टान्त देकर अपना प्रश्न उपस्थित किया है। तथापि अभी ग्रन्थका यथार्थ तत्त्व तुम्हारी समझमें नहीं आया है। जो वेद और शास्त्रोंके ग्रन्थोंको तो रट लेता है किंतु उसके तत्त्वको नहीं समझता, उसका वह रटना व्यर्थ है। जो याद किये हुए ग्रन्थका अर्थ नहीं जानता, वह तो केवल उसका बोझ ढोता है। उसके तत्त्वका यथार्थ बोध होनेसे ही वह उसके अर्थको ग्रहण कर सकता है। जिसकी बुद्धि स्थूल और मन्द है, अतएव जो ग्रन्थके तत्त्वको ठीक-ठीक जाननेके लिये उत्सुक नहीं है, वह उस ग्रन्थके विषयका निर्णय कैसे कर सकता है। जो मनुष्य ग्रन्थके तत्त्वको जाने बिना ही लोभ अथवा दम्भवश उसपर विवाद करता है, वह पापी नरकमें पड़ता है। इसलिये महाराज! सांख्य और योगके ज्ञाता महात्मा पुरुषोंके मतमें मोक्षका जैसा स्वरूप देखा जाता है, उसे मैं यथार्थ रूपसे बतलाता हूँ; सुनो। योगी जिस तत्त्वका साक्षात्कार करते हैं, सांख्यके विद्वान् भी उसीका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो सांख्य और योगको एक समझता है, वही बुद्धिमान् है। जैसे बीजसे बीजकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रियसे इन्द्रिय और देहसे देहकी प्राप्ति होती है। परंतु परमात्मा तो इन्द्रिय, बीज, द्रव्य और देहसे रहित तथा निर्गुण है; अतः उसमें गुण कैसे हो सकते हैं। जैसे आकाश आदि गुण सत्त्वादि गुणोंसे उत्पन्न होते और उन्हींमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सत्त्वादि गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न होकर उसीमें लीन होते हैं। आत्मा तो जन्म-मृत्युसे रहित, अनन्त, सबका द्रष्टा एवं अद्वितीय है। वह सत्त्वादि गुणोंमें केवल आत्माभिमान करनेके कारण ही गुणस्वरूप कहलाता है। गुण तो गुणवान्में ही रहते हैं, निर्गुण आत्मामें गुण कैसे रह सकते हैं। अतः गुणोंके स्वरूपको जाननेवाले विद्वान् पुरुष ऐसा मानते हैं कि जब जीवात्मा इन प्राकृत गुणोंमें अपनेपनका अभिमान करता है, उस समय वह गुणवान्-सा ही होकर भिन्न-भिन्न गुणोंको देखता है। किंतु जब उस अभिमानको छोड़ देता है, उस समय देहादिमें आत्मबुद्धिका परित्याग करके अपने

विशुद्ध परमात्मस्वरूपका साक्षात्कार करता है। उस परमात्माको बुद्धि आदिसे परे सांख्य-योगस्वरूप बताया गया है। वह सत्त्वादि गुणोंसे रहित, अव्यक्त, ईश्वर (नियामक), निर्गुण, नित्य तथा प्रकृति और उसके गुणोंका अधिष्ठाता पच्चीसवाँ तत्त्व है। यह सांख्य और योगमें कुशल एवं परम तत्त्वकी खोज करनेवाले विद्वानोंका कथन है। इस प्रकार परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले क्षर-अक्षर (प्रकृति-पुरुष) का स्वरूप बताया गया। सदा एक रूपमें रहनेवाला परमात्मा अक्षर है और नाना रूपोंमें प्रतीत होनेवाला प्राकृत जगत् क्षर कहलाता है। सारांश यह कि एकत्व ही अक्षर है और नानात्वको ही क्षर कहते हैं। जब जीवात्मा पच्चीसवें तत्त्व परमात्मामें स्थित हो जाता है, उस समय उसकी सम्यक् स्थिति बतायी जाती है। एकत्व और नानात्व दोनों रूपोंमें उस परमात्माका ही दर्शन होता है। तत्त्ववेत्ता पुरुष एकत्व और नानात्व दोनोंके पार्थक्यको भलीभाँति जानता है। मनीषी पुरुष तत्त्वोंकी संख्या पच्चीस बतलाते हैं; परंतु उनमें पच्चीसवाँ तत्त्व परमात्मा है, जो तत्त्वोंसे विलक्षण है।

राजन्! योगका प्रधान कर्तव्य है ध्यान; ध्यान ही योगियोंका सबसे बड़ा बल है। योगविद्याके ज्ञाता विद्वान् पुरुष मनकी एकाग्रता और प्राणायाम—ये ध्यानके दो भेद बतलाते हैं। योगीको सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके मिताहारी और जितेन्द्रिय होना चाहिये। वह रात्रिके पहले और पिछले भागमें मनको परमात्मामें लगाकर अन्तःकरणमें उसका ध्यान करे। मिथिलेश्वर! सम्पूर्ण इन्द्रियोंको मनके द्वारा स्थिर करके मनको भी बुद्धिमें स्थापित कर दे और पत्थरकी भाँति अविचल हो जाय। तभी उसे योगयुक्त कहते हैं। जिस समय उसे सुनने, सूँघने, स्वाद लेने, देखने और स्पर्श करनेका भी भान नहीं रहता, जब मनमें किसी प्रकारका संकल्प नहीं उठता तथा वह काठकी भाँति स्थिर होकर किसी भी वस्तुका अभिमान या सुध-बुध नहीं रखता, उस समय मनीषी पुरुष उसे अपने स्वरूपको प्राप्त 'योगयुक्त' कहते हैं। ध्याननिष्ठ योगीको अपने हृदयमें धूमरहित अग्नि, किरण-मालाओंसे मण्डित सूर्य तथा विद्युत्के प्रकाशकी भाँति तेजस्वी आत्माका साक्षात्कार होता है। धैर्यवान्, मनीषी, वेदवेत्ता और महात्मा ब्राह्मण ही उस अजन्मा एवं अमृत-स्वरूप ब्रह्मका दर्शन कर पाते हैं। वह ब्रह्म अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् कहा गया है। सर्वत्र सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित होते हुए भी वह किसीको दिखायी नहीं देता। वेदोंके पारगामी तत्त्वज्ञ विद्वानोंने उसे तमसे दूर—अज्ञानान्धकारसे परे बताया है। वह निर्मल एवं लिङ्गरहित है। यही योगियोंका योग है। इसके सिवा योगका और क्या लक्षण हो सकता है। इस प्रकार साधना करनेवाला योगी सबके द्रष्टा अजर-अमर परमात्माका दर्शन करता है। यहाँतक मैंने तुम्हें योग-दर्शन-का यथार्थस्वरूप बतलाया।

अब सांख्यका वर्णन करता हूँ, यह विचार-प्रधान दर्शन है। राजन्! प्रकृतिवादी विद्वान् मूल प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं। उससे दूसरा तत्त्व प्रकट हुआ, जो 'महत्तत्त्व' कहलाता है। महत्तत्त्वसे अहंकार नामक तीसरे तत्त्वकी उत्पत्ति सुनी गयी है। सांख्य-दर्शनके ज्ञाता विद्वान् अहंकारसे सूक्ष्म भूतोंका—पञ्च तन्मात्राओंका प्रादुर्भाव बतलाते हैं। इन आठोंको प्रकृति कहते हैं; इनसे सोलह तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है, जो 'विकृति' कहलाते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन तथा पाँच स्थूल भूत—ये ही सोलह विकार हैं। ये प्रकृति और विकृति मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं। सांख्यदर्शनमें तत्त्वोंकी इतनी ही संख्या मानी गयी है। सांख्यमार्गपर स्थित और सांख्यविधिके ज्ञाता मनीषी पुरुष ऐसा ही कहते हैं। जो तत्त्व जिससे उत्पन्न होता है, उसका उसीमें लय भी होता है। प्रकृति परमात्माके संनिधानसे अनुलोम क्रमके अनुसार तत्त्वोंकी रचना करती है अर्थात् प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार तथा अहंकारसे सूक्ष्म भूत आदिके क्रमसे सृष्टि होती है; किंतु उसका संहार विलोम क्रमसे होता है। अर्थात् पृथ्वीका जलमें, जलका तेजमें और तेजका वायुमें लय होता है; इसी प्रकार सभी तत्त्व अपने-अपने कारणमें लीन होते हैं। जैसे समुद्रसे उठी हुई लहरें फिर उसीमें शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तत्त्व अनुलोमक्रमसे उत्पन्न होकर विलोमक्रमसे लीन होते हैं। नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार प्रकृतिसे ही जगत्की उत्पत्ति और उसीमें उसका लय होता है। प्रलयकालमें तो वह एक रूपमें रहती है और सृष्टिके समय नाना रूप धारण करती है। ज्ञान-निपुण पुरुषोंको इसी प्रकार प्रकृतिके एकत्व और नानात्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

प्रकृतिका अधिष्ठाता जो अव्यक्त आत्मा है, उसके विषयमें भी यही बात है। वह भी प्रकृतिसे सम्बन्ध रखनेपर एकत्व और नानात्वको प्राप्त होता है। प्रलयकालमें तो वह भी एक ही रूपमें रहता है, किंतु सृष्टिके समय प्रकृतिको प्रेरित

करनेके कारण उसकी ही अनेकतासे वह स्वयं भी अनेक-सा प्रतीत होता है। परमात्मा ही प्रकृतिको प्रसवके लिये उन्मुख करके उसे अनेक रूपोंमें परिणत करता है। प्रकृति और उसके विकारोंको क्षेत्र कहते हैं। चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न जो पचीसवाँ तत्त्व महान् आत्मा है, वही उस क्षेत्रमें अधिष्ठाता-रूपसे निवास करता है। वह क्षेत्रको जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। क्षेत्रज्ञ प्रकृतिजनित पुर (शरीर) में शयन करता है, इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। वास्तवमें क्षेत्र अन्य वस्तु है और क्षेत्रज्ञ अन्य। क्षेत्र अव्यक्त (प्रकृति) है और क्षेत्रज्ञ उसका ज्ञाता पचीसवाँ तत्त्व परमात्मा है। जब पुरुष अपनेको प्रकृतिसे भिन्न जान लेता है, उस समय वह अद्वितीय परमात्मरूपसे स्थित होता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें सम्यग् दर्शन (सांख्य) का यथार्थ वर्णन किया। जो इसे इस प्रकार जानते हैं, वे समस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

महाराज! इस प्रकार मैंने तुमसे शुद्ध, सनातन आदि ब्रह्मके यथार्थ तत्त्वका वर्णन किया है। तुम मात्सर्यका त्याग करके अपनी बुद्धिसे इस तत्त्वको ग्रहण करो। असत्य-वादी, शठ, नपुंसक, कुटिल बुद्धिवाले, अपनेको पण्डित माननेवाले तथा दूसरोंको कष्ट पहुँचानेवाले मनुष्यको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। शिष्यको बोध करानेके लिये ही इस तत्त्वका उपदेश करना उचित है। जो श्रद्धालु, गुणवान्, परायी निन्दासे दूर रहनेवाले, विशुद्ध योगी, विद्वान्, वेदोक्त कर्म करनेवाले, क्षमाशील तथा सबके हितैषी हों, वे ही इस ज्ञानके अधिकारी हैं। जितेन्द्रिय तथा संयमी पुरुषको इसका उपदेश अवश्य देना चाहिये। महाराज कराल! तुमने मुझसे आज परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त किया है। अब तुम्हारे मनमें तनिक भी भय नहीं होना चाहिये। नरेन्द्र! तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया था, उसके अनुसार ही मैंने तुम्हें यह उपदेश किया है; कोई दूसरी बात नहीं कही है। यह महान् ज्ञान मोक्षवेत्ता पुरुषोंका परम आश्रय है। यह मुझे साक्षात् ब्रह्माजीसे प्राप्त हुआ है।

व्यासजी कहते हैं—मुनिवरो! पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठने जिस प्रकार पचीसवें तत्त्वरूप परब्रह्मके स्वरूपका वर्णन किया था, उसी प्रकार मैंने तुम्हें बताया है। यही वह ब्रह्म है, जिसे जान लेनेपर मनुष्य फिर इस संसारमें नहीं आता। यह ज्ञान हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीसे महर्षि वसिष्ठको प्राप्त हुआ, वसिष्ठजीसे देवर्षि नारदको मिला और देवर्षि नारदसे मुझको प्राप्त हुआ। वही यह सनातन ज्ञान मैंने तुम सब लोगोंको बताया है; यह परम पद है, इसका श्रवण करके अब तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जिसने क्षर और अक्षरके भेदको जान लिया, उसे किसी प्रकारका भय नहीं है। जो उन्हें ठीक-ठीक नहीं जानता, उसीको भय है। मूर्ख मनुष्य इस तत्त्वको न जाननेके कारण बारंबार उपद्रवग्रस्त हो मरता और मरनेके बाद पुनः हजारों बार जन्म-मृत्युके कष्ट भोगता है। वह देव, मनुष्य और पशु-पक्षी आदिकी योनियोंमें भटकता रहता है। अज्ञानरूपी समुद्र अव्यक्त, अगाध और भयंकर है। इसमें प्रतिदिन कितने ही प्राणी डूबते चले जा रहे हैं। तुमलोग यह उपदेश सुनकर इस अगाध भवसागरसे पार हो गये हो। अब तुममें रजोगुण और तमोगुणका भाव नहीं रह गया। तुम्हारी शुद्ध सत्त्वमें स्थिति हो गयी है। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने सारसे भी सारभूत परमतत्त्वका वर्णन किया। यह परम मोक्षरूप है। इसे जान लेनेपर मनुष्य फिर इस संसारमें लौटकर नहीं आता। जो नास्तिक हो, जिसके हृदयमें गुरु और भगवान्‌के प्रति भक्ति न हो, जिसकी बुद्धि खोटी और हृदय श्रद्धासे विमुख हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं करना चाहिये।

श्रीब्रह्मपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार

लोमहर्षणजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार पूर्वकालमें महर्षि व्यासने सारभूत निर्दोष वचनोंद्वारा मधुरवाणीमें मुनियोंको यह पुराण सुनाया था। इसमें अनेक शास्त्रोंके शुद्ध एवं निर्मल सिद्धान्तोंका समावेश है। यह सहज शुद्ध है और अच्छे शब्दोंके प्रयोगसे सुशोभित होता है। इसमें यथास्थान पूर्वपक्ष और सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणको न्यायानुकूल रीतिसे सुनाकर परम बुद्धिमान् वेदव्यासजी मौन हो गये। वे श्रेष्ठ मुनि भी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले तथा वेदोंके तुल्य माननीय इस आदि ब्रह्मपुराणको सुनकर बहुत प्रसन्न और विस्मित हुए। उन्होंने मुनिवर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासकी बारंबार प्रशंसा की।

मुनि बोले—मुनिश्रेष्ठ! आपने हमें वेदोंके तुल्य

प्रामाणिक तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला सर्वपापहारी श्रेष्ठ पुराण सुनाया है। यह कितने हर्षकी बात है। हमने भी इस विचित्र पदोंवाले पुराणका अक्षर-अक्षर सुना है। प्रभो! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो। महाभाग! आप देवताओंमें बृहस्पतिकी भाँति सर्वज्ञ हैं, महाप्राज्ञ और ब्रह्मनिष्ठ हैं। महामते! हम आपको नमस्कार करते हैं। आपने महाभारतमें सम्पूर्ण वेदोंके अर्थ प्रकट किये हैं। महामुने! आपके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है। जिन्होंने छहों अङ्गोंसहित चारों वेदों तथा सम्पूर्ण व्याकरणोंको पढ़कर महाभारत शास्त्रकी रचना की, उन ज्ञानात्मा भगवान् वेदव्यासको नमस्कार है। प्रफुल्ल कमलदलके समान बड़े-बड़े नेत्रों तथा विशाल बुद्धिवाले व्यासजी! आपको नमस्कार है। आपने (जगत्‌को प्रकाश देनेके लिये) महाभारतरूपी तेलसे भरे हुए ज्ञानरूपी दीपकको जलाया है।*

यों कहकर उन महर्षियोंने व्यासजीका पूजन किया। फिर व्यासजीने भी उन सबका सम्मान किया। तत्पश्चात् वे कृतार्थ होकर जैसे आये थे, उसी प्रकार अपने आश्रमको लौट गये।

मुनिवरो! आपने हमसे जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसके अनुसार हमने भी सब पापोंका नाश करनेवाले परम पुण्यमय इस सनातन पुराणका वर्णन किया! श्रीव्यासजीकी कृपासे ही मैंने यह सब कुछ आपलोगोंको सुनाया है। गृहस्थ, संन्यासी और ब्रह्मचारी—सबको ही इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। यह मनुष्योंको धन और सुख देनेवाला, परम पवित्र एवं पापोंको दूर करनेवाला है। परम कल्याणकी अभिलाषा रखनेवाले ब्रह्मपरायण ब्राह्मण आदिको संयम और प्रयत्नपूर्वक यह पुराण सुनना चाहिये। इसको सुननेसे ब्राह्मण विद्या, क्षत्रिय संग्राममें विजय, वैश्य अक्षय धन और शूद्र सुख पाता है। पुरुष पवित्र होकर जिस-जिस काम्य वस्तुका चिन्तन करते हुए इस पुराणका श्रवण करता है, उस-उसको निश्चय ही प्राप्त कर लेता है। यह ब्रह्मपुराण भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला है। इससे सब पापोंका नाश हो जाता है। यह सब शास्त्रोंसे विशिष्ट और समस्त पुरुषार्थोंका साधक है।

यह जो मैंने आपलोगोंको वेदतुल्य पुराणका श्रवण कराया है, इसको सुननेसे सब प्रकारके दोषोंसे प्राप्त होनेवाली पापराशिका नाश हो जाता है। प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा अर्बुदारण्य (आबू) में उपवास करनेसे जो फल मिलता है, वह इसके श्रवण मात्रसे मिल जाता है। एक वर्षतक अग्निमें हवन करनेसे पुरुषको जो महापुण्यमय फल प्राप्त होता है, वह इसे एक बार सुननेसे ही मिल जाता है। ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीको यमुनामें स्नान करके मथुरा पुरीमें श्रीहरिके दर्शनसे मनुष्य जिस फलका भागी होता है, वह एकाग्रचित्त होकर इस ब्रह्मपुराणकी कथा कहनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो इसका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी उसी फलको प्राप्त करता है। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक इस वेदसम्मित पुराणका पाठ या श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है और जो ब्राह्मण मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर पर्वोंके दिन तथा एकादशी और द्वादशी तिथिको ब्रह्मपुराण बाँचकर दूसरोंको सुनाता है, वह वैकुण्ठ धाममें जाता है।* यह पुराण मनुष्योंको यश, आयु, सुख, कीर्ति, बल, पुष्टि तथा धन देनेवाला और अशुभ स्वप्नोंका नाश करनेवाला है। जो प्रतिदिन तीनों संध्याओंके समय एकाग्रचित्त हो श्रद्धापूर्वक इस श्रेष्ठ उपाख्यानका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। इसको पढ़ने और सुननेसे रोगातुर मनुष्य रोगसे, कैदमें पड़ा हुआ पुरुष वहाँके बन्धनसे, भयसे डरा हुआ मानव भयसे तथा आपत्तिग्रस्त पुरुष आपत्तिसे छूट जाता है। इतना ही नहीं, इसके पाठ और श्रवणसे पूर्वजन्मोंके स्मरणकी शक्ति, विद्या, पुत्र, धारणावती बुद्धि, पशु, धैर्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जिन-जिन कामनाओंको

---

* नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥
(२४५। ११)

* इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसम्मितम्।
यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः॥
श्रावयेद्ब्राह्मणो यस्तु सदा पर्वसु संयतः।
एकादश्यां द्वादश्यां च विष्णुलोकं स गच्छति॥
(२४५। २७-२८)

मनमें लेकर मनुष्य संयतचित्तसे इस पुराणका पाठ करता है, उन सबकी उसे प्राप्ति हो जाती है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।*

जो मनुष्य एकमात्र भगवान्‌की भक्तिमें चित्त लगाकर पवित्र हो अभीष्ट वर देनेवाले लोकगुरु भगवान् विष्णुको प्रणाम करके स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले इस पुराणका निरन्तर श्रवण करता है, उसके सारे पाप छूट जाते हैं । वह इस लोकमें उत्तम सुख भोगकर स्वर्गमें भी दिव्य सुखका अनुभव करता है । तत्पश्चात् प्राकृत गुणोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके निर्मल पदको प्राप्त होता है । इसलिये एकमात्र मुक्तिमार्गकी इच्छा रखनेवाले स्वधर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले कल्याणकामी उत्तम क्षत्रियोंको, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न वैश्योंको तथा धर्मनिष्ठ शूद्रोंको भी प्रतिदिन इस पुराणका श्रवण करना चाहिये । यह बहुत ही उत्तम, अनेक फलोंसे युक्त तथा धर्म, अर्थ एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है । आप सब लोग श्रेष्ठ पुरुष हैं, अतः आपकी बुद्धि निरन्तर धर्ममें लगी रहे । एकमात्र धर्म ही परलोकमें गये हुए प्राणीके लिये बन्धुकी भाँति सहायक है । धन और स्त्री आदि भोगोंका चतुर-से-चतुर मनुष्य भी क्यों न सेवन करें, उनपर न तो कभी भरोसा किया जा सकता है और न वे सदा स्थिर ही रहते हैं । मनुष्य धर्मसे ही राज्य प्राप्त करता है, धर्मसे ही वह स्वर्गमें जाता है तथा धर्मसे ही मानव आयु, कीर्ति, तपस्या एवं धर्मका उपार्जन करता है और धर्मसे ही उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । इस लोकमें तथा परलोकमें भी धर्म ही मनुष्यके लिये माता-पिता और सखा है । इस लोकमें भी धर्म ही रक्षक है और वही मोक्षकी भी प्राप्ति करानेवाला है । धर्मके सिवा कुछ भी काम नहीं आता । यह श्रेष्ठ पुराण परम गोपनीय तथा वेदके तुल्य प्रामाणिक है । खोटी बुद्धिवाले और विशेषतः नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये । यह श्रेष्ठ पुराण पापोंका नाश तथा धर्मकी वृद्धि करनेवाला है । साथ ही इसे अत्यन्त गोपनीय माना गया है । मुनियो ! मैंने आपलोगोंके सामने इसका कथन किया और आपने भी इसे भलीभाँति सुन लिया । अब आज्ञा दीजिये, मैं जाता हूँ । †

श्रीब्रह्मपुराण सम्पूर्ण

ॐ तत्सद्‌ब्रह्मार्पणमस्तु

* यान् यान् कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानसः । तांस्तान् सर्वानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ॥ (२४५ । ३३)

† धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति । आयुश्च कीर्तिं च तपश्च धर्मं धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः ॥
धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य धर्मः सखा चात्र परे च लोके । त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च धर्मादृते नास्ति तु किंचिदेव ॥
इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसम्मितम् । न देयं दुष्टमतये नास्तिकाय विशेषतः ॥
इदं मयोक्तं प्रवरं पुराणं पापापहं धर्मविवर्धनं च । श्रुतं भवद्भिः परमं रहस्यमाज्ञापयध्वं मुनयो व्रजामि ॥
(२४५ । ३७—४०)

दुर्गासप्तशतीकी उत्तमता और गम्भीरता

(लेखक—श्रीसम्पूर्णानन्दजी, शिक्षासचिव युक्तप्रान्त)

श्रीदुर्गासप्तशती हम हिंदुओंकी एक पूज्य पुस्तक है। दुर्भाग्यवश वह हममेंसे बहुतोंके लिये नित्यपाठकी पोथी है। जो लोग उसे स्वयं नित्य नहीं पढ़ते, उनके घर भी दोनों नवरात्रोंमें पुरोहितजी उसका पाठ कर जाया करते हैं। लोग उसके श्लोकोंको मन्त्रकल्प मानते हैं और उनसे हवनादि करते हैं। मैं 'दुर्भाग्यवश' इसलिये कहता हूँ कि मेरी ऐसी धारणा है कि आजकल जो पुस्तक हमारे नित्यपाठकी पोथी हो जाती है उसकी हम प्रायः दुर्गति कर डालते हैं। उसके शब्दोंको रट लेनेमें ही हमारी इतिकर्तव्यता रह जाती है। उसके अर्थ और भावसे हमें प्रायः कोई सरोकार नहीं रह जाता। मेरी निजकी धारणा है—और यह धारणा कई बारकी आवृत्तिपर अवलम्बित है कि सप्तशतीके श्लोक मन्त्रशक्ति रखते हों या न रखते हों पर उनमें मनोविज्ञानका बड़ा अच्छा समावेश है और वह योग और वेदान्तकी सुन्दर शिक्षाओंसे परिप्लुत है। मैं इस लेखमें सब बातोंके दिखलानेका दावा तो नहीं कर सकता, पर विद्वानोंका ध्यान इस ग्रन्थ-रत्नकी ओर अवश्य आकृष्ट करना चाहता हूँ। दुःखकी बात यह है कि इतने आदमी इस पुस्तकको पढ़ते और सुनते हैं पर जिन लोगोंने इसकी व्याख्या करनेका ठेका लिया है वे इसके तत्त्वोंको या तो समझते नहीं या लोगोंके सामने रखते नहीं!

'सङ्घे शक्तिः'—इस सिद्धान्तको सभी मानते हैं। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो काम एक व्यक्ति नहीं कर सकता उसे ही समुदाय कर डालता है। पर दुर्गासप्तशतीमें इसका जो सुन्दर उदाहरण और सुन्दर उपदेश दिया हुआ है उसकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं आकर्षित किया जाता। द्वितीय अध्यायमें लिखते हैं—देवासुर-युद्धमें देवसैन्यको पराजित करके महिषासुर इन्द्र-पदपर प्रतिष्ठित हुआ। देवगणमेंसे किसीमें यह सामर्थ्य नहीं थी कि उसका सामना कर सकता। उस समय आपत्तिसे सताये हुए और निःशक्त क्रोधसे जर्जरीभूत देवोंकी अन्तरात्मा हिल उठी। ब्रह्मा आदि सभी देवोंके शरीरसे तेज निकला। उसी तेजने एकत्र होकर महालक्ष्मीका स्वरूप धारण किया और महिषका मर्दन किया। जो काम पृथक्-पृथक् देवगण नहीं कर सकते थे, जो काम सेनारूपसे मिलनेपर भी अपने-अपने व्यक्तित्व बने रहनेके कारण वे लोग नहीं कर सके, वही काम विपत्तिकी पराकाष्ठाकी अवस्थामें अपने व्यक्तित्वको एकमात्र दबाकर अपनी शक्तियोंको एकीभूत करके वही लोग करा सके। विजयदायिनी शक्ति उनके भीतर थी, कहीं बाहरसे नहीं आयी। यह हमलोगोंके लिये बड़ी ही शिक्षादायिनी कथा है। संसारमें देखा जाता है कि जो लोग व्यवहार-कुशल होते हैं उनमें वाक्-पटुता कम होती है, वाणिज्य-व्यवसायमें लगे हुए लोग प्रायः मितभाषी होते हैं और विद्याव्यसनी लोग तो स्वभावतः प्रगल्भ होते हैं, सप्तशतीने इस मनोवैज्ञानिक अनुभवका सुन्दर चित्र खींचा है। प्रथम चरित्रमें ब्रह्माजीके स्तोत्रके उत्तरमें महाकालीने एक शब्द भी न कहा। उनका काम करके अन्तर्धान हो गयीं। मध्यम चरित्रमें देवगणकी स्तुतिके उत्तरमें महालक्ष्मी 'तथा' मात्र कहकर अन्तर्हित हो गयीं। परन्तु उत्तम चरित्रमें देवगणके उत्तरमें महासरस्वती प्रायः डेढ़ अध्यायका व्याख्यान दे गयीं। संसारमें प्रायः सदैव, और भारतमें आजकल विशेषरूपसे हिंसा और अहिंसाका प्रश्न समझदार मनुष्योंके हृदयको दोलायित करता रहा है। किसीके लिये हिंसाका अर्थ है शत्रुका मूलोच्छेद, किसीके लिये अहिंसाका अर्थ है शत्रुके हाथसे सब कुछ सह लेना। एक ओर स्मृतियोंका उपदेश है 'हन्यादेव आततायिनः',

दूसरी ओर महात्माजीका अहिंसाका आदेश है। ऐसी अवस्थामें साधारण मनुष्य क्या करे ? व्यक्तिविशेषके लिये तो पूर्ण अहिंसा, योगदर्शनके शब्दोंमें 'देशकालसमयाद्यनवच्छिन्नसार्वभौममहाव्रत' है। ऐसा विशेष व्यक्ति सर्वत्र, हर दशामें, हर अवस्थामें, हर समय, हर व्यक्तिके साथ पूर्ण अहिंसाका पालन करेगा। पर मध्यम मार्गपर चलनेवाले साधारण मनुष्यके लिये यह उपदेश नहीं है। उनको तो यही उपदेश श्रेयस्कर है—'Hate the sin, but love the sinner.' (पापसे घृणा, पर पापीसे प्रेम करो।) सप्तशतीने इसका बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है। महिषासुरके वधके बाद चौथे अध्यायमें देवगण कहते हैं—हे भगवती ! आप तो इन शत्रुओंको यों ही भस्म कर सकती थीं, इनपर शस्त्र चलानेकी क्या आवश्यकता थी ?

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।

इसका उत्तर वे स्वयं यों देते हैं—'यह दुष्ट, पापकर्मा यदि यों मरते तो नरक जाते, आप चाहती थीं कि इनके उठ जानेसे संसारका कल्याण हो पर इनका भी कल्याण हो। इसीलिये शस्त्र चलाया कि लड़कर वीर-गति प्राप्त करके ये सब स्वर्ग जायँ।'

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि॥

सप्तशतीके शब्दोंमें जिसे 'चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता' कहा है, मुझे तो साधारण मनुष्यके लिये सबसे सुन्दर व्यावहारिक नीति प्रतीत होती है चाहे उसे हिंसा कहिये चाहे अहिंसा।

वेदान्त—अद्वैतवादके इसमें अनेक निदर्शन हैं। दसवें अध्यायमें शुम्भ कहता है कि तुम तो इन्द्राणी आदिके बलके सहारे लड़ रही हो। इसपर भगवतीके शरीरमें ये सब ब्रह्माणी, इन्द्राणी, वैष्णवी आदि देवियाँ समा जाती हैं। अकेले एक महासरस्वतीमूर्ति रह जाती है। उस अवसरपर देवी कहती हैं—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।

'इस जगत्में मैं अकेली हूँ। मेरे सिवा दूसरा कौन है !' जिस देवीका इसमें वर्णन है वह शाङ्करवेदान्तकी मायासे अभिन्न है, इस बातको प्रथम अध्यायमें सुमेधाने स्पष्ट कर दिया है।

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

'भगवान्‌की यह माया जगत्‌को मोहित करती है, यह देवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती है।' जिस बातको वेदान्तदर्शनके द्वितीय सूत्र 'जन्माद्यस्य यतः' के द्वारा प्रतिपादित किया गया है वही बात ब्रह्माजी प्रथम अध्यायमें कहते हैं—

... ... त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥

'हे देवि ! तू ही इस जगत्‌की सृष्टि करती है, तू ही इसका पालन करती है और अन्तमें तू ही इसको अपनेमें लीन कर लेती है।' ऋग्वेदका नासदीय सूक्त दर्शनकी पराकाष्ठा और प्रथम विवेचन है। उसकी बहुत ही सुन्दर व्याख्या सप्तशतीके प्रथम अध्यायके इन शब्दोंसे होती है—

यच्च किञ्चित् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वम् ... ...

जिनके द्वारा यह बतलाया गया है कि सत् और असत्, दोनों प्रकारकी वस्तुओंके भीतर जो शक्ति अर्थात् सत्ता 'तत्तद्वस्तुता' है, वह भगवती ही है। व्यावहारिक वेदान्तका चौथे अध्यायमें एक बहुत ही अपूर्व उपदेश है। संसारमें प्रायः देख पड़ता है—'Truth for ever on the scaffold, wrong for

ever on the throne'—अच्छे आदमी कष्ट पाते हैं और बुरे आदमी सब प्रकारका सुख भोगते हैं। इस बातको देखकर कितने ही मनुष्योंको धर्मकी ओरसे अश्रद्धा हो जाती है और कितने ही सम्प्रदायोंने अश्रद्धासे रक्षा करनेके लिये, एक ईश्वरके साथ एक शैतानकी भी कल्पना की है। वैदिकधर्म शैतानको नहीं मानता, पर उसे भी संसारके इस अन्धेरका उत्तर तो देना ही पड़ता है। वेदान्तके अनुसार सप्तशती कितना सुन्दर उत्तर देती है। चतुर्थ अध्यायमें देवगण कहते हैं—

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

'जो श्री अर्थात् महालक्ष्मी (यह स्मरण रखना चाहिये कि यह स्तोत्र महालक्ष्मीका है) स्वयं पुण्यात्माओंके घरमें अलक्ष्मी अर्थात् दारिद्र्य बनकर निवास करती है, पापी राजसिक (कृतधियः कर्मणि धीर्बुद्धिर्येषामिति राजसाः) लोगोंके हृदयमें बुद्धिरूपसे निवास करती है, सत्पुरुषोंके हृदयमें श्रद्धा और कुलीनोंके हृदयमें लज्जा अर्थात् पुण्यापुण्य-विवेक, अंग्रेजी शब्दोंमें Concience. रूपसे निवास करती है, उस तुझको मैं प्रणाम करता हूँ। हे देवि ! विश्वका पालन कर।' कितना सुन्दर भाव है! सत्पुरुषके घरकी लक्ष्मी और पुण्यात्माके मस्तिष्ककी बुद्धिको भगवतीका रूप मानना तो सरल है, पर सुकृतिके घरका दारिद्र्य और दुरात्माके हृदयकी बुद्धिको भी इस रूपमें देखना वेदान्तका सच्चा आदर्श और उपदेश है।* कई वर्ष हुए, इस श्लोकके अर्थके सम्बन्धमें मुझसे कुछ सज्जनोंसे समाचारपत्रोंमें शास्त्रार्थ हो चुका है। प्राचीन टीकाकारोंने भी अन्य प्रकारसे अर्थ किया है; पर मुझे यही भाव रुचता है।

मैंने आरम्भमें कहा है कि इस ग्रन्थमें योग-सम्बन्धी बातें भी भरी पड़ी हैं। प्रथम अध्यायमें इनकी चर्चा अधिक है। यह स्वाभाविक भी है। खण्डप्रलयके उपरान्त सन्धिकाल है। जलमयी सृष्टि है, अभी क्षिति-तत्त्व प्रकट नहीं हुआ है। जगत्पाता विष्णु योगनिद्राके वशीभूत होकर निश्चेष्ट पड़े हुए हैं। ब्रह्मा अभी-अभी समाधिसे नीचे उतरे हैं। व्युत्थान अवश्य हुआ है, उन्हें सृष्टि करनी है, पर अभी क्या करना है, इस ओर ठीक-ठीक उनका ध्यान नहीं गया है। ऐसे ही अवसरपर मधु और कैटभसे सामना पड़ जाता है। अभी समाधिसे उतरे ब्रह्मामें अहिंसाकी प्रवृत्ति प्रबल है। अपनी रक्षाके लिये वे हाथ-पाँव भी नहीं चलाते। उधर जगत्के हितके लिये यह आवश्यक है कि विष्णु योगनिद्राके जालसे छूटें। क्योंकि सृष्टि होते ही रक्षककी आवश्यकता पड़ जायगी। उस समय आद्याशक्ति अपने तामसी अर्थात् महाकालीरूपमें है। वह आवश्यकता देखकर और ब्रह्माकी चिन्ताका अनुभव करके विष्णुके शरीरको छोड़ देती हैं और फिर रजोगुण-का प्राधान्य होता है। यह तो हुआ। उस समय ब्रह्माजीने भगवतीकी जो स्तुति की है, वह सप्तशतीके सभी स्तोत्रोंसे सुन्दर, गम्भीर और अध्यात्मसे परिपूर्ण है। ऐसा होना भी चाहिये था, क्योंकि ब्रह्माजी अभी समाधिसे उतरे थे। उदाहरणके लिये केवल तीन-चार शब्दोंकी ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ।

त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता............... ।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥

मैं योगी होनेका दावा नहीं करता, जो कुछ सद्-गुरुओंके सत्सङ्गमें सुना है या सद्ग्रन्थोंमें पढ़ा है, उसीके आधारपर इन शब्दोंकी थोड़ी-सी व्याख्या करता हूँ।

---

* इसी भावको एक मुसल्मान सूफीने यों व्यक्त किया था—

तू अज सौबते दौराँ मनाल शादाँ बाश।
के तीरे दोस्त बपहलुए दोस्त मी आयद ॥

तू संसारकी विपत्तियोंसे रो मत, प्रसन्न रह, क्योंकि जो तीर तेरी छातीमें लगता है वह मित्रका ही चलाया हुआ है।

इस जगत्‌में पञ्चीकृत महाभूत काम कर रहे हैं। उनके एक-एक अणुमें कम्पन है। उस कम्पनसे यह जगत् शब्दायमान हो रहा है। जहाँ कम्पन है, वहाँ शब्द है। सूक्ष्मभूत अपञ्चीकृत हैं पर उनके परमाणुओंमें भी कम्पन है और उस कम्पनसे एक सूक्ष्म शब्द-राशि उत्पन्न होती है। जैसा कि कबीरने कहा है—'तत्त्व झंकार ब्रह्मंड माहीं।' उस शब्द-राशिका नाम अनाहत नाद है, पीछेके महात्माओंके शब्दोंमें 'अनहद नाद' है। जिस समयतक अभ्यासी इस अनाहत नादको नहीं सुन पाता, तबतक उसका अभ्यास कच्चा है। पुनः कबीरके शब्दोंमें—'जोग जगा अनहद धुनि सुनिको।' जब अनाहत सुन पड़ने लगा तब इसका अर्थ यह है कि योगीका धीरे-धीरे अन्तर्जगत्‌में प्रवेश होने लगा। वह अपने भूले हुए स्वरूपको कुछ-कुछ पहचानने लगा। शक्ति, वैभव और ज्ञानके भण्डारकी झलक पाने लगा अर्थात् महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वतीके दर्शन पाने लगा। जो अभ्यासी वहीं उलझकर रह गया, वह तो वहीं रह गया—और दुःखका विषय है कि सचमुच बहुत-से अभ्यासी इसके आगे नहीं बढ़ते; पर जो तल्लीनताके साथ बढ़ता जाता है, वह क्रमशः ऊपरके लोकोंमें प्रवेश करता जाता है। अन्तमें वह अवस्था आती है, जहाँ वह आकाशकी सीमाका उल्लङ्घन करनेका अधिकारी हो जाता है। वहीं 'शब्द'का अन्त है। पर अब लीन होते समय शब्द अनाहतके रूपमें नहीं रहता। अब वह जिस रूप-में रहता है उसका सम्पुटिक प्रतीक—अर्थात् हमारी बोल-चालकी वैखरी वाणीमें सबसे अधिक-से-अधिक मिलता-जुलता रूप 'ओ३म्' है। पहला रूप वह, जो अकारसे व्यक्त होता है, उससे भी सूक्ष्म उकार और उससे भी सूक्ष्म मकार है। इन्हीं तीनोंको ब्रह्माजीने कहा है 'त्रिधा मात्रात्मिका नित्या।' इसके परे योगीको एक ऐसे सूक्ष्म ध्वन्याभासका अनुभव है, जो किसी प्रकार भी मनुष्योंकी भाषामें व्यक्त नहीं हो सकता। इसीको ँ से कभी-कभी अङ्कित करते हैं और यही वह पदार्थ है, जिसे अर्धमात्रा कहते हैं। एतत्पश्चात् नाद अपने जनक आकाशमें लीन हो जाता है। नादके पीछे विन्दु है, वहीं अशब्द, अनामि पद है।* यह गति योगीको षट्चक्र पार करके सहस्रदल कमलमें प्राप्त होती है। इसीको दूसरे शब्दोंमें तन्त्र और योगशास्त्र-ग्रन्थोंमें यों कहा गया है कि 'सार्द्धत्रयवलयाकृति' अर्थात् साढ़े तीन लपेटा मारे हुए कुण्डलिनी शक्ति सोयी रहती है। जब योगी उसे जगाता है तो वह चक्र-चक्रमें चढ़ती हुई सहस्रारमें जाकर पुरुषके साथ मिलकर उसमें लीन हो जाती है। इसीका नाम शिव-शक्तियोग है। वहाँतक पहुँचा योगी फिर नीचे नहीं गिर सकता। इसीलिये ब्रह्माजीने कहा है—'परापराणां परमा।' यही श्वेताश्वतर उपनिषद्‌का 'पतिं पतीनां परमं परस्ताद्' है। यह केवल एक उदाहरण है। इस ग्रन्थमें, विशेषकर इस अध्यायमें योगशास्त्रके रहस्यसे पूर्ण अनेक स्थल हैं।

मैंने अभीतक केवल मूल ग्रन्थके अंशोंका उल्लेख किया है। यदि कोई मनुष्य वैदिक देवीसूक्त, रात्रिसूक्त और रहस्यत्रय विशेषतः प्राधानिक रहस्यकी सूक्ष्मताकी ओर ध्यान देगा तो उसको इस ग्रन्थरत्नकी महत्ताका कुछ पता चलेगा। इनके निदर्शनके लिये कई पृथक् और बृहत् निबन्ध चाहिये। जैसा कि स्वयं देवीने कहा है—इन बातोंको 'चक्षुष्मन्तः पश्यन्ति नेतरे जनाः।' मेरा उद्देश्य केवल इतना ही रहा है कि इस पुस्तककी उत्तमता और इसके विषयकी गम्भीरता-की ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट करूँ। यह केवल अर्धशिक्षित पुरोहितोंद्वारा पाठ करने-करानेकी सामग्री न रह जाय। यदि इस उद्देश्यमें मुझे किञ्चिन्मात्र सफलता हुई तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा। (शक्ति-अङ्क)

* यही सप्तशतीके शब्दोंमें 'अनुच्चार्याविशेषतः' है।

मार्कण्डेय एवं ब्रह्मपुराणपर एक विहङ्गम दृष्टि

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

पुराणोंका महत्त्व एवं मार्कण्डेय-पुराणकी परम्परा

मार्कण्डेयपुराणमें महामुनि मार्कण्डेयका ब्राह्मणकुमार क्रौष्टुकिके साथ संवाद है, इसीलिये इस पुराणको मार्कण्डेयपुराण कहते हैं। पुराणोंसे ही इस बातका पता चलता है कि उनमें वेदोंका ही विस्तार होनेसे तो उनका महत्त्व जो है सो है ही; उनका स्वतन्त्र प्रामाण्य भी है। क्योंकि वेदोंके समान पुराण भी अनादि हैं; उनका कोई रचयिता नहीं है, ब्रह्माजीके प्रकट होनेके साथ ही वेदोंकी भाँति वे भी उनके मुखोंसे प्रकट होते हैं। इस प्रकार जगत्पिता ब्रह्माजी भी उनके रचयिता नहीं, प्रकट करनेवाले, आविष्कारक ही हैं। श्रीकृष्णद्वैपायनादि महर्षि तो समय-समयपर वेदोंके विभागके साथ-साथ पुराणोंका संकलन, संग्रह अथवा सम्पादनमात्र करते हैं। कहते हैं कि इस पुराणको पहले-पहल ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए भृगु आदि महर्षियोंने अपनाया। भृगुसे उनके पुत्र च्यवनने और च्यवनसे उसे ब्रह्मर्षियोंने प्राप्त किया। फिर उन्होंने दक्षको उपदेश दिया और दक्षने इसे मार्कण्डेयजीको सुनाया। उसी पुराणको मार्कण्डेयजीने क्रौष्टुकिसे कहा और इस प्रकार इसका नाम मार्कण्डेयजीके साथ सम्बद्ध हो गया।

चार ज्ञानी पक्षियोंकी कथा

इसके पूर्व इस पुराणमें व्यासजीके शिष्य प्रसिद्ध मीमांसाकार महातेजस्वी जैमिनिका चार पक्षियोंके साथ महाभारतके कुछ प्रधान विषयोंपर प्रश्नोत्तर है। ये चारों पक्षी तत्त्वज्ञानी ही नहीं, शास्त्रोंके भी मर्मज्ञ थे—ब्रह्मनिष्ठ होनेके साथ-साथ शब्द-ब्रह्ममें भी निष्णात थे। ये पूर्वजन्मके ऋषि थे और शापके कारण पक्षि-योनिको प्राप्त हुए थे। इनका जन्म भी विचित्र परिस्थितिमें हुआ था। महाभारत-युद्धका समय था। इन पक्षियोंकी माता दैववश युद्धक्षेत्रमें जा पहुँची। उस समय अर्जुन और भगदत्तमें युद्ध छिड़ा हुआ था। संयोगवश अर्जुनका एक बाण उस पक्षिणीको लगा, जिससे उसका पेट फट गया और उसमेंसे चार अंडे पृथ्वीपर गिरे। उनकी आयु शेष थी, अतः वे फूटे नहीं। बल्कि पृथ्वीपर ऐसे गिरे, मानो रूईके ढेरपर पड़े हों। उन अंडोंके गिरते ही भगदत्तके हाथीकी पीठसे एक बहुत बड़ा घंटा भी टूटकर गिरा, जिसका बन्धन बाणोंके आघातसे कट गया था। यद्यपि वह अंडोंके साथ ही गिरा था, तथापि उन्हें चारों ओरसे ढकता हुआ गिरा और धरतीमें थोड़ा-थोड़ा धँस भी गया। इस प्रकार उन अंडोंकी बड़े विचित्र ढंगसे रक्षा हो गयी। शास्त्रोंमें ठीक ही कहा है—'अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।' दैव—भगवान्‌की अलौकिक शक्ति जिसकी रक्षामें नियुक्त है, उसका भला क्या बिगड़ सकता है। और जिसकी आयु शेष हो चुकी है, उसकी कितनी ही रक्षा की जाय—वह बच नहीं सकता। अस्तु;

युद्ध समाप्त हो गया। अंडे घंटेके भीतर ही पृथ्वीका और सूर्यका ताप पाकर पक गये और उनमेंसे पक्षिशावक निकल आये। इधर दैवकी प्रेरणासे एक ऋषि उधर जा निकले। उन्होंने घंटेमेंसे बच्चोंकी आवाज सुनकर कौतूहलवश घंटेको उखाड़ लिया और उन बच्चोंको अपने आश्रममें ले जाकर एक सुरक्षित स्थानमें रखवा दिया। उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा कि 'ये कोई सामान्य पक्षी नहीं हैं। संसारमें दैवका अनुकूल होना महान् सौभाग्यका सूचक होता है।' उन्होंने यह भी कहा कि 'यद्यपि किसीकी रक्षाके लिये अधिक प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है—क्योंकि सभी जीव अपने कर्मोंसे ही मारे जाते हैं और कर्मोंसे ही उनकी रक्षा होती है—फिर भी मनुष्यको शुभ कार्यके लिये यत्न अवश्य करना चाहिये, क्योंकि पुरुषार्थ करनेवाला (असफल होनेपर भी) निन्दाका पात्र नहीं होता।' इस प्रकार उन पक्षियोंके जन्म-वृत्तान्तसे बड़ी सुन्दर शिक्षा मिलती है।

पक्षियोके पूर्वजन्म-का वृत्तान्त तथा शरणागतवत्सलता-का अपूर्व उदाहरण

पक्षी जब कुछ बड़े हुए, तब वे सहसा मनुष्योंकी भाँति बोलने लगे। उन्होंने अपने पालक ऋषिको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाया और अपने पक्षियोनिमें आनेका कारण भी बताया। उन्हें अपने पूर्वजन्मकी बातें भली-भाँति याद थीं। उन्होंने कहा कि वे पूर्वजन्ममें ऋषिकुमार थे। उनके पिता बड़े भारी तपस्वी उदार-चेता और इन्द्रियजयी थे। एक दिनकी बात है—देवराज इन्द्र उनकी परीक्षाके लिये एक विशालकाय वृद्ध पक्षीका रूप धारणकर उनके पास आये और बोले—'मुझे बड़ी भूख लगी है।' शरणागतवत्सल मुनिके पूछनेपर कि उसके लिये कैसे आहारकी व्यवस्था की जाय, पक्षीने बताया कि मुझे मनुष्यका

मांस विशेष प्रिय है। ऋषि वचनबद्ध थे, इसलिये उन्होंने अपने वचनका पालन करनेके लिये उसी समय अपने चारों पुत्रोंको बुलाया और उन्हें आज्ञा दी कि वे अपने शरीरके मांससे पक्षीकी क्षुधाको शान्त करें। ऋषिकुमार पिताकी इस कठोर आज्ञाका पालन करनेके लिये तैयार नहीं हुए। इसपर पिताने उन्हें पक्षी होनेका शाप दिया और स्वयं अपनी अन्त्येष्टि क्रिया करके उस पक्षीका आहार बननेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने उस समय पक्षीसे जो वचन कहे, वे सबके लिये हृदयमें धारण करने योग्य हैं। उन्होंने कहा—'ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व इसीमें है कि वह अपने वचनका पूर्णरूपसे पालन करे। दक्षिणायुक्त यज्ञों तथा अन्य कर्मोंके अनुष्ठानमें भी ब्राह्मणोंको वह पुण्य नहीं प्राप्त होता, जो सत्यकी रक्षासे होता है।' अतिथिवत्सलता और सत्यकी रक्षाके समान और कोई महान् तप नहीं है। सत्यकी रक्षाके लिये ऋषिने अपने प्राणोपम पुत्रोंकी भी परवा नहीं की और अपना शरीर भी अतिथिके अर्पण कर दिया। धन्य त्याग! आज यह त्यागकी भावना हमारे देशसे उठती जा रही है, इसीलिये हमारी यह दुर्दशा हो रही है। जबसे हमें धर्मकी अपेक्षा प्राण अधिक प्यारे लगने लगे, तभीसे हमारा पतन प्रारम्भ हो गया। अस्तु, इस प्रकार यद्यपि पिताके शापसे वे ऋषिकुमार पक्षी हो गये, फिर भी पिताकी कृपासे उन्हें ज्ञान बना रहा और अन्तमें उस ज्ञानके बलसे उन्होंने परम सिद्धि प्राप्त की।

भोगोंके बाहुल्यसे पापमें प्रवृत्ति और पापाचारसे हानि

महामुनि जैमिनिने उन महाज्ञानी पक्षियोंसे जो प्रश्न किये, उनमें एक प्रश्न यह था कि सती-शिरोमणि द्रौपदी पाँच भाइयोंकी पत्नी कैसे हुई? इस प्रकारकी शङ्का आजकल भी महारानी द्रौपदीके सम्बन्धमें की जाती है। पक्षियोंने इसका बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। उन्होंने बताया कि प्राचीन कालकी बात है, देवराज इन्द्रने त्वष्टा प्रजापतिके पुत्र विश्वरूपको मार डाला। इस अन्यायके कारण इन्द्रका तेज धर्मराजके शरीरमें प्रवेश कर गया। दूसरी बार उन्होंने विश्वरूपके भाई वृत्रका वध किया और इस ब्रह्महत्याके फलस्वरूप उनका सारा बल नष्ट होकर वायुदेवतामें समा गया। तीसरी बार जब इन्द्रने महर्षि गौतमका रूप धारण करके उनकी धर्मपत्नी अहल्याका सतीत्व नष्ट किया, उस समय उनका रूप भी नष्ट हो गया। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गका लावण्य, जो बड़ा ही मनोरम था, व्यभिचार-दोषसे दूषित देवराज इन्द्रको छोड़कर दोनों अश्विनीकुमारोंके पास चला गया। इस प्रकार इन्द्र अपने धर्म, तेज, बल और रूपसे हाथ धो बैठे। इस आख्यानसे हमें दो शिक्षाएँ मिलती हैं- एक तो यह कि भोगोंका बाहुल्य होनेपर देवताओंकी बुद्धि भी मारी जाती है। वास्तवमें अर्थ ही अनर्थकी जड़ है। शास्त्रोंने ठीक ही कहा है---

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

'जवानी, धन, प्रभुता और अविवेक—इनमेंसे एक-एक अनर्थका मूल है। फिर जहाँ इन चारोंकी चण्डालचौकड़ी एकत्र हो जाय, वहाँ तो फिर कहना ही क्या।'

दूसरी शिक्षा यह मिलती है कि परस्त्रीगमनरूप व्यभिचारसे पुरुष धर्म, तेज, बल और रूप—चारों गवाँ बैठता है, चाहे वह इन्द्र ही क्यों न हो। अतः जो इन चारोंको बनाये रखना चाहता है, उसे परस्त्रीगमनरूप पापसे सदा बचते रहना चाहिये। अस्तु,

द्रौपदीके पाँच पति वस्तुतः एक ही व्यक्ति थे

इन्द्रको धर्म, तेज, बल और रूपसे हीन देख दैत्योंने उन्हें जीतनेका उद्योग आरम्भ किया। उन दिनों पृथ्वीपर जो अधिक पराक्रमी राजा थे, उन्हींके कुलमें देवराजको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले अत्यन्त बलशाली दैत्य उत्पन्न हुए। देखते-देखते पृथ्वी उनके भारसे आक्रान्त हो गयी और देवताओंके पास जाकर उसने उन्हें अपनी दुःखगाथा सुनायी। उसकी प्रार्थनापर सम्पूर्ण देवता अपने-अपने तेजके अंशसे पृथ्वीपर अवतार लेने लगे। इन्द्रके शरीरसे जो तेज प्राप्त हुआ था, उसे स्वयं धर्मराजने कुन्तीदेवीके गर्भमें स्थापित किया। उसीसे महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरका जन्म हुआ। फिर वायुदेवताने इन्द्रके ही बलको कुन्तीके उदरमें स्थापित किया। उससे भीम उत्पन्न हुए। इन्द्रके आधे अंशसे अर्जुनका जन्म हुआ। इसी प्रकार इन्द्रका ही सुन्दर रूप अश्विनीकुमारोंद्वारा माद्रीके गर्भमें स्थापित किया गया था, जिससे अत्यन्त कान्तिमान् नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। इस प्रकार देवराज इन्द्र ही पाँच रूपोंमें अवतीर्ण हुए थे और उनकी पत्नी शचीदेवी ही महाभागा कृष्णा (द्रौपदी)के रूपमें अग्निसे प्रकट हुई थीं। अतः कृष्णा एकमात्र इन्द्रकी ही पत्नी थी, अन्य किसीकी नहीं। योगीश्वर भी योगबलसे एक ही कालमें अनेक शरीर धारण कर लेते हैं। फिर इन्द्र तो देवता थे, उनके पाँच शरीर धारण करनेमें कौन आश्चर्य है। द्रौपदीके पाँच पति होनेपर भी वह पतिव्रताओंमें अग्रगण्य कहलायी, इसका यही रहस्य है। शास्त्रोंका तात्पर्य भलीभाँति न जाननेके कारण

ही हमारे इतिहासके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी शङ्काएँ उठायी जाती हैं।

महाराज हरिश्चन्द्रका सत्य-पालनके लिये कष्ट भोगना

इसके अनन्तर इक्ष्वाकुवंशी महाराज हरिश्चन्द्रका प्रसिद्ध आख्यान है। महाराज हरिश्चन्द्र बड़े धर्मात्मा थे। उनके राज्यकालमें कभी अकाल नहीं पड़ा, किसीको रोग नहीं हुआ, कोई भी अकालमृत्युसे नहीं मरा और पुरवासियोंकी कभी अधर्ममें रुचि नहीं हुई। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'यथा राजा तथा प्रजा।' बातों-ही-बातोंमें राजाने महर्षि विश्वामित्रको अपनी स्त्री, पुत्र, धर्म और शरीरको छोड़कर बाकी सब कुछ दे दिया। और जिस समय उन्होंने यह महान् दान दिया, उस समय उनके मुख-पर विषाद अथवा चिन्ताका कोई चिह्न न था। धन्य उदारता! यही नहीं, ऋषिकी आज्ञासे उन्होंने राजोचित वेषका भी परित्याग कर दिया और वे वल्कल-वस्त्र धारणकर अपनी पत्नी और कुमारके साथ राजधानीसे चल दिये। ऋषिने इसपर भी उनका पिण्ड नहीं छोड़ा। उन्होंने राजासे राजसूय-यज्ञकी दक्षिणा माँगी और राजाने एक महीने बाद उसे देनेका वचन दिया। राजाको इस प्रकार अपनी रानी और सुकुमार बच्चेके साथ पैदल जाते देख उनकी समस्त प्रजा व्याकुल हो उठी। उनके आश्वासनके लिये राजा थोड़ी देर रुक गये। इसपर विश्वामित्रको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने राजाको बहुत कुछ बुरा-भला कहा। परन्तु धर्मभीरु राजा धैर्यपूर्वक सब कुछ सहते रहे, उन्होंने चूँ तक नहीं की।

हरिश्चन्द्रका स्त्री-पुत्रसहित अपने-को बेच देना

राजा घूमते-घूमते काशी पहुँचे। उन्होंने सोचा—'काशी भगवान् विश्वनाथकी पुरी है, इसपर किसी मनुष्यका अधिकार नहीं हो सकता। इस प्रकार यह नगरी अवश्य मेरे राज्यकी सीमासे बाहर है, अतः यहाँ रहनेमें मेरे लिये कोई आपत्तिकी बात नहीं हो सकती।' यह सोचकर ज्यों ही उन्होंने नगरमें प्रवेश किया, त्यों ही उन्हें विश्वामित्र दिखायी दिये। दक्षिणा-के लिये उनका बेहद तकाजा देखकर राजाने निरुपाय हो अपनेको बेचनेका निश्चय किया। किन्तु रानीका बहुत अधिक आग्रह देख पहले उन्होंने रानीको ही एक ब्राह्मणके हाथ बेच दिया। परन्तु बालक रोहिताश्व किसी प्रकार भी अपनी माता-को छोड़ नहीं रहा था, इसपर रानीने बिलखकर ब्राह्मणसे उस बालकको भी खरीद लेनेके लिये प्रार्थना की और वे दोनों उसके साथ हो लिये। राजाने छातीपर वज्र रखकर उस ब्राह्मणसे अपनी प्यारी पत्नी और प्राणोपम पुत्रका मूल्य ग्रहण किया और उसे ऋषिके हवाले किया। किन्तु ऋषिको उतने द्रव्यसे सन्तोष क्यों होने लगा। वे तो हरिश्चन्द्रको कष्टोंकी आगमें तपाकर खरा सोना बनाना चाहते थे। आखिर राजाने स्वयं भी चाण्डाल बने हुए धर्मकी दासता स्वीकार की और इस प्रकार विश्वामित्रके ऋणसे मुक्ति पायी। चाण्डाल उन्हें बाँधकर डंडोंकी मारसे अचेत-सा करता हुआ अपने घर ले गया और श्मशानभूमिपर मुर्दोंके कफन बटोरनेके काममें नियुक्त किया। एक दिन रोहिताश्वको साँप काट गया, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। रानी उस मृत बालकको गोदमें लेकर उसी श्मशानपर आयी और रोने लगी। दोनों एक दूसरेको पहचान न सके। रोते-रोते अनायास रानीके मुँहसे अपने पतिका नाम निकल पड़ा। अब तो राजाने उसको तथा अपने पुत्रको भी पहचान लिया और वे भी जोर-जोरसे रोने लगे। उन्हें इस प्रकार अपने पुत्रका नाम लेकर रोते देख रानी भी राजाको पहचान गयी और घोर विलाप करने लगी। अन्तमें राजाने अत्यन्त दुखी होकर अपने पुत्रकी चिताग्निमें प्रवेश करनेका निश्चय किया और रानी भी उनके साथ जलनेको प्रस्तुत हो गयी। इतनेमें ही इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता धर्मको अगुआ बनाकर वहाँ उपस्थित हुए और राजाको अग्निमें प्रवेश करनेसे रोक दिया। इसके बाद देवराज इन्द्रने चिताके ऊपर आकाशसे अमृतकी वर्षा की, जिससे रोहित तुरंत जी उठा और राजाने उसे अपनी छातीसे लगा लिया।

राजाका समस्त अयोध्यावासियोंके साथ स्वर्ग-गमन

देवताओंने जब राजासे दिव्य लोकोंमें चलनेके लिये प्रार्थना की, उस समय भी राजा धर्मको नहीं भूले। उन्होंने विनयपूर्वक कहा—'देवराज! मैं तो चाण्डालका क्रीत दास हूँ, स्वतन्त्र तो हूँ नहीं। फिर उनसे बिना आज्ञा लिये तथा उनके ऋणसे उऋण हुए बिना मैं कैसे जा सकता हूँ।' उन्होंने यह भी कहा कि अयोध्यावासी सब-के-सब मेरे विरहमें संतप्त हैं, उन्हें छोड़कर मैं दिव्यलोकोंमें कैसे जा सकता हूँ। 'हाँ, यदि वे लोग भी मेरे साथ चल सकें तब तो मैं भी चल सकता हूँ, अन्यथा नहीं। देवेश! यदि मैंने कुछ भी पुण्य किया हो तो उसका फल मुझे उन सबके साथ ही मिले, उसमें उनका समान अधिकार हो।' धन्य प्रजावत्सलता! बस, फिर क्या था। देखते-देखते देवराज इन्द्रने स्वर्गसे

भूलोकतक करोड़ों विमानोंका ताँता बाँध दिया । महर्षि विश्वामित्र भी वहाँ आ गये थे । उन्होंने कुमार रोहितको अयोध्यापुरीमें ले जाकर राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया और सब लोग उन्हें पिताके स्थानपर देख बड़े प्रसन्न हुए । तदनन्तर सारे-के-सारे अयोध्यावासी अपने पुत्र, भृत्य एवं स्त्रियोंके सहित विमानोंपर आरूढ़ हो स्वर्गको चले गये । धन्य नरेश ! राजा हो तो ऐसा ही हो ।

राजा जनक और यमदूतका संवाद

इसके बाद पक्षी जैमिनिको एक पिता-पुत्रका संवाद सुनाते हैं, जिसमें पुत्र अपने पिताके सामने पहले मृत्युके कष्टोंका वर्णन करता है । इसके अनन्तर यमलोकके मार्गका वर्णन करता हुआ जीवके जन्मका वृत्तान्त सुनाता है और फिर नानाविध नरकोंका वर्णन करता है । इसके अनन्तर इसी संवादके अन्तर्गत राजा जनक और यमदूतका संवाद है, जिसमें राजाके पूछनेपर यमदूत उन्हें भिन्न-भिन्न नरकोंकी प्राप्तिका कारण बतलाता है और फिर यह भी बतलाता है कि किस पापके फलस्वरूप कौन-सी योनि प्राप्त होती है । इस प्रसङ्गका इतिहास भी मनन करने योग्य है । प्रसिद्ध जनक-वंशमें विपश्चित् नामके एक राजा हो गये हैं । उन्हें केवल एक बार ऋतुमती भार्याको ऋतुदान न देनेके अपराधमें भयंकर नरक देखना पड़ा था । इस एक पापके सिवा उनसे जीवनमें कोई भी पाप नहीं बना था । अतः कुछ ही क्षणोंके लिये उन्हें नरकका दृश्य दिखाकर यमदूत उन्हें पुण्यलोकोंमें ले जाने लगे । ज्यों ही वे वहाँसे जानेको उद्यत हुए, त्यों ही उस नरकके प्राणी एक साथ चिल्ला उठे—'महाराज ! कृपा करके दो घड़ी और ठहरिये । आपके शरीरको छूकर बहनेवाली हवा हमलोगोंको सुख पहुँचाती है और हमारे शरीरके संताप और वेदनाको हर लेती है ।' यमदूतने राजाको बताया कि 'आपका शरीर देवताओं, पितरों, अतिथियों और भृत्यजनोंसे बचे हुए अन्नके सेवनसे पुष्ट हुआ है तथा आपका मन भी उन्हीं सबकी सेवामें संलग्न रहा है; इसीलिये आपके शरीरका स्पर्श करके बहनेवाली वायु नारकी जीवोंको सुख प्रदान करती है और उसके लगनेसे उन्हें नरककी यातना उतनी कष्टदायक नहीं प्रतीत होती ।'

विपश्चित्का अपूर्व त्याग

राजाने कहा, 'भाई ! मेरा तो ऐसा विचार है कि पीड़ित प्राणियोंको दुःखसे मुक्त करके उन्हें शान्ति प्रदान करनेसे जो सुख मिलता है, वह मनुष्योंको स्वर्गलोक अथवा ब्रह्मलोकमें भी नहीं प्राप्त होता । यदि मेरे समीप रहनेसे इन दुखी जीवोंको नरक-यातना कष्ट नहीं पहुँचाती तो मैं सूखे काठकी तरह अचल होकर यहीं रहूँगा । जो शरणमें आनेकी इच्छा रखनेवाले आतुर एवं पीड़ित मनुष्यपर, भले ही वह शत्रुपक्षका ही क्यों न हो, कृपा नहीं करता, उसके जीवनको धिक्कार है । जिसका मन संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करनेमें नहीं लगता, उसके यज्ञ, दान और तप इस लोक और परलोकमें भी कल्याणके साधक नहीं होते । जिसका हृदय बालक, वृद्ध एवं आतुर प्राणियोंके प्रति कठोरता धारण करता है, मैं उसे मनुष्य नहीं मानता; वह तो निरा राक्षस है ।' उसी समय राजा विपश्चित्के महान् पुण्यके प्रभावसे वहाँके सभी प्राणी नरक-यातनासे छूटकर अपने-अपने कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न उत्तम योनियोंमें चले गये और राजाको स्वयं भगवान् विष्णु विमानमें बिठाकर अपने दिव्यधाममें ले गये । इस आख्यानसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि त्यागसे पुण्य अनन्तगुना बढ़ जाता है और दुखी जीवोंपर दया करनेसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है ।

पातिव्रत्यकी अलौकिक महिमा

इसके अनन्तर एक पतिव्रता ब्राह्मणीका चरित्र है, जो अपने कोढ़ी एवं क्रोधी पतिको देवताके तुल्य मानकर पूजती और उसकी सब प्रकारसे सेवा करती थी । एक बार वह पतिपरायणा देवी पतिकी आज्ञासे उन्हें कंधेपर चढ़ाकर एक वेश्याके घर ले जा रही थी । रात्रिका समय था । मार्गमें एक सूली थी, जिसपर चोरीके संदेहपर एक निरपराध ब्राह्मणको चढ़ा दिया गया था । अँधेरेमें न दीखनेके कारण उस कोढ़ीने पैरोंसे छूकर सूलीको हिला दिया, जिससे ब्राह्मणको बड़ा कष्ट हुआ । उसने क्रोधमें भरकर शाप दिया कि जिसने सूलीको हिलाकर मुझे असीम कष्ट पहुँचाया है, उसे सूर्योदय होते ही प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा । इसपर उस पतिव्रताने अपने पातिव्रत्यके बलसे सूर्यका उदय ही रोक दिया । इससे जगत्में बड़ा हाहाकार मच गया । स्नान, दान, अग्निहोत्र आदि सारी धार्मिक क्रियाएँ बंद हो गयीं । इसपर देवतालोग भयभीत होकर ब्रह्माजीके पास गये । ब्रह्माजीने उन्हें सती-शिरोमणि अत्रिपत्नी अनसूयाजीके पास भेजा और अनसूयाजी उन्हें आश्वासन देकर उस पतिव्रता ब्राह्मणीके पास गयीं । उन्होंने उसे समझाया कि 'देखो, बहिन ! सूर्योदय न होनेसे संसारका उच्छेद हो जायगा । इसलिये तुम देवताओंपर दया करके सूर्योदय होने दो, जिससे जगत्के सारे कार्य यथावत् होने लगें । रही तुम्हारे पतिकी बात, सो तुम विश्वास मानो—मैं उन्हें पुनर्जीवित कर नया एवं स्वस्थ शरीर प्रदान करूँगी ।'

ब्राह्मणीने अनसूयाजीकी बात मान ली और उसने सूर्योदयको रोकनेका संकल्प छोड़ दिया। फिर क्या था, पुनः सूर्योदय हुआ और सूर्योदय होते ही ब्राह्मणके प्राणपखेरू उड़ गये। देवी अनसूयाने उसी समय यह संकल्प किया कि ब्राह्मण रोगसे मुक्त हो फिरसे तरुण हो जाय और अपनी स्त्रीके साथ पुनः सौ वर्षोंतक जीवित रहे। बस, अनसूयाजीके इस प्रकार संकल्प करते ही ब्राह्मण रोगमुक्त तरुण शरीरसे पुनः जी उठा। देवतालोग सती-शिरोमणि अनसूयाजीकी जय-जयकार करने लगे। और उनसे वर माँगनेको कहा। अनसूयाने यही वर माँगा कि 'ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों महान् देवता उनके पुत्ररूपमें प्रकट हों।' देवतालोग 'तथास्तु' कहकर अपने-अपने स्थानको चले गये। इस कथासे पता चलता है कि पतिव्रता स्त्री अपने पातिव्रत्यके बलसे क्या नहीं कर सकती। इसी वरदानके फलस्वरूप ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे भगवान् दत्तात्रेय और रुद्रके अंशसे महर्षि दुर्वासा—ये तीन पुत्र अनसूयाजीके हुए।

ऋतध्वज एवं मदालसाका चरित्र

इसके बाद भगवान् दत्तात्रेयके महान् प्रभावका वर्णन करते हुए अलर्कोपाख्यानकी अवतारणा की गयी है। इसी प्रसङ्गमें राजकुमार ऋतध्वज तथा उनकी पतिपरायणा पत्नी मदालसाके पवित्र चरित्रका वर्णन किया गया है। राजकुमार ऋतध्वज बड़े पितृभक्त थे। उन्हें पिताने यह आज्ञा दे रक्खी थी कि वे ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये पृथ्वीपर विचरते रहें और ऐसी चेष्टा करें कि जिससे दुराचारी दानव मुनियोंको कष्ट न पहुँचा सकें। पिताकी आज्ञा मानकर राजकुमार प्रतिदिन सारी पृथ्वीका चक्कर लगा आते थे।' एक दिन जब वे बाहर गये हुए थे, उनके किसी शत्रुने उनके पिताको यह झूठा संवाद दे दिया कि राजकुमार तपस्वियोंकी रक्षा करते हुए किसी दुष्ट दैत्यके हाथों मारे गये। पतिप्राणा मदालसाने यह शोक-समाचार सुनते ही पति-वियोगमें तत्काल प्राण त्याग दिये। राजकुमार जब पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटे, तबतक मदालसाका दाह-संस्कार हो चुका था। उन्हें अपनी पत्नीकी मृत्युका समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने उसी समयसे स्त्री-सम्भोगका त्याग कर दिया। धन्य है! पतिव्रता हो तो ऐसी जो पतिके बिना क्षणभर भी शरीरको न रख सके और पति भी हो तो ऐसा, जो अपनी सहधर्मिणीका शरीरान्त हो जानेपर आजीवन स्त्री-सम्भोगसे दूर रहे। पाताल-निवासी दो नागकुमार ऋतध्वजके परम मित्र थे। वे नागराज अश्वतरके पुत्र थे। नागराजको अपने पुत्रोंद्वारा जब ऋतध्वजकी मानसिक व्यथाका समाचार मिला, तब वे अपने पुत्रोंके मित्रके दुःखसे बड़े दुखी हुए। उन्होंने राजकुमारको मदालसाकी पुनः प्राप्ति करानेके उद्देश्यसे भगवान् शङ्करकी आराधना की। शङ्करने प्रसन्न होकर जब उन्हें वर माँगनेके लिये कहा, तब उन्होंने यही प्रार्थना की कि 'ऋतध्वजकी पत्नी मदालसा पहलेकी ही अवस्थामें मेरे यहाँ कन्यारूपमें जन्म ले, उसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहें तथा पहले ही-जैसी उसकी कान्ति हो।' यही हुआ, नागराज जिस समय तर्पण कर रहे थे, उसी समय उनके मध्यम फणसे सुन्दरी मदालसा प्रकट हो गयी। उन्होंने उसे अन्तःपुरमें गुप्तरूपसे रख दिया और एक बार अपने मित्रोंके कहनेसे जब राजकुमार नागलोकमें उनके घर आये, तब नागराजने उस कन्याको राजकुमारके अर्पण कर दिया। ऋतध्वज अपनी खोयी पत्नीको पुनः पाकर बड़े प्रसन्न हुए और अपनी राजधानीको लौट आये। अपने अथवा अपने किसी सम्बन्धीके मित्रके हितसाधनमें मनुष्यको कैसा सचेष्ट होना चाहिये, इसकी हमें महानुभाव नागराजके पुनीत चरित्रसे शिक्षा मिलती है।

मदालसाकी पुत्रोंको अपूर्व शिक्षा

ऋतध्वजको मदालसाके गर्भसे कई पुत्र प्राप्त हुए। पहले तीन पुत्रोंको मदालसाने लोरी देते समय ही ऐसी ऊँची शिक्षा दी कि वे बाल्यकालमें ही ज्ञानसम्पन्न एवं ममताशून्य हो गये। धन्य है! माता हो तो ऐसी हो, जिसके गर्भमें आकर मनुष्यको फिर माताका गर्भ न देखना पड़े। कहते हैं, संसारमें तीन ही माताएँ वास्तवमें माता कहलाने योग्य हुई। पहली माता सुनीति थीं, जिन्होंने अपने पुत्र ध्रुवको भगवान्‌का मार्ग दिखाया। दूसरी माता सुमित्रा हुईं, जिन्होंने अपने पुत्र लक्ष्मणको भगवान्‌का अनुचर बनाकर उनकी सेवाके लिये सहर्ष वन भेज दिया। और तीसरी माता मदालसा हुईं, जिन्होंने लोरीमें ही अपने बालकोंको ब्रह्मज्ञान करा दिया। अस्तु, मदालसाके चौथे पुत्रका नाम अलर्क था, जिसे उसने राजनीति, धर्मनीति एवं अध्यात्मका बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया। इसके बाद अलर्कको भगवान् दत्तात्रेयने अध्यात्म एवं योगका जो दिव्य उपदेश दिया, उसका विस्तारसे वर्णन है। अलर्ककी उस उपदेशसे आँखें खुल गयीं। वे घर छोड़कर वनमें चले गये और वहाँ उन्होंने योगकी अनुपम सम्पत्तिके द्वारा श्रेष्ठ निर्वाण-पदको प्राप्त किया।

इसके अनन्तर मार्कण्डेय एवं ब्राह्मणकुमार क्रौष्टुकिका महत्त्वपूर्ण संवाद है, जिसमें विविध उपयोगी विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रसङ्गमें चौदह मनुओंकी उत्पत्तिका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। द्वितीय मनु स्वारोचिषकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें एक ब्राह्मणका बड़ा ही सुन्दर चरित्र चित्रित किया गया है। उन ब्राह्मणकी भूमण्डलमें भ्रमण करनेकी बड़ी इच्छा थी। एक बार एक ब्राह्मण अतिथि उनके यहाँ आये। वे पृथ्वीपर खूब घूम चुके थे। उन्होंने बताया कि वे मन्त्र और ओषधियोंके प्रभावसे आधे दिनमें एक हजार योजन (चार हजार कोस) चल लेते थे। ब्राह्मणने उनके इस प्रभावको जानना चाहा। इसपर उस आगन्तुकने उन्हें पैरमें लगानेके लिये एक लेप दिया और वे जिस दिशाको जाना चाहते थे, उसे मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया। उस लेपको पैरोंमें लगाकर ब्राह्मणदेवता हिमालय पर्वतकी सैर करने निकल पड़े। उन्होंने सोचा था कि आधे दिनमें एक हजार योजन चलकर शेष आधे दिनमें घर लौट आयेंगे। वे हिमालयकी चोटीपर पहुँच तो गये; परंतु बर्फपर चलनेसे उनके पैरोंमें लगा हुआ दिव्य ओषधिका लेप धुल गया, जिसके कारण उनकी तीव्र गति कुण्ठित हो गयी। अब तो उन्हें चिन्ता हुई कि वे घर किस प्रकार पहुँचेंगे। चिन्ता उन्हें और किसी बातकी न होकर केवल इसी बातकी थी कि समयपर घर न पहुँच सकनेके कारण उनके अग्निहोत्र तथा नित्यकर्मकी हानि होगी। वास्तवमें देखा जाय तो धर्मकी हानि ही सबसे बड़ी हानि है, अर्थ आदिकी हानि तो कोई महत्त्वकी हानि नहीं है। वे किसी शक्ति-सम्पन्न महापुरुषकी खोजमें घूम रहे थे, जो उन्हें मन्त्रबलसे शीघ्र घर पहुँचा सकें।

तपस्वी ब्राह्मणका आदर्श चरित्र

इतनेमें ही उनपर एक अत्यन्त सुन्दरी अप्सराकी दृष्टि पड़ी। ब्राह्मण बड़े रूपवान् थे। अप्सरा उनके मनोहर रूपपर आसक्त हो गयी और उनके समीप जाकर उसने अपना अभिप्राय प्रकट किया। ब्राह्मणको तो घर पहुँचनेकी जल्दी लगी हुई थी, उन्हें और कोई बात सुहाती ही न थी। वे अपने मनकी चञ्चलतापर खीझ रहे थे, जो उन्हें घरसे इतनी दूर उठा लायी थी। ज्यों-ज्यों ब्राह्मण उस सुन्दरीकी उपेक्षा करते थे, त्यों-ही-त्यों उसका उनपर अनुराग बढ़ता जाता था। आखिर ब्राह्मणने उसे बड़े जोरसे डाँटा और उससे अलग हो गये। उस समय उन्होंने जल्दी घर पहुँचनेका और कोई उपाय न देख गार्हपत्य अग्निका आवाहन किया और उनसे शीघ्र घर पहुँचा देनेके लिये प्रार्थना की। बस, उनके प्रार्थना करते ही गार्हपत्य अग्निने उनके शरीरमें प्रवेश किया। अग्निदेवके प्रवेश करनेपर वे ब्राह्मण तुरंत ही वहाँसे चल दिये और एक ही क्षणमें घर पहुँचकर उन्होंने शास्त्रोक्त विधिसे सब कर्मोंका अनुष्ठान पूरा किया। इस प्रकार उनकी धर्मनिष्ठाने ही उनके धर्मको बचाया। निष्ठा हो तो ऐसी हो।

तपस्वीकी अनुपम धर्मनिष्ठा तथा काम-विजय

दूसरे मनु औत्तमके चरित्रकी अवतारणा करते हुए उनके पिता उत्तमके चरित्रका वर्णन किया गया है। ये उत्तम राजा उत्तानपादके दूसरे पुत्र और महाभागवत ध्रुवके छोटे भाई थे। शत्रु और मित्रमें तथा अपने और परायेमें उनका समान भाव था। वे दुष्टोंके लिये यमराजके समान भयंकर और साधुपुरुषोंके लिये चन्द्रमाके समान शीतल एवं आनन्ददायक थे। उनका अपनी पत्नीमें बड़ा प्रेम था। वे सदा रानीके इच्छानुसार चलते थे, परंतु रानी कभी उनके अनुकूल नहीं होती थी। एक बार अन्यान्य राजाओंके सामने रानीने उनकी आज्ञा माननेसे इनकार कर दिया। इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने द्वारपालसे कहकर रानीको निर्जन वनमें छुड़वा दिया। एक दिन एक ब्राह्मण उनके द्वारपर आया और फर्याद करने लगा कि 'मेरी स्त्रीको रातमें कोई चुरा ले गया, अतः उसका पता लगाकर ला देनेकी कृपा करें।' राजाके पूछनेपर ब्राह्मणने यह भी बताया कि 'मेरी स्त्री बड़े ही क्रूर स्वभावकी और कुरूपा है तथा वह वाणी भी कटु बोलती है।' इसपर राजाने कहा—'ऐसी स्त्रीको लेकर क्या करोगे। मैं तुम्हें दूसरी भार्या ला देता हूँ।' इसपर ब्राह्मणने बताया कि 'पत्नीकी रक्षा करना पतिका धर्म है, उसकी रक्षा न करनेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है और वर्णसंकर अपने पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिरा देता है।' उसने यह भी कहा कि 'पत्नीके न रहनेसे मेरे नित्यकर्म छूट रहे हैं; इससे प्रतिदिन धर्ममें बाधा आती है, जिससे मेरा पतन अवश्यम्भावी है।'

गृहस्थाश्रममें गृहिणीका महत्त्व

ब्राह्मणके अधिक आग्रह करनेपर राजा उसकी स्त्रीकी खोजमें गये और इधर-उधर घूमने लगे। जाते-जाते एक वनमें उन्हें किसी तपस्वीका आश्रम दिखायी दिया। रथसे उतरकर वे आश्रममें गये। वहाँ उन्हें एक मुनिका दर्शन हुआ। मुनिने खड़े होकर राजाका स्वागत किया और शिष्यसे उनके लिये अर्घ्य ले आनेको कहा। शिष्यने धीरेसे

पत्नीत्याग तथा नित्यकर्मके त्याग-से महान् हानि

पूछा—'महाराज! क्या इन्हें अर्घ्य देना उचित होगा? आप विचारकर जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही किया जायगा।' तब मुनिने ध्यानद्वारा राजाके वृत्तान्तको जानकर केवल आसन दे बातचीतके द्वारा उनका सत्कार किया। राजाने मुनिसे इस व्यवहारका कारण जानना चाहा। इसपर मुनिने उन्हें बताया कि 'मेरा शिष्य भी मेरी ही भाँति त्रिकालज्ञ है, उसने आपका वृत्तान्त जानकर मुझे सावधान कर दिया। बात यह है कि आपने अपनी विवाहिता पत्नीका त्याग कर दिया है और इसके साथ ही आप अपना धर्म-कर्म भी छोड़ बैठे हैं। एक पखवाड़ेतक भी नित्यकर्म छोड़ देनेसे मनुष्य अस्पृश्य हो जाता है, आपने तो उसे एक वर्षसे छोड़ रक्खा है। नरेश्वर! पतिका स्वभाव कैसा ही हो, पत्नीको उचित है कि वह सदा पतिके अनुकूल रहे। इसी प्रकार पतिका भी कर्तव्य है कि वह दुष्ट स्वभावकी पत्नीका भी पालन-पोषण करे। ब्राह्मणकी वह पत्नी, जिसका अपहरण हुआ है, सदा अपने पतिके प्रतिकूल चलती थी; तथापि धर्मपालनकी इच्छासे वह आपके पास गया और उसे खोजकर ला देनेके लिये उसने आपसे बार-बार आग्रह किया। आप तो धर्मसे विचलित हुए दूसरे-दूसरे लोगोंको धर्ममें लगाते हैं; फिर जब आप स्वयं ही विचलित होंगे, तब आपको धर्ममें कौन लगायेगा। मुनिकी फटकार सुनकर राजा बड़े लज्जित हुए, उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की। इसके बाद मुनिसे खोयी हुई ब्राह्मणपत्नीका हाल जानकर राजा उसकी खोजमें गये और जहाँ वह थी, वहाँसे उसे अपने पतिके पास पहुँचवा दिया। ब्राह्मण अपनी पत्नीको पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

ग्रहोंका जीवनपर प्रभाव

इसके बाद वे अपनी रानीका पता लगानेके लिये पुनः उन महर्षिके पास आये। महर्षिने उन्हें अवसर देखकर फिर कहा—'राजन्! मनुष्योंके लिये पत्नी धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धिका कारण है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—कोई भी क्यों न हो, पत्नीके न रहनेपर वह कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। जैसे स्त्रीके लिये पतिका त्याग अनुचित है, उसी प्रकार पुरुषोंके लिये स्त्रीका त्याग भी उचित नहीं है।' मुनिने उन्हें यह भी बताया कि पाणिग्रहणके समय राजापर सूर्य, मङ्गल और शनैश्चरकी तथा उनकी पत्नीपर शुक्र और बृहस्पतिकी दृष्टि थी। उस मुहूर्तमें रानीपर चन्द्रमा और बुध भी, जो परस्पर शत्रुभाव रखनेवाले हैं, अनुकूल थे और राजापर उन दोनोंकी वक्रदृष्टि थी। यही कारण था कि रानी राजासे सदा प्रतिकूल रहती थी। इसपर राजाने रानीकी अनुकूलता प्राप्त करनेके लिये मित्रविन्दा नामक यज्ञका अनुष्ठान कराया। जिन स्त्री-पुरुषोंमें परस्पर प्रेम न हो, उनमें मित्रविन्दा प्रेम उत्पन्न करती है। इसके बाद राजाने रानीको एक राक्षसकी सहायतासे पाताललोकसे बुलवाया और दोनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम हो गया।

पति-पत्नीमें सम्बन्ध-विच्छेद हिंदूधर्मको स्वीकार नहीं

यह इतिहास बड़ा ही शिक्षाप्रद है। इससे हमें अनेक प्रकारकी शिक्षाएँ मिलती हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा तो इससे यह मिलती है कि हिंदू-धर्म पतिके द्वारा पत्नीके अथवा पत्नीके द्वारा पतिके त्यागकी आज्ञा नहीं देता। किसी भी अवस्थामें पति-पत्नीका सम्बन्धविच्छेद हिंदूधर्मको मान्य नहीं है। हमारे सुधारक भाइयोंको जो पाश्चात्त्य शिक्षा-दीक्षामें दीक्षित होकर कानूनद्वारा पति-पत्नीके सम्बन्ध-विच्छेदको जायज बना देना चाहते हैं, समझ लेना चाहिये कि उनकी चेष्टा सर्वथा धर्मके प्रतिकूल है और व्यभिचार एवं स्वेच्छाचारको प्रोत्साहन देनेवाली है, जो बड़े भारी पतनके हेतु हैं। हिंदू भाइयोंको इस प्रकारके अधार्मिक बिलोंका घोर विरोध करना चाहिये और किसी प्रकार भी उन्हें पास नहीं होने देना चाहिये। राजाओंको इससे यह शिक्षा मिलती है कि प्रजाको धर्ममें लगाने और अधर्मसे रोकनेकी जिम्मेवारी राजापर होती है; यदि राजा भी अपना धर्म छोड़ दें तो फिर प्रजा धर्ममें स्थित कैसे रह सकती है। राजाओंका भी नियन्त्रण तपस्वी, धर्मनिष्ठ, अकिञ्चन एवं सत्यवादी ब्राह्मण लोग करते थे, जो सर्वथा निःस्पृह, निष्पक्ष एवं निर्भय होते थे और धर्मसे विचलित होनेपर राजाओंको साहसपूर्वक डाँट देते थे। तीसरी शिक्षा यह मिलती है कि संध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन आदि कर्म द्विजातिमात्रके लिये अनिवार्य हैं और इन्हें एक पखवाड़े-तक त्याग देनेपर भी मनुष्य पतित हो जाता है—अस्पृश्य हो जाता है। जबसे हमलोगोंने नित्यकर्म छोड़ दिया, तभीसे समाजमें पापका प्रवेश हो गया और फलतः हमलोग दीनता-दरिद्रता, परतन्त्रताके शिकार बन गये और नाना प्रकारके शत्रुओंसे हमारा पराभव होने लगा। चौथी शिक्षा इस आख्यानसे यह मिलती है कि ग्रहोंका हमारे जीवन एवं दाम्पत्य-सुखके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और विवाहादि सम्बन्ध करते समय तथा पाणिग्रहण आदिके समय ग्रहोंका विचार परमावश्यक है। ग्रहोंकी स्थिति अनुकूल न होनेपर दाम्पत्य-सुखमें बाधा पहुँच सकती है।

इसके अनन्तर आठवें मनु सावर्णिकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें देवी-माहात्म्यका वर्णन है, जो दुर्गासप्तशती अथवा चण्डीके नामसे प्रसिद्ध है। जिस प्रकार विषादग्रस्त एवं बन्धुजनोंके मोहमें पड़कर युद्धसे विरत हुए अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने गीताका उपदेश देकर कृतार्थ किया, उसी प्रकार खोये हुए राज्य एवं परिवारकी चिन्तामें डूबे हुए राजा सुरथ तथा स्त्री-पुत्रोंद्वारा अपमानित एवं घरसे निकाले हुए, किंतु फिर भी उनकी ममतासे जर्जरित एवं शोकमग्न समाधि वैश्यको विप्रवर मेधा मुनिने देवी-माहात्म्य सुनाकर उनका शोक एवं मोह दूर किया। दुर्गा-सप्तशतीका हमारे यहाँ घर-घरमें प्रचार है और वर्षभरमें दो बार—चैत्र एवं आश्विनके नवरात्रोंमें तो, जिनमें देवी-पूजा विशेष रूपसे होती है, इसका पाठ अवश्य किया जाता है। इसीलिये आवश्यक अङ्गों तथा पाठविधिसहित इसका मूलपाठ एवं अविकल अनुवाद इस अङ्कमें दिया गया है, जिसमें 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाएँ इस परमादरणीय एवं लोकप्रिय ग्रन्थका भलीभाँति अध्ययन एवं मनन कर सकें और इस प्रकार उसके परम लाभसे लाभान्वित हो सकें। यहाँ उसमें आये हुए अमूल्य उपदेशोंका दिग्दर्शनमात्र कराकर संतोष किया जायगा।

दुर्गासप्तशतीकी लोकप्रियता

मेधा ऋषिने बताया कि संसारकी स्थिति (जन्म-मरणकी परम्परा) बनाये रखनेके लिये भगवती महामायाके प्रभावद्वारा जीव ममतामय भँवरसे युक्त मोहके गहरे गर्तमें गिराये जाते हैं। जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपा जो भगवती महामाया हैं, उन्हींसे यह जगत् मोहित हो रहा है। वे भगवती ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं। वे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको मुक्तिका वरदान देती हैं। वे ही परा विद्या संसार-बन्धन और मोक्षकी हेतुभूता सनातनी देवी तथा सम्पूर्ण ईश्वरोंकी भी अधीश्वरी हैं। ऋषिने यह भी बताया कि वास्तवमें तो वे देवी नित्य-स्वरूपा ही हैं, क्योंकि भगवान्की शक्ति भगवान्से सर्वथा अभिन्न है। सम्पूर्ण जगत् मायासे उत्पन्न होनेके कारण उन्हींका स्वरूप है तथा उन्हींने समस्त विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, तथापि भगवान्की भाँति जब वे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये समय-समयपर प्रकट होती हैं, तब वे उत्पन्न हुई कहलाती हैं। इसके अनन्तर ऋषिने उन्हीं देवीके प्राकट्यके तीन चरित्र सुनाये, जो क्रमशः प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र और उत्तर चरित्रके नामसे प्रसिद्ध हैं।

महामायाका स्वरूप

मेधाऋषिके द्वारा उपदिष्ट देवीमाहात्म्य तथा देवी-चरित्रोंको सुनकर राजा सुरथ एवं समाधि वैश्यका मोह दूर हो गया। वे दोनों विरक्त होकर तत्काल तपस्याके लिये निकल पड़े और जगदम्बाके दर्शनके लिये नदीके तटपर रहकर तपस्या करने लगे। वे देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप और हवनके द्वारा उनकी आराधना करने लगे। उन्होंने पहले तो आहारको धीरे-धीरे कम किया, फिर बिल्कुल निराहार रहकर देवीमें ही मन लगाये एकाग्रतापूर्वक उनका चिन्तन आरम्भ किया, इस प्रकार लगातार तीन वर्षोंतक वे दोनों संयमपूर्वक देवीकी आराधना करते रहे। इसपर प्रसन्न होकर जगद्धात्री चण्डिका देवीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मनोवाञ्छित वर माँगनेको कहा। राजाने दूसरे जन्ममें नष्ट न होनेवाला राज्य और उसी जन्ममें पुनः राज्य-प्राप्तिका वर माँगा, किंतु समाधि वैश्यका मन तो सर्वथा भोगोंसे फिर गया था, उन्हें संसारसे वैराग्य हो चुका था; अतः उन्होंने अहंता और ममतारूप दोषोंका नाश करनेवाला ज्ञान माँगा। देवी भगवती 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं। वही सुरथ राजा अगले मन्वन्तरमें सावर्णि नामके मनु होंगे। इस प्रकार भगवती महामाया भोग चाहनेवालोंको भोग और मोक्षार्थियोंको मोक्ष प्रदान करती हैं।

दुर्गासप्तशतीके श्रवणका अपूर्व प्रभाव

इसके अनन्तर रौच्य नामक तेरहवें मनुके उत्पत्ति-प्रसङ्गमें गृहस्थधर्मकी बड़ी महिमा कही गयी है। रौच्य मनु प्रजापति रुचिके पुत्र थे। प्रजापति रुचि ममता और अहंकारसे रहित होकर इस पृथ्वीपर निर्भय विचरते थे। उन्होंने न तो अग्निकी स्थापना की थी और न अपने लिये घर ही बनाया था। वे एक बार भोजन करते और बिना आश्रमके ही रहते थे। उन्हें इस प्रकार मुनिवृत्तिसे रहते देख उनके पितरोंने गृहस्थधर्म एवं कर्ममार्गकी महिमा बताते हुए उनसे यह कहा कि 'बेटा! यद्यपि वेदमें कर्मको अविद्या कहा गया है, फिर भी इतना तो निश्चित है कि ज्ञानरूपा विद्याकी प्राप्तिमें भी कर्म ही कारण है। दयाभावसे प्रेरित होकर जो कर्म किया जाता है, वह बन्धनकारक नहीं होता तथा फल-कामनासे रहित कर्म भी बन्धनमें नहीं डालता, इसके विपरीत विहितकर्मका त्याग करके जो अधम मनुष्य संयम करते हैं, उस संयमसे उन्हें

गृहस्थधर्मकी महिमा

मोक्षकी प्राप्ति होनी तो दूर रही, उलटी उनकी अधोगति होती है। वत्स! तुम तो समझते हो कि तुम इन्द्रियजयके द्वारा आत्माका प्रक्षालन कर रहे हो; परंतु वास्तवमें तुम शास्त्रविहित कर्मोंका त्याग करनेके कारण पापोंसे दग्ध हो रहे हो। कर्म अविद्या होनेपर भी विधिके पालनद्वारा शोधे हुए विषकी भाँति मनुष्योंका उपकार ही करता है। इसके विपरीत विद्या भी विधिकी अवहेलनासे निश्चय ही हमारे बन्धनका कारण बन जाती है। अतः वत्स! तुम विधिपूर्वक स्त्री-संग्रह—विवाह करो।' रुचिने पितरोंकी बात मान ली और स्त्री-प्राप्तिकी अभिलाषासे ब्रह्माजीके आदेशानुसार पितरोंका पूजन किया। उनके आशीर्वादसे उन्हें एक अप्सराकी कन्या पत्नीरूपमें प्राप्त हुई और उसीसे रौच्यकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रसङ्गमें मन्वन्तरोंकी कथा सुननेका भी बड़ा माहात्म्य कहा गया है।

इसके अनन्तर भगवान् सूर्यकी उत्पत्ति तथा उनके वंशज नरपालोंके चरित्रका वर्णन है। सूर्य-वंशके नरपतियोंमें राजा खनित्रका चरित्र बड़ा ही उदात्त है। खनित्र बड़े ही शान्त, सत्यवादी, शूरवीर, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले, स्वधर्मपरायण, वृद्धसेवी, अनेक शास्त्रोंके विद्वान्, वक्ता, विनयशील, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, डींग न हाँकनेवाले और सब लोगोंके प्रिय थे। वे दिन-रात यही कामना किया करते थे—'**समस्त प्राणी प्रसन्न रहें तथा दूसरोंपर भी स्नेह रक्खें। सब जीवोंका कल्याण हो। सभी निर्भय हों। किसी भी प्राणीको कोई व्याधि एवं मानसिक व्यथा न हो। समस्त प्राणी सबके प्रति मित्रभावके पोषक हों। ब्राह्मणोंका कल्याण हो। सबमें परस्पर प्रेम रहे। सब वर्णोंकी उन्नति हो। उन्हें समस्त कर्मोंमें सिद्धि प्राप्त हो। लोगो! सब भूतोंके प्रति तुम्हारी बुद्धि कल्याणमयी हो। तुम लोग जिस प्रकार अपना तथा अपने पुत्रोंका सर्वदा हित चाहते हो, उसी प्रकार सब प्राणियोंके प्रति हित-बुद्धि रखते हुए बर्ताव करो। यह तुम्हारे लिये अत्यन्त हितकी बात है। कौन किसका अपराध करता है। यदि कोई मूढ़ किसीका थोड़ा भी अहित करता है तो उसे निश्चय ही उसका फल भोगना पड़ेगा; क्योंकि फल सदा कर्ताको ही मिला करता है। लोगो! यह विचारकर सबके प्रति पवित्र भाव रक्खो। इससे इस लोकमें पाप नहीं बनेगा और मरनेपर तुम्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी। बुद्धिमानो! मैं तो यह चाहता हूँ कि मुझसे जो स्नेह रखता है, उसका इस पृथ्वीपर सदा ही कल्याण हो तथा जो इस लोकमें मेरे साथ द्वेष रखता है, वह भी कल्याणका ही भागी बने।**' अहा! कैसी उदात्त भावना है। आज जगत् यदि महाराज खनित्रकी शिक्षा मानने लगे तो संसारसे कलह एवं अशान्ति-का बीज ही नष्ट हो जाय और यह भूमण्डल नन्दन-कानन बन जाय।

राजा खनित्रकी अनोखी भावना

राजा खनित्रने अपने भाइयोंको प्रेमपूर्वक पृथक्-पृथक् राज्योंमें अभिषिक्त कर दिया और स्वयं समुद्रवसना पृथ्वीका उपभोग करने लगे। महाराज खनित्र उन चारों भाइयों तथा समस्त प्रजापर सदा पुत्रोंकी भाँति स्नेह रखते थे। एक बार उनके एक भाईके पुरोहितने उसे उल्टी पट्टी पढ़ाकर सम्राट्का विद्रोही बना दिया और क्रमशः उनके अन्य भाइयों तथा उनके पुरोहितोंको भी फोड़ लिया। फिर तो वे चारों पुरोहित महाराज खनित्रके विरुद्ध भयंकर पुरश्चरण करने लगे। उनके उस आभिचारिक कर्मसे चार कृत्याएँ उत्पन्न हुईं। वे सभी राजा खनित्रके पास आयीं। किंतु राजा साधु पुरुष थे; अतः उनके पुण्यसमूहसे वे परास्त हो गयीं और लौटकर उन दुष्टात्मा पुरोहितोंपर ही टूट पड़ीं और उन्हें जलाकर भस्म कर डाला। खनित्रको जब इस बातका पता लगा तो उन्हें अपने बच जानेका हर्ष न होकर उन ब्राह्मणोंकी मृत्युपर दुःख हुआ। वे कहने लगे—'मुझ पापी, भाग्यहीन तथा दुष्टको धिक्कार है, जिसके कारण चार ब्राह्मणोंकी हत्या हुई। मेरे राज्यको धिक्कार तथा महान् राजाओंके कुलमें जन्म लेनेको भी धिक्कार है, क्योंकि मैं ब्राह्मणोंके विनाशका कारण बना। वे पुरोहित तो अपने स्वामी मेरे भाइयोंका कार्य कर रहे थे, अतः दुष्ट वे नहीं हैं, दुष्ट तो मैं हूँ, क्योंकि मैं ही उनके नाशका कारण बना हूँ।' ऐसा विचार करके महाराज खनित्र अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करके अपनी पत्नियोंके साथ तपस्याके लिये वनमें चले गये। धन्य राजा खनित्र! ऐसा राजा संसारमें कौन होगा, जो मारनेवालोंकी मृत्युपर साम्राज्य-सुखका त्याग कर देगा और दूसरोंके दोषोंको गुणरूपमें ग्रहण करेगा। भारत देश, सनातनधर्म और हिंदूजातिको ही ऐसे नररत्न उत्पन्न करनेका सौभाग्य प्राप्त है।

खनित्रकी अलौकिक उदाराशयता

राजा मरुत्तका चरित्र

राजा खनित्रके पुत्र क्षुप हुए। वे बड़े दानशील तथा अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले थे। वे व्यवहार आदिके मार्गमें शत्रु और मित्रके प्रति समान भाव रखते थे। क्षुपके पुत्र विविंश हुए और विविंशके खनीनेत्र। इन्होंने महात्मा ब्राह्मणोंको समूची पृथ्वीका दान दे तपस्यासे द्रव्य-संग्रह किया और उसके द्वारा पृथ्वीको छुड़ाया। उन्होंने सरसठ हजार सरसठ सौ सरसठ यज्ञ किये थे। और सबमें प्रचुर दक्षिणा दी थी। खनीनेत्रके पुत्र करन्धम, करन्धमके अवीक्षित और अवीक्षितके सम्राट् मरुत्त हुए। अवीक्षितके राज्य स्वीकार न करनेके कारण करन्धमके बाद मरुत्त ही राजसिंहासनपर बैठे। जिस प्रकार पिता अपने औरस पुत्रोंकी रक्षा करता है, मरुत्त उसी प्रकार प्रजाजनोंका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उनका शासन-चक्र सातों द्वीपोंमें अबाधरूपसे फैला हुआ था। आकाश, पाताल और जल आदिमें भी उनकी गति कुण्ठित नहीं होती थी। राजा स्वयं तो यज्ञ करते ही थे, चारों वर्णोंके अन्य लोग भी अपने-अपने कर्ममें आलस्य छोड़कर संलग्न रहते और महाराजसे धन प्राप्त कर इष्टापूर्त आदि पुण्यक्रियाएँ करते थे। राजा मरुत्तने सौ यज्ञ करके देवराज इन्द्रको भी मात कर दिया था। इनके यज्ञोंमें इन्द्रादि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मणोंको भोजन परोसनेका काम किया करते थे। इन्होंने ब्राह्मणोंको यज्ञोंमें इतनी प्रचुर दक्षिणा दी थी कि उनके घर रत्नोंसे भर गये थे।

राजा मरुत्त तथा उनके पिताका धर्मके लिये परस्पर युद्ध

एक बार और्व मुनिके आश्रममें पाताललोकके नागोंने आकर दस मुनिकुमारोंको डस लिया। यद्यपि महर्षिलोग इन सबको अपने ब्रह्मतेजसे भस्म कर डालनेकी शक्ति रखते थे, फिर भी दण्ड देनेका अपना अधिकार न समझ वे चुप रहे। इधर जब मरुत्तको इस बातका पता लगा, तब वे तुरंत ऋषिके आश्रमपर पहुँचे और उन्होंने कुपित हो पाताललोकनिवासी सम्पूर्ण नागोंका संहार करनेके लिये संवर्तक नामक अस्त्र उठाया। उस महान् अस्त्रके तेजसे सारा नागलोक सहसा जल उठा। अब तो सर्पोंमें बड़ा हाहाकार मचा। उनमेंसे कुछ अपने स्त्री-पुत्रोंको साथ ले मरुत्तके पिता अवीक्षित और उनकी पत्नीके शरणमें गये। उन्हें रक्षाका आश्वासन देकर वीर अवीक्षित अपने पुत्रके पास पहुँचे और उन्हें अस्त्र लौटा लेनेके लिये कहा। परन्तु मरुत्तने उनकी बात नहीं सुनी। उन्होंने कहा कि 'नागोंने मुनिकुमारोंको डसा है, हविष्योंको भी दूषित किया है तथा आश्रमके सम्पूर्ण जलाशयोंको विषैला कर दिया है। अतः ये आततायी हैं, इनका वध करनेमें कोई दोष नहीं है; बल्कि इन्हें दण्ड देना मेरा कर्तव्य है, अतः आप मेरे कर्तव्य-पालनमें बाधा न डालें।' इधर अवीक्षितने कहा कि 'इन सबको मैं अभय-दान दे चुका हूँ, अतः इनकी रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ यदि तुम नहीं मानते तो लो मैं अस्त्रके द्वारा ही तुम्हारे अस्त्रका प्रतीकार करता हूँ।' यों कहकर उन्होंने अपने धनुषपर कालास्त्रका संधान किया। इस प्रकार पिता-पुत्रमें युद्ध छिड़ गया। दोनों ही अपनी-अपनी बातपर दृढ़ थे। एकने प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये दुष्टोंके वधका प्रण ले रक्खा था और दूसरा अपनी शरणमें आये हुए सर्पोंको रक्षाका वचन दे चुका था। दोनोंकी धर्मनिष्ठा आदर्श थी। पुत्रने अपने प्रजा-पालनरूप व्रतमें बाधा डालनेवाले पिताकी भी परवा नहीं की और पिताने अपने शरणागत-रक्षाके व्रतमें बाधक बने हुए प्राणोपम पुत्र-पर भी शस्त्र उठा लिया। धर्मके लिये पिता-पुत्रके बीच यह संग्राम जगत्के इतिहासमें अनोखा था। दोनोंको एक-दूसरेका वध करनेके लिये दृढसंकल्प देख भार्गव आदि मुनि बीचमें पड़ गये और उन्होंने दोनोंको शान्त किया। उन्होंने कहा कि 'नागलोग डसे हुए मुनिकुमारोंको जिला देनेके लिये कह रहे हैं; ऐसा होनेसे मरुत्तके द्वारा प्रजापालन सहज ही हो जायगा और मुनिकुमारोंकी रक्षा हो जानेपर सर्पोंको मारनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी।' पिता-पुत्र इस बातपर राजी हो गये और सर्पोंने अपना विष खींचकर दिव्य ओषधियोंके प्रयोगसे मुनिकुमारोंको जिला दिया।

राजा नरिष्यन्तका अपूर्व यज्ञ-प्रेम

मरुत्तके पुत्र नरिष्यन्त हुए। नरिष्यन्तने इतने अधिक यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें इतना प्रचुर धन दिया कि उस धनसे वे स्वयं यज्ञ करने लगे। वे इतने सम्पन्न हो गये कि फिर उन्हें जीवन-यात्राके लिये दूसरोंके यहाँ यज्ञ करानेकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई। यहाँतक कि राजाको अब आवश्यकता होनेपर यज्ञ करानेके लिये ऋत्विज ही नहीं मिलते थे, क्योंकि ऋत्विजोंको अब अपने यज्ञोंसे ही फ़ुरसत नहीं मिलती थी। राजा और प्रजाने मिलकर उनके राज्यमें करोड़ों यज्ञ किये।

नरिष्यन्तके पुत्र दम हुए। वे दुष्ट शत्रुओंका दमन

करनेवाले थे। उनमें इन्द्रके समान बल था और साथ-ही-साथ मुनियों-जैसी दया और शील था। उस महायशस्वी पुत्रने नौ वर्षोंतक माताके उदरमें रहकर उसके द्वारा दमका पालन कराया था तथा वह स्वयं भी दमनशील था। इसीलिये त्रिकालवेत्ता पुरोहितने उसका नाम 'दम' रक्खा था। राजकुमार दमने दैत्यराज वृषपर्वासे सम्पूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा पायी, तपोवननिवासी दैत्यराज दुन्दुभिसे सम्पूर्ण अस्त्र प्राप्त किये, महर्षि शक्तिसे वेदों तथा समस्त वेदाङ्गोंका अध्ययन किया और राजर्षि आर्ष्टिषेणसे योगविद्या प्राप्त की। इस प्रकार वे राजोचित सभी गुणोंसे अलङ्कृत थे। ऐसे राजाओंके राज्यमें ही प्रजा सुखी रह सकती है। जिन दिनों भारतमें ऐसे प्रतापी, धर्मात्मा, बलवान् और शास्त्रज्ञ नृपति होते थे, उन्हीं दिनों भारतका मस्तक जगत्‌के सामने ऊँचा था और दुष्ट लोगोंकी नहीं चलती थी। जबसे भारतका क्षात्रबल क्षीण होने लगा और राजाओंमें नाना प्रकारके दोष आने लगे, तभीसे उसके खोटे दिन आ गये और वह सब प्रकारके दुःखों एवं उपद्रवोंका केन्द्र बन गया। राजा नरिष्यन्त जब वृद्ध हो गये, तब वे दमको राजपदपर अभिषिक्त करके स्वयं वनमें चले गये और अपनी पत्नीके साथ वानप्रस्थधर्मका पालन करने लगे। उन दिनों राजाओंमें प्रायः ऐसी चाल ही थी।

राजा दमको उनकी माताका कर्तव्य-पालनके लिये उपदेश

एक दिन दक्षिण देशका दुराचारी राजकुमार वपुष्मान्, जो एक बार दमसे युद्धमें हार गया था, शिकार खेलता हुआ उसी आश्रममें जा पहुँचा, जहाँ वृद्ध राजा नरिष्यन्त अपनी पत्नी इन्द्रसेनाके साथ रहकर तपस्या करते थे। उसे जब नरिष्यन्तका परिचय मालूम हुआ, तब उसके मनमें सहसा अपने शत्रु दमसे बदला लेनेकी भावना जाग्रत् हो उठी। अवसर देखकर उसने नरिष्यन्तकी जटा पकड़ ली और नृशंसतापूर्वक इन्द्रसेनाके सामने ही तलवारसे उन वृद्ध राजर्षिका सिर काट लिया। इन्द्रसेनाने एक तपस्वीके हाथ दमको इसकी सूचना करवा दी और बड़े ही जोशीले शब्दोंमें उन्हें अपने तपस्वी पिताका वध करनेवाले उस दुष्टक्षत्रियाधमको दण्ड देनेके लिये प्रेरित किया। इन्द्रसेनाके शब्द बड़े ही मार्मिक थे। उन्होंने कहला भेजा—'बेटा दम! राजा होनेका अधिकार उसीको है, जो चारों वर्णों एवं आश्रमोंकी रक्षा करे। तुम जो तपस्वियोंकी रक्षा नहीं करते, यह क्या तुम्हारे लिये उचित है? तुम्हारे पिताका बिना किसी अपराधके तुम्हारे ही राज्यमें एक आततायी चुपचाप उनके आश्रममें आकर वध कर दे और तुम्हें इस बातका पता भी न चले, यह तुम्हारे लिये कितनी लज्जाकी बात है! ऐसी स्थितिमें तुम्हें वही कार्य करना चाहिये, जिससे तुम्हारे धर्मका लोप न हो। इससे आगे मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि मैं तपस्विनी हूँ। तुम्हारे मन्त्री बड़े वीर तथा सब शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। उन सबके साथ विचार करके तुम्हारे लिये इस समय जो उचित हो, वही तुम्हें करना चाहिये। अपने पिता शक्तिको राक्षसके हाथसे मारा गया सुनकर महर्षि पराशरने समस्त राक्षस-कुलको अग्निकुण्डमें होमकर भस्म कर दिया था। मैं तो ऐसा मानती हूँ कि तुम्हारे पिता नहीं, तुम ही मारे गये हो; वपुष्मान्‌की तलवार उनपर नहीं गिरी, तुम्हारे ही ऊपर गिरी है। उसने तुम्हारे निरीह पिताको मारकर तुम्हारे ही शासनका उल्लङ्घन किया है, तुम्हारी ही मर्यादाका लोप किया है। अब तुम्हें भृत्य, कुटुम्ब एवं बन्धु-बान्धवों-सहित वपुष्मान्‌के प्रति जो बर्ताव करना उचित हो वही करो।' यों कहलाकर इन्द्रसेना अपने पतिके साथ ही अग्निमें प्रवेश कर गयी।

मर्यादा-रक्षाके लिये क्षात्रधर्मकी आवश्यकता

भारतकी वीर क्षत्राणियाँ प्राचीन कालमें अपनी सन्तानोंको इसी प्रकार धर्मयुद्धके लिये प्रेरित किया करती थीं। माता विदुलाने अपने पुत्र संजयको तथा कुन्तीदेवीने पाण्डवोंको इसी प्रकार उनके क्षत्रियोचित कर्तव्यका पालन करनेके लिये प्रेरणा की थी। जबसे भारतकी वीर रमणियोंने अपने पुत्रोंको इस प्रकार धर्मका उपदेश देना छोड़ दिया, तभीसे भारत तेजोहीन हो गया और उसमें अपने तथा अपनी संतानोंपर किये गये अत्याचारोंका बदला लेनेकी शक्ति नहीं रही। एक जानकीको राक्षसोंके चंगुलसे छुड़ानेके लिये मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने समस्त राक्षस-कुलका संहार कर डाला तथा एक द्रौपदीके अपमानका बदला लेनेके लिये पाण्डवोंने कौरव-वंशका उच्छेद कर दिया। परन्तु आज हमारी आँखोंके सामने न जाने कितनी अबलाओंपर दुष्टोंद्वारा अत्याचार एवं बलात्कार किये जाते हैं, न जाने हमारी कितनी माता-बहिनें आज विधर्मियोंके चंगुलमें पड़ी हुई अपने भाग्यको कोस रही हैं, न जाने कितने वृद्ध एवं बालकोंके निर्दयतापूर्वक काटे जानेकी बातें हम सुनते हैं; परन्तु हमारे कानोंपर जूँ भी नहीं रेंगती, हमारे खूनमें जरा भी गरमाहट नहीं आती, मानो कुछ हुआ ही नहीं!

दमका अपने पिताके मारनेवाले-को दण्ड देना

जिन दिनोंकी यह बात है, उन दिनों भारतके क्षत्रियोंकी धमनियोंका खून गरम था। वे अपने कर्तव्यसे च्युत एवं नपुंसक नहीं हो गये थे। अत्याचार एवं अपमानका बदला लेनेकी उनमें शक्ति थी। राजा दमने जब यह दुःखपूर्ण संवाद सुना, तब उनका हृदय क्रोधसे जल उठा। जैसे घी डालते ही आग प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार दम क्रोधाग्निसे जलते हुए हाथ-से-हाथ मलने लगे और इस प्रकार बोले—'ओह! मुझ पुत्रके जीते-जी उस आततायीने मेरे पिताको अनाथकी भाँति मार डाला और इस प्रकार मेरे कुलका अपमान तथा मेरे शासनकी अवहेलना की। यदि मैं बैठकर उस घटनापर शोक मनाऊँ और चुप हो रहूँ अथवा उदारतापूर्वक क्षमा कर दूँ तो यह मेरी नपुंसकता होगी। दुष्टोंका दमन और साधुपुरुषोंकी रक्षा—यही मेरा कर्त्तव्य है। मेरे पिताको मारकर भी यदि मेरा शत्रु जीवित है तो अब केवल 'हा तात!' कहकर विलाप करनेसे क्या होगा। इस समय जो करना आवश्यक है, वही मैं करूँगा। उस कायर, पापी एवं दुष्ट क्षत्रियाधमको अपनी करनीका फल अच्छी तरह चखाऊँगा, जिससे फिर किसी दुष्टकी इस प्रकार अन्याय करनेकी हिम्मत न हो। यदि उसे न मार सका तो स्वयं ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। यदि देवराज इन्द्र स्वयं वज्र हाथमें लिये युद्धमें पधारें, भयङ्कर दण्ड लिये साक्षात् यमराज भी कुपित होकर सामने आ जायँ, कुबेर, वरुण और सूर्य भी वपुष्मान्‌की रक्षाका यत्न करें, तो भी मैं उस नराधमको जीवित नहीं छोड़ूँगा। जो नियतात्मा निर्दोष, वनवासी, अपने-आप वृक्षसे गिरे हुए फलोंका आहार करनेवाले तथा सब प्राणियोंके मित्र थे—ऐसे मेरे पिताकी मुझ-जैसे शक्तिशाली पुत्रके रहते हुए जिसने निर्दयतापूर्ण हिंसा की है, उसके मांस और रक्तसे आज गृध्र तृप्त हों।'

राजा दम यों कहकर चुप नहीं हो गये। उन्होंने जो कुछ कहा, उसे पूरा करके ही दम लिया। उन्होंने बड़ी भारी सेना लेकर दक्षिण देशपर चढ़ाई कर दी और वपुष्मान्‌को उसकी सेनासहित मारकर वे पुनः अपनी राजधानीको लौट आये।

इस प्रकार सूर्यवंशमें अनेक शूरवीर, विद्वान्, धर्मज्ञ एवं पराक्रमी राजा हो गये हैं। उन सब राजाओंके चरित्र सुनकर मनुष्य पवित्र हो जाता है। इन्हीं राजाओंका चरित्र सुनाकर मार्कण्डेय मुनि विरत हो जाते हैं। यहीं मार्कण्डेयपुराणका अन्त होता है।

मार्कण्डेयपुराणका पुराणोंकी गणनामें सातवाँ स्थान है।

अठारह पुराणोंकी नामावली तथा उसके पाठकी महिमा

उनकी संख्या इस प्रकार दी गयी है—(१) ब्रह्मपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) विष्णुपुराण, (४) शिवपुराण, (५) श्रीमद्भागवत, (६) नारदीयपुराण, (७) मार्कण्डेयपुराण, (८) अग्निपुराण, (९) भविष्यपुराण, (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण, (११) नृसिंहपुराण, (१२) वाराहपुराण, (१३) स्कन्दपुराण, (१४) वामनपुराण, (१५) कूर्मपुराण, (१६) मत्स्यपुराण, (१७) गरुडपुराण और (१८) ब्रह्माण्डपुराण। कहते हैं जो प्रतिदिन इन अठारहों पुराणोंका नाम लेता तथा प्रतिदिन तीनों समय इस नामावलीका जप करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। मार्कण्डेयपुराणके श्रवणका भी महान् फल बताया गया है, उसके सुननेसे करोड़ों कल्पोंके किये हुए पापसमूह नष्ट हो जाते हैं तथा परम योगकी प्राप्ति होती है। उसे न यमराजसे भय होता है न नरकोंसे। इस पृथ्वीपर उसकी वंशपरम्परा सदा कायम रहती है।

ब्रह्मपुराणका उपक्रम तथा राजा पृथुका चरित्र

ब्रह्मपुराणमें लोमहर्षण सूतका शौनकादि ऋषियोंके साथ संवाद है। उसमें पहले-पहल सृष्टिकी उत्पत्ति तथा महाराज पृथुका पावन चरित्र वर्णित है। प्रजाका रञ्जन करनेके कारण वे सर्वप्रथम राजा कहलाये। वे जब समुद्रकी यात्रा करते, उस समय समुद्रका जल स्थिर हो जाता था। पर्वत उन्हें जानेके लिये मार्ग दे दिया करते थे और उनके रथकी ध्वजा कभी भङ्ग नहीं हुई। उनके राज्यमें पृथ्वी बिना जोते-बोये ही अन्न पैदा करती थी। यही नहीं, राजाका चिन्तन करनेमात्रसे लोगोंका अन्न अपने-आप पक जाया करता था। सभी गौएँ कामधेनु बन गयी थीं और वृक्षोंके पत्तों-पत्तोंमें मधु भरा रहता था। सूत और मागधोंने जैसी-जैसी इनकी स्तुति की, उसी-उसीके अनुरूप इन्होंने कर्म कर दिखाये। तभीसे लोकमें सूत, मागध एवं वन्दीजनोंद्वारा आशीर्वाद दिलानेकी परिपाटी चल पड़ी। भूमिको सम करनेका कार्य भी राजा पृथुने ही किया। इससे पहले भूमि समतल न होनेके कारण पुरों अथवा ग्रामोंका कोई सीमाबद्ध विभाग नहीं हो सका था। उस समय अन्न, गोरक्षा, खेती और व्यापार भी नहीं होते थे। यह सब पृथुके समयसे ही प्रारम्भ हुआ है।

उस समयतक प्रजाका आहार केवल फल-मूल ही था और वह भी बड़ी कठिनाईसे मिलता था। राजा पृथुने पृथ्वीसे सब प्रकारके अन्नोंका दोहन किया। उन्हीं अन्नोंसे आज भी प्रजा जीवन धारण करती है। पृथुने ही इस पृथ्वीका विभाग एवं शोधन किया, जिससे यह अन्नकी खान और समृद्धिशालिनी बन गयी तथा गाँवों और नगरोंसे इसकी शोभा हो गयी। पृथुके सम्बन्धसे ही इसका नाम पृथ्वी हुआ।

भारतवर्षकी महिमा तथा भगवन्नामका अलौकिक माहात्म्य

इसके अनन्तर चौदह मन्वन्तरों तथा विवस्वान्‌की संततिका वर्णन है और फिर क्रमशः सूर्यवंश एवं चन्द्रवंशके नृपतियोंका उल्लेख है। इसी प्रसङ्गमें जम्बूद्वीप तथा उसके विभिन्न वर्षोंसहित भारतवर्षका वर्णन है। भारतवर्षमें ही पारलौकिक लाभके लिये यति तपस्या करते, यज्ञकर्त्ता अग्निमें आहुति डालते तथा दाता आदरपूर्वक दान देते हैं। यहाँ लाखों जन्म धारण करनेके बाद बहुत बड़े पुण्यके संचयसे जीव कभी मनुष्य-जन्म पाता है। इसके बाद अन्य द्वीपोंका तथा पाताल एवं नरकोंका वर्णन है और उसी प्रसङ्गमें भगवन्नामकी अलौकिक महिमाका निरूपण किया गया है। तपश्चर्यात्मक सम्पूर्ण प्रायश्चित्तोंमें भगवान् श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण श्रेष्ठ है। पाप कर लेनेपर जिस पुरुषको उसके लिये पश्चात्ताप होता है, उसके लिये एक बार भगवान् श्रीहरिका स्मरण कर लेना ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त बताया गया है। भगवान् नारायणका स्मरण करनेवाला मनुष्य तत्काल पापमुक्त हो जाता है। इसलिये जो पुरुष रात-दिन भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह अपने समस्त पातकोंका नाश हो जानेके कारण कभी नरकमें नहीं पड़ता। यही नहीं, भगवान् विष्णुके स्मरण और कीर्तनसे सम्पूर्ण क्लेशराशिके क्षीण हो जानेपर मनुष्य मुक्त हो जाता है। उसके लिये फलरूपसे इन्द्रादिके पदकी प्राप्ति विघ्नमात्र है। कहाँ तो जहाँसे लौटना पड़ता है, ऐसे स्वर्गलोककी प्राप्ति और कहाँ मोक्षके सर्वोत्तम बीज वासुदेव-मन्त्रका जप! दोनोंमें कोई तुलना नहीं है।

भगवान् विष्णुका स्वरूप

इसके बाद सूर्य आदि ग्रहों तथा भुवः आदि लोकोंकी स्थिति तथा श्रीविष्णुके प्रभावका वर्णन है। भगवान् विष्णु ही परब्रह्म हैं। उन्हींसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, वे ही जगत्स्वरूप हैं तथा उन्हींमें इस जगत्‌का लय होगा। सत् और असत् दोनों वे ही हैं, वे ही परमपद हैं, वे ही अव्याकृत मूलप्रकृति और वे ही व्याकृत जगत् हैं। यह सब कुछ उन्हींमें लय होता है और उन्हींके आधार स्थित रहता है। वे ही क्रियाओंके कर्ता—यजमान हैं, उन्हींका यज्ञोंद्वारा यजन किया जाता है तथा यज्ञ और उसके फल भी वे ही हैं। युग आदि सब कुछ उन्हींसे प्रवृत्त होता है। उन श्रीहरिसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

ब्रह्माजीके द्वारा भारतकी महिमाका वर्णन

इसके बाद तीर्थोंका वर्णन और फिर व्यासजीका मुनियोंके साथ संवाद है। उसीके अन्तर्गत ब्रह्माजीका भृगु आदि मुनीश्वरोंके साथ संवाद है। ब्रह्माजीके द्वारा उपदिष्ट होनेके कारण ही इस पुराणकी ब्रह्मपुराण संज्ञा हुई है। ब्रह्माजीने सर्वप्रथम भारतवर्षकी महिमाका वर्णन किया। उन्होंने बताया कि यह परम प्राचीन तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला उत्तम क्षेत्र है। यहीं किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप स्वर्ग और नरक प्राप्त होते हैं। यहाँ ब्राह्मण आदि वर्ण भलीभाँति संयमपूर्वक रहते हुए अपने-अपने कर्मोंका अनुष्ठान करके उत्तम सिद्धिको प्राप्त होते हैं। भारतवर्षमें संयमशील पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्राप्त करते हैं। इन्द्रादि देवताओंने भारतवर्षमें शुभकर्मोंका अनुष्ठान करके ही देवत्व प्राप्त किया है। इसके सिवा अन्य जितेन्द्रिय पुरुषोंने भी भारतवर्षमें शान्त, वीतराग एवं मात्सर्यरहित जीवन बिताते हुए मोक्ष प्राप्त किया है। देवता सदा इस बातकी अभिलाषा करते हैं कि हमलोग कब स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भारतवर्षमें जन्म लेकर निरन्तर उसका दर्शन करेंगे। इस प्रकार जिस सौभाग्यके लिये देवतालोग भी तरसते हैं, वह दुर्लभ सौभाग्य भगवान्‌की असीम अनुकम्पासे हम भारतवासियोंको अनायास प्राप्त है। हमें चाहिये कि हम शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्‌के चरणोंकी सन्निधि प्राप्तकर अपना जन्म और जीवन सफल करें। इसीके लिये हमें भगवान्‌ने दयापूर्वक यहाँ जन्म दिया है।

देवी पार्वतीकी अनुपम धर्मनिष्ठा

इसके बाद भगवान् सूर्यकी महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन है। इसके अनन्तर भगवती पार्वतीका पावन चरित्र है। वे बचपनसे ही भगवान् शङ्करको पतिरूपमें पानेके लिये तपस्यामें प्रवृत्त हो गयी थीं। वास्तवमें तो वे शङ्करजीकी स्वरूपा-शक्ति होनेके कारण शङ्करजीसे सदा ही संयुक्त हैं, अभिन्न हैं; जगत्‌को शिक्षा देनेके लिये ही उन्होंने यह लीला की थी।

देवताओंसे यह आश्वासन मिलनेपर कि 'शङ्करजी स्वयं शीघ्र ही तुम्हारा वरण करेंगे' वे तपस्यासे विरत हो गयीं। किन्तु फिर भी वे रहीं अपने आश्रममें ही। एक दिन भगवान् शङ्कर चन्द्रमाके आकारका तिलक लगाये नाटा एवं विकृत रूप धारण करके उनके पास आये। उनकी नाक कटी थी। कूबड़ निकला हुआ था। उनके मुखकी आकृति भी बिगड़ी हुई थी। उन्होंने पार्वतीसे कहा—'देवि! मैं तुम्हारा वरण करता हूँ।' देवी पार्वतीने उन्हें पहचान लिया और अर्घ्य, पाद्य एवं मधुपर्कके द्वारा उनका पूजन किया। फिर भी लोक-मर्यादाकी रक्षाके लिये उन्होंने विकृतरूपधारी शङ्करजीसे कहा—'भगवन्! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे पिता घरपर हैं। वे ही मुझे देनेमें समर्थ हैं, मैं इस समय उन्हींके अधीन हूँ।' भारतकी धर्मप्राणा देवियो! जगज्जननी उमा ही तुम्हारे लिये सदासे आदर्श रही हैं, उन्हींके पदचिह्नोंपर चलनेमें तुम्हारी शोभा एवं तुम्हारा कल्याण है। स्त्री-स्वातन्त्र्यके पक्षपातियोंके बहकावेमें आकर अपनी प्राचीन मर्यादाका कभी त्याग न करना।

देवी पार्वतीका ब्राह्मणकी रक्षाके लिये अपूर्व त्याग

पार्वतीका धर्मानुकूल उत्तर सुनकर बाबा भोलेनाथ वहाँसे चले गये। उनके चले जानेपर पार्वती देवी उन्हींमें मन लगाये एक शिलापर बैठ गयीं। इसी समय देवाधिदेव शङ्कर एक नयी लीला रचनेके लिये ब्राह्मण-बालकका रूप धारणकर निकटवर्ती सरोवरमें प्रकट हुए। उस बालकको एक ग्राहने पकड़ रक्खा था। बालक चिल्ला रहा था—'मुझे बचाओ, मुझे बचाओ!' पीड़ित ब्राह्मणकी वह पुकार सुनकर कल्याणमयी देवी पार्वती सहसा उठ खड़ी हुईं और उस स्थानपर गयीं, जहाँ वह बालक ग्राहके मुखमें पड़ा थरथर काँप रहा था। भला, जगदम्बासे वह दृश्य कैसे देखा जाता। जिनके वात्सल्य-समुद्रके एक छोटे-से कणको पाकर संसार भरकी माताओंका हृदय वात्सल्यसे परिपूर्ण है, वे एक बालकको इस अवस्थामें देखकर कैसे अपनेको सँभाल सकती थीं। उन्होंने बड़े ही करुणापूर्ण शब्दोंमें ग्राहसे कहा—'ग्राहराज! इस दीन बालकको छोड़ दो।' ग्राहने कहा—'देवि! आपने अबतक जो कुछ भी तपस्या की है, वह सब-की-सब मुझे दे दें तो मैं इस बालकको छोड़ सकता हूँ।'

तपस्यासे ब्राह्मण ऊँचा है

दूसरा कोई होता तो इतने बड़े मूल्यको सुनकर सहम जाता। खासकर जो तपस्या भगवान् शङ्करको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे की गयी हो उसका इस प्रकार सहसा एक बालककी प्राणरक्षाके मूल्यपर बेच डालना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। परन्तु एक असहाय बालकके प्राण बचानेके लिये जगज्जननी सब कुछ कर सकती हैं। उन्होंने कहा—'ग्राह! मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो भी पुण्य किया है, वह सब तुम्हारे अर्पण है। तुम कृपया इस बालकको छोड़ दो।' इस उत्तरको सुनकर ग्राहको बड़ी प्रसन्नता हुई। देवी पार्वतीकी अनुपम तपस्याको पाकर वह दोपहरके सूर्यकी भाँति तेजसे प्रज्वलित हो उठा। उस समय उसकी ओर देखना कठिन था। उसने कहा—'महाव्रते! तुमने यह क्या किया। भलीभाँति सोचकर देखो, तपस्याका उपार्जन बड़ी कठिनतासे होता है। अतः तुम अपनी तपस्या वापस ले लो। मैं तुम्हारे इस अनुपम त्यागसे ही प्रसन्न होकर इस बालकको छोड़े देता हूँ।' ग्राहके इस वचनको सुनकर देवीने जो उत्तर दिया, वह स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित करने योग्य है। वह उन्हींके अनुरूप था। देवीने कहा—'ग्राह! मुझे अपना शरीर देकर भी ब्राह्मणकी रक्षा करनी चाहिये। तपस्या तो मैं फिर भी कर सकती हूँ; किन्तु यह ब्राह्मण पुनः नहीं मिल सकता। महाग्राह! मैंने भलीभाँति सोचकर ही तपस्याके द्वारा बालकको छुड़ाया है। तपस्या ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ नहीं है, तपस्यासे मैं ब्राह्मणोंको ही श्रेष्ठ मानती हूँ। ग्राहराज! मैं तपस्या देकर फिर नहीं लूँगी। कोई भी भला आदमी दी हुई वस्तुको वापस नहीं लेता। अतः यह तपस्या तुममें ही शोभित हो। कृपया इस बालकको छोड़ दो।'

भगवान्‌को अर्पण किया हुआ सब कुछ अक्षय हो जाता है

पार्वतीके यों कहनेपर ग्राहने उनकी बड़ी प्रशंसा की, बालकको छोड़ दिया और देवीको नमस्कार करके वह वहीं अन्तर्धान हो गया। अपनी तपस्याकी हानि समझकर पार्वतीने पुनः नियमपूर्वक तप करना आरम्भ किया। इसपर भगवान् शङ्कर उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—'देवि! अब और तपस्या न करो। तुमने अपना तप मुझीको अर्पण किया है, अतः वह अक्षय हो गया है।' सच है, भगवान्‌को अर्पण किया हुआ पत्र-पुष्प अथवा जल भी अक्षय हो जाता है, फिर तपस्याकी तो बात ही क्या है।

पार्वती-स्वयंवर

पार्वतीके पिताने अब अपनी पुत्रीके लिये स्वयंवर रचा। स्वयंवरकी घोषणा होते ही सम्पूर्ण लोकोंमें निवास करनेवाले देवता सज-सजकर गिरिराज हिमालयके यहाँ जुटने लगे। भगवती उमा जयमाल हाथमें लिये देव-समाजमें उपस्थित हुईं। इतनेमें ही देवीकी परीक्षाके लिये भगवान् शङ्कर पाँच शिखाओंवाले शिशु बनकर सहसा

उनकी गोदमें आकर सो गये। देवीने बालक बने हुए अपने स्वामीको पहचान लिया और बड़े प्रेमके साथ उन्हें अपने अङ्कमें ले लिया। अपने अभीष्ट वरको पाकर देवी पार्वती स्वयंवरसे लौट पड़ी। इधर देवीके अङ्कमें सोये हुए उस शिशुको देखकर देवता लोग चक्करमें पड़ गये और सोचने लगे कि यह कौन है। देवराज इन्द्रने अपनी एक बाँह ऊपर उठाकर उस बालकपर वज्रका प्रहार करनेकी चेष्टा की, किन्तु शिशुरूपधारी शङ्करने उन्हें स्तम्भित कर दिया। अब वे न तो वज्र चला सके और न हिल-डुल सके। तब भग नामके देवताने बालकपर एक तेजस्वी शस्त्र चलाना चाहा, किन्तु भगवान्‌ने उनकी बाँहको भी जडवत् बना दिया। साथ ही उनका बल, तेज और योगशक्ति भी हर ली। उस समय ब्रह्माजीने शङ्करजीको पहचान लिया और शीघ्र उठकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया तथा देवताओंको भी उनका परिचय कराया। तब वे जडवत् बने हुए देवता शुद्धचित्तसे मन-ही-मन महादेवजीको प्रणाम करने लगे। इससे देवाधिदेव महादेवने प्रसन्न होकर उनका शरीर पहले-जैसा कर दिया। तत्पश्चात् देवेश्वरने परम अद्भुत त्रिनेत्रधारी विग्रह धारण किया। उस समय उनके तेजसे तिरस्कृत हो सम्पूर्ण देवताओंने नेत्र बंद कर लिये। तब उन्होंने देवताओंको दिव्य दृष्टि प्रदान की, जिससे वे उनके दिव्य स्वरूपका दर्शन कर सके। तदनन्तर पार्वती देवीने अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंके देखते-देखते अपने हाथकी माला भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ा दी। यह देख सब देवता साधु-साधु कहने लगे। फिर उन लोगोंने भूमिपर मस्तक टेककर देवीसहित महादेवजीको प्रणाम किया। तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे पार्वती-परमेश्वरका विवाह सम्पन्न हुआ।

गौतमी गङ्गाका माहात्म्य

इसके अनन्तर दक्षयज्ञ-विध्वंसकी कथा, शरणागत दक्षपर भगवान् शङ्करकी कृपा, एकाम्रकक्षेत्र तथा श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा, मार्कण्डेय मुनिका चरित्र, भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा एवं दर्शनका फल आदि विविध विषयोंका वर्णन है। इसके बाद गौतमी गङ्गा (गोदावरी) तथा भागीरथी गङ्गाकी उत्पत्ति तथा गौतमी गङ्गाके माहात्म्यका विस्तृत वर्णन है। गौतमी गङ्गाके माहात्म्यका प्रसङ्ग किसी-किसी मुद्रित प्रतिमें अलग दिया गया है और किन्हीं-किन्हीं विद्वानोंका मत है कि यह ब्रह्मपुराणसे अलग है। हस्तलिखित प्रतियोंमें भी इसकी सर्वत्र उपलब्धि नहीं होती। फिर भी कई मुद्रित प्रतियोंके आधारपर हमने इसे ब्रह्मपुराणका ही अङ्ग मान लिया है। वास्तवमें यह ब्रह्मपुराणके अन्तर्गत है या नहीं—इसका निर्णय विद्वान् समीक्षक करेंगे।

कपोत-कपोतीका अद्भुत त्याग तथा अतिथि-सेवाका महत्त्व

गौतमी-माहात्म्यके अन्तर्गत कपोत-तीर्थके प्रसङ्गमें कपोत-दम्पतिका चरित्र बड़ा ही रोमाञ्चजनक एवं प्रभावोत्पादक है। अन्य महाभारतादि ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख मिलता है। कहते हैं, ब्रह्मगिरिपर एक बड़ा भयङ्कर व्याध रहता था। वह ब्राह्मणों, साधुओं, यतियों, गौओं, पक्षियों तथा मृगोंकी हत्या किया करता था। उस महापापी व्याधके मनमें सदा पापके ही संकल्प उठा करते थे। उसकी स्त्री और पुत्र भी वैसे ही क्रूर स्वभावके थे। एक दिन अपनी पत्नीकी प्रेरणासे वह घने जंगलमें घुस गया। वहाँ उस पापीने अनेक प्रकारके मृगों और पक्षियोंका वध किया। कितनोंको जीवित ही पकड़कर पिंजड़ेमें डाल दिया। इस प्रकार बहुत दूरतक घूम-फिरकर वह अपने घरकी ओर लौटा। रास्तेमें बड़े जोरकी वर्षा आयी। हवा भी तेज चलने लगी और पानीके साथ पत्थर भी गिरने लगे। व्याध राह चलते-चलते थक गया था। जलकी अधिकताके कारण मार्गका ज्ञान ही नहीं हो पाता था। जल, थल और गड्ढेकी पहचान असम्भव हो गयी थी। व्याध बड़ी चिन्तामें पड़ गया। उसे कोई ऐसा स्थान नहीं दिखायी दिया, जहाँ बैठकर वह वर्षा एवं वातसे त्राण पा सकता। इतनेमें ही उसे थोड़ी दूरपर एक बहुत बड़ा वृक्ष दिखायी दिया, जो शाखाओं एवं पल्लवोंसे सुशोभित था। वह उसीके नीचे आकर बैठ गया। उसके सारे वस्त्र भीग गये थे। उसे अब स्त्री और बच्चोंकी चिन्ताने आ घेरा। इतनेमें सूर्यास्त होनेको आ गया।

उसी वृक्षपर एक कपोत पक्षी अपनी स्त्री और बच्चोंके साथ रहता था। उस वृक्षपर रहते उसको कई वर्ष बीत गये थे। वह अपने परिवारके साथ बड़ा सुखी था। उसकी स्त्री कपोती बड़ी पतिव्रता थी। वह अपने पति एवं पुत्रोंके साथ उसी वृक्षके खोडरमें रहती थी। वहाँ हवा और पानीसे पूरा बचाव था। उस दिन दैववश कपोत और कपोती दोनों चारा चुगने बाहर गये हुए थे; परन्तु अकेला कपोत ही वापस आ पाया था। दैववश कपोती उसी व्याधके जालमें फँस गयी थी, किन्तु जीवित थी। कपोत कपोतीको लौटते न देख बड़ा चिन्तित हुआ। वर्षा अबतक जारी थी और सूर्य पश्चिममें डूब चुके थे। अब तो कपोत लगा रोने। उसे

क्या पता था कि उसकी कपोती वहीं पिंजड़ेमें बंद है। कपोतका करुण विलाप सुनकर कपोती पिंजड़ेमेंसे बोली—'प्राणनाथ! मैं यहीं पिंजड़ेमें बंद हूँ। आप मेरे लिये चिन्ता न करें।' कपोतीका यह वचन सुनकर कपोत वृक्षसे नीचे उतरा और कपोतीके पास चला आया। वहाँ उसने देखा कि उसकी प्रिया जीवित है और व्याध मृतककी भाँति निश्चेष्ट पड़ा है। तब उसने अपनी पत्नीको बन्धनसे मुक्त करनेका विचार किया। इसपर कपोतीने उन्हें रोकते हुए कहा—'स्वामिन्! इसके लिये कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप अपने धर्मपर दृढ़तापूर्वक आरूढ रहें। आप जानते हैं, ब्राह्मणोंके गुरु अग्नि हैं, ब्राह्मण सब वर्णोंका गुरु है, स्त्रियोंका गुरु उसका पति है और अभ्यागत सबका गुरु है। जो लोग अपने घरपर आये हुए अतिथिको वचनोंद्वारा सन्तुष्ट करते हैं, उनके उन वचनोंसे वाणीकी अधीश्वरी सरस्वती देवी प्रसन्न होती हैं; अतिथिको अन्न देनेसे इन्द्र तृप्त होते हैं; उसके चरण धोनेसे पितर, उसे भोजन करानेसे प्रजापति, उसकी सेवा-पूजासे लक्ष्मीसहित श्रीविष्णु तथा उसे सुखपूर्वक शयन करानेसे सम्पूर्ण देवता तृप्त होते हैं। अतः अतिथि सबके लिये परम पूज्य है। यदि सूर्यास्तके बाद थका-माँदा अतिथि घरपर आ जाय तो उसे देवता समझे; क्योंकि वह सब यज्ञोंका फलरूप है। थके हुए अतिथिके साथ गृहस्थके घरपर सम्पूर्ण देवता, पितर और अग्नि भी पधारते हैं। यदि अतिथि तृप्त हुआ तो उन्हें भी बड़ी प्रसन्नता होती है; और यदि वह निराश होकर चला गया तो वे भी निराश होकर ही लौटते हैं। अतः प्राणनाथ! आप सर्वथा दुःख छोड़कर शान्ति धारण करें और अपनी बुद्धिको शुभकर्ममें लगाकर धर्मका सम्पादन करें। दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकार और अपकार दोनों ही साधुपुरुषोंके विचारसे श्रेष्ठ हैं। उपकार करनेवालोंपर तो सभी उपकार करते हैं; अपकार करनेवालोंके साथ जो अच्छा बर्ताव करे, वही पुण्यका भागी बताया गया है।'

अतिथि-सेवाके लिये धनकी आवश्यकता नहीं है

कपोतीके इन धर्ममय वचनोंको सुनकर कपोतको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह बोला—'प्रिये! तुम्हारी बात बिल्कुल यथार्थ है। परन्तु इस सम्बन्धमें मुझे भी एक बात तुमसे कहनी है। वह यह है कि कोई हजार प्राणियोंका भरण-पोषण करता है, दूसरा दसका ही निर्वाह करता है और कोई ऐसा है, जो सुखपूर्वक केवल अपनी जीविका चला लेता है। परन्तु हमलोग तो ऐसे जीवोंमेंसे हैं, जो अपना ही पेट बड़े कष्टसे भर पाते हैं। कुछ लोग खाई खोदकर उसमें अन्न भरकर रखते हैं, कुछ लोग कोठेभर अन्नके धनी होते हैं और कितने ही घड़ोंमें धान भरकर रखते हैं। परन्तु हमारे पास तो उतना ही संग्रह रहता है, जितना हमारी चोंचमें आ जाय। शुभे! तुम्हीं बताओ, ऐसी दशामें मैं थके-माँदे अतिथिका आदर-सत्कार किस प्रकार करूँ?' कपोतीने कहा—'प्राणनाथ! अग्नि, जल, मीठी वाणी, तृण और काष्ठ आदि जिससे भी सम्भव हो, अतिथिकी सेवा करनी चाहिये।'

कपोत-दम्पतिका स्वर्ग-गमन

अपनी प्यारी स्त्रीका कथन सुनकर पक्षिराज कपोतने पेड़के शिखरपर पहुँचकर सब ओर देखा तो कुछ दूरीपर उसे आग दिखायी दी। वहाँ जाकर वह चोंचसे एक जलती हुई लकड़ी उठा लाया और व्याधके आगे रखकर उसने अग्नि प्रज्वलित की। फिर सूखी लकड़ियाँ, पत्ते और तिनके ला-लाकर वह आगमें डालने लगा। उसे देखकर सर्दीसे दुखी व्याधने जडवत् बने हुए अपने अङ्गोंको सेंका। इससे उसे बड़ा आराम मिला। कपोतीने देखा, व्याध क्षुधाकी आगमें जल रहा है; अतः उसने अपने स्वामीसे कहा—'नाथ! मुझे आगमें डाल दीजिये। मैं अपने शरीरसे इस व्याधको तृप्त करूँगी।' कपोतने कहा—'मेरे रहते तुम्हारा यह धर्म नहीं है। आज तो मुझे ही अतिथि-यज्ञ करने दो।' यों कहते हुए पत्नीके उत्तरकी प्रतीक्षा न करके कपोतने भगवत्-स्मरणपूर्वक अग्निकी तीन बार प्रदक्षिणा की, फिर व्याधसे यह कहता हुआ अग्निमें कूद पड़ा कि 'मुझे सुखपूर्वक उपयोगमें लाओ।' कपोतके इस दैवी व्यवहारको देखकर व्याध तो लज्जाके मारे गड़ गया और अपने मनुष्य-जीवनको धिक्कारने लगा। इसपर व्याधसे कपोतीने कहा—'महाभाग! अब मुझे छोड़ दो, मैं अपने पतिदेवका सहगमन करूँगी।' उसकी बात सुनकर व्याध हक्का-बक्का-सा रह गया और उसने तुरंत ही कपोतीको बन्धनमुक्त कर दिया। व्याधके देखते-देखते कपोतीने भी अपने पतिके मार्गका ही अनुसरण किया। उसने पृथ्वी, देवता, गङ्गा तथा वनस्पतियोंको नमस्कार किया और अपने बच्चोंको सान्त्वना देकर व्याधसे कहा—'महाभाग! तुम्हारी ही कृपासे मुझे यह अनुपम सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं पतिके साथ स्वर्गलोकमें जाती हूँ।' यों कहकर वह पतिव्रता कपोती आगमें प्रवेश कर गयी। उसी समय आकाशमें जय-जयकारकी ध्वनि गूँज

उठी! तत्काल ही सूर्यके समान तेजस्वी अत्यन्त सुन्दर विमान आकाशसे उतर आया। कपोत और कपोती दोनों देवताओंके समान दिव्य शरीर धारण करके उसपर आरूढ़ हुए और आश्चर्यचकित व्याधसे प्रसन्न होकर बोले—'महामते! हम देवलोकमें जाते हैं और तुम्हारी आज्ञा चाहते हैं। तुम अतिथिके रूपमें हम दोनोंके लिये स्वर्गकी सीढ़ी बनकर आ गये। तुम्हें नमस्कार है।'

गोदावरी-स्नानका माहात्म्य

उन दोनोंको श्रेष्ठ विमानपर बैठे देख व्याधने भी अपना धनुष और पिंजड़ा फेंक दिया और हाथ जोड़कर कहा—'महाभागो! मेरा त्याग न करो। मैं अज्ञानी हूँ। मुझे भी कुछ उपदेश दो। मैं तुम्हारे लिये सम्मान्य अतिथि होकर आया था, इसलिये मेरे उद्धारका भी उपाय बताते जाओ।' उन दोनोंने कहा—'व्याध! तुम्हारा कल्याण हो, तुम भगवती गोदावरीके तटपर जाओ और उन्हींको अपना पाप भेंट कर दो। वहाँ पंद्रह दिनोंतक डुबकी लगानेसे तुम पापमुक्त हो जाओगे। पापमुक्त होकर जब तुम पुनः गौतमी गङ्गामें स्नान करोगे, तब अश्वमेध यज्ञका फल पाकर अत्यन्त पुण्यवान् हो जाओगे।' उन दोनोंकी बात सुनकर व्याधने वैसा ही किया। फिर वह भी दिव्यरूप धारण करके एक श्रेष्ठ विमानपर जा बैठा। तभीसे वह स्थान कपोततीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ स्नान, दान, पितृ-तर्पण, जप, यज्ञ आदि कर्म करनेपर वे अक्षय फलको देनेवाले बन जाते हैं।

त्यागकी महिमा

अतिथि-सत्काररूप गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये उस कपोत-दम्पतिने जो अनुपम एवं आदर्श-त्याग किया, वह जगत्के इतिहासमें अद्वितीय है। पशु-पक्षियोंकी तो बात ही क्या, मनुष्योंमें भी वैसी त्यागबुद्धि होना अत्यन्त कठिन है। शिबि आदि थोड़े-से नररत्नोंमें ही ऐसे त्यागका उदाहरण मिलता है। जिस देशमें और जिस धर्मकी छत्रछायामें पले हुए पक्षियोंमें भी ऐसा अद्भुत त्याग पाया जाता है, उस देश और उस धर्मकी कहाँतक बड़ाई की जाय। वास्तवमें त्याग ही उन्नति एवं सुखका मूल है। जगत्ने आज त्यागके आदर्शको छोड़ दिया, इसीलिये वह दुःखोंका केन्द्र बना हुआ है। त्यागसे मनुष्य किसी प्रकार भी घाटेमें नहीं रहता। बीज बोये जाते हैं बहुत थोड़े, परंतु उनसे दाने कई गुने पैदा हो जाते हैं। फिर दोनोंका उगना तो हमारे प्रारब्धपर निर्भर है, किंतु त्यागका फल तो अवश्य होता है। कपोत-कपोतीने त्याग तो किया था कपोत-शरीरका, जो सब प्रकारसे अधम और थोड़े दिन रहनेवाला था और उसमें वे सर्वथा कष्टका ही अनुभव करते थे। परन्तु बदलेमें उन्हें मिले चिरकालतक रहनेवाले देवशरीर और दिव्यभोग। फिर भी मनुष्यको विश्वास नहीं होता, इसीलिये वह थोड़े लाभका त्याग न करके महान् लाभसे वञ्चित रह जाता है। इस आख्यानसे यह भी सिद्ध हो गया कि किसीकी सेवा-सत्कारके लिये विपुल धनकी आवश्यकता नहीं है। जो भी जिसके पास है, उसीसे सेवा हो सकती है। सेवामें प्रधान वस्तु भाव है। त्यागकी भावना होनेसे थोड़ी-सी भी सेवा महान् फलदायक हो जाती है। सेवामें ऊँची बात यह है कि सेवक सेवा स्वीकार करनेवालेका उपकार माने; यह न समझे कि मैं सेवा करके किसीका उपकार कर रहा हूँ। विचार करके देखा जाय तो बात भी ऐसी ही है। व्याध यदि कपोत-कपोतीके यहाँ अतिथि बनकर न आता और उन्हें सेवाका अवसर न देता तो उन्हें वह दिव्य सुख कैसे प्राप्त होता। आतिथ्यके लिये पात्रापात्रका भी विचार नहीं किया जाता। अतिथि चाहे वर्णमें नीचा हो, पापीसे भी पापी हो, हिंसक हो, यहाँतक कि अपना अपकारी अथवा शत्रु भी क्यों न हो, उसकी बिना विचारे तन-मन-धनसे सेवा करना गृहस्थका परम धर्म है। अतिथि और शरणागत—ये दो चाहे कैसे भी हों, ये सर्वथा हमारी सेवा एवं रक्षाके पात्र होते हैं। अतिथि और शरणागतके लिये प्राणोंका त्याग भी करना पड़े तो वह थोड़ा है; बल्कि उनके लिये त्याग न करनेमें बड़ी हानि और पाप बताया गया है। हमारे प्राचीन शास्त्रोंका ही अनुवाद करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने यहाँतक कह दिया है—

> सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
> ते नर पाँवर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

हिंदू-धर्मकी महत्ता

शरणागत पापी है अथवा उसकी रक्षा करनेमें हमारी लौकिक हानि होगी—यह विचारकर उसकी रक्षासे मुँह मोड़नेवाला स्वयं पापी ही नहीं, मनुष्यके वेषमें राक्षस है! जिस धर्ममें अतिथि-सेवा और शरणागतकी रक्षापर इतना जोर दिया गया हो, उस धर्मकी तुलनामें कौन धर्म ठहर सकता है। अतिथि-सेवा ही नहीं जीवमात्रकी सेवाको हमारे यहाँ महायज्ञ—भगवान्‌की बहुत बड़ी पूजा माना गया है और उसे अवश्यकर्तव्य बताया गया है। पञ्चमहायज्ञ और क्या हैं? उनमें देवताओंसे लेकर छोटे-से-छोटे जीवतककी

सेवाका ही तो विधान है। प्राणियोंकी ही नहीं, पेड़-पौधोंतककी सेवा एवं रक्षा तथा भूमि एवं पर्वतों तथा चन्द्र और सूर्य आदि ग्रहोंतककी पूजाका हिंदू-धर्ममें विधान है, जिन्हें आजका जगत् जड़ मानकर अवहेलना करता है। आज लोग यह कहकर हमारी खिल्ली उड़ाते हैं कि हिंदू पत्थर पूजते हैं; परन्तु इस रहस्यको कोई नहीं जानता कि हिंदू चेतन जीवमात्रको ही नहीं, कंकड़ और पत्थर तथा अग्नि और जल-जैसी जड वस्तुओंमें भी भगवान्‌को ही देखते हैं, उनके रूपमें भी भगवान्‌को ही पूजते हैं। हमारे भगवान् किसी देशविशेष अथवा वस्तुविशेषमें सीमित नहीं, वे तो अणु-अणुमें व्याप्त हैं। भगवान् और सीमित, यह तो वदतोव्याघात है। भगवान् ऐसे नहीं, वैसे हैं; वे निराकार हैं, साकार नहीं हो सकते; वे मनुष्य अथवा पशु-पक्षीके रूपमें अवतरित नहीं हो सकते—यह कहना तो भगवान्‌पर शासन करना हुआ। जो लोग भगवान्‌को इतना सीमित मानते हैं, वे तो दयाके पात्र हैं। भगवान् उनपर दया करें। भगवान् क्या हैं, इसे तो भगवान् ही जान सकते हैं, दूसरे किसकी सामर्थ्य है। हम तो इतना ही कह सकते हैं—वे सब कुछ हैं, सबसे परे हैं और सबमें भरे हैं। जिसे हम असत् कहते हैं, वह भी वे ही हैं। वे-ही-वे हैं। उनके सिवा कुछ नहीं। यही हिंदू-धर्म है।

धर्मनिष्ठाका अपूर्व उदाहरण

चक्षुस्तीर्थके माहात्म्यके प्रसङ्गमें मणिकुण्डल नामक वैश्यका चरित्र बड़ा ही उदात्त है। गौतमीके दक्षिण-तटपर भौवन नामका एक विख्यात नगर था। उसमें गौतम नामका एक ब्राह्मण रहता था। गौतमकी एक वैश्यके साथ मित्रता हो गयी। वैश्यका नाम मणिकुण्डल था। इनमें एक दरिद्र था, दूसरा धनी। एक बार गौतमकी प्रेरणासे दोनों मित्रोंने धन कमानेके उद्देश्यसे विदेश जानेका निश्चय किया। मणिकुण्डलने अपने घरसे बहुत-से रत्न लाकर गौतमको दिये और कहा—'मित्र! इस धनसे हमलोग सुखपूर्वक देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करेंगे और धन कमाकर फिर घर लौट आयेंगे।' इस प्रकार आपसमें सलाह करके माता-पिताको सूचना दिये बिना ही दोनों घरसे निकल पड़े। किंतु मणिकुण्डलके रत्नोंको देखकर गौतमके मनमें पाप समा गया। वह जिस किसी प्रकार उन रत्नोंको हड़प जाना चाहता था। एक बार बातों-ही-बातोंमें दोनोंमें परस्पर विवाद छिड़ गया। गौतम कहता था—'पापसे ही जीवोंकी उन्नति होती है और वे मनोवाञ्छित सुख प्राप्त करते हैं। संसारमें धर्मात्मालोग प्रायः दुखी ही देखे जाते हैं। अतः एकमात्र दुःखको पैदा करनेवाले धर्मसे क्या लाभ।' इसके विपरीत वैश्य कहता था—'नहीं-नहीं, ऐसी बात कदापि नहीं है। वस्तुतः धर्ममें ही सुख है। पापमें तो केवल दुःख, भय, शोक, दरिद्रता और क्लेश ही रहते हैं। जहाँ धर्म है, वहीं मुक्ति है।' इस प्रकार विवाद करते हुए दोनोंमें यह शर्त लगी कि जिसका पक्ष श्रेष्ठ सिद्ध हो, वह दूसरेका धन ले ले। इस प्रकारकी शर्त करके दोनों जो भी मिलता था, उससे यही पूछते थे—'पृथ्वीपर धर्म बलवान् है या अधर्म?' इसपर किसीने उनसे यह कह दिया—'जो धर्मके अनुसार चलते हैं, उन्हें दुःख भोगना पड़ता है और इसके विपरीत बड़े-बड़े पापी मनुष्य सुखी देखे जाते हैं।' यह निर्णय सुनकर वैश्यने अपना सारा धन ब्राह्मणको दे दिया। किंतु मणिकुण्डलकी धर्ममें दृढ़ निष्ठा थी। बाजी हार जानेपर भी वह बराबर धर्मकी ही प्रशंसा करता रहा।

तब ब्राह्मणने कहा—'अच्छा, तो अब दोनों हाथोंकी बाजी लगायी जाय। जो जीत जाय, वह दूसरेके हाथ काट ले।' वैश्यने यह शर्त भी मंजूर कर ली। फिर दोनोंने जाकर पहलेकी ही भाँति लौकिक मनुष्योंसे इसका निर्णय कराया। निर्णय ज्यों-का-त्यों रहा। तब गौतमने मणिकुण्डलके दोनों हाथ काट लिये और उससे पूछा—'मित्र! अब क्या कहते हो?' मणिकुण्डल अपने निश्चयपर अटल था। उसने कहा—'भाई! मेरे प्राण कण्ठतक आ जायँ, तब भी मैं धर्मको ही श्रेष्ठ मानता रहूँगा। धर्म ही देहधारियोंकी माता, पिता, सुहृद् और बन्धु है।' इस प्रकार दोनोंमें विवाद चलता रहा। ब्राह्मण धनवान् हो गया और वैश्य धनके साथ-साथ अपने दोनों हाथ भी खो बैठा। धर्मपर दृढ़ रहनेवालोंको प्रारम्भमें इसी प्रकार कष्ट उठाने पड़ते हैं। इस तरह भ्रमण करते हुए दोनों गौतमी गङ्गाके तटपर भगवान् योगेश्वरके स्थानमें आ पहुँचे। वहाँ पहुँचनेपर फिर दोनोंमें विवाद आरम्भ हो गया। वैश्य वहाँ भी धर्मकी ही प्रशंसा करता रहा। इससे ब्राह्मणको बड़ा क्रोध हुआ। वह वैश्यपर आक्षेप करते हुए बोला—'धन चला गया। दोनों हाथ कट गये। अब केवल तुम्हारे प्राण बाकी हैं। यदि फिर मेरे मतके विपरीत कोई बात मुँहसे निकाली तो मैं तलवारसे तुम्हारा सिर उतार लूँगा।' वैश्य हँसने लगा। उसने पुनः गौतमको चुनौती देते हुए कहा—'मैं तो धर्मको ही बड़ा मानता हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, कर लो। जो ब्राह्मण, गुरु, देवता, वेद, धर्म और भगवान् विष्णुकी निन्दा करता

है, वह पापाचारी मनुष्य पापरूप है। वह स्पर्श करनेयोग्य नहीं है। धर्मको दूषित करनेवाले उस पापात्मा मनुष्यका परित्याग कर देना चाहिये।' तब ब्राह्मणने कुपित होकर कहा—'यदि तुम धर्मकी प्रशंसा करते हो तो हम दोनोंके प्राणोंकी बाजी लग जाय।' वैश्यने कहा—'ठीक है।' फिर दोनोंने साधारण लोगोंसे प्रश्न किया, परंतु लोगोंने पहले-जैसा ही उत्तर दिया। तब ब्राह्मणने वहीं गौतमीके तटपर भगवान् योगेश्वरके सामने वैश्यको गिरा दिया और उसकी आँखें निकाल लीं। फिर कहा—'वैश्य! प्रतिदिन धर्मकी प्रशंसा करनेसे ही तुम इस दशाको पहुँचे हो। तुम्हारा धन गया, आँखें गयीं और दोनों हाथ भी जाते रहे। मित्र! अब तुमसे विदा लेता हूँ। फिर कभी भूलकर भी धर्मकी प्रशंसा न करना।' यों कहकर क्रूर गौतम चला गया।

धर्मनिष्ठाका अमृत-मय फल

गौतमके चले जानेपर वैश्यप्रवर मणिकुण्डल धन, बाहु और नेत्रोंसे रहित होकर शोकग्रस्त हो गया। तथापि वह निरन्तर धर्मका ही स्मरण करता रहा। अनेक प्रकारकी चिन्ता करते हुए वह भूतलपर निश्चेष्ट होकर पड़ा था। उसके हृदयमें उत्साह नहीं रह गया था। वह शोक-सागरमें डूबा हुआ था। दिन बीता, रजनीका आगमन हुआ और चन्द्रमण्डलका उदय हो गया। उस दिन शुक्लपक्षकी एकादशी थी। एकादशीको वहाँ लङ्कासे विभीषण आया करते थे। उस दिन भी आये; आकर उन्होंने पुत्र और राक्षसोंसहित गौतमी गङ्गामें स्नान किया और योगेश्वर भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा की। विभीषणका पुत्र भी विभीषणके ही समान धर्मात्मा था। उसे लोग वैभीषणि कहते थे। उसकी दृष्टि उस वैश्यपर पड़ी। वैश्यका सारा वृत्तान्त जानकर उसने अपने पिता विभीषणसे कहा। लङ्कापतिने कहा—'पुत्र! इसी जगह विशल्यकरणी नामकी ओषधि है। उसे ले आकर तुम भगवान्का स्मरण करते हुए इसके हृदयपर रख दो। उसका स्पर्श होते ही वैश्यकी आँखें और हाथ फिर ज्यों-के-त्यों हो जायँगे।' वैभीषणि अपने पितासे ओषधिका परिचय प्राप्तकर उसकी एक शाखा ले आये और विभीषणके कथनानुसार उसे वैश्यके हृदयपर रख दिया। वैश्य तत्काल पुनः हाथ और नेत्रोंसे युक्त हो गया। मणि, मन्त्र और ओषधियोंके प्रभावको कोई नहीं जानता। वैश्यने धर्मका चिन्तन करते हुए गौतमी गङ्गामें स्नान किया और योगेश्वर भगवान् विष्णुको नमस्कार करके पुनः आगे बढ़ा। उसने अपने साथ ओषधिकी टूटी हुई शाखा भी ले ली थी।

यतो धर्मस्ततो जयः

देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करता हुआ मणिकुण्डल एक राजधानीमें पहुँचा, जो महापुरके नामसे विख्यात थी। वहाँके राजा महाराजके नामसे प्रसिद्ध थे। राजाके कोई पुत्र नहीं था, एक पुत्री थी; उसकी भी आँखें नष्ट हो चुकी थीं। राजाने यह निश्चय कर लिया था कि 'देवता, दानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निर्गुण या गुणवान्—कोई भी क्यों न हो, मैं उसीको यह कन्या दूँगा, जो इसकी आँखें अच्छी कर देगा। कन्या ही नहीं, यह राज्य भी उसीका होगा।' महाराजने यह घोषणा सब ओर करा दी थी। वैश्यने वह घोषणा सुनकर कहा—'मैं निश्चय ही राजकुमारीकी खोयी हुई आँखें पुनः ला दूँगा।' राजकर्मचारी शीघ्र ही वैश्यको महाराजके पास ले गया और उसने उस काष्ठका स्पर्श कराके राजकुमारीके नेत्र ठीक कर दिये। राजाको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मणिकुण्डलका परिचय पूछा। तब मणिकुण्डलने अपना सारा वृत्तान्त राजासे कह सुनाया। राजाने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कन्याके साथ ही अपना राज्य भी मणिकुण्डलको दे दिया। इस प्रकार मणिकुण्डलको प्रारम्भमें कष्ट होनेपर भी अन्तमें उसकी धर्मनिष्ठाने उसे न केवल उसकी आँखें और हाथ ही वापस दिलाये, अपितु उसे राज्य भी दिलवाया। इसीलिये शास्त्रोंने कहा है—'यतो धर्मस्ततो जयः'। जहाँ धर्म है, वहाँ विजय होकर रहती है।

शत्रुके प्रति उपकार

परंतु मणिकुण्डलको राज्य पाकर भी मित्रके बिना संतोष नहीं हुआ। वह रात-दिन यही कहा करता था कि मित्रके बिना न तो राज्य अच्छा है और न सुख ही अच्छा लगता है। इस प्रकार वह सदा गौतम ब्राह्मणका ही चिन्तन किया करता था। इस पृथ्वीपर उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए साधु-पुरुषोंका यही लक्षण है कि अहित करनेवालोंके प्रति भी उनके मनमें सदा करुणा ही भरी रहती है। एक दिन महाराज मणिकुण्डल वनमें गये हुए थे। वहाँ उन्होंने अपने पूर्वमित्र गौतम ब्राह्मणको देखा। पापी जुआरियोंने उसका सारा धन छीन लिया था। धर्मज्ञ मणिकुण्डलने अपने ब्राह्मण मित्रको साथ ले लिया, उसका विधिपूर्वक पूजन किया और धर्मका सब प्रभाव भी बतलाया। शत्रुके प्रति ऐसा सद्व्यवहार धार्मिक पुरुष ही कर सकते हैं।

इस प्रकार गौतमी गङ्गासे सम्बद्ध तीर्थोंका माहात्म्य वर्णन करके अनन्त वासुदेवकी महिमा कही गयी है। फिर कण्डुमुनिका चरित्र एवं उनपर भगवान् पुरुषोत्तमकी कृपाका वर्णन करके पुरुषोत्तम-क्षेत्रके माहात्म्यका उपसंहार किया गया है। इसके अनन्तर भगवान्‌के अवतारका रहस्य बतलाते हुए श्रीकृष्ण-चरित्रका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। फिर भगवान्‌के अन्य मुख्य अवतारोंका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन करके यमलोकके मार्ग, यमपुरीके चारों द्वार तथा विविध नरकोंका वर्णन, धर्मकी महिमा, भगवद्भक्तिका प्रभाव, अन्नदानका माहात्म्य तथा श्राद्ध-विषयक आवश्यक बातें बतलायी गयी हैं। इसके बाद गृहस्थोचित सदाचार एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्यका वर्णन करते हुए वर्णाश्रम-धर्मका निरूपण किया गया है। फिर स्वर्ग और नरकमें ले जानेवाले धर्माधर्मका स्वरूप बताकर भगवान् वासुदेवके माहात्म्यके प्रसङ्गमें एकादशीके दिन रात्रिमें जागरणपूर्वक भगवद्गुण-गानकी महिमा कहते हुए एक भगवद्भक्त चाण्डालका आख्यान वर्णित हुआ है। अवन्तिका-पुरी (उज्जैन) में एक भक्त चाण्डाल रहता था, जो संगीतमें कुशल था। वह उत्तम वृत्तिसे धन पैदा करके अपने कुटुम्ब-के लोगोंका भरण-पोषण किया करता था। भगवान् विष्णुके प्रति उसकी बड़ी भक्ति थी। वह नियम-पालनमें बड़ा दृढ़ था। प्रत्येक मासकी एकादशी तिथिको वह नियमपूर्वक उपवास करता और रात्रिके समय भगवान्‌के मन्दिरके समीप जाकर उन्हें भगवल्लीला-सम्बन्धी गीत सुनाया करता था। द्वादशीको प्रातःकाल भगवान्‌को प्रणाम करके अपने घर लौटता और पहले दामाद, भानजे और कन्याओंको भोजन कराके पीछे स्वयं सपरिवार भोजन करता था। इस प्रकार करते हुए उसके जीवनका अधिकांश भाग बीत चुका था।

एकादशीको रात्रि-जागरणका माहात्म्य

एक बार चैत्र कृष्णपक्षकी एकादशीको वह भगवान् विष्णुकी सेवाके लिये जंगली पुष्पोंका चयन करनेके निमित्त भक्तिपूर्वक उत्तम वनमें गया। क्षिप्राके तटपर महान् वनके भीतर एक बहेड़ेका पेड़ था। उसके नीचे पहुँचनेपर किसी राक्षसने उस चाण्डालको देखा और भक्षण करनेके लिये पकड़ लिया। यह देख उस चाण्डालने राक्षससे कहा—'भाई! आज तुम मुझे न खाओ, कल प्रातःकाल खा लेना। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ, मैं स्वयं तुम्हारे पास लौट आऊँगा। राक्षस! आज मेरा बहुत बड़ा कार्य है, अतः मुझे छोड़ दो। मुझे भगवान् विष्णुकी सेवाके लिये रात्रिमें जागरण करना है। तुम्हें उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये।' राक्षसने उसकी बातपर विश्वास करके उसे छोड़ दिया। तब चाण्डाल फूल लेकर भगवान् विष्णुके मन्दिरपर आया। उसने सभी फूल ब्राह्मणको दे दिये। ब्राह्मणने उन्हें जलसे धोकर उनके द्वारा भगवान्‌का पूजन किया और अपने घरकी राह ली। किंतु चाण्डालने मन्दिरके बाहर ही भूमिपर बैठकर उपवासपूर्वक गीत गाते हुए रातभर जागरण किया। रात्रि बीतनेपर उसने स्नान करके भगवान्‌को प्रणाम किया। फिर अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये वह राक्षसके पास चला आया।

भक्ति-निष्ठाका अपूर्व उदाहरण

चाण्डालको आया देख ब्रह्मराक्षसके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उसने चाण्डालसे उसकी उपासना-का सारा हाल जानकर कहा—'भैया! तुम्हें बड़ा पुण्य होगा, तुम अपने एक रातके जागरणका फल मुझे दे दो। ऐसा करनेसे तुम्हें छुटकारा मिल सकता है, अन्यथा तुम्हें मैं कदापि नहीं छोड़नेका।' चाण्डालने कहा—'निशाचर! मैंने तुम्हें अपना शरीर अर्पण कर दिया है। अतः अब दूसरी बात करनेसे क्या लाभ। तुम मुझे इच्छा-नुसार खा जाओ।' तब राक्षसने फिर कहा—'अच्छा, रातके दो ही पहरके जागरण एवं संगीतका पुण्य मुझे दे दो। तुम्हें मुझपर भी कृपा करनी चाहिये।' यह सुनकर चाण्डालने राक्षससे कहा—'यह कैसी बेसिर-पैरकी बात करते हो। मुझे इच्छानुसार खा लो। मैं तुम्हें अपने जागरणका पुण्य नहीं दूँगा।' चाण्डालकी बात सुनकर ब्रह्मराक्षसने कहा—'भाई! तुम तो अपने धर्म-कर्मसे सुरक्षित हो; कौन ऐसा अज्ञानी और दुष्ट-बुद्धिका पुरुष होगा, जो तुम्हारी ओर ताकने, तुम-पर आक्रमण करने अथवा तुम्हें पीड़ा देनेका साहस करेगा। महाभाग! तुम मुझपर कृपा करके एक ही पहरके जागरणका पुण्य दे दो, अथवा अपने घर लौट जाओ।' चाण्डालने फिर उत्तर दिया—'न तो मैं अपने घर लौटूँगा और न तुम्हें किसी तरह एक यामके जागरणका पुण्य ही दूँगा।' यह सुनकर ब्रह्मराक्षस हँस पड़ा और बोला—'भाई! रात्रि व्यतीत होते समय जो तुमने अन्तिम गीत गाया हो, उसीका फल मुझे दे दो और पापसे मेरा उद्धार करो।'

भक्तकी निर्भयता

तब चाण्डालने उससे कहा—'यदि तुम आजसे किसी भी प्राणीका वध न करो तो मैं तुम्हें अपने पिछले गीतका पुण्य दे सकता हूँ; अन्यथा नहीं।' 'बहुत अच्छा' कहकर ब्रह्मराक्षसने

भक्त चाण्डालकी राक्षसपर कृपा

उसकी बात मान ली। तब चाण्डालने उसे आधे मुहूर्तके जागरण एवं गानका फल दे दिया। उसे पाकर ब्रह्मराक्षसने चाण्डालको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर वह पृथूदक तीर्थकी ओर चल दिया। वहाँ निराहार रहनेका संकल्प लेकर उसने प्राण छोड़ दिये। उस एक गीतके फलसे उसका राक्षस-योनिसे उद्धार हो गया। इधर चाण्डालके मनमें भी इस घटनासे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने अपनी पत्नीकी रक्षाका भार पुत्रोंपर डालकर स्वयं पृथ्वीकी परिक्रमा आरम्भ कर दी। फिर पापरहित हो उसने उत्तम गति प्राप्त की।

इस आख्यानसे हमें कई प्रकारकी शिक्षाएँ मिलती हैं।

भक्ति और मर्यादा

पहली बात तो यह है कि भगवान्की भक्तिमें नीच-ऊँच सबका समान अधिकार है। भगवान्का द्वार सबके लिये समानरूपसे खुला है। किंतु भक्तिके साथ-साथ जीविका भी विशुद्ध होनी चाहिये। भक्तिका अर्थ यह नहीं कि भक्त चाहे जो कुछ करे। आज हमारे अछूत भाइयोंको मन्दिरोंमें घुसानेका तो सभी लोग प्रयत्न करते हैं; परंतु उनका जीवन पवित्र हो, उनके दुर्गुण-दुराचार दूर हों—इसकी बहुत कम लोगोंको परवा है। यहाँ एक बात और समझ लेनेकी है। भक्ति और चीज है, सामाजिक व्यवस्था एवं शास्त्रीय मर्यादा दूसरी चीज है। भक्ति करनेका अधिकार तो सबको है, परंतु शास्त्रीय मर्यादाकी रक्षा करते हुए। भक्तिका जहाँ प्रश्न है, वहाँ एक भगवद्भक्त चाण्डालको एक अभक्त ब्राह्मणकी अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। परंतु किसी चाण्डाल भक्तको यह अधिकार नहीं कि वह शास्त्रकी मर्यादाका लोप कर दूसरे भक्तोंके साथ बैठकर ही भक्ति करे। यह तो भक्ति नहीं, दुराग्रह है। भक्त तो सदा अपनेको छोटा—तृणसे भी लघु—मानता है, वह अभिमानसे कोसों दूर भागता है। इसीलिये चाण्डाल भगवान्के लिये पुष्प तोड़कर तो लाता था, परंतु उन्हें भगवान्पर स्वयं चढ़ानेका आग्रह छोड़कर उन्हें ब्राह्मणको दे देता था और ब्राह्मण देवता उन्हें पवित्र करके उपयोगमें लेते थे। इसी प्रकार वह मन्दिरके अंदर जानेका आग्रह न करके बाहर जमीनपर बैठकर ही उन्हें गान सुनाया करता था। ऐसा करनेसे चाण्डालकी भक्तिमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आती थी। भगवान् तो ऐसे भक्तके मर्यादा, प्रेम एवं विनयसे उलटे प्रसन्न होते हैं। वे तो हमारा हृदय देखते हैं।

भक्तके लिये यह भी आवश्यक नहीं कि वह घर छोड़कर ही भक्ति करे।

भक्तिमें नियम-पालनका महत्त्व

घरमें रहकर अपने कुटुम्बका न्यायोचित रीतिसे भरण-पोषण करना भी भक्तिका ही एक अङ्ग है, ऐसे भक्तपर भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। यदि गृहत्याग करना आवश्यक ही हो तो अपने आश्रितजनोंकी रक्षाका समुचित प्रबन्ध करके ही ऐसा करना उचित है। नियम-पालन भी भक्तिमें बड़ा सहायक है। इससे हमारी तत्परताका पता लगता है कि भगवान्की ओर पैर बढ़ानेके लिये हम कहाँतक तैयार हैं। जहाँ अन्य वर्णोंके लिये द्वादशीके दिन ब्राह्मणको खिलाकर स्वयं खानेका विधान है, वहाँ चाण्डालके लिये यही आज्ञा है कि वह अपने दामाद, भानजों तथा कन्याओंको भोजन कराके फिर स्वयं भोजन करे। उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि वह औरोंकी भाँति ब्राह्मणको ही जिमानेका आग्रह करे। सत्य आदि दैवीगुण भी भक्तमें स्वाभाविक ही रहते हैं। सारांश यह कि भक्तके लिये ईमानदार एवं बातका धनी होना परमावश्यक है। क्योंकि भक्तकी बदनामी भगवान्पर आती है।

भक्तका सबसे बड़ा गुण है—उसकी निर्भयता। जो

भगवच्छरणागतिसे निर्भयता तथा भक्त-संगकी अमोघता

भगवान्के शरण हो गया, उसे फिर भय कैसा! वह किसी भी मूल्यपर अपनी भक्तिको नहीं बेचेगा। वह तुच्छ प्राणोंके लिये भक्तिका सौदा नहीं करेगा। असलमें तो जिसने भक्तिका कवच धारण कर रक्खा है, उसका जगत्में कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। भगवान्की सारी शक्ति उसकी रक्षामें नियुक्त रहती है। वस्तुतः हम भगवान्पर सच्चे अर्थमें निर्भर ही नहीं करते। नहीं तो, किसी प्रकारका भय हमारे पासतक भी नहीं फटक सकता। हमें दुःख और भय तभीतक सताते हैं, जबतक हम वास्तवमें भगवान्को अपना रक्षक नहीं मान लेते। भगवान्के शरण हो जानेके बाद किसीकी क्या मजाल है जो हमारी ओर आँख उठाकर भी देखे। मृत्युका भय ही सबसे बड़ा भय है; जो मृत्युसे निडर हो गया, वह जगत्से निडर हो जाता है। सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा इस आख्यानसे हमें यह मिलती है कि सच्चे भगवद्भक्तका संग अमोघ होता है। वह जिस किसीको प्राप्त हो गया, उसके कल्याणकी मानो बीमा हो गयी। भक्त चाण्डालके सङ्गका ही यह प्रभाव था कि उस क्रूर ब्रह्मराक्षसका मन ही पलट गया। उसकी भगवद्भक्तिमें प्रवृत्ति हो गयी और वह उस चाण्डालके आधे मुहूर्तके जागरणका पुण्य पाकर कृतार्थ हो गया।

भक्तकी मृदुता

निर्भय होनेके साथ-साथ भक्तका हृदय बड़ा कोमल भी होता है। शरणागतके लिये वह बड़े-से-बड़ा त्याग करनेमें भी संकोच नहीं करता। अवश्य ही उसे कोई धोखा नहीं दे सकता और न डरा-धमकाकर ही कोई उससे काम निकाल सकता है। भक्त पिघलते हैं तो हमारी दीनतापर, हमारी सच्ची लगनपर ही। अपनी ईमानदारी, अपनी सच्ची लगनका विश्वास दिलाकर ही हम उनकी कृपा एवं सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

इसके अनन्तर नैमित्तिक, प्राकृत एवं आत्यन्तिक—

ब्रह्मपुराणका उपसंहार

तीन प्रकारके प्रलयका तथा आध्यात्मिक आदि त्रिविध तापोंका वर्णन करके भगवत्तत्त्व-की व्याख्या की गयी है। उसके पश्चात् योग और सांख्यका वर्णन करके कर्म तथा ज्ञानका अन्तर बतलाते हुए परमात्मतत्त्वका निरूपण तथा अध्यात्मज्ञान और उसके साधनोंका वर्णन किया गया है और अन्तमें क्षर-अक्षर तत्त्वोंका विवेचन करके ग्रन्थका उपसंहार किया गया है। इस प्रकार मार्कण्डेय-पुराणकी भाँति ब्रह्मपुराणमें भी बड़े ही अमूल्य उपदेशोंका संग्रह है। सबको इन उपदेशोंसे लाभ उठाना चाहिये।

समाधान

(लेखक—श्रीविश्वबन्धुजी सत्यार्थी)

हाहाकार मच रहा है; स्त्री-पुरुष बड़ी तेजीसे भाग रहे हैं, कोई लोहू-लुहान हो रहा है, कोई चीख रहा है। कैसी भयानक स्थिति है, भयके मारे रोंगटा थर्रा रहा है। किसको जीवन प्यारा नहीं ? सभीको प्यारा है। यह रणचण्डीका नृत्य किसलिये हो रहा है; प्रभु ही तो यह नाच नहीं नाच रहे हैं? यह क्या बला है ? ऐसा पिशाच-नाच कभी नहीं देखा। कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ ? इस शङ्कासुरने तो मुझे भी क्षुब्ध कर दिया! कहाँ गया ज्ञानका अभिमान! एक-आत्मीयता गर्तमें समा गयी, अभेददर्शनको भेदासुर निगल गया! मेरी परीक्षाके लिये ही तो यह नृत्य नहीं हो रहा है ? किंकर्तव्यविमूढ हो गया हूँ। कर्तव्य-का तो ज्ञानाग्निने ही भक्षण कर लिया था, अब कहाँसे करने-न-करनेकी भावना जाग्रत् हो उठी ? मालूम होता है ज्ञानाभास था, वास्तवमें कोई स्थायी स्थिति नहीं थी। इस प्रकार सैकड़ों मेरे भ्राता इस ज्ञानाभासकी भ्रमान्ध आँधीमें अंधे हो रहे हैं। अब छूरा उनकी कोखमें घुसेड़ दिया जायगा। सारा अभिमान खाकमें मिल जायगा। आओ, अब रणक्षेत्रमें इस ज्ञानकी परीक्षा होने दो। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'के वाक्यको सही करके दिखला दो। नहीं तो आजसे ज्ञानकी मिथ्या चर्चा न करना, सबसे प्रथम दैवीसम्पत्तिका लक्षण अभय निर्भीकता ही है। इसी गुणकी परीक्षा उत्तीर्ण कर लो और गुणोंको तो पाखंडी भी दिखला सकता है। बस, ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी, सबका कर्तव्य रणक्षेत्रमें निर्भीकताके साथ डटे रहना है! क्या लज्जा नहीं लगती, कर्णविवर फूट नहीं जाते, जिनसे घोर अत्याचारके शब्दोंको सुन रहे हो ? बस, निर्भीकताका चोला पहिन लो, यही पोशाक संगठनकी पोशाक है। किसीके पास जानेकी आवश्यकता नहीं है। निर्भीक बन जाओ चाहे तुम कोई भी हो। मैं नहीं पूछता कि तुम कौन हो? मैं तो यही कह रहा हूँ कि डरो मत, भागो मत, रणक्षेत्रमें निर्भीक खड़े हो जाओ। समस्त शङ्काओंका यही समाधान है।

भौतिक विज्ञान और शक्तिवाद

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

आजसे कुछ समय पहले भौतिक विज्ञानके पण्डितोंका यह मत था कि सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण द्रव्य है और इसीका परिणाम यह विशाल सृष्टि है। द्रव्यकी लाक्षणिकताके विषयमें चिरकालतक इनकी यह विचार-परम्परा रही कि द्रव्य परिच्छिन्न, ससीम, अनेकजातिक, आणविक, साकार, गुरुत्वाकर्षक, घार्षणिक, बहुरूपी, रासायनिक निर्वाचित, पारस्परिक सम्बन्धयुत, शक्तिमय, शक्तिपरिवर्तनशील, स्थितिस्थापक गुणोपेत, घनत्वयुक्त, उष्णता-ग्राहक, अविनाशी, निष्क्रिय, चौम्बिक, दशा-परिवर्तनशील, (ठोस दशामें) घातक दबावके अधीन, गौण गुणवाला और इन्द्रिय-ग्राह्य है। इसके बाद एक समय आया जब कि, ये परमाणु-वादपर जोर देने लगे और सृष्टिका कारण कुछ परिमित पदार्थोंके परमाणुओंके योगायोगको मानने लगे। परन्तु कालान्तरमें परमाणुओंकी इस भिन्नताका झगड़ा भी मिट गया और सब पदार्थ एक ही प्रोटाइल (Protyle) नामक पदार्थके विकार माने जाने लगे। यही पदार्थ सृष्टिकी उत्पत्तिका मूलतत्त्व भी समझा जाने लगा। इसके बाद वैज्ञानिकोंका ध्यान शक्तिकी ओर गया और चिरकालीन विचारसे उनकी समझमें यह आया कि असलमें शक्ति ही सृष्टिका मूल कारण है और धीरे-धीरे ये लोग शक्तिके छः रूप मानने लगे—गति, ताप, प्रकाश, विद्युत्, चुम्बक और रसायन।

वैज्ञानिकोंका बहुत-सा समय इन्हीं छः प्रकारकी शक्तियोंकी छानबीनमें बीता। अब भी मूल-शक्ति और उसके प्रकार-भेदोंकी छानबीनका विषय चल ही रहा है। परन्तु कुछ वर्ष हुए जब विलियम पोपने अपनी विवेचनासे यह भी सिद्ध कर दिया कि, यह पूर्वोक्त छः प्रकारकी शक्तियाँ असलमें विभिन्न नहीं हैं, एक ही वस्तु हैं। ये आपसमें रूपान्तरित भी हो सकती हैं। शक्तियोंका यही आविर्भाव और तिरोभाव है, अन्यथा इनकी वास्तविक उत्पत्ति और नाश नहीं होता। किन्तु एक समय ऐसा भी आया जब कि, प्राण और जीव-नामकी दो शक्तियाँ और भी मानी जाने लगीं। किसी-किसीके मतमें शक्ति-समावर्तनका सिद्धान्त इनके लिये भी स्वीकार किया गया। अन्तमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि ये सब शक्तियाँ किसी एक नित्य, अज्ञेय, अपरिच्छिन्न मूल-शक्तिका परिणाम है। इसका श्रेय हर्बर्ट स्पेंसर और उसके अनुयायियोंको मिला। हर्बर्ट स्पेंसरका इस विषयमें यह सिद्धान्त है कि—

By persistence of force we really mean the persistence of some cause which transcends over knowledge and conception. In asserting it, we assert an unconditional reality without beginning or end."

सर विलियम क्रुक्स साहबने भी एक बार ब्रिटिश एसोसिएशन-में इसी अज्ञेय शक्तिपर अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहा था कि, 'जड वस्तु और जड शक्तिके मूलमें एक सूक्ष्मतम चेतनशक्ति विद्यमान है।'

यहाँ यह बता देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि, इस शक्ति-सिद्धान्तके वैज्ञानिक रहस्यको भारतवासी बहुत पहलेसे जानते हैं। स्वामी शङ्कराचार्यने वेदान्त-भाष्यमें शक्तिके विषयमें लिखा है कि, 'शक्तिसे ही जगत् उत्पन्न होता है और शक्तिमें ही विलीन होता है। जगत् शक्तिकी ही परिणति है।' योगवाशिष्ठ रामायणमें आता है, 'परिच्छिन्न और अपरिच्छिन्न सब प्रकारकी सत्ता ही शक्ति है।' प्राचीन दार्शनिकोंने शक्तिको आठ प्रकारके मूल पदार्थोंमें माना है; परन्तु शिवादित्यने 'सप्त-पदार्थी-संहिता' में द्रव्य गुण कर्मादिके स्वरूपको ही शक्ति बतलाया है। न्याय, पातञ्जल और मीमांसा आदि दर्शनोंमें भी तरह-तरहसे शक्तिकी स्थापना की गयी है। वेदोंके स्वाध्यायसे भी हमें शक्तिके एकत्वका निश्चय होता है।

पाश्चात्त्य और पौरस्त्य विद्वानोंके उपर्युक्त मतोंसे यही सिद्ध होता है कि यह विश्व-ब्रह्माण्ड शक्तिका कार्य है। परन्तु अब पाश्चात्त्य विद्वानोंके विचारमें यह बात भी आने लगी है कि प्रत्येक वस्तुमें प्रकृति और वासना है। परमाणु-तकमें चेतना और इच्छा-शक्ति है। मि० टिंडेलका तो यह मत है कि परमाणुके समुदायमें Desire of Life (जीवनकी इच्छा) है। अनेक विद्वान् मूलशक्तिको इच्छा-शक्ति और प्राण-शक्ति भी मानते हैं। एक प्रमुख वैज्ञानिकने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है, 'अबतककी हमारी खोजका यह परिणाम है कि, इस द्रव्यात्मक जगत्को इस रूपमें लानेवाली इसके अंदर एक सञ्चालक प्राण-शक्ति है और इसके पीछे भी एक सर्वव्यापिनी इच्छा-शक्ति है।'

अनेक पाश्चात्य विद्वान् इस शक्तिको अब Intelligence (बुद्धि) भी कहने लगे हैं। उनका कहना है कि, प्रत्येक वस्तुमें हमें बुद्धि मालूम होती है। वृक्षपर चढ़नेवाली बेलमें भी हम बुद्धिका अनुभव करते हैं। एक वैज्ञानिक इस विषयमें इस तरह कहते हैं—'क्रिस्टलकी उत्पत्ति, स्थिति, साधारण धर्म, संघटन और अन्यान्य घटनाओंकी आलोचनासे यह विश्वास होता है कि सम्पूर्ण जड जगत्पर एकमात्र शक्तिका आधिपत्य है। इस शक्तिको ही हम जीवन कह सकते हैं। ताप, प्रकाश, रसायन, विद्युत्, योगाकर्षण आदि शक्तियाँ इस जीवनी-शक्तिका ही प्रकाश है।'

इस तरह हम देखते हैं कि अनेक वैज्ञानिक और दार्शनिक लोग द्रव्य और शक्तिके स्थानमें अब प्रकारान्तरसे सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शक्तिकी कल्पना करने लगे हैं।

इधर आर्य महर्षियोंका बहुत पहलेसे यह निश्चय है कि इस संसारका कारण चिन्मयी, प्राणस्वरूपिणी, संसारव्यापिनी एकमात्र शक्ति ही है। इसीको आर्यलोग आजतक इस तरह नमस्कार करते आये हैं—

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

हमारे शास्त्रोंमें शक्तिके मुख्य तीन रूप माने गये हैं—एक परा (विष्णु-शक्ति), दूसरी अपरा (क्षेत्रज्ञाख्या), तीसरी अविद्या (कर्मसंज्ञाख्या)।

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा।
अविद्या कर्मसंज्ञाख्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥
(विष्णुपुराण ६। ७। ६१)

पहली परा शक्ति (वैष्णवीशक्ति) ही महामाया है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार इसीके रूप हैं—इसीकी परिणति हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि समस्त संसार शक्तिमय है और शक्तिके इन तीनों रूपोंसे आर्यसाहित्य भरा पड़ा है। मार्कण्डेयपुराणमें शक्तिके विषयमें लिखा है—

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥

अर्थात् हे देवी! सर्वत्र जड-चेतन जगत्में जो कुछ आत्मस्थ शक्ति है, वह तू ही है।

तन्त्र-ग्रन्थोंमें भी इसी महाशक्तिका इस तरह गुणगान किया गया है—

त्वमाद्या परमा शक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
तव शक्त्या वयं शक्ताः सृष्टिस्थितिलयादिषु॥

महर्षि वेदव्यासने भी इसी महामाया शक्तिको परब्रह्म बतलाया है। देखिये महाभागवतमें लिखा है—

या मूलप्रकृतिः सूक्ष्मा जगदाद्या सनातनी।
सैव साक्षात् परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च॥

अर्थात् जो सनातन, सूक्ष्म, मूल-शक्ति है वही परब्रह्म परमात्मा है। सृष्टि-क्रमका वर्णन करते हुए महर्षि वेदव्यासने आदिशक्तिका तात्त्विक और आलङ्कारिक वर्णन किया है। वर्णनका अभिप्राय यह है कि सृष्टिके आदिमें न सूर्य था न चन्द्र और न नक्षत्रादि। न दिन था, न रात, न अग्नि, न दिग्दिगन्त और न इनका ज्ञाता। विश्व-ब्रह्माण्ड उस समय शब्द-स्पर्शादि गुण-रहित, तेजोवर्जित और अन्धकारमय था। थी केवल एकमात्र ब्रह्म-स्वरूपिणी, सच्चिदानन्द-विग्रहा, महामाया, मूल-शक्ति। उसने अपनी इच्छासे सत्, रज और तम-गुणोंद्वारा एक चेतनाहीन पुरुषको उत्पन्न किया और उसमें अपनी सिसृक्षा (सृष्टि करनेकी इच्छा) शक्ति प्रविष्ट की। उस पुरुषसे फिर गुणत्रयके विभागानुक्रमद्वारा ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न हुए। इसके बाद भी सृष्टि-क्रममें गति न देखकर भगवती महामायाने उस मूलपुरुषको 'जीव' और 'परम पुरुष' दो भागोंमें विभक्त किया और मूल-प्रकृति स्वयं 'माया', 'परमा' और 'विद्या'—इन तीन रूपोंमें विभक्त हुई। इनमें जीवोंको मोहित करनेवाली और संसारमें प्रवृत्त करानेवाली माया, जीवोंमें परिस्पन्दनादि गुणोंको उत्पन्न करनेवाली चैतन्यमयी संजीवनी शक्ति परमा और तत्त्व-ज्ञान-स्वरूपा जीवोंको संसारसे निवृत्त करानेवाली शक्ति विद्या कहलायी।

व्यासके श्लोकोंमें मुख्यतः चेतन शक्ति-वादके सृष्टि-क्रमका वर्णन है। इनमें विज्ञानसम्मत चेतन मूल-शक्ति इच्छाका भी समावेश हो जाता है। शक्तिको संसारका मूल-तत्त्व माननेवाले अनेक वैज्ञानिक इसी चेतन इच्छा-शक्तिको ही संसारका मूल तत्त्व मानते हैं। डा० मार्टिनने भी इसी बातको प्रकारान्तरसे स्वीकार किया है कि 'प्रकृतिमें जो कुछ होता है, उसका अवश्य कुछ कारण है और वह कारण हमारी इच्छा-शक्तिके समान ही है। इस दृष्टिसे यह सृष्टि किसी महान् पुरुषकी इच्छा-शक्तिका कार्य है।'

लार्ड कालविनने तो मुक्त-कण्ठसे इस बातको स्वीकार किया है कि 'सृष्टिकी उत्पत्तिके मूलमें अवश्य ही कोई सज्ञान

चेतन-शक्ति है। वे कहते हैं, 'विज्ञान इस बातको सिद्ध करता है कि विश्वका कोई कर्ता है। इससे विश्वास होता है कि ईश्वरीय रचनाके मूलमें कोई नियामक और सञ्चालक शक्ति है जो भौतिक विद्युच्छक्तिसे सूक्ष्म है।'

इस उपर्युक्त तर्क-परम्पराके विषयमें यह कहा जा सकता है कि यद्यपि भौतिक विज्ञान और भारतीय शक्ति-वादकी दृष्टिसे शक्ति ही सृष्टिका आदि-कारण है; परन्तु ब्रह्म-वाद और जगत्के अन्यान्य दार्शनिक सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे एक ईश्वर ही सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण माना जाता है। ऐसी दशामें शक्ति-वाद सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सिद्धान्त नहीं ठहरता। शक्ति-वादकी दृष्टिसे इसका यही उत्तर है कि, शक्तिको ब्रह्ममयी और ब्रह्मको शक्तिमय मान लेनेसे वास्तविक सृष्टिके क्रिया-कलापकी विवेचनामें कोई झगड़ा नहीं रहता। ऐसे ही जड प्रकृति ईश्वरके सहयोगसे चेतनताको प्राप्त होती है या देवीने निर्जीव मूलपुरुषमें चेतनता उत्पन्न की, दोनों एक ही बात है। शक्ति भी तत्त्व है और परमात्मा भी तत्त्व। एकको गौण और दूसरेको प्रधान मान लेनेसे ब्रह्मवादके प्रश्नका सहजमें समाधान हो जाता है। ब्रह्मवादमें ब्रह्मकी इच्छा प्रकृति है और शक्तिवादमें देवीकी इच्छा प्रकृति। ब्रह्मवादमें जैसे ब्रह्म और शक्तिका वर्णन है वैसे ही शक्तिवादमें दोनोंके स्थानमें मूलशक्ति और मूलशक्तिके रूपान्तरोंका वर्णन मिलता है। आधुनिक भौतिक-शास्त्रवादी तो ऐसा ही मानते भी हैं और देवी-सम्प्रदायवालोंकी भी यही विचार-परम्परा है। शास्त्र भी हमें यही बतलाते हैं कि—

तत् सद् ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा सेदकं प्रतिपाद्यते।
स्थिता प्रकृतिरेका सा सच्चिदानन्दविग्रहा॥

इसी दृष्टिसे अनेक शक्तिवादी-सम्प्रदाय ब्रह्माण्डका कारण माया, मायाका कारण पुरुष और पुरुषका कारण शक्तिको मानते हैं। इसके बाद उनकी दृष्टिमें कोई मुख्यतम तत्त्व नहीं रहता। शक्तिवादी तो यह भी मानते हैं कि—

शक्तिर्ब्रह्मा शिवः शक्तिः शक्तिर्विष्णुश्च वासवः।
अन्ये च बहवो देवाः शक्तिमूलाः प्रकीर्तिताः॥

इसके सिवा गीतोक्त 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।' के स्थानमें शक्तिवादी महाभागवतकारके शब्दोंमें कह सकते हैं—

ददामि चक्षुस्ते दिव्यं पश्य मे रूपमैश्वरम्।
छिन्धि हृत्संशयं विद्धि सर्वदेवमयीं पितः॥

शक्तिकागमसर्वस्वमें तो महामहिम शक्तिके माहात्म्यका वर्णन करते हुए स्वयं महादेवजी कहते हैं कि 'भगवती शक्तिके योगसे ही मैं सर्वकाम-फलप्रद शिवत्वको प्राप्त हुआ हूँ।' तन्त्र-ग्रन्थोंमें तो साफ लिखा हुआ है कि, 'सर्वशक्तिमयञ्जगत्। नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया व्याप्तमिदं जगत्॥' ये शब्द शक्तिकी विशेषताके ही द्योतक हैं। महामाया मूल-शक्ति दुर्गाके विषयमें शास्त्र हमें बतलाते हैं कि 'समस्त कारणका कारण मायाका अधिष्ठान, सर्वसाक्षी निरामय ब्रह्म-तत्त्व मेरा ही स्वरूप है। मेरा एक भाग सच्चिदानन्द-प्रकृति है और दूसरा माया-प्रकृति है। इन्हींसे मैं संसारकी सृष्टि करती हूँ।' इन सब प्रमाणोंका यही सार मालूम होता है कि शक्ति भगवती संसारका आदि-कारण है। फिर चाहे वह ब्रह्मकी शक्ति हो और चाहे ब्रह्मस्वरूपिणी।

इस विषयमें कुछ विचारशीलोंकी यह भी सम्मति है कि ब्रह्म और शक्ति असलमें एक ही वस्तु है। इनकी भिन्नता वास्तविक नहीं। योगवाशिष्ठके भाष्यमें लिखा है, 'विकल्पनाद् भिन्ना न तु वस्तुतः।' साथ ही शक्ति और ब्रह्मवादके सामञ्जस्यके प्रतिपादक शास्त्रोंकी तो यह सम्मति है कि—

शक्तिर्महेश्वरी ब्रह्म त्रयस्तुल्यार्थवाचकाः।
स्त्रीपुंनपुंसको भेदः शब्दतो न परार्थतः॥

अर्थात् शक्ति महेश्वर और ब्रह्म एक ही अर्थके वाचक हैं। इनमें जो लिङ्ग-भेद है वह शब्दात्मक है। वैसे परमार्थतः इनमें कोई भेद नहीं है।

पार्थ-सारथिसे

लाखों द्रौपदीके केश केशव खुले हैं आज, लाज लुटी चीर ले न तुम क्यों पधारे हो?
भारतमें फिर महाभारत मचा है नाथ! साथ क्यों न आते कहाँ बैठे मौन मारे हो?
जीवन अपार्थ हुआ पार्थका तुम्हारे बिना तुम पुरुषोंके पुरुषार्थ हो, सहारे हो,
युद्धकी शपथ, किन्तु पथ है विरुद्ध आज, रथ अवरुद्ध कहाँ सारथि हमारे हो?

'राम'

उपासनाका स्वरूप

(लेखक—पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री)

श्रुतिका वचन है कि ब्रह्म विश्वके सर्ग, स्थिति और प्रलयका कारण है। अतएव जीवको उसकी उपासना करनी चाहिये—

'तज्जलानिति शान्त उपासीत'

इस वाक्यमें, एवं ऐसे ही—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

—आदि अन्यान्य शास्त्रीय वाक्योंमें उपासनाका विधान किया गया है। उप उपसर्गपूर्वक आस् धातुसे उपासना शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'निकट बैठना'। सेवाके लिये निकट बैठनेके भावको सूचित करनेके लिये ही पहले-पहल इस शब्दका प्रयोग हुआ होगा, किंतु अब भक्ति अर्थात् सेवाके पर्यायरूपसे इसका प्रयोग होता है। भक्तिका मुख्य अर्थ है 'सेवा'—जैसा कि इसकी व्युत्पत्तिसे विदित होता है। सेवाके प्रेममूलक होनेकी युक्ति देकर इसका अर्थ प्रेम भी किया गया है—

'सा परानुरक्तिरीश्वरे'

तथापि सेवा ही इसका प्रधान अर्थ है। गीताके—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। (१४। २६)

इस वाक्यसे भी ऐसा ही सिद्ध होता है।

उपासन और भजन एकार्थक हैं। अतएव शास्त्रमें जिस प्रकार उपासनका विधान है, उसी प्रकार भजनका भी है। उपासनके लिये ऊपर दो वाक्य उदाहरणार्थ दिये जा चुके हैं। भजनके निर्देशमें—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(गीता ९। ३३)

—का उदाहरण पर्याप्त होगा।

भक्तिमार्गमें दो न्याय प्रसिद्ध हैं—एक तो मर्कट-किशोर (बंदरीका बच्चा) न्याय और दूसरा मार्जार-किशोर—(बिल्लीका बच्चा) न्याय। पहलेमें उपासक उपास्यदेवकी उपासनामें अपनी ओरसे इस प्रकार प्रवृत्त होता है, जिस प्रकार बंदरीका बच्चा अपनी ओरसे अपनी माताको पकड़े रहनेमें प्रवृत्त होता है; और दूसरेमें वह इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे उदासीन रहता हुआ ही भगवान्‌को इस प्रकार बुलाता है, जिस प्रकार बिल्लीका बच्चा अपनी माताको। बंदरीका बच्चा स्वयं माताको पकड़े रहता है और माता जहाँ जाती है, वहाँ चला जाता है; परन्तु बिल्लीके बच्चेकी माता स्वयं उसे अपनी इच्छासे मुँहमें पकड़कर जहाँ चाहती है, ले जाती है। पहला स्वेच्छासे मातापर निर्भर है तो दूसरा माताकी स्वेच्छानुसार मातापर निर्भर है।

उपासक अपनी समस्त भावनाओंको एकमात्र उपास्यमें केन्द्रित कर देते हैं; परमात्माको अपने सभी भावोंका आश्रय और आधार बना लेते हैं; जगदीश्वर ही उनके माता, पिता, भ्राता, मित्र, बन्धु-बान्धव, पुत्र हैं; विद्या, धन आदि समस्त कामनाएँ भी वही हैं—

पिता माता सुहृद्बन्धुर्भ्राता पुत्रस्त्वमेव मे।
विद्या धनं च कामश्च नान्यत्किंचित्त्वया विना॥

(ब्रह्मतन्त्र)

सेवामें तीन भाव हैं—(१) बड़ेकी सेवा, (२) बराबरवालेकी सेवा और (३) छोटेकी सेवा। माता, पिता, गुरु, पति, स्वामी, सम्राट्‌की जो सेवा पुत्र, शिष्य, पत्नी और सेवक करते हैं, यह पहला भाव है। एक मित्र दूसरे मित्रकी जो सेवा करता है, यह दूसरा भाव है। माता-पिता जो पुत्रकी सेवा करते हैं, यह तीसरा भाव है। उपासक लोग ईश्वरकी भक्ति इन तीनों भावोंसे ही करते हैं। पहले भावको 'दास्य,' दूसरेको 'सख्य' और तीसरेको 'वात्सल्य' कहते हैं। पत्नीद्वारा पतिकी सेवाके भावको 'माधुर्य' नाम दिया जाता है। इसे प्रथम भावका ही विशेष परिष्कृत और चूडान्तरूप मानना चाहिये। भारतीय शिष्टाचारके अनुसार पति पत्नीकी सेवा नहीं करता, अतएव पत्नी-सेवाके भावका प्रदर्शक कोई नाम उपासनामार्गमें प्रचलित नहीं है।

जीव अपनेको पुत्र और ईश्वरको पिता मानकर उसकी आराधना करता है। लोकमें जिस प्रकार पितासे पुत्र उत्पन्न होता है, ठीक उसी प्रकार आराध्यसे आराधकके उत्पन्न न होनेपर भी आराध्य पिता है और आराधक पुत्र है। शब्दोंका यह औपचारिक प्रयोग है। यही बात सख्य, वात्सल्य और माधुर्यमें भी समझनी चाहिये। मधुरभावमें जब जीव ईश्वरको पति कहता है—

'पत्यादिशब्देभ्यः' (ब्रह्मसूत्र १। ३। ४३)

तब भी 'पति' शब्दका प्रयोग औपचारिक ही होता है; क्योंकि जीवेश्वरमें लौकिक पत्नी-पतिके समान शरीरसम्बन्धकी गन्धका भी अवसर नहीं है। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' के न्यायके अनुसार किसीको यह अच्छा लगता है कि मैं परमात्माको बालक समझकर उसका आराधन करूँ, किसीको यह अच्छा लगता है कि मैं उसे मित्र कहकर पुकारूँ और किसीको यह अच्छा लगता है कि मैं उसे पति कहकर पुकारूँ; किंतु जितनी सहज सेवा ईश्वरको माता, पिता, गुरु, सम्राट् और स्वामी मानकर हो सकती है, इतनी और भावमें नहीं। दास्यभावमें तो सेवा-ही-सेवा है। इसमें उपासक कहता है—

जन्मप्रभृतिदासोऽस्मि शिष्योऽस्मि तनयोऽस्मि ते।
त्वं च स्वामी गुरुर्माता पिता च मम माधव॥
(ब्रह्मतन्त्र)

'हे माधव! मैं तुम्हारा दास हूँ, शिष्य हूँ और पुत्र हूँ। और तुम मेरे स्वामी, गुरु और माता-पिता हो।' यह दास्य ही—यह सेवाभाव ही—साध्या भक्तिका भी स्वरूप है। लौकिक रीतिसे न सही, अलौकिक रीतिसे तो परतत्त्व विश्वके जनयिता हैं ही—

'त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता।'
(अग्निपुराण २३७। १०)

इसलिये एक भावुक भक्तके हृदयका यह उद्गार कितना मनोरम है—

नाथितं परमेवैतदनाथजनवत्सलौ।
स्वं साक्षाद् दास्यमेवास्मिन् प्रसादीकुरुतं जने॥

अर्थात् 'हे अनाथ लोगोंपर वात्सल्य प्रदर्शित करनेवाले दिव्य दम्पती! मेरी तो आपसे सर्वोत्तम याचना यही है कि इस (दीन) जनको अपने दास्यका—सेवा-सपर्या (कर सकनेके सौभाग्य) का—ही प्रसाद दीजिये।' जिनके हृदयमें ऐसी कामना जागरूक है, वे धन्य हैं।

सेवाके विविध भावोंमें यह कोई निश्चित नियम नहीं है कि पहले दास्यकी साधना की जाय, फिर सख्यकी, फिर वात्सल्यकी और फिर माधुर्यकी। जिस साधककी जिसमें रुचि हो, वही भाव अङ्गीकार किया जा सकता है। जिस भावमें भी संवेग तीव्र होगा, उसीसे इष्ट-लाभ हो जायगा। भगवत्प्राप्ति किसी भाव-विशेषकी सापेक्ष न होकर व्यक्ति-विशेषके संवेगकी ही सापेक्ष है। संवेगकी बड़ी महिमा है। इसके प्रख्यापनके लिये ही, माधुर्यभावके संवेगसे भी अतृप्त भावुकोंने जारभावकी प्रशंसा की है। व्यभिचारिणी स्त्रीके मनमें उपपतिके दर्शनकी लालसामें जो तीव्रता होती है—

परव्यसनिनी नारी सक्तापि गृहकर्मणि।
तदेवास्वादयत्यन्तः परसङ्गरसायनम्॥

वही तीव्रता जब भगवद्दर्शन-लालसामें आ जाय तब जार-भाव होता है। इसी संवेगको ध्यानमें रखकर गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसके अन्तमें अपनी अभिलाषा इस प्रकार प्रकट की है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

ईश्वरको पिता मानना और दास्यभावसे उसका उपासन ही प्राचीनतम है। चारों वेदोंके सारभूत गायत्रीमन्त्रके जपके समय प्रत्येक द्विज उपासक सविता कहकर ही उसकी मङ्गलमयी भावना करता है। गीताका—

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥
(११। ४३)

यह वचन भी दास्यका ही सूचक है। परतत्त्वके उपासकोंमें—चाहे वे किसी भावके अनुयायी हों—यह एक सर्वसाधारण धारणा है कि योगीश्वर शिवजी वैष्णवोंके अग्रणी हैं—परम भागवतोत्तम हैं—

वैष्णवानां यथा शम्भुः।
(श्रीमद्भा० १२। १३। १६)

और गङ्गाधर शिवजीने अवनीतलपर हनुमान्‌जीके रूपमें प्रकट होकर अपने आचरणसे जगत्‌को दास्यभावकी ही शिक्षा दी है। हनुमान्‌जीका यह घोर गर्जन सुविदित है कि—

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य। (रामायण)

इससे दास्यभावका ही उपासनासाम्राज्यमें प्रधानत्व प्रमाणित होता है।

जिस उपासना या भक्तिका वर्णन ऊपर किया गया है वह दो प्रकारकी है—'परा' और 'परमा'। दूसरे शब्दोंमें इन्हें क्रमशः 'साधनभक्ति' और 'साध्या भक्ति' कह सकते हैं। परतत्त्वके पदयुगलकी प्राप्तिके लिये उनकी सेवा ही उत्कृष्ट साधन है। यही 'पराभक्ति' है। साधनद्वारा जब सिद्धि प्राप्त हो जाती है, जब दिव्यदम्पतीके चरण-कमलोंकी साक्षात् सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, तब उस सेवाका नाम 'परमा' होता है; क्योंकि वही उपासकके जीवनमें साध्या है।

सेवा कई प्रकारसे होती है। उपास्यकी गुण-कथाओंका श्रवण करना, उनके नामादिका कीर्तन करना, उनकी महिमादिका स्मरण करना, चरणसंवाहन करना, सात्त्विक सामग्रीसे उनके श्रीचरणोंमें सपर्या समर्पित करना, उनके प्रतीकोंके सम्मुख प्रणाम करना, दास्य, सख्य एवं आत्म-

निवेदन करना—भजनके ये नौ प्रकार बताये गये हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

(श्रीमद्भा० ७ । ५ । २३)

ये नौ प्रकार भक्तिके नौ अङ्ग कहलाते हैं। इनमें एक-एक अङ्ग भी साधकका कल्याण कर सकता है, फिर एकाधिक अङ्गोंको यदि साधक अपनावे तो कहना ही क्या।

वेदके तीन काण्ड प्रसिद्ध हैं—१. कर्मकाण्ड, २. ज्ञान-काण्ड और ३. उपासनाकाण्ड। इनमें पहले दो काण्ड अर्थात् कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड तीसरे उपासनाकाण्डकी सहायता करते हैं। यद्यपि ज्ञान और उपासना दोनोंसे ही निःश्रेयस्की प्राप्ति होती है, तथापि उपासनाका मार्ग साधनकी दृष्टिसे अत्यन्त मनोरम है। अतएव भावुकजन इसी मार्गके पथिक बनते हैं और ज्ञान तथा कर्मको निःश्रेयस्का साक्षात् साधन न मानकर उपासनाके सहायकके रूपमें ही मानते हैं।

यद्यपि ज्ञानमार्गसे भी ब्रह्मप्राप्तिका शास्त्रमें निर्देश है जैसा कि आचार्य रामानुजने लिखा है—

पञ्चाग्निविदोऽप्यर्चिरादिना गतिश्रवणात्, अर्चिरादिना गतस्य ब्रह्मप्राप्त्यपुनरावृत्तिश्रवणाच्च, अतएव तत्क्रतुन्यायात् प्रकृतिविनिर्मुक्तब्रह्मात्मकारमानुसन्धानं सिद्धम् ।

(४ । ३ । १४ ब्रह्मसूत्रपर श्रीभाष्य)

तथापि आत्मानुसन्धान अत्यन्त दुःखद है जैसी कि श्रीभगवान्‌की सूक्ति है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

(गीता १२ । ५)

अतएव भक्तजन ज्ञानमार्गके प्रयासको बहुमान न देकर उपासनामें ही दत्तचित्त होते हैं।

अग्निष्टोमादि यज्ञ-याग कर्मकाण्डके अन्तर्गत हैं। इनका फल स्वर्गादि है, और इनका विवेचन पूर्वमीमांसाका विषय है। प्रकृति और पुरुषका विवेक ज्ञानकाण्डका विषय है और पुरुषोत्तमकी सेवा उपासनाकाण्डका विषय है। उत्तरमीमांसामें पुरुषतत्त्वका भी शोधन है और परतत्त्वकी महिमाका भी प्रतिपादन है।

जो सेवा सेव्य और सेवकके स्वरूपको समझकर की जाती है वही सफल होती है। सेव्य श्रीपति हैं और सेवक जीव है। दोनोंके पारस्परिक सम्बन्धको जानना ही भक्तोंका परमोत्तम ज्ञान है—

परमात्मा हरिः स्वामी स्वतोऽहं तस्य किङ्करः ।
कैङ्कर्यमखिला वृत्तिरित्येष ज्ञानसंग्रहः ॥

(भारद्वाजसंहिता)

परमात्मा श्रीहरि मेरे स्वामी हैं और मैं स्वतः उनका दास हूँ। मेरी सम्पूर्ण वृत्ति दास्यभावमें ही सीमित है। यही थोड़ेमें ज्ञानका संग्रह है।

और भक्त यह चाहता है कि मेरा यह ज्ञान कभी नष्ट न हो, जबतक जीवन है तबतक यह ज्ञान बना रहे। साधनमें न्यूनता रह जानेसे यदि परमपद-लाभ न हो और कर्मवश जन्मान्तर ग्रहण करना पड़े तो वहाँ भी मेरा यह ज्ञान बना रहे—

त्वत्पादकमलादन्यन्न मे जन्मान्तरेष्वपि ।
निमित्तं कुशलस्यास्ति येन गच्छामि सद्गतिम् ॥
विज्ञानं यदिदं प्राप्तं यदिदं ज्ञानमर्जितम् ।
जन्मान्तरेऽपि देवेश माभूदस्य परिक्षयः ॥

(ब्रह्मतन्त्र)

'देवेश! इस जन्ममें तथा जन्मान्तरोंमें भी आपके चरण-कमलोंको छोड़कर दूसरा कोई मेरे कल्याणका साधन नहीं है, जिससे मुझे सद्गति प्राप्त हो—मेरे लिये तो सब कुछ आपके चरण ही हैं। यह जो विज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है, यह जो ज्ञान मैंने उपार्जित किया है, इसका जन्म-जन्मान्तरोंमें कभी नाश न हो।'

भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामकर्मका अनुष्ठान भी साधकके चित्तको शुद्ध कर देता है, अतएव कर्म भी उपासनाका सहायक ही होता है।

मन्त्रराशिका नाम 'वेद' है। उसके व्याख्यानको 'ब्राह्मण' कहते हैं, जिसके दार्शनिक भाग 'आरण्यक' और 'उपनिषद्' नामसे प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मण भी वेद कहलाता है। इस मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदमें उपासनाका यथास्थान विधान है, किन्तु वेदविहित उपासनामें उन्हींका अधिकार है जिनका उपनयन-संस्कार हो चुका है। उपनयन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका होता है, शूद्रका नहीं। इसलिये शूद्रका वैदिक उपासनामें अधिकार नहीं है, एवं उस ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका भी नहीं है जिसका किसी कारणवश उपनयन-संस्कार न हुआ हो।

मन्त्र-ब्राह्मणात्मक श्रुतिके अतिरिक्त जो शास्त्र है वह 'स्मृति' कहलाता है। इतिहास, पुराण, आगम, धर्मशास्त्रादि इसीके अन्तर्गत हैं। इनमें भी परतत्त्वकी उपासनाका विधान है जिसमें सभीका अधिकार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी स्मृतिमें उपदिष्ट उपासना कर सकते हैं। इसके लिये उपनयन-संस्कारका नियम नहीं है।

उपासना या भक्तिकी परम महिमा है। भक्तिके द्वारा जीवका उद्धार हो जाता है; किन्तु भक्तिका भी बड़ा विस्तार है। श्रीमद्भागवतका श्रवण, रामायणका पाठ, मन्दिर-निर्माण, मूर्तिपूजन, तीर्थयात्रा आदि सभी भक्तिके अङ्ग हैं। ये सभी कार्य परम धैर्य, द्रव्यव्यय, संयम और श्रमसे सम्पन्न हो सकते हैं; अतएव जिन जीवोंमें ये गुण नहीं हैं वे भक्तिके भी अयोग्य हैं। जब जीव भगवत्प्राप्तिके लिये भक्तिका भी अवलम्बन नहीं ले सकता तब वह निरुपाय होकर अपनेको सब प्रकारसे अशक्त समझकर भगवान्को ही उपायरूपसे वरण करता है। जीवकी इस प्रवृत्तिको 'प्रपत्ति' कहते हैं। इसमें उपेय ही उपाय होता है।

प्रपत्तिका दूसरा नाम शरणागति है। शरणागतिका अर्थ है—शरणमें आना। सब कुछ छोड़कर श्रीभगवान्के चरण-कमलोंका आश्रय ग्रहण करना शरणागति है। समस्त वेदोंका सार उपनिषद् (उप + नि + षद् = उपासनाप्रतिपादक ग्रन्थविशेष) हैं और सारे उपनिषदोंका सार गीता है; और गीताका सार शरणागति है। सर्वधर्मपरित्यागपूर्वक भगवच्छरणागति ही अर्जुनके लक्ष्यसे मानवमात्रके लिये गीताका सर्वगुह्यतम उपदेश है।

जीवके पास पूर्वजन्मविहित अनन्त पापराशिका संस्कार सञ्चित है। कुत्सित संस्कारोंसे उत्तम भावनाएँ अभिभूत रहती हैं अतएव यह आवश्यक है कि पापराशिका शमन करनेके लिये कृच्छ्रचान्द्रायण, कूष्माण्ड, अग्निष्टोम आदिका अनुष्ठान करके प्रायश्चित्त किया जाय। मनुष्यजीवन स्वल्प है और प्रायश्चित्त हैं अनेकानेक। कैसे काम चलेगा? मानवजीवन समाप्त हो जायगा और प्रायश्चित्त पूरे नहीं होंगे। अतः निरुपाय जीव प्रायश्चित्तरूप धर्मोंको छोड़कर उस दीनबन्धुकी शरण ग्रहण कर लेता है।

ज्ञानयोगमें साधक प्रत्यगात्माको प्रकृति-वियुक्त, अपरिणामी और ज्ञानमय देखनेका अभ्यास करता है, किन्तु इस स्थितिका लाभ देहधारियोंको दुःसाध्य है अतएव जीव ज्ञानयोगरूपी धर्मको छोड़कर शरणागतिका अवलम्बन करता है।

साधक जीवका जबतक देहसे सम्बन्ध है तबतक वह प्राकृत गुण और कर्मोंका स्वरूपतः परित्याग नहीं कर सकता, अतः उसे देहधारणावधि यज्ञ-दान-तपमें निरत रहना चाहिये; किन्तु यह स्मरण रहे कि यज्ञादि करते समय यदि उनमें फलासक्ति बनी रहेगी तो परम कल्याण नहीं होगा। आसक्तिका त्याग ही वास्तविक त्याग है। शरणागतिके सम्बन्धमें लौकिक धर्मोंके त्यागकी जो चर्चा है वह उनके फलोंमें आसक्तिका ही परित्याग है।

भक्तियोगके इतने अङ्ग और उपाङ्ग हैं कि भगवद्विरह-व्याकुल भक्त भक्तियोगके लिये अपेक्षित दीर्घकालीन साधनाको दुरूह समझता है। जीवोंके लिये इस दुरूहताकी आशङ्काको दूर करते हुए श्रीभगवान्ने आदेश दिया कि 'शोक मत करो कि मैं कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगमेंसे एक भी योगका अवलम्बन न कर सका; मेरी शरण ग्रहण कर लोगे तो मैं तुम्हें समस्त माया-प्रपञ्चसे छुड़ा दूँगा।'

शरणागतिकी महिमासे मुग्ध होकर सभी धर्मात्माओंने—कर्ममार्गियोंने, ज्ञानमार्गियोंने, भक्तिमार्गियोंने—उसे अपना लिया। कर्मवादियोंने कर्मका त्याग स्वरूपतः नहीं किया किन्तु उसको यज्ञार्थ—भगवत्प्रीत्यर्थ किया और उसका फल भगवान्को ही अर्पण कर दिया। ज्ञानवादियोंने ज्ञान-चर्चा नहीं छोड़ी, किन्तु उन्होंने शरणागतिको सर्वोत्तम ज्ञान समझा। भक्तिवादियोंने भक्तिको बनाये रक्खा, किन्तु शरणागतिको ही भक्तिका सर्वोच्च अङ्ग माना।

जो जीव एक बार भी भगवान्के श्रीचरणोंमें प्रपन्न होता है और कहता है कि 'हे नाथ! मैं आपका ही हूँ, उस जीवको भगवान् समस्त भयोंसे मुक्त कर देते हैं।' जब-जब भक्तोंने भगवान्की शरणमें आकर उनसे रक्षाकी याचना की है, तब-तब भगवान्ने भक्तोंकी रक्षा अवश्य की है। गीताके—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(७। १४)

—आदि वचनोंमें प्रपत्ति अथवा शरणागतिका ही प्रतिपादन है।

शरणागति छः प्रकारकी मानी गयी है—

षोढा हि वेदविदुषो वदन्त्येनं महामुने।
आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्॥
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥
(अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७। २७-२९)

वे छः प्रकार ये हैं—

(१) अनुकूलताका सङ्कल्प—श्रीभगवान्के अनुकूल

रहनेका विचार। भगवान्‌के विधानमें अपना हित मानना। वे जैसे रक्खें उसीमें प्रसन्नताका अनुभव।

(२) प्रतिकूलताका त्याग—भगवान्‌के प्रतिकूल होनेके विचारको छोड़ना। उनके कठोर विधानोंमें भी उनके प्रति दुर्भाव न लाना। शास्त्रविरुद्ध कर्म न करना।

(३) भगवान् मेरी रक्षा करेंगे ही—इस प्रकारका दृढ़ विश्वास—रक्षा करेंगे या नहीं? इस प्रकारके संशयात्मक विचार सच्चे भक्तके हृदयमें उठते ही नहीं। सब कालोंमें और सब देशोंमें उनकी रक्षामें विश्वास।

(४) केवल विश्वास ही नहीं, अपितु भगवान्‌को रक्षक बना लेना—जिस प्रकार वधू वरको पतिके रूपमें वरण करती है उसी प्रकार भक्तका भगवान्‌को गोप्ताके रूपमें वरण करना।

(५) अकिञ्चनताका भाव—मनमें दीनता और नम्रताका भाव। अपने कर्म-कर्तृत्वाभिमानका परित्याग। भगवान्‌की ही सर्वस्वतामें निष्ठा। सब कुछ भगवान्‌का ही है, मेरा कुछ नहीं ऐसी दृढ़ धारणा। भगवान् ही मेरे परम धन हैं ऐसी बुद्धि।

(६) आत्मनिक्षेप अथवा आत्मसमर्पण अथवा आत्मनिवेदन—अपना कहलानेयोग्य जो कुछ भी है—देह इन्द्रिय, चैतन्य आदि, उसको भगवान्‌के पूर्णतया अर्पण कर देना जैसा कि श्रीयामुनाचार्यने किया था—

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा
गुणतोऽसानि यथातथाविधः।
तदहं तव पादपद्मयो-
रहमद्यैव मया समर्पितः॥

अर्थात् हे प्रभो! 'अहम्' पदसे अनेक विद्वान् अनेक अर्थ लेते हैं। शरीरात्मवादी कहते हैं कि शरीर ही 'अहम्' है और चैतन्यवादी कहते हैं कि 'अहम्' शरीरसे भिन्न एक चेतन द्रव्य है इत्यादि; इसी प्रकार 'अहम्' के गुणोंमें भी वे परस्पर एकमत नहीं हैं। 'अहम्' का स्वरूप जो भी कुछ हो, उसके गुण जो भी कुछ हों, मैंने तो उस 'अहम्' को ही आज आपके चरणकमलोंमें समर्पण कर दिया है।

ईश्वर और धर्म क्यों?

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

वर्तमान युग तर्कप्रधान युग है। जो बात तर्ककी कसौटीपर खरी न उतरे, उसे आँख मूँदकर माननेके लिये बीसवीं शताब्दीका मनुष्य तैयार नहीं है। किसी भी वस्तुका अस्तित्व स्वीकार करनेके पूर्व उसके मनमें यही जिज्ञासा उत्पन्न होती है—क्यों और किसलिये? ईश्वर और धर्मकी बात भी जब उससे कही जाती है, तब वह यही प्रश्न करता है—ईश्वर और धर्मको हम क्यों मानें? उनपर विश्वास करनेसे हमें क्या लाभ है? बात बिल्कुल ठीक है। यदि ईश्वर और धर्मको माननेसे हमें कोई लाभ नहीं और उन्हें न माननेसे हमारी कोई हानि नहीं होती तो फिर हम उन्हें क्यों मानें? प्रस्तुत निबन्धमें यही दिखलानेकी चेष्टा की जायगी कि ईश्वर और धर्मको माननेमें लाभ-ही-लाभ है और उन्हें न माननेमें हमारी परम हानि है।

आजके तार्किक मनुष्यका पहला प्रश्न यही होता है—ईश्वरको हम क्यों मानें? इसका उत्तर संक्षेपमें यही है कि वेद-पुराणादि हिंदूशास्त्र, ईसाई-मुसलमान आदि अन्यान्य मजहबोंके धर्मग्रन्थ तथा प्रायः सभी मतोंके प्रवर्तक, सम्प्रदायाचार्य तथा महापुरुष एक स्वरसे ईश्वरके अस्तित्वको स्वीकार करते हैं। इन सबकी सम्मिलित अनुभूतिके सामने नास्तिकोंके निषेधका क्या मूल्य है। यहाँ वादी यह कह सकता है कि जिस प्रकार वेदादि शास्त्रों तथा अन्य मजहबोंके धर्मग्रन्थोंमें ईश्वरके अस्तित्वका समर्थन करनेवाले वाक्य मिलते हैं, उसी प्रकार नास्तिकोंके ईश्वर-निषेधक वाक्य भी पाये जाते हैं। जिस प्रकार आस्तिक अपनी अनुभूतिको सत्य मानता है, उसी प्रकार नास्तिक अपनी अनुभूतिको ठीक समझता है। ऐसी दशामें किसकी अनुभूतिको

प्रमाण माना जाय ? इसका उत्तर यह है कि नास्तिककी अनुभूतिकी अपेक्षा आस्तिककी अनुभूति बलवती होती है। असलमें किसी भी वस्तुके सम्बन्धमें 'वह नहीं है' ऐसा कहना तो बनता ही नहीं। जिसने किसी वस्तुका साक्षात्कार कर लिया है, किसी वस्तुको जान लिया है, वह तो अधिकारपूर्वक यह कह सकता है कि अमुक वस्तु है, उसे मैंने देखा है, जाना है, अनुभव किया है, परन्तु जिसने किसी वस्तुको जाना या देखा नहीं है, अनुभव नहीं किया है, वह क्योंकर कह सकता है कि अमुक वस्तु नहीं है। उसका ऐसा कहना अज्ञतापूर्ण एवं दुःसाहस ही नहीं अपितु असत्य भी है। क्योंकि किसी वस्तुका ही अभाव हमें किसी देशविशेषमें तथा कालविशेषमें ही प्रत्यक्ष हो सकता है। सर्वत्र एवं सब कालमें तो हमारी खुदकी भी गति नहीं है। फिर हम निश्चयपूर्वक कैसे कह सकते हैं कि ईश्वर कहीं और किसी कालमें भी नहीं है। जिसकी सर्वत्र गति हो, जो सब कालमें मौजूद हो और जिसे सब कुछ ज्ञात हो, वही यह कहनेका साहस कर सकता है कि अमुक वस्तु सर्वथा नहीं है। और यदि ऐसा कोई व्यक्ति है तो वही हमारा ईश्वर है। ईश्वरके ही सम्बन्धमें क्यों, सभी अपार्थिव एवं अप्राकृत वस्तुओंके लिये यह कहा जाता है कि अमुक वस्तु देखनेमें नहीं आती, अतः वह नहीं है। कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, देवादि योनियाँ, स्वर्गादि लोक, शरीरसे पृथक् जीवात्मा—ये सब वस्तुएँ देखनेमें नहीं आतीं, अतः इनमेंसे कोई भी नहीं है—यह कहना सर्वथा दुःसाहस है। हाँ, यदि कोई यह कहे कि मैंने ईश्वरको देखा नहीं, मुझे ईश्वरका पता नहीं तो यह बिल्कुल सत्य है। ईश्वरके सम्बन्धमें हम अपना अज्ञान, अपना असामर्थ्य प्रकट कर सकते हैं; परंतु यह कदापि नहीं कह सकते कि 'वह नहीं है'।

थोड़ी देरके लिये यह भी मान लिया जाय कि ईश्वरका अस्तित्व संदेहास्पद है, उसके सम्बन्धमें निश्चितरूपसे न यह कहा जा सकता है कि 'वह है' और न यही कहा जा सकता है कि 'वह नहीं है'। परंतु संदेहकी स्थितिमें भी न माननेकी अपेक्षा मानना अधिक लाभदायक है। यदि वास्तवमें ईश्वर नहीं है, तो भी उसे माननेवाला किसी प्रकार घाटेमें नहीं रहेगा। ईश्वरको माननेवाला कम-से-कम पाप एवं अनाचारसे बचा रहेगा; जीवमात्रको ईश्वरका स्वरूप, अंश अथवा संतान मानकर सबके साथ प्रेम एवं सहानुभूतिका बर्ताव करेगा; और इस प्रकार कम-से-कम लोकमें तो उसकी ख्याति होगी, और बदलेमें औरोंसे भी उसे सद्भाव एवं सहानुभूति ही मिलेगी। फलतः उसका जीवन अपेक्षाकृत सुख-शान्तिसे बीतेगा और जगत्‌में भी उसके द्वारा सुख-शान्तिका ही विस्तार होगा। ईश्वरके न होनेपर भी उसके माननेसे इतना लाभ तो उसे प्रत्यक्ष ही होगा। इसके विपरीत यदि ईश्वर है तो उसके माननेवाले तो सब प्रकार लाभमें रहेंगे—उसके कानूनको मानकर, उसकी आज्ञाके अनुसार चलकर उसके प्रीतिभाजन बनेंगे और फलतः इस लोकमें सुख-शान्तिसे रहेंगे और मृत्युके बाद परम शान्तिको प्राप्त होंगे। परंतु ईश्वरके रहते भी जो उन्हें न मानकर उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं, उनके जीवोंको सताते हैं, उन्हें जीते-जी कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा तथा मरनेके बाद उनकी कैसी दुर्गति होगी—इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इतना ही नहीं, ईश्वरपर विश्वास करनेसे साधकोंको प्रत्यक्ष लाभ होते देखा जाता है। ईश्वरको माननेवालोंके अंदर धीरता, वीरता, गम्भीरता, सहृदयता, दयालुता, क्षमा, निर्भयता, शान्ति, श्रद्धा, प्रेम आदि सद्गुण अपने-आप आ जाते हैं और दुर्गुण-दुराचारका नाश हो जाता है। जगत्‌के इतिहासमें, विशेषकर भारतके इतिहासमें, ऐसे अनगिनत उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें भगवान्‌ने अपने विश्वासियोंको प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे अनेक प्रकारके संकटोंसे बचाया है तथा

उन्हें सब प्रकारसे सुखी किया है। अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि भगवान् न होते तो उनके द्वारा इस प्रकार उनपर विश्वास करनेवालोंका लौकिक एवं पारमार्थिक लाभ किस प्रकार सम्भव था।

जिस प्रकार सूर्योदय हो जानेपर अन्धकारका समूल नाश हो जाता है, उसका लेशमात्र भी अवशिष्ट नहीं रहता, उसी प्रकार भगवान्का ज्ञान, भगवान्का साक्षात्कार हो जानेपर अविद्या अथवा अज्ञानका सर्वथा अभाव हो जाता है, मायाका लेश भी नहीं रह जाता। अन्धकार अथवा अज्ञान कोई वास्तविक पदार्थ नहीं हैं, प्रकाश एवं ज्ञानके अभावकी ही क्रमशः 'अन्धकार' एवं 'अज्ञान' संज्ञा है। अतएव ज्ञानरूप प्रकाशका आविर्भाव होते ही अज्ञानरूप अन्धकार सर्वथा विलीन हो जाता है। जब अज्ञान ही नहीं रहता तब उसके कार्यरूप काम-क्रोधादि विकार, दुर्गुण एवं दुराचार तो रह ही कैसे सकते हैं। और जब दुर्गुण-दुराचार नहीं रहे, तब उनके फलरूप, दुःख-शोकादिका भी अत्यन्ताभाव हो जाता है। इस प्रकार परमात्मविषयक ज्ञान अथवा भगवत्साक्षात्कार हो जानेपर माया एवं उसका सारा परिवार—दुःख-शोक, दरिद्रता, दीनता, पराधीनता, ममता-मोह, राग-द्वेष आदि नष्ट हो जाते हैं। सूर्योदय हो जानेके बाद अन्धकार-निवृत्तिके लिये स्वतन्त्र प्रयत्न नहीं करना पड़ता। सूर्योदयके निकट आते ही अन्धकार अपने-आप भागने लगता है, सूर्योदय हो जानेपर तो उसका कहीं खोज भी नहीं मिलता।

माया जड है, परमात्मा विशुद्ध चेतन-तत्त्व है। अन्धकार एवं प्रकाशकी भाँति दोनों एक दूसरेसे अत्यन्त विलक्षण हैं। मायाका ही दूसरा नाम प्रकृति है। इस मायाके दो रूप हैं—विद्या और अविद्या। सत्त्वगुण और तमोगुण भी इन्हींके नामान्तर हैं। गीताके अनुसार सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिके ही कार्य हैं—'सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।' (१४।५)। वेदोंमें आता है कि जीवोंके कर्मोंकी प्रेरणासे इच्छाहीन परमात्मामें एकसे अनेक होनेकी इच्छा प्रकट होती है—'सोऽकामयत। एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेयेति।' भगवान्के इस सङ्कल्पसे प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न होता है—यही रजोगुणका स्वरूप है। जिस प्रकार दहीमें हलचल होनेसे उसमेंसे नवनीत प्रकट होता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृतिमें क्षोभ होनेपर उसमेंसे सत्त्वगुणरूप महत्तत्त्व अथवा समष्टि-बुद्धि उत्पन्न होती है। इसी बुद्धितत्त्वमें प्रतिफलित होनेवाला जो चेतन परमात्माका स्वरूप है, उसीका नाम ज्ञान अथवा विद्या है और इसीका विरोधी अज्ञान अथवा अविद्या है, जिसे 'तमोगुण' भी कहते हैं। महत्तत्त्वसे अहंकारकी और अहंकारसे पञ्चतन्मात्राओं अर्थात् सूक्ष्मभूतोंकी उत्पत्ति होती है। इन भूतोंमें अभिव्यक्त होनेवाला जो परमात्माका स्वरूप है, उसीका नाम प्रकाश है और अन्धकार उसका विरोधी है। प्रकाश सत्त्वका कार्य है और अन्धकार तमोगुणका। जो मायातीत विशुद्ध चेतन-तत्त्व है, उसीका नाम निर्गुण निराकार ब्रह्म है। मायाके कार्य बुद्धिमें आनेवाला जो परमात्माका ज्ञानस्वरूप है, वही सगुण-निराकार परमेश्वर है। और उनका जो प्रकाशमय स्वरूप है, वही सगुण-साकार भगवान् हैं। इन्हींके श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीदुर्गा आदि विविध रूप हैं।

इन सभी रूपोंमें भगवान् अपनेको मायाके पर्देके भीतर छिपाये रखते हैं, इसीलिये ये सब रूप मायाविशिष्ट कहलाते हैं। भगवान् स्वयं श्रीगीताजीमें कहते हैं—

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।'
(७।२५)

अर्थात् मैं योगमायासे अपनेको छिपाये रखनेके कारण सबके सामने प्रकट नहीं होता। परंतु जो भगवान्के ज्ञानी भक्त हैं, उनसे भगवान् अपनेको छिपा नहीं सकते। उनके सामने वे निरावरण होकर अपने

असली रूपमें प्रकट हो जाते हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान्‌के राम-कृष्णादि विग्रह मायिक हैं, असली नहीं हैं। नहीं-नहीं, भगवान्‌के वे सभी स्वरूप उनके अपने स्वरूप हैं। चिन्मय हैं। परंतु जनसाधारणके सामने वे अपनी योगमायाका पर्दा डाले रहते हैं, जिसके कारण लोग उन्हें जन्मने-मरनेवाला साधारण मनुष्य मान लेते हैं—

'मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।'
(७। २५)

तत्त्वतः भगवान्‌के साकार-निराकार सभी रूप चिन्मय मायातीत ही होते हैं। उनमें रहनेवाले जो अनन्त कल्याणगुण हैं, वे भी चिन्मय, दिव्य—उनके स्वरूपभूत ही हैं और मायिक गुणोंसे अत्यन्त विलक्षण होते हैं। मायिक गुण सब इन्हीं गुणोंके प्रतिबिम्बरूप होते हैं। संसारमें जितने गुण दिखायी देते हैं, देवताओं तथा मनुष्योंमें भी जितने गुण दृष्टिगोचर होते हैं, बल्कि जगत्‌की उत्पत्ति, पालन एवं संहारके लिये भगवान् जो गुणमय विग्रह धारण करते हैं—उनमें भी जिन असाधारण गुणोंका विकास होता है, वे सब मिलकर उस अनन्तदिव्यगुणार्णवकी एक बूँदके तुल्य भी नहीं हैं। भगवान् श्रीगीताजीमें भी कहते हैं—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्॥
(१०। ४१)

'जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान।'

संसारमें दीखनेवाले गुण घटते-बढ़ते हैं, विनाशी हैं तथा पकड़में आनेवाले हैं। इसके विपरीत भगवान्‌में रहनेवाले गुण सदा एकरस रहते हैं, वे भगवान्‌की भाँति ही अविनाशी एवं अग्राह्य हैं।

ऐसे अनन्तगुणागार, परमोदार, दयासागर, जीवके परम हितैषी प्रभुके अस्तित्वमें विश्वास करके उनकी एकान्त भक्ति तथा उनके अनुकूल आचरणद्वारा शीघ्र-से-शीघ्र उन्हें पा लेना, उन्हें तत्त्वतः जान लेना ही जीवका परम पुरुषार्थ, सच्चा लाभ है। इसीके लिये हमें यह दुर्लभ मनुष्य-देह प्राप्त हुआ है; उन्हीं करुणावरुणालय, सर्वसुहृद्, सबके माता-धाता-पितामह भगवान्‌की खोजमें यह जीव अनादि कालसे भटक रहा है और इसका भटकना तबतक बंद नहीं होगा, जबतक यह उन्हें पा न लेगा। परंतु यह काम किसी दूसरेके किये नहीं होगा, यह तो जीवको स्वयं ही करना होगा। भगवान् स्वसंवेद्य एवं स्वतः प्रापणीय हैं। अतः उनकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको मृत्युपर्यन्त प्राणपणसे चेष्टा करनी चाहिये। जबतक उसका यह कार्य न हो जाय, तबतक उसे चैन नहीं मिलना चाहिये, किसी दूसरी ओर ताकना भी नहीं चाहिये। विषयोंको पानेके लिये तो सभी लालायित रहते हैं और विषय प्रारब्धानुसार सभी योनियोंमें मिल जाते हैं। परंतु भगवान्‌की प्राप्ति तो केवल मनुष्य-जीवनमें ही सम्भव है। अतः सब ओरसे चित्तवृत्तिको हटाकर केवल भगवान्‌को पानेके लिये अथक प्रयत्न करना ही मनुष्यमात्रका प्रथम कर्तव्य है। दूसरे सब कर्तव्य इसके सामने गौण हैं। विषयोंकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करना तो मनुष्यके लिये वैसा ही है, जैसा किसी बालकका सूर्य अथवा चन्द्रमाके प्रतिबिम्बको पकड़नेका प्रयत्न करना। प्रतिबिम्बको पकड़नेके लिये प्रयत्नशील बालकके बिम्ब तो हाथ लगता ही नहीं, प्रतिबिम्ब भी उसकी पकड़में नहीं आता, क्योंकि उसकी वास्तविक सत्ता ही नहीं है। केवल छटपटाना ही हाथ लगता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण सुखोंके आकर परमानन्दरूप श्रीभगवान्‌को छोड़कर मायिक विषय-सुखके पीछे दौड़नेवाले मनुष्यको वास्तविक सुख तो प्राप्त होता ही नहीं, विषय भी उसकी पकड़के बाहर ही रहते हैं।

पकड़में आ जानेपर भी वे उसके पास टिकते नहीं, क्योंकि उनका स्वरूप ही क्षणिक एवं विनाशी है। वास्तवमें तो उनकी कोई सत्ता ही नहीं है; हमने उनकी सत्ता मान रक्खी है, इसीलिये उनकी प्रतीति होती है।

अब जब युक्ति एवं शास्त्रके प्रमाणोंसे यह निश्चित हो गया कि भगवान् हैं और उन्हें पाना ही जीव-जीवनकी सबसे बड़ी साध है, तब दूसरा प्रश्न यह होता है कि उन्हें किस प्रकार प्राप्त किया जाय? इसका सरल उत्तर यह है कि निष्कामभावसे उनकी आज्ञाका पालन करना अथवा अनन्यशरण होकर उनकी उपासना करना—उनकी भक्ति करना ही उन्हें पानेका सर्वोत्तम उपाय है।

ईश्वर है तो उसका कानून भी है। उसी कानूनका नाम धर्म है। धर्म दो प्रकारका है—सामान्य और विशेष। मनुष्यमात्रके लिये पालनीय धर्म अर्थात् उत्तम आचरण-का नाम सामान्य अथवा मानव-धर्म है। गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवीसम्पत्तिके नामसे, सत्रहवेंमें कायिक-वाचिक-मानसिक—त्रिविध तपके नामसे और तेरहवें अध्यायमें ज्ञानके नामसे इसी सामान्य धर्मका निरूपण है। (देखिये १६।१—३; १७।१४—१६; १३।७—११)। योगदर्शनमें यम-नियमोंके नामसे तथा मानव-धर्मशास्त्रमें दशविध धर्मके नामसे भी इसी मानव-धर्मका उल्लेख हुआ है। सदाचारके पालनसे अन्तःकरणकी शुद्धि होकर मनुष्य ईश्वर-प्राप्तिका अधिकारी बनता है और फिर साधनद्वारा उन्हें प्राप्त भी कर लेता है। श्रुति, स्मृति एवं पुराणोंमें बताये हुए विभिन्न वर्णों एवं आश्रमोंके आचारका नाम 'विशेष धर्म' है; यह सबके लिये अलग-अलग है। इसीका गीतामें जगह-जगह स्वधर्म, स्वभावनियत कर्म, स्वकर्म, सहज कर्म, स्वभावज कर्म आदि नामोंसे उल्लेख हुआ है। सामान्य धर्मके साथ-साथ इस विशेष धर्मके पालनपर भी गीताने बहुत जोर दिया है और परधर्मको स्वीकार करनेकी अपेक्षा—चाहे वह हमारे धर्मकी अपेक्षा श्रेष्ठ भी क्यों न हो और हमारा धर्म उतना ऊँचा न हो—स्वधर्मका पालन करते हुए मर जाना श्रेष्ठ बतलाया है। गीता डंकेकी चोट कहती है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥
(३।३५)

'अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्ममें तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है।'

अठारहवें अध्यायमें इसी श्लोकके पूर्वार्द्धकी ज्यों-की-त्यों पुनरावृत्ति की गयी है और उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा है—

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥
(१८।४८)

'अतएव हे कुन्तीपुत्र! दोषयुक्त होनेपर भी सहज कर्मको नहीं त्यागना चाहिये; क्योंकि धुएँसे अग्निकी भाँति सभी कर्म किसी-न-किसी दोषसे ढके हुए हैं।'

तात्पर्य यह है कि गीताने समाजकी शृङ्खलाको सुदृढ एवं सुव्यवस्थित रखनेके लिये वर्णाश्रमधर्मका पालन अनिवार्य माना है और साथ ही यह भी बताया है कि कर्मकी छोटाई-बड़ाई उसके स्वरूपपर नहीं बल्कि कर्ताके भावपर निर्भर करती है। हमारे सनातन वर्णाश्रमधर्मकी यही विशेषता है कि उसमें लोक-परलोक—स्वार्थ-परमार्थ दोनोंपर दृष्टि रक्खी गयी है और समाजधर्म एवं अध्यात्मका अद्भुत ढंगसे सामञ्जस्य किया गया है। हमारे यहाँ धर्मकी परिभाषा ही यह की गयी है—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'—जिसके पालनसे हमारा लौकिक अभ्युदय, जागतिक उन्नति हो और साथ ही हमारा परलोक भी बने

अर्थात् जिससे हमारे स्वार्थ-परमार्थ दोनों सिद्ध हों, वही धर्म है। परलोक बननेके कई अर्थ हो सकते हैं। मरनेके बाद लोकमें हमारी कीर्ति हो और हमें स्वर्गादि दिव्य-लोकोंके दिव्य सुख प्राप्त हों—इसे भी संसारमें परलोक बनाना कहते हैं। कई मजहबों एवं दर्शनोंने तो इसीको मनुष्य-जीवनका परम लक्ष्य माना है। परंतु गीता अथवा हिंदूधर्मका परलोक बनाना यहींतक सीमित नहीं है। हमारा तो अन्तिम लक्ष्य सीमारहित अनन्त सुख है। हमारे ऋषियोंने स्वर्गादिके सुखोंका अनुभव करके हमें यह बताया है कि पार्थिव सुखोंकी भाँति वे सुख भी अल्प—अस्थायी हैं, उनका भी एक-न-एक दिन अन्त हो जाता है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥
(८। १६)

'अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परंतु कुन्तीनन्दन! मुझको प्राप्त हो जानेपर पुनर्जन्म नहीं होता [क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादिके लोक कालके द्वारा सीमित होनेसे अनित्य हैं]।'

ब्रह्मलोक ऊपरके लोकोंमें सबसे ऊँचा और सबसे दिव्य माना गया है। वहाँके निवासियोंकी आयु भी सबसे लंबी होती है। परंतु ब्रह्माकी आयु बीत जानेपर ब्रह्मलोकका भी लय हो जाता है और यद्यपि वहाँके बहुत-से जीव उस समय मुक्त हो जाते हैं, फिर भी वहाँके सभी निवासियोंकी मुक्ति निश्चित नहीं है। जब ब्रह्मलोकतककी यह बात है, तब स्वर्गादि नीचेके लोकोंकी तो बात ही क्या है। उनके सम्बन्धमें तो भगवान्ने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि पुण्य-क्षीण हो जानेपर वहाँके निवासी वहाँसे नीचे ढकेल दिये जाते हैं और उन्हें पुनः इस मर्त्यलोकमें आना पड़ता है—'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' (गीता ९। २१)। सदा रहनेवाला सुख तो एकमात्र श्रीभगवान्में ही है, जिन्हें पाकर जीव सदाके लिये कृतकृत्य हो जाता है, सब प्रकारके बन्धनोंसे छूट जाता है। इसीका नाम मुक्ति है और इसीको शास्त्रोंमें 'निःश्रेयस्' कहा है—जिससे बढ़कर कोई दूसरा सुख न हो। इस निःश्रेयस्की प्राप्ति ही हिंदुओंका परम लक्ष्य है।

प्रत्येक मनुष्य अपने वर्णाश्रमोचित कर्तव्यका निष्काम-भावसे पालन करके इस परम गतिको प्राप्त कर सकता है। निःश्रेयस्की प्राप्तिमें छोटे-बड़े सबका समान अधिकार है; जो जहाँ है वह उसी स्थितिमें रहकर स्वधर्मका पालन करता हुआ भगवान्को प्राप्त कर सकता है। भगवान्की प्राप्तिके लिये किसीको भी अपना कर्म छोड़ने अथवा दूसरेका धर्म स्वीकार करनेकी आवश्यकता नहीं है। शम-दमादिसम्पन्न वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मण अध्ययन-अध्यापनरूप स्वधर्मके अनुष्ठानसे जिस पदको प्राप्त कर सकता है, नीचे-से-नीचा कर्म करनेवाला शूद्र अपने सेवारूप कर्मसे उसी गतिको पा सकता है। शूद्रके लिये यह आवश्यक नहीं कि वह ब्राह्मणका कर्म करे। शूद्र तापसको प्राणदण्ड देकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने संसारको यही शिक्षा दी थी। आवश्यकता है केवल कर्तव्यबुद्धिसे अथवा भगवत्प्रीत्यर्थ अपने विहित कर्मका अनुष्ठान करनेकी। निष्काम भाव अथवा भगवत्प्रीतिकी भावना न होनेपर भी स्वधर्म-पालनसे अन्तःकरण-शुद्धि तो होती है—'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः' (गीता १८। ४५) और अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर क्रमशः भगवान्में श्रद्धा और प्रेम उत्पन्न होकर भगवान्की प्राप्ति सहज हो जाती है। कहिये, कितना सरल उपाय है भगवान्को प्राप्त करनेका! इस प्रकार वर्णाश्रमकी आदर्श व्यवस्था बाँधकर हमारे यहाँके ऋषियोंने न केवल व्यक्तियोंके कल्याणका पथ सुगम कर दिया अपितु प्रत्येक वर्गके कर्म

निश्चित करके समाजको भी सुव्यवस्थित बना दिया। हमलोगोंका यह परम दुर्भाग्य है कि आज हम पाश्चात्त्योंका अन्धानुकरण करने जाकर अपने त्रिकालज्ञ ऋषियोंकी बनायी हुई मर्यादाकी अवहेलना कर रहे हैं और इस प्रकार दुःख एवं अशान्ति मोल ले रहे हैं। भगवान् हमें सुबुद्धि दें।

भगवान्‌को प्राप्त करनेका इससे भी सरल एवं सफल उपाय है—भगवान्‌की भक्ति। ईश्वरभक्तिसे दैवी गुण अपने आप आने लगते हैं; क्योंकि दैवी गुण भगवान्‌के ही तो गुण हैं। जहाँ भगवान् रहते हैं, वहाँ उनके गुण अवश्य रहने चाहिये। इस प्रकार भगवद्भक्तके द्वारा सामान्य धर्मका पालन अपने-आप होता है। इसके लिये उसे अलग चेष्टा नहीं करनी पड़ती। सदाचार उसका स्वभाव बन जाता है। भगवद्भक्ति और सदाचारमें अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध है। भक्तिसे सद्गुण एवं सदाचारकी प्रतिष्ठा होती है और सद्गुण एवं सदाचारसे अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवान्‌के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम उत्पन्न होता है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥
(७।२८)

'परंतु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढनिश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं।'

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥
(९।१३)

'परंतु कुन्तीनन्दन! दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मनसे युक्त हो निरन्तर भजते हैं।'

भक्तिसे परमात्मविषयक ज्ञान भी अपने-आप हो जाता है। भगवान् अपने भक्तोंको अनायास ही अपना ज्ञान दे देते हैं। वे कहते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥
(गीता १०।१०-११)

'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। और हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

यही नहीं, भक्तोंको किस बातकी आवश्यकता है—इसका ध्यान भगवान् स्वयं रखते हैं और वे सब प्रकारकी विपत्तियों तथा विघ्नोंसे उनकी रक्षा करते हैं। भगवान् कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(९।२२)

'जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।'

भगवान्‌की भक्तिसे बड़े-से-बड़ा पापी भी बहुत शीघ्र धर्मात्मा बनकर शाश्वती शान्ति प्राप्त कर लेता है, इसे भी भगवान् स्वयं अपने श्रीमुखसे स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
(गीता ९ । ३०-३१)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर-के भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। यही नहीं, वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'

और तो और, अनन्यभावसे नित्य-निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन करनेवाले भक्तको स्वयं भगवान् अनायास मिल जाते हैं (देखिये गीता ८ । १४)। जिस भक्तिसे अखिल ब्रह्माण्डनायक, अनन्त ऐश्वर्य एवं माधुर्यके अचिन्त्य महासागर, कर्तुं-अकर्तुं-अन्यथाकर्तुं समर्थ, सर्वभूतमहेश्वर, सर्वसुहृद्, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी, सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिमान् एवं सर्वनियन्ता भगवान् सुलभ हो जाते हैं, उस भक्तिभगवतीकी कहाँतक महिमा कही जाय। अतः अनन्यभावसे प्रेमपूर्वक भगवान्‌का भजन करना ही जीवका सर्वोपरि कर्तव्य है। इसीलिये श्रीमद्भागवतमें कहा है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति॥
(१ । २ । ६)

'मनुष्यमात्रके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् विष्णुमें भक्ति हो—ऐसी भक्ति, जिसका और कोई उद्देश्य न हो, जिसकी धारा कभी टूटे नहीं और जिससे चित्त भलीभाँति शान्त हो जाय।'

जहाँ यह समझमें आ गया कि विश्वब्रह्माण्डका रचयिता एवं नियामक एक सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी एवं सर्वसाक्षी चेतन ईश्वर है, वहीं यह भी मानना पड़ेगा कि इस विश्वका संचालन कतिपय अनादि एवं अपरिवर्तनीय नियमोंके अनुसार होता है। उन्हीं नियमोंकी समष्टिका नाम धर्म अथवा सनातनधर्म है और उन नियमोंका उल्लेख तथा विधान जिन ग्रन्थोंमें है, उन्हींका नाम है—शास्त्र। बिना कारणके किसी कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतः यह मानना पड़ेगा कि जगत्‌में सुख-शान्ति तथा समृद्धि तभी हो सकती है, जब कि जगत्‌के जीव उन ईश्वरीय नियमों-का आदर करें और उनके अनुसार चलें। पृथ्वीपर रहनेवाले जीवोंमें मनुष्यका दर्जा सबसे ऊँचा है; पृथ्वीके समस्त जीवोंमें मनुष्य ही एक ऐसा जीव है, जिसे भगवान्‌ने विवेक-बुद्धि, अपना हिताहित सोचने और बुरे-भलेको पहचाननेकी शक्ति दी है। जिसमें हिताहित सोचनेकी बुद्धि, सत्‌को ग्रहण करने तथा असत्‌का त्याग करनेकी सामर्थ्य है, कानून भी उसीपर लागू होता है। नाबालिग बालकों तथा तिर्यक् योनिके जीवोंपर जगत्‌का भी कोई कानून इसीलिये लागू नहीं होता कि उनमें अपना हिताहित सोचने और तदनुसार कार्य करनेकी क्षमता नहीं है। इसलिये नियमानुकूल आचरणकी जिम्मेवारी पृथ्वीके जीवोंमें केवल मनुष्यपर है। अतः मनुष्यजातिके आचरणोंपर ही जगत्‌का सुख-दुःख निर्भर करता है। मनुष्योंका आचरण यदि धर्मानुकूल होता है तो जगत्‌में सर्वत्र सुख-शान्ति रहती है। इसके विपरीत मनुष्योंकी आस्था जब धर्मसे हट जाती है और वे मनमाना आचरण करने लगते हैं, तब जगत्‌में सर्वत्र विप्लव मच जाता है और समस्त जीव दुःख एवं शोककी ज्वालासे जलने लगते हैं।

इसीलिये भगवान् वेदव्यासने महाभारतमें कहा है—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥
श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

'मैं भुजा उठाकर उच्च स्वरसे चिल्लाता हूँ कि धर्मसे ही अर्थ एवं कामकी सिद्धि होती है; परंतु मेरी बात कोई सुनता ही नहीं। मैं धर्मका सार बतलाता हूँ, उसे सब लोग सुनें और सुनकर उसपर ध्यान दें—वह यही कि जो व्यवहार अपनेको अच्छा न लगे, उसे दूसरोंके साथ कभी न करे।'

इसीलिये शास्त्रोंमें जगह-जगह यही घोषणा की गयी है कि धर्मकी सदा विजय होती है—'यतो धर्मस्ततो जयः।' जहाँ धर्म है, वहाँ भगवान् अवश्य हैं; क्योंकि विधाता और उनका विधान एक ही वस्तु है। बल्कि यों भी कहें तो कोई हानि नहीं कि विधानके रूपमें स्वयं विधाता ही विद्यमान हैं। और जहाँ भगवान् स्वयं हों, वहाँ जय तो निश्चित ही है। इसीलिये एक जगह महाभारतमें यह भी कहा गया है—'यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।' अर्थात् जहाँ धर्म है, वहाँ भगवान् अवश्य रहते हैं; और जहाँ भगवान् हैं, वहाँ विजय निश्चित है। विजय ही नहीं, वहाँ तो लक्ष्मी, ऐश्वर्य, नीति आदि सभी अभीष्ट वस्तुएँ एकत्रित रहती हैं। यही बात संजयने गीताके अन्तमें कही है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
(१८।७८)

हे राजन्! विशेष क्या कहूँ, जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन है, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।

परंतु आज तो सब कुछ विपरीत हो रहा है। आजकी स्थितिका दिग्दर्शन कराते हुए महर्षि वेदव्यास कहते हैं—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

'लोग पुण्यका फल—सुख तो चाहते हैं, परंतु पुण्य करना नहीं चाहते। पापका फल—दुःख हममेंसे किसीको अभीष्ट नहीं है, परंतु हमलोग पाप करते हैं ढूँढ़-ढूँढ़कर।'

ऐसी हालतमें भला, सुख कैसे हो सकता है; परंतु फिर भी लोग चेतते नहीं, धर्मकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं है। जगत्में सुख-शान्तिके विस्तारके लिये साम्यवाद, प्रजातन्त्रवाद आदि अनेकों वाद प्रचारित किये जा रहे हैं, परंतु इन सब वादोंसे हमारा दुःख घटनेके बदले क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। धर्मका फल सुख और पापका फल दुःख होता है—इसे भारतका बच्चा-बच्चा जानता है। फिर भी आज हम इस सिद्धान्तको भूलकर अधर्मकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। आज हमारी धारासभाओंमें आये दिन नये-नये कानून बनाये जाते हैं। जो हमारे धर्म एवं संस्कृतिका मूलोच्छेद करनेवाले हैं। कहीं सगोत्र-विवाह-बिल, कहीं अस्पृश्यता-निवारण-बिल और कहीं तलाकका बिल—चारों ओर नये-नये कानूनोंका ही दौरदौरा है; परंतु हमलोग आँखें मूँदकर इन सबको स्वीकार किये जा रहे हैं! इतिहास इस बातका साक्षी है कि जब-जब संसारमें अधर्म और अनीति बढ़ती है, तब-तब जगत्का शोक-संताप भी बढ़ता है और अन्याय करनेवालेका अन्ततोगत्वा पतन ही होता है। कभी स्वयं प्रकट होकर, कभी महापुरुषोंके द्वारा उनके मनमें प्रेरणा करके भगवान् जगत्को अधर्मियोंके चंगुलसे बचाते हैं; क्योंकि उनका यह विरद है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४।७-८)

'भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी

वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।'

ईश्वरमें विश्वास उठ जाने और धर्मसे च्युत हो जानेके कारण ही आज भारत परतन्त्र हो रहा है। धर्मपर दृढ़ता न होनेके कारण ही आज अल्पसंख्यक जातियाँ भी हमारे साथ समान अधिकारका दावा कर हमारा नाम-निशानतक मिटा देनेका प्रयत्न कर रही हैं और हम चुपचाप सब कुछ सहन किये चले जा रहे हैं। और कहा यह जाता है कि 'धर्म और ईश्वरवाद ही हमारे पतनका कारण है; जबतक धर्मका ढकोसला नहीं मिटेगा, तबतक भारतमें एकता नहीं स्थापित होगी और एकता हुए बिना भारत कभी स्वतन्त्र नहीं होनेका।' इधर विधर्मी लोग तो धर्मके नामपर संघटित होकर क्रमशः अपनी शक्ति बढ़ाते और हमपर नृशंसतापूर्ण अत्याचार करते जा रहे हैं और उधर हमारे ही भाई हमसे यह कहते हैं कि 'तुम अपने धर्म और संस्कृतिको तिलाञ्जलि देकर उनसे मेल करो और उनके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार करो।' बलिहारी है इस बुद्धिकी! भगवान्ने क्या ही ठीक कहा है कि जब बुद्धिपर तमोगुणका पर्दा छा जाता है, तब सब कुछ विपरीत दिखायी देने लगता है, अधर्मको ही लोग धर्म समझने लगते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥
(गीता १८। ३२)

हमारे ही देशके कई आततायी भाई आज धर्मके नामपर अन्य मतावलम्बियोंको मारने तथा उनकी बहू-बेटियोंकी आबरू लेनेमें सबाब (पुण्य) मानते हैं, यद्यपि यह उनकी उल्टी बुद्धिका ही परिणाम है। इधर हमारा धर्मप्रेम इतना कम हो गया है कि हमलोग धर्मके लिये अपने प्राण देनेको भी तैयार नहीं हैं, जब कि गीता हमें यही उपदेश देती है कि स्वधर्मके लिये मर जाना अच्छा है, किन्तु पर-धर्मको स्वीकार करना कदापि अच्छा नहीं। परंतु आज हम झूठी राष्ट्रीयताके मोहमें पड़कर गीताके इस अमर उपदेशको भूल गये हैं और स्वधर्मके त्यागपर उतारू हो रहे हैं। अहा! आज गुरु गोविन्दसिंहके वे वीर बालक कहाँ गये, जिन्होंने धर्मके लिये दीवालमें चुन दिया जाना मंजूर कर लिया, किंतु अपने धर्मका परित्याग नहीं किया। उन वीर बालकोंने चोटीकी रक्षाके लिये प्राण दे दिये, परंतु हम आज एकताके लिये चोटीतक देनेको तैयार हैं। बल्कि हमारे कई नेता तो यहाँतक कहते हैं कि मुसलमानोंके साथ एकता स्थापित करनेके लिये हमें अपनी लड़कियाँ सहर्ष उनको व्याह देनी चाहिये। जिन्होंने धर्मके लिये आजीवन कष्ट सहा, वे नल, राम और युधिष्ठिर आज कहाँ हैं? जो धर्मपर दृढ़ रहते हैं, धर्म उनकी रक्षा करता है और अन्तमें विजय उन्हींकी होती है। अन्यायी और पापाचारी भले ही थोड़े दिन फूल लें, फल लें; परंतु अन्तमें उनका विनाश अवश्यम्भावी है। दमयन्तीके पातिव्रतधर्मने ही उसकी लाज रक्खी और उन्हें कुदृष्टिसे देखनेवाला पापी व्याध उनके तेजसे भस्म हो गया। सती-शिरोमणि सावित्रीने अपने धर्मप्रेमसे यमराजपर भी विजय पायी और अपने पतिको मृत्युके मुखसे बचा लिया। द्रौपदीकी रक्षाके लिये धर्म स्वयं मूर्तिमान् होकर वस्त्रराशिके रूपमें प्रकट हो गया। इन वीर रमणियोंका नाम इतिहासमें अमर हो गया। जबतक हिंदू जाति संसारमें जीवित रहेगी, तबतक इन देवियोंका उज्ज्वल चरित्र हमारे लिये दीपस्तम्भका काम करता रहेगा। हमारे शास्त्र, हमारे ऋषि-महर्षि हमें बार-बार यही उपदेश देते हैं—

न जातु कामान्न भयान्न लोभा-
द्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥

'कामनावश, भयसे, लोभसे अथवा प्राण-रक्षाके लिये भी धर्मका परित्याग कदापि न करे। सुख-दुःख तो आगमापायी हैं, किन्तु धर्म सदा रहनेवाला है। जीवात्मा नित्य है, किन्तु उसका इस संसारमें आनेका हेतु—अविद्या अनित्य है।'

यद्यपि भगवान्की दृष्टिमें पापी और धर्मात्मा समान हैं, उनका न किसीसे राग है और न किसीसे द्वेष, फिर भी वे धर्मात्माओंकी रक्षा करके उन्हें प्रेमामृतका दान करते हैं और धर्मद्वेषियोंका विनाश करके उन्हें अपना स्वरूप प्रदान करते हैं। यही नहीं, विदुर-जैसे धर्मनिष्ठके यहाँ तो उन्होंने बिना बुलाये जाकर सागका भोग लगाया और दुर्योधनका आग्रहपूर्ण निमन्त्रण और राजोचित सत्कार भी स्वीकार नहीं किया। बात यह है कि भगवान् दैवीसम्पत्ति, धर्माचरण एवं प्रेमको ही महत्त्व देते हैं, धन अथवा राजसी ठाट-बाटका उनकी दृष्टिमें कोई मूल्य नहीं है। पद्मपुराणमें कथा आती है कि एक राजामें और एक निर्धन ब्राह्मणमें एक बार होड़ लगी कि देखें भगवान् किसे पहले मिलते हैं। राजाने राजोपचारसे तथा बहुत-सा द्रव्य खर्च करके बड़े ठाट-बाटके साथ भगवान्की पूजा की। इधर ब्राह्मणके पास पत्र-पुष्प और जलके सिवा भगवान्को निवेदन करनेके लिये कुछ भी नहीं था। यदि कोई वस्तु थी तो केवल उसके हृदयका प्रेम और दृढ़ विश्वास था। बस, उसीके भरोसे उस दीन-हीन ब्राह्मणने राजाके साथ होड़ बद दी। अन्तमें विजय उस अकिञ्चन ब्राह्मणकी ही हुई। पहले भगवान् उसीके यहाँ पधारे और उसे कृतार्थ करके पीछे राजापर भी कृपा की। राजापर भी कृपा उसकी भक्तिके कारण ही हुई, उसकी विपुल धनराशिके कारण नहीं।

महाराज युधिष्ठिरने महान् राज्य-वैभवका तिरस्कार करके धर्मके लिये बारह वर्षका वनवास अङ्गीकार किया। राजरानी द्रौपदीको जुएमें हार जानेके बाद भरी सभामें दुष्ट दुःशासनके द्वारा उसे नंगी करनेका प्रयत्न किये जानेपर शक्ति रहते भी उन्होंने कोई प्रतीकार नहीं किया। यक्ष बने हुए धर्मने उनके उत्तरोंसे प्रसन्न होकर जब उन्हें वरदान दिया कि 'अपने भाइयोंमेंसे किसी एकका जीवन मुझसे माँग लो, उसीको मैं जिला दूँगा।' तब महाराज युधिष्ठिरने नकुलका ही जीवन माँगा। यक्षने कहा—'तुम अपने सहोदर भीम अथवा अर्जुनका जीवन क्यों नहीं माँगते? उनमेंसे किसी एकको पाकर तो तुम सारे संसारको जीत सकते हो और अपना खोया हुआ साम्राज्य पा सकते हो।' बात भी सच्ची थी; परन्तु धर्मप्राण युधिष्ठिरने राज्यका लोभ न करके धर्मकी रक्षाके लिये नकुलको ही जिलानेकी प्रार्थना की; क्योंकि उन्होंने सोचा—मेरी दोनों ही माताओंकी संतान जीवित रहनी चाहिये। कुन्तीका पुत्र तो मैं मौजूद ही हूँ, एक पुत्र माद्रीमाताका भी रहना चाहिये। कुन्तीके दो पुत्र जीवित रहें और माद्रीका एक भी नहीं—खासकर जब कि माद्रीका शरीर नहीं था—यह बात युधिष्ठिरको धर्मसंगत नहीं लगी। इसीलिये उन्होंने नकुलका ही जीवन माँगा। इतना ही नहीं, महाराज युधिष्ठिर जब अपने धर्मबलसे सदेह स्वर्गको जाने लगे, उस समय एक कुत्ता भी उनके साथ हो लिया। स्वर्गके अधिकारियोंने कुत्तेका स्वर्गमें जाना मंजूर नहीं किया। इसपर महाराज युधिष्ठिर भी रुक गये। उन्होंने देवराज इन्द्रसे स्पष्ट कह दिया—'या तो यह कुत्ता भी मेरे साथ स्वर्गमें जायगा, अन्यथा मैं भी बाहर ही रहूँगा।' युधिष्ठिरके इस अनुपम धर्मप्रेमका ही यह फल था कि भगवान् एक प्रकार उनके हाथ बिक गये थे।

महाराणा प्रतापने जंगलोंमें भटककर घासकी रोटीसे जीवन-निर्वाह करना मंजूर कर लिया, परन्तु जीते-जी धर्मका त्याग नहीं किया। भक्त बालक पुण्डलीकने तो साक्षात् भगवान् तककी परवा नहीं की और उनके कहनेपर भी माता-पिताकी सेवारूप धर्मको नहीं छोड़ा। माता-पिताके अद्वितीय भक्त वैश्यकुमार श्रवणने माता-पिताकी सेवामें अपने प्राणोंका भी उत्सर्ग कर दिया। धर्मव्याधने यह दिखा दिया कि स्वधर्म-पालनसे बढ़कर कोई तप नहीं है। ब्रह्मचर्य-पालनरूप धर्मसे महात्मा भीष्म देवताओंके लिये भी अजेय हो गये। गृहस्थोंके लिये अतिथि-सेवा परमधर्म मानी गयी है—इसके विषयमें महाराज रन्तिदेवका इतिहास प्रसिद्ध है। उन्हें एक बार कुटुम्बसहित अड़तालीस दिनोंतक निर्जल उपवास करनेके बाद थोड़ी खीर, लपसी और जल मिला। आपसमें बाँटकर वे उस खीरको खानेको बैठे ही थे कि एक ब्राह्मण अतिथि उनके द्वारपर आ गया। खीरमेंसे एक भाग उन्होंने उस ब्राह्मणको आदरपूर्वक दे दिया और बाकी अपने तथा अपने कुटुम्बियोंके लिये रख लिया। ब्राह्मण उस खीरको पाकर ज्यों ही जाने लगा, त्यों ही एक शूद्र वहाँ आ पहुँचा। वह शूद्र भी भूखा था, अतः राजाने ब्राह्मणको खिलानेके बाद बची हुई उस खीरमें-से एक हिस्सा सम्मानके साथ उस शूद्रको दे दिया। शूद्रके चले जानेके बाद एक चाण्डाल अपने कुत्तोंको लिये वहाँ आया। उसने भी राजासे अन्न माँगा। राजाने शेष सारी-की-सारी खीर बड़ी श्रद्धाके साथ उस चाण्डालके अर्पित कर दी और भगवद्बुद्धिसे उसे तथा उसके कुत्तोंको प्रणाम किया। अब उनके पास एक आदमीके पीने भरके लिये जल बच रहा था। ज्यों ही वे उसे आपसमें बाँटकर उसके द्वारा अपनी अड़तालीस दिनोंकी प्यास बुझाने चले कि इतनेमें एक और छोटी जातिका मनुष्य वहाँ आया और उनसे जलकी याचना करने लगा। बस, फिर क्या था; राजाने वह जल उसको दे दिया और भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना की—

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥
(श्रीमद्भा० ९।२१।१२)

'मैं भगवान्से आठों सिद्धियोंसे युक्त परमगति नहीं चाहता। और तो क्या, मैं मोक्षकी भी कामना नहीं करता। मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें बैठकर उनका सारा दुःख भोगूँ, जिससे वे सब दुःखरहित हो जायँ।' धन्य अतिथिप्रेम !

अतिथिसेवाका एक और सुन्दर दृष्टान्त महाभारत-के आश्वमेधिकपर्वमें मिलता है। महाभारत-युद्ध समाप्त हो जानेके बाद हिंसा-दोषकी निवृत्तिके लिये महाराज युधिष्ठिरने अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया। यज्ञ ज्यों ही समाप्त हुआ कि यज्ञमण्डपमें एक नेवला आया और वह वहाँकी भूमिमें लोटने लगा। उसका आधा शरीर सोने-का था। उस विचित्र जन्तुको इस प्रकार लोटते देख याज्ञिक ब्राह्मण आश्चर्यपूर्ण नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगे। उन्हें आश्चर्ययुक्त देख वह नेवला मनुष्यकी बोली बोलने लगा। उसने बताया कि कुरुक्षेत्रमें एक उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण रहते थे। वे कबूतरकी भाँति अन्न-के दाने चुन-चुनकर लाते और इस प्रकार कष्टपूर्वक एकत्रित किये अन्नसे अपना एवं अपने कुटुम्बका पालन करते थे। एक बार उन्हें कई दिनोंतक कुटुम्बसहित फाँका करना पड़ा। इसके बाद एक दिन उन्हें सेरभर जौ मिला। उसका उन्होंने सत्तू बना लिया और उस सत्तूको आपसमें बाँटकर ज्यों ही वे खानेको बैठे कि एक ब्राह्मण अतिथि उनके द्वारपर आ खड़ा हुआ। उसे उन्होंने क्रमशः अपना, अपनी धर्मपत्नीका, अपने पुत्रका तथा अन्तमें अपनी पुत्रवधूका भी भाग दे दिया और स्वयं सब लोग भूखे रह गये। नेवला यह देखकर अपने बिलसे बाहर निकला और जहाँ उस अतिथि ब्राह्मणने सत्तू खाया था, उस स्थानपर लोटने लगा। फल यह हुआ कि उसके जितने अङ्गोंके साथ वहाँकी कीचका स्पर्श हुआ, वे सारे-के-सारे सोनेके हो गये। नेवला महाराज युधिष्ठिरके यज्ञका शोर सुन-कर इस आशासे वहाँ आया था कि वहाँकी भूमिमें

लोटनेपर उसके शरीरका शेष भाग भी सोनेका हो जायगा। क्योंकि उस यज्ञभूमिमें लाखों ब्राह्मणोंने भोजन किया था और असंख्य द्रव्य खर्च हुआ था। परन्तु नेवलेका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ; उसका शेष अङ्ग जैसा-का-तैसा ही बना रहा। इसलिये उसने बताया कि उस उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके सेरभर सत्तूके दानकी बराबरी चक्रवर्ती सम्राट् युधिष्ठिरका किया हुआ विशाल यज्ञ भी नहीं कर सका, फिर औरोंकी तो बात ही क्या है।

इस प्रकार विभिन्न धर्मोंका वर्णन हमारे शास्त्रोंमें पाया जाता है। धार्मिक ग्रन्थोंका पठन-पाठन तथा पुराणोंकी कथाकी पद्धति एक प्रकारसे बंद हो जानेके कारण वर्तमान युगके शिक्षित समाजका धर्मज्ञान प्रायः नहींके बराबर रह गया है। अतः धर्मज्ञानके प्रसारके लिये धार्मिक ग्रन्थोंका पठन-पाठन तथा पुराण-वाचनकी पद्धति फिरसे जारी करनी चाहिये और घर-घरमें स्त्री-पुरुषोंको एक जगह बैठकर नियमित रूपसे सत्सङ्ग एवं स्वाध्यायके लिये समय निकालना चाहिये। जबतक धर्मका हमें ज्ञान न होगा, तबतक उसके पालनका तो प्रश्न ही दूर है। धार्मिक पत्रोंका भी प्रचार खूब जोरोंसे होना चाहिये, जिससे लोगोंमें धर्म-भावना जाग्रत् हो और धार्मिक जोश बढ़े। उत्तम गुणों एवं आचरणोंकी वृद्धिके लिये महापुरुषोंकी स्मृति तथा उनके चरित्रोंका पठन-पाठन बड़ा सहायक है। श्रीराम-कृष्णादि भगवदवतारोंकी पवित्र लीलाओंका अनुशीलन तथा उनके आदर्श चरित्रोंके अनुकरणकी चेष्टासे भी चरित्र-निर्माण एवं दैवीसम्पत्तिके अर्जनमें बड़ी सहायता मिलती है। भगवत्स्मृतिसे सभी गुण अनायास हृदयमें आ जाते हैं और जीवका परम कल्याण होता है। भगवत्स्मृतिसे बढ़कर अन्तःकरणकी शुद्धिका कोई दूसरा साधन नहीं है। अतः अधिक-से-अधिक भगवान्की स्मृति हो, इसकी चेष्टा प्रत्येक मनुष्यको करनी चाहिये। गीतामें भगवत्स्मृतिपर बहुत जोर दिया गया है। भगवान्के आदेशात्मक जितने वचन गीतामें मिलते हैं, वे सभी प्रायः स्मृतिपरक ही हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें यह बताया है कि विषय-चिन्तन सर्वनाशका कारण है (देखिये २। ६२-६३) और भगवच्चिन्तन करनेवालेका कभी विनाश नहीं होता—'न मे भक्तः प्रणश्यति' (९। ३१)।

भगवन्नामके जप एवं कीर्तनसे भी अन्तःकरणकी शुद्धि होकर हृदयमें सद्गुणोंका विकास और सदाचारमें प्रवृत्ति होती है। वास्तवमें भगवान् और भगवान्के नाममें कोई भेद नहीं है। भगवान्के स्वरूपकी भाँति उनका नाम भी चिन्मय है, उनका स्वरूप ही है। शब्द, अर्थ एवं अर्थका ज्ञान—तीनों एक ही वस्तु हैं। अतः भगवन्नामके सम्पर्कमें आनेसे अन्तःकरणकी परम शुद्धि होना स्वाभाविक ही है। सबका मूल, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सत्सङ्ग और सच्छास्त्रोंका अध्ययन ही है। सत् नाम परमात्माका है। गीतामें भी कहा है—

'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।'

(१७। २३)

'ॐ तत्सत्—ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा है;' और सङ्ग कहते हैं प्रीतिको, लगावको। अतः परमेश्वरमें प्रेम होना ही असली सत्सङ्ग है। सत्पुरुषोंके, भगवत्प्रेमियोंके सङ्गसे भगवान्में प्रीति होती है; इसलिये वह भी सत्सङ्ग कहलाता है और इसीलिये सत्सङ्गकी, साधुसङ्गकी इतनी महिमा शास्त्रोंने गायी है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

'भगवत्सङ्गियों, भगवत्प्रेमियोंके क्षणभरके सङ्गके साथ स्वर्ग तो क्या, मोक्षतककी तुलना नहीं हो सकती; फिर मनुष्यलोकके भोगोंकी बात ही क्या है।'

इस प्रकार सत्सङ्ग एवं सच्छास्त्रोंके अध्ययनद्वारा अपने कर्तव्यका ज्ञान प्राप्तकर शीघ्र-से-शीघ्र मनुष्य-जन्मको सफल करनेके प्रयत्नमें लग जाना चाहिये, जिससे पीछे न पछताना पड़े।

परमात्मासे विनय-विवाद

(लेखक—श्रीयुगलकिशोरजी बिड़ला)

हे अनादि, अनन्त, सच्चिदानन्द, परमात्मन्! आप सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता, सर्वद्रष्टा, सर्वाधार और सर्वज्ञ हैं। आप हमारे माता-पिता, गुरु, प्रभु, स्वामी, सखा, धाता, त्राता, सब कुछ हैं। आपने स्वयं अपने श्रीमुखसे गीतामें कहा है—

'पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।'
(९।१७)

'गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्॥'
(९।१८)

'मैं इस समस्त संसारका पिता-माता, धाता, पितामह, सबकी गति, सबका पोषक, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सखा तथा सब कुछ हूँ।' ऐसी दशामें आप तोड़ना भी चाहें, तब भी हमारे और आपके बीचका यह नाता टूट नहीं सकता। जब आप हमारे माता भी हैं और पिता भी, तब हम पुत्रोंके प्रति आपकी ऐसी उदासीनता क्यों? दयानिधे! संसारमें आपकी सन्तानोंके लिये इतना दुःख और क्लेश क्यों?

प्रभो! आपकी सन्तान होनेकी दृष्टिसे तो हम अपनेको आपके समस्त ऐश्वर्य और सुख-सम्पत्तिका अधिकारी समझते हैं। क्या यह विचित्र बात नहीं है कि आपके साम्राज्यमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि चोर-डाकू हमारे आत्मिक सुख-आनन्द और शान्ति लाभ करनेके अधिकारको दिन-दहाड़े लूट रहे हैं और इनको टोकनेवाला कोई नहीं है। इनको आपहीने तो स्वतन्त्र तथा खुला छोड़ रक्खा है। तनिक सोचें कि इनको संसारमें इस प्रकार निर्द्वन्द्व विचरनेके लिये आपका प्रमाण-पत्र देना कहाँतक उचित है। यदि आपने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि बनाये थे, तो साथ ही हमारे हृदयोंमें इतनी निर्बलता, इतनी अज्ञानता और इतनी भीरुता क्यों पैदा की कि हम इनको पकड़ना तो दूर रहा, इन्हें पहचान भी नहीं सकते। अस्तु, यदि हम अपनी अज्ञानताके कारण इन छद्मवेषधारी चोर-डाकुओंके जालमें फँस जाते हैं तो प्रभो! क्या यह हमारा दोष है? आपका नहीं है?

भगवन्! एक ओर तो आपने मछलीकी सृष्टि की, जो अपनी स्वभावसिद्ध अज्ञानतावश काँटेको निगल लेती है, तो दूसरी ओर काँटे और मछली पकड़नेवाले-के स्वभावकी रचना भी आपहीके द्वारा हुई। इसी प्रकार मनुष्य और उसके शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार सब आपहीकी रचना है। आप ही सोचकर बतावें कि ऐसी दशामें हम अपनी रक्षा इन शत्रुओंसे कैसे कर सकते हैं? या तो आपको हमें नहीं बनाना था या हमें बनाया था तो हमारे शत्रुओंको नहीं बनाना था, या शत्रुओंको भी बनाया था तो हमको इतनी मानसिक और आत्मिक शक्ति प्रदान की होती, कि हम इनको पूरी तरहसे विरोध कर दबा सकते।

जगत्पिता! कौन ऐसा माता-पिता होगा जो अपनी सन्तानको बुरी संगतिमें पड़ा रहने दे? कौन ऐसा राजा होगा जो अपने राज्यमें चोर-डाकुओंको खुला फिरनेके लिये छोड़ दे? तो फिर यह अंधेर नहीं तो क्या है कि आप हमें जान-बूझकर, संसारके विषय-वासनाओंरूपी चोर, डाकुओं और शत्रुओंके बीच, असहाय दशामें छोड़कर ऐसा छिपे बैठे हैं, कि प्रत्यक्षमें हमारी पुकार भी नहीं सुनते।

स्वामिन्! यद्यपि आप सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी हैं, आप सब कुछ देखते हैं और सुनते हैं, आपसे कोई वस्तु गोप्य नहीं है, तथापि प्रत्यक्षमें आपतक हमारी पुकार क्यों नहीं पहुँचती, क्या यह महान् आश्चर्य नहीं। भक्त रैदासके शब्दोंमें—

नरहरि चंचल है मति मेरी।
कैसे भगति करौं मैं तेरी॥

तू मोहि देखे हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई।
तू मोहि देखे तोहि ना देखूँ, यह मति सब बुधि खोई॥

अस्तु, आपने हमें दो वस्तुएँ दे रक्खी हैं, एक मन और दूसरी बुद्धि—इन्हीं दोनोंको हम अपना दूत बनाकर आपकी सेवामें यह निवेदन करनेके लिये भेज रहे हैं कि हे भगवन्! और कुछ नहीं तो कम-से-कम आधि-व्याधि, दुःख और क्लेशसे तो हमारा पिण्ड छुड़ाइये।

* * *

हे दयासागर! आप तो आनन्द और सुख-शान्तिके अनन्त और अक्षय भंडार हैं। आप कभी थकते भी नहीं और आलस्य भी नहीं करते। आपका अनन्त आनन्द और सुख-शान्तिका भण्डार कभी क्षीण भी नहीं होता और बाँटनेसे कभी घटता भी नहीं। तब फिर यह कृपणता क्यों? भगवन्! धृष्टता क्षमा हो। यदि हमारे पास ऐसा कोई भंडार होता, जो बाँटनेसे कभी घटता नहीं और जिसे बाँटते-बाँटते तथा देते-देते कभी हम थकते भी नहीं, तो हम आपसे सच कहते हैं कि हम दिन-भर बाँटते ही रहते और दूसरा कोई काम ही न करते। परन्तु आनन्द और सुखके इतने अक्षय भण्डारके स्वामी होकर भी, आपकी यह कृपणता खटकती है।

प्रभो! यह सुनते हैं कि बिना माँगे माता भी अपने स्तनन्धय पुत्रको दूध नहीं पिलाती, परन्तु रोनेपर बच्चेका दुःख अवश्य दूर करती है। इसी प्रकार राजा और स्वामी भी अपने जनोंका कष्ट दूर करनेकी चेष्टा करते हैं और प्रार्थनापत्र देनेसे उनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति भी कर देते हैं। भगवन्! आप भी यदि कदाचित् यह कहें कि बिना किसीके प्रार्थना किये नियम-विरुद्ध हम किस प्रकार फल दे सकते हैं। कृपालो! आपका यह कहना यथार्थ हो सकता है। किंतु हममेंसे अधिकांश जीव अज्ञानवश परमात्मा और जीवके बीच क्या सम्बन्ध है यह जानते भी नहीं, और जानकर भी दुःख तथा क्लेशके चक्करसे छूटनेके लिये, परमात्मासे याचना भी नहीं करते। परन्तु कृपानाथ! हम तो मनरूपी दूतके द्वारा अपना प्रार्थनापत्र आपके पास पहले ही भेज चुके हैं। अतएव हे स्वामिन्! अब किसी प्रकारका तर्क-वितर्क या बहाना करनेकी कोई गुंजाइश आपके पास नहीं रह जाती!

हे कृपालो! ऐसा कौन अज्ञानी या मूर्ख है जो सदाके लिये आवागमनके दुःख और क्लेशके गहरे गर्तमें पड़ा रहना चाहता हो? सांसारिक प्राणी विवश-मायाके परवश है। वह उस ठगिनी मायाके विकारोंमें फँसकर, जो आपकी ही रचना है, पापोंके चक्करमें पड़ जाता है, और अनन्त क्लेशोंका भागी होता है। दयानिधे! अब आप ही बतायें हम आपको छोड़कर क्या करें, कहाँ जायँ और किसकी शरण लें? हे सुतवत्सल! यदि पुत्र कुपात्र और दोषी भी होता है तो भी माता उसे दुखी देखना नहीं चाहती। किंतु यहाँ तो हमारा कोई दोष भी नहीं है। दोष है तो माया-का, जो आपहीकी है और परवश-यन्त्रकी तरह हमें घुमा रही है। अतएव नाथ! दया करो, आप यदि हमसे अप्रसन्न हों, तो भी हमारे प्रति आपका मातृत्व और पितृत्व-सम्बन्धी जो उत्तरदायित्व है, उससे आप मुक्त नहीं हो सकते। अतएव हे मातृरूप भगवन्! अपनी गोदमें हमें शरण दो और हे पितृरूप परमात्मन्! समस्त सांसारिक आधि-व्याधि, दुःख और क्लेशसे हमें मुक्त करो। हमें इस योग्य बनाओ कि हम आपकी अनन्त आनन्द और सुख-शान्तिरूपी असीम सम्पत्तिके अक्षय भंडारका उपभोग करनेके अधिकारी बन सकें। तुलसीदासजीकी वाणीमें मैं भी कहता हूँ—

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं, आरति-हर तोसो॥

ब्रह्म तू हौं जीव तू हौं ठाकुर हौं चेरो।
तात-मात-गुरु-सखा तू, सब बिधि हित मेरो ॥
तोहि-मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावे।
ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु, चरन सरन पावे ॥

* * *

हे संसार-नाट्यशालाके नटनागर! यह पञ्चतत्त्व-निर्मित सृष्टि आपहीकी मायानटीकी रचना है। पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश---ये स्थूल पदार्थ और मन, बुद्धि, अहंकार---ये सूक्ष्म पदार्थ आपहीकी त्रिगुणात्मक मायाके तत्त्व हैं। इन तत्त्वोंसे निर्मित मनुष्यरूपी मिट्टी-का पुतला आपहीकी मायाके खिलवाड़का जीता-जागता नमूना है। भगवन्! जरा सोचें कि इस खिलवाड़की क्या आवश्यकता थी? स्वामिन्! आप तो केवल शुद्ध-स्वरूप, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन कहे जाते हैं, परन्तु आपहीकी छाया मायापर पड़नेसे मैं 'मैं' बन गया।

यथार्थमें 'मैं' नामकी कोई वस्तु नहीं थी, किंतु सिनेमाकी भाँति, भानमतीका कुनबा, पाँच तत्त्वोंका स्थूल शरीर और उसके भीतर आपकी त्रिगुणात्मक मायाको लेकर, सत्त्व, रज, तमके रूपान्तर मन, बुद्धि, अहंकारमें आपके द्वारा चेतनाका प्रकाश मिलनेसे जिस प्रकार चुंबककी शक्तिसे सूई चलने लगती है, इसी प्रकार जड-चेतनके बीचकी यह ग्रन्थि ही 'मैं' बन गयी। इस प्रकार वही 'मैं' दुःख भोगनेका एक कारणमात्र बन गया। जितने सांसारिक भोग हैं, वे क्षणिक सुखाभास देनेवाले हैं, किंतु आदि या अन्तमें दुःखदायी ही होते हैं। अतएव हे प्रभो! हमें इन दुःखों-के मूल कारण, मृगमरीचिकाकी भाँति सुन्दर दीखनेवाले भोगोंकी चाह नहीं है, क्योंकि इन्हींके कारण तो हमें दुःखोंके पहाड़ोंका सामना करना पड़ रहा है। इसलिये परमपिता! हमें तो चाह है केवल आपके सच्चे आनन्दके अनन्त भंडारमेंसे कुछ थोड़े-से प्रसादकी। जैसा कि गीतामें भी आपने अपने श्रीमुखसे कहा है---

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
(५। २२)

बाहरी पदार्थोंके सहयोगसे उत्पन्न होनेवाले सुखों-का आदि और अन्त है। अतएव वे दुःखके उत्पन्न करनेवाले हैं। उनमें बुद्धिमान् लोग रत नहीं होते।

हे भगवन्! जबतक आपके उक्त सच्चे आनन्दका प्रसाद हमें प्राप्त न हो सके, तबतक कम-से-कम इतनी कृपा अवश्य करें कि हम दुःखोंसे तो दूर रहें। हे प्रभो! हमारी यह माँग तो अनुचित नहीं प्रतीत होती। हे विश्वपते! यदि आप वर्षमें एक बार भी, चाहे मायाको धारण करके ही सही, चामत्कारिक रूपसे प्रकट हो जाया करते, तो हम सांसारिक लोग कृतकृत्य हो जाते। हे स्वामिन्! आपका विश्वपति होकर भी, इस प्रकार अपनी प्रजा या सन्तानोंको प्रकटमें दर्शन न देना क्या अन्धेर नहीं है? भगवन्! आपको किसका डर है कि आप इतने छिपे रहते हैं। माना कि आप निराकार, शुद्ध, ज्ञान-स्वरूप, सर्वव्यापक और अनादि-अनन्त हैं, परन्तु जब आपने साकार विश्वकी रचना की है, तब उसी प्रकार मायाको धारण कर सूक्ष्म या स्थूल रूपसे किसी भी प्रकार, कभी-कभी अपना विश्वव्यापी कोई रूप धारण कर, हम सांसारिक लोगोंके चर्म-चक्षुओं वा ज्ञान-नेत्रोंके सम्मुख क्या आप प्रकट नहीं हो सकते?

हे सर्वशक्तिमान् जगत्पालक! आप अजर और अमर हैं, आपके पास अमरत्वका अक्षय भण्डार है, फिर क्या हम आपकी सन्तान होते हुए इस अमरत्वका कुछ भी अंश पानेके अधिकारी नहीं हो सकते? नाथ! आप न्यायी और विचारशील हैं। क्या यह आपके विचारनेकी बात नहीं है?

* * *

हे प्रभो! यह सारी रचना, यह सारी वस्तु आपक

ही है। आप पूर्ण परब्रह्म हैं। कौन-सी ऐसी वस्तु है जो हम आपको भेंट चढ़ायें या जिससे आपकी पूजा करें। यदि कोई शुभ कर्म हम करते हैं, वह तो आपका ही प्रसाद है। हमारे पास तो हमारा कुछ भी नहीं है। हमारी निजकी वस्तु जो कुछ है, वह केवल हमारा अज्ञान, हमारा मोह, हमारा दुःख और हमारी पापवासनाएँ हैं। उन्हींको मैं आपके चरणोंमें इसलिये समर्पित करता हूँ कि वे हमसे दूर हों और आपकी कृपासे हमारा इस भवसागरसे निस्तार हो। यद्यपि साधारणतया सांसारिक मनुष्य आपके चरणोंमें इस आशासे भेंट चढ़ाते हैं कि उसका कई गुना उनको फलरूपमें मिलेगा; परन्तु हमारी इस भेंटको आप उक्त श्रेणीमें न गिनें। आप इसे दया करके अपने ही पास स्थायी रूपसे रख लेवें और सदाके लिये हमें इससे मुक्त कर दें।

हे करुणावरुणालय! अपनी माताके सम्मुख रोनेसे जिस प्रकार बालकके दुःखोंका भार हलका पड़ जाता है और हृदयको सान्त्वना मिलती है, उसी प्रकार आपके सामने अपना दुःख प्रकट करनेसे प्राणियोंके हृदयका भी दुःख-भार हलका हो जाता है। बाल्यावस्थामें मनुष्यके लिये माता ही सब कुछ है, किन्तु युवावस्थामें भी, सब प्रकार समर्थ होनेपर भी, मनुष्यको माताकी स्नेहरूपी गोदमें पड़कर, अलौकिक आनन्द मिलता है। उसी प्रकार हे भगवन्! हम अज्ञानियोंको भी आपकी गोदमें पड़कर सान्त्वना प्राप्त करनेकी अभिलाषा है। जबतक प्राणी आपका साक्षात्कार प्राप्त करके, आवागमनके चक्करसे मुक्त नहीं हो जाता, तबतक उसकी संज्ञा अज्ञानी बालक-सरीखी ही बनी रहती है। अतएव हे भगवन्! जबतक हम सच्चा आत्मज्ञान प्राप्त करके, युवा बनकर योग्य न हो जायँ, तबतक पाप, अज्ञान और दुःखोंसे हमारी रक्षा करनेका उत्तरदायित्व आपके ही ऊपर है। प्रभो! आप इस उत्तरदायित्वसे तभी छूट सकते हैं, जब आप हमारे पिता-माता न रहें; किन्तु ऐसा करना आपके लिये सम्भव नहीं है।

हे कृपानिधे! हमारे पास न तो कोई जप है, न तप; न कोई भक्ति है, न कोई शक्ति; और न विद्या है, न बुद्धि। हमें यह भी पता नहीं कि आप किस प्रकार और कैसे रीझते हैं। यदि हम अपना सामर्थ्य देखें, तो हमें बिना आपकी दयाके अनन्त कालतक भी किसी प्रकार अपार दुःखमय संसार-सागरको पार करनेका उपाय नहीं दीखता; किंतु जब हम यह अनुभव करते हैं कि दयाकी मूर्ति, अशरण-शरण, अनाथोंके नाथ आप विद्यमान हैं, तब आपके ही भरोसे हम निर्भय हो जाते हैं। भगवन्! क्या हमारा यह भरोसा करना अनुचित है?

* * *

हे परमात्मन्! प्राचीन समयमें विदुषी गार्गीने याज्ञवल्क्य मुनिसे पूछा था कि 'मुने! यह आकाश किसके भीतर है' तो उन्होंने कहा था कि 'यह आकाश ब्रह्मके भीतर ओत-प्रोत है।' हे सर्वेश्वर, देवाधिदेव! जब आकाशकी कोई सीमा नहीं, तब आपकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है। योगवाशिष्ठके अनुसार एक समय वशिष्ठ मुनि इस अनन्त आकाशके बीच कितने लोक भरे पड़े हैं—यह देखनेकी जिज्ञासासे मनके वेगके सदृश उड़े और उन्होंने अगणित सूर्य, चन्द्र तथा पृथ्वी-जैसे अन्य प्रकारके लोकोंको देखते हुए, यह अनुभव किया कि इस अनन्त ब्रह्माण्डमें इन पृथक्-पृथक् लोकोंकी संख्याकी कोई गिनती नहीं। समुद्रकी एक-एक बूँदकी गणना करना सम्भव है, परन्तु इन लोकोंकी संख्याका पता लगाना असम्भव देखकर वशिष्ठ मुनि शान्त होकर बैठ गये। वर्तमान समयके पाश्चात्य वैज्ञानिक भी आकाशमें असंख्य लोक मानते हैं। इन अनन्त लोकोंके बीच छोटे-से सूक्ष्म परमाणुके समान हमारा पृथ्वीलोक भी अनन्त आकाशमें स्थित

है । इस पृथ्वी-लोकमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी संख्या भी अगणित है । यद्यपि मनुष्योंकी संख्या वर्तमानमें ढाई अरब समझी जाती है; किंतु पशु-पक्षियोंके अलावा जो सूक्ष्म कीटाणु प्राणधारी हैं, वे एक-एक अंगुल स्थानमें ही अनेक कोटि अथवा अरबोंकी संख्यामें पाये जाते हैं । हे भगवन् ! यह इतनी बड़ी संख्या रखनेवाले जीव कहाँसे, किन लोकोंसे आकर इस पृथ्वीपर जन्म लेते हैं ? इतनी बड़ी संख्याके ये प्राणी, इस पृथ्वी-लोकसे ही, मनुष्य-योनिमें किये गये तमोगुणी कर्मोंके फलस्वरूप, नीच योनियोंमें गये हों, यह तो किञ्चित् भी सम्भव नहीं हो सकता । इसलिये यह अनुमानकर सन्तोष करना पड़ता है कि ऐसे अनेक ग्रह, लोक और लोकान्तर भी होंगे, जहाँ केवल मनुष्य या अन्य उच्च कोटिके प्राणी ही निवास करते होंगे तथा वहाँ कीट-पतंग आदि निम्न प्रकारके प्राणियोंका अस्तित्व ही न होगा । सम्भव है कि वहाँके उन मनुष्योंमेंसे, जो अपने तमोगुणी कर्मोंके कारण नीच योनियोंमें जानेके योग्य बन जाते होंगे, वे इस पृथ्वीमण्डल-जैसे लोकान्तरोंमें कीटाणु आदि योनियोंमें उत्पन्न होते होंगे । इन नीच-गति-प्राप्त प्राणियोंको तो, जो आपके ही अंश हैं, विवेक-बुद्धि नहीं होती और न उनमें पाप-पुण्य अथवा ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञानका लवलेश रहता है, जिसका होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना वे भगवद्भक्ति आदिसे अपना उद्धार करनेकी सामर्थ्य नहीं रख सकते ।

हे दयानिधे ! क्या आप इस सम्बन्धमें पुनः दया करके कुछ नहीं करेंगे ? अस्तु, इस प्रश्नको यों ही छोड़कर केवल इस पृथ्वीमण्डलके मनुष्योंके सम्बन्धमें ही आपके चरणोंमें पुकार करना उचित होगा । हे अन्तर्यामी, हे कृपानिधे ! आपकी अपार कृपासे मनुष्योंको विवेक-बुद्धि मिली हुई है । उसके द्वारा यत्न करनेसे वे आपका अमृतके समान साक्षात् करके अमरत्व, परमानन्द अथवा मोक्षकी प्राप्ति कर सकते हैं, जिसे प्राप्त करनेपर वे आपके आनन्दस्वरूपमें समा जाते हैं । तब फिर कुछ भी प्राप्त करनेको बाकी नहीं रह जाता । किंतु वर्तमान भूलोकके मनुष्य प्रायः इस विवेक-बुद्धिका दुरुपयोग करके, उलटे मार्गपर क्यों जा रहे हैं, क्या आप बतायेंगे ?

हे अन्तर्यामी ! आप सब कुछ जानते हुए उदासीन क्यों बैठे हुए हैं ? वर्तमान समयमें पृथ्वीपर इन ढाई अरब मनुष्योंके बीच अधिकांश तो उचित शिक्षाके अभावमें पशुओंकी भाँति ही अपना दिन बिता रहे हैं । इनमें भी अनेक मनुष्य पाषण्ड मतवाद चलानेवाले धूर्त मतवादियोंकी शिक्षा-दीक्षाके प्रभावसे हिंसक पशुओंसे भी भयानक बन गये हैं और अपनी विद्या, बुद्धि और शक्तिका दुरुपयोग करते हुए थलचर, जलचर, खेचर आदि प्राणीमात्रके लिये भय और कष्टका कारण बन गये हैं । भगवन् ! आपके राज्यमें क्या यह अराजकता उचित है ? इसके कारण वर्तमान समयमें भूमण्डलपर भले लोगोंका निवास करना कठिन हो गया है !

* * *

हे परमात्मन् ! यह पवित्र भारत देश, जो अनेकों तपस्वियों, महात्माओं, योगियों और मुनियोंके कारण सहस्रों वर्षोंसे जगद्गुरु बना हुआ था, जो संसारको कल्याणकारी धार्मिक ज्ञानका सच्चा मार्ग दिखलानेवाला समझा जाता था, आज किस दशामें है, क्या यह आपसे छिपा है ? अनेकों महात्माओंके वचनोंसे ज्ञात होता है कि आप सर्वव्यापक, निराकार, परमात्मा सर्वशक्तिमान्, अनन्त, अनादि, अखण्ड, अव्यक्त होते हुए भी, अपनी योगमायासे जगत्‌के कल्याणके लिये चमत्कारकी भाँति, कभी-कभी दया करके प्रकट होते रहते हैं और ऐसा होना भी चाहिये । यों तो जिस प्रकार शिल्पीकी कलाको देखकर

शिल्पकारके सम्बन्धमें अनुमान लगाया जाना सम्भव है, उसी प्रकार आप भी अपनी रचनाके द्वारा विचारशील मनुष्योंसे छिप नहीं सकते हैं। उनमेंसे कोई-कोई आपके पीछे पड़कर आपका साक्षात्कार भी कर ही लेते हैं। किंतु यह समझमें नहीं आता कि छिपनेकी आवश्यकता ही आपको क्यों होनी चाहिये। क्या जननी, जगत्पिता अथवा जगत्के स्वामीको अपने सर्वसाधारण प्रजाजनों या पुत्रोंसे, इस प्रकार दीर्घकालतक छिपे रहना भी, न्यायसंगत हो सकता है ? और कुछ नहीं तो अलौकिक दिव्य ज्ञान और सामर्थ्य रखनेवाले महापुरुषोंको भूमण्डलपर भेजकर, उनके द्वारा ही कुछ करवाना चाहिये था।

हे भगवन्! जैसा कि इस देशके प्राचीनकालके इतिहासमें अनेकों दृष्टान्त भरे पड़े हैं, यदि इस भारतमें नहीं तो अन्य देशोंमें ही, वैसे महात्मा प्रकट हो सकते थे। किंतु दीर्घकालसे इस भारतभूमिमें तो, एक भी ऐसा महापुरुष नहीं आया, जो इसकी पराधीनता, दासता और अज्ञानको भी मिटा सके। भारतकी आर्य हिंदूजातिकी उन्नतिमें समस्त जगत्की तथा प्राणीमात्रकी भलाईकी आशा थी, किंतु 'भूखे भजन न होय गोपाला ले लो अपनी कंठी माला' की बात यहाँ तो भूखके कारण चरितार्थ हो रही है और अन्य जातियोंमें तो ऐसे आसुरी शक्तिवाले नेतालोग उत्पन्न हो रहे हैं, कि उनके कारण अधिकांश जगत्में त्राहि-त्राहि मची हुई है। वे तो हिरण्यकशिपुके भाई-बन्धु ही दीख पड़ते हैं। 'लूटो-खाओ'का सिद्धान्त चल रहा है, न परलोक है, न पाप-पुण्य, न न्याय और न ईश्वर। वैसे कुछ असुरोंके ही पीछे चलनेसे अधिकांश अन्य मनुष्योंको भी लाभ दीख रहा है। ऐसे लोगोंको ही जगत्के नाशके लिये अनेक प्रकारके शस्त्र-संहारक आविष्कारोंका पुरस्कार भी मिलता जा रहा है।

हे भगवन्! माना कि भारतके अधिकांश हिंदू भी अज्ञानरूपी अन्धकारमें डूबे हुए हैं, तो भी क्या वे स्वाधीनताके योग्य नहीं हैं ? क्या वे अन्य जातियों तथा अन्य देशोंके लोगोंसे इतने गये-बीते हैं ? यदि हों भी तब भी इस पवित्र भूमिका क्या दोष है ? क्यों निरन्तर ऐसे जीवोंको ही इस भूमिमें जन्म दिया गया ! क्यों नहीं दैवी-सामर्थ्यवाले सत्कर्मी जीव यहाँ जन्म लेते ? क्या सैकड़ों वर्षोंसे ऐसा अन्धेर इस भूमिके प्रति अन्याय नहीं है ? वर्तमान परिस्थितिमें तो यह लोग कर ही क्या सकते थे ? इस समय कई कारणोंसे हिंदू आर्यजनताको अपना प्राचीन गौरव प्राप्त करनेकी बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, किंतु परिणाम निराशामें परिणत हो रहा है, जो घटघटमें निवास करनेवाले आपसे छिपा नहीं है।

* * *

हे दयानिधे! आप न्यायकी मूर्ति हैं। आपके न्यायमें किसी विवेकीको किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है, और न आपके रचे हुए नियमोंमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था या भूलको स्थान ही मिल सकता है। आप दया, कृपा तथा आनन्दके पारावार हैं। परन्तु संसारमें अनेक अव्यवस्थित कार्यों और विषमताओंको देखते हुए मनुष्योंके अन्तःकरणमें कभी-कभी अविश्वास और अश्रद्धाका प्रादुर्भाव होने लगता है। यह अव्यवस्था और विषमता क्यों है—इसका कारण तो आप जगज्जननीरूप ही जान सकते हैं। किंतु मातारूप भगवन्! हम तो आपके बालक हैं। अबोध बालक यदि मलमूत्रसे माताकी गोदको अपवित्र करता है अथवा अन्य भाँति-भाँतिके अपराध करता है, तो क्या माता उसपर क्रोध करती है ? मनुष्योंमें ही क्या, पशु-पक्षियोंमें भी माता उलटा उसे चूमती है, प्यार करती है तथा नहला-धुलाकर उसे पवित्र करती है, उसका सब प्रकार भरण-पोषण करती है, उसे उन्नत करनेकी चेष्टा करती है। इस संसारमें

माताका स्वभाव भी तो आपने ही बनाया है। फिर आप तो सर्वशक्तिमयी सच्ची जगन्माता हैं। क्या आप उस स्वभावको न अपनायेंगे ? क्या आप माताकी भाँति प्यार कर, हमें पवित्र और उन्नत नहीं करेंगे ? इस समय एक बार आप जगत्पति, जगद्गुरु, अथवा जगत्पिताके स्वभाव तथा कर्तव्यको छोड़कर जगज्जननी माताके रूपमें ही प्रकट हों, जिसमें कि आपके क्षमा-दानसे हमारे संचित दुष्कर्म तथा तज्जनित अनिष्ट फल सब नाश हो जायँ; क्योंकि हमें यह ज्ञान नहीं है कि आप किस प्रकार, किस विधिसे, प्रसन्न होते हैं। अतएव हे अशरणशरण ! हे कृपानिधान ! हम लोगोंकी त्रुटियोंको न देखते हुए केवल अपनी दयालुता-की ओर देखें—यही हमारी बारंबार प्रार्थना है। भक्त सूरदासके शब्दोंमें—

हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलोहि नीर भरो॥
जब दोऊ मिल एक बरन भये, सुरसरि नाम परो॥
एक लोहा पूजा में राखत, एक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवत, कंचन करत खरो॥
यह माया भ्रम जाल कहावे, सूर स्याम सगरो।
अबकी बेर मोहि आन उबारो, नहिं प्रन जात टरो॥

तथा भक्त तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

जय जय अबिनासी घट घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीता चरित पुनीता मायारहित मुकुंदा॥
जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिधि बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिय भक्ति न पूजा॥

*　　*　　*

हे कृपानिधे ! क्या गीतामें कही हुई यह प्रतिज्ञा कि, जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म संसारमें बढ़ जाता है, तब-तब मैं स्वयं जन्म ग्रहण करता हूँ, तथा साधुओंकी रक्षाके लिये, दुष्टोंका नाश करनेके लिये तथा धर्मको पुनः स्थापित करनेके लिये युग-युगमें जन्म लिया करता हूँ, केवल कथनमात्र थी ?

हे करुणासागर ! आपकी दया-वर्षाके बिना, आपके भक्तों, ऋषि-मुनियोंकी लगी हुई यह धर्मकी खेती सूखी जा रही है। इसको सूखनेसे आप ही बचा सकते हैं। इसकी रक्षा आप ही कर सकते हैं। इस आपके उत्तरदायित्वको आप कब पूरा करेंगे ? 'का बर्षा जब कृषी सुखाने।' हे विश्वपते ! हमलोगोंका अपराध क्षमा हो, क्षमा हो ! अन्तमें हे भगवन् ! आपके चरणोंमें हमारी यही प्रार्थना है।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥
(गीता ११। ४३)

हे विश्वेश्वर ! इस चराचर जगत्के पिता तुम्हीं हो, तुम पूज्य हो और गुरुके भी गुरु हो। तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान तुम्हीं हो।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥
(गीता ११। ४४)

सच्चा राष्ट्रवाद

(राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके आदरणीय गुरुजीके एक भाषणसे)

हम अपना ध्येय अत्यन्त सुलभ वाक्य-समूहके द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। १-हम हिंदू-समाजको संघटित करना चाहते हैं। २-संघटित करके उसको शक्तिशाली बनाना चाहते हैं तथा ३-शक्तिशाली बनाकर उसे सर्वविध वैभवसम्पन्न बनाना चाहते हैं। भारतवर्षकी भारतीयताको प्रकट करके अपना वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करनेकी भावनाको हमें सदैव जाग्रत् रखना चाहिये। अपने इस भारतीयत्वके प्रकटीकरणकी ओर आज प्रायः किसीका ध्यान नहीं है। इसके स्थानपर आज चारों ओरके प्रयत्नोंका आधार केवल प्रतिक्रिया तथा विरोधकी भावना है। इन भावनाओंके उद्गमको ढूँढ़नेके लिये हमें पिछले कुछ वर्षोंका इतिहास देखना होगा। आजसे डेढ़-दो सौ वर्ष पूर्वका चित्र हम अपनी आँखोंके सामने लावें। एक महान् हिंदूसाम्राज्यके जन्म, संरक्षण और उसके विकासमें भारतको एक प्रकारसे कुछ सफलता प्राप्त हुई थी; पर उसी समय एक नयी दिशासे आक्रमण होनेके कारण, और फिर अपने ही अंदर यथायोग्य राष्ट्रवृत्ति तथा कर्तव्यभावना और स्वार्थको पीछे रखकर राष्ट्रभक्तिको स्थान देनेकी त्याग-भावनाका अभाव होनेके कारण एवं साथ ही पारस्परिक मतभेद और उससे उत्पन्न दुर्बलताके कारण वह सारा बना हुआ साम्राज्य टूट गया। समाजमें उत्पन्न हुई महान् आकाङ्क्षाएँ नष्ट हो गयीं। एक अकल्पित सत्ताने पूर्णरूपसे अपना प्रभुत्व जमाकर भारतीय समाजको सब प्रकारसे दीन कर दिया। संपूर्ण आकाङ्क्षाओंके नष्ट होनेसे आत्मविश्वास जाता रहा, अन्तर्बाह्य दुर्बलता आ गयी, अन्तःकरणकी गौरव-भावनाएँ नष्ट हो गयीं और इसके फलस्वरूप हमारे अंदर परकीय सत्ताके अस्तित्वमें सन्तुष्ट रहकर व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करने तथा एक अप्रशंसनीय एवं विलासप्रिय जीवन बनानेकी प्रवृत्ति निर्मित हो गयी। यह हमारा एक अत्यन्त ही दूषित एवं विकृत जीवनसे परिपूर्ण चित्र है!

किंतु समाजमें जो एक दिव्य शक्ति निहित थी, वह बहुत कालतक शान्त चित्तसे गर्हित जीवनके इस नग्न नृत्यको नहीं देख सकी। अतः उसमें ऐसे पुरुष उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस परिस्थितिको बदलना चाहा। अवश्य ही इन लोगोंने अपनी दुःस्थितिको सुधारना तो चाहा; परन्तु इनका मन भी परकीय भावोंके द्वारा पूर्णतया पराजित था, इनके हृदयमें पराभव था, विचारोंपर पाश्चात्त्य शिक्षाका सिक्का जम चुका था तथा पश्चिमके ठाट-बाट और वैभवको देखकर इनकी आँखें चौंधियायी जा चुकी थीं। अतः जब इन्होंने अपनी दुर्गतिका कारण ढूँढ़नेका प्रयत्न किया तो प्रथम तो इन्होंने उन परदेशियोंको जिम्मेदार ठहराया, जिन्होंने यहाँ आकर हमारी ऐसी दुर्गति की; और दूसरी ओर इनको पाश्चात्त्योंकी जीवन-प्रणालीके सामने अपनी जीवन-प्रणाली तुच्छ दिखलायी दी, इससे इन्होंने उस प्रणालीको भी दुर्गतिके लिये दोषी ठहराया।

इस प्रकार अपनी दुर्गतिके लिये 'परकीयों'को, तथा उनकी जीवनप्रणालीकी तुलनामें अपनी जीवन-प्रणालीको तुच्छ मानकर 'अपनी प्रणाली'को जिम्मेदार ठहराकर हमने अपने प्राचीन जीवनके प्रति घृणा एवं निराशा, परानुकरणमें उत्साह तथा परकीयोंके प्रति विद्वेषका सम्मिश्र भाव लेकर अपने राष्ट्रीय जीवनके निर्माणका प्रयत्न प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप इस प्रकारकी प्रतिक्रियाके भाव जिनमें हो सकते हैं, उन सबको अपनाकर राष्ट्र-निर्माण किया गया। इन्हीं प्रयत्नोंका फल हमको अपने आजके चारों ओरके जीवनमें दिखायी दे रहा है। परकीयोंके प्रति विद्वेष, अपनेपनसे घृणा तथा

पाश्चात्त्योंका अनुकरण—यही आजके हमारे सब प्रकारके कार्योंका आधार है।

परकीय सत्ताके विरोधको ही राष्ट्रीयताका आधार मानकर, जो-जो उस सत्ताके दास बने, उन सबको अपनाकर हमारे हृदयमें एक राष्ट्र बनानेकी भावनाका उदय हुआ और इस प्रकार भ्रमात्मक प्रादेशिक राष्ट्रवादका बीज हमने अपने जीवनमें बो दिया। विरोधीभावापन्न लोगोंका एकत्रीकरण करके उसमेंसे नवनिर्माण करनेकी बातें हुईं; किन्तु इस नवनिर्माणके लिये आदर्श (model) क्या हो ? हमारी आँखें बाहरकी ओर लगी हुई थीं ही; अतः हमको उस समय अपने विजेताओंके अथवा उनके सगे-सम्बन्धियोंके जीवनके अतिरिक्त और कौन-सा आदर्श जीवन दीख सकता था। अपने प्राचीन जीवनको और अपने गौरवमय सच्चे इतिहासको भुलाकर संस्कारहीन हो जानेके कारण तथा दूसरोंको मिलानेकी अभिलाषा मनमें लेकर हमने अपने अन्तःकरणके स्वाभाविक स्फूर्ति-देवताको हटाकर उसमें परकीयोंके स्फूर्तिदाता आदर्शोंकी स्थापना की। पिछले सौ-सवा सौ वर्षोंमें जितने महापुरुष हुए, जितने बड़े-बड़े कार्य हुए और जितनी संस्थाएँ बनीं, सब-के-सब प्रायः बाहरसे ही स्फूर्ति प्राप्त करते रहे। बाहरके स्वाधीनतासंग्राम तथा वहाँकी राज्यक्रान्तियाँ ही हमारे लिये आदर्श हो गयीं। किसीने अमेरिकाका स्वातन्त्र्य-युद्ध (American war of Independence) को आदर्श बनाया तो किसीने आयरिश स्वातन्त्र्य-संग्राम (Irish war of Independence) अथवा फ्रांसकी राज्यक्रान्ति (French revolution) को सामने रखते हुए उनके जीवनका अनुकरण कर अपना जीवन भी वैसा ही बनानेकी इच्छा प्रकट की। हमारा सर्वथा अपना भी कोई प्राचीन जीवन है, उस जीवनकी भी कोई प्रेरणा है और हमारे भी कोई आदर्श हो सकते हैं तथा उनसे अनुप्राणित होकर ही हम संसारका महान्-से-महान् कार्य कर सकते हैं—इन सब बातोंका हमें पता ही नहीं रहा अथवा हमने जान-बूझकर इनकी अवहेलना की और हमपर सम्पूर्णतया परानुकरण करके नवीन जीवन निर्माण करनेकी अनोखी धुन सवार हो गयी। इसीसे आज नयी श्रद्धा, नयी स्फूर्ति और नया आदर्श, यहाँतक कि नया इतिहास निर्माण करने तककी भावना हमारे अंदर दृष्टिगोचर होती है। कुछ लोगोंने तो यहाँतक कह दिया कि 'हमारे पास तो पहले कुछ था ही नहीं, राष्ट्रका विचार भी हमने पाश्चात्त्योंके सम्पर्कसे सीखा है, इसलिये अब हमको राष्ट्र बनाना है।—We are a nation in the making. (हम राष्ट्र बन रहे हैं।) !'

इस नव-निर्माणमें हमने पाश्चात्त्योंको अपना गुरु स्वीकार करके केवल उनकी पद्धति और समाज-जीवनका अनुकरण ही नहीं प्रारम्भ किया, अपितु अपने जीवनकी ओर भी उन्हींकी आँखोंसे देखा ! परकीय विद्वानोंने कहा कि 'आर्य भारतीय नहीं हैं, बाहरसे आये हुए हैं,' हमने नतमस्तक होकर इसे मान लिया। उन्होंने कहा, 'भारतवर्ष एक महाद्वीप (Continent) है, अतः इसमें एक राष्ट्र नहीं, अनेक राष्ट्र रहते हैं।' हमने भी यही कहना शुरू कर दिया तथा अनेक राष्ट्रोंका निवासस्थान मानकर बाहरके राष्ट्रोंने इस प्रश्नको जैसे सुलझाया वैसे ही हम भी सुलझाने लगे। हमने देखा कि अमेरिकाने एक फेडरेशन (Federation) बनाया है, इसलिये हमारी भी फेडरेशन (Federation) बनानेकी इच्छा हो गयी। जर्मनी और इटलीने जिस मार्गपर चलकर विभिन्न लोगोंका एकत्रीकरण करनेका प्रयत्न किया, उसीपर चलनेको हम भी कहने लगे। फलस्वरूप हम अपने जीवनमें प्रादेशिक राष्ट्रवादको ले आये और वह भी अत्यन्त विकृतरूपमें ! और फिर उसीको सिद्ध करनेकी इच्छासे राजनीतिको ही अपना जीवन-सर्वस्व मान बैठे !

इतना ही नहीं, परकीय अनुकरणने हमारे जीवनके दृष्टिकोणको ही बदल दिया। अनुकरणमें बुद्धिप्रतिभा और हृदय-स्वातन्त्र्य बिल्कुल नहीं होता। परानुकरण तो हृदयकी गुलामी तथा बुद्धिकी कमीका द्योतक है। उसमें अपनी परम्परागत मौलिकता (Originality) की छायातक नहीं रहती। इसीलिये बाह्यानुकरण करके जब हमने अपने जीवनकी रचना की तो हम अपने प्राचीन त्याग एवं संयमके पवित्र आदर्शसे च्युत होकर पाश्चात्त्य संस्कृतिके भोगोपभोग, इन्द्रियसुख तथा वासनातृप्तिके आदर्शके पीछे पागल होकर दौड़ पड़े। पाश्चात्त्य परकीय जीवन केवल बाह्यजीवन है, ऐहिक सुख ही उसका परमोच्च आदर्श है; मन-इन्द्रियोंके स्वामी बननेके स्थानमें उनका गुलाम बनना ही—मनमाना यथेच्छाचार करना ही उसकी स्वतन्त्रताका आदर्श है! हमने भी अपने जीवनमें इसी आदर्शको स्थान दिया। अपने 'जीवन-निर्वाहका स्तर' (Standard of living) ऊँचा करना चाहिये, इसी बातकी चारों ओर पुकार मच गयी। जीवन-निर्वाहका स्तर (Standard of living) बढ़ानेका अर्थ है 'बाह्य उपकरणोंकी दासता बढ़ाना'। इसको यदि अधिक स्पष्ट शब्दोंमें कहा जाय तो यह 'पशुभाव' बढ़ाना है। इसी पशुभावके कारण क्रियाशक्ति तथा स्फूर्तिकी प्रेरकता नष्ट हो गयी है। लोग चारों ओर केवल अपनी वासनाओंकी तृप्ति तथा ऐहिक जीवनको अधिक-से-अधिक सुखपूर्ण बनानेकी धुनमें लगे हुए हैं। आजके तरुणोंको आधुनिक आर्थिक जीवनके स्वप्नमें उपभोग-प्रवणता ही अत्यधिक आकर्षक दिखायी देती है; इसलिये परकीयोंके जीवनके दृष्टिकोणोंको अपनाकर व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनकी रचना उन्हींके ढंगपर करनेकी भावना हमारे अंदर उदित हो गयी है। अपने वास्तविक जीवनको भुलाकर, अपनी सांस्कृतिक विचारधारासे कोसों दूर, भोगोपभोगके साधनोंसे सम्पन्न, बाह्याडम्बरसे पूर्ण और आसुरी-ऐश्वर्यसम्पन्न पाशविक जीवनके द्वारा निर्मित तथा राजनैतिक दृष्टिसे बड़े-बड़े साम्राज्य और पाशविकताके द्वारा इस भूमिको छीन लेनेवाले समाजका आँखोंको चौंधिया देनेवाला चित्र हमारे सामने रक्खा गया। अपनेपनके संस्कार तो नष्ट हो ही चुके थे, हृदय कुचला जा चुका था और मन मर चुका था। बस, लोग इसी जीवनके पीछे दौड़ पड़े। इसीके परिणामस्वरूप आज भारतीय मानव कुत्तेके समान पेटभरू जीवनको आदर्श समझकर अपने-अपने क्षुद्र स्वार्थोंकी सिद्धिके लिये व्यक्तिगतरूपसे अथवा समष्टिरूपसे राजनैतिक अधिकार प्राप्त करनेके लिये छटपटा रहा है। उसके सम्पूर्ण प्रयत्न, उसकी सारी दौड़-धूप केवल इन्हीं अधिकारोंकी प्राप्तिके लिये हैं!

इस प्रकार (१) प्रादेशिक राष्ट्रवादको अपनाकर उसे सत्य सृष्टिमें परिणत करनेकी भावनासे तथा (२) ऐहिक सुखोंकी प्राप्तिके लिये, अधिकारारूढ़ होनेकी इच्छासे आज राजनीतिको हमारे जीवनमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है; बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि आज राजनीति ही हमारे जीवनका सार-सर्वस्व बन गयी है। मनुष्यमात्रको राजनीतिक भावापन्न होना चाहिये (Everyman should be politically minded) प्रत्येक व्यक्तिको राजनीतिक विचार रखने चाहिये। आज लोग यही कहने लगे हैं। यहाँतक कहा गया है कि अपना धर्म तथा अपना जीवन भी राजनीतिके अनुकूल होना चाहिये। संक्षेपमें राजनीतिको ही जीवन मान लिया गया और फिर उसकी आवश्यकताके अनुसार ही शेष सब चीजोंमें परिवर्तन किया गया। इसके लिये हमने स्व-भाषा बदली, स्वधर्म बदला, यहाँतक कि अपना इतिहास भी बदल डाला। यह परकीय अनुकरणका एक दूषित प्रभाव है, जिसके कारण आज साधारण मनुष्य राजनीतिको ही जीवनका

मध्यविन्दु समझ बैठा है। साधनको ही साध्य समझ बैठा है। मनुष्य शरीरकी रक्षाके लिये कपड़े पहनता है, अतः शरीरक आवश्यकताके अनुसार कपड़े बनवाता है न कि कपड़ोंके अनुसार शरीरको बड़ा-छोटा करता है। यदि कोई मनुष्य पहले अपना कोट बनवा ले और फिर उस कोटके नापके अनुसार अपने शरीरमें काट-छाँट करे तो उस मनुष्यको कोई भी बुद्धिमान् नहीं कहेगा, उसी तरह अपने जीवनको राजनीतिके ढाँचेमें ढालनेवालोंको कौन बुद्धिमान् कहेगा? यहाँ एक उदाहरण याद आता है। एक मनुष्यके यहाँ एक पलंग था। कोई भी मेहमान उसके घर आता तो उसको वह उसी पलंगपर सुलाता। यदि किसीका कोई अंग पलंगके बाहर निकल जाता तो वह उसको काट देता, और यदि पलंगके नापसे किसीका शरीर छोटा होता तो वह दोनों ओरसे खींचकर शरीरको बढ़ा देता। इस प्रकार वह दैत्य सबको मार डालता। बिस्तरेको ही जीवनका ध्येय समझकर शरीरको उसके अनुसार घटाने-बढ़ानेसे तो मरना ही होता है। आज प्रादेशिक राष्ट्रवादका आधार लेकर राजनीतिके इस विस्तरेके अनुसार राष्ट्रजीवनपर जो प्रहार और उसके साथ जो खींचातानी हो रही है, उससे अनादिकालसे चला आया हुआ यह जीवन खतरेमें पड़ गया है। राजनीतिक ढाँचा तो वास्तविक जीवनके सौभाग्यके लिये होता है। व्यवस्था सर्वस्व नहीं होती, सर्वस्व तो जीवन होता है। हमें उसीकी चिन्ता करनी चाहिये। परकीय समाजमें यदि राजनीति ही जीवनका मध्यबिन्दु हो तो हमको उसका अनुकरण करनेकी क्या आवश्यकता है? उन्हें तो भौतिक जीवनको छोड़कर और भी कोई मनुष्यत्वका जीवन है, खाने-पीने और आराम करनेके अलावा और भी कोई जीवनका उच्चादर्श हो सकता है—इसकी कल्पनातक नहीं है। ऐसी अवस्थामें यदि उन्होंने राजनीतिको जीवनका केन्द्र माना तो ठीक है, पर हम वैसा क्यों मानें? इसमें हमें सुखकी प्राप्ति नहीं होगी, उलटे जीवनके भी लाले पड़ जायँगे।

परकीय अनुकरणके परिणामस्वरूप प्राप्त इस राजनीतिक ध्येयके पीछे बेसुध होकर दौड़नेके कारण हमारा परम्परागत एकात्मताका पवित्र जीवन, हमारी महान् सर्वाङ्गपूर्ण भव्य संस्कृति तथा हमारा अखिल विश्वकल्याणकारी परम श्रेष्ठ धर्मसे परिपूर्ण जीवन पीछे पड़ गया है। इसके स्थानपर पाश्चात्योंके वैर और विद्वेषसे भरा हुआ ऐहिक सुखोपभोगमें ही प्रमत्त जीवन आ गया और दुर्भाग्यवश उसीको 'प्रगति'के नामसे पुकारा गया। अपने पूर्वकालको दार्शनिक (Philosophical) कहा गया तथा 'इसी दर्शन (Philosophy) के कारण हमारी अवनति हुई है' ऐसा कहकर अपनी संस्कृति और सभ्यताकी परम्पराको मिटानेका प्रयत्न हुआ। कुछ अपवाद भी हुए; किन्तु उनकी कौन सुनता है? साधारणतया तो चारों ओर अपनी प्राचीनताको नष्ट कर देनेहीकी पुकार थी। संस्कृतिकी जड़ कटने लगी, प्राचीन परम्पराका प्रवाह रुक गया। परिणाममें आजका, ज़रा-से भी वायुके झकोरेसे इधर-उधर बहनेवाला, शुष्क तृणवत् जीवन निर्मित हो गया! पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षोंके कार्यकी सफलता तो वस्तुतः तब होती जब समाजमें आत्मविश्वासका निर्माण होता, संसारको ज्ञान प्रदान करनेकी योग्यता प्राप्त होती, अपरिमेय पौरुष होता, अनन्य एकात्मता होती, और विभिन्नत्वमें एक विशाल राष्ट्रीयत्वका दर्शन होता। इस स्थितिके प्रकटीकरणके जीवन-रससे यह समाजवृक्ष चैतन्ययुक्त हो जाता। परन्तु यह कुछ नहीं हुआ बल्कि इसके विपरीत आज तो समाज अपने हाथों बरबादीकी भाषा बोल रहा है। बड़े-बड़े पुरुषोंने अपने समाजके ओजस्वी जीवनको भ्रष्ट कर दिया है और उस भ्रष्ट जीवनको लेकर सुखोपभोगका प्रयत्न कर रहे हैं। पर इससे सुख तो दूर रहा, खानेकी भी चिन्ता पड़ गयी है। स्वाभिमान नष्ट हो गया, और पुरुषार्थका तो कहीं पता ही नहीं लगता। इस दीन-हीन दशामें संकटोंमें रोते हुए

समाजके सौ वर्षकी प्रगतिका यह चित्र है। भारतीय समाज परमात्माके नामपर रोता है। उसमें अपने पैरोंपर खड़े होनेकी शक्ति नहीं, आघातोंका प्रतिकार करनेकी हिम्मत नहीं। कैसी महाभयङ्कर प्रगति है। मानो कोई अपने उद्दिष्टकी ओर पीठ करके दौड़ रहा हो। आज यहाँतक अधःपतन हो गया है कि अपनेको हिंदू कहनेमें, अपनेको अपने पूर्वजोंकी सन्तान कहनेमें शर्म आने लगी है। इससे अधिक दुर्दशा और क्या होगी ? पशु-जीवनका वैभव भी तो प्राप्त नहीं हुआ। त्रिशङ्कुके समान सर्वच्युत स्थिति हो गयी है। इस प्रकार जीवनको पशुसे भी निम्नस्तरपर पहुँचा देनेमें हमारे ये सौ वर्षके उद्योग सफल हुए हैं। यही है हमारी उन्नतिका स्वरूप !!!

पिछले डेढ़ सौ वर्षमें की हुई अपनी गलतीको हम समझें। हमने अपने जीवनकी जड़ काटी, जीवनके प्रवाहके मूल उद्गममें रोड़े डालकर उसे बंद किया, जीवनके मध्यबिन्दुको बदल दिया। इससे कदापि उन्नति नहीं होगी, अवनति ही होगी। जीवनरस न ले सकनेके कारण शाखाएँ और पल्लव सूखते जायँगे तथा फिर छोटी-से-छोटी विद्वेषकी हवा उन्हें दूर उड़ा ले जायगी। बाहरसे पत्ते लाकर उन्हें गोंदसे चिपकानेपर अथवा टहनियोंको सूतसे बाँधनेपर वृक्ष हरा-भरा नहीं हो सकता। उसमें न तो फूल खिल सकते हैं और न फल ही आ सकते हैं। आज तो अपने इतिहासको मिटानेतककी प्रबल इच्छा दिखायी देती है। क्या इससे प्रगति सम्भव है ? यह इच्छा कितनी प्रबल है। इसके लिये एक घटना याद आती है। एक स्थानपर एक गीत गाया गया। उसमें अपने एक पूर्वपुरुषके पुरुषार्थका स्मरण कराके हमारे मनमें भी वैसी ही भावनाएँ जाग्रत् करनेका आदेश दिया गया था। इस प्राचीन स्फूर्ति-केन्द्रका वर्णन सुनते ही एक सज्जन बिगड़ उठे। उन्होंने कहा 'इस सबको बंद करो।' 'हमको पुराना कुछ नहीं चाहिये। (wipe out all history, we have to make history)' 'पुराने सारे इतिहासको मिटा दो, हमें तो इतिहास बनाना है' वाक्यकी शब्द-योजना किसी भी भावुक हृदयको और विशेषतः तरुण हृदयको मोहित करके आकृष्ट करनेके लिये पर्याप्त है। परन्तु तनिक विचार करें। जो जड़ कटे हुए वृक्षकी भाँति अपना जीवन रस पूर्व-परम्परासे नहीं खींचता, वह क्या इतिहास निर्माण करेगा। हाँ, देशके इतिहासमें एक अत्यन्त ही निकृष्ट एवं कलङ्कपूर्ण पन्ना जोड़कर जातिको सदाके लिये नाम शेष करनेमें शायद सफल होगा। जिसको अपनी परम्पराका ज्ञान नहीं, जिसको अपनेपनका अभिमान नहीं तथा उसे तेजस्वी बनानेकी इच्छा नहीं, वह संसारमें क्या करेगा ?

अपनी प्राचीन परम्पराकी अवहेलना करनेके कारण आज भारतीय आत्माका हनन हो रहा है। चारों ओर चलनेवाले कार्यमें राजनीतिक तत्त्व हो सकता है। किन्तु उसमें सच्ची भारतीयता नहीं है। क्या इन चलनेवाले प्रयत्नोंमें हमारा आत्माभिमान जाग्रत् रहेगा ? जिसमें चेतन आत्मा नहीं, वह तो मुर्दा है। मुर्देके ऊपर कपड़े डालनेसे कुछ नहीं होगा। उसे खड़ा करके उसके हाथमें डंडा देकर उसे भव्यस्वरूप भी दे दिया तो भी वह मनुष्य नहीं बन सकेगा, उसमें सामर्थ्यका निर्माण नहीं हो सकेगा। जीवन-रस-संजीवनी डालनेसे ही वह मनुष्य बन सकेगा। जब शरीरके अंदर आत्माका प्रवेश होगा तभी उसमें जीवन सम्भव होगा। आज इस जीवनकी ओर किसका ध्यान है ? आज तो परानुकरण करके राजनीतिको जीवनका मध्यबिन्दु बनाकर केवल ऊपरी साज-सँवार किया जा रहा है। इस प्रकार आत्माकी अवहेलना करनेपर और भी अधःपतन होगा, दुर्बलता बढ़ेगी, आक्रमण बढ़ेंगे और हम रोयेंगे। ऐसी दशामें प्राचीन परम्पराका आत्मसाक्षात्कार न होने तथा गौरवभावपूर्ण सांस्कृतिक दिव्य शैलीसे अनभिज्ञ रहनेके कारण अपने आपको समाजका मार्गदर्शक कहने तथा समझनेवालोंका उपदेश

भी यही है कि राजनीतिक कोटके लिये अपना शरीर कटा डालो।

आज हम पूर्णतया आत्म-विस्मृत हैं। अपनेपनका कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसके स्थानपर परायोंकी पूजा हो रही है। यह एक प्रसिद्ध विचार है कि प्रत्येक कुलका एक कुल-देवता होता है। कोई रामको, कोई भवानीको और कोई शङ्करको अपना इष्टदेव मानता है। यदि कभी कोई भूलसे भी अपने इष्टदेवको छोड़कर अन्य देवकी पूजा करता है तो उसके कुलको हानि पहुँचती है, और यदि कुल-देवताके स्थानपर कहीं किसी भ्रष्टात्माकी, भूत-पिशाचकी आराधना होने लगी तब तो विनाशकी सीमाकी कल्पना भी असम्भव है। आज हमने अपने जीवनमें राष्ट्रके आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परागत कुल-देवताकी पूजा-अर्चा छोड़कर पाश्चात्योंकी प्रादेशिक राजनीतिके पिशाचका अधिष्ठान किया है। और यदि यह इसी प्रकार बना रहा तो इससे हमारी सम्पूर्ण पूर्वपरम्पराका नाश होकर स्वकुल भी विनष्ट हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है!

राष्ट्रीय जीवनके स्थानपर प्रादेशिक राजनीतिको प्रतिष्ठित करना भूल है। आज तो राजनीति ही हमारे जीवनका तन्त्र बन गयी है। इस बाह्य तन्त्रको लेकर जो चारों ओर प्रगतिकी चिल्लाहट हो रही है उसमें जरा गौरसे देखिये कि वह किसकी प्रगति है? क्या भारतके भारतीयत्वकी प्रगति हो रही है? क्या इस प्रगतिमें भारतीयत्वका साक्षात्कार है? आज लोग जिस स्वतन्त्रताकी बातें करते हैं क्या उसमें अपना तन्त्र रहेगा? क्या वह भारतीय-तन्त्रता होगी? अपनी बुद्धिसे अपने जीवनका विकास करनेके तन्त्रको ही स्वतन्त्रता कहते हैं। किन्तु आज कहाँ है अपनी बुद्धि और उसके द्वारा निर्मित तन्त्र? कहाँ है अपने जीवनका ज्ञान? उसके विकासका प्रश्न तो उठता ही नहीं। परकीय बुद्धिके दास बनकर, उससे स्फूर्ति प्राप्त करते हुए जो तन्त्र बनेगा, उसमें स्वतन्त्रता नहीं, परतन्त्रता होगी। लेनिनको आदर्श मानकर उसके विचारोंके अनुसार बनाया हुआ तन्त्र लेनिन-तन्त्र होगा, स्व-तन्त्र नहीं। जिस तन्त्रके द्वारा हम अपनी आत्माका दर्शन करनेमें, अपनी राष्ट्रीय आत्माका साक्षात्कार करनेमें, अपनेपनको व्यक्त करनेमें समर्थ होंगे, वही स्व-तन्त्र होगा। जिसमें भारतीयत्वके उच्च आदर्शका, मनुष्यत्वसे ऊँचा उठकर ईश्वरत्वका साक्षात्कार करनेके आदर्शका, विभिन्नतामें एकताके पूर्ण अनुभवका, त्याग एवं संयमपूर्ण जीवनका, ऐहिक सुखोंके परमोच्च शिखरपर पहुँचकर भी इन्द्रिय-सुखोंसे ऊपर उठनेकी सिद्धताका तथा उस सिद्धताकी पात्रता उत्पन्न करनेवाली समाज-रचनाका आविर्भाव न हो, उसमें हमारी स्वतन्त्रता कहाँ? जिसमें अपनेपनका अभिमान न हो, जिसमें जीवन पूर्व-परम्पराके प्रखर प्रकाशसे प्रदीप्त न हो, उसमें स्वतन्त्रता कहाँ? वह तो भ्रमोत्पादक शब्दाडम्बर-मात्र है। वहाँ भारतीयत्वके दर्शन नहीं हैं। हमारा कार्य तो पूर्णतः अपनेपनकी भावनासे प्रेरित होकर, अपने घरमें, अपनी भूमिमें, अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति तथा अपने पूर्वजोंसे स्फूर्ति ग्रहण करते हुए, अपने कर्तृत्वसे अपने जीवनका निर्माण करना होना चाहिये। यही भारतीयत्व होगा। इस भारतीयत्वकी आज लोगोंको कल्पनातक भी नहीं है, और न है इस रचनात्मक तत्त्वके आधारपर अपना जीवन-निर्माण करनेकी आवश्यकताका अनुभव।

अपने भावात्मक जीवनके स्थानपर आज लोगोंके सम्मुख अभावात्मक जीवनकी कल्पना है। रचनात्मक कार्यक्रमके स्थानपर प्रतिक्रियात्मक कार्यक्रम अपनाये जाते हैं। इस प्रतिक्रियात्मक पद्धतिके पूर्ण ज्ञाता तथा अत्यन्त ओजस्वी भाषण करनेवाले एक सज्जनने एक बार कहा था कि 'अब तो एक ही काम बचा है और वह है अंग्रेजोंको बाहर निकाल देना।' परन्तु इसके बाद क्या होगा—इसकी उन्हें कल्पनातक भी नहीं थी।

ऐसे सज्जनोंसे उनके भविष्यके विषयमें कोई

पूछ बैठता है तो वे कैसे-कैसे उत्तर देते हैं—इस सम्बन्धमें कुछ उदाहरण याद आते हैं।

सन् १९२१ के आन्दोलनमें स्कूलसे निकाले हुए लोगोंके लिये राष्ट्रीय विद्यालय, तिलक स्कूल आदि खोले गये। उसमें आजके कई प्रसिद्ध नेता अध्यापक रह चुके हैं। ऐसे ही एक विद्यालयमें 'स्वतन्त्रता' शब्द कई बार सुननेके कारण एक विद्यार्थीने कुतूहलवश अपने आचार्यसे पूछा कि, 'आज़ादीके बाद क्या होगा ?' आचार्य सिर खुजलाते हुए थोड़ी देर बाद बोले, 'होगा क्या, आज हम सड़कके बायीं ओरसे चलते हैं, तब दायीं ओरसे चलेंगे।' कैसी सुन्दर कल्पना है आजादीकी ! एक और उदाहरण सुनिये। सन् ४२ में पौरुष प्रकट करनेवाले एक नेताका एक दिन व्याख्यान हुआ। उन्होंने आजकी स्थितिकी कटु आलोचना करते हुए कहा कि, 'आज आज़ादी कहाँ है ? आज़ादी तो तब होगी जब कि हम खुशीसे थप्पड़ मारकर पुलिसको बाहर कर सकेंगे और कोई कुछ न कह सकेगा।' ऐसे ही विचार हैं जो लोगोंके मस्तिष्कमें चक्कर काटते रहते हैं। अपने वास्तविक जीवनके आधारपर भावी जीवनका चित्र न खींचनेके कारण हमारा भविष्य कोरा पड़ा है, जिसमें समय-समयपर लोग मनमाना रंग भर देते हैं। एक अतिश्रेष्ठ महापुरुषने तो यहाँतक भी कह डाला कि—'अंग्रेज बाहर चले जायँ, फिर चाहे अफगानिस्तानका अमीर आकर राज्य करे या हैदराबादका निज़ाम स्वेच्छाचार करे, हमें खुशी ही होगी।'

इन सब विचित्र कल्पनाओंका कारण है स्व-रूपका—अपनेपनका अज्ञान, अपनी परम्पराकी जड़को काटना, प्रतिक्रियात्मक भावनाका होना तथा परानुकरण करना। अपने वास्तविक जीवनका ज्ञान हुए बिना जो कार्य किया जाता है, वह अन्धेके इधर-उधर भटकनेके समान है, उससे कोई वास्तविक प्रगति सम्भव नहीं है। अपनी जड़ काटकर संसारमें कौन बढ़ पाया है ? प्रतिक्रियाके आधारपर किया हुआ कार्य क्षणिक होता है। उसमें स्थायीभाव नहीं होता तथा प्रतिक्रियाके नष्ट होते ही क्रिया समाप्त होकर कार्य भी नाशको प्राप्त होता है। समान आपत्ति (Common Danger) के आधारपर स्थायी राष्ट्रीय-जीवनका निर्माण कैसे हो सकता है ? वह जीवन तो अधिक-से-अधिक आपत्ति (Danger) रहनेतक ही रह सकता है, आगे नहीं। परानुकरणमें तो स्वप्रतिभाका लोप ही होता है। लट्टूकी टाँग (Central Pivot) को केन्द्रमें ही रखना होता है। यदि वह केन्द्र लट्टूके बाहर हुआ तो लट्टू घूम नहीं सकता। वर्तुलसे बाहर यदि केन्द्र हुआ तो वर्तुल काल्पनिक ही होगा। भारतीय जीवनका केन्द्र भारतके बाहर रक्खा जायगा तो यह जीवन चल नहीं सकता। उस जीवनके सम्बन्धमें भारतीयत्वका चाहे कितना ही डिंडिम बजाया जाय; फिर भी उसमें 'भारतीयत्व' नहीं रहेगा। इस प्रकार बाहरसे स्फूर्ति प्राप्त करनेकी वृत्ति, अभारतीय तथा अराष्ट्रीय है। यदि कोई व्यक्ति Extraterritorial Loyalties रक्खे तो उसे हम राष्ट्रद्रोही कहते हैं; फिर बाहरसे स्फूर्ति प्राप्त करना, बाहरके आदर्श ग्रहण करना (Extraterritorial inspiration and extraterritorial idealism) तो सबसे बड़ी Extraterritorial Loyalty है; यह तो भीषण राष्ट्रद्रोह है, आत्मघात है। हम इस राष्ट्रद्रोहसे बचें। हमारे जीवनमें जो भी स्फूर्ति हो, हमारे ही आदर्शोंसे प्राप्त हो।

आजकी यह स्थिति तो अवाञ्छनीय है। आज तो लोगोंके स्फूर्तिदेवता, उनके आशाकेन्द्र तथा उनका ध्येयवाद भारतके बाहर है। चारों ओर उनकी प्रणालियोंका, उनके जीवनका, उनकी समाज-रचनाका तथा उनके ही शब्दाडम्बरका जाल फैला हुआ है। हमसे भी लोग कई बार पूछ बैठते हैं कि आपके यहाँ कौन-सा वाद (ism) है ? प्रश्नकर्ता स्पष्ट ही यूरोपके विचारोंसे आक्रान्त रहता है तथा अपने जीवनको भी, यूरोपीय जीवनके सम्बन्धमें

पढ़े हुए किसी वादके चौखटमें कसना चाहता है। अपना भी कोई तत्त्व है, अपनेपनका भी कोई श्रेष्ठत्व है, जिससे आदर्श जीवन निर्मित हो सकता है, इसकी वह कल्पनातक नहीं कर सकता।

कितना आत्म-विस्मरण है। कितनी गौरव-शून्यता है! अपनी ताकतसे आकाशको रोकनेवाला दूसरोंसे भीख माँगे! दूसरोंके धन, दूसरोंकी सम्पत्तिकी उन्नतिका प्रयत्न करे और स्वयं भिक्षावृत्ति स्वीकार करे। संसारको गुरुवत् चारित्र्य सिखानेवाले भारतको प्रत्येक वस्तुके लिये 'भिक्षां देहि'का उच्चार करना पड़े! कितना अधःपात है। नहीं, यह कभी नहीं होगा। हमारे सामने हमारे पूर्व-पुरुषोंके उज्ज्वल चरित्र हैं। स्वप्नमें दान करनेके कारण अपना सम्पूर्ण राज्य विश्वामित्रको अर्पित करनेवाले हरिश्चन्द्रकी कथासे कौन नहीं परिचित होगा? वही हरिश्चन्द्र जब दान-दक्षिणा चुकानेके लिये अपने पुत्र और पत्नीसहित काशीको रवाना हुए तो ऋषि विश्वामित्रने उनकी और भी अग्नि-परीक्षा लेनेके लिये मार्गमें अत्यन्त भीषण मरुस्थलका निर्माण किया। चारों ओर जल-रहित वालुकामय प्रदेश और ऊपरसे सूर्यका प्रखर ताप। जिस राज-परिवारने कभी जमीनपर पैर नहीं रक्खा था, वही इस भीषण प्रदेशसे पैदल चला जा रहा था। तप्त बालूसे झुलस-झुलसकर पैरोंमें छाले पड़ गये तथा प्याससे कण्ठ सूख गया। राजकुमार रोहिताश्व अत्यन्त पिपासु हो उठा। एकाएक उन्हें एक हरा-भरा स्थान दिखायी दिया। तृषासे क्लान्त रोहिताश्व उधर दौड़ पड़ा; राजा और रानी भी पीछे-पीछे पहुँच गये। वहाँ मालूम हुआ कि प्यासे पथिकोंको पानी पिलानेके लिये प्याऊ लगी हुई है। हरिश्चन्द्रने रोहिताश्वको पानी पीनेसे रोक दिया। जिसके पूर्वज अपने पुरुषार्थके बलपर स्वर्गसे घसीटकर जह्नुकी जंघाको विदीर्ण करके तथा शङ्करकी जटाओं-मेंसे निकालकर गङ्गाको पृथ्वीपर ले आये थे, वह इस प्रकार पराये दानका पानी पीवें। यह उसको शोभा नहीं देता। इससे उन पूर्वजोंके नामपर कलङ्कका टीका लगाना है। इसी प्रकार जिनके पूर्वजोंने दुनियाभरको ज्ञानामृतका पान कराया हो वे ही आज भीख माँगकर गंदी नालीका पानी पीवें, यह क्या हमको शोभा देता है?

इन सम्पूर्ण अराष्ट्रीय प्रवृत्तियोंको नष्ट करके राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कर इस विशाल एवं पुरातन राष्ट्रके जीवनको चिरन्तन सामर्थ्यसे युक्त करके उसको गौरवशाली बनानेके लिये ही हमारी यह प्रवृत्ति है। हम अपने राष्ट्रकी आत्माका साक्षात्कार करना चाहते हैं। अपने राष्ट्रीयत्वको जीवित रखना चाहते हैं। उसे बलशाली एवं वैभवशाली बनाना चाहते हैं। भारतीय राष्ट्रीयत्वका विचार राजनीतिकताके कुछ अधिकारोंका विचार नहीं है। उसका चिन्तन तो आध्यात्मिक है, हम उसका साक्षात्कार करें। अपने जीवनमें अपनेपनका भाव और उसका प्रखर अभिमान लेकर हम अपने राष्ट्रीय जीवनकी अधिष्ठात्री जननीका आह्वान करें, उसीकी पूजा करें। सांस्कृतिक उच्च सिंहासनसे माँको नीचे उतारकर उसके स्थानपर राजनीतिकी वाराङ्गनाका अधिष्ठान कदापि न करें। उक्ति है:—'वाराङ्गनैव नृपनीतिरनेकरूपा' राजनीति तो वाराङ्गनाके समान क्षण-क्षणमें अपने हाव-भाव बदलती रहती है, दिन-प्रतिदिन उसका रंग बदलता है। माँको घरसे निकालकर वाराङ्गनाको स्थान देनेसे हमारी कभी उन्नति नहीं हो सकती। उससे तो विलास-प्रियता बढ़ेगी, अधःपात होगा और सब प्रकारसे दौर्बल्य उत्पन्न होगा। हम राजनीतिकताके इस व्यभिचारसे दूर रहना चाहते है। यहाँ तो वाराङ्गनाके दर्शनतक भी नहीं है। जो कुछ है माताकी पूजाके लिये है; निःस्वार्थ-भावसे, भक्तिपूर्ण हृदयसे उसके चरणोंमें सर्वस्वको अर्पण करनेकी एकमात्र अभिलाषा है।

हम परायोंसे प्रतिभा माँगकर अपनी रचना करना नहीं चाहते। हमारी प्रतिभा अपनी है।

उसीसे हम अपनी संघटनाका, अपनी जीवनकी प्रणालीका निर्माण करेंगे। जिस प्रणालीमें हमारा मान-बिन्दु हमारा रहे, हमारा जीवन परिपूर्ण भारतीयताका रहे तथा प्राचीन भारतीय परम्पराका प्रवाह अजस्र प्रवाहित होता रहे, वही प्रणाली राष्ट्रीय है। उसीसे समाजके दोष और दैन्य नष्ट होंगे। हमारे कार्यकी यही विशेषता होनी चाहिये। हमने अपने सामने परम आदरणीय वस्तु अपना ध्वज रक्खा है। यह ध्वज हमारी आत्माका स्वरूप है। उसीकी विशेषताओंको प्रकट करता है। यह अनादिकालसे आयी हुई परम्पराका प्रतीक है। इसके धागेके एक-एक सूत्रमें अनन्त इतिहास छिपा हुआ है; इसके रंगकी एक-एक छटामें आत्मयज्ञकी दिव्य ज्वाला दिखायी देती है। इसके नीचे खड़े होकर पूर्वजोंकी अनेक पीढ़ियोंने आत्म-समर्पणका पाठ पढ़ा है। जिनको इसका ज्ञान नहीं है तथा जो इसके गौरवको नहीं समझते, जो इसके एकात्मताके संदेशको नहीं सुन पाते तथा इसमें राष्ट्रकी आत्माका प्रतिविम्ब नहीं देखते, वे इसमें परिवर्तन करने, इसमें जोड़-तोड़ करनेका प्रयत्न करते हैं। ये प्रयत्न आत्मघातक हैं। पैर काटकर लकड़ीका पैर लगानेके समान है। हम यह न होने देंगे। हमारा स्फूर्तिका केन्द्र तो प्राचीन कालसे चला आया हुआ यह राष्ट्र-ध्वज ही है। भारतके जीवनको स्पष्ट करनेवाले, भौतिकवादको हटाकर त्यागमयी संस्कृतिका स्मरण करानेवाले इस ध्वजको हम श्रद्धाकी दृष्टिसे देखें। यह भारतीयत्वका चिह्नस्वरूप है। इसीलिये यह गौरवमय है, हमारे लिये वन्दनीय है। इसपर आघात न आने पावें, इसका गौरव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाय, यही ध्येय हमारे सामने है।

हमने किसी परकीय समाजके महापुरुषोंको अपना स्फूर्तिदाता नहीं माना है। हमारे आदर्श छत्रपति महाराज शिवाजी हैं। भारतीय आदर्शोंका पालन, यहाँकी संस्कृति, धर्म तथा सभ्यताकी रक्षा और विकासके निमित्त प्रयत्न करनेवालोंकी, भारतीयत्वका निर्माण करनेवालोंकी जो एक परम्परा अनन्त कालसे चली आ रही थी, उसी दिव्य प्राचीन परम्पराके प्रवाहको श्रीशिवाजी महाराजने आगे बढ़ाया था। उन्होंने अपने पुरुषार्थ और नीतिज्ञतासे जिस साम्राज्यका निर्माण किया, उसका अप्रतिहत सामर्थ्य अन्ततक—परकीय सत्ताके आनेतक था। इस शक्ति-निर्माणके द्वारा उन्होंने प्राचीन परम्पराके प्रवाहको हमारे कालसे कुछ दिन पूर्वतक लाकर छोड़ा। वहाँसे उस प्रवाहको उठाकर आगे बढ़ाना है। ऐसे अपने Immediate predecessor शिवाजी हमारे आदर्श हैं; मैजिनी या वाशिंगटन नहीं; मार्क्स और स्टैलिन नहीं। भिखमंगोंके समान रोटीका सवाल रखकर, मानवताकी निकृष्ट कल्पना रखनेवालोंको हमने स्फूर्तिदाता नहीं माना। हम यह जानते हैं कि परकीय नकल करनेसे परकीयता ही जाग्रत् होगी। अपना साक्षात्कार और संस्कार हो, परकीय संस्कार नष्ट हो और प्रादेशिक पटल छिन्न-भिन्न होकर राष्ट्रीय जीवन हृदयमें आवे। इस दृष्टिसे अपने लिये गो-ब्राह्मण-प्रतिपालनका व्रत लेनेवाले शिवाजी आदर्श हैं। गो-ब्राह्मण हमारे धर्म और संस्कृतिके तत्कालीन प्रतीक थे। अतः गो-ब्राह्मण-प्रतिपालनका अर्थ है—अपने धर्म और संस्कृतिकी रक्षा करके प्रखर जीवनका निर्माण करना। शिवाजीने यह जीवन-निर्माण किया। कुछ लोग अपने विकृत विचारोंको अपने पूर्वजोंपर भी लादनेका प्रयत्न करते हैं। इसीलिये कोई, समाजके शोषित वर्गका पोषक सिद्ध करके उन्हें कम्यूनिस्ट सिद्ध करनेका प्रयत्न करता है, तो कोई प्रतापगढ़के किलेपर उनके द्वारा अफजलखाँकी बनायी हुई कब्रका हवाला देकर उन्हें हिंदू-मुस्लिम ऐक्यका कर्ता मानता है। हम उनकी वास्तविक भावनाओंकी ओरसे क्यों आँखें मीच लेते हैं? सच तो यह है कि अपनी बुद्धिको गुलाम बनाकर स्वातन्त्र्य-सूर्यकी ओर देखनेवाले चमगीदड़ और उलूक उस सूर्यका दर्शन नहीं कर सकते और न वे उसके प्रखर

प्रकाशको ही सहन कर सकते हैं। उसके लिये तो महान् बलशाली गरुड़ ही चाहिये। शिवाजीने स्वयं कहा था कि 'मैं अपनी प्राचीन परम्पराकी निर्मितिके लिये हूँ। स्वधर्म श्रेष्ठ है। इसकी रक्षा हो।' यों कहकर अपनी परम्पराकी जीवनधाराको अखण्ड प्रवाहित कर जिस शिवाजीने समाजमें जीवन-रस उत्पन्न किया उसको कौन अन्यथा कह सकता है ? वही शिवाजी हमारा आदर्श है। उसीके व्रतको निभानेवाले हम अपने हृदयकी परम्पराको जाग्रत् करनेमें ही श्रेष्ठत्व मानकर उसके विचारोंसे अपने हृदयको भर दें। इस परम्परामें अमित सामर्थ्य थी। बड़े-बड़े शक्तिमान् इसके सामने झुक गये, तनिक भी दुःसाहस न कर सके। ऐसी सदा भयङ्कर पराक्रम करनेवाली परम्पराका हम साक्षात्कार करें। इसी परम्पराके अमृतसे सिञ्चित भावनासे परिपूर्ण तेजस्वी सामर्थ्य निर्माण करनेके लिये ही हमारा प्रयत्न है।

आज जब हम अपने पूर्वजोंका नाम लेते हैं तो लोग हमें प्रतिगामी, (Fossilized, antiquated) आदि कितने ही शब्दोंसे पुकारते हैं। यदि अपने पूर्वजोंका नाम लेना, उनके मार्गपर चलना, उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करना प्रतिगामीपन है तो हम प्रतिगामी ही हैं। अपने पिताका नाम बतानेमें शर्म न खाते हुए गौरवका अनुभव करना हमारा (Antiquarian) प्रतिगामीपन है तो हम प्रतिगामी ही सही। हम तो जानते हैं कि अपने अतीतसे अलग होकर कोई भी जी नहीं सकता। अपनी ही गलतीके कारण समाज-वृक्षसे अलग होकर संसारमें थपेड़े खाते हुए लोग जब प्रगतिको सोचते हैं तो उन्हें कहीं ठिकाना नहीं मिलता है; कहीं जड़ ही नहीं मिलती जो प्रगति करें। हम 'मूले कुठाराघात' की नीतिके परिणामस्वरूप उत्पन्न भयङ्कर वातावरणको नष्ट करके अपनी परम्पराको जाग्रत् कर अपने पूर्वजोंकी ज्योतिको प्रज्वलित करें। प्राचीन एकताका आह्वान करते हुए भारतीयताके अधिष्ठानपर, प्राचीनताके गर्भसे जीवन-रस खींचते हुए राष्ट्र-वृक्षकी शाखाओंको पल्लवित करें। हमारे राष्ट्रीय जीवनकी आधारभित्ति आध्यात्मिक है—सांस्कृतिक है। उसको हम शुद्ध स्वरूपमें पहचानें। राजनीतिको आध्यात्मिक रंग देकर स्वार्थसाधनकी प्रवृत्तिसे हम बचें। पौरुष-शून्यताके कारण षण्ढता-पूर्ण जीवन व्यतीत करना आध्यात्मिक जीवन नहीं है। वह तो कायरता है। श्रीमद्भगवद्गीताके ज्ञानके पूर्वके अर्जुनने जब शस्त्र डालकर अपने बन्धु-बान्धव, गुरु और आप्तजनोंसे युद्ध करनेसे मना किया, तथा अपने परम्पराप्राप्त वैभव और राज्यको छोड़कर वह मरनेको भी तैयार हो गया, तब न तो उसमें वैराग्य था और न उदारता; यह न तो उसकी आध्यात्मिकता थी और न बन्धु-बान्धवोंका प्रेम। यह तो उसकी कायरता थी; पौरुषहीनता थी। और इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने सबसे पहिला उपहार जो उसे दिया वह था 'क्लैब्यं' शब्द। जिनके आक्रमणोंसे समाज त्रस्त है उन्हींके चरणोंमें पड़कर रक्षा चाहना तो अर्जुनकी इस क्लीब एवं अनार्य वृत्तिके समान है। यह अर्जुन कभी भी भारतीयताका आदर्श नहीं रहा। भारतीयत्वकी चरम अभिव्यक्ति तो गीताके बादके उस अर्जुनमें हुई जो कि सामने पड़नेपर पहिले प्रणाम करके गुरुजनोंपर भी बाण-वर्षा करके अपनी आत्मरक्षा कर सका। पराक्रमसे पीछे पैर न खींचनेवाला, धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्मका सच्चा ज्ञान रखनेवाला अर्जुन सदैवसे भारतके कर्मयोगियोंका आदर्श रहा है।

जब हम सच्चे पौरुषका साक्षात्कार करेंगे तभी अपने भाग्यको बनायेंगे। हृदयकी श्रद्धा तथा अपने बाहुबलमें विश्वास रखकर पशुको भी मनुष्य बनाकर छोड़ेंगे, ऐसी निश्चय शक्तिको धारणकर कार्य करें। अपने पूर्वजोंका स्मरण करते हुए उनके प्राचीन जीवनको उद्दीप्त करके जो श्रद्धा आज बाहर चली गयी है उसे वापिस लाकर अपने स्फूर्ति-देवताको जाग्रत् करें। अपने ही स्वतन्त्र कार्यके आधारपर अपनेपनके भावसे अनेक हृदयों-

को गूँथकर अपने मानबिन्दुके चारों ओर एक अभेद्य शक्तिका वलय खड़ा करनेका कार्य करें । अपने प्रखर एवं कठोर राष्ट्रवादके लिये आत्मीयत्वको जाग्रत् करें तथा उससे उत्पन्न सत्तासे उस प्रबल सामर्थ्य एवं ऐहिक जीवनका निर्माण करें जिसमें भ्रष्टाचार न हो, पूर्वजोंके साथ अप्रामाणिकता न हो, और जीवनके महान् एवं शाश्वत तत्त्वोंके साथ व्यभिचार न हो । इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्रसे दासत्व वृत्तिको दूर करके माताकी सेवाके लिये आसेतु हिमाचल वह शक्ति निर्माण करें जो कि निरन्तर बढ़ती जाय, बाह्यारोपोंके कारण जिसके अन्तः-करणमें विकार उत्पन्न न हो तथा अनेक आन्दोलनों-से विश्वके डाँवाँडोल होनेपर भी जो अटल रहकर शोभाको प्राप्त करे !

भगवान्‌को आर्तभावसे पुकारते ही रक्षा हो गयी

अपबल तपबल और बाहुबल चौथो बल है दाम ।
सूर किसोर-कृपातें सब बल हारेको हरिनाम ॥

पिछले दिनों कलकत्ते और पूर्व-बंगालमें जो अमानुषिक अत्याचार हुए हैं उनमें कई ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिनमें भगवान्‌की कृपासे विलक्षणरूपसे लोगोंकी गुंडोंके हाथोंसे रक्षा हुई है । उन घटनाओंसे यह प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि आर्तभावसे भगवान्‌को पुकारनेपर तत्काल उत्तर मिलता है और किसी-न-किसी प्रकारसे विपत्तिसे छुटकारा मिल जाता है । यहाँ ऐसी कुछ घटनाओं-का उल्लेख किया जाता है । पाठकोंको इन घटनाओंसे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि जिस समय मनुष्य सब ओरसे असहाय होकर विश्वासके साथ भगवान्‌को पुकारता है उस समय भगवान् उसकी बड़ी विचित्र रीतिसे रक्षा करते हैं । खेदकी बात है कि आज हमारा भगवान्‌पर उतना विश्वास नहीं रहा । इसीसे हम भगवत्कृपासे वञ्चित रहते और पद-पदपर विपत्तिके जालमें फँसते हैं । आज भी यदि हम विश्वासपूर्वक सामूहिकरूपसे भगवान्‌को पुकारें तो हमारे सारे संकट टल सकते हैं ।

(१)

कलकत्तेकी अभीकी घटना है । एक हिंदू-गृहस्थके बड़े परिवारको आक्रमणकारी गुंडोंने घेर लिया था । बाहरी फाटक तोड़कर गुंडे अंदर घुसना ही चाहते थे । तब घरके लोग घबराकर हतबुद्धि-से हो गये और एक दूसरेका मुँह ताकने लगे कि अब क्या होगा ? किसीने कहा कि 'इस विपद्‌से तो भगवान् ही बचा सकते हैं । द्रौपदीने भगवान्‌को ही पुकारा था । अतः उसी अशरण-शरण प्रभुको ही पुकारना चाहिये, वे ही हम अनाथोंके नाथ हमें बचा सकते हैं । और कोई उपाय नहीं है ।' बात भी सच्ची है । जब मनुष्य सब ओरसे निराश हो जाता है तब एकमात्र भगवान्‌की शरण खोजता है और वे अकारण दयालु प्रभु उसे सम्हाल लेते हैं । किन्तु इस भगवद्विश्वासके विरोधी विषैले वातावरणके कारण भोले-भाले मानवोंकी बुद्धि भ्रमित-सी हो रही है, अतः इसीके प्रभावमें आये हुए एक भाईने निराशाके स्वरमें उत्तर दिया, 'क्या होगा भगवान्‌को पुकारनेसे ?' इसपर दूसरेने आश्वासन देते हुए कहा, 'भाई ! पुकारो तो सही, इसमें अपना लगता ही क्या है ?' इसपर सब कोई मिलकर व्याकुल होकर भगवान्‌को पुकारने लगे । पुकारते-पुकारते उन्हींमेंसे एक सज्जन ऊपर छतपर चले गये, सड़कपर उनकी दृष्टि पड़ी । देखा कि फौजी सिपाहियोंकी एक लारी मकानके नीचेसे जा रही है । यह देखकर वे और भी जोरसे भगवान्‌को पुकारकर कहने लगे, भगवान् बचाओ, रक्षा करो । यह करुणक्रन्दन भगवान्‌ने सुना, लारी वहीं रुक गयी । गुंडे भागे । उस हिंदू-परिवारके

सब लोगोंको लारीवालोंने लारीमें बैठा लिया और उन्हें सुरक्षित स्थानमें पहुँचा दिया।

(२)

कलकत्तेकी ही एक दूसरी घटना है। किसी फ्लावर मिलमें कुछ आदमी काम कर रहे थे, बदमाशोंके एक दलको आते देखकर उन्होंने जल्दीसे फाटक बंद कर लिये। इतनेहीमें आक्रमणकारी गुंडे वहाँ पहुँच गये, और बाहरसे किंवाड़ तोड़ने लगे। इससे अंदरवाले लोग घबराकर आर्तभावसे भगवान्‌को पुकारने लगे। पुकारका ही यह फल था कि उन गुंडोंमेंसे एकने अपने साथियोंसे कहा कि 'अरे, यहाँ क्या मिलेगा। चलो आगे बढ़ो।' आक्रमणकारी अनायास ही वहाँसे चल दिये। सबकी जान बची।

(३)

नोआखालीसे लौटते हुए एक परिवारके एक वीर युवकने हवड़ा स्टेशनपर अपना हाल बतलाया कि मैं किसी आवश्यक कामसे बाहर गया हुआ था, घरपर मेरे माता-पिता और पत्नी—इतने लोग थे। बाहरसे लौटनेपर पड़ोसियोंसे ज्ञात हुआ कि आक्रमणकारी गुंडे मेरे पिताकी हत्या करके मेरी माता और पत्नीको अपहरण करके ले गये। यह सुनते ही मैं 'मैं' नहीं रहा। भगवान्‌से मैंने प्रार्थना की, कहींसे मुझे एक छुरा दिला दो। मुझे तुरंत एक छुरा मिला। उसे उठाकर भगवान्‌के भरोसे मैं पता लगाता हुआ उन बदमाशोंके अड्डेपर जा पहुँचा। देखा, मेरी माता और पत्नी वहाँ मौजूद हैं और दोनों बदमाश वहाँ अकड़े बैठे हैं। मैंने तुरंत भगवान्‌का नाम लेकर एकके पेटमें छुरा भोंक दिया। वह घावको हाथसे दबाकर उठा, उसका दूसरा साथी भी मुझपर टूट पड़ा। मैंने अपनी माता और स्त्रीको ललकारा कि, 'बैठी क्या देखती हो। मारो इन दुष्टोंको।' भगवान्‌की कृपासे हम तीनोंने मिलकर उन दोनोंका काम तमाम किया और वहाँसे निकलकर चले आ रहे हैं। उस युवकके शरीरमें भी कई घाव थे। तीनों ही भगवान्‌का स्मरणकर प्रफुल्लित हो उठते थे।

(४)

नोआखालीके एक मारवाड़ी व्यापारीपर कुछ बदमाशोंने आक्रमण किया। वह भयभीत हुआ भागकर निकटकी पुलिस-चौकीपर चला गया। उसने पुलिस दारोगासे रक्षाके लिये प्रार्थना की। दारोगाने कहा कि 'भैया! हम तुम्हें नहीं बचा सकते, न हमारे पास काफी पुलिस है, न हथियार ही। तुम अपना बचाव आप ही कर लो। लाचार वह वहींके एक पाखानेमें छिप गया और वहीं एकाग्र मनसे अशरणशरण अनाथोंके नाथ, जगत्‌के एकमात्र रक्षक, परम दयालु भगवान्‌को आर्तभावसे पुकारने लगा। वह व्यक्ति बीकानेर जिलेके साँडवा ग्रामका अधिवासी है। उसने बताया कि 'गुंडोंने आकर पुलिस दारोगासे मेरा नाम लेकर पूछा कि वह कहाँ है? दारोगाने कह दिया, 'हम नहीं जानते, यहाँ तो कोई वैसा आदमी आया ही नहीं।' गुंडोंने कोना-कोना छान डाला! मैं जिस पाखानेमें छिपा था, वहाँ भी ये लोग कई बार आकर निकल गये। मैं उन्हें देखता रहा। वे मुझे, मालूम नहीं कैसे, देख नहीं सके। भगवन्नामका ही यह प्रभाव था जिसे सोचकर मैं गद्‌गद होता रहता हूँ।' स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजसे उसके सगे भाई मिले थे।

(५)

युक्तप्रान्त—लखनऊके पास किसी स्टेशनकी घटना है। किसी भले घरकी चार-पाँच महिलाओंको कुछ गुंडे भगाये लिये जा रहे थे। बेचारी महिलाएँ आर्तभावसे मन-ही-मन अशरणशरण भगवान्‌को पुकार रही थीं। प्रभु! तुमने द्रौपदीकी लाज रक्खी, गजराजका उद्धार किया, आज हमारी भी इन राक्षसोंके हाथोंसे तुम्हीं रक्षा कर सकते हो। हमारे पास और बल ही क्या है नाथ! एकमात्र तुम्हारे समर्थ चरणकमलोंका सहारा है।

प्रभु ! दया करो, नाथ ! इसी प्रकार रो-रोकर भगवान्से प्रार्थना कर रही थीं कि इतनेहीमें उसी डिब्बेमें एक टिकट-चेकर आया। उसे देखकर उन अबलाओंमेंसे एकने उसके पैरको अपने पैरसे दबाकर संकेत किया। उस टिकट-चेकरने समझा, सम्भव है मेरा पैर उसके पैरसे भूलसे दब गया होगा, और उसने उस ओर ध्यान नहीं दिया। पर दूसरी और फिर तीसरी बार भी जब वही संकेत हुआ तो उसका ध्यान गया और तुरंत बाहर जाकर पुलिसको साथ लिये लौटा। उसने उन महिलाओं-के साथ जो गुंडे थे उनसे पूछा, 'ये महिलाएँ कौन हैं ? किसके साथ हैं ?' गुंडोंने जवाब दिया—'हमारे घरकी स्त्रियाँ हैं।' यह सुनकर उन स्त्रियोंने अपना सिर हिला-कर इन्कार किया। इसपर टिकट-चेकरने एक महिला-का बुरका हटाया तो क्या देखा कि उसके हाथ पीछे-की ओर बँधे हैं और मुँहमें कपड़ा ठूँसकर ऊपरसे पट्टी बँधी है। चारों महिलाओंका यही हाल था। गुंडे गिरफ्तार किये गये, स्त्रियोंके बन्धन खुले और वे उनके अपने स्थान पहुँचायी गयीं। उन महिलाओंने यह बतलाया कि हमारे आदमियोंको पता नहीं है कि इन्होंने क्या किया। हमारे सब आभूषण भी इन टीफिन-केरियरोंमें भरकर रक्खे हैं।

(६)

एक घटना अभी सुननेमें आयी है कि एक गुंडा किसी भले घरकी लड़कीको भगाकर लिये जा रहा था। रेलके जिस डिब्बेमें वह लड़की बुरकेमें छिपी हुई मन-ही-मन अशरणशरण भगवान्को रो-रोकर पुकार रही थी, उसीमें उसीके पास भले घरकी एक स्त्री अपने पतिके साथ आकर बैठ गयी। तब इस लड़कीने बहुत सावधानी-से अपनी विपद्-गाथा लिखकर उस महिलाको दी। उसने वह परचा अपने पतिको दिया। उसने अगले स्टेशनपर जब गाड़ी रुकी, पुलिसको इत्तिला दी और पुलिसको उस गुंडेके पीछे लगा दिया। अगले किसी बड़े स्टेशनपर गुंडेको गिरफ्तार करके उस लड़कीको उसके घर पहुँचा दिया गया।

(७)

पूर्व-बंगालके एक गाँवमें चारों ओर लूट-पाट मची हुई थी। एक गुंडा किसी घरमें घुसा। उस समय घरमें कोई पुरुष नहीं था। एक अट्ठाईस वर्षकी लड़की घरमें थी। गुंडेने पहले तो जो कुछ गहना-कपड़ा हाथ लगा सो लूटा। फिर वह उस लड़कीकी ओर झपटा। वह पहलेसे ही डरी हुई थी और भगवान्को पुकार रही थी। जब दुष्ट उसकी ओर बढ़ा, तब उसके मनमें न जाने कहाँसे साहस आ गया। वह जोरसे आगे बढ़ी और बड़े जोरसे उस झपटते हुए बदमाशकी छातीपर एक लात जमा दी। सहसा लात लगते ही वह पीछेकी ओर गिर पड़ा और उसी क्षण हृदयकी गति बंद होनेसे मर गया। इतनेमें लड़कीके भाई और पिता आ गये। लड़कीका सतीत्व तथा घरका सामान बच गया !

(८)

कालीपद नामक एक बंगीय सज्जनने बताया कि एक दिन दो गुंडोंने उसे घेर लिया और वे मारनेको तैयार हो गये। वह उनसे डरकर जोर-जोरसे अशरणशरण भगवान्को पुकारता हुआ भागा। सन्ध्या हो चली थी। वह डरकर एक जले हुए घरमें घुस गया। दोनों गुंडे पीछे-पीछे गये। वह तो घरके पीछेसे निकल गया और उन दोनोंपर जली हुई छतसे एक लकड़ी टूट पड़ी, जिससे दोनों घायल होकर वहीं गिर पड़े !

पता नहीं, ऐसी कितनी घटनाएँ हुई होंगी।



धर्मके सामने प्राणोंका कोई मूल्य नहीं है

न जातु कामान्न भयान्न लोभा-
द्धर्मं त्यजेत् जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

'किसी भी समय कामनासे, भयसे या लोभसे यहाँतक कि प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि धर्म नित्य है, सुख-दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है और उसका कारण यह शरीर या संसारका कारण माया अनित्य है।'

एक सज्जनने पूछा है—'जिस समय एक ओर बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन या सतीत्व-नाशका प्रसंग हो और दूसरी ओर प्राण जानेका डर हो, उस समय धर्म-परिवर्तन स्वीकारकर या सतीत्व-नाशको सहनकर प्राण बचाने चाहिये या आततायियोंके हाथों मर जाना चाहिये?'

हिंदूधर्ममें इसका स्पष्ट उत्तर एक ही है—धर्म-रक्षाके लिये सर्वस्वका त्याग कर दो। प्राणोंका उतना मूल्य नहीं है, जितना धर्मका है। हिंदू-इतिहास धर्म-रक्षाके लिये प्राणोंकी आहुति देनेवालोंकी पवित्र गाथाओंसे भरा है। हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, अम्बरीष, शिवि, दधीचि आदि इसके उदाहरण हैं। पुरानी बात छोड़िये—अभी पिछले दिनों गुरु गोविन्दसिंहजीके सुकुमार बालकोंने धर्मके लिये अपनेको जीते-जी दीवारमें चुनवा दिया। और मीरा विषका प्याला हँसते-हँसते पी गयी। हिंदू-सतीका सतीत्व तो सबसे बढ़कर मूल्यवान् वस्तु है। राजपूतानेकी हजारों देवियोंने सतीत्वकी रक्षाके लिये जलती आगमें कूदकर अपनेको होम दिया। अतएव धर्म तथा सतीत्वकी रक्षाके सामने प्राणोंका कोई महत्त्व नहीं है। वे सचमुच अमर हो गये, जिन्होंने विनाशी शरीरका त्याग करके धर्मको बचा लिया। अभी पूर्व-बंगालमें राजेन्द्र बाबूने अपने-आपको तलवारके घाट उतरवा दिया, परन्तु आततायियोंके द्वारा पराजय स्वीकार नहीं की। वहाँ दो त्यागी साधुओंके ऐसे सुन्दर उदाहरण मिले हैं जो स्वर्णाक्षरोंमें लिखे जाने योग्य हैं—

जब आततायी पिशाच एक जगह देवमूर्तियोंको तोड़ रहे थे तब एक साधुने उनसे कहा—'दुष्टो! ठाकुरजीने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मारना हो तो हमें मारो।' सुना जाता है कि इतना कहकर साधु अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर उनसे भिड़ गया। साधु अकेला था। आततायियोंकी संख्या अनगिनत थी। कहते हैं कि दुष्टोंने उस महात्माको पेड़में बाँध दिया और उसके शरीरके एक-एक भागके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसी प्रकार एक दूसरे साधुने कलमा पढ़ने और मुसल्मान बननेसे दृढ़तापूर्वक इनकार किया तब उसे दुष्टोंने जीवित ही आगमें झोंककर जला दिया!!

उस दिन हिंदू महासभाके अधिवेशनमें श्री एन० सी० चटर्जी महोदय सुना रहे थे कि पूर्व-बंगालकी वयोवृद्धा असंख्य माताओंने धर्म-परिवर्तन स्वीकार नहीं किया और वे हँसती-हँसती आततायियोंके हाथों मर गयीं। कई युवती देवियोंने आगमें कूदकर अपने सतीत्वकी रक्षा की। ये सभी पुण्यप्राण व्यक्ति धन्य और पूजनीय हैं। ऐसी घटनाओंका पूरा-पूरा पता लगाकर उन्हें पुस्तकाकार पूरे विवरणसहित प्रकाशित करना चाहिये। धर्म-रक्षाके लिये आत्मबलिदान करनेवालोंका यह इतिहास हिंदूजातिमें नवीन स्फूर्ति और तेज उत्पन्न करनेवाला होगा।

हाँ, नीतिकी दृष्टिसे, यदि कोई सज्जन आततायियोंको उचित शिक्षा देनेके लिये धर्म-परिवर्तनका या कोई

वीराङ्गना देवी विवाहका स्वाँग सजकर अपना उद्देश्य पूरा करें तो वह आपद्धर्मकी व्यवस्थाके अनुसार न तो दोष है और न अकर्तव्य ही है बल्कि समयको देखते, सुयोग्य अधिकारियोंके लिये इसकी आवश्यकता भी है। परन्तु यह है बड़े जोखिमका काम। यह उन्हीं कुशल पुरुषोंको करना चाहिये जो धर्मपालनमें दृढ़ हों और किसी प्रकारके कुसंगसे प्रभावित न होकर अपनेको तथा अपने धर्मको बचाकर रख सकें।



राष्ट्रीयताका मोह

आज हिंदू स्वराज्यके लोभसे राष्ट्रीयताके मोहमें पड़ा है, इसीसे वह आत्मविस्मृत है। और इसीसे वह विभ्रम-रत होकर 'स्व'को खोकर स्व-राज्य चाहता है। हमारे एक स्वर्गीय सम्मान्य मित्र, जो बहुत आगे बढ़े हुए सुधारक और कांग्रेसके नेता थे, कहा करते थे कि 'यदि सारा भारतवर्ष मुसल्मान हो जाय तो राष्ट्रीय दृष्टिसे क्या हानि है ?' वे कहते थे—'मनुष्य मनुष्य ही है, हिंदू हो या मुसल्मान। मुसल्मान यदि बेसमझ हैं और वे इस बातपर अड़े हैं कि हमारा हिंदुओंसे मेल नहीं होगा और इससे देशकी हानि हो रही है तथा देश स्वराज्यसे दूर हटा चला जा रहा है तो क्यों नहीं समझदार हिंदू देशवासियोंको मुसल्मानोंसे यह कह देना चाहिये कि चलो हम सब मुसल्मान हो जाते हैं। जब सब मुसल्मान हो जायँगे तो कोई विरोध रहेगा ही नहीं।' आज श्रीराजगोपालाचारी तथा राजा महेन्द्र-प्रताप भी शायद मुसल्मानोंसे मेल करके स्वराज्य प्राप्त करनेके लिये ही उन्हें बेटी देनेकी बात कहते हैं! यह राष्ट्रीयताका मोह नहीं तो और क्या है ?

सिद्धान्ततः हिंदू अपनेको मनुष्य ही नहीं मानता, वह तो अपनेको अखण्ड आत्मा मानता है। वह पहले अखण्ड चेतन आत्मा है, पीछे जीव है, पीछे मनुष्य है, उसके बाद भारतवासी है, तत्पश्चात् हिंदू है, फिर हिंदूमें वर्णाश्रमके अनुसार अमुक वर्ण तथा आश्रमका है। हिंदू कभी किसीका अहित चाहता ही नहीं, क्यों-कि उसकी तात्त्विक दृष्टिमें उसके भगवान्‌के अथवा उसके अपने आत्माके सिवा और कुछ है ही नहीं। वह किसे दूसरा समझे और किससे वैर करे ? पर विश्वात्मा होनेपर भी विश्वमङ्गलके लिये उसे अपने कर्तव्यका पालन करना है। वह जिस देशमें, जिस वर्णमें और जिस आश्रममें है, तदनुकूल यथायोग्य शास्त्रीय व्यवहार करता हुआ सबकी हित-कामनासे—'सर्वभूतहित'में रत रहकर—अपना कर्तव्यपालन करता है। इस कर्तव्य-पालनमें, आवश्यकतानुसार कभी उसे पुष्प-चन्दनसे पूजा करनी पड़ती है तो कभी योद्धा सजकर शत्रु बने हुए अपने ही स्वरूपसे संग्राम करना पड़ता है। उसे कर्तव्यका पालन करना है अनासक्त होकर, अकाम होकर—केवल लोकसंग्रहार्थ—केवल भगवत्प्रीत्यर्थ। उसका न किसीके साथ द्वेष है, न किसीसे मोह है। यही गीताकी दिव्य शिक्षा है और यही हिंदू-संस्कृतिका व्यावहारिक जीवन है। इस कर्तव्य-पालनमें वह कभी 'मृदूनि कुसुमादपि' होकर व्यवहार करता है तो कभी उसे 'वज्रादपि कठोर' होकर काम करना पड़ता है। जो माँ स्नेहार्द्र हृदयसे बच्चेके सुकुमार मृदुवदनपर अपने कोमल कर फिराती है, वही माँ आवश्यक होनेपर बच्चेके फोड़ेको जर्राहसे चिरवाती भी है। इसमें उसका प्यार ही काम करता है; उसमें द्वेषकी कहीं कल्पना भी नहीं होती। इसी प्रकार हिंदूको शास्त्रानुसार धर्मसम्मत क्रिया करनी पड़ती है और करनी पड़ती है सहर्ष, कर्तव्यबुद्धिसे, परम आह्लादके साथ—न कि निरुपाय होकर। इसीसे वह भगवत्सेवाके साथ

विश्व-सेवा करता है। बुद्धका वैराग्य जितना लोकसंग्रहके लिये लाभदायक है, उससे भी कहीं अतुलनीय रूपसे अधिक श्रीकृष्णका दुष्ट-संहार लोक-संग्रहके लिये लाभदायक और आवश्यक है। रोगके अनुसार ही दवा होती है। अवश्य ही दवा करते समय डाक्टरका स्पष्ट और अनन्य उद्देश्य एक ही होना चाहिये—रोगका नाश। जैसे डाक्टर रोगनाशके लिये कड़वी-से-कड़वी दवा देता है और मनचाहे भोगोंसे रोगीको बलपूर्वक दूर रखता है, इसी प्रकार 'रोगनाश'की इच्छासे ही हिंदू किसीको दण्ड देता है। वह दण्ड देते समय न तो दयाके स्थानमें क्रूरता ग्रहण करता है और न प्रेमका पवित्र स्थान द्वेषको सौंपता है।

भगवान् कोसलेन्द्र श्रीरामचन्द्र राक्षसराज रावणके साथ संग्राम करना चाहते हैं। रावण रथारूढ है—भगवान् रामचन्द्र विरथ—पैदल हैं। यह देखकर विभीषणको दुःख होता है और वह कहता है—

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥

इसके उत्तरमें भगवान् श्रीरामचन्द्र कहते हैं—'मित्र विभीषण! जिस रथसे विजय प्राप्त होती है, वह रथ दूसरा होता है और वह मेरे पास है।' सुनिये उस रथका स्वरूप भगवान्‌ने यह बताया था—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजन सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

'शूरता और धैर्य उस रथके पहिये हैं; सत्य और शील उसकी ध्वजा-पताका हैं; बल, विवेक, इन्द्रियदमन और परहित—ये चार उस रथके घोड़े हैं, जो क्षमा, कृपा, समतारूपी रस्सीसे जुड़े हुए हैं; भगवद्भजन उसका चतुर सारथी है; वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है; दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है और श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है; निर्मल और निश्चल मन तरकसके समान है और उसमें शम, यम, नियम आदि बहुत-से बाण भरे है। और विप्र-गुरु-पूजन अभेद कवच है। इसके समान विजयका दूसरा कोई साधन नहीं है। मित्र! जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ है, उसके कहीं कोई शत्रु ही नहीं है, जिनपर उसे विजय प्राप्त करनी हो। धैर्यबुद्धि सखा विभीषण! दूसरे शत्रुओंकी तो बात ही क्या, जिसके पास ऐसा रथ होता है, वह वीर संसाररूप शत्रुपर भी विजय प्राप्त कर सकता है।'

असलमें आज जो हिंदू पराजित और परतन्त्र है, परमुखापेक्षी और पतित है, इसका कारण यही है कि उसने इस धर्ममय महान् विजय-रथको खो दिया है। उसे धर्म और ईश्वरके प्रति उपेक्षा हो गयी है और वह भीतरी शत्रुओंको बढ़ाता हुआ ही बाहरी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना चाहता है, जो उसका प्रमाद है। भगवान् श्रीरामके पास यह रथ था, इससे उनका कोई शत्रु था ही नहीं, जिसपर उन्हें विजय प्राप्त करनी हो। असली शत्रु तो हमारे अंदर बसते हैं और वही बाहर भी हमें सदा परास्त करते रहते हैं। भीतरी शत्रुओंका विनाश हो जानेपर बाहर कोई शत्रु रहता ही नहीं। फिर तो किसीको कभी दण्ड देना पड़ता है तो वह (इस विजयरथमें सवार रहकर ही) उसके हितके लिये ही होता है, और उससे उसका होता भी है

कल्याण ही। यही 'पापीसे नहीं, पर पापसे घृणा करने'की नीति है। ऐसा महानुभाव पापीको नहीं मारता, उसके पापको मारता है। और इसके लिये कभी पापका आश्रय देनेवाले पापी-शरीरसे उसका वियोग कराना पड़े तो उसे भी वह सानन्द करवाता है। अर्जुनको यही तो मोह था कि वह द्रोण, भीष्म, कर्णादिको कैसे मारे? भगवान् श्रीकृष्णने उसका मोह दूर किया। जिन भीष्म, द्रोण, कर्णादिके सहारे दुर्योधनरूपी पाप-वृक्ष फूलता फलता और उत्तरोत्तर बढ़ता है, उन भीष्म-द्रोणादिके शरीर भी नाश करने योग्य हैं और यदि वे सीधे संग्राममें नाश नहीं किये जा सकते तो 'विषस्य विषमौषधम्'की भाँति उन्हें कौशलसे—शिखण्डीको सामने रखकर, अश्वत्थामाके मरणकी सूचना देकर और पृथ्वीमें रथके पहिये धँसनेपर नष्ट करना होगा। और ऐसा करते समय भी भीष्म-द्रोणादिके प्रति भक्ति-श्रद्धा अक्षुण्ण बनाये रखना होगा। उनसे द्वेष तथा वैर तो होगा ही नहीं। उन्हें मारते समय भी उनके चरणोंमें बाण मारकर प्रसंगानुसार बाणोंके द्वारा पदवन्दना करनी होगी और बदलेमें मस्तकमें बाणोंका प्रहार सहकर उनका आशीर्वाद ग्रहण करना होगा; परन्तु वे जब पापको आश्रय देते हैं, तब उनके पाप बढ़ानेवाले शरीरको पाप-नाश तथा धर्मके संस्थापनके लिये छल, बल और कौशलसे भी नाश करना होगा। अर्जुनने यही किया, पर किया लोक-संग्रहार्थ—भगवत्प्रीत्यर्थ, किसी और आकाङ्क्षा-कामनासे नहीं, किसी द्वेष या वैरसे नहीं। इसीलिये भगवान्ने उसको पहले ही समझा दिया था कि 'तुम अध्यात्म-चित्तसे समस्त कर्मोंको मुझमें निक्षेप करके निराशी, निर्मम और विगतसंताप होकर युद्ध करो।' (गीता ३। ३०)

अंदर कोई शत्रु न रहे, अतः बाहर भी शत्रु न रहें। धर्ममय रथपर आरूढ़ रहा जाय और बाहरसे शत्रुताका व्यवहार करनेवालोंके साथ सफल अभिनेताके रूपमें शत्रुका-सा व्यवहार करके उसके कल्याणके लिये उसके शरीरको दण्ड दिया जाय। हिंदू-शास्त्रमें शत्रुकी यही व्याख्या है और यही शत्रुजयका प्रकार है। इसमें धर्ममय विजयरथपर सदा आरूढ़ रहनेपर भी प्रसंगानुसार बाहरी शस्त्रकी आवश्यकता पड़ती है और धर्म-सम्मत प्रणालीसे आततायीके प्रति उसका व्यवहार करना ही कर्तव्य-पालन है। हिंदूको केवल युद्ध-प्रसंगमें ही नहीं, सर्वत्र यथायोग्य और यथाप्रसंग शास्त्रीय रीतिसे अपना धर्म-सम्मत कर्तव्य पालन करना है। तभी वह हिंदू रह सकता है। कर्तव्यको भूल गया तो उसने हिंदुत्वको खो दिया और जब हिंदुत्व ही नहीं रहा—'स्व' ही चला गया, तब 'स्वराज्य' कैसा।

यदि व्यावहारिक दृष्टिमें भी मानव-मानव सभी एक हैं, तब भारतवासी मानवपर ब्रिटेनवासी मानवका राज्य रहे, तो इसमें क्या आपत्ति है? फिर क्यों अपनेको पराधीन माना जाय? क्यों ब्रिटेननिवासियोंको परदेशी समझा जाय? भूखण्डकी सीमाका निर्धारण भी तो किसी ऐसी भावनासे होता है कि यह हमारा है, यह पराया। जब 'हम' और 'पर' ही नहीं, तब हमारा-पराया कहाँसे होगा? फिर तो स्व-राज्यका अभिलाष और आन्दोलन ही व्यर्थ है। और यदि ऐसा नहीं है तो फिर भारतवासियोंको अपने भारतीयत्वकी रक्षा करते हुए ही भारतीय स्वराज्यकी स्थापना करनी होगी। भारतीयत्वको खोकर भारतीय स्वराज्यकी कल्पना हास्यास्पद है और न वह भारतके लिये वाञ्छनीय ही होनी चाहिये। आज भारतवासी भारतीयत्वको खोकर स्वभावगत ईश्वर-विश्वास, संयम, नियम, तप, प्रेम आदि गुणोंको मिटाकर भारतीयताके भस्मावशेषपर भारत राष्ट्रका निर्माण और भारतीय स्वराज्यकी नींव रखना चाहते हैं, यही उनका राष्ट्रीयताका मोह है। और इससे जबतक छुटकारा नहीं मिलेगा, तबतक भारतका यथार्थ श्रेय नहीं होगा।

अब पूर्व-बंगालकी घटनाओंको लेकर जो कुछ हो

रहा है, उससे भी अनुचित लाभ उठाकर हमारे सुधारक भाई भारतीयत्वके विनाशमें लग रहे हैं। एकताके नामपर खान-पानका संयम मिटाया जा रहा है, धार्मिक मर्यादाको नष्ट किया जा रहा है और प्रकारान्तरसे दु:खोंके नये-नये बीज बोये जा रहे हैं। यहाँ तक कि भगवान्‌के सम्बन्धमें भी वे लोगोंमें भ्रम फैला रहे हैं। हमारे एक कार्यकर्ता पूर्व-बंगालसे लिखते हैं---धर्मविमुखताकी सीमा पार हो चुकी। मुझे कभी-कभी काँग्रेसी युवक-युवतियोंके साथ काम करना पड़ता है। न जाने वे इतने नास्तिक क्यों हो गये हैं? बापू (श्रीगाँधीजी) का जहाँ भगवान्‌में अडिग विश्वास और श्रद्धा पाता हूँ वहीं उनके अनुयायियोंमें घोर नास्तिकता पाकर स्तब्ध रह जाता हूँ। क्या भगवान्‌में विश्वास-श्रद्धाके बिना ये लोग मानवताकी सच्ची सेवा कर पायेंगे? मुझे तो डर है कि कहीं भोले-भाले लोगोंमें यह भयङ्कर नास्तिकताका रोग बढ़ाकर उनका जीवन और भी संकटापन्न न बना दें।'

स्वयं गाँधीजी बंगालकी हिंदू-महिलाओंको समझाते हैं कि 'यदि आपलोग हरिजनोंको न अपनावेंगी तो आपके भाग्यमें और विपत्ति लिखी है (मानो यह विपत्ति इसीलिये आयी हो---फिर वहाँके हरिजनों-पर किस लिये आयी?) आपको प्रतिदिन अपने साथ भोजन करनेके लिये एक-एक हरिजनको बुलाना चाहिये। यदि आपकी आत्मा इसको न मानती हो तो कम-से-कम भोजन करनेसे पहले अपना जल और भोजन हरिजनसे स्पर्श तो करा ही लेना चाहिये। ऐसा करनेसे जातिपाँतिके बनावटी विभेदोंसे विभिन्न वर्णोंमें जो खाई खोदी गयी है, उसे पाटनेमें सहायता मिलेगी।'

पता नहीं, हरिजनोंके साथ न खानेसे इस बंगालके भीषण अत्याचारका क्या संबन्ध है। यदि ऐसे ही खाई पाटनी हो तो सारे हिंदू मुसल्मान बनकर तमाम खाई आज ही पाट सकते हैं। ईश्वर एक है ही, और सारे धर्म भी महात्माजीके मतानुसार समान ही हैं! अस्तु,

उपर्युक्त बातोंसे आजकी मनोवृत्तिका पता लगता है। इन लोगोंमेंसे अधिकांश सच्चे मनसे भारतका कल्याण चाहते हैं। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। पर चाहते हैं भारतीयत्वको खोकर! पता नहीं, इससे कैसे भारतका कल्याण और समुत्थान होगा! यही राष्ट्रीयताके मोहका रोग है। जिसके शिकार होनेवाले लोगोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी चली जा रही है। भगवान् इस रोगसे भारतको शीघ्र मुक्त करें।

प्रेममें ही सबका कल्याण है

यह वस्तुत: बड़े ही दु:खका विषय है कि आज हिंदुस्थानमें हिंदू-मुसल्मान एक दूसरेके विश्वासी बन्धु, मित्र, सहायक और सेवक न होकर परस्पर अविश्वाससे भरपूर पराये, शत्रु, संहारक और विनाशक बने हुए हैं। यह दोनोंके ही लिये महान् अनिष्टकर प्रसंग है। राजनीतिक लाभके उद्देश्यसे मियाँ जिन्ना-सरीखे नेताओंकी कुटिल नीतिका यह भीषण परिणाम है। जीव न हिंदू है, न मुसल्मान; वह अपनी कर्मपरम्परासे कर्मफल-भोगके लिये मानव-शरीरमें आता है और कर्मफल भोगनेके साथ ही नवीन शुभाशुभ कर्मोंका बड़ा भारी सञ्चय लेकर चला जाता है। फिर नाना योनियोंमें उन्हीं अतीतकालके कर्मोंके अनुसार फल भोगता है। परस्पर द्वेष और वैरको लेकर जिनका जीवन जाता है, वे यहाँ तो शान्ति पाते ही नहीं, अपने द्वेष तथा वैरजनित कुकर्मोंके कारण अगले जन्मोंमें भी सुख-शान्तिसे वञ्चित ही रहते हैं। मानव-जन्मकी इससे अधिक विफलता और क्या होगी। आज महात्मा गाँधी इसीलिये पूर्व-बंगालमें गाँवोंमें पैदल घूम रहे हैं कि

किसी प्रकार दोनों जातियोंके हृदयोंमें प्रेमका प्रादुर्भाव हो। वे बड़े आशावादी हैं, इसलिये आशाको साथ लेकर ही चल रहे हैं। यदि भगवत्कृपासे उनकी आशा पूर्ण हो गयी तो मानव-जातिका बहुत बड़ा कल्याण होगा। यद्यपि जबतक लीगी नेताओंका हृदय नहीं बदलता, तबतक एक बार महात्माजीके प्रभावसे गाँवोंके मुसल्मानोंमें सद्भाव पैदा होनेपर भी उसके स्थायी होनेमें सन्देह ही है। महात्माजीने एक पत्रमें लिखा है-—'इस बारका काम मेरी जिन्दगीमें सबसे ज्यादा अटपटा काम है। 'मार्ग सूझे नहिं घोर रजनीमें, निज शिशुको संभाल—मेरा जीवन पंथ उजाल'—इस भजनको आज मैं सौ फी सदी वाजिब तौरपर गा सकता हूँ। मुझे याद नहीं पड़ता कि मेरे रास्तेमें ऐसा अँधेरा पहले कभी आया हो। और रात लंबी दिखायी पड़ती है। संतोष सिर्फ यह है कि मैं न तो हारा हूँ और न नाउम्मेद हुआ हूँ। जो होना होगा, सो होकर रहेगा। खयाल है कि यहीं करना और यहीं मरना। 'करने'का मतलब यह है कि या तो हिंदू-मुसल्मान दोस्तकी तरह रहने लग जायँ, या इस कोशिशमें मैं मर मिटूँ। यह काम कठिन है। 'हरि करे सो होय !'

इन वाक्योंमें गाँधीजीके हृदयकी तड़पनका पता लगता है। सचमुच कोई भी साधुहृदय पुरुष यह नहीं चाह सकता कि हिंदू-मुसल्मान आपसमें लड़ें। असलमें मुसल्मान-जनतामें सभी बुरे नहीं हैं। बुराईकी जड़ तो वे नेता हैं जो अपने राजनीतिक उद्देश्यकी सिद्धिके लिये बेचारे नासमझ लोगोंको धर्मके नामपर भड़काकर उनका अनिष्ट करवाते हैं। पर उनके लिये भी क्या कहा जाय। भगवान् उनको सुबुद्धि दें। परन्तु इतना सभीको स्मरण रखना चाहिये कि पापसे पापका उच्छेद नहीं हुआ करता। इसलिये पापके बदलेमें पाप करनेकी प्रवृत्ति किसीमें भी नहीं होनी चाहिये। यदि मुसल्मानोंने कहीं शिशु-हत्या की, अबलापर बलात्कार किया, किसीको बलात् धर्मान्तरित किया और निरीह निर्दोषकी हत्या की तो हिंदुओंको भी ऐसा करना चाहिये—यह विचार कदापि अभिनन्दनीय नहीं है। इन कुकृत्योंका ऐसे ही कुकृत्योंद्वारा बदला लेनेकी भावना सचमुच बड़ी भयङ्कर है। उचित तो यह है कि भगवान्से ऐसी करुण प्रार्थना की जाय कि वे सबको सुबुद्धि दें। किसीके भी हृदयमें ऐसी पापभावना न पैदा हो और किसीके भी द्वारा ऐसा कुकृत्य न बने। ऐसा करनेके साथ ही आवश्यकतानुसार बल-संग्रह भी किया जाय, जिससे अत्याचार करनेवाले मनुष्यका साहस टूट जाय। एक बार साहस टूट गया, कुकृत्य नहीं बन सका तो सम्भव है आगे चलकर उसकी मति भी बदल जाय। बलसंग्रह और आवश्यकता पड़नेपर बलप्रयोग करते समय भी मनमें द्वेष या वैर तो कदापि नहीं आना चाहिये।

संसारमें सबसे बड़ी चीज प्रेम है। मानवमात्रमें ही नहीं, जीवमात्रमें प्रेम होना चाहिये। फिर हिंदू-मुसल्मान तो सदियोंसे एक ही स्थानमें पड़ोस-पड़ोसमें बसते हैं। समझदार मुसल्मान तथा समझदार हिंदू भाइयोंको परस्पर प्रेम बढ़े, इसके लिये सच्चे मनसे सदा प्रयत्न करना चाहिये। मानव-जीवनको हिंस्र पशुओंकी भाँति मार-काटमें और पिशाच-राक्षसोंकी भाँति पापकर्मोंमें लगाये रखना बहुत बड़ी हानि है और बहुत बड़े दुःखका कारण है। इस बातको समझना चाहिये और परस्पर सौहार्द, प्रेम, विश्वास तथा अपनापन बढ़े, इसके लिये कोशिश करनी चाहिये। प्रेममें ही सबका कल्याण है।

मानवताके आदर्श

मेरठके समीप गङ्गाके तटपर गढ़मुक्तेश्वर नामक तीर्थस्थान है। यहाँ हर साल मार्गशीर्षकी पूर्णिमाको बहुत बड़ा मेला लगा करता है। लाखों नर-नारी गङ्गा-स्नानके लिये जाते हैं। यात्रियोंमें अधिकांश युक्तप्रान्तके पश्चिमी जिलों और पंजाबके पूर्वी जिलोंके हिंदू होते हैं। इस बारके मेलेमें हिंदू-मुसल्मानोंमें वहाँ भयानक झगड़ा हो गया। शुरुआत किसने की, इसका तो पता नहीं, परन्तु मारकाट दूर-दूर गाँवोंमें फैल गयी। बैल-गाड़ियोंपर जाते हुए यात्रियोंको जला दिया गया। स्टेशनपर गाड़ी रोककर मुसाफिरोंको लूटा-मारा गया। मेलेमें मुसल्मानोंपर हमला हुआ और पास-पड़ोसके गाँवोंमें, जहाँ मुसल्मानोंकी संख्या अधिक थी, पड़े हुए हिंदू तीर्थयात्री और मुसाफिरोंको मुसल्मानोंने बुरी तरह मारा। जहाँ ऐसी दुर्घटनाएँ हुईं, वहाँ कुछ ऐसी आदर्श घटनाएँ भी हुईं जो मनुष्यताका सिर ऊँचा करनेवाली हैं। इस महान् विपत्तिमें बहुत-से हिंदुओंने अपने प्राणोंको संकटमें डालकर अपने साथी मुसल्मानोंको बचाया और उन्हें सुरक्षित स्थानोंतक पहुँचाकर वास्तविक पुण्यका सञ्चय किया। मुसल्मानोंने भी हिंदुओंकी रक्षा की। मानवताके इन सच्चे आदर्शोंको धन्य है। इस प्रकारकी सद्भावना जितनी बढ़े, उतना ही देशका तथा हिंदू-मुसल्मानोंका मङ्गल है। सहयोगी 'आज'में प्रकाशित कुछ घटनाएँ यहाँ दी जाती हैं। अत्याचार करनेवालोंकी काली करतूतोंके प्रचारकी अपेक्षा ऐसी मङ्गलमयी घटनाओंका प्रचार अधिक वाञ्छनीय है।

(१)

मुसल्मान इन्सपेक्टरकी रक्षा

श्रीअमीर हसन खाँ २२-२३ वर्षके स्वस्थ सुन्दर युवक हैं। गढ़मुक्तेश्वरमें मार्केटिंग इन्सपेक्टरके पदपर नियुक्त हैं। ये उन बहुसंख्यक लोगोंमें हैं, जो डाक्टर देवदत्तके संरक्षणमें जिला-बोर्डकी डिस्पेन्सरी (अस्पताल) में उत्तेजित भीड़से रक्षित होनेके लिये एकत्र हुए थे। उक्त अस्पतालमें बीती बातोंका जिक्र डाक्टर देवदत्तके बयानमें बादमें आयेगा। भीड़ने अस्पतालको घेर लिया। श्रीअमीर हसन और उनके साथी छतपर थे। रक्षाकी कोई आशा नहीं रह गयी थी। इमारत जल रही थी। चारों ओर उत्तेजितोंकी भीड़ थी, जिसे पार कर निकलना उनके लिये सम्भव न था। इसी समय दफ्तरका चौकीदार प्रेमचन्द वहाँ पहुँचा। उसने आवाज दी—'बाबूजी! उतर आइये।' श्रीअमीर हसन खाँ छतपरसे कूदकर प्रेमचन्दके साथ हो लिये। अपरिचितोंकी भीड़मेंसे खाँ साहबको निकालता हुआ जब वह कस्बेकी ओर उन्हें ले गया तो लोगोंने देखकर पहचान लिया। लोगोंने इनका पीछा किया और वे प्रेमचन्दको ललकारने लगे। उसपर मार भी पड़ी। श्रीअमीर हसनको बचाकर वह अपने घर ले गया। लेकिन उसे भय बना था कि मैं उन्हें यहाँ सुरक्षित न रख सकूँगा। उसने उन्हें लाला घमण्डीलाल-के घर पहुँचाया। लाला घमण्डीलालने वह काम किया, जिसपर प्रत्येक हिंदूको गर्व होना चाहिये। उनके पास दो बन्दूकें थीं। उन्होंने दोनों भर लीं। स्वयं उन्होंने जातिवालोंकी अपने घर और उसमें आश्रय प्राप्त करने-वालोंकी रक्षाके लिये एक बन्दूक अपने हाथमें रक्खी, दूसरी उन्होंने श्रीअमीर हसन खाँको दे दी और कहा 'इन्सपेक्टर साहब! इसे आप रखिये, यदि मैं आपकी हिफाजत न कर सकूँ तो इससे आप अपनी हिफाजत कीजिये और यदि मेरी नीयतपर भी आपको शक हो जाय तो मुझे ही मारकर गिरा दीजिये।' यह बयान लाला घमण्डीलालका नहीं है। दुर्भाग्यसे इस वीर पुरुषका

वक्तव्य हम न ले सके, क्योंकि कुछ लोगोंकी रिपोर्टके आधारपर वे गिरफ्तार कर जेलकी हवालात भेज दिये गये थे। यह वक्तव्य स्वयं श्रीअमीर खाँका है। उन्होंने घटनाका वर्णन अंग्रेजीमें लिखते हुए, जिसका हिंदी आशय यह है, कहा—'लाला घमण्डीलालने मुझे गोलीभरी बन्दूक देते हुए कहा कि यदि मेरी नीयत भी बदल जाय तो इससे आप अपनी प्राणरक्षा करें।'

प्रेमचन्द मार्केटिंग आफसरका चौकीदार है। उसने न केवल श्रीअमीर हसन खाँको बचाया बल्कि उनके मित्र मेरठ जिला-बोर्डकी एजुकेशन-शिक्षा-कमेटीके चेयरमैन मुहम्मद सईद खाँको भी उसी प्रकार अस्पतालसे सुरक्षित ले आकर रक्खा। रास्तेमें उसपर मार पड़ी। उसने जोखम उठायी और अपने कर्तव्यका पालन किया। प्रेमचन्दने दंगेके समय कुल दस मुसल्मान पुरुषों और दो माँ-बेटियोंकी भी हिफाजत की।

(२)

मुस्लिम युवतीकी रक्षा

सत्तर वर्षके वृद्ध भूपसिंहने एक मुस्लिम युवतीकी रक्षाकी कहानी युवकोचित उत्साहसे और सम्पूर्ण गर्वसे वेगपूर्वक सुनायी। वर्णन लिपिबद्ध करना कठिन हो गया और लेखकको चार-पाँच बार भूपसिंहको रोककर विवरण दुहरानेके लिये कहना पड़ा। यथासम्भव उन्हींके शब्दोंमें घटनाका वर्णन इस प्रकार है—चौदस-वाले रोजको जुमा दिन था। मैं घरपर अकेला था। बाहर सायबानमें नौकर था। मैं हुक्का पी रहा था। रातके कोई तीन बजे होंगे। बाहरसे किसीने आवाज दी 'ताऊ'। आवाज किसी लड़कीकी थी। मैंने कहा 'कौन?' वह छिपकर घरमें आ गयी। बोली, 'ताऊ! मेरी जान बचाओ, मैं छुट्टे खाँकी लड़की हूँ।' मैंने कहा, 'तू कहाँसे आयी है?' उसने कहा, 'मैं गङ्गाजीसे आ रही हूँ। घर गयी थी। वहाँ कोई नहीं है। फिर मैं नाइयोंके मुहल्लेमें गयी। जैजैकारके नारे सुनकर मेरा कलेजा काँप गया। मै वहाँसे भागी और छोटे बाजारके रास्ते यहाँ पहुँची। तुम्हारी खाँसीकी आवाज सुनकर चली आयी।' लड़की मेरे पैरमें पड़ गयी। मैंने उसे ढाढ़स दिया और कहा 'डरो नहीं। तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता।' मैंने उसे कोठरीमें बंद कर दिया। बाहरसे साँकल दे दी। फिर मैं तम्बाकू पीने लगा। सुबह उसकी टट्टीका बन्दोबस्त किया। कहती थी 'ताऊ! तुम कहीं मत जाओ, यहीं रहो।' मैंने उसे खानेको कहा। आधी रोटीसे ज्यादा खा न सकी। लड़की बहुत घबड़ा गयी थी। दो रात एक दिन मेरे घर रही। दूजको सुबह उसे लेकर मैं थाने गया। वहाँ छुट्टे खाँ और उसके खानदानके लोग मौजूद थे। लड़की चिल्लाई 'बप्पा!' वह बापके गले लिपट गयी। मैं वापस चला आया।'

(३)

हिंदू दूकानदारकी उदारता

बुलन्द खाँ गढ़मुक्तेश्वर थानेका कान्स्टेबल है। बस्तीमें रहता था। दो कन्याएँ, एक बालक और वृद्धा पत्नीका परिवार है। पिता-पुत्र बचे हैं। पत्नी और बच्चियोंकी खबर नहीं। खोया-खोया-सा मुर्दनी शकल लिये किसी प्रकार चलता फिरता है। सूरतपर न हँसी है और न आँखोंमें कोई आशाजनक चिह्न ही है। निर्लिप्त-सा निर्जीव दिखायी पड़ता है। उसका अनुभव बहुत हृदयद्रावक है। बुलन्द खाँने कहा, 'मैं अपनी ड्यूटी पूरी कर घर पहुँचा। बलवा हो गया। घरमें किसीने आग लगा दी। मैं और मेरा लड़का जमशेद अली दोनों भाग खड़े हुए। रास्तेमें 'भगतजी' मिले, बोले 'लड़केको मुझे दे दो। तुम फिकर न करो।' उन्होंने उसे गोदमें ले लिया। मैं भागकर थाने पहुँचा। दूसरे दिन लड़का सही-सलामत मिल गया। दो बेटियाँ और

बीबीका पता नहीं लगता। बदनपरके कपड़ेके सिवा अब अपने पास और कुछ नहीं है।'

'भगतजी' अर्थात् छुट्टनलाल वैश्यने इस कथनकी पुष्टि की। कहा 'मैंने एक दिन और बच्चेको अपनी दुकानमें छिपाये रक्खा। जो कोई पूछता, मैं कह देता कि मेरे पास कोई मुसलमान नहीं। एक जख्मी मुसल्मान भी दूकानपर आ गये थे। मैंने उन्हें पानी पिलाया। वह बहुत घबड़ाये हुए थे। रुके नहीं, चले गये।

(४)

ठाकुरद्वारेके पुजारीका महत्कार्य

गढ़मुक्तेश्वरकी एक और घटना चिरस्मरणीय रहेगी। सरपंच सेठ किशोरीलालका पंचायती ठाकुरद्वारा है। उसमें राधाकृष्णकी मूर्ति है। उसीमें शिवजीका मन्दिर भी है। पासमें ही हजरतगंज पड़ता है, जहाँ मुसल्मानोंकी बस्ती है। उपद्रव शुरू होनेपर ठाकुरद्वारेके पुजारी नारायणदत्तने हजरतगंजके कोई ४५ मुसल्मानोंको वहाँ छिपा लिया। बाहरसे दरवाजा बंदकर आप खुद बाहर बैठ गये। बाहर देख भी रहे थे कि कहीं कोई हमला करनेवाला तो नहीं आया। दंगा बंद होनेके बाद ही उन्होंने मुसल्मानोंको जाने दिया। सेठ किशोरीलालने और अनेक मुसल्मानोंकी हिफाजत की और उन्हें अपने घरमें रक्खा। दुर्दैवसे किशोरीलाल भी गिरफ्तारकर लिये गये थे।

इसी प्रकार डाक्टर बख्तावर सिंहके घरके लोगोंने अल्लार खाँ और अल्लामेहर दोनों भाई तथा उनके घरके १६-१७ आदमियोंको हिफाजतसे रक्खा।

सम्पन्न अथवा प्रभावशाली लोगोंका जोखिम उठाकर दूसरोंकी रक्षा करना असम्भव या आश्चर्यकी बात नहीं पर अति साधारण व्यक्तियोंका ऐसा करना वस्तुतः वीरता है। अक्सर गरीब और निरक्षर साधारण व्यक्ति ही मरते या घायल होते हैं और बादमें उन्हींमेंके लोगोंपर मुकदमा भी चलता है। यह सब जानते हुए भी खतरा उठाकर दूसरे सम्प्रदायके पीड़ित लोगोंकी रक्षा करना साधारण जनोंके सद्गुणोंका ही परिचय देता है। गोशा चमार न्यादर गाँवका रहनेवाला है। उसने मेलेमें बुगड़ खाँकी बेटीको परेशान और दुखी देखा। वह भाग-भागकर इधर-उधर जा रही थी। उसने उसे साड़ी पहनाकर हिंदू बतलाकर उसके मैके पहुँचा दिया।

(५)

डाक्टर देवदत्तका आत्मबलिदान

डाक्टर देवदत्तकी बहादुरीकी कहानी लिखे बिना गढ़मुक्तेश्वरमें अल्पसंख्यकोंकी की गयी रक्षाकी कहानी पूरी नहीं हो सकती। डाक्टर देवदत्त हापुड़की जिला-बोर्डकी डिस्पेंसरीके इंचार्ज थे। बाबू नूरुद्दीन हापुड़के प्रमुख कांग्रेस-कार्यकर्ता और सम्मानित नागरिक थे। डाक्टर देवदत्तने नूरुद्दीन साहबकी हिफाजतकी खास कोशिश की। बहुत देरतक उसमें कामयाब भी रहे। हिंदुओंकी भीड़ने एक बार मान लिया था कि उनके अस्पतालमें कोई मुसल्मान नहीं है। डाक्टर साहबने अपने बेटेकी कसम खायी थी और कहा था कि मैंने किसी मुसल्मानको छिपाकर नहीं रक्खा है।

डाक्टर देवदत्तके बयानका मुख्यांश इस प्रकार है—'दिनके ११ बजे मैंने कस्बेके उस भागमें आग लगते देखी जहाँ अधिकतर मुसल्मान रहते हैं। मुझे अपने मित्र बाबू नूरुद्दीनकी पत्नीकी चिन्ता हुई। मैं उनके मकानपर गया। मैंने वहाँ बाबू नूरुद्दीन, स्वामी श्रीनिवास और पण्डित हुकूमत रायको सड़कपर खड़े देखा। उन लोगोंने मुझसे पूछा, क्या करना चाहिये। मैंने कहा जहाँतक हो सके मुसल्मानोंको बचाइये। मैं स्वयं बाबू

नूरुद्दीनकी पत्नीको अपने निवासस्थानपर ले आया। बाबू नूरुद्दीन, मौलवी मुहम्मद कासिम, उनकी पत्नी तथा अन्य कुछ मुस्लिम-स्त्रियाँ मेरे घर आ गयी थीं। मिस्टर मुहम्मद सईद, मुंशी इस्माइल खाँ वगैरह पहलेसे मेरे पास रहे। उसी वक्त मार्केटिंग इंस्पेक्टर मिस्टर अमीरहसन खाँ भी वहाँ आये। जिला-बोर्डके कुछ मुस्लिम चपरासी और अमीन भी वहाँ आ गये थे। लगभग २५ मुसल्मान मेरे घरपर थे। मैंने घरके बाहर आकर देखा कि मछुओंके घरोंमें आग लगायी जा रही है। इतनेमें यात्रियोंकी बड़ी भीड़ मेरे पास पहुँची। उन लोगोंने मुझसे पूछा कि 'क्या यहाँ कोई मुसल्मान है?' मैंने अपने बड़े बेटे श्रीसच्चिदानन्द शिवाजीकी कसम खायी और कहा कि 'मेरे यहाँ कोई मुसल्मान नहीं है।' वे लौट ही रहे थे कि इतनेमें किसीने कहा कि घरमें मुसल्मान हैं। मैंने समझाया कि मुसल्मानोंकी हत्या करना देश और कांग्रेसको नुकसान पहुँचाना है। वे मेरी बात मानकर चले गये। पुनः कुछ अन्य लोग आ पहुँचे। मैं उनसे झगड़ रहा ही था कि किसीने मेरे घरके अंदर मुसल्मानोंको दिखाकर कहा कि मुसल्मान हैं। बात यह हुई कि घरके भीतर मुस्लिम या महिलाएँ बाहरकी बात सुनकर घबराने लगी थीं और बाहर इसकी आहट मिल गयी थी। भीड़ काबूके बाहर हो गयी। उसने मुझसे झगड़ा किया और कहा कि बंगालमें क्या हुआ? कुछ देरमें और आदमी भी आ गये। इसी बीचमें मार्केटिंग इंस्पेक्टर छतसे कूदकर प्रेमचन्दके साथ चले गये। थोड़ी देर बाद मेरठ जिला-बोर्डकी शिक्षा-कमेटीके चेयरमैन मुहम्मद सईद खाँ, बाबू नूरुद्दीनका छोटा पुत्र और साजिद घरसे निकलकर भागे। मुझे संतोष हुआ कि प्रमुख लोग बच जायँगे और उनके मेरे यहाँ न रहनेसे अब उपद्रवी मेरे घरपर हमला न करेंगे। लेकिन नहीं, उसी वक्त दरवाजेपर जोरका धक्का लगा। मैंने भीड़को समझाया कि प्रमुख मुसलमान लोग चले गये हैं और अब मेरे घरकी स्त्रियाँ ही रह गयी हैं। भीड़ने मेरे घरकी तलाशी लेना चाहा। मैंने कहा कि 'जबतक मैं जीवित हूँ मैं आपको घरमें घुसने न दूँगा।' वे मुझे धक्का देकर मेरे घरमें घुस गये। उन्होंने मुंशी इस्माइल खाँको देख लिया। इससे भीड़के लोग बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि मैंने झूठी कसम खायी है। उन्होंने मुझे मारा भी। मेरे हाथोंपर, सरपर चोट लगी। किसीने कहा कि 'यह हिंदू है इसे छोड़ दो।' चार-पाँच आदमी मुझे मेरे मकानके बाहर ले गये। इतनेमें जब भीड़को मालूम हुआ कि मैंने घरमें अधिक मुसल्मानोंको छिपा रक्खा था तो वे मेरे पीछे दौड़े। मेरे कुछ साथियोंने मुझे पासकी एक कोठरीमें छिपा दिया। भीड़ वहाँतक पहुँची और उसने कोठरीवालेसे मेरे बारेमें पूछा। उसने मुझसे कोठरीके बाहर निकल जानेको कहा। भीड़ मुझपर टूट पड़ी। इतनेमें कस्बेके कुछ लोगोंने मुझे देखकर पहचान लिया और मेरी जान बचा दी। वे मुझे अपने साथ ले गये। मुझे अपने घरकी स्त्रियोंकी चिन्ता हुई। मैंने दो आदमियोंसे उनका पता लगानेको कहा। पर सम्भवतः वे पता न लगा सके। मैं डिस्पेंसरीकी तरफ दौड़ा। दरवाजेपर मेरी हिम्मत टूट गयी। मैं भीतर न जा सका। शामको ४ बजे लाला घमंडीलाल बंदूक लेकर आये। उनके साथ मैं वहाँ गया। डिस्पेंसरी लाशोंसे भरी थी। उपद्रवियोंने मेरे घरभरके पूरे सामानको आगमें डालकर अपना क्रोध शान्त किया था।

(६)

प्राणरक्षाके आदर्श उदाहरण

रमाशङ्करको अपनी माताजीको गङ्गास्नान कराने ले जाना था। इतनेमें अरशद खाँ चौधरीकी हिफाजत करना जरूरी हो गया। उपद्रव तेजीपर था और एक भी मुसल्मानका सड़कोंपर रहना खतरेसे खाली न था।

अरशद खाँको रमाशङ्करने कोठरीमें बंद कर दिया और ऊपरसे ताला लगा दिया। दो दिन बाद वापस आकर कोठरी खोली। अरशद खाँ सही-सलामत घर पहुँचे।

दंगा शुरू होनेपर मजीद खाँ अपनी लकड़ीकी टाल छोड़कर भाग गये। पासमें ही ठाकुर पीताम्बर सिंह रहते थे। उन्होंने उसकी हिफाजत की। लोग पूछने आते थे कि टाल किसकी है? एक ही नाम और पता सबको बतलाकर ठाकुर साहब कहते थे कि टाल एक चमारकी है। वह मेरठ गया है। कल आयेगा दूसरे दिन मजीद खाँको टाल ज्यों-की-त्यों मिली।

गढ़मुक्तेश्वरसे मेरठके रास्तेपर कुछ ही मीलपर दोताई नामका गाँव पड़ता है। वहाँके निवासी जमादार मंजर अहमद खाँ पेंशनर, कार्टर-मास्टर मुहम्मद यूसुफ खाँ पेंशनर, सखावत अली खाँ जमींदार और सूबेदार चुन्नी सिंहने बतलाया कि दोताईके ठाकुर गिरनसिंहने शौकत नामक लड़केकी रक्षा मेलेमें की। वहाँ उसे तीन दिन रक्खा। औरतोंने उसे अपने कपड़े पहनाकर छिपाकर रक्खा और उससे कहा कि कोई हमें पहले मार डालेगा तब तुम्हें मार सकेगा। इस गाँवसे होकर जितने भी हिंदू गये सबको रातमें हिफाजतसे रक्खा गया और उन्हें सही-सलामत पहुँचाया गया।

(७)

मुसल्मानोंके प्राणरक्षक हिंदू

किठौड़ मेरठ और गढ़मुक्तेश्वरके बीचमें पड़ता है। यहाँसे और आसपासके गाँवोंसे हजारों हिंदू और मुसल्मान मेलेमें गये हुए थे। अधिकतर मुसल्मान बचकर सुरक्षित अपने-अपने घर पहुँच गये।

प्रत्येक आदमीका सुरक्षित पहुँचना पृथक्-पृथक् रोचक कहानी है। जिन हिंदुओंने मुसल्मानोंको बचाना अपना धर्म समझा, उन्होंने मुसल्मानोंको थोड़ी देरके लिये हिंदू बना लिया। मुसल्मानोंने भी अपने पड़ोसी हिंदुओंपर पूर्ण विश्वास किया और उनके आदेशोंका ईमानदारीसे पालन करते हुए घर पहुँचे। ऐसे सैकड़ों आदमी मिले जिनकी रक्षा हुई है। दाढ़ी-मूँछ मुड़वा देना, जिनके सरपर बाल हों उनकी चोटी रखाकर बाकी सर मुड़वा देना, माथेपर चन्दन लगा देना और राम-नामका जप सिखला देना सुरक्षाके लिये काफी समझा गया और इस विधिसे निर्विघ्न रक्षा हुई भी। मेरठ जिलेके देहातके अधिकतर मुसल्मान धोती पहनते हैं। धोतीकी तहमद भी बाँधते हैं। इसलिये पोशाक बदलनेमें विशेष कठिनाई नहीं हुई। पर जहाँ कहीं इसकी कठिनाई उपस्थित हुई वहाँ हिंदुओंने अपने वस्त्रादि देकर भी अपने भाइयोंकी रक्षा करना आवश्यक समझा। आज भी वे मुसल्मान सगर्व घटनाका वर्णन करते हैं। आपद्-कालमें रक्षित होनेके लिये जो आवरण उन्होंने पहना था उसे उन्होंने उतार दिया है। जिन लोगोंने दाढ़ी मुड़वाना स्वीकार नहीं किया वे उसी रूपमें पहुँचाये गये। दाढ़ी छिपानेका उचित उपाय कर दिया गया था।

(८)

रामलीला-नाटकके सेक्रेटरीका कार्य

मेरठसे उत्तर १७ मीलपर भवाना कस्बा पड़ता है। इसकी आबादी लगभग १६ हजारकी है। यहाँसे रामलीला-नाटक-क्लब गढ़मुक्तेश्वर गया था। इसमें ११-१२ मुसल्मान कर्मचारी भी थे। नाटक-क्लबके सेक्रेटरी पण्डित चन्दनलाल दीक्षितपर इन्हें सुरक्षित पहुँचानेका उत्तरदायित्व था। उपद्रव और मारकाट शुरू होनेपर दीक्षितजीने मुसल्मानोंको खेमेमें स्त्रियोंकी भीड़में बैठा दिया। स्त्रियोंने उनकी हिफाजत की और जो कोई उनसे पूछता कि यहाँ कोई मुसल्मान है तो वे कह देतीं कि हम सब यहाँ औरतें ही हैं। इधर मत आना। लेकिन गुंडोंको शक जरूर हो गया था। वे टार्चसे ढूँढ़ने लगे। दीक्षितजीके एतराज करने और गङ्गाजल

लेकर कसम खानेपर वे यह कहकर चले गये कि 'हम कल आकर फिर देखेंगे।' चन्दनलाल दीक्षितने उन्हें धोती और गाँधी टोपी पहनायी, माथेपर चन्दन लगाया और मेलेसे बाहर सुरक्षित पहुँचाया। इसी बीच और दो-तीन मुसलमान क्लबके साथ आकर रहे और सब सुरक्षित वापस चले गये। नूरमुहम्मद, अब्दुलरज्जाक, बशीर और टुमनीने चन्दनलालके कथनका समर्थन किया।

(९)

डाक्टरकी पत्नीका असाधारण कार्य

सरधनाके मवेशियोंके डाक्टर एन० बी० सक्सेना स्वयं न बतला सके कि उनके गाड़ीवान मजीद पिताका नाम बन्दूको उनकी पत्नीने किस तरह कहाँ छिपाकर रक्खा। एक बार नहीं दो-दो बार हजारोंकी भीड़ उनकी डिस्पेंसरीमें घुसी और कोना-कोना देखा, पर उन्हें कोई मुसलमान न मिल सका। डाक्टर साहबका कहना है कि भीड़को किसीने बतला दिया था कि डिस्पेंसरीमें एक मुसलमान है। इसलिये वे बार-बार जिद करते थे कि उसे निकाल दीजिये। डाक्टर सक्सेनाको गौकी कसम खानी पड़ी कि मैं पक्का हिंदू हूँ और मैंने गाड़ीवान मुसलमानकी हत्या कर दी है। इसका भीड़को बड़े मुश्किलसे विश्वास हुआ। फिर भी यदि वे दो बारकी तलाशीमें कहीं मजीदको पा जाते तो डाक्टरपर उनका जो क्रोध होता उसकी कल्पना की जा सकती है। मजीदकी रक्षाका श्रेय डाक्टर सक्सेनाकी पत्नीको है। डाक्टर सक्सेनाने बतलाया कि उपद्रव शुरू हो जानेपर हम इसकी कल्पना न कर सके कि हमारी सरकारी डिस्पेंसरीपर भी हमले हो सकते हैं। फिर भी मैंने मजीदको गाँधी टोपी और धोती पहनाकर रक्खा। एक दिन ऐसा ही बीता। दूसरे दिन ५०–६० पछाहों (जाटों) की भीड़ डिस्पेंसरीमें घुस आयी। मैंने अपनी पत्नीको इशारा कर दिया। उनसे पहले ही मैंने इसकी आशङ्का प्रकट कर दी थी। उन्होंने मजीदको छिपा दिया। पछाहे डिस्पेंसरीमें ढूँढ़कर हार गये पर उन्हें, जिसे वे अपना शिकार बतलाते थे, न मिला। मुझे गौकी कसम खाकर कहना पड़ा कि मैंने मजीदको मार डाला है। मुझे जानसे मार डालनेकी धमकी भी दी गयी। दूसरे दिन सायंकाल अँधेरा होनेपर मैंने उसे हिंदूके वेषमें मेलेके बाहर सुरक्षित पहुँचा दिया।

(१०)

ब्राह्मणद्वारा मुस्लिम युवककी रक्षा

सरधनेमें मालूम हुआ कि खाँ बहादुर मेहरबान अलीने किसी अधेड़ ब्राह्मणका हाल बतलाया है जिसने अपने एक मुसलमान मित्रके युवक पुत्रकी रक्षा धर्म समझकर की और अपने धर्मका पालन किया। उन्होंने उस लड़केको जो कोई उनसे पूछता, कह देते कि यह मेरा लड़का है। उपद्रवियोंने जब कहा कि यदि ऐसी बात है तो उसका हुक्का पीयो। तब ब्राह्मणने बिना हिचक हुक्का लेकर पीया और रास्तेभर ऐसा ही करते आये। ऐसी घटनाका वृत्तान्त अन्य स्थानोंसे भी मिला है।

(११)

हिंदू-स्त्रीकी सम्पत्तिकी रक्षा

मेलेमें मुसलमानोंकी दूकानकी रक्षा हिंदुओंद्वारा किये जानेके वृत्तान्त ऊपर दिये गये हैं। मेरठ शहरमें हमें एक मुस्लिम सज्जन मिले जिन्होंने एक हिंदूस्त्रीकी सम्पत्तिकी रक्षा की और उसे सुरक्षित उन्हें वापस किया। उनका नाम चौधरी काले खाँ है। उनके साथी मुहम्मद उमरने भी इसमें उनकी सहायता की।

विश्वकल्याणके लिये भगवदाराधनकी आवश्यकता

धर्मके अभ्युदय, अधर्मके नाश, प्राणियोंमें सद्भावना और विश्वके कल्याणके लिये धार्मिक अनुष्ठानोंकी, देवाराधनकी और भगवदाराधनकी बड़ी आवश्यकता है। इस विषयमें 'धर्मसंघ' और उसके संस्थापक महात्मा श्रीश्रीकरपात्रीजी महाराज जो स्तुत्य कार्य कर रहे हैं, उसकी तुलना और कहीं नहीं है। धर्मसंघके प्रत्येक सदस्यको धर्मकी उन्नतिके लिये प्रतिदिन भगवन्नामका जप करना पड़ता है, जो महान् कल्याणकारक है। सब लोगोंको 'धर्मसंघ' का सदस्य बनना चाहिये और स्वयं देवाराधन तथा भगवदाराधन करते हुए पूज्य स्वामीजीके सामूहिक कार्यमें तन-मन-धनसे सहयोग देना चाहिये।

इधर स्वामी नारदानन्दजीके उद्योगसे एक 'हिंदू-प्रार्थना-योजना' बनी है, जिसके द्वारा नियमित भगवत्प्रार्थनाका महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है। प्रार्थनाके तीन पद हैं, जिनमें एक 'जय जय सुरनायक' से आरम्भ होनेवाली श्रीरामचरितमानस बालकाण्डकी देवताओंद्वारा की गयी भगवान्‌की स्तुति है और दूसरी-तीसरी प्रार्थना निम्नलिखित है—

(२)

वह शक्ति हमें दो दयानिधे!
कर्तव्य-मार्गपर डट जावें।
पर-सेवा, पर-उपकारमें हम,
जग-जीवन सफल बना जावें ॥वह०॥
हम दीन-दुखी निबलों-विकलोंके,
सेवक बन संताप हरें।
जो हैं अटके, भूले भटके,
उनको तारें, खुद तर जावें ॥वह०॥
छल, दम्भ, द्वेष, पाखंड, झूठ,
अन्यायसे निशिदिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध सरल अपना,
शुचि प्रेम-सुधारस बरसावें ॥वह०॥
निज आन-बान मर्यादाका,
प्रभु ध्यान रहे, अभिमान रहे।
जिस देश-जातिमें जन्म लिया,
बलिदान उसीपर हो जावें ॥वह०॥

(३)

जगा दो भारतको भगवान।

बिहार जागे, उत्कल जागे, जागे बंग महान।
कर्नाटक गुजरात मराठा, सिन्ध बलोचिस्तान ॥
॥ जगा दो० ॥

काश्मीर, पंजाब, अवध, व्रज, प्रिय नैपाल, भुटान।
महाकुसल, मालव उठ बैठे, गरजे राजस्थान ॥
॥ जगा दो० ॥

मैं बंगाली, तू मद्रासी, इसका रहे न भान।
गंगा-यमुना सम मिल जावें, सब भारत-संतान ॥
॥ जगा दो० ॥

बाल, वृद्ध, युवकोंके मुखपर होवे मृदु-मुस्कान।
मिल करके सब सत्यभावसे करें प्रेमरसपान ॥
॥ जगा दो० ॥

ब्राह्मण हों तेजस्वी, त्यागी, गौतम-कपिल-समान।
तन्मय हो मृदु-स्वरसे गावें सामवेदका गान ॥
॥ जगा दो० ॥

क्षत्रिय हों राणा प्रतापसे रण-बाँके बलवान।
स्वतन्त्रता-हित करें निछावर हँस-हँसके निज प्रान ॥
॥ जगा दो० ॥

भामाशाह-समान वैश्य हों करें देश हित दान।
शूद्र बनें रैदास भक्तसे कबीरसे मतिमान ॥
॥ जगा दो० ॥

सावित्री, सीता, दमयन्ती फिरसे प्रगटें आन।
दुर्गावती लक्ष्मिबाईकी चमके फिर किरपान ॥
॥ जगा दो० ॥

बालक ध्रुव-प्रह्लादसदृश हों धरें तुम्हारा ध्यान।
वीर हकीकत-सम हो जावें, धर्म-हेतु बलिदान ॥
॥ जगा दो० ॥

इस प्रार्थना-योजनामें दस उपदेश और दस प्रतिज्ञाएँ हैं जो बहुत सुन्दर हैं। दस प्रतिज्ञाएँ ये हैं—

(१) मैं आजसे अपने जीवनके नित्यके व्यवहार तथा रहन-सहनमें सादगीका ध्यान रखता हुआ, हिंदू-धर्म, हिंदू-संस्कृति, हिंदू-वेष-भूषा एवं स्वजाति तथा स्वदेश-प्रेमको अपनाऊँगा।

(२) अपने परिवार एवं ग्राम-नगरमें अपनी पवित्र राष्ट्र-भाषा हिंदीका प्रचार करता हुआ अपने निजी व्यवहारमें भी उसी भाषाके शब्दोंका यथाशक्ति प्रयोग करता रहूँगा।

(३) आजसे मैं अपने जीवनपर्यन्त श्रद्धा और पवित्र भावनासे नित्य प्रति १५ मिनट सर्वशक्तिमान् ईश्वरका स्मरण अथवा गीता, रामायण आदि किसी धर्मग्रन्थका १५ मिनट पाठ किया करूँगा।

(४) आजसे सर्वदा दीन-दुखी, निर्बलों, अनाथों, असहायों तथा हिंदुओंमें पतित कहे जानेवाले भाइयोंकी जीवनभर यथाशक्ति प्रेम और दयाके साथ सहायता करता रहूँगा।

(५) हिंदुओंके मन्दिरों, उत्सवों, मेलों, तीर्थों, जुलूसों एवं अन्य सार्वजनिक सभाओंके समय हिंदुओंकी माताओं, बहिनों, बच्चों, अपाहिजों, वृद्धों और खोये हुए प्राणियोंकी पूर्ण रक्षा और सहायता करता हुआ हिंदू-धर्मपर होनेवाले किसी भी आघातका धैर्य तथा वीरतासे विरोध करनेको तत्पर रहूँगा।

(६) भगवान् राम, कृष्ण, वेद अथवा हिंदू-संस्कृतिके उपासक प्रत्येक हिंदूको, चाहे वह किसी भी वर्ण या जातिका हो, मैं अपना भाई समझूँगा।

(७) किसी अवसरपर अपने हिंदू-धर्म तथा पवित्र देश भारतके किसी भी अङ्गपर किसी प्रकारका आघात होनेपर इन दोनोंकी प्राण-पणसे रक्षा करूँगा।

(८) आजसे मैं किसी भी ऐसे उपदेशक, प्रचारक, कवि या लेखककी ऐसी पुस्तकों, कविताओं और भाषणोंसे, जो कि हिंदू-धर्मके विरोधमें होंगे, पूर्णरूपसे सतर्क एवं सावधान रहूँगा।

(९) मैं आजसे जीवनभर जुआ, चोरी, मांस, नशा और दुराचरणसे यथाशक्ति दूर रहकर सदाचार, ब्रह्मचर्य एवं खेल, कूद, व्यायाम और आसनादिद्वारा स्वास्थ्य-रक्षाका विशेष ध्यान रक्खूँगा।

(१०) एक महीनेमें कम-से-कम एक दिन या सप्ताहमें कम-से-कम एक घंटेका समय दीनोंकी सेवा, हिंदी-प्रचार या अन्य किसी परोपकारमें लगाऊँगा।

प्रतिदिन सूर्यास्तके समय प्रार्थना की जाती है, जिसमें सात मिनट लगते हैं।

'धर्मसंघ' के सम्बन्धमें विशेष जानना हो तो मन्त्री, 'अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ', गङ्गातरङ्ग नगवा, बनारसके पतेसे और 'हिंदू-प्रार्थना-समिति' के बाबत प्रधान मन्त्री, 'हिंदू-प्रार्थना-समिति' हरवंश मुहाल, कानपुरसे पत्र-व्यवहार करना चाहिये। ये दोनों ही संस्थाएँ बड़ी सुन्दर और उपयोगिनी हैं तथा इनकी योजनाके अनुसार कार्य करनेपर हिंदू-संघटनके साथ ही सात्त्विक बल तथा दैवी सहायता भी प्राप्त हो सकती है, जो धर्मके अभ्युदय तथा हिंदू-संस्कृतिकी रक्षाके साथ ही विश्व-कल्याणके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

वनस्पतिका खतरा

(ले०—महात्मा गांधीजी)

ता० १४-४-४६ के हरिजनमें आपने वनस्पतिके बारेमें सरदार दातारसिंहजीके लेखका समर्थन किया था। उस लेखमें कई उपाय भी बताये गये थे। जिनपर अमल करनेसे यह बुराई दूर हो सकती है। लेकिन बुराई बढ़ ही रही है। पंजाब, अकोला, शेगाँव और कर्नूलमें वनस्पतिके नये कारखाने खोलनेकी इजाजत भी दी जा रही है। कम-से-कम यह तो बंद होने चाहिये। पंजाब-जैसे सूबेमें वनस्पतिको रँगकर बेचनेका नियम भी नहीं बनाया गया।

यह एक खतका निचोड़ है। 'वनस्पति' शब्द मैंने अवतरणमें रक्खा है। उसका पूरा नाम 'वनस्पति घी है', वनस्पति तो हमेशा अच्छी होती है। वनस्पति यानी फल, फूल, भाजीकी पत्तियाँ वगैरह। लेकिन जब वह दूसरी वस्तुकी जगह लेती है, तब जहर बन जाती है। वह घी नहीं है, न हो सकती है। जब होगी, तब मैं ही जोरोंसे कहूँगा कि घीकी कोई जरूरत नहीं है। किसी प्राणी या जानवरके दूधमेंसे जो चिकना पदार्थ पैदा होता है, वह घी या मक्खन है। उस घीके नामसे जो वनस्पति तेल, घी या मक्खनकी शक्लमें, या उसके नामसे बेचा जाता है, वह हिंदुस्थानके साथ किया जानेवाला एक बड़ा धोखा है, दगा है। हिंदुस्थानी व्यापारियोंका कर्तव्य है कि वे किसी भी शक्लमें घीके नामसे ऐसा दिखावा करके कोई तेल या पदार्थ न बेचें। किसी सरकारको तो ऐसा हरगिज नहीं करना चाहिये। हिंदुस्थानके करोड़ों लोगोंको न तो दूध मिलता है, न छाछ, न घी या मक्खन। नतीजा यह होता है कि लोग मरते जाते हैं, निस्तेज बनते हैं। ऐसा लगता है कि मनुष्यके शरीरको दूध और दूधसे बनी हुई चीजें जैसे दही, छाछ, घी, मक्खन वगैरहकी जरूरत है। इस बारेमें जो धोखा देता है, या इसे दरगुजर करता है वह हिंदुस्थानका दुश्मन बनता है।

नयी दिल्ली ६-१०-४६

हिंदू कौन ? हिंदू क्या करें ?

(प्रसिद्ध स्वामी श्रीविवेकानन्दजीके मननीय विचार)

(१)

हमें 'हिंदू' शब्द और हिंदू नामधारी प्रत्येक व्यक्तिको आलिङ्गन करना और अत्यन्त प्यार करना सीखना चाहिये। मेरी इस बातपर ध्यान दीजिये कि आप हिंदू कहलानेके तभी अधिकारी हैं, जब इस शब्दके श्रवणमात्रसे आपमें शक्तिकी विद्युद्-धारा प्रवाहित होने लगे। आप तभी हिंदू कहे जा सकते हैं, जब इस नामका कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी प्रदेशका हो, हमारी भाषा बोलता हो या कोई अन्य भाषा बोलता हो, तुरंत आपके लिये 'प्रियतम' और 'निकटतम' व्यक्ति बन जाय। आप तभी हिंदू, तभी हिंदू कहलानेके पात्र हैं, जब कि इस नामके किसी भी व्यक्तिका दुःख आपके हृदयको द्रवित कर देता हो और आपको ऐसा अनुभव होता हो, मानो आपका अपना बेटा दुःखमें पड़ा है। आप हिंदू तभी हैं, जब कि महान् गुरु गोविन्दसिंहजीकी भाँति आप हिंदुओंके लिये सब कुछ सहनेको तैयार हो जायँ। अपनी जन्मभूमिसे निर्वासित होकर, अपने आततायियोंके विरुद्ध लड़ते हुए, हिंदूधर्मकी रक्षामें अपना रक्त बहाकर, रणभूमिमें अपने बच्चोंका निधन देखकर—उस महान् गुरुके इस आदर्शको उन्हीं लोगोंने त्याग

दिया, जिनके लिये उन्होंने अपना और अपने प्रियतम एवं निकटतम प्राणियोंका रक्त बहाया—वह आहत सिंह शान्तिपूर्वक हटकर प्राणत्याग करनेके लिये दक्षिणको चला गया। पर जिन्होंने उसे कृतघ्नतापूर्वक त्याग दिया था, उनके विरुद्ध उसके मुँहसे एक भी अभिशापका शब्द नहीं निकला। यदि आप अपने देशकी सेवा करना चाहते हैं तो ध्यान दीजिये—आपमेंसे प्रत्येकको गोविन्दसिंह बनना पड़ेगा। आपको अपने देशवासियोंमें असंख्य दोष दिखायी देते हों, पर आप उनके हिंदू-रक्तकी ओर ध्यान दीजिये। वे वे देवता हैं, जिनकी आपको पहले पूजा करनी चाहिये। शक्तिशाली सिंह गोविन्दसिंहजीका अनुकरण कीजिये। ऐसा ही मनुष्य हिंदू नाम धारण करनेके योग्य है। हमारे सामने सदा ऐसा ही आदर्श होना चाहिये। नकल और वह भी कायरताकी नकलसे कभी उन्नति नहीं होती। वास्तवमें तो यह भयंकर पतनका चिह्न है। जब मनुष्यके मनमें अपने ही प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी तब समझ लेना चाहिये कि वह विनाशकी अन्तिम सीढ़ीपर आ गया है। मेरी ओर देखिये, मैं हिंदूजातिका एक तुच्छ प्राणी हूँ, फिर भी मुझे अपनी जातिका अभिमान है, अपने पूर्वजोंका गर्व है। अपनेको हिंदू कहनेमें मुझे गर्वका बोध होता है। मुझे अभिमान है कि आपके अयोग्य सेवकोंमें मैं भी हूँ। मुझे इस बातपर घमंड है कि मैं आपका देशवासी हूँ, जो ज्ञानियोंके वंशज हैं तथा संसारमें अद्वितीय महाप्रतापी ऋषियोंके वंशज हैं। अतः अपनेमें विश्वास रखिये और अपने पूर्वजोंपर लज्जित होनेके बजाय उनपर अभिमान कीजिये!

(२)

यूरोपमें राजनीतिक विचारोंसे राष्ट्रीय एकताका गठन होता है। भारतवर्षमें धार्मिक आदर्शोंसे राष्ट्रीय एकताका निर्माण होता है। भारतमें राष्ट्र उन्हीं लोगोंके संघका बन सकता है, जिनकी हृत्तन्त्री एक ही धर्मके झंकारपर बज उठती है। अतएव भावी भारतकी उन्नतिके लिये पहली शर्त होनेके नाते धार्मिक एकताकी एकान्त आवश्यकता है। हम देखते हैं, भारतमें धर्मकी इस एकीकरणकी शक्तिके आगे किस प्रकार जातिगत, भाषागत एवं समाजगत कठिनाइयाँ काफूर हो जाती हैं। हमारे जीवनका मूल स्रोत ही धर्म है। यदि इसका प्रवाह प्रखर, पवित्र और प्रबल बना रहा तो सब कुछ ठीक समझना चाहिये। यदि यह स्रोत निर्मल है तो राजनीतिक, सामाजिक, अन्य भौतिक दोष तथा देशकी दरिद्रता भी दूर हो जायगी। हमारे पराक्रम, हमारी शक्ति, बल्कि हमारे राष्ट्रीय जीवनका भी आधार धर्म ही है। वही हमारी जातिका जीवन है और उसे शक्तिशाली बनाना चाहिये। शताब्दियोंसे असंख्य आघातोंका सामना करनेमें आप इसीलिये सफल हो सके हैं कि आप धर्मको नहीं भूले थे। आप इसके लिये सब कुछ बलिदान कर देते थे। वास्तविक राष्ट्रीय बुद्धि यही है, राष्ट्रीय जीवन-धारा यही है। इसके सहारे चलकर आप यश और प्रतापको प्राप्त होंगे, और इसे त्याग कर मृत्युको! मरणके अतिरिक्त दूसरा परिणाम हो ही नहीं सकता। इस जीवन-स्रोतसे अलग होते ही आप अपनी सत्ताको खो बैठेंगे। मेरा यह कहनेका तात्पर्य नहीं है कि राजनीतिक एवं सामाजिक सुधारोंकी आवश्यकता नहीं है। मेरा अभिप्राय यह है कि अन्य बातें गौण हैं और धर्म मुख्य है। मैं चाहता हूँ, आप इस बातको अपने मनोंमें धारण कर लें। धर्मका आदर्श केवल सबसे ऊँचा ही आदर्श नहीं है, वरं, हिंदुओंके लिये तो काममें लगनेका भी वही एक साधन है। बिना इसको पोषित किये हुए किसी दूसरी दिशामें काममें लगना विपत्तिजनक होगा। अतएव भावी भारतके निर्माणमें हिंदूधर्मकी एकता ही पहली ईंट होगी। हम सबको यह सीख लेना चाहिये कि हम हिंदू, चाहे हम जिस नामसे भी पुकारे जाते हों,

कुछ समान विचारसूत्रोंसे बँधे हुए हैं और अब वह समय आ गया है जब कि अपने तथा अपनी जातिके कल्याणके लिये अपने आपसके झगड़ों एवं मतभेदोंको त्याग कर हम एक हो जायँ।

(३)

एक भारतीय विद्वान्ने मुझसे पूछा है कि हिंदू राष्ट्रका जीवन धर्ममें निहित करनेसे क्या लाभ ? अन्य देशोंकी भाँति इसको भी सामाजिक अथवा राजनीतिक स्वतन्त्रतामें क्यों न स्थान दिया जाय ? मैं भी गम्भीरतासे ही पूछता हूँ कि सहस्रों शताब्दियों-से विकसित हुई राष्ट्रीय संस्कृतिको छोड़ देना सहज है या कुछ शताब्दियोंसे आयी हुई विदेशी सभ्यता-को ? बात यह है कि अपने पर्वतीय उद्गमसे नदी अब हजारों मील नीचे चली आयी है। अब क्या यह अपने उद्गमस्थानको वापस जाती या ले जायी जा सकती है ? यदि यह कभी पीछे बहनेकी चेष्टा करेगी तो चारों ओर अपना जल व्यर्थ डाल-डालकर सूख जायगी। यदि हजारों वर्षोंका हमारा राष्ट्रीय जीवन ठीक नहीं रहा तो अब इसके लिये कोई उपाय नहीं है। और यदि अब हम एक नयी संस्कृतिमें डुबकी लगाना चाहेंगे तो केवल एक ही परिणाम होगा और वह यह कि हम डूब मरेंगे !

(४)

बल पुण्य है और दुर्बलता पाप है। यदि किसी धर्मकी शिक्षा देनी है तो 'अभयत्व' रूपी धर्मकी शिक्षा देनी चाहिये। हमें आवश्यकता है कि हमारी शिक्षाओंमें रजसूका प्रचण्ड वेग प्रवाहित हो रहा हो और सामने एक वीरका आदर्श हो। हममेंसे अधिकांश आज रोगी और अकथनीय दुर्बलताके शिकार हैं। पर देशको ऊपर उठाना है। श्रीमहावीर-की अभ्यर्थना और शक्ति-पूजाका प्रचार होना चाहिये। इसीमें आपका और देशका कल्याण है और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

(५)

आवश्यकता है कि हमारे रक्तमें गर्मी हो, स्नायुओंमें शक्ति हो। वे पक्के लोहे-से कठोर और उनकी मांसपेशियाँ मानो लोहेकी हों। अनुत्साहपूर्ण मुर्दा बनानेवाले विचारोंकी आवश्यकता नहीं है। अहिंसा ठीक है। पापका अप्रतिकार एक बड़ी बात है। ये सचमुच बड़े ऊँचे सिद्धान्त हैं। पर हमारे शास्त्रोंकी आज्ञा है—तुम गृहस्थ हो, यदि कोई तुम्हारे गालपर तमाचा जड़ता है और तुम उसको जैसेका तैसा बदला नहीं देते तो तुम पापी हो ! महाराज मनु कहते हैं—'जब कोई तुम्हें मारने आया हो तो उसको मारनेमें पाप नहीं है। चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो।' यह बिल्कुल ठीक है और ऐसी बात है, जिसे कभी भूलना नहीं चाहिये। वीरभोग्या वसुन्धरा है। अपने वीरत्वको बाहर लाओ, अपने शत्रुको जीतनेके प्रत्येक उपाय करो और संसारका भोग करो—तभी तुम धार्मिक हो। अन्यथा, यदि जिसके मनमें आ जाता है, वही तुम्हें लातोंसे ठोकर मारकर पददलित करता है तो यहाँ तो तुम्हारा जीवन नारकीय है ही, वहाँ भी ऐसा ही रहेगा। मेरे प्यारे सहधर्मियो ! तुमको मेरी यही सीख है। निस्संदेह किसीको हानि न पहुँचाओ और किसीपर अत्याचार न करो ! पर दूसरोंकी कुचेष्टाओंको चुपचाप सहन कर लेना पाप है। उसका तुरंत उन्हींके उपायोंसे बदला ले लेना चाहिये।

[स्वामीजीके पचासों वर्ष पहलेके उद्गार आज भी वैसे ही प्रभावोत्पादक और अभिनन्दनीय हैं। सं०]

देशकी वर्तमान परिस्थिति और हिंदुओंका कर्तव्य

कांग्रेसकी शिथिल नीति

अभी उस दिन कांग्रेसने गत छः दिसम्बरकी ब्रिटिश-व्याख्याको मानकर प्रकारान्तरसे प्रान्तोंके समूहीकरणके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है। यह कांग्रेसकी मुसलमानोंको खुश करने और उनके सामने घुटने टेककर उन्हें शामिल बनाये रखनेकी आत्मघातक शिथिल नीतिका एक और ज्वलन्त उदाहरण है। पर क्या लीगी मुसलमान इससे सन्तुष्ट होकर सम्मिलित हो जायँगे ? और हो भी गये तो क्या वे दूसरोंके हितोंकी रक्षाके लिये ईमानदारीके साथ काम करेंगे ? अबतककी उनकी वाणी, नीति और क्रियाओंको देखते ऐसी आशा नहीं की जा सकती। वे न तो कभी समस्त देशको अपना देश मानकर उसके हितकी दृष्टिसे काम करेंगे और न वे भारतमें ही नहीं, एशियाभरमें मुस्लिम-राज्यकी स्थापनाके प्रयत्नसे हटेंगे। इस प्रकारकी आशंकाके काफी सबूत हैं कि वे विधान-सम्मेलनमें सम्मिलित होकर स्वतन्त्र भारतका सर्वमान्य विधान बनानेमें निश्चय ही अड़चन डालेंगे, जो और भी बुरी बात होगी और मुस्लिम लीगके असहयोगकी अवस्थामें जो काम विधान-परिषद्में हो सकता था, फिर रोजकी काँव-काँवमें वह भी नहीं होगा।

मुस्लिम लीगके प्रमुख पत्र 'डान' ने कांग्रेसके द्वारा ब्रिटिश व्याख्याके स्वीकारपर लिखा है—'यह कांग्रेसकी केवल अवसरवादिता है, हृदय परिवर्तन नहीं है। दस करोड़ मुसलमानोंके प्रतिनिधियोंके न होनेसे विधान-सम्मेलनको एक तमाशा बनते देखकर कांग्रेस-नेताओंने रुख बदला है ! ब्रिटिश सरकारके वक्तव्यके सम्बन्धमें किसी प्रकारका भ्रम न होना चाहिये। वह इतना स्पष्ट है कि किसी शर्तके साथ उसे माननेकी कोई गुंजाइश ही नहीं। कुछ दिनों पहले कायदे-आजम मि० जिन्नाने अपने कराचीके भाषणमें जो शब्द कहे हैं, उन्हें बिना किसी गोलमटोल भाषा या शर्तके स्वीकार करना पड़ेगा। तभी लीग विधान-सम्मेलन-सम्बन्धी अपने निर्णयपर फिरसे विचार करेगी।' इसी प्रसङ्गमें उसने लिखा है कि 'जो कांग्रेसी शेर दहाड़ा करते थे, उन्हें आज चिड़ियोंकी तरह चें-चें करते देखकर किसे हँसी न आयेगी ?' इससे लीगी-मनोवृत्ति और उसकी चालका अनुमान लगाया जा सकता है।

कांग्रेसी नेता इस बातको भलीभाँति समझते और बराबर कहते भी हैं कि लीगके साथ मिलकर काम करना कठिन है, फिर भी वे स्वार्थ या मोहवश झुकते ही जाते हैं और ज्यों-ज्यों वे झुकते हैं, त्यों-ही-त्यों 'लाभसे लोभकी वृद्धि होती है' इस न्यायसे—मुसलमानोंकी माँगका क्षेत्र भी बढ़ता ही चला जाता है !

केन्द्रीय सरकार निर्बल रही और प्रान्तीय सरकारोंको मनमानी करनेका अधिकार रहा तो जहाँ-जहाँ मुस्लिम-सरकार होगी, वहाँ-वहाँ वही होगा, जो 'प्रत्यक्ष कार्रवाई'के नामपर कलकत्तेमें और पीछे पूर्व-बंगालमें हुआ।

केन्द्रीय सरकारकी असमर्थता

लीगी सदस्योंकी अडंगा-नीति और केन्द्रीय सरकारकी असमर्थतापर उस दिन सरदार पटेलने बम्बई-व्यापार-मण्डलकी सभामें भाषण देते हुए कहा था—

'मैं अपने अनुभव तथा प्राप्त प्रमाणोंसे कह सकता हूँ कि मुस्लिम लीगका ब्रिटिश शासकोंके एक वर्गके साथ अलिखित समझौता है।…… मध्यवर्ती सरकारमें शामिल होकर भी वे कांग्रेसके साथ असहयोग ही कर रहे हैं। कांग्रेसके प्रतिनिधि जो भी कार्य आगे बढ़ाना चाहते हैं, लीगी उसमें

बाधा डालते हैं। ऐसी दशामें कोई सरकार कैसे काम कर सकती है?

मध्यवर्ती सरकारका चाहे जो भी मूल्य हो, वह बंगाल, बिहार, बम्बई या किसी भी प्रान्तके शासनमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती। जान पड़ता है, प्रान्तीय स्वायत्त-शासनके अनुसार प्रान्तोंमें बेरोक-टोक दंगे होनेकी स्वतन्त्रता दे दी गयी है। आर्डिनेन्स-राज्यका समय समाप्त हो गया और केन्द्रीय सरकार शक्तिहीन है। वह सभी प्रान्तोंमें पुलिस और सेना नहीं भेज सकती। जहाँतक शान्तिकी व्यवस्थाका सम्बन्ध है, वहाँतक यह समझ लेना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार है ही नहीं।'

उपर्युक्त शब्दोंमें सरदार पटेलने स्पष्टरूपसे स्थितिका दिग्दर्शन करा दिया है, तथापि उनकी कांग्रेस अब भी उसी मोहमयी खुश करनेकी नीतिपर चल रही है। इससे तो उनका दिमाग और बढ़ेगा!

शान्तिकी आशा नहीं

इस स्थितिमें ऐसी आशंका करना अस्थानीय नहीं होगा कि अभी देशके सामने अन्धकारकी घटा ही छायी है, और वह उत्तरोत्तर घनी होती जा रही है। लीगकी जैसी रुख है और उसके द्वारा बाहर और भीतर जैसी भयानक कार्रवाइयाँ हो रही हैं, उसे देखते यह निश्चित है कि देशमें अभी शान्ति नहीं होगी। लीगी नेता बार-बार इस बातकी खुले शब्दोंमें घोषणा कर रहे हैं। उस दिन मियाँ गजनफर अली खाँने कराचीके एक भाषणमें कहा था कि 'मुसलमानोंकी पाकिस्तानकी माँग स्वीकार न की गयी तो उनके लिये भयंकर और भीषण मार्गके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता।'

ऐसी अवस्थामें हिंदुओंको अपनी स्थिति समझकर अपनी रक्षाका प्रबन्ध शीघ्र-से-शीघ्र अपने-आप कर लेना चाहिये। सरदार पटेलके शब्दोंसे और बंगालकी परिस्थितिसे यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय सरकार हिंदुओंकी रक्षाके लिये कुछ भी नहीं कर सकेगी! असलमें केन्द्रीय सरकारकी स्थिति स्वयं ही दयनीय है। न तो वह साहसपूर्वक मुसल्मानोंको छोड़ सकती है और न उनके साथ मिलकर शान्ति तथा न्यायके साथ अपना काम ही कर सकती है। वहाँ तो दो दलोंका अखाड़ा बन रहा है। जिनमें एक दल तो आया ही है दूसरेसे लड़ने और उसको परास्त करनेके लिये; और दूसरेको अपनी कमजोरीके कारण लड़ना पड़ रहा है, पर वह पद-पदपर हार मानता तथा घबराकर किंकर्तव्यविमूढ़-सा हुआ चला जाता है। रहे वायसराय महोदय, जिनके अधिकारमें प्रान्तोंको सैनिक-सहायता देना है, वे मुस्लिम-सरकारी प्रान्तोंमें अल्पसंख्यक हिंदुओंको बचानेके लिये सेना भेजेंगे, ऐसी आशा इस समय नहीं करनी चाहिये। लोगोंका तो यही अनुमान है कि मुस्लिम-लीगके साथ विशिष्ट ब्रिटिश अधिकारियोंका भीतरी सहयोगका सम्बन्ध है और उसीके बलपर लीग इस प्रकारकी कार्रवाइयाँ कर रही है।

जहाँ हिंदू अल्पसंख्यक हैं, वहाँ तो खतरेमें हैं ही, परन्तु जहाँ उनकी संख्या अधिक है, वहाँ भी कई कारणोंसे उनकी रक्षाकी अभी सुव्यवस्था नहीं है। उदाहरणार्थ प्रयाग और बम्बईमें मुसल्मानोंके अत्याचार अभी ज्यों-के-त्यों चालू हैं ही, वहाँकी कांग्रेस-सरकार उन्हें रोकनेमें असमर्थ साबित हो रही है। हिंदू सुसंघटित नहीं हैं; उनमें छोटे-छोटे स्वार्थोंको लेकर असंख्य दलबन्दियाँ हैं; कोई ऐसी सरकार नहीं है जो उनकी पीठपर हो और उनको अत्याचार न सहनेके लिये प्रोत्साहन देती हो; भड़काने तथा लड़ानेकी उनकी आदत नहीं—जो उनके सात्त्विक स्वरूपके अनुसार सर्वथा उचित है; पर्याप्त शक्ति संग्रह नहीं; राष्ट्रीयताके मोहके कारण अनुचित साम्प्रदायिकतासे असहिष्णुता नहीं और एक

सर्वमान्य नेता और संस्था नहीं—इस प्रकारके और भी अनेकों कारण हैं, जिनसे हिंदू असहाय-से हो रहे हैं। मुसलमान चाहे किसी मतका हो, वह पहले मुसलमान है, पीछे और कुछ है। हिंदू पहले और कुछ है, पीछे कहीं हिंदू है। वल्कि सच पूछा जाय तो आज बहुत-से हिंदू ऐसे हो गये हैं, जो अपनेको हिंदू कहनेमें लजाते हैं। ऐसे हिंदुओंको अल्पसंख्यक मुसलमान क्यों न ललकारें? अभी-अभी अन्तःकालीन भारतसरकारके सदस्य मियाँ गजनफर अली खाँने कहा है—'हिंदुओंकी अधिक संख्यासे मुसलमानोंको डरना नहीं चाहिये। उन्हें याद रखना चाहिये कि महमूद गज़नवी केवल एक हजार सेना लेकर भारत आया था और उसने करोड़ों हिंदुओंपर विजय प्राप्त की थी।'

इन सब बातोंको समझकर हिंदुओंको तुरंत अपना मजबूत संघटन करना चाहिये और प्रत्येक गाँव तथा प्रत्येक मुहल्लेमें परस्पर सौहार्द बढ़ाकर सावधानीके साथ अपनी रक्षाकी व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

करो, कहो मत

हिंदुओंमें एक बड़ा दोष यह है कि वे जितना बोलते हैं, उसकी अपेक्षा बहुत ही कम करते हैं। कृपानिधान भगवान् श्रीरामचन्द्रने डींग हाँकते हुए राक्षसेन्द्र रावणको कहा था—

सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥
जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमनफल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, एक करहिं कहत न बागहीं॥

अर्थात् तुम्हारी सारी प्रभुता जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है। पर अब व्यर्थ बकवाद न करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ। व्यर्थ बकवाद करके अपने सुन्दर यशका नाश न करो। पाटल (गुलाब), आम और कटहलके समान—एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं और एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार (पुरुषोंमें) एक कहते हैं (करते नहीं); दूसरे कहते और करते भी हैं; और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणीसे कहते नहीं।

इसके अनुसार हिंदुओंको इस समय बहुत बोलनेके दोषसे बचकर ठोस कार्य करना चाहिये।

बिहार तथा बंगालके विषयमें मुसलमानोंके द्वारा मिथ्या प्रचार

मुसलमान करते-ही-करते हैं, कहते नहीं और कहीं जबान खोलते हैं तो पूरी तैयारी करनेके बाद। उन्होंने सब जगह अपनी पूरी तैयारी कर ली तब कहीं महमूद गजनवी और चंगेज खाँसे अधिक कर दिखानेकी बात निकाली और उसके कुछ ही दिनों बाद प्रत्यक्ष कार्रवाईके रूपमें कलकत्तेसे उसकी शुरुआत कर दी और बंगालमें यह प्रमाणित कर दिखाया कि आजतकके अत्याचारके इतिहासमें जो चीज नहीं थी, वह प्रत्यक्ष हो गयी। सारे काम पूर्वनिश्चित योजनाके अनुसार हुए। तिसपर भी तुर्रा यह कि लीगी सरकार और लीगी मुसलमान यही कहते रहे कि 'हमलोगोंने कुछ नहीं किया, यह तो कुछ गुंडोंका काम था।' इसके विपरीत बिहारमें जहाँ क्षणिक उत्तेजनावश दंगा हुआ—धर्मपरिवर्तन, स्त्री-अपहरण एक भी नहीं हुआ; वहाँके लिये गढ़-गढ़कर झूठी बातें मुसलमान जनताको भड़कानेके लिये कही गयीं। अभी उस दिन भारतसरकारके जिम्मेदार (?) सदस्य मियाँ गजनफर अली खाँने इसपर कहा है—'बिहारमें हिंदुओंने हजारों मुसलमानोंका वध किया—यह सब कांग्रेसकी पूर्वनिश्चित योजनाके अनुसार किया गया। केवल एक कुएँसे ही न जाने कितनी मुस्लिम औरतोंकी लाशें निकलीं। हजारोंकी संख्यामें उनका अपहरण किया गया और धर्मपरिवर्तन कराया गया।

पूर्वबंगालमें तो ऐसी घटनाएँ इनी-गिनी हुई हैं।' झूठकी कोई सीमा नहीं होती। पर इससे पता लगता है कि चोर कोतवालको कैसे डाँटता है। किंतु यही मुस्लिम नीति है। उनकी दुर्नीतिसे सर्वत्र हिंदूधर्म और हिंदूजातिपर संकट छाया है। हिंदूजाति पूरे खतरेमें है। परन्तु मुसल्मानोंने अपनी चतुरतासे ब्रिटिश अमात्योंसे भी यह कहलवा लिया था कि मुसल्मान अल्पसंख्यक होनेसे डरते हैं और अपनेको खतरेमें समझते हैं। कांग्रेसके कुछ नेताओंने भी यह बात कही और वे अब भी कह रहे हैं। और पूर्वबंगालमें इतना भीषणतम काण्ड होनेपर भी उसपर ऐसी लीपापोती हो रही है कि आज कुछ हिंदू भी लीगियोंकी हाँ-में-हाँ मिलाकर यह कहने लगे हैं कि—

नोआखालीमें कुछ नहीं हुआ, यह तो हिंदुओंका प्रोपगंडा है

पूर्वबंगालमें धन-मालकी करोड़ोंकी लूट हुई, असंख्य घर जलाये गये, निर्मम हत्याएँ की गयीं, जीवित नर-नारियोंको जलती आगमें झोंका गया। हजारों सती स्त्रियोंका अपहरण हुआ। हजारों नर-नारियोंका धर्म-परिवर्तन हुआ, हजारों देवियोंपर बलात्कार हुआ और असंख्य देवमन्दिर नष्ट-भ्रष्ट किये गये। इससे अधिक और क्या होता ?

वहाँकी पैशाचिक घटनाओंको देख-सुनकर बड़े-बड़े शान्त, शिष्ट, धीर और गम्भीर पुरुषोंका भी धैर्य छूट गया। पं० श्रीहृदयनाथ कुंजरू, श्रीशरच्चन्द्र बोस, श्रीश्यामाप्रसाद मुकर्जी, गोस्वामी श्रीकृष्णजीवनजी महाराज, वीतराग महात्मा श्रीकरपात्रीजी महाराज, श्रीसुचिता कृपलानी और कुमारी मूरियल लीस्टर आदिने आँखों देखकर वहाँकी दशाका बड़ा ही मर्मभेदी वर्णन किया है। कांग्रेसके सभापति आचार्य श्रीकृपलानीजीने यहाँतक कह दिया कि 'यदि बलात् धर्मान्तरित सभी मनुष्य और अपहरण की हुई स्त्रियाँ मार डाली गयी होतीं तो कम दुःखकी घटना होती। मैं स्वयं कट्टर अहिंसावादी हूँ; किन्तु यदि पूर्वबंगालवाली ज्यादती मेरे साथ की गयी होती तो मैं नहीं कह सकता कि उस समय मैं क्या कर बैठता।' बूढ़े सरदार पटेलको कांग्रेसके मेरठके अधिवेशनमें पूर्वबंगालकी हृदयद्रावक घटनाओंका जिक्र करते हुए दुखी होकर यहाँतक कहना पड़ा कि—'वहाँकी कुटिल कार्रवाइयोंसे मेरे हृदयको जो ठेस लगी है, वह सर्वथा वर्णनातीत है। इस घृणास्पद कुकृत्यके सामने अकालग्रस्त तीस लाख बंगालियोंका मरना बिल्कुल नगण्य है…। लीगी नेता कान खोलकर सुन लें—अब तलवारका जवाब तलवारसे दिया जायगा। पाकिस्तानकी प्राप्ति लूट, हत्या, अग्निकाण्ड, विधर्मीकरण और बलात्कारसे हर्गिज नहीं हो सकती।'

दूसरोंको जाने दीजिये—अहिंसाकी प्रतिमूर्ति महात्मा गाँधी सारे आवश्यक कार्योंको छोड़कर महीनोंसे पूर्वबंगालमें गाँव-गाँव घूमकर तपस्याचरण कर रहे हैं। और अभीतक उन्हें वहाँ अन्धकार-ही-अन्धकार दीख रहा है। यदि नोआखालीमें कुछ भी न हुआ होता, वह हिंदुओंका प्रोपगंडा ही होता तो महात्माजीपर उसका इतना और ऐसा प्रभाव क्यों पड़ता ? पूर्वबंगालकी दुर्घटनाओंसे उनका हृदय कितना सन्तप्त है—इसको वे ही जानते हैं। इतनेपर भी यह कहना कि नोआखालीमें कुछ भी नहीं हुआ, दुःसाहसकी पराकाष्ठा है। पता नहीं फिर किस प्रलयंकर कृत्यको 'कुछ होना' माना जायगा। अभीतक भी महात्माजीकी उपस्थितिमें ही वहाँ श्रीसुचिता कृपलानी-जैसी महिलाके अपहरणकी चेष्टा हो रही है !

बार-बार धमकी

इसपर अभी वही धमकी तो दी ही जा रही है। अभी उस दिन सरदार पटेलके भाषणकी समालोचना करते हुए अन्तःकालीन सरकारके माननीय सदस्य सरदार अब्दुर्रबनिश्तर साहेबने फरमाया है कि 'दुर्भाग्यवश सरदार पटेलने अभी मुसल्मानोंको

ठीक-ठीक समझा नहीं है। वे अपने उत्तेजनात्मक भाषणोंद्वारा पाकिस्तान लेनेके लिये मुसल्मानोंकी आँखें खोल दे रहे हैं। क्या कांग्रेसमें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो देशके हितार्थ सरदार पटेलको इस भयंकर रोगसे मुक्त कर सके ?' इसके उत्तरमें यदि कोई उनसे पूछे कि 'क्या मुसल्मानोंमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो मियाँ जिन्ना और उनके अनुयायी मियाँ गजनफर अली आदिको इस भयंकर रोगसे मुक्त कर सके ?' तो इसका उनके पास क्या उत्तर होगा ?

मियाँ गजनफर अलीने तो यहाँतक कह दिया कि 'उनके लिये भयानक और भीषण मार्गके सिवा और कोई उपाय ही नहीं रह जायगा और वह कांग्रेस अधिवेशनमें किये गये उन भाषणोंका उत्तर होगा जिनमें रक्तपातका जमाखर्च बराबर करने और तलवारका जवाब तलवारसे देनेकी बात कही गयी थी। मैं पुनः कहता हूँ कि प्रत्यक्ष-विरोधी आन्दोलन चलानेके अभिप्रायसे ही मुस्लिम लीग अन्तःकालीन सरकारमें घुसी है।'

मिथ्या प्रचार करना, अपने कुकृत्योंको छिपाना हिंदुओंपर झूठा दोषारोपण करना, हिंदुओंकी छोटी-से-छोटी बातको भी बहुत बड़ी करके बताना, मुसल्मानोंको धर्मके नामपर उभाड़ना तथा भीतर-ही-भीतर रक्तपातकी भीषण योजना बनाना और उसके साधन निर्माण करना—यह मानो मुस्लिम लीगी नेताओंका एकमात्र कार्य हो गया है। हिंदुओं-को इससे शिक्षा लेनी चाहिये और अपने सात्त्विक स्वभावकी रक्षा करते हुए अपनी रक्षाकी समुचित व्यवस्था करनी चाहिये।

बिहार और बंगालके शरणार्थियोंकी सच्ची स्थिति

हिंदुओंको लंबे-लंबे व्याख्यान देने, जोशीली बातें बकने और एक दूसरेमें दोष निकालने आदिकी प्रवृत्तिको छोड़कर चुपचाप अपना कार्य करना चाहिये, तभी उनका हित संभव है। चुपचापका यह मतलब नहीं है कि उचित और आवश्यक बात कहनेके समय भी मौन रक्खा जाय। इसमें भी हमें मुसल्मान भाइयोंसे सीखना है। यह प्रायः सभीका अनुमान है कि मुसल्मान हथियारोंका संग्रह बड़ी तेजीसे कर रहे हैं। हजारों-लाखों छूरे तो बाँटे ही गये हैं—कहा जाता है कि जायज-नाजायज तौरपर बन्दूक-तलवारोंका भी संग्रह करनेकी उनकी प्रवृत्ति बढ़ रही है। बंगालकी लीग-सरकारने जहाँ कलकत्ते-के शान्तिप्रिय हिंदुओंके आत्मरक्षार्थ रक्खे हुए हथियार छीने वहाँ उसी लीगीसरकारके भूतपूर्व चीफ मिनिस्टर ख्वाजा नाजिमुद्दीन साहेबने बिहार-सरकारपर यह आरोप लगाया कि 'पटना जिलेमें मुसल्मानोंके पास जो बन्दूक आदि हथियार हैं या गत तीन महीनोंमें उनको लाइसेन्स दिये गये हैं, उनकी संख्या दस या बारह प्रतिशत होगी।' इसका उत्तर देते हुए बिहारसरकारने जो आँकड़े दिये हैं उनसे पता लगता है कि वहाँके मुसल्मानोंके पास उनकी जनसंख्याकी दृष्टिसे कितने अधिक हथियार हैं और हिंदुओंके पास कितने थोड़े हैं। तब भी हथियार कम होनेका हल्ला मचाया जाता है। बिहारसरकारने कहा है—

'प्रथम अक्तूबर सन् १९४६ से अबतक पटना जिलेमें ११३ लाइसेन्स दिये गये हैं, जिनमें पाँच तो उनको मिले हैं, जो न हिंदू हैं न मुसल्मान और ४९ सरकारी कर्मचारियोंको दिये गये हैं, जिनमें २२ मुसल्मान हैं और २७ हिंदू हैं। शेष ५९ गैरसरकारी लोगोंको दिये गये हैं, जिनमें २४ मुसल्मान और ३५ हिंदू हैं। कुल १०८ लाइसेन्सोंमें ४६ मुसल्मानोंको दिये गये हैं, जो जनगणनाके हिसाबसे ४३ प्रतिशत होते हैं।

पटना जिलेमें कुल २३६६ लाइसेन्स दिये गये हैं। जिनमें ११९७ मुसल्मानोंके पास हैं और ११८५ हिंदुओंके। शेष ६४ गैर-हिंदू-मुस्लिम लोगोंके पास हैं। पटना जिलेमें जहाँ मुसल्मानोंकी संख्या

करीब ११ प्रतिशत हैं वहाँ उनमें बन्दूक आदिके लाइसेन्स ४८ प्रतिशतके पास हैं।'

बिहार-सरकारके इस वक्तव्यसे पता लगता है कि बिहारमें ८९ प्रतिशत हिंदुओंको ५२ प्रतिशत बन्दूकोंके लाइसेन्स दिये गये हैं और ११ प्रतिशत मुसल्मानोंको ४८ प्रतिशत! क्या हिंदुओंमें बन्दूकोंके लाइसेन्स पाने योग्य व्यक्ति इतने कम हैं या जान-बूझकर मुसल्मानोंको इतने अधिक हथियार दिये जाते हैं अथवा हिंदुओंकी सुस्ती-अकर्मण्यताका और मुसलमानोंकी चुस्ती-कर्मण्यताका यह फल है? पता नहीं, अन्यान्य प्रान्तोंमें भी बिहारकी तरह ही लाइसेन्स हैं या नहीं। इससे हिंदुओंकी आँखें खुलनी चाहिये।

इसी प्रकार कुछ समय पहले मलिक फीरोज खाँ नूनने यह अभियोग लगाया था कि 'बिहार-सरकार मुस्लिम लीगके स्वयंसेवकोंको शरणार्थी शिविरोंमें काम नहीं करने देती।' इसके खण्डनमें बिहार-सरकारके प्रकाशन-विभागके डाइरेक्टरने बताया था कि दीघा और फुलवारी शरीफके शिविरोंका प्रबन्ध लीगियोंके ही हाथोंमें है। अब तो महात्माजीसे मिलने गये हुए बिहार-सरकारके प्रतिनिधिमण्डलने यह बताया है कि सरकारी शिविरोंका लगभग सारा ही काम मुस्लिम लीगी स्वयंसेवकोंके हाथोंमें है। इसके सिवा बिहार-सरकारने सशस्त्र पहरेदार दिये हैं, जो उन स्वयंसेवकोंके पूरे सहयोगमें रहकर काम करते हैं। इतना ही नहीं, तमाम सेवा-संस्थाओंको बिना मूल्य सवारी और पेट्रोल दिया गया है। अकेली मुस्लिम लीगको ३५५३ गैलन पेट्रोल दिया गया है जो किसी भी अन्य संस्थाको दिये हुए पेट्रोलसे अधिक है। ४४०००) की खाद्य सामग्री भी बिना मूल्य दी गयी है।

यह भी कहा गया था कि बिहारमें मुसलमान शरणार्थियोंकी दशा अच्छी नहीं है। उनको कोई सुविधा नहीं दी जाती और न उनके साथ अच्छा सलूक होता है, पर इस प्रतिनिधिमण्डलने ही बताया है कि—'दाल-सागके अतिरिक्त दो सेर दस छटाँक अन्न प्रति सप्ताह शरणार्थीको बिना मूल्य मिलता है। अबतक ६०००० मल्टी-विटामिन गोलियाँ बाँटी गयी हैं, २५००० कम्बलें, १८९०२ धोती-साड़ियाँ, ७५३४ कुर्ते, ४३५० पाजामें तथा २०००० कमीज एवं दूसरे कपड़े बिना मूल्य वितरण किये गये हैं। इसके अतिरिक्त बिहार-सरकार शरणार्थियोंकी आजीविकाके लिये कई जगह औद्योगिक केन्द्र भी खोल रही है।

इधर पूर्वबंगालमें, जहाँ लाखों नर-नारियोंकी दुर्दशा की गयी और जहाँकी सरकारी सहायताके लिये ढिंढोरा पीटा जाता है, दशा ही दूसरी है। पूर्वबंगालके शरणार्थियोंकी व्यवस्थाके बारेमें श्रीसुचिता कृपलानीने लिखा है—

'पूर्वबंगालमें दत्तपाड़ा शरणार्थी-शिविरमें मैं तीन दिन थी। वहाँ पाखाने वगैरहकी कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। स्वयंसेवकों और हमलोगोंने मिलकर कुछ गड्ढे खोद दिये थे जो पाखानेके काममें आते थे। पाखाना साफ करनेवालेके नामपर केवल एक भंगी रक्खा गया था।

गत १५ नवम्बरको मैं दत्तपाड़ासे चली थी। और तबतक सरकारने शरणार्थियोंके लिये कम्बल अथवा वस्त्रका कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया था। कहीं-कहीं शरणार्थी-शिविरोंमें प्रत्येक व्यक्तिको केवल ३ छटाँक दाल दी जाती थी। कहीं-कहीं तो केवल २ छटाँक चावल और १ छटाँक दाल मिलती थी। कभी-कभी तो दालका भी पता नहीं रहता था। जिससे बेचारे शरणार्थियोंको केवल नमकके साथ भात खाना पड़ता था। पूर्वबंगालमें शरणार्थियोंको जो चावल दिया जाता है वह बिल्कुल मोटा और खुद्दी है। खुद्दी चावल देनेपर भी मात्रा नहीं बढ़ायी जाती। बंगालसरकारके एक अधिकारीने कहा था कि खुद्दी चावल मनुष्यके खाने योग्य है अथवा नहीं इसमें भी सन्देह है।

बंगालसरकारने शरणार्थी शिविरोंमें रसोईदार भी नहीं रक्खे हैं। सभी काम शरणार्थियों और स्वयंसेवकोंको करने पड़ते हैं। बंगालसरकार जलानेके लिये लकड़ी इत्यादि भी नहीं देती और बिहारमें मैंने देखा कि केवल दीघा-शिविरमें ही सौ मन लकड़ीका प्रबन्ध किया गया है। बंगालके शरणार्थी गाँवों और जंगलोंसे पत्ते, लकड़ियाँ बटोरकर उन्हींसे रसोई बनाते हैं। वहाँ मैंने देखा कि एक व्यक्ति, जिसका घर गुंडोंने जला दिया था, अपने घरकी बची-खुची लकड़ियोंसे ही रसोई बना रहा था।'

बंगालमें कहीं-कहीं अभी भी शरणार्थी खुले स्थानोंमें अपने दिन काट रहे हैं। बार-बार अनुरोध करनेपर भी बंगालसरकार खेमोंका कुछ प्रबन्ध नहीं कर सकी है।'

अब रही व्यवस्थाकी बात सो हमारे अपने चाँदपुरके कार्यकर्ताने लिखा था कि 'यहाँ सहायता-कार्यमें नियुक्त दस अफसरोंमें नौ मुसलमान हैं और एक हरिजन हिंदू। पूर्वबंगालके शरणार्थी हिंदुओंको अब उन्हीं चरणोंको पकड़ना पड़ रहा है जिन्होंने उनको ठोकरें मारी थीं। मुस्लिम लीगी स्वयंसेवकोंको काम करनेका अधिकार है पर किसी हिंदू-संस्थाको नहीं है।'

'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी'के कार्यकर्ता श्रीभालचन्द्र शर्माने अभी हालहीमें लिखा है कि 'नोआखाली और त्रिपुरा जिलोंकी सहायता और पूर्वावस्थाकी पुनः स्थापना-कार्यके लिये नियुक्त कमिश्नर मि० लारकिन आई० सी० एस० को हटाकर उसकी जगह एक मुसलमान अफसरकी नियुक्ति कर दी गयी है, इससे चिन्ता प्रकट की जा रही है। अल्पसंख्यक (हिंदू) जातिके पीड़ितोंको सहायता पहुँचाने और उनको फिरसे बसानेके लिये मंजूर की गयी रकम यदि बहुसंख्यक (मुसलमान) जातिके लिये खर्च की जाती है तो अब इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं होगी। बंगालसरकारने २५०) एक घर बनानेके लिये मंजूर किया है, यह खयाल भी नहीं किया जा सकता कि इतनेमें एक मकान कैसे बनेगा? एक व्यक्तिके भोजनके लिये मिलनेवाला २॥ छटाँक चावल सर्वथा अपर्याप्त है। पीड़ितोंको कम्बल बाँटनेकी अबतक कोई व्यवस्था नहीं हुई है। गुंडोंको अबतक पकड़ा ही नहीं गया है।' शर्माजीने भी यह लिखा है कि 'केन्द्रीय सरकारने जो पूर्वबंगालके पीड़ितोंकी सहायता और उन्हें पुनः बसानेके लिये तीन करोड़ रुपये मंजूर किये हैं उनके वितरण-कार्यपर पूरी निगाह केन्द्रीय सरकार नहीं रक्खेगी तो इस रकमका एक हिस्सा भी वास्तविक पीड़ितोंके पास पहुँच सकनेमें सन्देह है।'

इससे पता लग सकता है कि बिहारमें मुसलमान शरणार्थियोंको कितनी सुविधा है और बंगालमें हिंदू शरणार्थियोंको कितनी असुविधा। साथ ही दोनों सरकारोंकी मनोवृत्तिका पता भी लगता है। तिसपर भी मुसलमान नेता दूसरा ही राग अलापते रहते हैं और यह भी प्रत्यक्ष है कि उससे उनकी सुनवायी भी होती ही है।

मुसलमानोंके द्वारा मिथ्या प्रचारका एक नमूना

मिथ्या प्रचारका उनका ढंग ऊपर दिखाया ही जा चुका है कि किस प्रकार बिहारकी घटनाओंको अन्तःकालीन सरकारके सदस्य मियाँ गजनफर अलीने बढ़ाकर बताया है और मुसलमानोंको उत्तेजित किया है। ख्वाजा नाजिमुद्दीन एवं मलिक फीरोज खाँकी बात ऊपर आयी ही है। ये सभी जिम्मेवार तथा उच्च पदस्थ व्यक्ति हैं। अभी उस दिन श्रीविजयालक्ष्मी पण्डितने कहा कि 'जिस समय अन्तर्राष्ट्रीय असेम्बलीमें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका प्रसंग आया हुआ था, उस समय मियाँ इस्पहानी और बेगम शाहनवाजने वहाँ एक गुमनाम पर्चा बँटवाया जिसमें कहा गया था कि असेम्बली उस मामलेपर तबतक विचार न करे जबतक भारतके

मुसलमानोंपर हिंदुओंद्वारा होनेवाले अत्याचारों-की जाँच न हो जाय। श्रीमती पण्डितने कहा कि उनके नेतृत्वमें उक्त असेम्बलीमें जो प्रतिनिधि मण्डल गया था उसमें केवल वही एक हिंदू थीं, शेष चार सदस्योंमें दो जस्टिस छागला और नवाबअली जवार जंग बहादुर मुसलमान और सर महाराज सिंह तथा मि० फ्रेंक अन्थनी ईसाई थे। परन्तु मि० इस्पहानी और बेगम शाहनवाज अमेरिकामें यही प्रचार करती थीं कि श्रीमती पण्डितके साथ मुस्लिम प्रतिनिधि नहीं है और एक सभामें तो वे यहाँतक झूठ बोले कि ज० छागला और नवाबअली जवार मुसलमान नहीं हैं।'

नये औरंगजेब

इस प्रकार लीगी मुसलमान नेता अपने सर्व-प्रमुख महान् नेता मियाँ जिन्नाके आदेशानुसार सब ओरसे हिंदुओंका सर्वनाश करनेमें लगे हुए हैं। जिन्ना मियाँके सम्बन्धमें स्वयं पण्डित नेहरूजीने कहा था कि मुझे विश्वस्त सूत्रमेंसे मालूम हुआ है कि 'कायदे आजमने कांग्रेस तथा हिंदूजातिके विरुद्ध घृणा प्रचार करना ही अपना एकमात्र कर्तव्य निर्धारित कर लिया है।' अभी उस दिन एक प्रधान लीगी नेताने तो मियाँ जिन्नाको दूसरा औरंगजेब बताया है; इसपर सहयोगी 'भारत' ने लिखा है—

'मद्रास प्रान्तीय मुस्लिम लीगके अध्यक्ष मियाँ मुहम्मद इसमाइलने बड़े गर्वके साथ मुसलमानोंकी एक सभामें यह घोषित किया है कि औरंगजेबके बाद यदि कोई वैसा नेता प्रादुर्भूत हुआ है तो वह मि० जिन्ना ही है। दूसरे शब्दोंमें उनके मतानुसार मियाँ जिन्ना आधुनिक युगके औरंगजेब हैं। ××× अच्छा हुआ कि एक लीगी मुसलमानने स्वयं अपने मुँहसे अपने प्रधान नेताकी असलियत प्रकट कर दी। उदारता, सहिष्णुता तथा सर्वहितैषिताकी जो चादर मि० जिन्नाने ओढ़ रक्खी है, उसे उतारकर उनके वास्तविक रूपका सबको दर्शन करा दिया। लीगियोंको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस प्रकार औरंगजेबका पतन हुआ है वैसा ही पतन मि० जिन्नाका भी होना अवश्यम्भावी है। औरंगजेब-ने हिंदुओंपर अत्याचार ढाया और घृणाका प्रचार किया, धार्मिक कट्टरता और उन्मादके वश होकर हिंदुओंकी मूर्तियाँ एवं मन्दिर तोड़वाये। फल यह हुआ कि वे अपने साथ मुगल-साम्राज्यको ले डूबे। मुसलमानोंका पतन हुआ। आज हम फिर इतिहास-की पुनरावृत्ति होते देख रहे हैं। मि० जिन्ना हिंदुओंके प्रति कम घृणाका प्रचार नहीं कर रहे हैं। हिंदुओंपर जो आक्रमण और अत्याचार हो रहे हैं उसके लिये भी वे ही जिम्मेदार हैं। कट्टरता, धर्मान्धता और दुराग्रहमें भी वे औरंगजेबसे कम नहीं हैं। इसलिये आश्चर्य नहीं यदि वे भी मुसलमानोंको अपने साथ ले डूबें, अपने साथ उन्हें भी गड्ढेमें गिरावें। क्या हम आशा करें कि नये औरंगजेब पुराने औरंगजेबके जीवन-इतिहाससे सबक लेंगे और विनाश आनेके पूर्व ही सावधान हो जायँगे।'

हिंदू सावधान हों

हमारी समझसे मियाँ जिन्ना सावधान नहीं होंगे। उनसे, उनके अनुयायियोंसे और उनके कार्यों-से सावधान तो हिंदूजातिको ही रहना होगा। और अपनी सर्वाङ्गीण रक्षा तथा समृद्धिके लिये सब प्रकारसे पूरी तैयारी करनी होगी। इस समय हिंदू-जातिके लिये यह आवश्यक है कि वह क्षुद्र स्वार्थों-को भूल जाय। राजा-प्रजा, जमींदार-किसान, पूँजीपति-मजदूर, सुधारक-सनातनी आदि सभी हिंदूवर्गोंके विभिन्न दिशाओंमें चलनेवाले कार्योंको एक बार स्थगित कर दिया जाय। यह सत्य है कि हमारे विशाल हिंदू घरमें कूड़ा इकट्ठा हो गया है, घर बेमरम्मत भी हो गया है, उसमें बहुत-से दोष भी आ गये हैं और हमारे अमुक-अमुक वर्गोंमें बहुत बड़े परिवर्तनकी आवश्यकता भी है पर इस

समय तो घरमें आग लग रही है। पहले सबको मिलकर उसे बुझाना पड़ेगा। पीछे दूसरे काम होंगे। घरमें आग लगनेपर जैसे कोई भी बुद्धिमान् पुरुष यह नहीं कहता कि पहले घरमें झाड़ू निकाल लें, घरकी मरम्मत करा दें या अमुक-अमुक हिस्सेको बदल लें, पीछे आग बुझावेंगे, वैसे ही इस समय प्रत्येक हिंदूको पहले घरमें लगी भयानक आग बुझानी चाहिये। आग बुझनेपर घर-मरम्मतीका तथा परिवर्तन-परिवर्धनका सारा कार्य कर लिया जायगा। पहले हिंदूजाति तो बचे, पीछे उसमें सुधार भी हो जायगा। यदि ऐसा नहीं हुआ, हिंदूजाति विघटित ही रही और उसमें परस्पर एक दूसरेको कोसने और मिटानेमें ही लोग लगे रहे तो याद रखना चाहिये, हमारी बड़ी दुर्दशा होगी। स्वराज्य तो मिलेगा ही नहीं, बुरे-से-बुरा पर-राज्य आवेगा जिसकी हम कल्पनातक नहीं कर सकते।

सीमाप्रान्तमें अत्याचार

खतरेके बादल बुरी तरह मँडरा रहे हैं। लीगी मुसलमान बड़ी बुरी तरहसे पंजाब तथा सीमाप्रान्तके अल्पसंख्यक हिंदू प्रान्तोंमें बहुसंख्यक मुसलमानोंको भड़का रहे हैं। इधर सीमाप्रान्तके कबीलियोंके उपद्रवके जो समाचार आ रहे हैं उनसे बड़ी चिन्ता हो रही है। वहाँ हिंदुओंमें आतङ्क फैल गया है। गाँवोंके लोग भाग रहे हैं। कबीलेवाले क्षेत्रोंमें बिहारकी घटनाओंका अत्युक्तिपूर्ण रूपमें प्रचार हो रहा है और वहाँके पठानोंको हिंदुओंसे बदला लेनेके लिये भड़काया जा रहा है। उन क्षेत्रोंमें 'पोलिटिकल डिपार्टमेंट' के सहयोगसे मुस्लिमलीगी प्रचारक खुले आम साम्प्रदायिक द्वेष फैला रहे हैं। इस समय तुरंत केन्द्रीय सरकारको सचेष्ट होकर इस उपद्रवको रोकना चाहिये। इसपर सहयोगी 'सन्मार्ग' ने लिखा है 'यदि पण्डित जवाहरलाल नेहरू बिहारमें जाकर हिंदूजनतापर बमवर्षाकी धमकी दे सकते हैं तो मियाँ अब्दुर्रबनिश्तर भी सीमाप्रान्तमें जाकर पठानोंको डराकर सही रास्तेपर क्यों नहीं लाते ? मुस्लिम लीगी नेता सम्भवतः (अपनी नीतिके अनुसार) इसका यही उत्तर देंगे कि सीमाप्रान्तमें कोई उपद्रव ही नहीं हो रहा है। लेकिन उन्हें बिहारकाण्डसे शिक्षा लेनी चाहिये कि द्वेषका परिणाम द्वेष और हिंसाका परिणाम हिंसा ही होता है। मियाँ जिन्ना और सुहरवर्दी भी कहा करते हैं कि बहुसंख्यक मुस्लिम प्रान्तोंमें हिंदू बिलकुल सुरक्षित हैं (कैसे सुरक्षित हैं इसका एक नमूना बंगालमें दिखा दिया, दूसरा सीमाप्रान्त और सिन्धमें दिखलानेकी तैयारी हो रही है)। वहाँ हिंदुओंपर अत्याचार होनेसे पाकिस्तान बनानेका दावा कैसे जायज हो सकता है। वे अपने हृदयपर हाथ रखकर विचारें कि सीमाप्रान्तमें क्या हो रहा है।'

सीमाप्रान्तमें बड़े भीषण उत्पात आरम्भ हो गये हैं और उनको होते काफी समय हो गया है। कुछ समय पहले हमें पेशावरसे एक पत्र मिला था, जिसमें लिखा था—'यहाँ हजारा जिलामें जो कुछ हुआ वह आपको किसी अंशमें समाचारपत्रोंद्वारा विदित हो गया होगा। हिंदू स्त्रियोंके नग्न शरीरके गुप्त अंगोंमें गोलियाँ मारी गयीं। राक्षसोंने नगर छोड़ते हुए लोगोंको जीता भी नहीं छोड़ा। मुसलमान प्रधान मन्त्रीने केवल सान्त्वनाद्वारा हिंदुओंको चुप करनेका प्रयत्न किया और यह एक डाका था It was theft nothing more' कह दिया।"

हजारा जिलेके ताजे समाचार बड़े ही भयंकर हैं। मल्लाछ नामक गाँवमें हिंदुओंके ४०० घर हैं। गत २ जनवरीको गुंडोंके एक झुंडने उनपर आक्रमण किया। कहा जाता है कि आक्रमणकारी बहुत-से मकानोंको लूटकर पशुओंको खोल ले गये, अनाज उठा ले गये और फिर घरोंमें आग लगा दी, जिसके फलस्वरूप कितने ही मनुष्य, कितनी स्त्रियाँ और बच्चे भी थे, जलकर राख हो गये।

एक दर्जन व्यक्तियोंके परिवारमें अकेले बचे हुए श्रीअर्जुनसिंहने, जो साठ मील पैदल चलकर

रावलपिण्डी आये हैं, बताया कि उनकी स्त्री, छः बच्चे, भाई तथा चाचाओंको मार डाला गया है और उनके मकानोंमें आग लगा दी गयी है। अन्य स्थानोंसे प्राप्त समाचारोंसे यह और भी पता लगा है कि मौरी वाधीन, जावा और पीलियान आदि कई गाँव लूट लिये और जला दिये गये हैं तथा कई दूसरे गाँवोंमें भी ऐसा ही करनेकी धमकी दी गयी है।

अकाली नेता मास्टर तारासिंहने हजाराके दौरेसे लौटकर बतलाया है कि 'अभी वहाँकी परिस्थिति काबूमें नहीं है। प्रान्तीय सरकार उपद्रवकारियोंको उचित दण्ड नहीं दे रही है। या तो वह मुसलमानोंके बहुमतको खुश करना चाहती है अथवा हिंदू और सिखोंसे मुस्लिम बहुमतके सामने आत्मसमर्पण कराना चाहती है।'

हजारों शरणार्थी भाग-भागकर पंजासाहेब, अबोटाबाद और मुजफ्फराबाद (काश्मीर राज्य) में आये हैं और आ रहे हैं। उनमेंसे कितने ही लोगोंको चोट लगी हुई है। काश्मीरराज्यने शरणार्थियोंको सुविधाएँ दी हैं और उनके लिये काफी व्यवस्था करनेका वचन दिया है।

कहा जाता है कि वहाँ बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन भी कराये गये हैं।

इस प्रकार सीमाप्रान्तमें नोआखालीकी पुनरावृत्ति आरम्भ हो गयी है।

सिन्धमें भी अत्याचार

अभी हिंदू-महासभामें आये हुए सिन्ध टांडोआदमके एक सज्जनने बड़ी ही दर्दनाक हालत सुनायी थी। असलमें अल्पसंख्यक हिंदू-प्रान्तोंमें खास करके गाँवोंमें बहुसंख्यक मुसलमानोंके द्वारा जो अत्याचार आजकल हो रहे हैं, वे सर्वथा असह्य हैं। पर पूरी खबरें आ नहीं पाती हैं और वहाँकी सरकारोंका तो जो रुख है वह तो प्रत्यक्ष ही है।

अभी उस दिन लीगके विजय-दिवसपर लीगी नेताओंने कराचीमें हिंदुओंके विरुद्ध विष उगला है और हिंदुओंसे कोई भी चीज न खरीदनेके लिये तथा अन्य प्रकारसे मुसलमानोंको भड़काया है।

हिंदुओंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और अपने कर्तव्यका निर्णय करना चाहिये।

आबादी बदलनेकी चाल

आबादी बदलनेका एक और अप्रिय आन्दोलन लीगने शुरू किया है। जैसे यहूदियोंको मार-पीटकर और लूटकर जर्मनोंने अपने देशसे निकाला था, उसी नीतिसे लीगने पूर्वबंगालमें काम किया। अब वह आबादी बदलनेके नामपर पहले बाहरी मुसलमानोंको बंगालमें और सिन्धमें लाकर बसानेका प्रयत्न कर रही है। बंगाल और सिन्धकी सरकारने ऐसे लोगोंको जमीन मुफ्त देनेके साथ ही अन्य सुविधाएँ देनेकी भी घोषणा की है। यह भी उसकी पाकिस्तान-योजनाका एक अङ्ग है। यद्यपि आबादीका परिवर्तन सहज नहीं है और न यह होगा ही। क्योंकि सदासे बसे हुए लोग अपना सब कुछ छोड़कर अन्यत्र जाना पसंद नहीं करेंगे। परन्तु इसकी आड़में लीग मुसलमानोंकी संख्या बढ़ानेके लिये अन्य प्रान्तीय मुसलमानोंको उन प्रान्तोंमें लाकर बसा लेगी जिनमें वह पाकिस्तानकी स्थापना चाहती है और जिसके समूहीकरणका सिद्धान्त कांग्रेसने मान लिया है। इसके लिये भी हिंदुओंको अपना कोई रास्ता पहलेसे सोचना चाहिये।

हिंदुओंका कर्तव्य

उस दिन पंजाब मुस्लिम लीग-कार्यसमितिके मन्त्री सरदार शौकत हयातखाँने लीगी कार्यकर्ताओंकी सभामें कहा था कि 'आजसे हमारा नारा 'करो या मरो' होना चाहिये। हमें तुरंत पाकिस्तानी संग्रामकी तैयारी आरम्भ करनी है। × × हमें

पाकिस्तान अपने ही बाहुबलद्वारा प्राप्त करना होगा।' ठीक यही बात आज हिंदुओंसे कहनी है कि 'आजसे हमारा नारा 'करो या मरो' होना चाहिये। हमें तुरंत पाकिस्तानी संग्राममें विजय पाने और अपने अस्तित्वको गौरवयुक्त बनाये रखनेके लिये तैयारी आरम्भ करनी है × × × हमें यह विजय अपने ही बाहुबलद्वारा प्राप्त करनी होगी।'

अपनी सारी परिस्थितिपर पूरा विचार करके इस समय हिंदूजातिको अपने कर्तव्यका निश्चय करना है। ऐसा समय आ गया है कि इस समय प्रत्येक हिंदू नर-नारीको आत्मरक्षाके लिये सैनिक बनना है। किसी दूसरेके भरोसेपर नहीं, भगवान्‌की कृपाके बलसे अपने ही भरोसेपर। और साथ ही सैनिकोंमें जिस प्रकारकी शिक्षा-दीक्षा, अनुशासनकी रीति, दृढ़ता, साहस, कर्तव्यशीलता, समयसूचकता, आज्ञानुकारिता और रणनीतिकुशलता आदि आवश्यक होती है उसे भी यथासम्भव सीखना होगा। हृदयमें अदम्य साहस, शरीरमें असीम बल, मस्तिष्कमें परिमार्जित विचार और परस्पर परम प्रेम और सौहार्दका संचय करके उन्हें यथायोग्य बढ़ाना होगा। मजबूत रक्षकदलका निर्माण करना होगा। संस्कृतिकी रक्षाके लिये धर्म, भाषा और वेश आदिको बचाना होगा। संख्याके अनुपातसे ही सरकारी नौकरियाँ हों तथा उसीके अनुपातसे अधिकार एवं शस्त्रोंके लाइसेंस हों, इसके लिये भी प्रबल आन्दोलन करना होगा। (अभी उस दिन मुस्लिमलीगने बिहार सरकारको धमकी देते हुए कई विचित्र माँगें पेश की हैं, जिनमें मुसलमानोंको हथियारोंके विशेष लाइसेंस देनेकी और '५० प्रतिशत पुलिसके अफसर और कर्मचारी मुसलमान हों, ऐसी माँग भी है। हिंदुओंको इसमें सावधान होकर इसका उचित विरोध करना चाहिये।) जैसे एक डंकेकी चोट और एक अल्लाहो-अकबरके नारेसे मुसलमानोंमें जागृति हो जाती है तथा सब और डंकेपर चोट पड़ने तथा नारोंकी ध्वनि होने लगती है, वैसे ही हिंदुओंको भी अपनी शङ्ख-घंटाकी ध्वनि और 'हर हर महादेव' या 'बजरंगबलीकी जय' के नारोंकी व्यवस्था करनी होगी और यह सब करना होगा मानवताकी रक्षाके लिये। किसी भी जाति या धर्मसे द्वेष करना हिंदूके लिये कदापि सम्भव नहीं है, आततायीमेंसे आततायीपन निकल जाय, अत्याचारीकी अत्याचार करनेकी हिम्मत न रहे, न्याय और धर्मके काँटेपर तुलनेकी सबकी स्वाभाविक इच्छा बन जाय, समान बल होनेके कारण किसीको दबाने या लूटनेकी वृत्ति नष्ट हो जाय और परस्पर मैत्रीका हाथ बढ़े—इसी पवित्र उद्देश्यसे यह सब काम करने होंगे और करने होंगे हिंदू-धर्म, हिंदू-संस्कृति और हिंदू-जातिको जीवित रखनेके लिये ही। क्योंकि हिंदूधर्म, हिंदूजाति और हिंदू संस्कृतिकी रक्षामें ही विश्वकी रक्षा निहित है। हिंदू-संस्कृतिके बिना विश्वके जड़-चेतन प्राणीमात्रमें एकात्मताका पवित्र सन्देश और कहाँसे मिलेगा? अवश्य ही सत्यपर स्थित रहनेके कारण हिंदूसंस्कृति अमर है, पर इस समय उसपर जो विपत्तिके बादल छाये हैं, उनसे उसको बचानेका प्रयत्न करना हिंदूमात्रका परम धर्म है। भगवान् सबको सुबुद्धि दें और सबका कल्याण करें।

ब्रह्मचर्यका बौद्ध आदर्श

(लेखक—श्रीभरतसिंहजी उपाध्याय)

ब्रह्मचर्य सभी साधनोंका मेरुदण्ड है, ऐसा सभी शास्त्रकारोंने माना है । कोई भी सदाचार ब्रह्मचर्यकी अनुपस्थितिमें नहीं ठहरता, ऐसी भारतीय मान्यता है । तत्त्व-दर्शनमें अनेक सूक्ष्म विभिन्नताएँ होते हुए भी जीवन-साधनाकी इस केन्द्रीय स्थितिको सभी दर्शनकारोंने स्वीकार किया है । स्थूल वीर्य-रक्षासे लेकर सूक्ष्म आन्तरिक विशुद्धि तक ब्रह्मचर्य-साधनकी अनेक भूमियाँ फैली हुई हैं । ब्रह्म-साक्षात्कारकी इच्छा करते हुए जिस ब्रह्मचर्यका पालन करनेका उपदेश दिया गया है, उसकी परिणति इस अन्तिम मार्गतक ही है । भगवान् बुद्धने जिस 'केवल-परिपूर्ण' ब्रह्मचर्यका अपने व्यक्तित्व और उपदेशोंसे प्रचार किया, वह वही प्राचीन आर्य-मार्ग था जिससे देवताओंने मृत्युको जीता था । उन्हींकी परम्परामें आनेवाले भगवान् 'तथागत' ने उसे अपने आचरणसे पुनरुज्जीवित किया । ब्रह्मचर्यके मार्गमें कितनी स्थूल और सूक्ष्म बाधाएँ आती हैं और किन-किन भूमियोंमें होकर उसे परिपूर्ण करना होता है, सिर्फ यही एक बुद्ध-वचनके द्वारा दिखानेका यहाँ उद्देश्य है ।

वैसे ब्रह्मचर्यके साधन और लक्ष्यके विषयमें बुद्ध-शासनमें गम्भीर और विस्तृत विवेचन है । पर उस सबको न लेकर हम यहाँ केवल उसके एक स्वरूपको लेते हैं । विशुद्ध ब्रह्मचर्य सभी स्थूल और सूक्ष्म मैथुन-संयोगोंसे युक्त न होना चाहिये । ये मैथुन-संयोग सात प्रकारके हो सकते हैं । उन्हींके विषयमें भगवान् कहते हैं—

'ब्राह्मण ! यहाँ कोई एक श्रमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होनेका दावा करता है और वह स्त्रीके साथ प्रत्यक्ष सहवास नहीं भी करता, किन्तु वह स्त्रीके द्वारा (स्नान-चूर्ण आदि) उबटन किये जाने, मले जाने, स्नान कराये जाने और मालिश किये जानेको स्वीकार करता है, वह उसमें रस लेता है, उसकी इच्छा करता है, उसमें प्रसन्नता अनुभव करता है । यह भी ब्राह्मण ! ब्रह्मचर्यका टूटना (खण्ड होना) है, छिद्रयुक्त होना है, चितकबरा होना है, धब्बे पड़ना है । इसीलिये ब्राह्मण ! ऐसे पुरुषके लिये कहा जायगा कि वह मैथुन (स्त्री-सहवास) से युक्त होकर ही मलिन ब्रह्मचर्यका आचरण करता है । वह जन्मसे, जरासे, मरणसे नहीं छूटता..........और नहीं छूटता दुःखसे—मैं कहता हूँ ।

'फिर ब्राह्मण ! यहाँ एक श्रमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होनेका दावा करता है और वह स्त्रीके साथ प्रत्यक्ष सहवास भी नहीं करता और न स्त्रीके द्वारा अपने उबटन आदि किये जानेको स्वीकार करता है, किन्तु वह स्त्रीके साथ हँसी-ठट्ठा करता है, मजाक करता है, क्रीड़ा करता है, खेलता है, वह उसमें रस लेता है..........दुःखसे नहीं छूटता—मैं कहता हूँ ।

'फिर ब्राह्मण ! यहाँ एक श्रमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होनेका दावा करता है और वह स्त्रीके साथ प्रत्यक्ष सहवास भी नहीं करता, उसके द्वारा अपने उबटन आदि किये जानेको भी स्वीकार नहीं करता, उसके साथ हँसी-मजाक भी नहीं करता, किन्तु वह स्त्रीको आँख गड़ाकर देखता है, नजर भरकर देखता है, वह उसमें रस लेता है..........दुःखसे नहीं छूटता—मैं कहता हूँ ।

'फिर ब्राह्मण ! यहाँ एक श्रमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होनेका दावा करता है और वह न स्त्रीके साथ प्रत्यक्ष सहवास करता, न उससे उबटन आदि मलवाता, न उसके साथ हँसी-मजाक करता, न उसे आँख गड़ाकर देखता किन्तु वह दीवार या चहार-दीवारीकी ओटसे छिपकर स्त्रीके शब्दको सुनता है जब कि वह हँस रही हो, या बात कर रही हो या गा रही हो, या रो रही हो, वह उसमें रस लेता है—दुःखसे नहीं छूटता—मैं कहता हूँ ।

'फिर ब्राह्मण ! यहाँ एक श्रमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होनेका दावा करता है और वह न स्त्रीके साथ प्रत्यक्ष सहवास करता, न स्त्रीसे उबटन लगवाता, न उसके साथ हँसी-मजाक करता, न उसको नजर भरकर देखता है जब वह गा रही हो या रो रही हो, किन्तु वह अपनी उन हँसी-मजाकों, बोलियों और

क्रीड़ाओंको स्मरण करता है जो उसने पहले स्त्रीके साथ की थीं, वह उसमें रस लेता है—दुःखसे नहीं छूटता—मैं कहता हूँ ।

'फिर ब्राह्मण ! यहाँ एक श्रमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होनेका दावा करता है और वह न स्त्रीके साथ प्रत्यक्ष सहवास करता, न स्त्रीसे उबटन लगवाता, न उसके साथ हँसी-मजाक करता, न उसको आँख गड़ाकर देखता है, न उसके साथ की हुई पुरानी हँसी-मजाकों, बोलियों और क्रीड़ाओंको स्मरण करता है, किन्तु वह किसी गृहस्थ या गृहस्थके लड़केको पूरी तरह पाँच विषयभोगोंसे समर्पित, संयुक्त हो मौज करते देखता है और वह उसमें रस लेता है·········दुःखसे नहीं छूटता—मैं कहता हूँ ।

'फिर ब्राह्मण ! यहाँ एक श्रमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होनेका दावा करता है और वह न स्त्रीके साथ प्रत्यक्ष सहवास करता, न स्त्रीसे उबटन लगवाता, न उसके साथ हँसी-मजाक करता, न उसको आँख गड़ाकर देखता, न उसके साथ की हुई पुरानी हँसी-मजाकों, बोलियों और क्रीड़ाओंको स्मरण करता, न किसी गृहस्थ या गृहस्थ-पुत्रको विषयासक्त हुए देखता, किन्तु वह देवता-योनिमें जन्म लेनेकी अभिलाषासे ब्रह्मचर्यका आचरण करता है और सोचता है कि इस प्रकारके शील, तप, व्रत या ब्रह्मचर्यसे मैं देव हो जाऊँगा या देवोंमें कोई, वह इसमें रस लेता है, इसकी इच्छा करता है, इसमें प्रसन्नताका अनुभव करता है। यह भी ब्राह्मण ! ब्रह्मचर्यका टूट जाना है, छिद्रयुक्त हो जाना है, चितकबरा हो जाना है, धब्बेदार हो जाना है । इसीलिये कहा जाता है कि इस प्रकारका मनुष्य मैथुनके संयोगसे युक्त, मलिन ब्रह्मचर्यका ही आचरण करता है और वह जन्मसे, जरासे, मरणसे नहीं छूटता, नहीं छूटता दुःखसे—मैं कहता हूँ ।'[१]

उपर्युक्त बुद्ध-वचन ब्रह्मचर्य-साधनकी भूमियोंका बड़ी सूक्ष्मतापूर्वक निरूपण करते हैं । सभी साधकोंके द्वारा ये मननीय हैं ।

दुर्गापाठका प्रभाव

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दूबे, साहित्यरत्न)

बात है लगभग सात वर्ष पूर्वकी । आषाढ़ मासका कृष्ण पक्ष था । उस दिन वर्षा तो काफी हुई थी, पर बादल तितर-बितर हो गये थे । आसमान साफ हो गया था । अंशुमालीके सिधारते ही असंख्य तारावलियाँ हँसने लग गयी थीं ।

प्रतिदिनकी भाँति भोजनोपरान्त मैं खड़ाऊँ पहनकर लालटेन हाथमें ले बैठकेपर सोने चला । बीचमें लघु-शङ्का करने बैठ गया । 'दीपक तले अँधेरा' वाली कहावत उस समय शब्दशः चरितार्थ हो रही थी ।

मैं हाथमें रोशनी फैलानेवाली लालटेन लेकर बैठा हुआ मूत्र-त्याग कर रहा था, पर मेरे बायें पैरकी खड़ाऊँके नीचे विषधर सर्पका फन दबा हुआ था । वह मेरे पूरे भारसे दबा गया था, इस कारण सिर तो हिला नहीं पाता था, पर उसका सारा शरीर छटपटा रहा था । उसके तड़पनेकी हल्की आवाज तो जरूर हुई थी, पर मेरा ध्यान उस ओर नहीं था और बरसातके मौसममें अक्सर चारों ओर कीड़े-पतंगोंकी हल्की ध्वनि इधर-उधरसे आती ही रहती है, इस कारण मैंने कोई विचार नहीं किया । मैं सर्वथा निश्चिन्त था ।

लघुशङ्कासे उठते ही मैं जोरसे चीख उठा । लालटेन मेरे हाथसे गिर पड़ी । उसका तेल पृथ्वीपर गिर पड़ा । वह भभकने लगी । इतनेमें पिताजी दौड़ते हुए आये । मेरी घबराहटकी आवाज उनके पास पहुँच गयी थी।

मुझे देखते ही वे कर्तव्यज्ञानशून्य हो गये । उन्होंने देखा कि विषैला साँप मुझे बुरी तरह डँसकर भागता हुआ जा रहा है । मैं खड़ा थरथर काँप रहा था । वे

१. अंगुत्तर-निकाय; विसुद्धि-मग्ग १ । १४४–१५०में उद्धृत (लेखकके 'विसुद्धि-मग्ग'के अप्रकाशित अनुवादसे उद्धृत) ।

लाठी लेने दौड़े। पर उनके आते ही साँप दूर भाग गया था। मेरी माता मैके गयी थी। दादी रोटी बना रही थीं। रोटी तवेपर ही छोड़कर चिल्लाती हुई बाहर निकल आयीं। भाई भी आ गया। घर खुला पड़ा था। किसीको यह ध्यानतक नहीं था कि चोरोंके लिये लोटा-थाली भी कीमती दीखती है। सब मुझे घेरे खड़े थे। पड़ोसभरके प्रायः सभी स्त्री-पुरुष आ गये थे। प्रतिदिन उनके बीचमें रहनेवाला मैं सबका अवलोकनीय हो गया था। कुछ लोग स्त्री-बच्चोंको दूर हटा-हटाकर मुझे हवा कर रहे थे, पर भीड़ मुझे घेरे लेती थी।

कुछ लोग विष उतारनेवालेके पास दौड़ गये थे। कुछ मुझे बार-बार गायका घी पिलाते थे और मेरी बड़ी विचित्र दशा थी। शरीरमें ऐंठन और जलन-सी लग रही थी। प्राण छूटनेका भय तो था ही। उस समय न तो मुझे किसीने उपदेश दिया और न मैंने कोई आध्यात्मिक-ग्रन्थ ही देखे, अपने आप मन-ही-मन बड़ी तीव्रतासे भगवान्‌के मङ्गलमय कल्याणमय नामका जप कर रहा था।

मैंने एक बार दृष्टि घुमाकर पिताजीकी ओर देखना चाहा। उन्हें पुकारा भी, पर वे वहाँ नहीं थे। एकने कहा 'इस समय उनकी बुद्धि ठीक नहीं है।' दूसरेने जवाब दिया, 'अरे जवान बेटा है, बुद्धि कैसे ठीक रहेगी भाई।' तीसरेने कहा, 'अरे, कोई जाकर उन्हें भी देखे कि कहाँ गये।' दादी मेरे पास बैठी थीं। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुसरिता प्रवाहित हो रही थी।

इसी बीचमें मेरा एक मित्र आया। उसने यह समाचार थोड़ी देरमें सुना। दौड़ते आया, आते ही वह मेरा पैर पकड़कर सर्प-दंशनका स्थान देखकर उसे गुणिका चिह्न (×) बनाते हुए चीरकर अपनी अँगुलियोंसे दबाने लगा। उसके कथनानुसार एक आदमी ऊपरसे गर्म पानी छोड़ता जा रहा था। मैंने देखा विषमिश्रित काला रक्त धीरे-धीरे निकल रहा है।

मुझे सारी रात जगाकर रक्खा गया। मेरी दादी मेरे पास रातभर बैठ रहीं। छोटा भाई बगलमें ही सोया हुआ था, पर पिताजीका पता नहीं चला। वे बीचमें मुझे एक बार भी देखने नहीं आये। इस विचारसे मेरी दादी भी घबरा रही थीं, पर वे मुझे छोड़कर नहीं जा रही थीं। भीड़ हट गयी थी।

रातके चार बजे। दादीके आज्ञानुसार मैं शौच गया। पेट साफ हुआ। शरीर मेरा हल्का जान पड़ा। मैंने पूर्ण स्वस्थ होनेका अनुभव किया, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। घर आते ही मैंने दादीसे पूछा—'पिताजी कहाँ हैं?' उन्होंने उत्तर दिया—'पूजाघरमें।'

वहाँ जाकर मैंने देखा, मिट्टीके कलशपर घृत-दीप जल रहा था। धूपकी गन्ध फैली थी। पिताजी कुशासनपर बैठकर जप कर रहे थे। दुर्गापाठकी पुस्तक सामने खुली पड़ी थी। मैंने निश्चय कर लिया कि पिताजी मेरी प्राणरक्षाके लिये दुर्गापाठ समाप्त करके रातभर जप करते रहे हैं।

मुझे देखते ही पिताजीकी आकृतिपर शान्तिकी रेखा खिंच गयी।

इसी प्रकार एक बार मैं ज्वरका शिकार हुआ। तेरह दिन तेरह रात ओषधिके साथ गरम पानीकी कुछ बूँदोंके अतिरिक्त मेरे मुँहमें कुछ नहीं जा सका था। मैं प्रायः बेहोश रहा करता था।

माताजी मेरी चारपाईके पास बैठकर आँसू बहाया करती थीं। पड़ोसके लोगोंको विश्वास हो गया था कि अब दो-एक दिनमें ही इसकी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी। वैद्य भी निराश हो गया था।

ऐसे समयमें मेरे पिताजी मेरी चारपाईके पास कलश-स्थापन करके प्रातः-सन्ध्या दुर्गापाठ किया करते थे। घृतका अखण्ड दीप जला करता था। परिणामस्वरूप मैं रोगमुक्त हो गया। स्वास्थ्य सुधरनेमें अवश्य कुछ दिन लगे।

दोनों बारकी मेरी प्राणरक्षामें अवश्य ही भगवतीका हाथ था। पिताजी तो यही कहते हैं। और अब उनके आज्ञानुसार कम-से-कम प्रत्येक नवरात्रमें दुर्गासप्तशतीके नौ पाठ तो मैं कर ही लिया करता हूँ।

सफल राजनीतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण

(लेखक—श्रीवासुदेवजी शर्मा)

महाभारतके युद्धमें जो विजयश्री पाण्डवोंको प्राप्त हुई उसका संपूर्ण श्रेय तत्कालीन महान् राजनीतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्णको ही है। महाभारतका सारा इतिहास श्रीकृष्णकी राजनीतिज्ञतासे ओतप्रोत है। यह बात भी मानी हुई है कि श्रीकृष्ण-जैसे कुशल राजनीतिज्ञ अभीतक प्रकाशमें नहीं आये हैं। जिन राजनीतिज्ञोंको आप देख रहे हैं उनकी राजनीति श्रीकृष्णकी राजनीतिपर ही अवलम्बित है अथवा यों कहिये कि उनकी राजनीति उक्त राजनीतिका अनुकरणमात्र है। महाभारत-कालका संक्षिप्त विवरण श्रीकृष्णकी राजनीतिज्ञताके दिग्दर्शनार्थ निम्न पंक्तियोंमें प्रस्तुत है—

जब पाण्डव अपने वनवासकी अवधि समाप्त कर चुके तो उनके पक्षके राजाओंने एक सभा की। उसमें बहुत सोच-विचारके बाद यह निश्चय हुआ कि पाण्डवोंने जिस उत्तम ढंगसे अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया है वह प्रशंसनीय है और अब उनका राज-पाट उन्हें मिलना चाहिये, क्योंकि वनवासकी अवधि पूरी हो गयी है। परन्तु दुर्योधनसे राज-पाट वापस प्राप्त होनेकी आशा बहुत कम है, सम्भव है इसके लिये युद्ध करना पड़े, अतएव एक दूत तो कौरवोंकी सभामें हस्तिनापुर भेजा जाय और एक उन राजाओंके पास भेजा जाय जो किसी कारणवश सभामें उपस्थित नहीं हो सके हैं। उनसे यह भी निवेदन कर दिया जाय कि आवश्यकता पड़नेपर वे लोग पाण्डवोंका ही पक्ष लें और यथाशक्ति उनकी सहायता करें; क्योंकि वे धर्म तथा न्यायके लिये लड़ रहे हैं।

कौरवोंकी सभामें हस्तिनापुर जाने और इस झगड़ेके निबटानेका भार भगवान् श्रीकृष्णको सौंपा गया। क्योंकि यह सभी जानते थे कि इस कार्यको उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी करनेमें समर्थ नहीं है। जब श्रीकृष्ण कौरवोंकी राजसभामें पहुँचे तो उन्होंने कौरवोंको अनेक प्रकारसे समझाया और पाण्डवोंको केवल इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयंत, वारणावत तथा एक अन्य गाँव, जो उचित समझें, देनेका प्रस्ताव रक्खा। दुर्योधन, जो बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था, समझ गया कि इन गाँवोंके माँगनेसे यह अभिप्राय है कि कौरव सदैव पाण्डवोंके आश्रित रहें और वैमनस्यका भी अन्त न हो। क्योंकि ये चारों स्थान कौरवराज्यकी सीमा बन जायँगे और पाण्डवोंको अपने प्रति किये गये व्यवहारकी सदा स्मृति दिलाते रहेंगे। अतएव दुर्योधनने इस प्रस्तावको अस्वीकार करते हुए श्रीकृष्णको स्पष्ट उत्तर दे दिया कि इन गाँवोंकी तो क्या, मैं सूईकी नोंकके बराबर भी भूमि बिना युद्धके न दूँगा। यदि कुछ बाहुबलका भरोसा हो तो रणभूमिमें भाग्यकी परीक्षा कर लें।

श्रीकृष्ण असफल हो वहाँसे लौट आये और दोनों ओरसे खुल्लमखुल्ला युद्धकी तैयारी होने लगी। कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी और पाण्डवोंकी सात अक्षौहिणी सेना कुरुक्षेत्रके लंबे-चौड़े मैदानमें आ उतरी। श्रीकृष्ण अर्जुनके रथवान बने। उन्होंने अर्जुनके रथको उस समय विपक्षी सेनाका अनुमान लगानेके अभिप्रायसे बीचमें ले जाकर खड़ा कर दिया। जब अर्जुनने रणभूमिमें युद्ध करनेकी इच्छासे एकत्रित अपने मामा, चाचा, दादा, गुरु, मित्र और भाई आदि सम्बन्धियोंको देखा तो उसे आत्मग्लानि हुई और उसने श्रीकृष्णसे कहा—'मुझे ऐसी विजयकी कामना नहीं है जिसे अपने सम्बन्धियोंका खून बहाकर प्राप्त किया जाय, मैं नहीं लड़ूँगा, आप मेरा रथ यहाँसे ले चलिये।' जब श्रीकृष्णने अर्जुनकी ऐसी दशा देखी तो सोचा कि यह तो बना-बनाया काम बिगड़ा जा रहा है। अतः वे अर्जुनको समझाने लगे।

'वीरश्रेष्ठ अर्जुन ! प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह अपना कर्तव्य पालन करे । कर्तव्य-पथसे एक पग भी इधर-उधर होना उचित नहीं है, कर्तव्य-पालन करते समय हानि-लाभ और जीवन-मरणका विचारतक मनमें नहीं आने देना चाहिये । हमारा कर्त्तव्य केवल कर्म करना है । फल परमात्माके हाथ है । जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रोंको उतारकर नये वस्त्र पहन लेते हैं, उसी प्रकार यह मिट्टीका चोला शरीर बार-बार बदलता रहता हैं । आत्मा तो अमर है, उसे न तो कोई शस्त्र काट सकता है, न आग जला सकती है, न जल गला सकता है और न पवन सुखा सकता है । अर्जुन ! तुम क्षत्रिय हो और इस समय युद्धक्षेत्रमें खड़े हो । तुम्हारा कर्तव्य धर्मयुद्ध करना है । सच्चे शूरमाओंकी तरह विजय पाओगे तो राज्य-सुख भोगोगे और रणमें वीरगतिको प्राप्त होनेपर स्वर्गके अधिकारी बन जाओगे । अब सब प्रकारकी चिन्ताएँ, शङ्काएँ और संशय मनसे निकाल डालो । उठो और पुरुषसिंहकी भाँति अपना कर्तव्य-पालन करो ।'

गीताके इस उपदेशका अर्जुनपर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा और वह युद्ध करनेके लिये तैयार हो गया । धृष्टद्युम्न पाण्डवोंकी सेनाके सेनापति बने और कौरवीय सेनाकी कमान भीष्मपितामहने सँभाली । दोनों ओरसे डटकर युद्ध होने लगा । पलमात्रमें खूनकी नदियाँ बह चलीं, दसों दिशाएँ शस्त्रोंकी झनकारसे गूँज उठीं । भीष्मजी पाण्डवोंकी सेनाका संहार गाजर-मूलीकी तरह करते हुए अपनी अपूर्व वीरताका परिचय देने लगे । इस प्रकार युद्ध होते हुए नौ दिन व्यतीत हो गये और ९०००० पाण्डवोंके महारथी नष्ट हो गये । श्रीकृष्णने जब यह देखा तो सोचा कि इस प्रकार काम नहीं चलेगा । कोई युक्ति पितामहको समाप्त करनेकी सोचनी चाहिये । आखिर उपाय सोच ही लिया और तदनुसार युधिष्ठिरको भीष्मजीके पास भली प्रकार सिखा-पढ़ाकर भेज दिया । युधिष्ठिरने पहुँचते ही शिष्टाचारके अनुसार पितामहको प्रणाम किया । पितामहने आशीर्वाद दिया कि 'विजय हो ।' युधिष्ठिरको अवसर मिल गया । उन्होंने कह ही तो डाला कि 'पितामह ! आप तो पाण्डवोंकी सेनाके संहार करनेपर तुले हुए हैं । अबतक ९०००० वीर नष्ट कर डाले हैं और न मालूम कितने करेंगे । फिर बताइये, आपके होते हुए विजय कैसे सम्भव है ?' यह सुनकर भीष्म मुसकराये और युधिष्ठिरसे पूछे कि 'आखिर चाहते क्या हो ?' युधिष्ठिरने कहा 'महाराज ! हमें वह उपाय बतला दीजिये जिससे आपकी मृत्यु हो ।' चूँकि भीष्मजी प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे । अतः उन्होंने बताया कि 'मेरी प्रतिज्ञा है कि स्त्री अथवा स्त्रीके समान रूपवाले व्यक्तिके आनेपर मैं उसके साथ युद्ध नहीं करूँगा और उसी समय अर्जुनद्वारा मृत्युको प्राप्त होऊँगा ।'

दसवें दिन बड़ा घमासान युद्ध हुआ । पाण्डवोंने उस समय शिखण्डी नामके एक सैनिकको, जो पहले स्त्री था और फिर योनिपरिवर्तन होनेसे पुरुष हो गया था, भीष्मके सामने खड़ा कर दिया । भीष्मजीने अपने प्रतिज्ञानुसार हथियार डाल दिये । अर्जुनने, जो पहलेसे ही शिखण्डीके पीछे छिपकर खड़ा हो गया था, अवसर प्राप्त कर पितामहको बाणोंकी सेजपर सुला दिया ।

भीष्मपितामहके बाद ग्यारहवें दिन कौरवोंकी कमान द्रोणाचार्यको सौंपी गयी । उन्होंने रणमें अपनी कुशलताका परिचय भली प्रकार दिया, युधिष्ठिरको पकड़नेकी चालें चली जाने लगीं । पाण्डवोंके विनाशके लिये एक अभेद्य व्यूहरचना की गयी, इसके सम्बन्धमें सिवा अर्जुनके अन्य सब अनभिज्ञ थे । हाँ, वीर अभिमन्यु कुछ जानता था, अभिमन्युकी अवस्था उस समय १६ वर्षकी थी, अर्जुनको कौरव लड़ते-लड़ते जान-बूझकर मोर्चेसे दूर ले गये थे । उनकी अनुपस्थितिमें अभिमन्यु व्यूह भेदकर भीतर घुस गया; किन्तु अकेला वीर बालक कई योद्धाओंके बीचमें फँस जानेके कारण वीरगतिको प्राप्त हुआ । इस समाचारको सुनकर पाण्डव बड़े दुखी हुए और उसी

समय अर्जुनने जयद्रथ और श्रीकृष्णने द्रोणाचार्यको समाप्त करनेकी प्रतिज्ञा की। उधर अर्जुनने जयद्रथका वध कर दिया। इधर श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा कि आचार्यका अधिक रहना हमारे लिये खतरनाक है, यदि आप सहायता करें तो काम बन सकता है। युधिष्ठिरने कहा 'वह क्या' तो श्रीकृष्णने कहा कि आचार्यके पूछनेपर आप केवल इतना कह दें कि 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा'। पहले तो युधिष्ठिरने धर्मका राग अलापा; परन्तु जब श्रीकृष्णने कहा कि 'आप धर्म-धर्म क्या कहते हैं, धर्म वह है जो मैं कहता हूँ।' यह सुनकर युधिष्ठिर चुप हो गये और प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इधर भीमने अश्वत्थामा हाथीको मारकर यह अफवाह फैलवा दी कि अश्वत्थामा मारा गया। आचार्यजीने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जब मैं अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार सुन लूँगा उस समय युद्ध नहीं करूँगा। जब उन्होंने इस समाचारको सुना तो इसकी पुष्टि युधिष्ठिरसे करानी चाही; क्योंकि उस समय यह प्रसिद्ध था कि युधिष्ठिर कभी झूठ नहीं बोलते, अतः पूर्वयोजनानुसार युधिष्ठिरने कहा कि 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा'। आचार्यने 'अश्वत्थामा हतो' इतना ही सुना, अन्तके शब्द पाण्डवोंद्वारा की गयी शङ्खध्वनिके बीच विलीन हो गये। इस प्रकार अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार सुनकर आचार्यजीने युद्ध करना बंद कर दिया। उसी समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यका सिर काट डाला।

द्रोणाचार्यके बाद कौरवोंकी सेनाका प्रधान नायक कर्ण हुआ। कर्ण और अर्जुन दोनों बराबरके योद्धा थे। दोनों योद्धा जब युद्धरत थे उसी समय दैवी घटना हो गयी कि कर्णके रथका पहिया पृथ्वीमें धँस गया। कर्णने अर्जुनसे कहा कि देखो मैं अपने रथका पहिया निकाल लूँ उसके बाद फिर युद्ध होगा। अर्जुन इससे सहमत हो गया; परन्तु श्रीकृष्णजी इस बातको जानते थे कि कर्णका हराना अर्जुनके वशका नहीं है। अर्जुनसे कहने लगे कि 'इस समय कर्णके सिर काटनेका अवसर है अतः अपना काम कर।' अर्जुनने इसे सुनकर कहा—'महाराज! यह तो अधर्म है।' श्रीकृष्णने कहा—'अधर्म कुछ नहीं है। शत्रुको जब मौका मिले मार दे। यदि इस समय तूने देर की तो फिर कर्णका परास्त करना तेरे लिये असम्भव है।' अर्जुनने अपने सखा श्रीकृष्णकी बात मानकर बात-की-बातमें कर्णका सिर धड़से अलग कर दिया।

कर्ण अपने प्राण गवाँ चुका था। युद्ध होते हुए सत्तरह दिन हो गये थे, अठारहवाँ दिन था, शल्य कौरवोंका सेनापति था। युधिष्ठिरने शल्यको मार डाला। कर्णके दोनों पुत्र भी लड़ाईमें मारे गये। इस समाचार-को सुनकर दुर्योधन बड़ा दुखी हो चिन्तामग्न हो गया। उसी समय किसीने आकर शकुनिकी मृत्युकी सूचना दी, जिसे सुनकर तो उसका रहा-सहा साहस भी किनारा कर गया। आशा निराशामें बदल गयी। वह निरुपाय हो युद्धक्षेत्रसे भाग एक जलाशयमें जा छिपा। पाण्डव भी पता लगाते हुए उस जलाशयपर आ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर नाना प्रकारसे दुर्योधनको धिक्कारने लगे कि, 'इस प्रकार कायरोंकी तरह भागकर छिप जाना वीरोंका काम नहीं है, यदि तुम सबके साथ लड़नेमें अपनेको अशक्त समझते हो तो हममेंसे किसी एकसे लड़कर अपना राज्य ले लो।' दुर्योधनने जब यह सुना तो निकल आया। वह बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था। उसने आते ही कहा कि 'मैं राजा हूँ और राजाका युद्ध राजाके साथ ही हो सकता है, अतः पाण्डवोंका जो राजा हो वह मुझसे लड़े।' जब युधिष्ठिरने यह सुना तो कुछ घबराये; परन्तु श्रीकृष्णके धैर्य बँधानेपर शान्त हुए। श्रीकृष्णने कहा कि 'आप दुर्योधनसे कह दीजिये कि हमने भीमको अपना राजा बना दिया है अतः तुमको भीमसे लड़ना होगा।' युधिष्ठिरने इसी प्रकार दुर्योधनसे कह दिया। दुर्योधनने कहा कि 'आप जो कहते हैं वह ठीक है; परन्तु मेरे विश्वासके लिये आप सब मिलकर

मेरे सामने अपने राजाको प्रणाम कर लें।' युधिष्ठिर फिर घबराये। तब श्रीकृष्ण भगवान्‌ने फिर उन्हें समझाया कि इसमें घबरानेकी कौन-सी बात है। क्षत्रिय अपने शस्त्रोंको प्रणाम करते ही हैं। सब भाई आपको छोड़कर भीमको प्रणाम करें और आप चूँकि बड़े हैं इसलिये भीमकी गदाको प्रणाम करें। दुर्योधन यही समझेगा कि सबने भीमको प्रणाम कर लिया। अतः युधिष्ठिरने वैसा ही किया। दुर्योधनको विश्वास हो गया और भीमके साथ गदायुद्ध करना स्वीकार कर लिया। दोनोंमें गदा-युद्ध प्रारम्भ हो गया, युद्ध करते हुए पर्याप्त समय हो गया; परन्तु कोई हार नहीं मान रहा था। भगवान् श्रीकृष्णने भीमको थका अनुभव कर उसके हार जानेकी शङ्कासे जाँघमें गदा मारनेका इशारा किया। भीमने तदनुसार गदाके प्रहारसे जाँघ तोड़ डाली। जंघाके टूटते ही दुर्योधन धराशायी हो गया। उस समय कुछने इसका विरोध किया; क्योंकि गदा-युद्धमें कमरसे ऊपर प्रहार करनेका नियम है, कमरसे नीचे नहीं, परन्तु श्रीकृष्ण महाराजने इसका समाधान इस प्रकार किया कि 'जब द्रौपदीको सभाके बीचमें पकड़वा मँगाकर दुर्योधनने अपनी जाँघ दिखाकर उसपर बैठनेका इशारा किया था उस समय भीमने दुर्योधनकी जंघा तोड़नेकी सबके सामने प्रतिज्ञा की थी। अतः उसने उस प्रतिज्ञाको पूरा किया है।'

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी राजनीतिज्ञताने विजयमाल पाण्डवोंको पहनायी। इसी नीतिका अवलम्बन कर हिंदू-धर्म-रक्षक वीर शिवाजीने मुसल्मानी सल्तनतको तहस-नहस कर डाला था। वर्तमानमें भी श्रीसुभाष बाबूने प्रायः इसी नीतिसे काम लिया था। पाठक घटनाओंका मिलान करनेपर स्वयं ही इसको अनुभव करेंगे।

सच्चा मनुष्य

[एक वैज्ञानिक विश्लेषण]

(लेखक—श्री एस्० नागराज)

धर्म (Religion) जीवनकी कविता है, दर्शन उस कविताका विमर्श है। जीवनकी कविता जीवनके विज्ञानपर स्थित है। इस समय यह कविता जीवनके विज्ञानसे कोसों दूर होकर केवल शाब्दिक भँवरमें चक्कर काट रही है। वह वास्तविकतासे दूर होनेसे उसमें कई एक त्रुटियाँ आ गयी हैं; और उसमें सञ्चरित प्राणमें प्रकम्पन अधिक नहीं रहा, वह बहुत ही मन्द पड़ गया है। अतः हमें उसमें नवीन स्फूर्ति और चैतन्य लानेका यत्न करना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब वह वास्तविकतासे अर्थात् जीवनके विज्ञानसे निकट सम्बन्ध रखता हो। फिर वह वास्तविकता क्या है? यह जीवन-विज्ञान क्या है? उसीको समझना ही इस लेखका उद्देश्य रहेगा।

'मेरे पञ्चतत्त्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश शुद्ध हों, मैं ज्योति हूँ, मैं मलरहित और पापरहित हो जाऊँ।

मेरे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध शुद्ध हों। मैं ज्योति हूँ, मैं मलरहित और पापरहित हो जाऊँ।

मेरे मन, वाक्, कार्य, कर्म शुद्ध हों, मैं ज्योति हूँ, मैं मलरहित और पापरहित हो जाऊँ।

मेरे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय—ये पाँचों कोश शुद्ध हों। मैं ज्योति हूँ, मैं मलरहित और पापरहित हो जाऊँ।

मेरा आत्मा शुद्ध हो, मैं ज्योति हूँ, मैं पापरहित और मलरहित हो जाऊँ।

मेरा अन्तरात्मा शुद्ध हो, मैं ज्योति हूँ, मैं मलरहित और पापरहित हो जाऊँ।

ॐ मेरा परमात्मा शुद्ध हो, मैं ज्योति हूँ, मैं मलरहित और पापरहित हो जाऊँ।

यह आम तौरपर देखी हुई बात है कि जब एक मनुष्य किसी अजनबीको देखता है तो उसके बर्ताव और बातचीत आदिसे उसके बारेमें कुछ ही मिनटके अंदर, कुछ राय कायम कर लेता है और अपने दोस्तोंसे कहता है कि अमुक आदमी ऐसा है, वैसा है। मानो कुछ मिनटोंकी मुलाकातसे उसमें किसी अजनबीके बारेमें राय कायम करनेकी ताकत है। लेकिन सवाल यह उठता है कि क्या वह सचमुच उस अजनबीका असली हाल जान गया ? क्या उस अजनबीके बारेमें कुछ मिनटोंके अंदर ऐसी धारणा पक्की करना ठीक है ?

प्रायः यह देखा गया है कि हम बरसों एक मनुष्यके साथ उठते-बैठते हैं और खाते-पीते हैं, फिर भी हम उसका पूरा-पूरा हाल जान नहीं पाते। पिता अपने पुत्रके साथ बरसों जीवनयापन करता है; परन्तु जब वह एक बार पिताके विरुद्ध लड़ पड़ता है तो पिता भौंचक-सा रह जाता है और कहने लगता है कि मुझे स्वप्नमें भी यह कल्पना नहीं थी कि मेरा बेटा मुझसे इस तरह व्यवहार करेगा। फिर क्या ऐसी हालतमें उस आदमीकी, उस अजनबीके बारेमें, जो धारणा हुई है, ठीक है ? हमें स्वयं अपनेको अच्छी तरह समझना कठिन हो जाता है। कभी-कभी अपने जीवनमें ऐसी बातें हो जाती हैं कि अपनी शक्ति और बुद्धिपर हम इस तरह आश्चर्य करने लगते हैं कि मानो हमारा एक नया जन्म हो गया है। कभी-कभी हमने यह भी अनुभव किया है कि हम बहुत ही कमजोर हैं और हम-जैसे निकम्मे इस दुनियामें और कोई नहीं है।

फिर मनुष्यमें ऐसा रहस्य ही कौन-सा है, जिसे हम और आप समझ नहीं सकते ? आखिर मनुष्य कौन है ? उसके अंदर मेल न खानेवाली बातें कभी-कभी क्यों देखनेमें आती हैं ? क्या मनुष्यके ये पहलू सुलझाये जा सकते हैं ?

कार्लाइल साहबने अपने एक निबन्धमें 'True man' (सच्चा आदमी) ऐसे दो शब्दोंका प्रयोग किया है। इन्हीं दो शब्दोंका गहरा अर्थ यदि हम समझ जायँ तो मनुष्यके ये पहलू हल क्यों न हों ?

फिर क्या कार्लाइल साहबके कथनानुसार, हम सब आदमी सच्चे हैं ? लेकिन दुनियामें तो और ही बात देखनेमें आ रही है। दुनिया एकको सिंहासनपर बैठाती है और दूसरेको जमीनहीपर लोटने देती है। एकको 'उच्च' साबित करनेकी कोशिश करती है और दूसरेको 'नीच' ठहरा देती है, ऐसा क्यों ? यह विरोध क्यों ?

असलमें यह विरोध नहीं, विरोधाभासमात्र है। 'सच्चा आदमी' बिल्कुल एक निराला तत्त्व है। वह उस ईश्वरीय तत्त्वका अंश है, जिसके कारण यह सारा ब्रह्माण्ड बना हुआ है। इस समय अपने चारों ओर रासायनिक कृतिके रूपमें जो दुनिया नज़र आ रही है, वह इसी वस्तुसे बनी है। यह तो एक स्थूलसे स्थूल तह हमारी दृष्टिमें गुजर रही है। इससे भी सूक्ष्म तहें, जो इसी ईश्वरीय तत्त्वसे बनी हैं, और छः हैं। ये तहें एक-से-एक सूक्ष्म हैं और आखिरी तह या सातवीं परत, इन सब परतोंसे सूक्ष्म है। ये तहें एकके ऊपर एक, किसी महडीकी सीढ़ियोंकी तरह नहीं हैं, बल्कि एक दूसरेमें गुँथी हुई हैं। एक उदाहरणसे यह बात साफ समझमें आ जायगी। सोडापानी-सी भरी बोतलपर दृष्टि फेरें तो पहले काँचकी शक्लपर हमारी नजर पड़ती है। फिर बोतलके अंदर पानी देखते हैं परन्तु पानीके चारों ओर गुँथा हुआ गैस हमें दिखायी नहीं देता। जब बोतल फोड़ेंगे तो धुएँके रूपमें वह निकल आयगा। गैस तो बोतल फोड़नेके पहले था, चूँकि हमारी आँखमें बोतलके अंदरके गैसको देखनेकी शक्ति नहीं है, इसलिये गैस दिखायी नहीं दिया। इस प्रकार, जैसे गैस और सोडा-पानी गुँथे हैं, वैसे ये सातों तहें, एक दूसरेमें गुँथी हुई हैं। यदि हमारी आँखोंकी शक्ति

बढ़ायी जाय तो ये तहें दिखायी देने लगती हैं। कुछ लोगोंको यह शक्ति प्राप्त है, हम उनको पेशंगोई कहते हैं।

आजकल हमारे वैज्ञानिकोंने गैससे भी सूक्ष्म वस्तुओंकी खोज की है। 'अणुशक्ति' जिसका आजकल बोलबाला है, ऐसी एक वस्तु है, जिसे उन्होंने खाली या दुरबीनकी आँखसे तो देखा नहीं, बल्कि उसकी केवल ताकत आजमायी है। 'अणुशक्ति' से भी सूक्ष्म वस्तुएँ हैं। धर्मने इन शक्तियोंको ये नाम दिये हैं—भावनाशक्ति, मनोशक्ति, प्रतिभाशक्ति, आत्मशक्ति, अनुपादिशक्ति और अन्तिमशक्ति आदिशक्ति। यह आदिशक्ति बहुत ही सूक्ष्म है, जिसकी कल्पनातक हम नहीं कर सकेंगे। ये वस्तुएँ अधिक सूक्ष्म होनेसे शक्तियाँ कहलायी हैं। अणुशक्ति एक ऐसी सूक्ष्म वस्तु है, जिसका वैज्ञानिकोंने वजन हासिल करनेकी कोशिश की है, और उसमें वे सफल भी हुए हैं। यह अणुशक्ति यद्यपि सूक्ष्म है, फिर भी ऊपर कही हुई और छः शक्तियोंके सामने बहुत ही स्थूल ठहरायी जायगी। मिल्लिकिन और कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि, "Cosmic Rays" (कास्मिक रेज) जो कि एक नवीन शक्ति है, जो बिजलीसे भी कई लाख गुना ताकतवर है, मनोशक्तिके आधारपर बनी है। जब ये शक्तियाँ काबूमें लायी जायँगी तब मनुष्य क्या-क्या महान् कार्य नहीं कर सकेगा ? धार्मिक परिभाषामें यों कहा जाता है कि मनुष्यने सिद्धियोंको प्राप्त कर लिया है, जो कि बत्तीस प्रकारकी बतायी गयी हैं। यहाँ सिद्धियोंपर हमें अधिक कहना नहीं है। इतना कहना अलं है कि मनुष्यमें जैसे-जैसे इन सूक्ष्म शक्तियोंके उपयोग करनेकी शक्ति आ जायगी, वैसे-ही-वैसे वह महान् सिद्ध कहलाया जायगा। परन्तु मनुष्यको अपनी इस प्रगतिसे सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये।

ऊपर हमने सातों तहोंका जिक्र किया था। वे इन सातों वस्तुएँ या तत्त्वोंसे बनी हैं। जैसे हमारी यह दुनिया भू-तत्त्वसे बनी है, जिसका सूक्ष्म रूप 'अणु' है (धर्म इससे भी अधिक सूक्ष्म रूप मानता है। वह उसे 'परमाणु' कहता है), भावना, मन, प्रतिभा, आत्मा, अनुपादि और आदि तहें क्रमशः उन-उन नामोंके तत्त्वोंसे बनी हैं। धर्मने इन तहोंको काव्यमयी भाषामें 'लोक'के नामसे पुकारा है; जैसे भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। परन्तु अपने मनपटलसे यह ख्याल कभी नहीं ओझल होना चाहिये कि ये लोक एक दूसरेमें गुँथे हुए हैं और आज, इस समय, जिस जगह हम बैठे हैं, उसी जगह सातों लोकोंको देख सकते हैं, यदि वह देखनेकी शक्ति हमारे अंदर बढ़ायी जाय। इस प्रकार हम देखते हैं कि भिन्न-भिन्न लोक, भिन्न-भिन्न शक्तिका खेल है और इन्हीं शक्तियोंके रासायनिक मिश्रणहीसे लोकोंके भिन्न-भिन्न रूप देखनेमें आ रहे हैं।

हरेक लोक या दुनियाके अलग-अलग धर्म और नियम हैं, यद्यपि ये सातों दुनिया उसी ईश्वरीय तत्त्वसे बनी हैं। यह उस प्रकार है जिस प्रकार एक ही बिजलीकी शक्तिके सहारे कई प्रकारकी कलें चलती हैं। यदि एक कल कपड़ा बुनती है तो दूसरी कल गोला-बारूद बनाती है और तीसरी हवाई जहाजका गुब्बारा तैयार करती है। इस प्रकार अलग-अलग धर्म और नियम होनेका यही कारण है कि ये विभिन्न लोक भिन्न-भिन्न प्रकारकी स्थूल वस्तुओंसे बने हैं, जैसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी कलें होनेसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी चीजें तैयार होती हैं। भूलोककी वस्तुकी स्थूलता भुवर्लोककी वस्तुसे अधिक है। इसलिये उस वस्तुका प्रकम्पन भुवर्लोककी वस्तुके प्रकम्पनसे अधिक कम है। इसी प्रकार बाकी लोकोंकी शक्तियोंके प्रकम्पनके बारेमें समझना चाहिये। अतएव आदिलोककी शक्तिका प्रकम्पन सबसे तेज होना चाहिये; क्योंकि उसकी शक्ति

सबसे सूक्ष्म है। अतएव यह स्वाभाविक है कि इन प्रकम्पनोंके अनुकूल गुण और धर्म भी होने चाहिये।

जैसे-जैसे हम एक लोकसे दूसरे सूक्ष्म लोकपर जाते हैं, वैसे-ही-वैसे हम उनके प्रकम्पनमें भी अधिक तेजीका अनुभव करते हैं। दूसरे शब्दोंमें यही बात यों कही जा सकती है कि जैसे-जैसे हम प्रकम्पनमें अधिक तेजी अनुभव करते हैं तो हमको यह समझना चाहिये कि हम सूक्ष्म-से-सूक्ष्म लोकमें पहुँच रहे हैं। यदि हम किसीके बारेमें कहें कि वह स्वर्गलोक गया है तो हमें इसका यही मतलब निकालना चाहिये कि उसने स्वर्गलोकके सूक्ष्म प्रकम्पनका अनुभव किया है। इसी प्रकार यदि हम यह कहें कि वह आत्मलोक या जनलोक गया है तो इसका यही मतलब है कि उसने आत्मलोकका जो बहुत तेज प्रकम्पन है उसका अनुभव किया अथवा धर्मकी भाषामें कहा जाय तो हम यों कहेंगे कि उस व्यक्तिको आत्मसाक्षात्कार हो गया। इसी तरह आदिलोकको पहुँचनेका अर्थ आदिशक्तिके प्रकम्पनका अनुभव करना होता है। इन लोकोंकी उत्पत्ति उस परमेश्वरसे है, और उसको जाननेका अर्थ उसके महान् सूक्ष्म प्रकम्पनका अनुभव करना होता है।

अतएव किसी भी प्रकारके प्रकम्पनका अनुभव करनेके लिये कहीं भटकने या चलने-फिरनेकी आवश्यकता नहीं है। उसी जगह जहाँ हम और आप इस समय बैठे हैं और सुन रहे हैं, उसका अनुभव कर सकते हैं। धर्मभक्त प्रह्लादके आख्यानके रूपमें इस सुन्दर वैज्ञानिक तत्त्वको बहुत ही सुन्दर रीतिसे समझाया गया है। धर्म ईश्वरको 'हर जगह है' कहता है।

यह सहज ही है कि जब एक मनुष्य एक प्रकारके सूक्ष्म प्रकम्पनका 'अनुभव' करता रहता है, उस समय अन्य प्रकारके प्रकम्पनोंका अनुभव नहीं हो सकता, चाहे वे प्रकम्पन उसके आस-पास रहकर उसपर असर कर रहे हों। मान लें कि एक आदमी स्वर्गके प्रकम्पनका अनुभव कर रहा है, उस समयके लिये अन्य जड प्रकम्पनोंका (जैसे, भावना शरीरके प्रकम्पनोंका) अनुभव उसे नहीं हो सकता है। तब धर्म कहता है कि भाई, अमुक पुरुष ध्यानमग्न है, वह दुनियाकी बातोंके लिये बेसुध है, आदि-आदि। यदि वह इससे भी सूक्ष्म प्रकम्पनका अनुभव कर रहा हो तो धर्म कहता है कि वह 'समाधि' में है आदि-आदि।

ऊपर हम कह आये हैं कि ये सातों लोक अपने-अपने धर्म और नियमके अनुसार ऐसे चलते हैं कि मानो इन लोकोंका अपना-अपना अलग अस्तित्व है। वास्तवमें दुनियावाले ऐसा ही समझते हैं। उनका तो यही कहना है कि भूलोकसे भुवर्लोक बिल्कुल निराला है और एक-दूसरेमें किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। यहाँपर मरणोत्तर-दशाका वर्णन करना मेरा उद्देश्य नहीं है। इतना ही कहना यहाँ अलं है कि यह दुनियावालोंकी भूल धारणा है। इन लोकोंका एक-दूसरेसे गहरा सम्बन्ध है। वह इस प्रकार है—पहलेके तीनों लोक मनोतत्त्वके आधारसे बने हैं मनोतत्त्व तथा प्रतिभा-तत्त्व आत्मतत्त्वके आधारसे बने हैं और आत्मलोक, अनुपादि और आदिलोक उस ईश्वरीय तत्त्वके आधारसे निर्मित हैं। इस प्रकार हम तीन मुख्य स्वरूप इस सृष्टिरचनामें देखते हैं, जैसे परमेश्वरस्वरूप, आत्म-स्वरूप और मनोस्वरूप।

इस प्रकारकी रचनामें स्वाभाविकता है। यह रचना इस प्रकार है कि जैसे बिजलीकी प्रचण्ड शक्ति, अपने मूल केन्द्रसे छोटे और उससे भी छोटे केन्द्रोंको जाते समय बीच-बीचमें रुकावटें पैदा करके भेजी जाती हैं, ताकि उन छोटे-छोटे केन्द्रोंपर वह प्रचण्ड शक्ति एकदम अपना भारी असर न करके हलके रूपमें असर करे और उन-उन केन्द्रोंमें कार्य चलानेमें मदद दे। इन छोटे-छोटे केन्द्रोंमें उसी बिजलीका प्रताप देखते हैं, परन्तु छोटे पैमानेमें। इन छोटे-छोटे केन्द्रोंमें, अपने-

अपने वातावरणके अनुकूल वही बिजलीकी शक्ति काम करती है। अतएव इन छोटे-छोटे केन्द्रके यन्त्रके प्रकम्पनमें अधिक तेजी महसूस नहीं होती, बल्कि धीमी चाल दिखायी देती है। जैसे-जैसे हम नीचेके 'जड लोकोंकी ओर चलते हैं वैसे-ही-वैसे उन लोकोंके प्रकम्पनमें भी धीमी गतिका अनुभव होने लगता है। सबसे जड अर्थात् भूलोकमें सबसे अधिक स्थूल प्रकम्पनका अनुभव करते हैं। जैसी चलानेवाली शक्ति वैसा ही प्रकम्पन भी होता है।

ऊपर हमने कहा था कि ईश्वरीय-शक्तिके मूलतत्त्वसे ये सातों दुनिया बनी हैं और यह भी कहा था कि मनुष्य एक निराला ही तत्त्व है जो कि ईश्वरीय-अंश है। अतएव मनुष्य और इन लोकोंमें एक गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य-तत्त्व, जो उस ईश्वरीय-शक्तिके प्रकम्पनका कण है, इन सातों लोकोंके तत्त्वोंके आवरण पहने हुए है। वह मानो इन सातों तत्त्वोंके बने सात कोट पहने फिरता है। मनुष्यका जन्म तभी हुआ जब वह ईश्वरीय-अंशका कण इन कोशोंमें प्रविष्ट हुआ और नीचेके भू-कोशका कोट पहनकर फिरने लगा। वह ईश्वरीय-प्रकम्पनका कण, जो कि प्रचण्ड और प्रखर शक्ति रखता है, तीन रूपोंमें होकर पहले कोश अर्थात् भूलोकतक पहुँचा। उसने अपने निजस्वरूपको आदि, अनुपादि और आत्मलोककी तहोंसे आच्छादित करके आत्मरूप कर लिया और उसके बाद वहाँसे नीचे उतरकर, महर्लोकके तत्त्वसे अपनेको घेर लिया और फिर मनोलोक तत्त्वसे अपनेको बाँध लिया। और इसी स्वरूपमें वह अपनेको 'जीवात्मा' कहने लगा। फिर मनोलोकसे निर्मित मनो-भावना और भूलोकोंके तत्त्वोंसे उसने अपनेको आच्छादित कर लिया। इस ईश्वरीय-अंशके भूलोकमें आनेका भिन्न-भिन्न धर्मोंने सुन्दर काव्यमयी भाषामें वर्णन किया है। ईसाई-धर्मने इसको 'डिसेंट आफ् मैन' (मनुष्यका ईश्वरीय-लोकसे उतरना) कहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उस ईश्वरीय-प्रकम्पनका कण सातों कोशोंमें काम करता है। जब कभी उसको अपने जीवात्मा स्वरूपसे काम लेना होता है तो वह अपने आत्म-स्वरूपके जरिये संदेशा भेजता है। यह संदेशा पाकर जीवात्मा अपने मनोकोशके जरिये भुवर्कोश और भूकोशको आज्ञा करता है और तदनुकूल कार्य होता है। परन्तु बात इतनी सीधी नहीं। यह तभी हो जब नीचेके कोश, मन, भावना और शरीर कोशोंका प्रकम्पन जीवात्माके प्रकम्पनके अनुकूल हो और जीवात्माका प्रकम्पन आत्मा और ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल हो। किन्हीं-किन्हीं विरले व्यक्तियोंमें यह बात होती है। इस प्रकार जीवात्मा, आत्मा और ईश्वरीय प्रकम्पनकी एकतानता होनेमें एक भारी अड़चन है। वह यह है-- हम ऊपर कह आये हैं कि हर एक लोक अपने विशिष्ट तत्त्व या वस्तुके कारण अपने ढंगका प्रकम्पन पैदा करते हैं और इस कारण अपना ही स्वतन्त्र अस्तित्व कायम रखते हैं। ईश्वरीय कण, जिसे हमने मनुष्यतत्त्व कहा है। उसने इन्हीं लोकोंके कुछ अंश लेकर अपने चारों ओर इन अंशके कवचोंसे अपनेको आच्छादित कर लिया है। अतएव यह सहज है कि ये भिन्न-भिन्न कोश अपने-अपने लोकके अनुकूल प्रकम्पन पैदा करते हैं और अपने-अपने लोकोंके नियमके अनुकूल चलते हैं। ऐसी हालतमें भू कवच, भुवः कवचके प्रकम्पनके अनुकूल क्यों चले? जीवात्मा आत्माके प्रकम्पनके बराबर और आत्मा, अनुपादि, आदि और ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल क्यों चले?

मनुष्यका पूर्ण विकास इसीमें है कि वह अपने सभी कोशोंसे ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल कार्य करावे। जब सभी कोश उस ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल चलने लगेंगे तो उस हालतमें हम कहेंगे कि मनुष्यका पूर्ण विकास हो गया और वह सच्चे मनुष्यत्वको प्राप्त हो गया।

जबसे मनुष्यका जन्म हुआ अर्थात् जबसे ईश्वरीय प्रकम्पनका कण इन कोशोंमें प्रविष्ट हुआ, तबसे इन कोशोंके प्रकम्पनको ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल चलानेकी कोशिश जारी है। धार्मिक परिभाषामें कहें तो मनुष्यने कर्म करना शुरू कर दिया है। वह अपने कर्मके द्वारा अपने अंदरकी तामसिक वृत्तियोंको दूर करके उनकी जगह सात्त्विक वृत्तियोंको लानेकी कोशिश कर रहा है। यह कोशिश एक-दो दिनकी नहीं है, एक जन्मकी भी नहीं, सैकड़ों जन्मोंकी है। जब वह अपने कोशोंको सात्त्विक वृत्तियोंसे परिपूर्ण कर लेता है तब मोक्षके योग्य बन जाता है। यहीं उसके कर्मका अन्त है। जीवन-विज्ञानकी दृष्टिसे तामसिक गुणोंको सात्त्विकमें परिणत करनेका यह अर्थ है कि जड-से-जड और स्थूल-से-स्थूल प्रकम्पनोंको अधिक सूक्ष्म बनाना है। परन्तु शुरू-शुरूके प्रयत्नमें उसको सफलता नहीं मिलती है। एक कच्चे कलाकारकी तरह उसे स्वयं अपनेको अधिक सधानेकी आवश्यकता है। इसीलिये शुरू-शुरूमें पर्याप्त कष्ट उठाने पड़ते हैं। धर्म इन कष्टोंको 'कुकर्मका फल भोगना' कहता है। जबतक उसकी यह शिक्षा पूरी नहीं होती तबतक उसे कष्ट उठाने ही पड़ेंगे। जब शिक्षा पूरी हो जाती है, तब वह मुक्त होता है और उसको मुक्ति प्राप्त हो जाती है। धर्म कहता है वह 'आवागमन' से अथवा बार-बार जन्म लेनेसे मुक्त हो गया। इसीको और भी रोचक शब्दमें धर्म यों कहता है, 'यह सुख और दुःखरूपी द्वन्द्वसे मुक्त हो गया।' यहाँपर जड प्रकम्पन-को दूर करके सूक्ष्म प्रकम्पनको पैदा करते समय जिस संघर्षका अनुभव होता है, वही द्वन्द्वके नामसे पुकारा गया है। अपने ही लोकके प्रकम्पनको अनुभव करनेमें ही उस कवच (कोश) को सुख अनुभव होता है। यदि इसके अतिरिक्त तेज और सूक्ष्म प्रकम्पन वह कवच अनुभव करने लगता है तब उसको दुःखका अनुभव होता है। इसी वैज्ञानिक तत्त्वमें सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंका रहस्य छिपा है।

ज्यों-ज्यों जड प्रकम्पनोंमें तेजी आने लगती है (अर्थात् उन-उन लोकोंके प्रकम्पनोंसे कोश मुक्त होनेकी कोशिश करते हैं) त्यों-ही-त्यों कोशोंके प्रकम्पनमें परिवर्तन होने लगता है। और कोशोंका परिवर्तित रूप अथवा नया रूप देखनेमें आता है। यह परिवर्तन तब-तक जारी रहेगा जबतक सभी कोशोंका प्रकम्पन ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल नहीं हो जायगा। इस बार-बारके परिवर्तनको धर्म 'पुनर्जन्म' कहता है। अतएव धर्मके अनुसार पुनर्जन्म मनुष्यके कोशोंका है और मनुष्य (चेतन आत्मा) का नहीं। उस परमेश्वरीय अंशको पुनर्जन्म कैसा? जैसे-जैसे परिवर्तन कोशोंमें होने लगते हैं वैसे-ही-वैसे मनुष्यके चारों ओरके वातावरणमें भी परिवर्तन देखनेमें आते हैं। कोशोंके कर्मोंका यह परिणाम है। जैसा परिवर्तन वैसा ही निराला प्रकम्पन और वैसे ही लोग भी निराले। अब जीवात्मारूप परमात्माको मालूम हुआ कि वह कहाँतक अपने प्रयत्नसे सफल हुआ, तो फिर इस नये वातावरणमें और प्रयत्न होता है। इस प्रकार जीवात्मारूप परमात्मासे, अपने नीचेके तीनों कोशोंके प्रकम्पनमें ईश्वरीय प्रकम्पनकी साम्यता लानेकी दृष्टिसे, कई एक नये वातावरण निर्मित होते हैं, टूटते हैं, फिर उनकी जगह और नये-नये रूप खड़े होते हैं। यह बनने-बिगड़नेका खेल तबतक जारी रहता है जबतक इन कोशोंका प्रकम्पन अपने रूपके (जीवात्माके रूपके) अनुकूल न हो जाय।

नीचेके मन, भावना और शरीरके कोशोंमें जीवात्माके अनुकूल प्रकम्पन लानेकी कोशिश इसलिये जारी है कि इन कोशोंको अनादिकालसे, जबसे मनोलोक, भुवर्लोक तथा भूलोक निर्मित हुए तबसे, अपने-अपने लोकके अनुकूल प्रकम्पन पैदा करनेकी आदत हो गयी है। कारण, ये उन-उन लोकोंके अंशमात्र हैं। ये लोक मनुष्य-तत्त्व बननेके पूर्वनिर्मित थे। मनुष्य-तत्त्व पैदा होनेके बहुत पहले ये लोक अपने-अपने नियमके

अनुकूल चल रहे थे। मनुष्य-तत्त्वने आकर इन लोकोंसे थोड़ा-थोड़ा अंश छीनकर अपने कवच बना लिये और अब इन कोशोंके प्रकम्पनको अपने प्रकम्पनके अनुकूल कर लेना चाहा है; परन्तु इन कोशोंको अपने-अपने लोकके नियमके अनुकूल चलनेकी आदत है, और मनुष्य-तत्त्वके निर्मित होनेके बहुत पहलेकी आदतमें एकदम परिवर्तन कैसे हो सकता है? धीरे-धीरे इनमें परिवर्तन लाना पड़ता है। कई एक परिवर्तन इस प्रकारके होनेपर ही उनमें नयी आदत गढ़ सकती है। ईश्वरीय प्रकम्पनका केवल एक कण एकदम परिवर्तन इन कोशोंमें कर नहीं सकता। धीरे-धीरे युक्तिसे उसको यह भयङ्कर परिवर्तनका कार्य करना पड़ता है। उसको इन कोशोंपर धीरे-धीरे असर डालना पड़ता है। जैसे वह अपने केन्द्रसे (ईश्वरीय स्रोत) अधिक शक्ति प्राप्त करने लगता है वैसे ही कोशोंको सुधारनेका काम शीघ्र होने लगता है। इन कोशोंको अपने जड़ प्रकम्पन (मूल-प्रकम्पन) से शुद्ध करनेका जो कार्य मनुष्य-तत्त्व कर रहा है उसको धर्मने पुराणोंमें काव्यमयी भाषामें देव-दानव-संघर्षके नामसे वर्णन किया है। इसी संघर्षको शास्त्रकारोंने जीव और प्रकृति या जड और चेतनका संघर्ष कहा है। इसी संघर्षमें प्रकृति और पुरुष, द्वैत-अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और शक्तिविशिष्टाद्वैतके रहस्य छिपे हुए हैं।

जब ईश्वरीय कण भू-शरीरमें पहुँचता है, वह देखता है कि अपने चारों ओर विभिन्न प्रकारके प्रकम्पन हैं जो कि अपनेसे कहीं जड और स्थूल हैं। अब ईश्वरीय प्रकम्पन और इन जड प्रकम्पनोंमें संघर्ष छिड़ जाता है। भू, भुवः और मनःशरीरके स्थूल प्रकम्पनोंको धर्मने 'कु-संस्कार'के नामसे पुकारा है। कभी-कभी इन शरीरोंके मूल प्रकम्पनके कार्यको 'पाप'के नामसे भी पुकारा गया है और इन मूल प्रकम्पनोंको जीवात्माके प्रकम्पनके अनुकूल बनानेमें जो मेहनत की जाती है उसको धर्मने 'पुण्य' कहा है। इन्हें दूसरे शब्दोंमें धर्मने यों कहा है—'तामसिक प्रवृत्तियोंको सात्त्विक वृत्तियोंमें बदलनेहीसे मनुष्य मुक्तिके द्वारपर जल्दी पहुँच सकता है। नहीं तो, वह इस भवसागरसे पार पा नहीं सकता और जन्म-मृत्युके बन्धनमें पड़कर दुखी रहता है।' जब उसको यह ज्ञान हो जाता है, जब उसको 'वैराग्य' प्राप्त हो जाता है, तब वह विवेकसे काम लेने लगता है और शीघ्र-से-शीघ्र उल्लिखित शरीरोंके मूल प्रकम्पनोंमें परिवर्तन लानेको उद्यत हो जाता है। वह अब समझने लगता है कि जितना शीघ्र आगे बढ़े उतना ही अच्छा, नहीं तो जड और स्थूल प्रकम्पनोंमें फँसकर दिन काटने पड़ेंगे। वह तबसे अधिक मेहनत करने लगता है और शीघ्र-से-शीघ्र ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल इन शरीरोंके प्रकम्पनोंको चलानेकी कोशिशमें दिन बिताने लगता है। इस मेहनतको धर्म कहता है कि अमुक मनुष्य 'पथ'पर है। वह आदमी 'प्रवृत्ति-मार्ग' छोड़कर 'निवृत्तिमार्ग'पर चल रहा है और सत्कर्ममें प्रवृत्त है। यों तो मनुष्य बिना मेहनत किये पिपीलिका (चींटी) की चाल चलकर भी धीरे-धीरे अपनी प्रगति कर सकता है और स्थूल प्रकम्पनोंमें परिवर्तन ला सकता है, परन्तु इसमें लाखों वर्ष लग जाते हैं। यदि एक मनुष्य धीरे ही चलना चाहता हो तो उसे कौन रोके? पर इससे उसको अधिक दुःख भोगना पड़ेगा। पर इसके लिये भी वह तैयार हो तो हम क्या कर सकते हैं?

अब हम शरीर-कवचको ही लें और उसके स्थूल प्रकम्पनपर जरा विचार करें—

शरीर-कवचके अपनी सुस्ती, (जैसे निद्रा आदि), ढीलापन, अधिक देरतक सोना, खाने-पीनेमें संयम न रखना, नस्य सूँघना, सिगरेट पीना, शराबका आदी होना, भाँग-चरसका शिकार होना, कामवासनाके वशमें रहकर उसे तृप्त करना, सफाईका ख्याल न रखना, गंदे स्थानोंमें रहना आदि बुरी आदतोंके कारण, कुसंस्कारोंके कारण,

जड प्रकम्पनोंके कारण शरीरकी नसोंमें ढिलाई आ जाती है। शरीरमें प्राणशक्तिका सञ्चार यथायोग्य नहीं हो पाता और इस कारण शरीर कमजोर हो जाता है। इस बातको हर कोई आदमी जानता है। यदि अपने शरीरको संयमित, स्फूर्तियुक्त और सुदृढ़ बनाना हो और उसे निरन्तर प्राणशक्तिसे संचरित कराना हो तो खाने-पीने, पहनने तथा रहने आदिकी ओर उसको उचित ध्यान देना ही होगा। उसे एक 'घुड़-दौड़' के घोड़ेकी तरह उचित रीतिसे पाल-पोसकर रखना होगा। तभी वह अपने स्थूल प्रकम्पनसे अथवा तामसिक दुर्गुणोंसे मुक्त होकर रजोगुणमें परिवर्तित होगा और रजोगुणके आहार-विहार, रहन-सहनसे भी मुक्त होकर पूर्ण सात्त्विक गुणमें परिवर्तित होगा। धर्ममें रजोगुणका जो वर्णन है, वह विकासके पथकी अध-बीचकी अवस्था है। मनुष्य अपने प्रकम्पनको एकदम तेज नहीं बना सकता, धीरे-धीरे कर सकता है। यह सारी दौड़-धूप उस समयतक है जबतक कि शरीर-कवचका प्रकम्पन जीवात्माके अनुकूल न हो। जब यह कार्य हो जाता है तब शरीर-कवच जीवात्माके अनुकूल प्रकम्पन पैदा करने लगता है। यद्यपि वह अपने चारों ओर भूलोकके प्रकम्पनसे आच्छादित रहेगा और उसका अनुभव लेता रहेगा, फिर भी वह उसका शिकार नहीं होगा।

अब हम भूकोशसे भी सूक्ष्म 'भुवः' कोश या भावना कोशको लें। भय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि अवगुणों अथवा तामसिक गुणोंसे अथवा वस्तुओंसे भावना कोशका स्थूल प्रकम्पन बना है। इन तामसिक गुणोंके हजारों रूप देखनेमें आयेंगे। इनसे मुक्त होनेपर ही वह स्थूल प्रकम्पन, तेज--सूक्ष्म प्रकम्पनमें बदल सकता है। इन तामसिक गुणोंकी जगह शुद्ध प्रेम, दया, करुणा, गम्भीरता, प्रशान्तता, धैर्य, उच्च-आकांक्षा, उत्साह, उदात्त भावना और त्याग आदि सात्त्विक तत्त्वोंको लाना है। इसलिये इन तामसिक गुणोंकी जगह धीरे-धीरे रजोगुणका प्रकम्पन पैदा किये जानेकी कोशिश होती है। मनुष्य स्वार्थवश होकर प्रेम करना सीखता है, धैर्यसे काम लेता है। पहले उसका प्रेम बहुत ही स्वार्थी होता है, फिर वह अपने कुटुम्बकी ओर बढ़ता है, फिर अपने समाज और जातिकी ओर बढ़ता है, फिर राष्ट्र और अन्तमें विश्वप्रेममें परिणत हो जाता है। इसी प्रकार अन्य सात्त्विक गुणोंके बारेमें कह सकते हैं। जब यह स्थिति प्राप्त हो जाती है तब भावना-कोशका सम्बन्ध जीवात्मासे हमेशाके लिये जुड़ जाता है और उसके अपने लोकका सम्बन्ध हमेशाके लिये टूट जाता है। यद्यपि वह अपने चारों ओरके भुवर्लोकके वातावरणसे परिचित रहता है, फिर भी वह उससे मिलता-जुलता नहीं। मिलता भी कैसे, जब उसके प्रकम्पनमें एक निराला तत्त्व काम कर रहा है।

इसी प्रकार मनोमय कोशमें भी अपने ढंगका स्थूलत्व है, यद्यपि वह कोश भावना-कवचसे अधिक सूक्ष्म है। यही स्थूलता उसको जीवात्माके अनुकूल चलने नहीं देती। कुविचार, स्मृति, विश्लेषणात्मक बुद्धि आदि तत्त्व उसकी स्थूलताको कायम रखते हैं। उनकी जगह, उसमें उदात्त विचार, संयोजनात्मक दृष्टि, उच्च ध्येय तथा आकाङ्क्षा और आदर्श आदिको लाना है। ये सात्त्विक गुण शुद्ध रूपमें रहने चाहिये। अर्थात् यदि उनमें त्याग नहीं रहा, स्वार्थ रहा, तो 'रजोगुण'में परिवर्तित हो जाते हैं। परन्तु विकासकी दृष्टिसे रजोगुणका उद्भव होना आवश्यक है, फिर धीरे-धीरे उनको सात्त्विक रूपमें परिणत करना होगा। यह अध्ययनसे, ध्यानसे और मनसे किया जाता है। तब मनमें स्थिरता और एकाग्रता आदि अच्छी आदतें पैदा होती हैं और जीवात्माके साथ उसका तादात्म्य होने लगता है। यह तादात्म्य होना बहुत जरूरी है, कारण, मनको इन्द्रियोंका राजा कहा गया है और यदि मनमें सात्त्विक भावनाओंका संचार होने लग जाय तो भू और

भुव: शरीरोंको अधिक शीघ्र काबूमें ला सकते हैं, और उनके प्रकम्पनमें अधिक शीघ्र तेजी ला सकते हैं। अतएव मनकी स्थूलताको शीघ्रातिशीघ्र दूर करने-का काम जारी रहना चाहिये । जब मनोमय कोशका सम्बन्ध जीवात्मासे होने लगता है तो उसका नाता मनोलोकसे टूट जाता है और फिर वह उसके स्थूल प्रकम्पनसे प्रभावित नहीं होता ।

जब यह कार्य हो गया तो फिर जीवात्माके दोषोंको दूर करनेके कार्यमें मनुष्य-तत्त्व लग जाता है। पहलेके तीन कोशोंको शुद्ध करना बहुत ही आवश्यक समझा गया है। कारण यह है कि ये तीनों कोश अपेक्षाकृत अधिक स्थूल हैं और इनको तेज करनेमें काफी समय लग जाता है। इन तीनों कोशोंके मिश्रित रूपमें कितने ही प्रकारकी खराबियाँ होती हैं और तामसिक गुण होते हैं। ये ही खराबियाँ इन कोशोंको जीवात्माके अनुकूल कार्य नहीं करने देती हैं, जिनको दूर करनेकी दृष्टिसे धर्मने कितने ही प्रकारके नीतिमार्ग बताये हैं। नीति-के उपदेश देनेका कारण यही है कि उसके आचरण-से कोशोंकी स्थूलता दूर होकर उसकी जगह सूक्ष्मता आ जाय । वह दीर्घकालसे डाली गयी कोशोंकी आदत एकदम छूटनी कठिन है। बार-बार नीतिके रूपमें चेतावनी दी जानेपर ही उसपर कुछ असर हो सकता है। कहावत है—'रसरी आवत-जातके सिलपर होत निशान' । इन नीतिके आदेशोंके अतिरिक्त धर्मने संध्या, पूजा, सेवा, जप, उपासना, ध्यान, प्रार्थना, उपवास आदि व्रत और नवविधा भक्ति आदि कितने ही प्रकारके आचरण जीवनमें लानेके लिये कहा है। ये सब आचरण इसी उद्देश्यसे काममें लाये जाते हैं कि जिसमें इन नीचेके कोशोंका स्थूल प्रकम्पन दूर होकर, जीवात्माके अनुकूल कार्य करने लग जाय ।

यहाँपर गीताका वह श्लोक याद आता है जिसमें यह कहा गया है कि 'मनुष्यको फलाकाङ्क्षा न रखते हुए कर्म करना चाहिये ।' इसका यह मतलब है कि मनुष्यको चाहिये कि वह अपने पहलेके तीनों कोशोंके प्रकम्पनको जीवात्माके अनुकूल बनावे। जब यह बात होगी तो मनुष्यको अनुभव होगा कि जीवन एक है और एक ही स्रोतसे जीवनके विभिन्न रूप देखनेमें आ रहे हैं। अर्थात् कोशोंके तामसिक गुणोंको दूर करके उनकी जगह सात्त्विक गुण भर देना है। जबतक यह बात नहीं होगी तबतक फलाकाङ्क्षारहित कर्म हो कैसे सकता है ? भगवान् बुद्धने इन्हीं तीनों कोशोंको शुद्ध करनेकी दृष्टिसे अष्टाङ्गमार्गका उपदेश दिया था। वह अष्टाङ्गमार्ग यह है—सच्ची श्रद्धा (मनुष्य ईश्वर-स्वरूप है), सच्चा विचार (ईश्वरसे मिलते-जुलते उदात्त विचार), सच्चा वाक् (सत्य बोलना अर्थात् ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल कार्य करना), सच्चा कार्य (ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल आचरण), सच्ची कमाई (सत्यता-पर स्थित अर्जन), सच्चा प्रयत्न (ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल प्रयत्न), सच्ची स्मृति (मनुष्य ईश्वरीय अंश है—इसकी भावना) और सच्चा ध्यान (ईश्वरीय तत्त्वका ध्यान) । वेदान्तकारोंने भी इसी उद्देश्यको प्राप्त करने-के लिये साधन-चतुष्टयका आचरण जीवनमें लानेके लिये कहा है ।

जब यह कार्य समाप्त हो जाय तो धीरे-धीरे जीवात्माके प्रकम्पनको आत्माके प्रकम्पनके अनुकूल चलानेका प्रयत्न शुरू होना चाहिये । यद्यपि जीवात्माका प्रकम्पन बहुत ही सूक्ष्म है और यद्यपि उसके प्रकम्पन-से यह अनुभव प्राप्त होता है कि सारा जीवन एक है और एक ही स्रोतसे विभिन्न रूप निर्मित हुए हैं; फिर भी उसमें भी 'मैं हूँ' का अहंकार, उसके प्रकम्पन-को आत्माके अनुकूल नहीं चलने देता । यही उसके अंदरका स्थूलत्व है। यही उसके अंदरका तामसिक गुण है। इस दोषको दूर करनेमें ही उसकी प्रगति प्राप्त करना है। उसमें यह भावना लानी चाहिये कि

'मैं परमेश्वरका अंश हूँ और मैं परमेश्वरसे भिन्न नहीं हूँ।' यह भावना उसके प्रकम्पनको आत्माके अनुकूल कर देती है। यहाँपर गीताके वे वाक्य याद आते हैं, जिनमें यह कहा गया है कि यह सारा ब्रह्माण्ड और उसके जीवादि मेरा अंश है, और जो कुछ कार्य बाह्य जगत्में हो रहा है, वह सब कुछ ईश्वर ही कर रहा है मनुष्य नहीं। (यहाँ मनुष्यका अर्थ जीवात्मा-स्वरूप मनुष्य है) इसी गीताके विचारको योगी अरविन्दने 'दिव्य कर्मयोग'के नामसे पुकारा है। इसका यह अर्थ है कि आत्माके नीचे विभिन्न कोशोंमें जो कार्य हो रहा है, वह आत्माके प्रकम्पनके कारण हो रहा है। वह ज्ञान तभी होगा जब मनुष्यके अन्य कोश आत्माके प्रकम्पनके अनुकूल चलने लगेंगे।

अब आत्माके प्रकम्पनको अनुपादि, आदि तथा परमेश्वरके प्रकम्पनके अनुकूल चलानामात्र रह गया है। इस दुनियाकी दृष्टिसे यह विकासकी अन्तिम सीढ़ी है। आत्मशक्ति तो बहुत ही विचित्र शक्ति है, फिर भी उसके प्रकम्पनमें वह रुकावट कैसी जो ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल कार्य करने नहीं देती ? वह दोष कौन-सा है जो अड़चन डालता है ? यद्यपि आत्मामें वह भावना है कि 'मैं ईश्वरका अंश हूँ' परन्तु उसके अंदर 'मैं ही ईश्वर हूँ' की भावना नहीं है। यही उसकी कमी है। इसी प्रकार ऊपरके दो कोश अनुपादि और आदिमें, इसी बातकी थोड़ी बहुत मात्रामें कमी है। इसी स्थूलतासे इन कोशोंको मुक्त करना है। जब ये कोश इस कमीसे दूर हो जाते हैं, तो उनके प्रकम्पन ईश्वरीय तत्त्वके प्रकम्पनके अनुकूल चलने लगते हैं। तभी हम देखते हैं कि ईश्वरीय प्रकम्पनके अनुकूल सातों कोश चलने लगते हैं और अपने-अपने लोकमें ईश्वरीय-शक्तिका प्रकाश फैलाने लगते हैं। यद्यपि वे अपनी-अपनी दुनियासे परिचित रहते हैं फिर भी उनके कार्यसे अलिप्त रहकर अपना-अपना कार्य करना शुरू कर देते हैं। भिन्न-भिन्न लोकोंमें यही कार्य भिन्न-भिन्न रूपोंमें चलता रहेगा। तभी हम कह सकेंगे कि मनुष्य 'सच्चा मनुष्य' बन गया।

यहाँपर यह शङ्का जरूर उठती होगी कि मनुष्यको एक कोशके बाद दूसरे कोशको शुद्ध करना है या एक ही साथ सभी कोशोंको शुद्ध करना होगा। यह शङ्का इस उत्तरसे अवश्य दूर हो सकेगी कि सभी कोश हर समय बराबर कार्य करते ही रहते हैं। जब हमें यह बात मालूम हो जाती है कि कोशोंको शुद्ध करनेमें ही हमारी प्रगति है तो हम सभी कोशोंकी प्रगतिका खयाल एक साथ करने लगते हैं। फिर भी पहलेके तीन कोशोंपर अधिक जोर देने लगते हैं। कारण, वे बहुत ही जड हैं और उनके प्रकम्पन अधिक स्थूल हैं। ये कोश एक घड़ीके अंदरके चक्रकी तरह हैं। जब सेकंड, मिनट और घंटेके चक्र बराबर अपनी-अपनी रफ्तारसे घूमने लगते हैं, तभी चौबीस घंटेका चक्र भी घूमने लगता है। अतएव उन नीचेके कोशोंपर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है, परन्तु बहुधा यह देखनेमें आता है कि मनुष्यके सभी कोश एक-सी प्रगति नहीं करते। यदि कुछके भावना-कोश अधिक विकसित हों तो कुछके मनोकोश अधिक विकसित होते हैं, और कुछका शारीरिक कोश बहुत ही शुद्ध देखनेमें आता है। अतएव जैसी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति मनुष्यकी हैं वैसी ही प्रगति इन कोशोंमें देखनेमें आती है। यह प्रवृत्ति और मनोवृत्ति मनुष्यके विभिन्न कर्मों तथा उनके फलोंपर निर्भर है। एक तेज मनुष्य कर्मकी पाठशालामें शीघ्र प्रगति पाता है, दूसरा कर्मकी पाठशालामें प्रगति शीघ्र नहीं कर पाता और तदनुकूल ही उसके कोशोंमें प्रगति देखनेमें आती है।

तब हम देखते हैं कि ईश्वरीय साक्षात्कार होनेतक मनुष्यको निरन्तर कार्य करना पड़ता है। अतएव कर्ममार्गकी 'इतिश्री' पहले तीन कोशोंतक ही सीमित

नहीं है, परन्तु सातों कोशोंको शुद्ध करनेतक कर्म होता रहता है। जैसा पाप और पुण्य इन नीचेके तीन कोशोंके कार्यको अथवा प्रकम्पनको देखकर कहते हैं वैसा जीवात्मा और उसके ऊपरके कोशोंके बारेमें भी कह सकते हैं। परन्तु वे कोश अधिक सूक्ष्म होनेसे 'पाप-पुण्य' शब्द उनके सम्बन्धमें प्रयुक्त करना अशास्त्रीय समझा जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्यको निरन्तर प्रयत्न करते रहना पड़ता है। प्रगतिकी पहली सीढ़ीपर चढ़ा तो दूसरी सीढ़ी चढ़नेके लिये सामने मौजूद है। इस प्रकार दूसरी सीढ़ीके बाद तीसरी सीढ़ी, तीसरीके बाद चौथी,—असंख्य सीढ़ियों-की प्रगति उसके सम्मुख है। उसकी प्रगतिका अन्त नहीं है। उसके कोशका कार्य रुकता नहीं। उनके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रकम्पनकी ओर ले जानेमें ही उसके प्रयत्नकी सफलता है। इसीको अंग्रेजीमें Creative work (क्रियात्मक कार्य) कहते हैं।

अबतक 'सच्चे मनुष्य' का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया, परन्तु आम तौरपर 'मनुष्य' कहते ही दुनियाका खयाल और हो जाता है। दुनिया 'मनुष्य' उसे समझती है जो विचार, भावना और कार्यका एक पुलिंदा है। यदि ये तीनों बातें एक मनुष्यकी अच्छी हों तो उसे दुनिया सच्चा कहती है। यदि एक व्यक्तिके एक कोशसे कुछ स्थूल प्रकम्पन दिखायी दिये अथवा कुछ बुरी बातें दिखायी दीं तो उसे एकदम बुरा ठहरा देती है। उसे 'काल' का कुछ खयाल ही नहीं है। वह मनुष्य अपने एक कोशके स्थूल प्रकम्पनके कारण सदाके लिये 'खराब हो गया'। इसी प्रकार एकके मानसिक कोशका प्रकम्पन स्थूल देखनेमें आया तो वह भी बुरा ठहराया गया। क्या उसके एक कोशके स्थूल प्रकम्पनके कारण उसको खराब ठहराना ठीक है? किसको क्या मालूम, उसका यह कोश बहुत हदतक ठीक हो और कुछ-एक कमजोरी ही बाकी रह गयी हो, और उसे शुद्ध करनेकी कोशिश चल रही हो। उस हालतमें उसको 'खराब' कैसे ठहरा सकते हैं? इसके अतिरिक्त उसके और संभवतः कोश अच्छे हों। फिर वही,एक कोशके कुछ-एक कमजोरियोंके कारण, 'खराब' कैसे? मान लें, एक-कुछ नशेबाज है। वह दयालु होगा, महान् विचारवान् होगा और महान् आदर्शवान् भी होगा। क्या उसको नीच ठहराना ठीक है? किस आधारपर दुनिया उसको नीच ठहरानेका हक रखती है? यह भी दुनियाको मालूम नहीं कि वह मनुष्य कितने जन्म लेकर, अर्थात् कितने अनुभव लेकर फिर इस दुनियामें आया होगा। उसमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों और उनको दूर करनेकी दृष्टिसे फिर उसने कोशोंको धारण किया होगा। ऐसी हालतमें वह हमेशाके लिये दोषी कैसे? इस प्रकार दुनियामें भिन्न-भिन्न प्रकारके व्यक्तित्व देखनेमें आते हैं। यदि एकका भावना-कोश खराब हो तो दूसरेका मानसिक कोश खराब होगा, तीसरेका शारीरिक और चौथेके हर कोशमें कुछ-कुछ कमजोरी रह गयी होगी। दुनियामें ऐसी हालतमें बहुत ही कम लोग मिलेंगे जिनका हर कोश शुद्ध हो। फिर दुनिया सभीको खराब क्यों नहीं ठहराती? एकको 'उच्च' और दूसरेको 'नीच' साबित करनेकी कोशिशमें क्यों रहती है?

अतएव हम इस नतीजेपर पहुँचते हैं कि बहुत कम मनुष्य इस दुनियामें परिपूर्ण हैं। ऐसे आदमी इस दुनियामें विरले ही हैं कि जिन्होंने 'सच्चे मनुष्यत्व'को प्राप्त किया है। हर एकमें एक-न-एक कोशका दोष है। कुछमें एक ही कोशकी खराबी हो तो दूसरेमें दो-चारकी होगी। परन्तु सभी लोग विकासके पथपर हैं। यदि एक आगे हो तो दूसरा कुछ पीछे। चूँकि एक पीछे है इसलिये उसकी निन्दा करके उसको खदेड़ना नहीं चाहिये। क्या एक ईश्वरीय अंशको दूसरे ईश्वरीय अंशके प्रति ऐसा करना ठीक है? अपने अंदर ईश्वरत्व रखकर दूसरेकी निन्दा कैसे की जा सकती है?

दूसरी बात यह है कि हर समय हरेक कोश निरन्तर लहराता-थरथराता रहता है और इस थरथराहटके कारण हर समय परिवर्तन होता रहता है। इस समय

जो बात है दूसरे क्षणमें वह नहीं रहती। इस प्रकार निरन्तर परिवर्तन होते रहना कोशोंका लक्षण है। सम्भव है कि एक मनुष्य, जिसकी हमने अभी-अभी निन्दा की है, दूसरे ही क्षणमें महान् परिवर्तन कर बैठे। कौन जाने उसमें पुराणप्रसिद्ध अजामिल-परिवर्तन देखनेमें आ जाय। जैनियोंका वह 'स्यादवाद' कितना वैज्ञानिक जँचता है। दूसरे सेकंडमें कौन क्या हो, इसको कौन कहे? एकके मानसिक कोशमें प्रचण्ड परिवर्तन हुआ होगा, दूसरेके प्रतिभा कोशमें, तीसरेके शारीरिक और चौथेके भावना-कोशमें। यद्यपि उनके अन्य कोशोंमें परिवर्तन न देखनेमें आता होगा। अतएव दूसरेके प्रति शङ्का न करके, सहानुभूति दिखानी चाहिये। शङ्का करना भी प्रगतिके मार्गमें रोड़ा अटकाना है। ऐसी हालतमें दूसरेके प्रति प्रेम करना आवश्यक हो जाता है। ऐसा करनेसे धीरे-धीरे हमारे अंदरके सारे भेदभाव अपने-आप मिट जाते हैं। हमको यह अनुभव होने लगता है कि हम और वह दूसरा अजनबी, जिसकी हमने निन्दा की थी, एक है। अलग-अलग नहीं हैं। इसी प्रकारकी समझदारीमें विश्वबन्धुत्व बढ़ता है। मनुष्य विश्वको ही नहीं सारे ब्रह्मांडको एक कुटुम्ब-जैसा समझने लगता है। इतना ही नहीं, वह प्राणिकोटि और सस्यकोटिसे भी अपना बन्धुत्व जोड़ता है। क्योंकि वह समझता है कि, वे निम्नकोटिके जीव भी ईश्वरके ही अंश हैं, जिस ईश्वरका वह स्वयं अंश है, और उनकी उन्नतिमें अपनी उन्नति देखता है। जब इस प्रकार मनुष्य 'सचा-आदमी' बननेका प्रयत्न करेगा, तब विश्वमें अशान्ति क्यों रहेगी? अराजकता, शत्रुता और भिन्न-भिन्न भेदभाव क्यों रह सकेंगे? ऐसे भी व्यक्ति दुनियामें हो गये हैं, जिन्होंने इस 'सच्चे मनुष्यत्व' को प्राप्त कर लिया है, जो इस जीवनके विज्ञानको भलीभाँति समझ गये हैं, और जो जीवनके डाक्टर बनकर अपने मानव-भाईके उद्धार करनेके लिये सतत प्रयत्न कर रहे हैं। वे अपने मानव-भाईके अंदरकी बीमारी दूर करनेके लिये उपदेशके रूपमें नुसखा भी दे रहे हैं। ये ही उपदेश 'धर्म' के नामसे प्रचलित हैं। भिन्न-भिन्न देश, काल और परिस्थिति-के अनुकूल ये उपदेश दिये गये और उपदेशको सफल बनानेकी दृष्टिसे कितने ही प्रभावशाली मानव-भाइयोंसे काम लिया और ले भी रहे हैं। ये ही उपदेश भिन्न-भिन्न धर्मके नामसे प्रचलित हैं और सुन्दर कार्यका आवरण पहनकर दुनियाकी नजरमें आये हैं। परन्तु दुनियादारोंने उनमें, एक दूसरेमें फरक लानेकी कोशिश की और उनको अधिक आडम्बरसे आच्छादित कर दिया। इसका यह परिणाम हुआ कि आज धर्मके भाइयोंमें झगड़ा होने लगा है और दुनिया इन झगड़ोंका अड्डा बन गयी है।

अब हमें असलियतको जानकर धार्मिकरूपमें और काव्यमयी भाषामें जो जीवनका विज्ञान समझाया गया है, उसको सरल वैज्ञानिक भाषामें समझाना होगा और दुनियाके हरेक मनुष्यको अपने कर्तव्य-पथपर लाना होगा। इन जीवनके महान् डाक्टरोंने जो मार्ग दिखलाया है, उसपर हमें चलना होगा और विश्वमें विश्व-बन्धुत्व और विज्ञानके आधारपर स्थित विश्वधर्मका प्रचार करना होगा। तभी हममें, व्यक्तिगत रूपमें, अपने-अपने कोशोंमें जो अराजकता फैली है और समष्टिकी दृष्टिसे, दुनियामें विभिन्न भेदोंके रूपमें जो अराजकता फैली है, उनको मिटाकर हम 'सच्चा मनुष्यत्व' या 'सच्चा स्वराज्य' स्थापित कर सकेंगे। तभी हमारे कर्तव्यकी 'इतिश्री' होगी, तबतक नहीं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

'प्रकाश मन्द जलता है, मैं हूँ (वह प्रकाश)। ब्रह्मकी ज्योति जलती है, वह मैं हूँ। जो कुछ मैं हूँ, मैं ब्रह्म हूँ। मैं हूँ, मैं ब्रह्म हूँ। मैं, अकेला मैं हूँ। मैं अपनेको होम देता हूँ।'

हरिजन-मन्दिर-प्रवेश

(लेखक—श्रीमदनगोपालजी सिंहल)

इधर कुछ समयमे समाचारपत्रोंने पुनः अन्त्यजों-के मन्दिरप्रवेशकी चर्चा प्रारम्भ कर दी है और यदा-कदा अन्त्यजोंके लिये मन्दिरोंके खुलनेके समाचार भी प्रकाशित होने लगे हैं। सर्वसाधारणमें कहा जा रहा है कि भगवान्‌के सभी पुत्र हैं—चाहे वह ब्राह्मण हो और चाहे अन्त्यज; फिर भगवान्‌के मन्दिरमें कोई व्यक्ति प्रवेश कर सके और कोई नहीं—यह भेद-भाव उचित नहीं। साथ ही आजकी राजनीतिक परिस्थिति-की दुहाई भी इस सम्बन्धमें दी जाती है। मि० जिन्नाने वाइसरायकी कार्यकारिणीमें मुस्लिम सीटपर श्रीमण्डलको नियुक्त कर अन्त्यजोंको अपनी ओर आकर्षित करनेका जो प्रयत्न किया है, उसका विशेष उल्लेख अन्त्यजोद्धार अथवा मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नके अवसरपर इस समय हो रहा है। हमने अनेक प्रभावशाली, सुशिक्षित और समझदार व्यक्तियोंके मुखसे ये शब्द सुने हैं कि यदि इस समय यह कार्य न किया गया तो अन्त्यज मुसल्मान अथवा ईसाई हो जायँगे और इस प्रकार हिंदुओंकी संख्या थोड़ी रह जायगी। उन्हें अपनेमें मिलाये रखनेके लिये यदि उन्हें मन्दिर-प्रवेश-का अधिकार दे दिया जाय तो क्या हानि है? कहीं-कहीं इस प्रश्नपर जनमत लिये जानेकी भी चर्चा चल रही है। इस प्रकार इधर कुछ समयसे दबा हुआ यह अन्त्यज-मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन पुनः जोर पकड़ रहा है और हिंदुओंके मस्तिष्कोंमें उथल-पुथल मचाने लगा है।

यदि गम्भीरतासे विचार किया जाय तो इस अन्त्यजोंके प्रश्नके मूलमें आप ब्रिटिशकी Divide and Rule की नीतिका अस्तित्व ही पायेंगे। आज इस देशके शासक इस देशके अपने निवासी नहीं हैं, किन्तु वे व्यक्ति हैं, जो सात समुद्र पारसे यहाँ शासन करने आये हैं और राजनीतिमें महान् निपुण भी हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि जिस देशमें शासन किया जाता है, वहाँके समस्त निवासियोंको एक नहीं होने देना चाहिये, उनमें फूट पड़ी रहनेसे ही शासकका कल्याण है और यही कारण है कि हिंदू, मुसल्मान, अन्त्यज, मिलमालिक, मजदूर, जमींदार और किसान आदि वर्ग उत्पन्न कर दिये गये हैं जो आज चारों ओर आपसमें लड़ते हुए दीख पड़ रहे हैं। आजसे कुछ समय पहले यह वर्ग नहीं थे। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राममें—जिसे आज विदेशी इतिहासकारोंने सिपाही-विद्रोहका नाम दे रक्खा है—हिंदू और मुसल्मान एक दूसरेसे कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर अपनी जननी-जन्मभूमिके लिये रणक्षेत्रमें उतरे थे। उस समय न मुसल्मानोंकी १४ माँगें थीं और न भारतके खण्ड-खण्ड कर देनेकी योजनाएँ। किन्तु जबसे हमने यह कहना प्रारम्भ किया कि मुसल्मानोंके अभावमें भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम लड़ा ही नहीं जा सकता तभीसे मुसल्मान हिंदुओंसे खिंचने लगे। जैसे-जैसे उन्हें मिलानेका प्रयत्न हुआ वैसे-ही-वैसे मिलनेके लिये उनकी शर्तें बढ़ती गयीं और आज परिस्थिति यह है कि हिंदू-मुसल्मानोंके बीचकी खाई समुद्र-सी बन गयी है जो पटनेमें ही नहीं आती और आज हम इस उदाहरणके रहते हुए भी फिर एक दूसरी भूल करने जा रहे हैं। जिस प्रकार भारतमें शान्ति-पूर्वक बसे हिंदू और मुसल्मानोंको 'एक हो' का नारा लगाकर हमने स्पष्टतया 'दो' बना दिया। उसी प्रकार आज 'हरिजनोंको अपनेमें मिलाओ' की आवाज उठा-कर हम इन्हें भी अपनेसे पृथक् कर देंगे। हिंदू-मुस्लिम-एकताके घोषने मि० जिन्नाको जन्म दिया और हरिजन-

उद्धारके नारेने मि० अम्बेदकरका निर्माण किया। मुस्लिम तो स्पष्टतया अन्यधर्मी थे इसलिये उनकी एकतामें हिंदूके धर्मकी गर्दन न काटी जाकर उनके राजनीतिक अधिकारोंका ही बलिदान चढ़ाया गया; किन्तु चूँकि अन्त्यज हिंदुओंके ही अङ्ग हैं, उनकी प्रसन्नताके लिये स्वतः हिंदूधर्मका ही गला घोंटा जा रहा है, हिंदुओंको ही हिंदू-धर्मका एक अङ्ग बनाये रखनेका नाम लेकर हिंदू-धर्मको ही नष्ट करनेकी योजना बन रही है, राजनीतिकी बलिवेदीपर हिंदू-धर्मका बलिदान दिया जा रहा है।

राजनीति और धर्म पृथक्-पृथक् रहें, इसीमें देशका कल्याण है। भारतीय राजनीतिक जागृतिके जन्मदाता लोकमान्य तिलकने यही समझा भी था, किन्तु जबसे भारतीय राजनीतिकी बागडोर श्रीगांधीजीके हाथोंमें आयी, उन्होंने राजनीति और धर्मका संमिश्रण कर डाला और क्योंकि उन्होंने राजनीतिको धर्मसे पृथक् रखनेका उद्योग न किया, इसीलिये कांग्रेसके प्लेटफार्मपर 'खिलाफत' भी आयी और आज 'हरिजन-मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलन' भी। कांग्रेसके तृतीय अधिवेशनका सभापतित्व करते हुए श्रीबदरुद्दीन तय्यबजीने कहा था कि 'हम कांग्रेसमें केवल उन्हीं प्रश्नोंपर विचार करेंगे जिनका प्रभाव सारे भारतपर पड़े। हम किसी एक खास जातिके प्रश्नोंपर विचार करनेसे अपनेको पृथक् ही रक्खेंगे।' किन्तु इसे कौन नहीं जानता कि खिलाफतका प्रश्न शुद्ध मुस्लिम-प्रश्न था, उससे हिंदुओंको कोई लाभ या हानि नहीं होती थी और इसी प्रकार हरिजनोंके मन्दिरमें जाने-न-जानेका प्रश्न भी शुद्ध हिंदू-प्रश्न है। इससे मुसल्मानोंका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। फिर ऐसे प्रश्नोंको हाथमें लेकर हमारी राष्ट्रीय महापरिषद्ने अपने पूर्वनिर्धारित कार्यक्रमको भुलाकर कुछ उचित किया है यह नहीं कहा जा सकता।

हमने संक्षेपमें इस आन्दोलनमें कांग्रेसकी अनधिकारिता बतानेका प्रयत्न किया है किन्तु प्रश्न हो सकता है कि यदि कोई उचित आन्दोलन है तो अधिकार न रहते हुए भी यदि कांग्रेस उसका सञ्चालन करे तो इसके विरोधका कोई औचित्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि कांग्रेस, जो एक शुद्ध राजनीतिक संस्था है उसके स्वरूपकी रक्षामें हम अपने कथनको जितना भी बल दें वह कम है किन्तु फिर भी हम कुछ समयके लिये इस दलीलको स्वीकार किये लेते हैं। इसका विचार छोड़कर कि इस आन्दोलनका सञ्चालन किसके द्वारा हो रहा है, अब हम आन्दोलनके औचित्यपर ही विचार करते हैं।

यह तो माननेमें कोई भी व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता कि मन्दिरका प्रश्न एक शुद्ध धार्मिक प्रश्न है। मन्दिर कोई सार्वजनिक स्थान नहीं, सड़क या पार्क नहीं, धर्मशाला या होटलकी श्रेणीमें आनेवाला भवन नहीं, उसका निर्माण किसी धार्मिक दृष्टिकोणसे किसी धर्मशास्त्रके अनुसार ही होता है, उसकी स्थापनाके कुछ नियम हैं और उन नियमोंके द्वारा स्थापित होनेपर ही कोई भवन 'मन्दिर'का नाम धारण करता है और किन्हीं विधियोंके सम्पन्न होनेके पश्चात् ही 'पत्थरके खिलौने' देवमूर्तिका नाम प्राप्तकर पूजित होते हैं।

मन्दिरमें 'कुछ' है, उसमें जाने न जानेसे 'कुछ' होता है यह केवल किन्हीं शास्त्रोंके वचनके आधारपर ही कहा जाता है और यदि हम शास्त्रोंके इन वचनोंपर विश्वास कर उन्हें सत्य मानते हैं तो इस सम्बन्धमें शास्त्रोंकी और भी जो-जो आज्ञाएँ हैं; उन्हें भी मानना चाहिये। मन्दिरोंके सम्बन्धमें कोई भी निर्णय केवल शास्त्रके आधारपर ही हो सकता है। इसके लिये और कोई दूसरा आधार है ही नहीं। इसपर जनमतकी बात कहना तो हास्यास्पद ही होगा। यदि किसी बीमारको ओषधि देनी है तो वही ओषधि दी जायगी जिसके लिये एक डाक्टरकी सम्मति होगी। उसके

लिये यदि सौ वकील या बैरिस्टर कोई ओषधि निश्चित करें तो वह स्वीकार नहीं की जा सकती और इसी प्रकार यदि न्यायालयका कोई प्रश्न हो तो उसपर सौ वैद्य या डाक्टरोंकी अपेक्षा एक वकीलकी ही सम्मतिका अधिक मूल्य होगा। इसी प्रकार यदि धर्मके किसी अङ्गके विषयमें हमें कोई निर्णय करना है तो उसके लिये हमें केवल धर्मशास्त्रोंका ही आश्रय लेना होगा, जनमतका नहीं, फिर चाहे वह जनमत कितना भी बड़ा क्यों न हो।

सनातनधर्ममें अन्त्यजोंका उतना ही महत्त्व है जितना ब्राह्मण आदि द्विजातियोंका। यहाँ कोई छोटा है न बड़ा, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार किसी भवनके चार खंभे एक समान महत्त्व रखते हैं और उनमेंसे किसी एकके भी गिर जानेपर भवन गिर सकता है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारों वर्ण भी इस विशाल हिंदू-समाजके भवनको खड़ा करनेके लिये एक-सा ही महत्त्व रखते हैं। किन्तु जिस प्रकार वे चारों खंभे एक स्थानपर नहीं मिलाये जा सकते, उसी प्रकार चातुर्वर्ण्यको भी एकाकार नहीं किया जा सकता। चारों खंभे जिस प्रकार अपने-अपने स्थानपर खड़े रहकर ही उस भवनका अस्तित्व रख सकते हैं, उसी प्रकार चातुर्वर्ण्य भी अपने-अपने वर्णानुसार आचरण करते हुए ही हिंदू-समाजके भवनका अस्तित्व बनाये रख सकते हैं। सनातनधर्ममें ब्राह्मण 'अग्रज' हैं और यह जातियाँ 'अन्त्यज'। अस्पृश्य (untouchable), दलित (depressed), पिछड़े हुए (backward), परिगणित (Scheduled) आदि नाम तो इन्हें उसी ब्रिटिश सत्ताने दिये हैं जिसका कल्याण विभिन्न वर्गोंको पैदा करके भारतमें अपने पैर न उखड़ने देनेकी नीतिको स्वीकार किये रहनेमें ही है। अन्त्यजों और सवर्णोंका सम्बन्ध देखना हो तो किसी देहातमें चले जाइये, वहाँ अब भी इन्हें सम्बोधन करते हुए सम्बन्धियों-जैसे शब्दोंका ही प्रयोग किया जाता है, किन्तु नगरोंमें और विशेषतया वर्तमान राजनीतिक हलचलप्रधान नगरोंमें अन्त्यजों और सवर्णोंकी यह कटुता बढ़ती चली जा रही है। यद्यपि इस कटुताका मूल कारण राजनीतिक है, किन्तु यह मढ़ी जा रही है सवर्णोंके और विशेषतया सनातनियोंके सिरपर, और इस कटुताको दूर करनेका जो साधन हमारे राजनीतिक नेताओंने ढूँढ़ निकाला है, वह इस कटुताको बढ़ानेमें ही सहायक होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

अन्त्यजोंके स्वतः बननेवाले वकीलोंकी ओरसे कहा जा रहा है कि यदि इस समय अन्त्यजोंको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार दे दिया जाय तो यह हिंदुओंमें मिले रहेंगे अन्यथा हिंदुओंसे दूर होकर मुसल्मानोंमें जा मिलेंगे। किन्तु यह प्रश्न पैदा क्यों हुआ? अन्तःकालीन सरकारके निर्माणमें मुसल्मानोंने उन्हें अपनेमें एक सीट दे दी, इसीलिये न? फिर इसका धर्मसे क्या सम्बन्ध और मन्दिरोंसे क्या वास्ता? अन्त्यजवर्ग यदि इसलिये मुसल्मान बननेकी बात कहते हैं कि मि० जिन्नाने एक मुस्लिम सीट एक हरिजन मि० मण्डलको दे दी है तो क्यों न हम उन्हें दो सीट दे दें, जिससे वह मुसल्मान न बनें। दो ही क्या तीन-चार या पाँचों ही सीटें उन्हें देकर भी यदि हम उन्हें हिंदू रख सकें तो इसमें कोई भी सनातनधर्मी विरोध नहीं करेगा। फिर जो प्रश्न सीटोंके देनेसे ही हल होता है, उसमें सनातनधर्मियोंका नाम लेकर उनके धर्मसे खिलवाड़ क्यों किया जा रहा है, यह हमारी समझमें नहीं आता। अभी गत २० अक्टूबरको दिल्लीमें बोलते हुए आल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशनके प्रधान मन्त्री श्रीराजभोजने स्पष्ट कहा है कि 'मन्दिर-प्रवेश या इसी प्रकारके समाज-सुधारकी हमारी कोई माँग नहीं है। हमारी माँग है अन्तःकालीन सरकारमें तीन सीटोंकी और हम अपनी इसी माँगके लिये लड़ रहे हैं। हमारी

समझमें नहीं आता कि हमारे राजनैतिक नेता जो मुसलमानोंको प्रसन्न रखनेके लिये उन्हें उनकी जन-संख्यासे कहीं अधिक अधिकार देते रहे हैं और आज भी देनेको तैयार हैं, अन्त्यजोंकी इस माँगको स्वीकार न कर उन्हें असन्तुष्ट क्यों कर रहे हैं और उन्हें मन्दिर-प्रवेशके आन्दोलनमें फँसाकर मूर्ख बनानेका प्रयत्न क्यों कर रहे हैं? यदि आजकी परिस्थिति उन्हें कुछ राजनीतिक अधिकार देनेके पक्षमें है तो उन्हें वे अधिकार अवश्य मिलने ही चाहिये। राजनीतिमें सब समान हैं—यह हमारा कहना है। किन्तु राजनीतिक अधिकारोंके बदले धर्मसे जो खिलवाड़ किया जा रहा है, वह सर्वथा अनुचित है। अजब तमाशा हो रहा है, वे माँगते हैं अपने सहयोगका मूल्य अन्तःकालीन सरकारमें सीटें और हम उन्हें देना चाहते हैं मन्दिर-प्रवेशका अधिकार!

आज ही नहीं, बहुत समयसे, जबसे गांधीजीने इस आन्दोलनकी कल्पना की है तभीसे अन्त्यज यह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि 'आप हमें जो देना चाहते हैं वह हम माँगते नहीं, किन्तु हम जो माँगते हैं वह आप सुनते ही नहीं।' आजसे बारह-तेरह वर्ष पूर्व जब सबसे पहले यह आन्दोलन चला था उस समय भी डा० अम्बेदकरने स्पष्ट रूपसे कहा था कि 'हम मन्दिर प्रवेशका अधिकार नहीं चाहते' और आज भी उनकी ओरसे यही कहा जा रहा है। कहा जा सकता है कि डा० अम्बेदकर या श्रीराजभोजके शब्दोंको अन्त्यजोंकी आवाज नहीं समझा जा सकता, लेकिन सर्व-साधारण अन्त्यजोंकी आवाज तो आप उनकी आवाज समझेंगे। सन् १९३३-३४ में केन्द्रीय ऐसेम्बलीमें हरिजन-मन्दिर-प्रवेश-बिल उपस्थित हुआ था और उस समय भारत-सरकारने इस प्रश्नपर जनताका मत लिया था, सवर्णोंसे भी इसपर सम्मति माँगी गयी थी और अछूतोंसे भी। उस समयपर जो मत भारत-सरकारको प्राप्त हुए थे, उनके आधारपर बोलते हुए भारत सरकारके होम मेम्बर श्रीहेनरी क्रेकने २३ अगस्त १९३४ को केन्द्रीय ऐसेम्बलीमें कहा था 'दलित जातियोंसे प्राप्त सम्मतियोंसे यह स्पष्ट है कि वे इसकी पक्षपाती नहीं। उनमेंसे बहुत तो स्पष्ट और निश्चितरूपसे इसके विरोधी हैं और जो समर्थक हैं वे भी पूर्णरूपेण नहीं।' होम मेम्बरने बताया था कि 'दिल्लीमें २१ अन्त्यज संस्थाओं या व्यक्तियोंकी सम्मति मिली जो सभी इस बिलकी विरोधी हैं। सी० पी० सरकारने बताया है कि उस प्रान्तकी दलित जातियाँ इसकी समर्थक नहीं। बिहार और उड़ीसा-की सरकार कहती है कि दलित जातियोंको मन्दिर प्रवेशके अधिकारकी इच्छा नहीं है। मद्रास और बंगालकी सरकारोंने पृथक् रूपसे उनकी सम्मति उद्धृत नहीं की। पंजाबके हरिजन इसे पसंद नहीं करते। शिमलाकी वाल्मीकि सभाने लिखा है कि हम सवर्ण हिंदुओंके मन्दिरोंमें जाना नहीं चाहते, हमारे अपने मन्दिर हैं। बम्बईकी सरकार कहती है कि दलित जातियाँ इस बिलकी विरोधी हैं। अ० भा० धोबी पंचायतने बिलका विरोध किया है। कुमायूँके डोम और शिल्पकार भी इस बिलको शङ्काकी दृष्टिसे देखते हैं। संयुक्तप्रान्तकी सरकारने लिखा है कि दलित जातियोंमेंसे कुछ इस ओरसे उदासीन हैं और कुछ निश्चितरूपसे इसकी विरोधी हैं।' माननीय होम मेम्बरके इस वक्तव्यसे यह स्पष्ट है कि समस्त भारतके अन्त्यज सवर्णोंके मन्दिरोंमें प्रवेशको उचित नहीं समझते और इनके विरोधी हैं और क्योंकि उस समयसे आजतक इस प्रश्नपर फिर कभी उनका मत नहीं लिया गया है इसलिये इस प्रश्नपर आज भी उनका मत वही है—यह मानना पड़ेगा।

ऐसी परिस्थितिमें यह कहना कि हरिजन सवर्णोंके मन्दिरोंमें प्रवेशका अधिकार चाहते हैं—भ्रम फैलानेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। रही सवर्णोंके मतकी

बात—वे तो सरकारी रिपोर्टके अनुसार सन् ३३-३४ में भी ९५ प्रतिशत इसके विरोधी थे और आज भी हैं। और यदि बहुमत इसके पक्षमें भी हों तो क्या देव-मन्दिर अन्त्यजोंके लिये शास्त्राज्ञा न होते हुए भी खोले जा सकते हैं? यदि कहींका जनमत यह निर्णय कर दे कि अमुक आर्यसमाज-मन्दिरमें देवमूर्तिकी स्थापना कर दी जाय तो क्या कोई आर्यसमाजी इसपर शान्त बैठा रह सकता है या जनमतकी दुहाई दी जाकर वहाँ मूर्तिकी स्थापना की जा सकती है? जब आर्य-समाजके सिद्धान्तोंके विपरीत होनेके कारण जनमतका बाहुल्य रहते हुए भी आर्यसमाज-मन्दिरमें देवप्रतिमाका स्थापन नहीं किया जा सकता तो सनातनधर्म शास्त्रों-की आज्ञाओंका अस्तित्व रहते जनमतके आधारपर देवमन्दिरोंमें अन्त्यजोंका प्रवेश कैसे हो सकता है?

सवर्णोंके मन्दिरोंमें अन्त्यजोंको प्रवेशाधिकार नहीं है तो शास्त्रदृष्टिसे इसका भी कोई कारण है। सनातन-धर्मी व्यर्थ ही इस आन्दोलनके विरोधी नहीं हैं। शास्त्रके कथनानुसार—महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्माजी चतुर्वेदीके शब्दोंमें 'मूर्तियाँ दो प्रकारकी होती हैं—एक प्राकृत और दूसरी संस्कृत। प्राकृत मूर्ति जैसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, पृथ्वी, समुद्र, हिमालय, गङ्गा, यमुना, पीपल आदि—यह सब शास्त्रोंमें ईश्वरकी मूर्ति मानी जाती हैं और इनके द्वारा भी ईश्वरोपासना होती है। इनके दर्शन, स्पर्शन, प्रणाम आदिसे कोई किसीको नहीं रोक सकता। सब द्विजलोग भी प्रातः सूर्यमण्डल-स्थित भगवान्की उपासना करते हैं, अन्त्यज भी उक्त मूर्तियोंमेंसे कहीं भी उपासना करे—कौन उन्हें रोक सकता है? श्रद्धा और भक्ति चाहिये। दूसरी जो संस्कृत मूर्तियाँ हैं उनका वैदिक मन्त्रोंसे संस्कार होता है, उनमें प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। जिनका संस्कार हो गया, उनके द्वारा उपासनाका अधिकार उन्हींको हो सकता है, जिनका संस्कार हुआ हो। असंस्कृत पुरुष संस्कृत मूर्तियोंके द्वारा उपासना नहीं कर सकते।' यही वह आधार है जिसके कारण धर्मशास्त्र अन्त्यजोंको वैदिक मन्त्रोंसे प्रतिष्ठित देवमन्दिरोंमें जानेसे रोकता है। शास्त्र कहता है कि 'विधिपूर्वक प्रतिष्ठित मन्दिरोंमें षोडशोपचार पूजनसे जो पुण्य एक द्विजको प्राप्त होता है वही पुण्य एक अन्त्यजको मन्दिरके शिखर-दर्शनसे प्राप्त होता है।' यदि शास्त्रके वचनसे मन्दिरमें ईश्वरका अस्तित्व माना जा सकता है तो इस वचनको भी मानना हमारा कर्तव्य है और इस धर्मके या ईश्वरोपासनाके प्रश्नको राजनैतिक झगड़ोंसे बचाये रखनेमें ही हमारे देशका कल्याण है।

यह तो हुई सिद्धान्तकी बात। अब इस आन्दोलनको सफल बनानेके लिये कांग्रेसद्वारा शासित प्रान्तोंमें इस सम्बन्धमें जो कानून-निर्माणकी बातें हो रही हैं, उसे लीजिये। भारतके ही नहीं, समग्र संसारके सुधारकोंने इसे स्वीकार किया है कि 'समाज-सुधार हृदय-परिवर्तनसे ही सम्भव हो सकता है, बलपूर्वक कानूनद्वारा नहीं।' हरिजनोद्धारके प्रश्नको ही लीजिये। यदि हरिजनोंको मन्दिरोंकी आवश्यकता है तो धार्मिक समाज सदैव उनके लिये मन्दिर बनवानेके लिये तत्पर है। उनके लिये कुओंका प्रबन्ध हो, उनके बच्चोंके लिये शिक्षाकी योजना की जाय, उनकी आर्थिक अवस्था सुधारी जाय, उन्हें दुर्व्यसनोंसे बचानेका प्रयत्न किया जाय, उनके उचित राजनैतिक अधिकार उन्हें प्राप्त हों, यह सब हमें स्वीकार है। इसपर आजतक एक भी सनातनीने विरोध नहीं किया, न भविष्यमें करेगा; किन्तु मन्दिरोंका प्रश्न एक धार्मिक प्रश्न है और धर्म सदैव राजनीतिकी सीमासे बाहर रहनेवाला है। अतएव इसपर राजनैतिक सत्ताद्वारा कानूनका वार करना न नीतिमत्ता है और न राजनैतिकता।

हम ही नहीं; किन्तु अनेक सुधार-प्रिय और अन्त्यजोंको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार दिये जानेके

समर्थक भी ऐसे प्रश्नोंपर कानून बनानेके समर्थक नहीं रहे हैं। मद्रास-कौंसिलमें मन्दिर-प्रवेश-बिलपर बोलते हुए राइट आनरेबिल श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्रीने स्पष्ट रूपसे कहा था कि 'यह बिल सनातनधर्मियोंपर अत्याचार है।' कांग्रेसके भूतपूर्व प्रधान श्रीयुत श्रीनिवास आयंगरने कहा था कि 'ऐसे धार्मिक मामलोंमें कानून बनानेकी नीति महान् घातक तथा अनुचित है।' राष्ट्रगौरव सुभासबाबूने भी वायनासे 'अमृत-बाजार-पत्रिका'के सम्पादकके नाम एक पत्र लिखते हुए मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलनका विरोध किया था। माननीय अणेने भी उक्त बिलपर सम्मति देते हुए लिखा था कि 'शासनके हाथमें अपने धर्मकी बागडोर सौंपना और सुधारका नाम लेना महान् मूर्खता है।' श्रीसत्यमूर्तिने इस प्रकारके सुधारकी आलोचना की थी। अभी पिछले दिनों हमारे प्रान्तके माननीय कानून मन्त्री डा० काटजू महोदयने भी हिंदू कोडके सम्बन्धमें इलाहाबाद ला जरनलमें अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था कि 'समाजका सुधार कानूनद्वारा नहीं किया जा सकता····रीति-रिवाजोंके रूपमें जनताने स्वयं अपने लिये कानून बनाये हैं, किसी भी जातिके निजी कानूनोंमें परिवर्तन करना उस जातिकी बुद्धि तथा परम्पराके प्रति जबरदस्ती करना है।' महामना मालवीयजीने भी लिखा था कि 'हिंदुओंके व्यक्तिगत कानूनोंको बदलनेका अधिकार एक ऐसी संस्थाको नहीं है जिसमें हर मतावलम्बी मौजूद हैं।' तथा अभी पिछले ही दिनों उन्होंने केन्द्रीय ऐसेम्बलीमें उपस्थित कतिपय समाज-सुधार-सम्बन्धी बिलोंपर अपने विचार प्रकट करते हुए बताया था कि 'इतिहासके किसी कालमें भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है जब कि जान-बूझकर किसी मानव-संस्था अथवा राजनैतिक अधिकारोंद्वारा हिंदू धर्मशास्त्रोंमें परिवर्तन उपस्थित किया गया हो।'

इतना ही नहीं, वर्तमान राजनीतिके जन्मदाता लोकमान्य तिलकने बम्बई ऐसेम्बलीमें एक ऐसे ही समाज-सुधारक बिलका विरोध करते हुए कहा है कि 'किसी भी कानूनकी सहायतासे समाजपर बोझ डालनेसे किसी प्रकारका लाभ होनेके बदले हानि ही होनेकी अधिक सम्भावना है' आदि।

हमारे इन मर्मी उद्धरणोंसे यह स्पष्ट है कि मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर राजनीतिक सत्ताद्वारा किसी प्रकारका नियन्त्रण न धार्मिक जनता ही उचित समझती है और न वर्तमान युगके अनेक प्रमुख राजनीतिक नेता ही। फिर यदि वह समाज, जिसका इन मन्दिरोंसे सीधा सम्बन्ध हो इस प्रकारके कानूनका विरोधी है तब तो किसी भी प्रकार ऐसे कानूनके निर्माणका औचित्य स्वीकार ही नहीं किया जा सकता। राज्यकी शक्तिसे जनमतकी दुहाई देकर या मूर्तिपूजाके विरोधियोंकी सम्मतिसे किसी मन्दिरकी मर्यादाका तोड़ना उस मन्दिरपर श्रद्धा रखनेवाले समाजपर भयानक आक्रमण है जो कानूनकी दृष्टिमें भी एक भयानक अपराध हो सकता है।

गांधीजीका नाम लेकर ही इस आन्दोलनको विशेष बल दिया जाता है; किन्तु गांधीजीने अपनी 'हिंद स्वराज्य' पुस्तकमें स्पष्ट लिखा है कि '(ऐसे प्रश्नोंपर) किसी भी बहुमतका निर्णय किसी भी अल्पमतपर नहीं लादा जा सकता। समाज-सुधारका प्रश्न पहले अल्पमतकी ही ओरसे उठाया जाता है फिर बहुमतको उसके अनुकूल बनानेकी चेष्टा होती है। आगे चलकर जब उन्हें सफलता मिलती है तब वह अल्पमत ही बहुमत बन जाता है और उनमें वह प्रचलित हो जाता है।' इन शब्दोंसे यह स्पष्ट है जो व्यक्ति सुधार करना चाहें, वे आन्दोलन करें और यदि आन्दोलनमें सचाई है और कुछ तत्त्व है तो वह स्वयं ही अपना लिया जायगा। आन्दोलनके बलपर आज भारतीय रेशमका मूल्य देकर खद्दर पहनते हैं तो यदि इस सम्बन्धमें भी कानून बनानेकी बात छोड़कर जनतामें आन्दोलन किया जाय और उसका आधार सत्य हो तो वह अवश्य ही एक दिन अपना लिया जायगा।

इसी सम्बन्धमें और भी ऐसी कितनी ही बातें हैं, जिनका स्पष्टीकरण आवश्यक है। राजनीतिमें संख्याका महत्त्व है, इसीलिये प्रत्येक वर्ग अपनी जनसंख्याको बढ़ानेका प्रयत्न करता है। इसी नियमके अनुसार कुछ अन्त्यज नेता भी अपनी संख्या दस करोड़ कहते हैं और दस करोड़ संख्यापर ही राजनीतिक अधिकार चाहते हैं। हम उनकी संख्यासे बहुत अधिक भी अधिकार उनको दिये जायँ, इसके विरोधी नहीं, किन्तु फिर भी यह बता देना चाहते हैं कि अन्त्यजोंकी यह संख्या फर्जी और कागजी है। हिंदुओंकी संख्या भारतमें तीस करोड़से कुछ अधिक है, इनमें चौथे वर्णमें जिन्हें 'शूद्र' नामसे पुकारा जाता है, ६-७ करोड़से अधिक व्यक्ति नहीं हैं। इन शूद्रोंमें अधिकांश वे व्यक्ति हैं जो सच्छूद्र होनेके कारण छूआ-छूतके भेद-भावमें नहीं हैं। उन्हें आज भी मन्दिरोंमें जानेका अधिकार प्राप्त है। उदाहरणके लिये 'कहारों' का नाम लिया जा सकता है। वे व्यक्ति जो 'अन्त्यज' कहाते हैं, जिन्हें आजकी राजनीतिक भाषामें अछूत कहा जाता है, दो करोड़से अधिक नहीं हैं। भङ्गी आदि बहुत कम जातियाँ ही इसके अन्तर्गत आती हैं। फिर पता नहीं कि इन जातियोंके कुछ नेता अपनेको समस्त शूद्रवर्गका प्रतिनिधि बनकर किस प्रकार बोलनेका अधिकार समझते हैं?

अस्पृश्यताकी व्यापकतापर तो स्वतन्त्र रूपसे एक ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है। जो व्यक्ति यह प्रश्न उठाते हैं कि अन्त्यज यदि नहा-धोकर, साफ कपड़े पहनकर हमारे पास बैठें तो क्या हानि है? उनसे हम यह पूछना चाहते हैं कि क्या आप किसी प्लेग, हैजा या तपेदिकके रोगीके पास—चाहे वह कितने भी स्वच्छ कपड़े पहने क्यों न हो—बैठते हैं या बैठ सकते हैं? नहीं, तो क्यों? आजके विज्ञानने तो यहाँतक स्पष्ट कर दिया है कि हाथ-से-हाथ मिलानेमात्रसे एक मनुष्यके शरीरसे जर्म्स दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट होते हैं और अपना प्रभाव उस मनुष्यके अंदर ले जाते हैं। बहुतसे रोग बाहरसे नहीं दीखते, पर तो भी उनके अस्तित्वको स्वीकार किया जाता है। नवजात सुन्दर सुकुमार बालकमें कोई स्थूल दोष दिखायी नहीं देता तो भी डाक्टर उसमें शोणित दोष जानकर उसे चेचकका टीका लगा देते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर यह विज्ञान महर्षियोंने प्राप्त किया था कि वंशपरम्परागत भङ्गी आदिके कार्य करते रहनेपर मानवोंमें जो दूषित कीटाणु बन जाते हैं उनसे समाजके अन्य प्राणी बचे रहें और इसीसे स्पृश्यास्पृश्यका विधान किया गया है। इसमें घृणाका भाव नहीं है किन्तु समाज-कल्याणकी भावना है। स्त्रीके रजस्वला होनेपर हम अपनी स्त्रीको भी नहीं छूते, तो क्या हम उससे घृणा करते हैं? सूतक हो जानेपर—अर्थात् घरमें बच्चा होने या मृत्यु होनेपर हमारे परिवारभरके व्यक्ति मन्दिरोंमें प्रवेश नहीं कर सकते। सवर्ण अन्त्यजोंसे घृणा करते हैं यह तो विदेशी शासकका उत्पन्न किया हुआ वाग्जाल है जिसमें हमारे दुर्भाग्यसे हमारे नेता भी फँस गये हैं।

समानताका एक मोहक शब्द भी आज बहुतोंके हृदयोंको आकर्षित करता है। मानव-मानवमें यह भेद कैसा? यह उनका नारा है। हम भी जानते हैं भगवान्की सृष्टिमें सभी समान हैं। मानव-मानव ही नहीं; किन्तु प्राणीमात्र। हम तो उन बंदरोंको भी भोजन देते हैं जिन्हें आज लोग मार देनेकी भी सलाह देते हैं, हम उस मछलीको भी आटेकी गोलियाँ खिलाते हैं जिन्हें आजके अहिंसक खा जानेकी बात कहते हैं, हम नागपञ्चमीको साँपोंको भी दूध पिलाते हैं जिसके पालनेका हमसे अतिरिक्त कोई भी समानताका हामी स्वीकृति नहीं देता। किन्तु समानताका कोई अर्थ होता है। नारी सब हैं, माँ भी, बहिन भी, स्त्री भी और पुत्री भी। तब क्या सबसे समान बर्ताव किया जा सकता है या कोई करता है? फिर इसी प्रश्नपर समानताके ये अर्थ क्यों लगाये जा रहे हैं? मानवका स्पर्श हो जानेपर किसी भी हिरनको फिर हिरनोंका समूह अपनेमें नहीं आने देता, छू जानेमात्रसे कोई भी पक्षी अपना अण्डा नहीं सेता, बहुतेरे पौधे छूनेसे मुरझा

जाते हैं, रजस्वलाकी छायासे बहुतेरे पुष्प कुम्हला जाते हैं, इस प्रकृतिकी अस्पृश्यताको मिटानेकी शक्ति रखता है कोई सुधारक इस पृथ्वी-तलपर ? फिर समानताका मोहक नारा लगाकर मनुष्य-समाजको पतित क्यों बनाया जा रहा है ? महर्षियोंद्वारा निर्दिष्ट मार्गपर अनन्त कालसे आजतक चले आते, शान्तहृदय, किसीके अधिकारोंको न दबानेवाले व्यक्तियोंको क्यों छेड़ा जा रहा है ? उनकी शक्ति क्यों भङ्ग की जा रही है ? उनका अधिकार क्यों दबाया जा रहा है ? इसका उत्तर हमें मिलना चाहिये । 'आदेश'

क्षमा-प्रार्थना

गतवर्ष 'कल्याण' का प्रथम विशेषाङ्क 'गो-अङ्क' था । उसके पिछले वर्ष 'पद्मपुराणाङ्क' निकला था । इस बार बहुत-से ग्राहकोंने पुनः किसी पुराणका अनुवाद प्रकाशित करनेका अनुरोध किया । एक सम्मान्य महानुभावने बहुत जोर देकर मार्कण्डेयपुराण निकालनेके लिये आग्रह किया; परन्तु मार्कण्डेयपुराण छोटा था, इसलिये निश्चय हुआ कि मार्कण्डेयपुराणके साथ-साथ ब्रह्मपुराणका भी संक्षिप्त अनुवाद 'कल्याण'के इस वर्षके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया जाय । इसी निश्चयके फलस्वरूप यह 'संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क' आपलोगोंके सामने है ।

हमारा पवित्र पुराण-साहित्य विविध ज्ञानका भण्डार है । हिंदू-धर्मके अनुसार मनुष्यकी चरम सार्थकता 'भगवत्प्राप्ति'में है । भगवत्प्राप्तिके विविध मार्ग हैं । मार्गोंमें ज्ञान, कर्म, भक्ति तथा उनके विविध अवान्तर भेदोंके साथ ही कठिनता, सुगमता आदि अनेकों भेद हैं । पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए विभिन्न रुचि और अधिकारके अनुसार विभिन्न व्यक्तियोंके लिये उनके ग्रहण करने योग्य विभिन्न अनुभूत सत्य मार्गोंका, मार्गके विघ्नोंका और विघ्नोंसे छूटनेके उपायोंका, बड़ा ही सुन्दर निरूपण करते हैं । मनुष्य अपने ऐहिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्धि और शान्तिसे सम्पन्न कर सकता है और उसी जीवनके द्वारा जीवमात्रका कल्याण करता हुआ कैसे अपने परम और चरम ध्येय भगवत्प्राप्तिके मार्गपर आसानीसे आगे बढ़ सकता है— इसके विविध साधन बड़ी ही रोचक भाषामें सच्चे तथा उपदेशपूर्ण इतिहासोंके साथ पुराणोंमें बताये गये हैं । पुराणोंके श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ, अन्तःकरणकी परिशुद्धि, भगवान्में रति और विषयोंमें विरति तो होती ही है । साथ ही मनुष्यको ऐहिक और पारत्रिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान होता है । तदनुसार जीवनमें कर्तव्य निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है; कर्तव्यके सज्ञान पालन और अकर्तव्यके त्यागके लिये प्रोत्साहन तथा प्रकाशमय पथ मिलता है, और ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतक स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभीको यथाधिकार पृथक्-पृथक् रूपसे समान कल्याणकारी ज्ञान, साधन और सुन्दर तथा पवित्र जीवन-यापनकी शिक्षा मिलती है ।

इन मार्कण्डेय और ब्रह्मपुराणमें ऐसे अनेकों महान् साधन, उपदेश और आदर्श चरित्र भरे हैं, जिनसे मनुष्य सहज ही अपने अभ्युदय तथा निःश्रेयसका पथ प्राप्त कर सकता है सत्यके पालनमें महाराज हरिश्चन्द्रका इतिहास महान् आदर्शस्वरूप है । विपद्ग्रस्तोंको सुख पहुँचानेके लिये महाराज विपश्चित्का त्याग अपूर्व प्रभावोत्पादक है । ब्राह्मणकुमारकी प्राण-रक्षा करनेमें महादेवी पार्वतीजीके तप-समर्पणका इतिहास बड़ा ही पवित्र शिक्षाप्रद है । धर्मके पक्षमें दृढ़ता और मैत्रीधर्मके पालनमें वैश्ययुवक मणिकुण्डलका चरित्र अपनी जोड़ी नहीं रखता । महाशक्तिकी उपासनासे और समस्त पृथक्-पृथक् शक्तियोंकी पुञ्जीभूत एक महान् शक्तिकी सहायतासे विश्वदुःखदायी असुरोंका सम्पूर्ण समाज कैसे सहज ही नष्ट हो सकता है—इसका बड़ा मनोहर और ज्ञानगर्भ उपदेश देवीमाहात्म्य (दुर्गासप्तशती) में प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त पतिव्रतामाहात्म्य, तीर्थमाहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार और

लीलामय भगवान्‌के पवित्र चरित्रोंका बड़ा ही रोचक, मनोहर, गम्भीर और मार्मिक वर्णन इन पवित्र पुराणोंमें आया है। पाठकोंको विशेष मन लगाकर इनसे लाभ उठाना चाहिये।

इस समय भारतीय हिंदू-समाज अपनी सनातन संस्कृति तथा सनातन धर्मपथसे विचलित-सा होकर किंकर्तव्यविमूढ हो रहा है। एक ओर तो उसका अनादिकालीन 'सर्वेश्वरवाद' तथा 'सर्वभूतात्मवाद' का पवित्र सिद्धान्त उसे 'सर्वभूतहित'में रत रहनेके लिये प्रेरणा करता है। दूसरी ओर पाश्चात्त्य देशोंकी भोग-मुखी प्रवृत्तिकी मादकताभरी मीठी-मीठी विषैली लहरोंसे आक्रान्त होकर एवं पाश्चात्त्य शिक्षा-दीक्षाके विमोहक जालमें फँस जानेके कारण उसका ज्ञान मूर्छित-सा हो गया है। इसीसे वह अपने सर्वेश्वरवाद तथा सर्वभूतात्मवादके पवित्र सिद्धान्तको भूलकर एक देश-विशेषकी पार्थिव सीमामें अपनेको बाँधकर मोहित हो गया है और इसीको राष्ट्रीयता अथवा देशप्रेमके नामसे पुकारता है। और उसी देश-विशेषकी केवल आर्थिक स्वतन्त्रताको ही 'स्व-राज्य' मानकर उसकी प्राप्तिके प्रयत्नमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री मानने लगा है। इस राष्ट्रीयताकी प्रगतिके रूपमें उसने परस्पर-विरोधी अनेकों पाश्चात्त्य मतवादोंका अनुकरण करके विविध दलों या वादोंके रूपमें अपनेको छोटे-छोटे समूहोंमें विभक्त खण्ड-खण्ड कर डाला है एवं उन्हींमें कल्याणकर स्वप्न देख रहा है तथा इन वादोंके पारस्परिक द्वन्द्वोंमें छल-बल-कौशलसे अपने-अपने वादके विजय प्राप्त कराने-में ही जीवनकी चेतनता और सफलता मान रहा है। इसीसे वह आज जीवनके वास्तविक ध्येयको त्याज्य, उपादेयको हेय, धर्मको अधर्म तथा कर्तव्यको अकर्तव्य मानकर विपरीत-पथगामी हो रहा है!

साथ ही पाश्चात्त्य आदर्शके सामने नतमस्तक होने तथा उसीका अनुकरण प्रिय लगनेके कारण आज हिंदू-जीवन त्यागमय न रहकर भोगपरायण हो चला है। पाश्चात्त्योंकी-सी विलासिता, उन्हींका-सा रहन-सहन, उन्हींका-सा जीवन-यापनका ढंग, वैसा ही खान-पान, वैसी ही वेशभूषा तथा वैसी ही रीति-नीति आज हिंदू-समाजमें घर कर रही है। इससे उसका जीवन बाह्याडम्बरपूर्ण, बहुत खर्चीला, दंभभरा तथा केवल अधिकार-लिप्सा और अर्थलिप्सामें ही संलग्न रहनेवाला बन रहा है। इसीसे सत्य, अहिंसा, सदाचार, ब्रह्मचर्य और संयमके स्थानमें असत्य, हिंसा, अनाचार, व्यभिचार और असंयमका प्रसार बढ़ रहा है। हिंदू-जीवनका पुरुषार्थचतुष्टय—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आज केवल दो—'अर्थ और काम' में ही सीमित हो गया है। और वह 'अर्थ-काम' भी मोक्षानुगामी तथा धर्म-सम्मत न होनेसे 'आसुरी' हो गया है। फलतः आजका हिंदू-मानव असुर-मानव बना जा रहा है। उसकी धर्मपर आस्था नहीं, भगवान्‌पर विश्वास नहीं। मनमाना आचरण करनेमें ही वह गौरवका बोध करता है। धार्मिक हो या राष्ट्रीय, सामाजिक हो या व्यापारिक, शासकवर्गीय हो या शासितवर्गीय—सभी जगह आज यही यथेच्छाचार और यही अधिकार और अर्थकी अपार लिप्सा एवं फलतः व्यक्तिगत स्वार्थकी पापमयी प्रवृत्ति बढ़ रही है। सभी प्रायः प्रमत्त हैं!

इसीके साथ-साथ—इसी देशके पाश्चात्त्य-भावापन्न मुसल्मानोंके चित्तमें उदित पाश्चात्त्य भावोंके अनुसार राजनीतिक अधिकारकी लिप्साने उनमें एक ऐसी प्रचण्ड क्रिया उत्पन्न कर दी है कि जिसके कारण सारे देशमें विद्वेष, फूट और मार-काटका तथा अमानुषी अत्याचार-का ताण्डव-नृत्य होने लगा है! अधिकार-लिप्सासे उन्मत्त मुसल्मान नेताओंने 'धर्म'के नामपर मुस्लिम जनताको भड़काया और उसके फलस्वरूप आत्म-विस्मृत, निज-परम्परासे पतित, विघटित हिंदू-समाजपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। उसकी धन-सम्पत्तिका आग लगाकर तथा लूटकर नाश किया गया। उसके नर-नारियोंको बलपूर्वक मुसल्मान बनाया गया, उसकी

सती देवियोंका सतीत्व नाश किया गया और उसके नर-नारियोंकी निर्दय हत्या की गयी और ये कुकृत्य किसी-न-किसी अंशमें अब भी चालू हैं । और मुसल्मान भाइयोंकी नीति-रीति देखकर ऐसा सहज ही अनुमान होता है कि इस प्रकारके कुकृत्य अभी और भी विस्तृत क्षेत्रमें बढ़ेंगे । इसपर राष्ट्रवादी हिंदू मोहावृत होकर कहता है—'अरे साम्प्रदायिक हिंदुओ ! तुम्हारी साम्प्रदायिकताकी अपेक्षा हमारी राष्ट्रीयता बहुत ऊँची और महत्त्वकी वस्तु है। हिंदू-मुस्लिम-एकतामें ही राष्ट्रका कल्याण है और स्वराज्यकी प्राप्ति है । तुम उन घटनाओंको भूल जाओ और प्रेमका हाथ बढ़ाओ। सहो और सहकर दूसरे सम्प्रदायकी प्रसन्नता और प्रीति प्राप्त करो। राष्ट्रीयताके लिये साम्प्रदायिकताका नाम मिटा दो ।' इसपर स्वाभाविक ही उत्पीड़ित और व्यथित मानवके हृदयको विदीर्ण करके ये वाक्य निकल पड़ते हैं— 'महानुभावो ! तुम ऊँचे हो, ठीक है। भले तुम आकाशमें रहो, स्वर्गमें निवास करो । हम तो मिट्टीके पुतले हैं, हमारे शरीर हैं, व्यथाका ज्ञान है । हम व्यथा रहते व्यथाको कैसे भूल जायँ ? यदि तुम हमारे कुछ हो तो इस उपदेशकी धाराको कुछ रोककर हमारे आँसू पोंछनेका कोई अन्य सफल प्रयत्न करो। हम भी ऊँचे आकाशपर चढ़ना चाहते हैं, हम भी स्वर्गमें जाना पसंद करते हैं; परन्तु मा-बहिनोंका अपहरण करवाकर नहीं, अपने धर्मको गँवाकर नहीं और अपने प्यारोंको कसाईकी छुरीसे कटवाकर नहीं ।'

उधर अत्याचारियोंका दल बार-बार ललकारकर पीड़ितों और परामर्शदाताओं—दोनोंको क्योंकि दोनों ही हिंदू हैं—धमकाता है और लाल-लाल आँखें दिखाकर त्रस्त करता है। इस प्रकार एक ओर राष्ट्रवादियोंका शुष्क और तामसी 'साम्यवाद' है और दूसरी ओर पीड़नकारियोंका कठोर और घोर तामसी 'वैषम्यवाद' है। यह अनोखा 'साम्यवाद' ज्यों-ही-ज्यों साधारण जीवनके साथ उसकी तालमें न रहकर आगे बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों 'वैषम्यवाद' का गर्जन-तर्जन और भी भीषण होता चला जा रहा है ! बीचमें पड़ी है आज असहाय हिंदू-जाति और उसकी सनातन संस्कृति । इसीसे आज हिंदू-हृदय व्यथासे भरा है । उसमें बड़े-बड़े घाव हो रहे हैं। परन्तु कभी-कभी वेदना भी चेतनाकी जननी होती है। इसीसे आज हिंदू इस अस्थिपञ्जरको चूर-चूर कर देनेवाली वेदनाके अंदरसे चेतनाकी महान् संजीवनीको विचित्र रसके रूपमें किसी अंशमें देखने लगा है । सम्भव है, भगवत्कृपासे आज वह इस संजीवनी-रसको अपने नेत्रजलकी भावना देकर और हृदयके उष्ण शोणित-तापसे उत्तप्त करके और भी घन बना ले, और सम्भव है उससे विश्वके हृदयपर पुनः एक तेजोमय नूतनतम रूपमें हिंदू-संस्कृतिका प्रखर प्रकाश हो ।

हिंदूको अपने सर्वेश्वरवाद और सर्वभूतात्मवादके सिद्धान्तकी रक्षा करनी होगी; क्योंकि यही उसके जीवनकी दिव्य ज्योति है । यही उसकी दिव्य चेतना है और यही उसका स्व-भाव है । इसको खोकर वह जी नहीं सकता । परन्तु साथ ही उसे चतुर नटकी भाँति विश्वमें विश्वनियन्ताके खेलमें सर्वत्र सामञ्जस्य बनाये रखनेके लिये नाट्योपयोगी साधनोंकी भी सतत रक्षा और योजना करनी पड़ेगी। वह अंदरसे 'सार्वभौमिकत्व' को माननेवाला होगा और बाहरसे 'साम्प्रदायिक' बना रहेगा । कांग्रेसके 'साम्यवाद' और मुसल्मानोंके 'वैषम्यवाद'के बीचमें एक ऐसे 'समन्वयवाद' का निर्माण करना पड़ेगा, जिससे सबके जीवनमें वास्तविक सार्वभौमिक आभ्यन्तरिक सत्य साम्यकी प्रेममयी झाँकी की जा सके । असलमें एकमात्र हिंदू-संस्कृति ही ऐसी है जो विषमतापूर्ण कर्मक्षेत्रमें भी सार्वभौमिक समत्वके आस्वादनकी कला बतलाती है । हिंदू-शास्त्र इसी साधनाकी प्रेरणा करते हैं । वे प्रति-पल 'अनेक'

में रहकर नित्य, सत् 'एक'का अनुभव कराते हैं। हिंदू इस 'आत्मीय एकता' को नहीं भूल सकते। 'एक' का स्मरण रखते हुए और 'एक' में रहते हुए ही, 'अनेक' के सामञ्जस्यकी बड़ी सुन्दरताके साथ रक्षा करते हुए 'एक' में जाना होगा। यह सारा 'अनेक' 'एक' मेंसे ही निकला है, 'एक' में ही स्थित है और 'एक' में ही पुनः प्रविष्ट होगा। 'अनेक' में नित्य 'एक' को देखते हुए ही 'एक'में 'अनेक'के सफल खेल करने हैं। इस विचित्र खेलकी कला हिंदू ही जानता है।

यही उसका वर्णाश्रम-धर्म है। वह भारतको अपना देश मानता है; परन्तु मानता है इस अभिनय-मञ्चपर ही। यही उसकी राष्ट्रीयता है। उसका वास्तविक देश किसी पार्थिव सीमासे और उसका काल किसी समयविशेषसे सीमित नहीं है। वह किसी वर्ण या जातिविशेषमें बँधा नहीं है। वह अनन्त है, अपार है, अनिर्वचनीय है और अचिन्त्य है। उस देश-कालमें उससे अभिन्नरूपसे ओतप्रोत रहकर ही वह यथायोग्य देश, काल, वर्ण, जाति और व्यक्तिके विविध विचित्र खेल खूबीसे करता है। वह देशकी, समाजकी, व्यक्तिकी सेवा करता है। स्वराज्य-लाभ भी करता है। शत्रुपर विजय भी प्राप्त करता है। पर सभी कुछ करता है अपनेमें ही, अपने प्रभुमें ही और अपने प्रभुके प्रीत्यर्थ ही। इस महान् सिद्धान्तको इन पुराणोंकी कथाओंमें बड़ी ही सुन्दर रीतिसे दर्शाया गया है। यदि आजका हिंदू 'कल्याण' के इस अङ्कसे तथा विविध हिंदूशास्त्रोंकी मर्मवाणीसे अपनी इस वर्तमान स्थितिमें कर्तव्यका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकेगा तो निश्चित ही वह अपने वर्णाश्रमके अनुसार अपनेमें अपरिमित सात्त्विकी और प्रयोजनानुसार सत्त्वमुखी राजसिक शक्तिका संग्रह तथा उसका ठीक समयपर सज्ञान एवं सफल प्रयोग करके घोर तामसी 'वैषम्यवाद' के अस्तित्वको मिटा देगा। शुष्क तामसिक 'साम्यवाद' को रसमय सात्त्विक बना देगा और उसे बाहरकी मिथ्या समतासे निकालकर अंदर आत्माकी समतामें ले जायगा। साथ ही 'अर्थ-काम'को धर्मसे सम्पुटित करके साधारण मानव-जीवनको मोक्षाभिमुखी कर देगा एवं उस महान् हिंदू-संस्कृतिकी पुनः स्थापना करेगा जिससे परम और निर्मल सत्यका प्रकाश पाकर समस्त विश्व सुख-शान्तिके विमद और विमल पथपर अग्रसर होगा और पुनः सर्वत्र सच्चे प्रेमकी स्थापना होगी।

इस अङ्कके सम्पादनमें जिन महानुभावोंने हमारी सहायता की है, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। कथाओंके चुननेका असली काम था, वह तो सदाकी भाँति हमारे श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने किया। उसमें स्वामीजी श्रीरामसुखजी महाराज तथा भाई श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दकाका भी पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ। हिंदी-भाषान्तरका सारा कार्य हमारे गीताप्रेसके विद्वान् शास्त्री पं० श्रीरामनारायणदत्तजी पाण्डेयने किया। यह सब इन्हीं महानुभावोंका अपना काम था, इससे इन्हें धन्यवाद देकर इनके महत्त्वको घटाना उचित नहीं। इसके अनुवाद, सम्पादन और प्रकाशनमें प्रमादवश बहुत-सी भूलें रही हैं, उनके लिये हम हाथ जोड़कर क्षमाप्रार्थी हैं। इन दिव्य पुराणोंके सम्पादनमें स्थान-स्थानपर भगवद्भक्ति तथा भगवन्नामका पवित्र संयोग हमें सौभाग्यवश प्राप्त हुआ है। पाठकोंको भी यह प्राप्त होगा। यह भी हमारे तथा उनके लिये कम लाभ नहीं है।

कई अनिवार्य कारणोंसे इस अङ्कके प्रकाशनमें देर हुई है और हम जितने अधिक पृष्ठ देना चाहते थे, उतने पृष्ठ भी नहीं दे पाये हैं। इसके लिये भी हम अपने कृपालु पाठकोंसे क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

क्षमा-प्रार्थी

हनुमानप्रसाद पोद्दार

चिम्मनलाल गोस्वामी

सम्पादक

श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सुन्दर, सस्ती, धार्मिक पुस्तकें

*श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति लेखसहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७६, चित्र ४, मूल्य ... १।)

श्रीमद्भगवद्गीता–[मझली] प्रायः सभी विषय १।) वाली नं० १ के समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य अजिल्द ॥≈), सजिल्द ... ॥।=)

श्रीमद्भगवद्गीता–(गुटका) १।) वाली गीताकी ठीक नकल, साइज २२×२९=३२ पेजी, पृष्ठ ५८४, सजिल्द मूल्य ॥)

श्रीमद्भगवद्गीता–श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय, मोटा टाइप, पृष्ठ ३१६, मूल्य ॥), सजिल्द ॥≈)

*श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य अजिल्द ।–), सजिल्द ... ... ।≡)

*श्रीमद्भगवद्गीता–केवल भाषा, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र, पृष्ठ १९२, मूल्य अजिल्द ।), सजिल्द ... ।=)

श्रीमद्भगवद्गीता–साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सचित्र, पृष्ठ ३५२, मूल्य अजिल्द =)॥, सजिल्द ... ≈)॥

गीता–मूल ताबीजी, साइज २×२॥ इंच, पृष्ठ २९६, सजिल्द, मूल्य ... ... =)

गीता–विष्णुसहस्रनामसहित, पृष्ठ १२८, सचित्र, सजिल्द, मूल्य ... ... –)॥

गीता–मूल, महीन अक्षरोंमें, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ... ...)॥

श्रीरामचरितमानस–मोटा टाइप, भाषाटीकासहित, ८ रंगीन चित्र, पृष्ठ-संख्या १२००, सजिल्द मूल्य ... ७॥)

श्रीरामचरितमानस–मूल, गुटका, पृष्ठ ६८८, चित्र २ रंगीन और ७ लाइन ब्लाक, सजिल्द मूल्य ... ॥)

मानस-रहस्य–चित्र रंगीन १, पृष्ठ-संख्या ५१२, मूल्य ... ... १।)

मानस-शंका-समाधान–चित्र रंगीन १, पृष्ठ १९८, मूल्य ... ... ॥)

ईशावास्योपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ५२, मूल्य ... ... ≈)

केनोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १४६, मूल्य ... ... ॥)

कठोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १७८, मूल्य ... ... ॥–)

मुण्डकोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १२२, मूल्य ... ... ।≥)

प्रश्नोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १२८, मूल्य ... ... ।≥)

उपर्युक्त पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) हिन्दी-अनुवाद और शांकरभाष्यसहित, मूल्य ... ... २।–)

माण्डूक्योपनिषद्–श्रीगौडपादीय कारिकासहित, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २८४, मूल्य ... १)

श्वेताश्वतरोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २६८, मूल्य ... ... ॥।=)

श्रीमद्भागवत-महापुराण–मूल-गुटका, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ... ... २॥)

विनय-पत्रिका–गो० श्रीतुलसीदासकृत, सरल हिन्दी-भावार्थसहित, १ चित्र, अनु०—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ४७२, मूल्य अजिल्द १), सजिल्द ... ... १।)

गीतावली–गो० श्रीतुलसीदासकृत, अनुवादक–श्रीमुनिलालजी, पृष्ठ ४४४, मूल्य अजिल्द १), सजिल्द ... १।)

तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग १)–सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ३५२, मूल्य ॥=), सजिल्द ... ॥।–)

तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग २)–सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६३२, मूल्य ॥।=), सजिल्द ... १=)

*तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ३) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ४२४, मूल्य ॥≈), सजिल्द ... ॥।=)

*तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ४) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ५७६, मूल्य ॥।–), सजिल्द ... १)

*तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ५) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ५०४, मूल्य ॥।–), सजिल्द ... १)

तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग १)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ४४८, मूल्य ।–), सजिल्द ... ।=)

---

* संस्करण समाप्त हो गया है, पुनर्मुद्रण होनेपर मिल सकेगा।

*__तत्त्व-चिन्तामणि__—(भाग २)—(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ७५०, मूल्य ।≈), सजिल्द ··· ॥)

*__तत्त्व-चिन्तामणि__—(भाग ३)—(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ५५६, मूल्य ।–), सजिल्द ··· ।≈)

तत्त्व-चिन्तामणि—(भाग ४)—(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ६९६, मूल्य ।≈), सजिल्द ··· ॥)

तत्त्व-चिन्तामणि—(भाग ५)—(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ६२४, मूल्य ।≈), सजिल्द ··· ॥)

विष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य हिन्दी-टीकासहित, सचित्र, भाष्यके सामने ही उसका अर्थ छापा गया है। पृष्ठ २८४, मूल्य ॥≈)

ढाई हजार अनमोल बोल (संत-वाणी)—सम्पादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ३८४, मूल्य ··· ॥≈)

सूक्ति-सुधाकर—सुन्दर श्लोकसंग्रह, सानुवाद, पृष्ठ २६६, मूल्य ··· ··· ··· ॥≈)

कवितावली—गोस्वामी श्रीतुलसीदासकृत, सटीक, १ चित्र, पृष्ठ २२४, मूल्य ··· ··· ॥–)

दोहावली—सानुवाद, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, १ रंगीन चित्र, पृष्ठ १९६, मूल्य ··· ॥)

तुलसीदल—लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ २८४, मूल्य अजिल्द ॥) सजिल्द ··· ॥≋)

सुखी जीवन—लेखिका—श्रीमैत्रीदेवी, पृष्ठ २१६, मूल्य ··· ··· ··· ॥)

नैवेद्य—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके २८ लेख और ६ कविताओंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ २६२, मूल्य ॥), सजिल्द ··· ॥≋)

तत्त्व-विचार—लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, तात्त्विक लेखोंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ २०४, मूल्य ··· ।≈)

उपनिषदोंके चौदह रत्न—पृष्ठ ९२, चित्र १, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।≈)

भक्त नरसिंह मेहता—सचित्र, पृष्ठ १६०, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।≈)

लोक-परलोकका सुधार—प्रथम भाग, पृष्ठ-संख्या २२०, मूल्य ··· ··· ··· ।≈)

लोक-परलोकका सुधार—द्वितीय भाग, पृष्ठ-संख्या २४४, मूल्य ··· ··· ··· ।≈)

रामायण प्रथमा-परीक्षा-पाठ्य-पुस्तक—पृष्ठ १७४, मूल्य ··· ··· ··· ।≈)

विवेक-चूडामणि—सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ १८४, मूल्य अजिल्द ।–), सजिल्द ··· ··· ॥)

प्रेम-दर्शन—नारदरचित भक्तिसूत्रोंकी विस्तृत टीका, टीकाकार—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ १८८, मूल्य ।–)

भवरोगकी रामबाण दवा—लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ १७२, मूल्य ··· ··· ।–)

भक्त बालक—गोविन्द, मोहन आदि बालक भक्तोंकी ५ कथाएँ हैं, पृष्ठ ८०, चित्र ४ रंगीन, १ सादा, मूल्य ··· ।–)

भक्त नारी—स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेके लिये बहुत उपयोगी मीरा, शबरी आदिकी कथाएँ हैं, पृष्ठ ६८, १ रंगीन, ५ सादा चित्र, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।–)

भक्त-पञ्चरत्न—यह रघुनाथ, दामोदर आदि पाँच भक्तोंकी कथाओंकी पुस्तक सद्गृहस्थोंके लिये बड़े कामकी है, पृष्ठ ८८, मूल्य ··· ··· ··· ।–)

आदर्श भक्त—शिबि, रन्तिदेव आदिकी ७ कथाएँ, पृष्ठ ९८, १ रंगीन, ११ लाइन-चित्र, मूल्य ··· ।–)

भक्त-सप्तरत्न—दामा, रघु आदिकी गाथाएँ, पृष्ठ ८६, चित्र १, मूल्य ··· ··· ··· ।–)

श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सुन्दर, सस्ती, धार्मिक पुस्तकें

*श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति लेखसहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७६, चित्र ४, मूल्य ...	१।)
श्रीमद्भगवद्गीता–[मझली] प्रायः सभी विषय १।) वाली नं० १ के समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य अजिल्द ॥≈), सजिल्द ...	॥।=)
श्रीमद्भगवद्गीता–(गुटका) १।) वाली गीताकी ठीक नकल, साइज २२×२९=३२ पेजी, पृष्ठ ५८४, सजिल्द मूल्य	॥)
श्रीमद्भगवद्गीता–श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय, मोटा टाइप, पृष्ठ ३१६, मूल्य ॥), सजिल्द	॥≈)
*श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य अजिल्द ।–), सजिल्द	।≡)
*श्रीमद्भगवद्गीता–केवल भाषा, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र, पृष्ठ १९२, मूल्य अजिल्द ।), सजिल्द ...	।=)
श्रीमद्भगवद्गीता–साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सचित्र, पृष्ठ ३५२, मूल्य अजिल्द =)॥, सजिल्द ...	≈)॥
गीता–मूल तावीजी, साइज २×२॥ इंच, पृष्ठ २९६, सजिल्द, मूल्य	=)
गीता–विष्णुसहस्रनामसहित, पृष्ठ १२८, सचित्र, सजिल्द, मूल्य	–)॥
गीता–मूल, महीन अक्षरोंमें, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य	)॥
श्रीरामचरितमानस–मोटा टाइप, भाषाटीकासहित, ८ रंगीन चित्र, पृष्ठ-संख्या १२००, सजिल्द मूल्य ...	७॥)
श्रीरामचरितमानस–मूल, गुटका, पृष्ठ ६८८, चित्र २ रंगीन और ७ लाइन ब्लाक, सजिल्द मूल्य ...	॥)
मानस-रहस्य–चित्र रंगीन १, पृष्ठ-संख्या ५१२, मूल्य	१।)
मानस-शंका-समाधान–चित्र रंगीन १, पृष्ठ १९८, मूल्य	॥)
ईशावास्योपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ५२, मूल्य	≈)
केनोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १४६, मूल्य	॥)
कठोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १७८, मूल्य	॥–)
मुण्डकोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १२२, मूल्य	।≡)
प्रश्नोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १२८, मूल्य	।≡)
उपर्युक्त पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) हिन्दी-अनुवाद और शांकरभाष्यसहित, मूल्य	२।–)
माण्डूक्योपनिषद्–श्रीगौडपादीय कारिकासहित, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २८४, मूल्य ...	१)
श्वेताश्वतरोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २६८, मूल्य	॥।=)
श्रीमद्भागवत-महापुराण–मूल-गुटका, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य	१॥)
विनय-पत्रिका–गो० श्रीतुलसीदासकृत, सरल हिन्दी-भावार्थसहित, १ चित्र, अनु०—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ४७२, मूल्य अजिल्द १), सजिल्द	१।)
गीतावली–गो० श्रीतुलसीदासकृत, अनुवादक–श्रीमुनिलालजी, पृष्ठ ४४४, मूल्य अजिल्द १), सजिल्द ...	१।)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग १)–सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ३५२, मूल्य ॥=), सजिल्द ...	॥।–)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग २)–सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६३२, मूल्य ॥।=), सजिल्द ...	१=)
*तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ३) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ४२४, मूल्य ॥≈), सजिल्द ...	॥।=)
*तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ४) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ५७६, मूल्य ॥।–), सजिल्द ...	१)
*तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ५) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ५०४, मूल्य ॥।–), सजिल्द ...	१)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग १)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ४४८, मूल्य ।–), सजिल्द ...	।=)

* संस्करण समाप्त हो गया है, पुनर्मुद्रण होनेपर मिल सकेगा।

*तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग २)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ७५०, मूल्य ।=), सजिल्द ··· ॥)
*तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ३)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ५५६, मूल्य ।–), सजिल्द ··· ।=)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ४)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ६९६, मूल्य ।=), सजिल्द ··· ॥)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ५)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ६२४, मूल्य ।=), सजिल्द ··· ॥)
विष्णुसहस्रनाम–शांकरभाष्य हिन्दी-टीकासहित, सचित्र, भाष्यके सामने ही उसका अर्थ छापा गया है। पृष्ठ २८४, मूल्य ॥=)
ढाई हजार अनमोल बोल (संत-वाणी)–सम्पादक–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ३८४, मूल्य ··· ॥=)
सूक्ति-सुधाकर–सुन्दर श्लोकसंग्रह, सानुवाद, पृष्ठ २६६, मूल्य ··· ··· ··· ॥=)
कवितावली–गोस्वामी श्रीतुलसीदासकृत, सटीक, १ चित्र, पृष्ठ २२४, मूल्य ··· ··· ॥–)
दोहावली–सानुवाद, अनुवादक–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, १ रंगीन चित्र, पृष्ठ १९६, मूल्य ··· ॥)
तुलसीदल–लेखक–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ २८४, मूल्य अजिल्द ॥) सजिल्द ··· ॥≈)
सुखी जीवन–लेखिका–श्रीमैत्रीदेवी, पृष्ठ २१६, मूल्य ··· ··· ··· ॥)
नैवेद्य–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके २८ लेख और ६ कविताओंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ २६२, मूल्य ॥), सजिल्द ··· ॥≈)
तत्त्व-विचार–लेखक–श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, तात्त्विक लेखोंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ २०४, मूल्य ··· ।=)
उपनिषदोंके चौदह रत्न–पृष्ठ ९२, चित्र १, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।=)
भक्त नरसिंह मेहता–सचित्र, पृष्ठ १६०, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।=)
लोक-परलोकका सुधार–प्रथम भाग, पृष्ठ-संख्या २२०, मूल्य ··· ··· ··· ।=)
लोक-परलोकका सुधार–द्वितीय भाग, पृष्ठ-संख्या २४४, मूल्य ··· ··· ··· ।=)
रामायण प्रथमा-परीक्षा-पाठ्य-पुस्तक–पृष्ठ १७४, मूल्य ··· ··· ··· ।=)
विवेक-चूडामणि–सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ १८४, मूल्य अजिल्द ।–), सजिल्द ··· ··· ॥)
प्रेम-दर्शन–नारदरचित भक्तिसूत्रोंकी विस्तृत टीका, टीकाकार–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ १८८, मूल्य ।–)
भवरोगकी रामबाण दवा–लेखक–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ १७२, मूल्य ··· ··· ।–)
भक्त बालक–गोविन्द, मोहन आदि बालक भक्तोंकी ५ कथाएँ हैं, पृष्ठ ८०, चित्र ४ रंगीन, १ सादा, मूल्य ··· ।–)
भक्त नारी–स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेके लिये बहुत उपयोगी मीरा, शबरी आदिकी कथाएँ हैं, पृष्ठ ६८, १ रंगीन, ५ सादा चित्र, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।–)
भक्त-पञ्चरत्न–यह रघुनाथ, दामोदर आदि पाँच भक्तोंकी कथाओंकी पुस्तक सद्गृहस्थोंके लिये बड़े कामकी है, पृष्ठ ८८, मूल्य ··· ··· ··· ।–)
आदर्श भक्त–शिबि, रन्तिदेव आदिकी ७ कथाएँ, पृष्ठ ९८, १ रंगीन, ११ लाइन-चित्र, मूल्य ··· ।–)
भक्त-सप्तरत्न–दामा, रघु आदिकी गाथाएँ, पृष्ठ ८६, चित्र १, मूल्य ··· ··· ··· ।–)
भक्त-चन्द्रिका–सखू, विट्ठल आदि ६ भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ७८, चित्र १, मूल्य ··· ··· ।–)
भक्त-कुसुम–जगन्नाथ, हिम्मतदास आदिकी ६ कथाएँ, पृष्ठ ८४, चित्र २, मूल्य ··· ··· ।–)
प्रेमी भक्त–बिल्वमंगल, जयदेव आदिकी ५ कथाएँ, पृष्ठ ९०, ५ चित्र, मूल्य ··· ··· ।–)
प्राचीन भक्त–मार्कण्डेय, कण्डु, उतङ्क आदिकी १५ कथाएँ, पृष्ठ १५२, चित्र बहुरंगे ४, मूल्य ··· ॥)
भक्त-सरोज–गङ्गाधरदास, श्रीधर आदिकी १० कथाएँ, पृष्ठ १०४, चित्र बहुरंगे ३, मूल्य ··· ।=)
भक्त-सुमन–नामदेव, राँका-बाँका आदिकी १० कथाएँ, पृष्ठ ११२, चित्र बहुरंगे २, सादे २, मूल्य ··· ।=)
भक्त-सौरभ–व्यासदासजी, प्रयागदासजी आदिकी ५ कथाएँ, पृष्ठ ११०, चित्र बहुरंगे १, मूल्य ··· ।–)
भक्तराज हनुमान्–सचित्र, पृष्ठ ७२, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।–)
सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र–पृष्ठ ५२, चित्र रंगीन ४, मूल्य ··· ··· ··· ।–)
प्रेमी भक्त उद्धव–पृष्ठ-संख्या ५२, रंगीन चित्र १, मूल्य ··· ··· ··· ≈)

* संस्करण समाप्त हो गया है, पुनर्मुद्रण होनेपर मिल सकेगा।

महात्मा विदुर-पृष्ठ-संख्या ६०, १ सादा चित्र, मूल्य ... ... =)॥

भक्तराज ध्रुव-पृष्ठ-संख्या ४६, २ रंगीन चित्र, मूल्य ... ... ≢)

परमार्थ-पत्रावली (भाग १)-श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ५१ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ १२४, सचित्र, मूल्य ... |)

परमार्थ-पत्रावली (भाग २)- ,, ,, ८० पत्रोंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ २००, मूल्य ... |)

कल्याणकुञ्ज-मननीय तरंगोंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ १३६, मूल्य ... ... |)

महाभारतके कुछ आदर्श पात्र-पृष्ठ १२४, मूल्य ... ... |)

मानवधर्म-लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ९८, मूल्य ... ... ≢)

आदर्श भ्रातृ-प्रेम-लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ १०४, मूल्य ... ... ≢)

गीता-निबन्धावली-गीताकी अनेक बातें समझनेके लिये बहुत उपयोगी है, पृष्ठ ८०, मूल्य ... ... =)॥

साधन-पथ-लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ ६८, मूल्य ... ... =)॥

अपरोक्षानुभूति-शंकरस्वामिकृत, सानुवाद, पृष्ठ ४०, सचित्र, मूल्य ... ... =)॥

मनन-माला-यह भावुक भक्तोंके बड़े कामकी चीज है, पृष्ठ ५४, सचित्र, मूल्य ... ... =)॥

नवधा भक्ति-लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६०, सचित्र, मूल्य ... ... =)

बालशिक्षा-लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६८, सचित्र, मूल्य ... ... =)

रामायण शिशु-परीक्षा-पाठ्य पुस्तक—पृष्ठ ४६, मूल्य ... ... =)

भजन-संग्रह-प्रथम भाग, पृष्ठ-संख्या १८०, मूल्य =)

भजन-संग्रह-द्वितीय भाग, पृष्ठ-संख्या १६८, मूल्य =)

भजन-संग्रह-तृतीय भाग, पृष्ठ-संख्या २२८, मूल्य =)

भजन-संग्रह-चतुर्थ भाग, पृष्ठ-संख्या १६०, मूल्य =)

भजन-संग्रह-पञ्चम भाग, पृष्ठ-संख्या १४०, मूल्य =)

स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी-पृष्ठ ५६, मूल्य ... -)॥

नारीधर्म-पृष्ठ ४८, मूल्य ... -)॥

गोपीप्रेम-पृष्ठ ५२, मूल्य ... -)॥

मनुस्मृति-द्वितीय अध्याय सार्थ, पृष्ठ ५६, मूल्य -)॥

हनुमानबाहुक-सचित्र, सानुवाद, पृष्ठ ४०, मूल्य -)॥

ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप-पृष्ठ ३८, मूल्य -)॥

श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्-सटीक, पृष्ठ ९६, मूल्य अजिल्द -)॥, सजिल्द ... =)॥

मनको वश करनेके कुछ उपाय-पृष्ठ २४, मूल्य -)।

श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा-पृष्ठ ४०, मूल्य -)।

गीताका प्रधान विषय और सूक्ष्म विषय-पृष्ठ ८०, -)।

ईश्वर-पृष्ठ ३२, मूल्य ... -)।

***मूलरामायण**-पृष्ठ ३२, मूल्य ... -)।

रामायण मध्यमा-परीक्षा-पाठ्य पुस्तक-मूल्य ... -)।

सामयिक चेतावनी-मूल्य ... -)

रामायण सुन्दरकाण्ड-पृष्ठ ६४, मूल्य ... -)

आनन्दकी लहरें-पृष्ठ २८, मूल्य ... -)

सन्ध्योपासनविधि-सटीक मूल्य ... -)

गोविन्द-दामोदर-स्तोत्र-सार्थ, पृष्ठ ३२, मूल्य -)

श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश-पृष्ठ १६, मूल्य ... -)

ब्रह्मचर्य-पृष्ठ ३२, मूल्य ... -)

समाज-सुधार-पृष्ठ ४०, मूल्य ... -)

एक संतका अनुभव-पृष्ठ ३२, मूल्य -)

आचार्यके सदुपदेश-पृष्ठ २८, मूल्य ... -)

सप्त-महाव्रत-पृष्ठ ४०, मूल्य -)

वर्तमान शिक्षा-पृष्ठ ४०, मूल्य ... -)

सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय-पृष्ठ ३२, -)

श्रीभगवन्नाम-पृष्ठ ८४, मूल्य ... -)

श्रीमद्भगवद्गीताका तात्त्विक विवेचन-पृष्ठ ६४, मू०-)

भगवत्तत्त्व-पृष्ठ ६४, मूल्य ... -)

संत-महिमा-पृष्ठ ४८, मूल्य ...)॥।

शारीरकमीमांसा-दर्शन-मूल, पृष्ठ ४८, मूल्य)॥।

रामगीता-सटीक, पृष्ठ ४८, मूल्य ...)॥।

विष्णुसहस्रनाम-मूल, पृष्ठ ४४, अजिल्द)॥।, स० -)॥

वैराग्य-पृष्ठ ४८, मूल्य ...)॥।

हरेरामभजन-२ माला, मूल्य ...)॥।

,, १४ माला, मूल्य ... |-)

,, ६४ माला, मूल्य ... १)

विनय-पत्रिकाके पंद्रह पद-सार्थ, पृष्ठ १६, मूल्य)॥

सीतारामभजन-मूल्य ...)॥

भगवान् क्या हैं ?-पृष्ठ ४८, मूल्य ...)॥

भगवान्की दया-पृष्ठ ४०, मूल्य ...)॥

गीतोक्त सांख्ययोग और निष्कामकर्मयोग-पृष्ठ ४८,)॥

* संस्करण समाप्त हो गया है। पुनर्मुद्रण होनेपर मिल सकेगा।

सेवाके मन्त्र–पृष्ठ ३२, मूल्य ...	)॥	श्रीहरिसंकीर्तनधुन–पृष्ठ ८, मूल्य ...	)।
प्रश्नोत्तरी–सटीक, पृष्ठ ३२, मूल्य ...	)॥	नारद-भक्ति-सूत्र–(सार्थ गुटका), पृष्ठ २८, मूल्य	)।
सन्ध्या–हिन्दीविधिसहित, पृष्ठ १६, मूल्य ...	)॥	त्यागसे भगवत्प्राप्ति–पृष्ठ २४, मूल्य ...	)।
बलिवैश्वदेवविधि–मूल्य ...	)॥	महात्मा किसे कहते हैं ?–पृष्ठ २४, मूल्य ...	)।
सत्यकी शरणसे मुक्ति–पृष्ठ ३६, मूल्य ...	)॥	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है–पृष्ठ २४, मूल्य	)।
भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय–पृष्ठ ४८, मूल्य ...	)॥	प्रेमका सच्चा स्वरूप–पृष्ठ २४, मूल्य ...	)।
व्यापारसुधारकी आवश्यकता और व्यापारसे मुक्ति–पृष्ठ ३२, मूल्य ...	)॥	हमारा कर्तव्य–पृष्ठ २४, मूल्य ...	)।
गीताके श्लोकोंकी वर्णानुक्रम-सूची–पृष्ठ ४०, मूल्य	)॥	ईश्वरसाक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है–पृष्ठ २८, मूल्य ...	)।
ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन–पृष्ठ ३६, मूल्य	)॥	चेतावनी–पृष्ठ २६, मूल्य ...	)।
परलोक और पुनर्जन्म–पृष्ठ ४०, मूल्य ...	)॥	कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ–पृष्ठ ३६, मूल्य ...	)।
अवतारका सिद्धान्त–पृष्ठ ३२, मूल्य ...	)॥	श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव–पृष्ठ २४, मूल्य ...	)।
स्त्रियोंके कल्याणके कुछ घरेलू प्रयोग–मूल्य ...	)॥	शोकनाशके उपाय–पृष्ठ २८, मूल्य ...	)।
पातञ्जलयोगदर्शन–मूल, पृष्ठ २८, मूल्य ...	)।	लोभमें पाप–पृष्ठ ८, मूल्य	आधा पैसा
धर्म क्या है ?–पृष्ठ २०, मूल्य ...	)।	गजलगीता–पृष्ठ ८, मूल्य	आधा पैसा
दिव्य सन्देश–पृष्ठ १६, मूल्य ...	)।	सप्तश्लोकी गीता–पृष्ठ ८, मूल्य	आधा पैसा

Our English Publications

The Story of Mira Bai—(*By Bankey Behari*) ...	... 0-13-0
Gems of Truth (First Series)—(*By Jayadayal Goyandka*)	... 0-12-0
Gems of Truth (Second Series)—(*By Jayadayal Goyandka*)	... 0-12-0
Songs From Bhartrihari— (*By Lal Gopal Mukerji and Bankey Behari*)	... 0-8-0
Way to God-Realization—(*By Hanumanprasad Poddar*)	... 0-4-0
Gopis' Love for Sri Krishna—(*By Hanumanprasad Poddar*)	... 0-4-0
The Bhagavadgita—(*With Sanskrit text and an English translation*) 0-4-0 *Bound* ...	0-6-0
The Divine Name and Its Practice—(*By Hanumanprasad Poddar*)	... 0-3-0
The Immanence of God—(*By Madan Mohan Malaviya*)	... 0-2-0
Wavelets of Bliss—(*By Hanumanprasad Poddar*)	... 0-2-0
What is God ?—(*By Jayadayal Goyandka*	... 0-2-0
What is Dharma?—(*By Jayadayal Goyandka*)	... 0-0-9
The Divine Message—(*By Hanumanprasad Poddar*)	... 0-0-9

कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

(१) हर एक पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ देवनागरी या अंग्रेजी अक्षरोंमें लिखें। साथ ही उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिये।

(२) स्टेशनका नाम जरूर लिखना चाहिये। पुस्तकोंका वजन देखकर सुविधानुसार माल डाकसे या मालगाड़ीसे अथवा पारसलसे भेजा जा सकता है। आर्डरके साथ कुछ दाम पेशगी भेजने चाहिये।

(३) थोड़ी पुस्तकोंपर डाकखर्च अधिक पड़ जानेके कारण एक रुपयेसे कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती, इससे कमकी किताबोंकी कीमत, डाकमहसूल और रजिस्ट्रीखर्च जोड़कर दाम भेजें।

(४) पुस्तकका दाम, ƒ१ एक सेरका ॥) के हिसाबसे डाकमहसूल, ≡) रेजिस्ट्रीखर्च तथा १) की पुस्तकपर)॥ पैकिंगखर्च जोड़कर दाम आर्डरके साथ ही भेज देना चाहिये ताकि ग्राहकोंको

वी० पी० का अलग खर्च न देना पड़े एवं पुस्तकें भी शीघ्र मिल सकें। रेलसे मँगानेवाले सज्जन पुस्तकके दाम, ।)॥ रजिस्ट्रीखर्च तथा १) की पुस्तकपर)॥ पैकिंगखर्च जोड़कर दाम भेजें।

(५) ५०) की पुस्तकें लेनेसे ग्राहकोंके रेलवे स्टेशनपर मालगाड़ीसे फ्री-डिलेवरी तथा रेलपारसलसे आधा महसूल वाद दिया जायगा। फ्री-डिलेवरीमें बिल्टी भेजनेमें लगनेवाला डाकखर्च, रजिस्ट्रीखर्च या मनीआर्डरकी फीस या बैंक-चार्ज आदि शामिल नहीं हैं।

(६) आर्डर आनेपर भी उसका माल भेजनेके लिये हम बाध्य नहीं हैं।

(७) 'कल्याण' रजिस्टर्ड होनेसे उसका महसूल कम लगता है और वह 'कल्याण'के ग्राहकोंको नहीं देना पड़ता,पर प्रेसकी पुस्तकों और चित्रोंपर ॥) सेर डाकमहसूल लगता है, जो कि ग्राहकोंके जिम्मे होता है। इसलिये 'कल्याण'के साथ किताबें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। अतः गीताप्रेसकी पुस्तक आदिके लिये अलग आर्डर देना चाहिये।

(८) गोरखपुरसे मँगवानेके पहले अपने गाँवके पुस्तक-विक्रेतासे अवश्य पूछ लें। इससे आप भारी डाकखर्च और रेलपारसलखर्चसे बच सकते हैं।

चित्र-सूची

गीताप्रेस, गोरखपुरके सुन्दर, सस्ते, धार्मिक दर्शनीय चित्र

फुटकर एवं 'कल्याण-कल्पतरु' के बचे हुए कुछ चित्र

रंगीन चित्र ७॥×१०, नेट दाम)॥ प्रतिचित्र

अश्व-परिचर्या
शिबिका आत्मत्याग
भीमसेन और द्रौपदी; कीचक-वध
जमदग्नि-परशुराम
सुदामाके तन्दुल
द्रौपदीको सान्त्वना
कल्याण वर्ष १५ अङ्क एकका टाइटल
श्रीरामका राज्याभिषेक
श्रीकृष्णार्जुन तथा मयदानव
तन्मयता
पाण्डवोंका वन-गमन
महादेवजीके द्वारा पार्वतीको श्रीविष्णु-सहस्रनामका उपदेश
श्रीविष्णुदासको भगवान्‌का दर्शन
द्रौपदीकी लाज-रक्षा
शाल्व-दन्तवक्रादि असुरोंका उद्धार
सोलह सहस्र कन्याओंका वरण
भगवान्‌के प्रथम पुत्र प्रद्युम्न
रासेश्वरका रासस्थलीमें आविर्भाव
पाण्डवोंको राज्य दिलानेकी मन्त्रणा
जरासंधसे युद्ध-भिक्षा
कालयवन-संहार
मुचुकुन्दके ऊपर अनुग्रह
श्रीगणपति

भागवतके रंगीन चित्र ७।×११ नेट दाम)॥। प्रतिचित्र

सूतजीकी कथा
चित्रकेतुको भगवान् शेषजीका दर्शन
शुककी भेदरहित दृष्टि
नारद-भक्ति-समागम
भरतका मोह
परीक्षित्‌को शाप
कलियुग और परीक्षित्
यक्षोंके साथ ध्रुवका युद्ध
पृथुका पृथिवी-गोदोहन
गोकर्णके पास प्रेतरूप धुन्धकारीका आना
पुरञ्जनपुरीपर प्रज्वारका प्रकोप
प्रह्लादकी माताको नारदजीका उपदेश
हिरण्यकशिपुको वर-प्रदान
महासंकीर्तन
भीष्मजीद्वारा भगवान्‌की स्तुति
प्रह्लादजीका बालकोंको उपदेश
ध्रुवको माताकी शिक्षा
प्राचीनबर्हिको नारदजीका उपदेश
यमराजका दूतोंको उपदेश
कर्दमजीके आश्रमपर स्वायम्भुव मनु और देवहूति
इन्द्र-वृत्रासुर-संग्राम
जय-विजयको शाप
वाराहभगवान्
शुकदेवजीका भागवताध्ययन
भद्रकालीद्वारा जडभरतकी रक्षा

आवश्यक सूचनाएँ

(१) चित्रका नाम जिस साइजमें दिया हुआ है वह उसी साइजमें मिलेगा।

(२) ऽ१ एक सेरमें ७॥×१० के १२० चित्र चढ़ते हैं। इस हिसाबसे फी आधा सेरका ।) डाकमहसूल, ≠) रजिस्ट्री-खर्च, प्रतिरुपया -) पैकिंगखर्च तथा चित्रोंका दाम जोड़कर रकम पेशगी भेज देनी चाहिये।

(३) केवल २ या ४ चित्र पुस्तकोंके साथ या अकेले नहीं भेजे जाते, क्योंकि रास्तेमें टूट जाते हैं।

(४) जिन चित्रोंके नंबर और नाम उड़ा दिये गये हैं वे चित्र अब स्टाकमें समाप्त हो गये हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याणके पुराने अङ्क

१९वें वर्षका विशेषाङ्क 'संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क' पूरे वर्षकी फाइलसहित ... ... ४≠)
२०वें वर्षका विशेषाङ्क 'गो-अङ्क' पूरे वर्षकी फाइलसहित ... ... ५≠)

महामना मालवीयजीके श्राद्धोपलक्ष्यपर प्रकाशित

मालवीय-अङ्क

जो २०वें वर्षके १३वें अङ्कके रूपमें निकला था और जिसमें वर्तमान स्थितिपर विस्तृतरूपसे विचार किया गया था, उसे जगह-जगहसे लोग पढ़ने और बाँटनेके लिये अलगसे मँगवा रहे हैं। जिनको आवश्यकता हो, वे ।) प्रति मूल्य भेजकर तुरन्त मँगवा लेवें। क्योंकि वह दुबारा नहीं छपेगा। तीनसे अधिक अङ्क मँगानेपर ≠) रजिस्ट्री-खर्च भी भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

Kalyana-Kalpataru

(An illustrated English monthly)

Special issue of Current year—The Gita Tattwa Number—II, Annual Subscription Rs. 4-8-0

The Manager—Kalyana-Kalpataru, Gorakhpur (India)

Inland Postage free in all cases

गीता और रामायणकी परीक्षा

सद्विचारवान् सज्जनोंको श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस (रामायण) का महत्त्व समझाना नहीं होगा। हर्षकी बात है, इनके प्रचारके लिये कई वर्षोंसे यह परीक्षा-समिति अपना कार्य कर रही है। प्रतिवर्ष हजारों परीक्षार्थी परीक्षामें बैठते हैं। अतएव सब सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे अपने-अपने स्थानोंकी हिन्दी-संस्कृत-पाठशालाओंमें तथा स्कूल-कालेजोंमें गीता और रामायणकी पढ़ाईकी व्यवस्था करायें और यथासाध्य अधिक-से-अधिक विद्यार्थियोंको परीक्षामें बैठनेके लिये उत्साहित करें। आशा है कि सभी बुद्धिमान् सज्जन इस कार्यमें हमारी सहायता करेंगे। नियमावलीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र लिखनेकी कृपा करें।

संयोजक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति,
गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

ग्राहकोंकी सेवामें आवश्यक सूचना

१–आपके विशेषाङ्कके लिफाफेपर आपका जो ग्राहकनंबर और पता लिखा गया है उसे खूब सावधानीपूर्वक नोट कर लें। हो सके तो उस पतेको काटकर अपने विशेषाङ्कमें चिपका लें। कार्यालयके साथ पत्र-व्यवहारमें केवल इसी नंबर और पतेका उल्लेख करें। इससे आपको और कार्यालय दोनोंको ही सुविधा रहेगी। रजिस्ट्री या वी० पी० नंबर भी नोट कर लेना चाहिये।

२–डाकविभागके नियमानुसार रजिस्ट्री तथा मनीआर्डर यथास्थान न पहुँचनेकी शिकायत ६ मासके भीतर ही होनी चाहिये अन्यथा वे शिकायतपर विचार नहीं करते। अतः रुपया भेजनेके बाद यदि २ मासके भीतर आपको पोस्ट-आफिससे कार्यालयकी सहीयुक्त वापसी रसीद न मिले तो अपने पोस्ट-आफिसमें तुरंत शिकायत कर देनी चाहिये। रुपया भेजनेकी रसीद मिलनेके बाद २ मासके भीतर आपको कल्याणकी रजिस्ट्री न मिले तो कार्यालयको सूचना देनी चाहिये।

३–ग्राहकोंकी संख्या बढ़ जानेसे कार्यकी सुविधाके लिये इस बार जिन शहरोंमें ग्राहक अधिक हैं उन ग्राहकोंको छाँटकर उनके शहर-शहरके अलग रजिस्टर बनाये गये हैं। ऐसे ग्राहकोंकी ग्राहक-संख्याके पहले शहर (City) का बोधक चिह्न C. (सी०) लगाया गया है तथा पुराने नंबर हटाकर नये नंबर दे दिये गये हैं। जिन नंबरोंके पहले कार्यालयसे C. (सी०) लिखा गया है, प्रत्येक पत्र-व्यवहारमें वे ग्राहक अपने ग्राहक-नंबरके पहले C. (सी०) तथा बादमें शहरका नाम अवश्य लिखें। जैसे अहमदाबादके कोई ग्राहक हैं और उनका ग्राहक-नंबर १ है तो उन्हें इस प्रकार लिखना चाहिये–'C-1 या सी० १ अहमदाबाद'। अपने इन ग्राहक-नंबरोंको कृपया विशेषाङ्कपर ही नोट कर लेना चाहिये। नया नंबर याद न रहे तो पुराना नंबर ही लिख दें। इस योजनामें सम्मिलित प्रत्येक शहरके ग्राहकोंके विशेषाङ्कोंकी रजिस्ट्री तथा प्रत्येक मासिक अङ्क एक साथ उनके पोस्ट-आफिसमें पहुँचेंगे। अतः अङ्कोंके पहुँचनेका पता लगते ही सब ग्राहक प्रयत्न करके अपने अङ्क वहाँसे ले लें। देरी होनेसे सम्भव है, अङ्क गड़बड़ हो जायँ। किसीका अङ्क न मिले तो तुरंत डाकघरमें शिकायत करें तथा कार्यालयको सूचना दें। इसी प्रकार वी० पी० के अङ्क भी मार्च मासमें एक साथ पहुँचेंगे। ग्राहकोंको चाहिये कि अपने अङ्क शीघ्र छुड़ा लें।

४–विशेषाङ्क तो रजिस्टर्ड होनेसे पहुँच ही जाता है। शेष अङ्क साधारण डाकसे जानेके कारण कभी-कभी रास्तेमें खो जाते हैं। कार्यालयसे अङ्क बहुत सावधानीपूर्वक भेजे जाते हैं, गड़बड़ी पोस्ट-आफिसमें ही होनेकी सम्भावना है। अतः दो मासके भीतर अगला अङ्क प्राप्त न हो सके तो पोस्ट-आफिसमें कड़ी शिकायत लिखनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले वह हमें भेज देना चाहिये। कुछ लोग चार-चार, पाँच-पाँच अङ्कोंकी शिकायत एक साथ लिखते हैं, पर देरी होनेसे न तो पोस्ट-आफिसपर शिकायतोंका प्रभाव पड़ता है तथा न खोये अङ्क उनको मिल पाते हैं। अतः इस विषयमें बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये। जिनके अङ्क बराबर गुम होते रहें वे अपने डिवीजनके "सुपरिंटेंडेंट ऑफ पोस्ट आफिसेज" को शिकायत लिखनेकी कृपा करेंगे। यदि हर महीने रजिस्ट्रीसे अङ्क मँगाना हो तो ≈) प्रति अङ्क रजिस्ट्री-खर्च और भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक–कल्याण, गोरखपुर

कल्याणके नियम

उद्देश्य–भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका यत्न करना इसका उद्देश्य है ।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें । लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है । अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते । **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं ।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ६≥) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ८।।=) (१३ शिलिंग) नियत है । **बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता ।**

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसंबरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं । वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, किन्तु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे । 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते ।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते ।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है । यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये । वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये । डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है ।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये । **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये ।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो,तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये । पता-बदलनेकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी ।

(७) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रों-वाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा । विशेषाङ्क जनवरीहीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा । फिर दिसंबरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे ।

(८) पाँच आना एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है; ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ।–) बाद दिया जा सकता है ।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण'की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है ।

(१०) पुराने अङ्क, फाइलें तथा विशेषाङ्क कम या रियायती मूल्यमें नहीं दिये जाते ।

(११) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये । पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये ।

(१२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है । एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये ।

(१३) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये । बी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं ।

(१४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये । 'कल्याण'के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते । प्रेससे १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती ।

(१५) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते ।

(१६) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें) पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये ।

(१७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि व्यवस्थापक **"कल्याण" गोरखपुरके** नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण" गोरखपुरके** नामसे भेजने चाहिये ।

(१८) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कुछ कम नहीं लिया जाता ।

Regd. No. A. 175.

श्रीहरिः

[illegible]

एकः प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति ।
एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम् ॥
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः ।
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ।
मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः ॥
तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति ।
तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः ॥

(ब्रह्मपुराण २१७ । ४–७)

व्यासजी कहते हैं—

हे विप्रो ! प्राणी अकेला ही जन्मता, अकेला ही मरता, अकेला ही दुर्गम कठिनाइयोंको पार करता और अकेला ही दुर्गतिको प्राप्त होता है । पिता, माता, भ्राता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी और मित्रवर्ग इनमेंसे कोई भी मरनेवालेका साथ नहीं दे सकता । घरके लोग मृत व्यक्तिके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी तरह त्याग देते हैं और घड़ीभर रोकर उससे मुँह मोड़कर चले जाते हैं । वे सब तो छोड़ जाते हैं पर धर्म उसको नहीं छोड़ता । वह अकेला ही जीवके साथ जाता है, अतः धर्म ही सच्चा सहायक है । इसलिये मनुष्योंको धर्मका सदा सेवन करना चाहिये ।